आर्यसमाज का इतिहास

तृतीय भाग

(शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का कार्यकलाप)

लेखक

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार

तथा

प्रो. हरिदत्त वेदालंकार

(अध्याय २, ६, ७, १५, १६, १७, २२)

1983

प्रकाशक

आर्य स्वाध्याय केन्द्र

ए-१/३२, सफदरजंग इन्क्लेव,

नयी दिल्ली-२९

प्रकाशक का निवेदन

सदियों की मोहनिद्रा के पश्चात् उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में पुन: जागरण (Renaissance) और धार्मिक सुधार (Reformation) के जिन आन्दोलनों का सूत्रपात भारत में हुआ, महर्षि दयानन्द सरस्वती का उसमें प्रमुख कर्तृत्व था। दयानन्द आधुनिक भारत के सबसे महान् चिन्तक थे। संसार के उपकार तथा मानवमात्र के हित-कल्याण के लिए जिस कार्य का उन्होंने प्रारम्भ किया था, उसी को जारी रखने के प्रयोजन से उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। महर्षि यह भी मानते थे, कि भारत संसार का सर्वश्रेष्ठ देश है, किसी समय यह विश्व का शिरोमणि रहा है, और सत्य सनातन वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप की पुन: स्थापना द्वारा यह देश एक बार फिर संसार का नेतृत्व कर सकता है, और मानवमात्र को सुख-शान्ति, उन्नति एवं समृद्धि का मार्ग प्रदर्शित कर सकता है। उन्नीसवीं सदी में ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज आदि सुधार के जिन अन्य आन्दोलनों का भारत में सूत्रपात हुआ था, उनका प्रभाव-क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा। वे जनता के बहुत थोड़े वर्ग को ही प्रभावित कर सके। पर आर्यसमाज ने शीघ्र ही एक जन-आन्दोलन का रूप प्राप्त कर लिया। भारत का कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं है, जहाँ आर्यसमाजों की स्थापना न हुई हो। भारत के बाहर अफ्रीका, मॉरीशस, फीजी, सुरीनाम, गुयाना, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, हालैण्ड, सिंगापुर, बरमा, थाईलैण्ड आदि सर्वत्र अब आर्यसमाज स्थापित हो चुके हैं, और आर्यसमाजों की संख्या अब पाँच हजार से भी अधिक हो गयी है। आर्यसमाज का प्रभावक्षेत्र जनता के किसी विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित नहीं है, अपितु ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ऊँचे समझे जाने वाले लोग और पिछड़े हुए व दलित वर्गों के लोग समान रूप से आर्यसमाज में सम्मिलित हैं। इस समाज में सम्मिलित हो जाने पर ऊँच-नीच, छूत-अछूत आदि के भेद रह ही नहीं जाते। एक सदी के लगभग के स्वल्प समय में आर्यसमाज ने जिस प्रकार एक विश्वव्यापी आन्दोलन का रूप प्राप्त कर लिया है, वह वस्तुत: आश्चर्य की बात है। शिक्षा के प्रसार, कुरीतियों के निवारण, सामाजिक न्याय और समता की स्थापना, दलितोद्धार, स्त्रीशिक्षा, स्वदेशी, राष्ट्रीयता के विकास, पाखण्ड के खण्डन, रूढ़ियों के निराकरण और अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की अनुभूति आदि के लिए जो ठोस कार्य गत एक शताब्दी में आर्यसमाज द्वारा किया गया है, वह किसी भी अन्य संस्था या संगठन ने नहीं किया। आज भारत जो स्वतन्त्र है, उसका बहुत कुछ श्रेय भी आर्यसमाज को दिया जा सकता है। पर खेद है कि आधुनिक इतिहास के लेखकों ने भारत के नवजागरण का वृत्तान्त लिखते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज के साथ न्याय नहीं किया है। सम्भवत:, इसका कारण यह है कि अभी तक ऐसे उच्च कोटि के ग्रन्थ पर्याप्त संख्या में नहीं लिखे गये, जिनमें कि महर्षि के मौलिक व प्रगतिशील

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चिन्तन तथा मन्तव्यों का वैज्ञानिक ढंग से निरूपण किया गया हो, और जिन द्वारा भारत के नवजागरण के सम्बन्ध में आर्यसमाज के कर्तृत्व पर उस शैली से प्रकाश डाला गया हो, जो आधुनिक इतिहास लेखकों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर यह विचार किया गया कि आर्यसमाज का एक ऐसा विस्तृत इतिहास तैयार किया जाए, जिसमें कि स्पष्ट व वैज्ञानिक ढंग से यह प्रकाश में लाया जाए कि इस समाज की स्थापना किन परिस्थितियों में और किन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी, उसका प्रचार व प्रसार किस प्रकार हुआ, उसके कार्यक्षेत्र में कैसे निरन्तर वृद्धि होती गयी, उस द्वारा भारत में किस प्रकार जन-जागरण उत्पन्न हुआ, शिक्षा तथा समाज सुधार के क्षेत्रों में उसने क्या महत्त्वपूर्ण कार्य किया, देश को स्वतन्त्रता तथा उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने में आर्य-समाज और उसके सभासदों का क्या योगदान रहा, किस प्रकार उसने एक विश्वव्यापी संगठन का रूप प्राप्त कर लिया, और अपने महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अभी आर्य-समाज को क्या कुछ करना है। इस प्रकार के विस्तृत इतिहास से जहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज के महत्त्वपूर्ण कार्यकलाप के प्रति विश्व के उद्बुद्ध व सुशिक्षित लोगों का ध्यान आकृष्ट होगा, वहाँ साथ ही आर्यसमाज के विद्वान्, नेता तथा कार्यकर्ता भविष्य के लिए प्रेरणा भी प्राप्त कर सकेंगे। आर्य बन्धुओं में अपने समाज के प्रति हीनता और निराशा की जो भावना कभी-कभी उत्पन्न होने लगती है, उसके निराकरण में भी इस इतिहास से सहायता मिलेगी। इस 'इतिहास' का रूप एक ऐसे विशाल विश्वकोश के समान होगा, जिससे पाठक आर्यसमाज के सुविस्तृत कार्यक्षेत्र एवं कार्यकलाप के सम्बन्ध में सब आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

पर आर्यसमाज के विस्तृत इतिहास को तैयार करने का कार्य इतना महान् है, कि कोई एक लेखक अकेले इसे सम्पन्न नहीं कर सकता। इसके लिए अनेक विद्वानों व इतिहासज्ञों को परस्पर सहयोग से काम करना होगा। आर्यसमाज के इतिहास की आवश्यक सामग्री को एकत्र करने के लिए अत्यधिक श्रम करना होगा, और प्रचुर मात्रा में धन की भी आवश्यकता होगी। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार तथा कार्यकलाप का पुराना वृत्तान्त जिन पत्र-पत्रिकाओं में विद्यमान है, पुराने सरकारी रिकार्डों में आर्य नेताओं के कार्यों का जो उल्लेख है, और आर्यसमाज की विविध संस्थाओं व संगठनों की जो पुरानी विवरण-पत्रिकाएँ हैं, उन सबका अवलोकन, अनुशीलन एवं विवेचन करके ही इस महत्त्वपूर्ण व उपयोगी कार्य को सम्पादित कर सकना सम्भव है। व्यापारिक दृष्टि से न ऐसे इतिहास लिखवाये जा सकते हैं, और न कोई प्रकाशक उनका प्रकाशन ही कर सकता है। ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन प्रायः यूनिवर्सिटियों और साहित्य-संस्थानों द्वारा ही किया जाता है, और इस प्रकार के साहित्य-निर्माण के लिए सरकार से भी उन्हें भरपूर आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। आर्यसमाज में शिक्षण-संस्थाओं की कोई कमी नहीं है। अनेक आर्य विश्वविद्यालय भी विद्यमान हैं। गुरुकुल काँगड़ी के रूप में एक ऐसी आर्य शिक्षण-संस्था भी है, जिसे यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त है, और जिसका सब खर्च भारत सरकार द्वारा वहन किया जाता है। रोहतक में एक महर्षि दयानन्द सरस्वती यूनिवर्सिटी भी स्थापित हो गयी है। पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ में एक दयानन्द पीठ की सत्ता है, और डी० ए० वी० कॉलिज, अजमेर में भी दयानन्द पीठ स्थापित हो गया है। गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर और पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला सदृश अनेक शिक्षण-संस्थाएँ सिक्ख इतिहास

और सिक्ख अध्ययन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, और सरकार भी उन्हें इन कार्यों के लिए सहायता प्रदान कर रही है। सम्भवतः, अधिक उचित तो यह होता, कि आर्यसमाज की उच्च शिक्षण-संस्थाएँ आर्यसमाज के इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने हाथों में ले लेतीं, और सरकार से समुचित सहायता प्राप्त कर तथा अपने साधनों व प्रभाव को प्रयुक्त कर इसे सम्पन्न करतीं। यह कह सकना तो सम्भव नहीं है, कि इन संस्थाओं की दृष्टि में इस प्रकार के इतिहास का कोई महत्त्व नहीं है, पर सम्भवतः, वे इससे भी बहुत अधिक महत्त्व के अन्य कार्यों में संलग्न हैं, जिसके कारण उन्होंने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और हमारे इस कार्य को प्रारम्भ कर देने और हमारे प्रयत्न के परिणाम को प्रत्यक्ष रूप से देख लेने पर भी इसे अपना लेने या इसे अपना संरक्षण प्रदान करने की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। पर एक प्रकार से यह उचित ही हुआ, क्योंकि इस प्रकार के गम्भीर और परिश्रमसाध्य कार्यों के लिए जिस लगन तथा कर्मठता की आवश्यकता होती है, वे सरकारी सहायता पर निर्भर रहने वाली यूनिवर्सिटियों तथा संस्थानों में आज की परिस्थितियों में कम ही पायी जाती हैं।

हमें इस बात की प्रसन्नता है, कि अपने अत्यन्त सीमित साधनों से जिस अर्थ-साध्य कार्य का हमने प्रारम्भ किया था, अनेक आर्य नर-नारियों ने उसके महत्त्व को अनुभव किया और हमारी सब प्रकार से सहायता की। इनमें पण्डित सत्यदेव वेदालंकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने न केवल स्वयं ही इस 'इतिहास' का संरक्षक होना स्वीकार किया, अपितु अपने बन्धुओं तथा मित्रों को भी संरक्षक बनने के लिए प्रेरित किया। श्री सीताराम आर्य, श्री योगेन्द्रनाथ अवस्थी और पण्डित सत्यदेव विद्यालंकार भी इस 'इतिहास' के लिए आर्थिक साधन जुटाने में निरन्तर प्रयत्न करते रहे। श्री राज मल्होत्रा, श्री स्वामी सर्वानन्दजी महाराज, श्री पूरनचन्द्र आर्य, श्री गजानन्द आर्य और श्री गोविन्दराम भूटानी सदृश जिन आर्य सज्जनों ने आर्य स्वाध्याय केन्द्र के संचालक से कोई भी पूर्व-परिचय न होते हुए उनपर विश्वास कर जिस सात्विकता से 'इतिहास' के लिए सहायता प्रदान की, उसे भुला सकना असम्भव है। आर्थिक साहाय्य प्रदान करने वाले संरक्षकों तथा प्रतिष्ठित-सदस्यों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उनके सचित्र परिचय इस 'इतिहास' के सातों भागों में प्रकाशित किये जा रहे हैं। किसी प्रियजन की पुण्य स्मृति को चिरस्थायी बनाने या अपने सुकृत की सुरभि का दूर-दूर तक विस्तार करने का यह भी एक सशक्त साधन है। इस प्रकार के 'इतिहास' का स्थायी मूल्य होता है। उसे पुस्तकालयों में सुरक्षित रखा जाता है, और देश-विदेश के लाखों पाठक उसे पढ़ते हैं। इस प्रकार के उपयोगी साहित्य के प्रणयन में सहायता प्रदान करने वाले इन नर-नारियों से भी वे परिचय प्राप्त करते हैं, और उनके प्रति नतमस्तक भी होते हैं। हम जो 'इतिहास' में इन दानी नर-नारियों के सचित्र परिचय प्रकाशित कर रहे हैं, उसका प्रयोजन उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ही है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली तथा परोपकारिणी सभा, अजमेर का आशीर्वाद तथा संरक्षण तो हमें प्राप्त है ही। उनके कुछ पदाधिकारियों के चित्र देकर उनके प्रति भी हमने कृतज्ञता प्रकट की है।

"आर्यसमाज का इतिहास" के इस भाग (शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का कार्य-कलाप) के लिए सामग्री एकत्र करने में जिन महानुभावों ने हमारी सहायता की, उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उन सबका उल्लेख कर सकना सम्भव ही नहीं है। सम्भवतः, वे

इसकी अपेक्षा भी नहीं करते, पर ब्रह्मचारी नन्दकिशोर विद्यावाचस्पति, (वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर) श्री धर्मवीरसिंह विद्यालंकार और श्री प्रसन्नकुमार शास्त्री ने विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर जिस परिश्रम व लगन से इस 'इतिहास' के लिए तथ्य जुटाये हैं और अलभ्य सामग्री एकत्र की है, उसका धन्यवादपूर्वक उल्लेख करना आवश्यक है। आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप के सम्बन्ध में जिन बहुत-से ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त की गयी है, उन्हें जुटाने में श्रीमती शान्ता मल्होत्रा, श्री नरदेव वेदालंकार, श्री ब्रह्मदत्त स्नातक, डा० राजकिशोरसिंह, आचार्य दत्तात्रेय वाव्ले, श्री रामशरनदास एडवोकेट तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नयी दिल्ली एवं गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से जो सहायता प्राप्त हुई, उसके लिए हार्दिक धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है। आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या दो हजार से भी अधिक है। हमने प्रायः इन सबकी सेवा में एक प्रश्नावली इस प्रार्थना के साथ भेजी थी, कि उसके अनुसार अपनी संस्था का परिचय हमें भेजने की कृपा करें, ताकि 'इतिहास' में उसका उपयोग किया जा सके। हमें खेद है, कि बहुत-सी शिक्षण-संस्थाओं—विशेषतः समृद्ध गुरुकुलों तथा बड़े कॉलिजों ने हमारी प्रार्थना को समुचित महत्त्व नहीं दिया और हमारे बार-बार अनुरोध करने पर भी उन्होंने आवश्यक जानकारी देने का कष्ट नहीं उठाया। फिर भी उनके सम्बन्ध में विवरण संकलित करने में हमें कुछ न कुछ सफलता अवश्य प्राप्त हुई है, और हमने उनके प्रति न्याय करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। अनेक आर्य स्कूलों, कॉलिजों और गुरुकुलों ने हमारी प्रश्नावली के उत्तर विस्तृत रूप से दिये और अपना परिचयात्मक साहित्य भी हमें भेजा। हम उनके कृतज्ञ हैं। पर स्थान की कमी के कारण उनका अत्यन्त संक्षेप में ही परिचय दिया जा सका है। सम्भवतः, इस ग्रन्थ में इससे अधिक विस्तृत परिचय की आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि हमारा उद्देश्य आर्य शिक्षण-संस्थाओं की निर्देशिका (डाइरेक्टरी) प्रकाशित करना न होकर आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप के विराट् स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालना तथा उसका मूल्यांकन करना ही था। पर हमारे कार्यालय में आर्य शिक्षणालयों के जो विवरण एकत्र हो गये हैं, उनका उपयोग कर आर्य शिक्षण-संस्थाओं की एक डाइरेक्टरी अवश्य तैयार की जा सकती है, और हम प्रयत्न करेंगे कि इस 'इतिहास' के परिशिष्ट रूप में ऐसी डाइरेक्टरी प्रकाशित भी की जाये।

विविध आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना, संचालन तथा प्रगति में जिन व्यक्तियों का प्रमुख कर्तृत्व रहा है, उनमें से कुछ के चित्र भी इस ग्रन्थ में दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में हमने यह नीति अपनायी है, कि बड़े शिक्षणालयों के वर्तमान कुलाधिपतियों, कुलपतियों, आचार्यों, मुख्याधिष्ठाताओं एवं अन्य पदाधिकारियों के चित्र न दिये जायें। इसके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ शिक्षणालयों के संस्थापक वर्तमान समय में भी उनके पदाधिकारी व संचालक हैं। ऐसे कुछ व्यक्तियों के चित्र दे दिये गये हैं, क्योंकि उन्हीं के पुरुषार्थ से इन संस्थाओं की स्थापना हुई थी। अनेक ऐसे आर्य नर-नारी भी हैं, जिनके चित्र हम प्रकाशित करना चाहते थे। उनके चित्रों की प्राप्ति के लिए हमने पत्रव्यवहार किया और, अन्य प्रकार से भी प्रयत्न किया गया, पर हमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। उनके चित्र प्रकाशित न हो सकने का हमें खेद है।

"आर्यसमाज का इतिहास" के प्रथम भाग के समान इस भाग के मुद्रण में भी अजय प्रिंटर्स, शाहदरा (दिल्ली) के स्वामी श्री अमरनाथ तथा श्री सांवलदास ने जो

तत्परता प्रदर्शित की, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के मुद्रण में उनकी भावना केवल व्यापारिक न होकर आत्मीयता की भी रही है, जिसके लिए हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं। आर्य स्वाध्याय केन्द्र 'आर्यसमाज का इतिहास' के लेखन, सम्पादन तथा प्रकाशन का जो महान् कार्य प्रारम्भ कर सका, और उसके इस नये भाग को जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर सका, उसका श्रेय उन अनगिनत आर्य नर-नारियों को अवश्य दिया जाना चाहिये, जिनका प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहा और जिनकी शुभकामनाएँ हमें शक्ति एवं उत्साह प्रदान करती रहीं। 'आर्यसमाज का इतिहास' के प्रथम भाग के विक्रय एवं प्रचार में स्वामी ओमानन्दजी महाराज, प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान प्रोफेसर वेदव्यास एवं मन्त्री श्री रामनाथ सहगल, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान श्री वीरेन्द्र एवं मन्त्री श्री रामचन्द्र जावेद, डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के मन्त्री श्री दरबारीलाल, 'आर्यजगत्' के सम्पादक पण्डित क्षितीश वेदालंकार तथा आर्यसमाज, कलकत्ता के पदाधिकारियों से जो सहयोग हमें प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम अत्यन्त कृतज्ञता अनुभव करते हैं और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। हमें विश्वास है, कि इस 'इतिहास' के अन्य भागों के विक्रय आदि में भी उनकी सहायता हमें पूर्ववत् प्राप्त होती रहेगी। उत्तरप्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, दिल्ली और हरयाणा आदि की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के पदाधिकारियों से भी हमारा सानुरोध निवेदन है, कि आर्यसमाज के इस विश्वकोश के विक्रय-प्रचार में हमारी सहायता करें। इस 'इतिहास' का प्रकाशन व्यापारिक दृष्टि से नहीं किया जा रहा है। कोई भी प्रकाशन-संस्था इसके प्रकाशन से मुनाफा नहीं प्राप्त कर सकती। कागज, छपाई, जिल्द आदि की आजकल जो कीमतें हैं उन्हें दृष्टि में रखकर कोई भी प्रकाशन-संस्था इस 'इतिहास' के प्रत्येक भाग का मूल्य ढाई-तीन सौ रुपये से कम न रखती। इसका मूल्य जो इतना कम रखा गया है, और इसके क्रय करने पर आर्यसमाजों तथा आर्य संस्थाओं को जो कमीशन दिया जा रहा है, उसका प्रयोजन यही है कि इसका अधिक-से-अधिक प्रचार हो।

७ मई, १९८३

सत्यकेतु विद्यालंकार
निदेशक, आर्य स्वाध्याय केन्द्र,
नयी दिल्ली

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

आर्यसमाज का इतिहास

(तृतीय भाग)

विषय-सूची

प्रस्तावना

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" (आर्यसमाज का छठा नियम)। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संसार के उपकार और मानव समाज के हित-कल्याण एवं सुख-समृद्धि के लिए ही आर्यसमाज की स्थापना की थी, और यह भी निर्दिष्ट कर दिया था कि इस "मुख्य उद्देश्य" की पूर्ति के लिए "अविद्या का नाश तथा विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।" भारत की दुर्दशा का मुख्य कारण यही था कि इस देश में अविद्यान्धकार छाया हुआ था, और अध्ययन-अध्यापन की परम्परा का ह्रास हो गया था। जनता का बहुत बड़ा भाग पूर्णतया निरक्षर था, और जो थोड़ी-बहुत शिक्षा उस समय विद्यमान भी थी, वह समाज के एक ऐसे वर्ग तक ही सीमित थी जिसका आधार जन्म था। इस (ब्राह्मण) वर्ग में संस्कृत भाषा और प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन की जो प्रणाली प्रचलित थी, उस द्वारा न वेदशास्त्रों का समुचित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था और न बुद्धि का प्रयोग कर मनुष्यों की सुख-समृद्धि के नये साधन ही आविष्कृत किये जा सकते थे। परिणाम यह था, कि उन्नति की दौड़ में भारत पाश्चात्य देशों की तुलना में बहुत पीछे रह गया था। जनता अनेकविध अन्धविश्वासों से ग्रस्त थी और समाज में विविध प्रकार की कुरीतियाँ प्रचलित हो गयी थीं। भारत जो अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को भी कायम नहीं रख सका था, उसका भी यही कारण था। ब्रिटिश शासक अपनी शक्ति का उपयोग केवल इस देश को अपना दास बनाये रखने के लिए ही नहीं कर रहे थे, अपितु उनका यह भी प्रयत्न था कि भारत के निवासी गौराङ्ग लोगों की तुलना में अपने को हीन समझने लगें, अपने धर्म, सभ्यता और संस्कृति का परित्याग कर क्रिश्चियन धर्म तथा पाश्चात्य संस्कृति को अपना लें और उनमें यह विश्वास बद्धमूल हो जाए कि भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व दैवी व्यवस्था का परिणाम है और विदेशी शासन में रहते रहने में ही उनका वास्तविक हित है। अपने इस प्रयत्न में अंग्रेजों को आशातीत सफलता भी प्राप्त हो रही थी। क्रिश्चियन मिशनरियों और सरकार द्वारा जो शिक्षणालय इस देश में स्थापित किये गये थे, उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी सब बातों में अंग्रेजों का अनुकरण करने में गौरव अनुभव करते थे, और धीरे-धीरे "काले अंग्रेज" होते जाते थे। इस दशा में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा की एक ऐसी पद्धति प्रतिपादित की, जो भारत की संस्कृति तथा परम्पराओं के अनुरूप थी, जिसमें प्राचीन वेदशास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन को भी समुचित स्थान दिया गया था, जिससे विद्या समाज के केवल एक वर्ग तक ही सीमित नहीं रह जाती थी, जिसके अनुसार सबको शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलता था और जिस द्वारा सब कोई अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार सामाजिक व आर्थिक स्थिति

प्राप्त कर सकते थे। निस्सन्देह, महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली का केवल यही प्रयोजन नहीं था कि प्रचलित शिक्षा के दोषों को दूर किया जाए, अपितु उस द्वारा विश्व-भर में एक ऐसी नयी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित कर सकना भी सम्भव हो जाता था, जो औचित्य और न्याय पर आधारित हो। यह सही है कि महर्षि ने शिक्षाविषयक जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया था, वे प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुरूप हैं, पर साथ ही इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान परिस्थितियों में उन्हें प्रयुक्त करने के जो साधन उन्होंने निर्दिष्ट किये, वे उनके गम्भीर एवं मौलिक चिन्तन के परिणाम थे। इसमें सन्देह नहीं, कि महर्षि एक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्री थे, और संसार के उपकार तथा मानवमात्र के हित-कल्याण के लिए उन्होंने जो उपाय प्रतिपादित किये हैं, सही ढंग की शिक्षा का उनमें सर्वप्रधान स्थान है।

सन् १८८३ में महर्षि का देहावसान हो जाने पर उनके अनुयायियों, शिष्यों तथा भक्तों के लिए यह स्वाभाविक ही था, कि वे उनका कोई स्थायी स्मारक बनाने का विचार करें। महर्षि का समुपयुक्त व सर्वोत्तम स्मारक ऐसी शिक्षण-संस्थाओं के रूप में ही हो सकता था, जिनमें उन द्वारा उपदिष्ट शिक्षा पद्धति का अनुसरण किया जाता हो, जिनमें संस्कृत भाषा, वेद-वेदांग और प्राचीन सत्य शास्त्रों के साथ-साथ नये ज्ञान-विज्ञान के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था हो, और जिनका वातावरण वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप हो। ऐसे शिक्षणालयों द्वारा ही "अविद्या का नाश" किया जा सकता था, और सच्ची "विद्या की वृद्धि" कर सकना सम्भव था। इसीलिए पंजाब, संयुक्तप्रान्त (उत्तरप्रदेश) और राजस्थान के आर्य नेताओं ने महर्षि के स्मारक के रूप में अपने-अपने क्षेत्र में "एंग्लो-वैदिक" या "एंग्लो-आर्यन" शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की योजनाएँ बनाईं, और महर्षि के देहावसान के पश्चात् तीन साल से भी कम समय में ऐसी एक संस्था ने लाहौर में कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। लाहौर की इस शिक्षण-संस्था के संचालन के लिए जिस डी० ए० वी० ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी की स्थापना की गई थी, उसके तत्त्वावधान में पंजाब, सिन्ध तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में अन्यत्र भी ये संस्थाएँ स्थापित होने लगीं। उत्तरप्रदेश भी देर तक इस कार्य में पीछे नहीं रहा और वहाँ भी देहरादून, कानपुर आदि में डी० ए० वी० संस्थाएँ स्थापित होती गयीं। अजमेर के डी० ए० वी० स्कूल ने भी उन्नति के मार्ग पर तेजी के साथ अग्रसर होना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ, कि आधी सदी से भी कम समय में भारत में सर्वत्र डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का जाल-सा बिछ गया, और अब तो इन संस्थाओं की संख्या पाँच सौ तक पहुँच गयी है, और अनेक विदेशी राज्यों में भी डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज स्थापित हो चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि इन संस्थाओं में जिस शिक्षा-पद्धति को अपनाया गया, वह पूर्णतया तो महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है, पर उसमें उनके अनेक अंश अवश्य विद्यमान हैं। उनमें संस्कृत तथा हिन्दी की शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाता रहा है, धर्मशिक्षा की भी उनमें व्यवस्था की गयी है, और उनका वातावरण पर्याप्त रूप से वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। क्रिश्चियन मिशनरियों तथा सरकार द्वारा स्थापित शिक्षणालयों में हिन्दी तथा संस्कृत की उपेक्षा की जाती थी, भारतीय भाषाओं में उर्दू को वहाँ मुख्य स्थान प्राप्त था और उनका वातावरण पाश्चात्य संस्कृति तथा ईसाई धर्म के अनुरूप होता था। डी० ए० वी० संस्थाओं में

यह बात नहीं थी। वहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को अपने धर्म तथा संस्कृति से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता था, स्वदेशी तथा देशप्रेम की भावनाएँ उनमें विकसित होती थीं और वे विदेशी एवं विधर्मी प्रभाव से बचे रहते थे। महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति को ये संस्थाएँ जो पूर्णतया नहीं अपना सकीं, उसका एक प्रधान कारण क्रियात्मक समस्याएँ थीं। सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम से भिन्न किसी अन्य पाठ्यक्रम को अपना लेने पर इन संस्थाओं के विद्यार्थियों के सम्मुख आजीविका की जो समस्या उपस्थित होती थी, उसकी उपेक्षा कर सकना सम्भव नहीं था। इसी कारण डी० ए० वी० संस्थाओं ने सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम को अपनाया। पर साथ ही, यह प्रयत्न भी किया कि यह शिक्षा भारतीय संस्कृति तथा धर्म के वातावरण में दी जाए और विद्यार्थी सदाचारी, देशभक्त तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हो सकें। इस प्रयत्न में इन संस्थाओं को सफलता भी प्राप्त हुई, और इनकी लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती गई। इसीका यह परिणाम है, कि आज जालन्धर का डी० ए० वी० कॉलिज पंजाब का सबसे बड़ा कॉलिज है, कानपुर के डी० ए० वी० कॉलिज का उत्तरप्रदेश के कॉलिजों में सर्वोच्च स्थान है, और अजमेर का डी० ए० वी० कॉलिज एक छोटी यूनिवर्सिटी के समान है। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं में जितने विद्यार्थी आज शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उतने किसी भी अन्य संगठन द्वारा संचालित शिक्षणालयों में नहीं हैं। आर्यसमाज का शिक्षा के क्षेत्र में यह कार्य कम महत्त्व का नहीं है। क्रिश्चियन तथा विदेशी प्रभाव से विद्यार्थियों को मुक्त रख कर अपनी संस्कृति तथा राष्ट्रीयता से उन्हें प्रभावित करने का जो प्रयत्न डी० ए० वी० संस्थाओं द्वारा किया गया है, वह वस्तुतः सराहनीय है।

पर आर्यसमाज के सब विद्वान् एवं नेता डी०ए०वी० शिक्षण-संस्थाओं की शिक्षा से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका विचार था, कि इन संस्थाओं में 'वैदिक' की तुलना में 'एंग्लो' को अधिक महत्त्व दिया गया है, और इनकी शिक्षा पद्धति महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षाविषयक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी इन विद्वानों के नेता थे। उनके साथियों व समर्थकों—जिनमें लाला मुंशीराम प्रमुख थे—ने गुरुकुलों की स्थापना प्रारम्भ की, और यह प्रयत्न किया कि इन संस्थाओं में महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति का अविकल रूप से अनुसरण किया जाए। पर आदर्श और यथार्थ में जो अन्तर होता है, उन्हें भी उसके सम्मुख सिर झुकाना पड़ा और गुरुकुल काँगड़ी भी धीरे-धीरे महर्षि की आदर्श शिक्षा प्रणाली से दूर हटता गया। गुरुकुल काँगड़ी की शिक्षा पद्धति से असंतुष्ट विद्वानों ने 'आर्ष' गुरुकुलों की स्थापना प्रारम्भ की और यह प्रयत्न किया कि महर्षि ने अपने ग्रन्थों में जिस पाठविधि का निरूपण किया है, उसीके अनुसार शिक्षा दी जाए। कुछ गुरुकुलों ने 'यथार्थ' की दृष्टि से उसी पाठ्यक्रम को पूर्णरूप से अपना लिया, जिसे सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार अब गुरुकुल भी अनेक प्रकार के स्थापित हो गये हैं, और आर्यसमाज का जो वर्ग पहले डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का आलोचक व विरोधी था, उस द्वारा भी बहुत-से ऐसे स्कूलों और कॉलिजों की स्थापना की गयी है, जिनमें डी० ए० वी० शिक्षणालयों का अनुकरण कर भारतीय संस्कृति तथा धर्म के वातावरण में सरकार द्वारा मान्य पाठविधि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था है। डी० ए० वी० संस्थाओं के समान इन 'दयानन्द' व 'आर्य' स्कूलों और कॉलिजों की संख्या भी सैकड़ों में है। पर आर्य शिक्षण-संस्थाओं का स्वरूप चाहे किसी भी प्रकार का हो, यह

स्वीकार करना होगा कि 'अविद्या के नाश' तथा 'विद्या की वृद्धि' में उन द्वारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है, और वैदिक धर्म के प्रसार तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा में उनसे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई है। चिरकाल से विदेशों में वसे हुए भारतीय मूल के लोग जो अपने धर्म, भाषा तथा संस्कृति की रक्षा कर सकने में समर्थ रहे हैं, उसका मुख्य श्रेय भी आर्यसमाज की इन शिक्षण-संस्थाओं को ही दिया जाना चाहिये। "आर्यसमाज का इतिहास" के इस तीसरे भाग में आर्यसमाज के शिक्षाविषयक इसी कार्यकलाप पर विशद रूप से प्रकाश डाला गया है।

आर्यसमाज द्वारा स्थापित व संचालित कतिपय अन्य भी ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनका सम्बन्ध 'विद्या की वृद्धि' के साथ है। ये शोध-संस्थानों के रूप में हैं, और इनका प्रयोजन वेदशास्त्रों तथा अन्य प्राचीन भारतीय ज्ञान (Indology) के विषय में शोध व अनुसन्धान करना है। वेद तथा प्राचीन दर्शन आदि के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनेक ऐसे मन्तव्य हैं, जो आधुनिक (प्राच्य एवं पाश्चात्य) विद्वानों के मत से भिन्न हैं। महर्षि षड्दर्शनों में अविरोध मानते थे, और वैदिक शब्दों को रूढ़ि न मान कर यौगिक प्रतिपादित करते थे। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास के तिथिक्रम आदि के विषय में भी उनके अपने मन्तव्य थे, जो भारतीय परम्परा के अनुसार होते हुए भी आधुनिक विद्वानों को स्वीकार्य नहीं हैं। इन सब विषयों पर युक्तिसंगत रूप से अनुसन्धान एवं शोध के लिए जो अनेक संस्थान आर्यसमाज या आर्य विद्वानों द्वारा स्थापित हैं, उन पर इस 'इतिहास' के छठे भाग में प्रकाश डाला जायेगा। आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप के साथ उनका सम्बन्ध अवश्य है, पर एक पृथक् भाग में ही उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों का विशद विवरण दिया जायेगा।

हमने इस ग्रन्थ में आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पर ऐसे कार्य में अनेक भूलों व कमियों का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक है। सम्भव है, कि अनेक महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्थाओं के नाम तक का उल्लेख इस ग्रन्थ में न हुआ हो। 'इतिहास' कभी भी पूर्ण नहीं हुआ करता। ज्यों-ज्यों नये तथ्य प्रकाश में आते-जाते हैं, उसमें संशोधन व परिवर्धन होते रहते हैं। पाठकों से प्रार्थना है, कि इस ग्रन्थ की कमियों व भूलों के लिए हमें क्षमा करें, और नये तथ्यों को हमें भेजने की कृपा करते रहें, ताकि समय पर इसमें समुचित संशोधन व परिवर्धन किये जा सकें।

सत्यकेतु विद्यालंकार
प्रधान सम्पादक,
आर्यसमाज का इतिहास

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

आर्यसमाज के संस्थापक
महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

(१) शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का कार्यकलाप

शिक्षा, साहित्य और ज्ञान के क्षेत्रों में आर्यसमाज का कार्यकलाप अत्यन्त महत्त्व का है। वर्तमान समय में आर्यसमाज द्वारा जिन शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है, उनकी संख्या डेढ़ हजार से भी अधिक है। ये शिक्षणालय केवल भारत में ही नहीं, अपितु मारीशस, केन्या, फिजी, सुरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड आदि विदेशी राज्यों में भी विद्यमान हैं। आर्यसमाज की इन शिक्षण-संस्थाओं की कतिपय अपनी विशेषताएँ हैं। इनकी स्थापना कुछ निश्चित आदर्शों और उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बालकों और बालिकाओं की शिक्षा तथा पठन-पाठन विधि के सम्बन्ध में जिन मन्तव्यों का प्रतिपादन किया था, आर्यसमाज का प्रयत्न रहा है कि उन्हें क्रियान्वित किया जाये और अपनी शिक्षण-संस्थाओं का संचालन उन्हीं के अनुसार किया जाये। सामयिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए उन मन्तव्यों को चाहे अविकल रूप से क्रियान्वित न किया जा सका हो, पर यह स्वीकार करना होगा कि आर्यसमाज द्वारा संचालित प्रायः सभी शिक्षण-संस्थाओं का वातावरण वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के अनुरूप है, और उनमें यह प्रयत्न किया जाता है कि बालक और बालिकाएँ सदाचारमय जीवन और नैतिक आदर्शों को अपने सम्मुख रखें और वैदिक धर्म के मूल तत्त्वों से भी वे परिचित हो जायें। ऐसे अनेक शिक्षणालय भी आर्यसमाज द्वारा स्थापित हैं, जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-पद्धति का अविकल रूप से अनुसरण करने का प्रयत्न किया जाता है, और जिनके पाठ्य-क्रम में आर्ष ग्रन्थों को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

शिक्षणालयों के अतिरिक्त अनेक शोध-संस्थान भी आर्यसमाज के तत्त्वावधान में स्थापित हैं। इनमें वेद, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्रग्रन्थ आदि प्राचीन वाङ्मय के सम्बन्ध में मौलिक शोध का प्रयत्न किया जाता है। वेदमन्त्रों के अर्थ एवं अभिप्राय के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिन मन्तव्यों का प्रतिपादन किया था, उनके समर्थन तथा उनके अनुसार वेदमन्त्रों की व्याख्या करने के सम्बन्ध में इन शोध-संस्थानों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। षड्दर्शनों में अविरोध, याज्ञिक कर्मकाण्ड का वास्तविक प्रयोजन, वैदिक देवताओं और ऋषियों का यथार्थ स्वरूप आदि कितने ही विषय हैं, जिन पर इन आर्य व वैदिक संस्थाओं ने मौलिक शोध की है, और उच्च कोटि का ऐसा साहित्य तैयार करने का प्रयत्न किया है, जिससे महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों की पुष्टि होती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका यही प्रयत्न था कि ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जाये, जिनमें आर्ष ग्रन्थों की पढ़ाई की प्रमुखता हो, जिनका वातावरण वैदिक धर्म के अनुरूप हो और जिनमें गुरु अपने शिष्यों को उसी ढंग से शिक्षा दें, जैसे कि प्राचीन समय के आचार्यकुलों या गुरुकुलों में दी जाती थी। महर्षि के मत में मनुष्य के तीन शिक्षक होते हैं, माता, पिता, और आचार्य। शिक्षा-कार्य में माता-पिता का कर्तृत्व बच्चे की आठ वर्ष की आयु हो जाने पर समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात् उसकी शिक्षा आचार्य द्वारा की जानी चाहिये। आचार्य बालकों व बालिकाओं को न केवल विद्या पढ़ाते हैं, अपितु उनको सदाचारी बनाते हुए उनकी अन्तर्निहित शक्तियों का भी विकास करते हैं। प्राचीन समय में भारत में जो शिक्षणालय विद्यमान थे, उनमें बालक और बालिकाएँ ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताते हुए विद्याध्ययन करते थे, आचार्य या गुरु के आश्रम को अपना घर मानते थे, और भैक्षचर्या द्वारा अपना निर्वाह करते थे। आचार्य के आश्रम या गुरुकुल में धनी-निर्धन व ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं होता था। वेदशास्त्र आदि धर्मग्रन्थों के साथ-साथ विविध विज्ञानों (जिन्हें उपवेदों की स्थिति प्राप्त थी) का पठन-पाठन भी इन प्राचीन आर्य शिक्षणालयों में हुआ करता था। अध्यापक को समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। अध्यापक-वर्ग की गणना ब्राह्मण वर्ण में की जाती थी, और ब्राह्मण के लिए अकिंचनता ही सर्वोच्च आदर्श था।

वैदिक धर्म में कालान्तर में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गई थीं, यह इस इतिहास के प्रथम भाग में प्रतिपादित किया जा चुका है। पर सत्य सनातन वैदिक धर्म में विकृतियों के प्रादुर्भूत हो जाने के कारण जिन सम्प्रदायों व मत-मतान्तरों का विकास हुआ, उनमें भी वैदिक धर्म के अनेक मूल तत्त्व कायम रहे थे, और प्राचीन आर्ष आदर्शों को उनमें पूर्णतया विस्मृत नहीं कर दिया गया था। यही बात शिक्षा के क्षेत्र में भी हुई। बौद्ध और जैन धर्मों के उत्कर्ष के समय भारत में जो शिक्षणालय स्थापित हुए, वे प्राचीन आचार्यकुलों एवं ऋषि-आश्रमों से अनेक अंशों में अभिन्न थे। दूसरी सदी ईस्वी-पूर्व में जब वैदिक धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ, तो विशेष रूप से ऐसे शिक्षणालयों की स्थापना का प्रयत्न किया गया, जिनमें शिक्षाविषयक वैदिक आदर्शों को दृष्टि में रखा जाता था। पर ये शिक्षण-संस्थाएँ वैदिक युग के आचार्यकुलों से पूर्ण सादृश्य नहीं रखती थीं। तुर्क-अफगानों और मुगलों के शासनकाल में भारत के शिक्षणालय प्राचीन आदर्शों से दूर हटते गये। उस समय न बौद्ध युग के विहार कायम रहे, और न आर्य-पद्धति के आश्रम। प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा तो इस काल में प्रायः लुप्त ही हो गई, यद्यपि कतिपय विद्वान् व्याकरण, ज्योतिष आदि वेदांगों, धर्मशास्त्रों तथा पुराण आदि को अपनी पाठशालाओं में पढ़ाते रहे। अंग्रेजी शासन के सूत्रपात के साथ भारत में जिन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना हुई, उनमें वेदशास्त्र आदि का कोई स्थान नहीं था। उनका वातावरण आर्य धर्म व संस्कृति के प्रतिकूल था और उनका संचालन प्रायः ऐसे व्यक्तियों के हाथों में था, जो शिक्षा की प्राचीन भारतीय परम्परा एवं आदर्शों से अनभिज्ञ थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप की पुनः स्थापना के साथ-साथ प्राचीन आर्य शिक्षा-पद्धति को भी पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसीलिए

आचार्यकुलों से अनेक अंशों में भिन्न थे। वे एक सम्पन्न नगरी में स्थित थे, और उनके आचार्य एवं विद्यार्थी आरण्यक-आश्रमों में न रहकर नागरिक जीवन बिताते थे। भैक्षचर्या से निर्वाह करने की परम्परा भी इन विद्यापीठों में नहीं थी। इनके विद्यार्थी या तो आचार्य को निवास, भोजन तथा शिक्षा के लिए निर्धारित शुल्क देते थे, या शिक्षा की समाप्ति पर शुल्क प्रदान करने की प्रतिज्ञा करते थे, और या दिन में कार्य (श्रम) आदि करके खर्च के योग्य धन उपार्जित कर लेते थे। तक्षशिला के विद्यापीठों में प्रायः ऐसे ही विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आया करते थे, जो अपनी आयु के सोलह वर्ष पूरे कर चुके हों और जिन्होंने दस साल के लगभग कहीं अन्यत्र (यथा अपने प्रदेश के किसी आचार्यकुल में) शिक्षा प्राप्त कर ली हो। तक्षशिला के विद्यापीठ प्राचीन काल के आचार्यकुलों के उत्तराधिकारी या स्थानापन्न न होकर उनके पूरक थे, क्योंकि उनमें विशेष रूप से कतिपय विद्याओं की उच्च शिक्षा की ही व्यवस्था थी, और उनका अध्यापन ऐसे गुरुओं या आचार्यों द्वारा किया जाता था, जो अपनी विद्वता तथा सदाचरण के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध (विश्वविख्यात) थे।

कौटलीय अर्थशास्त्र (चौथी सदी ईस्वी पूर्व) में राजकुमारों की शिक्षा का विशद् रूप से निरूपण किया गया है। उनकी शिक्षा के पाठ्य-विषयों में चतुरंग बल (पदातिसेना, अश्व सेना, हस्ति सेना और रथ सेना) के संचालन, अस्त्र-शस्त्र, व्यूह रचना, शत्रु के व्यूह का विनाश, पुराण, इतिवृत्त (इतिहास), आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और दण्डनीति की शिक्षा का समावेश है। 'मिलिन्द पन्हो:' नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार राजा मिलिन्द (यवन राजा मिनान्दर) श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, गणित, संगीत, चिकित्सा विज्ञान, धनुर्विद्या, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, काव्य, युद्धविद्या, और तन्त्र आदि विविध विद्याओं में पारंगत था। यह सहज में अनुमान किया जा सकता है, कि बौद्ध युग के राजा और राजकुमार जहाँ इन विद्याओं तथा विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त किया करते थे, वहाँ अन्य लोगों की शिक्षा में भी इन्हें स्थान प्राप्त रहता था। कौटलीय अर्थशास्त्र से यह भी सूचित होता है कि पठन-पाठन प्रारम्भ करने से पूर्व बालकों का चौल कर्म (मुण्डन संस्कार) कराया जाता था, और उसके बाद ही उन्हें लिपि तथा संख्या (गिनती) की शिक्षा देनी शुरू की जाती थी।

बौद्ध विहार जहाँ बौद्ध धर्म के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे, वहाँ विविध विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की भी उनमें शिक्षा दी जाती थी। समयान्तर में अनेक विहारों ने वही रूप प्राप्त कर लिया था, जो नैमिषारण्य के शौनक आश्रम तथा प्रयाग के भारद्वाज आश्रम का था। इन्हें 'महाविहार' कहा जाने लगा था, और इनमें हजारों की संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। इनमें नालन्दा, विक्रमशिला, उड्यन्तपुर और वलभी के महाविहार उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन भारत की शिक्षा-पद्धति को भली-भाँति समझने के लिए इन पर कुछ प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

नालन्दा महाविहार की स्थापना गुप्तवंशी सम्राट् कुमारगुप्त (राज्यकाल ४१५-५५ ईस्वी) ने की थी। नालन्दा पहले भी शिक्षा का केन्द्र था, पर कुमारगुप्त ने जब वहाँ विद्या और शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए एक महाविद्यालय की स्थापना की, तबसे उसकी ख्याति बढ़ने लगी। कुमारगुप्त के बाद अन्य गुप्तवंशी सम्राटों ने भी वहाँ बहुत-सी इमारतें बनवायीं, और नालन्दा के शिक्षकों और विद्यार्थियों के खर्च के

लिए बहुत-सी जायदाद लगा दी। शीघ्र ही, शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र के रूप में नालन्दा की ख्याति दूर-दूर तक पहुँच गई, और देश-विदेश के हजारों विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए वहाँ आने लगे। अनेक चीनी विद्वान् भी उसकी कीर्ति से आकृष्ट हुए। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु्एन्त्सांग उनमें एक था। उसके यात्राविवरण से ज्ञात होता है, कि नालन्दा के शिक्षकों और विद्यार्थियों की संख्या दस हजार से भी अधिक थी। वहाँ के आचार्य अपने ज्ञान और विद्वत्ता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे, और उनका चरित्र भी अत्यन्त उज्ज्वल तथा निर्दोष था। सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इ-त्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री नालन्दा आया था। उसने लिखा है कि नालन्दा महाविहार में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या हजारों में थी, और उसमें प्रवेश के लिए व्याकरण, हेतु-विद्या (न्यायशास्त्र) तथा अभिधर्मकोश का ज्ञान आवश्यक था। महाविहार में शिक्षा के लिए प्रवेश पा चुकने पर विद्यार्थी जहाँ बौद्ध धर्म के विशाल साहित्य का अध्ययन करते थे, वहाँ साथ ही शब्दविद्या, वेद, सांख्य, तन्त्र और चिकित्साशास्त्र आदि की भी शिक्षा प्राप्त करते थे। महाविहार का खर्च चलाने के लिए राज्य की ओर से बहुत-सी भू-सम्पत्ति प्रदान की गई थी, जिसकी सब आमदनी इस शिक्षा-केन्द्र पर ही खर्च होती थी। नालन्दा का पुस्तकालय बहुत विशाल था। उसकी तीन विशाल इमारतें थीं, जिनके नाम रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नारंजक थे। रत्नोदधि भवन नौ मंजिलों का था, और उसमें धर्मग्रन्थों का संग्रह किया गया था। अन्य दोनों भवन भी अत्यन्त विशाल थे।

नालन्दा के समान विक्रमशिला का महाविहार भी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। इसकी स्थापना पाल वंशी राजा धर्मपाल ने नौवीं सदी में की थी। बौद्ध धर्म के अनुयायी पालवंशी इस राजा ने विक्रमशिला में एक महाविहार का निर्माण करवा कर अध्यापन के लिए वहाँ १०८ आचार्यों की नियुक्ति की थी। बाद में इन आचार्यों व शिक्षकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। विक्रमशिला में जो भी विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे, उन सबके भोजन तथा निवास की निःशुल्क व्यवस्था थी। इसके लिए पालवंशी राजाओं ने जागीरें प्रदान की हुई थीं। जिन विषयों की शिक्षा की विक्रमशिला में व्यवस्था थी, उनमें वेद, वेदांग, उपवेद, हेतुविद्या (न्याय), सांख्य, योग और बौद्धों के हीनयान तथा महायान सम्प्रदायों के ग्रन्थ प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र की शिक्षा विक्रम-शिला की प्रधान विशेषता थी। इस समय तक तान्त्रिकों व सिद्ध योगियों की परम्परा भारत में प्रारम्भ हो चुकी थी।

नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारों के समान ही बिहार प्रदेश में प्राचीन समय में उड्यन्तपुर या उदन्तपुर का महाविहार था, जिसकी स्थापना पाल वंश के प्रवर्तक राजा गोपाल द्वारा की गई थी। धीरे-धीरे यह भी शिक्षा के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया था, और बारहवीं सदी तक इसकी ख्याति तथा स्थिति नालन्दा और विक्रमशिला से भी अधिक हो गई थी। ११९९ ईस्वी में जब मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने बिहार प्रदेश पर आक्रमण किया, तो वहाँ का राजा पालवंशी गोविन्द पाल था। उसकी शक्ति नगण्य थी। बिहार को आक्रान्त करते हुए मुहम्मद का ध्यान उदन्तपुर के महाविहार की ओर गया, जो एक विशाल दुर्ग के समान था। तुर्क सेनाओं ने उसे घेर लिया, और उस पर हमला कर दिया। इस अवसर पर उदन्तपुर के आचार्यों और विद्यार्थियों ने भी शस्त्र उठाये, और डटकर मुहम्मद की सेनाओं का मुकाबला किया। जबतक एक भी आचार्य

व विद्यार्थी जीवित रहा, उन्होंने उदन्तपुर पर तुर्कों का अधिकार नहीं होने दिया। जब महाविहार के सब निवासी लड़ते-लड़ते मारे गये, तभी मुहम्मद का उसपर अधिकार हो सका। महाविहार में कोई धन-सम्पत्ति नहीं थी। वहाँ की सम्पत्ति तो वे अमूल्य ग्रन्थ थे, जो बहुत बड़ी संख्या में उसके पुस्तकालयों में संग्रहीत थे। सोना, चाँदी, हीरे, मोती, आदि की प्राप्ति से निराश होकर मुहम्मद ने उदन्तपुर के विशाल पुस्तकालयों को अग्नि के भेंट कर दिया, और भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के वे अनुपम भण्डार देखते-देखते ध्वंस हो गये। विक्रमशिला के महाविहार का अन्त भी इसी तुर्क-अफगान आक्रान्ता के आक्रमण द्वारा हुआ था।

सौराष्ट्र की राजधानी वलभी नगरी भी मध्य काल में शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी। चीनी यात्री इ-त्सिंग के अनुसार वलभी का महाविहार भी नालन्दा के समान ही प्रसिद्ध था। ह्यु एन्त्सांग ने लिखा है, कि वलभी में १०० विहार थे, जिनमें ६००० भिक्षु निवास करते थे। न केवल बौद्ध, अपितु पौराणिक हिन्दू सम्प्रदायों के विद्यार्थी भी वहाँ विद्याध्ययन के लिए आया करते थे, और वलभी नगरी के सम्पन्न श्रेष्ठी इनको उदारतापूर्वक दान दिया करते थे। कथासरित्सागर में कथा आती है कि अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना का दोआवा) के द्विज वसुदत्त का पुत्र विष्णुदत्त जब सोलह वर्ष का हो गया, तो विद्या-प्राप्ति के लिए वह वलभीपुरी गया। बौद्ध-ग्रन्थों के अतिरिक्त वेद, वेदांग, तर्क-शास्त्र आदि की भी वहाँ शिक्षा दी जाती थी। बारहवीं सदी में जब तुर्क-अफगान आक्रान्ताओं के सौराष्ट्र पर हमले शुरू हुए, तो वलभी के विहारों का ह्रास होने लग गया और शिक्षा के केन्द्र के रूप में इस नगरी का महत्त्व बहुत कम हो गया। ह्यु एन्त्सांग तथा अन्य चीनी यात्रियों के यात्राविवरणों से ज्ञात होता है कि भारतीय इतिहास के पूर्व-मध्य काल में जालन्धर, कश्मीर और कान्यकुब्ज आदि में भी अनेक ऐसे विहार व महाविहार विद्यमान थे, जो बौद्ध धर्म तथा दर्शन के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे और जिनमें बहुत से भिक्षु तथा स्थविर अध्ययन-अध्यापन में व्यापृत रहते थे। वेद, वेदांग तथा भारत के अन्य प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का भी इनमें पठन-पाठन होता था।

पूर्व-मध्य काल में जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने के साथ-साथ प्राचीन सनातन वैदिक व पौराणिक धर्मों का उत्कर्ष हो रहा था, अनेक ऐसे शिक्षा-केन्द्र भी विकसित हुए जिनमें वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, दर्शन, शिल्प आदि की शिक्षा की प्रमुखता थी। ये शिक्षा-केन्द्र आश्रमों के रूप में थे। पौराणिक धर्म की पुनः स्थापना के कारण जो बहुत से मठ तथा मन्दिर इस काल में स्थापित हुए थे, उनके साथ ऐसे आश्रमों की भी सत्ता थी जिनमें आर्य शास्त्रों तथा प्राचीन विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। ह्यु एन्त्सांग के यात्राविवरण से ज्ञात होता है कि सातवीं सदी तक काशी (वाराणसी) नगरी अपने विद्यापीठों के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गई थी, और बहुत-से ऐसे आचार्य वहाँ निवास कर रहे थे, जिनके ज्ञान तथा कीर्ति से आकृष्ट होकर दूर-दूर से विद्यार्थी वहाँ विद्याध्ययन के लिए एकत्र होने लगे थे। दसवीं सदी के अन्तिम चरण में जब अलबरूनी भारत आया, तो हिन्दू शास्त्रों से परिचय प्राप्त करने के लिए वह काशी गया था। अपने यात्राविवरण में उसने लिखा है कि काशी नगरी में भारत के श्रेष्ठ विद्यापीठ विद्यमान हैं। गहड़वाल वंश के अनेक राजाओं ने काशी को अपनी दूसरी राज-धानी के रूप में प्रयुक्त किया था, और उनके संरक्षण में यह नगरी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण

केन्द्र बन गई थी। परमार वंश के राज्य की राजधानी धारा नगरी भी पूर्व-मध्य काल में शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध थी। परमार वंश के अनेक राजाओं ने विद्या और ज्ञान के संवर्धन तथा प्रोत्साहन में असाधारण तत्परता प्रदर्शित की थी। इनमें राजा मुंज और भोज के नाम उल्लेखनीय हैं। भोज एक विद्वान् और प्रतिभा-सम्पन्न राजा था। वह स्वयं भी अनेक विषयों का प्रकाण्ड पण्डित था। राजनीति, ज्योतिष, वास्तुकला, काव्य, व्याकरण, साहित्य और चिकित्साशास्त्र आदि का वह मर्मज्ञ था, और उसने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की थी। अपनी राजधानी धारा नगरी में उसने एक 'भोजशाला' की स्थापना की थी, जिसका स्वरूप एक विद्यापीठ के समान था। भोज की मृत्यु पर किसी कवि ने कहा था, कि अब धारा 'निराधारा' हो गई है, सरस्वती अवलम्बविहीन हो गई है, और पण्डित 'खण्डित' हो गये हैं। काशी और धारा के समान अनहिलपाटन, कन्नौज और काँची आदि अन्य भी अनेक नगरियाँ पूर्व-मध्य काल में अपने आचार्यों और विद्वानों के लिए प्रसिद्ध थीं और उनमें भी विद्यार्थी दूर-दूर से विद्याध्ययन के लिए आया करते थे। पूर्व-मध्य काल में भारत में पाल, सेन, गहड्वाल, प्रतिहार, परमार, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि जिन बहुत-से राजवंशों के राज्य स्थापित हो गये थे, उनके अनेक प्रतापी राजा विद्याप्रेमी भी थे, और उन्होंने अपने राज्यों में अनेक नये विद्यापीठ स्थापित कर या पहले से विद्यमान शिक्षा-केन्द्रों को धन-सम्पत्ति प्रदान कर ज्ञान-विज्ञान के संवर्धन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।"

(४) हिन्दू मन्दिरों और मठों के शिक्षा-केन्द्र

बौद्ध विहार जिस प्रकार शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे, वैसे ही अनेक हिन्दू मठों एवं मन्दिरों में भी बड़ी-बड़ी शिक्षण-संस्थाओं का विकास हो गया था। इन संस्थाओं का परिचय दक्षिण भारत के उत्कीर्ण लेखों द्वारा प्राप्त होता है।

ऐसी एक शिक्षण-संस्था बीजापुर जिले के सलोत्गी नामक स्थान पर विद्यमान थी। राष्ट्रकूट सम्राट् कृष्ण तृतीय (९४०-९६८ ईस्वी) के प्रधानमन्त्री नारायण ने इसकी स्थापना की थी। वहाँ त्रयी-पुरुष (ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति) का एक मन्दिर था, जिसके साथ नारायण द्वारा एक विशाल शाला (पाठशाला) का निर्माण कराया गया था, जहाँ अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था थी। इस शाला की शिक्षा से आकृष्ट होकर विविध जनपदों के विद्यार्थी वहाँ अध्ययन के लिए आया करते थे। विद्यार्थियों की न केवल शिक्षा ही निःशुल्क थी, अपितु निवास और भोजन आदि के लिए भी उनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। विद्यार्थियों के भोजन आदि के खर्च के लिए २५०० एकड़ भूमि शिक्षणालय को प्रदान कर दी गई थी, जिसकी आमदनी से उनके निवास, भोजन व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था हो जाती थी। शिक्षणालय में विद्यार्थियों की संख्या के सम्बन्ध में उत्कीर्ण लेखों में कोई उल्लेख नहीं है। पर २५०० एकड़ भूमि की आमदनी से कम-से-कम २०० विद्यार्थियों के भोजन आदि का खर्च चल जाता होगा, यह कल्पना असंगत नहीं है। विद्यार्थियों के निवास के लिए सलोत्गी के त्रयी-पुरुष मन्दिर के साथ २७ भवनों की सत्ता थी। इससे भी वहाँ विद्यार्थियों की संख्या का कुछ अनुमान किया जा सकता है। शिक्षकों के वेतन के लिए भी संस्था को भूमि दे दी गई थी। ३०० एकड़ भूमि की आमदनी से प्रधानाचार्य को वेतन प्रदान किया जाता था। अन्य अध्यापकों के

वेतन के सम्बन्ध में उत्कीर्ण लेख से कोई सूचना नहीं मिलती। राष्ट्रकूट सम्राटों के प्रमुख राजपुरुषों का संरक्षण तो इस शिक्षणालय को प्राप्त था ही, पर सलोत्गी के निवासी भी विशेष उत्सवों व संस्कारों के अवसरों पर इसे दान देते रहते थे। विवाह के समय पाँच मुद्राएँ, उपनयन संस्कार के समय ढाई मुद्राएँ और चूड़ाकर्म संस्कार के समय सवा मुद्रा सलोत्गी के निवासियों द्वारा शिक्षणालय को प्रदान की जाती थीं। जब कोई गृहस्थ सार्वजनिक रूप से प्रीतिभोज का आयोजन करता था, तो वह शिक्षणालय के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को भी भोजन के लिए आमन्त्रित करता था।[1] ग्यारहवीं सदी में जब इस संस्था के भवन क्षतिग्रस्त हो गये, तो सलोत्गी के स्थानीय शासक द्वारा उनकी मरम्मत करा दी गई थी। त्रयी-पुरुष के मन्दिर के साथ विद्यमान इस शिक्षण-संस्था का पाठ्यक्रम क्या था, यह ज्ञात नहीं है। पर यह कल्पना असंगत नहीं है, कि इसमें वेदशास्त्र, पुराण आदि की शिक्षा दी जाती थी, क्योंकि यह एक मन्दिर के साथ स्थित थी।

साउथ आर्कोट जिले के एन्नायिरम नामक स्थान पर एक शिक्षण-संस्था की सत्ता थी, जिसके विषय में चोल सम्राट् राजेन्द्र प्रथम (१०१२-१०४४ ईस्वी) के समय के एक उत्कीर्ण लेख से समुचित परिचय प्राप्त होता है। इस संस्था का खर्च चलाने के लिए वहाँ की ग्राम पंचायत ने पर्याप्त भूमि प्रदान की हुई थी। ३४० विद्यार्थी इस शिक्षणालय में शिक्षा प्राप्त करते थे, जिनमें से ७५ ऋग्वेद का, ७५ कृष्ण यजुर्वेद का, २० छान्दोग्य सामवेद का, २० तलवकार सामवेद का, २० शुक्ल यजुर्वेद का, १० अथर्ववेद का, १० बोधायन गृह्यसूत्र का, २५ रूपावतार (?) का, २५ व्याकरण का, ३५ प्रभाकर-मीमांसा का और १० वेदान्त का अध्ययन कर रहे थे। ऋग्वेद और कृष्ण यजुर्वेद के अध्यापन के लिए तीन-तीन अध्यापक थे, दो अध्यापक मीमांसा पढ़ाते थे और शेष विषयों के अध्यापन के लिए एक-एक शिक्षक थे।

विद्यार्थियों के निवास, भोजन, वस्त्र आदि का सब खर्च शिक्षणालय द्वारा ही किया जाता था। शिक्षा तो वहाँ निःशुल्क थी ही। उत्कीर्ण लेखों से यह भी सूचित होता है, कि विद्यार्थियों को भोजन के लिए कितना अन्न प्रदान किया जाता था, और अन्य व्यय के लिए कितनी धनराशि देने की व्यवस्था थी। भोजन के लिए उन्हें अन्न दे दिया जाता था, और वस्त्र आदि के खर्च के लिए सुवर्ण मुद्रा। अध्यापकों के वेतन के सम्बन्ध

---

१. नारायणोऽभिधानेन नारायण इवापरः।
प्रधानः कृष्णराजस्य मन्त्री सन्सन्धि विग्रहे॥
तेनेयं कारिता शाला श्री विशाला मनोरमा।
अत्र विद्यार्थिनः सन्ति नानाजनपदोद्भवाः॥
शाला विद्यार्थिसंघाय दत्तवान् भूमिमुत्तमाम्।
मान्यां निवर्तमानां तु पंचभिश्च शतैर्मिताम्॥
निवर्तनानि दीपार्थं मान्यानि द्वादशैव च।
पंच पुष्पाणि देयानि विवाहे सति तज्जनैः॥
देयं तथोपनयने विवाहे यत्पुरोहिताम्॥
केनचित्कारणेनेह कर्तव्ये विप्रभोजने।
भोजयेत्तु यथाशक्ति परिणत्परिषज्जनम्॥

में भी कुछ सूचना उत्कीर्ण लेखों में विद्यमान है। उन्हें इतना अन्न प्रदान कर दिया जाता था, जो सोलह व्यक्तियों के लिए पर्याप्त हो। साधारणतया एक परिवार में पाँच सदस्य होते हैं। परिवार की आवश्यकता से तिगुना अन्न भोजन प्राप्त कर अध्यापक सन्तोष अनुभव करते होंगे, इसमें सन्देह नहीं। सुवर्ण मुद्रा के रूप में भी उन्हें अतिरिक्त वृत्ति दी जाती थी, जिससे वे वस्त्र आदि की आवश्यकता पूरी कर सकते थे। वेदान्त के अध्यापक को अन्य अध्यापकों की तुलना में २५ प्रतिशत अधिक वृत्ति दी जाती थी। यही बात वेदान्त के विद्यार्थियों के लिए भी थी। सम्भवतः, इस शास्त्र को कठिन समझा जाता था। विद्यार्थी इसके अध्ययन में प्रवृत्त हों, इस कारण उन्हें अधिक मात्रा में वृत्ति दी जाती थी। इस शास्त्र के अध्यापक भी सम्भवतः कठिनता से प्राप्त किये जा सकते थे। ३४० विद्यार्थियों और १६ अध्यापकों का यह शिक्षणालय एक सुव्यवस्थित महाविद्यालय के रूप में था, और इसका सब व्यय ग्राम पंचायत द्वारा किया जाता था।

चिंगलपट जिले के वेंकटेश पेरुमल मन्दिर के साथ भी एक महाविद्यालय विद्यमान था। सन् १०६८ के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है, कि इस संस्था के साथ छात्रावास और चिकित्सालय की भी सत्ता थी। छात्रावास में ६० विद्यार्थियों के निवास के लिए स्थान था। इनमें से १० स्थान ऋग्वेद के विद्यार्थियों के लिए, १० स्थान यजुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए, २० स्थान व्याकरण के विद्यार्थियों के लिए, १० स्थान पंचरात्र-पद्धति के विद्यार्थियों के लिए, ३ शिवागम के विद्यार्थियों के लिए और शेष ७ स्थान वानप्रस्थों और संन्यासियों के लिए नियत किये गये थे। इस महाविद्यालय में भी विद्यार्थियों के भोजन आदि के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता था।

सन् १०४८ में उत्कीर्ण कराये गये एक लेख से एक ऐसे महाविद्यालय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जिसमें ४५० विद्यार्थी थे और वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, दर्शन शास्त्रों, उपनिषदों और सूत्रग्रन्थों की जहाँ शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी ऋग्वेद, यजुर्वेद, छान्दोग्य सामवेद और अन्य शास्त्रों (वेदान्त, व्याकरण, रामायण, महाभारत, मनुशास्त्र, वैखानश शास्त्र आदि) का अध्ययन करते थे। यह शिक्षण-संस्था चिंगलपट जिले में तिरुवोरैय्यूर नामक स्थान पर शिव मन्दिर के साथ स्थापित थी।

उत्कीर्ण लेखों द्वारा एक ऐसे महाविद्यालय का भी परिचय मिलता है, जिसे एक वैश्य ने स्थापित किया था। इसमें वेद, संस्कृत, व्याकरण तथा शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। महाविद्यालय के साथ छात्रावास और चिकित्सालय भी थे। शिक्षा के अतिरिक्त निवास, भोजन, वस्त्र आदि भी वहाँ निःशुल्क थे।

कतिपय उत्कीर्ण लेखों में ऐसे मठों का उल्लेख भी विद्यमान है, जो मन्दिरों के साथ स्थापित थे और जिनमें विद्यार्थियों को निःशुल्क रूप से निवास व भोजन आदि प्राप्त करने की सुविधा थी। ग्यारहवीं सदी में बीजापुर के एक मन्दिर के साथ विद्यमान मठ को १२०० एकड़ भूमि इस प्रयोजन से प्रदान की गई थी, कि उसकी आमदनी से योगेश्वर पण्डित के विद्यार्थियों का भरण-पोषण हो सके। योगेश्वर पण्डित मीमांसा शास्त्र के प्रगाढ़ विद्वान् थे और उसके अध्यापन के लिए उन्होंने एक विद्यालय स्थापित किया हुआ था।

दक्षिण भारत के विविध राज्यों की स्वतन्त्रता मध्य काल में सुरक्षित रही थी

तुर्क-अफगान सुलतान उन्हें अपने साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं कर सके थे, और दसवीं सदी के महमूद गजनवी सदृश तुर्क आक्रान्ता के आक्रमणों का भी उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि संस्कृत व्याकरण, वेद-वेदांग तथा अन्य शास्त्रों का पठन-पाठन वहाँ निर्बाध रूप से चलता रहे। वहाँ के कुछ शिक्षणालयों का जो उल्लेख ऊपर किया गया है, वह केवल उदाहरण के लिए है। इनके अतिरिक्त कितने ही अन्य शिक्षणालयों का परिचय भी दक्षिण भारत से उपलब्ध हुए मध्यकालीन उत्कीर्ण लेखों से प्राप्त किया जा सकता है।

दक्षिण भारत के हिन्दू मन्दिरों के साथ स्थापित ये शिक्षणालय नालन्दा और विक्रमशिला के बौद्ध विहारों के समान विशाल नहीं थे, और न इनमें विद्यार्थी ही हजारों की संख्या में थे। पर नालन्दा सदृश विशाल विहार केवल तीन-चार ही थे। इसके विपरीत दक्षिण भारत के हिन्दू या पौराणिक शिक्षणालय संख्या में बहुत अधिक थे। प्रायः सभी मन्दिरों के साथ छोटे व बड़े विद्यालयों की सत्ता थी, जिनमें विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे, और भोजन आदि का व्यय भी उन्हें स्वयं नहीं करना पड़ता था।

प्राचीन भारत में शिक्षा के एक अन्य प्रकार के केन्द्रों की भी सत्ता थी। राजाओं द्वारा कतिपय ग्राम व अन्य भू-सम्पत्ति इस प्रयोजन से प्रदान कर दी जाती थी, कि उसकी आमदनी से विद्वान् ब्राह्मणों का निर्वाह हो सके, ताकि वे आजीविका से निश्चिन्त होकर पठन-पाठन में तत्पर रहें। दक्षिण भारत के अनेक उत्कीर्ण लेखों में इस प्रकार के शिक्षा-केन्द्रों का उल्लेख विद्यमान है। एक लेख से एक ऐसे ग्राम का परिचय प्राप्त होता है, जिसकी आमदनी से ३०८ विद्वान् ब्राह्मण परिवारों का पालन-पोषण होता था। ये ब्राह्मण वेद, वेदांग, स्मृति आदि शास्त्रों के पारंगत विद्वान् थे, और अपनी विद्वत्ता के कारण चतुर्वेदी, त्रिवेदी, सोमयाजी, षडंगविद्, भट्ट आदि कहाते थे।

राज्य संस्था तथा अन्य सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा दी गई जागीरों व भू-सम्पत्ति की आमदनी से निर्वाह करने वाले, पठन-पाठन तथा विद्या की वृद्धि में तत्पर ब्राह्मणों की ऐसी बस्तियाँ भी प्राचीन भारत में विद्यमान थीं, जो अपनी सब व्यवस्था सभाओं द्वारा किया करती थीं। इनके शासन प्रबन्ध का स्वरूप ग्राम पंचायतों के सदृश था। ये 'अग्रहार' कहाते थे। कितने ही उत्कीर्ण लेखों में अग्रहार सभाओं के कार्यकलाप का विवरण भी उल्लिखित है। इसमें सन्देह नहीं, कि ये अग्रहार अध्ययन-अध्यापन, विद्या-वृद्धि तथा चिन्तन के केन्द्र होते थे।

(५) मिथिला, नदिया और वाराणसी

तुर्क-अफगानों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप नालन्दा और विक्रमशिला जैसे विशाल शिक्षा-केन्द्रों का ध्वंस हो गया था, और राजनीतिक अव्यवस्था के कारण नये शिक्षा-केन्द्रों का विकास सम्भव नहीं रहा था। फिर भी मध्य काल में उत्तर भारत में कतिपय ऐसे केन्द्र विद्यमान थे, जिनमें वेदशास्त्रों के अध्ययन तथा नवीन दार्शनिक चिन्तन की परम्परा कायम थी। ये केन्द्र मिथिला, नदिया और वाराणसी थे।

मध्य काल में मिथिला तीन राजवंशों के शासन में रहा, कर्णाट वंश (११५०-१३९५ ईस्वी), कामेश्वर वंश (१५१५ ईस्वी तक) और महेश्वर ठाकुर वंश, जिसके राजा मुगल सम्राट् अकबर के समकालीन थे। इन तीनों राजवंशों के शासनकाल में

शिक्षा के केन्द्र के रूप में मिथिला ने बहुत उन्नति की, और वहाँ अनेक विश्वविख्यात विद्वान् पठन-पाठन में तत्पर रहे। मिथिला में केवल अध्यापन ही नहीं होता था, वहाँ के अनेक विद्वान् नवीन दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी तत्पर थे, और उनके मौलिक चिन्तन के परिणामस्वरूप अनेक नवीन विचार-सम्प्रदायों का विकास हो गया था। इन विद्वानों में गणेश उपाध्याय (बारहवीं सदी) बहुत प्रसिद्ध हैं। नव्य न्याय के वही प्रवर्तक थे। 'तत्त्व-चिन्तामणि' नाम से उन्होंने एक मौलिक दार्शनिक ग्रन्थ लिखा था, जिसकी पृष्ठ संख्या ३०० के लगभग है। पर उसकी व्याख्या करने के लिए जो ग्रन्थ बाद की तीन सदियों में लिखे गये, उनकी पृष्ठ संख्या दस लाख से भी अधिक है। गणेश उपाध्याय के मौलिक चिन्तन ने भारत के दार्शनिक विद्वानों को कितना प्रभावित किया था, यह इसीसे स्पष्ट है। नव्य न्याय की दार्शनिक परम्परा को और अधिक विकसित करने वाले जो अनेक विद्वान् मिथिला में हुए, उनमें वर्धमान, पक्षधर मिश्र, वासुदेव मिश्र, महेश ठाकुर और रघुनन्दनदास राय के नाम उल्लेखनीय हैं। रघुनन्दनदास राय अकबर का समकालीन था, और दिग्विजय करते हुए उसने अपने समय के पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। उसकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर अकबर ने मिथिला का प्रदेश उसे जागीर के रूप में प्रदान कर दिया था। पर इस जागीर को रघुनन्दनदास राय ने अपने गुरु महेश ठाकुर को गुरुदक्षिणा के रूप में दे दिया, जिससे महेश ठाकुर मिथिला राज के स्वामी हो गये। दरभंगा के राजा इन्हीं महेश ठाकुर के वंशज हैं।

मिथिला के अन्य दार्शनिक विद्वानों में शंकर मिश्र और वाचस्पति मिश्र ने बहुत ख्याति अर्जित की। वस्तुतः, मध्य काल में मिथिला उत्तर भारत में वेदशास्त्रों तथा दर्शन के अध्ययन-अध्यापन का सर्वाधिक प्रसिद्ध केन्द्र था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए वहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी आया करते थे, और वहाँ के विद्वानों का देश में सर्वत्र आदर था। प्रसिद्ध कवि विद्यापति भी मिथिला के निवासी थे। उनके सरस गीतों ने पूर्वी भारत की जनता में भक्तिरस का संचार किया।

भागीरथी और जलांगी नदियों के संगम पर स्थित नदिया ([illegible]) चिरकाल तक शास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र रहा है, और उसके प्रकाण्ड पण्डितों की परम्परा अब तक भी नष्ट नहीं हुई है। ग्यारहवीं सदी के अन्त में गौड़ देश के राजा लक्ष्मण सेन ने इस नगरी को अपनी राजधानी बनाया, और इस समय से इसके उत्कर्ष का प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मण सेन का प्रधानमन्त्री हलायुध नामक विद्वान् था, जिसने कि स्मृति-सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व और न्याय सर्वस्व सदृश उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन किया था। सेन वंश के राजाओं के शासनकाल में नदिया शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया, और बहुत-से कवि तथा विद्वान् वहाँ आकर निवास करने लगे। सन् ११९७ में बख्तियार खिलजी ने बंगाल को जीत लिया, और सेन वंश के शासन का वहाँ अन्त हो गया। पर मुसलिम शासन में भी शिक्षा और विद्वत्ता के क्षेत्र में नदिया की स्थिति पूर्ववत् कायम रही, और वहाँ के प्रकाण्ड पण्डितों के ज्ञान तथा विद्वत्ता से आकृष्ट होकर विविध प्रदेशों के विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते रहे। ११९८ से १७५७ तक बंगाल मुसलिम नवाबों की अधीनता में रहा, पर उनके शासन में विद्या-केन्द्र के रूप में नदिया की स्थिति पूर्ववत् बनी रही।

मिथिला के समान नदिया भी न्यायदर्शन के अध्ययन-अध्यापन एवं विकास का

अतः ग्रन्थों की हाथ से प्रतिलिपियाँ करायी जाती थीं, जिन्हें जहाँ पुस्तकालयों में सुरक्षित रखा जाता था, वहाँ साथ ही उनकी बिक्री भी की जाती थी। कम्बुज के एक अभिलेख में राजा सूर्यवर्मा द्वितीय द्वारा एक आश्रम को दान में दी गयी धन-सम्पत्ति का वर्णन है, जिसमें सब शास्त्रों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी अन्तर्गत थीं। राजाओं के अतिरिक्त अन्य सम्पन्न व्यक्तियों ने भी कम्बुज में अनेक आश्रमों की स्थापना करायी थी, और उनके लिए प्रचुर धन प्रदान किया था। ऐसा एक व्यक्ति दिवाकर भट्ट था, जो यमुना तटवर्ती एक प्रदेश से जाकर कम्बुज में बस गया था, और वहाँ द्विजेन्द्रपुर नामक स्थान पर उसने एक आश्रम की स्थापना की थी।

कम्बुज के आश्रमों में अध्यापन करने वाले शिक्षक कुलपति, कुलाध्यक्ष, आचार्य, उपाध्याय और अध्यापक कहाते थे। एक अभिलेख में जयमंगलार्क नामक विद्वान् का उल्लेख है, जिसे अध्यापकाधिप (प्रधानाध्यापक) कहा गया है। इसी प्रकार कितने ही कुलपतियों, आचार्यों, उपाध्यायों और अध्यापकों का कम्बुज के अभिलेखों में उल्लेख है, और उनके नामों के साथ उनकी विद्वता का भी विवरण है। इन आश्रमों में किन विषयों का अध्ययन-अध्यापन होता था, इस सम्बन्ध में भी अनेक संकेत कम्बुज के अभिलेखों में विद्यमान हैं। शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि धर्मों के धार्मिक साहित्य का इन आश्रमों के पाठ्य-विषयों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। पर उसके अतिरिक्त व्याकरण, काव्य, संगीत, नृत्य, कला, ज्योतिष आदि की भी उनमें शिक्षा दी जाती थी। अनेक अभिलेखों में कम्बुज के आचार्यों व उपाध्यायों की विद्वता का वर्णन करते हुए उन विद्याओं एवं विषयों का भी परिगणन कर दिया गया है, जिनमें वे स्वयं पारंगत थे और जिनका वे अध्यापन किया करते थे। आचार्य शिवसोम को एक अभिलेख में वेदवित् एवं तर्कशास्त्र, योग तथा व्याकरण में प्रवीण और पुराण, महाभारत, सम्पूर्ण शैव साहित्य तथा काव्यों का पण्डित कहा गया है। कवीन्द्र पण्डित नामक एक आचार्य के विषय में यह उल्लिखित है कि वह पाँचों व्याकरणों का मर्मज्ञ, शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र, आगम, काव्य, महाभारत और रामायण का विद्वान् था, और इन्हें स्वयं पढ़कर उसने शिष्यों को इनकी शिक्षा दी थी। भूपेन्द्र पण्डित [illegible] सूर्यशिव नामक आचार्य त्रयी वाङ्मय का कोविद्, शैव वाङ्मय में पारंगत, न्याय, सांख्य और वैशेषिक दर्शनों में निष्णात तथा शब्दशास्त्र (व्याकरण) व भाष्य (महाभाष्य) का विद्वान् था। इस भूपेन्द्र पण्डित के आश्रम में जहाँ निरन्तर यज्ञ में दी गयी आहुतियों के धूम्र की सुगन्ध व्याप्त रहती थी, वहाँ कठिन शास्त्रों के अभिप्राय के सम्बन्ध में मतभेद के कारण विद्यार्थियों में जो वाद-विवाद चलते रहते थे, उनकी ध्वनि से भी आश्रम गुञ्जायमान रहता था।[1] वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, काव्य, इतिहास, रामायण, महाभारत और पुराण आदि के अतिरिक्त चिकित्साशास्त्र का भी कम्बुज देश के आश्रमों में पठन-पाठन हुआ करता था। आयुर्वेद एक उपवेद है, पर सुश्रुत सदृश ग्रन्थों का कम्बुज के अभिलेखों में उल्लिखित होना सूचित करता है कि वहाँ इस शास्त्र की शिक्षा सुचारु रूप से प्रचलित थी।

---

१. 'विद्यापवर्गविहितापचितिप्रबन्धे यस्याश्रमेऽनवरताहुतिधूमगन्धे।
दुर्गागमेषु मतिभेदकृतार्थनीत्या विद्यार्थिनां विवदतां ध्वनिरुत्ससर्प।'
(वन वन अभिलेख)

कम्बुज देश के आश्रमों में जहाँ विविध शास्त्रों एवं विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी, वहाँ गुरु और शिष्यों में पिता-पुत्र के सम्बन्ध की परम्परा भी वहाँ अक्षुण्ण रूप से विद्यमान थी। राजा उदयादित्य के एक अभिलेख में गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को इस प्रकार प्रकट किया गया है—'जैसे पिता अपनी सन्तान का यत्नपूर्वक पालन करता है, वैसे ही यहाँ गुरु अपने शिष्यों का ध्यान रखता हुआ उन्हें शिक्षा देता है।'[1]

कम्बुज में शिक्षा केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं थी। स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त किया करती थीं। एक अभिलेख में तिलका नामक महिला का उल्लेख है, जो परम विदुषी थी। विद्वानों में श्रेष्ठ नरेन्द्र गुरु ने तिलका की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उसे 'वागीश्वरी भगवती' की उपाधि प्रदान की थी, और भरी परिषद् में उसके पाण्डित्य को स्वीकार किया था। राजा सूर्यवर्मा के एक अभिलेख में 'सती जनपदा' नाम की एक अन्य विदुषी महिला का उल्लेख है। राजा जयवर्मा सप्तम की रानी इन्द्रदेवी परम विदुषी थी। वह पहले नगेन्द्र तुंग तिलकोत्तर और नरेन्द्राश्रम नामक आश्रमों में अध्यापन का कार्य कर चुकी थी। वहाँ वह सरस्वती नाम से प्रसिद्ध थी, और सदा शिष्याओं द्वारा घिरी रहती थी। कम्बुज की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार था, और बालिकाओं की शिक्षा के लिए पृथक् आश्रमों की भी सत्ता थी, यह इससे भली-भाँति प्रमाणित हो जाता है।

(६) प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति की विशेषताएँ

प्राचीन भारत में अनेक प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान थीं, और विभिन्न समयों में उनके स्वरूप में भी परिवर्तन होते रहे। पर प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो सब प्रदेशों और सब समयों में समान रूप से रहीं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस शिक्षा-प्रणाली का प्रतिपादन किया था, और जिसे क्रियान्वित करने का आर्यसमाज द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है, उसमें भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति की इन विशेषताओं को ध्यान में रखा गया है। अतः इनका संक्षेप के साथ उल्लेख करना उपयोगी होगा।

(१) प्राचीन युग में शिक्षा का अवसर सबको समान रूप से प्राप्त होता था। वेद का ज्ञान सबके लिए था। समाज का कोई भी वर्ग ऐसा नहीं था, जिसे शिक्षा से वंचित रखा जाता हो। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान विद्याध्ययन किया करती थीं। उनका भी उपनयन संस्कार होता था, और वे भी आचार्यकुलों में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थीं। जन्म से कोई शूद्र नहीं होता था। शिक्षण-संस्थाओं में बालकों व बालिकाओं को प्रविष्ट करते हुए वर्ण व सामाजिक ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं किया जाता था। मध्य युग में इस स्थिति में परिवर्तन हो गया, और 'स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्' (स्त्रियों और शूद्रों को नहीं पढ़ाना चाहिये) का विचार जोर पकड़ने लगा। पर प्राचीन काल में यह बात नहीं थी।

(२) प्राचीन शिक्षण-संस्थाएँ आरण्यक-आश्रमों के रूप में होती थीं। शहरों और ग्रामों से दूर, एकान्त प्रदेश में आचार्यों के अनेक 'कुल' (गुरुकुल) हुआ करते थे, माता-पिता

---

१. "शिष्यान् यथा चेष्ठयितोपदेष्टा।
यथात्मजान् वा जनकोऽपि यत्नात्॥" (स्वोक काक अभिलेख)

जिनमें अपनी सन्तान को शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया करते थे। आचार्यकुल या गुरुकुल में विद्याध्ययन करते हुए विद्यार्थी गुरु को ही अपना पिता समझते थे, और गुरु-शिष्य में पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता था। गुरुकुलों में शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता था और विद्यार्थियों का भरण-पोषण 'भैक्षचर्या' (जनता के दान व आर्थिक सहायता) से हुआ करता था। शिक्षा पूर्ण हो जाने पर विद्यार्थी यथाशक्ति गुरुदक्षिणा प्रदान किया करते थे, जो आचार्य (गुरु) के निर्वाह तथा गुरुकुल का खर्च चलाने में सहायक होती थी।

(३) नगरों तथा ग्रामों के समीप आरण्यक आश्रम (गुरुकुल) बड़ी संख्या में स्थित थे, और सामान्य विद्याध्ययन के लिए विद्यार्थी इन्हीं में प्रविष्ट हुआ करते थे। पर इनके अतिरिक्त ऐसी बड़ी-बड़ी शिक्षण-संस्थाएँ भी प्राचीन समय में विद्यमान थीं, जिनमें वेद, शास्त्र, ज्योतिष, शिल्प, राजनीति आदि विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। प्राचीन काल में शौनक, भारद्वाज आदि मुनियों के आश्रम ऐसी शिक्षण-संस्थाओं के रूप में थे, जिनमें हजारों विद्यार्थी विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहार भी विशाल विश्वविद्यालयों के रूप में थे। अपने नगर व ग्राम के समीप स्थित आचार्यकुल में विद्याध्ययन के पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थी इन आश्रमों व विहारों में प्रविष्ट हुआ करते थे। वहाँ भी उन्हें आचार्यकुलों के समान ही अनुशासित ढंग से रहना होता था। ये शिक्षण-संस्थाएँ भी किसी नगर में न होकर उनसे पृथक् अपने विशाल परिसरों में स्वायत्त रूप से स्थित होती थीं।

(४) तक्षशिला सदृश अनेक नगरों में राजनीति, दर्शन, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र आदि विषयों की उच्चतम शिक्षा के लिए अनेक 'विश्वविख्यात' आचार्यों ने अपने शिक्षणालय स्थापित किये हुए थे, जिनमें अध्ययन के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आया करते थे। इनमें 'आचार्यभाग' (शुल्क) लिया जाता था। पर ऐसे विद्यार्थी भी इनमें प्रविष्ट हो सकते थे, जो शुल्क प्रदान करने की स्थिति में न हों, पर शिक्षणालय में कोई काम करके अपना शुल्क अर्जित कर लें। विद्यार्थी चाहे शुल्क दें, या शिक्षा पूर्ण करने के बाद शुल्क प्रदान करने का इकरार कर लें, या श्रम करके शुल्क की मात्रा अर्जित करें—शिक्षणालय में सबके साथ एक समान बरताव किया जाता था। तक्षशिला के आचार्यकुलों में राजपुत्र, श्रेष्ठीपुत्र और सामान्य गृहस्थों की सन्तान सब एक साथ विद्याध्ययन करते थे और उनमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।

(५) आचार्यकुलों का जीवन सादा तथा तपोमय होता था। मनुस्मृति आदि स्मृति-ग्रन्थों तथा सूत्रग्रन्थों में ब्रह्मचारियों के लिए रहन-सहन, खान-पान आदि के जो नियम निर्धारित किये गये हैं, वे बहुत कठोर हैं। ब्रह्मचारियों के लिए जूते पहनना, छत्र धारण करना, शृंगार रस की गोष्ठियों व प्रेक्षाओं में सम्मिलित होना और शरीर की विभूषा करना वर्जित था। ब्रह्मचारियों के समान गुरुजन भी सादा तथा तपोमय जीवन बिताते थे।

(६) समाज में विद्यार्थियों तथा अध्यापक वर्ग को बहुत प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। यदि कोई राजा, राजपुरुष व धनी व्यक्ति किसी आचार्यकुल या आश्रम के अवलोकन के लिए आता था, तो वह बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों को बाहर ही उतार देता था। जिस वाहन पर वह आया था, उसे आश्रम से दूर छोड़ देता था और सादे वस्त्र पहनकर आश्रम

या आचार्यकुल में प्रवेश करता था। विद्वान् स्नातक को सामने आता देख राजा भी वाहन से नीचे उतर जाता था और उसके प्रति समुचित सम्मान प्रदर्शित करता था। अध्यापक वर्ग की स्थिति समाज में सर्वोच्च मानी जाती थी।

(७) चरित्र के निर्माण एवं अन्तर्निहित शक्तियों के विकास पर प्राचीन भारत की शिक्षण-संस्थाओं में विशेष ध्यान दिया जाता था। शहरों और ग्रामों से पृथक् एकान्त स्थान पर आचार्यकुलों व आश्रमों के निर्माण की व्यवस्था इसी कारण थी, कि बालक और बालिकाएँ शहरों के दूषित वातावरण के सम्पर्क में न आयें। शिक्षण-संस्थाओं में तपस्वी व सदाचारी गुरुजनों के सतत सम्पर्क में रहने के कारण उनके लिए स्वयं सच्चरित्र, धार्मिक एवं तपस्वी बन सकना सम्भव हो जाता था। भारत के प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम सुखभोग के लिए नहीं होता। उनका कथन था, जो सुखभोग चाहे, उनको विद्या प्राप्त नहीं हो सकती (सुखार्थिनां कुतो विद्या, विद्यार्थिनां कुतः सुखम्)। सदाचार एवं अनुशासित जीवन को प्राचीन चिन्तक इतना महत्त्व देते थे, कि उनकी दृष्टि में सदाचारी व मर्यादा पालन करने वाले व्यक्ति का महत्त्व उससे बहुत अधिक था जो वेदों का ज्ञाता तो हो, पर सच्चरित्र न हो। वे यह मानते थे कि जिसका मन शुद्ध है, जिसका वाणी व क्रियाओं पर नियन्त्रण है, उसे वेद शास्त्रों के अध्ययन के सब फल प्राप्त हो जाते हैं।[1]

(८) प्राचीन आर्य यह मानते थे, कि प्रत्येक मनुष्य को तीन ऋणों से उऋण होना होता है, पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण। ऋषिऋण को अदा करने का उपाय यह है, कि पुराने ऋषि-मुनियों द्वारा जो ज्ञान व विद्याएँ विकसित की गई हैं, अध्ययन द्वारा न केवल उन्हें प्राप्त ही किया जाये, अपितु चिन्तन, मनन व अनुसन्धान द्वारा उनमें वृद्धि भी की जाए। इसीलिए वे विद्याध्ययन को आजीविका उपार्जन का साधनमात्र नहीं समझते थे। इसीलिए उनकी यह मान्यता थी, कि यदि कोई व्यक्ति विद्या को वर्तमान जीवन में आजीविका का साधन बनाये, तो भावी जीवन में वह उसके लिए फलवती नहीं हो पाएगी।[2] कालिदास ने इसी विचार को इस ढंग से प्रकट किया है, कि जो कोई विद्या व ज्ञान को आजीविका का साधन बना ले, उसे ज्ञानरूपी पण्य को बेचने वाला वणिक् समझना चाहिये।[3] प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों का मत था, कि विद्याध्ययन का प्रयोजन अपना तथा मानव समाज का कल्याण करना और वर्तमान ज्ञान में वृद्धि के लिए प्रयत्न करना है। इसीलिए पठन-पाठन में लगे हुए विद्यार्थियों, स्नातकों तथा आचार्यों का समाज में सर्वोच्च स्थान था। सेवा, त्याग और निःस्वार्थता के आदर्श केवल वेदशास्त्रों के विद्यार्थियों

---

१. 'सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्व विक्रमी॥ मनुस्मृति २.११८
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥' मनुस्मृति २.१६०

२. 'यश्च विद्यामासाद्यास्मिल्लोके तया सह जीवेन्न सा तस्य फलप्रदा भवति।'
विष्णु धर्मसूत्र ३०, ३९

३. 'यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।'
मालविकाग्निमित्र, अंक १

के लिये ही नहीं थे, अपितु शिल्प तथा चिकित्साशास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से भी यह अपेक्षा की जाती थी कि वे कर्मसिद्धि (अपने व्यवसाय का अनुसरण) तथा अर्थसिद्धि (धन उपार्जन) करते हुए सबके हित का सम्पादन करें। इसीलिए आयुर्वेद-शास्त्र के प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ चरक संहिता में चिकित्साशास्त्र के स्नातकों के दीक्षान्त संस्कार के अवसर पर किये जाने वाले उपदेश में कहा गया है, कि सब प्राणियों के कल्याण के लिए प्रयत्न करते रहो। इसी से जहाँ इस जीवन में तुम्हें धन और यश की प्राप्ति होगी, वहाँ मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग भी मिलेगा।[1]

प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति की जिन विशेषताओं का यहाँ उल्लेख किया गया है, वे सब शिक्षण-संस्थाओं में सब समयों में विद्यमान रहीं, यह स्वीकार कर सकना तो कठिन है। पर यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि प्राचीन काल में, जब भारत का अपकर्ष प्रारम्भ नहीं हुआ था, इनके अनुसार विद्यादान करने तथा शिक्षण-संस्थाओं के संचालन का प्रयत्न अवश्य किया जाता था। बाद में जब भारतीय संस्कृति में ह्रास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, तो शिक्षा पद्धति की ये विशेषताएँ न केवल कायम ही नहीं रह सकीं, अपितु जनता का बड़ा भाग शिक्षा से सर्वथा वंचित भी रहने लगा।

(१०) प्राचीन शिक्षण-संस्थाओं का ह्रास

प्राचीन भारत में आचार्यकुलों, आश्रमों और विहारों आदि के रूप में जो बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ थीं, मध्य काल में उनकी सत्ता के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी जिन आचार्यकुलों में विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट होते थे, छठी सातवीं सदियों तक भी वे विद्यमान थे, यह मान सकना कठिन नहीं है, क्योंकि उस काल में जिन अनेक स्मृतिग्रन्थों की रचना हुई, उन सब में प्रायः उपनीत ब्रह्मचारी के लिए आचार्यकुल में जाकर तप और संयम का जीवन बिताने का विधान है। उच्च शिक्षा के लिए जिस ढंग के आश्रम प्राचीन समय में हुआ करते थे, वे भी पूर्व-मध्य काल तक अवश्य विद्यमान रहे। रामायण, महाभारत और पुराण जिस रूप में वर्तमान समय में उपलब्ध हैं, उनके अनेक अंश गुप्त युग व उससे कुछ पूर्ववर्ती काल के माने जाते हैं। उनमें शौनक, कण्व, भारद्वाज आदि के जिन आश्रमों का वर्णन है, उनका समय यद्यपि प्राचीन है, पर जिस काल में रामायण, महाभारत आदि अपने वर्तमान रूप में आये, तब भी उस ढंग के आश्रम भारत में रहे होंगे, यह कल्पना असंगत नहीं है। परमार राजा मुंज तथा भोज ने पूर्व-मध्य काल में ही अपनी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की थी।

छठी सदी ईस्वी पूर्व से प्रारम्भ कर नौवीं दसवीं सदियों तक उच्च शिक्षा की जो संस्थाएँ भारत में कायम रहीं, एक दृष्टि से उन्हें धार्मिक कहा जा सकता है। बौद्ध विहार निश्चय ही धार्मिक संस्था थे, यद्यपि विद्याध्ययन के भी वे केन्द्र थे। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नालन्दा, विक्रमशिला आदि के महाविहारों में बौद्धों के धार्मिक

---

१. 'कर्मसिद्धिमर्थसिद्धिं यशोलाभं प्रेत्य च स्वर्गमिच्छता त्वया···सर्वप्राणभृतां शर्माशासितव्यम्।' चरक संहिता, विमानस्थान ८.६

और दार्शनिक ग्रन्थों के साथ-साथ अन्य ज्ञान-विज्ञान का भी पठन-पाठन होता था, और धार्मिक दृष्टि से इन विहारों की शिक्षा संकीर्ण व साम्प्रदायिक नहीं थी। बुद्ध वेदों को अपौरुषेय व प्रमाणरूप नहीं मानते थे, पर बौद्ध विहारों तथा महाविहारों में वेदों का भी अध्यापन होता था। न्याय, सांख्य और योग सदृश आस्तिक दर्शन भी उनके पाठ्य-विषयों के अन्तर्गत थे, यद्यपि बौद्धों ने पृथक् रूप से अपने ऐसे दर्शनों का विकास कर लिया था, जिनमें ईश्वर की सत्ता स्वीकार ही नहीं की जाती थी। कम्बुज सदृश बृहत्तर भारत के देशों में जो शैव और वैष्णव आश्रम वहाँ के वैदिक धर्मावलम्बी राजाओं तथा अन्य सम्भ्रान्त लोगों ने स्थापित कराये थे, उनमें भी धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया जाता था और अवैदिक सम्प्रदायों के ग्रन्थों तथा दार्शनिक साहित्य का भी उनमें पठन-पाठन होता था। इस काल तक भारत में जो आश्रम एवं विहार विद्यमान थे, उनका स्वरूप भी प्रायः कम्बुज की शिक्षण-संस्थाओं के ही सदृश होगा, यह मानना असंगत नहीं है। किसी धर्म व सम्प्रदाय के साथ सम्बद्ध होने पर भी भारत की ये शिक्षण-संस्थाएँ ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र थीं, और इनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी अपने धार्मिक व दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ-साथ अन्य धर्मों के मन्तव्यों को भी भली-भाँति जान लेते थे। साथ ही, यह भी ध्यान में रखना चाहिये, कि इन शिक्षण-संस्थाओं की शिक्षा केवल धर्म तक ही सीमित नहीं थी। उस युग में जो भी विद्याएँ थीं, जो भी ज्ञान-विज्ञान था, उन सबका पठन-पाठन इनमें हुआ करता था।

बारहवीं सदी के अन्त में तुर्क-अफगानों के आक्रमण उत्तर-पश्चिमी भारत पर प्रारम्भ हुए। कुछ ही समय में उत्तरी भारत को आक्रान्त करते हुए वे बिहार तक चले गए, जहाँ उस समय नालन्दा, विक्रमशिला और उदन्तपुर सदृश महाविहारों की सत्ता थी। तुर्क-अफगान आक्रान्ताओं ने इन्हें बुरी तरह से नष्ट किया, और इनके विशाल पुस्तकालयों को ध्वंस कर दिया। बहुत-से आचार्य, उपाध्याय, अध्यापक और विद्यार्थी आक्रान्ताओं से युद्ध करते हुए मारे गये, और जो शेष बचे उन्होंने उत्तर में नेपाल तथा तिब्बत और दक्षिण में विन्ध्याचल से परे जाकर शरण ली। जो पुस्तकें वे साथ ले जा सकते थे, उन्हें भी वे अपने साथ ले गये। यही कारण है, जो प्राचीन भारत के बहुत-से ग्रन्थ इस समय नेपाल, तिब्बत और चीन आदि में उपलब्ध हैं, और भारत में उनका अब नाम-निशान भी नहीं रहा है।

बारहवीं सदी के अन्त से सोलहवीं सदी के मध्य तक के काल को उत्तरी भारत के इतिहास में अव्यवस्था और अराजकता का समय कहा जा सकता है, क्योंकि तब तुर्क-अफगान आक्रान्ता इस देश के विविध राजवंशों से युद्ध करने और उन्हें अपनी अधीनता में ले आने के लिए संघर्ष में व्यापृत थे। तुर्क-अफगानों को इस्लाम की दीक्षा लिये अभी अधिक समय नहीं हुआ था, और अपने नये धर्म के लिए उनमें अत्यधिक जोश था। इसी का यह परिणाम था, कि भारतीयों को बलपूर्वक मुसलिम बनाने और उनके धर्म-स्थानों तथा शिक्षण-संस्थाओं को नष्ट करने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। इस दशा में विहारों और आश्रमों के लिए अपनी सत्ता को कायम रख सकना सम्भव नहीं रहा। यह कल्पना निराधार नहीं है कि उन्हें उसी प्रकार से तुर्क-अफगान आक्रान्ताओं द्वारा नष्ट कर दिया गया होगा, जैसे कि मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी ने विक्रमशिला महाविहार का ध्वंस किया था।

प्राचीन परम्परा के आचार्यकुलों के लिए भी मध्य काल में कायम रह सकना सम्भव नहीं रह गया। तुर्क-अफगानों के आक्रमण काल में भारत में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, कि लोगों का जीवन सुरक्षित नहीं रह गया था। स्त्रियों व कुमारियों के लिए आत्मरक्षा कर सकना भी तब सुगम नहीं रहा था। यही कारण था, जो माता-पिता छोटी आयु में ही कन्याओं का विवाह कर उनकी उत्तरदायिता से मुक्त हो जाना उचित समझने लगे थे और बाल-विवाह का चलन प्रारम्भ हो गया था। ऐसे वातावरण में यह सम्भव ही कैसे था, कि माता-पिता अपने बालकों और बालिकाओं को विद्याध्ययन के लिए उन आचार्यकुलों में भेज दें, जो नगरों और ग्रामों से दूर अरण्यों (जंगलों) में स्थित होते थे। स्मृति-ग्रन्थों और उनकी टीकाओं के रचनाकाल तक आचार्यकुलों की जो परम्परा भारत में भली-भाँति विद्यमान थी, तुर्क-अफगान आक्रमणों के कारण उत्पन्न अराजकता और असुरक्षा की दशा में उसका स्वयमेव अन्त हो गया। इसी के परिणामस्वरूप भारत में शिक्षित लोगों की संख्या में निरन्तर कमी आती गयी, और स्त्री-शिक्षा की तो प्रायः समाप्ति ही हो गयी। किसी समय केकयराज अश्वपति और कोशल जनपद के राजा दशरथ के सम्बन्ध में गर्व के साथ यह कहा गया था, कि उनके राज्य में कोई भी 'अविद्वान्' व अशिक्षित नहीं है। जिन आचार्यकुलों के कारण उस युग में सब बालकों और बालिकाओं को शिक्षा का अवसर प्राप्त होता था, बारहवीं सदी के बाद की परिस्थितियों में उनके लिए कायम रह सकना ही जब सम्भव नहीं रह गया, तो भारत में निरक्षरता की वृद्धि स्वाभाविक ही थी। इस दशा में यदि कतिपय विचारकों ने यह मन्तव्य प्रतिपादित कर दिया, कि स्त्रियों और शूद्रों को विद्या पढ़ायी ही नहीं जानी चाहिए, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि तब तो ब्राह्मण कुमारों तक के लिए शिक्षा-प्राप्ति की सुविधा नहीं रह गयी थी।

मध्य युग की अराजकता की परिस्थिति में भारत में न आचार्यकुलों की सत्ता रह गयी थी, और न उच्च शिक्षा के केन्द्र आश्रमों और विहारों की। पर इस काल में भी काशी, मिथिला आदि कतिपय नगरियों में ऐसी पाठशालाएँ या शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान थीं, जिनमें प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता था। पर इनकी शिक्षा एकांगी थी। नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारों के समान इनमें विविध धर्मों व सम्प्रदायों के धर्म-ग्रन्थों, दर्शन, साहित्य, काव्य, गणित, ज्योतिष, धनुर्वेद, चिकित्साशास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञान के पठन-पाठन की व्यवस्था नहीं थी। व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों के पण्डित अपने घर पर रह कर विद्यार्थियों को उस विषय की शिक्षा दिया करते थे जिसमें कि वे स्वयं निष्णात होते थे। इस ढंग से शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम होती थी, और किसी एक विषय में पाण्डित्य प्राप्त कर लेने पर भी उनको उस प्रकार का व्यापक ज्ञान प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं होता था, जैसा कि भारद्वाज आश्रम, यशोधराश्रम व नालन्दा विहार के विद्यार्थियों को होता था। इन आश्रमों और विहारों में विविध प्रकार के शिल्पों की भी शिक्षा दी जाती थी, जिसके कारण शिल्पी लोग शिल्प को सीखने के साथ-साथ उस का सैद्धान्तिक ज्ञान भी प्राप्त कर लेते थे। इसी का यह परिणाम था, कि उस काल के शिल्पी अशिक्षित नहीं होते थे। विद्याध्ययन के कारण उनकी बुद्धि विकसित हुई होती थी, और अपने शिल्प को निरन्तर विकसित व उन्नत करते रह सकना उनके लिए सम्भव था। पर आश्रमों और विहारों के ध्वंस हो जाने के कारण मध्य युग के शिल्पी केवल उसी शिल्प को सीख सकते थे, जो उनके परिवार में कुल-

क्रमानुगत रूप से चला आता था। साक्षर होने तथा विविध ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का उन्हें कोई अवसर ही नहीं था। यही कारण है, कि व्यवसाय, उद्योग और शिल्प के क्षेत्रों में भारत पिछड़ता गया, और इस देश में उस ढंग के नये वैज्ञानिक व औद्योगिक आविष्कार नहीं हो सके, जैसे कि अठारहवीं सदी में पश्चिमी यूरोप में हुए थे।

तुर्क-अफगान राजवंशों की सत्ता का अन्त कर जब मुगलों का शासन उत्तरी भारत के बड़े भाग पर सुव्यवस्थित रूप से स्थापित हो गया, तो अकबर द्वारा भारतीय विद्वानों तथा पण्डितों के शिक्षा-कार्य को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया गया। इसके परिणामस्वरूप पुरानी परिपाटी की अनेक पाठशालाएँ स्थापित हुईं, और धर्मशास्त्रों तथा ज्योतिष, व्याकरण आदि विद्याओं का पठन-पाठन फिर से व्यवस्थित रूप से प्रारम्भ हुआ। पर ये पाठशालाएँ प्राचीन भारत के आश्रमों और विहारों से बहुत भिन्न थीं। न इनमें शिक्षकों और विद्यार्थियों की संख्या ही सैकड़ों-हजारों में थी, और न इनमें विविध विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा ही दी जाती थी। प्राचीन आचार्यकुलों से भी इनका विशेष सादृश्य नहीं था, क्योंकि सर्वसाधारण गृहस्थों की सन्तान की शिक्षा की समस्या इन द्वारा हल नहीं होती थी। पर इसमें सन्देह नहीं कि परम्परागत प्राचीन ज्ञान का दीपक इनमें अवश्य प्रज्ज्वलित था, और एक अत्यन्त सीमित क्षेत्र में इनके प्रकाश से जनता के एक बहुत ही छोटे वर्ग के व्यक्ति अपने मानसिक क्षितिज को आलोकित भी कर रहे थे। मुगल युग में शिक्षा का यही स्वरूप था। इस्लाम के प्रवेश के कारण भारत में मुसलिम धर्म-ग्रन्थों और अरबी, फारसी भाषाओं का पठन-पाठन प्रारम्भ हो गया था, और बहुत-से मुसलमान धर्माचार्यों तथा विद्वानों ने अपने मकतब और मदरसे स्थापित कर लिये थे। ये प्रायः मसजिदों के साथ सम्बद्ध होते थे, और इनमें प्रधानतया इस्लाम के धर्म-ग्रन्थों की ही शिक्षा दी जाती थी। सुलतानों और बादशाहों का साहाय्य व संरक्षण प्राप्त कर अनेक मुसलिम शिक्षण-संस्थाओं ने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी, और उनके मौलवियों की विद्वत्ता से आकृष्ट होकर दूर-दूर के विद्यार्थी उनसे विद्याध्ययन के लिए आने लगे थे। पर मध्य युग में भारत में कोई भी ऐसी मुस्लिम शिक्षण-संस्था नहीं थी, जो प्रयाग के भारद्वाज आश्रम, नैमिषारण्य के शौनक आश्रम और नालन्दा व विक्रमशिला के महाविहारों के समकक्ष हो। विविध नगरों एवं ग्रामों में जो बहुत-सी मसजिदें इस युग में स्थापित हुईं, पठन-पाठन की व्यवस्था उनमें भी थी। पर उनकी शिक्षा अरबी, फारसी (बाद में उर्दू) और मुसलिम धर्म-ग्रन्थों तक ही सीमित थी, और विद्या एवं ज्ञान के प्रसार तथा विकास में उन द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की जाती थी। कुरान को कण्ठस्थ कर लेना, उसका सस्वर पाठ करना और इस्लाम द्वारा विहित धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान करने-कराने की योग्यता प्राप्त कर लेना ही इन मदरसों व मकतबों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की प्रधान उपलब्धि हुआ करती थी। मन्दिरों के साथ विद्यमान पाठशालाओं की दशा भी प्रायः ऐसी ही थी। मन्दिरों में पूजापाठ के लिए नियुक्त ब्राह्मण पण्डित विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा, व्याकरण तथा पुराण आदि की शिक्षा दिया करते थे, और उनके ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता था। वेद तथा आर्ष-ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की परिपाटी न मन्दिरों के साथ की इन पाठशालाओं में थी, और न वाराणसी आदि के विख्यात पण्डितों की शिक्षण-संस्थाओं में। स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षा देने का तो तब प्रश्न ही नहीं था, पर द्विज बालकों में भी बहुत कम ऐसे थे जिन्हें विद्याध्ययन का अवसर

प्राप्त होता था। यही कारण है, जो सर्वसाधारण जनता प्राय: निरक्षर व अशिक्षित थी, ज्ञान के आलोक के अभाव में वह अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों से ग्रस्त थी, और भारतीय समाज में वहुत-सी कुरीतियों का प्रवेश हो गया था।

अठारहवीं सदी के मध्य भाग में भारत पर अंग्रेजी शासन की स्थापना का सूत्र-पात हुआ। उस समय से इस देश में नये प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ खुलनी प्रारम्भ हुईं, जिनका संचालन पहले क्रिश्चियन मिशनों द्वारा किया जाता था, और वाद में अंग्रेजी सरकार ने भी इस क्षेत्र में कार्य शुरू किया। इस समय तक पश्चिमी यूरोप में नवजागरण का प्रारम्भ हो चुका था, और नये ज्ञान-विज्ञान के विकास के कारण उस क्षेत्र के देश उन्नति के मार्ग पर तेजी के साथ अग्रसर होने लग गये थे। ब्रिटिश शासन में जिस नयी शिक्षा का भारत में सूत्रपात्र हुआ, उस पर अगले अध्याय में विशद रूप से प्रकाश डाला जायेगा। यहाँ इतना ही निर्देश कर देना पर्याप्त है, कि यह नयी शिक्षा भी भारत की प्राचीन आर्य शिक्षा-पद्धति के अनुरूप नहीं थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जहाँ सत्य सनातन वैदिक धर्म के पुन:स्थापन का प्रयत्न किया, वहाँ साथ ही प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना भी उन द्वारा प्रारम्भ की गई। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य-समाज का जो कार्यकलाप है, उसका यही उद्देश्य है कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित प्राचीन आर्य शिक्षा प्रणाली के मूलभूत मन्तव्यों को समय और परिस्थितियों के अनुसार यथा-सम्भव क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया जाये। इस क्षेत्र में आर्यसमाज को किस अंश तक सफलता हुई है, इसी विषय पर इस ग्रन्थ में विचार किया जाना है।

दूसरा अध्याय

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शिक्षा की दशा

(१) शिक्षण-संस्थाओं के विविध प्रकार

महर्षि दयानन्द मौलिक विचारक तथा क्रांतिकारी सुधारक थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि व्यक्ति तथा समाज की उन्नति के लिए शिक्षा अतीव आवश्यक है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश तथा वेदभाष्य में बार-बार इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। उनकी यह मान्यता थी कि मनुष्य का वास्तविक भूषण शिक्षा ही है। यजुर्वेद भाष्य (२०/७८) में उन्होंने लिखा था कि 'पशु भी सुशिक्षा पाये हुए कार्य सिद्ध करते हैं। क्या शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते हैं?' सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में उन्होंने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचारों पर विस्तार से प्रकाश डाला है और शिक्षा प्रणाली के मूल तत्त्वों तथा पाठ्यक्रम का प्रतिपादन किया है।

महर्षि को अपने विचारों के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं के विकास का पर्याप्त समय नहीं मिल सका। किन्तु वे तत्कालीन शिक्षा पद्धति से असन्तुष्ट थे, और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षा पद्धति को प्रचलित करना चाहते थे। १८८३ में महर्षि के निर्वाण के बाद उनके अनुयायियों ने महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के आधार पर बहुत-सी महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्थाएँ चलायीं, स्थापित कीं। इन संस्थाओं ने वर्तमान भारत के नव-निर्माण में बड़ा उल्लेखनीय योगदान किया है। इसका महत्त्व हम भली-भाँति तब तक नहीं समझ सकते, जब तक हमें इसकी पृष्ठभूमि का पूरा ज्ञान न हो और यह न पता हो कि किन परिस्थितियों में इन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की गयी थी।

इसके लिए हमें महर्षि के कार्यक्षेत्र में अवतरित होने से पहले शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इसके साथ ही हमें यह भी जान लेना चाहिये कि इन संस्थाओं को चलाने वाले व्यक्ति कौन थे, वे किन उद्देश्यों से प्रेरित होकर इन संस्थाओं को चला रहे थे, और उन्होंने अपने उद्देश्यों को कहाँ तक पूर्ण किया। इन सब बातों की सही जानकारी के बिना हम महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के तथा आर्यसमाज द्वारा संस्थापित शिक्षण-संस्थाओं के महत्त्व का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते।

१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महर्षि से पहले शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं को अग्रलिखित दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) पहला वर्ग

परम्परागत शिक्षण संस्थाओं का था। ये संस्थाएँ प्राचीन और मध्य काल से चली आ रही थीं। इन्हें शिक्षा के माध्यम के आधार पर चार बड़े उपवर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने वाले विद्यालय, (ख) फारसी के माध्यम से शिक्षा देने वाले मदरसे, (ग) संस्कृत की उच्च शिक्षा देने वाले केन्द्र, (घ) अरबी, फारसी की उच्च शिक्षा देने वाले मकतब। (२) दूसरे वर्ग में अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देने वाले विद्यालय और विश्वविद्यालय थे। इनको चलाने वाले तीन प्रकार के व्यक्ति थे—(क) शिक्षित एवं प्रबुद्ध भारतीय, (ख) मिशनरी, (ग) ईस्ट इंडिया कम्पनी। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

परम्परागत प्राथमिक विद्यालय—अंग्रेजों के आने से पहले भारत में भारतीयों को स्थानीय अथवा मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने वाली प्राथमिक पाठशालाएँ सभी प्रान्तों में विद्यमान थीं। ये उस समय जनता में शिक्षा के प्रसार का प्रधान साधन थीं। इनमें दी जाने वाली शिक्षा पूर्णरूप से व्यावहारिक और उपयोगी थी। लिखने, पढ़ने और हिसाब-किताब के सिखाने पर इनमें अधिक बल दिया जाता था। इनका उद्देश्य उस समय के जमींदारों और किसानों की सामान्य आवश्यकताओं को पूरा करना होता था। किसी विशेष धर्म की शिक्षा पर इनमें कोई बल नहीं दिया जाता था। इन विद्यालयों को राज्य से अथवा जनता से कोई सहायता नहीं मिलती थी। अंग्रेजों ने भारत के विभिन्न प्रदेशों में अपना शासन स्थापित करने के बाद इस प्रकार शिक्षा देने वाले विद्यालयों के सर्वेक्षण कराये थे। बंगाल में इन्हें टोल या चतुष्पाठी कहा जाता था। उत्तरप्रदेश में ये पाठशाला के नाम से प्रसिद्ध थे।

इन पाठशालाओं की स्थिति की जाँच का कार्य सर्वप्रथम दक्षिण भारत से आरम्भ हुआ। मद्रास में सर टामस मनरो ने महर्षि के जन्म से एक वर्ष पूर्व मद्रास के सभी जिलों में शिक्षा-संस्थाओं का सर्वेक्षण करने के आदेश जारी किये थे। इसके परिणाम-स्वरूप कनारा के अतिरिक्त सभी जिलों से शिक्षा-सम्बन्धी जानकारी संगृहीत की गई। १८२३ में माउण्ट स्टुअर्ट एलफिन्स्टन ने बम्बई में सभी जिलों के जिलाधीशों को ऐसी रिपोर्टें तैयार करने को लिखा और अगले छह वर्षों में जुडीशियल डिपार्टमेंट द्वारा सारे प्रान्त के शिक्षाविषयक आँकड़ों तथा आवश्यक सामग्री का संकलन किया गया। बंगाल में लार्ड विलियम बैंटिक ने शिक्षा के प्रति गहरा अनुराग रखने वाले एक ईसाई पादरी विलियम एडम को बंगाल प्रेजिडेन्सी की परम्परागत शिक्षा पद्धति के बारे में रिपोर्ट तैयार करने का काम सौंपा। एडम ने तीन वर्ष (१८३५-३८) तक इस विषय में जाँच करके तीन विशद रिपोर्टें प्रस्तुत कीं।[1] इनसे हमें तत्कालीन शिक्षा-संस्थाओं का परिचय मिलता है। इन रिपोर्टों के आधार पर बंगाल तथा उत्तर भारत की प्राथमिक पाठशालाओं का स्वरूप और सामान्य विशेषताएँ अग्रलिखित हैं।

---

१. एडम डब्ल्यू०, रिपोर्ट्स ऑन वर्नाकुलर एजुकेशन इन बंगाल एण्ड बिहार १८३५, १८३६, १८३८। इन रिपोर्टों के विश्लेषणात्मक विवेचन के लिए देखिये—वसु, ए० एन०—रिपोर्ट्स आन दी स्टेट ऑफ् एजुकेशन इन बंगाल, १८३५ एण्ड १८३८, बाइ विलियम एडम, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४१।

(१) प्राथमिक पाठशालायें प्रायः मन्दिरों, मस्जिदों और निजी भवनों में लगायी जाती थीं। वर्तमान समय की भाँति इनकी कोई निजी इमारतें या भवन नहीं होते थे। कुछ स्थानों पर छात्रों के श्रम का उपयोग करते हुए स्कूल के लिए चवन्नी से दस रुपया तक की लागत से झोपड़ियाँ वना ली जाती थीं। इनमें पढ़ाने वाले शिक्षकों को नियमित रूप से कोई वेतन नहीं दिया जाता था। शिक्षक प्रायः अन्य साधनों से अपनी थोड़ी कमाई कर लेते थे। इसके साथ ही उन्हें स्थानीय जमींदार से तथा स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिताओं से कुछ आर्थिक सहायता और उपहार मिल जाते थे। उन दिनों बंगाल और विहार में प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों का मासिक वेतन तीन रुपये के लगभग होता था, जो कलकत्ता में घर का काम करने वाले नौकरों के वेतन से आधा था[1]। इन प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षक स्वयमेव वहुत कम पढ़े-लिखे होते थे और उनका अपने शिष्यों पर वहुत कम नैतिक प्रभाव पड़ता था।

शिक्षा के विषय प्रधान रूप से मातृभाषा में लिखना-पढ़ना और काम-चलाऊ हिसाव-किताब थे। विद्यार्थी प्रायः इन विषयों को सीखने में ६-७ वर्ष लगा देते थे। कुछ विद्यार्थी इसके वाद भी दो वर्ष तक पढ़ते थे। इस अवधि में उन्हें हिसाव-किताव का विस्तृत ज्ञान कराया जाता था। व्यापारिक पत्र, अर्जियाँ, पट्टे और अन्य कानूनी दस्तावेज लिखने की शिक्षा दी जाती थी। छपी पुस्तकों का शिक्षा में उपयोग विल्कुल नहीं होता था। हस्तलिखित ग्रन्थों का भी उपयोग वहुत ही कम किया जाता था। सारी शिक्षा गुरु-मुख से मौखिक रूप में दी जाती थी। रेत आदि पर अक्षराभ्यास कराया जाता था। विभिन्न देवी-देवताओं के स्तोत्र, रामायण, महाभारत की कहानियाँ कण्ठस्थ कराई जाती थीं।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी। विहार और बंगाल में वँगला के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। वह हिन्दुओं तथा मुसलमानों की सामान्य भाषा समझी जाती थी। राजभाषा होने के कारण फारसी का बड़ा मान था। मुसलमान तथा हिन्दू सरकारी नौकरियाँ पाने के लिए इसे वड़ी संख्या में पढ़ते थे।

इन पाठशालाओं में दण्ड की व्यवस्था वड़ी कठोर थी। वर्तमान शिक्षा में प्रेम, सहानुभूति, धैर्य, उदारता, दयालुता आदि जिन गुणों पर विशेष वल दिया जाता है, इनका उस समय कोई महत्त्व नहीं था। स्कूल में डण्डे का राज था। बेंत और रूल से मारने की पद्धति सामान्य रूप से प्रचलित थी और छात्रों को दण्डित करने के लिए मुर्गा वनाने जैसी सजाओं के नये-नये रूप ईजाद किये जाते थे।[2]

स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार वहुत कम था। उन्हें मध्य युग से ही शिक्षा का अधिकारी नहीं माना जाता था। विहार और बंगाल में यह अन्धविश्वास प्रचलित था कि जिन स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखाया जायगा, वे शीघ्र ही विधवा हो जायेंगी। एडम को पूरे मुर्शिदावाद जिले में केवल नौ ऐसी स्त्रियाँ मिली थीं, जो पढ़-लिख सकती थीं। किन्तु वंगाल के शेष सभी जिलों में वड़ी आयु की उसे कोई भी ऐसी स्त्री नहीं

---

१. रमेशचन्द्र मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी एण्ड इंडियन रिनेसां, भाग २, पृ० १८।
२. कलकत्ता रिव्यू, सं० ४, पृ० ३३४, नूरुल्ला तथा जे० पी० नायक—हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इंडिया, पृ० ४१।

मिली, जो लिखना-पढ़ना जानती हो।

उन दिनों स्कूल में पढ़ाई के कोई घण्टे निश्चित नहीं थे। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार पढ़ाई और अवकाश का समय निश्चित होता था। श्रेणियाँ नियमित रूप से नहीं लगाई जाती थीं और न ही छात्रों की निश्चित समय पर स्कूल में भरती होती थी। कोई छात्र, किसी भी समय विद्यालय में प्रविष्ट हो सकता था, जब चाहे स्कूल को छोड़ सकता था। एक कक्षा में छात्रों की संख्या एक या दो से लेकर अधिक-से-अधिक दस-पन्द्रह तक ही थी।

वर्तमान उत्तरप्रदेश (तत्कालीन नार्थ वैस्टर्न प्राविन्सिज) के एक लेफ्टिनेण्ट गवर्नर जे० एन० थामसन ने शिक्षा को कृषि तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध करने और व्यावहारिक बनाने पर बहुत बल दिया। प्रत्येक तहसीलदार के मुख्यालय पर एक आदर्श विद्यालय स्थापित करने की योजना बनायी। आठ जिलों में इस प्रकार के विद्यालयों का परीक्षण किया गया। उनकी सफलता से प्रभावित होकर लार्ड डलहौजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालक मण्डल को लिखा कि मातृभाषा के माध्यम द्वारा सब जिलों में शिक्षा देने के लिए ऐसे विद्यालय खोले जाने चाहिये।

१८४९ में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना और उसी समय से ईसाई मिशनरियों ने यहाँ शिक्षा के प्रसार का कार्य तेजी से आरम्भ किया। उत्तरप्रदेश की भाँति यहाँ भी तहसीलदारों के मुख्यालयों पर स्कूल खोलने का प्रयास किया गया। इससे पहले यहाँ लण्डे स्कूल प्राथमिक शिक्षा देने का कार्य कर रहे थे। यहाँ के पुराने स्कूलों में भाषा और हिसाब-किताब की शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए कोई स्कूल नहीं थे। इन को शिक्षित करने का पहला स्कूल रावलपिण्डी में दिसम्बर १८५६ में खोला गया था।

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने वाली प्रारम्भिक पाठशालाओं के अतिरिक्त तत्कालीन राजभाषा फारसी की शिक्षा देने के लिए प्रायः मस्जिदों के साथ मकतब होते थे। इनमें मौलवी बच्चों को फारसी पढ़ाया करते थे। उस समय अर्थकरी विद्या होने से हिन्दू छात्र भी इसे बड़ी संख्या में मौलवियों से पढ़ते थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने इसी प्रकार अक्षराभ्यास आरम्भ किया और आरम्भिक शिक्षा पूरी की थी, अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने मकतब का बड़ा सुन्दर तथा रोचक वर्णन किया है।[1]

(२) प्राचीन भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने वाले महाविद्यालय

मातृभाषा के माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा देने वाले विद्यालयों के अतिरिक्त उस समय संस्कृत, अरबी तथा फारसी के माध्यम से इन भाषाओं में विद्यमान उच्चतम साहित्य—व्याकरण, अलंकारशास्त्र, तर्कशास्त्र, दर्शन, आयुर्वेद आदि विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों का अध्यापन कराने वाले उच्च शिक्षा के अनेक केन्द्र थे। ये वर्तमान महाविद्यालयों के समकक्ष थे। संस्कृत भाषा में विद्यमान विभिन्न शास्त्रों को पढ़ाने वाले महाविद्यालय पाठशालायें कहलाती थीं और अरबी, फारसी की तालीम देने वाले मरकज मकतब और

---

1. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पटना पृ० ७-१०।

मदरसे कहलाते थे। संस्कृत की पाठशालायें तथा मदरसे हिन्दू और मुसलमानों के अलग-अलग महाविद्यालय थे, फिर भी इनकी कुछ विशेषतायें बड़ी समानता रखती थीं।

दोनों प्रकार की संस्थायें राजा-महाराजाओं, नवाबों, जागीरदारों, जमींदारों, धनी तथा श्रद्धालु नागरिकों से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता पर अवलम्बित थीं। दोनों में पढ़ाने वाले व्यक्ति उस समय के प्रसिद्ध विद्वान्, आचार्य और मौलवी हुआ करते थे। ये प्रायः उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं के लेखक भी होते थे, किन्तु इन्हें अध्यापन के लिए मासिक वृत्ति बहुत ही कम मिलती थी। दोनों प्रकार की संस्थाओं में शिक्षा सर्वथा निःशुल्क थी। इनमें पढ़ाने की कोई फीस नहीं ली जाती थी। अनेक संस्थाओं में विद्यार्थियों के भोजन, निवास आदि की भी निःशुल्क व्यवस्था होती थी। दोनों में प्राचीन काल तथा मध्य काल में लिखे गये, उच्च कोटि के ग्रन्थ इन्हीं भाषाओं के माध्यम से पढ़ाये जाते थे। संस्कृत पाठशालाओं में व्याकरण, साहित्य और अलंकार शास्त्र पढ़ाये जाने वाले प्रमुख विषय थे। अमरकोष भट्टि काव्य, माघ, नैषध और अभिज्ञान-शाकुन्तल बड़े लोकप्रिय थे। स्मृति साहित्य भी पढ़ाया जाता था। उसमें मिताक्षरा, दायभाग, दत्तक-मीमांसा का तथा पुराणों में भागवत का विशेष अध्ययन होता था। बंगाल में मध्य युग में विकसित नव्यन्याय का विषय बड़ी अभिरुचि से पढ़ा जाता था।

यह बात उल्लेखनीय है कि उस समय की पाठशालाओं में संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम साहित्य—वेद वेदांग का अध्ययन बिल्कुल लुप्त हो चुका था। व्याकरण में भी महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी के स्थान पर कलाप, लघुकौमुदी, सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थ अधिक पढ़ाये जाते थे। विलियम एडम के कथनानुसार उस समय बंगाल में अलंकार शास्त्र और तन्त्रों के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता था। ये शिक्षा केन्द्र प्रायः मन्दिरों और मस्जिदों में होते थे अथवा स्थानीय जमींदार, जागीरदार इनके लिए भवन-निर्माण कराया करते थे। इनमें छात्र बड़ी आयु में प्रवेश करते थे और बारह वर्ष अथवा जब तक चाहे अध्ययन करते रहते थे, क्योंकि इनमें न तो कोई निश्चित पाठ्यक्रम थे और न ही राज्य का इन संस्थाओं पर किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण था। ये शिक्षा केन्द्र धार्मिक भावनाओं से प्रेरित व्यक्तियों द्वारा निजी रूप से चलाये जाते थे।

संस्कृत विद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापक ब्राह्मण होते थे। इनमें पढ़ने वाले छात्र भी प्रायः ब्राह्मण ही होते थे। अन्य जातियों के छात्रों की संख्या बहुत कम होती थी। स्त्रियाँ तथा शूद्र संस्कृत तथा वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं समझे जाते थे। फारसी तथा अरबी मदरसों में पढ़ाने वाले मुदर्रिस प्रायः मुसलमान होते थे। कहीं-कहीं फारसी की शिक्षा हिन्दू अध्यापकों द्वारा भी दी जाती थी। फारसी पढ़ने वाले छात्रों में बड़ी संख्या हिन्दुओं की होती थी। एडम की रिपोर्ट के अनुसार बंगाल तथा बिहार के फारसी के स्कूलों में अधिकांश छात्र हिन्दू थे। दक्षिणी बिहार में फारसी पढ़ने वालों की संख्या १४२४ और अरबी पढ़ने वालों की संख्या ६२ थी। अरबी पढ़ने वालों में केवल दो हिन्दू और ६० मुसलमान थे, किन्तु फारसी पढ़ने वालों में ८६५ हिन्दू और ५५९ मुसलमान थे। हिन्दुओं में ७११ कायस्थ फारसी पढ़ रहे थे।[1]

---

१. नूरुल्ला तथा जे० पी० नायक द्वारा उद्धृत, हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इंडिया, पृ० ३७।

परम्परागत शिक्षा पद्धति के गुण-दोष—परम्परागत शिक्षा-संस्थाओं और प्राथमिक पाठशालाओं का सबसे बड़ा गुण यह था कि वे तत्कालीन स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप थीं, इस कारण अतीव लोकप्रिय थीं। उनकी जीवन्तता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे कई शताब्दियों की राजनीतिक उथल-पुथल और विदेशी आक्रमणों के संकटों का सामना करते हुए अपनी सत्ता बनाये रखने में समर्थ सिद्ध हुईं।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि इस शिक्षा प्रणाली ने इंग्लैण्ड की शिक्षा प्रणाली को प्रभावित किया और इंग्लैण्ड को साक्षर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन शिक्षा-संस्थाओं में यह पद्धति प्रचलित थी कि बड़ी कक्षाओं के छात्र छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। उस समय शिक्षकों की कमी होने के कारण मितव्यय की दृष्टि से इस पद्धति का विकास हुआ था। मद्रास प्रेसीडेंसी के एक ब्रिटिश पुरोहित डॉ० बैल सर्वप्रथम इस भारतीय पद्धति की ओर आकर्षित हुए और इसके भक्त बने। स्वदेश लौटने पर उन्होंने निर्धन लोगों को शिक्षा देने के लिए नये, सस्ते तथा प्रभावशाली साधन के रूप में इंग्लैण्ड में इस पद्धति को लोकप्रिय बनाया। इसे उस समय मद्रास की पद्धति अथवा कक्षानायक या मानीटोरियल पद्धति कहा जाता था। इंग्लैण्ड में १८०१ से १८४५ के बीच में इस पद्धति की सहायता से बड़े कम खर्च में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हुआ। इस बारे में एक शिक्षाशास्त्री ने सत्य ही लिखा है कि "विधि की यह विडम्बना थी कि भारत के स्थानीय विद्यालय इंग्लैण्ड में शिक्षा के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दें, जबकि वे भारत में जनता में शिक्षा-प्रसार के कार्य में सहायक सिद्ध नहीं हुए।"[1]

परम्परागत शिक्षा-संस्थाओं में कई दोष भी थे। सबसे बड़ा दोष स्त्रियों तथा शूद्र जातियों को शिक्षा से वंचित रखना था। कई शताब्दियों से भारत में यह धारणा सुदृढ़ हो चुकी थी कि नारियों तथा निम्न जातियों को शिक्षा पाने का अधिकार नहीं है। अतः उस समय शिक्षा का प्रसार सार्वभौम नहीं था, समाज के पिछड़े वर्ग इसका कोई लाभ नहीं उठा सकते थे। दूसरा दोष शिक्षा का दृष्टिकोण संकीर्ण और पाठ्यक्रम सीमित होना था। इसमें नवीन ज्ञान-विज्ञान का कोई स्थान नहीं था। सदियों पहले लिखे ग्रन्थों और उन पर बनाई गई टीकाओं में प्रवीणता पाना शिक्षा की इतिश्री समझा जाता था। इन ग्रन्थों में जिन विषयों का वर्णन था, वे अब अतीत की वस्तु बन चुके थे, वर्तमान काल की व्यावहारिक समस्याओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। फिर भी, शिक्षा-संस्थाएँ ऐसे प्राचीन ग्रन्थों तथा इनमें वर्णित काल्पनिक विषयों का ही अध्यापन कराती थीं। इनमें शब्दाडम्बर पर अधिक बल था। यह बात न्याय के उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी। उस समय न्याय दर्शन में इसके मूल तत्त्वों पर विचार न करके, विभिन्न परिभाषाओं की ऐसी बाल की खाल निकाली जाती थी कि सामान्य पाठक इनके अवच्छेदकाविछिन्न के शब्द जाल में ही उलझा रहता था। इसलिए महर्षि ने नव्य नैयायिकों की भाषा को काक भाषा कहा था। इस युग की शिक्षा पद्धति में तर्क और बुद्धि की उपेक्षा करते हुए

1. सैयद नूरुल्ला तथा जे० पी० नायक, ए हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इंडिया, पृ० ५०।

प्रमाणवाद पर बल दिया जाता था; यह छात्रों में संकीर्णता और अहम्मन्यता की भावना उत्पन्न करती थी। इस शिक्षा पद्धति में इहलोक की उपेक्षा थी और पारलौकिक विषयों पर बल दिया जाता था। बुद्धिपूर्वक विषय को समझने की अपेक्षा पुराने ग्रन्थों की तोता-रटन्त पर अधिक बल दिया जाता था। शिक्षा में ताड़न तथा कठोर दण्डों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। महर्षि ने अपनी शिक्षा पद्धति में इन दोषों को दूर करने पर बल दिया।

(३) अंग्रेजी की शिक्षा देने वाली संस्थाओं का श्रीगणेश

सामान्य रूप से थामस बेविंगटन मैकॉले (१८००-५९ ई०) को भारत में अंग्रेजी की शिक्षा का प्रवर्तक समझा जाता है, किन्तु यह ऐतिहासिक दृष्टि से यथार्थ नहीं है। इस देश में अंग्रेजी की शिक्षा का प्रारम्भ करने वाले और इसकी शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने वाले प्रबुद्ध एवं शिक्षित भारतीय थे। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश शासन की स्थापना होने के साथ ही, भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा के व्यापारिक, आर्थिक और सांस्कृतिक महत्त्व को अनुभव किया और वे अंग्रेजी पढ़ने का प्रयास करने लगे।

१८३३ में पार्लियामेण्ट द्वारा पास किये गये चार्टर की नवीन व्यवस्था के अनुसार लार्ड मैकॉले गवर्नर जनरल की परिषद् का कानूनी सदस्य बनकर भारत आये थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के पक्ष में अपना सुप्रसिद्ध नोट १८३५ में लिखा। किन्तु इससे ४६ वर्ष पहले हम बंगाल में भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ने के लिए अतीव उत्कंठित और उत्सुक पाते हैं। फ्रांस की सुप्रसिद्ध राज्य क्रान्ति के वर्ष १७८९ में कुछ बंगाली सज्जनों ने कलकत्ता गज़ट में यह अपील निकाली थी कि कोई यूरोपवासी बंगालियों के हितार्थ अंग्रेजी भाषा के एक व्याकरण तथा कोश की रचना करे ताकि वे उसकी सहायता से अंग्रेजी सीख सकें। यह अपील इस प्रकार थी—

> "विनम्रतापूर्वक हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि क्या कोई अंग्रेज सज्जन हम पर यह कृपा करेंगे कि वह एक ऐसे बंगाली व्याकरण और कोश का निर्माण करें जिसमें हमें बँगला भाषा के सब शब्द अंग्रेजी में मिल सकें। इसकी सहायता से हम ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपने आवेदन करने में और उनके आदेश समझने में समर्थ हो सकेंगे तथा हमारी भावी सन्तति सदैव इस कृपा का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती रहेगी।"[1]

इस अपील के शब्द उस समय भारतीयों में अंग्रेजी पढ़ने की प्रबल लालसा तथा उत्कट उत्कंठा को अभिव्यक्त करते हैं।

भारत में अंग्रेजी की शिक्षा देने वाले पहले स्कूल ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नहीं, अपितु भारतीयों द्वारा खोले गये। इनके बाद ईसाई मिशनरियों ने और सबसे अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अंग्रेजी पढ़ाने वाले स्कूलों की स्थापना की। उस समय जनता में अंग्रेजी पढ़ने की आकांक्षा कितनी प्रबल थी यह चार्ल्स ट्रेवेलियन के निम्न-लिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जायगी। "जनता में अंग्रेजी पढ़ने की जिज्ञासा पूर्ण रूप से

---

१. कलकत्ता गजट के चयन, २३ एप्रिल, १७८९, भाग-२, पृ० ४९७, यदुनाथ सरकार द्वारा इंडिया थ्रू दी एजेस, पृ० ६३ पर उद्धृत।

जागृत हो गयी है। यह उत्कंठा भारत के अधिकतम दूरवर्ती प्रदेशों में भी पाई जाती है। गंगा नदी में आने-जाने वाले स्टीम बोटों पर प्रायः भारतीय लड़के चढ़ जाते हैं और वे यहाँ अंग्रेजों से पैसों की नहीं, अपितु अंग्रेजी पुस्तकों की भीख माँगते हैं। कलकत्ता आने वाले कुछ अंग्रेज सज्जन इस बात पर आश्चर्यचकित हैं कि कुमारखाली (कलकत्ता से १२० मील उत्तर में) जैसे दूरवर्ती प्रदेशों में भी लड़के स्टीमर पर चढ़कर अंग्रेजों से इंगलिश पुस्तकों की भीख माँगते हैं…एक अंग्रेज सज्जन ने इन पुस्तकों के लोलुप भिखारियों को सन्तुष्ट करने के लिए एक निराला उपाय खोजा, उसने क्वार्टरली रिव्यू नामक पत्रिका के पन्नों को फाड़-फाड़ कर भारतीयों को देना शुरू किया।"[1]

भारतीयों द्वारा स्थापित अंग्रेजी की शिक्षण-संस्थाएँ— अंग्रेजी शिक्षा का महत्त्व अंग्रेजों से पहले भारतीयों ने अनुभव किया। ब्रिटिश शासक उस समय भारतीयों को संस्कृत, अरबी, फारसी, तथा पादरी लोक भाषाओं की शिक्षा देना चाहते थे। किन्तु १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही शिक्षित बंगाली अंग्रेजी भाषा के सांस्कृतिक महत्त्व को समझकर, उसके स्कूल स्थापित करने लगे थे। ये स्कूल सबसे पहले कलकत्ता और उसके आसपास के स्थानों में खोले गये। १८०० ई० में पहला स्कूल भवानीपुर में और दूसरा स्कूल १८१४ में चिनसुरा में स्थापित हुआ। बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में प्रमुख भाग लेने वाले हिन्दू कॉलिज की स्थापना २० जनवरी, १८१७ को की गई। इसके संस्थापक वैद्यनाथ मुखर्जी थे। उन्होंने कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सर हाइड ईस्ट के सहयोग से इसे स्थापित किया।[2] यह कॉलिज बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र था और इससे शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों ने अंग्रेजी के नये-नये स्कूल खोलने शुरू किये। ये सभी संस्थायें भारतीयों के निजी प्रयत्नों से स्थापित हुई थीं। इसमें सरकार का किसी प्रकार का कोई सहयोग नहीं था। इस प्रकार के निजी अंग्रेजी स्कूल स्थापित करने में राजा राममोहन राय ने तथा डेविड हेयर आदि विदेशी व्यक्तियों ने भाग लिया।

मिशनरियों द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाएँ—भारतीयों की भाँति ईसाई मिशनरियों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल स्थापित किये तथा इनके माध्यम से ईसाइयत के प्रचार और प्रसार के लिए प्रबल प्रयास किये। महर्षि दयानन्द सरस्वती के समय तक पादरियों द्वारा स्थापित ईसाइयों के मिशन स्कूल हिन्दुओं को ईसाई बनाने का प्रमुख केन्द्र बन चुके थे—ईसाई पादरियों ने भारतीय जनता में प्रचार करके बड़े पैमाने पर भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू कर दिया था। महर्षि ने उनके प्रचार को रोकने के लिए ईसाई पादरियों से अनेक शास्त्रार्थ किये। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास में उनके धर्मग्रन्थ बाइबल की समीक्षा की। मिशनरियों की शिक्षा-संस्थाओं का प्रतिकार करने के लिए आर्यसमाज ने अपनी शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं। महर्षि पर ईसाइयों के प्रचार का गहरा असर पड़ा। अतः भारत में ईसाई मिशनरियों

---

१. **चार्ल्स ट्रेवेलियन**, आन दी एजुकेशन ऑफ् दी पीपुल ऑफ् इंडिया, १८३६, पृ० १६७।

२. **रमेशचन्द्र मजूमदार**, दी ब्रिटिश पैरामाउन्सी एण्ड इंडियन रिनेसां, भाग २, पृ० ३३।

के प्रचार की पद्धति और शिक्षा-संस्थाओं के विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।[1] इस पृष्ठभूमि का ज्ञान होने पर ही महर्षि तथा आर्यसमाज के शिक्षा सम्बन्धी कार्य का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

आधुनिक युग में भारत में ईसाइयत का प्रवेश दो प्रमुख धाराओं के रूप में हुआ। पहली धारा रोम के पोप को अपना सर्वोच्च धर्मगुरु मानने वाली रोमन कैथोलिक ईसाइयत की थी। इसे भारत में लाने का श्रेय पुर्तगालियों को था। ये १६वीं सदी में अपने साथ भारत के पश्चिमी तट पर इस मत को लाये, इन्हें भारत में इसका प्रसार करने का अत्यधिक उत्साह था और इसके लिए उन्होंने राजनीतिक शक्ति, जोर-जबरदस्ती आदि किसी भी उपाय का अवलम्बन करने में कोई संकोच नहीं किया।

ईसाइयत की दूसरी धारा पोप की प्रभुता और सत्ता को न स्वीकार करने वाले प्रोटेस्टैंट मिशनरियों की थी। प्रोटेस्टैंट मत इंग्लैण्ड, हालैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में लूथर (१४८३-१५४६ ई०) द्वारा धर्म सुधार आन्दोलन शुरू करने के बाद प्रबल हुआ। इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी आरम्भ में एक विशुद्ध व्यापारिक संस्था थी। हालैंड और फ्रांस की कम्पनियाँ भी इस प्रकार की थीं। ईसाइयत के प्रचार में उन्हें पुर्तगालियों की भाँति कोई दिलचस्पी नहीं थी। पुर्तगाली साम्राज्य के पतन का एक कारण भारतीयों पर धार्मिक अत्याचार समझा जाता था, अतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में न केवल ईसाइयत के प्रचार में कोई अभिरुचि ली, अपितु १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपने प्रदेश में ईसाई मिशनरियों के आने तथा प्रचार करने पर भी पाबन्दी लगा दी।

अतः भारत में प्रोटेस्टैंट ईसाइयत की विचारधारा को लाने वाले न तो अंग्रेज थे और न फ्रेंच या डच। प्रोटेस्टैंट धर्म के पहले मिशनरी भारत में डेनमार्क ने भेजे। उन दिनों दक्षिण भारत में डेनमार्क के प्रभुत्व में ट्रांक्वेबार नाम की छोटी-सी बस्ती थी और उत्तरी भारत में कलकत्ता के निकट सिरामपुर की बस्ती पर भी उनका अधिकार था। भारत में प्रोटेस्टैंट ईसाइयत के पहले केन्द्र यहीं बने। आरम्भिक ईसाई प्रचारकों के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(क) १७०६ से १७९२ तक मद्रास में डेनमार्क के मिशनरियों का कार्य, (ख) १७९२ से १८१३ तक सिरामपुर में विलियम केरी और उसके साथियों का कार्य।

(क) मद्रास में मिशनरियों की शिक्षण-संस्थाएँ—डेनमार्क से भारत आने वाला पहला प्रोटेस्टैंट मिशनरी जीगनबाल्ग (Jeegan Balg) था। यह १७०६ में मद्रास प्रान्त में डेनिश लोगों की बस्ती ट्रांक्वेबार में पहुँचा। यह स्थान तमिलनाडु प्रदेश में

---

१. भारत में ईसाई मिशनों के प्रचार एवं शिक्षा कार्य के लिए देखिये—
जें० ए० रिचर, ए हिस्टरी ऑफ् मिशन्स इन इंडिया, १९०८।
आर० जी० विल्डर, मिशन स्कूल्स इन इंडिया।
डबल्यू० एच० शार्प, सिलेकशन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स।
एन० एन० लॉ, प्रोमोशन ऑफ् लर्निंग इन इंडिया बाई अर्ली यूरोपियन सैटलर्स।
शेरिंग एम० ए०, दी हिस्टरी ऑफ् प्रोटेस्टैण्ट मिशन्स इन इंडिया, लन्दन, १८८४।
पी० थामस, क्रिश्चियेनिटी एण्ड क्रिश्चियन्स इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान, लन्दन १९५४।

तंजौर से ५० मील उत्तर-पूर्व में है। उस समय यह बड़ा महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह था। १६१६ से इस पर डेनमार्क का अधिकार था, अतः पहले डेन मिशनरी ने इस स्थान को अपने कार्य के लिए उपयुक्त समझा। उसने तथा उसके साथियों ने शीघ्र ही इस प्रदेश में प्रचलित तमिल भाषा का अध्ययन किया और १७१३ में यहाँ तमिल भाषा की पुस्तकें छापने के लिए एक प्रेस स्थापित किया। १७१६ में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पहले एक केन्द्र खोला गया और अगले वर्ष मद्रास में इन मिशनरियों ने दो स्कूल खोले, एक पुर्तगाली बच्चों के लिए था और दूसरा तमिल भाषा भाषी बच्चों के लिए। यह सम्भवतः मिशनरियों द्वारा खोला जाने वाला पहला स्कूल था।

१७१६ में जीगन बाल्ग का देहावसान हो गया था, किन्तु उसका कार्य अन्य योग्य मिशनरियों ने जारी रखा। इनमें ग्रण्डलर, कीर्नाण्डर और श्वार्ज़ के नाम उल्लेखनीय हैं। १७४२ में कीर्नाण्डर ने मद्रास के फोर्ट सैण्ट डेविड के निकट भारतीयों तथा एंग्लो इण्डियनों के लिए कुछ स्कूल खोले। ये इतने प्रसिद्ध हुए कि राबर्ट क्लाइव ने कलकत्ता में ऐसे स्कूल खोलने के लिए कीर्नाण्डर को १७५८ में वहाँ आने का निमन्त्रण दिया और इसने अपना शेष जीवन बंगाल में शिक्षा का प्रसार करने में लगाया।

श्वार्ज़ को मद्रास में शिक्षा-प्रसार का अग्रदूत माना जाता है। उसने १७७२ में त्रिचनापल्ली में और मैसूर के हैदरअली की आर्थिक सहायता से तंजौर में एक इंगलिश चैरिटी स्कूल स्थापित किया। तंजौर के ब्रिटिश रेजिडेण्ट जॉन सुलीवैन की सहायता से उसने १७८५ में भारतीय बच्चों को अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए तीन स्कूल तंजौर, रामनाड और शिवगंगा में स्थापित किये। इन्हें भारत में भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिए बनाये गये सबसे पुराने स्कूल माना जाता है। इन्हें स्थापित करने में ब्रिटिश रेजिडेण्ट सुलीवैन का यह उद्देश्य था कि इनमें शिक्षा पाने से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी और भारतीय एक-दूसरे को समझने लगेंगे, उन्हें एक-दूसरे के साथ विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ी सुविधा हो जायेगी।[1] इन स्कूलों के बारे में एक उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि ये ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित किये गये, फिर भी इनमें ईसाइयत को खुले तौर से नहीं पढ़ाया जाता था; न ही विद्यार्थियों के मनों पर ईसाई धर्म के सिद्धान्तों की छाप डालने के लिए छलपूर्ण तरीकों का इस्तेमाल किया जाता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक मण्डल को इन स्कूलों की योजना बहुत पसन्द आई और उसने इनके लिए प्रति वर्ष ढाई सौ पगोडा नामक सिक्के देने के आदेश दिये। उनका यह विश्वास था कि "इस प्रकार के स्कूलों से भारतीयों तथा यूरोपियन लोगों में सम्बन्ध बढ़ेंगे। वे एक-दूसरे के दृष्टिकोण को अधिक अच्छी तरह समझेंगे, परस्पर विश्वास करने लगेंगे। भारतीय नवीन ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठायेंगे, वे ब्रिटिश राज्य के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव रखेंगे और उन्हें हमारी सरकार की ऐसी विशेषताओं का पता चलेगा कि जो मानवजाति के सुख और कल्याण को बढ़ाने वाली हैं।"[2]

---

1. एन० एन० ला, प्रोमोशन ऑफ् लर्निंग इन इंडिया बाई अर्ली यूरोपियन सैटलर्स, पृ० ६५।
2. डब्ल्यू० एच० शार्प, सिलैक्शन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, खण्ड १, पृ० ३-४।

मिशनरियों के इन आरम्भिक स्कूलों की कई विशेषतायें उल्लेखनीय हैं। इनमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य सब विषयों की शिक्षा मातृभाषा तामिल के माध्यम से दी जाती थी। अंग्रेजी पढ़ाने का यह उद्देश्य था कि भारतीय अंग्रेजों के साथ बातचीत कर सकें और दोनों में विचारों का आदान-प्रदान हो सके। इन स्कूलों में न केवल यूरोपियन और एंग्लो-इण्डियन बच्चे पढ़ते थे, अपितु भारतीय बच्चों को भी शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों को चलाने वाले मिशनरियों को भारतीय भाषाओं में पुस्तकें छापने के लिए प्रेस स्थापित करने का तथा भारतीय भाषाओं के पहले व्याकरण, कोश तथा अन्य स्कूली पुस्तकें प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है। ये स्कूल १९वीं शती के स्कूलों से इस बात में भिन्न थे कि ये खुल्लमखुल्ला ईसाइयत का प्रचार नहीं करते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति मिशनरियों द्वारा स्थापित ऐसे स्कूलों को आर्थिक सहायता देने की थी। १८वीं शताब्दी के पहले तीन चरणों में कम्पनी इन स्कूलों की सहायता विभिन्न प्रकार से करती रही। मद्रास के फोर्ट सैण्ट डेविड में विद्यमान कम्पनी ने अपने कर्मचारियों को इन स्कूलों में हिसाब-किताब रखने का काम करने की अनुमति दी, स्कूल की इमारतों की मरम्मत करवाई। कम्पनी की इस नीति को शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए शुभचिन्तक संरक्षण (बैनीवोलैण्ट प्रोटैक्शन) की नीति कहा जाता है।[1]

(ख) सिरामपुर में केरी तथा उसके सहयोगी मिशनरियों का काम—हुगली नदी के दायें किनारे पर कलकत्ता से १३ मील उत्तर में सिरामपुर की छोटी-सी बस्ती है। इस पर डेनमार्क का अधिकार १७५५ से १८४५ तक था। यहाँ विलियम केरी तथा उनके साथियों ने दक्षिण भारत के मिशनरियों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया, यद्यपि उन्हें ऐसा करते हुए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। यदि उन्हें सिरामपुर के डेन गवर्नर का बहुमूल्य संरक्षण न प्राप्त होता तो वे शायद इस कार्य को कभी न कर पाते।

विलियम केरी (William Carey) इंग्लैण्ड में मोची का काम करते थे, किन्तु बचपन से ही उनमें ईसाई धर्म का विदेशों में प्रसार करने का प्रबल उत्साह था। १७९२ ई० में वे विदेशों में ईसाइयत का प्रचार करने वाली बैप्टिस्ट मिशनरी सोसायटी के सदस्य बने। इसका उद्देश्य गैरईसाई विधर्मी लोगों में सुसमाचार या इंजील (न्यू टेस्टामेण्ट में ईसा के जीवन का वर्णन करने वाली पहली चार पुस्तकों) का प्रचार करना था। उन दिनों इंग्लैण्ड में विदेशों में इंजील के प्रचार का एक प्रबल आन्दोलन (Evangelical movement) चल रहा था। एशिया, अफ्रीका, अमरीका के विभिन्न देशों में ईसाइयत का प्रचार करने की दृष्टि से इस समय १४ ब्रिटिश मिशनरी सोसायटियाँ स्थापित हुईं। इनमें पहली संस्था बैप्टिस्ट मिशनरी सोसायटी थी। विलियम केरी १७९२ में इसका पहला प्रचारक सदस्य (मिशनरी) बना, उसने अपने आप बंगाल में ईसाइयत का प्रचार करने के लिए अपनी सेवायें प्रस्तुत कीं। भारत आने से पहले वह एक अन्य २३ वर्षीय नवयुवक विलियम वार्ड को मिला। वह उन दिनों प्रेस का काम कर रहा था। केरी ने उसे कहा—"मुझे आशा है कि बंगाल जाकर भगवान् की कृपा से मैं

1. एन० एन० ला, प्रोमोशन ऑफ़ लर्निंग इन इंडिया बाई अर्ली यूरोपियन सैटलर्स, पृ० ३३।

चार-पाँच वर्ष में बाइबल के अनुवाद का कार्य पूरा कर लूँगा, उस समय तुम बंगाल आना और इसको छापने का कार्य पूरा करना।" वार्ड ने केरी की बात गाँठ बाँध ली।

अनेक आर्थिक तथा राजनीतिक विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए केरी १७९३ में कलकत्ता पहुँचा। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने प्रदेश में ईसाइयों को प्रचार की अनुमति नहीं देती थी, अतः उसके लिए कलकत्ता में मिशनरी कार्य करना सम्भव नहीं था। वह उत्तरी बंगाल में माल्दा जिले में नील का काम करने वाले एक पादरी की कोठी में चला गया। वहाँ वह कोठी के कार्य का निरीक्षक बना। इस काम के साथ-साथ उसने अपना खाली समय पहले बँगला भाषा सीखने में और उसके बाद न्यू टैस्टामेण्ट का बँगला अनुवाद करने में और नील की खेती करने वाले ग्रामवासियों में ईसाइयत का प्रचार करने में लगाया। १७९७ तक उसने न्यू टैस्टामेण्ट का बँगला अनुवाद पूरा कर दिया।

त्रिमूर्ति—१७९९ में केरी का पुराना परिचित साथी वार्ड मार्श के साथ इंग्लैण्ड से कलकत्ता पहुँचा। इन दोनों का विचार उत्तरी बंगाल में केरी के साथ ईसाइयत के प्रचार का कार्य करने का था। किन्तु उन्होंने यह देखा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी उन्हें इस कार्य की अनुमति नहीं देगी। अतः उन्होंने सिरामपुर की डेनिश बस्ती में रहकर अपना काम करने का निश्चय किया और केरी को भी वहाँ आने का निमन्त्रण दिया। यहाँ डेन गवर्नर ने इनको सब प्रकार का संरक्षण और सहायता प्रदान की। इस प्रकार सिरामपुर में केरी, वार्ड और मार्श नामक तीन सुप्रसिद्ध मिशनरियों की त्रिमूर्ति (Serampur Trio) का कार्य शुरू हुआ। ये तीनों एक-दूसरे के पूरक और सहयोगी थे। केरी महान् प्रचारक, भाषाशास्त्री और अनुवादक था। वार्ड मुद्रण कला में पारंगत था और मार्श अध्यापन कला में निष्णात था। इस त्रिमूर्ति ने यहाँ एक मिशन प्रेस स्थापित किया। कई भाषाओं में बाइबल का, विशेषतः न्यू टैस्टामैण्ट की पहली चार पुस्तकों (इंजील) का अनुवाद, मुद्रण तथा प्रकाशन किया। ५ मार्च, १८०१ को केरी ने साढ़े सात वर्ष के परिश्रम के बाद बँगला में न्यू टैस्टामेण्ट का अनुवाद प्रकाशित किया।

१८०१ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा कलकत्ता में कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषायें सिखाने के उद्देश्य से खोले गये फोर्ट विलियम कॉलेज में केरी को बँगला तथा संस्कृत का अध्यापक नियुक्त किया। इसमें फारसी, उर्दू, संस्कृत, बँगला, हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ पढ़ाने और जानने वाले अनेक पण्डित थे। केरी ने इनकी सहायता से विभिन्न भारतीय भाषाओं में बाइबल के अनुवाद छापने का निश्चय किया। १८०३ में उसने लिखा था कि—"यदि मुझे १५ वर्ष का समय मिल जाये तो मैं सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में बाइबल को प्रकाशित कर दूँगा।" वस्तुतः उसे इस काम के लिए अगले ३० वर्ष मिले। उसने सबसे पहले बाइबल का संस्कृत में अनुवाद करने का निश्चय दो कारणों से प्रेरित होकर किया। संस्कृत को भारतीय जनता में देववाणी का अतीव गौरवास्पद स्थान प्राप्त था, अतः इसमें लिखी पुस्तकों को बड़े सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था और प्रामाणिक समझा जाता था। इस भाषा में बाइबल छप जाने पर भारत के शिक्षित वर्ग में उसके प्रचार की अधिक सम्भावना थी। दूसरा कारण यह था कि उन दिनों संस्कृत के अच्छे ज्ञाता भारतीय भाषाओं के भी जानकार होते थे। इनकी सहायता से संस्कृत से भारतीय भाषाओं में बाइबल का अनुवाद अधिक सुगमता से और कम समय में करवाया जा सकता था। केरी ने १८०८ में बाइबल का पहला संस्कृत

भाषान्तर प्रकाशित किया।

सिरामपुर की त्रिमूर्ति ने १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उसका मूल्यांकन करते हुए शेरिंग ने लिखा है कि "विश्व के किसी अन्य देश में और ईसाइयत के इतिहास के किसी अन्य युग में ईसाई धर्मग्रन्थों का उनकी मूल भाषा से इतनी अधिक भाषाओं में अनुवाद करने में कभी भी इतना अधिक पुरुषार्थ नहीं किया गया, जितना वर्तमान शताब्दी के पहले १० वर्षों में कलकत्ता और सिरामपुर के मुट्ठीभर निष्ठावान् व्यक्तियों ने किया। इस अल्प अवधि में बाइबल के कुछ अंश, विशेषतः न्यू टैस्टामैण्ट की पहली चार पुस्तकें, ३१ भारतीय भाषाओं में अनूदित, मुद्रित और प्रकाशित हुईं।"[1]

१८३३ में केरी की मृत्यु से एक वर्ष पूर्व बाइबल का ३४ भाषाओं में अनुवाद हो चुका था। सम्पूर्ण बाइबल बँगला, उड़िया, हिन्दी, मराठी, संस्कृत और असमिया भाषाओं में उपलब्ध थी और न्यू टैस्टामैण्ट इन भाषाओं के अतिरिक्त तेलगू, पश्तो, कश्मीरी, खासी, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध था। सिरामपुर की त्रिमूर्ति ने इन अनुवादों के अतिरिक्त सिरामपुर और कलकत्ता में लड़के-लड़कियों के कुछ स्कूल खोले।

सिरामपुर के मिशनरियों को एक बार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संघर्ष करना पड़ा। १८०८ में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के प्रति सम्बोधन (एड्रेसिज टू हिन्दूज एण्ड मोहमडन्स) नामक लघु पुस्तिकाएँ अपने मिशन प्रेस में छापीं। इनमें दोनों धर्मों पर ऐसे आक्षेप किये गये थे, जिनसे हिन्दुओं और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को बड़ी ठेस पहुँचती थी। अतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने प्रदेश में इन पुस्तकों पर पाबन्दी लगा दी; वह इन्हें छापने वाले मिशनरियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाई करना चाहती थी। उसने यह आदेश दिया कि मिशन प्रेस को सिरामपुर से कलकत्ता लाया जाय ताकि उस पर कम्पनी के अधिकारियों का समुचित नियन्त्रण बना रहे, भविष्य में उसमें हिन्दुओं तथा मुसलमानों के दिलों को दुखाने वाली सामग्री न छप सके। ऐसा होने पर मिशनरियों का कार्य बिल्कुल ठप्प हो जाता। ऐसे आड़े समय में डेन गवर्नर ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और इसके परिणामस्वरूप कम्पनी द्वारा यह आदेश वापिस ले लिया गया और इन मिशनरियों को यह आदेश दिया गया कि वे कम्पनी के प्रदेशों में जिन पुस्तकों का वितरण करना चाहते हों, उनको पहले कम्पनी के अधिकारियों को प्रस्तुत करें और उनकी अनुमति मिलने पर ही इन पुस्तकों का ब्रिटिश प्रदेशों में प्रचार तथा प्रसार किया जाय। इससे मिशनरियों के प्रचार-कार्य में बड़ी बाधा उत्पन्न हो गई, फिर भी वे अपनी पुस्तकों के मुद्रण तथा बाइबल के अनुवाद का कार्य करते रहे। इस प्रसंग में इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ईसाई होते हुए भी अपने प्रदेश में मिशनरियों द्वारा ईसाइयत के प्रचार की उग्र विरोधी क्यों थी।

(४) ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार का विरोध और उसके कारण

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में हुई थी। पहले १५० वर्ष तक यह विशुद्ध व्यापारिक संस्था थी और अपने यूरोपियन प्रतिद्वन्द्वी डच तथा फ्रेंच कम्पनियों के

---

१. एम० ए० शेरिंग, दी हिस्टरी ऑफ् प्रोटेस्टेण्ट मिशन्स इन इण्डिया, पृ० ७५।

साथ संघर्ष में लगी रही। १७६३ में ये संघर्ष समाप्त हो गये। पलाशी की लड़ाई (१७५७) और मुगल सम्राट् शाह आलम से बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने (१७६५) के बाद भारत में कम्पनी की राजनीतिक सत्ता की सुदृढ़ नींव पड़ी। अब तक कम्पनी ने ईसाई प्रचारकों पर किसी प्रकार की पाबन्दी नहीं लगाई थी। १६९८ के कम्पनी के चार्टर में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक मिशनरी धारा (Missionary Clause) जोड़ी थी। इसके अनुसार कम्पनी को यह आदेश दिया गया था कि वह भारत में ईसाइयों के धार्मिक कार्य सम्पन्न कराने वाले पुरोहितों को अपनी कोठियों में रखने की व्यवस्था करें और पाँच सौ टन या इससे अधिक भार वाले कम्पनी के प्रत्येक जहाज में एक ईसाई पुरोहित (चैपलेन) अवश्य होना चाहिए, ये पुरोहित पुर्तगाली तथा भारतीय भाषाओं को सीखें और प्रोटेस्टेण्ट धर्म का हिन्दुओं में प्रचार करें। उस समय तक भारत में रोमन कैथोलिकों की संख्या अधिक थी और एन० एन० ला की सम्मति में इसे कम करने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी।[1] इसमें भारतीयों को शिक्षा देने और उनके लिए स्कूल खोलने की भी बात कही गई थी।

किन्तु १७६५ के बाद भारत में राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर लेने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। अपने नवीन राज्य को सुस्थिर बनाये रखने के लिए कम्पनी के अधिकारियों को भारतवासियों के धार्मिक मामलों में तटस्थता की नीति का कठोरतापूर्वक पालन करना अधिक आवश्यक प्रतीत हुआ। १८०६ ई० में वेल्लोर के सिपाही विद्रोह जैसी घटनाओं ने इस दृष्टिकोण को अधिक पुष्ट बनाया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने प्रदेश में ईसाइयत के प्रचार की उग्र विरोधी हो गई। उसने ईसाई मिशनरियों को अपने प्रदेश से बाहर रखने की नीति अपनाई। इस नवीन नीति का पोषण करने वाले निम्नलिखित कारण थे—

(क) **राजनीतिक कारण**—बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी और शासन सत्ता सँभालने के साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए धार्मिक तटस्थता की नीति अपनाना श्रेयस्कर समझा। उन्होंने इस बात को अच्छी तरह से अनुभव कर लिया कि उन्हें यदि भारत में अपना शासन सुदृढ़ बनाना है तो हिन्दुओं और मुसलमानों को नाराज या असन्तुष्ट करने वाले कार्यों से न केवल बचना चाहिये, अपितु उनका सद्भाव प्राप्त करने के लिए उनके धर्मों को प्रोत्साहन भी देना चाहिये। इस कारण हिन्दू तथा मुसलिम धर्मों पर भद्दे आक्षेप करने वाले ईसाई प्रचारकों के कार्य को वे किसी भी प्रकार प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे, क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि इससे हिन्दू और मुसलमान उनके साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उतारू हो जायेंगे। उनका यह विचार था कि यदि शासन की ओर से ईसाइयत के प्रचार का समर्थन किया गया तो पुर्तगालियों की भाँति उन्हें इसका भीषण दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा। पुर्तगालियों ने धर्म-प्रचार को प्रबल राजकीय सहायता प्रदान की थी। उनके शासन में भारतीयों को बलपूर्वक ईसाई बनाया गया था, अतः भारतीय उनसे घृणा करने लगे थे, उनके कट्टर विरोधी बन गये थे। पुर्तगालियों के साम्राज्य का शीघ्र ही पतन हो

---

१. एन० एन० ला, प्रोमोशन ऑफ् लर्निंग इन इण्डिया बाई अर्ली यूरोपियन सैटलर्स, पृ० ५।

गया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी इस गलती को नहीं करना चाहते थे।

उस समय समझदार अंग्रेज इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि भारत में ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता का प्रमुख आधारस्तम्भ भारतीय सेना है, उसमें हिन्दू और मुसलमान सैनिक हैं। इनको सन्तुष्ट रखकर ही उनका साम्राज्य सुदृढ़ बना रह सकता है। मार्टिन जैसे पादरी हिन्दू मन्दिरों को नरक कहते थे, हिन्दुओं को अफ्रीका की नरभक्षी जातियों से कुछ बेहतर बताते थे। इनके देवी-देवताओं को गालियाँ देते थे। उनके प्रचार के खतरे को न केवल ब्रिटिश शासक, अपितु ब्रिटिश व्यापारी भी अच्छी तरह समझते थे। चाय के एक ब्रिटिश व्यापारी मिस्टर ट्वाईनिंग ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष को इस बारे में लिखा था—

"जब तक हम भारत का शासन ईसाइयत की मृदु और सहिष्णुतापूर्ण भावना से करेंगे, तब तक हम इसका शासन आसानी से कर सकेंगे। किन्तु यदि कभी ऐसा दुर्दिन आया और इस देश में हमने धार्मिक नवीकरण में ईसाइयों की प्रचार की पद्धति अपनाई तो हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक भीषण रोष और असन्तोष फैल जाएगा और पाँच करोड़ व्यक्तियों के हथियार हमें विश्व के उस भाग से उतनी ही आसानी से दूर फेंक देंगे, जैसे मरुस्थल में तूफानी हवा रेत को दूर-दूर तक फेंक देती है।"[१]

(ख) **भारतीय अंग्रेजों का अनैतिक जीवन**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी साम्राज्य की सुरक्षा के अतिरिक्त एक अन्य कारण से भी ईसाई प्रचारकों के विरोधी थे। उन दिनों कम्पनी के कर्मचारियों का एकमात्र लक्ष्य मुनाफा कमाना था। इसके लिए वे नैतिक और अनैतिक साधनों को अपनाने में कोई संकोच नहीं करते थे। ईसाई पादरी इसके कड़े आलोचक थे। अत: कम्पनी के अधिकारी उनकी आलोचना करने वाले पादरियों का भारत में रहना अवांछनीय समझते थे। दुर्भाग्यवश उन दिनों अंग्रेज भारत में नैतिक दृष्टि से अतीव निन्दनीय जीवन बिताते थे। १७०६ में भारत आने वाले पहले प्रोटेस्टैण्ट ईसाई मिशनरी डेन्मार्क के जीगन बाल्ग ने लिखा था कि "भारत में ईसाइयों के तौर-तरीके बहुत ही गिरे हुए हैं। वे शराबी, कामुक, गालियाँ देने वाले, ठगने और धोखा देने वाले हैं। उनका जीवन इतना अनैतिक है कि उससे भारत में किसी को ईसाई बनने की प्रेरणा नहीं मिल सकती है।"[२] रिचर ने इस समय के कम्पनी के अधिकारियों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "इस समय अंग्रेज अधिकारियों ने ईसाई नैतिकता के सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी थी। वारेन हेस्टिंग्ज जैसे गवर्नर जनरल को और उसके प्रबल प्रतिस्पर्धी फिलिप फ्रांसिस को खुले रूप में व्यभिचारपूर्ण जीवन बिताने में कोई शर्म नहीं आती थी। ईसाई चर्च के साथ उनका केवल मात्र यही सम्बन्ध था कि वे साल में एक बार क्रिसमस या ईस्टर के अवसर पर चर्च में मनाये जाने वाले समारोह में सम्मिलित होते थे।"[३]

उन दिनों अंग्रेजों की बस्तियाँ भ्रष्टाचार, जुआ, शराब, हिंसा और अनैतिकता की

---

१. पी० थामस, क्रिश्चियन्स एण्ड क्रिश्चिएनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ० १७८।

२. रमेशचन्द्र मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग २, पृ० १५०।

३. रिचर, हिस्टरी ऑफ् मिशन्स इन इण्डिया, पृ० १३२।

केन्द्र हुआ करती थीं। टेरी ने इस स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए लिखा था कि "यह अत्यधिक दुखःपूर्ण और भयंकर बात है कि इस समय अपने को ईसाई कहने वाले व्यक्ति अपने नैतिक आचार की शिथिलता से ईसायत को बहुत अधिक बदनाम कर रहे हैं। मैंने बंदरगाहों में रहने वाले भारतीयों के मुख से हमारे जहाज आने पर टूटी-फूटी इंग्लिश में उन्हें यह कहते हुए सुना है कि ईसाइयों का धर्म शैतान का मजहब है। ईसाई पियक्कड़ होते हैं, सब गलत बातें करते हैं। एक दूसरे को गाली देते हैं और मारपीट करते हैं।"[1]

इस समय भारत में खूब पैसा कमाने वाले अंग्रेज यहाँ बड़े ठाठ-बाठ से भारतीय नवाबों जैसे रहते थे। भारतीय नवाब अपने अन्तःपुर में जिस प्रकार अनेक पत्नियाँ और रखैलें रख कर अनैतिक जीवन विताते थे, उसी का अनुसरण अंग्रेज किया करते थे। अपने घर पर आने वाले अतिथि के स्वागत के लिए वे द्वार पर अनेक नर्तकियाँ और दासियाँ भेजते थे। उन दिनों भारत आने वाले अंग्रेज अपने साथ परिवार नहीं लाते थे, इसलिए भारत में यूरोपियन स्त्रियों की बड़ी कमी थी। इसकी पूर्ति अंग्रेज भारतीय स्त्रियों को रखैल रख कर पूरा किया करते थे। एक बार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस बुराई को रोकने के लिए इंग्लैण्ड से एक जहाज भरकर स्त्रियाँ मँगवायीं, किन्तु यहाँ उनकी माँग इतनी अधिक थी कि उन्हें वैवाहिक जीवन के स्थान पर वेश्यावृत्ति अधिक लाभदायक प्रतीत हुई। कुछ समय बाद जब ये स्त्रियाँ अपना रूप और धन लुटा चुकीं तो कम्पनी से उन्होंने जीवनयापन के लिए वृत्ति माँगी। कम्पनी को यह परीक्षण बहुत मँहगा पड़ा और उसने दुबारा इसे कभी नहीं किया।[2]

उन दिनों अंग्रेजों में आचारहीनता इतनी अधिक फैली हुई थी कि ईसाई पादरी उनका जीवन नैतिक दृष्टि से सुधारने में असमर्थ थे। एक मनोरंजक घटना से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध पादरी श्वार्त्ज का एक मित्र हिन्दू था। इस पादरी ने जब अपने मित्र को एक नर्तकी के साथ देखा तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने मित्र को उपदेश देते हुए कहा—"ऐसी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखना महापाप है, इनके साथ नहीं रहना चाहिये। यदि तुम ऐसा करोगे तो स्वर्ग में प्रवेश के अधिकारी नहीं होगे।" इस पर नर्तकी ने फौरन उत्तर दिया कि "इस दशा में तो शायद ही कोई फिरंगी स्वर्ग में प्रवेश पा सके।" वह उनके आचार को अच्छी तरह जानती थी। इस पर श्वार्त्ज का सिर शर्म से झुक गया।[3]

ईसाई मिशनरी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और कर्मचारियों के विलासी, लम्पट तथा व्यभिचारपूर्ण जीवन की कठोर निन्दा करते थे। अतः ऐसे आलोचकों को अपने प्रदेश में रखना कम्पनी के कर्मचारियों को बड़ा खतरनाक लगता था। ब्रिटिश प्रदेश में इनकी उपस्थिति उनके लिए असह्य थी।

(ग) **हिन्दू सभ्यता की उत्कृष्टता में विश्वास**—एक अन्य कारण यह भी था कि इस समय जिन अंग्रेजों ने संस्कृत और अरबी के साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था, वे पूर्वी देशों के धर्म और वाङ्मय पर मुग्ध हो गये थे, उन्होंने इनकी सराहना में अनेक

---

१. पी० थामस, पूर्वोक्त पुस्तक।

२. पी० थामस, पूर्वोक्त पुस्तक।

३. वही, पृ० १५८-५९।

लेख लिखे थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हिन्दुओं का दर्शन और धर्म इतना ऊँचा है कि उन्हें ईसाइयत की कोई आवश्यकता नहीं है। सर हेनरी माण्टगोमरी ने इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हुए यह घोषणा की थी कि—"ईसाइयत हिन्दू धर्म को कुछ भी नहीं सिखा सकती। किसी ईसाई प्रचारक ने आज तक किसी भारतीय को अच्छा ईसाई नहीं बनाया है।" हिन्दुओं को ईसाई बनाकर उनकी आत्मा का उद्धार करने वालों को चेतावनी देते हुए उसने कहा था कि "वह भारत में अपने सात हजार देशवासियों को बचाने के लिए अधिक उत्सुक है और वह हिन्दुओं को ईसाई बनाकर उनकी आत्मा की रक्षा करने के लिए उत्सुक नहीं है।"[1]

मार्श नामक एक वकील ने मद्रास में कई वर्ष रहने के बाद यह अनुभव किया कि हिन्दुओं की सभ्यता इतनी उत्कृष्ट है कि उनमें ईसाइयत का प्रचार करने वाले पादरियों को भेजने की कोई जरूरत नहीं है। उसने इस तथ्य को बड़े भावपूर्ण शब्दों में प्रतिपादित करते हुए कहा था—"वस्तुत: जब मैं इस देश की वर्तमान स्थिति अथवा प्राचीन गौरव की ओर दृष्टिपात करता हूँ, जब मैं उसके भवनों तथा विस्तीर्ण जलाशयों की भव्यता को देखता हूँ जो भारी व्यय से बनाये गये थे, जिन्होंने देश को सश्य श्यामल और उर्वर बनाया है, जब उनके मन्दिरों की ठोस एवं अलंकृत वास्तुकला को देखता हूँ, उसकी कारीगरी की वस्तुओं के कमाल और अद्भुत वस्तुओं को देखता हूँ, उसके दार्शनिकों, स्मृतिकारों, नीति एवं शास्त्रकारों की ओर देखता हूँ, परिवारों के शान्त, सामंजस्यपूर्ण जीवन तथा प्रसन्न और सुव्यवस्थित समाज को तथा धर्म और नैतिकता के उत्कृष्ट प्रभाव को देखता हूँ तो मुझे इस बात पर आश्चर्य और दु:ख होता है कि हम ऐसे व्यक्तियों को सभ्य तथा ईसाई बनाने के लिए अपने पादरी भेजकर उनकी उन प्राचीन संस्थाओं में विक्षोभ और विकार पैदा करना चाहते हैं जो अबतक भगवान् द्वारा उन्हें सद्गुणी और सुखी बनाने का साधन बनी रही हैं।"[2]

(घ) **संकुचित दृष्टिकोण**—मिशनरियों के विरोध का एक अन्य कारण रिचर के मतानुसार कम्पनी के अधिकारियों का संकीर्ण दृष्टिकोण था। वे कम्पनी की सेवा न करने वाले और उसका पासपोर्ट न रखने वाले किसी भी यूरोपियन को ब्रिटिश प्रदेश में नहीं रखना चाहते थे, क्योंकि यदि ऐसे व्यक्तियों को यहाँ रहने की अनुमति दी जाती तो वे भारतीय व्यापार में लग जाते और इससे कम्पनी का मुनाफा कम हो सकता था। कई बार ऐसे व्यक्ति इंगलैंड लौटकर कम्पनी के कर्मचारियों के विरुद्ध प्रचार करते थे और उनके अनैतिक जीवन और शासन की बुराइयों पर प्रकाश डालते थे, औपनिवेशिक शासन की पद्धति को बदलने पर बल देते थे, जो कम्पनी के अधिकारियों द्वारा वांछनीय नहीं समझा जाता था।[3] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ऐसे कटु आलोचकों का भारत में रहना सर्वथा अवांछनीय समझती थी।

१७९२ से १८१३ के बीच में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मिशनरी विरोधी नीति चरम शिखर पर पहुँच गई। इस अवधि के भीतर कम्पनी ने अपने प्रदेशों में ईसाइयत

---

१. **रमेशचन्द्र मजूमदार**, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग २, पृ० १५२।

२. **रमेशचन्द्र मजूमदार**, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग-२, पृ० १५२।

३. रिचर, ए हिस्टरी ऑफ् मिशन्स इन इण्डिया, पृ० १३२।

का प्रचार करने के लिए किसी मिशनरी को अनुमतिपत्र नहीं जारी किया। विदेशों से भारत आने वाले मिशनरियों का पता लगने पर उन्हें तुरन्त अपने प्रदेश से निष्कासित कर दिया, मिशनरियों के कार्य में उन्होंने हर प्रकार की बाधा डाली तथा मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों को किसी प्रकार की कोई आर्थिक सहायता नहीं दी। शेरिंग ने अपनी पुस्तक में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत से निकाले जाने वाले मिशनरियों का विस्तृत विवरण दिया है।[1] इस समय तक इंग्लैंड के अतिरिक्त अमरीका से भी कुछ ईसाई धर्म-प्रचारक भारत आने लगे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत आने वाले किसी भी मिशनरी को भारत में प्रवेश नहीं करने दिया। इन्हें या तो इंग्लैंड वापिस भेज दिया जाता था या ये मारीशस, जावा आदि अन्य देशों में चले जाते थे। भारत में मिशनरी केवल डेनमार्क और हालैंड की विदेशी बस्तियों में ही थे। इनमें सिरामपुर के मिशनरी उल्लेखनीय हैं।

ऐसी दशा में १९वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में ईसाई मिशनरियों की संख्या बहुत ही कम थी। शेरिंग के मतानुसार समूची १८वीं शताब्दी में भारत में केवल ५० मिशनरी ही आये और इनमें एक समय में १० से अधिक मिशनरियों ने काम नहीं किया। इनका प्रधान कार्य बाइबल का अनुवाद, स्कूल की पुस्तकों को तैयार करना था और इन्हें स्वदेश से कोई सहायता नहीं मिलती थी।[2]

(५) मिशनरी विरोधी नीति में परिवर्तन के लिए आन्दोलन तथा चार्ल्स ग्राण्ट

ईसाई मिशनरी भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की विरोधी नीति का प्रतिकार करने में सर्वथा असमर्थ थे। अतः उन्होंने तथा उनके मित्रों ने इंग्लैंड में इस नीति को बदलने के लिए एक आन्दोलन चलाया। इसका उद्देश्य ब्रिटिश पार्लियामेण्ट से ऐसा कानून बनवाना था जिससे मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार की आवश्यक स्वतन्त्रता, सुविधा और सहायता मिल सके। इस प्रकार का आन्दोलन करने वाले व्यक्तियों में चार्ल्स ग्राण्ट (१७४६-१८२३) का नाम उल्लेखनीय है।

स्काटलैंड में जन्म लेने वाले चार्ल्स ग्राण्ट १७६७ में कलकत्ता आये। वे यहाँ एक व्यापारिक कम्पनी में काम करते रहे। १७६९-७० के भीषण अकाल के दिनों में उन्होंने इतना काम किया कि स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण उन्हें स्वदेश वापिस लौट जाना पड़ा। १७७३ में वे पुनः कम्पनी के कर्मचारी होकर यहाँ आये। उस समय उन्होंने यहाँ ऐसा रंगीला जीवन व्यतीत किया कि वे शीघ्र ही कर्ज में डूब गये। इसके कुछ समय बाद १७७५ में उनके भाई का और अगले ही वर्ष दो लड़कियों का स्वर्गवास हो गया। इन आर्थिक और घरेलू आपदाओं के आघात से ग्राण्ट में एक अद्भुत मानसिक परिवर्तन हुआ, उन्होंने विलासपूर्ण जीवन को तिलांजलि दे दी, एक सच्चे ईसाई का जीवन बिताने, मिशनरियों की सत्संगति करने और भारतीयों को ईसाई बनाने का दृढ़ संकल्प किया। १७८० से ९० के बीच में कम्पनी की सेवा में उनकी निरन्तर पदोन्नति होती गई। निजी व्यापार से भी उन्होंने काफी रुपया कमाया और अपनी पत्नी के अस्वस्थ

---

१. एम० ए० शेरिंग, दी हिस्टरी ऑफ् प्रोटेस्टेण्ट मिशन्स इन इण्डिया, पृ० ४९।

२. वही पुस्तक।

होने पर वे १७९० में इंग्लैंड लौट गये। यहाँ उनका प्रसिद्ध सुधारवादी संसद् सदस्य तथा दास प्रथा के उन्मूलन के लिए उग्र संघर्ष करने वाले विल्वर फोर्स (Wilber Force) से सम्पर्क हुआ। वे भारत को ईसाई वनाने के उद्देश्य से एक अभियान चलाने की योजना वनाने लगे और इसी समय १७९२ में उन्होंने अपनी शिक्षाविषयक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इसका नाम था—'ग्रेट ब्रिटेन के एशियाई प्रजाजनों के समाज की स्थिति विशेष रूप से नैतिक आचार विषयक टिप्पणियाँ और इसे सुधारने के उपाय (आवज़र-वेशन्स आन दी स्टेट ऑफ् सोसाइटी एमंग दी एशियाटिक सब्जैक्ट्स ऑफ् ग्रेट ब्रिटेन, पर्टीकुलर्ली विद रेस्पेक्ट टु मौरल्स; एण्ड दी मीन्स ऑफ् इम्प्रूविंग इट)। पहले यह पुस्तिका हस्तलिखित रूप में थी। १८०७ में इसका प्रकाशन हुआ।

१७९३ में कम्पनी के चार्टर के नवीकरण का विषय जब पार्लियामेण्ट में प्रस्तुत हुआ तो ग्राण्ट की प्रेरणा से विल्वर फोर्स ने इसमें कई संशोधनों द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तत्कालीन मिशनरी विरोधी नीति को रद्द कराने, कम्पनी के संचालक मण्डल द्वारा भारतीयों की धार्मिक और नैतिक दशा सुधारने के लिए मिशनरी भेजने के प्रस्ताव पास कराने का प्रयास किया। किन्तु ये प्रस्ताव उस समय पार्लियामेण्ट द्वारा पास नहीं किये गये।

इस पर ग्राण्ट ने यह निश्चय किया कि वह कम्पनी का संचालक बनकर इन प्रस्तावों को पास करवा के सफलतापूर्वक क्रियान्वित करेगा। वह १७९७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का डायरेक्टर और १८०५, १८०९ तथा १८१५ में संचालक मण्डल का अध्यक्ष चुना गया। १८०२ में ग्राण्ट पार्लियामेण्ट का सदस्य निर्वाचित हुआ। इनके प्रयत्न और प्रभाव से ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपनी मिशनरी विरोधी नीति वदलने को वाधित होना पड़ा और १८१३ के चार्टर द्वारा ईसाई मिशनरियों को भारत में प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई और कम्पनी को भारतीयों की शिक्षा के लिए व्यय करने का निर्देश दिया गया। इस परिवर्तन के पीछे कौन-सी भावना काम कर रही थी, इसे जान लेना अतीव आवश्यक है। इसका विस्तृत स्पष्टीकरण हमें ग्राण्ट की उपर्युक्त पुस्तिका से मिलता है। इसमें स्पष्ट रूप से यह वताया गया है कि भारत में ब्रिटिश शासन क. लक्ष्य भारतीयों को ईसाई वनाना है और इस लक्ष्य की पूर्ति अंग्रेजी की शिक्षा के माध्यम से की जा सकती है। इस विषय में ग्राण्ट का युक्तिक्रम निम्नलिखित था।

ग्राण्ट ने अपनी पुस्तिका के आरम्भ में इस बात पर वल दिया है कि अंग्रेजों को इस वात का भली-भाँति पता लग जाना चाहिये कि भारतीय समाज का इस समय पूरा नैतिक पतन हो चुका है। उसके मतानुसार, "यूरोप के नैतिक दृष्टि से सबसे अधिक भ्रष्ट देशों में भी ईमानदार, सच्चे और अपने अन्तःकरण की वात को सुनने वाले व्यक्ति बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। किन्तु बंगाल में एक भी ईमानदार व्यक्ति बड़ा दुर्लभ है और अपने समूचे जीवन में अन्तःकरण की वात सुनने वाला व्यक्ति सम्भवतः कोई नहीं है। हिन्दुस्तान के किसी व्यक्ति को सत्ता दी जाय तो वह इसका प्रयोग अत्याचार या अन्याय करने में ही करता है। सरकारी सेवाओं में सर्वत्र भ्रष्टाचार है। सभी स्तरों पर इनका उपयोग सरकारी रुपये का गवन करने के लिए किया जाता है। ......हिन्दुस्तान में देशभक्ति की भावना पूर्णरूप से अज्ञात है।"[1]

---

१. एन० आर० परांजपे, ए सोर्स बुक ऑफ् मॉडर्न इण्डियन एजुकेशन, पृ० ८-९।

भारत के नैतिक दिवालियापन का अतीव अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण करने के बाद ग्राण्ट ने यह प्रश्न उठाया कि भारत की इस विकृति और नैतिक अधोगति के क्या कारण हैं और इस विकृति को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। उसके मतानुसार इसके दो बड़े कारण हैं — अज्ञान और समुचित धर्म का न होना। अतः उसका विश्वास था कि भारतवर्ष का उद्धार तभी हो सकता है जब पहले उसको अंग्रेजी की शिक्षा दी जाय और इसके बाद उसे ईसाई बनाया जाय।

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न विचारणीय था कि भारत के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए उसे 'प्रकाश और ज्ञान' किस माध्यम से दिया जाय। इस विषय पर गम्भीर विचार करने के बाद ग्राण्ट ने यह परिणाम निकाला कि भारतीयों को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान देने का माध्यम अंग्रेजी भाषा होनी चाहिये, क्योंकि उसके मत में, "यह ऐसी कुञ्जी थी जो भारतीयों के लिए नये विचारों की एक दुनिया खोल देने वाली थी।" हिन्दुओं को अपने शासकों की भाषा पढ़ने में बड़ी प्रसन्नता होगी। सरकार के लिए यह बहुत सुगम होगा कि वह मामूली खर्च पर विभिन्न प्रान्तों में अंग्रेजी पढ़ने-लिखने के निःशुल्क शिक्षा देने के केन्द्र स्थापित करे। उसे शासन-कार्य में भी फारसी के स्थान पर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करना चाहिये। ग्राण्ट ने सरकार द्वारा स्थापित शिक्षणालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों का भी विस्तारपूर्वक निर्देश किया है। उसका यह मत था कि प्राकृतिक विज्ञानों के पढ़ाये जाने पर विशेष बल दिया जाना चाहिये, क्योंकि इनसे जनता के अन्धविश्वासों को दूर करने में बड़ी सहायता मिलेगी। कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए भारतीयों को नवीन यान्त्रिक आविष्कार भी पढ़ाये जाने चाहिये।

ग्राण्ट की दृष्टि में पाठ्यक्रम में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषय ईसाई धर्म के अध्ययन का है। इसके पढ़ने से भारतीयों के धार्मिक अन्धविश्वास दूर होंगे, वे एक सच्चे ईश्वर के स्वरूप को अच्छी तरह समझ सकेंगे। इससे उनके सब प्रकार के नैतिक गुणों का विकास होगा और धार्मिक कुरीतियों की समाप्ति होगी। "ईसाई धर्म के ज्ञान से मूर्तिपूजा का और इसके पवित्र देवता—उन लकड़ी और पत्थर में बनाये राक्षसों, इसके झूठे सिद्धान्तों और भ्रष्ट आचारों, धोखा देने वाली आशाओं, निरर्थक आशंकाओं, हास्यास्पद रीति-रिवाजों, पतित करने वाले अन्धविश्वासों, झूठी कथाओं तथा धोखा देने वाली ठगबाजी का अन्त हो जायेगा।"[1]

अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करके भारतीय शनैः-शनैः अपना नैतिक चरित्र सुधारेंगे और अपने समाज का पुनरुत्थान करेंगे। समाज में इस प्रकार का परिवर्तन आने से पहले बताई गई विकृतियों का सुधार होगा और भारत उन्नति एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

अन्त में ग्राण्ट ने ईसाई मिशनरियों के प्रचार का विरोध करने वाले आलोचकों की आपत्तियों तथा आशंकाओं का उत्तर देते हुए कहा है कि अंग्रेजी की शिक्षा के विरुद्ध पहली और सबसे बड़ी आपत्ति यह की जाती है कि कम्पनी के लिए अंग्रेजी की शिक्षा की व्यवस्था करना राजनीतिक दृष्टि से घातक होगा, क्योंकि यदि भारतीयों को अंग्रेजी तथा ईसाई धर्म की शिक्षा दी गयी तो वे कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह करेंगे और अपनी

---

१. सैयद महमूद, हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इण्डिया, पृ० १३-१४।

दासता की बेड़ियों को तोड़कर स्वतन्त्रता की घोषणा करेंगे। ग्राण्ट इस आशंका से भयभीत नहीं था। उसकी दृष्टि में भारतीय जनता को अज्ञानान्धकार में बनाये रखकर उनकी दासता को स्थायित्व प्रदान करना उचित नहीं था। भारतीयों का उद्धार करने के लिए उनके अज्ञानान्धकार का निवारण करने, नैतिक पतन दूर करने के लिए विद्रोह का खतरा मोल लेने में अंग्रेजों को संकोच नहीं करना चाहिये। अंग्रेजों का यह कर्तव्य है कि वे भारतीयों को शिक्षा दें। उसके विचार में इससे ब्रिटिश साम्राज्य को कोई खतरा नहीं था। प्रत्युत हिन्दुओं और मुसलमानों को शिक्षा देना इंगलैण्ड के लिए बड़ा लाभकर था। ऐसी शिक्षा से शासक और शासित एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह समझने लगेंगे, भारतीय जनता अज्ञानान्धकार दूर करने के लिए अंग्रेजों का कृतज्ञ रहेगी, भारत में ब्रिटिश व्यापार का अधिकतम विस्तार होगा। अतः कर्तव्य-बुद्धि एवं स्वार्थ, दोनों दृष्टियों से अंग्रेजों के लिए यह श्रेयस्कर था कि वे भारतीयों के लिए अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा का विस्तार करें।

१८३५ में मैकॉले ने अंग्रेजी शिक्षा की जो वकालत की थी, उसका सूत्रपात ४३ वर्ष पहले ग्राण्ट ने अपनी पूर्वोक्त पुस्तिका में किया था। उसने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने तथा राजभाषा का दर्जा प्रदान करने पर बल दिया था। अतः ग्राण्ट को भारत की आधुनिक शिक्षा का जनक कहा जाता है।

किन्तु इस प्रसंग में हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि ग्राण्ट ने तत्कालीन भारतीय समाज के नैतिक पतन का जो चित्रण किया है, वह सर्वथा काल्पनिक, अतिशयोक्तिपूर्ण और अतिरंजित है, क्योंकि इस समय भारत में काम करने वाले और भारतीय जनता का बड़ी गहराई और सूक्ष्मता से अध्ययन करने वाले एलफिंस्टन, मनरो, मैटकाफ जैसे अंग्रेज शासकों ने भारतीयों के चरित्र की बड़ी प्रशंसा की है। ग्राण्ट का यह विचार भी सही नहीं है कि भारतीय समाज का पुनरुत्थान करने के लिए भारतीयों को बड़े पैमाने पर ईसाई बनाया जाना चाहिये तथा इस उद्देश्य से अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिये और पाठ्यक्रम में ईसाइयत की शिक्षा को प्रधानता देनी चाहिये।

ग्राण्ट की पुस्तिका में प्रकट किये गये विचार सत्य न होते हुए भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं कि ये भारत में अंग्रेजी शिक्षा की आधारशिला हैं और इस बात को प्रकट करते हैं कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा देने का प्रमुख उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाना था। मिशनरियों ने ग्राण्ट की पुस्तिका में दी युक्तियों के आधार पर इंगलैण्ड में मिशनरियों पर लगी पाबन्दियाँ हटाने का प्रबल आन्दोलन चलाया।

जब एक ओर इंगलैण्ड में ईसाई मिशनरी कम्पनी की नीति को अपने पक्ष में परिवर्तित करने के प्रयास कर रहे थे, उसी समय दूसरी ओर भारत में कम्पनी के अधिकारी संस्कृत, अरबी, फारसी आदि प्राच्य भाषाओं की शिक्षा की पद्धति को विस्तृत और सुदृढ़ बनाना चाहते थे। उनका यह विचार था कि बनारस का संस्कृत कॉलिज और कलकत्ता का मदरसा इस कार्य के लिए सर्वथा अपर्याप्त है। इन संस्थाओं को अधिक धनराशि तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये तथा इस प्रकार की नयी संस्थायें बनानी चाहिये। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो (१८०६-१३) प्राच्य साहित्य के बड़े प्रशंसक और प्रेमी थे। उनका यह विचार था कि अंग्रेजों को भारतीय संस्कृति के अध्ययन और संरक्षण के लिए सभी प्रकार का सम्भव प्रोत्साहन देना चाहिये। यह बात

उन्होंने ६ मार्च, १८११ को लिखे अपने नोट में विस्तारपूर्वक प्रतिपादित की थी।

१८१३ का चार्टर—ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में हर २० वर्ष बाद कम्पनी के व्यापार का अधिकार-पत्र या चार्टर संशोधन के लिए पेश किया जाता था। १८१३ में जब इसके संशोधन का समय आया तो मिशनरियों के पक्ष के प्रबल पोषक चार्ल्स ग्राण्ट और विल्वर फोर्स तथा भारत के एक भूतपूर्व गवर्नर लार्ड टेनमाउथ थे। मिशनरियों की ओर से ८५० आवेदन-पत्र पार्लियामेण्ट में प्रस्तुत किये गये। दूसरी ओर कम्पनी के अधिकारी तथा एंग्लो-इण्डियन मिशनरियों को प्रचार के लिए दी जाने वाली स्वतन्त्रता का विरोध कर रहे थे। इस समय पार्लियामेण्ट के समक्ष दो विवादास्पद प्रश्न थे। पहला प्रश्न यह था कि क्या मिशनरियों को भारत जाने की तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रदेशों में ईसाइयत के प्रचार और शिक्षा की अनुमति दी जानी चाहिये। दूसरा प्रश्न यह था कि क्या कम्पनी को भारतीय जनता को शिक्षा देने का दायित्व सौंपा जाना चाहिये। यदि इसे यह दायित्व दिया जाय तो कम्पनी के शैक्षणिक कार्यकलापों का स्वरूप और क्षेत्र क्या होना चाहिये।

पार्लियामेण्ट ने पहले प्रश्न पर विस्तृत विचार करने के बाद २३ जून, १८१३ को मिशनरियों को भारत में प्रचार की अनुमति देने वाला १३वाँ प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के अनुसार अब मिशनरियों को इस बात की अनुमति दे दी गयी कि वे भारत में प्रवेश कर सकते थे, वहाँ रहते हुए अपने धर्म का प्रचार करने, चर्च स्थापित करने और सब प्रकार के धार्मिक व आध्यात्मिक कर्तव्य पूरा करने के अधिकार उन्हें प्रदान किये गये।

दूसरा विवादग्रस्त प्रश्न कम्पनी द्वारा भारतीयों को शिक्षा प्रदान करने का दायित्व लेने का था। कम्पनी के संचालक इस व्यवस्था के उग्र विरोधी थे। वे अपने पर किसी प्रकार का नया आर्थिक बोझ डालने वाला दायित्व नहीं लेना चाहते थे, क्योंकि उनका यह विचार था कि शिक्षा पर व्यय करने से कम्पनी का मुनाफा कम हो जायेगा। उन दिनों इंग्लैण्ड में भी शिक्षा देना राज्य का कार्य नहीं समझा जाता था। इसके अतिरिक्त, कम्पनी को यह आशंका थी कि यदि मिशनरियों को भारत में शिक्षा के प्रसार का दायित्व सौंपा गया तो इसके भीषण दुष्परिणाम होंगे। अतः कम्पनी को भारतीयों की शिक्षा का दायित्व इस ढंग से सौंपा गया कि वे मिशनरियों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के दुष्प्रभावों को दूर कर सकें। इस दृष्टिकोण से चार्टर के ४३वें अनुभाग में यह कहा गया कि सपरिषद् गवर्नर जनरल कम्पनी की समूची आय में से सैनिक, दीवानी एवं व्यापारिक खर्चों को तथा सूद की राशि को निकालकर शेष बची राशि में से प्रति वर्ष एक लाख रुपये की पृथक् रखी जाने वाली ऐसी निधि की व्यवस्था करें जिसका उपयोग "भारत के विद्वान् व्यक्तियों (पंडितों तथा मौलवियों) को प्रोत्साहन देने तथा साहित्य के पुनरुज्जीवन और सुधार के लिए किया जाय तथा जिससे भारत के ब्रिटिश प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों में विज्ञानों की जानकारी बढ़ाई जाय।"

इस प्रकार इस प्रस्ताव में संस्कृत, अरबी, फारसी आदि पौरस्त्य भाषाओं को प्रोत्साहन देने के लिए उत्सुक प्राच्यवादी (Orientalist) पक्ष का तथा अंग्रेजी एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा पर बल देने वाले पाश्चात्यवादी (Occidentalist) पक्ष का समर्थन किया गया तथा दोनों को सन्तुष्ट रखने का प्रयास किया गया।

पौरस्त्य भाषाओं पर बल देने वालों की बात इस रूप में स्वीकार की गयी थी कि संस्कृत और अरबी के साहित्य के पुनरुत्थान और सुधार के लिए तथा पण्डितों और मौलवियों को प्रोत्साहन देने के लिए इस राशि का प्रयोग होगा। किन्तु इसके साथ ही इस प्रस्ताव में भारतीयों को पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान की जानकारी देने की बात भी कही गयी। १८१३ के चार्टर में इन व्यवस्थाओं के सम्मिलित होने से पिछली दो दशाब्दियों से ग्राण्ट तथा विल्बर फोर्स द्वारा किये जाने वाले प्रयास सफल हुए। भारत को ईसाई बनाने की अभिलाषा रखने वाले मिशनरियों की आकांक्षा पूरी हुई, उन्हें भारत में ईसाइयत का प्रचार करने और शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से अपने इस उद्देश्य को पूरा करने की खुली छूट मिली।

(६) मिशनरियों के प्रचार की पद्धति

१८१३ के चार्टर द्वारा भारत में ईसाई मिशनरियों के प्रचार-कार्य पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटा देने का यह परिणाम हुआ कि भारत में ईसाई मिशनरी बड़ी संख्या में आने लगे। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार बड़े उत्साह के साथ आरम्भ कर दिया और इसके लिए कुछ ऐसे साधनों का भी प्रयोग किया जो आपत्तिजनक थे। विजेता जाति से सम्बन्ध के अभिमान एवं राजकीय शक्ति के समर्थन का मद होने के कारण उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्मों पर बहुत भद्दे आक्षेप किये। राजा राममोहन राय ने सर्व-प्रथम ईसाई मिशनरियों की दूषित प्रचार-पद्धति के विरोध में आवाज उठायी और १८२१ में प्रकाशित ब्राह्मणेनिकल मेगजीन नामक पत्रिका में मिशनरियों के प्रचार कार्य की पद्धति के बारे में यह लिखा था--

"पिछले २० वर्षों में मिशनरी कहलाने वाले कुछ अंग्रेजों का वर्ग इस देश के हिन्दुओं तथा मुसलमानों को कई ढंग से ईसाई बनाने का प्रयास सार्वजनिक रूप से कर रहा है। इनका पहला ढंग तो भारतवासियों में ऐसी पुस्तिकाओं का वितरण तथा प्रकाशन है, जिनमें दोनों धर्मों की खिल्ली उड़ाई गई है, उन्हें गालियाँ दी गई हैं और उनके देव-ताओं और सन्तों की मजाक उड़ाई गई है। दूसरा ढंग यह है कि वे भारतीयों के दरवाजों पर अथवा सार्वजनिक मार्गों पर खड़े होकर अपने धर्म की उत्कृष्टता की सराहना करते हैं और दूसरे धर्मों में बुराइयाँ निकालते हैं। तीसरा तरीका यह है कि यदि निम्न जातियों के कोई भारतीय धन के लाभ की इच्छा से अथवा अन्य उद्देश्यों से प्रेरित होकर ईसाई बनते हैं तो ये लोग उन्हें नौकरी पर लगा देते हैं ताकि दूसरे व्यक्तियों को उनके उदाहरण का अनुसरण करने में प्रोत्साहन मिले।"

"यह सत्य है कि ईसा मसीह के शिष्य विभिन्न देशों के निवासियों को ईसाई धर्म की उत्कृष्टता के बारे में उपदेश दिया करते थे। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि वे जहाँ उपदेश देते थे, वहाँ उनका शासन नहीं था। यदि ईसाई मिशनरी इसी तरह इंग्लैण्ड के अधिक निकट टर्की, ईरान आदि देशों में ऐसे सुसमाचार (गास्पल) का प्रचार और पुस्तकों का वितरण करें तो उस दशा में इन मिशनरियों को वास्तव में अपने धर्म का प्रचार करने में उत्साही और ईसाइयत के संस्थापक महापुरुषों के उदाहरण का अनु-सरण करने वाला समझा जायगा और इस रूप में उनका सम्मान किया जायेगा। बंगाल में एकमात्र शासक अंग्रेज हैं। उनके नाम मात्र का उच्चारण करने से ही लोग डर जाते

हैं। ऐसे प्रदेश में वहाँ रहने वाले व्यक्तियों के धर्म और अधिकारों पर आक्रमण को भगवान् की अथवा जनता की दृष्टि में एक उचित कार्य नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि बुद्धिमान और सज्जन व्यक्ति अपने से कम शक्ति रखने वालों को हानि पहुँचाने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते हैं और यदि ऐसे निर्बल व्यक्ति उन पर आश्रित हों और उनकी प्रभुसत्ता में रहते हों तो वे कभी भी उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने का कोई प्रयास नहीं करते हैं।"[1] राजा राममोहन राय की यह आलोचना अरण्यरोदनमात्र थी। १८५७ तक ईसाई मिशनरी भारतीय भावनाओं को गहरी ठेस पहुँचाते हुए इसी प्रकार से प्रचार-कार्य करते रहे।

ईसाइयत का प्रचार करने वाली मिशनरी संस्थाओं की संख्या तथा शिक्षा-कार्य में वृद्धि : (१८१३-३३)—१८१३ के चार्टर द्वारा ब्रिटिश भारत में ईसाई धर्म के प्रचार पर कम्पनी द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के दूर हो जाने से इंग्लैण्ड की विभिन्न मिशनरी संस्थाएँ भारत में अपने मिशन और प्रचारक बड़ी संख्या में भेजने लगीं। इनमें पाँच संस्थाओं के नाम उल्लेखनीय हैं: पहली संस्था जनरल बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी थी। इसने १८२२ में उड़ीसा से अपना कार्य आरम्भ किया। दूसरी संस्था लंदन मिशनरी सोसायटी ने एक साथ बंगाल और मद्रास में अपने विभिन्न केन्द्र स्थापित किये। इनमें बंगाल के प्रमुख केन्द्र थे—भवानीपुर और बरहामपुर। दक्षिण भारत में इसने निम्न स्थानों पर अपने केन्द्र स्थापित किये—नागरकोइल तथा नेयूर (ट्रावनकोर), मद्रास (१८३१), कुम्भकोणम् तथा चित्तूर (१८२५), कोयम्बटूर (१८३०), कड़प्पा (१८२२), बंगलौर (१८२०), बेलगाँव (१८२०), गुजरात में सूरत (१८१६) तथा पश्चिमोत्तर-प्रदेश में बनारस (१८२०)। तीसरी संस्था चर्च मिशनरी सोसायटी थी। इसने चार्टर के पास होने के बाद निम्नलिखित स्थानों पर अपने प्रमुख केन्द्र स्थापित किये—बर्दवान (१८१५), आगरा (१८१३), मेरठ (१८१५), बनारस (१८१७), आजमगढ़ तथा जौनपुर (१८३१)। बम्बई प्रान्त में इस संस्था ने नासिक में तथा मद्रास में टिनेविली में अपना प्रचार केन्द्र स्थापित किया। १८३५ ई० में भारत में इसके १०७ स्कूल चल रहे थे और इनमें २८८२ छात्र पढ़ रहे थे। चौथी संस्था वेसलियन मिशन ने १८१८ में त्रिचनापल्ली में कार्य आरम्भ किया और शीघ्र ही मैसूर राज्य में अपने कार्य का विस्तार किया। पाँचवीं संस्था स्कॉटलैंड की स्कॉट मिशनरी सोसायटी ने १८२२ में अपना कार्य आरम्भ किया। इसके अतीव उत्साही मिशनरी प्रचारक जान विल्सन (१८२९), अलैग-जैंडर डफ (१८३०) और जान एण्डरसन (१८३७) ने क्रमशः बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में अपने कार्य को खूब बढ़ाया।

मिशनरी संस्थाओं का लक्ष्य तथा विशेषताएँ—इस समय उपर्युक्त सभी मिशनरी संस्थाएँ अपने स्कूल बड़े उत्साह से चला रही थीं। हमें इन संस्थाओं द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों और छात्रों के विस्तृत आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इनके शिक्षा-कार्य की तीन विशेषतायें उल्लेखनीय हैं—पहली विशेषता यह थी कि इनका प्रमुख उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना कभी नहीं था। इनका प्रधान लक्ष्य भारतीयों को ईसाई

---

१. राजा राममोहन राय वर्क्स, पृ० १४५-४६।

बनाना था और उन्हें शिक्षा का कार्य इसलिए अपने हाथ में लेना पड़ा कि वे ईसाई बनाये गये लोगों की धार्मिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर सकें और इस कार्य में सहायता देने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षित कर सकें। ईसाई धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए बाइबल का पढ़ना अनिवार्य है। यह तभी हो सकता था, जब व्यक्ति साक्षर हों और वे अपनी भाषा में बाइबल को पढ़ और समझ सकें। इसके साथ ही भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए मिशनरी योग्य सहायकों की तलाश में थे। इनको मिशन स्कूलों में समुचित प्रशिक्षण देकर तैयार किया जा सकता था।

आरम्भिक मिशनरी प्रचारकों की दूसरी विशेषता आधुनिक भारतीय भाषाओं का गम्भीर अध्ययन करने की थी। इन मिशनरियों को प्रायः निम्नतम वर्गों की ऐसी जातियों में धर्म-प्रचार का कार्य करना पड़ता था जो अपनी भाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नहीं जानते थे। अतः इनमें अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इन जातियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अतीव आवश्यक था। इसे प्राप्त करने के बाद ही, वे इन जातियों में अपने धर्म का प्रचार सफलतापूर्वक कर सकते थे। इन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ईसाई प्रचारकों ने सर्वप्रथम तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, बँगला, गुजराती, मराठी, हिन्दी आदि लोक भाषाओं के पहले शब्दकोश तैयार किये, इनके व्याकरण लिखे तथा बाइबल का इन भाषाओं में अनुवाद किया। पहले इस विषय में केरी और उसके साथियों के कार्य का उल्लेख हो चुका है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि ईसाई मिशनरियों ने अपने स्कूलों में शिक्षा का माध्यम छात्रों की मातृभाषा को ही रखा। उन्होंने इनमें अंग्रेजी को विशेष महत्त्व नहीं दिया। उनका मुख्य कार्य धर्म-प्रचार था और उसमें लोक भाषाएँ ही सहायक हो सकती थीं। अतः उन्होंने छात्रों को मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देना वांछनीय समझा और इसके लिए लोक भाषाओं में इतिहास, भूगोल, गणित, भाषा आदि विषयों की पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया।

तीसरी विशेषता स्त्री-शिक्षा के कार्य को आरम्भ करना था। उस समय भारतीय समाज में स्त्रियों को शिक्षा पाने का अधिकारी नहीं समझा जाता था। मिशनरियों ने धर्म-प्रचार की दृष्टि से स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार को बड़ा उपयोगी समझा। उनकी पत्नियों ने इस कार्य में विशेष सहयोग किया। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए लड़कियों के स्कूल खोले गये, अनाथगृहों की स्थापना की गई और मध्य एवं उच्च वर्ग के परिवारों की स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए उनके घरों में पढ़ाने का कार्य अथवा जनाना शिक्षा आरम्भ की गई। बंगाल में लड़कियों की शिक्षा के लिए १८२० में एक संस्था स्थापित की गई और इसने इस प्रदेश में शिक्षा के प्रसार का सराहनीय कार्य किया।

यूरोपियन मिशनों का आगमन : १८३३ में कम्पनी के चार्टर का संशोधन करते समय इसमें इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य यूरोपियन देशों के मिशनों को भी भारत में ईसाइयत का प्रचार करने की अनुमति दी गई। इसके परिणामस्वरूप १८३३ से ५३ तक ब्रिटिश मिशनों के अतिरिक्त अनेक यूरोपियन मिशनों ने ईसाइयत के प्रचार और शिक्षा के प्रसार के कार्य में प्रमुख भाग लिया। इनमें निम्नलिखित जर्मन और अमरीकी मिशनरी संस्थाएँ उल्लेखनीय हैं—बेसल मिशन सोसायटी ने १८३४ में मंगलौर में अपना पहला केन्द्र स्थापित किया और शीघ्र ही इसने कन्नड़ एवं मलयालम भाषाभाषी प्रदेशों में

अपनी निम्नलिखित शाखाएँ स्थापित कीं—धारवाड़ (१८३७), हुवली (१८३९), तेलीचेरी (१८३९), काननोर (१८४१), कालीकट (१८४२), कुर्ग (१८५३)।

एक अन्य जर्मन संस्था प्रोटेस्टेण्ट लूथरन सोसायटी थी। यह ड्रेसडन में १८३६ में स्थापित हुई। १८४२ में वर्लिन में स्थापित "पूर्वी देशों में स्त्रियों की शिक्षा के नारी संघ" ने भी भारत में मिशनरी कार्य किया।

इस युग में अमरीका से अनेक मिशनरी सोसायटियाँ भारत में अपना प्रचार करने आईं। इनमें अमेरिकन वैप्टिस्ट यूनियन, अमेरिकन वोर्ड तथा अमेरिकन प्रेसब्रिटेरियन मिशन उल्लेखनीय हैं। प्रेसब्रिटेरियन मिशन ने उत्तरी भारत में विशेष कार्य किया। इसकी शाखायें लुधियाना (१८३४), सहारनपुर और इलाहावाद (१८३६) में स्थापित हुईं। इसके वाद अम्वाला (१८४८), लाहौर (१८४९) तथा रावलपिण्डी (१८५६) में इस मिशन के केन्द्र स्थापित हुए। एक अन्य अमरीकी संस्था—चर्च मिशनरी सोसायटी ने अमृतसर (१८५२), काँगड़ा (१८५४), मुलतान तथा पेशावर (१८५५) में अपने केन्द्र स्थापित किये। उन दिनों पंजाव के अंग्रेज शासक ईसाई धर्म के प्रचार का प्रवल उत्साह रखते थे, उनके प्रोत्साहन से पंजाव में शीघ्र ही ईसाई मिशनरी संस्थाओं का जाल विछ गया। इससे पंजाव के हिन्दुओं के लिए एक महान् संकट पैदा हो गया। उनको इस संकट से उवारने का श्रेय स्वामी दयानन्द तथा आर्यसमाज को है।

डफ द्वारा मिशनरी शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन—इस युग की सवसे वड़ी विशेषता अव तक प्रचलित मिशनरी शिक्षा पद्धति में नवीन क्रान्तिकारी विचारों का प्रादुर्भाव था। इसका श्रेय स्काटलैण्ड से आने वाले एक अत्युत्साही मिशनरी अलैक्जेंडर डफ (१८०६-७८) को है। ये २४ वर्ष की आयु में भारत में ईसाइयत के प्रचार और शिक्षा-कार्य के लिए कलकत्ता आये थे। यहाँ आते ही इन्होंने उस समय मिशनरियों द्वारा किये जाने वाले प्रचार-कार्य का सूक्ष्म एवं गम्भीर अध्ययन किया, इसके परिणामस्वरूप इन्होंने उस समय की पद्धति को कई कारणों से दोषपूर्ण और असन्तोषजनक पाया और इन्हें दूर करने के लिए नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तावित किये।

पुरानी मिशनरी शिक्षा पद्धति की पहली वड़ी कमी यह थी कि अव तक ईसा के अनुयायी या तो अनाथ वने थे या निम्न वर्ग की जातियों के व्यक्ति। इनकी संख्या वहुत कम थी। इनका ईसाई वनने का उद्देश्य धार्मिक भावना नहीं, अपितु आर्थिक प्रलोभन था। अतः तत्कालीन हिन्दू समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता था, 'भातखाऊ ईसाई' कहकर इनकी खिल्ली उड़ाता था। डफ को यह स्थिति असन्तोषजनक प्रतीत हुई। उसने कहा कि इस प्रकार से हिन्दू धर्म को समाप्त करने में कई सदियाँ लग जायेंगी। सर्वत्र समाज में सभी व्यक्ति उच्च एवं अभिजात वर्गों का तेजी से अनुसरण और अनुकरण करते हैं। यदि हिन्दू जाति में ब्राह्मणों को तथा अन्य उच्च वर्गों के व्यक्तियों को ईसाई बनाया जा सके तो हिन्दुओं के शेष सभी वर्ग इनका अनुकरण करते हुए वड़ी संख्या में ईसाई वनने लगेंगे, समूची हिन्दू जाति को ईसाई वनाने में अधिक समय नहीं लगेगा। उसके मतानुसार जिस प्रकार अन्य सभी सामाजिक रीतियों और परम्पराओं में निम्न वर्ग उच्च वर्ग का अनुकरण करते हैं, वैसे ही इस मामले में भी निम्न जातियाँ ब्राह्मणों का अनुकरण करेंगी। अतः यदि ब्राह्मणों को ईसाई वनाया जाय तो उनका यह प्रभाव शनैः-शनैः सब जातियों में से छनता और रिसता हुआ हिन्दू धर्म के निम्नतम वर्ग तक पहुँच जायेगा। ऊपर से नीचे की ओर

इस प्रकार ईसाइयत के प्रवाह को डफ ने अधोमुखी निस्यन्द का सिद्धान्त (Downward Filtration Theory) का नाम दिया और यह कहा कि ईसाइयत का प्रचार इस पद्धति से होना चाहिये। मिशनरियों को अपना अधिकाधिक ध्यान ब्राह्मण आदि हिन्दू धर्म के अभिजात वर्ग के व्यक्तियों को ईसा का अनुयायी बनाने में लगाना चाहिये।

डफ के मतानुसार पुरानी शिक्षा पद्धति का दूसरा दोष यह था कि उस समय कई मिशन स्कूलों में बाइबल ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती थी अथवा इसकी शिक्षा स्पष्ट रूप से नहीं, अपितु प्रच्छन्न रूप से दी जाती थी। डफ को चोरी-छिपे या गौण रूप में बाइबल का पढ़ाना बड़ा अपमानजनक प्रतीत हुआ। उसका यह विश्वास था कि बाइबल सच्ची शिक्षा का आधार और इसका प्राणदायी स्रोत बनाया जाना चाहिये। अतः मिशन स्कूलों में बाइबल की शिक्षा अनिवार्य रूप से, खुले रूप में और बड़े साहस के साथ दी जानी चाहिये। अब तक मिशनरी हिन्दू मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं का आदर करते हुए इस विषय को पढ़ाने के बारे में छात्रों के साथ कोई जोरजबरदस्ती नहीं करना चाहते थे, उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे। उन्हें बाइबल को खुल्लमखुल्ला रूप में पढ़ाने पर हिन्दुओं के प्रबल विरोध की आशंका थी। वे इस विषय में कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे। डफ इस नीति के सर्वथा प्रतिकूल था। वह बाइबल को स्कूलों में लोकप्रिय बनाने के लिए कोई भी खतरा मोल लेने को तैयार था। उसका विचार था कि यदि हम इस विषय में एक बार हिम्मत करके बाइबल की शिक्षा स्पष्ट रूप से देना शुरू करेंगे तो लोगों को यह बहुत पसन्द आयेगी और इसका कोई विरोध नहीं होगा।

डफ को तत्कालीन मिशन स्कूलों में प्रचलित यह व्यवस्था भी पसन्द नहीं थी कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय। वह अंग्रेजी के माध्यम से ही शिक्षा देना चाहता था। कहा जाता है कि उसने कलकत्ता आने के बाद बँगला भाषा सीखने का प्रयास किया, किन्तु वह इसमें प्रवीणता पाने में सफल नहीं हुआ और उसने यह घोषणा की कि बँगला ब्रिटिश कवि तथा लेखक चासर (१३४४-१४०० ई०) के समय से पहले की इंगलिश की भाँति अविकसित और दरिद्र भाषा है। यह उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती है। इसके साथ ही वह इस बात पर भी बल देता था कि मिशनरियों को हाई स्कूल और कॉलिज स्तर की शिक्षा-संस्थाएँ खोलने पर बल देना चाहिए, क्योंकि इनमें हिन्दुओं के उच्च वर्ग के छात्र बड़ी संख्या में पढ़ने आते हैं और हमें उनको ईसाई बनाना है। अब तक पुराने मिशनरी प्राथमिक शिक्षा देने वाले स्कूल खोलने पर ही अधिक बल देते थे, उनकी यह धारणा थी कि बाइबल की शिक्षा देने वाले अंग्रेजी हाई स्कूल और कॉलिज भारत में कभी लोकप्रिय नहीं हो सकते हैं।

डफ उस समय कम्पनी द्वारा संचालित स्कूलों को इसलिए भी दोषपूर्ण समझता था कि इनमें बाइबल की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती थी। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि कम्पनी द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों में भी ईसाइयत की शिक्षा दी जानी चाहिये। यदि किसी कारणवश कम्पनी यह शिक्षा देने को तैयार न हो तो उसे शिक्षा के क्षेत्र से पृथक् हो जाना चाहिये, उसे शिक्षा का समूचा कार्य मिशनरियों को सौंप देना चाहिये। उसकी यह मान्यता थी कि जिस प्रकार इंगलैण्ड में पार्लियामेण्ट चर्च द्वारा चलाई जाने वाली शिक्षा-संस्थाओं को अनुदान देती है, उसी प्रकार भारत में कम्पनी को मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों तथा कॉलिजों को नियमित रूप से अनुदान देना चाहिये। मिशनरी

स्कूल भारत की शिक्षासम्बन्धी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।

डफ के उपर्युक्त विचार सर्वथा नवीन और बड़े क्रान्तिकारी थे। पुराने मिशनरी, कम्पनी के अधिकारी और भारतीय जनता इन विचारों से सहमत नहीं थी। फिर भी डफ को अपने विचार कार्यान्वित करने के लिए विलियम केरी तथा राजा राममोहन राय जैसे विचारशील कर्मठ व्यक्तियों का सहयोग मिला। उसने १८३० में कलकत्ता में एक इंग्लिश स्कूल स्थापित किया। इसे आश्चर्यजनक सफलता मिली। डफ के स्कूल में पढ़ने वाले कुछ ब्राह्मण छात्र जल्दी ही ईसाई बन गये। इसके परिणामस्वरूप शनैः-शनैः अधिकांश मिशनरियों ने डफ के विचारों को स्वीकार कर लिया। १८३५ के बाद सरकारी अधिकारियों ने भी इन विचारों का समर्थन शुरू किया। डफ को इस बात का श्रेय है कि उसने बंगाल में अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए पहला नार्मल स्कूल स्थापित किया। १८५३ में उसने पार्लियामेण्ट की कमेटी के सामने शिक्षासम्बन्धी मामलों के बारे में महत्त्वपूर्ण गवाही दी और १८५४ के वुड के शिक्षासम्बन्धी खरीते को तैयार करने में सहयोग दिया। इसके अनुसार भारत में विश्वविद्यालय स्थापित होने पर वह कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली सीनेट का सदस्य बना और उसने इसकी नीति पर गहरा प्रभाव डाला।

(६) मिशनरी स्कूलों का स्वर्ण युग

डफ की उपर्युक्त नीति के कारण १८३० के बाद मिशनरी स्कूलों और कॉलिजों का विस्तार तीव्र गति से होने लगा। अतः १८३० से ५७ तक के समय को मिशन स्कूलों का स्वर्ण युग कहा जाता है, क्योंकि उस समय शिक्षा के क्षेत्र में यही स्कूल अग्रणी थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी गवर्नर जनरल लार्ड बैंटिक (१८२८-३५) के अपवाद को छोड़कर अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे। लार्ड एलेनबरो (१८४२-४४) का यह विचार था कि हिन्दुओं को अंग्रेजी शिक्षा देने का एक अनिवार्य परिणाम ब्रिटिश राजनीतिक प्रभुता की समाप्ति होगा। अतः इस अवधि में केवल मिशनरियों ने ही बड़े उत्साह से भारत के विभिन्न भागों में सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्थायें स्थापित कीं। बम्बई में स्काटलैण्ड के मिशनरी डा० जान विल्सन ने उस महाविद्यालय को स्थापित किया, जिसके साथ आज भी उनका नाम जुड़ा है। मद्रास में एण्डर्सन तथा ब्रेडवुड ने १८३७ में उस विख्यात स्कूल की स्थापना की, जिसने बाद में वहाँ के सबसे सुप्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान—क्रिश्चियन कॉलिज का रूप धारण किया। डफ के स्कूल ने बाद में कलकत्ता में स्काटिश चर्च कॉलिज का रूप धारण किया। १८५३ में चर्च मिशनरी सोसायटी ने आगरा में सैंट जान कॉलिज की स्थापना की। इस प्रकार इस युग में देश के सभी भागों में मिशनरियों द्वारा सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्थायें स्थापित की गईं। ये उस समय की सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक तेजी से काम करने लगीं। १८५१ में भारत में मिशनरियों की शिक्षा-संस्थायें किस प्रकार कार्य कर रही थीं, यह अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा। इसमें केवल प्रोटेस्टैण्ट मिशनों के ही आँकड़े हैं।

ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित केन्द्रों तथा शिक्षा-संस्थाओं के आँकड़े (१८५१)

सं०		बम्बई	बंगाल	पश्चिमोत्तर प्रान्त (उ० प्र०)	पंजाब	मध्य भारत	मद्रास	सर्वयोग
१.	केन्द्रों की संख्या	२७	६१	१९	५	३	१११	२२२
२.	लड़कों के एंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूल तथा कॉलिज	७	२२	१३	३	३	४३	९१
३.	उपर्युक्त स्कूलों में छात्रों की संख्या	९०७	६०५४	१०२९	१७८	१३७	४०९६	१२,४०१
४.	लड़कों के वर्नाक्युलर स्कूल	८५	१२६	४७	९	८	८२४	१०९९
५.	वर्नाक्युलर स्कूलों में छात्रों की संख्या	४,६७९	६,३१९	२,६४०	४८८	३५७	२४,१७८	३८,६६१
६.	लड़कों के बोर्डिंग स्कूलों की संख्या	४	२०	१०	...	१	३२	६७
७.	बोर्डिंग स्कूलों की छात्रसंख्या	६४	७०८	२०९	...	२०	७८७	१,७८८
८.	लड़कियों के डे स्कूल	३१	२६	८	...	३	२१७	२८५
९.	सं० ८ में छात्राओं की संख्या	१,१८६	६६०	२१३	...	६२	६,७६८	८,९१९
१०.	लड़कियों के बोर्डिंग स्कूल	८	२७	९	२	१	३९	८६
११.	सं० १० के स्कूलों में छात्राओं की संख्या	१३९	७९७	१७३	३५	२०	१,११०	२,२७४
१२.	उपर्युक्त मिशनरी स्कूलों में छात्र-छात्राओं की संख्या	६,९७५	१४,५६८	४,२६४	७०१	५९९	३६,९३९	६४,०४३
१३.	रविवासरीय स्कूल	१३१	१८३	३५०	२७	७४	१,१०२	१,८६७
१४.	रविवासरीय स्कूलों की छात्र संख्या	३,७११	६,९३८	१६,६७१	३,००७	२,६४२	२८,७१९	६१,६८८

(स्रोत : शेरिंग—दी हिस्टरी ऑफ् प्रोटेस्टैण्ट मिशन्स इन इण्डिया, पृ० ४४२-४७)

पूर्वोक्त आँकड़े १९वीं शताब्दी के मध्य में ईसाई शिक्षा-संस्थाओं और इनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं और यह प्रकट करते हैं कि उस समय मिशनरी स्कूलों का सारे देश में किस प्रकार विस्तार हो चुका था। उस समय कम्पनी द्वारा संचालित स्कूलों तथा छात्रों की संख्या क्रमश: १,४७४ तथा ६७,५६९ थी। यह पूर्वोक्त तालिका के स्कूलों तथा छात्रों की संख्या से कुछ अधिक है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह केवल प्रोटेस्टैण्ट मिशनों द्वारा संचालित स्कूलों की ही संख्या है। इसमें यदि रोमन कैथोलिक समुदाय के स्कूलों तथा छात्रों की संख्या जोड़ी जाय तो वह कम्पनी के स्कूलों तथा छात्रों की संख्या से कहीं अधिक होगी। अत: यह कहा जा सकता है कि १८५१ में शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरी ईस्ट इण्डिया कम्पनी से आगे बढ़े हुए थे, इस क्षेत्र में उनका प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। उनके सबसे अधिक स्कूल दो कारणों से मद्रास में थे। पहला कारण इस प्रदेश में मिशनरियों का सबसे पहले १७०६ से प्रचार-कार्य करना था तथा दूसरा कारण वहाँ अस्पृश्यता की प्रथा अतीव उग्र होने से निम्न वर्गों की जातियों का अधिक संख्या में ईसाई बनना था। शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरी स्कूलों तथा कॉलिजों का प्रभाव १८८५ तक निरन्तर बढ़ता गया। इसके बाद आर्यसमाज के डी० ए० वी० कॉलिजों की स्थापना से इनकी प्रगति अवरुद्ध हुई।

(७) मिशनरियों का भारतीय शिक्षा के क्षेत्र पर वर्चस्व

ईस्ट इण्डिया कम्पनी १८१३ के चार्टर द्वारा निश्चित की गयी एक लाख रुपये की वार्षिक शिक्षा निधि में से मिशनरियों की शिक्षा-संस्थाओं को १८३५ ई० तक कोई सहायता नहीं दे रही थी। वस्तुत: इस निधि को बनाने का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी था कि इससे मिशनरियों की शिक्षा-संस्थाओं के प्रभाव को सन्तुलित और नियन्त्रित करने के लिए कम्पनी द्वारा संचालित ऐसी शिक्षा-संस्थायें स्थापित की जायें जो विशुद्ध रूप से धर्म-निरपेक्ष हों। अत: इस समय दो प्रकार की शिक्षा-संस्थायें विकसित होने लगीं। पहला वर्ग उन मिशनरी शिक्षा-संस्थाओं का था, जो स्कूलों में छात्रों को बाइबल के पढ़ाने पर पूरा आग्रह करती थीं। दूसरा वर्ग कम्पनी द्वारा स्थापित धर्मनिरपेक्ष स्कूलों का था। इनमें बाइबल की कोई शिक्षा नहीं दी जाती थी और ऐसे स्कूलों का सारा व्यय कम्पनी द्वारा वहन किया जाता था।

कम्पनी के स्कूल धर्मनिरपेक्ष होने के कारण भारतीय जनता में बड़े लोकप्रिय थे, क्योंकि इनमें छात्रों पर बाइबल जबर्दस्ती थोपी नहीं जाती थी। भारतीय अपने बच्चों को इसे पढ़ाने के दुष्प्रभाव से बचना चाहते थे। विद्यार्थी इसे पढ़ने से बहुत कतराते थे। कम्पनी के स्कूलों के पास आर्थिक साधन भी मिशनरियों की तुलना में अधिक थे। मिश-नरियों को इस समय यह आशंका हुई कि वे कम्पनी के स्कूलों के साथ प्रतियोगिता में देर तक नहीं टिक सकेंगे। अत: उन्होंने कम्पनी द्वारा भारतीय स्कूलों के विरुद्ध एक प्रबल अभियान चलाया और निम्नलिखित दावे करने शुरू किये—(क) कम्पनी के स्कूल निरीश्वर और नास्तिक हैं, क्योंकि उनमें कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। ऐसे स्कूल समाज के लिए निश्चित रूप से हानिकर हैं। इनकी शिक्षा छात्रों का पूर्ण विकास नहीं कर पाती है, अत: स्कूलों में बाइबल की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिये।

(ख) यदि राजनीतिक कारणों से ऐसी शिक्षा दी जानी सम्भव न हो तो

कम्पनी को शिक्षा के क्षेत्र से बिल्कुल पृथक् हो जाना चाहिये और इसका सम्पूर्ण दायित्व मिशन स्कूलों को सौंप देना चाहिए।

(ग) सरकारी स्कूलों पर मिशनरी स्कूलों की तुलना में कहीं अधिक व्यय होता था। कम्पनी के पास शिक्षासम्बन्धी कार्यों के लिए धनराशि सीमित थी। अतः मिशनरियों की दृष्टि में इसका सर्वोत्तम उपयोग मिशनरी शिक्षासंस्थाओं को अनुदान देकर किया जा सकता था। इस प्रकार कम खर्च में अधिक छात्रों को शिक्षा दी जा सकती थी। कम्पनी द्वारा स्थापित स्कूलों की तुलना में कहीं अधिक मिशनरी स्कूल चलाये जा सकते थे।

(घ) मिशनरियों का यह दावा था कि छात्रों को वाइवल की शिक्षा देने के कारण वे वास्तव में छात्रों को सच्ची और सर्वांगीण शिक्षा दे रहे हैं। इस कारण उन्हें कम्पनी से अनुदान पाने का नैतिक अधिकार है। उनकी यह माँग थी कि शिक्षा-संस्थाओं को दिये जाने वाले अनुदानविषयक नियमों की एक संहिता तैयार की जानी चाहिये और मिशनरी स्कूलों को अनुदान देने का अधिकार कानूनी वना दिया जाना चाहिये जिसके अनुसार प्रत्येक मिशन स्कूल को पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती रहे।

(ङ) मिशनरियों की सम्मति में भारत में शिक्षाविषयक आदर्श स्थिति तभी स्थापित हो सकती थी, जब कम्पनी शिक्षा के क्षेत्र से बिल्कुल पृथक् हो जाय और विभिन्न मिशनों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाएँ ही देश में शिक्षा के प्रसार का कार्य करें।

मिशनरी अपने उपर्युक्त दावों का समर्थन इंग्लैंड की तत्कालीन शिक्षाविषयक स्थिति के आधार पर करते थे। उनका यह कहना था कि चूँकि इंग्लैंड में प्राथमिक शिक्षा की संस्थायें और स्कूल चर्च द्वारा चलाये जाते हैं, अतः भारत में भी ये स्कूल मिशनरियों द्वारा चलाये जाने चाहिये। जिस प्रकार इंग्लैंड में चर्च का सब स्कूली शिक्षा-संस्थाओं पर लगभग एकाधिकार है, वैसा ही भारत में मिशनरी शिक्षा-संस्थाओं को प्राप्त होना चाहिये। कम्पनी को यह उचित है कि वह अपनी वार्षिक शिक्षा सम्बन्धी निधि से आवश्यक अनुदान मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों को प्रदान करे तथा अपने स्कूल न चलाये। स्कूलों को अनुदान देने के लिए इंग्लैंड की भाँति कुछ निश्चित कायदे-कानून बनाये जायें और उन्हें पूरा करने वाली संस्थाओं को ही आर्थिक सहायता दी जानी चाहिये।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात थी कि उस समय किसी अधिकारी ने इंग्लैंड और भारत की सर्वथा भिन्न परिस्थितियों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन दिनों इंग्लैंड और भारत में ईसाई मिशनरियों का प्रभाव इतना अधिक था कि कम्पनी ने मिशनरियों के ये सब दावे चार्ल्स वुड के १८५४ के शिक्षासम्बन्धी खरीते में सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लिये। इससे भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरी स्कूलों का वर्चस्व अच्छी तरह स्थापित हो गया। जिस समय महर्षि ने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरियों का प्रभुत्व पूर्णरूप से स्थापित हो चुका था।

(८) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शिक्षाविषयक नीति के तीन युग

ईस्ट इंडिया कम्पनी की शिक्षाविषयक नीति को तीन बड़े युगों में बाँटा जा सकता है—(१) पहला युग १६०० से १७६५ तक का है। इस युग में कम्पनी विशुद्ध

व्यापारिक संस्था थी। उसका एकमात्र लक्ष्य अपने व्यापार को बढ़ाना और इस क्षेत्र में अपने प्रवल प्रतिद्वन्द्वी डच और फ्रेंच कम्पनियों के साथ संघर्ष करना तथा उन्हें परास्त करना था। १७६३ में तृतीय फ्रेंच युद्ध की समाप्ति के साथ यह युग समाप्त हो गया। इसके साथ ही भारतीय राज्यों के साथ कम्पनी के राजनीतिक संघर्ष होने लगे और इसके परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न प्रदेशों पर कम्पनी का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित होने लगा। यह पलाशी की लड़ाई (१७५७ ई०) और मुगल वादशाह शाह आलम द्वारा अंग्रेजों को वंगाल, विहार और उड़ीसा की दीवानी (१७६५) देने के साथ शुरू हुआ। इस अवधि में कम्पनी ने भारतीयों को शिक्षा देने के लिए कोई शिक्षा-संस्थायें नहीं खोली थीं। १६९८ ई० में कम्पनी के चार्टर में सुप्रसिद्ध मिशनरी धारा जोड़कर पार्लियामेण्ट ने उसे यह आदेश दिया कि वह अपनी कोठियों में पादरी रखें तथा अपने अंग्रेज कर्मचारियों के वच्चों के लिए स्कूल स्थापित करें। इस समय कम्पनी ने केवल अपने यूरोपियन सेवकों के वच्चों की शिक्षा का प्रवन्ध किया। भारतीयों की शिक्षा के लिए उस समय कम्पनी द्वारा व्यवस्था का कोई प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि विशुद्ध व्यापारिक संस्था होने के कारण कम्पनी भारतीयों की शिक्षा पर व्यय करने तथा उसका दायित्व लेने को तैयार नहीं थी।

दूसरा युग १७६५ से १८१३ तक रहा। १७६५ के वाद कम्पनी ने भारतीय प्रदेशों का शासन प्रवन्ध अपने हाथ में लेना शुरू कर दिया। इस समय कम्पनी से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह पुराने हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों की भाँति अपने प्रजाजनों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करे। किन्तु कम्पनी का संचालक मण्डल भारत के पुराने शासकों की पद्धति का अनुसरण करने की अपेक्षा ग्रेट ब्रिटेन में प्रचलित पद्धति में अधिक विश्वास रखता था। उस समय तक ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने जनता की शिक्षा की व्यवस्था के लिए कोई विशेष कार्य नहीं किया था। अतः कम्पनी भारतीयों की शिक्षा के लिए किसी प्रकार की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं थी।

किन्तु शनैः-शनैः राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर कम्पनी के अधिकारी शिक्षा-संस्थायें स्थापित करने के लिए विवश हुए और उन पर भारतीयों की शिक्षा का दायित्व सँभालने के लिए जोर डाला जाने लगा। भारत के पुराने शासक पाठशालाओं तथा मदरसों की स्थापना किया करते थे, इन्हें आर्थिक सहायता देने के लिए आसपास की कुछ जागीरों की आमदनी उनके साथ वाँध दिया करते थे। पंडितों तथा मौलवियों को अनेक प्रकार की उपाधियाँ देकर सम्मानित करते थे। इन्हें कई वार मासिक वृत्ति भी दी जाती थी। कम्पनी के शासकों ने पुराने राजाओं और वादशाहों की इस परम्परा का अनुसरण करना वांछनीय और हितकर समझा, क्योंकि इससे वे भारतीय जनता की सद्भावना प्राप्त कर सकते थे। उस समय कम्पनी ने भारत में अपना शासन सुदृढ़ करने के लिए और समाज के उच्च वर्गों का विश्वास प्राप्त करने के लिए कुलीन एवं प्रतिष्ठित घरानों के वच्चों को कम्पनी में ऊँचे पदों पर नियुक्त करने की नीति अपनाई, इससे वह प्रभावशाली भारतीयों को प्रसन्न तथा अपना समर्थक बनाये रख सकती थी। इस दृष्टि से सर्वप्रथम कलकत्ता में कम्पनी ने १७८० में एक मदरसे की और १७९१ में वाराणसी में संस्कृत कॉलिज की स्थापना की। इन दोनों शिक्षा-संस्थाओं का आरम्भिक मनोरंजक इतिहास कम्पनी के उद्देश्यों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

मदरसे की स्थापना—सितम्बर १७८० में कलकत्ता में मुस्लिम धर्मशास्त्र के एक दिग्गज विद्वान मुगीदुद्दीन का आगमन हुआ। कलकत्ता के प्रतिष्ठित मुसलमानों ने इस अवसर पर तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स (१७७४-८५) को इस आशय का एक आवेदन-पत्र दिया कि उपर्युक्त मुस्लिम विद्वान् के शुभागमन का लाभ उठाते हुए कलकत्ता में एक मदरसा अथवा मुस्लिम महाविद्यालय इनकी अध्यक्षता में स्थापित किया जाय। इसमें इनकी ख्याति से आकृष्ट होकर मुस्लिम धर्मशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से छात्र आयेंगे और यहाँ पढ़ने वाले छात्र ब्रिटिश जजों को मुस्लिम कानून की व्याख्या करने में वहुमूल्य सहायता प्रदान कर सकेंगे।[1]

वारेन हेस्टिंग्स ने अपनी दूरदृष्टि से मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया। उसने फौरन मुगीदुद्दीन को बुलाया, उसे मदरसे के प्रधानाचार्य का पद देने का प्रस्ताव रखा। इसे मुस्लिम विद्वान् ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। वारेन हेस्टिंग्स इस विद्यालय को खोलने के लिए कितना उत्सुक था, यह इस वात से स्पष्ट है कि ग्रेट ब्रिटेन में स्थित कम्पनी के संचालकों से इस योजना की स्वीकृति मिलने तक उसने इस मदरसे का सारा व्यय अपनी निजी आय से पूरा करने की घोषणा की। यह मदरसा अक्तूवर १७८० में स्थापित हुआ, चार महीने के भीतर इसकी कीर्ति दूर-दूर तक इतनी फैल गई कि जनवरी १७८१ में वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी के संचालकों को सूचना दी कि काश्मीर, गुजरात, कर्नाटक जैसे दूरवर्ती स्थानों से पढ़ने के लिए विद्यार्थी इस मदरसे में आ गये हैं। वारेन हेस्टिंग्स का इस मदरसे को स्थापित करने का प्रमुख उद्देश्य कलकत्ता के मुसलमानों को प्रसन्न करना और अदालतों में मुस्लिम मामलों पर विचार करने में अंग्रेज जजों को सहायता देने के लिए मुस्लिम विद्वान् उपलब्ध कराना था।[2]

कम्पनी के संचालकों ने न केवल इस मदरसे की स्थापना और संचालन के लिए आवश्यक स्वीकृति दी, अपितु इसका खर्चा चलाने के लिए २९,००० रुपये की आमदनी देने वाली जागीर भी मदरसे के साथ सम्वद्ध कर दी।

कलकत्ता के मदरसे की स्थापना मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए की गयी थी। इसके ११ वर्ष वाद हिन्दुओं को खुश करने के लिए बनारस के तत्कालीन रेज़ीडेण्ट जोनाथन डंकन (१७५६-१८११) ने यहाँ संस्कृत कॉलिज की स्थापना की योजना वनाई और तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस (१७८६-९३) की स्वीकृति मिलने से पूर्व ही इसकी स्थापना भी कर दी। डंकन के मतानुसार इस कॉलिज की स्थापना से कम्पनी को दो वड़े लाभ होने की आशा थी।[3] पहला लाभ "अंग्रेजों की कीर्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि तथा स्थानीय हिन्दुओं में हमारी सरकार का लोकप्रिय होना था।" दूसरा मुख्य लाभ यह था कि इससे हिन्दू कानून के ज्ञान का संरक्षण और प्रसार हो सकेगा, यह ऐसे भावी विद्वानों और हिन्दू कानून के व्याख्याताओं की जन्मभूमि होगी, जो यूरोपियन जजों को सारे देश में एक जैसा नियमित न्यायिक प्रशासन स्थापित करने में सहायक सिद्ध

---

१. डब्ल्यू० एच० शार्प, सिलेक्शन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, खण्ड १, पृ० ७-८।

२. ए० हावेल, एजुकेशन इन इण्डिया, पृ० १।

३. शार्प, पूर्वोक्त पुस्तक, खण्ड १, पृ० १२।

होंगे। पहले साल इस कॉलिज को १४,००० रुपये का अनुदान दिया गया। बाद में यह राशि बढ़ाकर २०,००० प्रति वर्ष कर दी गयी। इसका पाठ्यक्रम उस समय की संस्कृत पाठशालाओं जैसा था, इसमें अनुशासन की व्यवस्था "धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित शिक्षासम्बन्धी विधि-विधानों तथा मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में बताये गये नियमों के अनुसार की जानी थी।"[१]

ये दोनों शिक्षा-संस्थायें कम्पनी द्वारा आरम्भिक वर्षों में अनुसरण की जाने वाली शिक्षाविषयक प्राच्यवादी विचारधारा (Orientalist School) के प्रादुर्भाव को सूचित करती हैं। इसको स्वीकार करने वालों की यह धारणा थी कि कम्पनी को भारतीय जनता को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान सिखाने का कोई प्रयास नहीं करना चाहिये, यह ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा होगा। इसी कारण मिशनरियों को भी कम्पनी के प्रदेशों में धर्म-प्रचार की अनुमति नहीं देनी चाहिये। कम्पनी का एकमात्र कर्तव्य यही है कि वह हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों का अनुसरण करते हुए संस्कृत, अरबी, फारसी के अध्ययन को प्रोत्साहित करे। यहाँ की पुरानी शिक्षा पद्धति भारतीयों के लिए पर्याप्त है। कम्पनी की इस नीति का आधार धार्मिक मामलों में तटस्थ रहने तथा संस्कृत और अरबी की शिक्षा के प्रचार और प्रसार से भारतीयों का सद्भाव प्राप्त करने की और उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा थी। पहले यह बताया जा चुका है कि चार्ल्स ग्राण्ट और विलबर फोर्स ने कम्पनी के चार्टर के नवीकरण के समय में १७९२ में इस नीति का उग्र विरोध किया था। किन्तु कम्पनी के डायरेक्टरों के विरोध के कारण उनका प्रयास सफल नहीं हो सका। उस समय शिक्षासम्बन्धी बहस के दौरान कम्पनी के एक डायरेक्टर ने कहा था, "हम लोग अपनी मूर्खता से अमरीका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल और कॉलिज कायम हो जाने दिये। अब फिर भारत में उस मूर्खता को दुहराना ठीक नहीं है।"

१८१३ में मिशनरियों के प्रबल आन्दोलन और विलबर फोर्स द्वारा उसकी जबर्दस्त वकालत के कारण कम्पनी को बड़ी अनिच्छा से भारतीयों को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ा और इससे कम्पनी की शिक्षा नीति में तीसरा युग शुरू हुआ।

विवादों का युग (१८१३-५३)—इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भारतीयों की शिक्षा पद्धति के बारे में जितने अधिक उग्र और तीव्र विवाद हुए, वैसे अब तक कभी नहीं हुए थे। ये विवाद शिक्षा नीति के उद्देश्य, इन्हें क्रियान्वित करने के साधनों व अभिकरणों तथा शिक्षा के माध्यम के बारे में थे। शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में ग्राण्ट और विलबर फोर्स जैसे विचारक भारतीयों को शिक्षा देना इंग्लैंड का कर्तव्य मानते थे। किन्तु कम्पनी के अधिकारी इस शिक्षा देने का केवल यही उपयोगितावादी लक्ष्य मानते थे कि इसके द्वारा कम्पनी को अपना शासन चलाने के लिए आवश्यक कर्मचारी कम वेतन पर उपलब्ध हो सकेंगे।

शिक्षा के साधनों के बारे में दो विचारधारायें थीं। पहली विचारधारा के अनुसार शिक्षा समाज के उच्च वर्गों से निम्न वर्गों की ओर स्वतः प्रवाहित होती है।

---

२. पूर्वोक्त पुस्तक।

अतः कम्पनी का कार्य केवल इतना ही है कि वह भारतीय समाज के उपरले वर्गों को शिक्षा प्रदान करे और इसे प्राप्त करने के बाद ये लोग जनसाधारण में इस शिक्षा का प्रसार करें। दूसरी विचारधारा के अनुसार कम्पनी को सब भारतवासियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये थी।

तीसरा मतभेद इस प्रश्न पर था कि शिक्षा देने का कार्य किन संस्थाओं के माध्यम से कराया जाये। ग्राण्ट जैसे विचारक इंग्लैंड के उदाहरण का अनुसरण करते हुए ईसाई मिशनरियों को शिक्षा का समूचा कार्य सौंपने के पक्ष में थे। किन्तु कम्पनी के अधिकांश अधिकारी इसे कम्पनी के शासन के लिए खतरा समझते थे, क्योंकि उन दिनों मिशनरी शिक्षा के माध्यम का लाभ उठाते हुए भारतीयों को ईसाई बनाने का पूरा प्रयास कर रहे थे। इससे बचने के लिए कम्पनी द्वारा धार्मिक मामलों में तटस्थता की नीति पर बल दिया जाता था और यह कहा जाता था कि भारतीयों को स्वयमेव अपनी शिक्षासम्बन्धी संस्थायें स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। तीसरा दृष्टिकोण कम्पनी द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थायें स्थापित करके भारतीयों को शिक्षा देने का था।

किन्तु सबसे अधिक उग्र विवाद शिक्षा के माध्यम के बारे में था। इस बारे में उस समय तीन पक्ष थे। पहला पक्ष बंगाल में कम्पनी के पुरानी पीढ़ी के अधिकारियों का था। ये लोग वारेन हेस्टिंग्स (१७७४-८५) और मिण्टो (१८०७-१३) की नीति का अनुसरण करते हुए संस्कृत, अरबी, फारसी के अध्ययन को प्रोत्साहित करना चाहते थे। इन्हीं भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहते थे। उनका यह सुझाव था कि पश्चिम के विज्ञानों की शिक्षा भी इन्हीं प्राचीन भाषाओं के माध्यम से दी जानी चाहिये। दूसरा पक्ष मनरो तथा एलफिन्सटन जैसे प्रबुद्ध प्रशासकों का था जो आधुनिक भारतीय भाषाओं—बँगला, मराठी, हिन्दी, गुजराती, तमिल आदि के माध्यम से भारतीयों को शिक्षा देना चाहते थे। उनका प्रधान तर्क यह था कि यही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान भारत की साधारण जनता तक पहुँच सकता है।

तीसरा पक्ष चार्ल्स ग्राण्ट के अनुयायियों का था, जो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीयों को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्रदान करना चाहता था। इस पक्ष का पोषण करने वाले ईसाई मिशनरी और कम्पनी की सेवा में रत तरुण कर्मचारी थे। शुरू में इनके पक्ष का समर्थन करने वाला कोई प्रभावशाली व्यक्ति नहीं था। किन्तु भारत के गवर्नर जनरल की परिषद् का प्रथम कानूनी सदस्य मनोनीत होने पर कलकत्ता आने पर मैकॉले ने इस पक्ष का नेतृत्व ग्रहण किया।

१८१३ के चार्टर द्वारा की गई शिक्षासम्बन्धी व्यवस्था से कम्पनी के संचालक प्रसन्न नहीं थे, अतः उन्होंने इसके अनुसार शिक्षा के व्यय के लिए रखी गई एक लाख रुपये की धनराशि का व्यय करने में वर्षों तक कोई उत्साह नहीं दिखाया। उपर्युक्त विवादों के कारण यह भी स्पष्ट नहीं था कि इस राशि का व्यय किस प्रकार किया जाय। लगभग एक वर्ष बाद, ३ जून, १८१४ के शिक्षाविषयक पहले खरीते में संचालकों ने कम्पनी को शिक्षा के लिए धनराशि का विनियोग करने के बारे में कुछ निर्देश भेजे। इनके अनुसार उनका यह विचार था कि "परम्परागत शिक्षा पद्धति के अनुसार भारतीयों को शिक्षा देने में इस राशि का उपयोग किया जाना चाहिये। इस राशि की व्यवस्था

इसलिए की गई है कि भारतीयों के साथ हमारे सम्बन्ध अधिक मधुर, प्रीतिपूर्ण और सुदृढ़ हों। हमें विचारवान् भारतवासियों के हृदयों के भावों का पता लगे, अतः हमें पुरानी पद्धति के अनुसार पंडितों को अपने घरों में शिक्षा देने की पुरानी परिपाटी का अनुसरण करने देना चाहिये। ऐसे पंडितों को उपाधियों से सम्मानित किया जाना चाहिये। कुछ लोगों को आर्थिक सहायता भी दी जानी चाहिये और कम्पनी के कर्मचारियों को संस्कृत भाषा सीखने में अधिक दिलचस्पी लेनी चाहिये। संस्कृत में गणित, ज्योतिष, ज्यामिति, बीजगणित आदि के अनेक उत्तम ग्रन्थ हैं। इनका अंग्रेजी में अनुवाद कराया जाना चाहिए।"[1] कम्पनी के संचालकों के ये निर्देश वस्तुतः १८१३ के चार्टर के अनुभाग ४३ की मूल भावना के सर्वथा प्रतिकूल थे। अगले दस वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में कम्पनी द्वारा कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी। निम्नलिखित तालिका द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा कि चार्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम एक लाख रुपये के अनुदान की राशि भी पूरी तरह से व्यय नहीं की गई।[2] उस समय एक पौण्ड दस रुपये के बराबर था। अतः एक लाख रुपये के व्यय के लिए १० हजार पौण्ड का खर्च करना जरूरी थी। निम्न तालिका से विदित होगा कि पहले दस वर्षों में केवल दो वर्ष १८१४ तथा १८२२ ही ऐसे थे जब निर्धारित धनराशि व्यय हुई। इसका अधिकांश भाग बंगाल में ही व्यय हुआ।

पार्लियामेण्ट द्वारा स्वीकृत शिक्षा की धनराशि का व्यय (पौण्डों में)

वर्ष	बंगाल	मद्रास	बम्बई	सर्वयोग
१८१३	४,२०७	४८०	४४२	५,१२६
१८१४	११,६०६	४८०	४४२	१२,५८५
१८१५	४,४०५	४८०	५३७	५,४२२
१८१६	५,१४६	४८०	५७८	६,२०४
१८१७	५,१७७	४८०	७९५	६,४५२
१८१८	५,२११	४८०	६३०	६,३२१
१८१९	७,१९१	४८०	१२७०	८,९४१
१८२०	५,८०७	४८०	१४०१	७,६८८
१८२१	६,८८२	४८०	५९४	७,९५६
१८२२	९,०८१	४८०	५९४	१०,१५५
१८२३	६,१३४	४८०	५९४	७,२०८

१७ जुलाई, १८२३ को सपरिषद् गवर्नर जनरल ने बंगाल प्रान्त में शिक्षासम्बन्धी कार्य करने के लिए १० सदस्यों की सार्वजनिक शिक्षा की एक सामान्य समिति (General Committee of Public Instruction) बनाई और एक लाख रुपये के अनुदान का व्यय करने का कार्य भी इस समिति को सौंपा गया। इसके सदस्यों में संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान एच० एच० विल्सन (H. H. Wilson) और मैकॉले की नीति का उग्र विरोध करने वाले एच० टी० प्रिन्सेप थे। इसके अधिकांश सदस्य संस्कृत, अरबी तथा फारसी के

१. सिलेक्शन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, खण्ड १, पृ० २३-२४।
२. सैयद नूरुल्ला तथा जे० पी० नायक, ए हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इण्डिया, पृ० ९१।

साहित्य के प्रशंसक थे। अगले दस वर्षों में इस समिति ने संस्कृत और अरबी को पूरा प्रोत्साहन देने की दृष्टि से कलकत्ता के मदरसे और बनारस के संस्कृत कॉलिज का पुन: संगठन किया, १८२४ में कलकत्ता में एक नये संस्कृत कॉलिज की स्थापना की, आगरा और दिल्ली में दो अन्य पौरस्त्य महाविद्यालय स्थापित किये। संस्कृत और अरबी ग्रन्थों के मुद्रण और प्रकाशन का कार्य बड़े पैमाने पर आरम्भ किया और इसके साथ ही उपयोगी ज्ञान देने वाली अंग्रेजी पुस्तकों का संस्कृत, फारसी और अरबी में अनुवाद-कार्य पंडितों और मौलवियों के सहयोग से आरम्भ किया गया।

किन्तु समिति के इन कार्यों का भारत और इंग्लैंड में काफी विरोध किया गया। कलकत्ता में महर्षि दयानन्द को जन्म देने वाले वर्ष १८२४ में संस्कृत कॉलिज की स्थापना की गई थी। राजा राममोहन राय ने इसकी स्थापना का प्रस्ताव होने पर ११ दिसम्बर, १८२३ को तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड एम्हर्स्ट (१८२३-२८) को एक स्मृतिपत्र देते हुए इस योजना को तुरन्त समाप्त करने पर बल दिया। उनका यह कहना था कि 'सरकार को इस कॉलिज की स्थापना के स्थान पर अधिक उदार एवं प्रबुद्ध शिक्षा पद्धति का विकास करना चाहिये, जिसमें गणित, रसायनशास्त्र, शरीर रचनाशास्त्र तथा अन्य उपयोगी विज्ञान पढ़ाये जायें। इस धनराशि से यूरोप में शिक्षित विद्वानों की सहायता से ऐसा महाविद्यालय स्थापित करना चाहिये, जिसमें सभी आवश्यक पुस्तकें, उपकरण तथा अन्य सामग्री हो।' उनका यह भी कहना था कि 'संस्कृत के शब्दों तथा धातुओं के रूप रटने वाली शिक्षा भारतीयों को देना बिल्कुल बेकार है।' लार्ड बेकन के समय से पहले यूरोप में स्थापित विद्यालयों की भाँति इस शिक्षणालय से केवल यही आशा की जा सकती है कि "यह युवकों को व्याकरण की ऐसी बारीकियाँ तथा दर्शन शास्त्र के ऐसे सूक्ष्म भेद सिखायेगा, जिसका उनके लिए तथा समाज के लिए कोई उपयोग न होगा। यहाँ छात्रों को दो हजार वर्ष पहले की ही बातें मालूम होंगी।' उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण अवधि के १२ वर्ष संस्कृत व्याकरण की सूक्ष्मताओं, वेदान्त के काल्पनिक दर्शन, मीमांसा में वैदिक मन्त्रों की अप्रचलित व्याख्याओं तथा नव्य न्याय की बारीकियाँ सीखने में बरबाद हो जायेंगे। संस्कृत शिक्षा पद्धति इस देश को अज्ञानान्धकार में बनाये रखने का सर्वोत्तम साधन है।"[१]

हावेल ने उनके स्मृति-पत्र पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "भारत में जिस समय भारतीय यूरोपियन साहित्य की शिक्षा देने के लिए चीख-पुकार कर रहे थे, उस समय देश की नवीन शिक्षा पद्धति को आरम्भ करने का कार्य करने वाले अंग्रेजों की एक समिति इस बात पर आग्रह कर रही थी कि भारतीयों को पूर्वी भाषाओं की ही शिक्षा दी जाय।"[२]

इसी समय इंग्लैंड में कम्पनी के संचालकों के विचारों में शनैः-शनैः परिवर्तन आने लगा और वे भारत में परम्परागत प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान के स्थान पर उपयोगी एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा पर बल देने लगे। यह बात उनके १८ फरवरी, १८२४

---

१. इंगलिश वर्क्स ऑफ् राजा राममोहन राय, पृ०, ४७२-७४।
२. ए० पी० हावेल, एजुकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया, पृ० १८।

के शिक्षाविषयक खरीते से स्पष्ट हो जाती है।[1] यह भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण है कि इसमें पहली बार प्राचीन परम्परागत शिक्षा पद्धति और भाषाओं के प्रति तिरस्कार एवं अवमानना की भावना प्रकट की गयी है; पश्चिमी शिक्षा की उत्कृष्टता को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हुए इस बात पर बल दिया गया है कि उपयोगी विद्याओं के पढ़ाने पर धनराशि व्यय की जाय, न कि हिन्दू पुराणों की निरर्थक कहानियों अथवा कुरान की शिक्षाओं को पढ़ाने पर।

संचालकों के विचारों में इस परिवर्तन का प्रधान कारण इस समय इंग्लैंड में अतीव लोकप्रिय होने वाली बेन्थम (१७४८-१८३२) की उपयोगितावादी विचारधारा (utilitarianism) थी। इसके कारण वहाँ सभी क्षेत्रों में आमूलचूल क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। बेन्थम का प्रमुख शिष्य जेम्स मिल (James Mill) इस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी में काम करता था, तत्कालीन संचालकों में कोई भी उच्च कोटि का विचारक नहीं था, अतः वे महत्त्वपूर्ण विषयों पर नीति निर्धारण के लिए मिल की सलाह लिया करते थे और उपर्युक्त खरीता मिल ने ही तैयार किया था। परिवर्तन का दूसरा कारण बेन्थम के प्रशंसक और अनुयायी विलियम बैंटिक का गवर्नर जनरल बनाना था। भारत आने से पहले जब वह जेम्स मिल से लन्दन में मिला था तो उसने उसे विश्वास दिलाया था कि अब वास्तव में भारत का गवर्नर जनरल बेन्थम होगा। बैंटिक का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा में सुधार होना आवश्यक है। पहली जून १८३४ को शिक्षा पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए उसने अपने एक पत्र में लिखा था —"मैं भारत के पुनरुज्जीवन के लिए सामान्य शिक्षा को रामबाण इलाज समझता हूँ।"[2] डा० रमेशचन्द्र मजूमदार के मतानुसार मैकॉले के भारत आने से पहले बैंटिक ने अपने शिक्षासम्बन्धी विचारों की योजना बना ली थी। वह इसको क्रियान्वित करने के लिए उपयुक्त अवसर की खोज में था और यह अवसर शिक्षा के माध्यम पर होने वाले वाद-विवाद ने शीघ्र ही प्रस्तुत कर दिया।

प्राच्य तथा पाश्चात्यभाषा के पक्षपातियों का विवाद—पहले यह बताया जा चुका है कि कम्पनी के अधिकारियों में भारतीयों को शिक्षा देने के लिए शिक्षा के माध्यम के बारे में दो प्रधान पक्ष थे। कम्पनी की पुरानी पीढ़ी के कर्मचारी हेस्टिंग्स का अनुसरण करते हुए संस्कृत, अरबी तथा फारसी की पौरस्त्य तथा प्राच्य भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहते थे। अतः उन्हें प्राच्यवादी या पौरस्त्यवादी (Orientalist) कहा जाता था। इसके सर्वथा प्रतिकूल कम्पनी के तरुण अधिकारियों का यह विचार था कि शिक्षा का माध्यम पाश्चात्य जगत् में प्रचलित भाषा को बनाया जाना चाहिये। अतः वे पाश्चात्यभाषावादी (Occidentalist) कहलाते थे। उस समय सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य समिति के १० सदस्यों में आधे प्राच्यवादी और आधे पाश्चात्यवादी थे। इन दोनों में इतना अधिक मौलिक मतभेद था कि समिति के सामने शिक्षा का कोई भी विषय आने पर भाषासम्बन्धी विवाद खड़ा हो जाता था। दोनों दलों के सदस्यों की संख्या बराबर होने के कारण कोई निर्णय नहीं होता था। यदि होता था तो अगली बैठक में

---

१. सिलेक्शन्स फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, खण्ड १, पृ० ८०-८१।

२. रमेशचन्द्र मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग २, पृ० ४५।

दूसरे दल के सदस्य उस निर्णय को पलट देते थे। यह स्थिति अवांछनीय थी और देर तक नहीं चल सकती थी। इससे शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा गतिरोध पैदा हो गया था। इसे दूर करने के लिए दोनों पक्षों ने यह निर्णय किया कि वे इस विषय में अपने विचार लिखित रूप से गवर्नर जनरल के सम्मुख प्रस्तुत करके उनसे इस समस्या का समाधान करवायें। इस समय तक भारत में गवर्नर जनरल की परिषद् के प्रथम कानूनी सदस्य के रूप में मैकॉले का आगमन हो चुका था। वे गवर्नर जनरल द्वारा शिक्षा समिति के अध्यक्ष नियत किये जा चुके थे। प्राच्य भाषा पक्षपातियों के पक्ष को इस समिति के सचिव एच० टी० प्रिंसेप ने तथा अंग्रेजी भाषा के पक्ष को लार्ड मैकॉले ने अपने नोटों में प्रस्तुत किया।

प्राच्यभाषावादियों के तर्क—प्रिंसेप ने प्राच्य भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में अनेक प्रबल तर्क प्रस्तुत किये। पहला तर्क १८१३ के चार्टर एक्ट के अनुभाग ४३ की कानूनी व्याख्या थी। इस अनुभाग में "साहित्य के पुनरुज्जीवन तथा सुधार के लिए तथा भारत के विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिए भारत के ब्रिटिश प्रदेशों में रहने वाले प्रदेशों के व्यक्तियों में विज्ञानों की जानकारी बढ़ाने के लिए एक लाख रुपया व्यय करने की व्यवस्था की गयी थी।" प्राच्यभाषावादियों का मत था कि इस प्रावधान द्वारा पुनरुज्जीवित और प्रोत्साहित किये जाने वाले साहित्य का आशय मुसलमानों और हिन्दुओं के अरबी, फारसी तथा संस्कृत के वाङ्मय से है। अतः इनको पढ़ाने के लिए बनाये गये विद्यालयों तथा महाविद्यालयों पर ही यह राशि व्यय की जानी चाहिये। भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें इन संस्थाओं में पढ़ाने के लिए लगाया जाय और इन विद्वानों द्वारा उपयोगी ग्रन्थ लिखवाये और प्रकाशित किये जायें तथा इन्हें सम्मानित किया जाये। इस प्रकार सम्मानित किये जाने वाले विद्वान् इस देश के सुप्रसिद्ध पण्डित और मौलवी होने चाहिये। पार्लियामेण्ट द्वारा की गयी इस व्यवस्था को मानने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी बाधित है और इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कानूनी दृष्टि से यह तर्क सही था।

दूसरी युक्ति यह थी कि हिन्दू विदेशी एवं विधर्मी अंग्रेजों को म्लेच्छ और मुसलमान इन्हें काफिर समझते हैं। वे इनसे बड़ी घृणा करते हैं। वे इनकी भाषा सीखने के लिए भी तैयार नहीं हैं। अतः यदि चार्टर के अनुसार भारतीयों में पश्चिमी जगत् के ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करना हो तो वह अंग्रेजी भाषा के माध्यम से नहीं हो सकता है, क्योंकि इसे वे बहुत तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। यदि उन्हें पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जानी हो तो यह सुविधापूर्वक संस्कृत और अरबी, फारसी के माध्यम से दी जा सकती है। इन भाषाओं में विज्ञान के ग्रन्थों का अनुवाद हो जाने पर वे इन्हें बड़े प्रेम से पढ़ेंगे, इससे भारतीयों में बड़ी तेजी से शिक्षा का प्रसार होगा। अतः प्राच्य भाषावादियों का यह विश्वास था कि अंग्रेजी भाषा में लिखी विज्ञान की पुस्तकों का अरबी और संस्कृत में अनुवाद करने की नीति सर्वथा समीचीन और पार्लियामेण्ट द्वारा पास की गयी कानूनी व्यवस्था के अनुरूप है, इसमें तब तक कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है जब तक स्वयमेव पार्लियामेण्ट द्वारा चार्टर का संशोधन न किया जाये।

तीसरा तर्क कलकत्ता के मदरसा तथा बनारस के संस्कृत कॉलिज का व्यय चलाने

के लिए उनके साथ लगायी गयी जागीरों की ग्रामदनी की व्यवस्था थी। पाश्चात्य भाषा-वादियों के मतानुसार संस्कृत, फारसी तथा अरवी की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ विल्कुल वेकार थीं। वे छात्रों को वर्तमान युग की आवश्यकता के अनुरूप कोई उपयोगी शिक्षा नहीं दे रही थीं। अतः वे इन संस्थाओं को तुरन्त वन्द कर देना चाहते थे। किन्तु प्राच्य भाषावादी इस वात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि ये संस्थायें कम्पनी ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों का सद्भाव और समर्थन प्राप्त करने के लिए स्थापित की हैं, ये इस कार्य में सफल हुई हैं, अतः इन्हें वन्द नहीं करना चाहिये, अपितु इनका विस्तार करना उचित होगा। अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए प्रिसेप ने मदरसे के वारे में यह कानूनी प्रश्न उठाया था कि इसका व्यय चलाने के लिए एक विशेष जमींदारी की मालगुजारी इसे देने का निर्णय किया गया था। वर्तमान सरकार इस निर्णय को पलट नहीं सकती है। यदि इन संस्थाओं को कम्पनी द्वारा दिया जाने वाला अनुदान वन्द भी कर दिया जाय तो भी इनके साथ सम्वद्ध जमींदारियों की आमदनी इन्हें मिलती रहेगी।

चौथा तर्क यह था कि अंग्रेजी भारतीयों के लिए विदेशी भाषा है। यदि यह उन पर जवर्दस्ती थोपी गयी तो वे इस वारे में अपने प्रवल रोष को उग्र विरोध या विद्रोह के रूप में प्रकट कर सकते हैं। इससे व्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। इस युक्ति में कोई वड़ा वल इसलिए नहीं था कि इस समय भारतीय वड़ी तेजी से अंग्रेजी पढ़ रहे थे। अनेक भारतीयों ने इस भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था तथा कट्टरपंथी लोगों के उग्र विरोध के वावजूद सती प्रथा के निषेध का कानून वनाने वाले और उसे सफलतापूर्वक लागू करने वाले लार्ड विलियम वैंटिक पर इस तर्क का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था।

पाश्चात्यवादी पक्ष : मैकॉले का नोट : प्रिसेप के उपर्युक्त तर्कों का उत्तर देते हुए मैकॉले ने अंग्रेजी भाषा के समर्थकों का पक्ष अपने सुप्रसिद्ध नोट में प्रस्तुत किया। समिति का अध्यक्ष होने के कारण उसने इस वाद-विवाद में पहले कोई भाग नहीं लिया। वह जानता था कि यह मामला गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में अन्तिम निर्णय के लिए प्रस्तुत होगा, अतः जव प्राच्य भाषावादियों ने एक नोट में अपना मामला परिषद् के लिए प्रस्तुत किया तो २ फरवरी, १८३५ को मैकॉले ने अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाला सुप्रसिद्ध नोट लिखा। इसमें उसने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर प्राच्य भाषावादियों की युक्तियों का खण्डन किया।

मैकॉले का प्रथम तर्क १८१३ के चार्टर के अनुभाग ४३ के शब्दों की सर्वथा नवीन व्याख्या थी। उसका यह कहना था कि इस अनुभाग में 'साहित्य' शब्द का अभिप्राय अंग्रेजी के साहित्य से है। इसमें जहाँ 'भारत के विद्वान् व्यक्ति' शब्द का प्रयोग है, वहाँ उसका अर्थ संस्कृत, अरवी या फारसी का ही विद्वान् नहीं है, अपितु यह विशेषण ऐसे व्यक्ति को भी दिया जा सकता है, जो व्रिटिश दार्शनिक लॉक (१६३२-१७१४) के दर्शन या कवि मिल्टन (१६०८-७४ ई०) के काव्य में निष्णात हो। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा भारतीयों को अंग्रेजी के माध्यम से ही दी जा सकती है। मैकॉले चार्टर के शब्दों की अपनी व्याख्या को सही मानने में दृढ़ विश्वास रखता था। उसका यह कहना था कि यदि उसकी यह व्याख्या ठीक न समझी जाय तो वह चार्टर के अनुभाग ४३ को रद्द करने के लिए एक विल पेश करने को तैयार है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैकॉले की यह

व्याख्या कानूनी दृष्टि से सही नहीं थी और चार्टर का संशोधन करने वालों की इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल थी।

मैकॉले का दूसरा तर्क यह था कि इन संस्थाओं को दी जाने वाले सहायता वन्द कर देनी चाहिए, कोई उपयोगी शिक्षा न देने के कारण इन्हें वनाये रखने का कोई औचित्य नहीं था। इन शिक्षा-संस्थाओं के साथ वाँधी गई जमींदारियों के आमदनी के तर्क का उत्तर देते हुए उसने कहा था कि यदि किसी समय उन शिक्षा-संस्थाओं को उपयोगी समझकर ऐसा किया गया था तो इसका यह आशय कदापि नहीं है कि इनको भविष्य में सदैव इस प्रकार की सहायता दी जाती रहेगी। इस वात को उसने सैनीटोरियम के उदाहरण से स्पष्ट करते हुए कहा था कि यदि आज हम किसी स्थान को स्वास्थ्यवर्द्धक समझते हुए वहाँ एक आरोग्यसदन वनाते हैं और वाद में नयी परिस्थितियों के कारण वह स्थान स्वास्थ्य के लिए घातक हो जाता है तो हम वहाँ सैनीटोरियम वनाये रखने के लिए वाध्य नहीं हैं।

उसका तीसरा तर्क यह था कि इस समय अंग्रेजी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो विश्व के सब देशों में प्रचलित है, जिसमें अतीव उच्चकोटि का साहित्य है और यही भाषा भारतीयों को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने का माध्यम वन सकती है। 'जो कोई व्यक्ति उस भाषा (अंग्रेजी) को जानता है, उसे वह विशाल वौद्धिक सम्पत्ति प्राप्त करने की कुंजी मिल जाती है, जिसका सृजन और संचय भूमंडल के सवसे अधिक वुद्धिमान राष्ट्रों ने ९० पीढ़ियों में किया है।' इसकी तुलना में संस्कृत, अरवी आदि की भाषाओं में कोई साहित्य नहीं है। इनकी खिल्ली उड़ाते हुए उसने कहा था, "क्या हम सार्वजनिक व्यय से आयुर्वेद के ऐसे चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्तों को पढ़ायेंगे जिन्हें कोई घोड़े की नाल वाँधने वाला अंग्रेज अपने लिए कलंक समझेगा। ऐसी ज्योतिष की शिक्षा देंगे, जिसे पढ़कर अंग्रेजी छात्रावास की लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसेंगी। ऐसा इतिहास पढ़ायेंगे, जिनमें तीस फीट ऊँचे और तीस हजार वर्ष तक शासन करने वाले राजाओं का वर्णन है। क्या हम ऐसा भूगोल पढ़ायेंगे जिसमें मधु और नवनीत के समुद्रों का उल्लेख है।"

भारतीयों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को म्लेच्छों की भाषा मानकर नापसन्द किये जाने वाले तर्क का उत्तर देते हुए उसने कहा कि इंग्लैंड का यह कर्तव्य है कि वह भारतीयों को उनके लिए हितकर वस्तुओं का ज्ञान कराये। यह वात निर्विवाद है कि भारतीय अंग्रेजी भाषा को वहुत पसन्द करते हैं। उन्हें अरवी और संस्कृत पढ़ना विल्कुल पसन्द नहीं है। यह इस वात से स्पष्ट है कि "भारतीय पैसा खर्च करके अंग्रेजी पढ़ना चाहते हैं, किन्तु हमारे विशाल साम्राज्य में एक भी भारतीय छात्र ऐसा नहीं है जो विना छात्रवृत्ति लिये संस्कृत या अरवी भाषा को पढ़ने को तैयार हो।" हमारी कमेटी ने एक लाख रुपये से अधिक की अरवी और संस्कृत की पुस्तकें छापी हैं, किन्तु इनको कोई खरीदने वाला नहीं है। शायद इनकी एक भी प्रति की विक्री कभी नहीं होती है। इन भाषाओं की २३ हजार पुस्तकें समिति के गोदामों में सड़ रही हैं। प्रति वर्ष २० हजार रुपये नया कूड़ा खरीदने में व्यय किये जाते हैं। पिछले तीन वर्षों में इस प्रकार ६० हजार रुपया व्यय किया गया, किन्तु इन तीन वर्षों में अरवी और संस्कृत के ग्रन्थों की विक्री से एक हजार रुपये की भी आमदनी नहीं हुई है। इसी अवधि में स्कूल वुक सोसायटी ने अंग्रेजी की सात-आठ हजार पुस्तकें और न केवल उसके विक्री से अपना मुद्रण व्यय निकाला है, अपितु इनके छापने

पर लगाई अपनी पूँजी पर २० प्रतिशत का मुनाफा प्राप्त किया है।

संस्कृत और अरवी भाषाओं के अध्ययन के लिए यह तर्क किया जाता था कि इनमें लिखित ग्रन्थों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के उत्तराधिकार, दायभाग, सम्पत्ति के बँटवारे आदि के कानूनों का विस्तृत वर्णन है। हिन्दुओं और मुसलमानों के साम्पत्तिक तथा जमीन-जायदाद के झगड़ों के समाधान के लिए इन ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है। मैकॉले ने इस तर्क का उत्तर देते हुए कहा कि संस्कृत तथा अरवी ग्रन्थों के आधार पर अंग्रेजी भाषा में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के कानूनों की पृथक्-पृथक् सहिताएँ तैयार करवा देनी चाहिए, ताकि इनके आधार पर अंग्रेज जज ऐसे मामलों का निर्णय करें। ऐसा हो जाने पर संस्कृत और अरवी के अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अपने नोट के अन्त में उसने वड़े प्रवल शब्दों में इस वात पर वल दिया कि संस्कृत तथा अरवी-फारसी को पढ़ाने वाली वर्तमान संस्थाओं को तुरन्त वन्द कर देना चाहिए।[1]

मैकॉले ने अपना यह नोट स्वयमेव गवर्नर जनरल के तत्कालीन निवासस्थान बैरकपुर में जाकर लार्ड विलियम बैंटिक को वैयक्तिक रूप से प्रस्तुत किया। बैंटिक ने इसे कार्यकारिणी परिषद् में प्रस्तुत करने का आदेश देते हुए शिक्षा समिति के सचिव श्री प्रिन्सेप को भेज दिया। सचिव ने इसे नियमानुसार सदस्यों की सूचना और टिप्पणी के लिए वितरित किया। जव किसी सदस्य ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं की तो सचिव ने इसमें दिये प्रस्ताव के अनुसार तुरन्त वन्द की जाने वाली संस्कृत तथा अरबी की शिक्षा-संस्थाओं का विस्तृत विवरण देते हुए एक नोट परिषद् की स्वीकृति पाने के लिए तैयार किया। जव यह सदस्यों को भेजा गया तो इसकी रिपोर्ट गुप्त न रह सकी। कलकत्ते में शोर मच गया कि सरकार अरबी मदरसे और संस्कृत कॉलिज को वन्द करना चाहती है। तीन दिन के भीतर ३० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर से मदरसा वन्द करने के विरोध में एक आवेदन-पत्र गवर्नर जनरल के पास पहुँच गया। हिन्दुओं की ओर से भी संस्कृत कॉलिज वन्द न करने का प्रार्थना-पत्र दिया गया।

उस समय इस वारे में इतनी जवर्दस्त हलचल मची और ऐसा प्रबल आन्दोलन हुआ कि सरकार को मैकॉले के प्रस्तावानुसार इन संस्थाओं को वन्द करने के निर्णय को रद्द करना पड़ा। इस विषय में प्रिन्सेप ने लिखा है कि "उस समय मैकॉले का यह विचार था कि मुसलमानों तथा हिन्दुओं में इस आन्दोलन को भड़काने के पीछे मेरा हाथ है। उसने कलकत्ता मदरसे के प्रिन्सिपल को बुलाया और एक दुभाषिये तथा कम्पनी के तरुण कर्मचारी जॉन कैलविन की सहायता से इस वात का पता लगाना चाहा कि उसे यह सूचना किस स्रोत से मिली। उसे यह सन्देह था कि प्रिन्सेप के कार्यालय से उसे यह बात पता लगी है, किन्तु प्रिन्सिपल ने स्पष्ट रूप से इस बात से इन्कार किया और इसके बाद जब वह मेरे पास आया तो मैंने उससे यह पूछा कि उसे यह सूचना कैसे मिली तो उसने यह उत्तर दिया कि जव मैकॉले ने अपना नोट बैंटिक को दिया था, उस समय जॉन कैलविन बैरकपुर में था और उसे इस वात से अपने पक्ष की विजय पर इतनी प्रसन्नता हुई कि वह उसे नहीं छिपा सका और यह गुप्त रहस्य कैलविन द्वारा प्रकट हो गया।[2]

---

१. मैकॉले के मूल नोट के लिए देखिये मजूमदार, पूर्वोक्त पुस्तक।
२. सैयद नूरुल्ला तथा जे० पी० नायक, ए हिस्टरी ऑफ् एजुकेशन इन इण्डिया, पृ० १३८।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में यह विषय आने पर मैकॉले और प्रिन्सेप में पुनः इस विषय पर उग्र विवाद हुआ; किन्तु बैंटिक ने मैकॉले के पक्ष का समर्थन किया। अन्त में ७ मार्च, १८३५ को इस विषय में परिषद् का जो निर्णय सरकारी प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित किया गया, उसमें यह कहा गया था कि "ब्रिटिश सरकार का महान् उद्देश्य भारत के निवासियों में यूरोप के साहित्य और विज्ञान को बढ़ावा देना होना चाहिए और शिक्षा देने के उद्देश्य से व्यय की जाने वाली सारी धनराशि का सर्वोत्तम उपयोग यह होगा कि उसे केवल अंग्रेजी शिक्षा पर लगाया जाय।" किन्तु इसके साथ ही भारतीयों के आन्दोलन को शान्त करने की दृष्टि से इस प्रस्ताव में यह घोषणा भी की गई कि संस्कृत और अरबी की शिक्षा देने वाले किसी भी विद्यालय या महाविद्यालय को बन्द करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है। अबतक जिन छात्रों को इन भाषाओं का अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्तियाँ मिल रही हैं, वे मिलती रहेंगी; किन्तु भविष्य में इन संस्थाओं में प्रवेश करने वाले छात्रों को कोई छात्रवृत्ति न मिलेगी और न ही पौरस्त्य भाषाओं के ग्रन्थों को प्रकाशित करने पर कोई व्यय किया जायेगा।

इस प्रकार बैंटिक के उपर्युक्त निर्णय से अंग्रेजी को सरकारी शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम मान लिया गया। किन्तु यह इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन था कि कम्पनी के संचालकों ने अगले छः वर्ष तक इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति नहीं दी। भारत में इस प्रस्ताव का विरोध न केवल साधारण जनता ने किया, अपितु एशियाटिक सोसायटी ने भी इसके प्रतिवाद में एक आवेदन-पत्र सरकार को भेजा। कम्पनी के संचालकों को रॉयल एशियाटिक सोसायटी का भी इस विषय में एक विरोध-पत्र मिला। अतः कम्पनी के संचालक काफी समय तक इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति और सहमति प्रदान करने में हिचकिचाते रहे। अन्त में गवर्नर जनरल आकलैण्ड ने २४ नवम्बर, १८३६ के पत्र में इस विवाद को शान्त करने के लिए कुछ नये प्रस्ताव रखे। इसमें दोनों पक्षों के प्रमुख मुद्दों को स्वीकार करते हुए एक नयी योजना तैयार की गई थी। इस समय तक पौरस्त्यवादी पक्ष इस बात को अच्छी तरह समझ चुका था कि अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के प्रबल प्रवाह को देर तक नहीं रोका जा सकता है, अतः उन्होंने इसे स्वीकार करते हुए अपनी माँगों को घटा दिया। अब उन्होंने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का विरोध छोड़ दिया और केवल दो माँगों पर ही बल दिया। पहली माँग, संस्कृत और फारसी की शिक्षा देने वाली संस्थाओं को बन्द न करना और दूसरी माँग, महत्त्वपूर्ण पौरस्त्य ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए कुछ धनराशि की व्यवस्था करनी थी। आकलैण्ड ने ये दोनों माँगें स्वीकार कर लीं और इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा के और शिक्षा के प्रचार के लिए एक लाख रुपये की राशि की व्यवस्था की। इससे दोनों पक्ष सन्तुष्ट हो गये और गवर्नर जनरल आकलैण्ड ने कम्पनी के संचालकों को यह शुभ सूचना दी कि अब भाषा-विषयक विवाद उपर्युक्त समझौते से समाप्त हो गया है। अन्ततोगत्वा इस योजना पर संचालकों ने २० जनवरी, १८४१ के एक पत्र में अपनी स्वीकृति भेजी और भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी।

मैकॉले का मूल्यांकन—प्रायः मैकॉले को भारत में उपर्युक्त नोट लिखने एवं अंग्रेजी भाषा का प्रबल समर्थन करने के कारण भारत की प्रगति का पथ-प्रदर्शक और अग्रणी माना जाता है। मैकॉले का यह मूल्यांकन उसके नोट की तरह अतिरंजित और

अतिशयोक्तिपूर्ण है। पहले वताया जा चुका है कि मैकॉले के नोट से ११ वर्ष पूर्व जेम्स मिल ने भारत में प्राचीन भाषाओं के अध्यापन की आलोचना की थी। वैंटिक शिक्षा में सुधार के लिए पहले से ही कटिवद्ध था, मैकॉले के नोट से उसे पहले से निर्धारित अपना निर्णय करने में सुविधा हो गयी। अतः अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम वनाने का समूचा श्रेय मैकॉले को देना ठीक नहीं है। उससे पहले उपयोगितावादी विचारक तथा भारत में इंजील का प्रसार करने के उग्र समर्थक मिशनरी इसके लिए प्रवल आन्दोलन कर रहे थे। अतः डा० रमेशचन्द्र मजूमदार का यह कथन सत्य है—"काफी लम्वे समय से ऐतिहासिक सामान्य रूप से यह मानते रहे हैं कि मैकॉले के नोट ने शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा का उपयोग आरम्भ करने के फैसले पर निर्णयात्मक प्रभाव डाला। किन्तु मैकॉले के भारत में आने से पहले ही इस विषय में अनुकूल भूमि तैयार की जा चुकी थी। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया वड़े लम्वे समय से चल रही थी और इसका प्रधान कारण उपयोगितावादी तथा इंजीलप्रसार की विचारधारायें थीं।"[1]

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि मैकॉले का नोट उसके एकांगी संकीर्ण दृष्टिकोण, शब्दाडम्वरपूर्ण अलंकृत शैली, जातीय अहंकार और घोर अज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसने अंग्रेजी साहित्य के साथ संस्कृत तथा अरवी के वाङ्मय की तुलना करते हुए उसकी जो खिल्ली उड़ायी है, वह न केवल विजेता जाति में पाये जाने वाले दर्प और गर्व की भावना से परिपूर्ण है, अपितु यह भी सूचित करता है कि उसने पूर्वी भाषाओं का कोई ज्ञान न होने पर उनको हेय ठहराने का कितना वड़ा दुस्साहस किया था। निष्पक्ष ब्रिटिश लेखक भी मैकॉले के नोट की इन त्रुटियों को स्वीकार करने लगे हैं।[2] फिर भी हमें यह मानना पड़ेगा कि भारत पर मैकॉले के नोट का जवर्दस्त प्रभाव पड़ा।

उपर्युक्त निर्णय के वाद भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार और प्रसार वड़ी तेजी से होने लगा। १८३५ से पहले कलकत्ता में अंग्रेजी पढ़ाने वाले स्कूलों की संख्या २५ से भी कम थी। किन्तु सरकार द्वारा अंग्रेजी स्कूलों को प्रोत्साहन देने के एक वर्ष वाद १८३६ में मैकॉले के कथनानुसार केवल एक शहर के स्कूल में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या १४०० हो गयी।[3] भारत पर इसके अच्छे और बुरे, दोनों तरह के प्रभाव पड़े। इसके अच्छे प्रभावों में उल्लेखनीय हैं—भारत का विदेशों के साथ सम्पर्क होना, नवजागरण, उन्नीसवीं शताब्दी के धर्म सुधार आन्दोलन, राष्ट्रीयता, एकता, स्वतन्त्रता और समानता की भावनाओं का विकास, प्रतिनिधि संस्थाओं की माँग, राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव, प्रमाणवाद के स्थान बुद्धिवाद की प्रवृत्ति का प्रवल होना, पुरानी प्रथाओं में संशोधन की माँग, रूढ़िवाद को चुनौती देना, धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में समयानुकूल सुधार की भावना। किन्तु इसके साथ ही अंग्रेजी शिक्षा के कुछ प्रमुख दुष्प्रभाव थे—पश्चिम का अन्धानुकरण, भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को हीन और हेय समझना, मानसिक पराधीनता, आत्मविश्वास खोना, अपनी भाषा, संस्कृति, धर्म और सभ्यता को तिलांजलि देना और ईसाई वनना। एक पश्चिमी लेखक ओमैली ने इनका उल्लेख करते हुए लिखा

---

१. मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग २, पृ० ४५।

२. माइकेल एडवर्ड्स, ए हिस्टरी ऑफ् इण्डिया, पृ० २६०।

३. मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, पृ० ३३।

है कि "इस समय अनेक भारतीय पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे इसे अपनी सभ्यता से अच्छा समझने लगे। कुछ व्यक्ति इससे इतने मुग्ध हुए कि वे पश्चिमी सभ्यता को बड़े उत्साह से ग्रहण करने लगे और उसका अन्धानुकरण करने लगे। कुछ व्यक्ति ईसाई हो गये। वे भारत की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को निकम्मा और बेकार घोषित करने लग गये और उन्होंने राष्ट्रीय जीवन को नये आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया।"[1]

हिन्दू धर्म पर अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव—अंग्रेजी शिक्षा का सबसे बुरा प्रभाव हिन्दू धर्म पर पड़ा। मिशनरियों का अंग्रेजी शिक्षा देने का एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाना था। यह बात पहले ग्राण्ट तथा डफ के विचारों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट की जा चुकी है। मैकॉले का भी यही विचार था। उसकी यह कल्पना थी कि उसकी शिक्षा पद्धति से अगले तीन दशकों में सब बंगाली ईसाई हो जाएँगे। उसने अपने पिता को एक पत्र में लिखा था—"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी योजना को क्रियान्वित किया गया तो बंगाल में तीस वर्ष बाद कुलीन एवं सम्भ्रान्त श्रेणियों में एक भी मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा। यह ईसाइयत के प्रचार का कोई भी प्रयास किये बिना सम्पन्न होगा।"[2] यद्यपि मैकॉले की यह भविष्यवाणी पूरी नहीं हुई, फिर भी १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं कि उनमें इस भविष्यवाणी के मिथ्या होने की सम्भावना बहुत कम थी। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार प्रधान रूप से मिशनरी स्कूल कर रहे थे और उनका प्रधान उद्देश्य भारत को ईसाई बनाना था।

अंग्रेजी शिक्षा नवयुवकों पर कितना गहरा और कैसा प्रभाव डाल रही थी, यह बात बंगाली पत्र-पत्रिकाओं में ६ नवम्बर, १८३० से २२ अक्तूबर, १८३१ तक की अवधि में छपे हुए आठ पत्रों से प्रतीत होती है। ये पत्र कलकत्ता के हिन्दू कॉलिज में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के अभिभावकों ने लिखे हैं। इनमें इस बात पर दुःख प्रकट किया है कि इस कॉलिज में पढ़ने वाले विद्यार्थी किस प्रकार अपने परम्परागत हिन्दू धर्म के आचार-विचार को तिलांजलि दे रहे हैं। एक अभिभावक ने यह शिकायत की कि "हिन्दू कॉलिज में पढ़ने वाले उसके बालक ने पुरानी पोशाक और परम्पराओं का परित्याग कर दिया है। वह अंग्रेजी ढंग का जूता पहनता है, गले में माला नहीं धारण करता है, बगैर स्नान किये खाना खा लेता है।" एक दूसरे अभिभावक ने यह शिकायत की थी कि उसका लड़का कालीघाट के मन्दिर में काली देवी के सामने साष्टांग प्रणाम नहीं करता है, प्रत्युत उसे सम्बोधित करते हुए 'गुडमार्निंग मैडम' कहता है। इसी तरह अन्य संरक्षकों ने अपने बच्चों के नास्तिक विचारों की तथा अंग्रेजी वेषभूषा का अनुसरण करने की शिकायत की।[3] अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले नवयुवकों में पश्चिम का अन्धानुकरण करने तथा भारतीय संस्कृति को हेय समझने की भावना बढ़ रही थी।

इससे भी अधिक गम्भीर चिन्ता की बात यह थी कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे छात्र

---

१. वही पुस्तक, पृ० ९५।

२. मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउन्सी, भाग २, पृ० ३६।

३. वही, पृ० ९०।

पुरानी धार्मिक और सामाजिक पद्धतियों को चुनौती देने लगे थे और हिन्दू विचारों को गहरा आघात पहुँचने वाली वातों को निस्संकोच भाव से करने लगे थे। मद्यपान और गोमांस भक्षण उनके लिए सभ्यता का प्रतीक और गौरवपूर्ण कार्य बन गये। सुप्रसिद्ध महायोगी अरविन्द घोष के नाना राजनारायण बसु हिन्दू कॉलिज में अपने सहपाठियों के साथ गोमांस खाने और मद्यपान करने में गर्व अनुभव करते थे। उन्होंने इतना अधिक मद्यपान किया कि बीमार हो जाने के कारण उन्हें १८४४ में हिन्दू कॉलिज की पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

इस समय ईसाई मिशनरियों ने अपने स्कूलों के माध्यम से हिन्दुओं को ईसाई बनाने का पूरा प्रयास किया। पहले यह बताया जा चुका है कि डफ की नीति ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों के लोगों को ईसाई बनाने की नीति थी और इसके परिणामस्वरूप कई सुप्रसिद्ध भारतीय ईसाई बने। इनमें कुछ उल्लेखनीय नाम हैं—कृष्णमोहन बैनर्जी (१८१३-१८८५), लालबिहारी दे (१८२६-१८९४), सुप्रसिद्ध कवयित्री तोरुदत्त के पिता गोविन्द दत्त। इस समय हिन्दू धर्म की मौलिक शिक्षाओं से सुपरिचित न होने के कारण, मिशनरियों के प्रभाव में आकर हिन्दू किस प्रकार पुरानी परम्पराओं का परित्याग कर रहे थे, यह निम्नलिखित घटनाओं से स्पष्ट हो जायेगा।

उन दिनों मिशनरी प्रचारक हिन्दू धर्म के जातिवाद के सिद्धान्त पर बड़े प्रबल आक्षेप कर रहे थे। उनके प्रचार से प्रभावित होकर कलकत्ता के कुछ नवयुवकों ने एक विलक्षण क्रान्तिकारी ढंग से हिन्दू धर्म का कलंक और अभिशाप बताई जाने वाली जाति-प्रथा का उन्मूलन करने के लिए एक ऐसा अनोखा तथा भीषण कदम उठाने का निश्चय किया जिससे यह प्रथा बिल्कुल नष्ट हो जाय। ये नवयुवक एक कुलीन ब्राह्मण बाबू कृष्णमोहन बैनर्जी के घर पर एकत्र हुए। वहाँ घर में उन्होंने न केवल स्वयमेव गोमांस पकाकर खाया, अपितु पड़ोसियों को भी इसकी सूचना दी और आसपास रहने वाले ब्राह्मणों के घरों में कच्चा-पक्का गोमांस फेंका और यह घोषणा की कि उन्होंने कलकत्ता के सभी ब्राह्मणों को इस प्रकार जातिभ्रष्ट कर दिया है और अब हिन्दू समाज में जाति-प्रथा समाप्त हो गयी है।[1] इससे समूचे कलकत्ता में बड़ी हलचल मच गयी। हिन्दू धर्म के सभी बड़े नेताओं ने इन क्रान्तिकारी सुधारकों का डटकर विरोध किया। इस घटना के समय यद्यपि कृष्णमोहन बैनर्जी घर पर उपस्थित नहीं थे, फिर भी कट्टरपंथी हिन्दू उनके पीछे पड़ गये। उन्हें जाति से बहिष्कृत कर घर से निष्कासित किया गया। इस घटना से स्पष्ट है कि इस समय शिक्षित भारतीय हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह करने के लिए किस हद तक आमादा हो गये थे।

इसी समय पश्चिमी भारत में जान विल्सन और जार्ज बावेन बम्बई प्रान्त में इंग्लिश स्कूल स्थापित करके इनके माध्यम से कुछ धनी पारसियों को ईसाई बनाने में सफल हुए। इससे वहाँ ईसाइयों के प्रति बड़ा रोष और असन्तोष उत्पन्न हुआ। यह नारायण शेषाद्रि के ईसाई बनने से अधिक उग्र हुआ। कुछ समय बाद इसके १२ वर्षीय भाई श्रीपाद ने भी ईसाइयत स्वीकार करने की घोषणा की। उसने विरोधीजनों को

---

1. पी० थामस, क्रिश्चियन्स एण्ड क्रिश्चियेनिटी इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, जार्ज एलन, लन्दन, १९५४, पृ० १९०-९१।

चिढ़ाने के लिए गोमांस खाया और हिन्दुओं ने उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जिस समय महर्षि दयानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया, उस समय हमारे देश की अधिकांश शिक्षण-संस्थाएँ मिशनरियों द्वारा चलाई जा रही थीं। इनका प्रधान उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से भारतीयों को ईसाई बनाने का था। इस कार्य में उनको जो सफलता मिल रही थी, उससे वे यह समझने लगे थे कि शीघ्र ही वे हिन्दू समाज को ईसाई समाज के रूप में परिणत कर सकेंगे। मैकॉले ने ३० वर्ष में बंगालियों के ईसाई बनने की भविष्यवाणी की थी। ऐसा प्रतीत होता था कि ईसाइयत का अजगर समूचे हिन्दू समाज को निगल लेगा।

महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज ने मिशनरियों और उनके स्कूलों द्वारा हिन्दू जाति के सर्वनाश के भीषण भय को भली-भाँति अनुभव किया तथा ईसाई स्कूलों के प्रचार का प्रतिरोध करने के लिए अपनी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। इनमें पढ़ने वाले छात्र मिशनरियों के प्रभाव में नहीं आ सकते थे, क्योंकि इन्हें बचपन से ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता की गम्भीर तथा सर्वांगीण शिक्षा दी जाती थी। इन्होंने भारत को ईसाई बनाने की मिशनरियों की मधुर आशाओं पर तुषारपात ही नहीं किया, अपितु उनकी योजनाओं पर कुठाराघात भी किया।

---

१. वही।

सकता है। गुरुकुल द्वारा अनेक काव्यों तथा मनुस्मृति आदि के संशोधित संस्करण भी प्रकाशित किए गए थे। ब्रह्मचारियों का रहन-सहन बहुत सादा तथा जीवन तपस्यामय था। उनके सिर और पैर नंगे रहते थे, और शहरों के दूषित वातावरण के प्रभाव से उन्हें मुक्त रखा जाता था।

पर गुरुकुलों का यह रूप देर तक कायम नहीं रह सका। आदर्श और यथार्थ में प्राय: भेद रहता है। क्रियात्मकता तथा सांसारिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर यह वांछनीय समझा गया, कि उनकी पाठविधि में ऐसे परिवर्तन किए जाएँ, जिनसे कि आर्ष ग्रन्थों की तुलना में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई को अधिक महत्त्व प्राप्त हो, और उनका पाठ्यक्रम प्राय: वैसा ही हो जाए जैसाकि सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षणालयों का है। गुरुकुलों के रहन-सहन तथा अनुशासन में भी परिवर्तन किए गए, जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्मचारियों के अपने माता-माता के साथ सम्पर्क में निरन्तर वृद्धि होने लगी। अवकाश के दिनों में उन्हें घर जाने की अनुमति भी दी जाने लगी, और उनसे यह छिपा नहीं रहा कि उनका जन्म किस जाति या कुल में हुआ है, और उनके परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति क्या है। समता की जो भावना महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति का आधारभूत तत्त्व है, इस दशा में उसे प्रयुक्त कर सकना गुरुकुलों के लिए सम्भव नहीं रहा।

शुरू में गुरुकुलों की अपनी पाठविधि थी, अपनी स्वतन्त्र परीक्षाएँ थीं, और उन द्वारा अपनी ही उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। गुरुकुलों के संचालक इस बात की आवश्यकता नहीं समझते थे, कि अपनी परीक्षाओं और उपाधियों के लिए सरकार से मान्यता प्राप्त कराने का प्रयत्न करें, या अपने विद्यार्थियों को सरकारी परीक्षाओं में बैठने की अनुमति दें। इससे गुरुकुलों के विद्यार्थियों व स्नातकों को अनेकविध कठिनाइयों का सामना अवश्य करना पड़ता था, सर्विस प्राप्त कर सकने में उन्हें बहुत कठिनाई होती थी और अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य प्राप्त कर सकना उनके लिए सुगम नहीं होता था। पर उन्हें इसकी परवाह नहीं थी, क्योंकि महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-पद्धति में उनकी आस्था थी और सरकारी शिक्षण-संस्थाओं की पाठविधि को वे भारत के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे। पर स्वराज्य (१९४७) के पश्चात् इस दशा में परिवर्तन आने लगा। गुरुकुलों के संचालक यह अनुभव करने लगे, कि अब उन्हें स्वराज्य सरकार से सहयोग की नीति वरतने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये, अपनी परीक्षाओं और उपाधियों के लिए सरकार से मान्यता प्राप्त करवानी चाहिये और इस बात में भी कोई हानि नहीं है कि अपने विद्यार्थियों को सरकारी परीक्षाओं में बैठने और सरकारी उपाधियाँ प्राप्त करने के अवसर प्रदान कराये जाएँ। स्वराज्य से पहले भी यह विचार विकसित होने लगा था, कि गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का प्रधान आधारभूत तत्त्व आश्रम-व्यवस्था है, पाठविधि का उसमें विशेष महत्त्व नहीं है। ऐसे गुरुकुल भी हो सकते हैं, जिनकी पाठविधि वही हो जो सरकारी शिक्षणालयों की है, पर जिनमें विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन विताने की पूरी व्यवस्था हो। स्वराज्य के पश्चात् यह विचार बल पकड़ने लगा, और सूपा, सोनगढ़, डोरली आदि के कितने ही गुरुकुलों ने सरकारी पाठविधि को लागू करना प्रारम्भ कर दिया। आश्रम-पद्धति को इन्होंने अवश्य कायम रखा, पर पाठविधि वही अपना ली जो सरकार द्वारा स्वीकृत थी

और सरकारी शिक्षणालयों में प्रयुक्त होती थी।

गुरुकुल काँगड़ी के स्वरूप में भी स्वराज्य के पश्चात् महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पहले उसकी विद्यालंकार आदि उपाधियों को सरकार द्वारा बी० ए० के समकक्ष स्वीकृत कराया गया और फिर उसे एक पृथक् यूनिवर्सिटी बनाने का प्रयत्न किया गया। काँगड़ी गुरुकुल एक चार्टर्ड यूनिवर्सिटी तो नहीं बन सका, पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन) ने उसकी यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकार कर ली। इस समय से गुरुकुल काँगड़ी द्वारा विद्यावाचस्पति के बजाय एम० ए० की उपाधि दी जाने लगी, और उसके विज्ञान विभाग की उपाधि भी विद्यालंकार के स्थान पर बी० एस-सी० की हो गई। गुरुकुल काँगड़ी में ऐसे विद्यार्थी भी प्रविष्ट किए जाने लगे, जिनका न वेदारम्भ संस्कार हुआ था और न उपनयन। उनके लिए छात्रावास में रहकर ब्रह्मचर्य-पूर्वक अनुशासित जीवन बिताने की आवश्यकता भी नहीं रही। इस प्रकार गुरुकुल काँगड़ी का स्वरूप आमूलचूल परिवर्तित हो गया, और वह पुरानी पद्धति का आरण्यक-आश्रम न रहकर प्रायः सरकारी शिक्षणालयों के सदृश हो गया।

गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि अनेक गुरुकुलों द्वारा दी जाने वाली उपाधियों को भी सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई, और साथ ही अनेक गुरुकुलों के संचालकों ने अपने विद्यार्थियों को यह अनुमति भी दे दी कि वे गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करते हुए सरकारी परीक्षाएँ भी दे सकें। आर्थिक समस्या से विवश होकर बहुसंख्यक गुरुकुलों में भोजन-वस्त्र आदि के लिए नियमित रूप से शुल्क लिया जाने लगा, और शुल्क की मात्रा अधिक न होने पाये, इस दृष्टि से यह व्यवस्था कर दी गई, कि घी और दूध का व्यय विद्यार्थी अपने सामर्थ्य के अनुसार पृथक् दिया करें, या स्वयं अपने लिए दूध खरीद लिया करें और घी अपने घरों से ले आया करें। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों के भोजन व रहन-सहन में भिन्नता आ जाना स्वाभाविक था।

समय की आवश्यकता तथा स्नातकों की आजीविका की समस्या को दृष्टि में रख कर बहुसंख्यक गुरुकुलों ने अपनी पाठविधि को भी परिवर्तित कर लिया। पर कुछ गुरु-कुल ऐसे भी रहे, जिन्होंने आर्ष पाठविधि पर दृढ़ रहने का निश्चय किया, और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पठन-पाठन विधि का अनुसरण करते रहना श्रेयस्कर समझा। झज्झर (हरयाणा) का आर्ष गुरुकुल विद्यापीठ और एटा का आर्ष गुरुकुल इस प्रकार के गुरुकुलों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बालकों के गुरुकुलों के सामन बालिकाओं के गुरुकुल भी अनेक प्रकार के हैं। कन्या गुरुकुल देहरादून में जहाँ गुरुकुल काँगड़ी विश्व-विद्यालय की पाठविधि का अनुसरण किया जाता है, वहाँ कन्या गुरुकुल नरेला तथा पाणिनि विद्यालय वाराणसी में आर्ष पाठविधि का। ऐसे भी अनेक कन्या गुरुकुल हैं, जिनमें सरकारी शिक्षणालयों के पाठ्यक्रम को ही प्रयोग में लाया जाता है।

इस प्रकार वर्तमान समय के गुरुकुलों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(१) गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जिसे यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकृत है। गुरुकुल भैंसवाल (हरयाणा) तथा कन्या गुरुकुल देहरादून आदि अनेक शिक्षण-संस्थाएँ इसके साथ सम्बद्ध हैं, और इसी की परीक्षाएँ दिलाती हैं। (२) गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, सरकार ने इसकी

यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकृत नहीं की है, पर इस द्वारा अपनी डिग्रियाँ दी जाती हैं, जिन्हें सरकार से मान्यता प्राप्त है। कतिपय अन्य गुरुकुल भी इस विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ दिलाते हैं। (३) श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर (हरयाणा), गुरुकुल झज्झर में स्थित इस विद्यापीठ द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-विषयक सिद्धान्तों तथा पठन-पाठनविधि के साथ आनुकूल्य रखता है। अनेक गुरुकुल इस विद्यापीठ के साथ सम्बद्ध हैं। इस विद्यापीठ की परीक्षाओं तथा उपाधियों को अनेक सरकारी विश्वविद्यालयों तथा सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त है। (४) गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर अपने ढंग की अनुपम शिक्षण-संस्था है, जिसकी अपनी पृथक् उपाधियाँ हैं और साथ ही जहाँ के विद्यार्थी सरकारी परीक्षाएँ भी दे सकते हैं। (५) गुरुकुल सूपा, गुरुकुल सोनगढ़, कन्या गुरुकुल पोरबन्दर आदि कितने ही गुरुकुल अब सरकारी पाठ्यक्रम को पूर्णरूप से अपना चुके हैं, यद्यपि आश्रम जीवन के रूप में गुरुकुल पद्धति की जो मूलभूत विशेषता है, उसका उन्होंने परित्याग नहीं किया है। (६) अनेक गुरुकुल ऐसे भी हैं, जिन्हें संस्कृत पाठशाला कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनमें संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा आदि परीक्षाओं की तैयारी करायी जाती है, और इनका पाठ्यक्रम वही है जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी सदृश संस्कृत के सरकारी विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित है। इन्हें गुरुकुल इस दृष्टि से कहा जाता है, क्योंकि इनमें विद्यार्थियों के निवास की समुचित व्यवस्था है, और इनके छात्रावासों में गुरुकुलीय दिनचर्या तथा धार्मिक नियमों का सुचारु रूप से पालन किया जाता है।

न गुरुकुलों की संख्या अधिक है, और न उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी ही अधिक हैं। आर्य शिक्षण-संस्थाओं की कुल संख्या २,००० के लगभग है, और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी लाखों की संख्या में हैं। पर सब गुरुकुलों के कुल विद्यार्थियों की संख्या १० हजार भी नहीं है। इसमें भी बहुसंख्या ऐसे विद्यार्थियों की है, जो गुरुकुल सूपा आदि में सरकारी पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। संख्या में अत्यन्त न्यून होने पर भी शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुलों का महत्त्व कम नहीं है। उन द्वारा भारत की शिक्षा पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया गया था, जिसकी ओर किसी समय न केवल भारत के ही, अपितु अन्य देशों के भी शिक्षाशास्त्री आकृष्ट हुए थे। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल आर्यसमाज की एक मौलिक देन थे। पर वे न स्वयं ही समुचित रूप से उन्नति कर सके, और न भारत की शिक्षा पद्धति को ही पर्याप्त रूप से प्रभावित कर सके। इसके कारणों पर इस इतिहास में यथास्थान विचार किया जाएगा। यहाँ इतना निर्देश कर देना ही पर्याप्त है कि देश और काल की परिस्थितियों के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-विषयक मन्तव्यों को क्रियान्वित कर सकने में यद्यपि आर्यसमाज अब तक सफल नहीं हो सका है, पर उन्हें वह आदर्श रूप से स्वीकार अवश्य करता है। यह आशा करना अनुचित नहीं है, कि भविष्य में महर्षि की शिक्षा पद्धति अवश्य लोकप्रिय होगी, क्योंकि समाज-संगठन को न्याय पर आधारित करने के लिए भी उसका सफलता से उपयोग किया जा सकता है।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल और कॉलिज—आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों का महत्त्व सबसे अधिक है। इनकी स्थापना का प्रारम्भ महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में किया गया था, और इनका उद्देश्य

वेद शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन तथा महर्षि के शिक्षा-विषयक मन्तव्यों को क्रियान्वित करना निर्धारित किया गया था। पर समय की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर इनमें उस सामान्य शिक्षा (General education) की व्यवस्था की गयी, जिसकी जनता में माँग थी। सरकारी तथा क्रिश्चियन शिक्षणालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को अपने धर्म तथा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं होता था, और वे निरन्तर पाश्चात्य प्रभाव में आते जाते थे। संस्कृत और आर्यभाषा (हिन्दी) की पढ़ाई की उनमें समुचित व्यवस्था नहीं थी, और अपने परम्परागत धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का तो उनमें प्रश्न ही नहीं था। इस स्थिति में आर्यसमाज द्वारा जो दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित की गयीं, वे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करती थीं। उनमें संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध था, और धर्म-शिक्षा की भी व्यवस्था थी। स्कूलों व कॉलिजों के साथ छात्रावासों का भी निर्माण किया गया था, जिनमें निवास करने वाले विद्यार्थी अनुशासित जीवन व्यतीत करते थे, सन्ध्या-हवन आदि धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित होते थे और आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों में भी उपस्थित हुआ करते थे। जो विद्यार्थी छात्रावासों में निवास नहीं करते थे, उन्हें भी अपने धर्म तथा संस्कृति से परिचित होने का अवसर मिलता था। आर्यसमाज के सम्पर्क में आते रहने के कारण वे अपने देश की दुर्दशा का भी अनुभव करने लगते थे, और उनमें राष्ट्रीयता, देशभक्ति तथा धर्मप्रेम की भावनाएँ भी उद्बुद्ध होने लगती थीं। इस दृष्टि से डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं को 'राष्ट्रीय' कहना भी अनुचित नहीं है। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण तथा बीसवीं सदी के प्रथम चरण में जिस ढंग के शिक्षणालय सरकार तथा क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा भारत में स्थापित थे, उनकी तुलना में डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज वस्तुतः राष्ट्रीय थे।

पर दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं का कार्यक्षेत्र केवल सामान्य शिक्षा तक ही सीमित नहीं था। उन द्वारा वेद-वेदांगों की उच्च शिक्षा के लिए पृथक् रूप से व्यवस्था की गयी, और आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाने तथा वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उपदेशक तैयार करने पर भी ध्यान दिया गया। शोधकार्य की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की, और वेदशास्त्रों के अनुशीलन तथा शोध के लिए पृथक् विभागों तथा संस्थानों की स्थापना की। वर्तमान समय में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की संख्या सैकड़ों में है, और उनमें लाखों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ये संस्थाएँ पंजाब, हरयाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बंगाल आदि सर्वत्र विद्यमान हैं, और उनकी लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के पश्चात् पंजाब के आर्यसमाजियों ने उनके स्मारक रूप में एक शिक्षणालय की स्थापना के प्रयोजन से जिस डी० ए० वी० सोसायटी कमेटी का संगठन किया था, उसका कार्यक्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता गया, और उसके तत्त्वावधान में कितने ही स्कूल और कॉलिज स्थापित हो गये। उत्तर प्रदेश और राजस्थान भी इसमें पंजाब से पीछे नहीं रहे। कानपुर के डी० ए० वी० ट्रस्ट तथा अजमेर की आर्यसमाज शिक्षा सभा द्वारा अपने-अपने प्रदेश में अनेक ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की गयी, जिनमें वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के वातावरण में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है, और जिनमें हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। कतिपय आर्यसमाजों ने भी स्वतन्त्र रूप से डी० ए० वी० शिक्षणालयों

को स्थापित किया। इस प्रकार के आर्यसमाजों में गणेशगंज (लखनऊ) आर्यसमाज उल्लेखनीय है।

इसमें सन्देह नहीं, कि डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं द्वारा वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के लिए महत्त्वपूर्ण व उपयोगी कार्य किया गया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति को दृष्टि में रखकर शिक्षा के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, इन संस्थाओं द्वारा उन्हें केवल आंशिक रूप से ही क्रियान्वित किया गया। इनका पाठ्यक्रम प्रायः वही रखा गया, जो सरकार द्वारा निर्धारित है। पर यह होते हुए भी इस तथ्य को स्वीकार करना होगा, कि इन शिक्षण-संस्थाओं ने आर्यसमाज, वैदिक धर्म तथा देश की अनुपम सेवा की है। सर्वसाधारण जनता के सम्मुख आजीविका और योगक्षेम की समस्या सदा बनी रहती है। वह अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा दिलाना चाहती है, जो अर्थकरी हो, जिससे वह सामाजिक व आर्थिक जीवन में समुचित व सम्मानित स्थान प्राप्त कर सके। इसीलिए सरकार द्वारा निर्धारित पाठविधि की उपेक्षा कर सकना क्रियात्मक नहीं था, क्योंकि सरकारी सर्विस प्राप्त करने और वकील, डाक्टर आदि बनकर धन उपार्जन करने के अवसर उसी शिक्षा द्वारा प्राप्त किये जा सकते थे। स्वाभाविक रूप से उस शिक्षा की जनता में बहुत माँग थी। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं ने इस माँग को पूरा किया, पर साथ ही देश के किशोरवय बालकों और बालिकाओं को क्रिश्चियन धर्म तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ जाने से भी बचा लिया, क्योंकि इन संस्थाओं का वातावरण वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति और प्राचीन नैतिक मान्यताओं के अनुरूप था। इनमें प्रायः ऐसे ही शिक्षक नियुक्त किये जाते थे, जिनकी आर्यसमाज में आस्था होती थी और जिनका व्यक्तिगत जीवन सदाचारमय होता था। यह स्वाभाविक था, कि विद्यार्थी उनसे धर्म व देश की सेवा के लिए प्रेरणा प्राप्त करें, और स्वयं सच्चरित्र व धार्मिक बनने के लिए प्रेरित हों।

वर्तमान समय में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का एक जाल-सा भारत में बिछा हुआ है, और फिजी, मारीशस आदि विदेशों में भी ये संस्थाएँ स्थापित हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता, कि इन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले सभी विद्यार्थी आर्यसमाज के नैतिक मन्तव्यों के अनुसार जीवन विताते हैं, पर इसमें सन्देह नहीं, कि इनके वातावरण का कुछ-न-कुछ प्रभाव प्रायः सभी विद्यार्थियों पर पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप वे अन्य स्कूलों और कॉलिजों के विद्यार्थियों की तुलना में आर्यसमाज के प्रति कुछ आत्मीयता अवश्य अनुभव करने लगते हैं।

संस्कृत विद्यालय—आर्यसमाज द्वारा बहुत-सी ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ भी स्थापित की गयी हैं, जिनमें प्रधानतया संस्कृत का पठन-पाठन होता है। ये उत्तरप्रदेश, हरयाणा, बिहार आदि प्रायः सभी प्रान्तों में विद्यमान हैं। इनकी कोई अपनी पृथक् पाठविधि नहीं है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, लालबहादुर शास्त्री संस्कृत संस्थान, दिल्ली, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ आदि द्वारा संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, इन संस्कृत विद्यालयों में उन्हीं के पाठ्यक्रम के अनुसार अध्ययन-अध्यापन होता है और विद्यार्थी इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर शास्त्री व आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। संस्कृत की शिक्षा की परम्परा किसी-न-किसी रूप में भारत में चिर काल से कायम है। वाराणसी, नवद्वीप, नासिक आदि इस शिक्षा के

प्रधान केन्द्र रहे हैं। अन्यत्र भी तीर्थस्थानों पर तथा मन्दिरों के साथ संस्कृत, व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य के अध्यापन के लिए पाठशालाएँ स्थापित थीं। पर आर्यसमाज द्वारा व्यापक रूप से संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की गयी, और बिजनौर, अलीगढ़, गाजियाबाद, गोंडा और दिल्ली सदृश कितने ही ऐसे नगरों में ये विद्यालय स्थापित किये गये, जहाँ कि संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा का प्रायः अभाव था। संस्कृत पाठशालाएँ और संस्कृत विद्यालय सनातन पौराणिक धर्म के अनुयायियों द्वारा भी स्थापित किये गये हैं, और उनमें भी शास्त्री, आचार्य आदि की परीक्षाओं की तैयारी करायी जाती है। पर आर्यसमाज के संस्कृत विद्यालय एक स्पष्ट व सुनिश्चित उद्देश्य से स्थापित किये गये हैं। उनका ध्येय वेद-वेदांगों तथा प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा देना है। आर्थिक सुविधा को सम्मुख रखकर उनमें संस्कृत की सरकारी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम को अवश्य अपना लिया गया है, पर इन संस्थाओं के संचालकों को सदा यह ध्यान रहता है कि उनके विद्यार्थी वेदशास्त्रों में निष्णात होकर आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म की सेवा के योग्य हो सकें। ये संस्थाएँ गुरुकुलों से इस कारण भिन्न हैं, क्योंकि इनमें ऐसे छात्रावासों का प्रायः अभाव है, जिनमें कि विद्यार्थी ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन बिताते हों।

स्त्रीशिक्षा के लिए स्थापित शिक्षण-संस्थाएँ—बालिकाओं की शिक्षा के लिए आर्यसमाज ने बहुत कार्य किया है। उस द्वारा अनेक कन्या गुरुकुल स्थापित हैं और डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटियों के तत्त्वावधान में भी बालिकाओं व स्त्रियों की शिक्षा के लिए अनेक स्कूल व कॉलिज विद्यमान हैं। विविध आर्य प्रतिनिधि सभाओं की विद्या परिषदें व विद्यार्यसभाएँ भी बहुत-से कन्या विद्यालयों, स्कूलों व कॉलिजों का संचालन कर रही हैं। पर कन्या महाविद्यालय, जालन्धर, आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा और आर्य कन्या गुरुकुल, पोरबन्दर सदृश अनेक ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ आर्यसमाज द्वारा चिरकाल से स्थापित हैं, जिन्होंने स्त्रीशिक्षा के प्रसार के लिए अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। भारत के शिक्षाक्षेत्र में इन संस्थाओं का विशिष्ट स्थान है। इनमें शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याएँ जहाँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की समुचित शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं, वहाँ साथ ही वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति का भी उन्हें उपयुक्त ज्ञान हो जाता है। भारत की परम्परागत नैतिक मान्यताओं के वातावरण में पली हुई इन संस्थाओं की छात्राएँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी पाश्चात्य जगत् के भौतिकवाद के प्रभाव से बची रहती हैं, और भारतीय समाज में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त कर लेती हैं। सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त साधारण आर्य बालिका विद्यालयों तथा महिला कॉलिजों की संख्या जहाँ सैकड़ों में है, वहाँ ऐसी विशिष्ट शिक्षण-संस्थाएँ भी आर्यसमाज द्वारा स्थापित हैं, जिन्होंने स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए अपनी एक पृथक् पद्धति को अपनाया है। पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, हरयाणा आदि में स्त्रियों की शिक्षा का जो प्रचार हुआ, उसका प्रधान श्रेय आर्यसमाज को ही दिया जाना चाहिये। बहुत-से आर्यसमाजों के भवनों में कन्या पाठशालाएँ व बालिका विद्यालय स्थापित हैं, जिनमें जहाँ सरकारी पाठ्यक्रम के अनुसार पठन-पाठन होता है, वहाँ साथ ही कन्याओं को अपने धर्म व संस्कृति से भी परिचय प्राप्त कराया जाता है। ये शिक्षण-संस्थाएँ चाहे उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पंजाब के पश्चिमी जिलों (जो अब पाकिस्तान में है) में रही हों और चाहे जम्मू-कश्मीर व पंजाब में, प्रायः सर्वत्र इनमें हिन्दी की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है। आजीविका और

सांसारिक उन्नति की आवश्यकताओं से विवश होकर इन प्रान्तों के पुरुष यदि उर्दू भाषा पढ़ते थे, तो इनकी स्त्रियाँ प्राय: हिन्दी की ही शिक्षा प्राप्त किया करती थीं, क्योंकि उनके सम्मुख आजीविका की समस्या उस रूप में नहीं थी जैसी कि पुरुषों के सामने होती थी।

उपदेशक विद्यालय—सामान्य-शिक्षा के लिए आर्यसमाज द्वारा बहुत-से स्कूल और कॉलिज स्थापित किये गये हैं। पर साथ ही अनेक ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ भी आर्यसमाज ने खोली हैं, जिनका उद्देश्य वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उपदेशक तथा आर्यसमाज के पुरोहित तैयार करना है। आर्यसमाज में किसी को जन्म के आधार पर ब्राह्मण नहीं माना जाता। इसलिए वहाँ पुरोहित एवं पुजारी के पद भी वंशक्रमानुगत व जन्म पर आधारित नहीं हैं। इन पदों को वही व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जो वेदशास्त्रों के ज्ञाता हों, यज्ञों के अनुष्ठान तथा संस्कार आदि कराने में जो निपुण हों और साथ ही जो सदाचारी भी हों। गुरुकुलों से भी यह आशा की जाती थी, कि उनके स्नातक आर्यसमाज की इस आवश्यकता को पूर्ण कर सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि में शिक्षा प्राप्त कर अनेक ऐसे स्नातक कार्यक्षेत्र में आये, जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार में अच्छी ख्याति प्राप्त की। अनेक सुयोग्य पुरोहित भी गुरुकुलों से आर्यसमाज को प्राप्त हुए। पर गुरुकुलों के पाठ्यक्रमों का निर्धारण इस दृष्टि से नहीं किया जाता था, कि उनके अनुसार शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी पौरोहित्य का कार्य सुचारु रूप से कर सकेंगे और विधर्मियों से शास्त्रार्थ आदि कर वैदिक धर्म का विशेष रूप से प्रचार करेंगे। अत: यह आवश्यकता अनुभव की गई, कि उपदेशक और पुरोहित तैयार करने के लिए पृथक् विद्यालय स्थापित किये जाएँ। इसीलिए पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा लाहौर में उपदेशक विद्यालय की स्थापना की गई थी, और इसी प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ बाद में अन्यत्र भी स्थापित की गईं। उपदेशक विद्यालयों की संख्या अधिक नहीं है। पर आर्यसमाज के शिक्षा-विषयक कार्यकलाप में उनका एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि उन द्वारा समाज की एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति होती है। इन विद्यालयों में न केवल शिक्षा ही नि:शुल्क होती है, अपितु विद्यार्थियों के निवास, भोजन, वस्त्र आदि का व्यय भी संस्था द्वारा ही किया जाता है। आशा की जाती है कि इन उपदेशक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी अपना जीवन वेद-प्रचार तथा आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में ही लगाएँगे।

आर्य स्कूल और कॉलिज—धार्मिक वातावरण में सामान्य शिक्षा देने के जो प्रयत्न आर्यसमाज द्वारा किये गये, उनमें डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का प्रमुख स्थान है। पर उनके अतिरिक्त भी बहुत-से आर्य स्कूल और कॉलिज विविध आर्य प्रतिनिधि सभाओं के निरीक्षण व तत्त्वावधान में स्थापित हैं, और अनेक सम्पन्न आर्य सज्जन भी पृथक् व स्वतन्त्र रूप से आर्य शिक्षण-संस्थाओं का संचालन कर रहे हैं। इस प्रकार के आर्य स्कूलों और कॉलिजों की संख्या सैकड़ों में है। पंजाब, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरयाणा, बिहार आदि विविध प्रदेशों की आर्य प्रतिनिधि सभाओं की अपनी-अपनी आर्य विद्या-परिषदें व विद्यार्यसभाएँ इसी प्रयोजन से संगठित हैं, कि उन द्वारा इन शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जाए। पंजाब में आर्यसमाज के जो दो दल बन गये थे, उसका एक

महत्त्वपूर्ण कारण शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में मतभेद था : डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं द्वारा जो शिक्षा-प्रणाली व पाठविधि अपनायी जा रही थी, वह महात्मा मुंशीराम आदि पंजाब के अनेक आर्यसमाजियों को स्वीकार्य नहीं थी। वे चाहते थे कि आर्यसमाज की शक्ति ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना में प्रयुक्त की जाए, जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-विषयक मन्तव्यों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया हो और जिनमें आर्ष पाठविधि के अनुसार पठन-पाठन की व्यवस्था हो। इसी मतभेद के कारण पंजाब में कॉलिज पार्टी और गुरुकुल पार्टी पृथक् रूप से संगठित हुई थीं, और उन्होंने अपने-अपने प्रान्तीय संगठनों का भी पृथक् रूप से निर्माण किया था। ये ही आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के नाम से प्रसिद्ध हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना कर महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न किया, पर उसके लिए भी यह सम्भव नहीं रहा कि शिक्षासम्बन्धी अपने कार्यकलाप को केवल गुरुकुलों तक ही सीमित रखे। वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के वातावरण में सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करने के महत्त्वपूर्ण कार्य की चिर काल तक उपेक्षा कर सकना उसके लिए भी सम्भव नहीं रहा, और उसके तत्त्वावधान में भी वहुत-से आर्य स्कूलों तथा कॉलिजों की स्थापना की गई। इन शिक्षण-संस्थाओं के संचालन व निरीक्षण के लिए सभा द्वारा एक आर्य विद्या परिषद् भी संगठित की गई, और इस प्रकार पंजाव में डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों के अतिरिक्त अन्य भी वहुत-से आर्य शिक्षणालय कायम हुए। इन शिक्षण-संस्थाओं का स्वरूप डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों से भिन्न नहीं है। इनमें सरकारी स्कूलों तथा सरकारी चार्टर द्वारा स्थापित यूनिवर्सिटियों के कॉलिजों के पाठ्यक्रम के अनुसार ही पठन-पाठन होता है और विद्यार्थी उन्हीं की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर बी० ए०, एम० ए० आदि उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। आर्य स्कूलों पर जिला विद्यालय निरीक्षक का उसी प्रकार से नियन्त्रण रहता है, जैसे कि मान्यता प्राप्त अन्य स्कूलों पर। आर्य कॉलिजों पर भी उस क्षेत्र की यूनिवर्सिटी का नियन्त्रण रहता है, जहाँ वह स्थित हों। इन शिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों आदि की नियुक्ति में भी सरकार का पर्याप्त हाथ रहता है, और सरकारी अनुदान इनकी आमदनी का महत्त्वपूर्ण साधन है। यह सब होते हुए भी इन आर्य शिक्षणालयों के छात्रों का वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के साथ कुछ-न-कुछ सम्पर्क अवश्य रहता है। जिस प्रकार की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधीन हैं, वैसी ही हरयाणा, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि की प्रतिनिधि सभाओं की अधीनता में भी विद्यमान हैं। इन आर्य शिक्षणालयों के कारण आर्यसमाज का शिक्षा-विषयक क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है, और लाखों छात्र इन द्वारा वैदिक धर्म के सिद्धान्तों तथा आर्यसमाज की मान्यताओं से कुछ-न-कुछ परिचय पाने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। बहुत-से आर्य स्कूलों और कॉलिजों में प्रार्थना और धार्मिक उपदेशों की भी व्यवस्था है। उनके साथ जो छात्रावास स्थापित हैं, उनमें यह प्रयत्न भी किया जाता है कि वहाँ रहने वाले विद्यार्थियों का रहन-सहन व खान-पान आर्यसमाज के मन्तव्यों के अनुरूप हो। इस दृष्टि से ये संस्थाएँ आर्यसमाज के लिए अवश्य ही महत्त्वपूर्ण व उपयोगी कार्य कर रही हैं।

गत एक शताब्दी में मुसलमान, सिक्ख, जैन तथा सनातन धर्मी लोगों ने भी

अपने-अपने शिक्षणालय स्थापित करने पर ध्यान दिया है। क्रिश्चियन मिशनरियों ने शिक्षण-संस्थाओं को अपने धर्म के प्रचार के साधन के रूप में प्रयुक्त किया था। उनके अनुकरण में ब्राह्मसमाज द्वारा भी अनेक शिक्षणालय खोले गये थे। सर सैयद अहमद खाँ द्वारा स्थापित अलीगढ़ का मोहम्मडन कॉलिज भी इसी विचार सरणी का परिणाम था। ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी की गई शिक्षा प्रणाली तथा पाठविधि युग की परिस्थितियों व आवश्यकताओं के अनुसार है और देश को उनसे लाभ उठाना चाहिये, इस बात को स्वीकार कर प्रायः सभी धर्मों व सम्प्रदायों के अनुयायियों का यह प्रयत्न था कि ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जाए, सरकारी पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हुए भी जिनका वातावण उनकी धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताओं तथा विश्वासों के अनुरूप हो। इसीलिए इस्लामिया कॉलिज, खालसा कॉलिज, सनातन धर्म कॉलिज आदि नामों के बहुत-से शिक्षणालय स्थापित किये गये। पर कोई भी धर्म, मत, सम्प्रदाय या वर्ग ऐसा नहीं है, जिसकी शिक्षण-संस्थाओं की संख्या आर्यसमाज के स्कूलों व कॉलिजों से अधिक हो। विशेषतया, उत्तर भारत में दयानन्द एंग्लो-वैदिक तथा आर्य शिक्षणालयों का एक जाल-सा सर्वत्र बिछा हुआ है, और हजारों-लाखों विद्यार्थी उनमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

✓ **बाल मन्दिर**—छोटे बच्चों की शिक्षा पर आर्यसमाज द्वारा विशेष ध्यान दिया गया है। जो संस्कार छोटी आयु में बच्चों पर पड़ जाते हैं, वे देर तक कायम रहते हैं और उनसे भावी जीवन बहुत प्रभावित होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर आर्यसमाजों तथा सम्पन्न आर्य नर-नारियों द्वारा दयानन्द बाल-मन्दिर, आर्य बाल निकेतन, आर्य पब्लिक स्कूल, शिशु मन्दिर, वैदिक नर्सरी स्कूल, माडल स्कूल आदि नामों से बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। गत वर्षों में इन संस्थाओं की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। देश में शिक्षा के विस्तार और प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क कर दिये जाने के कारण सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या बहुत बढ़ गई है और अत्यन्त हीन स्थिति के परिवारों के बच्चे भी उनमें प्रविष्ट होने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इन बच्चों का रहन-सहन, बोल-चाल एवं आदतें प्रायः ऐसी होती हैं, कि सम्पन्न व मध्य वर्ग के परिवारों के लोग अपनी सन्तान को उनके साथ पढ़ाना पसन्द नहीं करते। वे चाहते हैं, कि उनके बच्चे साफ-सुथरे व सुसंस्कृत वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें। इसीलिए आर्यसमाज ने ऐसे शिक्षणालय भी स्थापित किये हैं, जिनमें प्रायः उच्च व मध्य वर्गों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। पढ़ाई के साथ-साथ इनमें बच्चों को अच्छी-अच्छी बातें भी बतायी जाती हैं, प्रार्थना के मन्त्र याद कराये जाते हैं, धर्मप्रेम और देशभक्ति की भावना का उनमें संचार किया जाता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि बड़े हो कर बच्चे अच्छे नागरिक बन सकें।

पिछले कुछ वर्षों में भारत में अंग्रेजी भाषा और उसके माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की प्रवृत्ति में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। यह कहाँ तक उचित है, इस पर यहाँ विचार करना अप्रासंगिक होगा। क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा जो कॉन्वेण्ट स्कूल खोले गये थे, उनमें बच्चों को शिक्षा दिलाने की माँग इसी कारण बहुत बढ़ गई, क्योंकि इनमें अंग्रेजी की पढ़ाई पर बहुत जोर दिया जाता है और शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी भाषा है। इनमें पढ़कर विद्यार्थियों के लिए सरकार, सेना, व्यावसायिक प्रतिष्ठान

आदि में सर्विस प्राप्त करना सुगम हो जाता है, और वच्चों के रहन-सहन, व्यवहार आदि भी सुसंस्कृत हो जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षा की माँग में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण अनेक व्यक्तियों ने 'पब्लिक स्कूल' भी खोलने प्रारम्भ कर दिये। ये स्कूल विशुद्ध व्यापारिक आधार पर स्थापित किये गये, और इनके संचालकों ने इन द्वारा प्रभूत मात्रा में आमदनी प्राप्त की। 'पब्लिक स्कूलों' ने विजनेस का रूप धारण कर लिया, और केवल आर्थिक लाभ को दृष्टि में रख कर इस प्रकार के शिक्षणालयों की स्थापना की जाने लगी। इन स्कूलों का एकमात्र आकर्षण यह है, कि इनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, और मासिक शुल्क व अन्य व्यय के अत्यधिक होने के कारण केवल उच्च वर्ग के वच्चे ही इनमें प्रवेश पा सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप इनका वातावरण पर्याप्त रूप से साफ-सुथरा रहता है। समय की इस माँग को देखकर आर्यसमाज की ओर से भी अनेक ऐसे बाल मन्दिर, नर्सरी स्कूल व माडल स्कूल कायम किये जाने लगे हैं, जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है, अंग्रेजी भाषा पर वहुत जोर दिया जाता है, और जिनका वातावरण पर्याप्त रूप से सुसंकृत व अनुशासित होता है। पर आर्थिक लाभ की दृष्टि से विजनेस के तौर पर स्थापित किये गये 'पब्लिक स्कूलों' और आर्यसमाज के इन शिक्षणालयों में मौलिक भेद यह है, कि इनमें वच्चों को अपने धर्म का भी वोध कराया जाता है, उन्हें नैतिक शिक्षा दी जाती है और उनके सम्मुख उच्च आदर्श प्रस्तुत करने के प्रयत्न किये जाते हैं। आर्यसमाज के ये स्कूल 'पब्लिक स्कूलों' की तुलना में क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा स्थापित कॉन्वेण्ट स्कूलों से अधिक मिलते हैं, यद्यपि उनका वातावरण क्रिश्चियन न होकर आर्यसमाजी होता है। इन आर्य व दयानन्द माडल स्कूलों में सहशिक्षा को अपनाया गया है और वालक एवं वालिकाएँ उनमें प्राय: एक-साथ पढ़ते हैं। सहशिक्षा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-विषयक मन्तव्यों के विरुद्ध है। विदेशी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करना और एक विदेशी भाषा की पढ़ाई पर अत्यधिकजोर देना भी महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप नहीं है। पर जिस प्रकार की शिक्षा की माँग हो, उसकी उपेक्षा करना भी आर्यसमाज के अनेक विचारकों के मत में वांछनीय नहीं है। सम्पन्न एवं मध्य वर्गों के लोग जिस ढंग के शिक्षणालयों में अपने वच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, उनमें मुख्यतया पाश्चात्य व क्रिश्चियन वातावरण है। यदि आर्यसमाज द्वारा माडल स्कूल न खोले जाते, तो आर्य परिवारों के वच्चे भी क्रिश्चियन वातावरण वाले स्कूलों में प्रविष्ट होकर अपने धर्म व संस्कृति से विमुख होने लगते। आर्य व दयानन्द माडल स्कूलों के कारण अब यह सम्भव हो गया है, कि वच्चे वैदिक धर्म व आर्यसमाज के वातावरण में उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकें, समय और परिस्थितियों के कारण जिसकी वहुत माँग है।

अन्य आर्य शिक्षण-संस्थाएँ—आर्यसमाज द्वारा अनेक इण्डस्ट्रियल स्कूल, पॉलिटैक्निक, आयुर्वेदिक कॉलिज, मैडिकल कॉलिज, टैक्निकल इंस्टिट्यूट, शिल्प विद्यालय, औद्योगिक शिक्षा-संस्थान, मल्टीपर्पज स्कूल, ललितकला विद्यालय, कन्या व्यायाम महाविद्यालय, महिला शिल्पकला केन्द्र, कृषि विद्यालय और हस्तकला प्रशिक्षण केन्द्र आदि शिक्षण-संस्थाएँ भी स्थापित हैं, जिनमें छात्रों और छात्राओं को किसी विशेष शिल्प, उद्योग व कला में प्रशिक्षित होने का अवसर प्राप्त होता है। आर्यसमाज की ओर से अनेक दीक्षा महाविद्यालयों (ट्रेनिंग कॉलिजों) का भी संचालन किया जा रहा है। अनेक

शोध संस्थान भी आर्यसमाज द्वारा स्थापित हैं। वेद-वेदांग तथा प्राचीन आर्ष साहित्य के अध्ययन-अध्यापन तथा शोध के सम्बन्ध में इन संस्थानों द्वारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा राजस्थान यूनिवर्सिटी में दयानन्द पीठों की स्थापना हो चुकी है, और रोहतक (हरयाणा) में महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय भी विद्यमान है। इसमें सन्देह नहीं, कि आर्यसमाज का शिक्षा-विषयक कार्यकलाप अत्यन्त महान् व व्यापक है, और उस द्वारा वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

विदेशों में आर्य शिक्षण-संस्थाएँ—आर्यसमाज द्वारा केवल भारत में ही शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना नहीं की गई है, अपितु मॉरीशस, सुरीनाम, सिंगापुर, संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फिजी, बर्मा, केन्या, तंजानिया, गायना, ट्रिनीडाड, दक्षिणी अफ्रीका, युगाण्डा, मोजाम्बीक आदि कितने ही विदेशी राज्यों में भी आर्यसमाज ने आर्य पाठशालाओं, विद्यालयों तथा कॉलिजों को स्थापित किया है। विदेशों में आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं की संख्या एक सौ से भी अधिक है। भारतीय मूल के जो लोग अच्छी बड़ी संख्या में विदेशों में बसे हुए हैं, उनमें भारत के परम्परागत धर्मों व सम्प्रदायों के प्रति आस्था विद्यमान है, और उन्हें अपनी भाषा तथा संस्कृति से भी प्रेम है। इसीलिए वहाँ वैदिक धर्म का भी प्रचार है, और बहुत-से आर्यसमाज भी स्थापित हैं। भारत के समान विदेशों में भी आर्यसमाजों ने शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना पर विशेष ध्यान दिया है। इनमें आर्यभाषा (हिन्दी) तथा वैदिक धर्म के मूल तत्त्वों की शिक्षा की विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है। कतिपय शिक्षणालयों में शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी भाषा है। वैदिक धर्म के अनुसार धर्मशिक्षा की व्यवस्था तो इन सभी आर्य शिक्षण-संस्थाओं में है, जिसके कारण विदेशी व विधर्मी वातावरण में रहते हुए भी आर्य बालक-बालिकाओं को अपनी सांस्कृतिक परम्परा से परिचित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। विदेशों में चिरकाल से बसे हुए भारतीय मूल के लोग जो अपने धर्म तथा संस्कृति से विमुख नहीं हुए हैं, उसका बहुत कुछ श्रेय आर्यसमाज द्वारा स्थापित शिक्षणालयों को ही है। इन आर्य शिक्षण-संस्थाओं में भारतीय मूल के छात्रों के अतिरिक्त अन्य छात्र भी शिक्षा प्राप्त करते हैं, और इस प्रकार अफ्रीका, मारीशस, फिजी आदि के मूल व स्थानीय निवासियों को भी वैदिक धर्म के सम्पर्क में आने का अवसर मिल जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का कार्यकलाप वस्तुतः अत्यन्त महत्त्व का है। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित की गई शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने पर भी भारत के नव शिक्षित लोगों में अपने धर्म व संस्कृति के प्रति जो आस्था कायम रह सकी है, उसका प्रधान श्रेय आर्यसमाज द्वारा स्थापित शिक्षण-संस्थाओं को ही दिया जाना चाहिये। जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर क्रिश्चियन मिशनरियों ने इस देश में स्कूल खोलने शुरू किये थे और ब्रिटिश सरकार ने जिन प्रयोजनों से अपनी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया था, वे जो पूरे नहीं हो सके, उसका कारण आर्यसमाज द्वारा स्थापित वे शिक्षण-संस्थाएँ थीं, जिनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के वातावरण में दी जाती थी और जिनमें पढ़कर विद्यार्थी वे सब लाभ प्राप्त कर लेते थे, जो क्रिश्चियन स्कूलों तथा सरकारी शिक्षणालयों के विद्यार्थियों को प्राप्त हो

सकते थे। यह सही है, कि आर्यसमाज द्वारा स्थापित बहुसंख्यक शिक्षणालय महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-विषयक सिद्धान्तों के पूर्णतया अनुरूप नहीं है। पर आदर्श और यथार्थ में अन्तर का होना अस्वाभाविक नहीं है। समय की परिस्थितियों के कारण आर्यसमाज के स्कूल और कॉलिज महर्षि की शिक्षा पद्धति का अविकल रूप से अनुसरण नहीं कर सके, पर उन द्वारा वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में जो सहायता प्राप्त हुई, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र के इसी महत्त्वपूर्ण अंग पर हमें अगले अध्यायों में प्रकाश डालना है।

आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या बहुत अधिक है। उन सब का इस ग्रन्थ में विशद रूप से परिचय दे सकना न सम्भव है, और न उसकी आवश्यकता ही है। पर विभिन्न प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं का सही-सही मूल्यांकन करने के लिए उनका जितना विवरण देना उपयोगी है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया जाएगा।

चौथा अध्याय

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज

(१) शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का प्रथम प्रयास

महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के वास्तविक स्वरूप की पुनः स्थापना, मानव-समाज के हित और कल्याण तथा आर्यावर्त्त की उन्नति के लिए शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। उनका मत था कि भारत की दुर्गति का एक महत्त्वपूर्ण कारण अविद्या और सत्यशास्त्रों तथा आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन का अभाव है। अंग्रेजों ने भारत में जिस शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया था, महर्षि उसे जनता के लिए हानिकारक समझते थे। साथ ही, वे यह भी मानते थे कि परम्परागत संस्कृत की पाठशालाओं में जो शिक्षा उस समय दी जाती थी, वेद-वेदांग तथा सत्य शास्त्रों का सही ज्ञान उस द्वारा विद्यार्थी प्राप्त नहीं कर पाते थे। वहाँ आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन न होकर ऐसे ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे जिन्हें महर्षि "विषसंपृक्तान्नवत्" परित्याज्य मानते थे। इसीलिए उन्होंने अनेक ऐसी पाठशालाओं और संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया था। मिर्जापुर के रईस पण्डित गुरुचरणलाल उपाध्याय ने महर्षि के परामर्श या प्रेरणा से अपनी कोठी में एक पाठशाला स्थापित की थी, जिसका सब खर्च उन्होंने स्वयं उठाना स्वीकार किया था। वे इस पाठशाला पर १५० रुपया प्रति मास खर्च किया करते थे। महर्षि के सहपाठी पण्डित जुगल किशोर को इस पाठशाला में अध्यापन के लिए नियुक्त किया गया था। विद्यार्थियों की संख्या ३५ के लगभग थी। इस पाठशाला की स्थापना सन् १८७० में हुई थी। इसी वर्ष (१८७०) कासगंज और जलेसर में भी महर्षि द्वारा संस्कृत पाठशालाएँ स्थापित की गई थीं। इन पाठशालाओं की स्थापना से पूर्व ही महर्षि फर्रुखाबाद में एक पाठशाला की स्थापना कर चुके थे, जिसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों से शिक्षा तथा भोजन का कोई व्यय नहीं लिया जाता था। शिक्षा का सब खर्च लाला पन्नालाल वहन करते थे, और भोजन का व्यय बाबू दुर्गाप्रसाद। फर्रुखाबाद की पाठशाला सन् १८६९ में स्थापित हुई थी। मिर्जापुर, कासगंज और जलेसर में पाठशालाएँ खोलने के पश्चात् सन् १८७३ में महर्षि ने 'सत्यशास्त्र पाठशाला' नाम से एक शिक्षण-संस्था वाराणसी में भी स्थापित की थी। ये सब शिक्षण-संस्थाएँ महर्षि के इस विचार का परिणाम थीं, कि सत्य सनातन वैदिक धर्म के वास्तविक स्वरूप की पुनः स्थापना के लिए ऐसे विद्वानों की आवश्यकता है जिन्हें वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों का सचमुच ज्ञान हो। महर्षि द्वारा स्थापित पाठशालाओं में विद्यार्थियों के लिए ब्राह्म मुहूर्त में सोकर उठना और सन्ध्या-हवन करना आवश्यक था, और उनमें अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति तथा वेदों की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी।

प्राय: सबमें शिक्षा तथा भोजन का निःशुल्क प्रबन्ध था, और विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करनी होती थी। महर्षि ने अन्य भी अनेक स्थानों पर वैदिक विद्यालय व संस्कृत पाठशालाएँ खोलने का प्रयत्न किया, और उनकी प्रेरणा से कतिपय अन्य शिक्षण-संस्थाओं की भी स्थापना हुई थी। यह बात ध्यान देने योग्य है, कि फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, कासगंज आदि की पाठशालाएँ महर्षि आर्यसमाज की स्थापना (सन् १८७५) से पूर्व ही स्थापित कर चुके थे।

पर ये पाठशालाएँ देर तक कायम नहीं रह सकीं। जिस प्रयोजन से महर्षि ने इन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की थी, उसकी पूर्ति में अनेक बाधाएँ थीं। ऐसे सुयोग्य अध्यापकों का उपलब्ध होना कठिन था, जो पौराणिक व रूढ़िवादी संस्कारों और परम्पराओं से मुक्त हों, और महर्षि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में आस्था रखते हों। ऐसे प्रबन्धकर्ताओं का मिलना भी सुगम नहीं था, जो पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था कर सकें। अतः अनेक पाठशालाओं को महर्षि ने स्वयं भंग कर दिया, और उनके लिए एकत्र धन को वेदभाष्य के प्रकाशन में लगा दिया। पर यह स्वीकार करना होगा, कि आर्य-समाज द्वारा जो बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ बाद में स्थापित की गईं, उनकी परम्परा का सूत्रपात महर्षि द्वारा खोली गई इन पाठशालाओं द्वारा ही हुआ था, और उनके लिए प्रेरणा इन्हीं से प्राप्त की गई थी। यद्यपि महर्षि द्वारा स्थापित पाठशालाएँ सफल नहीं हुईं, पर उनके कारण यह तथ्य अवश्य उजागर हो गया, कि आर्यसमाज अपने उद्देश्यों की पूर्ति तभी कर सकता है जब वह शिक्षणालयों को भी अपने कार्य का साधन बनाए। ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में बहुत-से स्कूल चलाये जा रहे थे, जो उनके धर्म के प्रचार में अत्यधिक सहायक थे। ब्राह्मसमाज द्वारा भी अनेक शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जा रही थी। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि आर्यसमाज का ध्यान भी ऐसे शिक्षणालय खोलने की ओर जाए, जिनमें वैदिक धर्म की शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था हो। महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में ही आर्यसमाज की पत्र-पत्रिकाओं ने ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। मई, सन् १८८२ के अंक में आर्य मैगजीन ने लिखा था—"आर्यावर्त्त का सुन्दर उद्यान जो आज नास्तिकों, सम्प्रदायवादियों, धर्म में आस्था न रखने वालों और भौतिकवाद के समर्थकों के झाड़-झंकाड़ से परिपूर्ण हो गया है, उसका कारण यही है कि यहाँ वैदिक स्कूलों का अभाव है। वैदिक स्कूलों की आवश्यकता हम प्रबल रूप से अनुभव कर रहे हैं। यदि वैदिक स्कूल स्थापित हो जाएँ, तो उन बुराइयों का अन्त हो जाएगा, जो बाल-विवाह, अकाल मृत्यु, विधवा-विवाह के निषेध और विवाहों पर अत्यधिक खर्च के कारण उत्पन्न होती हैं। जब हमारी सन्तान वेदों को जान जाएगी, तो वह कभी भी बौद्ध, ईसाई और मुसलिम धर्मों की शिकार नहीं बनेगी, और शराबखोरी व अन्य दुराचरण से भी बची रहेगी।" पंजाब के जिन आर्य नेताओं के सम्मुख इस समय वैदिक स्कूल की स्थापना का विचार विद्यमान था, वे अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई के विरुद्ध नहीं थे। इनकी शिक्षा को वे आवश्यक समझते थे। इसीलिए आर्य मैगजीन के मई, १८८२ के अंक में ही आगे चलकर यह लिखा गया था, कि "जब लोग यह देखेंगे कि जहाँ तक अंग्रेजी शिक्षा का सम्बन्ध है, सरकारी व क्रिश्चियन मिशनों के स्कूलों में और एंग्लो-वैदिक स्कूल में कोई भेद नहीं है और उन्हें यह ज्ञात होगा कि एंग्लो-वैदिक

स्कूलों में वैदिक शिक्षा का अतिरिक्त लाभ है, तो इन स्कूलों में विद्यार्थियों की भीड़ लग जाएगी और इनसे आर्यावर्त्त की सन्तान को ठोस लाभ प्राप्त होगा। अंग्रेजी भाषा द्वारा विद्यार्थी आधुनिक विश्व की महान् जातियों के विचारों व व्यवहार से भी परिचय प्राप्त कर सकेगा।" स्पष्ट है, कि 'एंग्लो-वैदिक' नाम से ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना का विचार, जिसमें कि वेदशास्त्रों की शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई की व्यवस्था उसी ढंग से हो जैसी कि सरकारी स्कूलों व क्रिश्चियन स्कूलों से थी, महर्षि के देहावसान से पूर्व ही आर्यसमाज के क्षेत्र में भली-भाँति विकसित हो गया था। इन संस्थाओं का नाम 'एंग्लो-वैदिक' होगा, यह अभी तय नहीं हुआ था। एक अन्य आर्य पत्र 'रीजनरेटर ऑफ् आर्यावर्त्त' में इन्हें 'एंग्लो-आर्यन' की संज्ञा दी गई थी। ३ सितम्बर, सन् १८८३ के 'रीजनरेटर' में यह सूचित किया गया था, कि "आर्यसमाज का विचार एक ऐसे एंग्लो-आर्यन स्कूल को स्थापित करने का है, जिसमें कि अंग्रेजी और संस्कृत की पढ़ाई होगी। पर्शियन भाषा या तो बिल्कुल भी नहीं पढ़ाई जाएगी या उसकी शिक्षा नाममात्र की ही होगी।" उस समय पंजाब में संस्कृत भाषा का बहुत कम प्रचार था। पर आर्यसमाज शुरू में ही उसे महत्त्व दे रहा था, क्योंकि उस द्वारा ही वेद-वेदांग तथा सत्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था। जिस प्रकार की शिक्षण-संस्था की स्थापना का विचार आर्यसमाज के सम्मुख था, उसमें संस्कृत और वैदिक शिक्षा को समुचित स्थान दिया जाना था।

३० अक्तूबर, १८८३ को अजमेर में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भौतिक शरीर का परित्याग किया। उनकी बीमारी का समाचार सुनकर बहुत-से आर्य सज्जन दूर-दूर से अजमेर आये हुए थे, और महर्षि के देहावसान के समय उनके समीप उपस्थित थे। पंजाब के पण्डित गुरुदत्त तथा लाला जीवनदास तब वहाँ विद्यमान थे, और उन्होंने महर्षि के योग द्वारा प्राण त्याग करने का दृश्य अपनी आँखों से देखा था। जो भी आर्य उस समय अजमेर में थे, महर्षि के देहावसान से उन्हें गहरा आघात तो अवश्य पहुँचा था, पर साथ ही उनमें महर्षि के मिशन को पूरा करने के लिए अनुपम उत्साह भी उत्पन्न हो गया था। वे चाहते थे, कि महर्षि का कोई ऐसा स्मारक बनाया जाए, जिस द्वारा उनके कार्य को पूरा करने में भी सहायता मिले। एंग्लो-वैदिक या एंग्लो-आर्यन शिक्षणालय स्थापित करने का विचार पहले से ही आर्यसमाज के सम्मुख था। महर्षि के देहावसान पर जो शोक सभाएँ विविध नगरों में हुईं, उनमें प्रायः सर्वत्र यह विचार प्रकट किया गया, कि महर्षि का सबसे उत्तम स्मारक एक ऐसी शिक्षण-संस्था ही हो सकती है जिसमें संस्कृत, वेद-वेदांग और आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो और साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भी। पण्डित गुरुदत्त और लाला जीवनदास के अजमेर से वापस आ जाने पर ८ नवम्बर, १८८३ को लाहौर में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें जनता द्वारा बड़े उत्साह के साथ यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, कि महर्षि के स्मारक रूप में एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज की स्थापना की जाए। इसी निर्णय का परिणाम वे एंग्लो-वैदिक संस्थाएँ हैं, जिनकी संख्या वर्तमान समय में सैंकड़ों तक पहुँच चुकी है।

के कारण भारत में शिक्षित लोगों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है, सर्वसाधारण जनता से जो भिन्न है। देश में दो वर्ग हो गए हैं, शिक्षित वर्ग और सर्वसाधारण जनता। इनमें सम्बन्ध निरन्तर कम होता जा रहा है, और ये एक-दूसरे को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर पा रहे हैं। इन्हें मिलाने और इनमें परस्पर सम्पर्क स्थापित करने का यही उपाय है, कि भारत की देसी भाषाओं और विशेषतया आर्य भाषा (हिन्दी) के अध्ययन पर बल दिया जाए। अंग्रेजी सदृश विदेशी भाषा से शिक्षित लोगों और सर्व-साधारण जनता में भेद का विकास स्वाभाविक है। देसी भाषाओं द्वारा उनमें परस्पर सम्पर्क व मेल होने में सहायता मिलेगी। यदि शिक्षित व्यक्ति अपने देश की भाषा तथा साहित्य का भी समुचित ज्ञान प्राप्त कर लें, तो सर्वसाधारण जनता से उनकी वह दूरी कम हो जाएगी, जो अंग्रेजी के कारण अब निरन्तर बढ़ती जा रही है। लोगों में नैतिकता और अध्यात्म भावना के विकास के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन बहुत उपयोगी है, क्योंकि भारत की नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यताओं के आदिस्रोत जो वेद-शास्त्र आदि ग्रन्थ हैं, वे सब संस्कृत में हैं। अनुशासित जीवनचर्या मनुष्यों को स्वस्थ व शक्ति सम्पन्न बनाने में बहुत सहायक होती है। दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज द्वारा विद्यार्थियों की जीवनचर्या को अनुशासित व नियन्त्रित बनाने का भी प्रयत्न किया जाना था। समय की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए यह भी आवश्यक था, कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा की उपेक्षा न की जाए और पाश्चात्य संसार में जो नये भौतिक विज्ञान विकसित हो रहे थे उनकी पढ़ाई पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाए, क्योंकि देश की भौतिक व आर्थिक उन्नति इन्हीं विज्ञानों की सहायता से सम्भव थी। इसमें सन्देह नहीं, कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना में प्राचीन और अर्वाचीन तथा प्राच्य और पाश्चात्य विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान में ऐसे समुत्तुलन को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था, जिससे कि विद्यार्थियों को दोनों के लाभ पूर्णरूप से प्राप्त हो जाएँ।

जिन उद्देश्यों को सम्मुख रख कर दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना तैयार की गई थी, वे लाला लाजपतराय के निम्नलिखित वाक्यों द्वारा और भी अधिक स्पष्ट हो जाते हैं—"दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के बानियान की यह मन्शा था कि संस्कृत और हिन्दी की तालीम को अंग्रेजी तालीम के साथ लाज़मी करार देकर वह उन नुकायस को दूर कर सकें जो एक तरफ महज़ संस्कृत की तालीम से और दूसरी तरफ महज़ अंग्रेजी की तालीम से पैदा होते हैं। उनको गरज यह थी कि तालीमयाफ्ता जमायत और अवाम उलनास के दरमियान जो दीवार होती जाती है, उसको दूर किया जाय, ऐसी तालीम दी जाय जिससे तालीमयाफ्ता लोग अवाम उलनास के साथ ऐसे गहरे ताल्लुकात पैदा कर सकें कि उनके ख्यालात का असर आम हो।" लालाजी ने ये वाक्य सन् १९२१ में डी० ए० वी० कॉलिज की आलोचना करते हुए "स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज की मौजूदा हालत" नाम के टैक्ट में लिखे थे। पर इनसे वे उद्देश्य व प्रयोजन भली-भाँति स्पष्ट हो जाते हैं, जिनसे कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना बनायी गई थी।

लाहौर आर्यसमाज द्वारा प्रस्तावित कॉलिज के लिए धन एकत्र करने के प्रयोजन से जो उपसमिति नियुक्त की गई थी, वह उत्साहपूर्वक अपने कार्य में तत्पर रही। पर

प्रारम्भ में उसे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। सम्भ्रान्त व धनी वर्ग के लोगों ने उसके लिए अधिक उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। परिणाम यह हुआ, कि उपसमिति द्वारा मध्यम श्रेणी के लोगों की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा, और लाहौर के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी कॉलिज के लिए धन एकत्र करने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। इसी के लिए अनेक डेपुटेशन बनाये गए, जो विविध नगरों में जाकर नयी शिक्षण-संस्था का उपयोग व आवश्यकता का प्रचार करने के लिए तत्पर हुए। वे जहाँ भी जाते, स्थानीय आर्यसमाज की सहायता से सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करते और उनमें व्याख्यान देकर दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की आवश्यकता का प्रतिपादन करते। इससे स्थानीय जनता में कॉलिज के लिए उत्साह उत्पन्न हो जाता और चन्दा एकत्र करने में बहुत सहायता मिलती। यह चन्दा केवल पंजाब में ही एकत्र नहीं किया जा रहा था। राजस्थान, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (जो बाद में संयुक्त प्रान्त कहाने लगा और अब जिसे उत्तरप्रदेश कहते हैं) और सिन्ध आदि सर्वत्र आर्यसमाजों द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में स्थापित की जाने वाली शिक्षण-संस्था के लिए धन एकत्र किया जा रहा था, और यह धन उन्हीं आर्यसमाजों के पास जमा होता जा रहा था, जिन द्वारा वह एकत्र किया गया था। अभी यह निर्णय नहीं हुआ था, कि शिक्षण-संस्था को कहाँ स्थापित किया जाए। जब तक इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय न हो जाए, दूरवर्ती समाजों से यह आशा की जा सकती थी, कि वे एकत्र धन को लाहौर आर्यसमाज द्वारा गठित उपसमिति के पास भेजते रहें। प्रस्तावित एंग्लो-वैदिक कॉलिज का प्रबन्ध व संचालन किसके अधीन होगा, इस विषय में भी अभी कोई निर्णय नहीं हुआ था। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था, कि महर्षि के स्मारक रूप में जिस नयी शिक्षण-संस्था की स्थापना के लिए धन एकत्र किया जा रहा था, उसके सम्बन्ध में लोगों के उत्साह में कुछ कमी आने लग जाए। इसी का यह परिणाम था, कि जुलाई १८८५ तक केवल ११,००० रुपये कॉलिज की धन-उपसमिति से प्राप्त हो सके थे। बीस महीनों तक निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर केवल यही राशि दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के लिए जमा की जा सकी थी।

पर इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसके कारण आर्य जनता में कॉलिज के लिए नये उत्साह का संचार हो गया। ३ नवम्बर, १८८५ को लाहौर आर्यसमाज की अंतरंग सभा को लाला हंसराज का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें कि उन्होंने प्रस्तावित शिक्षण-संस्था के लिए अपनी सेवाएँ समर्पित करने का निश्चय प्रकट किया था, और वह भी बिना किसी वेतन व पारिश्रमिक के। लाला हंसराज का जन्म होशियारपुर जिले के बजवाड़ा कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम चुन्नीलाल था, जो सरकारी अदालत में अपील नवीस का कार्य किया करते थे। इसमें उन्हें अच्छी आमदनी थी और समाज में उन्हें प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी। सन् १८४७ में श्रीमती गणेशदेवी से उनका विवाह हुआ। चुन्नीलालजी के दो पुत्र थे। मुल्कराज (जन्मतिथि २३ एप्रिल, १८६०) और हंसराज (जन्मतिथि १९ एप्रिल, १८६४)। हंसराज की प्राथमिक शिक्षा घर पर और अपने नगर में ही हुई। पर १८७९ में वे लाहौर में आ गये, और वहाँ के मिशन स्कूल में दाखिल कर दिये गए। फरवरी, १८७६ में लाला चुन्नीलालजी की मृत्यु हो गई थी, और परिवार का बोझ उनके बड़े पुत्र मुल्कराजजी पर आ पड़ा था। सन् १८७७ में

मुल्कराजजी ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी, और उन्हें पोस्ट ऑफिस में सरकारी नौकरी मिल गई थी। उन दिनों मैट्रिक पास कर लेना भी बड़ी बात थी, और इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेने पर सरकारी सर्विस का मार्ग प्रशस्त हो जाता था। पोस्ट ऑफिस में सर्विस करते हुए मुल्कराजजी की नियुक्ति लाहौर में हो गई, और उनके छोटे भाई हंसराजजी भी शिक्षा के लिए लाहौर आ गये। दिसम्बर, १८८० में हंसराजजी ने मिशन हाई स्कूल, लाहौर से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। सन् १८८० तक पंजाब यूनिवर्सिटी की स्थापना नहीं हुई थी। पंजाब के विद्यार्थी कलकत्ता यूनिवर्सिटी की परीक्षाएँ दिया करते थे, और वहाँ के स्कूल-कॉलिज उसी यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित पाठविधि का अनुसरण किया करते थे। मिशन हाई स्कूल से १७ विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे। कहा जाता है, कि उनमें से केवल हंसराजजी को ही सफलता प्राप्त हुई थी। मैट्रिक पास कर लेने पर हंसराजजी उच्च शिक्षा के लिए पंजाब यूनिवर्सिटी कॉलिज में प्रविष्ट हुए (जनवरी, १८८१)। सन् १८८१-८२ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या केवल ६७ थी। इससे यह भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है, कि उस समय पंजाब में उच्च शिक्षा की कितनी कमी थी। यूनिवर्सिटी कॉलिज, लाहौर में चार वर्ष नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर हंसराजजी ने सन् १८८५ में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। कॉलिज में उनके विषय अंग्रेजी, संस्कृत, पाश्चात्य दर्शन और इतिहास थे। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे, और अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रति उनको अगाध प्रेम था। हंसराज के लाहौर आने से पूर्व ही वहाँ आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी, और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाएँ वहाँ के नवयुवकों को विशेष रूप से प्रभावित करने लग गई थीं। हंसराजजी भी विद्यार्थी अवस्था में ही आर्यसमाज के सम्पर्क में आ गये, और लाला साईंदास की प्रेरणा से समाज के कार्यों में रुचि लेने लगे। आर्यसमाज द्वारा हंसराजजी जिन अन्य आर्ययुवकों के सम्पर्क में आए, उनमें लाला लाजपतराय, पण्डित गुरुदत्त और लाला शिवनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १८८२ में इन युवकों ने मिलकर निश्चय किया, कि 'रीजनरेटर ऑफ् आर्यावर्त्त' नाम से एक अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया जाए, जिससे कि वे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों तक वैदिक धर्म के सन्देश को पहुँचा सकें। हंसराजजी को कॉलिज की शिक्षा प्रारम्भ किये अभी अधिक समय नहीं हुआ था, वह अभी विद्यार्थी ही थे, पर आर्यसमाज के कार्य के लिए उनमें अनुपम उत्साह था। इसीलिए 'रीजनरेटर' पत्र का प्रबन्ध उन्होंने अपने हाथों में ले लिया था, और उसके सम्पादन में भी वह सहायक सम्पादक के रूप में भाग लेने लग गये थे।

सन् १८८५ में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर हंसराजजी के सम्मुख भावी कार्य का प्रश्न उपस्थित हुआ। सरकारी सर्विस वह बहुत सुगमता से प्राप्त कर सकते थे। उन दिनों बी० ए० की डिग्री की बाजार में बहुत कीमत थी और हंसराजजी ने यह डिग्री बहुत अच्छे नम्बरों में पास की थी। बी० ए० की परीक्षा में वह पंजाब भर में दूसरे नम्बर पर आये थे। सरकारी नौकरी प्राप्त कर उच्च स्थिति और अच्छी आमदनी प्राप्त करने का मार्ग हंसराजजी के लिए पूर्णतया प्रशस्त था। पर हंसराजजी ने 'प्रेय' मार्ग का परित्याग कर 'श्रेय' मार्ग का अनुसरण करने का निश्चय किया। उस समय पंजाब की आर्य जनता में दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना के लिए बहुत

(२) दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की स्थापना

८ नवम्बर, सन् १८८३ के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज की स्थापना का जो प्रस्ताव लाहौर में आयोजित सार्वजनिक सभा द्वारा स्वीकृत किया गया था, उससे आर्य जनता में अत्यधिक उत्साह का संचार हुआ। सभा में महर्षि के इस स्मारक के लिए चन्दे की भी अपील की गई, जिस पर तत्काल ६,००० से भी ऊपर रुपये एकत्र हो गये। उस समय यह राशि वर्तमान समय के दो-ढाई लाख रुपयों से कम मूल्य की नहीं थी। यह दान मुख्यतया मध्य श्रेणी के लोगों द्वारा दिया गया था, और उनमें स्त्रियाँ भी अच्छी बड़ी संख्या में थीं। ६ दिसम्बर, १८८३ को लाहौर आर्यसमाज की अन्तरंग सभा ने दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज के लिए धन एकत्र करने के प्रयोजन से एक उपसमिति का निर्माण किया, जिसके सदस्य लाला लालचन्द एम० ए०, लाला मदनसिंह बी० ए०, लाला जीवनदास और पण्डित गुरुदत्त एम० ए० थे। भाई जवाहरसिंह को इस उपसमिति का सचिव नियुक्त किया गया था। उपसमिति द्वारा धन एकत्र करने के लिए जनता से जो अपील की गई, उसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया था, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती किस प्रकार वेदों का प्रचार कर मानव-समाज का हित और कल्याण करना चाहते थे। आर्यावर्त्त जो आज अज्ञान, अन्धविश्वास और अनाचार के गर्त्त में गिरा हुआ है, उसका कारण यही है कि वेदों की उदात्त शिक्षाओं को उसने भुला दिया है। आर्यावर्त्त से अज्ञान और अन्धविश्वासों को दूर करने और इस देश में प्रचलित सामाजिक बुराइयों का निवारण करने में महर्षि ने सम्पूर्ण जीवन लगा दिया था। हमारे लिए आवश्यक है, कि महर्षि की स्मृति में एक ऐसा स्मारक स्थापित करें, जो उनके महान् व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के अनुरूप हो। इसी प्रयोजन से एक एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना का निश्चय किया गया है, जिसमें पाश्चात्य संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश को प्रकाशित करने के साथ-साथ वेदों में जो अगाध ज्ञान संचित है उसे भी प्रकाश में लाया जाएगा। कुछ समय पश्चात् लाला लालचन्द (जो धन एकत्र करने के प्रयोजन से गठित उपसमिति के प्रधान थे) ने एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना का प्रारूप तैयार किया, जिसे विविध आर्यसमाजों के पास विचारार्थ भेज दिया गया। इस प्रारूप में एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना की आवश्यकता का इन शब्दों में निरूपण किया गया था—"हम एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना करना चाहते हैं, जिसमें वर्तमान शिक्षा पद्धति के गुणों व लाभों को कायम रखते हुए उसकी त्रुटियों को दूर कर दिया गया हो। (इस शिक्षण-संस्था का) मुख्य उद्देश्य यह होगा, कि राष्ट्रभाषा और अन्य लोकभाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित कर शिक्षित वर्ग और अशिक्षित जनता के बीच के भेद को दूर कर सब को परस्पर सम्बद्ध कर दिया जाए, प्राचीन संस्कृत के अध्ययन पर जोर देकर नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार किया जाए, अनुशासित जीवनचर्या द्वारा शक्ति-सम्पन्न व सही आदतों के निर्माण में सहायता की जाए, अंग्रेजी साहित्य के गम्भीर परिचय को प्रोत्साहित किया जाए, और भौतिक व व्यावहारिक विज्ञानों के ज्ञान के प्रसार द्वारा देश की भौतिक उन्नति में सहायक हुआ जाए।"

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना के लिए आर्यसमाज के जो नेता प्रयत्नशील थे, वे अनुभव कर रहे थे, कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य के प्रचार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्साह था। उसके लिए धन भी एकत्र हो रहा था। परन्तु प्रश्न यह था कि इस नयी शिक्षण-संस्था का कार्यभार कौन सँभालेगा। कौन ऐसा सुयोग्य व्यक्ति है, जो महर्षि के स्मारक रूप में स्थापित शिक्षणालय का उन्हीं आदर्शों व सिद्धान्तों के अनुसार संचालन कर सकेगा, जिनका प्रतिपादन महर्षि ने अपने ग्रन्थों में किया था और जिन्हें क्रियान्वित करने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की गई थी। आर्य नेता इस विषय में दुविधा में थे, कि ३ नवम्बर, १८८५ के दिन हंसराजजी का पत्र प्राप्त कर उनके हृदय में उत्साह का संचार हो गया और उन्होंने अनुभव किया कि अब उनकी सबसे विकट समस्या का हल हो गया है। उन्हें एक ऐसा व्यक्ति प्राप्त हो गया है, जो सदाचारी है, धर्मप्राण है, सच्चा आर्य है, जिसे महर्षि के मन्तव्यों में पूर्ण विश्वास है, जो सुशिक्षित है और जो नयी शिक्षण-संस्था के संचालन के लिए सब प्रकार से योग्य है। निस्सन्देह, यह युवक हंसराज का महान् त्याग था, जिसके कारण एंग्लो-वैदिक कॉलिज के स्वप्न को यथार्थ कर सकना सम्भव हुआ। यदि इसे सर्वमेध यज्ञ या वलिदान कहा जाए, तो भी अनुचित नहीं होगा, क्योंकि इस द्वारा श्री हंसराज ने सांसारिक दृष्टि से अपने उज्ज्वल भविष्य और समृद्ध जीवन को वलि चढ़ाकर अपने को महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज के लिए समर्पित कर दिया था।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना को कार्यान्वित करने के लिए अब दो कार्य शेष थे, कॉलिज के लिए अच्छी वड़ी मात्रा में धन एकत्र करना और एक ऐसी सोसायटी संगठित करना जिसके अधीन कॉलिज का सब प्रवन्ध हो। धन एकत्र करने का कार्य ८ नवम्बर, सन् १८८३ को ही प्रारम्भ कर दिया गया था, जवकि उस दिन हुई सार्वजनिक सभा में कॉलिज की स्थापना का विचार जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। धन के लिए पहली सार्वजनिक 'इलतिमास' (अपील) २३ दिसम्वर, १८८३ को प्रकाशित की गई थी जिसके कुछ अंश इस प्रकार थे—"आर्यसमाज ने वहुत विचार तथा विमर्श के पश्चात् यह तजवीज़ सोची है कि उस महात्मा तथा ब्रह्मर्षि के स्मारक के रूप में एक महाविद्यालय अर्थात् कॉलिज ऐसा वनाया जाए जिसमें संस्कृत भाषा का उच्च कक्षा तक अध्ययन हो और वेद तथा वेदविद्या के ग्रन्थ भी पढ़ाये जाएँ। और इसलिये कि जीविकोपार्जन तथा पाश्चात्य विद्याओं की प्राप्ति के लिए अंग्रेजी शिक्षा का होना भी आवश्यक है, और उसमें अंग्रेजी शिक्षा भी उच्च कक्षा तक हुआ करे।" कॉलिज की आवश्यकता व स्वरूप का उल्लेख कर अपील में आगे यह कहा गया है कि "इस प्रकार के कॉलिज को दृढ़ आधार पर स्थिर करने के लिए एक वृहत् राशि की आवश्यकता है जिसके व्याज अथवा लाभ से उसका सम्पूर्ण खर्च हमेशा के लिए निकलता रहे। इस राशि का अनुमान दस लाख रुपया किया गया है।" यह ऊपर लिखा जा चुका है, कि ८ नवम्वर, १८८३ की सार्वजनिक सभा में कॉलिज के लिए ७,००० रुपये चन्दा आ गया था, पर उसके वाद दान प्राप्ति की मात्रा कम होती गई। कारण यह था, कि राजा-महाराजाओं, जमींदारों और सम्भ्रान्त लोगों ने एक नयी शिक्षण-संस्था की योजना का स्वागत नहीं किया था। उसके समर्थक मध्य श्रेणी के वे लोग थे जो महर्षि के भक्त थे और जिन्हें यह आशा थी कि संस्कृत और वेद-वेदांग की शिक्षा से भारतभूमि और सम्पूर्ण विश्व का हित-कल्याण सम्पादित हो सकता है। इस श्रेणी के लोगों के पास श्रद्धा थी, पर धन नहीं था। फिर भी इनसे जो कुछ भी वन पाता था, जो कुछ भी इनके पास था,

उस सबको वे महर्षि के स्मारक के लिए अर्पित करने को उद्यत रहते थे। आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर प्रस्तावित कॉलिज के लिए जब धन की अपील की जाती थी, तो लोगों की थैलियों के मुँह खुल जाते थे। देवियाँ गहने उतारकर कॉलिज फण्ड में प्रदान कर देती थीं। कॉलिज के लिए आर्य जनता में कितना उत्साह था, इसे प्रदर्शित करने के लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। अमृतसर आर्यसमाज के १८८५ के वार्षिकोत्सव पर कॉलिज के लिए धन की अपील की जाती है, होशियारपुर आर्यसमाज के मंत्री लाला मुरलीधर व्याख्यान देते हुए उमंग में आकर कहते हैं—अपना एक मास का वेतन १५० रुपये कॉलिज को देने का वचन तो मैं दे ही चुका हूँ, पर इससे सन्तोष नहीं होता। अब इस राशि की मात्रा १५० रुपये के स्थान पर १००० रुपये कर देता हूँ। केवल हिन्दू समाज ही नहीं, मुसलमान भी कॉलिज के लिए चन्दा दे रहे थे, क्योंकि इस शिक्षण-संस्था का लाभ उन्हें भी प्राप्त होना था। मुलतान के रईस राजा जहाँदार खाँ ई० ए० सी० ने अपना एक मास का वेतन कॉलिज फण्ड में प्रदान किया था। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जुलाई, १८८५ तक नयी शिक्षण-संस्था के लिए अधिक धन एकत्र नहीं हो सका था। पर नवम्बर, १८८५ में जब श्री हंसराज जैसा त्यागी व उच्च शिक्षित युवक कॉलिज के संचालन के लिए उपलब्ध हो गया, तो आर्य जनता में नये उत्साह व स्फूर्ति का संचार हो जाने के कारण दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के लिए अधिक मात्रा में धन प्राप्त होने लगा। धन एकत्र कर सकना तब और अधिक सुगम हो गया, जबकि कॉलिज के प्रबन्ध के लिए एक सोसायटी संगठित कर ली गयी। सोसायटी के संगठन व संविधान को लाला लालचन्द ने तैयार किया था। लाहौर आर्यसमाज में उस पर देर तक विचार-विमर्श होता रहा। जब लाला लालचन्द द्वारा तैयार किये गये सोसायटी के संविधान को कुछ साधारण संशोधनों के साथ लाहौर आर्यसमाज ने स्वीकार कर लिया, तो आर्यसमाज के अधिक व्यापक क्षेत्र से उसे स्वीकृत कराने के लिए विविध आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों के एक सम्मेलन का लाहौर में आयोजन किया गया। यह सम्मेलन ३१ जनवरी, १८८६ के दिन हुआ, और इसमें निम्नलिखित प्रतिनिधि सम्मिलित हुए—लाहौर समाज के लाला लालचन्द, लाला साईंदास और लाला जीवनदास; अमृतसर समाज के पण्डित शिवदत्तराम; मुलतान समाज के लाला काशीराम; गुजरांवाला समाज के लाला जीवनकृष्ण; लुधियाना समाज के लाला शिवशरणदास और रोहतक समाज के लाला लाजपतराय। इनके अतिरिक्त देहरादून, सक्खर और शिमला की आर्यसमाजों ने पत्र द्वारा कॉलिज की योजना और उसका प्रबन्ध करने वाली सोसायटी के संविधान से अपनी स्वीकृति व सहमति प्रकट कर दी थी। ३१ जनवरी, सन् १८८६ को लाहौर में आयोजित सम्मेलन द्वारा जब दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की योजना और दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी के संविधान व नियमावली को स्वीकार कर लिया गया, तो इस सोसायटी को सन् १८६० के सोसायटीज एक्ट २१ के अधीन रजिस्टर्ड करा लिया गया।

रजिस्टर्ड कराए गये स्मरण-पत्र में सोसायटी के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये थे—(१) स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में पंजाब में एक कॉलिज और एक छात्रावास अन्तर्गत होंगे। इस संस्था के ये उद्देश्य होंगे—(क) हिन्दी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित, उन्नत तथा प्रचलित करना, (ख) प्राचीन संस्कृत साहित्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहित, उन्नत तथा प्रचलित करना, और (ग) अंग्रेजी भाषा के साहित्य और विज्ञानों के सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित तथा प्रचलित करना। (२) जहाँ तक प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के साथ ऐसा करना असंगत न हो, दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज और उससे सम्बद्ध संस्थाओं में शिल्प की शिक्षा के साधनों को जुटाना।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी के सदस्य कौन हों, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था की गई—(१) जिन व्यक्तियों ने सोसायटी के फण्ड में एक हजार रुपये या अधिक प्रदान किये हों। (२) जिन आर्यसमाजों ने सोसायटी फण्ड में १००० रुपये या इससे अधिक प्रदान किये हों, उनका एक-एक प्रतिनिधि। (३) मैनेजिंग कमेटी के सदस्य जब तक कि वे कमेटी के सदस्य रहें। (४) जिन आर्यसमाजों ने एक हजार या अधिक रुपये सोसायटी के फण्ड में प्रदान किये हों उनकी अन्तरंग सभाओं के सदस्य, जब तक कि वे उस समाज की अन्तरंग सभा के सदस्य रहें। दयानन्द एंग्लो-वैदिक संस्थाओं की स्वामिनी यह सोसायटी ही थी, और सब सम्पत्ति भी इसी के स्वत्वाधिकार में रखी गई थी। पर सोसायटी के कार्य का यथार्थ संचालन मैनेजिंग कमेटी के हाथों में दिया गया था, जिसका निर्माण निम्नलिखित प्रकार के सदस्यों द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गई थी —(१) जिन आर्यसमाजों द्वारा सोसायटी के फण्ड में एक हजार रुपये या अधिक दिये गये हों, उनका एक-एक प्रतिनिधि, (२) जिन आर्यसमाजों द्वारा प्रदत्त धनराशि अधिक हो, उनका पहले एक हजार रुपये के लिए एक प्रतिनिधि और उसके ऊपर प्रति पाँच हजार रुपये के लिए अतिरिक्त एक प्रतिनिधि; पर यह आवश्यक था कि इस प्रकार आर्यसमाजों के जो प्रतिनिधि मैनेजिंग कमेटी में हों, वे आर्य जगत् में अच्छी स्थिति रखते हों। मैनेजिंग कमेटी को यह अधिकार दिया गया था, कि तीन-चौथाई बहुमत से किसी आर्यसमाज के मैनेजिंग कमेटी में प्रतिनिधित्व के लिए एक हजार रुपये प्रदान करने की शर्त को हटा सके। इसी प्रकार आर्यसमाजों को भी अधिकार था, कि वे किसी उपयुक्त व्यक्ति के न मिलने के कारण या किसी अन्य कारण से प्रतिनिधि भेजने के अपने अधिकार को प्रयोग में न लाए, (३) आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त मैनेजिंग कमेटी में कतिपय ऐसे सदस्यों की भी व्यवस्था की गई थी, जो विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करते हों। ये हित शिक्षा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कुलीन-वर्ग, काश्त, विज्ञान और विद्वत्ता थे। मैनेजिंग कमेटी को अधिकार था, कि वह शिक्षा, कानून, विद्वत्ता, कुलीनता और चिकित्सा और इंजीनियरिंग में प्रवीणता तथा वैज्ञानिकता के आधार पर इन विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को कमेटी के सदस्य रूप में नियुक्त कर सके। इन सदस्यों के लिए आर्यसमाज का सभासद् होना अनिवार्य नहीं था। यह भी आवश्यक नहीं था, कि आर्यसमाजों द्वारा मैनेजिंग कमेटी के लिए जिन प्रतिनिधियों को चुना जाए, वे उसी आर्यसमाज के सभासद् हों। इस कारण अनेक आर्यसमाज ऐसे प्रतिनिधि चुन देते थे जिनका निवास लाहौर में हो और जिनके लिए कमेटी की बैठकों में उपस्थित हो सकना सुगम हो। लाहौर का आर्यसमाज उस समय अत्यन्त समृद्ध था। उस द्वारा कॉलिज के लिए प्रदान की गई राशि भी इतनी अधिक थी, कि उसके आधार पर वह कमेटी में एक से अधिक स्थान प्राप्त कर सकता था। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि मैनेजिंग कमेटी में लाहौर का प्रभाव अधिक रहे।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी की पहली वैठक २७ फरवरी, सन् १८८६ को हुई। पर इस वैठक में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सका। २० मार्च, १८८६ को हुई कमेटी की दूसरी वैठक महत्त्व की थी, क्योंकि उसमें पदाधिकारियों का चुनाव किया गया था, जो इस प्रकार थे—लाला लालचन्द प्रधान और कोषाध्यक्ष; लाला ईश्वरदास, लाला साईंदास, लाला ज्वालासहाय और लाला नरसिंह दास उपप्रधान, और लाला मदनसिंह मन्त्री। इसी वैठक में यह निश्चय किया गया, कि जितनी जल्दी हो सके, सोसायटी की ओर से एक हाईस्कूल खोल दिया जाये और जब तक स्थान का अन्तिम रूप से निर्णय न हो जाये, यह स्कूल लाहौर में रहे। अब दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज की योजना ने क्रियान्वित होना आरम्भ कर दिया था, और आर्य जनता उस दिन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लग गई थी, जबकि यह योजना मूर्त रूप धारण कर लेगी। २४ एप्रिल, १८८६ को मैनेजिंग कमेटी की जो वैठक हुई, उसमें स्कूल खोलने की तिथि १ जून, १८८६ निर्धारित कर दी गई और उसमें प्रयुक्त की जाने वाली पाठ-विधि पर विशद रूप से विचार-विमर्श किया गया। उन दिनों स्कूलों की पाठविधि पूर्णतया सरकार द्वारा निर्धारित नहीं की जाती थी। उनके संचालकों को इस विषय में पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी। २४ एप्रिल, १८८६ की वैठक में प्रस्तावित दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल के लिए जो पाठविधि निर्धारित की गई, उसकी कुछ उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित थीं—

(१) राय मूलराज ने प्रस्ताव किया, कि इस शिक्षण-संस्था के प्राइमरी विभाग में शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा हो। लाला ईश्वरदास ने प्रस्ताव का समर्थन किया, और प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

(२) राय मूलराज का यह प्रस्ताव कि अपर डिपार्टमेण्ट में अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम हो, सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

(३) स्कूल में उर्दू की पढ़ाई के सम्बन्ध में मैनेजिंग कमेटी के सदस्यों में मतभेद था। राय मूलराज के प्रस्ताव पर यह निर्णय किया गया, कि स्कूल की द्वितीय कक्षा में उर्दू को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाए। तृतीय कक्षा में भी उर्दू को वैकल्पिक विषय के रूप में रखने का प्रस्ताव लाला रंगीलाल ने प्रस्तुत किया, पर वह स्वीकृत नहीं हो सका। ५ वोट उसके पक्ष में आये थे, और ७ विरोध में। चौथी कक्षा में उर्दू को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाये जाने का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत कर लिया गया। इन निर्णयों से ज्ञात होता है, कि उर्दू के सम्बन्ध में मैनेजिंग कमेटी में बहुत मतभेद था। उन दिनों पंजाब में उर्दू का बहुत प्रचार था। पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के अनुसार भारत की भाषा हिन्दी थी, जिसे आर्यसमाज के क्षेत्र में 'आर्य भाषा' कहा जाता था। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था, कि महर्षि के स्मारक रूप में स्थापित की जा रही शिक्षण-संस्था में हिन्दी को समुचित स्थान दिया जाये, और उर्दू की पढ़ाई को केवल वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाने का निर्णय किया जाये।

(४) स्कूल की विविध कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले विषयों का निर्धारण इस प्रकार से किया गया—(क) पाँचवीं कक्षा—हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, अंकगणित, भूगोल और उर्दू (विकल्प)। (ख) छठी कक्षा—अंग्रेजी, संस्कृत, अंकगणित, भूगोल, इतिहास, और उर्दू (विकल्प)। (ग) सातवीं कक्षा—संस्कृत, अंग्रेजी, अंकगणित, भूगोल, इतिहास,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम तथा उर्दू और पर्शियन (विकल्प)। (घ) आठवीं कक्षा—हिन्दी, संस्कृत, अंकगणित, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास, व्यायाम शिक्षा व उर्दू और पर्शियन (विकल्प)। (ङ) नौवीं कक्षा—संस्कृत, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान। (च) दसवीं कक्षा—संस्कृत, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की विविध कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले विषयों का जो निर्धारण मैनेजिंग कमेटी की २४ एप्रिल, सन् १८८६ की बैठक में हुआ था, उसके सम्बन्ध में कमेटी के सदस्यों में कई बातों पर मतभेद थे। मुख्य मतभेद हिन्दी, उर्दू और पर्शियन की पढ़ाई के सम्बन्ध में था। छठी कक्षा में हिन्दी विषय न रखा जाए, यह प्रस्ताव लाला केशवदास और लाला लालचन्द ने प्रस्तुत किया था। इसके पक्ष और विपक्ष में बराबर वोट आने पर प्रधानजी के कास्टिंग वोट से यह निर्णय हुआ था, कि छठी कक्षा में हिन्दी विषय न रहे। सातवीं कक्षा में भी हिन्दी को रखने न रखने के सम्बन्ध में वोटों द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता हुई थी और बहुमत हिन्दी को न रखने के पक्ष में था। आठवीं कक्षा में हिन्दी रखने का प्रश्न जब विचारार्थ प्रस्तुत हुआ, तो उसे न रखने का प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकृत हो गया। हिन्दी के सम्बन्ध में मतभेद का इससे अनुमान किया जा सकता है। जबकि छठी और सातवीं कक्षाओं में हिन्दी न रखने का निर्णय किया जा चुका था, तो आठवीं कक्षा में उसे अन्यतम अनिवार्य विषय के रूप में स्वीकृत कर लिया जाना एक अस्वाभाविक व असंगत बात भी थी। पर जब कमेटी के सदस्यों के मत किसी प्रश्न पर प्रायः बराबर-बराबर बँटे हुए हों, तो ऐसे निर्णय हो ही जाते हैं। उर्दू और पर्शियन को अनिवार्य विषय के रूप में रखने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। पर इन भाषाओं को वैकल्पिक रूप में रखना भी कमेटी के बहुत-से सदस्यों को स्वीकार्य नहीं था। इसीलिए छठी कक्षा में पर्शियन को वैकल्पिक विषय के रूप में रखने का प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकृत हो गया था। नौवीं और दसवीं कक्षाओं में उर्दू और पर्शियन को वैकल्पिक विषय रखने के सम्बन्ध में बहुमत से कोई निर्णय नहीं हो सका था, और प्रधानजी के कास्टिंग वोट से इन भाषाओं को न पढ़ाने के पक्ष में निर्णय किया गया था। संस्कृत के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं था। इसीलिए स्कूल की पाँचवीं से दसवीं कक्षाओं तक सबके लिए उसकी पढ़ाई अनिवार्य रखी गई थी, जो निःसन्देह दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। संस्कृत की पढ़ाई तीसरी कक्षा से ही प्रारम्भ कर दी गई थी और तीसरी तथा चौथी कक्षाओं में भी उसे अनिवार्य विषय रखा गया था। अंग्रेजी का प्रारम्भ चौथी कक्षा से किया गया था। इस प्रकार संस्कृत को उसकी तुलना में अधिक महत्त्व दिया गया था।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल में विद्यार्थियों से कितनी फीस ली जाये, इसपर भी मैनेजिंग कमेटी ने विचार-विमर्श किया था। अन्त में फीस की जिन दरों को स्कूल की प्रथम नियमावली में प्रकाशित किया गया, वे निम्नलिखित थीं—

प्रवेश शुल्क

लोअर प्राइमरी विभाग में प्रवेश के समय	४ आने (२५ पैसे)
अपर प्राइमरी विभाग में प्रवेश के समय	८ आने (५० पैसे)
मिडल और अपर विभागों में प्रवेश के समय	एक रुपया

मासिक शुल्क

लोग्रर प्राइमरी कक्षाओं के लिए	२ आने	(१२ पैसे)
अपर प्राइमरी कक्षाओं के लिए	४ आने	(२५ पैसे)
मिडल कक्षाओं के लिए	८ आने	(५० पैसे)
अपर (हाई स्कूल) कक्षाओं के लिए	एक रुपया	

इसी समय यह भी निश्चय कर लिया गया, कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल के लिए कितना स्टाफ रखा जाये, और अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के वेतन की दरें क्या हों। हैडमास्टर और गणित के अध्यापकों के लिए ५० रुपये मासिक, प्राकृतिक विज्ञान के अध्यापक के लिए ४० रुपये मासिक, संस्कृत के अध्यापक के लिए ३० रुपये मासिक, हिन्दी के अध्यापक के लिए १५ रुपये, १२ रुपये और १० रुपये मासिक, उर्दू के अध्यापक के लिए १५ रुपये मासिक, चौकीदार, चपरासी और दफ्तरी के लिए क्रमश: ५ रुपये, ६ रुपये और ७ रुपये मासिक वेतन निर्धारित किये गये। यह भी निश्चय किया गया, कि स्कूल के भवन के लिए ५० रुपये मासिक किराया दिया जाये, और विविध खर्च के लिए ५ रुपये मासिक स्वीकार किया जाये। इस प्रकार दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल का प्रारम्भ में केवल ३०५ रुपये मासिक खर्च बैठता था।

स्कूल के लिए आवश्यक फर्नीचर क्रय करने की व्यवस्था भी शुरू में ही कर ली गई थी। १५ कुर्सियाँ (मूल्य ३० रुपये), ४० बेन्चें (मूल्य २०० रुपये), १० मैटिंग (४० रुपये), ६ ब्लैक बोर्ड (२० रुपये), ३ अलमारियाँ (३० रुपये), २० बक्से (६ रुपये) और १० मेजें (४० रुपये) स्कूल के लिए खरीदी गई थीं, जिन पर कुल मिला कर ३६६ रुपये व्यय हुआ था। फर्नीचर के अतिरिक्त १०० रुपये की पुस्तकें भी क्रय कर ली गई थीं।

सब तैयारी हो जाने पर १ जून, सन् १८८६ को दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। प्रथम सप्ताह का अन्त होते-होते ३०० विद्यार्थी स्कूल में भरती हो गये। जनता में इस स्कूल के लिए अत्यधिक उत्साह था, और बालकों को उसमें प्रविष्ट कराने की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। योग्यता की दृष्टि से विद्यार्थी विविध स्तर के थे। योग्यता के अनुसार उन्हें प्राइमरी, मिडल और अपर (हाई) वर्गों में दाखिल किया गया, और जून मास के समान होने तक दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या ५५० तक पहुँच गई थी। इसमें सन्देह नहीं, कि महर्षि के स्मारक रूप में स्थापित यह स्कूल उस समय के लाहौर के अन्य स्कूलों से बहुत भिन्न था। उस समय के अन्य स्कूल या तो सरकारी थे और या ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित। उनमें संस्कृत की शिक्षा का तो प्रश्न ही क्या था, हिन्दी भी नहीं पढ़ाई जाती थी। यदि कहीं उसकी शिक्षा का प्रबन्ध था भी, तो वह अत्यन्त गौण व उपेक्षित था। भारतीय भाषाओं में वहाँ उर्दू और पर्शियन् का ही जोर था। पर आर्यसमाज द्वारा स्थापित इस स्कूल में हिन्दी और संस्कृत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। संस्कृत की पढ़ाई तीसरी कक्षा से शुरू कर दी जाती थी, और दसवीं तक अनिवार्य रूप से उसे पढ़ना होता था। हिन्दी तो पहली कक्षा से ही प्रारम्भ कर दी जाती थी। उस समय के पंजाब के लिए हिन्दी और संस्कृत को इतना महत्त्व देना वस्तुत: एक बहुत बड़ी बात थी। यह स्वीकार करना होगा, कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल के रूप में एक ऐसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षण-संस्था सन् १८८६ में लाहौर में स्थापित हो गई थी, जिसका वातावरण धार्मिक था और जिसके विद्यार्थी वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के निकट सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त कर लेते थे। इस स्कूल में पढ़ाई की व्यवस्था भी अत्युत्तम थी। इसी का यह परिणाम था, कि एक वर्ष की समाप्ति पर जब चार विद्यार्थी कलकत्ता यूनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बिठाये गये, तो वे चारों उत्तीर्ण हो गए और उनमें से एक प्रथम श्रेणि में पास हुआ और दो द्वितीय श्रेणि में। मिडल परीक्षा में इस स्कूल के २६ विद्यार्थी बैठे थे, जिनमें से १४ उत्तीर्ण हो गये थे। अन्य स्कूलों की तुलना में मिडल परीक्षा का यह परिणाम भी सन्तोषजनक था।

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की प्रगति से आर्य जनता को सन्तोष था। लोग उसके लिए धन एकत्र करने में उत्साहपूर्वक भाग ले रहे थे। आर्यों के अनेक डेपुटेशन उत्तरप्रदेश, राजस्थान और सिन्ध आदि में चन्दा करने के लिए जाया करते, और उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता भी प्राप्त होती थी। पंजाब में भी सर्वत्र आर्यसमाजों द्वारा इस स्कूल के लिए धन एकत्र किया जाता। आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर इस नयी आर्य शिक्षण-संस्था के लिए ही धन की अपीलें की जाती थीं, और यह कार्य मुख्यतया पण्डित गुरुदत्त और लाला लाजपतराय द्वारा किया जाता था। कभी-कभी ट्रिब्यून के सम्पादक मि० मजूमदार भी इस स्कूल के लिए अपील किया करते थे। विभिन्न आर्य-समाजों के वार्षिकोत्सवों पर कितनी धनराशि दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज के लिए एकत्र हो जाया करती थी, इसकी कुछ रिपोर्ट 'आर्य पत्रिका' के पुराने अंकों में विद्यमान हैं। उनके अनुसार सन् १८८७ में पेशावर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर १५०० रुपये एकत्र हुए थे, और अमृतसर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव (१८८९) पर १३०० रुपये नकद और १९०० रुपये की प्रतिज्ञायें प्राप्त हुई थीं। सन् १८८९ में ही गुजरां-वाला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर १३०० रुपये नकद एकत्र हो गए थे, और १५०० रुपये की प्रतिज्ञाएँ हुई थीं। चन्दा प्रायः छोटी-छोटी राशियों में प्राप्त हुआ करता था। धनी व सम्भ्रान्त वर्ग में आर्यसमाज का अधिक प्रचार नहीं था। अतः उनसे दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल (भविष्य में हम इसे इसके प्रचलित नाम डी० ए० वी० स्कूल से लिखा करेंगे) के लिए आर्थिक सहायता की आशा नहीं की जा सकती थी। चन्दे के लिए प्रधानतया मध्य वर्ग के लोगों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। जो धन डी० ए० वी० स्कूल सोसायटी के स्थायी कोष में जमा था, उससे केवल १२० रुपये मासिक सूद प्राप्त होता था। इतने से स्कूल का खर्च नहीं चल सकता था। उन दिनों सूद की दर ४ प्रतिशत वार्षिक थी। इस दशा में यह निर्णय किया गया, कि जनता को मासिक चन्दा देने के लिए प्रेरित किया जाये। आर्यसमाजों से इसके लिए अपील की गई, जिसका यह परिणाम हुआ कि सब मिलाकर २५० रुपये प्रति मास चन्दे की प्रतिज्ञाएँ प्राप्त हो गईं। डी० ए० वी० संस्था की इस ढंग से सहायता करने के लिए जनता में कितना अधिक उत्साह था, इसका कुछ अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि भटिण्डा रेलवे स्टेशन के बाबुओं ने अपने वेतन का एक भाग (एक रुपये या ६४ पैसे में एक पैसा) प्रति-मास कॉलिज फण्ड में देने का निश्चय किया। इसी ढंग से अन्यत्र भी दफ्तरों, डाकखानों और स्टेशनों आदि के कर्मचारियों द्वारा मासिक रूप से चन्दा देते रहने की बात तय की की गई थी। जून, १८८६ तक (जबकि स्कूल का प्रारम्भ हुआ था) ४५,००० रुपये

की धनराशि इस संस्था के लिए एकत्र की जा चुकी थी, जिसे किसी प्रकार से अगण्य नहीं कहा जा सकता, विशेषतया उस दशा में जब कि यह सब धन मध्य श्रेणि के साधारण लोगों द्वारा दिया गया था।

डी०ए० वी० स्कूल की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। न केवल पंजाब के आर्यसमाजी ही, अपितु अन्य हिन्दू भी यह अनुभव करने लगे थे कि यह उनकी अपनी शिक्षण-संस्था है, जिसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी संस्कृत भी सीख लेते हैं, और अपने धर्म को भी जान जाते हैं। इसीलिए उस समय यह रिवाज चल पड़ा, कि पुत्र-जन्म, विवाह आदि के अवसरों पर डी० ए० वी० स्कूल को कुछ दान अवश्य दिया जाये। 'आर्य पत्रिका' के उस समय के अंकों में इस प्रकार प्रदान किये गये दान की रिपोर्ट भी प्रकाशित हुआ करती थीं। मुलतान के वकील श्री परमानन्द ने पुत्र के उत्पन्न होने पर २०० रुपये डी० ए० वी० स्कूल को भेजे थे। श्री परमानन्द सम्पन्न व्यक्ति थे, पर मध्य श्रेणि के व्यक्तियों द्वारा पुत्र-जन्म के अवसर पर दिये गये ८ रुपयों, विवाह के समय दिये गये २०० रुपयों, पत्नी के स्वास्थ्य लाभ करने पर दिये गये ६ रुपयों और वेतन-वृद्धि हो जाने पर भेजे गए ४ रुपयों तथा इसी प्रकार के कितने ही अन्य दानों की सूचनाएँ पुरानी पत्र-पत्रिकाओं व रिपोर्टों में विद्यमान हैं। सन् १८९१-९२ की कॉलिज (डी० ए० वी० कॉलिज) रिपोर्ट में यह अंकित है, कि लाहौर की अरोड़वंश विरादरी और चकवाल, रावलपिण्डी, भेरा तथा गुजरात की खत्री विरादरियों ने इस आशय के प्रस्ताव स्वीकृत किये थे, कि विवाह के अवसर पर कुछ-न-कुछ धनराशि डी० ए० वी० कॉलिज को अवश्य ही दान में भेजी जाया करे। यह राशि कम-से-कम कितनी हो, यह भी उन्होंने तय कर दिया था। 'आटा फण्ड' द्वारा भी डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन एकत्र करने में बहुत सहायता मिली। इस 'फण्ड' का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्ध में महात्मा मुंशीराम ने अपने जीवनचरित्र 'कल्याण मार्ग का पथिक' में इस प्रकार लिखा है—"यह आटा फण्ड कैसे चला? सम्वत् १९४३ (सन् १८८६) की गर्मियों में जब लाहौर आर्य मन्दिर की ड्यौढ़ी के ऊपर वाले मकान में साप्ताहिक अधिवेशन हो रहा था, एक साधारण लम्बा-दुबला साधु आया और घुटने टेककर बैठ गया। सत्यार्थप्रकाश की कथा समाप्त होते ही उसने एक मर्मस्पर्शी वक्तृता दी और यह प्रस्ताव किया कि प्रत्येक आदित्यवार को आर्य सामाजिक सभासद् चुटकी-चुटकी आटा घर से भिक्षा करके लावें और आर्यसमाज का काम चलावें। इसका प्रचार इतना हुआ कि दयानन्द कॉलिज की आमदनी का यह एक सन्तोषजनक भाग बन गया। बहुत-से घरों में धर्मघट रख दिये गये, गृह-पत्नियाँ प्रातःकाल आटा गूँथने से पहले एक मुट्ठी आर्यसमाज के निमित्त निकालकर धर्मघट में डालती रहीं।" जिस साधु ने लाहौर आर्यसमाज में धर्मघट द्वारा आटे के रूप में चन्दा एकत्र करने की प्रथा का प्रारम्भ किया था, उसका नाम रमता राम था। बाद में आटे की तरह आर्यसमाजी घरों से रद्दी भी एकत्र की जाने लगी, और उसे बेचकर जो राशि प्राप्त होती थी, उसे आर्यसमाज के काम में लाया जाने लगा। इसे 'रद्दी फण्ड' कहते थे। लाहौर के समान अन्य नगरों में भी धर्मघट रखे गए, और उनसे डी०ए० वी० कॉलिज को आमदनी होने लगी। १०,अगस्त,१८८६ के आर्य पत्रिका के अंक में यह समाचार प्रकाशित हुआ था—"हमारे पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि एबटाबाद आर्यसमाज ने भी डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन एकत्र करने के लिए सक्रिय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पग उठाने प्रारम्भ कर दिये हैं। वहाँ की समाज के सभासदों ने भी धर्मघट या आटा पद्धति को अपना लिया है, और तीन सप्ताहों में इस प्रकार एकत्र हुए आटे की कीमत ४ रुपये मैनेजिंग कमेटी के पास भेज दिये हैं।" पंजाब के अन्य भी कितने ही नगरों में धर्मघटों द्वारा डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन एकत्र किया जा रहा था, और आर्य गृहणियाँ बड़ी आशा और उत्साह से इस फण्ड में आटे का दान किया करती थीं। आर्य जनता की श्रद्धा का ही यह परिणाम था, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में स्थापित की गई यह शिक्षण-संस्था दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति करती गई, और इसे धन प्राप्त करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। आर्यसमाज में कतिपय ऐसे सम्पन्न व्यक्ति भी थे, जिन्होंने इस संस्था के लिए प्रभूत धनराशियाँ प्रदान की थीं। ऐसे एक सज्जन मियानी के ठेकेदार मलिक ज्वालाप्रसाद थे, जिन्होंने ८००० रुपये एक साथ डी० ए० वी० कॉलिज को प्रदान किये थे, और यह उनके दान की पहली किस्त थी। सन् १८९१ के आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव पर उन्होंने दो मौरूसी चाहात, दो मौरूसी मकानात, औरतों के कुल जेवरात और बाकी कुल जायदाद के चौथे हिस्से की वसीयत डी० ए० वी० कॉलिज के नाम कर दी थी। इसी प्रकार भैरोंवाल के रईस बाबा नारायणसिंह ने अमृतसर में डी० ए० वी० स्कूल खोलने के लिए १०,००० रुपये नकद प्रदान किये थे। पर ये दान अपवाद रूप में थे। डी० ए० वी० कॉलिज चन्दे या दान के लिए मुख्यतया मध्य श्रेणि के लोगों पर ही निर्भर था। कई आर्यसमाजों द्वारा मासिक रूप से भी निश्चित धनराशि इस संस्था के लिए भेजी जाती थी। मुलतान आर्यसमाज ३० रुपये मासिक, लुधियाना आर्यसमाज २१ रुपये मासिक और गुजरांवाला आर्यसमाज १५ रुपये मासिक डी० ए० वी० कॉलिज को भेजा करते थे। आर्य जनता से सब प्रकार का समर्थन प्राप्त कर यह आर्य शिक्षण-संस्था उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होती जा रही थी, और जून, १८८८ में यह स्थिति आ गई थी, कि उसमें कॉलिज विभाग भी खोल दिया गया था।

(३) डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में मतभेद

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल और कॉलिज में संस्कृत और वेद-वेदांगों की शिक्षा को कितना स्थान दिया जाये, इस प्रश्न पर शीघ्र ही उसके संचालकों में मतभेद होने प्रारम्भ हो गये। आर्य जनता में इस संस्था के लिए जो अत्यधिक उत्साह था, और न केवल सम्पन्न आर्य सज्जन ही, अपितु साधारण आर्थिक स्थिति के आर्य लोग भी जो उसके लिए उदारतापूर्वक धन प्रदान कर रहे थे, उसका कारण यह था कि उनकी दृष्टि में इस द्वारा संस्कृत, वेद, वेदांगों तथा प्राचीन शास्त्रों के पठन-पाठन की व्यवस्था की जानी थी। लाहौर आर्यसमाज के सन् १८८६ के वार्षिकोत्सव पर लाला लाजपतराय तथा पण्डित गुरुदत्त ने डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन की जो अपील की थी, उसकी रिपोर्ट २ मार्च, १८८६ के 'आर्य पत्रिका' के अंक में प्रकाशित हुई थी। उसके अनुसार इन वक्ताओं का कहना था, कि "केवल इस कारण से देशवासियों को कॉलिज की सहायता नहीं करनी चाहिए, कि वे स्वामी (महर्षि दयानन्द सरस्वती) के सेवामय जीवन के उपकारों से दबे हुए हैं, परन्तु इसलिए भी कि इस समय सदाचार और धर्म की शिक्षा का नितान्त अभाव है।" सन् १८८७ के लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर

पण्डित गुरुदत्त ने अपने व्याख्यान में कहा था—"ब्रह्मचर्य के विना जीवन दुःखमय हो रहे हैं···ब्रह्मचर्य का पालन कर सकना तव तक सम्भव नहीं है जव तक कि हम वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन न करें। डी० ए० वी० कॉलिज से देश को एक वड़ा लाभ यह होगा, कि उसमें धर्मशास्त्रों तथा धर्म का ज्ञान कराया जाएगा।" डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन एकत्र करते हुए पण्डित गुरुदत्त मुरादावाद भी गये थे। इस सम्वन्ध में महात्मा नारायण स्वामी ने अपनी आत्मकथा में जो विवरण दिया है, वह उद्धरण के योग्य है—"स्वर्गवासी पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने मुरादावाद आकर दयानन्द कॉलिज के लिए धन की अपील की। अपील करने के लिए कही सारी वातें, गौतम और कणाद के उत्पन्न करने की जो कुछ वर्ष पहले गुरुकुलों के लिए कही जाया करती थीं और जिन्हें आज कहते हुए गुरुकुल के पृष्ठपोषक भी संकोच करते हैं, दयानन्द कॉलिज का उद्देश्य वताते हुए पण्डित गुरुदत्त ने कहीं। भला जव गुरुदत्त जैसा वक्ता हो और स्कीम हो गौतम और कणाद वनाने की मशीन ढालने की, तो धन एकत्र हो ही जाना चाहिए था। तदनुसार एक हजार से अधिक धन जमा हो गया। कॉलिज में इस धन के पहुँचने का दूसरा फल यह हुआ कि मुरादाबाद आर्यसमाज को उपर्युक्त कॉलिज सोसाइटी में कुछेक सभासदों के भेजने का अधिकार प्राप्त हो गया।" ये कुछ उद्धरण यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं कि आर्य जनता डी० ए० वी० कॉलिज से भी यह आशा करती थी कि वहाँ संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। इसी आशा से इस शिक्षण-संस्था को उदारतापूर्वक धन प्रदान किया जा रहा था, और आटा-फण्ड सदृश साधन प्रयुक्त किये जाने लगे थे।

पर डी० ए० वी० कॉलिज के सव संस्थापक एवं संचालक यह स्वीकार नहीं करते थे, कि इस संस्था की स्थापना केवल संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन के लिए की गई है। वे एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना के पक्षपाती थे, जिसमें उस सव शिक्षा की सुचारु रूप से व्यवस्था हो, जो उस समय के सरकारी तथा क्रिश्चियन शिक्षणालयों में दी जाती थी, पर साथ ही जहाँ संस्कृत, हिन्दी और धर्मशास्त्रों की भी शिक्षा दी जाये, और जिसका वातावरण आर्य संस्कृति तथा सदाचरण के मन्तव्यों के अनुरूप हो। उनका कथन था, कि इस संस्था के नाम में जो 'एंग्लो' और 'वैदिक' विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं, उनमें 'एंग्लो' शब्द प्रचलित आधुनिक शिक्षा का परिचायक है, और 'वैदिक' शब्द प्राचीन आर्य धर्म, सभ्यता और संस्कृति के पुनः स्थापन के लक्ष्य की ओर संकेत करता है। पर प्रश्न यह था, कि डी० ए० वी० कॉलिज में कितना स्थान 'एंग्लो' को प्राप्त हो, और कितना 'वैदिक' को। दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की स्थापना के तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर ही इस सम्वन्ध में मतभेद उत्पन्न होने प्रारम्भ हो गये थे, और समाचार-पत्रों द्वारा वे जनता के सम्मुख भी आने लग गये थे।

डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना के कुछ ही समय बाद कलकत्ता के 'आर्यावर्त्त' पत्र में यह शिकायत छपी थी, कि इस संस्था में संस्कृत की पढ़ाई पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। इसका उत्तर देते हुए 'आर्य पत्रिका' (लाहौर) ने लिखा था, कि भारत में डी० ए० वी० स्कूल ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिसमें अंग्रेजी के साथ संस्कृत की भी आवश्यक रूप से शिक्षा दी जाती है। पर अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत का भी पढ़ाया जाना सब आर्यसमाजियों के सन्तोष के लिए पर्याप्त नहीं था। जालन्धर से प्रकाशित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाले 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र के १२ जून, १८८६ के अंक में पण्डित धर्मचन्द्र (आर्यसमाज, अमृतसर) का एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें यह कहा गया था, कि "प्रतिनिधि सभा, पंजाब और मैनेजिंग कमेटी दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज और आर्यसमाज लाहौर और सर्वत्र आर्यसमाजों व आर्य सभासदों और सब सत्य विद्याओं के प्रचारकों और वैदिक-धर्म के सहायकों तथा हितैषियों की सेवा में प्रार्थना है कि जब से धर्मरक्षक मैनेजिंग कमेटी के धार्मिक उत्साह से दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज, लाहौर जारी हुआ है तबसे उसका नतीजा काबिले शुक्रगुजारी खास-औ-आम के जाहिर हो रहा है। अब इस वक्त निहायत जरूरत इस अमर की मालूम होती है कि प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थ वेदांग का पठन-पाठन जारी होना चाहिये और आम तालब-इल्मों में इस प्रकार की तालीम जारी होना मुमकिन नहीं। उसके लिए बिलफेल इस कदर काफी है कि वैदिक-धर्म के उपदेश सुनाये जाएँ, और वेदोक्त नित्यकर्म अर्थात् सन्ध्या-उपासना आदि पुस्तकें पढ़ायी जायें। इसलिए मुनासिब मालूम तो यह होता है कि चन्दक्स संन्यासियों के वास्ते एक शाखा दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की वेदांग और प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थ पढ़ाने के वास्ते खोली जाये।" १० अगस्त, सन् १८८६ के 'सद्धर्मप्रचारक' में सियालकोट के लाला शीतलदास ने लिखा था—"क्या दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज सचमुच दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज है या दयानन्द वर्नाक्युलर कॉलिज है? क्या संस्कृत विद्या की उन्नति और वेदविद्या के प्रचार के उद्देश्य से इसे खोला गया था या अंग्रेजी या फारसी शिक्षा की उन्नति के उद्देश्य से?" इसमें सन्देह नहीं, कि डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज में संस्कृत भाषा को स्थान दिया गया था, पर सब आर्य उससे सन्तुष्ट नहीं थे। जो लोग डी० ए० वी० कॉलिज में संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन को प्रमुख स्थान देने के पक्ष में थे, उनके नेता पण्डित गुरुदत्त थे। आधुनिक विज्ञान की उच्च शिक्षा उन्होंने प्राप्त की थी, और गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में उन्हें विज्ञान का प्राध्यापक नियुक्त कर दिया गया था। सम्भवतः, वह पहले भारतीय थे जिन्हें एक प्रमुख सरकारी कॉलिज में विज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त किया गया था। पर पण्डित गुरुदत्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की तुलना में संस्कृत तथा प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा को अधिक महत्त्व देते थे। वह कहा करते थे, कि "कितना अच्छा हो यदि मैं समस्त विदेशी शिक्षा को पूर्णतया भूल जाऊँ तथा केवल मात्र विशुद्ध संस्कृतज्ञ बन सकूँ, क्योंकि जो बात अंग्रजी ग्रन्थों के सहस्रों पृष्ठों में मिलती है वह वेद के एक मन्त्र अथवा ऋषियों के एक सूत्र में मिल जाती है। मिल की समस्त फिलासफी—न्याय दर्शन के दो सूत्रों की व्याख्या ही होती है।" उनका मत था, कि "यद्यपि पाश्चात्य विज्ञान अच्छा है और इसके द्वारा विविध कलाओं का आविष्कार हुआ है, पर वैशेषिक दर्शन के समक्ष यह अभी कुछ भी नहीं है।" उनका यह भी कथन था, कि "इस समय पृथ्वी पर ऋषि कणाद सदृश पदार्थविद्या का ज्ञाता कोई नहीं है।" इन्हीं विचारों के कारण पण्डित गुरुदत्त का यह कहना था, कि संस्कृत की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये, चाहे इसके लिए अंग्रेजी की पढ़ाई कम भी क्यों न करनी पड़े। लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सवों पर डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन की अपील करते हुए वह यही कहते थे कि यह संस्था संस्कृत की शिक्षा के लिए स्थापित की गई है। जैसाकि महात्मा नारायण स्वामी ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है, गुरुदत्त का स्वप्न था, कि डी० ए० वी० कॉलिज से गौतम और कणाद उत्पन्न होंगे और इसी

आधार पर उन्होंने मुरादाबाद से एक सहस्र से भी अधिक धन इस संस्था के लिए प्राप्त किया था। इसी कारण वह अपना कर्तव्य समझते थे, कि डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज की पाठविधि में संस्कृत तथा वेदशास्त्रों को समुचित स्थान दिलवाने का प्रयत्न करें।

डी० ए० वी० कॉलिज में अन्य भी अनेक ऐसे महानुभाव थे, जो संस्कृत के सम्बन्ध में पण्डित गुरुदत्त के विचारों के समर्थक थे। इनमें लाला रलाराम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह जेहलम आर्यसमाज की ओर से डी० ए० वी० सोसायटी के सदस्य थे। ३१ जनवरी, सन् १८८६ के सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने संस्कृत, हिन्दी और वेदशास्त्रों के अध्यापन की एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की, जिसके अनुसार डी० ए० वी० स्कूल के सब विद्यार्थियों के लिए चौथी कक्षा से आर्य भाषा (हिन्दी) और संस्कृत का पढ़ना अनिवार्य किए जाने की बात प्रस्तावित की गई थी, और स्कूल की पाठविधि में पाणिनि की अष्ठाध्यायी, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका को भी अन्तर्गत करने का प्रस्ताव किया गया था। लाला रलाराम का यह भी प्रस्ताव था, कि डी०ए०वी० शिक्षण-संस्था के साथ एक वैदिक पुस्तकालय की भी स्थापना की जाये, जिसके लिए प्रारम्भ में सोसायटी की ओर से पाँच हजार रुपये प्रदान किए जायें, और प्रतिवर्ष एक हजार रुपया खर्च किया जाये। लाला रलाराम की योजना में यह भी कहा गया था, कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) की इस ढंग से व्यवस्था की जाये, जिससे कि विद्यार्थी नियमित व अनुशासित जीवन बिताने को विवश हों। उनका सुझाव था, कि बीस-बीस विद्यार्थियों के लिए एक-एक सहायक अधिष्ठाता की नियुक्ति की जाये, जिसके संरक्षण व निरीक्षण में रहते हुए वे अनुशासित जीवन बिताने में समर्थ हों। लाला रलाराम के इस प्रस्ताव का अनुमोदन पण्डित गुरुदत्त द्वारा किया गया। डी० ए० वी० सोसायटी के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत होने पर लाला नारायणदत्त और राय गंगाराम ने प्रस्ताव किया, कि जेहलम के सदस्यों की ओर से जो प्रस्ताव पेश किया गया है, डी० ए० वी० सोसायटी निम्नलिखित कारणों से उस पर विचार न करने का निश्चय करती है, प्रथम, प्रस्ताव के साथ जो पत्र भेजा गया है उसकी भाषा भद्रोचित नहीं है, द्वितीय, इनसे डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी की बदनामी होती है।" लाला नारायणदास और राव गंगाराम के प्रस्ताव के पक्ष में ३१ वोट आए और विरोध में १०। इस प्रकार लाला रलाराम और पण्डित गुरुदत्त के मूल प्रस्ताव पर डी० ए० वी० सोसायटी को विचार करने की आवश्यकता ही नहीं हुई।

पर डी० ए० वी० सोसायटी के लिए यह भी सम्भव नहीं था, कि आर्यसमाज की इस शिक्षण-संस्था में संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की पढ़ाई के प्रश्न की उपेक्षा कर सके। इसीलिए कॉलिज की कमेटी ने संस्कृत की शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के प्रयोजन से एक उपसमिति की नियुक्ति की, और पण्डित गुरुदत्त को उसका संयोजक बनाया गया। लाला मूलराज ने इस सम्बन्ध में जो पत्र उपसमिति को भेजा था, वह उद्धरण के योग्य है। उसमें उन्होंने लिखा था —"क्योंकि मैं उपसमिति की बैठक में नहीं आ पाऊँगा जिसमें संस्कृत पढ़ाने के उस पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विचार होना है जो दयानन्द कॉलिज प्रबन्धक सभा के सम्मुख रखा गया था, मैं यह पत्र उस विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए लिख रहा हूँ। मेरा विचार है कि 'वर्णोच्चारण शिक्षा' और 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' उस पाठविधि में सम्मिलित हैं जो अब प्रचलित है।...मुझे प्रसन्नता होगी,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि अष्टाध्यायी मिडल के विद्यार्थियों के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव और उनकी पढ़ाई में विघ्न डाले बिना अच्छी तरह से पढ़ाई जा सके। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी से प्रार्थना की जाये कि वे अष्टाध्यायी के उन भागों को अंकित करें जो विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाने हैं। मुझे विश्वास है कि यदि पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी अपनी सम्मति दे दें तो इस विषय पर बेहतर विचार किया जा सकता है। मुझे सन्देह है, कि बहुसंख्या में हम ऐसे विद्यार्थी ढूँढ़ सकते हैं जो दयानन्द कॉलिज में पढ़ने को उद्यत हों, यदि उन्हें उनके संस्कृत पाठ्यक्रम के अतिरिक्त सूत्र, उणादि कोष तथा भूमिका भी पढ़नी पड़े। इन (पुस्तकों) के पाठविधि में प्रवेश का सम्भावित परिणाम यह होगा, कि विद्यार्थी संस्कृत के स्थान पर फारसी लेने लगेंगे और यदि फारसी को पाठ्यक्रम से हटा दिया गया, तो कोई ही, सम्भवतः बहुत कम, दयानन्द कॉलिज में प्रवेश लेंगे। वर्तमान दशा में यही बहुत बड़ी बात होगी, यदि हम स्कूल व कॉलिज में अष्टाध्यायी के कुछ भाग रख सकें।" लाला मूलराज ने यह पत्र ३ जुलाई, १८८९ को उपसमिति को लिखा था।

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने भी २७ जुलाई, १८८९ को एक पत्र उपसमिति को लिखा था, जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्कृत व्याकरण आदि की शिक्षा के सम्बन्ध में प्रतिपादित पद्धति को डी० ए० वी० स्कूल व कॉलिज में प्रयोग करने पर बहुत जोर दिया गया है। व्याकरण की पढ़ाई के विषय में सत्यार्थप्रकाश से महर्षि के मन्तव्य को उद्धृत कर इस पत्र में पण्डित गुरुदत्त ने लिखा है—"महान् स्वामी दयानन्दजी की स्मृति में स्थापित एक संस्था को यह शोभा नहीं देता कि शैक्षिणक विषयों में उनकी सम्मति पर ध्यान न दें—ऐसी सम्मति जो उन्होंने अनुभवों के पश्चात् दी, जो उन्होंने अपने सर्वाधिक मूल्यवान् समय और जीवन की कीमत पर कष्ट के साथ प्राप्त किये।...यह मानते हुए कि लघुकौमुदी (डी० ए० वी० स्कूल की) मिडल तथा हाई कक्षाओं में पढ़ाई जाती है और अष्टाध्यायी कॉलिज कक्षाओं में, देखना यह है कि इसका क्या परिणाम होता है। कॉलिज की शिक्षा के लिए विद्यार्थी के पास चार वर्ष होते हैं, दो एम० ए० में और दो बी० ए० में। एम० ए० के दो वर्ष केवल उस विषय के लिए होते हैं, जिसे कोई एम० ए० के लिए ले। कॉलिज के चार वर्षों में दूसरे और चौथे वर्ष तो केवल यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित कोर्स की तैयारी में अर्पित हो जाते हैं। अतः यदि अष्टाध्यायी की पढ़ाई कॉलिज में ही करानी हो, तो उसे एफ० ए० के एक वर्ष और बी० ए० के एक वर्ष ही में पढ़ाया जा सकता है। ...डी० ए० वी० कालिज का कोई विद्यार्थी जब पढ़ाई पूरी करता है, तो उसने केवल अष्टाध्यायी पढ़ी होती है। उणादि कोष और महाभाष्य उसने नहीं पढ़ा होता। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यही वह आदर्श शिक्षा है, जो डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थियों को दी जायेगी? हमारे कॉलिज का वह स्नातक, जिसने केवल अष्टाध्यायी पढ़ी हो और वह भी अधूरी, क्योंकि न तो उसने उणादि कोष, न निघण्टु, न निरुक्त, न छन्द, न ज्योतिष और न छह दर्शनों में से कोई एक भी पढ़ा होता है, मैं पूछता हूँ कि क्या ऐसा विद्यार्थी आर्य शिक्षा के उच्च आदर्श को पूरा कर सकता है? क्या उसमें वेदों की सचाइयों को समझ सकने की योग्यता आ जाती है? क्या उसे आर्य शिक्षा के सिद्धान्तों में दृढ़ हुआ समझा जा सकता है? यदि इस कॉलिज को कभी वे आशाएँ पूरी करनी हैं जो इस आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोगों ने चिर काल से लगा रखी हैं, तो आपको निश्चित रूप से अपनी यूनिवर्सिटी की एम० ए०

कक्षाओं से भी उच्चतर स्तर की कक्षाओं की स्थापना पर अवश्य विचार करना चाहिए। …लाला साईंदासजी का विचार है कि अष्टाध्यायी की पढ़ाई को मिडल की पहली कक्षा और हाई स्कूल की पहली (नौवीं) कक्षा में परीक्षण के रूप में लागू कर दिया जाये। एक साल पश्चात् इस पद्धति की सफलता के सम्बन्ध में रिपोर्ट ली जाये, और यदि इसे समुचित तथा व्यावहारिक समझा जाये, तो मिडल और हाईस्कूल की सब कक्षाओं में इसे पूरी तरह से प्रयुक्त करना शुरू कर दिया जाये। पर वह (लाला साईंदास) यह भी चाहते हैं कि इन कक्षाओं में प्रतिदिन एक घण्टा अष्टाध्यायी पढ़ाई के अतिरिक्त साथ-साथ कोर्स की पढ़ाई को जारी रखा जाये, क्योंकि उनके विचार में पाठ्यपुस्तकों के निरन्तर अध्ययन व अभ्यास से ही कोई विद्यार्थी परीक्षा उत्तीर्ण करने के योग्य बनता है। मैं इस विचार से काफी सहमत हूँ …अष्टाध्यायी की पढ़ाई हमें अवश्य ही करानी चाहिये, यद्यपि यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों के हितों को दृष्टि में रखकर कोई भी तर्कसंगत छूट देने के लिए मैं उद्यत हूँ।…कॉलिज विभाग की कक्षाओं में संस्कृत की शिक्षा के विषय में लाला हंसराजजी, लाला लालचन्दजी और लाला साईंदासजी का विचार है, कि क्योंकि कॉलिज की कक्षाओं में संस्कृत की पाठविधि को तुरन्त लागू नहीं किया जा सकता, अतः इस योजना पर विचार करना अभी स्थगित कर दिया जाये। परन्तु मेरा विचार है कि भविष्य में जब संस्कृत शिक्षा की योजना को प्रयुक्त करने का समय आ जाये, तो उसमें अनावश्यक देरी न हो। इस बात को दृष्टि में रखकर संस्कृत की पढ़ाई की वाञ्छनीयता को अभी तय कर लिया जाये, चाहे उसे कुछ समय पश्चात् भी कार्यान्वित किया जाना हो।"

लाला मूलराज और पण्डित गुरुदत्त के इन पत्रों को पढ़कर यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है, कि डी० ए० वी० कॉलिज के संचालकों में सस्कृत की पढ़ाई के प्रश्न पर मतभेद था। लाला मूलराज और उनके साथी संस्कृत की शिक्षा के विरोधी नहीं थे, पर वे यह समझते थे कि पाठविधि में संस्कृत को अत्यधिक स्थान देने का यह परिणाम होगा कि विद्यार्थी संस्कृत के स्थान पर फारसी ले लेंगे (क्योंकि फारसी भी संस्कृत के विकल्प के रूप में पाठविधि में नियत थी), और यदि फारसी की शिक्षा की डी० ए० वी० स्कूल में व्यवस्था नहीं की गयी, तो उसमें विद्यार्थी प्रवेश प्राप्त करने में हिचकिचाने लग जाएँगे। इसलिए वे संस्कृत के पाठ्यक्रम को सरल व सुबोध रखना चाहते थे, और इसी कारण स्कूल विभाग में संस्कृत व्याकरण की पढ़ाई के लिए लघु-कौमुदी को नियत किया गया था। पर पण्डित गुरुदत्त के सम्मुख महर्षि दयानन्द सरस्वती के निम्नलिखित वाक्य विद्यमान थे—"जितना बोध इन (अष्टाध्यायी और महाभाष्य) के पढ़ने से तीन वर्ष में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्यों कर हो सकता है। महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण करने में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है। क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ उठाना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुमूल्य मोतियों को पाना।" पण्डित गुरुदत्त को महर्षि के इस कथन पर अगाध विश्वास था, और अपने अनुभव से भी उन्होंने इस कथन की सचाई को जान लिया था। उन्होंने अष्टाध्यायी पढ़ कर थोड़े समय में ही संस्कृत का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था, कि वे उसमें भाषण भी देने लगे थे। उन्हें इस बात से हार्दिक दुःख था, कि डी० ए० वी० स्कूल में संस्कृत की पढ़ाई के लिए उस लघुकौमुदी का प्रयोग हो रहा था, जिसकी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निन्दा की थी। वह चाहते थे, कि डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज में संस्कृत के लिए अष्टाध्यायी और महाभाष्य का आश्रय लिया जाये। संस्कृत की शिक्षा के प्रश्न को लेकर डी० ए० वी० सोसायटी के सदस्यों में जो गम्भीर मतभेद था, उसको दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। सन् १८८९ में लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर कॉलिज कमेटी की जो बैठक हुई, उसमें लाला (महात्मा) हंसराज ने यह सुझाव प्रस्तुत किया, कि अष्टाध्यायी को सम्मुख रखकर संस्कृत व्याकरण की एक ऐसी पाठविधि तैयार की जाये जो लघुकौमुदी के समान ही सुबोध हो। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित वेदांग प्रकाश में अष्टाध्यायी के सूत्रों की जो व्याख्या हिन्दी में की गयी है, उसके आधार पर व्याकरण की ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लिखी जाएँ, जिन्हें डी० ए० वी० स्कूल की मिडल तथा हाई कक्षाओं में संस्कृत पढ़ने के लिए प्रयुक्त किया जा सके। इसी प्रकार मनुस्मृति, रामायण तथा महाभारत से संस्कृत के सन्दर्भों को संकलित कर स्कूल की विविध कक्षाओं में पढ़ाया जाये। महात्मा हंसराज का यह सुझाव बहुत क्रियात्मक था। इस द्वारा संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए लघुकौमुदी को पढ़ाने की आवश्यकता नहीं रह जाती थी, और महर्षि विरचित वेदांग प्रकाश के आधार पर अष्टाध्यायी की शिक्षा दी जा सकती थी। साथ ही, संस्कृत साहित्य की पढ़ाई के लिए संस्कृत की नयी पुस्तकों के स्थान पर मनुस्मृति सदृश प्राचीन ग्रन्थों का प्रयोग एक ऐसी बात थी, जिससे पण्डित गुरुदत्त सन्तोष अनुभव कर सकते थे। महात्मा हंसराज के इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर सन् १८९० में डी० ए० वी० स्कूल की आठवीं कक्षा में अष्टाध्यायी की पढ़ाई को अनिवार्य कर दिया गया।

पर पण्डित गुरुदत्त और उनके साथियों के पूर्ण सन्तोष के लिए ये बातें पर्याप्त नहीं थीं। इसीलिए डी० ए० वी० सोसायटी में जब सन् १८९० का बजट प्रस्तुत हुआ, तो लाला परमानन्द ने यह प्रस्ताव रखा कि बजट को तब तक स्वीकृत न किया जाए, जब तक कि हिन्दी, प्राचीन संस्कृत तथा वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहित करने की बात बजट में सम्मिलित न कर ली जाए। पर इस प्रस्ताव के पक्ष में केवल २ वोट आये, जबकि ३३ सदस्यों ने इसके विरोध में मत दिये। पर इससे संस्कृत के पक्षपाती निराश नहीं हुए। उन्होंने अपने प्रयत्न को जारी रखा, जिसके परिणामस्वरूप १ जून, सन् १८९० की सोसायटी की बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हो गया—"सोसायटी (डी० ए० वी० सोसायटी) की इच्छा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (हिन्दी भाग) के भाग व भागों को मैनेजिंग कमेटी द्वारा इस संस्था की प्राइमरी और मिडल कक्षाओं के पाठ्यक्रम में, परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर, समाविष्ट किया जाये; और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के संस्कृत भाग को इस संस्था के उच्चतर एवं कॉलिज विभागों के पाठ्यक्रम में, परिस्थितियों के अनुसार, मैनेजिंग कमेटी द्वारा सम्मिलित कर लिया जाए।" इसमें सन्देह नहीं, कि इस प्रस्ताव

द्वारा जो व्यवस्था की गयी थी उसके परिणामस्वरूप डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज में सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की पढ़ाई को समुचित स्थान प्राप्त हो जाता था और सर्वसाधारण विद्यार्थियों के लिए इसे पर्याप्त समझा जा सकता था। पर पण्डित गुरुदत्त के साथी व अनुयायी इससे भी पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हुए, और उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज में संस्कृत को और भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराने के अपने प्रयत्न में कोई कमी नहीं आने दी।

पर पण्डित गुरुदत्त देर तक इस प्रयत्न का नेतृत्व नहीं कर सके। सन् १८८९ के उत्तरार्द्ध में उनका स्वास्थ्य गिरने लग गया था, और वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये थे। चिकित्सा से विशेष लाभ नहीं हुआ, और ९ मार्च, १८९० के दिन उन्होंने अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। डी० ए० वी० कॉलिज में संस्कृत और वेदशास्त्रों की पढ़ाई को प्रमुख स्थान दिलाने के प्रयत्न में पण्डित गुरुदत्त की असामयिक मृत्यु से गम्भीर बाधा उपस्थित हो गयी, पर शीघ्र ही उनके कार्य को लाला (महात्मा) मुंशीराम ने सँभाल लिया और वे द्विगुणित उत्साह से उन विचारों को क्रियान्वित करने में प्रवृत्त हो गये, जिनका प्रतिपादन पण्डित गुरुदत्त द्वारा किया जाता था। लाला मुंशीराम जालन्धर आर्यसमाज के प्रमुख नेता थे, और उसी की ओर से डी० ए० वी० सोसायटी के सदस्य थे। उनके नेतृत्व में संस्कृत और वेदशास्त्रों की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिलाने के पक्षपाती लोगों में नवीन उत्साह का संचार हुआ। १ मई, १८९१ को उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी की सेवा में विचारार्थ कुछ प्रस्ताव भेजे, जिनमें मुख्य ये थे—(१) डी० ए० वी० कॉलिज में वैदिक विभाग के नाम से एक पृथक् विभाग की स्थापना की जाए, जिसमें वेदों, वेदाङ्गों और उपवेदों की उस पद्धति से शिक्षा दी जाए जिसका प्रतिपादन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में किया है। (२) वेद विभाग को दो भागों में विभक्त किया जाए, निम्न भाग और उच्च भाग। निम्न भाग में वेदांगों और उपांगों की पढ़ाई हो, और उच्च भाग में वेदों और उपवेदों की। यह मान कर कि वर्तमान डी० ए० वी० स्कूल में विद्यार्थी अष्टाध्यायी की पढ़ाई पूरी कर चुके होंगे, वैदिक विभाग के निम्न भाग में पाठ्यक्रम इस प्रकार रहे—१८ महीनों में महाभाष्य का अध्ययन, अगले १८ महीनों में निरुक्त, निघण्टु और कात्यायन कोष का अध्ययन, अगले १८ महीनों में पिंगल सूत्र, काव्यालंकार सूत्र, मनुस्मृति और रामायण तथा महाभारत के कतिपय अंशों का अध्ययन, अगले १२ महीनों में ज्योतिष और गणित का अध्ययन, और अन्त के २४ महीनों में जैमिनि की पूर्वमीमांसा, कणाद के वैशेषिक दर्शन, गौतम के न्याय दर्शन, पातञ्जल योग, कपिल के सांख्य, व्यास के वेदान्त तथा दस उपनिषदों का अध्ययन। जब वेद विभाग के निम्न भाग की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था हो जाए और समुचित रूप से उसका अध्ययन प्रारम्भ हो जाए, तो उच्च भाग के पाठ्यक्रम का निर्णय किया जाए। (३) जो विद्यार्थी हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हों या किसी यूनिवर्सिटी में उस स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर चुके हों, उन्हें वेद विभाग में प्रवेश पाने का अधिकारी माना जाए, बशर्ते कि उन्होंने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत पढ़ी हो। हाईस्कूल परीक्षा जिन्होंने उत्तीर्ण न की हो या उस स्तर तक की शिक्षा प्राप्त न की हो, ऐसे विद्यार्थियों को भी वेद विभाग में प्रवेश दिया जा सके, बशर्ते कि वे सम्पूर्ण अष्टाध्यायी पढ़े हुए हों या संस्कृत व्याकरण में समुचित योग्यता प्राप्त कर चुके हों। (४) डी०ए०वी०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षण-संस्थाओं (स्कूल और कॉलिज दोनों) में वैदिक धर्मशास्त्र (Theology) विषय की अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाया करे और मैनेजिंग कमेटी से यह अपेक्षा की जाये कि इस निर्णय को अतिशीघ्र क्रियान्वित करे। १ मई, १८९१ को डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी को भेजे गये इन प्रस्तावों पर १२ सदस्यों के हस्ताक्षर थे, जिनमें लाला रलाराम (जेहलम आर्यसमाज), लाला मुंशीराम (जालन्धर आर्यसमाज), पण्डित धर्म-चन्द (अमृतसर आर्यसमाज), लाला जीवनदास, लाला परमानन्द और लाला दुर्गाप्रसाद (लाहौर आर्यसमाज) के नाम उल्लेखनीय हैं। डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी की बैठक में इन प्रस्तावों पर विचार-विमर्श हुआ, पर वे स्वीकृत नहीं हो सके। पर यह बात ध्यान देने योग्य है, कि सोसायटी के एक तिहाई सदस्यों ने इनके पक्ष में वोट दिये थे, जिससे सूचित होता है कि संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की शिक्षा को सर्वाधिक महत्त्व देने के पक्षपाती सदस्यों की संख्या अब पर्याप्त हो गयी थी, और लाला मुंशीराम के नेतृत्व में इनकी शक्ति में निरन्तर वृद्धि होने लग गयी थी। २६ एप्रिल, १८९० को भी सोसायटी के विचार के लिए कुछ प्रस्ताव संस्कृत के पक्षपातियों द्वारा भेजे गये थे, जिनमें वेद-वेदांगों तथा प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा को प्रमुख स्थान देने के अतिरिक्त इस बात पर भी जोर दिया गया था, कि डी० ए० वी० कॉलिज के छात्रावास में विद्यार्थियों के जीवन को अनु-शासित करने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। पर ये प्रस्ताव भी सोसायटी द्वारा बहुमत से अस्वीकार कर दिये गये थे। संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन के सम्बन्ध में डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के सदस्यो में जो उग्र मतभेद था, वह अब पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आर्य जनता के सम्मुख भी आने लग गया था। आर्यसमाज मन्दिर, लाहौर के समीप से ही 'भारत सुधार' नामक एक पत्रिका प्रकाशित होती थी, जिसमें सोसायटी के बहुसंख्यक सदस्यों के मत का समर्थन किया जाता था। जालन्धर से प्रकाशित होने वाले 'सद्धर्मप्रचारक' में लाला रलाराम और लाला मुंशीराम सदृश संस्कृत के पक्ष-पातियों के विचारों को योग्यतापूर्वक अभिव्यक्त किया जाता था। जुलाई, सन् १८९३ में 'डी० ए० वी० कॉलिज समाचार' नामक एक अन्य पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिसके सम्पादक लाला लाजपतराय थे। कुछ मास पश्चात् सितम्बर, १८९३ में लाला रलाराम ने 'वेदाध्ययन प्रेरक' नाम से एक पत्र निकालना शुरू किया, जो संस्कृत के पक्ष-पातियों के मत को योग्यतापूर्वक प्रस्तुत करने में संलग्न था। इस प्रकार अब डी० ए० वी० कॉलिज की पाठविधि तथा उसमें संस्कृत और वेदशास्त्रों के स्थान के विषय पर सर्व-साधारण आर्य जनता को दोनों पक्षों के विचारों को जानने का अवसर प्राप्त होने लगा और इसकी सर्वत्र चर्चा होने लग गयी। संस्कृत को जो स्थान डी० ए० वी० कॉलिज एवं स्कूल में दिया गया और उसकी शिक्षा पद्धति में जिन अनेक नये तत्त्वों का समावेश किया गया था, उनके महत्त्व को लाला लाजपतराय सशक्त रूप से डी० ए० वी० कॉलिज समाचार में प्रचारित कर रहे थे। उनका कहना था, कि डी० ए० वी० स्कूल की प्रारम्भिक कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम आर्यभाषा (हिन्दी) को रखा गया है, जो अपने आप में एक बहुत बड़ी बात है, और जिसके कारण डी० ए० वी० स्कूल की शिक्षा पद्धति ने एक नया रूप प्राप्त कर लिया है। अंग्रेजी और उर्दू की तुलना में हिन्दी को इतनी प्रमुखता देकर डी० ए० वी० स्कूल ने महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों को क्रियान्वित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण पग उठाया है। पर लाला

रलाराम इससे सहमत नहीं थे। उनका मन्तव्य था, कि संस्कृत के बिना हिन्दी का विकास सम्भव ही नहीं है। उर्दू की तुलना में अभी हिन्दी का साहित्य कम समृद्ध है। संस्कृत ही भारत की प्राचीन साहित्यिक भाषा है, और उसी में इस देश के अध्यात्मशास्त्र, विज्ञान, कला एवं नीतिशास्त्र का परम्परागत ज्ञान विद्यमान है। जब तक भारत के विद्यार्थियों के अध्ययन और चिन्तन का माध्यम उनके पूर्वजों की भाषा नहीं बन जाती, उनके मनों में राष्ट्रीयता की भावना का विकसित हो सकना असम्भव है। जिस शिक्षा पद्धति में अंग्रेजी भाषा को प्रमुख स्थान प्राप्त हो, वह विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाये बिना नहीं रह सकती। विदेशी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने के कारण जहाँ विद्यार्थियों में मौलिकता का विकास सम्भव नहीं रहता, वहाँ साथ ही उनमें हीन भावना भी उत्पन्न हो जाती है। हिन्दी के अंग्रेजी का स्थान ले लेने पर यह समस्या हल नहीं हो पाती, क्योंकि उसका साहित्य पर्याप्त रूप से समृद्ध नहीं है। उसमें अध्यात्म, नीति, विज्ञान, कला आदि के उच्चकोटि के ग्रन्थों का अभाव है। पर संस्कृत का साहित्य बहुत समुन्नत है। उसे पढ़ लेने पर जहाँ विद्यार्थी ज्ञान-विज्ञान की समुचित शिक्षा प्राप्त कर लेता है, वहाँ साथ ही उसमें राष्ट्रीय गौरव की भावना भी विकसित हो जाती है। अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक के रूप में स्थापित डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज में संस्कृत की पढ़ाई को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। लाला रलाराम यह भी स्वीकार नहीं करते थे, कि सरकारी यूनिवर्सिटियों द्वारा निर्धारित पाठ्य-विषय के साथ-साथ संस्कृत की शिक्षा की अतिरिक्त रूप से व्यवस्था कर देने से उस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है, जिसे सम्मुख रखकर आर्यसमाज ने डी० ए० वी० स्कूल व कॉलिज की स्थापना की है। उनका कहना था, कि विद्यार्थी दोहरा बोझ नहीं उठा सकेंगे। उनके लिए यह कदापि सम्भव नहीं होगा, कि सरकारी पाठ्य-विषयों में भी प्रवीणता प्राप्त कर लें, और संस्कृत भाषा तथा वेदशास्त्रों के भी विद्वान् बन जाएँ। वे इस बात को जोर देकर कहते थे, कि पाश्चात्य आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए सरकारी व अन्य शिक्षणालय विद्यमान हैं। इस शिक्षा के लिए आर्यसमाज को अपने स्कूल व कॉलिज खोलने की क्या आवश्यकता है? सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना आर्यसमाज का कार्य नहीं है। वह एक धार्मिक संगठन है, जिसका उद्देश्य धर्म का प्रचार करना है। उस द्वारा ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ ही स्थापित की जानी चाहिये, जिनसे धर्म-प्रचार में सहायता मिलती हो या ऐसे विद्वान् तैयार किये जाते हों जो वेदों और धर्मशास्त्रों के प्रचार की समुचित योग्यता रखते हों। उनका यह भी कहना था कि आर्यसमाज धर्म-प्रचार के अपने प्रधान उद्देश्य के प्रति विमुख होता जा रहा है, और उसका ध्यान स्कूल-कॉलिज खोलने की ओर अधिक है। अगस्त, १८९४ के 'वेदाध्ययन प्रेरक' में उन्होंने लिखा था—"जरा दुनिया के इतिहासों की तरफ देखिये। इस वक्त हिन्दुओं के अलावा तीन मजाहिब आला और दुनिया में मौजूद हैं। अव्वल बुद्ध, दोम नसार, सोम इस्लाम। बानियान-इ-मजाहिब वाला यानी शाक्य मुनि गोतम बुद्ध, हजरत ईसा और मुहम्मद साहिब अरबी या उनके शागिर्दों ने क्या अपने-अपने मजाहिब का प्रचार स्कूलों के जरिये किया था? क्या पंजाब में कोई मद्रिसा गुरु नानक साहब ने भी जारी किया था? खुद स्वामीजी ने भी प्रचार का ज़रीआ मद्रिसे नहीं बनाये। अलबत्ता विलायती पादरियों ने ईसवी मज़हब के प्रचार के लिए मद्रिसे बनाए, लेकिन उन्हें जिस कदर कामयाबी हासिल हुई वह सब पर जाहिर और रोशन है।" जो लोग यह समझते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे कि शिक्षा का कार्य भी आर्यसमाज के उद्देश्यों के अन्तर्गत आता है, उन्हें लाला रलाराम का यह कहना था कि—"और भी बहुत-सी जरूरतें मुल्क में महसूस हो रही हैं। फिर आर्यसमाज किस-किस को पूरा करे और किस-किस को छोड़े ? आर्यसमाज एक धर्मसभा है, और उसका उद्देश्य धर्म-प्रचार है। धर्म को छोड़कर खासकर जबकि उसकी मजहद जरूरत मुल्क में पायी जाती हो, औरों के पीछे दौड़ना (बावजूद कि उन दीगर जरूरतों को पूरा करने के लिए दीगर वसायल मौजूद हैं या मुहैया हो सकते हैं) अक्लमन्दी और दूर-अन्देशी से बईद है।"

आर्यसमाज का कार्य सामान्य शिक्षा के लिए स्कूल-कॉलिज खोलना न होकर वेदों का प्रचार करना है और ऐसे विद्वान् प्रचारकों को तैयार करने के लिए ही उस द्वारा व्यवस्था की जा सकती है, इस मत को प्रतिपादित करने के लिए राय ठाकुरदत्त ने 'वैदिक धर्मप्रचार' नामसे एक पुस्तक लिखी थी, जो सन् १८९४ में प्रकाशित हो गई थी। इसमें कहा गया था, कि वेद के अनुसार तीन सभाएँ स्थापित की जानी चाहिये—राजार्य-सभा, विद्यार्यसभा और धर्मार्यसभा। सभी सभ्य राज्यों में ये विभाग विद्यमान होते हैं, यथा इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्ट राजार्यसभा की स्थानापन्न है, यूनिवर्सिटी विद्यासभा की और चर्च धर्मार्यसभा का। सभ्यता के विकास के साथ-साथ ये तीनों विभाग एक-दूसरे से स्वतन्त्र होकर अपने-अपने कार्य करने लगते हैं। जीवित मनुष्य के भी तीन विभाग होते हैं, शरीर, अन्तःकरण और आत्मा, जो परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी स्वतन्त्र रूप से अपने कार्य करते हैं। यही दशा राज्यों या राष्ट्रों की भी है। राजसभा उसका शरीर है, विद्यासभा अन्तःकरण है, और धर्मसभा आत्मा है। विद्यासभा का कार्य ज्ञान-विज्ञान की उन्नति करना है, और धर्मसभा का सदाचार एवं आध्यात्मिकता का प्रसार। मनुष्यों के ज्ञान-विज्ञान में निरन्तर उन्नति होती रहती है, आविष्कारों और परीक्षणों द्वारा नये-नये तथ्य ज्ञात होते जाते हैं। पर नैतिक और आध्यात्मिक तथ्य नित्य, सनातन एवं अपरिवर्तनीय होते हैं। विद्यासभा का सम्बन्ध उस ज्ञान-विज्ञान के साथ रहता है, जिसके मन्तव्य शाश्वत व नित्य न होकर परिवर्तनीय होते हैं। पर धर्मसभा का सम्बन्ध उन मन्तव्यों, तथ्यों व सिद्धान्तों के साथ होता है, जो सनातन व अपरिवर्तनीय हैं। आर्यसमाज धर्मसभा है। विद्यासभा का कार्य उसे हाथों में नहीं लेना चाहिये। विद्यासभा और धर्मसभा के संचालकों की मनोवृत्ति एवं कार्यविधि में भिन्नता का होना स्वाभाविक है। विद्या (ज्ञान-विज्ञान) के अध्यापक तथ्य तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, और उसकी विधि की शिक्षा देते हैं। वे किसी बात को अन्तिम तथ्य नहीं मान लेते। पर धर्मप्रचारक उन सिद्धान्तों व तथ्यों का प्रचार करते हैं, जो अटल, नित्य सत्य एवं अपरिवर्तनीय हैं। प्रचारकों तथा अध्यापकों की मनोवृत्ति में यह मौलिक अन्तर है। आर्यसमाज एक धर्मप्रचारक संस्था है, विद्या या शिक्षा उसके क्षेत्र से बाहर है। इतिहास, गणित, भूगोल, रसायन, भौतिकी आदि ज्ञान-विज्ञानों का स्वरूप सब देशों एवं मानव समूहों में एक समान है। ईसाई अध्यापक भी रसायन व भौतिकी के उन्हीं मन्तव्यों की शिक्षा देता है, जो मुसलमान, बौद्ध या हिन्दू अध्यापकों द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं। आर्यसमाज सदृश धार्मिक संस्था के लिए इनकी शिक्षा के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करने की क्यों आवश्यकता है? यह सही है, कि आर्यसमाज के नियमों व उद्देश्यों में 'विद्या की वृद्धि', और 'अविद्या का नाश' भी अन्तर्गत है। पर इस सन्दर्भ में अविद्या का अभिप्राय 'विपरीत

विद्या' से है, जिसे योगशास्त्र में एक क्लेश कहा गया है। आर्यसमाज को केवल उस अविद्या का नाश करना है, जिसका प्रभाव मनुष्यों के नैतिक जीवन पर पड़ता है। विज्ञान द्वारा प्रतिपादित तथ्यों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। उनके सम्बन्ध में अज्ञान या ज्ञान से यदि नैतिक सदाचरण में कोई अन्तर न आये, तो उनके खण्डन व प्रचार की धार्मिक सभा को क्या आवश्यकता है? अतः आर्यसमाज को उस ढंग के ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई के लिए स्कूल-कॉलिज नहीं खोलने चाहिये, जैसे कि सरकार द्वारा स्थापित शिक्षणालयों में प्रचलित हैं। धर्मप्रचार आर्यसमाज का कार्य है, अतः ऐसे धर्मप्रचारक तैयार करना उसके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत है, जो संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हों और जनता को सत्य धर्म का उपदेश दे सकें। साधारण जनता के लिए वेदशास्त्रों का अध्ययन कर सकना सुगम नहीं है। वह केवल वैदिक शिक्षाओं के उपदेश सुन सकती है। उसके लिए यही वेदों का अध्ययन है। पर ऐसे विद्वान् उपदेशक अवश्य तैयार किये जाने चाहिये, वेदशास्त्रों में जिनकी अबाध गति हो। यह कार्य उपदेशक विद्यालयों द्वारा ही किया जा सकता है, जिनकी स्थापना इसी प्रयोजन को सम्मुख रखकर की जानी चाहिये। केवल संस्कृत और वेदशास्त्रों की पढ़ाई के लिए स्थापित किये गये उपदेशक विद्यालयों या शिक्षणालयों पर यह आक्षेप किया जा सकता था, कि उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति नये ज्ञान-विज्ञान से अपरिचित होंगे और वे वेदों के गूढ़ ज्ञान को भली-भाँति समझ नहीं पाएँगे, क्योंकि वेदों में सब ज्ञान-विज्ञान के मूल तत्त्व विद्यमान हैं और उन्हें समझने के लिए नये ज्ञान-विज्ञान से भी परिचित होना आवश्यक है। इस आक्षेप या आशंका के सम्बन्ध में राय ठाकुरदत्त का यह कहना था, कि वैदिक धर्म के मन्तव्य व सिद्धान्त ईसाइयत और इस्लाम सदृश अन्य धर्मों की तुलना में सरल एवं तर्कसंगत हैं। उनको भली-भाँति समझ सकने के लिए आधुनिक विज्ञानों के अध्ययन का कोई विशेष लाभ नहीं है। आर्यसमाज के प्रचार का काम ऐसे उपदेशकों द्वारा सुचारु रूप से किया जा सकता है, जिन्होंने संस्कृत और वेदशास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की हुई हो। इसी बात को दृष्टि में रख कर राय ठाकुरदत्त ने अन्त में वेदप्रचार फण्ड के लिए धन की अपील की, ताकि उससे जहाँ उपदेशकों को सेवा में रखा जा सके, वहाँ साथ ही उन्हें तैयार करने के लिए एक पाठशाला या शिक्षणालय की भी स्थापना की जाये। इसी विचार को सम्मुख रखकर आर्योपदेशक पाठशाला को स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य वेदों और अन्य प्राचीन सत्य शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करना और आर्य उपदेशक तैयार करना था।

पण्डित गुरुदत्त, लाला रलाराम, राय ठाकुरदत्त और लाला मुंशीराम सदृश आर्यसमाजी नेताओं के आर्यसमाज द्वारा स्थापित किये जाने वाली शिक्षण-संस्थाओं के सम्बन्ध में जो विचार थे, डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के बहुसंख्यक सदस्य उनसे सहमत नहीं थे। डी० ए० वी० कॉलिज में संस्कृत और वेदशास्त्रों तथा अंग्रेजी व आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों की पढ़ाई के सम्बन्ध में उनके विचारों को लाला लाजपतराय के एक ट्रैक्ट के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट किया जा सकता है—"... अब यहाँ पर यह सवाल पैदा होता है कि स्वामीजी की यादगार में एंग्लो-वैदिक कॉलिज खोलने की तजबीज क्यों मंजूर हुई, क्यों नहीं पहले ही से एक वैदिक पाठशाला खोलने की तजबीज मंजूर हुई? उन्होंने (स्वामी दयानन्द ने) सब कुछ सहज संस्कृत से तुफैल हासिल किया था, उनकी फाजलाना तहरीरों और तकरीरों से जाहिर हो चुका था कि संस्कृत के जखीरों में किसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्म की शिक्षा की कमी नहीं है, फकत दर्यापत और मेहनत की कमी है। फिर बावजूद इस वाकफियत के उनकी यादगार को एंग्लो-वैदिक के नाम से क्यों नामजद किया गया ? इसकी वजहात साफ है। अव्वल यह कि स्वामीजी की मन्शा को उन लोगों ने ही पहचाना था, जिनकी आँखें अंग्रेजी तालीम की रोशनी ने खोल दी थीं। संस्कृत के बहुत-से फाजिल मुल्क में मौजूद थे, मगर बहुत कम ने स्वामीजी के फतवे की कदर की, और न कोई उनका मोतकिद हुआ, बल्कि उन लोगों के हाथ से उनको वह दिक्कतें और मुखालिफत उठानी पड़ीं, जो हिन्दुस्तान की मजहबी तारीख में अपने आप ही यादगार रहेंगी। दोयम, स्वामीजी के पैरों को यह मालूम था कि स्वामीजी खुद अपनी उन कोशिशों को अफसोस की निगाह से देखा करते थे, जो उन्होंने महज संस्कृत की तालीम के लिए फर्रुखाबाद व मथुरा वगैरा मुकामात में करके नाकामयाबी हासिल की बल्कि श्री स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती को भी अपनी उमर में एक ही शागिर्द ऐसा लायक मिला जो उनके दिली मन्शा को समझकर प्रकाश कर सके और इलावा अर्जी समाज के सरवर आवुर्दा समझदार अरकान का यकीन था कि स्वामीजी के तरीके पर पूरण विद्या हासिल करने के लिए वैसे ही उस्ताद की जरूरत है जो मुल्क में नापैद है, इसलिए अगर कभी हिन्दुस्तान को वैदिक संस्कृत के असूल में कामयाबी हो सकती है, तो इस तरह से हो सकती है कि वेदविद्या के शायक अव्वल अंग्रेजी अलूम में अपने दिमाग को वेद के गहरे और गूढ़ अर्थ को समझने के लिए तैयार करें, और फिर ऐसे तैयारशुदा लोगों में से बाज को वेदों का अर्थ समझने का इमकान हो सकता है।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है, कि लाला लाजपतराय और उनके साथी यह मानते थे कि ऐसी शिक्षा से आर्यसमाज के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती, जिसमें अंग्रेजी तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त न हो। वेदों और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं की उत्कृष्टता को भी वे लोग अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं, आधुनिक शिक्षा से जिनकी आँखें खुल गई हों। लालाजी के इस कथन में भी सचाई थी, कि ऐसे बहुत कम व्यक्ति महर्षि के अनुयायी बने जो केवल संस्कृत के विद्वान् थे, और महर्षि ने फर्रुखाबाद आदि में संस्कृत के जो विद्यालय स्वयं स्थापित किये थे, वे भी फल-फूल नहीं सके थे। मेरठ, बम्बई, लाहौर आदि में जो लोग महर्षि के उपदेशों को सुनकर आर्यसमाज के सभासद् बने थे, उनमें भी बहुसंख्या अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्तियों की थी। जिन लोगों ने डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना में विशेष कर्तृत्व प्रदर्शित किया था, वे सब भी प्रायः अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे और इस शिक्षण-संस्था द्वारा वे ऐसी शिक्षा पद्धति की व्यवस्था करना चाहते थे, जिसमें वह सब कुछ तो पढ़ाया ही जाये जो सरकारी तथा क्रिश्चियन स्कूलों व कॉलिजों में पढ़ाया जाता है, पर साथ ही जिसमें हिन्दी, संस्कृत तथा धर्म-शिक्षा को भी समुचित स्थान प्राप्त हो। हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा के ये विरोधी न होकर उसके प्रबल पक्षपाती व समर्थक थे। पर पण्डित गुरुदत्त और लाला मुंशीराम सदृश लोगों से उनका मुख्य भेद इस बात पर था, कि वे अष्टाध्यायी और महाभाष्य सदृश ग्रन्थों को डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज की पाठविधि में रखना क्रियात्मक नहीं समझते थे। संस्कृत की शिक्षा के लिए वे लघुकौमुदी तथा आधुनिक सरल पुस्तकों का सहारा लेने में कोई हानि नहीं मानते थे।

डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज की पाठविधि के प्रश्न पर जो मतभेद आर्य-समाज तथा डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी में उत्पन्न हुए, उसके दो स्वरूप थे। कुछ लोगों का यह मत था, कि सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं है। राय ठाकुरदत्त इसी मत के थे। ऐसे लोगों की दृष्टि में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना में आर्यसमाज को अपनी शक्ति तथा धन का उपयोग करना व्यर्थ था। वे ऐसे उपदेशक विद्यालयों की स्थापना के पक्ष में थे, जिनमें संस्कृत, वेद-वेदांग और प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा दी जाये और जिनमें शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी आर्यसमाजों के पुरोहित, उपदेशक व प्रचारक बन सकें। कुछ लोग ऐसे भी थे, जो डी० ए० वी० स्कूल सदृश संस्थाओं की आर्यसमाज के लिए उपयोगिता से इन्कार नहीं करते थे, पर जिनके मत में यह आवश्यक था कि डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज में संस्कृत को महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया जाये और संस्कृत की शिक्षा के लिए अष्टाध्यायी और महाभाष्य सदृश उन आर्ष ग्रन्थों का प्रयोग किया जाये, जिनका उल्लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में पठन-पाठन विधि का निरूपण करते हुए किया है। इस मत के लोग डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी में अपने विचार को क्रियान्वित कराने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे, और उन्हें आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त हुई। इसी कारण सन् १८६० और उसके पश्चात् डी० ए० वी० स्कूल की पाठविधि में ऐसे परिवर्तन किये गये, जिनके परिणामस्वरूप अष्टाध्यायी तथा वेदांग प्रकाश को संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। इतना ही नहीं, अगस्त, १८६४ में कॉलिज कमेटी ने यह निर्णय किया, कि डी० ए० वी० कॉलिज की हाईस्कूल कक्षाओं तथा कॉलिज विभाग में महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के कतिपय अंशों की पढ़ाई प्रारम्भ की जाये, और इस प्रयोजन से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के कुछ अंशों का चयन तुरन्त कर लिया जाये और वेदों से कुछ ऐसे सूक्तों व मन्त्रों का संग्रह भी (स्वामीजी के भाष्य के अनुसार किये गये अर्थों के साथ) शीघ्र तैयार करा लिया जाये, ताकि एक नवम्बर, सन् १८६४ से उसे कॉलिज विभाग के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सके। इसी समय यह निश्चय किया गया, कि डी० ए० वी० कॉलिज के महाविद्यालय विभाग में दो विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाये जाया करें, अंग्रेजी और संस्कृत। पर अनिवार्य रूप से संस्कृत विषय को लेना केवल उन विद्यार्थियों के लिए था, जिन्होंने डी० ए० वी० हाईस्कूल में संस्कृत पढ़ी हो और मैट्रिकुलेशन परीक्षा में जो संस्कृत में उत्तीर्ण हो गये हों। संस्कृत की जो पाठविधि विविध कक्षाओं के लिए स्वीकृत की गई थी, वह इस प्रकार थी—

मिडल स्कूल	अर्थसहित अष्टाध्यायी तथा मनुस्मृति, रामायण और महाभारत के चुने हुए भाग।
हाईस्कूल	वेदांग प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के कतिपय अंश।
एफ० ए०	निरुक्त के प्रथम चार अध्याय, पिंगल सूत्र और न्यायशास्त्र।
बी० ए०	वैशेषिक, योग और सांख्य दर्शन, प्रथम छह उपनिषदें और निरुक्त के शेष अध्याय।
एम० ए०	पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, महाभाष्य, दस उपनिषदों में से शेष चार उपनिषदें, ऋग्वेद और यजुर्वेद के कुछ सूक्त।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम० ए० के पश्चात् अध्ययन के लिए—ब्राह्मण ग्रन्थ और वेद।

संस्कृत की यह पाठविधि निःसन्देह अत्यन्त उच्च स्तर की थी। इस द्वारा अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत का उच्च कोटि का अध्ययन किया जा सकता था, और उसमें न केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य सदृश व्याकरण के प्राचीन आर्ष ग्रन्थ ही, अपितु निरुक्त, न्याय, वैशेषिक आदि छहों आस्तिक दर्शन, दस उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा वेदों को भी अन्तर्गत किया गया था। संस्कृत के काव्य साहित्य का इसमें कोई स्थान नहीं था, और इसमें केवल उन्हीं संस्कृत ग्रन्थों के अध्यापन की व्यवस्था की गई थी, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती को अभिमत थे। अंग्रेजी और संस्कृत के अतिरिक्त गणित, भौतिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, पाश्चात्य दर्शन तथा पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित संस्कृत को वैकल्पिक व पर्याप्त विषय के रूप में महाविद्यालय विभाग के विद्यार्थियों को पढ़ना होता था। डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी ने संस्कृत की शिक्षा के लिए जो यह योजना स्वीकार की थी, उसे लागू कर सकना तभी सम्भव था, जबकि पंजाब यूनिवर्सिटी भी उसे स्वीकृत कर ले, क्योंकि उस समय तक यह कॉलिज यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध हो चुका था, और उसके विद्यार्थी उसी की परीक्षाएँ दिया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है, कि पंजाब यूनिवर्सिटी की सहमति इस योजना के लिए प्राप्त नहीं की जा सकी, और संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की उच्च स्तर की शिक्षा को डी० ए० वी० कॉलिज की पाठविधि में सम्मिलित कर सकना सम्भव नहीं हुआ। यही कारण है, कि लाला रलाराम, लाला मुंशीराम और उनके साथियों का डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षा से असन्तोष बना रहा, और वे संस्कृत तथा वेद-वेदांगों को उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे।

लाला रलाराम और लाला मुंशीराम आदि का प्रयत्न तो यह था, कि डी० ए० वी० कॉलिज को संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र बनाया जाये, पर लाला लालचन्द, लाला लाजपतराय और महात्मा हंसराज आदि उस द्वारा विविध ज्ञान-विज्ञान की व्यापक शिक्षा की व्यवस्था किये जाने के पक्षपाती थे। इसीलिए सन् १८९४ में लाला लालचन्द ने डी० ए० वी० कमेटी के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा था, कि कॉलिज में चिकित्सा विज्ञान और इंजीनियरिंग की शिक्षा की भी व्यवस्था की जाये, धर्मशास्त्रों की शिक्षा तो वहाँ हो ही। डी० ए० वी० कॉलिज में इन विषयों (चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा धर्मशास्त्र) की शिक्षा की वांछनीयता और क्रियात्मकता पर विचार करने के लिए तीन उपसमितियों की नियुक्ति का प्रस्ताव भी लाला लालचन्द ने पेश किया था। इन विषयों की पढ़ाई के लिए समुचित व्यवस्था करने के लिए कौन-से साधन व उपाय प्रयोग में लाये जायें, उपसमितियों को इसपर भी विचार करना था। धर्मशास्त्र (Theology) के लिए जो उपसमिति नियुक्त की गई, उसके सदस्य महात्मा हंसराज, लाला मुंशीराम, लाला मुरलीधर और पण्डित राजाराम थे। यह तो स्पष्ट ही है, कि डी० ए० वी० कॉलिज के संचालक संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की उपेक्षा नहीं कर रहे थे। वे वस्तुतः चाहते थे, कि अपनी शिक्षण-संस्था में इनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था करें। पर साथ ही वे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी की पढ़ाई में भी किसी प्रकार की कमी के विरोधी थे। वे डी० ए० वी० कॉलिज के कार्यक्षेत्र को बहुत व्यापक बनाना चाहते थे, और चिकित्सा विज्ञान एवं

इंजीनियरिंग की पढ़ाई को भी उसमें शुरू करने के लिए प्रयत्नशील थे। लाला रला-राम, लाला मुंशीराम आदि को महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में स्थापित इस शिक्षण-संस्था का यह स्वरूप स्वीकार्य नहीं था। इसीलिए डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी तथा मैनेजिंग कमेटी से उनका मतभेद निरन्तर बढ़ता गया, और समाचार-पत्रों के माध्यम से इस विरोध को उग्र रूप से भी प्रकट किया जाने लगा।

डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी तथा कमेटी के सब निर्णय लोकतन्त्रवाद के आधार पर बहुमत द्वारा किये जाते थे। इसलिए लाला लालचन्द तथा उनके साथियों द्वारा यह प्रयत्न भी किया गया कि उनके विरोधी इन सभाओं में बहुमत प्राप्त न कर सकें। इस प्रयोजन से सोसायटी की नियमावली में कतिपय संशोधन भी किये गये। इस समय तक अन्य भी अनेक प्रश्नों पर पंजाब के आर्यसमाजी क्षेत्र में मतभेद व विरोध प्रादुर्भूत होने लग गये थे। मांसाहार करने वाले व्यक्ति आर्यसमाज के सभासद् हो सकते हैं या नहीं, यह प्रश्न इनमें मुख्य था। मतभेदों के कारण अनेक नगरों में आर्यसमाज के परस्पर विरोधी संगठन भी बनने प्रारम्भ हो गये थे। मांसभक्षण आदि के विषय में मतभेद पंजाब में बहुत पहले (महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के कुछ ही समय पश्चात्) शुरू हो चुके थे, पर पण्डित गुरुदत्त के जीवनकाल में उन्होंने बहुत उग्र रूप प्राप्त नहीं किया। पर उनके बाद पंजाब के आर्यसमाज में दो पार्टियाँ स्पष्टतया पृथक् रूप से विकसित होने लग गईं, और सन् १८९४ का अन्त होने तक यह स्थिति आ गई, कि लाला मुंशीराम तथा उनके साथियों के लिए डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी में रहना सम्भव नहीं रह गया। सोसायटी के एक अधिवेशन में लाला मुंशीराम ये शब्द कहकर बाहर चले गये—"आप हमें समाज के बाहर कर सकते हैं, आप हमें इस भवन से बाहर निकाल सकते हैं, पर हमारे हृदयों में वेदों के लिए जो आस्था है उसे आप हमसे नहीं छीन सकते।" जिन अन्य अनेक आर्य सज्जनों ने लाला मुंशीराम के साथ डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी से बहिर्गमन किया था, उनमें जालन्धर आर्यसमाज के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त लाला दुर्गाप्रसाद और लाला खुशीराम सदृश लाहौर आर्यसमाज के भी कुछ प्रतिनिधि थे। इसके बाद (सन् १८९४) डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी और मैनेजिंग कमेटी पर लाला लालचन्द और उनके साथियों का पूर्णरूप से प्रभुत्व हो गया, और वे अपने विचारों के अनुसार इस शिक्षण-संस्था के विकास में तत्पर हो गये।

सन् १८९४ के पश्चात् डी० ए० वी० कॉलिज का किस प्रकार विकास हुआ, और कुछ ही समय में उसने किस प्रकार एक ऐसे सशक्त आन्दोलन का रूप प्राप्त कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप बहुत-से डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज पंजाब और अन्य प्रदेशों में खुलने प्रारम्भ हो गये—इस सब पर आगे चलकर विशद रूप से प्रकाश डाला जायेगा। पर यहाँ यह लिख देना उपयोगी होगा, कि डी० ए० वी० संस्थाओं का यह विकास ऐसे ढंग से हुआ जो सरकार द्वारा स्थापित शिक्षणालयों के अनुरूप था। सरकारी व क्रिश्चियन स्कूलों और कॉलिजों से इनमें कुछ महत्त्वपूर्ण भेद अवश्य थे, पर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करने का आदर्श उनसे निरन्तर दूर होता जा रहा था। 'स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज की मौजूदा हालत' नामक पुस्तिका में लाला लाजपतराय ने इस सम्बन्ध में जो विवेचना की थी, उसके कुछ अंशों को यहाँ उद्धृत करना उपयोगी है—"कॉलिज के बानी यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उम्मेद करते थे कि चन्द सालों में सूबे में हिन्दी का रिवाज हो जायेगा, और कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी व कॉलिज का दफ्तर हिन्दी ज़बान में हो जायेगा। आर्यसमाज में उस समय भी अंग्रेजी तालीमयाफ्ता लोगों की कसरत थी। आर्यसमाज को पंजाब में सरकारी मुलाजिमों व वकीलों के जरिये फरोग मिला। इन लोगों के दिलो-दिमाग अंग्रेजी से भरे हुए थे, और वह इस कदर लियाकत न रखते थे कि वह दूर-अन्देशी से सोच सकें। वह सब अपनी कौम के लिए आजादी चाहते थे, उनके दिल में हुब्बुलवतनी का जज़बा ज़ोश मारता था, वह दुरुस्त तौर पर यह समझते थे कि इस हुब्बुलवतनी को बढ़ाने के लिए अंग्रेजी तालीम की जरूरत है।...गर्ज़वालियाने कॉलिज कौमियत के नशे में सरसार थे, और उनके दिल में कौमियत के वे सब जजबात जोशजन थे, जो इस वक्त कौम में तवज्जह पा रहे हैं। मगर सारी स्कीम की कमजोरी इसमें थी कि कॉलिज का नाम एंग्लो-वैदिक रखा गया था और एंग्लो को वैदिक पर तरजीह दी गई। जिस कमजोरी ने वानियान को एंग्लो-वैदिक वनने के लिए मजबूर किया, इसी कमजोरी ने कॉलिज की तमाम कौमी खसूसियतों को 'मस्लिहत वक्त' के मातहत कर दिया। हृत्ता कि सरकारी व मिशन कॉलिजों में और दयानन्द कॉलिज में वहुत थोड़ा फर्क रह गया। हमारा दिमाग हमेशा एंग्लो को वैदिक पर तरजीह देता रहा, यहाँ तक कि जब मरहूम पण्डित गुरुदत्त ने मौजूदा महात्मा पार्टी के लीडरों से यह सवाल उठाया तो मैंने जोर-शोर से उसकी मुखालफत की। जो-जो असली तजवीजें उन्होंने पेश कीं वह अवतक मुझको नाकाविले अमल मालूम होती हैं। वदकिस्मती से उस समय तालीमी मामलात में न उनको काफी तजुर्वा था, और न हमको। वह धार्मिक नुक्ता ख्याल को सामने रखते थे, और हम कौमी नुक्ता ख्याल को। वह हमसे इसलिए वदज़न थे, कि उनको हमारे अन्दर धर्म की रेखा दिखाई न देती थी, वह समझते थे कि हम सरासर पुलिटिकल इगराज के लिए काम कर रहे हैं। हम समझते थे कि वह लोग कौमी नुक्तए-ख्याल की परवाह नहीं करते।' डी० ए० वी० कॉलिज के स्वरूप और उसके संचालकों की मनोवृत्ति का जो विवेचन लाला लाजपतराय ने किया था, उसमें वहुत सचाई है। यह सर्वथा सत्य है, कि पंजाब में शुरू-शुरू में आर्यसमाज का नेतृत्व अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में था, और उनमें बहुसंख्यक सरकारी सर्विस में थे या वकालत आदि के पेशे करते थे। संस्कृत का इनका ज्ञान न के बराबर था। वेदशास्त्रों में इनकी श्रद्धा अवश्य थी, पर अपने देश व जाति की उन्नति के लिए प्रेरणा ये मुख्यतया अंग्रेजी साहित्य से ही प्राप्त करते थे। ये चाहते थे कि भारत भी पाश्चात्य देशों के समान उन्नत और समृद्ध हो। हिन्दू जाति की दुर्दशा देखकर उन्हें दुःख होता था। देश तथा जाति के उत्थान के लिए वे अंग्रेजी तथा आधुनिक शिक्षा को बहुत महत्त्व देते थे। इसीलिए उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज में उसी शिक्षा पद्धति का अनुसरण किया, जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में प्रचलित किया गया था। उसके साथ-साथ उन्होंने हिन्दी और संस्कृत को भी पाठविधि में स्थान दिया, और यह भी प्रयत्न किया कि डी० ए० वी० स्कूल व कॉलिज के विद्यार्थी अपने धर्म तथा संस्कृति से भी परिचित हो जायें और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित नैतिक व सदाचारमय जीवन बिताने के लिए प्रवृत्त हों। पर यह भी तथ्य है, कि डी० ए० वी० कॉलिज के संचालकों ने 'वैदिक' की तुलना में 'एंग्लो' को अधिक महत्त्व दिया, जिसके कारण लाला लाजपतराय के शब्दों में 'सरकारी व मिशन कॉलिजों में और दयानन्द कॉलिज में बहुत थोड़ा

फर्क रह गया।'

इस प्रसंग में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि समय की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए डी० ए० वी० कॉलिज के संचालकों ने शिक्षा के सम्बन्ध में जो नीति अपनायी थी, वह जनता को बहुत लाभकारी प्रतीत हो रही थी। इसीलिए डी० ए० वी० संस्थाओं की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती गई, और न केवल पंजाब में ही, अपितु अन्यत्र भी बहुत-से डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज स्थापित हुए। पर डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के पदाधिकारियों ने वेद-वेदांगों के अध्ययन की भी उपेक्षा नहीं की। इसके लिए जो प्रयत्न उन्होंने किये, उनपर आगे चलकर यथास्थान प्रकाश डाला जायेगा। यहाँ इतना ही निर्देश कर देना पर्याप्त है, कि इस क्षेत्र में डी० ए० वी० कॉलिज ने जो कार्य किया, वह किसी भी अन्य आर्य संस्था के कार्य की तुलना में कम महत्त्व का नहीं है।

(४) पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी

डी० ए० वी० कॉलिज के इतिहास में पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी का एक विशेष स्थान है। वे उसके संस्थापकों में थे, और अगस्त, १८८८ में जिस दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज सोसायटी की रजिस्ट्री करायी गयी थी, उसके वे भी अन्यतम सदस्य थे। कॉलिज के लिए धन एकत्र करने में भी उनका कर्तृव्य महत्त्व का था। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की पाठविधि और शिक्षानीति के सम्बन्ध में जिस मतभेद का उल्लेख पिछले प्रकरण में किया गया है, उसमें एक पक्ष के वे प्रधान नेता थे। यदि मार्च, १८८९ में २६ वर्ष की आयु में उनका देहावसान न हो जाता, तो वे डी० ए० वी० संस्थाओं को किस दिशा में ले जाने का प्रयत्न करते, यह अब केवल अनुमान का ही विषय है। पर इसमें सन्देह नहीं, कि लाला लालचन्द और महात्मा हंसराज सदृश अन्य नेताओं से मतभेद होते हुए भी पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी का डी० ए० वी० कॉलिज के प्रति आत्मीयता एवं स्नेह का भाव अन्त तक बना रहा, और असंदिग्ध रूप से उन्हें इस आर्य शिक्षण-संस्था के अन्यतम संस्थापक का गौरव दिया जा सकता है। अतः यह उपयोगी होगा कि इस अध्याय में पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का भी संक्षेप के साथ उल्लेख कर दिया जाए। डी० ए० वी० कॉलिज के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए मतभेदों को समझने में भी इससे सहायता मिलेगी।

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म २६ एप्रिल, १८६४ के दिन मुलतान (पाकिस्तान) के मातराँवाला मुहल्ला में हुआ था। उनके पिता का नाम रामकृष्ण था, और वे एक स्कूल में अध्यापक थे। पर्शियन भाषा के वह अच्छे विद्वान् थे। जाति से गुरुदत्त अरोड़ा थे, पर अपने पाण्डित्य के कारण वे 'पण्डित' के रूप में विख्यात हुए। गुरुदत्त की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई, मिडल परीक्षा उन्होंने झंग के एक स्कूल में पढ़ कर उत्तीर्ण की और मैट्रिकुलेशन परीक्षा मुलतान से। १६ साल की आयु में सन् १८८० में वह दसवीं कक्षा (मैट्रिकुलेशन) उत्तीर्ण कर चुके थे। जब वह मुलतान के एक स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी उनमें धर्म की ओर रुचि उत्पन्न हो गयी थी, और उन्होंने सदाचारमय सात्त्विक जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया था। इसी कारण उसके सहपाठी उन्हें 'वैरागी' और 'गुरुजी' कहकर पुकारने लगे थे। पर्शियन का ज्ञान उन्होंने अपने पिताजी से प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया था, और अंग्रेजी का अपने स्कूल से। अंग्रेजी शासन के उस काल में स्कूलों की पढ़ाई में अंग्रेजी भाषा को प्रमुख स्थान प्राप्त था। पर गुरुदत्त इतने से सन्तुष्ट नहीं थे। वह संस्कृत पढ़ने के लिए उत्सुक थे, क्योंकि अपने धर्म का समुचित ज्ञान वह संस्कृत ग्रन्थों को पढ़कर ही प्राप्त कर सकते थे। इसी कारण उन्होंने आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जाने का निर्णय किया, और २० जून, सन् १८८० को उन्होंने मुलतान आर्यसमाज की सदस्यता का प्रवेशपत्र भर कर मंत्रीजी को दे दिया। उस समय तक मुलतान में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। गुरुदत्तजी वहीं महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के सम्पर्क में आये, और संस्कृत भाषा सीखकर उन्होंने वैदिक धर्म के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

उस युग में बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। गुरुदत्त अभी स्कूल में ही पढ़ रहे थे, कि उनका विवाह कर दिया गया। उनकी पत्नी का नाम सेवीबाई था, जिनके पिता श्री मूलचन्द मेहता मुलतान में ही थानेदार के पद पर नियत थे।

नवम्बर, १८८० में गुरुदत्त ने मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की थी। पंजाब भर में उनका पाँचवाँ नम्बर रहा था। जनवरी, १८८१ में वे उच्च शिक्षा के लिए लाहौर चले आये, और वहाँ के गवर्नमेण्ट कॉलिज में भरती हो गये। उन दिनों एफ० ए० के दो वर्ष (ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा) भी कॉलिज के अन्तर्गत होते थे। उस समय लाहौर में गवर्नमेण्ट कॉलिज ही एकमात्र कॉलिज था, और मुलतान आदि अन्य नगरों में तब तक कॉलिजों की स्थापना नहीं हुई थी। पंजाब के अन्य स्थानों से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए लाहौर आया करते थे, और गवर्नमेण्ट कालिज में ही प्रवेश प्राप्त किया करते थे। डा० लाइटनर उस समय गवर्नमेण्ट कॉलिज लाहौर के प्रिंसिपल थे। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी था। कॉलिज की फीस दो रुपया मासिक और छात्रावास की फीस एक रुपया मासिक थी। गुरुदत्तजी ने अपने निवास की व्यवस्था कॉलिज के छात्रावास में ही की। पंजाब के जिन अन्य विद्यार्थियों ने सन् १८८१ में गवर्नमेण्ट कालिज, लाहौर में प्रवेश प्राप्त किया था, उनमें लाजपतराय और हंसराज के नाम उल्लेखनीय हैं। शीघ्र ही ये तीनों घनिष्ट मित्र बन गये, और इनकी मित्रता चिरकाल तक कायम रही। उस समय जो अन्य विद्यार्थी गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और गुरुदत्तजी से जिनका स्नेहपूर्ण सान्निध्य स्थापित हुआ, उनमें दीवान नरेन्द्रनाथ, लाला भगतराम, लाला चेतनानन्द, लाला शिवनाथ और श्री रुचिराम साहनी भी थे, जिन्होंने आगे चल कर उच्च स्थिति प्राप्त की और आर्यसमाज के साथ भी जिनका निकट सम्पर्क रहा।

गुरुदत्त गवर्नमेण्ट कॉलिज के अत्यन्त मेधावी छात्र थे। उनके प्राध्यापक भी उनकी प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि का सिक्का मानने लग गये थे। कॉलिज में पढ़ने के लिए उन्होंने विज्ञान विषय लिया था। पर धर्म और दर्शनशास्त्र के प्रति उनकी रुचि थी, और वह इनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। इसी कारण वह कॉलिज की पढ़ाई पर अधिक ध्यान नहीं देते थे, पर इससे उनके प्राध्यापक बुरा नहीं मानते थे, क्योंकि वे जानते थे कि गुरुदत्त को विज्ञान के अपने पाठ को भली-भाँति समझ लेने के लिए अधिक श्रम व समय की आवश्यकता नहीं है। उन दिनों पाश्चात्य संसार में अनेक ऐसे वैज्ञानिक एवं विचारक ख्याति प्राप्त कर रहे थे, जिन द्वारा विकासवाद, भौतिकवाद और अनीश्वरवाद का प्रतिपादन किया जा रहा था। ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानने की बात

डार्विन के विकासवाद के विपरीत थी, और पश्चिम के वैज्ञानिक न केवल भौतिक क्षेत्र में ही, अपितु समाज, धर्म, तथा संस्कृति आदि में भी विकासवाद के सिद्धान्त को प्रयुक्त करने में तत्पर थे। पश्चिम से भौतिकवाद की जो लहर उठी थी, भारत के नव-शिक्षित युवकों को भी वह प्रभावित कर रही थी। गुरुदत्त इनके प्रभाव में आने से बचे नहीं रहे। उनके जीवन के (१८८१ और १८८२ के) दो वर्षों को नास्तिकता का काल कहना तो शायद समुचित नहीं होगा, पर उन्हें संशय का काल अवश्य कहा जा सकता है। मुलतान में स्कूल की शिक्षा प्राप्त करते हुए धर्म के प्रति श्रद्धा के जो अंकुर उनके मन में उत्पन्न हुए थे, लाहौर के कॉलिज के वातावरण में और डार्विन सदृश पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मन्तव्यों के अध्ययन से उन्होंने मुरझाना अवश्य प्रारम्भ कर दिया था, पर वे नष्ट नहीं हो पाये थे। उनके मन में घोर संघर्ष का सूत्रपात हो गया था। यह संघर्ष धार्मिक श्रद्धा और नये विचारों के मध्य में था, जिसमें अन्त में धर्म के प्रति आस्था ने विजय प्राप्त की। यह विजय धार्मिक मन्तव्यों में अन्धविश्वास के कारण न होकर युक्ति और तर्क के आधार पर हुई थी। पश्चिमी यूरोप के विकासवाद और भौतिकवाद के मन्तव्यों का भली-भाँति अनुशीलन कर बुद्धिपूर्वक व तर्क द्वारा गुरुदत्त ने यह सुचारु रूप से समझ लिया था, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा वैदिक धर्म के जिस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह वस्तुतः सत्य है और पश्चिमी दुनिया का ज्ञान-विज्ञान उसे कदापि अन्यथा सिद्ध नहीं कर सकता।

उन दिनों लाहौर आर्यसमाज के प्रधान लाला साईंदास थे। वे दृढ़-निश्चयी व सत्यवादी व्यक्ति थे, और वैदिक धर्म में उनकी सच्ची आस्था थी। नवयुवकों के प्रति उन्हें विशेष स्नेह था। इसीलिए युवकों को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट करने के लिए वह कभी-कभी गवर्नमेण्ट कॉलिज के छात्रावास में आते-जाते रहते थे। गुरुदत्त तो मुलतान में ही आर्यसमाज के सम्पर्क में आ चुके थे, पर हंसराज लाला साईंदास के प्रभाव में आकर ही आर्यसमाजी बने। साईंदासजी में आदमी को परखने की अनुपम क्षमता थी। गुरुदत्त और हंसराज के सम्पर्क में आने पर उन्होंने जान लिया था, कि ये दोनों युवक वस्तुतः नररत्न हैं, और एक दिन समाज, देश और धर्म की सेवा के लिए अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण कार्य करेंगे। वह उनसे पुत्र के समान स्नेह करते थे। गुरुदत्त जो नास्तिकता और भौतिकवाद के प्रभाव से बचे रहकर धर्म के प्रति अपनी आस्था को कायम रख सके, लाला साईंदास को भी उसका श्रेय अवश्य दिया जाना चाहिए।

सन् १८८२ के प्रारम्भ में गुरुदत्त ने एक फ्री डिबेटिंग क्लब की स्थापना की थी, जिसमें धार्मिक, शिक्षाविषयक एवं राजनीतिक सभी विषयों पर खुला वाद-विवाद हुआ करता था। गुरुदत्त इस क्लब के मन्त्री थे, और लाजपतराय आदि उनके सहपाठी इस क्लब के विचार-विमर्श में उत्साहपूर्वक भाग लिया करते थे। शुरू-शुरू में गुरुदत्त वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध पक्ष लेकर वाद-विवाद में भाग लेते थे, पर बाद में १८८२ के अन्त तक यह स्थिति आ गयी कि उन्होंने आर्यसमाज के मन्तव्यों को पुष्ट करना प्रारम्भ कर दिया, और फ्री डिबेटिंग क्लब के सदस्य उनकी युक्तियों तथा तर्क से प्रभावित होकर वैदिक धर्म के प्रति झुकने लग गये। फ्री डिबेटिंग क्लब के वाद-विवादों में गुरुदत्त के भाषणों को सुनकर जो युवक विद्यार्थी आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए, उनमें लाजपत-राय का नाम उल्लेखनीय है। गुरुदत्त के जीवनचरित्र में उन्होंने इस बात को इन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों में स्वीकार किया है—"मुझे गर्व है कि सम्भवतः मैं ही वह प्रथम व्यक्ति हूँ, जिसके हृदय में पण्डित गुरुदत्त की वक्तृता और वाद-विवाद ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर दृढ़ निश्चय कराया।" लाजपतराय को आर्यसमाजी बनाने का पूर्ण श्रेय गुरुदत्तजी को ही प्राप्त है। उनकी माता सिक्ख परिवार में उत्पन्न हुई थीं, और पिता (मुंशी राधाकिशन) का झुकाव इस्लाम की ओर था। वह नमाज पढ़ा करते थे, रमजान का व्रत रखा करते थे और आर्यसमाज के विरुद्ध लेख भी लिखा करते थे। ऐसे पिता के पुत्र जो वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये, वह गुरुदत्त के सम्पर्क व प्रभाव का ही परिणाम था।

सन् १८८२ के प्रारम्भ में डिबेटिंग क्लब के वाद-विवादों में गुरुदत्त किस कारण वैदिक धर्म के विरुद्ध भाषण किया करते थे, इस सम्बन्ध में कतिपय लेखकों का यह विचार है, कि विषय का सही-सही परिमार्जन करने के लिए उसके विपक्ष में तर्क करना उपयोगी होता है और इसीलिए गुरुदत्त जानबूझकर वैदिक धर्म के मन्तव्यों का खण्डन किया करते थे। पर यह भी असम्भव नहीं है कि कॉलिज जीवन के प्रारम्भ काल में गुरुदत्त भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों के विकासवाद और अनीश्वरवाद के प्रभाव में आकर वैदिक मन्तव्यों के प्रति अनास्था रखने लगे हों और धर्म के सम्बन्ध में उनके मन में अनेकविध संशय उत्पन्न हो गये हों। पर उन जैसे प्रतिभाशाली व कुशाग्रबुद्धि युवक के लिए यह कठिन नहीं था, कि शीघ्र ही विचार, मनन व तर्क द्वारा विचारणीय विषय की गहराई में पहुँचकर सत्य का पता कर लें। इसीके परिणामस्वरूप सन् १८८२ के अन्त तक वह वैदिक धर्म के पक्षपोषण में प्रवृत्त हो गये। वैदिक धर्म में गुरुदत्त की अटूट आस्था अन्धविश्वास व परम्परागत रूढ़िवाद न होकर युक्ति एवं बुद्धिवाद पर आधारित थी, और इस आस्था की प्राप्ति के लिए वह दो वर्ष के लगभग तक मानसिक संघर्ष व संशय की दशा में रहे थे। भारत के नवयुवकों में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में आकर अपने धर्म से विमुख होने की जो प्रवृत्ति थी, उसका प्रधान कारण नये भौतिक विज्ञानों के मन्तव्य थे। गुरुदत्त विज्ञान के ही विद्यार्थी थे। जब उन्होंने विज्ञान के आधार पर हिन्दू धर्म और वेदों की प्रामाणिकता का प्रतिपादन प्रारम्भ किया, तो अन्य युवकों को अपने धर्म से विमुख होने का कोई कारण नहीं रह गया और गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर के हिन्दू विद्यार्थियों की अपने परम्परागत धर्म के प्रति श्रद्धा में निरन्तर वृद्धि होने लगी।

दिसम्बर, १८८२ में लाहौर आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। गुरुदत्त, हंसराज, लाजपतराय आदि युवक विद्यार्थी भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए, और उसके कार्यों में उन्होंने उत्साहपूर्वक भाग लिया। लाहौर में 'आर्य प्रेस' नाम का एक मुद्रणालय था, जिसके स्वामी लाला शालिग्राम थे। उन्होंने प्रस्ताव किया कि आर्यसमाज की ओर से अंग्रेजी और उर्दू में दो समाचारपत्र प्रकाशित किये जायें। इनके खर्च का बोझ वह स्वयं उठाने को तैयार थे। लाजपतराय के सुझाव पर उर्दू पत्र का नाम 'देशोपकारक' और अंग्रेजी पत्र का नाम 'दि रीजनरेटर ऑफ् आर्यावर्त्त' रखा गया, और इन पत्रों का प्रकाशन जनवरी, १८८३ से प्रारम्भ कर दिया गया। अंग्रेजी पत्र का सम्पादनकार्य हंसराज और गुरुदत्त ने अपने हाथों में लिया, और उर्दू पत्र का लाजपतराय ने। ये तीनों अभी गवर्नमेण्ट कॉलिज के विद्यार्थी थे, और बी० ए० में पढ़ रहे थे। उन्होंने जिस योग्यता से इन पत्रों का सम्पादन किया, उससे सब आश्चर्यचकित रह गये और आर्य प्रेस के स्वामी लाला शालिग्राम को उनसे अच्छा मुनाफा होने लगा। जैसा कि शालिग्रामजी ने शुरू में वायदा

किया था, इन पत्रों का सारा मुनाफा उन्हें आर्यसमाज के फण्ड में दे देना चाहिए था। पर वह ऐसा करने में आनाकानी करने लगे, जिसके कारण गुरुदत्त और उनके साथियों ने इन पत्रों से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। शालिग्रामजी ने चाहा, कि ये युवक पूर्ववत् समाचार-पत्रों का सम्पादन करते रहें। इस प्रयोजन से उन्होंने इन्हें वेतन देने का प्रस्ताव भी पेश किया। पर गुरुदत्त, हंसराज और लाजपतराय सदृश सत्यनिष्ठ युवक इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सके, क्योंकि उन्होंने इन पत्रों का कार्यभार आर्यसमाज की सेवा के लिए सँभाला था, आर्थिक लाभ के लिए नहीं। वे चाहते थे कि शालिग्रामजी भी इन पत्रों से जो मुनाफा हो, वह आर्यसमाज को दे दिया करें। पर इसके लिए आर्य प्रेस के स्वामी उद्यत नहीं थे।

सन् १८८३ के अक्तूबर मास में महर्षि दयानन्द सरस्वती की बीमारी के समाचार से देशभर के आर्य चिन्ताग्रस्त हो गये। लाहौर आर्यसमाज द्वारा निश्चय किया गया, कि समाज के दो प्रतिनिधि महर्षि की सेवा-सुश्रूषा के लिए अजमेर भेजे जायें। लाला जीवनदास और गुरुदत्त विद्यार्थी इसके लिए चुने गये। गुरुदत्त की आयु उस समय केवल १९ साल की थी, और वह गवर्नमेण्ट कॉलिज में बी० ए० के छात्र थे। उनका लाहौर आर्यसमाज द्वारा महर्षि की सेवा के लिए अपना प्रतिनिधि चुनना यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है, कि १९ वर्ष की आयु में ही गुरुदत्तजी ने आर्यसमाज के क्षेत्र में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। २९ अक्तूबर, १८८३ को लाला जीवनदास और गुरुदत्त विद्यार्थी अजमेर पहुँचे, और महर्षि की सेवा में लग गये। पर उस समय तक महर्षि का रोग भयंकर रूप प्राप्त कर चुका था। एक मास पूर्व २९ सितम्बर को उन्हें जो विष दूध के साथ दे दिया गया था, वह अपना प्रभाव दिखा रहा था, और महर्षि की चिकित्सा का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो पा रहा था। ३० अक्तूबर को सायंकाल के समय जब महर्षि ने स्वेच्छापूर्वक अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया, गुरुदत्त वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने 'योगेनान्ते तनुत्यजाम्' के महर्षि के दृश्य का स्वयं अपनी आँखों से अवलोकन किया था। इस दृश्य को देखकर गुरुदत्त के ज्ञानचक्षु खुल गये। आत्मा भौतिक शरीर से पृथक् है, ईश्वर की इच्छा सर्वोपरि होती है, और सम्पूर्ण चराचर जगत् को नियन्त्रित करने वाली एक सर्वोच्च सत्ता है—इस सम्बन्ध में उनके मन में जो भी संशय अब तक विद्यमान थे, वे सब निवृत्त हो गये। इस समय से वह पूर्णतया आस्तिक बन गये और वेदशास्त्रों में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा हो गई।

सुदृढ़ आस्तिक बनकर गुरुदत्त जब अजमेर से लाहौर वापस आये, तो उन्होंने देखा कि यहाँ के आर्य नर-नारी महर्षि का एक स्मारक स्थापित करने का विचार कर रहे हैं। ६ नवम्बर, १८८३ को लाहौर आर्यसमाज की अन्तरंग सभा की बैठक हुई, जिसमें महर्षि के स्मारक रूप में दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल एवं कॉलिज की स्थापना का निश्चय किया गया। धनसंग्रह के लिए अन्तरंग सभा द्वारा एक उपसमिति बना दी गई, जिसके सदस्य लाला लालचन्द एम० ए०, श्री मदनसिंह बी० ए०, लाला जीवनदास और गुरुदत्त विद्यार्थी थे। ८ नवम्बर, १८८३ को लाहौर के आर्यसमाज मन्दिर में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें डी० ए० वी० स्कूल एवं कॉलिज का महर्षि के स्मारक रूप में स्थापना के विचार का जनता ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया, और सात हजार से भी अधिक रुपये तत्काल सभा में एकत्र हो गये। गुरुदत्त ने भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी एक मास की छात्रवृत्ति के २५ रुपये महर्षि के स्मारक रूप में स्थापित किये जाने वाले शिक्षणालय के लिए प्रदान किये। स्पष्ट है, कि डी० ए० वी० स्कूल एवं कॉलिज की स्थापना में गुरुदत्त प्रारम्भ से ही रुचि ले रहे थे और उनके अनुपम उत्साह एवं कर्तृत्व का ही यह परिणाम था, कि महर्षि के इस स्मारक के लिए धन की कोई कमी नहीं रह गई थी। गुरुदत्त विविध नगरों की आर्यसमाजों में जाकर धन के लिए अपील करते, और जनता उन्हें श्रद्धा तथा उत्साह के साथ धन प्रदान करती। महर्षि के स्मारक के रूप में जिस नयी शिक्षण-संस्था की स्थापना की जा रही थी, उसमें संस्कृत और वेद-वेदांगों के उच्च अध्ययन की व्यवस्था की जानी थी और साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी की शिक्षा को भी समुचित स्थान दिया जाना था। गुरुदत्त इस ढंग के नये शिक्षणालय के लिए जनता में उत्साह उत्पन्न करने के लिए सर्वथा उपयुक्त थे, क्योंकि वे डार्विन, हक्सले सदृश पाश्चात्य विद्वानों के साथ-साथ गौतम और कणाद के मन्तव्यों से भी भली-भाँति परिचित थे और लोगों को यह विश्वास दिला सकते थे कि प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के ज्ञान का तुलनात्मक तथा समन्वयात्मक अध्ययन मानव समाज को मर्यादा में रखने तथा उसकी उन्नति के लिए बहुत उपयोगी है। गुरुदत्त सदृश आर्य युवकों के प्रयत्न का ही यह परिणाम था, कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल के लिए पर्याप्त धनराशि एकत्र हो गई, और १ जून, १८८५ को इस संस्था की विधिवत् स्थापना कर दी गई। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्था की नियमावली तथा पाठविधि के निर्माण में भी गुरुदत्त ने रुचि ली।

यद्यपि गुरुदत्त सन् १८८४ में महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में एक नयी शिक्षण संस्था की स्थापना के कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहे, पर गवर्नमेण्ट कॉलिज की पढ़ाई की उन्होंने उपेक्षा नहीं की। १८८५ के प्रारम्भ में जब बी० ए० की परीक्षा हुई, तो पंजाब यूनिवर्सिटी में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया, और एम० ए० कक्षा में प्रवेश ले लिया। पर विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करते हुए भी उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने में प्रमाद नहीं किया और व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा इस संस्था के लिए जनता में उत्साह उत्पन्न करते रहे। जून, १८८५ में लाहौर आर्यसमाज द्वारा अंग्रेजी में एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था, जिसका नाम 'आर्य पत्रिका' था। गुरुदत्त विद्यार्थी इसमें प्रायः नयी शिक्षण-संस्था की उपयोगिता के सम्बन्ध में लेख लिखते रहते थे। आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर डी० ए० वी० संस्था के लिए धन की अपील बहुधा गुरुदत्त द्वारा ही की जाती थी, और धन-संग्रह के प्रयोजन से जो अनेक डेपुटेशन इस काल में विविध नगरों में जाया करते थे, गुरुदत्त भी प्रायः उन सबके सहायक हुआ करते थे। आर्यसमाज और दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल के लिए ये सब कार्य गुरुदत्त उस समय कर रहे थे, जबकि वे गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में एम० ए० के विद्यार्थी थे। सन् १८८६ के प्रारम्भ में जब पंजाब यूनिवर्सिटी की परीक्षाएँ हुईं, तो गुरुदत्त ने एम० ए० की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, और उनकी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण उन्हें गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में विज्ञान का सहायक प्रोफेसर नियुक्त कर दिया गया। अगले साल जब गवर्नमेण्ट कॉलिज के विज्ञान के प्रोफेसर श्री जे० सी० ओमन अवकाश पर गये, तो गुरुदत्त ने उनके स्थान पर प्रोफेसर का पद ग्रहण कर लिया, जिसके कारण पंजाब

के शिक्षा जगत् में उनकी स्थिति अत्यन्त सम्मानास्पद हो गई। डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज के संचालकों में उनका स्थान पहले भी बहुत महत्त्वपूर्ण था, पर अब उसकी शिक्षा नीति व पाठविधि आदि के निर्धारण में उनकी सम्मति को और भी अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। पंजाब में उच्च शिक्षा के एकमात्र केन्द्र गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में विज्ञान सदृश महत्त्वपूर्ण विषय के प्रोफेसर का कार्य करते हुए भी गुरुदत्तजी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्था के संचालन व विकास के कार्य में पूर्ववत् योगदान देते रहे। महर्षि के स्मारक रूप में स्थापित इस शिक्षणालय की स्थापना तथा उन्नति के लिए जो भी प्रयत्न सम्भव था, वह गुरुदत्तजी द्वारा किया गया।

सन् १८८८ में दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्था में इण्टरमीडिएट (एफ०ए०) की कक्षाएँ भी खोल दी गयी थीं। उसकी मैनेजिंग कमेटी ने यह निश्चय कर लिया था, कि इस संस्था के कॉलिज विभाग को भी भली-भाँति विकसित किया जायेगा। अब प्रश्न यह था, कि डी० ए० वी० कॉलिज का प्रिंसिपल (आचार्य) किसे बनाया जाये। इस पद के लिए दो नाम डी० ए० वी० सोसायटी के सम्मुख थे, हंसराज और गुरुदत्त। डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना के समय से ही हंसराजजी उसके मुख्याध्यापक के पद पर कार्य कर रहे थे। वह बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण थे; अत्यन्त योग्य, सहृदय, निःस्वार्थ तथा सदाचारी शिक्षक थे। गुरुदत्तजी ने पंजाब यूनिवर्सिटी की एम० ए० परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था, और वह गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर में विज्ञान के प्रोफेसर थे। शिक्षा-जगत् में उनका स्थान बहुत प्रतिष्ठित था। साथ ही, डी० ए० वी० शिक्षण-संस्था के लिए भी उनका कर्तृत्व कम महत्त्व का नहीं था। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि कॉलिज के प्रिंसिपल पद की नियुक्ति पर विचार करते हुए उनकी ओर भी ध्यान जाये। पर लाला साईंदास और लाला लालचन्द सदृश आर्य नेताओं ने अपने कॉलिज के प्रिंसिपल पद के लिए गुरुदत्तजी की तुलना में हंसराज को अधिक उपयुक्त समझा। उनके इस निर्णय के क्या कारण थे, इस पर कुछ विचार करना उपयोगी होगा। गुरुदत्तजी की रुचि चिरकाल से धर्म, योग और वेद-वेदांगों के अध्ययन की ओर थी। उन्हें योग और वेद-शास्त्रों की धुन थी। बढ़ते-बढ़ते यह धुन पागलपन की सीमा तक पहुँच गई थी। जब वह स्कूल की आठवीं कक्षा में पढ़ते थे, तभी योगाभ्यास की ओर उनका झुकाव होने लग गया था। वह जब कभी किसी योगी की चर्चा सुनते, उसके पास जा पहुँचते। घण्टों तक वह प्राणायाम करते रहते, और आसन एवं ध्यान में मन लगाया करते। महर्षि दयानन्द सरस्वती के योग द्वारा स्वेच्छापूर्वक प्राणत्याग के दृश्य को अपनी आँखों से देखकर योग सीखने की उनकी इच्छा बहुत प्रबल हो गई थी, और अजमेर से वापस लौटकर लाहौर में उन्होंने योग दर्शन का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। योग की उन्हें इतनी धुन लग गयी थी, कि उसके सम्मुख अन्य सब बातों को वह तुच्छ समझने लगे थे। उनकी जो डायरी प्राप्त हुई है, उसमें स्थान-स्थान पर योग के प्रति अपनी आस्था तथा उसे सीखने के अपने दृढ़ निश्चय को प्रकट किया गया है। जनवरी, १८८४ से सितम्बर, १८८८ तक के काल में गुरुदत्तजी की डायरी में लगभग तीस बार उनके योगियों से मिलने, योगविद्या सीखने तथा योग का अभ्यास करने का उल्लेख है। योगाध्यान की इस धुन के कारण ही गुरुदत्तजी ने गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर के प्रोफेसर पद से त्यागपत्र दे दिया था। उनके मित्रों ने बहुत आग्रह किया, कि इस सर्विस को न छोड़ा जाये। उनका कथन था, कि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉलिज में केवल दो घण्टे पढ़ाना होता है, उससे योगाभ्यास आदि में कोई बाधा नहीं आ सकती। पर गुरुदत्तजी का उत्तर था, कि प्रातःकाल का समय योगाभ्यास में लगाना चाहता हूँ, उसे मैं कॉलिज के लिए अर्पित नहीं कर सकता। वस्तुतः, गुरुदत्तजी ने 'प्रेय' मार्ग का परित्याग कर 'श्रेय' मार्ग को अपनाने का निश्चय कर लिया था, और वह निवृत्ति मार्ग के पथिक बन गये थे। गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर के प्राध्यापक का पद उन्होंने इसी कारण स्वेच्छापूर्वक त्याग दिया था, ताकि अपना सब समय योगाभ्यास, वेदों के स्वाध्याय तथा धर्म की सेवा में लगा सकें। योग की धुन में उन्होंने द्वन्द्वों के सहन का अभ्यास भी प्रारम्भ कर दिया था, और अपने जीवन को तपस्यामय तथा शरीर को तपोःपूत बनाने के लिए उन्होंने गरमियों में गरम ऊनी कपड़े और शीत ऋतु में महीन सूती वस्त्र पहनने शुरू कर दिये थे। प्रोफेसर रुचिराम साहनी ने अपनी पुस्तक 'सैल्फ रेवेलेशन्स ऑफ् एन आक्टोजनेरियन' में गुरुदत्तजी की इस वृत्ति का इस प्रकार उल्लेख किया है—'जिस काल का मैं उल्लेख कर रहा हूँ, उन (गुरुदत्तजी) का तप के सिद्धान्त में अगाध विश्वास हो गया था। अत्यधिक शीत ऋतु में वह बारीक सूती कपड़े पहनकर आया-जाया करते थे, और प्रचण्ड ग्रीष्म काल में भारी ऊनी वस्त्र पहनकर। उनका रहन-सहन भी कुछ अजीब-सा हो गया था। मैंने उन्हें यूनिवर्सिटी के चोगे को पहनकर लाहौर की गलियों में घूमते हुए देखा है। मैंने यह भी सुना है, कि कभी-कभी वह आर्य-समाज की वेदी पर वह पोशाक पहन कर आ जाते हैं, जो यूनिवर्सिटी के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर पहनी जाती है। लोग क्या कहते हैं, गुरुदत्तजी को इसकी कोई परवाह नहीं थी। दिनचर्या को नियमित रखने की ओर भी वह कोई ध्यान नहीं देते थे। कभी-कभी वह रात-दिन काम में लगे रहते, और एक क्षण के लिए भी आराम न करते। इसके विपरीत कभी-कभी वह दो-दो दिन लगातार सोते रहते।' इस प्रकार का उनका जीवन योगाभ्यास में सहायक चाहे हो सकता हो, पर लोकव्यवहार की दृष्टि से उसका समर्थन कर सकना सम्भव नहीं था।

योग के समान ही गुरुदत्तजी को यह धुन भी थी, कि वे वेदशास्त्रों के गूढ़ अर्थों को समझने का प्रयत्न करें। वेदों पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। उनके वास्तविक अभिप्राय को समझने के लिए उन्होंने व्याकरण और निरुक्त सदृश वेदांगों का अध्ययन प्रारम्भ किया, और उनमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वेद तथा संस्कृत के प्रति गुरुदत्तजी की श्रद्धा कितनी असीम थी, इसका अनुमान उनके इस कथन से भली-भाँति किया जा सकता है—'कितना अच्छा हो कि मैं समस्त विदेशी शिक्षा को पूर्णतया भूल जाऊँ, तथा केवल-मात्र विशुद्ध संस्कृतज्ञ बन सकूँ, क्योंकि जो बात अंग्रेजी पुस्तकों के सहस्रों पृष्ठों में मिलती है, वह वेद के एक मन्त्र अथवा ऋषियों के एक सूत्र में मिल जाती है। मिल की सम्पूर्ण फिलासफी न्यायदर्शन के दो सूत्रों की व्याख्या ही है।'

जो व्यक्ति योगाभ्यास और वेदों के स्वाध्याय का इस प्रकार दीवाना हो गया हो, उसके उत्कृष्ट व्यक्तित्व तथा उदात्त आदर्शवाद से इन्कार कर सकना सम्भव नहीं है। पर साथ ही यह भी स्वीकार करना होगा, कि ऐसा व्यक्ति एक नये स्थापित कॉलिज (जो आर्यसमाज का ही नहीं, अपितु भारतीयों द्वारा पंजाब में स्थापित पहला कॉलिज हो) के संचालन की उत्तरदायिता को सन्तोषजनक रीति से नहीं सँभाल सकता। इस दशा में यदि लाला साईंदास और लाला लालचन्द आदि आर्य नेताओं ने गुरुदत्तजी के बजाय

हंसराजजी को कॉलिज का प्रिंसिपल वनाने का निश्चय किया हो, तो इसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं था। हंसराजजी एक सुयोग्य शिक्षक थे, अनुशासन के वह प्रवल पक्षपाती थे, काम करने का उनका ढंग बहुत उत्तम था, सबके प्रति वह स्नेह भाव रखते थे, विद्यार्थियों से उन्हें वास्तविक हित था, और उनके विचार भी अत्यन्त संयत व मध्यमार्गी थे। वेद-शास्त्रों के प्रति उनकी भी आस्था थी, पर वह यह स्वीकार नहीं करते थे कि हमें पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी की उपेक्षा कर अपना सब ध्यान केवल संस्कृत की पढ़ाई पर ही लगा देना चाहिये। लाला साईंदास के भी यही विचार थे। इसीलिए डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार करते समय उन्होंने हंसराजजी का पक्ष लिया और उनकी प्रेरणा से कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी के अन्य बहुत-से सदस्यों ने भी उन्हें ही प्रिंसिपल वनाने का निश्चय किया।

यद्यपि पण्डित गुरुदत्त का डी० ए० वी० स्कूल एवं कॉलिज की स्थापना तथा विकास में महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व था, पर धीरे-धीरे इस शिक्षण-संस्था के प्रति उनके रुख में परिवर्तन आने लगा। शुरू में वह इस संस्था के प्रवल समर्थक थे, पर वाद में उससे असन्तोष अनुभव करने लगे। पर असन्तुष्ट होते हुए और अपने असन्तोष को प्रकट करते हुए भी वह उसके समर्थक वने रहे और उसके लिए धन एकत्र करने के कार्य में भी सहयोग देते रहे। पर अन्त में एक ऐसा समय भी आया, जबकि वह डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षानीति और पाठविधि की आलोचना करने लग गये और इस आलोचना ने विरोध का रूप प्राप्त कर लिया। डी० ए० वी० कॉलिज के संचालकों से किन बातों पर पण्डित गुरुदत्त का मतभेद था, इसका विशद विवेचन पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। उनका यहाँ पुनः उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि पण्डित गुरुदत्त यह समझ गये थे कि डी० ए० वी० कॉलिज द्वारा उनके शिक्षाविषयक विचारों का क्रियान्वयन हो सकना कठिन है। अतः उन्होंने एक पृथक् संस्था चलाने का निश्चय किया। लाला जीवनदास, लाला रलाराम और लाला मुंशीराम आदि कितने ही अन्य आर्य सज्जन इस विषय में पण्डित गुरुदत्त के समर्थक थे। इन द्वारा जिस नयी संस्था का सूत्रपात करने की योजना वनायी गई, उसकी सूचना 'आर्य पत्रिका' के ३ सितम्बर, १८८९ के अंक में इस प्रकार दी गई थी—'क्योंकि आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा के लिए एक क्लास का खोलना आवश्यक है। इस कारण जब तक डी० ए० वी० कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी या कोई अन्य नियमपूर्वक वनी हुई कमेटी इस काम को हाथों में नहीं ले लेती, तब तक क्लास के लिए चन्दा एकत्र करने तथा क्लास सम्वन्धी अन्य कार्यों के लिए निम्न-लिखित सदस्यों की एक अस्थायी वैदिक क्लास कमेटी (Vedic Class Provisional Committee) बनाई जाये—स्वामी रामानन्द सरस्वती, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए०; लाला जीवनदास, लाहौर; लाला मुंशीराम, जालन्धर; लाला रलाराम, झेलम; मास्टर दयाराम, गुजरात; पण्डित धर्मचन्द, अमृतसर; डाक्टर सीताराम, पेशावर और लाला केदारनाथ, लाहौर। अनुपस्थित सदस्यों की स्वीकृति हो जाने पर निम्न-लिखित निश्चय काम में लाये जायें—(१) लाला मुंशीराम प्रधान हों। (२) लाला केदारनाथ मन्त्री हों। (३) लाला जीवनदास कोषाध्यक्ष हों, और (४) स्वामी रामानन्द उपदेशक समझे जायें।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा के लिए एक पृथक् क्लास खोलने का यह निर्णय बड़े महत्त्व का था। इसे क्रियान्वित करने में पण्डित गुरुदत्त ने देर नहीं की। सन् १८८६ में ही उन्होंने अपने मकान पर इस कक्षा का प्रारम्भ कर दिया। यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि इस कक्षा से आर्य जगत् में एक नयी हलचल उत्पन्न हो जाये। डी० ए० वी० कॉलिज के संचालकों के लिए इसकी उपेक्षा कर सकना सम्भव नहीं था। इस समय तक आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का संगठन हो चुका था, पर कॉलिज विभाग द्वारा पृथक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का निर्माण नहीं हुआ था। आर्य जनता के लोकमत को दृष्टि में रखकर डी० ए० वी० कमेटी के प्रधान लाला लालचन्द ने २६ अक्तूबर, १८८६ को पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा में यह प्रस्ताव पेश किया, कि 'आर्य प्रतिनिधि सभा का कर्तव्य है कि उपदेशक क्लास का संचालन करे। इस कारण लाला मुंशीराम को उसके नियम आदि बनाने का काम सौंपा जाये। उपदेशक क्लास के लिए जो रुपया आए, मन्त्री उसे जुदा हिसाब में रखता जाये।' इस प्रस्ताव का स्वीकृत हो जाना पण्डित गुरुदत्त के विचारों की भारी विजय थी। जुलाई, १८६० तक उपदेशक क्लास के नियम बना लिये गये, और अगले वर्ष के प्रारम्भ में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में पृथक् रूप से एक उपदेशक क्लास खोल दी गई, जिसमें आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा की विशेष रूप से व्यवस्था थी। इस उपदेशक क्लास का उद्देश्य वही था, जो आगे चल कर सन् १८६५ में आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रथम उद्देश्य घोषित किया गया—'वेदों और अन्य प्राचीन संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करने और आर्य उपदेशक तैयार करने के लिए एक विद्यालय स्थापित करना।' आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा की व्यवस्था करना आर्यसमाज का एक प्रमुख कार्य है, इस विचार के उन्नयन में पण्डित गुरुदत्त का प्रधान कर्तृत्व था। इसी के परिणामस्वरूप बाद में आर्यसमाज द्वारा अनेक उपदेशक विद्यालयों तथा गुरुकुलों की स्थापना की गई। वेद की शिक्षाओं के प्रचार के प्रयोजन से पण्डित गुरुदत्त ने जुलाई, १८८८ में 'वैदिक मैगजीन' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका का सम्पादन व प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके विद्वत्तापूर्ण लेख न केवल आर्य जगत् में ही, अपितु सम्पूर्ण शिक्षित संसार में आदर के साथ पढ़े जाते थे और इससे वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में बहुत सहायता मिली।

इसमें सन्देह नहीं, कि पण्डित गुरुदत्त की प्रतिभा अनुपम थी। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और प्राचीन विद्याओं पर उनका समान रूप से अधिकार था। महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के युक्तिसंगत रूप से समर्थन तथा प्रचार के लिए वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते थे। पर वह देर तक जीवित नहीं रहे। योगाभ्यास और तपस्यामय जीवन की धुन में प्रकृति के नियमों की उन्होंने जिस ढंग से उपेक्षा प्रारम्भ कर दी थी, उसके कारण उनका रोगग्रस्त हो जाना स्वाभाविक ही था। सन् १८८६ के जुलाई मास के अन्तिम दिनों में उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी और उन्हें अनेक रोगों ने घेर लिया। सितम्बर तक रोग ने गम्भीर रूप प्राप्त कर लिया, पर आर्यसमाज के कार्य में पण्डितजी पूर्ववत् उत्साहपूर्वक लगे रहे। रुग्ण दशा में ही वह पेशावर आर्यसमाज के उत्सव में गये, और अन्यत्र भी धर्मप्रचार के लिए आते-जाते रहे। परिणाम यह हुआ, कि उनका रोग निरन्तर बढ़ता गया और मार्च, १८६० में उन्होंने अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया।

डी० ए० वी० कॉलिज के प्रारम्भिक इतिहास के इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना चाहिये कि यद्यपि इस संस्था की शिक्षानीति के सम्बन्ध में बाद में पण्डित गुरुदत्त का मतभेद हो गया था, पर इसके संस्थापकों में उनके नाम को सदा आदर के साथ स्मरण किया जायेगा।

परिशिष्ट

डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी की प्रथम नियमावली

Rules

for the

Dayanand Anglo-Vedic College Committee

That a Society for establishing in the Punjab an Anglo-Vedic College Institution in honour of Swami Dayanand Saraswti, be constituted and registered under Act XXI of 1860.

II. That the said Society be designated Dayanand Anglo-Vedic College Trust and Management Society.

III. The objects of the Society are :—

1. To establish in the Punjab an Anglo-Vedic College Institution which shall include a school, a college and boarding-house, as memorial in honour of Swami Dayanand Saraswati with the following joint purposes, viz.,
   (a) To encourage, improve and enforce the study of Hindi literature.
   (b) To encourage and enforce the study of classical Sanskrit and of Vedas.
   (c) To encourage and enforce the study of English literature, and sciences, both theoretical and applied.
2. To provide means for giving technical education, in connection with Anglo-Vedic College Institution as far as it is not inconsistent with the proper accomplishment of the 1st object.

IV. The following persons shall be deemed members of this Society :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(a) All persons who have contributed a donation of Rs. 100/- or more and are members of any Arya Samaj which has contributed Rs. 1,000/- or more to the Society.

(b) Members of the Managing Committee (to be constituted as hereafter provided) of the Society as long as they hold such membership.

(c) Members of the Executive Committee (formed in accordance with the *upaniyams*) of any Arya Samaj which has contributed Rupees 1,000/- or more to the Society, while holding office in the Executive Committee.

V. The Management Committee of the Society will be composed of the following classes of persons :—

(a) Representatives of any Arya Samaj which has contributed Rs. 1,000/- or more.

proviso 1. That a majority consisting of ¾th of the actual of the Managing Committee may relax the rule in the case any Arya Samaj for special reasons relating to the betterment of the Committee.

Proviso 2. That any Arya Samaj may waive its privilege of representation or full representation on account of its failure to secure the services of a competent and respectable member or for some other reason.

Proviso 3. The number of representatives which an Arya Samaj is entitled to send under this clause will vary according to the amount of its contribution, there being one representative for the first 1,000 rupees and one representative for every 5,000 rupees of the amount contributed in excess of the first 1,000 rupees.

(b) One representative of Education
(c) One representative of Medicine
(d) One representative of Engineering
(e) One representative of Nobility
(f) One representative of Law
(g) One representative of Sciences
(h) One representative of Learning.

VI. The representatives mentioned in clause (a) shall be mominated by the members of the Executive Committee of the Arya Samaj of which he is a representative.

VII. The members mentioned in clauses (a) to (h) of Rule V shall

be nominated by the members mentioned in clause (a) subject to the proviso that in no case should the aggregate number of members nominated under these clauses exceed one-third of the whole numerical strength of the Committee.

Provided also nomination may not be made under any of the clauses (b) to (h) Rule V in case a fit representative of a class mentioned in any of these clauses has been previously elected under clause (a) of the same rule.

VIII. The Samajic representative must be an Arya Sabhasad but need not be a registered member of the particular Arya Samaj by which he is elected.

IX. The Managing Committee will dissolve and be elected every three years in accordance with the foregoing provisions, for the appointment of members.

X. The following circumstances shall be deemed sufficient to cause a vacancy in the Managing Committee :—

(a) Death of a member,

(b) Resignation by a member,

(c) Continued absence from three successive meetings of the Committee without sufficient cause,

(d) Cessation of membership in the Arya Samaj caused by exclusion, voluntary relinquishment or otherwise, when reported by the Arya Samaj of which he was a representative,

(e) Insanity,

(f) Conviction of an offence which in the opinion of the Managining Committee renders the offender unfit to serve on the Committee.

On the occurrence of a vacancy in the Managing Committee from any of the causes mentioned above, a new representative of the same class shall be elected or appointed in accordance with the foregoing provisions prescribed therefor.

XI. The Managing Committee shall frame its own rules of business.

XII. The financial control shall rest with the Managing Committee subject to the general control of the Society.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

XIII. The Managing Committee shall appoint its own office bearers. It shall also have power to dismiss or suspend its own office-bearers. Provided that no such dismissal or suspension shall take place unless a majority consisting of $\frac{3}{4}$th of the actual number of the Managing Committee has concurred therein. Both the Secratary and the President shall belong to class (a) Rule 5.

XIV. The election of office-bearers appointed under Rule 13 ahall be annual.

XV. The powers of the Managing Committee shall be regulated from time to time by resolutions passed at the meetings of the Society.

XVI. An annual general meeting of the members of the Society shall be held in the month of............at the locality of the College.

XVII. Special meetings of the Society shall be convened by the Secretary of the Managing Committee when so required to do by at least $\frac{1}{4}$th number of the members of the Society or whenever the Managing Committee thinks fit.

XVIII. Bye-Laws and Regulations may be framed from time to time by the Managing Committee subject to confirmation at the next meeting of the Society.

XIX. Subject to the control of the Society the following powers shall be exercised and duties performed by the first Managing Committee appointed under these rules :—

1. To decide locality of the Institution,
2. To frame a Memorandum of Association for the purpose of registration in accordance with these rules.
3. To register the Society under Act XXI of 1860.
4. To invest the funds of the Society in the name of Society in any or all of the following securities :—
   (a) Goverment Pro-notes,
   (b) Land,
   (c) Deposit in some Bank,
5. To collect,
6. To take steps for the speedy opening of the Institution,
7. To frame and issue a scheme of studies for the Institution in accordance with the objects stated in Rule III,
8. To spend any money which may be necessary for carrying

out the objects of the Society and for the exercise of powers and the performance of duties specified under this rule. Provided that in no case shall the Committee have power to disburse any sums out of the capital fund,

9. To keep the records of the Society.

XX. The Managing Committee shall be bound to send a copy of the resolutions passed in any meeting to the Arya Samaj having a representative on the Committee and also to submit a copy of its accounts every three months to the same.

XXI. Any Arya Samaj will have the privilege of sending one or more representatives to the Managing Committee in accordance with Rule V as soon as it has completed the donations of Rs. 1,000 or more.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचवाँ अध्याय

गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना और विकास

(१) गुरुकुल का बीजारोपण

आर्यसमाज के अनेक नेताओं को इस बात से असन्तोष था कि दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज में संस्कृत भाषा, वेदशास्त्र तथा आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था नहीं है। उनका कहना था कि इस कॉलिज की स्थापना संस्कृत की शिक्षा तथा वेदशास्त्रों के पठन-पाठन के लिए की गयी थी, पर इसमें इन्हें गौण स्थान दिया गया है, और अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की प्रधानता है। शिक्षा तथा पाठविधि के सम्बन्ध में डी० ए० वी० कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी में किस प्रकार मतभेद बढ़ता गया, इस सम्बन्ध में इस इतिहास के पिछले अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि डी० ए० वी० कॉलिज की पाठविधि से आर्य-समाज का एक वर्ग तीव्र असन्तोष अनुभव करने लग गया था, और उसने एक ऐसी संस्था की स्थापना के लिए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था, जिसमें संस्कृत भाषा और वेदशास्त्रों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, और जिसके पढ़े हुए विद्यार्थी आर्य-समाज के उत्तम उपदेशक बन सकें। इसीलिए आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की स्थापना के समय उसके जो उद्देश्य निर्धारित किये गये, उनमें एक उद्देश्य यह भी था—"वेदों और अन्य प्राचीन संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करने और आर्य उपदेशक तैयार करने के लिए एक विद्यालय स्थापित करना।" इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'आर्योपदेशक पाठशाला' की स्थापना की गयी। इस पाठशाला में शिक्षा का काल तीन वर्ष रखा गया, और यह निर्धारित किया गया कि इसमें वे ही विद्यार्थी प्रवेश पा सकें, जो विशारद परीक्षा उत्तीर्ण हों। साथ ही, यह भी आवश्यक रखा गया कि ये विद्यार्थी वैदिक धर्म में विश्वास रखते हों। पाठशाला के विद्यार्थियों के निर्वाह के लिए सात-सात रुपये मासिक की पन्द्रह छात्र-वृत्तियाँ भी स्वीकार की गयीं। उस समय में यह राशि एक व्यक्ति के भोजन आदि के लिए पर्याप्त थी। पाठशाला के विद्यार्थियों के लिए यह भी आवश्यक था कि वे आश्रम (छात्रावास) में रहें, और आचार्य के निरीक्षण में रहते हुए ऐसा जीवन व्यतीत करें, जो आर्यसमाज के सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के अनुरूप हो।

आर्योपदेशक पाठशाला को महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली को क्रियात्मक रूप से लागू करने का प्रयत्न नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें वही विद्यार्थी प्रवेश पा सकते थे, जो विशारद परीक्षा उत्तीर्ण हों। उस समय संस्कृत भाषा की तीन परीक्षाएँ पंजाब में प्रचलित थीं, प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री। सामान्यतया, सोलह सतरह साल की आयु के विद्यार्थी ही विशारद परीक्षा उत्तीर्ण कर सकते थे। महर्षि

द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली में सात व आठ साल की आयु के बालकों और बालिकाओं का आचार्य के कुल में जाकर रहना और माता-पिता एवं परिवार के प्रभाव से मुक्त होकर गुरुजनों के सम्पर्क व निरीक्षण में निवास करते हुए विद्या का अध्ययन करना होता है। आर्योपदेशक पाठशाला का उद्देश्य महर्षि की शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षण-संस्था का स्थापन नहीं था। वह इस सीमित प्रयोजन से स्थापित की गयी थी कि उसमें ऐसे सुयोग्य उपदेशक तैयार किये जायें, जो योग्यतापूर्वक वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें। इसीलिए संस्कृत भाषा, वेदशास्त्र और आर्ष ग्रन्थों के साथ-साथ उसमें अंग्रेजी की पढ़ाई की भी व्यवस्था की गयी थी। अंग्रेजी की शिक्षा का प्रयोजन यह था, कि विद्यार्थी सायन्स और फिलोसोफी के विषयों से परिचय प्राप्त कर शिक्षित लोगों की शंकाओं व सन्देहों का निवारण कर सकें, और इस प्रकार वैदिक धर्म के प्रचार में सशक्त रूप से समर्थ हों।

सन् १८९५ में आर्योपदेशक पाठशाला को लाहौर से जालन्धर ले जाया गया। उस समय जालन्धर नगरी आर्यसमाज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी। कन्या महाविद्यालय जैसी संस्था वहाँ स्थापित हो चुकी थी (१८९१) और श्री मुंशीराम तथा लाला देवराज जैसे आर्य नेताओं का वहाँ निवास था। सशक्त आर्य पत्र सद्धर्म प्रचारक भी वहीं से प्रकाशित होता था। इस समय तक पंजाब का आर्यसमाज दो दलों व विभागों में विभक्त हो चुका था। आर्यसमाज के क्षेत्र में जिसे महात्मा पार्टी या घास पार्टी कहा जाता था, जालन्धर में उसका बहुत जोर था। यह समझा गया कि जालन्धर में आर्योपदेशक पाठशाला अधिक उन्नति कर सकेगी। जालन्धर में स्थानान्तरित हो जाने पर यह पाठशाला श्री मुंशीराम के निरीक्षण में आ गयी, और वही उसका संचालन करने लगे। उसका नाम अब बदल कर 'वैदिक पाठशाला' कर दिया गया। जालन्धर में ही पंडित गंगादत्त को पाठशाला का आचार्य नियत किया गया। गंगादत्तजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे, और व्याकरण पर उनका पूर्ण अधिकार था। आगे चल कर वह गुरुकुल काँगड़ी के भी आचार्य नियत हुए, और ज्वालापुर महाविद्यालय की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व था। उनके आचार्यत्व में वदिक पाठशाला ने अच्छी उन्नति की और उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले अनेक विद्यार्थियों ने बड़े होकर आर्यसमाज, विद्वत्ता तथा साहित्य के क्षेत्रों में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किया। इनमें पंडित पद्मसिंह शर्मा और पंडित विष्णुदत्त के नाम उल्लेखनीय हैं। जालन्धर के लोगों को वैदिक पाठशाला के लिए बहुत उत्साह था। इसीलिए लाला नगीनामल ने पाठशाला के लिए एक उपयुक्त भवन बिना किराये के प्रदान कर दिया था, और विद्यार्थियों की सुविधा के लिए उसके साथ एक वाटिका तथा कुएँ का भी निर्माण करवा दिया था।

सुयोग्य व सफल उपदेशक होने के लिए वक्तृत्व कला में कुशल होना आवश्यक है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर आचार्य गंगादत्त ने वैदिक पाठशाला में एक वाग्वर्धिनी सभा भी स्थापित कर दी थी। इस सभा में उपस्थित होकर विद्यार्थी विविध विषयों पर वाद-विवाद तथा सार्वजनिक सभाओं में भाषण देने का अभ्यास किया करते थे। बाद में जब पंडित गंगादत्त गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य नियत हुए, तो उन्होंने वहाँ भी वाग्वर्धिनी सभा की स्थापना की, और इस सभा द्वारा आधी सदी के लगभग समय तक गुरुकुल के ब्रह्मचारी वक्तृत्व कला में निपुणता प्राप्त करते रहे।

जुलाई, १८९९ में वैदिक पाठशाला को जालन्धर से गुजरांवाला ले जाया गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण यह था, कि जालन्धर के आर्यसमाज पर कन्या महाविद्यालय का बोझ पहले से ही विद्यमान था। उसके संचालन तथा धन की व्यवस्था की उत्तरदायिता जालन्धर के आर्यसमाजियों पर ही प्रधान रूप से थी। इस दशा में वैदिक पाठशाला के रूप में एक अन्य संस्था का बोझ उठा सकना उनके लिए सुगम नहीं था। जालन्धर के आर्य जनों के समान गुजरांवाला के आर्यों में भी वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अनुपम उत्साह था, और लाला रलाराम सदृश आर्य नेता भी गुजरांवाला के निवासी थे। वैदिक पाठशाला ने गुजरांवाला आकर और अधिक उन्नति की। उसके विद्यार्थियों के लिए आश्रम में रहना तो अनिवार्य था ही, अब यह भी व्यवस्था की गई कि वे अपने अध्यापकों को धर्म प्रचार में सहयोग दे सकें। वस्तुतः, वैदिक पाठशाला एक ऐसी संस्था थी, जिसका प्रधान कार्य वैदिक धर्म के लिए सुयोग्य उपदेशक तैयार करना था; वह उन अर्थों में शिक्षण-संस्था नहीं थी, जिनमें कि आर्यसमाज द्वारा स्थापित डी० ए० वी० स्कूल, डी० ए० वी० कॉलिज और गुरुकुल थे।

डी० ए० वी० संस्थाओं के प्रति अनेक आर्य नेताओं को जो असन्तोष था, उसका प्रधान कारण उनकी सम्मति में उनका महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षासम्बन्धी मन्तव्यों के अनुरूप न होना था। वैदिक पाठशाला में संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की पढ़ाई को प्रमुख स्थान अवश्य प्राप्त था, पर वह भी उस ढंग की शिक्षण-संस्था नहीं थी जो महर्षि को अभिमत था। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में जिस शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया था, उसके मूल तत्त्व निम्नलिखित थे—(१) यह राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि आठ वर्ष की आयु के बाद माता-पिता अपने बालकों और बालिकाओं को घर में न रख सकें। शिक्षा के लिए उन्हें पाठशाला में भेज दें। जो न भेजें वे दण्डनीय हों। (२) लड़कों और लड़कियों की पाठशालाएँ (गुरुकुल) पृथक्-पृथक् हों, और एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हों। (३) गुरुकुल (आचार्यकुल) शहरों व ग्रामों से दूर एकान्त स्थान में हों। (४) गुरुकुल में सबको तुल्य वस्त्र, एक सदृश आसन, एक समान भोजन और एक-सी शिक्षा दी जाये, चाहे वे राजकुमार व राजकुमारी हों और चाहे रंक (दरिद्र) की सन्तान। सबके प्रति एक जैसा व्यवहार किया जाये। (५) गुरुकुलों में सब तप का जीवन बिताएँ और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। २५ वर्ष से पूर्व बालक का और १६ वर्ष से पूर्व बालिका का विवाह न होने पाये। (६) गुरुकुलों में गुरुओं और शिष्यों का सम्बन्ध पिता-पुत्र के सदृश हो। (७) शिक्षा में वेद, वेदांग, संस्कृत भाषा तथा आर्ष ग्रन्थों को प्रमुखता दी जाये। पर साथ ही, विविध ज्ञान-विज्ञान (गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, भूगर्भविद्या, चिकित्साशास्त्र, राजनीति, शिल्पविद्या, नृत्य, संगीत आदि) की पढ़ाई की भी समुचित व्यवस्था की जाये।

डी० ए० वी० संस्थाओं की शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए अनेक आर्य नेताओं का ध्यान महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के इन मूल तत्त्वों की ओर गया, और वे यह आवश्यकता अनुभव करने लगे कि एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना की जानी चाहिये, जिसमें इन तत्त्वों को क्रियान्वित किया गया हो। इन नेताओं में श्री मुंशीराम प्रधान थे। उन्होंने अपने समाचारपत्र 'सद्धर्म प्रचारक' द्वारा ऐसी संस्था की स्थापना के लिए आन्दोलन शुरू किया, जो शहरों से दूर एकान्त स्थान पर स्थित हो और जिसमें छोटी आयु के बालक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेदशास्त्रों का

अध्ययन करें। आर्यसमाज गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था में विश्वास रखता है, और जन्म के आधार पर किसी को ब्राह्मण या शूद्र नहीं मानता। गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार वर्ण-व्यवस्था की स्थापना आर्यसमाज का एक महत्त्वपूर्ण मन्तव्य है। पर लाला मुंशीराम का कहना था, कि "आश्रम व्यवस्था के विना वर्णव्यवस्था कायम नहीं की जा सकती। आश्रमों पर ही वर्ण निर्भर हैं। जब गुरुकुल नहीं हैं, तब आश्रम पद्धति का उद्धार कैसे हो!" आश्रम पद्धति के अनुसार सब बालकों और बालिकाओं को जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचारी के रूप में बिताना चाहिये, और गुरुकुल या आचार्यकुल में रह कर विद्याध्ययन के साथ-साथ अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना चाहिये। शिक्षा की समाप्ति के अनन्तर जिसमें जैसी योग्यता हो, जिसके जो गुण-कर्म-स्वभाव हों, उनके अनुसार ही उसका वर्ण निर्धारित किया जाना चाहिये। कौन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र वर्ण में होने योग्य है, इसका निर्धारण ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद ही किया जा सकता है। अतः आश्रम पद्धति की पुनः स्थापना के पश्चात् ही सही वर्णव्यवस्था की स्थापना सम्भव है। 'सद्धर्म प्रचारक' में ऐसे विचार चिर काल से प्रकट किये जा रहे थे। पर ८ आषाढ़, संवत् १९५३ (सन् १८९६) में मुंशीरामजी ने सद्धर्म प्रचारक में एक लेखमाला शुरू की, जिसका शीर्षक 'सन्तान को आर्य क्योंकर बना सकते हो?' था। शहरों के वातावरण में बच्चों पर कैसे बुरे प्रभाव पड़ते हैं, इस पर विशद रूप से प्रकाश डालकर इस लेखमाला में गुरुकुल के सम्बन्ध में एक सुस्पष्ट व सुनिश्चित योजना प्रस्तुत की गयी थी।

इस योजना द्वारा यह विचार प्रकट किया गया था कि २० ऐसे सज्जन तैयार हो जाएँ, जो अपनी सन्तान के लिए १५ रुपये प्रति मास खर्च कर सकें। अमृतसर के पास नदी के तट पर ऐसे रमणीक स्थान हैं, जहाँ परीक्षण के तौर पर गुरुकुल खोला जा सकता है। मुंशीरामजी के अपने दो पुत्र थे, जिन्हें वह इस गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिए भेजने को उद्यत थे। वह चाहते थे कि १८ अन्य बालक इस गुरुकुल में प्रविष्ट कर दिये जाएँ। इस प्रकार २० बालकों से ३०० रुपये मासिक की प्राप्ति होगी, जिसमें से १२० रुपये मासिक शिक्षकों पर व्यय होगा, और ६ रुपये प्रति बालक के हिसाब से १२० रुपये मासिक भोजन का खर्च बैठेगा। जो ६० रुपये मासिक शेष बचेंगे, उनसे १९ अन्य बालकों को गुरुकुल में निःशुल्क शिक्षा दी जा सकेगी। लाला मुंशीराम के सम्मुख प्राचीन भारत के वे आचार्यकुल (गुरुकुल) विद्यमान थे, जिनमें न केवल शिक्षा ही निःशुल्क होती थी, अपितु भोजन तथा निवास आदि के लिए भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। जिस गुरुकुल की स्थापना का स्वप्न लालाजी ने जनता के समक्ष प्रस्तुत किया था, उसमें भी एक तिहाई विद्यार्थी पूर्णतया निःशुल्क रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। आर्य पत्र-पत्रिकाओं में गुरुकुल की इस योजना के सम्बन्ध में बहुत चर्चा हुई। 'आर्य पत्रिका' ने इसका स्वागत करते हुए यह सुझाव दिया कि इस ढंग की शिक्षण-संस्था का संचालन आर्यसमाज के एक सार्वभौम संगठन द्वारा किया जाना चाहिये। उस समय तक प्रान्तीय व प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाओं का निर्माण तो हो चुका था, पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना तब नहीं हुई थी। 'आर्य पत्रिका' का सुझाव था कि सार्वभौम (सार्वदेशिक) आर्य प्रतिनिधि सभा का संगठन कर उसके अधीन ही गुरुकुल की स्थापना करना समुचित होगा। कॉलिज पार्टी से तो लाला मुंशीराम की योजना के समर्थन की आशा की ही नहीं जा सकती थी, पर महात्मा पार्टी के लोगों द्वारा भी इसे पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इस पार्टी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनेक महानुभावों ने इस पर अनेकविध विप्रतिपत्तियाँ उठाईं। कुछ का कहना था कि वर्तमान समय में ऐसे माता-पिता कहाँ मिलेंगे, जो बच्चों को अपने से दूर कर जंगल के एकान्त में पढ़ने के लिए भेजने को उद्यत हों। कुछ का विचार था कि संस्कृत की पढ़ाई से विशेष लाभ नहीं है, और माता-पिता यह नहीं चाहेंगे कि उनके बच्चे केवल संस्कृत पढ़ें। यह क्रियात्मक नहीं है कि संस्कृत के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की समुचित पढ़ाई की व्यवस्था की जा सके। जहाँ तक बच्चों को सदाचारी बनाने का प्रश्न है, माता-पिता किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में उनके चरित्र-निर्माण पर अधिक ध्यान दे सकते हैं। लाला मुंशीराम चाहते थे कि गुरुकुल का संचालन पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाये। इस पर यह विप्रतिपत्ति की गई कि उसके साधन इतने नहीं हैं कि वेदप्रचार के अतिरिक्त वह गुरुकुल भी चलाये, और गुरुकुल पर ध्यान देने से वेदप्रचार के कार्य में बाधा पहुँचेगी।

पर महात्मा पार्टी में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी, जिन्होंने कि गुरुकुल की योजना का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। ऐसे एक सज्जन श्री जगन्नाथ थे, जो नूरमहल के रहने वाले थे। उन्होंने प्रत्येक आर्यसमाजी से अपील की, कि गुरुकुल के भवनों के लिए एक-एक रुपया चन्दा प्रदान करें, और स्वयं उन्होंने इस फण्ड में २५ रुपये मुंशीरामजी के पास भेज दिये। इससे लालाजी बहुत प्रोत्साहित हुए, और गुरुकुल की योजना को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। श्रीगोविन्दपुर आर्यसमाज के उपप्रधान उस समय श्री विशनदास थे। उन्होंने कहा कि यदि गुरुकुल गुरदासपुर जिले में खोलना तय कर लिया जाए, तो वह उसके लिए भूमि तथा एक हजार रुपया प्रदान करने को उद्यत हैं। इसी प्रकार के प्रस्ताव अन्य आर्य सज्जनों द्वारा भी पेश किये जाने लगे। लाला मोहनलाल ने गुरुकुल के लिए अपने गाँव में दो घमाऊँ भूमि और ५० रुपया वार्षिक प्रदान करने की घोषणा की। एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पंजाब से बाहर बरार से आया। अकोला जिले के पातूर नामक नगर के निवासी श्री शिवरत्नसिंह वर्मा ने अपने चचेरे भाई श्री गोविन्दसिंह वर्मा की ओर से घोषणा की, कि वह गुरुकुल के लिए दस हजार रुपये प्रदान करने को उद्यत हैं। इन तीनों आर्य सज्जनों ने यह भी सूचित किया कि वे अपने एक-एक बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के लिए भी तैयार हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आर्य जनता के एक वर्ग में गुरुकुल के लिए समुचित उत्साह था। लाला मुंशीराम को इससे बहुत बल मिला और गुरुकुल खोलने का उनका विचार निरन्तर दृढ़ होता गया। ३ आश्विन, संवत् १९५४ (सन् १८९७) के सद्धर्म प्रचारक के अंक में 'आश्रम व्यवस्था और उसकी बुनियाद' शीर्षक से एक लेख उन्होंने लिखा, जिसके कुछ अंश निम्नलिखित थे---

"यह मुबारक तहरीक पण्डित गुरुदत्तजी की जीवनी में ही शुरू हो गई थी। उनकी मृत्यु के बाद कुछ समय की खामोशी के बाद फिर उस मजमून पर तहरीरी काम शुरू हो गया था। सन् १८९५ के दौर में हमने अक्सर जगहों में धार्मिक आर्य भाइयों से बातचीत की। अक्सर उन्होंने अपनी सन्तान को गुरुकुल में भेजना स्वीकार किया। बहुत से सज्जन आर्थिक सहायता करने को भी तयार हैं। लेकिन दूसरे कार्यों का बोझ इतना रहा कि उस समय कोई तरीका बरामद न हुआ, पर सुलगी हुई धर्म की यह अग्नि बुझी नहीं। चुनांचे लाला जगन्नाथजी बजाज नूरमहल ने अपने कारखाने में कुछ हिस्सा गुरुकुल का कायम किया और एक साथ २५ रुपये पेशगी उसमें से भेज भी दिये। इसके

वाद पंडित लेखरामजी आर्य मुसाफिर के धर्म पर बलिदान होते ही अन्य कामों के बोझ ने आ दबाया। फिर भी हम इस सवाल पर बराबर विचार करते रहे। इसमें शक नहीं कि हम भी कुछ सुस्त हो चले थे। लेकिन निराशा को पाप समझते हुए हमने आशा नहीं छोड़ी थी और कुछ समय तक इस सम्बन्ध में अधिक विचार करने का निश्चय कर लिया था। इसी बीच में श्रीगोविन्दपुर के आर्य भाइयों ने अजीब धार्मिक जोश दिखाया और उसके बाद ही श्री शिवरत्नजी वर्मा ने कुमार गोविन्दसिंहजी मनसबदार का साहसपूर्ण निश्चय जाहिर किया। ये दोनों निश्चय यदि पूरे हो जाएँ, तो गुरुकुल का खुलना कुछ भी मुश्किल नहीं है। अलबत्ता श्रीगोविन्दपुर के भाइयों की शर्त ठीक नहीं है। मगर हमको यकीन है कि लाला बिशनदास और लाला मोहनलालजी आदि भाई कभी भी अपनी इस शर्त पर हठ नहीं करेंगे और हर एक फैसले को आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब पर छोड़ देंगे। आर्य प्रतिनिधि सभा का नाम सुनकर हमारे पाठक आश्चर्य करेंगे। पर उनको मालूम हो कि जो अपील वेद प्रचार फण्ड के लिए सभा के प्रधान और मन्त्री की ओर से प्रकाशित हुई थी, उसमें गुरुकुल खोलने की ओर इशारा मौजूद है। इस समय जब कि आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने आर्य विद्यार्थी आश्रम को गैर-जरूरी ठहरा दिया है, तब पूरी आशा बँध जाती है कि सभी गुरुकुल को अपनी अधीनता में खोलने को तैयार हो जाएँगे। हमने इरादा कर लिया है कि श्रीगोविन्दपुर आर्यसमाज के जलसे में, जो कि ३ और ४ अक्तूबर सन् १८९७ को होगा, शामिल होंगे और उस समय अपने भाइयों को प्रेरित करेंगे कि वे अपना दान नकद देवें जिससे उन सज्जनों के दिलों को ढाढ़स मिले जो कि गुरुकुल के लिए मुद्दत से व्याकुल हो रहे हैं।" लेख के अन्त में यह भी लिखा गया था, कि "जिन सज्जनों के पुत्र १२ वर्ष से कम आयु के हैं वे अपने पुत्रों को धर्म के अर्पण करने की प्रतिज्ञा करें, ताकि उनके किये हुए हौसले से उत्साहित होकर श्रीगोविन्दपुर से ही आर्य प्रतिनिधि सभा की सेवा में एक निश्चित निवेदनपत्र भेजा जा सके। पढ़ाई के काम के लिए हमने दो धार्मिक पुरुषों को तैयार किया है। पाठविधि महर्षि दयानन्द स्वयं तैयार कर गये हैं। हमें सिर्फ उन विषयों का सिलसिला बाँधना होगा और अन्य भाषाओं, विशेषतः व्यावहारिक विद्याओं का उनमें समावेश करना होगा, जो आर्यसमाज के विद्वान् धार्मिक सभासदों की सहायता से प्रतिनिधि सभा तैयार कर सकेगी।"

सद्धर्म प्रचारक के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि पंडित गुरुदत्त आदि जो आर्य सज्जन डी० ए० वी० कॉलिज से असन्तुष्ट थे, उनके मन में गुरुकुल की स्थापना का विचार सन् १८८९ व उससे भी पूर्व उत्पन्न हो गया था। वे एक ऐसी शिक्षण-संस्था स्थापित करना चाहते थे, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के मूल तत्त्वों के अनुसार हो और जिसमें संस्कृत भाषा तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन का स्थान सर्वप्रधान हो। पर बीज रूप में विद्यमान यह विचार चिरकाल तक अंकुरित नहीं हो सका। लाला मुंशीराम के सद्धर्म प्रचारक द्वारा आन्दोलन करने के परिणामस्वरूप इस विचार ने मूर्तरूप धारण करना प्रारम्भ किया, और लालाजी की अपील पर ३ अक्तूबर, १८९७ की रात को ९ बजे श्रीगोविन्दपुर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आर्य सज्जनों की एक सभा हुई, जिसमें बाहर से आये हुए बहुत-से व्यक्ति भी सम्मिलित हुए। विचार-विमर्श के पश्चात् सभा ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया—"आर्य पुरुषों की यह कान्फरेन्स श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सेवा में यह निवेदन करना अत्यन्त आवश्यक समझती है कि गुरुकुल शीघ्र ही खोला जाए।" श्रीगोविन्दपुर में स्वीकृत यह प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा के पास भेज दिया गया, और समाचारपत्रों में गुरुकुल के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया गया। उस समय प्रतिनिधि सभा के मन्त्री लाला ज़यचन्द्र थे। उन्होंने विचार प्रस्तुत किया कि गुरुकुल के प्रति जनता में उत्साह उत्पन्न करने के लिए एक कमेटी बनायी जाए और डेपुटेशन बना कर २०-२५ हज़ार रुपये एकत्र किये जाएँ। २६ नवम्बर, १८९८ के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया कि गुरुकुल पद्धति के एक विद्यालय की स्थापना की जाए, और उसकी योजना लाला मुंशीराम तैयार करें। सभा के इसी अधिवेशन में यह भी निश्चय कर लिया गया कि आठ हज़ार रुपये एकत्र हो जाने पर गुरुकुल की स्थापना के कार्य को प्रारम्भ कर दिया जाए।

आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रस्ताव के अनुसार लाला मुंशीराम ने गुरुकुल की योजना शीघ्र तैयार कर दी, और सभा द्वारा उसका प्रचार भी शुरू कर दिया गया। पर लाला मुंशीराम कार्य की प्रगति से सन्तुष्ट नहीं थे। अगस्त, १८९८ के सद्धर्म प्रचारक में उन्होंने घोषणा की, कि जब तक गुरुकुल के लिए वह तीस हजार रुपये एकत्र न कर लेंगे, घर में पैर नहीं रखेंगे। उस युग के लिए यह राशि बहुत बड़ी थी। उन दिनों के तीस हज़ार रुपये सन् १९८३ के दस लाख रुपयों से कम न थे। इतनी बड़ी राशि को उस समय एकत्र करना, जबकि न तो आर्यसमाजियों की संख्या ही अधिक थी, और न गुरुकुल के ढंग की नयी शिक्षण-संस्था के विषय में लोगों को कोई जानकारी ही थी, बहुत बड़े साहस की बात थी। पर लाला मुंशीराम असाधारण पुरुष थे, उनकी कार्यक्षमता अनुपम थी, और उनका उत्साह अदम्य था। २६ अगस्त, १८९९ के दिन अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने घर से प्रस्थान किया, और जब ८ एप्रिल, १९०० को वह घर वापस आए तो वे चालीस हजार के लगभग रुपया नकद जमा कर चुके थे। नौ मास के लगभग समय में उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली थी। यह समय उन्होंने मुख्यतया पंजाब का दौरा करने में बिताया पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह हैदराबाद, हरिद्वार और लखनऊ आदि भी गये। इन यात्राओं में उन्होंने केवल धन ही एकत्र नहीं किया, अपितु अपने व्याख्यानों तथा वार्तालाप से गुरुकुल के प्रति लोगों में उत्साह भी उत्पन्न किया। गुरुकुल का विचार अब केवल पंजाब तक ही सीमित नहीं रह गया था। अन्य प्रान्तों की आर्य प्रतिनिधि सभाओं का भी ध्यान गुरुकुल की योजना की ओर आकृष्ट होने लगा था, और अन्यत्र भी गुरुकुल के बीजारोपण की तैयारी शुरू हो गई थी। गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने में लाला मुंशीराम को जो असाधारण सफलता प्राप्त हुई थी, उससे जनता में इस नयी शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करने के लिए अनुपम उत्साह का संचार हुआ। लाहौर आर्यसमाज की ओर से लालाजी का धूमधाम से स्वागत किया गया। उनका जुलूस निकाला गया और समाज मन्दिर में उनका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन किया गया।

गुरुकुल की स्थापना में अब कोई बाधा नहीं रह गई थी। आर्य प्रतिनिधि सभा उसके लिए प्रस्ताव स्वीकृत कर चुकी थी, और उसे प्रारम्भ करने के लिए धन भी एकत्र हो गया था। अब केवल बीज के अंकुरित होने की देर थी।

(२) गुरुकुल की प्रथम नियमावली

गुजरांवाला के लाला रलाराम उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान थे। वह भी उन नेताओं में थे, जो डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षा पद्धति से असंतुष्ट थे। जनवरी, १८८६ में उन्होंने यह प्रयत्न भी किया था कि डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज में संस्कृत, हिन्दी तथा वेद-वेदांगों को विशेष स्थान प्रदान किया जाये। १८६१ में उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज में पृथक् वेद विभाग खोलने का भी प्रस्ताव किया था। लाला रलाराम डी० ए० वी० संस्थाओं द्वारा शिक्षाविषयक अपने विचारों को स्वीकृत कराने में असमर्थ रहे थे। पर पंजाव के आर्यसमाजों के दो संगठन वन जाने पर उनके लिए यह सम्भव हो गया था कि महात्मा पार्टी की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा वह अपने विचारों को क्रियान्वित करा सकें। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के विषय में उनका प्रायः वही मन्तव्य था, जो लाला मुंशीराम का था। उन दोनों का यह मत था कि आर्यसमाज द्वारा एक ऐसी शिक्षण-संस्था का संचालन किया जाना चाहिये, जिसके पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा, वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों को प्रमुख स्थान प्राप्त हो और जिसमें उन मूल तत्त्वों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया हो जिनका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में किया है। ऐसी संस्था (गुरुकुल) के लिए जो नियमावली तैयार की गई थी, उसे आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव ने २६ दिसम्बर, १६०० के अपने साधारण अधिवेशन में स्वीकृत कर लिया, और उसे सभा प्रधान लाला रलाराम के हस्ताक्षरों से प्रकाशित किया गया। इस नियमावली के साथ २० पृष्ठों की एक भूमिका भी थी, जिसमें नियमों के अभिप्राय को स्पष्ट किया गया था।

गुरुकुल की स्थापना किन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर और किस प्रयोजन से की गई थी, इसे समझने के लिए दिसम्बर, १६०० में सभा द्वारा स्वीकृत यह नियमावली अत्यन्त महत्त्व की है। वस्तुतः, गुरुकुल के उद्देश्यों के सम्बन्ध में यह आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की प्रामाणिक घोषणा है। इसमें गुरुकुल की स्थापना के निम्नलिखित आठ कारण वताये गये हैं—

(१) वेद आर्यसमाज के प्राण हैं। विशाल संस्कृत साहित्य का आरम्भविन्दु या मूल स्रोत वेद ही हैं। वेद के अध्ययन के लिए गुरुकुल की आवश्यकता है। इसकी व्याख्या करते हुए नियमावली के साथ प्रकाशित भूमिका में यह स्पष्ट किया गया है कि वेदों का ज्ञान सूर्य के समान है, जिसके सम्मुख अन्य सब मानवीय ज्ञान गौण हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में वेद केन्द्र की स्थिति रखते हैं, और सब विद्याएँ व ज्ञान इस केन्द्र स्थानीय वेद के चारों ओर चक्कर काटते हैं। अतः गुरुकुल में सबसे अधिक महत्त्व वेदों के अध्ययन-अध्यापन को दिया जाएगा और विद्यार्थियों का सबसे अधिक समय उन्हीं के लिए अर्पित रहेगा। वेदों का अध्ययन वेदांगों तथा सत्य शास्त्रों के सहित होगा।

(२) संस्कृत का अध्ययन तव तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक कि अंगों तथा उपांगों के साथ वेदों का अध्ययन न किया जाए। संस्कृत शिक्षा की कोई ऐसी योजना, जिसमें वैदिक साहित्य को समुचित स्थान प्राप्त न हो, विना प्राण के शरीर के समान है। अतः ऐसे शिक्षणालय की आवश्यकता है, जिसमें संस्कृत साहित्य के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ-साथ वैदिक साहित्य का भी अध्ययन-अध्यापन हो। उस समय के शिक्षणालयों में संस्कृत की शिक्षा की भी व्यवस्था थी, यद्यपि उसका स्थान गौण था, और विद्यार्थी उसे वैकल्पिक रूप से ही ले सकते थे। पर जो भी संस्कृत उस समय के शिक्षणालयों में पढ़ायी जाती थी, वह लौकिक संस्कृत ही थी। वैदिक संस्कृत और वैदिक साहित्य के लिए उसमें कोई स्थान नहीं था। यही दशा प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री की परीक्षाओं के लिए निर्धारित संस्कृत के पाठ्यक्रम की थी। इन परीक्षाओं को जो विद्यार्थी उत्तीर्ण करते थे, वे लौकिक संस्कृत को अवश्य जान जाते थे। पर वैदिक संस्कृत और साहित्य से वे अपरिचित ही रहते थे। इसीलिए गुरुकुल की योजना में वैदिक संस्कृत तथा वेद-वेदांगों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया था।

(३) संस्कृत के अध्ययन का प्रारम्भ करना देशभक्ति का कार्य है। भारत की शिक्षा पद्धति सच्चे अर्थों में तभी राष्ट्रीय हो सकती है, जब यहाँ के शिक्षणालयों में संस्कृत का अध्ययन हो। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में जिस शिक्षा प्रणाली को प्रचलित किया गया है, वह भारतीयों से देशभक्ति का विनाश कर रही है और उन्हें 'मानसिक दास' बना रही है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा की एक ऐसी योजना तैयार की जाए, जो सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रीय' हो। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि विदेशी भाषा तथा नये ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण न किया जाए। हमें अंग्रेजी, आधुनिक विज्ञानों, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति आदि का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। क्या यूरोपियन लोग अन्य देशीय भाषाओं और प्राच्य साहित्य आदि को नहीं पढ़ते? पर क्या किसी यूरोपियन देश ने अपनी शिक्षा को विदेशी बनाया है? इसी तरह हमें भी विदेशी ज्ञान-विज्ञानों को पढ़ते हुए भी अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करनी चाहिये। गुरुकुल की स्थापना का यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण था। उसमें अंग्रेजी, पाश्चात्य दर्शन आदि के पठन-पाठन के लिए समुचित व्यवस्था की गई थी, पर प्रमुखता वेदशास्त्रों तथा संस्कृत साहित्य की रखी गई थी। राष्ट्रीय शिक्षा के इस स्वरूप का प्रतिपादन लाला रलाराम सदृश आर्य नेता अनेक गत वर्षों से कर रहे थे। अपने पत्र 'वेदाध्ययन प्रेरक' में इसका प्रतिपादन उन्होंने इस ढंग से किया था, कि संस्कृत ही भारत की प्राचीन साहित्यिक भाषा है। इसी द्वारा भारत का मानसिक विकास हुआ है। इसी में भारत का अध्यात्मशास्त्र, नीति, विज्ञान तथा कला का पारम्परिक ज्ञान सुरक्षित है। जब तक भारत के छात्रों के विचार का माध्यम उनके प्राचीन पूर्वजों की यह साहित्यिक वाणी नहीं हो जाती, भारत में मानसिक राष्ट्रीयता का उदय होना असम्भव है। आंग्ल भाषाप्रधान शिक्षा भारत की मानसिक दासता का कारण बनी रहेगी। विदेशी भाषा द्वारा शिक्षित होकर भारतीयों में मौलिकता का विकास हो सकना सम्भव नहीं है।

(४) ब्रह्मचर्य शिक्षा का मुख्य आधार है। ब्रह्मचर्य के बिना शिक्षा, बिना नींव या आधार के समान होती है। इसलिए एक ऐसी शिक्षण-संस्था को स्थापित करना बहुत आवश्यक है, जो नगरों से दूर स्थित हो और जिसमें विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्णरूप से पालन कर सकें।

(५) सरकार द्वारा भारत में परीक्षाओं को जो पद्धति प्रचलित की गई है, वह वास्तविक विद्वत्ता के मार्ग में बाधक है। अतः कोई संस्था, जो सरकारी यूनिवर्सिटियों की परीक्षाएँ भी दिलाना चाहे, और साथ ही यह भी चाहे कि उसके विद्यार्थी वेदशास्त्रों के भी पण्डित हों, कभी सफल नहीं हो सकती। गुरुकुल इन सरकारी परीक्षाओं से अपने को पृथक् रखेगा।

(६) शिक्षणालय में शिक्षकों और विद्यार्थियों में वही सम्बन्ध होना चाहिये, जो माता-पिता का अपनी सन्तान के साथ होता है। वर्तमान समय में भारत में कोई भी ऐसी शिक्षण-संस्था नहीं है, जिसमें शिक्षकों ने विद्यार्थियों के माता-पिता का स्थान ले लिया हो। गुरुकुल द्वारा इस कमी को पूरा किया जाएगा। गुरुकुल की स्थापना के इस महत्त्वपूर्ण हेतु को नियमावली की व्याख्या में इस प्रकार स्पष्ट किया गया था—"गुरुकुल का शिक्षक कोई अनुभवहीन युवक नहीं होगा। सामान्यतया, वह परिपक्व आयु का ऐसा विद्वान् होगा, जिसने जीवन के ऊँच-नीच देख लिये होंगे और जो शान्त होकर एक व्यवस्थित अवस्था को पहुँच गया होगा। ऐसा विद्वान् ही अपने अनुभव से बालकों व किशोरवय के छात्रों को लाभ पहुँचाने में समर्थ हो सकेगा। विद्यार्थी सारा समय ऐसे अध्यापकों की देख-रेख व निरीक्षण में रहेंगे।"

(७) शिक्षा सबके लिए निःशुल्क होनी चाहिये। गुरुकुल में किसी से शिक्षा की फीस नहीं ली जाएगी।

(८) पाश्चात्य विद्वानों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में जो खोज की है, और उसके आधार पर जो इतिहास-ग्रन्थ लिखे हैं, वे इतिहासविषयक भारतीय मन्तव्यों के अनुरूप नहीं हैं। विशेषतया, उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास का जो तिथिक्रम निर्धारित किया है, वह सर्वथा अशुद्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री एवं प्राचीन ऐतिहासिक अनुश्रुति तथा साहित्य का विवेचनापूर्वक अध्ययन कर भारत के प्राचीन इतिहास को सही रूप में प्रस्तुत किया जाए। गुरुकुल द्वारा यह महत्त्वपूर्ण कार्य भी सम्पन्न किया जाएगा।

गुरुकुल की स्थापना के उपरिलिखित आठ हेतुओं का उल्लेख कर गुरुकुल की प्रथम नियमावली में उस पाठविधि की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई थी, जिसे इस शिक्षण-संस्था में प्रयुक्त किया जाना था। इस पाठविधि में वेद का स्थान सर्वप्रधान है। अंग्रेजी भाषा तथा विविध ज्ञान-विज्ञान को भी पाठविधि में स्थान दिया गया है। पर इसका प्रयोजन यह है कि उनसे वेदों के अध्ययन तथा उनके सही अभिप्राय को समझने में सहायता मिले। वस्तुतः, अन्य सब शिक्षा वेदों की शिक्षा की तैयारी के लिए ही है। शिक्षा का काल १८ वर्ष रखा गया है, जिसमें १२ वर्ष विद्यालय विभाग में हैं और ६ वर्ष महाविद्यालय विभाग में। अंग्रेजी की पढ़ाई नौवीं कक्षा से शुरू की गई है। नियमावली की भूमिका में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का यह भी प्रयोजन बताया गया है—"अंग्रेजी का अध्ययन किसी हद तक वैदिक धर्म के प्रचारकों के लिए भी आवश्यक है, क्योंकि उन्हें भी प्रायः अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त जनता में प्रचार करना होता है।" विद्यालय विभाग में अंग्रेजी की पढ़ाई नौवीं कक्षा से शुरू की गई है, पर आर्य भाषा (हिन्दी), गणित, भूगोल आदि अन्य विषयों की शिक्षा का प्रारम्भ पहले ही हो जाता है, और संस्कृत भाषा, व्याकरण आदि वेदांग तथा वैदिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य के अनेक भागों की अच्छे स्तर की शिक्षा विद्यालय विभाग में ही दे दी जानी है। विद्यालय विभाग में बारह वर्ष अध्ययन कर विद्यार्थी इस योग्य हो जाते हैं, कि वे वेदों को समुचित रूप से पढ़ सकें। महाविद्यालय की शिक्षा छह वर्ष की है, और उसके दो विभाग हैं। वेद विभाग के लिए जो पाठविधि निर्धारित की गई थी, उसके अनुसार विद्यार्थियों को चारों वेदों का (उनके ब्राह्मण ग्रन्थों सहित) अध्ययन कर लेना था। साथ ही, उन्हें एक ऐच्छिक या पर्याय विषय भी लेना है; व्यापार, कृषि और आयुर्वेद में से कोई एक। इसका प्रयोजन यह था कि जहाँ गुरुकुल से उच्च शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा वेदांगों में पूर्णतया निष्णात हो जाये, वहाँ साथ ही वह ऐसी शिक्षा भी प्राप्त कर ले, जिससे गृहस्थ होकर अपना जीवन निर्वाह भी कर सके। पर सब विद्यार्थियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे चारों वेदों का अध्ययन कर सकें। अतः महाविद्यालय में एक अन्य विभाग की भी व्यवस्था की गई थी, जिसमें विद्यार्थियों के लिए केवल एक वेद का अध्ययन ही पर्याप्त था। तीन अन्य वेदों के स्थान पर इस विभाग में अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के एक विषय (गणित, विज्ञान, पाश्चात्य दर्शन आदि) को वैकल्पिक या पर्याय विषय के रूप में पढ़ना होता था। इन आधुनिक विषयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को रखा गया था। इसका कारण सम्भवतः यह था कि अब से लगभग एक सदी पूर्व यह कल्पना भी सुगम नहीं थी, कि इन विषयों की शिक्षा भी हिन्दी के माध्यम से दी जा सकती है, विशेषतया महाविद्यालय के स्तर पर।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रलाराम के हस्ताक्षरों से गुरुकुल की जो नियमावली प्रकाशित की गई थी, उसमें निरूपित पाठ्यक्रम में सांगोपांग वेदों तथा शास्त्रों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई की भी उसमें व्यवस्था थी, और अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य की शिक्षा को भी उसमें स्थान दिया गया था। पर इस पाठविधि की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसके अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन, व्यायाम, प्राणायाम, सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र, सदाचार और तपोमय जीवन को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना गया था।

ये ही कारण, आदर्श एवं विचार थे, जिन्हें सम्मुख रखकर गुरुकुल की स्थापना की योजना बनायी गई थी। लाला मुंशीराम जब गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने के प्रयोजन से भ्रमण कर रहे थे, तो वह इन्हीं विचारों को आर्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। 'सद्धर्म प्रचारक' और अन्य अनेक समाचारपत्रों में लालाजी की यात्रा का विवरण भी प्रकाशित होता था, और उनके व्याख्यानों के सारांश भी। इन्हें पढ़कर उन स्थानों के आर्य सज्जनों में भी गुरुकुल के लिए औत्सुक्य व उत्साह उत्पन्न होता था, जहाँ लाला मुंशीराम नहीं जा सके थे। गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने के सिलसिले में मुंशीरामजी जनवरी, १९०० में लाहौर गये थे, और वहाँ उन्होंने गुरुकुल के सम्बन्ध में कुछ व्याख्यान दिये थे। इनमें उन्होंने गुरुकुल की निम्नलिखित विशेषताओं का प्रतिपादन किया था—(१) ब्रह्मचर्य का पुनरुद्धार। (२) ब्रह्मचारियों (विद्यार्थियों) और उनके गुरुओं (शिक्षकों) में पुत्र और पिता का सम्बन्ध। (३) परीक्षा पद्धति के दोषों से गुरुकुल को मुक्त रखना। (४) पाठविधि में संस्कृत भाषा, वेद-वेदांग एवं सत्यशास्त्रों और आर्यभाषा (हिन्दी) को प्रमुख स्थान देना। (५) विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न करना। (६) अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को पाठ्यक्रम में समुचित स्थान प्रदान

करना। (७) शिक्षा के लिए कोई शुल्क न लेना। (८) प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्वेषण तथा शोध की विशेष रूप से व्यवस्था करना। ये आठों विशेषताएँ प्रायः वही हैं, जिनका निरूपण लाला रलाराम के हस्ताक्षरों से प्रकाशित गुरुकुल की नियमावली में भी किया गया था। २६ दिसम्बर, १९०० के दिन पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल के जिन नियमों को स्वीकार किया था, वे भी प्रायः ये ही थे।

निस्सन्देह, शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अत्यन्त क्रान्तिकारी योजना थी। इस द्वारा एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना का निर्णय किया गया था, जो भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात कर सकती थी। इसका निर्माण शिक्षा प्रणाली के उन मूल तत्त्वों के अनुसार किया गया था, जिन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्राचीन भारत के आचार्य-कुलों और आश्रमों को दृष्टि में रखकर प्रतिपादित किया था।

(३) गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना और प्रारम्भिक वर्ष

२६ नवम्बर, १८९८ के दिन पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया था कि गुरुकुल पद्धति के एक शिक्षणालय की स्थापना की जाए, और ८ एप्रिल, १९०० तक लाला मुंशीराम ने गुरुकुल के लिए ४०,००० के लगभग रुपये भी एकत्र कर लिये थे। इस दशा में अब गुरुकुल की स्थापना में कोई बाधा नहीं रह गई थी। प्रश्न केवल यह था कि गुरुकुल कहाँ स्थापित किया जाए, कौन-सा स्थान उसके लिए उपयुक्त है। जैसा कि इसी अध्याय में लिखा जा चुका है, अनेक आर्य सज्जन गुरुकुल के लिए भूमि प्रदान करने को उद्यत थे। पर लाला मुंशीराम की दृष्टि में ये भूमियाँ गुरुकुल के लिए उपयुक्त नहीं थीं। उनके सम्मुख यजुर्वेद का यह मन्त्र विद्यमान था—

'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धियो विप्रा अजायत।'

जहाँ नदियों का संगम हो, या पर्वत की उपत्यका हो, वहीं विद्वानों की बुद्धि का समुचित विकास होता है। प्राचीन भारत में महर्षि भारद्वाज का आश्रम गंगा-यमुना के संगम पर स्थित था, और महर्षि कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर शिवालिक की तराई में। लाला मुंशीराम भी किसी ऐसे ही स्थान की तलाश में थे। इसीलिए गुरुकुल के लिए धन एकत्र करते समय वह हरिद्वार भी गये थे, और उस क्षेत्र में उन्होंने कुछ ऐसे स्थान देखे भी थे जो गुरुकुल के लिए उपयुक्त हो सकते थे।

यह स्वाभाविक था कि गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान का अन्तिम रूप से निर्धारण करने में कुछ समय लग जाए। पर इस नये ढंग की शिक्षण-संस्था के लिए आर्य जनता में इतना उत्साह उत्पन्न हो चुका था कि उसे शीघ्र ही स्थापित कर देना आवश्यक था। गुजरांवाला में वैदिक पाठशाला पहले ही विद्यमान थी। १९ मई, १९०० को उसी के साथ गुरुकुल की भी स्थापना कर दी गई। भक्त आनन्दस्वरूप की वाटिका में पाँच कमरों का निर्माण कर उनमें विद्यार्थियों (ब्रह्मचारियों) के निवास के लिए आश्रम खोल दिया गया। लाला मुंशीराम ने अपने दोनों पुत्र, हरिश्चन्द्र और इन्द्रचन्द्र, गुरुकुल में प्रविष्ट कराए। ये गुरुकुल के पहले ब्रह्मचारी थे। इनके अतिरिक्त अन्य आर्य परिवारों के भी २० बालक गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार गुरुकुल के खुलते ही उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों की संख्या २२ हो गई। नये ढंग के शिक्षणालय के लिए यह संख्या कम नहीं है। गुरुकुल के इन ब्रह्मचारियों को माता-पिता से पृथक् आचार्य की देख-रेख

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहना था और गुरुओं को ही अपना माता-पिता समझना था। भारत के प्राचीन आचार्यकुलों के ब्रह्मचारियों के समान इन्हें सादा तपोमय जीवन बिताना था, और अपने घर-बार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना था। जो आर्य माता-पिता अपनी सन्तान को इस ढंग के शिक्षणालय में भेजने को उद्यत हो गये, निःसन्देह, उनके सम्मुख एक उच्च आदर्श विद्यमान था। गुरुकुल के आचार्य पद पर गंगादत्तजी को नियत किया गया। वह वैदिक पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे, और व्याकरण तथा दर्शनशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। पण्डित विष्णुमित्र, महाशय भक्तराम और मास्टर सुन्दरसिंह की नियुक्ति अध्यापक के रूप में की गई, और इस प्रकार गुजरांवाला में गुरुकुल का कार्य प्रारम्भ हो गया।

पर लाला मुंशीराम इस बीच गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश में तत्पर थे। शीघ्र ही उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त हो गई। हरिद्वार के सामने गंगा के पूर्वी तट पर काँगड़ी नाम का एक गाँव है, जिसके जमींदार नजीबाबाद (जिला बिजनौर) के निवासी मुंशी अमनसिंह थे। वह अत्यन्त धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ और त्याग वृत्ति के रईस थे। काँगड़ी गाँव का कुल रकबा १४०० बीघे के लगभग था, जिसका अच्छा बड़ा भाग सघन जंगल से आच्छादित था। उसके उत्तर में शिवालिक पर्वतमाला थी, और पश्चिम में गंगा की नील धारा। गंगा की एक धारा उसके दक्षिण में भी बहती थी। शिवालिक की उपत्यका में गंगा के तट पर स्थित यह स्थान गुरुकुल के लिए सर्वथा उपयुक्त था। हरिद्वार हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। लाखों श्रद्धालु यात्री वहाँ प्रतिवर्ष गंगा स्नान के लिए आते हैं। उसके समीपवर्ती क्षेत्र में गुरुकुल खोलने का यह लाभ भी था, कि हरिद्वार के यात्री वेदशास्त्रों और संस्कृत भाषा की शिक्षा को सर्वाधिक महत्त्व देने वाली इस संस्था के प्रति भी आकृष्ट हो सकते थे, जिससे इसकी लोकप्रियता में सहायता मिलती। साथ ही, गंगा के पूर्वी तट पर सघन जंगल में स्थित होने के कारण गुरुकुल हरिद्वार के दूषित वातावरण से भी बचा रह सकता था। लाला मुंशीराम की सम्मति में काँगड़ी गाँव का रमणीक जंगल गुरुकुल के लिए पूर्णतया उपयुक्त था, और वहाँ उस ढंग के आरण्यक-आश्रम की स्थापना कर सकना सर्वथा सम्भव था, जैसे कि प्राचीन भारत में विद्यमान थे।

मुंशी अमनसिंह ने अपनी जमींदारी का काँगड़ी गाँव (उसकी १४०० बीघा के लगभग भूमि के साथ) गुरुकुल के लिए अर्पित कर देने का संकल्प कर लिया था। अपने शुभ संकल्प की सूचना उन्होंने नजीबाबाद के आर्यसमाज की मार्फत पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के पास भेज दी। २२ अक्तूबर, १९०१ को सभा ने मुंशी अमनसिंह के दान को सधन्यवाद स्वीकार कर लिया, और यह निश्चय किया कि इस भूमि में मकान आदि बनाकर आगामी होली की छुट्टियों (२१-२४ मार्च, १९०२) में वहाँ गुरुकुल का उद्घाटनोत्सव किया जाए, गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान अब प्राप्त हो चुका था। काँगड़ी गाँव के दक्षिण में गंगा की धारा तथा नाले के मध्यवर्ती जंगल में गुरुकुल के लिए भवन बनाने का निश्चय किया गया, और लाला मुंशीराम इस सब की तैयारी के लिए कनखल (हरिद्वार का एक उपनगर) पहुँच गये। जंगल का जो खण्ड गुरुकुल भूमि के रूप में चुना गया था, वह कँटीली झाड़ियों और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से परिपूर्ण था। बहुत-से हिंसक पशुओं का भी वहाँ निवास था। जंगल इतना घना था कि दिन के समय में भी वहाँ आना-जाना

सुगम नहीं था। सड़क का तो प्रश्न ही क्या, उसमें कोई पगडण्डी तक नहीं थी। ऐसे विकट दुर्गम जंगल को साफ कराके वहाँ कुछ झोपड़ियाँ बनवा ली गईं, और यह निश्चय किया गया कि मार्च, १९०२ से पहले ही ब्रह्मचारियों तथा अध्यापकों को गुजरांवाला से इस स्थान पर ले आया जाए, ताकि होली के दिनों में गुरुकुल का उद्घाटनोत्सव वहाँ समारोहपूर्वक मनाया जा सके। अनुमान किया गया कि इस अवसर पर कम-से-कम एक हजार दर्शक या यात्री गुरुकुल अवश्य आयेंगे। उनके निवास आदि की व्यवस्था भी उस आरण्यक-आश्रम में की जानी थी। उत्सव के खर्च के लिए दो हजार रुपयों की अपील की गई। जनता में गुरुकुल के लिए अनुपम उत्साह था, अत: खर्च की समस्या विकट नहीं थी। पर एक अन्य विघ्न उपस्थित हो गया। हरिद्वार में प्लेग फैल गया, जिसके कारण उसके समीपवर्ती क्षेत्र में किसी उत्सव का आयोजन कठिन प्रतीत होने लगा। इस दशा में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने १९ जनवरी, १९०२ के अधिवेशन में निश्चय किया कि गुरुकुल के उद्घाटन का उत्सव सार्वजनिक रूप से न करके निजी रूप में किया जाए। साथ ही, इसी अधिवेशन में यह भी निश्चय कर लिया गया, कि गुरुकुल को यथासम्भव शीघ्र ही गुजरांवाला से काँगड़ी ले जाया जाए।

गुजरांवाला से रेल के रिजर्व डिब्बे में सब ब्रह्मचारी मुंशीरामजी के साथ २ मार्च, १९०२ (फाल्गुन वदी १०, संवत् १९५८) को मध्याह्न के बाद हरिद्वार के स्टेशन पहुँचे। भण्डारी शालिग्रामजी, लाला मुंशीराम के परम सहायक व अनुरक्त साथी थे। वह जालन्धर से इस मण्डली के साथ हो गये थे। उस समय तक हरिद्वार में प्लेग का प्रकोप कम हो चुका था। गुरुकुल की यह मण्डली हरिद्वार से अपने नये स्थान तक किस प्रकार पहुँची, इसका पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपनी पुस्तक 'मेरे पिता' में बड़ा सजीव वर्णन किया है। उसे यहाँ उद्धृत करना उपयोगी होगा। यह लिखने की आवश्यकता नहीं, कि इन्द्र उन ब्रह्मचारियों में एक थे, जो गुजरांवाला से हरिद्वार आये थे। "सायंकाल के चार बजे के लगभग हम कोई एक दर्जन बच्चे पंजाब से आने वाली गाड़ी से हरिद्वार के स्टेशन पर उतरे। हम गुजरांवाला से पिताजी (लाला मुंशीरामजी) के साथ आये थे।...स्टेशन पर आचार्य पं० गंगादत्त कई पंडित सज्जनों के साथ स्वागत के लिए आये हुए थे।...स्टेशन से निकल कर एक जलूस बनाया गया। सबसे आगे पिताजी और पं० गंगादत्तजी थे। उनके पीछे महर्षि दयानन्द का बड़ा चित्र लिये एक सज्जन थे, जिनका नाम तोताराम था। उनके पीछे दो-दो की पंक्ति में हम लोग थे। स्टेशन से निकलते ही हम लोगों ने प्रार्थना के आठ मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ आरम्भ कर दिया और निरन्तर करते रहे, जब तक जलूस कनखल से पार न हो गया। हम लोग स्टेशन से चलकर मायापुर के पुल से कनखल के बाजार में पहुँचे, और सारे बाजार का चक्कर काटते हुए दक्ष के मन्दिर पर जा पहुँचे। इस सारे रास्ते में सब लोग निरन्तर वेदमन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ करते रहे। हरिद्वार और कनखल तब मुख्य रूप से यात्रियों और पण्डों के शहर थे, वे सनातन धर्म के गढ़ समझे जाते थे। अब तो धीरे-धीरे उनमें कुछ नवीनता का संचार हो गया है, पर उस समय तो वे सनातनता के स्तम्भ थे। ओ३म् के झण्डे और वेदमन्त्रों के खुले पाठ को वे बहुत ही आश्चर्य भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे हम लोगों को किसी दूसरी दुनिया के प्राणी समझकर विनोद अनुभव कर रहे थे। दक्ष का मन्दिर पार कर हमने वेदपाठियों का रूप छोड़कर यात्रियों का रूप धारण कर लिया। हम गुजरांवाला में ही सुन चुके थे कि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिद्वार के समीप गंगा के उस पार काँगड़ी नामक ग्राम गुरुकुल के लिए दान में मिला है। हम लोग वहीं ले जाये जा रहे थे। बच्चों के लिए सब कुछ नया था। दक्ष के मन्दिर से आगे चलते ही रास्ता गंगा की रेती में उतर गया, जहाँ गोल पत्थरों और बालू के दो मील चौड़े नदी के स्तर पर दो-तीन पुल बने हुए थे। सूर्य अस्तांचल पर पहुँच चुका था और अन्धकार के साथ सरदी आकाश से उतर रही थी। हम बालक नई दुनिया देखने की उत्सुकता से प्रेरित होकर नंगे पाँव उस पत्थर और बालू के मार्ग पर तेज गति से चले जा रहे थे।"

जंगल को साफ कर जहाँ गुरुकुल के लिए झोंपड़ियाँ बनायी गई थीं, वहाँ तक पहुँचने के लिए कोई सड़क या मार्ग नहीं था। पगडण्डी का रास्ता भूल जाने के कारण वहाँ जाने में बहुत कठिनाई हुई। गुरुकुल भूमि पहुँचने पर वहाँ का जो दृश्य दिखाई दिया, उसका वर्णन इन्द्रजी ने इस प्रकार किया है—"घने जंगल के बीचों-बीच कोई दो बीघे का मैदान साफ किया गया था। उसमें एक ओर फूँस के छप्परों की एक लम्बी पंक्ति थी, जो छात्रों के रहने का आश्रम-स्थान था। उसके साथ समकोण बनाती हुई दूसरी छप्परों की पंक्ति में भोजन भण्डार था। उनके बीच के कौने में एक स्विस कॉटेज लगा हुआ था, जो प्रधानजी का दफ्तर भी था और रहने का स्थान भी। इन छप्परों से कुछ दूर छप्पर डालकर गौशाला बनायी गई थी। यह फूँस के छप्पर का डेरा उस खिली हुई चाँदनी में अनुपम शोभा दिखा रहा था। हमें उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि हम सचमुच स्वर्ग के किसी टुकड़े पर पहुँच गये हैं। यह गुरुकुल का प्रारम्भिक रूप था।"

२ मार्च, १९०२ को काँगड़ी में गुरुकुल की स्थापना हो गई थी। हरिद्वार में प्लेग के प्रकोप के कारण सार्वजनिक रूप से गुरुकुल के उद्घाटन उत्सव का विचार छोड़ दिया गया था। पर होली के दिनों में निजी रूप से यह उत्सव मनाया गया। यद्यपि समाचार-पत्रों में सार्वजनिक रूप से उत्सव न किये जाने की सूचना दे दी गई थी, और किसी को उसके लिए निमन्त्रण-पत्र भी नहीं भेजे गये थे, फिर भी आर्य जनता में गुरुकुल के लिए इतना उत्साह था, कि होली की छुट्टियों (२१-२४ मार्च, १९०२) में पाँच सौ के लगभग स्त्री-पुरुष गुरुकुल पहुँच गये। यह गुरुकुल का प्रथम उत्सव था। वस्तुतः, यह आर्यसमाज के उन महा मेलों का सूत्रपात था, जो आगे चलकर गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सवों के रूप में प्रति वर्ष होने लगे थे, और जिनमें हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष गंगा के तट पर एकत्र होकर धर्म लाभ किया करते थे। आर्यसमाज के ये मेले हरिद्वार के अन्य मेलों से बहुत भिन्न होते थे। वेदप्रचार के ये महत्त्वपूर्ण व सशक्त साधन थे। इस अवसर पर जो अनेक सम्मेलन, व्याख्यान, उपदेश व भजन होते थे, उनसे लोग धर्म और ज्ञान की पिपासा को शान्त करते थे, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार स्थापित एक शिक्षण-संस्था को अपनी आँखों से देखकर अपनी सन्तान को वहीं शिक्षित कराने की प्रेरणा प्राप्त करते थे। उत्सव के पहले तीन दिन प्रातः अग्निहोत्र हुआ, और दोपहर बाद भजन, व्याख्यान तथा उपदेश। चौथे दिन (फाल्गुन पूर्णमासी) ४५ ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार हुआ, जो दूर-दूर से आये हुए आर्य स्त्री-पुरुषों के लिए अत्यधिक आकर्षण की बात थी। वेदारम्भ संस्कार की परम्परा भारत में चिरकाल से लुप्त थी। उसका फिर से प्रारम्भ कर गुरुकुल ने शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण पग उठाया था। गुजरांवाला से जो ब्रह्मचारी काँगड़ी आये थे, उनकी संख्या १५ से अधिक नहीं थी। पर एक महीने से भी

कम समय में यह संख्या बढ़कर ४५ हो गई थी। गुरुकुल की शिक्षा के प्रति आर्य जनता में कितना अधिक आकर्षण था, यह इससे भली-भाँति स्पष्ट है।

प्रथम वार्षिकोत्सव के अवसर पर गुरुकुल के लिए जो धन प्राप्त हुआ, उसकी मात्रा ३,००० रुपये के लगभग थी। इसमें से ६०० रुपये वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् भिक्षा में प्राप्त हुआ था, २,००० रुपये स्वर्गीय पण्डित लेखराम की पत्नी ने दान दिये थे, और ४०० रुपये के लगभग अन्य स्त्री-पुरुषों ने प्रदान किये थे। भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार आचार्यकुल (गुरुकुल) के ब्रह्मचारियों को भैक्षचर्या द्वारा निर्वाह करना चाहिये। सम्भवतः, आधुनिक परिस्थितियों में यह सम्भव व क्रियात्मक नहीं था कि गुरुकुल काँगड़ी के ब्रह्मचारी भी भिक्षा द्वारा निर्वाह करें। ब्रह्मचर्य आश्रम में भैक्षचर्या द्वारा निर्वाह करने वाले बालक को यह बोध होता है कि जिस जनता से वह अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं को प्राप्त करता है, उसके प्रति उसके अनेकविध कर्तव्य भी होते हैं, और शिक्षा को पूर्ण करने के पश्चात् उसे इन कर्तव्यों के पालन में तत्पर रहना चाहिये। यही बोध कराने के लिए गुरुकुल काँगड़ी में वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् भैक्षचर्या की परिपाटी प्रारम्भ की गई थी। ब्रह्मचारी झोली फैलाकर उपस्थित नर-नारियों के सामने जाते थे, और जो कुछ भिक्षा में प्राप्त हो जाए, उसे आचार्य की सेवा में प्रस्तुत कर देते थे।

उत्सव में जिन महानुभावों के व्याख्यान हुए, उनमें श्री रामभजदत्त चौधरी (जो उस समय पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे), स्वामी दर्शनानन्द और श्री वजीरचन्द विद्यार्थी के नाम उल्लेखनीय हैं। ठाकुर प्रवीणसिंह उन दिनों आर्यसमाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक थे। अपने भजनों से जनता को लाभ पहुँचाने के लिए वह भी उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

मार्च, १९०२ में जब काँगड़ी गाँव के समीप जंगल में गुरुकुल का उद्घाटन उत्सव हुआ, तो वहाँ केवल फूँस के छप्पर थे। पर शीघ्र ही एक वर्ष के अन्दर-अन्दर कच्ची ईंटों की दीवारों और टीन की छतों वाले शेड बनने प्रारम्भ हो गए। चार साल के स्वल्प काल में २५,००० रुपयों की लागत से ब्रह्मचारियों के पढ़ने के लिए कमरों और निवास के लिए पृथक् आश्रम का निर्माण कर लिया गया। इनके अतिरिक्त भोजन भण्डार, चिकित्सालय, यज्ञशाला, धर्मशाला और अध्यापकों के रहने के लिए भी मकान बना लिये गये थे। दो कुएँ भी बन गये थे। शुरू में स्नान, भोजन आदि सब कामों के लिए गंगा का जल ही प्रयोग में लाया जाता था। गुरुकुल जिस ढंग से लोकप्रिय होता जा रहा था, और बच्चों को शिक्षा के लिए उसमें प्रविष्ट कराने की आकांक्षा जिस प्रकार आर्य परिवारों में बढ़ती जा रही थी, उसके कारण टीन की छतों वाली कच्ची इमारतों से काम नहीं चल सकता था। गुरुकुल के संचालकों का विचार था, कि ६०० के लगभग ब्रह्मचारियों के निवास और शिक्षा के लिए उपयुक्त भवनों का निर्माण किया जाना आवश्यक है। इसीलिए पटियाला रियासत के चीफ इंजीनियर श्री गंगाराम से इमारतों का नक्शा तैयार कराया गया, और उनके निर्माण के लिए जनता से धन की अपील की गई। सन् १९०८ में गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग की पक्की इमारत का बनना प्रारम्भ हो गया था। पर ब्रह्मचारियों के निवास के लिए आश्रम, विद्यालय विभाग की पढ़ाई के कमरे और अन्य अनेक मकान चिरकाल तक कच्चे ही रहे। कच्ची ईंटों से बनी इन इमारतों पर या तो टीनों की छत होती थी, और या फूँस की।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ काल में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दिनचर्या क्या थी, उनका रहन-सहन और खान-पान कैसा था और उनकी पढ़ाई किस ढंग से होती थी, इस सम्वन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं के उस समय के स्वरूप में गुरुकुल की विशेषता निहित थी। सूर्योदय से पूर्व ब्राह्म-मुहूर्त काल में प्रात: चार या साढ़े चार वजे (ऋतु के अनुसार) घण्टी वजायी जाती थी, जिस पर ब्रह्मचारी या तो स्वयं उठ जाते थे या अधिष्ठाताओं द्वारा उन्हें उठा दिया जाता था। सो कर उठ वे अपने विस्तर स्वयं लपेटते, फिर वाहर जाकर मुँह-हाथ धोते और प्रार्थना के लिए एकत्र हो जाते। प्रार्थना 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव' आदि आठ प्रार्थना-मन्त्रों से की जाती। उसके वाद ब्रह्मचारी शौचकर्म से निवृत्त होने के लिए जंगल में चले जाते। टट्टियाँ (शौचालय) उस समय नहीं बनी थीं। आश्रम से कुछ गज दूर ही जंगल शुरू हो जाता था, जिसमें सरकण्डे के झुण्डों तथा कँटीली झाड़ियों की प्रधानता थी। जंगल में जाने-आने का कोई रास्ता नहीं था। पगडण्डियाँ अवश्य वन गई थीं, जिनसे जाकर ब्रह्मचारी शौच के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ लेते थे। जल से भरा लोटा उनके साथ होता था। शौच से निवृत्त हो वे गंगा के तट पर चले जाते। वहाँ वे व्यायाम करते और फिर गंगा में स्नान। व्यायाम पर उस समय बहुत वल दिया जाता था। ब्रह्मचारी दण्ड वैठक करते और कवड्डी खेलते। कभी-कभी कुश्ती भी लड़ी जातीं। कुश्ती के लिए अखाड़े गंगा-तट की रेती में ही वना लिये गये थे। सूर्योदय तक ब्रह्मचारी शौच, व्यायाम, दन्तधावन और स्नान से निवट जाते थे, और फिर यज्ञशाला में एकत्र हो सन्ध्या-हवन किया करते थे। इसके वाद यज्ञशाला में ही उपदेश का कार्यक्रम होता। उपदेश प्राय: मुंशीरामजी दिया करते। इस समय लाला मुंशीराम को या तो महात्माजी कहा जाया करता था, और या प्रधानजी। गुरुकुल के वह प्रधान थे, और एक आदर्श को सम्मुख रखकर सर्वस्व त्याग कर देने के कारण वह वस्तुत: 'महात्मा' विशेषण के अधिकारी हो गये थे। इस इतिहास में अव हम उनके साथ महात्मा शब्द का ही प्रयोग करेंगे। सन्ध्या, हवन और उपदेश के वाद प्रातराश होता, जिसमें आधा सेर दूध के साथ कुछ नाश्ता भी दिया जाता था। प्रातराश कर ब्रह्मचारी पढ़ने के लिए वैठ जाते थे। उस समय पढ़ाई के लिए कोई समय विभाग निर्धारित नहीं था। प्रात:काल प्राय: संस्कृत व्याकरण की पढ़ाई होती थी, और ब्रह्मचारी अष्टाध्यायी को कण्ठस्थ करने के साथ-साथ उसकी वृत्ति भी पढ़ा करते थे। दोपहर हो जाने पर भोजन की घण्टी वजती थी। भोजनशाला में आसन विछे होते थे, और ब्रह्मचारी जल से भरे अपने लोटे लेकर आसनों पर वैठ जाते थे। भोजन शुरू करने से पहले सब ब्रह्मचारी 'सहनावतु सहनौ भुनक्तु' मन्त्र वोला करते थे। भोजन सात्त्विक व पौष्टिक होता था। वनस्पति घी तो उस समय होता ही नहीं था। भोजन में केवल शुद्ध घी ही प्रयुक्त किया जाता था। मिर्च-मसालों के प्रयोग का तो प्रश्न ही नहीं था। प्याज, लहसुन सर्वथा निषिद्ध थे। भोजन कर ब्रह्मचारी कुछ समय विश्राम करते थे, और फिर पढ़ाई शुरू हो जाती थी। दोपहर के वाद संस्कृत साहित्य, इतिहास और वस्तुपाठ की पढ़ाई होती थी। शिक्षा में संस्कृत साहित्य और व्याकरण को प्रधान स्थान प्राप्त था। सायंकाल होने पर ब्रह्मचारी फिर शौच से निवृत्त होने के लिए जंगल जाते, व्यायाम करते और ग्रीष्म ऋतु में दुवारा स्नान भी करते। इसके वाद वे फिर यज्ञशाला में एकत्र होकर सन्ध्या-हवन करते। हवन के पश्चात् सायंकाल का भोजन होता, जिससे निवट कर ब्रह्मचारी कुछ समय घूमने-

फिरने में व्यतीत करते, और फिर पढ़ने के लिए बैठ जाते। उस समय गुरुकुल में न बिजली की बत्तियाँ थीं, और न मिट्टी के तेल की लालटेनें। रोशनी के लिए दीपक प्रयोग में लाये जाते थे, जिनमें सरसों का तेल जला करता था। रात के समय जो पढ़ाई होती थी, उसमें प्रायः दिन के समय पढ़े हुए पाठ को दोहराया जाता था, और अध्यापकों द्वारा संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ कराये जाते थे। रात नौ बजे के लगभग दीपक बुझा दिये जाते थे, और प्रार्थना मन्त्रों का पाठ कर ब्रह्मचारी बिस्तरों पर लेट जाते थे। प्रारम्भ काल में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की यही दिनचर्या थी, जो कतिपय साधारण परिवर्तनों के साथ आधी सदी के लगभग समय तक कायम रही।

ब्रह्मचारियों के लिए उस समय वेश नियत था। वे पीली धोती पहना करते थे, और धोती पहनने का भी उनका एक विशेष ढंग था। धोती के एक सिरे को कमर में बाँधकर दूसरे सिरे को गले में बाँध दिया जाता था। कुरता सफेद होता था, और धोती के नीचे लंगोट पहनना अनिवार्य था। सर्दियों में ऊनी कुरता और कश्मीरी पट्टी की बण्डी पहनी जाती थी। पैरों में जूता या चप्पल पहनना निषिद्ध था। कपड़े के जूते भी नहीं पहने जा सकते थे। लकड़ी की खड़ाऊँ ही ब्रह्मचारियों को पहनने के लिए दी जाती थीं। सिर भी नंगे रखने होते थे, पर शीत की अतिशयता के दिनों में कनटोप अवश्य धारण किये जा सकते थे। धूप व वर्षा से बचाव के लिए छतरी का प्रयोग भी निषिद्ध था। ब्रह्मचर्य आश्रम में बालकों का जीवन तपोमय होना चाहिये, इसी आदर्श को सम्मुख रख कर ये व्यवस्थाएँ की गई थीं। इसीलिए ब्रह्मचारियों को सोने के लिए लकड़ी के तख्त दिये जाते थे, और वे नीवार के पलंग या बान (रस्सी) की चारपाई का प्रयोग नहीं कर सकते थे।

ब्रह्मचारियों का प्रायः सारा समय विद्याध्ययन एवं धर्मचर्चा में व्यतीत होता था। उन्हें आश्रम से बाहर हरिद्वार, कनखल आदि कहीं भी जाने-आने की अनुमति नहीं थी। छुट्टियों में वे घर भी नहीं जा सकते थे। पर गुरुकुल का जीवन इस ढंग का था कि ब्रह्मचारियों का वहाँ मन लगता था और उन्हें अपने माता-पिता तथा परिवार की याद नहीं आती थी। छुट्टी के दिन वे शिवालिक की उपत्यका में चले जाते, और वहाँ के जंगल में प्रभूत मात्रा में विद्यमान प्याल, बेर, जामुन आदि के फलों को एकत्र किया करते। गंगा में तैरना जहाँ उनके स्वास्थ्य के लिए हितकर था, वहाँ साथ ही उससे उनका मनोरंजन भी होता था। बहते हुए सलीपरों को एकत्र कर वे उनसे बेड़े बनाते और उन पर बैठकर गंगा में दूर तक चले जाया करते।

प्रारम्भ के वर्षों में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक नहीं थी। सन् १९०६ तक वहाँ श्रेणियाँ भी केवल सात थीं, और अध्यापक भी बहुत कम थे। ब्रह्मचारी और अध्यापक गुरुकुल में इस प्रकार एक साथ रहते थे, मानो सब एक परिवार के सदस्य हों। महात्मा मुंशीराम को सब कुलवासी अपना प्रधान व पिता मानते थे, और पण्डित गंगादत्त आदि अध्यापकों का सब कोई गुरु के रूप में आदर करते थे। महात्माजी ने गुरुकुल के लिए अपना तन, मन, धन सब न्यौछावर कर दिया था। वह एक सफल वकील थे, और वकालत के पेशे से उन्हें अच्छी आमदनी थी। पर गुरुकुल की स्थापना की धुन में उन्होंने वकालत को लात मार दी थी। काँगड़ी में गुरुकुल के खुलते ही सन् १९०२ में उन्होंने अपना पुस्तकालय गुरुकुल को भेंट कर दिया था। दो वर्ष बाद सन् १९०४ में उन्होंने अपना सद्धर्म प्रचारक प्रेस गुरुकुल को दान कर दिया था। प्रेस की कीमत आठ हजार रुपये से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम नहीं थी, और उस समय यह राशि बहुत अधिक थी। जालन्धर में उनकी अपनी कोठी थी, जिसके निर्माण में तीस हजार से भी अधिक रुपया लगा था। उसे भी उन्होंने सन् १९११ में गुरुकुल को प्रदान कर दिया, और पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने उसे बीस हजार रुपयों में बेच कर वह राशि गुरुकुल के स्थायी कोष में जमा कर दी। महात्मा मुंशीराम का यह सच्चे अर्थों में सर्वमेध यज्ञ था। उनके पास जो कुछ भी भौतिक सम्पत्ति थी, उस सबको उन्होंने गुरुकुल के लिए अर्पित कर दिया था। इस यज्ञ का महत्त्व इस कारण और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि उस समय महात्माजी पर ३६०० रुपये कर्ज था। जालन्धर की अपनी कोठी को दान करते हुए उन्होंने प्रतिनिधि सभा के प्रधान को लिखा था, "मुझे इस समय ३६०० रुपये ऋण मद्दे देना है, यह मैं अपने लेख आदि की आय से चुका दूँगा। इस मकान से उस ऋण का कोई सम्बन्ध नहीं है।" गुरुकुल में अपना सब समय लगाते हुए भी महात्माजी कोई वेतन व पारिश्रमिक नहीं लेते थे। उन्होंने सर्वात्मना अपने को गुरुकुल के लिए अर्पित किया हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह युग ही त्याग और बलिदान का था। पण्डित गंगादत्त आदि जो अध्यापक तब गुरुकुल में कार्य करते थे, और भण्डारी शालिग्राम सदृश जो अन्य कर्मचारी वहाँ कार्यरत थे, सब केवल पूजावेतन मात्र स्वीकार कर इस संस्था की सेवा कर रहे थे। मुंशी अमनसिंह ने गुरुकुल को अपनी जमींदारी का काँगड़ी गाँव ही प्रदान नहीं किया, अपितु कुछ वर्ष पश्चात् अपनी सब जमा-पूँजी भी उसके अर्पित कर दी। इस पूँजी की मात्रा ग्यारह हजार रुपये से भी अधिक थी, और उस समय के ग्यारह हजार रुपये आजकल के तीन-चार लाख रुपयों से कम नहीं थे। त्याग, सर्वमेध यज्ञ और बलिदान की यही भावना थी, जो प्रारम्भ के वर्षों में गुरुकुल की सबसे बड़ी शक्ति थी, और इसी के कारण न केवल आर्यसमाजी नर-नारी ही, अपितु देश-विदेश के प्रबुद्ध व मननशील लोग भी इस संस्था के प्रति आकृष्ट होने लगे थे।

गुरुकुल के प्रति जनता में जो अनुपम आकर्षण था, उसी के कारण वहाँ दर्शकों और यात्रियों का ताँता लगा रहता था। गुरुकुल जाने-आने का मार्ग अत्यन्त विकट था। हरिद्वार के रेलवे स्टेशन से उसकी दूरी पाँच मील के लगभग थी। कनखल तक तो पक्की सड़क थी, पर कनखल से गुरुकुल तक का साढ़े तीन मील के लगभग का रास्ता कच्चा था। यथार्थ में उसे रास्ता कहा ही नहीं जा सकता। हरिद्वार के सामने गंगा की कई धाराएँ हो जाती हैं। उन समय इस पर कोई पक्का पुल नहीं था। शीत ऋतु में जब गंगा में पानी कम हो जाता था, इन धाराओं पर किश्तियों और पत्थरों से भरे खटोलों के पुल बना दिये जाते थे, जो साल में चार-पाँच महीनों से अधिक कायम नहीं रह पाते थे। गंगा के चौड़े पाट का सारा रास्ता रेत और पत्थरों पर से होकर जाता था, जिसे या तो पैदल पार किया जा सकता था और या बैलगाड़ी द्वारा। घोड़ा-ताँगे के लिए उस पर जा सकना सम्भव नहीं था। गंगा में पानी बढ़ जाने पर जब किश्तियों के पुल टूट जाते थे, तब गुरुकुल जाने के लिए तमेड़ें ही एकमात्र साधन रह जाती थीं। ये तमेड़ें कनस्तरों को जोड़कर बनायी जाती थीं, और इन पर तीन व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे। जाने-आने के साधन इतने विकट होने पर भी शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो, जबकि यात्री गुरुकुल न पहुँचते हों और वहाँ के शान्त व सात्त्विक वातावरण में आकर यह अनुभव न करते हों कि वे एक आरण्यक-आश्रम व तपोवन में आ गये हैं।

गुरुकुल की निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता का ही यह परिणाम था कि उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हो रही थी। काँगड़ी में गुरुकुल का प्रारम्भ १५ ब्रह्मचारियों से हुआ था, पर पाँचवें साल के अन्त में उनकी संख्या बढ़कर १८७ हो गई थी। पहले लोगों का विचार था कि कौन ऐसे माता-पिता होंगे, जो बच्चों को अपने से पृथक् कर चौदह वर्ष के लिए गुरुकुल भेज देंगे। पर यह विचार गलत साबित हुआ। सैकड़ों आवेदन-पत्र प्रति वर्ष बालकों के प्रवेश के लिए गुरुकुल आने लगे। सबको प्रविष्ट कर सकना सम्भव नहीं था, क्योंकि ब्रह्मचारियों के निवास के लिए आश्रम में स्थान अपर्याप्त था और रुपये की भी कमी थी। प्रवेश चुनाव द्वारा होता था, और बहुत-से माता-पिताओं को निराश होकर वापस लौट जाना पड़ता था। सन् १९१० के फरवरी मास में १३० के लगभग बालक प्रवेश के लिए गुरुकुल आये थे, जिनमें से केवल २५ को ही प्रविष्ट किया जा सका था। यही दशा अन्य वर्षों में भी होती थी। न केवल पंजाब, अपितु उत्तरप्रदेश, बिहार, गुजरात, सिन्ध आदि प्रान्तों से सैकड़ों माता-पिता प्रतिवर्ष इस प्रयोजन से गुरुकुल आते थे, ताकि अपने बालकों को वहाँ प्रविष्ट करा सकें।

(४) गुरुकुल की लोकप्रियता

जनता में गुरुकुज के लिए कितना प्रेम और उत्साह था, इसे इस संस्था के वार्षिकोत्सवों के विवरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। काँगड़ी में गुरुकुल सन् १९०२ में स्थापित हुआ था, उस अवसर पर गुरुकुल का उद्घाटनोत्सव मनाया गया था, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। गुरुकुल का प्रथम वार्षिकोत्सव सन् १९०३ में १० मार्च से १३ मार्च तक सम्पन्न हुआ था। उसमें चार हजार के लगभग नर-नारी भारत के विविध प्रदेशों व नगरों से सम्मिलित हुए थे। लाहौर से जो मण्डली आयी थी, उसका नेतृत्व पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामभजदत्त कर रहे थे, और उनके साथ आये हुए सज्जनों में श्री जीतनदास, श्री केदारनाथ, श्री काशीराम वैद्य और श्री तोलाराम प्रमुख थे। रावलपिण्डी से आये सज्जनों में प्रधान श्री कृपाराम साहनी थे, और लुधियाना के सज्जनों में लाला लम्भूराम और श्री उमरावसिंह। अमृतसर, मुलतान, डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माईल खाँ, जालन्धर, वजीराबाद और सक्खर आदि कितने ही स्थानों से आर्य नर-नारी गुरुकुल के प्रेम से आकृष्ट होकर काँगड़ी के आरण्यक-आश्रम में पधारे थे। केवल पंजाब से ही नहीं, अपितु बम्बई और अकोला सदृश दूरवर्ती स्थानों से भी बहुत-से लोग इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। १० मार्च को अग्निहोत्र द्वारा उत्सव प्रारम्भ हुआ, जिसमें गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी उपस्थित थे। क्योंकि हवन में ब्रह्मचारी भी थे, अतः स्त्रियों को उसमें सम्मिलित होने की अनुमति नहीं दी गई थी। दोपहर बाद भजनों के पश्चात् पण्डित विष्णुमित्र और पण्डित आत्माराम के व्याख्यान हुए। दूसरे दिन प्रातः यज्ञ के पश्चात् नये ब्रह्मचारियों का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। उसके बाद उत्सव में पधारे हुए लोगों को यह अवसर दिया गया कि गुरुकुल विद्यालय में जाकर अपनी आँखों से यह देख सकें कि यहाँ ब्रह्मचारियों को किस ढंग से पढ़ाया जाता है। उस समय आचार्य गंगादत्त और पण्डित विष्णुमित्र संस्कृत व्याकरण पढ़ा रहे थे तथा महात्मा मुंशीराम और पण्डित भगतराम अन्य विषय। दोपहर बाद उत्सव के पण्डाल में पण्डित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीमसेन शर्मा और पण्डित आत्माराम के व्याख्यान हुए। रात ८ बजे एक कॉन्फरेन्स इस विषय पर विचार करने के लिए आयोजित की गई कि गुरुकुल के लिए धन किस प्रकार एकत्र किया जाए। यह सुझाव प्रस्तुत किया गया कि प्रत्येक आर्य एक रुपया वार्षिक चन्दा गुरुकुल को दिया करे, और आर्य गृहस्थों के घर में ऐसे घट रख दिये जायें, जिनमें आर्य नारियाँ प्रतिदिन एक मुट्ठी आटा डाल दिया करें। इस प्रकार जो आटा भिक्षा में गुरुकुल के लिए प्राप्त हो, उसे या उसके मूल्य के रुपये को गुरुकुल भेज दिया जाये। यह भी सुझाव दिया गया कि गुरुकुल की ओर से पत्र-पत्रिकाओं तथा पेम्पलेटों का प्रकाशन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रचार के लिए किया जाये। उत्सव के तीसरे दिन 'आर्य मुसाफिर' के सम्पादक श्री वजीरचन्द, साधु सत्यानन्द, स्वामी महानन्द और साधु योगेन्द्रपाल के व्याख्यान हुए। इस दिन के उत्सव में सम्मिलित लोगों में श्री अलखधारी का नाम उल्लेखनीय है। यह जन्म से मुसलमान थे, और इनका पहला नाम मुहम्मद उमर था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने देहरादून में इनकी शुद्धि करायी थी, और आर्यसमाज में प्रविष्ट हो जाने पर इनका नाम अलखधारी रख दिया गया था। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामभजदत्त ने इनका परिचय उपस्थित आर्य जनता से कराया, और इनके हाथों से मिठाई बँटवायी गई, जिसे सब आर्य नर-नारियों ने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। चौथे दिन १३ मार्च को १७ ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार हुआ। यह उत्सव का प्रधान आकर्षण था। सदियों बाद वेदारम्भ संस्कार की परम्परा का पुनः प्रारम्भ हुआ था। आर्य लोग इसका अवलोकन करने के लिए वहुत उत्सुक थे। पण्डाल में कहीं तिल रखने को जगह नहीं रही थी। पीली धोती के नियत वेश में दण्ड धारण कर जब ब्रह्मचारी आचार्य गंगादत्त से दीक्षा लेने के लिए यज्ञकुण्ड के सम्मुख उपस्थित हुए, तो जनता के हर्ष और उत्साह की सीमा नहीं रही। आचार्यजी ने उन्हें गायत्री मन्त्र दिया और महात्मा मुंशीराम ने उपदेश। दोपहर बाद गुरुकुल की प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पढ़कर सुनायी गई, और दान के लिए अपील की गई। एक घण्टे में १४,००० रुपये की धनराशि प्राप्त हो गई; जिसमें ५,४०० रुपये नकद थे, ८०० रुपये के आभूषण थे और ८,००० रुपये की भू-सम्पत्ति थी। जनता में गुरुकुल के प्रति प्रेम का यह स्पष्ट प्रमाण था। दोपहर वाद पण्डित उमरावसिंह ने महर्षि दयानन्द पर व्याख्यान दिया, जिसका जनता पर वहुत प्रभाव पड़ा। व्याख्यान के पश्चात् दान में प्राप्त कुछ अन्य धन-सम्पत्ति की घोषणा की गई, जिसमें श्री नानकचन्द धवन द्वारा दी गई चार हजार रुपये के लगभग मूल्य की भू-सम्पत्ति भी थी। वहुत-से वस्त्र, वरतन आदि भी पण्डाल में उपस्थित लोगों द्वारा गुरुकुल के लिए प्रदान किये गये, और इस प्रकार वीस हजार के लगभग धन प्रथम वार्षिकोत्सव के अवसर पर गुरुकुल को प्राप्त हो गया।

गुरुकुल का दूसरा वार्षिकोत्सव सन् १६०४ में २८ फरवरी से २ मार्च तक मनाया गया। इसमें आर्य नर-नारी वहुत वड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। अनुमान किया गया है कि इस अवसर पर जो लोग दूर-दूर से गुरुकुल आए, उनकी संख्या पचास हजार के लगभग थी। २१ नये ब्रह्मचारियों का इस अवसर पर वेदारम्भ संस्कार किया गया, और २१ हजार रुपया चन्दे में प्राप्त हुआ। ज्यों-ज्यों लोग गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से परिचित होते जाते थे, गुरुकुल काँगड़ी की लोकप्रियता में भी वृद्धि होती जाती थी, और उसके वार्षिकोत्सवों के लिए भी जनता में आकर्षण वढ़ता जाता था। यही कारण है कि

छठे वार्षिकोत्सव पर पचास हजार की उपस्थिति थी, और सातवें पर साठ हजार की। छठे वार्षिकोत्सव पर ५४,५०० रुपये का चन्दा हुआ, और सातवें पर ३,२८,००० का। प्रत्येक वार्षिकोत्सव पर उपस्थिति तथा चन्दे में क्रमशः वृद्धि ही होती रही, और शीघ्र ही गुरुकुल के वार्षिकोत्सव ने आर्यसमाज के सबसे बड़े मेले का रूप प्राप्त कर लिया।

गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सवों की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख करना इस दृष्टि से उपयोगी है कि उनसे उस समय के गुरुकुल के वातावरण पर प्रकाश पड़ता है। उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये हुए लोगों के लिए छप्पर के झोंपड़ों की कतारें बनायी जाती थीं, जिनका कोई किराया नहीं लिया जाता था। दर्शक सपरिवार उनमें निवास करते, गंगा में स्नान करते और भोजनालयों में शुद्ध सात्त्विक भोजन करते। यह आवश्यक था कि भोजन पकाने के लिए शुद्ध घी का प्रयोग किया जाए। विदेशी चीनी प्रयोग में नहीं लायी जा सकती थी। भोजन की दरें गुरुकुल द्वारा निर्धारित कर दी जाती थीं, और भोजनालयों पर कड़ा निरीक्षण रहता था। पचास हजार के लगभग यात्रियों के न केवल निवास और भोजन का ही प्रबन्ध इन अवसरों पर करना होता था, अपितु उनकी सुरक्षा तथा चिकित्सा की व्यवस्था भी आवश्यक थी। यह सब पुलिस व सरकार की किसी भी प्रकार की सहायता के बिना किया जाता था। गुरुकुल के वार्षिकोत्सवों के ऐसे प्रबन्ध की प्रशंसा महात्मा गांधी ने बैलगाँव कांग्रेस (१६२४) में इन शब्दों में की थी, "मेरी राय में (कांग्रेस के) प्रतिनिधियों के खाने और रहने के खर्च के बारे में स्वामी श्रद्धानन्दजी से नसीहत लेनी चाहिये। मुझे याद है कि उन्होंने अपने गुरुकुल के सन् १६१६ के उत्सव पर आने वाले मेहमानों के लिए जिस तरह के फूँस के छप्पर डलवाये थे, उनमें दो हजार से अधिक खर्च नहीं हुआ था। भोजन के लिए दुकानें थीं। रहने के लिए किसी से कुछ भी खर्च नहीं लिया था। इस तरह कोई चालीस हजार लोग गुरुकुल के मैदान में बिना दिक्कत और प्रायः बिना किसी खर्च के रह सके थे। चाहे कांग्रेस उनकी हरफ-बे-हरफ नकल न करे, किन्तु उसको ही सामने रखकर बेहतर और ज्यादह सस्ता इन्तजाम करना निहायत जरूरी है।"

वार्षिकोत्सवों पर एकत्र आर्य नर-नारियों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रकार से गुरुकुल काँगड़ी की लोकप्रियता प्रकट हुआ करती थी। कितने ही ऐसे सज्जन, जो गुरुकुल की सर्विस में नहीं थे, स्वेच्छापूर्वक हजारों रुपये एकत्र कर गुरुकुल भेजा करते थे। लुधियाना निवासी लाला लम्भूराम नैयड़ का नाम ऐसे सज्जनों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने लाखों रुपये गुरुकुल के लिए जमा किये। उस समय लोग बिना माँगे श्रद्धावश स्वयं ही सैकड़ों-हजारों रुपये गुरुकुल को भेज दिया करते थे। वेदारम्भ संस्कार के समय जब ब्रह्मचारी झोली लिये भिक्षा के लिए जाते, या धन की अपील करते समय जब बालटियाँ जनता के बीच में घुमायी जातीं, तो नकद रुपयों के अतिरिक्त सोने-चाँदी के कितने ही आभूषण भी गुरुकुल को दान में प्राप्त हो जाते। वस्तुतः, बीसवीं सदी के प्रथम चरण में गुरुकुल देश में उत्पन्न होती हुई एक नयी जागृति और नवयुग के सूत्रपात का प्रतीक था, और लोग उसे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते थे।

(५) प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों का प्रथम संघर्ष

काँगड़ी ग्राम के समीपवर्ती जंगल में सन् १६०२ में जिस गुरुकुल की स्थापना हुई थी, उसका स्वरूप एक तपोवन के सदृश था। गुरु और शिष्य सब फूँस की झोंपड़ियों या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्ची दीवारों के टिन-शेडों में निवास करते थे, और उन्हीं में शिक्षा प्राप्त करते थे। रात में रोशनी के लिए तेल के दीपक प्रयोग में लाये जाते थे, और चिकित्सा के लिए परम्परागत जड़ी-बूटियाँ। आधुनिक पद्धति की चिकित्सा की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं था। शिक्षा में संस्कृत व्याकरण और अन्य वेदांगों को प्रमुख स्थान प्राप्त था, जिनकी पढ़ाई पण्डितों की पुरानी पद्धति के अनुसार होती थी। आचार्य श्री गंगादत्त पुराने ढंग के पण्डित थे, और गुरुकुल की शिक्षा को प्राचीन परम्परा के अनुसार ही चलाना चाहते थे। उनके सहयोगी अन्य अध्यापक पण्डित भीमसेन शर्मा, पण्डित पद्मसिंह शर्मा और पण्डित विष्णुमित्र आदि भी इस विषय में उन्हीं के समर्थक थे।

पर गुरुकुल जैसी संस्था के लिए युग की नयी प्रवृत्तियों से अछूते रह सकना सम्भव नहीं था। ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ आश्रम के आकार में भी वृद्धि होती गई, और एक-एक टिन-शेड में २५-३० ब्रह्मचारी निवास करने लगे। तेल के दीपक इन सुदीर्घ शेडों में रोशनी करने के लिए अपर्याप्त थे। अतः यह आवश्यकता अनुभव की गई, कि कैरोसिन तेल से जलने वाले बड़े-बड़े लैम्प छत से लटकाये जायें। गंगादत्तजी इस परिवर्तन के घोर विरोधी थे। उनका कहना था कि कैरोसिन तेल (मिट्टी के तेल) का धुआँ आँखों और फेफड़ों के लिए हानिकारक है। पण्डित भीमसेन आदि अन्य पण्डितों ने आचार्यजी का साथ दिया, और मिट्टी के तेल के लैम्पों के विरुद्ध आन्दोलन ने पर्याप्त उग्र रूप धारण कर लिया। यद्यपि कुछ समय बाद यह आन्दोलन दब गया, पर इसके कारण उत्पन्न हुए असन्तोष का अन्त नहीं हुआ।

गुरुकुल के चारों ओर जो सघन जंगल था, वर्षा ऋतु में वहाँ बहुत मच्छर हो जाते थे और अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलने लगती थीं। मलेरिया का वहाँ बहुत प्रकोप हो जाता था, जिसकी चिकित्सा के लिए पहले कोई प्रबन्ध नहीं था। मलेरिया के लिए जब गुरुकुल में पहले-पहल कुनीन का प्रयोग किया गया, तो उसके विरुद्ध भी उग्र आन्दोलन हुआ। पुराने ढंग के लोगों को एलोपैथिक चिकित्सा में जरा भी विश्वास नहीं था। वे उसके घोर विरोधी थे। उनका विरोध और अधिक बढ़ गया, जब डा० सुखदेव गुरुकुल में चिकित्सक होकर आ गये। सुखदेव एलोपैथी पढ़े हुए चिकित्सक थे, और गुरुकुलवासियों की चिकित्सा के लिए उन्होंने आधुनिक ढंग का हॉस्पिटल प्रारम्भ कर दिया था। आचार्य गंगादत्त और उनके साथी इसके भी विरुद्ध थे।

पर प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों में उग्र संघर्ष उस समय प्रारम्भ हुआ, जब गुरुकुल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाने लगी। सन् १६०६ तक गुरुकुल में केवल सात श्रेणियाँ थीं, जिनमें प्रधानतया संस्कृत व्याकरण और साहित्य की शिक्षा दी जाती थी, यद्यपि भूगोल, गणित, वस्तुपाठ आदि की सामान्य शिक्षा भी इनकी पाठविधि में सम्मिलित थी। सातवीं से ऊपर की कक्षाओं के खोले जाने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई की क्या व्यवस्था की जाए। गुरुकुल की जो प्रथम नियमावली आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने स्वीकृत की थी, उसमें यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया गया था कि संस्कृत, वेद, वेदांग और शास्त्रों की शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन की भी इस शिक्षण-संस्था में व्यवस्था रहेगी। अब इसे क्रियात्मक रूप देने का समय आ गया था। आधुनिक विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध करने की समस्या गुरुकुल के सम्मुख विद्यमान थी। पर इसे हल कर

सकना कठिन नहीं था, क्योंकि अनेक ऐसे व्यक्ति इस काल में गुरुकुल आ गये थे, जो अंग्रेजी भाषा तथा ज्ञान-विज्ञान से भली-भाँति परिचित थे और जिनमें इनका अध्यापन करने की समुचित योग्यता थी। ये व्यक्ति डा० चिरंजीव भारद्वाज, मास्टर रामदेव और मास्टर गोवर्धन थे। डा० भारद्वाज ने इंग्लैण्ड से एलोपैथी की उच्च डिग्री प्राप्त की थी, और वह बड़ौदा रियासत की सर्विस में थे। वह महर्षि दयानन्द सरस्वती के परम भक्त थे, और आर्यसमाज की सेवा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को उद्यत थे। महात्मा मुंशीराम के अनुपम त्याग तथा आदर्श जीवन से प्रभावित होकर वह गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुए, और बड़ौदा की सर्विस छोड़कर गुरुकुल आ गये। रामदेवजी बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर जालन्धर के एक स्कूल में हैडमास्टर हो गये थे। आर्यसमाज के साथ उनका पुराना सम्बन्ध था, और डा० भारद्वाज के वह भक्त तथा आर्यसमाज के क्षेत्र में शिष्य थे। जालन्धर की सर्विस छोड़कर वह भी डा० भारद्वाज के साथ गुरुकुल आ गये। गोवर्धनजी भी बी० ए० थे और आर्यसमाज तथा शिक्षा से उन्हें अनुराग था। गवर्नमेंण्ट कॉलिज, लाहौर से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने भी अपनी सेवाएँ गुरुकुल को अर्पित कर दी थीं। सन् १९०६ तक ये तीनों महानुभाव गुरुकुल पहुँच गये थे। यही वह समय था, जबकि गुरुकुल में उच्च कक्षाएँ प्रारम्भ करने का प्रश्न उपस्थित था। डा० भारद्वाज, मास्टर रामदेव और मास्टर गोवर्धन का विचार था कि आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान शिक्षा के आवश्यक अंग हैं, और गुरुकुल की पाठविधि में उन्हें भी समुचित स्थान प्राप्त होना चाहिये। गुरुकुल की आदि-नियमावली में भी यह बात प्रतिपादित की गई थी। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर भी इन महानुभावों द्वारा जोर दिया जाने लगा था। इनका यह भी विचार था कि गुरुकुल में पढ़ाई को उसी प्रकार से व्यवस्थित कर दिया जाना चाहिए, जैसे कि सरकारी स्कूलों में होती है। विभिन्न विषयों की पढ़ाई के समय विभाग की प्रथा अब तक गुरुकुल में नहीं थी। अध्यापक कितने समय तक अपना विषय पढ़ाएँ, इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं था। डा० भारद्वाज तो देर तक गुरुकुल में नहीं रह सके थे, पर मास्टर रामदेव और मास्टर गोवर्धन चिरकाल तक गुरुकुल में रहे, और उन द्वारा इस संस्था में उन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ, जिन्हें 'आधुनिक' व 'नवीन' कहा जा सकता है। इनसे आचार्य गंगादत्त सहमत नहीं हो सके, और उन्होंने गुरुकुल से त्यागपत्र दे दिया। पण्डित नरदेव शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'सचित्र शुद्ध बोध' (गंगादत्तजी ही संन्यासी होकर शुद्ध-बोध तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुए) में लिखा है, कि "जब नये ढंग का टाइमटेबल बना व स्कूल के-से घण्टे बजने लगे, तब आचार्यजी ने समझा कि संस्कृत विद्या यहाँ से खिसकने लगी। वे पुराने ढंग से पढ़ाते थे, दक्षता से पढ़ाते थे। अभी एक सूत्र का अर्थ समझा भी न पाते थे कि घण्टी बज जाती थी, पाठ बीच में ही छूट जाता था। यह बात उनको बहुत अखरने लगी। धीरे-धीरे अंग्रेजी ढंग बढ़ता गया।" इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य गंगादत्त गम्भीर विद्वान् थे। वह कट्टर आर्यसमाजी भी थे। उन्हें रूढ़िवादी या अपरिवर्तनवादी कहना उचित नहीं होगा। पर उन्हें यह स्वीकार्य नहीं था कि अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक विषयों को गुरुकुल में इतना महत्त्व दे दिया जाए, जिससे कि संस्कृत और वेदशास्त्रों की शिक्षा के लिए पर्याप्त समय न मिले और ब्रह्मचारी उनका गम्भीर ज्ञान न प्राप्त कर सकें। मास्टर रामदेव जिस ढंग से गुरुकुल की पाठविधि व अध्ययन शैली में परिवर्तन ला रहे थे, गंगादत्त जी उसके प्रबल विरोधी थे। तीन साल के लगभग वह रामदेवजी से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष करते रहे, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। उनका पक्ष निरन्तर कमजोर पड़ता गया, और अन्त में वह गुरुकुल छोड़कर चले गये, और उनके साथ पण्डित भीमसेन शर्मा आदि अन्य भी अनेक शिक्षकों ने गुरुकुल से विदा ले ली।

गंगादत्तजी के चले जाने पर महात्मा मुंशीराम ही गुरुकुल के आचार्य हो गये। इससे पूर्व गुरुकुल की सब व्यवस्था उनके हाथ में थी ही। अब शिक्षा की उत्तरदायिता भी उनके ऊपर आ गई। शिक्षा के कार्य में मास्टर रामदेव उनके मुख्य सहायक थे, जो मुख्य अध्यापक के पद पर नियुक्त थे। आधुनिक विषयों के अध्यापन में मास्टर गोवर्धन और मास्टर विनायक गणेश साठे रामदेवजी का हाथ बंटाते थे। गणित और विज्ञान (भौतिकी और रसायन) की शिक्षा इन दोनों द्वारा दी जाती थी, और अंग्रेजी का अध्यापन रामदेव जी करते थे।

गुरुकुल काँगड़ी के इतिहास में सन् १६०६ से १६१० के काल को क्रान्ति या संक्रान्ति का युग कहा जा सकता है। इस काल में गुरुकुल विद्यालय तथा महाविद्यालय, इन दो भागों में विभक्त हो गया। विद्यालय में १० कक्षायें रखी गईं, और महाविद्यालय में ४। सन् १६०७ में तीन ब्रह्मचारियों को गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते हुए ६ वर्ष (३ वर्ष गुजरांवाला में और ६ वर्ष काँगड़ी में) हो चुके थे। अधिकारी (दसवीं की) परीक्षा उत्तीर्ण कर अब वे उच्च (महाविद्यालय की) शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी हो गये थे। अब यह आवश्यक था कि गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग की पाठविधि तैयार की जाए, और उसके विभिन्न विषयों के अध्यापन के लिए सुयोग्य प्राध्यापकों की नियुक्ति की जाए। पण्डित गंगादत्त के चले जाने पर गुरुकुल के आचार्य पद को महात्मा मुंशीराम ने सँभाल लिया था। इस कार्य में उनकी सहायता के लिए मास्टर रामदेव की नियुक्ति उपाचार्य के रूप में कर दी गई, और विद्यालय का मुख्याध्यापक पद उनके स्थान पर मास्टर गोवर्धन ने सँभाल लिया। अगले सात-आठ वर्षों में जो प्राध्यापक (गुरुकुल में उन्हें 'उपाध्याय' कहा जाता था) महाविद्यालय विभाग में नियुक्त हुए, उनमें श्री घनश्यामसिंह गुप्त बी० ए०, एल-एल० बी०; श्री बालकृष्ण एम० ए०; श्री महेशचरणसिंह एम० एस-सी०; श्री सेवकराम एम० ए० और श्री विनायक गणेश साठे एम० ए० आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् गुरु श्री काशीनाथ शास्त्री और पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ इस काल में संस्कृत के विविध विषयों के प्राध्यापक थे। इस प्रकार गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति हो गई थी, जो अपने-अपने विषयों के सुयोग्य विद्वान् थे, और जिनके कारण गुरुकुल में शिक्षा का स्तर पर्याप्त रूप से समुन्नत व सन्तोषजनक हो गया था।

इस प्रसंग में यह लिख देना भी उचित है कि गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में रसायन, भौतिक विज्ञान, गणित, इतिहास, अर्थशास्त्र, वनस्पति विज्ञान आदि सभी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी था, और परीक्षा का भी। उस समय तक भारत के स्कूलों तक में गणित, विज्ञान आदि की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा थी। गुरुकुल के विद्यालय विभाग में जब रसायन शास्त्र (कैमिस्ट्री) और भौतिक विज्ञान (फिजिक्स) सदृश आधुनिक विज्ञानों की पढ़ाई प्रारम्भ हुई, तो उसका माध्यम हिन्दी भाषा को रखा गया, और इन विषयों पर हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें भी तैयार करायी गईं। इनके लेखक मास्टर गोवर्धन थे,

जिन्होंने कि 'रसायन' और 'भौतिकी' नाम से स्कूल स्टैण्डर्ड की दो पाठ्यपुस्तकें इन विषयों पर लिखी थीं। इनका प्रकाशन भी गुरुकुल द्वारा ही किया गया था। आधुनिक वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी भाषा में ये प्रथम पुस्तकें थीं, जिन्हें लिखकर मास्टर गोवर्धन ने और प्रकाशित कर गुरुकुल काँगड़ी ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। महाविद्यालय विभाग के लिए उपयुक्त आधुनिक विषयों पर पाठ्यपुस्तकें तैयार करना सुगम कार्य नहीं था। अतः शुरू में यह नीति अपनायी गई कि अंग्रेजी भाषा में लिखी गई पुस्तकों को शिक्षा के लिए प्रयुक्त कर लिया जाए, पर कक्षा में पढ़ाते हुए प्राध्यापक जो व्याख्यान दें, वे हिन्दी में हों। उन्हें यह अनुमति थी कि वे अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों को अपने व्याख्यानों में प्रयुक्त कर सकें। पर उनसे यह अपेक्षा भी की जाती थी कि इन शब्दों के हिन्दी रूपान्तर भी वे विद्यार्थियों को बताने का प्रयत्न करें। निस्सन्देह, यह अत्यन्त मौलिक पद्धति थी, जिससे हिन्दी में पाठ्यपुस्तकों के अभाव की समस्या हल हो जाती थी। प्राध्यापकों के व्याख्यानों के नोट विद्यार्थी हिन्दी में लेते थे, और अंग्रेजी भाषा का समुचित ज्ञान होने के कारण वे अंग्रेजी पुस्तक को भी पढ़ लेते थे। पर गुरुकुल का यह भी प्रयत्न रहा कि आधुनिक विषयों की ऐसी उच्च स्तर की पुस्तकें भी हिन्दी में तैयार करायी जायें, जो महाविद्यालय विभाग में पाठ्यपुस्तकों के रूप में प्रयुक्त हो सकें। इसी के परिणामस्वरूप प्रोफेसर महेश चरण सिन्हा ने 'वनस्पतिशास्त्र' और 'हिन्दी कैमिस्ट्री' की रचना की, और प्रो० विनायक गणेश साठे ने 'विकासवाद' की। कुछ वर्षों तक गुरुकुल का यह प्रयास फलीभूत होता रहा, और उच्च स्तर की अनेक पुस्तकें गुरुकुल द्वारा लिखवायी गईं। हिन्दी भाषा और शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल का यह कार्य अत्यन्त महत्त्व का था।

सन् १६०७ में गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग की प्रथम कक्षा खुल गई थी। इसमें तीन विद्यार्थी थे—हरिश्चन्द्र, इन्द्रचन्द्र और जयचन्द्र। जयचन्द्र महाविद्यालय की शिक्षा पूरी किये बिना ही गुरुकुल से चले गये। महाविद्यालय विभाग के प्रारम्भ होने के चार वर्ष पश्चात् शेष दोनों विद्यार्थी स्नातक हुए, और वार्षिकोत्सव के अवसर पर उनका दीक्षान्त संस्कार किया गया, जिसमें उन्हें 'विद्यालंकार' की डिग्री प्रदान की गई। शिक्षा सम्बन्धी डिग्रियाँ (उपाधियाँ) विश्वविद्यालयों द्वारा ही दी जाती हैं। अब गुरुकुल काँगड़ी इस स्थिति में आ गया था कि वह अपने विद्यार्थियों को डिग्री दे सके। उसने अब एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय की स्थिति प्राप्त कर ली थी, और 'अलंकार' की जो डिग्री उस द्वारा अपने विद्यार्थियों के लिए निर्धारित की गई थी, वह भी सर्वथा नवीन व मौलिक थी। सरकारी यूनिवर्सिटियों का अन्धानुकरण न कर गुरुकुल ने अपने लिए एक स्वतन्त्र मार्ग अपनाया था। गुरुकुल की 'अलंकार' डिग्री को न सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त थी, और न किसी यूनिवर्सिटी द्वारा। पर आर्य जनता की दृष्टि में उसका बहुत अधिक महत्त्व था। यही कारण है कि सन् १६१२ में गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर दीक्षान्त संस्कार द्वारा जब दो स्नातकों को विद्यालंकार की उपाधि का प्रमाणपत्र दिया गया, तो वहाँ उपस्थित हजारों आर्य नर-नारियों की आँखों से प्रसन्नता की अश्रुधाराएँ बहने लगीं। इस अवसर पर स्नातकों को सम्बोधन करते हुए आचार्य मुंशीराम ने कहा था—"यज्ञरूप परमात्मा धन्य है, जिसकी अपार कृपा से आर्यसमाज के रचे हुए इस ब्रह्मचर्य-आश्रमरूपी महान् यज्ञ का पहला चरण आज समाप्त होता है। आर्य जाति का कौन ऐसा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभासद् है, जिसे सहस्रों वर्षों से लुप्त हुए इस दृश्य का आज प्रातः दर्शन कर प्रसन्नता न हो रही हो। गुरुकुल के स्नातको ! तुम गुरुकुलरूपी वृक्ष के पहले फल हो। सारे सभ्य संसार की आँखें तुम पर लगी हुई हैं। परमात्मा आशीर्वाद करें कि तुम संसार में धर्म और शान्ति फैलाने के साधन बनकर अपने कुल के यश को सारे संसार में फैलाओ। तुम्हारा कर्तव्य इस कारण और भी अधिक है कि पीछे आने वाले स्नातक तुम्हारा अनुकरण करेंगे। उनके लिए तुम ही आदर्श होगे···मैं आज आर्यसमाज को भाग्यशाली समझता हूँ, जिसके लगातार प्रयत्नों को सफलता प्राप्त हुई है।···इस यज्ञ-मण्डप में उपस्थित देवियों और सभ्य पुरुषों से मेरी प्रार्थना है कि सब इन स्नातकों को आशीर्वाद दें, जिससे वे अपने धर्म और अपने देश के यश को देश-देशान्तरों में पहुँचाने में कृतकार्य हों।" गुरुकुलरूपी वृक्ष के प्रथम फलों को देखकर उसके संचालकों का हृदय किस प्रकार पुलकित हो रहा था, और वे अपनी शिक्षण-संस्था से क्या आशाएँ कर रहे थे, इसका कुछ अनुमान आचार्यजी के इन शब्दों से लगाया जा सकता है।

सन् १६०२ में काँगड़ी ग्राम के समीपवर्ती जंगल में गुरुकुलरूपी जिस पौदे का आरोपण किया गया था, सन् १६१२ तक उसने एक अच्छे बड़े वृक्ष का रूप धारण कर लिया था। उसकी छाया में तीन सौ के लगभग ब्रह्मचारी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे, और फूंस के छप्परों से बना हुआ एक छोटा-सा आश्रम एक अच्छी फलती-फूलती बस्ती बन गया था, जिसमें ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त बहुत-से उपाध्याय, प्राध्यापक, शिक्षक, लिपिक, वाचक और अन्य कर्मचारी निवास करते थे। महाविद्यालय के लिए एक पक्की व शानदार इमारत अब बन कर प्रायः तैयार हो गई थी, और बड़े ब्रह्मचारियों के लिए छात्रावास (आश्रम) भी पृथक् बन गया था। विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियों के आश्रम का पर्याप्त रूप से विस्तार कर लिया गया था, और पढ़ाई के लिए पृथक् भवनों का निर्माण हो गया था। इनके अतिरिक्त शिक्षकों, कर्मचारियों और कर्मकरों के लिए परिवारगृह, व्यायाम-शाला, धर्मशाला, गौशाला, स्नानगृह आदि भी बन गये थे। गुरुकुल अब अपने आप में पूर्ण व स्वायत्त बस्ती का रूप प्राप्त कर चुका था, जिसके निवासियों की कुल संख्या एक हजार के लगभग थी।

महाविद्यालय विभाग की उच्च शिक्षा के साथ-साथ गुरुकुल में साहित्य के निर्माण तथा प्रकाशन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। वैदिक मैगजीन नामक पत्रिका का प्रारम्भ पण्डित गुरुदत्त ने किया था। वही इसके सम्पादक भी थे। पर उनके देहावसान के साथ इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया था। यह पत्रिका अंग्रेजी में निकलती थी, और पाश्चात्य समाज को वैदिक धर्म का सन्देश पहुँचाने के लिए इसका बहुत उपयोग था। साथ ही, महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के अनुसार वेदों की व्याख्या तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुशीलन के सम्बन्ध में भी यह पत्रिका बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया करती थी। सन् १६०७ में इस पत्रिका का पुनः प्रकाशन शुरू हुआ, आर श्री रामदेव उसके सम्पादक बने। वैदिक मैगजीन के साथ अब 'गुरुकुल समाचार' शब्द भी जोड़ दिये गये थे, और उसके प्रत्येक अंक में गुरुकुल के कार्यकलाप तथा गतिविधि का विवरण दिया जाता था। देश-विदेश के शिक्षित वर्ग को गुरुकुल से परिचित कराने में यह पत्रिका अत्यन्त सहायक थी। सन् १६०८ में महात्मा मुंशीराम का सद्धर्म प्रचारक प्रेस भी जालन्धर से गुरुकुल ले आया गया, और 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र भी गुरुकुल से प्रकाशित

होने लगा। गुरुकुल का अपना प्रेस हो जाने पर पुस्तक प्रकाशन के कार्य में बहुत सहायता मिली। 'भौतिकी', 'रसायन' आदि जिन पुस्तकों का उल्लेख इसी अध्याय में पहले हुआ है, वे गुरुकुल काँगड़ी के सद्धर्म प्रचारक प्रेस में ही छपवायी गई थीं। श्री रामदेव इतिहास के गम्भीर विद्वान् थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों को दृष्टि में रखकर उन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास की शोध की, और उसके परिणामस्वरूप भारत का जो इतिहास लिखा, वह भी बाद में इसी प्रेस में मुद्रित हुआ था। गुरुकुल विद्यालय में हिन्दी भाषा की शिक्षा के लिए श्री भवानी प्रसाद द्वारा लिखित 'आर्य भाषा पाठावली' पुस्तक (जो कई भागों में थी) गुरुकुल का ही प्रकाशन थी और सद्धर्म प्रचारक प्रेस में ही छपी थी। 'ऋषि दयानन्द के पत्र' आदि अन्य भी अनेक पुस्तकें इस काल में गुरुकुल से प्रकाशित हुईं, और पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में भी गुरुकुल ने अच्छी स्थिति प्राप्त कर ली।

(६) आन्तरिक कलह

गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा की गई थी, और यह सभा ही उसकी संचालिका व स्वामिनी थी। गुरुकुल की सब सम्पत्ति इस सभा के नाम रजिस्ट्री की जाती थी, और उसके आय-व्यय का वार्षिक बजट सभा के साधारण अधिवेशन द्वारा स्वीकृत किया जाता था। पंजाब प्रतिनिधि सभा का संगठन लोकतान्त्रिक आधार पर है, और उसके सदस्य स्थानीय आर्यसमाजों द्वारा निर्वाचित होते हैं। लोक-तन्त्रवाद पर आधारित सभा-संगठनों में मतभेदों का होना स्वाभाविक है। यदि ये मतभेद सिद्धान्तों व विचारों पर आधारित हों, तो उनसे लाभ होता है। पर यदि इनका प्रादुर्भाव वैयक्तिक कारणों से हुआ हो और उनमें निजी स्वार्थ व महत्त्वाकांक्षाओं के तत्त्व विद्यमान हों, तो वे सभा-संगठनों के लिए अत्यन्त हानिकारक हो जाते हैं। गुरुकुल काँगड़ी का यह दुर्भाग्य है कि उसकी स्वामिनी सभा में बहुधा झगड़े व आन्तरिक कलह होते रहे हैं, और उनके परिणामस्वरूप संस्था की उन्नति व विकास में बाधाएँ उपस्थित होती रही हैं।

काँगड़ी में गुरुकुल को स्थापित हुए अभी तीन वर्ष ही हुए थे, कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के कुछ पदाधिकारियों व नेताओं ने गुरुकुल में महात्मा मुंशीराम के कार्य-कलाप पर कटु आक्षेप प्रारम्भ कर दिये। इनमें राय ठाकुरदत्त धवन और लाला रलाराम प्रमुख थे। २६ मई, १६०५ को सभा के अधिवेशन में उसके सात सदस्यों द्वारा निम्न-लिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया—"सात प्रतिनिधियों द्वारा पेश की गई निम्नलिखित बातों के लिए जाँच कमेटी नियुक्त की जाये—(१) लाला मुंशीराम इस योग्य नहीं कि उन पर सार्वजनिक कामों के लिए दान में दिये जाने वाले रुपये के सम्बन्ध में विश्वास किया जा सके, क्योंकि उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा के १४ हजार रुपये का गबन किया है, और (२) न लाला मुंशीराम किसी धार्मिक संस्था के जिम्मेवार और विश्वसनीय पद के अधिकारी बनाये जाने के योग्य हैं क्योंकि अपने विरोधी सज्जनों पर झूठे दोष लगाने तथा उनको गढ़ने की उनकी आदत है, जिससे सर्वसाधारण में उनके विरोधियों की कुछ प्रतिष्ठा न रहे।" पर यह प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में स्वीकृत नहीं हुआ। ४४ मत उसके विरोध में आए, और १७ पक्ष में। पर मुंशीरामजी के विरोधी अपनी इस हार से निराश नहीं हुए। अब उन्होंने समाचारपत्रों का आश्रय लिया, और उन द्वारा महात्माजी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सार्वजनिक रूप से आक्षेप प्रारम्भ कर दिये गये। 'हितकारी' नामक उर्दू के पत्र में उनके विरुद्ध उग्र भाषा में लेख प्रकाशित किये जाने लगे। इनमें प्राय: यह कहा जाता था कि गुरुकुल जाकर लाला मुंशीराम ने त्याग ही क्या किया है, जालन्धर में उनकी वकालत चलती नहीं थी, अब गुरुकुल जाकर महात्मा बन गये हैं, वहाँ विलायती ढंग से सजी हुई बैठक में बैठते हैं और रेशमी कपड़े पहनते हैं। इस प्रकार के बहुत-से आक्षेप अनेक पैम्फ्लेटों और पर्चों द्वारा भी महात्माजी पर किये जा रहे थे।

राय ठाकुरदत्त धवन और लाला रलाराम आदि का मुकाबला करने और महात्मा मुंशीराम के समर्थन के लिए इस समय दो आर्य युवक मैदान में आए, जिनके नाम पण्डित विश्वम्भरनाथ और महाशय कृष्ण थे। कुछ ही समय पूर्व इन्होंने कॉलिज की शिक्षा समाप्त कर आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया था। महाशय कृष्ण ने 'प्रकाश' नाम से उर्दू में एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसमें 'हितकारी' द्वारा महात्माजी पर किये जाने वाले आक्षेपों का उत्तर दिया जाता था। श्री मेहता जैमिनी भी अपने पत्र 'सुधारक' द्वारा महात्माजी के समर्थन में तत्पर थे। पर आर्य जनता यह अनुभव कर रही थी कि महात्मा मुंशीराम इस विवाद में चुप क्यों हैं? वह स्वयं अपने विरुद्ध किये जा रहे आक्षेपों का उत्तर क्यों नहीं देते? शुरू में महात्माजी ने इन आक्षेपों के सम्बन्ध में चुप रहना ही उचित समझा, पर अन्त में ऐसा समय आ गया, जब आक्षेपों की उपेक्षा करना सम्भव नहीं रहा। 'दुखी दिल की पुरदर्द दास्तान' नाम से छह सौ के लगभग पृष्ठों की एक पुस्तक लिखकर उन्होंने अपने विरुद्ध किये जाने वाले आक्षेपों का विस्तार के साथ निराकरण किया। यही नहीं, इस पुस्तक में उन कारणों को भी प्रकाश में लाया गया, जिनसे कि उन पर ये आक्षेप किये जा रहे थे। 'दुखी दिल की पुरदर्द दास्तान' पुस्तक के प्रकाशन द्वारा महात्माजी के विरोधियों के मुँह बन्द करने में बहुत सहायता मिली। पर गुरुकुल की प्रतिकूल आलोचना का क्रम उसके बाद भी जारी रहा। आर्यसमाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो गुरुकुल और उसकी कार्यप्रणाली का निरन्तर विरोध करते रहते थे। महात्माजी सद्धर्म प्रचारक में कभी-कभी इनके उत्तर भी दे दिया करते थे। ८ श्रावण, संवत् १९६५ (सन् १९०८) के 'प्रचारक' के अंक में गुरुकुल के विरोधियों के विषय में उन्होंने लिखा था—"ब्रह्मचर्याश्रम के उद्धार के लिए जिस दिन गुरुकुल की पाठविधि तथा उसके प्रबन्ध सम्बन्धी नियम हाथ में लेकर सेवकों ने काम करना प्रारम्भ किया था, उसी दिन से गुरुकुल पर वज्रप्रहार प्रारम्भ हो गये थे। अपनों और बेगानों, आर्यों और अनार्यों—सभी प्रकार के पुरुषों ने उसको जड़ से उखाड़ फैंकने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न किये। किन्तु जब गंगातट पर पहुँच कर ब्रह्मचारियों के समूह ने इस जंगल को वेदमन्त्रों की ध्वनि से गुँजाना शुरू किया, तब से तो आक्रमणों की कुछ गिनती ही नहीं रही। हर तीसरे महीने गुरुकुल की समाप्ति-सूचक विचित्र भविष्य-वाणियाँ सुनने में आती रहीं। जत्थों पर जत्थे इसको गिराने के लिए बने, आक्रमणों पर आक्रमण हुए, जिनसे न केवल इसके सेवकों के बदन छलनी से बन गये, प्रत्युत उन चोटों के निशान गुरुकुल की संस्था और उसके प्रबन्ध पर भी अब तक लगे हुए हैं।" ये पंक्तियाँ यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त हैं कि महात्मा मुंशीराम किन प्रतिकूल परिस्थितियों में गुरुकुल का संचालन कर रहे थे, और आर्यसामाजिक क्षेत्रों में भी इस शिक्षण-संस्था का

कितना विरोध था। यह महात्मा मुंशीराम का ही असाधारण व्यक्तित्व था, जो इतने प्रवल विरोधियों से वे गुरुकुल की रक्षा करने में समर्थ हुए थे।

(७) प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों का दूसरा संघर्ष

राय ठाकुरदत्त धवन और लाला रलाराम सदृश सशक्त आर्य नेताओं के आक्षेपों का उत्तर देने और महात्मा मुंशीराम के पक्ष का समर्थन करने में पंडित विश्वम्भरनाथ और महाशय कृष्ण का महत्त्वपूर्ण योगदान था। पर शीघ्र ही गुरुकुल की रीतिनीति और गतिविधि के सम्बन्ध में उनका महात्माजी से मतभेद हो गया। सन् १९०७ में गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग की पढ़ाई शुरू हो गई थी। उसके पाठ्यक्रम में संस्कृत और वेदशास्त्रों के साथ अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य रूप से और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में से किसी एक को पर्याय विषय के रूप में सम्मिलित किया गया था। धीरे-धीरे गुरुकुल की पढ़ाई का स्वरूप प्राय: वही होता जाता था, जो सरकारी ढंग के कॉलिजों का था। उसने एक समुन्नत व सुविकसित शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया था। गुरुकुल के संचालन व व्यवस्था पर पंजाव आर्य प्रतिनिधि सभा को वहुत ध्यान देना पड़ता था, और उसके लिए जो वजट स्वीकृत हो उसमें निर्धारित खर्च की राशि को जुटाने का अन्तिम उत्तरदायित्व भी सभा पर ही था। पण्डित विश्वम्भरनाथ, महाशय कृष्ण और उनके अनेक साथियों (जो अव प्रकाशी पार्टी के नाम से प्रसिद्ध होने लगे थे) का यह विचार था, कि गुरुकुल सभा पर एक वोझ है, जिसके कारण उसके लिए वेदप्रचार के अपने मुख्य कार्य पर समुचित ध्यान दे सकना सम्भव नहीं रह गया है। गुरुकुल की स्थापना तो इस प्रयोजन से की गई थी कि वहाँ वेदशास्त्रों की पढ़ाई हो। एक विश्वविद्यालय को स्थापित करना सभा को कदापि अभिप्रेत नहीं था। आर्य प्रतिनिधि सभा के एक सशक्त वर्ग के गुरुकुल के प्रति इस रुख को देखकर महात्मा मुंशीराम ने यह विचार प्रस्तुत किया कि प्रतिनिधि सभा के अधीन गुरुकुल के लिए एक पृथक् प्रवन्धकर्त्री सभा का संगठन किया जाय, जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा के अतिरिक्त गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के संरक्षकों (अभिभावकों), स्नातकों और दानियों के भी प्रतिनिधि रहा करें। साथ ही, वैदिक साहित्य आदि विषयों के कतिपय प्रकाण्ड पण्डित भी इस सभा के सदस्य रूप से मनोनीत किये जाया करें। इस विचार के अनुसार गुरुकुल के लिए जो प्रवन्धकर्त्री सभा वनती, उसका प्राय: वही स्वरूप होता जो कि वाद में संगठित आर्य विद्यासभा का था। महात्माजी ने अपने इस विचार को प्रस्ताव का रूप देकर प्रतिनिधि सभा के निर्णयार्थ भेज दिया, और २६ मई, १९११ की सभा की बैठक में उस पर विचार-विमर्श भी हुआ। प्रस्ताव पर वोलते हुए पण्डित विश्वम्भरनाथ ने प्रतिनिधि सभा के सम्मुख अपना यह विचार प्रकट किया कि सभा का मुख्य उद्देश्य वेद तथा अन्य प्राचीन आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा के लिए विद्यालय खोलना है। महात्मा मुंशीराम के प्रस्ताव में गुरुकुल को एक शिक्षण-संस्था (ऐजुकेशनल इन्स्टीट्यूशन) कहा गया है। ऐसी किसी संस्था को खोलने का अधिकार इस सभा को नहीं है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि शिक्षा का प्रसार प्रतिनिधि सभा का कोई उद्देश्य नहीं है। पण्डित विश्वम्भरनाथ के इन विचारों का समर्थन करते हुए महाशय कृष्ण ने कहा कि गुरुकुल के अधिकारी उसे यूनिवर्सिटी बनाना चाहते हैं। यह अत्यन्त अनुचित है, और सभा के उद्देश्यों से सर्वथा वाहर है। प्रतिनिधि सभा के अन्य अनेक सदस्यों ने भी उनके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों का समर्थन किया। इससे स्पष्ट है कि सभा के सदस्यों के एक वर्ग की सम्मति में गुरुकुल का स्वरूप एक संस्कृत विद्यालय का होना चाहिये था, ऐसा विद्यालय जिसमें कि संस्कृत भाषा तथा वेद-वेदांगों की ही शिक्षा दी जाए और जिसके विद्यार्थी वेदप्रचार के कार्य के लिए उपयुक्त हों। गणित, अंग्रेजी, इतिहास, अर्थशास्त्र, वनस्पति विज्ञान आदि आधुनिक विषयों की पढ़ाई उनकी दृष्टि में निरर्थक थी।

पर महात्मा मुंशीराम गुरुकुल को एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करना चाहते थे। अपने विचार को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—"गुरुकुल जिस मार्ग पर चल रहा है, उससे वह एक विश्वविद्यालय ही बनेगा। अब तक भी वह बहुत-कुछ उसी ओर बढ़ा है। वेदों और वेदांगों की पढ़ाई के मुख्य रहने पर भी वहाँ अन्य विद्याओं की पढ़ाई को स्थान दिया जाएगा। कारण इसका यह है कि सब अन्य विद्याएँ वेदों के समझने के लिए साधनरूप हैं। गुरुकुल में कृषि विज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायन तथा अन्य सब कलाएँ एवं विज्ञान सिखाये जाएँगे और सिखाये जाते हैं। यदि प्रतिनिधि सभा इसे अपने उद्देश्यों के प्रतिकूल समझती है, तो उसे इसी समय वर्तमान गुरुकुल को बन्द कर देना चाहिये। जो सज्जन कार्यकर्ताओं पर यह दोष लगाते हैं कि वे भविष्य में गुरुकुल को यूनिवर्सिटी बनाना चाहते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिये कि इस समय भी गुरुकुल यूनिवर्सिटी ही बन रहा है।"

गुरुकुल के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करता गया। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में इस विषय में दो स्पष्ट पक्ष थे। एक पक्ष गुरुकुल को ऐसे वैदिक विद्वानों को तैयार करने का साधन बनाना चाहता था, जो आर्यसमाज के उपदेशक बनकर प्रचार-कार्य कर सकें। पाश्चात्य जगत् में इस समय ईसाई मिशनरियों के अनेक कॉलिज विद्यमान थे, जिन्हें 'डिविनटी कॉलिज' कहा जाता था। इस पक्ष के अनुसार गुरुकुल को आर्यसमाज के मिशनरियों को तैयार करने के लिए 'डिविनटी कॉलिज' ही होना चाहिये था। आर्यसमाज एक धार्मिक संगठन है, जिसका उद्देश्य वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को पुनःस्थापित करना एवं विश्व भर में उसे प्रचारित करना है। आर्यसमाज का सब प्रयत्न इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए होना चाहिये। गुरुकुल की स्थापना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होने के लिए की गई थी। सामान्य शिक्षा का प्रसार आर्य-समाज का उद्देश्य नहीं है, और गुरुकुल का प्रयोजन भी सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना नहीं होना चाहिये। पर दूसरा पक्ष इस विचार से सहमत नहीं था। उसका मन्तव्य था कि वेदों की सही-सही व्याख्या तभी की जा सकती है, जबकि वेद के विद्वान् विविध विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान से भी परिचित हों, और उनके अध्ययन से जिनका मानसिक क्षितिज पर्याप्त रूप से व्यापक हो गया हो। वैदिक धर्म के उत्कृष्ट प्रकार के प्रचारक भी ऐसे व्यक्ति ही हो सकते हैं, जो संस्कृत भाषा और वेद-वेदांगों के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में भी निष्णात हों। प्रचार-कार्य में अन्य धर्मों व सम्प्रदायों के विद्वानों के तर्क का समुचित उत्तर दे सकना आवश्यक है। यह तभी सुचारु रूप से किया जा सकता है, जब आर्यसमाज के प्रचारकों का दृष्टिकोण विशाल हो और संस्कृत के साथ-साथ वे अंग्रेजी व आधुनिक वाङ्मय के भी जानकार हों। महर्षि दयानन्द सरस्वती का मन्तव्य था कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं, और सब ज्ञान-विज्ञान उनमें मूल रूप से विद्यमान हैं। महर्षि के इस मन्तव्य का

प्रतिपादन व प्रचार ऐसे व्यक्ति ही कर सकते हैं, विविध विद्याओं तथा विज्ञान में भी जिनकी गति हो। अतः यह आवश्यक है कि गुरुकुल में संस्कृत, वेद-वेदांगों और प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के साथ-साथ नये ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की भी समुचित रूप से व्यवस्था की जाए।

आर्यसमाज के इन दो पक्षों का मतभेद अनेक समाचारपत्रों द्वारा भी प्रकट होना प्रारम्भ हुआ। महाशय कृष्ण अपने पत्र 'प्रकाश' में यह विचार प्रकट करने लगे कि गुरुकुल ब्राह्मण न पैदा करके वैश्य पैदा करने में लग रहा है। 'प्रकाश' के एक अंक (माघ, संवत् १९७१ या सन् १९१४) में तो यह आशंका भी प्रकट कर दी गयी कि गुरुकुल वेद की पढ़ाई को गौण बनाकर कहीं लुहारी, तरखानी सिखाने के काम में न लग जाए। इस प्रकार के जो विचार 'प्रकाश' में प्रचारित किये जा रहे थे, महात्मा मुंशीराम अपने पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' में उनका उत्तर देते रहे। २ फाल्गुन, संवत् १९७१ (सन् १९१४) के 'प्रचारक' के एक लेख में अपने पक्ष का समर्थन करते हुए महात्मा मुंशीराम ने लिखा था, "गुरुकुल की पहली पाठविधि के अनुसार, जिसका प्रामाणिक खण्डन प्रतिनिधि सभा ने मेरे ज्ञान में नहीं किया, कृषि महाविद्यालय खोलना भी गुरुकुल का कर्तव्य है। मैं दो वर्षों से उसके लिए विशेष परामर्श करता रहा हूँ, और अब समय आया है कि कृषि का काम आगामी वर्ष के आरम्भ से शुरू किया जाएगा। उसके साथ 'लुहारी-तरखानी' का कारखाना भी खोला जाएगा, जिसका कुछ सामान तीन वर्षों से आया पड़ा है। यदि इसके सम्बन्ध में मन्त्रीजी अथवा अन्य किन्हीं सभासदों को गुरुकुल अपने उद्देश्य से गिरता दिखायी दे, तो सभा में इस प्रश्न को रखकर पहले ही इसका निश्चय करा लो।" उस समय महाशय कृष्ण आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री चुने जा चुके थे। इससे पूर्व वह सभा के उपमन्त्री एवं अन्तरंग सभा के सदस्य थे। महात्मा मुंशीराम को यह शिकायत थी कि वह गुरुकुल की नीति व कार्यकलाप के सम्बन्ध में अपने मतभेद को 'प्रकाश' द्वारा क्यों प्रस्तुत करते हैं। प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारी के रूप में उन्हें यह प्रश्न सभा में ही उठाना चाहिये। इसीलिए उन्होंने २२ कार्तिक, संवत् १९६८ (सन् १९११) के 'प्रचारक' के अंक में लिखा था—"प्रकाश के सम्पादक महाशय कृष्णजी गुरुकुल की स्वामिनी श्री प्रतिनिधि सभा के सभासद् हैं, गुरुकुल की प्रबन्धकारिणी अन्तरंग सभा के भी सदस्य हैं, और इससे भी बढ़कर आप उसके उपमंत्री हैं। यदि गुरुकुल के विषय में आपको कोई शिकायत है और यदि गुरुकुल के वर्तमान कार्यकर्ताओं की किन्हीं चेष्टाओं से आप रुष्ट हैं तो आपके लिए कई रास्ते खुले हैं और वे कई रास्ते इस वर्तमान रास्ते से बहुत प्रिय, बहुत लाभदायक और बहुत सुलभ हैं।" 'प्रचारक' के एक अंक (फाल्गुन, संवत् १९७१) में महात्माजी ने अपने पक्ष को सुस्पष्ट करते हुए ये शब्द लिखे थे—"मैं महाशय कृष्ण तथा आर्य जनता को निश्चय दिलाता हूँ कि यदि वैदिक धर्म के पुनरुज्जीवन का काम मेरी दृष्टि में गौण बन जाएगा, तो मैं इस गुरुकुल में एक पल भी ठहरना पाप समझूँगा।" यह सही है कि उस समय कोई भी ऐसी संस्था नहीं थी, जहाँ आर्यसमाज के उपदेशक तैयार किये जाते हों। उस समय वैदिक धर्म के प्रचारकों की आवश्यकता भी बहुत थी। आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री की स्थिति में वेदप्रचार के लिए योग्य उपदेशकों की व्यवस्था करना महाशय कृष्ण की दृष्टि में एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसीलिए श्रावण, संवत् १९७३ (सन् १९१६) के 'प्रकाश' के अंक में उन्होंने लिखा था—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"न पंजाब में और संयुक्त प्रान्त में कोई ऐसी पाठशाला है, जहाँ उपदेशक तैयार किये जा रहे हों। ऐसी हालत में सवाल तो काबिले-गौर यह है कि उपदेशक कहाँ से आयें।"

पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुरुकुल की स्थापना न संस्कृत पाठशाला के रूप में की गई थी, और न उपदेशक विद्यालय के रूप में ही। उसकी जो प्रथम नियमावली पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत की गई थी, उसमें यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया गया था कि गुरुकुल में संस्कृत, वेद, वेदांग और आर्ष ग्रन्थों के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई की भी व्यवस्था की जाएगी। महात्मा मुंशीराम तथा गुरुकुल के अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं का यह भी विश्वास था कि गुरुकुल में जिस ढंग का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है, वैदिक धर्म के उत्कृष्ट प्रचारक और आर्यसमाज के सुयोग्य उपदेशक भी उसी से तैयार हो सकते हैं। उनका यह विश्वास कितना युक्तिसंगत था, और गुरुकुल के स्नातक किस अंश तक और किस प्रकार वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के लिए उपयोगी प्रमाणित हुए, इसका यथास्थान विवेचन किया ही जाएगा। पर महात्मा मुंशीराम जिस ढंग से गुरुकुल का विकास कर रहे थे, उसमें उनकी यही नीति थी कि यह संस्था आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म की उन्नति में सहायक हो और इस द्वारा आर्यावर्त्त का पुनरुज्जीवन हो। इसीलिए उन्होंने बल देकर कहा था कि यदि कभी उनकी दृष्टि में यह कार्य गौण हो गया, तो वे एक क्षण भी गुरुकुल में नहीं रहेंगे। पण्डित विश्वम्भरनाथ और महाशय कृष्ण आदि का महात्माजी से जो मतभेद था, वह वैयक्तिक न होकर सैद्धान्तिक था। वे समझते थे कि भौतिकी, वनस्पतिशास्त्र, कृषि, रसायन आदि विषयों की पढ़ाई के कारण विद्यार्थी वेद-वेदांगों के अध्ययन को समुचित महत्त्व नहीं दे सकेंगे, और धीरे-धीरे इनका महत्त्व कम होता जाएगा। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा प्रकाशित 'सभा का इतिहास' में इस दृष्टिकोण को, तथा इस सम्बन्ध में गुरुकुल के बदलते हुए रुख को निम्नलिखित प्रकार प्रकट किया गया है—"जिन पर्याय विषयों को गौण विभाग का एक गौण-सा अंग बनना था, जिनकी शिक्षा का प्रबन्ध वहीं तक किया जाना था, जहाँ तक इनके अध्ययन से वेदादि के अध्ययन में बाधा न हो, अब वही गुरुकुल की शिक्षा के प्रधान अंग बन गये। यहाँ तक कि गुरुकुल की परिभाषा में विद्यार्थी के 'अपने विषय' का अर्थ ही पर्याय विषय हो गया और वेद की स्थिति एक सामान्य विषय की रह गई।" प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों की गुरुकुल के सम्बन्ध में जो यह सम्मति थी, उसके कारण इस संस्था को सभा द्वारा दिये जाने वाली सहायता में जहाँ कमी होती गई, वहाँ साथ ही इसके प्रति उसकी उपेक्षा भी बढ़ती गई। परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल के संचालन तथा उन्नति की सब उत्तरदायिता महात्मा मुंशीराम पर आ गई। उनके अनथक परिश्रम के कारण गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता गया, और कुछ ही समय में उसका स्वरूप एक शिक्षण-संस्था मात्र का न रहकर शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन व मौलिक आन्दोलन का हो गया। गुरुकुल के स्वरूप के सम्बन्ध में जो संघर्ष प्रकाश पार्टी और महात्मा मुंशीराम में शुरू हुआ था, अन्ततोगत्वा उसमें महात्माजी की विजय हुई।

(८) गुरुकुल काँगड़ी का विकास और विस्तार

महात्मा मुंशीराम गुरुकुल को एक आदर्श शिक्षण-संस्था बनाना चाहते थे, ऐसी संस्था जो प्राचीन काल के भारद्वाज आश्रम तथा नैमिषारण्य के शौनक मुनि के आश्रम,

नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारों तथा तक्षशिला के विद्यापीठों के सदृश हो, ऐसी संस्था जिसमें उन सब विषयों व विद्याओं का अध्ययन-अध्यापन होता हो, जिनका परिगणन मुनि नारद ने महर्षि सनत्कुमार के समक्ष किया था। वह गुरुकुल को एक संस्कृत पाठशाला या उपदेशक विद्यालय नहीं बनाना चाहते थे। वेद-वेदांगों के पठन-पाठन को प्रमुखता देने के वह पक्ष में थे, पर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की उपेक्षा भी इन्हें स्वीकार्य नहीं थी। उनकी सम्मति में ब्रिटिश सरकार द्वारा जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित की गई थी, उसमें बहुत-से दोष थे। संस्कृत और प्राचीन भारतीय ज्ञान की शिक्षा को उसमें कोई स्थान नहीं दिया गया था, और उसमें न केवल अंग्रेजी भाषा और साहित्य के पठन-पाठन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था, अपितु शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी ही रखी गई थी। महात्माजी इसके मुकाबले में एक ऐसी शिक्षा पद्धति को जारी करना चाहते थे, जो सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय हो, जिसमें भारतीय संस्कृति, आर्ष साहित्य और संस्कृत को समुचित स्थान प्राप्त हो और जिससे इस देश के बालकों में अपने धर्म, संस्कृति तथा देश के प्रति आस्था व कर्तव्यपालन की भावना का विकास हो। इस दिशा में उन्होंने जो प्रयत्न किया, उसके परिणामस्वरूप गुरुकुल ने केवल १५ वर्ष के लगभग समय में एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया। सन् १९१७ में गुरुकुल काँगड़ी में ब्रह्मचारियों की कुल संख्या ३४० हो गई थी। २७६ ब्रह्मचारी विद्यालय विभाग में थे, और ६४ महाविद्यालय विभाग में। वर्तमान समय की भारतीय शिक्षण-संस्थाओं को दृष्टि में रखने पर गुरुकुल के विद्यार्थियों की यह संख्या कम प्रतीत होती है। पर यह नहीं भूलना चाहिये कि गुरुकुल में विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में रहना अनिवार्य था, और उसमें विद्यार्थियों का प्रवेश सात-आठ साल की आयु तक ही हो सकता था। इस छोटी आयु में जो विद्यार्थी गुरुकुल की पहली या दूसरी कक्षा में प्रविष्ट होते थे, वही एक-एक कक्षा उत्तीर्ण कर ऊपर उठते जाते थे। महाविद्यालय विभाग में भी केवल वही विद्यार्थी प्रवेश पाते थे, जिन्होंने गुरुकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कर अधिकारी (दसवीं की) परीक्षा उत्तीर्ण की हो। किसी बाह्य विद्यार्थी के लिए गुरुकुल में प्रवेश पा सकना सम्भव ही नहीं था। बीसवीं सदी के प्रथम चरण में गुरुकुल के छात्रावास का अनुशासन भी इतना कठोर था कि बहुत कम माता-पिता अपनी सन्तान को उतना अनुशासित एवं तपोमय जीवन बिताने के लिए गुरुकुल भेजने के लिए तैयार होते थे। साथ ही, गुरुकुल के पास धन और साधनों की इतनी कमी थी कि अधिक विद्यार्थियों को प्रविष्ट कर सकना क्रियात्मक भी नहीं था। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए यह स्वीकार करना होगा कि कुछ ही वर्षों में गुरुकुल का जो विकास हो गया था, वह सन्तोषजनक था।

विकसित होकर गुरुकुल ने जो रूप प्राप्त कर लिया था, वह एक ऐसी शिक्षण-संस्था का था, जिसमें प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकार की विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई की समुचित व समुत्तलित व्यवस्था थी। गुरुकुल की अधिकारी परीक्षा के लिए निम्नलिखित विषय नियत थे - संस्कृत साहित्य, संस्कृत व्याकरण, धर्मशिक्षा, आर्यभाषा (हिन्दी), गणित, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, विज्ञान (रसायन और भौतिकी) और आलेख्य। धर्मशिक्षा में मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश तथा वेदशास्त्रों के कतिपय सन्दर्भ पढ़ाये जाते थे। संस्कृत व्याकरण में अष्टाध्यायी, सिद्धान्त कौमुदी या काशिका और महाभाष्य के नवाह्निक भाग को रखा गया था। हिन्दी का स्तर बहुत ऊँचा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। गणित सबके लिए अनिवार्य थी। इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र और विज्ञान भी सबको अनिवार्य रूप से पढ़ने होते थे। विज्ञान को इतिहास आदि के विकल्प रूप में नहीं रखा गया था, और इन सब विषयों की पढ़ाई का स्तर सरकारी यूनिवर्सिटियों की मैट्रिकुलेशन परीक्षा के स्तर के मुकाबले में किसी भी प्रकार कम नहीं था। यही दशा अंग्रेजी भाषा की भी थी। भेद केवल इतना था, कि गुरुकुल में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न होकर हिन्दी थी। उस समय गुरुकुल में अधिकारी परीक्षा के लिए जो कोर्स था, उसे पढ़कर विद्यार्थी संस्कृत में शास्त्री के समकक्ष और अन्य विषयों में मैट्रिक के बराबर योग्यता प्राप्त कर लेते थे। यह इस कारण सम्भव था कि गुरुकुल के सब विद्यार्थी छात्रावास में रहते हुए अनुशासित जीवन बिताते थे, और उनका सब ध्यान विद्याभ्यास में लगा रहता था।

लाला रलाराम के हस्ताक्षरों से प्रकाशित गुरुकुल की प्रथम नियमावली में विद्यालय विभाग में १२ कक्षाएँ रखी गई थीं, पर गुरुकुल जिस रूप में विकसित हुआ उसमें देश के अन्य स्कूलों के समान विद्यालय की पढ़ाई दस वर्षों की ही थी। प्रथम नियमावली से एक अन्य महत्त्वपूर्ण भेद यह था कि अंग्रेजी की पढ़ाई छठी कक्षा से शुरू कर दी जाती थी, जबकि सभा द्वारा स्वीकृत नियमावली में उसका प्रारम्भ नौवीं कक्षा से किया जाना चाहिये था। जिन बातों को लेकर आचार्य गंगादत्त गुरुकुल छोड़कर चले गये थे, उनमें एक यह भी थी।

महाविद्यालय विभाग में संस्कृत, वेद, दर्शनशास्त्र और अंग्रेजी सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य विषय थे। इनके अतिरिक्त एक अन्य विषय पर्याय विषय के रूप में लेना होता था। जो विद्यार्थी वेदों का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहें, वे 'विस्तृत वैदिक साहित्य' को पर्याय विषय के रूप में ले सकते थे। प्रथम नियमावली में जिसे 'वेद विभाग' कहा गया था, और जिसमें विद्यार्थियों से सांगोपांग चारों वेदों और उनके ब्राह्मणों के अध्ययन की अपेक्षा की गई थी, उसका निर्माण उन्हीं विद्यार्थियों से होता था, जो विस्तृत वैदिक साहित्य को पर्याय विषय के रूप में लेते थे। शिक्षा पूर्ण करने पर इन्हें 'वेदालंकार' की डिग्री दी जाती थी। महाविद्यालय विभाग में जिन अन्य पर्याय विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध था, वे निम्नलिखित थे—आर्यसिद्धान्त, रसायन, इतिहास, पाश्चात्य दर्शन, कृषि और गणित। आर्यसिद्धान्त में विविध धर्मों व सम्प्रदायों का तुलनात्मक अध्ययन होता था। इसे पर्याय विषय के रूप में लेने वाले स्नातकों को 'सिद्धान्तालंकार' की डिग्री दी जाती थी। आर्यसमाज के प्रचारकों की विशेष आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ही इस विषय को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। सन् १९१६ में महाविद्यालय विभाग में कुल ६४ विद्यार्थी थे। उनके पर्याय विषय इस प्रकार थे—

विषय	संख्या
विस्तृत वैदिक साहित्य	२
आर्यसिद्धान्त	९
रसायन	२४
इतिहास	९
पाश्चात्य दर्शन	८
कृषि	८
गणित	४
सर्वयोग	६४

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि गुरुकुल की प्रथम नियमावली में जिस वेद विभाग की स्थिति को प्रधान रखने की वात कही गई थी, क्रिया में उसका स्थान गौण हो गया था, क्योंकि केवल दो विद्यार्थियों ने विस्तृत वैदिक साहित्य को पर्याय विषय के रूप में लिया था। गुरुकुल के ब्रह्मचारी रसायन के अध्ययन को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। रसायन (कैमिस्ट्री) एक आधुनिक विज्ञान है, और अर्वाचीन युग में उसका बहुत महत्त्व है। पर्याय विषय के रूप में आयुर्वेद का अध्यापन अभी शुरू नहीं हुआ था। बाद में वह सर्वाधिक लोकप्रिय विषय हो गया, और भावी जीवन को दृष्टि में रखकर बहुत-से ब्रह्मचारी आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए प्रवृत्त हुए। इतिहास, गणित, रसायन आदि को पर्याय विषय के रूप में लेने वाले विद्यार्थियों को 'विद्यालंकार' की डिग्री दी जाती थी। ध्यान देने योग्य वात यह है, कि विद्यार्थी का चाहे कोई भी पर्याय विषय क्यों न हो, उसके लिए संस्कृत, वेद तथा दर्शन की पढ़ाई अनिवार्य थी। इन विषयों का पाठ्य-क्रम वहुत उच्च स्तर का था, और इनके अध्ययन के लिए वहुत समय नियत था। इसी का परिणाम था कि गुरुकुल का प्रत्येक स्नातक, चाहे उसका पर्याय विषय गणित, रसायन, इतिहास आदि कोई भी क्यों न हो, संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित होता था, और वेदशास्त्रों में उसकी समुचित गति होती थी। गुरुकुल के पहले स्नातक संवत् १९६८ (सन् १९१२) में हुए थे। सन् १९१७ तक वहाँ से पढ़कर स्नातक हुए ब्रह्मचारियों की कुल संख्या ३२ थी, जिनमें वेदालंकार एक भी नहीं था। केवल दो सिद्धान्तालंकार थे, और शेष सब ने विद्यालंकार की डिग्री प्राप्त की थी। पर इसमें सन्देह नहीं, कि अब गुरुकुल का विकास एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्था के रूप में हो गया था और उसकी शिक्षा पद्धति की ओर देश-विदेश के विद्वानों एवं शिक्षाविज्ञों का ध्यान आकृष्ट होने लग गया था। शिक्षा-संसार में उसने महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली थी।

आर्य जनता तो गुरुकुल की ओर शुरू से ही आकृष्ट थी। वहाँ बालकों को प्रवेश कराने की माँग इतनी अधिक थी कि सबको प्रविष्ट कर सकना सम्भव ही नहीं था। इसका कारण साधनों और धन की कमी ही थी। परिणाम यह हुआ, कि अन्य स्थानों पर गुरुकुल की शाखाएँ खुलनी प्रारम्भ हुईं। सबसे पहली शाखा मुलतान में खुली। मुलतान शहर से तीन मील की दूरी पर ताराकुण्ड के समीप २३ फरवरी, सन् १९०९ को गुरुकुल की मुलतान शाखा स्थापित हुई, और काँगड़ी गुरुकुल के समान वह भी निरन्तर उन्नति करता गया। वहाँ केवल विद्यालय विभाग रखा गया, जिसमें वही पाठयक्रम था, जो काँगड़ी के विद्यालय में था। मुलतान गुरुकुल की अधिकारी परीक्षा गुरुकुल काँगड़ी में ही ली जाती थी, और उसे उत्तीर्ण कर विद्यार्थी काँगड़ी के महा-विद्यालय विभाग में प्रवेश प्राप्त कर लेते थे। मुलतान के दो वर्ष पश्चात् गुरुकुल की दूसरी शाखा कुरुक्षेत्र में खुली। थानेसर के रईस लाला ज्योतिप्रसाद ने कुरुक्षेत्र में गुरुकुल खोलने के लिए १०४८ बीघा भूमि और दस हजार रुपयों की राशि समर्पित की। कुरुक्षेत्र में गुरुकुल की आधारशिला रखते हुए महात्मा मुंशीराम ने ये शब्द कहे थे—"आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व इसी कुरुक्षेत्र भूमि में आर्यावर्त्त के विनाश का बीज बोया गया था। इसी भूमि में आज आर्यावर्त्त की उन्नति के लिए यह बीज बोया गया है।" सन् १९१२ में देहली के समृद्ध व्यापारी सेठ रघूमल ने एक लाख रुपया इस प्रयोजन से दिया कि देहली के क्षेत्र में भी गुरुकुल की एक शाखा स्थापित कर दी जाए। इसके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामस्वरूप देहली नगर से दस मील दूर अरावली के पार्वत्य क्षेत्र में इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल की स्थापना हुई। सन् १९१५ में हरयाणा में गुरुकुल की एक अन्य शाखा खोली गई, जो रोहतक जिले में मटिण्डु नामक स्थान पर है। यह यमुना की एक शाखा-नहर के तट पर अत्यन्त रमणीक स्थान पर स्थित है। चौधरी पीरुसिंह का मटिण्डु गुरुकुल की स्थापना में विशेष कर्तृत्व था। कुछ समय पश्चात् सूपा (गुजरात) में गुरुकुल काँगड़ी की एक अन्य शाखा स्थापित हुई, और हरयाणा में तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली इतनी लोकप्रिय हो गई कि भैंसवाल, झज्जर आदि अन्य भी अनेक स्थानों पर गुरुकुल खुलने लगे।

सन् १९१६ तक गुरुकुल ने एक लोकप्रिय आन्दोलन का रूप प्राप्त कर लिया था, और बिहार, संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश), बम्बई (महाराष्ट्र) आदि अन्य प्रान्तों में भी गुरुकुल खुलने प्रारम्भ हो गये थे। इन सब प्रान्तों में पृथक् आर्य प्रतिनिधि सभाएँ विद्यमान थीं। उन्होंने भी अपने-अपने क्षेत्र में गुरुकुलों की स्थापना की। गुरुकुल वृन्दावन (संयुक्त प्रान्त) आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली आर्यसमाज के क्षेत्र के बाहर भी लोकप्रिय हुई। सनातन धर्म के अनुयायियों ने हरिद्वार में ऋषिकुल की स्थापना की, और जैनियों ने पञ्चकूल (चण्डीगढ़ के समीप) में जैन गुरुकुल की। ये व इसी प्रकार की अनेक संस्थाएँ गुरुकुल काँगड़ी को सम्मुख रखकर ही स्थापित की गई थीं। सन् १९०२ के प्रारम्भ में काँगड़ी में जिस शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया गया था, १९१६ तक वह उन्नति और लोकप्रियता के मार्ग पर पर्याप्त रूप से अग्रसर हो गई थी। उस समय तक भारत में ये ही ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ थीं, जिन्हें 'राष्ट्रीय' कहा जा सकता था और जो ब्रिटिश शासन के विदेशी प्रभाव से मुक्त रह कर एक ऐसी शिक्षा के प्रसार में तत्पर थीं, जिससे विद्यार्थियों में अपने देश, धर्म एवं संस्कृति के प्रति प्रेम, भक्ति तथा गौरव के भावों का संचार होता था।

(९) सरकार और गुरुकुल

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात हो गया था। अनेक क्रान्तिकारी इस काल में सक्रिय थे, और बंग-भंग के पश्चात् स्वदेशी आन्दोलन ने पर्याप्त उग्र रूप प्राप्त कर लिया था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस गरम और नरम दो दलों में विभक्त हो गई थी, और सूरत कांग्रेस (सन् १९०७) में गरम (एक्सट्रीमिस्ट) दल कांग्रेस से अलग हो गया था। यह सर्वथा स्वाभाविक था कि देश की इस नयी जागृति और स्वातन्त्र्य-भावना का पंजाब पर भी प्रभाव पड़े, और वहाँ भी विदेशी शासन के प्रति असन्तोष में वृद्धि होती जाए। पंजाब में आर्यसमाज बहुत सक्रिय था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में राजधर्म का भी प्रतिपादन किया था, और अपना यह मन्तव्य भी प्रकट किया था, कि "कोई कितना ही कहे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वही सर्वोत्तम होता है।" भारत के अतीत गौरव की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कर महर्षि ने उसकी वर्तमान दुर्दशा का करुण चित्र खींचा था और भारतीयों को स्वराज्य और देश की उन्नति के लिए प्रेरणा दी थी। डा० एच० डी० ग्रिसवोल्ड के शब्दों में महर्षि यह चाहते थे, कि "भारत में भारतीयों का अपना धर्म रहे और भारत की प्रभुसत्ता भारतीयों के ही हाथों में रहे।" इसीलिए आर्यसमाज के प्रचारक जहाँ वैदिक धर्म का प्रचार करते थे, वहाँ साथ ही जनता को स्वदेश की उन्नति के लिए भी

प्रेरित करते थे। पंजाब में आर्यसमाज ही एक ऐसी प्रबुद्ध संस्था थी, जिस द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया जा रहा था। इस दशा में यह अस्वाभाविक नहीं था, कि जब बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में पंजाब में स्वाधीनता के लिए संघर्ष का सूत्रपात होने लगा, तो अंग्रेजी सरकार आर्यसमाज को उसके लिए उत्तरदायी ठहराये। सरकारी अफसर यह समझने लगे कि सब आर्यसमाजी राजद्रोही हैं और उन्हें सेना एवं प्रशासन में कोई स्थान नहीं देना चाहिये। अनेक आर्यसमाजियों को सरकारी सर्विस और सेना से पृथक् कर दिया गया, और बहुतों को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह के मुकदमें चलाये गये। अक्तूबर, १६०८ में पटियाला में ८४ आर्य सभासदों को गिरफ्तार कर लिया गया, और उनके विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा दायर कर दिया गया। आर्यसमाज के अन्यतम नेता लाला लाजपतराय को भी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था। ऐसे समय महात्मा मुंशीराम ने सरकार के प्रकोप से आर्यसमाज और आर्य सभासदों की रक्षा करने के लिए अनुपम कर्तृत्व प्रदर्शित किया। न केवल सद्धर्म प्रचारक में ही, अपितु, पंजाब के प्रमुख अंग्रेजी समाचारपत्रों में भी उन्होंने आर्यसमाज के पक्ष में अनेक लेख लिखे, और पटियाला के आर्य अभियुक्तों के मुकदमें की पैरवी के लिए उन्होंने 'आर्य रक्षा समिति' का संगठन किया। लाला रोशनलाल और दीवान बदरीदास सदृश प्रसिद्ध वकीलों के साथ वह भी पटियाला के कोर्ट में अभियुक्तों की ओर से पेश हुए। राजनीति के साथ आर्यसमाज का क्या सम्बन्ध था, और इस समय आर्यसमाज पर राजद्रोह के जो आरोप लगाये जा रहे थे उनमें कितनी सचाई थी, इन विषयों पर इस इतिहास के छठे भाग में विशद रूप से प्रकाश डाला जाएगा। यहाँ इन बातों का उल्लेख केवल इस कारण किया गया है, क्योंकि गुरुकुल काँगड़ी भी इस समय सरकार के सन्देह व तिरछी नजर से नहीं बचा रह सका था। गुरुकुल आर्यसमाज की प्रमुख शिक्षण-संस्था थी और उसका संचालन पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के हाथों में था। इस दशा में यह स्वाभाविक था कि सरकार का ध्यान गुरुकुल की ओर जाए और उसे सन्देह होने लगे कि यह संस्था भी राजद्रोहियों का अड्डा है। सरकारी अफसरों की दृष्टि में गुरुकुल काँगड़ी एक रहस्य था। सघन और दुर्गम जंगल के बीच एकान्त प्रदेश में एक ऐसी शिक्षण-संस्था स्थापित थी, जिसमें एक भी अध्यापक अंग्रेज नहीं था, जिसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न होकर हिन्दी भाषा थी, जिसकी अपनी पाठ्यपुस्तकें थीं, जिसकी अपनी स्वतन्त्र पाठविधि थी, जिस द्वारा अपनी पृथक् डिग्रियाँ दी जाती थीं, जिसका सरकार से कोई भी सम्बन्ध नहीं था; और जो अपने खर्च के लिए सरकार से कोई भी सहायता प्राप्त न कर पूर्णतया जनता पर निर्भर थी। सरकार के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह इस संस्था की उपेक्षा कर सके। उसके अफसर गुरुकुल पर निगाह रखने लगे, और उसके गुप्तचर गुरुकुल का भेद लेने का प्रयत्न करने लगे। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में अनेक गुप्त सरकारी रिपोर्टें गुरुकुल के सम्बन्ध में तैयार की गईं, जिनमें इस संस्था को 'अनन्त भयंकर और रहस्यमय खतरे का स्रोत' (सोर्स ऑफ़ इनफिनिट टैरिबल एण्ड अननोन डेन्जर) बताया गया। ऐसी रिपोर्टों के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना उपयोगी होगा—

"पंजाब की पुलिस की रिपोर्टों में यह दर्ज है कि सन् १८६६ में जब लाला मुंशीराम अमृतसर के पण्डित रामभजदत्त के साथ गुजरात, सियालकोट और गुजरांवाला का दौरा करते हुए धनसंग्रह कर रहे थे, तब उन्होंने सरकार की निन्दा शरारत से भरे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए शब्दों में अन्य बातों के साथ यह कहते हुए की थी कि सिपाही कितने मूर्ख हैं जो सतरह-अठारह रुपयों पर भरती होकर अपना सिर कटवाते हैं। गुरुकुल में शिक्षित होने के बाद ऐसा करने वाले आदमी सरकार को नहीं मिलेंगे।"

"विचारणीय विषय है कि गुरुकुल से निकले हुए इन संन्यासियों का राजनीति के साथ क्या सम्बन्ध रहेगा? इस सम्बन्ध में महाशय रामदेव की लिखी हुई गुरुकुल की एक रिपोर्ट की भूमिका बड़ी रोचक है। उसके अन्त में लिखा है कि गुरुकुल में दी जाने वाली शिक्षा सर्वांश में राष्ट्रीय है। आर्यसमाजियों का 'बाइबल' सत्यार्थप्रकाश है, जो देशभक्ति के भावों से ओतप्रोत है। गुरुकुल में इतिहास इस प्रकार पढ़ाया जाता है, जिससे ब्रह्मचारियों में देशभक्ति की भावना उद्दीप्त हो। उनमें उपदेश और उदाहरण दोनों से देश के लिए उत्कट प्रेम पैदा किया जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि गुरुकुल में यत्नपूर्वक ऐसे राजनीतिक संन्यासियों का जाल तैयार किया जा रहा है, जिसका मिशन सरकार के अस्तित्व के लिए भयानक संकट पैदा कर देगा।"

"गुरुकुल की दीवारों पर ऐसे चित्र लगे हुए हैं, जिनमें अंग्रेजी राज से पहले की भारत की अवस्था और अंग्रेजों के कलकत्ता आने की अवस्था दिखायी गई है। लखनऊ के सन् १८५७ के राज-विद्रोह के चित्र भी लगाये गये हैं। बिजनौर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर एफ० फोर्ड ने जान ऑफ् आर्क का भी वह बड़ा चित्र गुरुकुल में लगा हुआ देखा था, जिसमें वह अंग्रेजों के विरुद्ध सेना का संचालन कर रही हैं।"

"इस पद्धति (गुरुकुल शिक्षा प्रणाली) से जो युवक तैयार होंगे, वे सरकार के लिए अत्यन्त भयानक होंगे। उनमें वह शक्ति होगी, जो इस समय के आर्यसमाजी उपदेशकों में नहीं है। उनमें पैदा हुआ व्यक्तिगत दृढ़ विश्वास और अपने सिद्धान्त के लिए कष्ट सहन करने की भावना, अपितु समय आने पर प्राणों तक को न्यौछावर कर देना, साधारण जनता पर बहुत प्रभाव डालेगा। इससे उनको अनायास ही ऐसे अनगिनत साथी मिल जाएँगे, जो उनके मार्ग का अवलम्बन करेंगे और उनसे भी अधिक उत्साह से काम करेंगे। यह याद रखना चाहिये कि उनका उद्देश्य सारे भारत में एक ऐसे जाति-धर्म की स्थापना करना होगा, जिससे सारे हिन्दू एक भ्रातृभाव की शृंखला में बँध जाएँगे। वे सब दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की इस आज्ञा का पालन करेंगे कि 'श्रद्धा और प्रेम से अपने तन, मन, धन—सर्वस्व को देशहित के लिए अर्पण कर दो'।"

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में सरकार गुरुकुल काँगड़ी को किस दृष्टि से देख रही थी, यह ऊपर दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है। यह सही है कि गुरुकुल की शिक्षा से विद्यार्थियों में स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावनाएँ उत्पन्न होती थीं और वे धर्म तथा देश की सेवा के लिए प्रेरणा प्राप्त करते थे। पर यह कहना समुचित नहीं होगा, कि गुरुकुल राजद्रोह का अड्डा था और वहाँ के निवासी सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में तत्पर थे। गुरुकुल के सम्बन्ध में अपने रुख को सही करने में उन अनेक अंग्रेज व पाश्चात्य यात्रियों के लेखों से सरकार को बहुत सहायता मिली, जो सन् १९१० के लगभग गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से आकृष्ट होकर उसके मूर्तरूप का स्वयं अवलोकन करने के लिए काँगड़ी आने लगे थे। गुरुकुल के इन पाश्चात्य दर्शकों में मि० सी० एफ० एण्ड्रूज सबसे प्रधान थे। वह सन् १९०४ में भारत आये थे, और दिल्ली के सेण्ट स्टीफन्स कॉलिज में उन्होंने अध्यापन का कार्य शुरू किया था। १९१२ में उनका महात्मा मुंशीराम से परिचय

हुआ था, और जनवरी, १९१३ में वह गुरुकुल आये थे। गुरुकुल के सम्बन्ध में उन्होंने मॉडर्न रिव्यू (कलकत्ता) में एक लेख लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित थीं —"जिस भारत को मैं जानता था, जिस भारत से मैं प्रेम करता था, जो भारत मेरे स्वप्नों में था, वह मुझे यहाँ देखने को मिला। मैंने अपने सम्मुख उस मातृभूमि को देखा, जो न शोकातुर थी और न श्रान्त व क्लान्त, जिसमें अनन्त अनश्वर यौवन था, जो वसन्त के समान ताजा व नवयौवना थी। यहाँ गुरुकुल में यह नव भारत विद्यमान था।" मि० एण्ड्रूज गुरुकुल से इतने अधिक प्रभावित हुए थे, कि अपने मित्र मि० पियर्सन के साथ कई सप्ताह उन्होंने गुरुकुल में निवास किया था। महात्मा मुंशीराम के वह घनिष्ट मित्र बन गये थे, और उनमें सौहार्द्रपूर्ण पत्र-व्यवहार होता रहता था। पाश्चात्य दर्शकों ने गुरुकुल को देखकर व कुछ समय वहाँ बिताकर उसके विषय में जो लेख लिखे, उनमें इस संस्था की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी, और यह बताया गया था कि इसकी स्थापना भारतीय धर्म एवं संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों व आदर्शों के वातावरण में शिक्षा प्रदान करने के लिए की गई है। इसके सम्मुख कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है। सरकार पर भी इन लेखों का प्रभाव पड़ा, और वह गुरुकुल के विषय में अधिक गम्भीरता से सचाई का पता करने को प्रवृत्त हुई। मि० एण्ड्रूज भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड हार्डिन्ज तथा संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन से भली-भाँति परिचित थे, और उनमें घनिष्ट सम्बन्ध विद्यमान था। मि० एण्ड्रूज की सम्मति से वे बहुत प्रभावित हुए।

गुरुकुल के विषय में सरकार के रुख का सही ढंग से निर्धारण करने के लिए सर जेम्स मेस्टन ६ मार्च, १९१३ को गुरुकुल आए। उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया, और एक अभिनन्दनपत्र भी उनकी सेवा में प्रस्तुत किया गया। उसका उत्तर देते हुए सर मेस्टन ने कहा—"न केवल संयुक्त प्रान्त में ही, अपितु सम्पूर्ण भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जो परीक्षण किये गये हैं, गुरुकुल उनमें सबसे अधिक मौलिक व महत्त्वपूर्ण है।" राजनीति के साथ गुरुकुल के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—"मैं उस समुदाय (कम्यूनिटी) से मिलना चाहता था, जिसे सरकारी रिपोर्टों में अनन्त, भयंकर और अज्ञात खतरे का स्रोत कहा जाता है। उसका सबसे उत्तम उत्तर मेरा यहाँ आना ही है। सर्वाधिक आश्चर्यपूर्ण, दिलचस्प एवं भावोत्तेजक संस्थाओं में से एक का अवलोकन कर मुझे अत्यधिक लाभ हुआ है।...इस संस्था में जहाँ राजनीति है ही नहीं, मैं राजनीतिक पहलू पर कुछ नहीं कहूँगा।" सर जेम्स मेस्टन १९ फरवरी, १९१४ को दुबारा गुरुकुल आए। गुरुकुल का पुनः अवलोकन कर वह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वहाँ के कार्यकर्ताओं के त्याग तथा सेवा की भावना, प्रबन्ध तथा शिक्षा की व्यवस्था और ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए यह कहा—"एक आदर्श विश्वविद्यालय की मेरी कल्पना गुरुकुल में मूर्तरूप लिये हुए है।" सर जेम्स मेस्टन के पहली बार गुरुकुल आने के पश्चात् संयुक्त प्रान्त की विधान परिषद् में रायबहादुर बाबू गंगाप्रसाद ने लैफ्टिनेण्ट गवर्नर महोदय की गुरुकुल यात्रा की चर्चा करते हुए कहा था—"मैं श्रीमान् को उस राजनीतिज्ञतापूर्ण और साहसिक कार्य के लिए बधाई देना चाहता हूँ, जो आपने उन देशभक्त शिक्षकों को दर्शन देकर किया है जो महात्मा मुंशीराम के नेतृत्व तथा संरक्षकता में राष्ट्रीय ढंग पर शिक्षा के क्षेत्र में अलौकिक परीक्षण कर रहे हैं और जिन्होंने पश्चिम की अच्छाइयों को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी आदर्शों के साथ मिला कर एक कर दिया है। मैं श्रीमानों के गुरुकुल पधारने को इसलिए साहसपूर्ण कार्य कहता हूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि इस प्रान्त के अधिकतर अफसर झूठी और स्वार्थपूर्ण रिपोर्टों के आधार पर आपके हृदय में यह सन्देह पैदा कर रहे थे कि गुरुकुल भारत के शान्त विकास में विघ्न पैदा करने वाले लोगों को उत्पन्न करने में लगा हुआ है। आपके गुरुकुल पधारने और वहाँ की गई घोषणा से आशा है कि ऐसे लोगों के विचार गुरुकुल के सम्बन्ध में बदल जाएँगे। आपने उन लोगों को सचमुच प्रोत्साहन दिया है, जो जनता की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति में लगे हुए हैं। इससे वे लोग गवर्नमेण्ट के अधिक समीप आ जाएँगे, जिनके हृदय अपनी मातृभूमि को फिर से पुरातन गौरव प्राप्त किया हुआ देखने को उतावले हो रहे हैं।"

सर जेम्स मेस्टन की गुरुकुल यात्राओं के कारण सरकारी क्षेत्रों में गुरुकुल की चर्चा बढ़ गई थी, और देश-विदेश के विद्वान् एवं शिक्षाशास्त्री भी इस निराले ढंग की शिक्षण-संस्था के प्रति आकृष्ट होने लगे थे। ब्रिटेन से जो प्रमुख व्यक्ति इस काल में गुरुकुल आए, उनमें ब्रिटेन के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के नेता मि० सिडनी वैब तथा ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता (जो बाद में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री भी बने) मि० रामजे मैकडॉनल्ड के नाम उल्लेखनीय हैं। इंग्लैण्ड लौटकर मि० मैकडॉनल्ड ने 'डेली क्रानिकल' में अपनी भारत-यात्रा के सम्बन्ध में जो लेख लिखा था, उसके कुछ अंश इस प्रकार थे—"भारत में राजद्रोह के सम्बन्ध में जिन्होंने कुछ थोड़ा भी पढ़ा है, उन्होंने गुरुकुल नाम अवश्य सुना होगा, जहाँ कि आर्यसमाजियों के बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं। आर्यों की भावना और सिद्धान्तों का यह अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्तरूप है। इस उन्नतिशील धार्मिक संस्था, आर्यसमाज, के सम्बन्ध में जितने भी सन्देह किये जाते हैं, वे सब इस गुरुकुल पर लाद दिये गये हैं। इसीलिए सरकार की इस पर टेढ़ी नजर है। पुलिस अफसरों ने इसके सम्बन्ध में गुप्त रिपोर्टें की हैं, और अधिकांश एंग्लो-इण्डियन लोगों ने इसकी निन्दा की है।…सरकारी लोगों के लिए गुरुकुल एक पहेली है। अध्यापकों में एक भी अंग्रेज नहीं है। अंग्रेजी साहित्य की पढ़ाई और उच्च शिक्षा के लिए पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा नियुक्त पुस्तकें भी यहाँ काम में नहीं लायी जातीं। सरकारी यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं के लिए यहाँ से किसी भी विद्यार्थी को नहीं भेजा जाता और विद्यार्थियों को अपनी ही डिग्रियाँ दी जाती हैं। सचमुच यह सरकार की अवज्ञा है। घबराये हुए सरकारी अधिकारी के मुँह से इसके लिए पहली बात यही निकलेगी कि यह स्पष्ट राजद्रोह है। परन्तु गुरुकुल के विषय में यह अन्तिम राय नहीं हो सकती। सन् १८३५ के प्रसिद्ध लेख में भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में मैकॉले द्वारा विचार प्रकट करने के बाद भारत के शिक्षा के क्षेत्र में यह पहला ही प्रशस्त प्रयत्न किया गया है। उस लेख के परिणामों से प्रायः सभी भारतवासी असन्तुष्ट हैं। किन्तु जहाँ तक मुझे मालूम है, गुरुकुल के संस्थापकों के सिवा किसी और ने उस असन्तोष को कार्य में परिणत करते हुए शिक्षा के क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है।…मैं स्वप्न में किसी को यह कहते हुए सुन रहा हूँ कि हम केवल यह चाहते हैं कि शान्ति से हमें ईश्वर का भजन करने दो। क्या यही राजद्रोह है ?"

२० जून, १९१४ को इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध पत्र "न्यू स्टेट्समैन' में आर्यसमाज के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें गुरुकुल के विषय में लिखी गई निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—"भारतीय दृष्टि से इस संस्था की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण

दूसरे प्रकार की संस्थायें पुत्री पाठशालाएँ और कन्या विद्यालय थे। ये राज्य सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत पाठ-विधि के अनुसार कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था करते थे। सरकार द्वारा वनाये गये सभी विधि-विधानों का पालन करते थे, और सरकार से अपनी संस्थाओं के लिए यथासम्भव अधिक-से-अधिक अनुदान प्राप्त करने का प्रयास करते थे। इनके पाठ्यक्रम की एक विशेषता यह थी कि इनमें कन्याओं को आर्य संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान धर्मशिक्षा के एक पृथक् विषय के रूप में दिलाया जाता था। इसमें वेद, गीता, उपनिषद्, दर्शन और सत्यार्थप्रकाश पढ़ाये जाते थे, तथा आर्य-समाज से सम्बद्ध धर्मशिक्षा विषय की शिक्षा दी जाती थी। यह विषय सव छात्राओं को अनिवार्य रूप से पढ़ना होता था। इनके छात्रावासों में नियमित रूप से संध्या-हवन की व्यवस्था थी। कन्या गुरुकुलों की तुलना में पुत्री पाठशालाओं की संख्या वहुत थी, क्योंकि इनका चलाना वहुत आसान था। सरकारी अनुदान मिलने के कारण इनके संचालन में कोई विशेष आर्थिक समस्या नहीं थी और सरकारी स्कूलों में प्रचलित विषय पढ़ाने के कारण अध्यापिकायें प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं थी, जबकि कन्या गुरुकुलों में व्याकरण, वेद आदि पढ़ाने वाली, आर्यसमाजी विचारधारा को रखने वाली महिला अध्यापिकाओं को प्राप्त करना एक वड़ी जटिल समस्या थी। कन्या पाठशालायें उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों में आर्यसमाज का अनिवार्य अंग वन गयीं, क्योंकि आर्यसमाज के लिए बनाये गये भवनों का उपयोग तो केवल समाज के सत्संग के लिए सप्ताह में एक वार--रविवार को अवकाश के दिन होता था। किन्तु पुत्री पाठशाला के लिए सप्ताह के शेष दिनों में इसके भवनों का उपयोग सुविधापूर्वक किया जा सकता था। उत्तरप्रदेश और पंजाव के अधिकांश शहरों में प्रायः हर आर्यसमाज के साथ पुत्री पाठशाला स्थापित की जाने लगी।

स्त्रीशिक्षण-संस्थाओं का विकास—आर्यसमाज के इतिहास में स्त्रीशिक्षण-संस्थाओं का विकास तीन वड़े युगों में बाँटा जा सकता है—(१) कन्या महाविद्यालय युग (१८९० से १९२२)--कन्या महाविद्यालय अपने ढंग की एक अनूठी और अनोखी संस्था थी। इसने आर्यसमाज में स्त्रीशिक्षा के कार्य का श्रीगणेश किया और प्रवल विघ्न-वाधाओं के होते हुए भी इसे इतनी सफलता से सम्पन्न किया कि यह अपने समय की आदर्श अनुकरणीय संस्था वन गयी और इसके नमूने पर अनेक आर्यसमाजों ने अपने यहाँ कन्या महाविद्यालय शुरू किये। (२) दूसरा युग कन्या गुरुकुलों का है। यह १९२३ में कन्या गुरुकुल, देहरादून की स्थापना से शुरू होता है। इसके वाद उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि विभिन्न प्रान्तों में कन्या गुरुकुलों की स्थापना हुई। (३) तीसरा युग १९५६ से दिल्ली में नरेला कन्या गुरुकुल की स्थापना के साथ शुरू हुआ। यह कन्या गुरुकुलों की आर्ष-पद्धति के विकास का युग है। इस आर्ष-पद्धति के जन्मदाता स्वामी व्रतानन्द और आचार्य भगवानदेव थे। इनका यह विश्वास था कि देहरादून आदि के कन्या गुरुकुलों में महर्षि की सत्यार्थप्रकाश में वर्णित पाठविधि का पूरा अनुसरण नहीं होता है। कन्याओं को महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार वेद-वेदांगों का सम्पूर्ण ज्ञान कराया जाना चाहिये।

अगले अध्यायों में कालक्रम से कन्या महाविद्यालय, जालन्धर का और उसके बाद विभिन्न प्रान्तों के आर्य कन्या गुरुकुलों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायगा। प्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक इमर्सन कहा करता था, "संस्थाएँ व्यक्तियों की लम्बी छाया मात्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं।" आर्य स्त्रीशिक्षण-संस्थाओं के लिए यह उक्ति सर्वांश में सत्य प्रतीत होती है। कन्या महाविद्यालय, जालन्धर उसके संस्थापक लाला देवराज के, कन्या गुरुकुल, देहरादून आचार्य रामदेव तथा आचार्या विद्यावती के, बड़ौदा कन्या महाविद्यालय पण्डित आनन्द-प्रिय के प्रभावशाली व्यक्तित्व और कृतित्व का परिणाम है। अतः इन संस्थाओं का परिचय देते हुए इनके प्रमुख प्रवर्त्तकों तथा संस्थापकों की विचारधारा और व्यक्तित्व का भी संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जायगा।

सातवाँ अध्याय

कन्या महाविद्यालय जालन्धर

(१) कन्या महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज

आर्यसमाज द्वारा स्त्रीशिक्षा के लिए स्थापित की जाने वाली पहली संस्था कन्या महाविद्यालय थी। यह कई दशाब्दियों तक विभिन्न आर्यसमाजों द्वारा खोली जाने वाली कन्या पाठशालाओं और महाविद्यालयों का मार्गदर्शक ज्योतिस्तम्भ बना रहा। अपनी अनेक विशेषताओं के कारण यह अपने युग की एक अतीव महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था थी और ऐसी अन्य शिक्षा-संस्थाओं के लिए आदर्श समझी जाती थी। महात्मा गांधी ने १३ नवम्बर, १९२० को अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ के उद्‌घाटन के समय अपने भाषण में कहा था, "गुजरात नेशनल कॉलिज राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का पहला कॉलिज है। यह सब कन्या महाविद्यालय जालन्धर और गुरुकुल काँगड़ी के उदाहरण सामने रखकर किया जा रहा है।"

इस संस्था के संस्थापक लाला देवराज अपने को स्त्रीशिक्षा का कोलम्बस कहा करते थे, क्योंकि जिस प्रकार कोलम्बस ने नयी दुनिया का पता लगाया था, उसी प्रकार उन्होंने कन्या महाविद्यालय जालन्धर द्वारा स्त्रीशिक्षा की, और इसके माध्यम से नारी शक्ति के जागरण की, नयी क्रान्तिकारी खोज की थी। यह महाविद्यालय अपनी अनेक विलक्षण विशेषताओं के कारण सदा स्मरण किया जायेगा। इसने कन्याओं की शिक्षा के लिए हिन्दी में पहली बार प्राथमिक श्रेणियों के लिए उपयुक्त पुस्तकें तैयार कीं। कन्याओं में शिक्षा प्रसार के साथ-साथ समाज सुधार और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने की भावना उत्पन्न की। वर्तमान भारत में, विशेष रूप से पंजाब के शैक्षणिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में यहाँ से शिक्षा प्राप्त करने वाली स्नातिकाओं ने बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस संस्था का पारिवारिक, राष्ट्रीय, सुधारवादी वातावरण उस समय के सभी नेताओं द्वारा सराहा जाता था। यह महाविद्यालय उत्तर भारत में लड़कियों के लिए उस समय पहला छात्रावास बनाने वाली संस्था थी, जबकि सरकार इसे असम्भव समझती थी। उन दिनों स्त्रीशिक्षा का कार्य ऊसर की खेती समझा जाता था। इस संस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने इस असम्भव समझी जाने वाली स्त्रीशिक्षा को सम्भव बनाया।

स्थापना का कारण—कन्या महाविद्यालय की स्थापना किन कारणों से प्रेरित होकर की गयी, यह बात महात्मा मुंशीराम की डायरी में अंकित २६ जनवरी, १८८६ के निम्नलिखित अवतरण से स्पष्ट हो जाती है—"कचहरी से लौटकर जब अन्दर गया तो वेदकुमारी (महात्माजी की कन्या) दौड़ी हुई आयी और जो भजन पाठशाला से सीख

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर आई थी, सुनाने लगी:—

एक वार ईसा ईसा बोल
तेरा क्या लगेगा मोल ?
ईसा मेरा राम रमैया
ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।

"मैं बहुत चौकन्ना हुआ। पूछने पर पता लगा कि आर्य जाति की पुत्रियों को वैसे गीतों के साथ-साथ अपने शास्त्रों की निन्दा करना भी सिखाया जाता है। निश्चय किया कि अपनी पुत्री पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिये।"

यह छोटी-सी घटना कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्थापना का कारण बनी। श्री मुंशीराम ने इस विषय पर जब अपने अन्य मित्रों तथा सहयोगियों से बात की तो उन्हें पता चला कि अन्य आर्यपुरुषों को भी ऐसी ही शिकायत थी। इसे दूर करने और हिन्दुओं की नयी पीढ़ी को ईसाइयत के रंग में रँगने के प्रयास को विफल करते तथा कन्याओं को अपने धर्म व वैदिक संस्कृति की शिक्षा देने की दृष्टि से जालन्धर में एक आर्य कन्या महाविद्यालय स्थापित करने का निर्णय जालन्धर आर्यसमाज ने किया।

महात्मा मुंशीराम तथा लाला देवराज जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान और मन्त्र थे। वे इस कार्य को सफल बनाने का प्रयास करने लगे। दोनों का यह स्वभाव था कि वे जिस विचार को सोचते थे, उसे तुरन्त कार्यरूप में परिणत करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे और भीषण-से-भीषण विघ्न-बाधाओं के बावजूद उसे पूरा करके छोड़ते थे। महात्मा मुंशीराम तो कुछ समय बाद बालकों की शिक्षा के लिए स्थापित किये जाने वाले गुरुकुल काँगड़ी के स्वप्न को साकार करने में संलग्न हो गये, किन्तु लाला देवराज ने अपना सारा जीवन कन्याओं की शिक्षा में लगा दिया। कन्या महाविद्यालय की स्थापना और विकास के लिए अपना तन-मन-धन समर्पित कर दिया। यदि वह इसके लिए अनथक उद्योग और अध्यवसाय न करते तो इसकी स्थापना नहीं हो सकती थी। यह उनके जीवन का एकमात्र अनन्य कार्य था। उन्होंने इसे ऐसे स्वीकार किया, जैसे कोई व्यक्ति नये धर्म को पूरे जोश के साथ स्वीकार करता है, श्रद्धालु भक्त की तरह एकनिष्ठ होकर उसका पालन करता है और कट्टरपन्थी धर्मान्धता के साथ उसका प्रचार करता है। लाला देवराज के व्यक्तित्व का कन्या महाविद्यालय जालन्धर पर गहरा प्रभाव है। उसका इतिहास और स्वरूप समझने के लिए हमें पहले लालाजी के व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

लाला देवराज का व्यक्तित्व —कन्या महाविद्यालय, जालन्धर लाला देवराज के त्याग, तपस्या, साधना, कल्पना, भावना, धुन, लगन, अध्यवसाय और भगीरथ परिश्रम का परिणाम है। जैसे गुरुकुल काँगड़ी अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम) की कल्पना और साधना का मूर्त रूप है, हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, महामना मदन-मोहन मालवीय की तपस्या की तीर्थभूमि है, शान्ति निकेतन कवीन्द्र रवीन्द्र के स्वप्न की साकार प्रतिमा है, उसी प्रकार कन्या महाविद्यालय जालन्धर लाला देवराज की निष्ठा और साधना की पुण्यस्थली है।

लाला देवराज का जन्म जालन्धर के सुप्रतिष्ठित, सुप्रसिद्ध, सम्पन्न, समृद्ध, कुलीन, जमींदार सोंधी परिवार में हुआ था। उनके पिता शालिगराम शहर के नामी

रईस और साहूकार थे। सरकारी सम्मान की सूचक जैलदारी की पदवी उनके वंश में परम्परागत रूप से चली आ रही थी। लालाजी के पिता आर्यसमाजी और विद्याप्रेमी नहीं थे, किन्तु उन्हें अपने वच्चों को ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दिलाने की आकांक्षा थी। उन्होंने अपने दो वड़े पुत्रों—लाला वालकराम और लाला भक्तराम को वैरिस्टरी की शिक्षा पाने के लिए लण्डन भेजा था। उनकी यह उत्कट इच्छा थी कि अपने वड़े भाइयों की भाँति लाला देवराज भी विदेश में शिक्षा प्राप्त करके कोई वड़ी डिग्री लायें और अपने को सम्पन्न वनाकर परिवार के वैभव में वृद्धि करें।

किन्तु देवराज वचपन से ही वीतराग प्रवृत्ति वाले तथा गुरुनानक जैसे निर्मोही थे। उनका मन घर के कामकाज में तथा पैसा कमाने में नहीं, अपितु धार्मिक, सामाजिक और परोपकारी कार्यों में लगता था। सम्भवतः, इसकी घुट्टी उन्हें अपनी अतीव धर्मनिष्ठ माताजी से मिली थी। वचपन से ही आपके मन में समाज सुधार की उग्र भावना जागृत हो चुकी थी। आपने अपने घर में एक क्लव की स्थापना की। इसके सदस्य सर्वश्री भक्तराम, वालकराम तथा वहनोई लाला मुंशीराम थे। इसके अधिवेशनों में आप वड़ी गम्भीरता से समाज सुधार सम्वन्धी विषयों की चर्चा किया करते थे, अपने वनाये धार्मिक भजन गाया करते थे। इन भजनों को सुनकर इनकी मित्र-मण्डली के सदस्य इनका मजाक उड़ाते थे। क्लव का कमरा उनके हँसी के ठहाकों से गूँज उठता था, किन्तु साथियों का हँसी-मजाक आपको अपने ध्येय से विचलित नहीं कर सका। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि यह मित्र-मण्डली ही जालन्धर में आर्यसमाज का श्रीगणेश करने वाली थी। १८८४ तक इसके चार सदस्यों में सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान इस समाज के मन्त्री लाला देवराज का था। वही इसको शुरू करने वाले थे। उनके दोनों वड़े भाई वैरिस्टर वनकर विलायत से आ गये। उनमें श्री भक्तराम चोटी के फौजदारी वकील तथा जालन्धर के वेताज वादशाह माने जाते थे। उनके वारे में यह प्रसिद्ध था कि वे अपनी कुशल पैरवी से किसी भी खूनी को फाँसी के तख्ते से वचा सकते थे।

किन्तु लाला देवराज अपने भाइयों से सर्वथा भिन्न प्रकृति रखते थे। उनकी अभिरुचि धार्मिक विषयों में थी। वे पिता की नाराजगी सहते हुए भी सांसारिक विषयों से सर्वथा उदासीन रहते थे तथा धार्मिक एवं समाज सुधार के कार्यों में तल्लीन रहते थे। लाला मुंशीराम उन्हीं के प्रभाव से धार्मिक विषयों की ओर आकृष्ट हुए और अपने मद्यप मित्रों का साथ छोड़कर लाला देवराज के साथ आर्यसमाज के कार्यों में वड़ी दिलचस्पी लेने लगे। लाला देवराज ने उन्हें जालन्धर आर्यसमाज का प्रधान बनाया।

लाला देवराज के धार्मिक कार्य उनके पिता के लिए असह्य थे। उनके दो वड़े लड़के विलायत में साहवों जैसा जीवन विता रहे हों और उनका तीसरा पुत्र आर्यसमाज के पीछे दीवाना हो, इसे वे सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपने पुत्र को काफी समझाने-वुझाने की कोशिश की, लेकिन जब पिता की बात पुत्र को समझ न आयी और पिता वहुत गरम होने लगे तो वे पिता के भीषण रोष और असन्तोष से वचने के लिए एक रात को कुछ कपड़े और रुपये लेकर घर से निकल भागे। पिता ने बम्बई, कलकत्ता, करांची आदि सव ओर तार खटखटाये। बीस वर्ष की आयु का वह महत्त्वाकांक्षी युवक कलकत्ता के निकट डायमण्ड हार्वर में तव पकड़ा गया जव वह वहाँ से अण्डमान द्वीप-समूह की ओर जाने की तैयारी में था। उसकी प्रवल अभिलाषा थी कि वह वहाँ जाकर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस जाये और वहाँ के कैदियों में वैदिक धर्म का प्रचार करे। वह घर वापिस लौटने के लिए इसी शर्त पर तैयार हुआ कि उसके कामों में घर वालों की ओर से कभी कोई अड़चन नहीं डाली जायेगी और उसे आर्यसमाज का कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता रहेगी।

इसके बाद वह पूर्णरूप से आर्यसमाज के कामों में जुट गये। उन्होंने अपने जीवन के लिए स्त्रीशिक्षा का कार्य चुन लिया। इस विषय में सबसे बड़ा प्रभाव उनकी माताजी का था। वह कहा करते थे—"मेरे हृदय में माताजी ने मातृपूजा या मातृवन्दना की भावना को जाग्रत किया है, और इसके लिए मैं सदैव उनका ऋणी हूँ।" उनके शब्दों में, "मुझे पूरा विश्वास है कि विश्व की प्रधान शक्ति मातृशक्ति ही है। देश को, समाज को स्वतन्त्र और सुखी बनाने में इसका ही पूरा हाथ होगा। इनकी सेवा समाज की सबसे बड़ी और सच्ची सेवा है। मुझे इसमें बहुत विश्वास है।" वह आजीवन मातृजाति के कल्याण के लिए लगे रहे और इसी दृष्टि से उन्होंने अपनी सारी शक्ति कन्या महाविद्यालय के माध्यम से नारी-जाति के जागरण में लगा दी। इसी समय पहले बताई गयी वेदकुमारी की घटना से उन्हें कन्या महाविद्यालय की स्थापना करने की प्रेरणा मिली।

(२) कन्या महाविद्यालय स्थापित करने के पहले प्रयास

लाला मुंशीराम और लाला देवराज के प्रयास से १८८६ में जालन्धर की आर्यसमाज ने एक कन्या पाठशाला स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया और इसके लिए चार रुपये मासिक का व्यय भी मंजूर किया गया। किन्तु प्रस्ताव पास करना एक बात थी और उसे क्रियान्वित करना दूसरी बात। समाज ने रुपये की व्यवस्था कर दी थी, किन्तु कन्याओं को पढ़ाने वाली अध्यापिकाओं की तथा इसमें पढ़ने वाली छात्राओं की व्यवस्था करना अतीव दुस्साध्य कार्य था। उन दिनों पंजाब में स्त्रीशिक्षा का प्रचलन बिल्कुल नहीं था, इसलिए लड़कियों को पढ़ाने वाली अध्यापिका प्राप्त न होने से १८८६ के प्रस्ताव पर उस वर्ष कोई अमल नहीं हो सका और कन्या पाठशाला स्थापित करने का पहला प्रयास विफल हो गया। दूसरा प्रयास अगले वर्ष पुनः किया गया। जालन्धर आर्यसमाज ने १८८७ में कन्या पाठशाला खोलने का दूसरा प्रस्ताव पास किया। इसका काम शुरू करने की कोशिश की गयी, किन्तु अध्यापिकाओं तथा स्थान की दुर्लभता तथा छात्राओं के अभाव आदि विभिन्न कठिनाइयों से कन्या पाठशाला की गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकी। इस बीच में लाला देवराज को उनकी माता ने सहयोग देकर इस काम में पहल की। उन्होंने ईसाई पाठशाला में काम करने वाली माई लाडो नाम की बहन को एक रुपया मासिक और खाना देकर अपने घर में छोटी-सी कन्या पाठशाला शुरू की। उन दिनों आर्यसमाज जालन्धर के बहुत-से कार्यक्रम—सत्संग और समाज सुधार की प्रवृत्तियाँ इसी प्रकार लाला देवराज की माता के सहयोग से उनके घर पर शुरू हुई थीं। इस प्रकार तीसरी बार कन्या पाठशाला घर पर खोलने का प्रयास किया गया, किन्तु यह भी सफल नहीं हो सका। लाला मुंशीराम ने १८८६ में स्त्रीशिक्षा की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए सद्धर्म प्रचारक के दूसरे अंक से 'अधूरा इन्साफ' नामक एक लेखमाला लिखनी शुरू की। इसमें नर-नारियों के समानाधिकार के आधार पर स्त्रीशिक्षा का प्रबल समर्थन किया गया था। इससे जनता में स्त्रीशिक्षा के प्रति कुछ दिलचस्पी बढ़ने लगी।

१८९० में कन्या पाठशाला खोलने का प्रयास अधिक उत्साह से किया गया। इसके लिए एक छोटा-सा कमरा किराये पर लेकर आठ छात्राओं के साथ इसका शुभारम्भ हुआ। दस रुपये का मासिक व्यय स्वीकृत किया गया। पण्डित श्रीपति नामक एक अध्यापक को दो रुपये मासिक पर और एक अध्यापिका को चार रुपया मासिक पर रखा गया। इस बार का चौथा प्रयत्न सफल हुआ। उस समय कन्या पाठशाला की क्या स्थिति थी और उसके लिए किस प्रकार प्रयास किये जाते थे इस पर श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा लिखित लाला देवराज की जीवनी के निम्नलिखित अवतरण से सुन्दर प्रकाश पड़ता है—

"एक बूढ़ा पण्डित पढ़ने के लिए आने वाली लड़कियों की प्रतीक्षा में दिन भर पाठशाला में बैठा रहता था और उसका संस्थापक लड़कियों को वहाँ भेजने के लिए उनके माता-पिता से बहस करता हुआ घर-घर घूमा करता था। कभी-कभी मकान का किराया और पण्डित का वेतन तक भुगताना कठिन हो जाता था···माताजी ने पण्डित को अपने यहाँ रहने का स्थान दे दिया। इससे उसके वेतन के एक हिस्से का सवाल हल हो गया, किन्तु शिक्षार्थी लड़कियों के मिलने का सवाल हल नहीं हुआ। श्री देवराज मिठाई, खिलौने आदि जेबों में भरकर बड़े सवेरे घर से निकल पड़ते थे और परिचित बन्धुओं की लड़कियों को लालच देकर विद्यालय में आने के लिए उत्साहित करते हुए बहुत-से घरों का चक्कर लगा आया करते थे। एक दिन जो लड़की आती, दूसरे दिन उसका कोई सम्बन्धी आता, उसे उठा ले जाता और श्री देवराज को दस-पाँच जली-कटी सुना जाता। शहर में निकलने पर अपशब्दों के साथ-साथ आप पर रोड़े-पत्थर भी बरसाये जाते थे। जिस समाज में लड़कियों की शिक्षा का अर्थ उनको दुश्चरित्र बनाना और उनकी मर्यादा के सर्वथा विपरीत समझा जाता हो, उसमें उनकी शिक्षा के परिश्रम को सफल बनाना लोहे के चने चबाने से भी अधिक कठोर और दुष्कर कार्य था।"[1]

उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी चौथी बार का यह प्रयत्न लाला देवराज के दृढ़ संकल्प और अनथक उद्योग एवं उनकी माताजी के सहयोग से सफल हुआ। छात्राओं की संख्या बढ़ने लगी। १८९२ की जालन्धर आर्यसमाज की रिपोर्ट में लिखा है कि पाठशाला में ५५ कन्याएँ प्रविष्ट हो चुकी हैं और इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की गयी है कि बहुत-सी कन्याओं ने आभूषण पहनना छोड़ दिया है। उस समय इस छोटी-सी पाठशाला को चलाने वाले व्यक्तियों की क्या महत्त्वाकांक्षा थी, वह इस रिपोर्ट के निम्नलिखित शब्दों से स्पष्ट होती है—

"क्या हम इसी पाठशाला से, जो प्राइमरी जमात तक शिक्षा देती है, सन्तुष्ट हैं? नहीं, हम इससे कहीं आगे बढ़ना चाहते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि दूसरी शिक्षा हमारे जीवन में आर्यत्व का संचार नहीं कर सकती है। इस बात को विचार कर आर्य-समाज कन्या महाविद्यालय स्थापित करना चाहता है और करेगा भी। विरोध रूपी तूफान के रहते हुए भी हम स्त्रीशिक्षा की नौका को उस पार पहुँचायेंगे।"

सम्भवतः यह रिपोर्ट लाला देवराज द्वारा लिखी गयी थी। इसमें जिस तूफान का संकेत किया गया है, उसका कुछ परिचय देना उचित प्रतीत होता है। जिस समय

---

१. सत्यदेव विद्यालंकार, लाला देवराज, मसूरी, १९३५, पृष्ठ ४३-४४।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालन्धर में कन्या पाठशाला की स्थापना की गयी थी, उस समय पंजाब में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थीं। मध्य काल से यहाँ कन्याएँ इतनी अशुभ, अवांछनीय और बुरी समझी जाती थीं कि उन्हें पैदा होते ही मार दिया जाता था। दहेज की प्रथा के कारण कन्याओं के पिताओं को वर ढूंढ़ने, और दहेज जुटाने तथा विवाह के समय की परेशानियों और अपमानों का घूंट पीना पड़ता था। उसकी अपेक्षा उस समय कन्याओं को पैदा होते ही मारना अच्छा समझा जाने लगा। गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में कुड़ीमारों (कन्या-वध करने वालों) की कड़ी निन्दा की थी। १९वीं सदी में पंजाब में खत्री, वेदी, जाट, राजपूत, मोहियालों में इस कुप्रथा का प्रचार था। पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार होते ही सर जॉन लारेंस द्वारा सबसे पहले प्रसारित की गयी तीन आज्ञाओं में एक थी —"बेटी मत मारो।" गाँवों में ब्रिटिश सरकार ने ऐसी पुलिस चौकियाँ स्थापित की थीं जहाँ लड़की के जन्म या मृत्यु की सूचना न देना एक अपराध माना जाता था। कन्याएँ परिवार के लिए भार स्वरूप थीं, उनके लिए किसी प्रकार की शिक्षा न केवल निरर्थक, अपितु घातक समझी जाती थी। अतः पंजाब में स्त्रीशिक्षा का कट्टर विरोध किया जाता था। विरोधियों की इस दशा का चित्रण करते हुए जालन्धर कन्या महाविद्यालय की पत्रिका जलविद् सखा में १९३४ में एक पुरानी छात्रा ने लिखा था—

"जब स्त्रीशिक्षा के प्रेमियों पर ईंटों और पत्थरों की वर्षा होती थी, जब लोग उन पर अनेक लाँछन लगाने में संकोच नहीं करते थे, जब कन्याओं की शिक्षा को पाप समझा जाता था, जब किसी कन्या के हाथ में अक्षरदीपिका (वर्णमाला सीखने की पहली पुस्तक) का होना इतना बड़ा अपराध माना जाता था कि उसकी सगाई तक छूट सकती थी, तब श्रद्धेय चाचाजी (लाला देवराज) ने कन्या महाविद्यालय की स्थापना करके बड़ी दूरदर्शिता का काम किया। १९०९ में जब मैं यहाँ पढ़ने के लिए आयी तो परिवार वालों ने जाति बहिष्कार का भय दिखाया था।"

उस समय स्त्रीशिक्षा का प्रचार करने वाले बेवकूफ, जाहिल और झक्की समझे जाते थे। कन्या पाठशाला के प्रथम अध्यापक पण्डित श्रीपति के बारे में लाला देवराज ने उनकी जीवनी में यह सत्य ही लिखा है—"पण्डित श्रीपति ने कन्या-शिक्षा का कार्य तब आरम्भ किया था जब स्त्रीशिक्षा का नाम लेने वालों को मूर्ख, पागल, धर्मनाशक और देश को तबाह करने वाला कहा जाता था।"

स्त्रीशिक्षा के विरोधी वातावरण के कारण उस समय कन्या पाठशाला में लड़कियों को भरती करने के लिए बड़े प्रबल प्रयास करने पड़ते थे। कहा जाता है कि लाला देवराज अपनी जेबों में किशमिश, काजू, बादाम आदि मेवे भरकर लोगों के घरों में जाकर माँ-बाप को समझा-बुझाकर और कन्याओं को मेवे के लालच में स्कूल में लाया करते थे। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि लाला देवराज ने अपनी धर्मपत्नी के लिए ११ कार्यों की जो सूची बनायी थी उसमें सबसे पहले और महत्त्व के दो कार्य थे—जब कोई स्त्री मिले तो उससे कन्या को पाठशाला भेजने को कहो और कन्याओं के घर पर जा कर अपनी कन्याओं को पढ़ाने के लिए कहो। कई बार ऐसा भी होता था कि पिता अपनी कन्या को स्कूल भेज देता था, किन्तु उसका दादा या ताऊ स्कूल में आकर लड़-झगड़ कर उस कन्या को घर वापिस ले जाता था। कई ऐसी घटनाएँ भी हुईं कि किसी कन्या की सगाई इसलिए टूट गयी कि उसने कन्या पाठशाला में पढ़ना शुरू कर दिया था।

कन्या विद्यालय के आरम्भिक वर्षों में विपक्षियों के तीव्र विरोध के बावजूद लाला देवराज अपने स्त्रीशिक्षा के प्रसारकार्य के पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्हें इस विरोध से नवीन प्रेरणा तथा उत्साह मिला। पाठशाला की आय को बढ़ाने के लिए उन्होंने **रद्दी फण्ड** की योजना शुरू की। इसका यह आशय था कि लोग अपने घरों की रद्दी इस संस्था को दे दिया करें जिसे बेचकर कुछ मासिक आय प्राप्त की जाय। लाहौर से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक पत्र ट्रिब्यून के १६ मार्च, १८९२ के अंक में रद्दी फण्ड के शुरू करने का समाचार छपा। ६ जुलाई के अंक में इसी पत्र में यह खबर छपी कि लाला देवराज ने इसे महाविद्यालय का रूप देने की योजना बनायी है। इस योजना को उस समय के सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों, लोकनेताओं और शिक्षित व्यक्तियों के पास उनकी सम्मति और सुझाव के लिए भेजा गया। प्रायः सभी लोगों ने इस योजना को समाज एवं देश के लिए हितकर समझा, इसे पसन्द किया और इस बारे में अपने सुझाव भेजे। इनके अनुसार इस योजना को अन्तिम रूप दिया गया और जनता के सम्मुख प्रस्तुत करके धन-संग्रह की अपील की गयी। इस योजना में कन्याओं को वैदिक आदर्शों के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था थी। लाला देवराज का विचार था कि उन्हें इस कार्य के लिए २५ हजार रुपयों की आवश्यकता होगी। इसके लिए उन्होंने आर्यसमाजों के वार्षिक उत्सवों पर धन-संग्रह की योजना बनायी।

उस समय तक आर्यसमाज के वार्षिक उत्सवों पर डी० ए० वी० कॉलिज चलाने के लिए दान देने की अपील की जाती थी। अक्तूबर, १८९३ में पहली बार अमृतसर आर्यसमाज के जलसे पर डी० ए० वी० कॉलिज के लिए धन-संग्रह की अपील के बाद कन्या महाविद्यालय, जालन्धर के लिए धन-संग्रह का जब प्रयास किया गया तो डी० ए० वी० कॉलिज के प्रबन्धकों ने बड़ी आपत्ति की। उनका विचार था कि डी० ए० वी० कॉलिज के लिए ही जनता से पर्याप्त धन नहीं मिलता है, अब यदि कन्या महाविद्यालय के लिए रुपया इकट्ठा किया गया तो उन्हें मिलने वाले दान में कमी हो जायेगी। यद्यपि इस योजना के प्रमुख सूत्रधार लाला देवराज थे, किन्तु लाला मुंशीराम उनके साथ सम्बन्ध रखते थे, अतः यह प्रश्न डी० ए० वी० कॉलिज पार्टी, तथा गुरुकुल पार्टी में मतभेद का कारण बन गया। किन्तु लाला देवराज विरोध की कोई परवाह न करते हुए प्रस्तावित कन्या महाविद्यालय की योजना कार्यान्वित करने में पूरे उत्साह से जुट गये और उन्होंने उसके प्रबन्ध के लिए **कन्या महाविद्यालय मुख्य सभा** नामक एक संगठन बनाया और १८९६ में इस सभा की रजिस्ट्री करा दी गयी।

(३) कन्या महाविद्यालय का विकास

छात्रावास का निर्माण —कन्या महाविद्यालय उत्तर भारत में लड़कियों की शिक्षा के लिए छात्रावास बनाने वाली पहली संस्था थी। उन दिनों सरकार तथा मिशनरी लोगों द्वारा संचालित कन्या स्कूलों में छात्रावास की व्यवस्था कहीं भी नहीं थी। लड़कियों का घर से बाहर रहना निरापद नहीं समझा जाता था, इसलिए कहीं भी छात्रावास नहीं बनाये जाते थे। किन्तु लाला देवराज पर लोगों का इतना अधिक विश्वास था और वे उनकी संस्था को कन्याओं की शिक्षा के लिए इतना उपयोगी समझते थे कि उनके द्वारा छात्रावास की भी माँग की जाने लगी। अब तक यह विद्यालय दैनिक स्कूल के रूप में था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालन्धर शहर की छात्राएँ इसमें सवेरे पढ़ने आती थीं और पढ़कर शाम को घर वापिस चली जाती थीं। कन्या महाविद्यालय की कीर्ति दूर-दूर तक फैलने पर पंजाब के अन्य नगरों में रहने वाले, भारतीय नवजागरण से प्रभावित, आर्यसमाजी विचारधारा रखने वाले ऐसे अनेक लोग थे जो अपनी कन्याओं को शिक्षा दिलाने के लिए उत्सुक थे, किन्तु उनके नगर में इन्हें पढ़ाने के लिए कोई संस्थायें नहीं थीं। जालन्धर आर्यसमाज के नेता लाला देवराज और लाला मुंशीराम आर्यसमाज के सर्वमान्य, सुप्रसिद्ध और विश्वासपात्र नेता थे। इन नेताओं द्वारा आरम्भ की गई कन्या पाठशाला में पंजाब के दूसरे नगरों के आर्यसमाजी अपनी कन्याओं को भेजने के लिए तैयार थे, लेकिन इस संस्था के पास ऐसी कन्याओं के निवास के लिए छात्रावास नहीं था। इसके अभाव में संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक अन्य नगरों की कन्याओं के माता-पिता को निराश होना पड़ता था। संस्था के लिए भी बाहर से आने वाली छोटी कन्याओं की जिम्मेदारी उठाना आसान काम नहीं था।

किन्तु इस कठिनाई को हल करने में लाला देवराज को अपनी माता और पत्नी से बहुमूल्य सहायता मिली। सर्वप्रथम १८९३ में डेरा गाजीखाँ के एक आर्यसमाजी ने अपनी कन्या और बहू को शिक्षा के लिए जब जालन्धर भेजा तो लालाजी उनके आग्रह को टाल न सके। उन्होंने इन कन्याओं को अपने घर में रखकर पाठशाला में उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया। दो-तीन वर्ष तक जो भी कन्यायें बाहर के शहरों से यहाँ पढ़ने आती रहीं, उनको लालाजी के घर में रखा जाता रहा। अन्त में ऐसी कन्याओं की संख्या बढ़ जाने पर इस समस्या के समाधान के लिए किराये के एक मकान में कन्याओं का छात्रावास खोल दिया गया। यह पंजाब में लड़कियों का पहला छात्रावास था। १८९७ में छात्रावास में कन्याओं की संख्या २२ तक पहुँच गयी। इस छात्रावास के साथ एक कन्या अनाथालय की भी स्थापना की गयी।

१८९६ में लाला देवराज ने भारत के अन्य प्रान्तों में कन्याओं की शिक्षा की दशा देखने और उनसे लाभ उठाने के लिए तत्कालीन संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, राजस्थान के रजवाड़ों, बड़ौदा राज्य तथा बम्बई की यात्रा की। इसमें लालाजी के साथ उनकी पत्नी तथा कन्या महाविद्यालय की तीन छात्राएँ भी थीं। सब जगह लालाजी ने वहाँ चल रही शिक्षा-संस्थाओं का सूक्ष्म अवलोकन किया। इसके साथ ही, वहाँ की संस्थाओं में अपनी संस्था की कन्याओं की प्रतिभा का प्रदर्शन करने की व्यवस्था की। जालन्धर की कन्याओं ने वेदमन्त्रों का पाठ किया, भजन गाये, व्याख्यान दिये। लालाजी ने कन्या महाविद्यालय की भावी योजना के बारे में अनेक भाषणों में प्रकाश डाला। बड़ौदा, अहमदाबाद और बम्बई के प्रगतिशील नगरों में स्त्रीशिक्षा की संस्थाएँ पंजाब के नगरों की तुलना में अधिक विकसित थीं। बड़ौदा के महाराजा सयाजी गायकवाड़ बड़े उदार विचारों के थे और सामाजिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने अपने राज्य में स्त्रियों की दशा के सुधार और शिक्षा के प्रसार पर बल दिया था। बाल-विवाह को रोकने के लिए कानून बनाने वाले वे सम्भवतः पहले देशी नरेश थे। उन्होंने कन्या महाविद्यालय की कन्याओं के वेदमन्त्रों के पाठ को बहुत पसन्द किया। उस समय के सुधारवादी सुप्रसिद्ध महाराष्ट्री नेता जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे से वे बम्बई में मिले। उन्होंने लालाजी की कन्या महाविद्यालय की योजना का अभिनन्दन किया। इस यात्रा में

उन्होंने जहाँ कहीं कोई अच्छी बात देखी, उसे अपनी संस्था में शुरू करने का निश्चय किया। बम्बई की पाठशालाओं से उन्होंने बहुत-कुछ सीखा। इस बारे में उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—"पाठशालाओं को देखकर मेरी आँखें खुल गयी हैं। कन्याओं का गाना कितना अच्छा है। कन्याएँ बहुत समझदार और होशियार मालूम होती थीं। मैंने उन पाठशालाओं को देखकर बहुत लाभ उठाया।"

इस समय से लाला देवराज अपना अधिकांश समय कन्या महाविद्यालय के विकास में लगाने लगे, क्योंकि वे कन्याओं की शिक्षा को समाज की उन्नति का मूल मन्त्र समझते थे। उनके सहयोगी कुछ आर्य बन्धुओं को उनसे यह शिकायत रहती थी कि लाला देवराज अपना अधिकांश समय कन्या महाविद्यालय के कामों में ही लगाते हैं और समाज के दूसरे कामों की ओर ध्यान नहीं देते। इस आरोप का उत्तर देते हुए उन्होंने १८९६ में अपनी डायरी में लिखा था—"जिस पाठशाला में युवा लड़कियाँ हैं, जिस पर सारे पंजाब की आशा लगी हुई है, जिसे अभी बहुत काम करना है, उसके लिए जितना समय दिया जाय थोड़ा है। आर्यसमाज के बहुत-से साथी कहते हैं कि देवराज समाज का कुछ भी काम नहीं करता है। इससे बढ़ कर और क्या गलतफहमी हो सकती है। **समाज अब तक बहुत तरक्की कर जाता, अगर हमारी स्त्रियाँ हमारे साथ होतीं। स्त्रियों के अज्ञान से आर्य धर्म और आर्यसमाज को बहुत हानि हो रही है। मैं जड़ को सींच रहा हूँ।** मैं घरों को स्वर्ग बनाने की कोशिश कर रहा हूँ। माताएँ जब आर्य बन जायेंगी तब पुत्र क्यों आर्य न बनेंगे?" कन्याओं की शिक्षा के पक्ष में इससे अधिक प्रबल तर्क क्या दिया जा सकता है।

लाला देवराज इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्था के विकास में भगीरथ परिश्रम और अध्यवसाय करने लगे। उनके महाविद्यालय की कीर्ति दूर-दूर तक फैलने लगी। इसमें छात्राओं की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी। इसकी प्रगति का कुछ आभास इस महाविद्यालय में प्रविष्ट होने वाली तथा आश्रम में रहने वाली छात्राओं की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या प्रदर्शित करने वाली निम्नलिखित तालिका से भली-भाँति मिल सकता है—

वर्ष	विद्यालय	आश्रम
१८९१	८	—
१८९२	५५	—
१८९५	७७	५
१८९६	९९	१६
१८९७	१३४	२२
१९०४	१६६	६०
१९०७	२०३	१०५
१९१२	३६२	१९८

भवन निर्माण—छात्राओं की संख्या बढ़ने के साथ-साथ संस्था में भवनों का नवनिर्माण आवश्यक हो गया। पहले यह बताया जा चुका है कि इस विद्यालय की शुरूआत लालाजी के घर पर की गयी थी। इनका निवासस्थान अड्डा होशियारपुर के रेलवे फाटक के पास आर्यसमाज से कुछ दूरी पर था। इनके वंश-परम्परागत निवासस्थान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सालिग निवास के सामने कोट किशनचन्द्र की पुराने किले जैसी आवादी है। यह लालाजी के एक पूर्वज लाला किशनचन्द के नाम पर वनी थी। यह प्रदेश कन्या महाविद्यालय के आरम्भिक विकास का क्षेत्र था। इसकी शुरूआत एक किनारे के कमरे से हुई थी। कुछ समय वाद एक छात्रा की प्रेरणा से उसके पिता ने भूमि का दान करके संस्था के लिए भवन-निर्माण को सुगम बना दिया। इसकी वड़ी रोचक कथा है। इस संस्था के आदि काल में ही परमेश्वरी देवी नामक एक छात्रा ने उस समय की पहली चार श्रेणियों की पढ़ाई पूरी कर ली थी। इसके पिता श्री भागमल एक सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके घर के साथ एक खुला मैदान थापराँ मोहल्ले में था। जव उन्होंने अपनी कन्या के विवाह का निश्चय किया तो वे उससे कुछ दिन पहले अपनी पुत्री के मुख से विद्यालय में सीखे हुए वेदमन्त्र और भजन सुनकर वड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी इकलौती वेटी से कहा—"मैं तुम्हें कुछ इनाम देना चाहता हूँ, माँगो, क्या माँगती हो?" उनका विचार था कि कन्या किसी वहुमूल्य आभूषण या कीमती वस्त्र की माँग करेगी; किन्तु कन्या को अपनी मातृ-संस्था कन्या विद्यालय के प्रति अगाध श्रद्धा थी। उसने उत्तर दिया—"पिताजी, हमारे विद्यालय के पास अपनी कोई जगह नहीं है। आप घर के साथ वाला मैदान विद्यालय को दे दें।" दानशील प्रकृति के लाला भागमल पुत्री की प्रार्थना से वहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त लाला देवराज को वुलाकर उन्हें अपने मैदान के दान का संकल्प प्रकट किया और १८९६ में इस जमीन की रजिस्ट्री हो गयी। अव यहाँ देवराज गर्ल्स हायर सैकेण्डरी स्कूल चल रहा है।

जमीन मिल जाने के वाद इस पर मकान वनाने के लिए धन की आवश्यकता थी। इसे इस संस्था की एक अन्य पुरानी छात्रा पार्वती ने पूरा किया। उसने यहाँ एक वड़ा कमरा वनाने के लिए ८०० रुपये दिये। जव वाद में उसे इस वात का पता चला कि इसमें दो हजार रुपया व्यय होगा तो उसने शेष राशि भी अपनी मातृ-संस्था को प्रदान की और इस प्रकार संस्था के भवनों का कार्य आरम्भ हुआ। थापराँ मुहल्ले में संस्था के अध्ययन-अध्यापन का कार्य अगले कई वर्षों तक चलता रहा।

छात्राओं की निरन्तर वढ़ती हुई संख्या के कारण १९०५ के वाद यह जगह कम प्रतीत होने लगी। १९०५-०६ में शहर से वाहर इसके वर्तमान स्थान की भूमि खरीदी गयी। शुरू में इसे खरीदने में काफी हिचकिचाहट और संकोच था, क्योंकि यह भूमि आर्यसमाज जालन्धर के तथा सोंधी परिवार के निवासस्थान से दूर और आवादी से अलग-थलग थी। कन्याओं की संस्था के लिए सुरक्षा का जो वातावरण होना चाहिए, वह शहर से वाहर ग्रामीण क्षेत्र में मिलने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। किन्तु इस समय उस भूमि के नम्वरदार नत्यासिंह ने लालाजी को कहा, "आप हमारे गाँव (रेरु) के समीप जगह लें। संस्था की सुरक्षा की सारी जिम्मेदारी हमारे गाँव की होगी। गाँव की तरफ से मैं आपको यह वचन देता हूँ।"

नम्वरदार नत्यासिंह ने इस जिम्मेदारी को पूरी तरह निभाया। उसकी सहायता से कुछ जमीन दान में और कुछ कीमत अदा करने से मिल गयी। उन दिनों यह भूमि रेत के टीलों से भरी और उजाड़-सी थी। लालाजी के विरोधियों ने उनका मजाक उड़ाते हुए कहा—"क्या इस उजाड़ रेगिस्तान में कन्या महाविद्यालय वनाया जायेगा?"

किन्तु धुन के धनी लालाजी ने शीघ्र ही निर्माण-कार्य आरम्भ करवा दिया। इसके सम्बन्ध में आचार्या कुमारी लज्जावती का कहना है, कि "१६०५ के वंग-भंग से उत्पन्न हुए स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव (स्वावलम्बन की भावना) उस समय की हवा में थी। जब भवन-निर्माण के लिए ईंटें आने लगीं तो चाचाजी स्वयं और उनके साथ लड़कियाँ भी ईंटों को उचित स्थान पर रखने लगीं। इन्हीं दिनों चाचाजी ने कन्याओं के हाथों से यहाँ वृक्ष और वाड़ के रूप में खट्टे के पेड़ लगवाने शुरू कर दिये। मेरे अपने हाथ से लगाये खट्टे के पेड़ों की वाड़ अब तक मौजूद है।"

१६१० में कपूरथला के महाराजा के हाथों विद्यालय के आश्रम की आधारशिला रखी गयी। १६१३ तक आश्रम का कुछ भाग वन गया और छात्रावास तथा वड़ी श्रेणियों को शहर से बाहर यहाँ लाया गया। उस समय पढ़ाई के लिए केवल टीन की शैंड, छप्पर और पेड़ ही थे। ब्रिटिश सरकार ने जब सरकारी सहायता से अच्छे मकान बनाने के लिए संस्था को सहायता देने का संकेत किया तो आचार्या कुमारी लज्जावतीजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"हमें अपने शैंड और छप्पर पसन्द हैं, जिनमें हम स्वतन्त्रता के साथ देश-प्रेम के गाने गा सकते हैं।" यहाँ विद्यालय का पहला कृष्णा भवन १६३२ में संस्था की एक पुरानी छात्रा कृष्णा द्वारा दिये गये रुपये से बना। लालाजी मुगल सम्राट् अकबर से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निरन्तर स्वतन्त्रता संघर्ष जारी रखने वाले राणा प्रताप की शूरवीरता और स्वाधीनता की सोंधी महक से परिपूर्ण मिट्टी इस भवन की नींव में डालना चाहते थे, ताकि इस भवन में पढ़ने वाली छात्राओं के मन पर देश को स्वतन्त्र कराने की भावना अमिट रूप से अंकित हो। इस बलिदान की धरती की मिट्टी को वे स्वयं राजस्थान जाकर राणा प्रताप की सुप्रसिद्ध रणस्थली हल्दी घाटी से लाये और इसके साथ आचार्या कुमारी लज्जावती ने इस भवन की नींव रखी।

(४) कन्या महाविद्यालय की शिक्षा पद्धति

पाठ्यक्रम, पुस्तकें तथा विषय—जब कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई तो उसके संस्थापकों के सम्मुख बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा पद्धति का कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं था। उस समय तक लड़कियों के लिए कुछ ईसाई जनाना स्कूल तथा सरकारी स्कूल ही थे। उनमें प्रचलित प्राथमिक पाठ्यक्रम इस विद्यालय के उद्देश्यों से मेल नहीं खाते थे। उनका उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाना था और विद्यालय के संस्थापक इस खतरे से हिन्दू जाति की रक्षा करना चाहते थे। अतः मिशन स्कूलों की पाठ्यक्रम पद्धति कन्या विद्यालय की छात्राओं के लिए उपयोगी नहीं हो सकती थी।

पुस्तकों की कमी दूर करने के लिए लाला देवराज ने हिन्दी भाषा सिखाने की दृष्टि से स्वयमेव पाठ्य-पुस्तकों की स्वतन्त्र रचना आरम्भ की, क्योंकि उन दिनों पंजाब में हिन्दी का प्रचार और प्रसार न होने से उसमें पाठ्य-पुस्तकें लिखने वालों का अत्यन्ताभाव था। पुस्तकों के शोचनीय अभाव को पूरा करने का गुरुतर दायित्व भी लालाजी को पूरा करना पड़ा और उन्होंने इसे बड़ी योग्यता, निष्ठा और सफलता के साथ सम्पन्न किया। उनकी पुस्तकें राष्ट्रीयता, नैतिकता और धार्मिक एवं समाजसुधार की भावना से ओतप्रोत थीं। अतः भारत के नवजागरण से प्रभावित शिक्षित व्यक्तियों को वे पुस्तकें बहुत अच्छी लगीं। अन्य स्थानों पर भी जैसे-जैसे कन्या पाठशालायें खुलती गयीं,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे-वैसे इन पुस्तकों की माँग बढ़ती गयी। पंजाब से बाहर के प्रदेशों में स्थापित कन्या पाठशालाओं में भी इन पुस्तकों को अपनाया गया। अतः इन पुस्तकों में से कुछ के पन्द्रह-बीस तक और एक-दो के तो तीस संस्करण भी निकले। महाविद्यालय से प्रकाशित तथा मुद्रित पुस्तकों की प्रतियों की कुल संख्या लगभग दस लाख है। यह न केवल पंजाब में, अपितु हिन्दीभाषी प्रान्तों में बालोपयोगी हिन्दी पुस्तकों का एक उल्लेखनीय कीर्तिमान है।

कन्या महाविद्यालय में पढ़ाये जाने वाले प्रमुख विषय धर्मशिक्षा, हिन्दी, संस्कृत, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास और संगीत थे। धर्मशिक्षा को पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व दिया गया था। सन्ध्या और प्रार्थना के मन्त्र तथा स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण और हवन के मन्त्र कण्ठस्थ करना धार्मिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग था। संस्था में प्रातः-काल और सायंकाल सन्ध्या, प्रार्थना, यज्ञ और हवन नियमित रूप से किये जाते थे। उस समय कन्यायें इन मन्त्रों का सस्वर पाठ करती थीं। इसके साथ ही धार्मिक शिक्षा में उच्च नैतिक जीवन के सिद्धान्तों पर बल दिया जाता था और छात्राओं को चरित्रगठन का व्यावहारिक पाठ पढ़ाया जाता था। उस समय कन्या गुरुकुल के अध्यापक सच्चे अर्थों में आचार्य थे। इनका काम न केवल छात्राओं को अक्षर ज्ञान करवाना था, अपितु उन्हें उत्तम आचरण सिखाना भी था।

हिन्दी को विद्यालय में मातृभाषा के रूप में सिखाया जाता था। उन दिनों कन्याओं को हिन्दी का अक्षर ज्ञान कराने के लिए कोई अच्छी पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं। लाला देवराज को शुरू से भजन बनाने, बच्चों के लिए छोटी-छोटी कवितायें लिखने और पुस्तकें बनाने में अभिरुचि थी। उन्होंने बालिकाओं के लिए हिन्दी का सुबोध रूप में अच्छा ज्ञान देने के लिए अनेक पुस्तकें लिखीं और ये बड़ी लोकप्रिय हुईं। इनके माध्यम से पंजाब में देवनागरी और हिन्दी भाषा का लड़कियों में इतना अधिक प्रचार हुआ कि इसे वहाँ स्त्रियों की भाषा कहा जाने लगा। क्योंकि उस समय अधिकांश पंजाबी पुरुष फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू का व्यवहार करते थे।

संस्कृत भाषा को पाठ्यक्रम में ऊँचा स्थान दिया गया। महर्षि दयानन्द ने यह अनुभव किया था कि भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का और वेदों का विस्मरण भारत की दुर्दशा का मूल कारण था। अतः उन्होंने वेद के अध्ययन को अपने पाठ्यक्रम में गौरव-पूर्ण स्थान दिया था। वेद पढ़ने के लिए संस्कृत जानना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति के सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं। अतः कन्या महाविद्यालय में छात्राओं के लिए संस्कृत के ज्ञान को अनिवार्य बना दिया गया, किन्तु यहाँ छात्राओं के लिए संस्कृत का पाठ्यक्रम बनाते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि व्याकरण के क्लिष्ट और जटिल विषय से छात्राओं के लिए संस्कृत पढ़ना इतना दुर्बोध न हो जाय कि वह उन्हें भार-स्वरूप प्रतीत होने लगे। यहाँ अष्टाध्यायी के सूत्र स्मरण करने की अपेक्षा संस्कृत पढ़ने, लिखने, बोलने और समझने के पाठ्यक्रम पर अधिक बल दिया गया। छात्राओं को संस्कृत का इतना ज्ञान अवश्य हो जाता था कि वे देववाणी में धाराप्रवाह भाषण कर सकें। कन्याओं के संस्कृत संवादों, भाषणों तथा वाद-विवादों का श्रोताओं पर गम्भीर प्रभाव पड़ता था। आर्यसमाज की स्थापना से पहले स्त्रियों को मध्य काल से प्रचलित विचारों के अनुसार संस्कृत की शिक्षा नहीं दी जाती थी। किन्तु इस विद्यालय की छात्राओं के मुँह से वेदमन्त्रों का पाठ और संस्कृत के भाषण

सुन कर व्यक्ति विस्मय विमुग्ध हो जाते थे। वड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ ने ११ अक्तूबर, १९११ को इस संस्था की छात्राओं के संस्कृत भाषणों को सुनने के बाद यह भावना प्रकट की थी—"छात्राओं के संस्कृत भाषण सुनकर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ। यदि यह प्रयत्न बड़े पैमाने पर किया जाये तो संस्कृत मृत भाषा नहीं रहेगी। यदि भारतवर्ष में ऐसी अधिक संस्थायें हों तो स्त्री जाति की उन्नति का युग दूर नहीं होगा।"

गणित तथा अंग्रेजी के विषयों का छात्राओं को सामान्य ज्ञान दिया जाता था। लड़कियों को गणित पढ़ाने का उद्देश्य यही था कि वे अपने घर का सामान्य हिसाव-किताव अच्छी तरह से रख सकें। अंग्रेजी शिक्षा इतनी दी जाती थी कि लड़कियाँ पत्रों पर लिखे पते लिख-पढ़ सकें और अंग्रेजी का मामूली काम चला सकें। भूगोल, इतिहास की उस समय अच्छी पाठ्य-पुस्तकें नहीं थीं। इतिहास में भारत के प्राचीन महापुरुषों और दुर्गावती, लक्ष्मीवाई जैसी वीरांगनाओं की कथायें कन्याओं को सुनाई जाती थीं ताकि छात्राओं को प्राचीन इतिहास से राष्ट्र के नव-निर्माण की प्रेरणा मिल सके।

कन्याओं को संगीत की शिक्षा देने के लिए विद्यालय ने वड़ा क्रान्तिकारी और सराहनीय कार्य किया, किन्तु इसके लिए विद्यालय को वड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्राचीन भारतीय संस्कृति में संगीत को वड़ा उच्च स्थान प्राप्त था। चार वेदों में सामवेद संगीत प्रधान है। किन्तु मध्य काल में इस आध्यात्मिक विद्या का पतन हुआ। इसका मुख्य प्रयोजन राजाओं के मनोरंजन और भोग-विलास में सहयोग देना रह गया था। यह राजदरवारों तथा समाज के निम्न वर्गों के मिरासियों तथा वेश्याओं तक सीमित रह गया। इसी समय से समाज में संगीत की कला को हीन स्थान प्राप्त हो गया। अत: जव लाला-जी ने कन्या महाविद्यालय में संगीत की शिक्षा देने का निश्चय किया तो इसे सर्वप्रथम वेदमन्त्रों के गान और धार्मिक भजनों तक सीमित रखा। कन्यायें आर्यसमाज के उत्सवों पर वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ करती थीं और धार्मिक गीत गाती थीं। किन्तु उस समय उन्हें सच्चे अर्थों में संगीत सिखाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसका प्रधान कारण यह था कि उन दिनों संगीत की शिक्षा देने के लिए कोई अध्यापिकायें या चरित्रवान् अध्यापक नहीं मिलते थे। यह कला समाज के निम्न स्तर के व्यक्तियों में ही पायी जाती थी।

सौभाग्यवश विद्यालय के छात्रावास की एक अधिष्ठात्री महिला सुभद्रावाई की पुत्री को महाराष्ट्र में प्रचलित संगीत कला का कुछ ज्ञान था, अत: आरम्भ में विद्यालय में कन्याओं को उसके माध्यम से संगीत सिखाने का श्रीगणेश किया गया। वाद में विद्यालय के एक पुरुष अध्यापक पण्डित देवीचन्द को लाहौर के गन्धर्व महाविद्यालय में भेजकर तीन वर्ष तक संगीत की शिक्षा दिलाई गयी और पण्डित विष्णु दिगम्बर की पुस्तकों के आधार पर कन्याओं के लिए संगीत का पाठ्यक्रम तैयार किया गया। इसके परिणामस्वरूप वार्षिकोत्सव के अवसर पर कन्याओं के संगीत के कार्यक्रम वड़े भव्य होने लगे। कन्याओं की जल-तरंग वजाने की कला की वड़ी सराहना की जाती थी। सुप्रसिद्ध संगीतशास्त्री और इस विद्या का वर्तमान युग में प्रचार और प्रसार करने वालों में गायनाचार्य विष्णु दिगम्बर का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने इस संस्था द्वारा संगीत के पुनरुत्थान के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए १० दिसम्बर, १९२५ को लिखा था—"उत्तरी भारत की इस प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था ने संगीत के गौरव को समझकर उसके प्रसार का वीड़ा उठाया है। लता मण्डपों में छात्राओं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को शिक्षा प्राप्त करते देख कर आँखों के सामने प्राचीन ऋषियों के आश्रमों में पढ़ने वाली छात्राओं का चित्र आ जाता है।"

कन्या महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में संगीत के समावेश पर कुछ कट्टरपन्थी, दकियानूसी, रूढ़िवादी वड़ी आपत्तियाँ करते थे। आर्यसमाज जालन्धर के १६२० के वार्षिकोत्सव पर उन्होंने इनकी आलोचना का उत्तर देते हुए कहा था—

"कुछ लोग कहते हैं कि विद्यालय के अधिकारियों के दिमाग में खलल आ गया है और उन्होंने कई ऐसी बातें जारी कर दी हैं जो शास्त्र-विरुद्ध हैं; जैसे गाना-वजाना। यदि कोई अन्य धर्मावलम्वी ऐसा एतराज करे तो उसे क्षमा किया जा सकता है, परन्तु यदि वेदों को मानने वाला ऐसा एतराज करे तो उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। हमारा तो गाने के साथ सृष्टि के आदिकाल से सम्बन्ध है। यहाँ तक कि चार वेदों में से एक वेद सामवेद केवल गान विद्या के लिए है।"

लाला देवराज को संस्था में संगीत और गाने के समावेश की प्रेरणा महाराष्ट्र और गुजरात की स्त्रीशिक्षा की संस्थाओं के देखने के वाद मिली थी। गुजरात के गरवा नृत्य को देखकर वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उस समय की शिष्या तथा वाद में आचार्या वनने वाली कुमारी लज्जावती को इसे सीखने के लिए गुजरात भेजा। वाद में नृत्य के साथ गाये जाने वाली हिन्दी कविताओं को वनाकर इस नृत्य को उन्होंने अपने प्रान्त के अनुरूप वनाया और इसका यहाँ प्रचार किया। विद्यालय में संगीत के प्रवेश के कार्य में उन्हें महाराष्ट्रीय गायनाचार्य पण्डित विष्णु दिगम्वर से वड़ी सहायता मिली।

पाककला और रोगी परिचर्या की शिक्षा कन्याओं को छात्रावास के जीवन में व्यावहारिक रूप से दी जाती थी। आरम्भ में कोई पृथक् पाठ्यक्रम और पुस्तकें नहीं थीं। कन्याओं में लिखने की रुचि पैदा करने के लिए समय-समय पर संस्था की अपनी पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती थीं। 'पांचाल पण्डिता' शायद देश में या कम-से-कम पंजाव में स्त्रियों की पहली हिन्दी पत्रिका थी। कन्याओं में भाषण कला की रुचि पैदा करने के लिए 'वाग्वर्धिनी' सभा तो थी ही, साथ ही यह उनके लिए आर्यसमाज का प्लेटफार्म भी था।

उपाधियाँ—विद्यालय की अपनी उपाधियाँ थीं, अपने सर्टिफिकेट थे। प्राइमरी श्रेणी पास करने वाली कन्या **सभ्य** कहलाती थी और मिडल की श्रेणी पास करने वाली **'शिक्षित'**। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने पर **दीक्षिता** की उपाधि मिलती थी। जव स्कूल के ऊपर की श्रेणियाँ आरम्भ हुईं तो **उपस्नातिका** और **स्नातिका** की उपाधियाँ जारी हुईं। विद्यालय की अन्तिम उपाधि स्नातिका थी। स्नातिकाओं को उपाधियाँ देने का वैसे ही उत्सव होता था, जैसा कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में डिग्रियाँ देने के लिए होता है।

वेश—इस समय कन्या महाविद्यालय की लड़कियों का नियत वेश पीली साड़ी थी। इस वेश पर आदर्शवादी युग में और वर्तमान युग में वड़ी आपत्तियाँ उठायी जाती रही हैं। लाला देवराज ने आर्यसमाज जालन्धर के १६२० के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिये गये अपने भाषण में इसे उचित ठहराते हुए कहा था, "दूसरा एतराज पहनावे पर है। कोई कहता है कि लहँगे को लिवास में शामिल करो। हमारे यहाँ कन्याओं को देश-देशान्तरों से आना है। यदि आश्रम या विद्यालय किसी एक ही प्रान्त के लिए होता तो हम उसी प्रान्त का पहनावा नियत कर देते। परन्तु विद्यालय सारे देश के लिए है, किसी

एक प्रान्त के लिए नहीं। ये कन्याएँ हमारे देश की प्रतिनिधि हैं। इसलिए हमें ऐसा ही पहनावा रखना होगा जिसके पहनने में किसी भी प्रान्त की लड़कियों को आपत्ति न हो।"

शिक्षण पद्धति—लाला देवराज ने अपने भाइयों के समान उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी और न ही बच्चों को पढ़ाने के लिए किसी प्रकार की ट्रेनिंग ली थी। सम्भवत: उन्हें आधुनिक शिक्षा विज्ञान के क्रान्तिकारी विचारकों तथा नयी पद्धतियों के आविष्कर्ता—फ्रोवल, पेस्टोलोजी रूसो, माण्टीसोरी के नवीन शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों का पुस्तकीय ज्ञान नहीं था। किन्तु लड़कियों के प्रति अगाध स्नेह और वात्सल्य की भावना से उन्होंने अपनी संस्था में इस प्रकार की शिक्षा पद्धति का विकास किया जो उस समय भारत में सामान्य रूप से प्रचलित शिक्षा पद्धति से सर्वथा भिन्न थी। उस समय वच्चों को पढ़ाने के लिए डण्डे के प्रयोग को सबसे अधिक आवश्यक समझा जाता था। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में इस विषय में मनुस्मृति के एक श्लोक को उद्धृत करते हुए लिखा था कि पाँच वर्ष तक वच्चों का पालन और उसके वाद ताड़न करना चाहिये। स्त्रियों को तो तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से ताड़न का अधिकारी वताया था। उस समय यह कहावत प्रचलित थी—"जहाँ डण्डा छोड़ा, वहाँ वच्चा विगड़ा" (स्पेयर दी रॉड स्पायल दी चाइल्ड)। किन्तु लाला देवराज ने इसके सर्वथा प्रतिकूल प्रेम की और खेल-खेल में कन्याओं को शिक्षा देने की उस पद्धति का आविष्कार किया, जिसको आजकल क्रीड़ा पद्धति (प्ले वे मैथड) कहा जाता है। इसमें वच्चों को नाना प्रकार की खेलों, कथाओं, नाटकों से महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी जाती है, और वे अज्ञात रूप से खेलों से शिक्षा के उदात्त तत्त्वों को स्वयमेव ग्रहण करते चले जाते है। उन्हें एक पाठ रटाने के लिए दण्ड देने की आवश्यकता नहीं होती है। कुछ उदाहरणों से कन्या महाविद्यालय की नवीन शिक्षण पद्धति की वात स्पष्ट हो जायेगी।

इतिहास के शिक्षण में वे कहानियों की शैली का अनुसरण करते थे। विभिन्न प्रकार के गानों द्वारा वे कन्याओं में उपयुक्त राष्ट्रीय भावनाओं का संचार करते थे। इस विषय में उनकी शिक्षा पद्धति पर प्रकाश डालते हुए उनकी एक शिष्या श्रीमती ठाकुर देवी ने लिखा है--"चाचाजी हमें भारतीय इतिहास के उज्ज्वल प्रसंगों की कहानियाँ सुनाया करते थे, जिनमें प्राचीन काल की तेजस्विनी देवियों की प्रतिभा तथा वीरता का वर्णन होता था। चाचाजी की उस समय (१९१८-१९) की हमें सुनाई और याद करवाई देशप्रेम की कविताएँ अब तक (१९८०) हृदयपटल पर अंकित हैं, और कानों में गूँजती रहती हैं।"

नैतिक शिक्षा के लिए वे नाटक शैली का प्रयोग करते थे। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि नाटक एक इस प्रकार की विधा है जो सब प्रकार के व्यक्तियों के मनोरंजन और शिक्षा का साधन है(नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य वहुधाप्येकं समाराधनं)। वच्चों को प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिम्मत न हारने और भारी कष्ट उठा कर अपने प्रयास को सफलता मिलने तक निरन्तर जारी रखने की शिक्षा देने के लिए भर्तृहरि के नीति-शतक के एक श्लोक के नीतितत्त्व को छात्राओं पर एक नाटक द्वारा भली प्रकार अमिट रूप से अंकित करने का प्रयत्न करते थे। भर्तृहरि ने इस श्लोक में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोटि के पुरुषों की चर्चा करते हुए कहा है कि निकृष्ट मनुष्य तो विघ्न-बाधाओं के डर से किसी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते हैं। मध्यम कोटि के मनुष्य काम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो शुरू कर देते हैं, किन्तु विघ्न-बाधाओं से भयभीत होकर उसे बीच में छोड़ देते हैं, किन्तु उत्तम कोटि के वे मनुष्य हैं, जो बार-बार विघ्न-बाधाओं के आने पर भी उनका डटकर मुकाबला करते है और अपने कार्य को सफल बनाते हैं।[1]

इस विचार को लालाजी ने एक नाटक का रूप दिया और उस नाटक को करने वाली उनकी एक शिष्या माता गौरां देवी ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है—"इस नाटक में फलों से लदे एक पेड़ के पास से गुजरता हुआ एक मनुष्य फलों की इच्छा तो करता है, किन्तु कहता है फल इतने ऊँचे हैं; पेड़ पर चढ़ूँगा तो गिर जाऊँगा। फलों तक पहुँचना आसान नहीं है। मैं यहीं बैठ जाता हूँ, कोई फल गिरेगा तो उसे उठा लूँगा। इसी प्रकार एक दूसरा मनुष्य पेड़ के सुन्दर फलों को ललचाई नजर से देखकर पेड़ पर चढ़ कर फलों को प्राप्त करने का प्रयास करता है, परन्तु पेड़ पर चढ़ते समय रगड़, काँटे आदि लग जाने से घबराकर नीचे लौट आता है। एक तीसरा मनुष्य साहस के साथ पेड़ पर चढ़ता है, रगड़, चोटों तथा काँटों की कोई परवाह न करता हुआ फलों को प्राप्त करने में सफल होता है और दूसरों के लिए भी कुछ फल फेंक देता है। इस नाटक का प्रदर्शन चाचाजी आर्यसमाजों के उत्सवों पर भी करवाया करते थे। मैं वृक्षों पर चढ़ने में निपुण थी, इसीलिए मुझे उत्तम पुरुष का पार्ट दिया जाता था।" यह वस्तुतः प्रतीक रूप से कन्या शिक्षा के मार्ग में आने वाली भीषण कठिनाइयों पर लालाजी द्वारा सफलता पाने की सुन्दर अभिव्यंजना थी और छात्राओं को यह उद्बोधन था कि वे शिक्षा और समाज के कार्यों में बड़ी-से-बड़ी कठिनाई आने पर भी हिम्मत न हारें, अपने सतत प्रयत्न और अविचल निष्ठा से उन्हें सफल बनायें।

लालाजी ने इसी प्रकार अन्य भी अनेक नाटक लिखे थे और इन्हें खेल के रूप में बच्चों को खिलाया जाता था। ये खेल के खेल होते थे और शिक्षा की शिक्षा। इससे छात्राओं के मन पर उत्तम आचरण के नियम और सिद्धान्त अमिट रूप से अंकित हो जाते थे। उनकी शिक्षा कोरी किताबी न होकर वास्तविक और व्यावहारिक होती थी। वे समाज सेवा, देश सेवा को अपने जीवन का व्रत बना लेती थीं। ऊपर नाटक करने वाली जिन माता गौरां देवी का उल्लेख किया गया है, वे इस समय ८० वर्ष से भी ऊपर की आयु में हिमाचल प्रदेश और शिमला की स्त्रियों और बच्चों के सेवा कार्य में लगी हुई हैं।

वार्षिकोत्सव—आर्यसमाज जगत् में जिस प्रकार गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सवों ने एक विशेष स्थान बना लिया था, उसी प्रकार कन्या महाविद्यालय जालन्धर के वार्षिकोत्सव उन दिनों न केवल इस विद्यालय की छात्राओं को, अपितु पंजाब के आर्यसमाजी शिक्षित वर्ग को आध्यात्मिक और सामाजिक प्रेरणा देने के लिए तथा राष्ट्रीय संघर्ष को सफल बनाने के अतीव उपयोगी थे। इन उत्सवों पर न केवल आर्यसमाज के क्षेत्र के प्रमुख उपदेशक और मूर्धन्य संन्यासी, अपितु पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, भारत कोकिला सरोजनी नायडू जैसे राष्ट्रीय नेता पधारते थे और ये उत्सव राष्ट्रीय भावनाओं और आध्यात्मिक प्रवचनों के एक अजस्र प्रेरणास्रोत होते थे। इस समय दीक्षान्त के

१. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति मध्या।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य तूत्तमगुणा न परित्यजन्ति॥

अवसर पर लालाजी अपने भाषणों में छात्राओं को जो उद्बोधन देते थे, वे स्नातिकाओं के लिए आजीवन प्रेरणा स्रोत बने रहते थे। उन्होंने अपनी संस्थाओं की छात्राओं के लिए 'जलविद् देवियों' और 'जलविद् पुत्रियों' के नाम प्रचलित किये थे। विद्यालय की पत्रिका का नाम भी 'जलविद् सखा' रखा गया था। जलविद् शब्द जालन्धर और विद्यालय शब्दों के पहले अक्षरसमूहों को मिलाकर बनाया गया था। वह वार्षिकोत्सवों पर कहा करते थे—

"जलविद् देवियाँ, सुनें और ध्यान लगाकर सुनें। विद्यालय की महत्ता इसके बाग और विशाल भवनों से नहीं, बल्कि धर्मात्मा देवियों से है। कन्याओं को सुशिक्षिता बनाने और उनमें उत्तम संस्कार डालने में विद्यालय को जो सफलता मिली है, वह वास्तव में विद्यालय का एक विशाल ज्योतिस्तम्भ है। लाखों रुपयों की प्राप्ति की अपेक्षा इस सफलता को मैं अधिक मान देता हूँ।

"आप एक महान् यज्ञ की होत्री हैं। एक महान् संग्राम की सेनानी हैं। भारतवर्ष इस यज्ञशाला और समर भूमि की ओर टकटकी लगाये देख रहा है। आपकी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आपने कितने महान् काम को अपने हाथ में लिया है...अपने मन को पवित्र करो, सादा जीवन व्यतीत करो, अपने कर्तव्य से कभी मत चूको, प्रेम और प्यार की मूर्ति बन जाओ। बस यही साधन इस यज्ञ की पूर्ति का है। इस यज्ञ को सफल बनाने का है। मेरी तो यह इच्छा है तुममें से प्रत्येक कन्या एक पाठशाला बन जाय जिससे देश में कोई विद्याहीन न रहे।"

महत्त्वाकांक्षी योजनाएँ—लाला देवराज कन्या महाविद्यालय को न केवल लड़कियों की सामान्य शिक्षा का महाविद्यालय बनाना चाहते थे, अपितु उसे एक विशाल महिला विश्वविद्यालय का रूप देने की भी आकांक्षा रखते थे। आर्यसमाज जालन्धर के १६२० के वार्षिकोत्सव के अवसर पर लाला देवराज ने एक बड़ा महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था। इससे विद्यालय के विषय में उनके विचारों, कल्पनाओं और योजनाओं की एक सुन्दर झाँकी मिलती है। इसमें उन्होंने कहा था—

"मैं कन्या महाविद्यालय के काम को कोलम्बस के काम से उपमा दूँगा। फर्क केवल इतना है कि कोलम्बस ढाई वर्ष के बाद अमेरिका के तट पर पहुँचा था, परन्तु विद्यालय के कार्यकर्ताओं को अपने ३० वर्ष के कार्य के बाद भी केवल किनारा नजर आने लगा है। अभी हमें बहुत काम करने हैं। लड़कियों के लिए एक टैक्नीकल स्कूल की आवश्यकता है। जिल्दसाजी और घड़ीसाजी का काम लड़कियाँ घरों में बैठकर कर सकती हैं। लड़कियों को विद्या प्राप्ति के लिए विदेश भेजने के लिए विदेश यात्रा फण्ड कायम करने की जरूरत है। रोगियों की सेवा की शिक्षा लड़कियों को दी तो जाती है, परन्तु इसको अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। जगह-जगह विद्यालय की शाखाएँ कायम करना भी जरूरी है। पहाड़ों पर लड़कियों के लिए रेस्ट हाउस बनाने की जरूरत है। किश्ती चलाना और घुड़सवारी सिखाने के लिए प्रबन्ध करना होगा। स्त्री प्रचारिकाएँ भी तैयार करनी होंगी। हम अपनी सारी कन्या पाठशालाओं में एक ही पाठविधि प्रचलित करके एक महिला विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं।"

लाला देवराज के भाषण के उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि उनकी इस संस्था को बढ़ाने की बड़ी महत्त्वकांक्षी कल्पना और योजना थी। वह कन्याओं को न केवल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षर बनाना चाहते थे, अपितु उनकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों का पूर्ण विकास करने के इच्छुक थे और अपनी शिक्षा पद्धति में भारत की पुरानी संस्कृति के उपयोगी अंशों के साथ वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों का भी छात्राओं को ज्ञान कराना चाहते थे। उनकी यह भी इच्छा थी कि यहाँ लड़कियों को ऐसी दस्तकारियाँ और काम सिखाये जायें जिनसे वे स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनें और अपने घर पर रहते हुए काम करें। उनकी टैक्नीकल स्कूल की योजना १९२० की परिस्थितियों में अपने समय से बहुत आगे की तथा क्रान्तिकारी योजना थी।

(५) कन्या महाविद्यालय, जालन्धर की विशेषताएँ

(क) पारिवारिक वातावरण—कन्या महाविद्यालय में इसकी स्थापना के समय से ही पारिवारिक वातावरण था। पहले यह बताया जा चुका है कि लाला देवराज ने सर्वप्रथम अपने घर पर ही इस पाठशाला का श्रीगणेश किया था। उनकी माताजी तथा धर्मपत्नी इसमें पूरा सहयोग दे रही थीं। जब यह किराये के मकान में पृथक् रूप से चलाया गया तो भी माताजी और पत्नी इसमें सहायता देती रहीं। शुरू में इसमें लालाजी और उनके साथी परिवारों की कन्याएँ पढ़ती थीं। इन कन्याओं के परिवारों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क होने के कारण लड़कियाँ अपने घर जैसे वातावरण में रहती थीं। जब डेरागाजी खाँ आदि दूरवर्ती नगरों के आर्यसमाजी अपनी कन्याओं को महाविद्यालय में प्रविष्ट कराने लगे तो छात्रावास की कोई व्यवस्था न होने के कारण बाहर की लड़कियाँ शुरू में लालाजी के परिवार में ही रहती थीं। विद्यालय में छात्राओं की संख्या बढ़ जाने और छात्रावास बन जाने पर भी इस संस्था में पारिवारिक वातावरण बना रहा। इसका एक बड़ा कारण लालाजी का आकर्षक व्यक्तित्व था। वे पिता के समान सब छात्राओं की पढ़ाई और सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे। छोटी-छोटी नयी आयी कन्याओं के साथ खेलते रहते थे। कन्याएँ इस आत्मीयता के कारण उन्हें चाचाजी के नाम से सम्बोधित करती थीं। विद्यालय की पहली आचार्या पण्डिता सावित्री देवी ने भी इस संस्था की छात्राओं को अपना अगाध प्रेम प्रदान किया। वे बड़ी बहनजी कहलाती थीं। इस प्रकार इस संस्था में शुरू से ही पारिवारिक वातावरण की परम्परा पड़ी और कन्याओं को घर जैसा स्नेह मिला, इसके कारण कन्याएँ जीवन भर के लिए इस संस्था को अपना घर मानती थीं।

इस विषय में महाविद्यालय की एक पुरानी स्नातिका श्रीमती ठाकुर देवी का यह कथन उल्लेखनीय है—"हमारा विद्यालय एक घर जैसा था। वहाँ कोई चाचा था, कोई चाची थी, कोई भाई था, कोई बुआ थी, और कोई बहिन थी। उन सबसे हमें सगे-सम्बन्धियों का प्रेम-प्यार मिलता था और हमें घर की याद तक नहीं आती थी।"

(ख) राष्ट्रीयता—कन्या महाविद्यालय के संस्थापक का जन्म यद्यपि ऐसे वंश में हुआ था जो सरकार का समर्थक और कृपापात्र था, किन्तु लालाजी के हृदय में आर्य-समाज के सम्पर्क से गहरी राष्ट्रीय भावनाएँ उत्पन्न हुईं। वे काफी समय तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और जैलदार का कार्य करते रहे, किन्तु महाविद्यालय की कन्याओं में आपने राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वे कन्याओं को भारत के प्राचीन राष्ट्रीय महापुरुषों तथा स्वतन्त्रता का संघर्ष करने वाले राणा प्रताप और शिवाजी

जैसे महापुरुषों की और दुर्गावती तथा लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं की कथाएँ सुनाया करते थे। उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण सरल और सुबोध कविताओं की रचना की थी। इन्हें वे कन्याओं को याद कराते और गवाते थे। राष्ट्रीय भावना के कारण आपने महाविद्यालय को सरकार द्वारा प्रस्तावित, आर्थिक सहायता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि किस प्रकार आचार्या कुमारी लज्जावती सरकारी मदद को संस्था के विकास के लिए घातक समझती थीं।

१९१९ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के बाद अमृतसर में सम्पन्न हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द इस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। उस समय सरकारी दमन चक्र के कारण चारों ओर भय का वातावरण था, फिर भी सरकारी रोष की परवाह न करते हुए लाला देवराज इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए और कुमारी लज्जावतीजी के नेतृत्व में विद्यालय की छात्राओं ने अधिवेशन में वन्देमातरम् का राष्ट्रगान गाया। १९२० के सत्याग्रह संग्राम में जब गांधीजी का चरखे और खादी का कार्यक्रम आरम्भ हुआ तो कन्याएँ चरखा कातने लगीं, खादी बुनने और पहनने लगीं। १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन में सम्भवत: कन्याओं की यही एकमात्र संस्था थी जिसने इस आन्दोलन में भाग लिया। भारत की पहली सत्याग्रही महिला इस विद्यालय की पुरानी छात्रा पार्वती थी। कांग्रेस द्वारा आयोजित सभी सभाओं में वन्देमातरम् तथा दूसरे राष्ट्रीय गीत विद्यालय की छात्राओं द्वारा गाये जाते थे। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की क्रान्तिकारी गतिविधियों में महाविद्यालय की पुरानी छात्राओं—सुशीला दीदी और लीलावती ने प्रमुख भाग लिया। आचार्या कुमारी लज्जावती ने सरदार भगतसिंह का केस लड़ने और प्रिवी कौंसिल तक अपील करने के सभी कामों को अपने अन्य साथियों की मदद से किया। १९२९ में लाहौर में रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास करने वाले ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन में कुमारी लज्जावती की अध्यक्षता में काम करने वाली १५० स्वयंसेविकाओं में से लगभग आधी कन्या महाविद्यालय की छात्राएँ थीं। इसके बाद कन्या महाविद्यालय में हर सोमवार को राष्ट्रीय ध्वजा का अभिवादन और राष्ट्रीय गान का कार्यक्रम आरम्भ किया गया।

(ग) **धार्मिक शिक्षा**—इस संस्था की एक अन्य विशेषता धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्त्व देना था। इसमें सबसे पहले सन्ध्या और प्रार्थना तथा स्वतिवाचन और शान्ति प्रकरण के मन्त्र कण्ठस्थ कराये जाते थे। संस्कृत का ज्ञान भी प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति के मूल ग्रन्थ पढ़ने की सामर्थ्य उत्पन्न करने की दृष्टि से छात्राओं को दिया जाता था। यद्यपि यहाँ संस्कृत व्याकरण की शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी जैसी उच्चकोटि की नहीं थी, फिर भी वैदिक मन्त्रों के साथ-साथ गीता, उपनिषदों और सत्यार्थप्रकाश के मूल तत्त्वों का भी ज्ञान कराया जाता था।

धार्मिक शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त उच्च नैतिक गुणों के विकास को अधिक महत्त्व दिया जाता था। इस समय कन्या महाविद्यालय की आचार्या, धर्मशिक्षा के अध्यापक और लालाजी स्वयमेव अतीव ऊँचा शुद्ध आचरण रखने वाले, शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। वे सच्चे अर्थों में आचार्य थे और अपने आचरण का शिष्यों पर प्रभाव डाला करते थे। इसका एक सुन्दर उदाहरण कन्याओं को गीता और उपनिषद्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सत्यार्थप्रकाश पढ़ाने वाले भक्त रैमल दास थे। वे आदर्शवादी प्रकृति के पक्के ठोस आर्यसमाजी थे और उनके ग्रन्थों को सच्ची निष्ठा के साथ पढ़ाया करते थे। एक बार आदर्श ब्रह्मचारिणी की जीवनचर्या का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि छात्राओं को कठोर जीवन विताना चाहिये और नंगे पाँव चलना चाहिए। इस पर किसी मुँहफट छात्रा ने कह दिया, "आप ही गर्मियों के मौसम में नंगे पाँव चल कर देखें।" छात्रा ने तो यह मजाक में कहा था, किन्तु भक्त रैमल दास उस दिन से जेठ की तपती दोपहरी में भी नंगे पाँव विद्यालय आने लगे। छात्राओं पर उनके इस उपदेश का गहरा असर पड़ा।

(घ) समाज सुधार और क्रान्ति की भावना—जिस समय कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई थी, उस समय भारत का स्त्री समाज अनेक प्रकार की घातक एवं अन्ध-विश्वासपूर्ण रूढ़ियों की वेड़ियों में जकड़ा हुआ था। पर्दे की प्रथा ने स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में वन्द कर दिया था। वाल विवाह की कुप्रथा के कारण लड़कियों की शादी वहुत ही छोटी अवस्था में, यहाँ तक कि दूध पीते वच्चों तक के विवाह हो जाते थे और गुड़ियों से खेलने वाली लड़कियाँ अपने पति के न रहने पर आजीवन वाल वैधव्य के नरक तुल्य जीवन को वड़े कष्ट के साथ विताती थीं। स्त्रियों का आभूषण-प्रेम चरमसीमा तक पहुँच चुका था।

कन्या महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज न केवल स्त्रियों को साक्षर वनाना चाहते थे, अपितु वे शिक्षा के माध्यम से उनमें ऐसी शक्ति का जागरण करना चाहते थे कि कन्याएँ समाज के लिए हानिकर रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह एवं क्रान्ति की अग्रदूत वनें। उनका एक प्रिय वाक्य था—"कन्याएँ देवयानी वनें।" उनकी इच्छा थी कि वे अपनी कन्याओं को अतीव कर्मठ, ओजस्वी और ऐसा प्रवुद्ध वनायें कि वे प्रचलित अन्धविश्वासों और घातक रूढ़ियों की वेड़ियों को तोड़ने में प्रसन्नता का अनुभव करें, और समाज में आमूलचूल परिवर्तन करें तथा उसे उन्नत वनायें। श्री शादीराम जोशी के शब्दों में, "विद्यालय की स्थापना के पहले या दूसरे वर्ष की रिपोर्ट में आपने (लाला देवराज ने) प्रसन्नता व्यक्त की थी कि विद्यालय में आने वाली वहुत-सी कन्याओं ने गहने पहनना छोड़ दिया है। उनके विचार में स्त्रियों का गहने पहनना और गहने से प्यार करना उनकी दासता के जीवन का प्रतीक था।"

उन दिनों स्त्रियों में प्रचलित पर्दे और घूँघट के रिवाज को दूर करने के उन्होंने प्रवल प्रयास किये। यदि वे किसी समारोह या उत्सव में किसी स्त्री को घूंघट में देखते थे तो कभी-कभी उसके पास जाकर प्यार से कहते थे, "देख वेटी, तुम्हारे पास सब वहनें शेरों की तरह वैठी हैं, तुम इनके वीच में गीदड़ वन कर क्यों वैठी हो?"

मृत्यु के वाद सियापे (छाती पीटकर ऊँचे स्वर से रोने-धोने) और लम्वा शोक मनाने के रिवाज को दूर करने में आपके परिवार से पहल की। लालाजी के पिताजी की मृत्यु पर आप की माताजी ने शोक प्रदर्शन में वड़ा संयत आचरण करके अन्य परिवारों के लिए एक अनुकरणीय दृष्टान्त प्रस्तुत किया।

कन्या महाविद्यालय ने वाल-विवाह का उग्र विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन किया। शिक्षा के प्रसार से लड़कियों की विवाह की आयु स्वयमेव ऊँची उठने लगी, क्योंकि विद्यालय में एक वार प्रविष्ट हो जाने के वाद वहाँ वारह वर्ष का स्नातिका पाठ्यक्रम पूरा करना पड़ता था और शिक्षा काल में लड़की का विवाह नहीं हो सकता

था, अतः यहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़की की विवाह की आयु स्वतः १६-१७ वर्ष होने लगी।

वैधव्य के अभिशाप को दूर करने के लिए तथा दुर्भाग्यग्रस्त लड़कियों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए आप सदैव विधवाओं के विवाह का प्रबल समर्थन करते थे और विधवाओं को त्याग, तपस्या और समाज सेवा का जीवन अपनाने की प्रेरणा करते रहते थे। दहेज की कुप्रथा बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भी प्रचलित है। प्रायः समाचार-पत्रों में ऐसी खबरें छपती रहती हैं कि दहेज कम लाने वाली वधुओं पर ससुराल के व्यक्तियों द्वारा जो ताने कसे जाते हैं, उनसे बचने के लिए बहुएँ मिट्टी का तेल छिड़क कर आत्महत्या कर लेती हैं। लाला देवराज दहेज प्रथा के उग्र विरोधी थे। वे छात्राओं में सदा इस कुप्रथा का विरोध करने की भावना उत्पन्न करते थे। कन्या महाविद्यालय में शिक्षित बहुत-सी लड़कियों के ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने दहेज प्रथा के विरोध में उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। इस विषय में यहाँ केवल एक ही उदाहरण का उल्लेख किया जायेगा। १९१५-१६ में कन्या महाविद्यालय में पढ़ी एक लड़की ठाकुर देवी के विवाह की चर्चा एम० बी० बी० एस० में पढ़ रहे एक लड़के के साथ हो रही थी। परिवार सम्पन्न और लड़का अच्छा था। किन्तु बातचीत में लड़के ने दहेज और सोने की माँग की। यह सुनकर ठाकुर देवी ने उस लड़के के साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। माता-पिता ने प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए जब उस पर बल डाला तो उसने जोरदार शब्दों में कहा—"यह मुझसे विवाह नहीं करना चाहता है, बल्कि सोने के ढेर से विवाह करना चाहता है। मैं उससे हरगिज विवाह नहीं करना चाहती हूँ।" ऐसे सम्पन्न और कमाऊ लड़के के आकर्षक प्रस्ताव को ठुकरा कर उसने डी० ए० वी० कॉलिज में पचहत्तर रुपया मासिक लेने वाले एक अध्यापक के साथ विवाह करना पसन्द किया। समाज में क्रान्ति की ऐसी भावना पैदा करने में कन्या महाविद्यालय का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कन्या महाविद्यालय के कार्य का मूल्यांकन—वर्तमान शताब्दी के पहले दो दशकों में कन्या महाविद्यालय ने जो कार्य किया, उसकी सर्वत्र सराहना हुई। पत्र-पत्रिकाओं और राष्ट्रीय नेताओं ने इसके द्वारा किये गये शिक्षा एवं समाज सुधारविषयक क्रान्तिकारी कार्य की सराहना की। यद्यपि यह विद्यालय पंजाब में स्थित था, किन्तु सुदूर दक्षिण में मद्रास से छपने वाली रिफार्मर नामक पत्रिका ने अपने १६ फरवरी, १९०६ के अंक में लिखा था, "हमारे पंजाबी भाइयों ने समझ लिया है कि उनकी स्त्रीजाति अज्ञान के अन्धकार में पड़ी हुई है। इसी बात को सामने रख कर आर्यसमाज की ओर से जालन्धर में एक अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कन्या महाविद्यालय स्थापित किया गया है, जो लाला देवराज जैसे महानुभावों की संरक्षकता में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। इस विद्यालय के पीछे देशभक्ति की अनन्य भावना काम कर रही है। अब तक कन्याओं के लिए मामूली पढ़ना-लिखना और गिनती गिन लेना काफी समझा जाता था, किन्तु महाविद्यालय की योजना अपने ढंग की अनोखी और अनुकरणीय है। उनकी आकांक्षा महान् है।"

इस समय इस महाविद्यालय ने महर्षि दयानन्द के स्त्रीशिक्षा और गुरुकुल सम्बन्धी कुछ मूल तत्त्वों को मूर्त रूप प्रदान किया। इसकी चर्चा करते हुए लाहौर से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून ने १ फरवरी, १९०७ के अंक में एक लेख में लिखा था, "सारे भारत में कन्या महाविद्यालय जालन्धर जैसी संस्था नहीं देखी गयी है —इसमें पर्दा प्रथा नहीं है और न ही जातिगत ऊँच-नीच का भेदभाव है। अतः पंजाब भाग्यशाली प्रान्त है। संस्था में प्रायः सभी प्रान्तों की लड़कियाँ पढ़ती हैं और सबका रहन-सहन एक-सा है···अनाथालय की बच्चियाँ उच्च वर्गों की लड़कियों के साथ बिना किसी भेदभाव के खेलती, उठती, बैठती और पढ़ती हैं। भारत के किसी अन्य स्कूल में ऐसा नहीं देखा गया।"

इसके राष्ट्रीय स्वरूप की चर्चा करते हुए बंगाल की पत्रिका 'सर्वेण्ट' ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था, "भारत में आज चारों ओर राष्ट्रीय शिक्षा देने की चर्चा है। पूना में एक महिला विद्यालय खोला गया है, परन्तु हम नहीं जानते कि वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा के किस आदर्श का अनुसरण किया जायेगा। हाँ, जालन्धर के कन्या महाविद्यालय के बारे में हम जरूर कह सकते हैं कि वहाँ वस्तुतः एक महान् राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की बुनियाद रखी जा रही है।"

कन्या महाविद्यालय से प्रेरणा प्राप्त करके पंजाब तथा भारत के अन्य प्रान्तों में स्त्रीशिक्षा की अनेक संस्थाएँ उस समय तेजी से स्थापित हो रही थीं। कन्या महाविद्यालय के इस प्रभाव की चर्चा करते हुए लाहौर से प्रकाशित होने वाली 'देश' नामक पत्रिका ने १९ दिसम्बर, १९१४ के अंक में लिखा था, "देश में आज जगह-जगह जो कन्या पाठशालाएँ खुल रही हैं, वे जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की कोशिशों और उसके प्रचार का ही फल हैं।"

(६) कन्या महाविद्यालय के स्तम्भ

(१) **आचार्या सावित्री देवी**—कन्या महाविद्यालय के निर्माण में इसकी आरम्भिक आचार्याओं और कार्यकर्ताओं का बड़ा योगदान है। संस्था के कुछ ऐसे व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। संस्था की पहली आचार्या पण्डिता सावित्री देवी थीं। विद्यालय के आरम्भ काल में बाल विधवा के रूप में उनका कन्या महाविद्यालय में प्रवेश हुआ। वह जिला मुजफ्फरगढ़ में पैदा हुई थीं। सावित्री देवी १८९० में केवल १० वर्ष की आयु में वैधव्य के अभिशाप से पीड़ित हुईं। एक स्थानीय सज्जन श्री हेमराज ने उस कन्या को कुछ समय तक पढ़ाया-लिखाया तथा योग्य बनाया और १८९४ में वह कन्या विद्यालय में प्रविष्ट हुई। उसकी छात्रवृत्ति का प्रबन्ध भी स्थानीय व्यक्तियों ने कर दिया। किन्तु एक बार छुट्टियों में घर जाने के बाद वह विद्यालय नहीं लौट सकीं, क्योंकि उसे मिलने वाली छात्रवृत्ति की आर्थिक सहायता बन्द हो गयी। उसने लालाजी को एक पत्र द्वारा अपनी कठिनाई लिखी तो उन्होंने उसके व्यय का प्रबन्ध कर दिया, और अपने छोटे-मोटे आभूषण बेचकर वह विद्यालय में आ गयीं। अपने परिश्रम से शीघ्र ही पढ़ाई में अच्छी योग्यता पाने के साथ-साथ उन्होंने स्त्री-समाज में भाषण देना और संस्था की पत्रिका में कुछ लिखना भी सीख लिया। अपनी लगन तथा धुन से तथा लालाजी के पथप्रदर्शन से उन्होंने पढ़ाने में और प्रबन्धकार्य में शीघ्र ही पटुता प्राप्त कर ली। वह लालाजी का दायाँ हाथ बन गयीं। १९०५ में सावित्री देवी ने बम्बई और दक्षिण भारत में लगभग साढ़े तीन महीने में पाँच हजार मील की यात्रा करते हुए

अनेक प्रमुख नगरों में अपनी संस्था के बारे में व्याख्यान दिये, विद्यालय के कार्यविवरण वितरित किये और एक हजार रुपये की धनराशि जमा की। इस यात्रा में सावित्री देवी ने आचार्य कर्वे का हिंगणे आश्रम देखा और अपने विद्यालय में वैसा विधवा आश्रम स्थापित करने का निश्चय किया। लालाजी को सावित्री देवी के रूप में अपने विचारों और आदर्शों के अनुकूल एक योग्य कार्यकर्त्री मिली। उन्होंने उसे पहले मुख्याध्यापिका, अधिष्ठात्री, उपसम्पादिका आदि के विभिन्न कार्य दिये और अन्त में वह कन्या महाविद्यालय की पहली आचार्या बनीं और १९१८ में उनकी मृत्यु तक का समय 'आचार्या सावित्री युग' कहलाता है। उनकी कर्तव्यपरायणता तथा कर्मठता से इसके आरम्भिक विकास में बड़ी सहायता मिली। उनकी मृत्यु के बाद लालाजी ने उनके प्रति सम्मान प्रकट करने और उनकी स्मृति स्थायी बनाने के लिए चालीस हजार रुपये के व्यय से विधवा आश्रम का एक भवन बनाया और इसे सावित्री भवन का नाम दिया गया।

(२) सुभद्राबाई—कन्या महाविद्यालय जालन्धर के आदर्शवादी युग में महाराष्ट्र से आयी एक बहन सुभद्राबाई ने आरम्भिक वर्षों में संस्था के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनका महाराष्ट्र से पंजाब आने का बड़ा रोचक इतिहास है। वह एक समृद्ध महाराष्ट्रीय जमींदार परिवार में उत्पन्न हुई थीं और अपने पति तथा एकमात्र सन्तान कुमारी विद्यावती के साथ अवैतनिक सेवा के लिए इस संस्था में आयीं। उन पर आर्य-समाज की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। परिवार में सम्पन्नता होने के कारण उन्हें पैसे की कोई चिन्ता नहीं थी, किन्तु वह अपनी कन्या को आर्यसमाजी आदर्शों के अनुरूप शिक्षा देना चाहती थीं और उस समय इसकी एकमात्र संस्था कन्या महाविद्यालय जालन्धर ही थी। उनके पति ठाकुर शिवरत्नसिंह ने संस्था में आते ही भवन-निर्माण के कार्य की जिम्मेदारी ले ली, और १९१३ में कन्या महाविद्यालय के छात्रावास के आगे का भाग उनके निरीक्षण में बना। कुमारी विद्यावती की शिक्षा पूरी होने पर उसका विवाह पंजाब में किया गया। यह अन्तःप्रान्तीय और अन्तर्जातीय विवाह था, जो इसके संस्थापक की समाज-क्रान्ति की भावनाओं के सर्वथा अनुरूप था। एक बार जब ठाकुर साहब अपनी जमीन देखने के लिए महाराष्ट्र गये तो वहीं उनका निधन हो गया।

इसके बाद श्रीमती सुभद्राबाई ने कन्या महाविद्यालय में सेवा कार्य शुरू कर दिया। वह छात्रावास की अधिष्ठात्री बनायी गयीं। इस कार्य के लिए कन्याओं की माता बनना पड़ता है और वह सच्चे अर्थों में मातृवात्सल्य से छात्राओं की पूरी देखभाल करने लगीं। आचार्या कुमारी लज्जावती के शब्दों में, "सुभद्राबाई कन्याओं की माता ही थीं। माता ही के समान वे सब कन्याओं की सेवा और सुख-सुविधा का ध्यान रखती थीं। सब कन्याओं के खा लेने के बाद वे स्वयं खाना खाती थीं। एक बार शहर में हैजे का प्रकोप हुआ तो छात्रावास पर भी उसका प्रभाव पड़ा। छात्रावास की बहुत-सी कन्यायें बीमार हुईं। कुछ की मृत्यु भी हुई। उस संकट काल में बाई जी ने जिस मातृ स्नेह से बीमार कन्याओं की सेवा की, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। उन्होंने बीमार पड़ जाने की परवाह किये बिना रातों जागकर सेवा की। वे कन्या महाविद्यालय में महत्त्वपूर्ण मूक साधना करने वाली महिला थीं और उन जैसे नींव के पत्थरों से ही कन्या महाविद्यालय के भव्य भवन का निर्माण हुआ।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **आचार्या कुमारी लज्जावती**—कन्या महाविद्यालय की आचार्या के रूप में लगभग ४० वर्ष काम करने वाली कुमारी लज्जावती का इस महाविद्यालय के विकास में अद्वितीय योगदान है। वह १९०३ में, ६ वर्ष की आयु में, मेधावी छात्रा के रूप में इस संस्था में प्रविष्ट हुई थीं, और जीवन के ८६ वसन्त पार करने के बाद वे अब भी इस संस्था की सेवा में लगी हुई हैं। ८० वर्ष तक किसी शिक्षा-संस्था के साथ इतना सुदीर्घ सम्बन्ध अपने आप में अतीव उज्ज्वल और अनुपम कीर्तिमान है। इस दृष्टि से भी वे भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। उनकी तुलना वैदिक युग की उन ब्रह्मवादिनी स्त्रियों से की जा सकती है जो आजीवन कौमार्य व्रत का पालन करते हुए विद्याभ्यास और तत्त्व चिन्तन में लगी रहती थीं। उन्हें लालाजी के बाद इस संस्था का प्रधान स्तम्भ कहा जा सकता है।

१९०३ में इस संस्था में प्रविष्ट होकर अपनी पढ़ाई समाप्त करने के बाद १९१० में वे अपने घर पेशावर वापिस चली गयीं। किन्तु उनकी छात्रावस्था में लाला देवराज उनकी स्मरण शक्ति, कुशाग्र बुद्धि तथा भाषण देने की कला से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने इस योग्य शिष्या को अपनी संस्था के कार्य में लगाने का संकल्प किया। १९१० में पेशावर आर्यसमाज के उत्सव में जाकर लालाजी ने कुमारी लज्जावती के माता-पिता से प्रार्थना की कि वे अपनी होनहार पुत्री को कन्या महाविद्यालय में छ: मास तक सेवा करने के लिए उनकी प्रार्थना स्वीकार करें। उन दिनों कन्या महाविद्यालय की १३-१४ वर्ष की इस स्नातिका की आर्यसमाजों में होने वाले व्याख्यानों की धूम मची हुई थी। स्वामी सत्यानन्द ने कुमारी लज्जावती को अपना जीवन आर्यसमाज तथा स्त्री शक्ति के जागरण के पुनीत कार्य के लिए समर्पित करने की प्रेरणा दी और वे जालन्धर आ गयीं। १९१३ में केवल १६ वर्ष की आयु में विद्यालय की उस समय की आचार्या पण्डिता सावित्री देवी के अस्वस्थ रहने पर आपको उनकी सहायता के लिए उपाचार्या नियुक्त किया गया। १९१८ में आचार्या सावित्री देवी के आकस्मिक निधन पर आप विद्यालय की आचार्या नियुक्त की गयीं।

१९१७ में आपने कन्या महाविद्यालय के आर्थिक आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए एक भीष्म प्रतिज्ञा की। महात्मा मुंशीराम के आदर्श का अनुसरण करते हुए उन्होंने यह प्रण किया कि वे जब तक संस्था के लिए पचास हजार रुपये की धनराशि एकत्र न कर लेंगी, तब तक वे इस संस्था में कदम न रखेंगी। इसके बाद १९१७ में आचार्या कुमारी लज्जावती धन संग्रह के लिए यात्रा पर निकलीं। आप बड़ी ओजस्विनी वक्ता थीं। आपके भाषण में जादू का-सा असर था। आपने लाला देवराज तथा बड़ी आयु के अन्य स्त्री-पुरुषों के साथ पंजाब, सीमा प्रान्त सिन्ध, उत्तरप्रदेश और कलकत्ता का दौरा किया और एक वर्ष से कम अवधि में अपना प्रण पूरा करके संस्था में प्रवेश किया।

इस बीच १९१६ में आपकी माताजी के देहान्त से आपकी दो छोटी बहनों तथा एक छोटे भाई के पालन और शिक्षण की जिम्मेवारी आप पर आ गयी। आप पेशावर जाकर अपने भाई-बहनों को जालन्धर ले आयीं और १९२६ तक महाविद्यालय में आचार्या का कार्य अतीव योग्यता से सम्पन्न करती रहीं। किन्तु अब आपके बच्चे लाहौर में रहकर कॉलिजों में पढ़ाई करना चाहते थे। आपको लाला लाजपत राय के सानिध्य में रहकर राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करने का आकर्षण था, अत: आप लाला देवराज की अनुमति से

१९२६ में लाहौर चली गयीं और १९३५ में लालाजी के निधन के बाद इस संस्था को सँभालने के लिए पुनः जालन्धर चली आयीं। इस बीच में आपने १९२९ में रावी नदी के तट पर हुए लाहौर कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन में स्त्री स्वयंसेविकाओं के कमाण्डर का काम किया। सरदार भगतसिंह और उनके साथियों पर सरकार द्वारा चलाये गये केस में डिफेंस का काम करने वाली समिति की पूरी जिम्मेदारी आप पर थी और इस कारण आप महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू तथा पं० जवाहरलाल नेहरू के सम्पर्क में आयीं और आपने प्रिवी कौंसिल तक केस को ले जाने का प्रबन्ध किया।

१९३५ में जब आप विद्यालय के संचालन के लिए जालन्धर आयीं तो आपने देखा कि पिछले दस सालों में परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी हैं, स्थान-स्थान पर सरकारी स्कूल-कॉलिज स्थापित हो चुके हैं, लोग नये ढंग की सरकारी पाठ्यक्रम की शिक्षा चाहते हैं। कन्या महाविद्यालय में प्रवेश पाने वाली छात्राओं की संख्या में निरन्तर कमी हो रही है, और इनके अभाव में संस्था के बन्द हो जाने की आशंका थी। अतः आपने मध्यम मार्ग अपनाते हुए पुराने पाठ्यक्रम को जारी रखा, किन्तु उसके साथ प्राइवेट रूप में मैट्रिक आदि की परीक्षा के लिए छात्राओं की शिक्षा का प्रबन्ध किया। इस प्रकार संस्था समय की आवश्यकताओं के अनुसार नये पथ पर अग्रसर होने लगी।

१९३५ तक कन्या महाविद्यालय में जब तक स्नातिका का पाठ्यक्रम चलता रहा, विद्यालय के मुख्याध्यापक आचार्य या आचार्या कहलाते थे। १९३५ तक क्रमशः लाला देवराज, श्रीमती सावित्री देवी, कुमारी लज्जावती, श्रीमती शांताबाई ने आचार्या पद को सुशोभित किया। १९३५ में लाहौर से लौटने के बाद जब कुमारी लज्जावती जालन्धर आयीं और संस्था में नवीन परिवर्तन हुए तो इसकी प्रधानाध्यापिका को प्रिंसिपल कहा जाने लगा। इस प्रकार नये महाविद्यालय की सबसे पहली प्रिंसिपल कुमारी लज्जावती थीं। उन्होंने अगले ३० वर्ष, १९६५ तक इस संस्था के प्रिंसिपल के रूप में काम किया। यद्यपि इस समय संस्था नये सरकारी ढंग के महाविद्यालय का रूप धारण कर रही थी, तो भी कुमारी लज्जावती ने इस संस्था की पुरानी परम्पराओं एवं राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति के वातावरण को अक्षुण्ण बनाये रखने का पूरा प्रयास किया। संस्था ने अपने अनुशासन और नैतिक वातावरण की पुरानी ख्याति को बनाये रखा। इस समय आपके जीवन का एकमात्र ध्येय इस संस्था को उन्नत करने का था। आपने अपना सारा जीवन इसके लिए समर्पित कर दिया। छात्राओं की संख्या अधिक बढ़ जाने पर भी आप प्रायः सभी कन्याओं को व्यक्तिगत रूप में जानती थीं। आप सदा छात्राओं में अनुशासन, शिष्टता, शालीनता, राष्ट्रीयता, भारतीयता के भावों को भरती रहती थीं। उस समय आपका अनुशासन इतना अच्छा था कि यह कहा जाता था कि उन्होंने किसी छात्रा या चतुर्थ श्रेणी के कार्यकर्ता को जुर्माना तक नहीं किया। संस्था में राष्ट्रीय वातावरण को बनाये रखने के लिए सफेद खादी के वेश में छात्राओं द्वारा संस्था के विशाल मैदान के मध्य में एक उच्च स्तम्भ पर प्रति सप्ताह राष्ट्रीय पताका को लहराने और राष्ट्रगान गाने की और इसके साथ प्रेरणाप्रद प्रवचनों को देने की पुरानी परम्परा जारी रखी गयी। सरस्वती वन्दना, अमरज्योति, और वनमहोत्सव के वार्षिक समारोहों को नया रूप दिया गया। राष्ट्रीय नेताओं से सम्पर्क रखा गया। देश के प्रायः सभी राष्ट्रपति और प्रधान-मन्त्री संस्था में पधारे और उन्होंने इसके कार्य से सन्तोष प्रकट किया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले आपकी पचास हजार रुपये एकत्र करने की भीष्म प्रतिज्ञा का उल्लेख किया जा चुका है। आपने आजीवन भीष्म के समान ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन किया तथा उसे नया रूप दिया। ब्रह्म का अर्थ विनोवाजी के शब्दों में न केवल वेद, अपितु एक महान् आदर्श भी है। आपने कन्या महाविद्यालय के नवनिर्माण के महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। अतः वे वालब्रह्मचारिणी और सच्चे अर्थों में प्राचीन परिभाषा के अनुसार ब्रह्मवादिनी हैं।

प्रिंसिपल के पदभार से मुक्त होकर भी इस समय आप इस संस्था की प्रवन्धकर्त्री समिति की उपप्रधान के रूप में संस्था के विकास में अपना योगदान दे रही हैं।

(७) आदर्शवादी युग की समाप्ति और कन्या महाविद्यालय का नया स्वरूप—१९३५ में लाला देवराज के स्वर्गवास के साथ इस संस्था के स्वरूप में एक क्रान्तिकारी मौलिक परिवर्तन आया। उन्होंने इसकी स्थापना १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में आर्यसमाज के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर की थी। उस समय स्त्रीशिक्षा एक अतीव क्रान्तिकारी कार्यक्रम था और इसे सरकारी सहायता के विना चलाना अतीव दुष्कर एवं असम्भव कार्य था। उस समय लालाजी ने इसे अपनी अद्‌भुत निष्ठा, क्रियाशीलता, सतत प्रयत्न और अध्यवसाय से सम्भव वनाया, समाजसुधार की भावना तथा नारी जागरण के उत्थान की कामना के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर इसे किया और अपने इस परीक्षण को सफलतापूर्वक चलाया। उस समय स्त्रीशिक्षा का कार्य समय के प्रवाह के विरुद्ध था। फिर भी लालाजी इसे निष्ठापूर्वक संचालित करते रहे।

किन्तु २०वीं शताब्दी के तीसरे चौथे दशक तक सामाजिक परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन आने लगा। सरकार स्त्रीशिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने लगी। लालाजी जैसे समाज सुधारकों ने भारतीय समाज में स्त्रीशिक्षा के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया था। अव शासन द्वारा स्थान-स्थान पर स्त्रीशिक्षा की पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों का जाल विछने लगा। पाश्चात्य ढंग की अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के वाद युवकों को अच्छी सरकारी नौकरियाँ मिलने लगीं। ऊँची शिक्षा पाकर उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त होने वाले युवक पढ़ी-लिखी लड़कियों से और सरकारी स्कूलों में शिक्षित कन्याओं से विवाह करना चाहते थे। पंजाव के लाहौर आदि प्रमुख नगरों में कन्याओं को सरकारी उपाधियों के लिए तैयार करने वाले अनेक सरकारी और निजी कॉलिज खुल गये। इनमें वही लड़कियाँ प्रविष्ट हो सकती थीं जो मैट्रिक पास हों, अतः कन्याओं के माता-पिता अपनी लड़कियों को सरकारी स्कूलों में शिक्षा दिलाने के लिए उत्सुक होने लगे ताकि उन्हें अपनी कन्याओं के लिए अच्छा घर और वर मिल सके। लोगों की अव यह माँग होने लगी कि उनकी लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वे सरकारी परीक्षाएँ पास कर सकें और कॉलिजों में प्रविष्ट हो सकें।

कन्या महाविद्यालय की परीक्षाओं को कोई सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं थी, अतः इसकी शिक्षा का आकर्षण कम होने लगा और कन्या महाविद्यालय में छात्राओं की संख्या निरन्तर घटने लगी। पहले जहाँ छात्रावास छात्राओं के लिए सर्वथा अपर्याप्त थे, वहाँ अव वे खाली पड़े रहने लगे। संस्था की प्रवन्धकर्त्री सभा इस स्थिति से चिन्तित हो उठी और यथार्थवादी विचारधारा वाले सदस्यों ने लालाजी पर इस वात के लिए वल देना शुरू किया कि वे यहाँ सरकारी परीक्षाओं की पढ़ाई शुरू करें। ऐसा करना पुराने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शवाद को तिलांजलि देना था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में लाला देवराज एक मानसिक संघर्ष में पड़े रहे। एक ओर उस समय की परिस्थितियाँ उन्हें आदर्शवाद का पुराना पथ बदलने के लिए बाधित कर रही थीं, दूसरी ओर उनका मन अपनी पुरानी परम्परा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। इस समय वे कहा करते थे—"मेरा मस्तिष्क परिवर्तन के पक्ष में है, मेरा हृदय परिवर्तन के विरुद्ध है...।" उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने आदर्शवाद को बनाये रखा और संस्था के पाठ्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

किन्तु १९३५ में लालाजी के स्वर्गवास के बाद उनके सहयोगी और संस्था के प्रबन्धकों को यह निश्चय हो गया कि परिवर्तन के बिना कोई चारा नहीं है। नान्यः पंथाः विद्यते अयनाय। उनकी मान्यता थी कि यदि संस्था को उन्नति करनी है तो उसकी नीति में परिवर्तन करना होगा। अन्त में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी पक्षों में समझौता हुआ और यह निश्चय किया गया कि इस संस्था में दोनों पाठ्यक्रम चलते रहें। स्नातिका पद्धति का पुराना पाठ्यक्रम भी जारी रहे और जो छात्राएँ मैट्रिक, प्रभाकर, एफ० ए०, बी० ए० आदि सरकारी विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ पास करना चाहें, उन्हें प्राइवेट रूप में इन परीक्षाओं के लिए तैयार कराया जाय और इनमें बैठाया जाय।

वर्तमान युग का नया स्वरूप—१९३५ में लाला देवराज के निधन के बाद संस्था में नवीन परिस्थितियों के कारण ऐसे परिवर्तन शुरू हुए जिनसे कन्या महाविद्यालय शनैः-शनैः एक आधुनिक प्रथम कोटि का महिला महाविद्यालय बनने लगा। पहले यह बताया जा चुका है कि पुराने स्नातिका पाठ्यक्रम की छात्राएँ निरन्तर कम हो रही थीं। मैट्रिक, प्रभाकर आदि सरकारी परीक्षाएँ देने वाली छात्राओं की संख्या बढ़ रही थी। नयी पीढ़ी की छात्राओं को पीली साड़ी का गणवेश खटकने लगा था। इस समय सौभाग्यवश कुमारी लज्जावती अपनी बहनों की शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर लाहौर से पुनः जालन्धर आ गयीं। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से यह अनुभव कर लिया कि अब इस महाविद्यालय को नयी परिस्थितियों के साथ समन्वय और सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा। उन्होंने इसके नये रूप का विकास शुरू किया। पहले छात्राओं को मैट्रिक, इण्टर और बी० ए० के लिए प्राइवेट रूप में परीक्षाएँ दिलवाई जाने लगीं। इस समय स्नातिका का पुराना पाठ्यक्रम भी चलता रहा। यह नयी-पुरानी पद्धति का समन्वय था। किन्तु अधिकांश छात्राओं का रुझान सरकारी परीक्षाएँ देने की ओर था। सन् १९४१ में संस्था की प्रबन्धकर्त्री सभा—आर्य शिक्षा मण्डल ने जब द्वाबा कॉलिज की स्थापना की तो इस विद्यालय में पढ़ने वाली लड़कियों को उस कॉलिज का गर्लसेक्शन बना दिया गया और उसे इस रूप में विश्वविद्यालय से मान्य करवा लिया गया। अब छात्राएँ बाकायदा नियमित छात्राओं के रूप में विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ देने लगीं। अब तक वे प्राइवेट छात्राओं के रूप में परीक्षा में बैठ रही थीं। १९४५ में कन्या महाविद्यालय एक कॉलिज के रूप में पंजाब विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध हो गया और १९४७ में इस कॉलिज की छात्राएँ पहली बार विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठीं। इस समय से इसका विकास कॉलिज के रूप में होने लगा।

शुरू में कन्या महाविद्यालय की श्रेणियों में अंग्रेजी जैसे अनिवार्य विषयों को छोड़कर छात्राओं की संख्या थोड़ी होती थी, इसलिए काफी समय तक द्वाबा कॉलिज के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राध्यापक ही इन श्रेणियों को पढ़ाने आते रहे। किन्तु जिस विषय में छात्राओं की संख्या काफी बढ़ती गयी, उस विषय का अपना स्वतन्त्र स्टाफ नियुक्त किया जाने लगा। द्वावा कॉलिज के सहयोग से यहाँ विज्ञान की कक्षाएँ आरम्भ की गयीं। १९५२ से कन्या महाविद्यालय में ही प्रयोगशालाओं का निर्माण शुरू हो गया। इस समय यहाँ विज्ञान की शिक्षा के लिए आठ सुसज्जित प्रयोगशालाएँ हैं। बी० ए० तक आर्ट्स के सभी विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध है। अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, गणित, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, संगीत, ललितकला, गृहविज्ञान तथा मनोविज्ञान के विषय पढ़ाये जाते हैं। मनोविज्ञान तथा गृहविज्ञान के विषयों में प्रवेश पाने के लिए छात्राओं में होड़ लगी रहती है। संगीत तथा ललितकलाओं के पृथक् सुसज्जित कक्ष हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी में ऑनर्स कक्षाओं का, हिन्दी, संगीत, अंग्रेजी, राजनीतिशास्त्र तथा गणित में एम० ए० की कक्षाओं का प्रबन्ध है। १९७१ से यह कन्या महाविद्यालय गुरुनानक देव विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हो गया है। छात्राओं की संख्या में वृद्धि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब १९४६ में नवीन परिवर्तन प्रारम्भ हुए थे, उस समय यहाँ छात्राओं की संख्या ५० थी और अब सत्रह सौ से भी अधिक है। यहाँ छात्राओं के निवास, खेल-कूद आदि की सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। इसकी गणना पंजाब के प्रथम कोटि के महिला महाविद्यालयों में होती है।

प्रबन्ध— सन् १८९७ तक इस संस्था का प्रबन्ध लाला देवराज, लाला मुंशीराम तथा उनके साथी करते रहे। १८९७ में इस संस्था के प्रबन्ध में आर्यसमाज का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से 'कन्या महाविद्यालय मुख्य सभा' बनायी गयी। इसमें आजीवन सदस्यों के अतिरिक्त विभिन्न आर्यसमाजों के प्रतिनिधि तथा पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बंगाल और बम्बई की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रधान भी प्रतिष्ठित सदस्य बनाये गये। मुख्य सभा तथा प्रबन्धकर्त्री सभा के विधान भी बने और इनमें समय-समय पर अनेक संशोधन होते रहे। मुख्य सभा के सदस्यों में गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य प्रो० रामदेव और यशस्वी स्नातक पं० बुद्धदेव विद्यालंकार जैसे मूर्धन्य आर्यसमाजी नेता थे।

१९४० में संस्था के प्रधान रायबहादुर दीवान बद्रीदास, स्वर्गीय लाला वृन्दावन सोंधी तथा लाला अछरूराम ने जालन्धर में लड़कों का एक कॉलिज खोलने की योजना बनायी। किन्तु इसे क्रियान्वित करने में यह कठिनाई थी कि कन्या महाविद्यालय के मुख्य विधान के अनुसार केवल लड़कियों की शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए निम्न प्रकार की संस्थाएँ खोली जा सकती थीं—विद्यालय और उसकी शाखाएँ, कन्या आश्रम, अनाथालय, और विधवा भवन।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए मुख्य सभा के विधान में १६ जून, १९४० को संशोधन किया गया और इसमें एक नयी धारा यह जोड़ी गयी, कि "मुख्य सभा यदि उचित समझे तो लड़कों के लिए भी शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना कर सकती है।" इसके अनुसार १९४१ में द्वावा कॉलिज की स्थापना की गयी। इसी समय पंजाब में आर्यसमाज की गुरुकुल पार्टी के अनेक कॉलिज खुल गये और आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के अधिकारी इनके लिए एक पृथक् संगठन बनाकर जालन्धर की इन संस्थाओं को भी सभा के इस नये संगठन में लाना चाहते थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय पर पर्याप्त विचार-विमर्श करने के बाद रायबहादुर बद्रीदास, महाशय कृष्ण, पं० विश्वम्भरनाथ और पं० ठाकुरदत्त वैद्य अमृतधारा आदि महानुभावों ने आर्य शिक्षा मण्डल के नाम से एक नया संगठन बनाने की योजना बनायी। इसका नवीन विधान तैयार किया गया और १८६० के सोसायटी रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अनुसार इसका पंजीकरण कराया गया। इस पर चार ट्रस्टी सदस्यों के रूप में रायबहादुर बद्रीदास, श्री वृन्दावन सोंधी, पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य तथा श्री नोतनदास गम्भीर ने हस्ताक्षर किये।

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की अन्तरंग सभा ने दिनांक ६ मई, १९४४ को हुई बैठक में एक प्रस्ताव पास करके यह निर्णय किया, "यह सभा आर्य शिक्षा मण्डल के विधान को स्वीकार करती है और सभा से सम्बन्धित समाजों, व्यक्तियों और संस्थाओं को आदेश देती है कि वे अपने शिक्षणालयों का संचालन (सम्पत्तिविषयक आवश्यक निर्णय के बाद) इस मण्डल के आधीन कर दें। सभा द्वारा संचालित इस प्रकार के शिक्षणालयों का संचालन भी (सम्पत्तिविषयक आवश्यक निर्णय के बाद) इस मण्डल के आधीन किया जाय।"

अन्तरंग सभा का यह प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण बैठक में दिनांक २८ मई, १९४४ को पं० भीमसेन मन्त्री ने प्रस्तुत किया। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि आर्य शिक्षा मण्डल स्थापित करना स्वीकार है। इसके प्रस्तावित उद्देश्य स्वीकार हैं। इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने १ जुलाई, १९४४ की बैठक में सर्वसम्मति से निश्चय किया कि आर्य शिक्षा मण्डल के उद्देश्यों और नियमों के अनुसार काम आरम्भ कर दिया जाय।

इस आर्य शिक्षा मण्डल के सम्मानित सदस्यों में आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान तथा मन्त्री थे। यू० पी०, राजस्थान, बंगाल, बम्बई, हैदराबाद दक्षिण, सिन्ध तथा बिहार की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रधान भी इसके सदस्य बनाये गये। इसके विधान में अंग्रेजी, विज्ञान, आर्ट्स, डॉक्टरी, इंजीनियरी तथा आयुर्वेद आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा देने को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। दुर्भाग्यवश अन्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थानीय प्रबन्ध समितियों के विरोध और देश के विभाजन के कारण उत्पन्न नयी परिस्थितियों से आर्य शिक्षा मण्डल को अखिल भारतीय रूप देने का इस मण्डल के निर्माताओं का स्वप्न पूरा नहीं हो सका। दोआबा कॉलिज और कन्या महाविद्यालय तो आर्य शिक्षा मण्डल के अधिकार में आ गये, परन्तु सभा से सम्बन्धित अन्य संस्थाओं ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। इस समय आर्य शिक्षा मण्डल में निम्नलिखित संस्थाएँ हैं—(१) कन्या महाविद्यालय, जालन्धर, (२) दोआबा कॉलिज, जालन्धर, (३) देवराज गर्ल्स हायर सैकेण्डरी स्कूल, जालन्धर, (४) देवराज माडल स्कूल, जालन्धर, और (५) जालन्धर माडल स्कूल, जालन्धर।

जालन्धर से बाहर की निम्नलिखित दो संस्थाएँ भी आर्य शिक्षा मण्डल से सम्बन्धित हैं—डी० ए० वी० हाईस्कूल गुड़गावाँ और वी० एल० वैदिक गर्ल्स हाई स्कूल, अबोहर।

शिक्षा मण्डल के ५२ सदस्य हैं। इनमें तीस आजीवन सदस्य हैं। शिक्षा मण्डल के अधिकारियों का चुनाव हर तीन वर्ष बाद होता है। इस समय इसके प्रधान सेठ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यपाल, उपप्रधान श्री वीरेन्द्र, कुमारी लज्जावती तथा सेठ शिवचन्द्र अग्रवाल हैं। महामन्त्री श्री रामचन्द्र जावेद, मन्त्री श्री यशराज अग्रवाल और कोषाध्यक्ष श्री वलवीर सोंधी हैं। शिक्षा मण्डल का अधिवेशन प्रतिवर्ष मई मास में होता है। इसमें सम्वन्धित संस्थाओं का वजट प्रस्तुत किया जाता है। संस्थाओं की प्रवन्धकर्त्री सभाओं का चुनाव शिक्षा मण्डल के सदस्यों में से किया जाता है, शिक्षा मण्डल का प्रधान कार्यालय १९७८ से कन्या महाविद्यालय जालन्धर में है और इस मण्डल की देखरेख में कन्या महाविद्यालय निरन्तर प्रगति के पथ पर आगे वढ़ रहा है।

(८) कन्या महाविद्यालय की स्नातिकाओं का कार्य

पेड़ की पहचान उसके मीठे फलों से होती है और किसी संस्था की उत्कृष्टता की कसौटी यह है कि उसमें शिक्षित व्यक्तियों ने समाज और राष्ट्र के विकास में कितना योगदान दिया है। इस दृष्टि से कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्नातिकाओं द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में की गयी सेवा न केवल उल्लेखनीय, अपितु सराहनीय है। उन्होंने शिक्षा, आर्यसमाज, समाज सुधार, समाज सेवा तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में वड़ा प्रशंसनीय भाग लिया है और उत्तरी भारत, विशेष रूप से पंजाव में स्त्री शक्ति के जागरण और उद्बोधन में उनका अतीव महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहाँ कतिपय प्रमुख क्षेत्रों में स्नातिकाओं की सेवाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा।

(क) **शिक्षा के क्षेत्र** में प्रथम स्त्रीशिक्षा-संस्था होने के कारण इसकी स्नातिकाओं ने न केवल पंजाव में, अपितु सुदूरवर्ती गुजरात, काठियावाड़ जैसे प्रान्तों में निरक्षर स्त्रियों में ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित करने का कार्य किया है। इस क्षेत्र में पहला उल्लेखनीय नाम कुमारी लज्जावती का है। उन्होंने १९१० में स्नातिका वनने के बाद से अव तक विभिन्न रूपों में कन्या महाविद्यालय जालन्धर को पंजाव का एक प्रथम कोटि का महाविद्यालय वनाने के लिए सतत प्रयास किया है। शिक्षिका, उपाचार्या, आचार्या, प्रवन्धकर्त्री सभा की उपप्रधाना के रूप में वह इस शिक्षा-संस्था में पिछली लगभग पौन शताव्दी से काम कर रही हैं। यह अपने आप में एक अद्भुत कीर्तिमान है। सम्भवतः शिक्षा के क्षेत्र में इतने अधिक समय तक अपनी मातृसंस्था की उन्नति और विकास में रत वह एकमात्र महिला हैं।

लाला देवराज अपनी छात्राओं को सम्वोधित करते हुए एक वात पर वहुत वल देते थे। उनका कहना था, कि "यहाँ की प्रत्येक छात्रा और स्नातिका अपने को कन्या पाठशाला समझे। वह जहाँ कहीं भी जाय, जहाँ कहीं भी रहे, वहाँ स्त्रीशिक्षा के प्रसार का कार्य करे।" अनेक स्नातिकाओं ने उनके इस वचन को शिरोधार्य किया और जीवनभर स्त्रियों में ज्ञान की ज्योति का प्रसार करने में लगी रहीं। इनमें एक उल्लेखनीय — आजीवन स्त्रीशिक्षा के सेवाव्रत में दीक्षित कुमारी शान्ता वहन का है। इन्होंने ...हाविद्यालय जालन्धर से शिक्षा पाने के वाद गुजरात के दो वड़े प्रसिद्ध कन्या ...यों का श्रीगणेश करने में सहयोग दिया और इनके आरम्भिक युग में वहाँ पढ़ाने ...या। १९२९ में उन्होंने अपनी छोटी वहिन सावित्री और भतीजी लक्ष्मी के ...ी संस्था में अध्यापन-कार्य शुरू किया और इसी इटोला के विद्यालय ने वाद ...ग महाविद्यालय का विशाल रूप धारण किया। वड़ौदा में अध्यापन-कार्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते समय उनकी भेंट पोरवन्दर के सेठ नानजी भाई कालिदास से हुई और जब उन्होंने पोरवन्दर में कन्या महाविद्यालय का कार्य १९३७ में शुरू किया तो ये सेठजी की प्रेरणा से उस संस्था में व्यवस्था और अध्यापन-कार्य के लिए चली गयीं।

(ख) समाज सेवा के क्षेत्र में कन्या महाविद्यालय का योगदान उल्लेखनीय है। इसकी कई स्नातिकाएँ ८० वर्ष की आयु हो जाने पर भी अपने सामाजिक कार्यों में उसी तरुणाई के उत्साह से जुटी हुई हैं, जिससे उन्होंने कन्या महाविद्यालय से साठ-सत्तर वर्ष पहले शिक्षा प्राप्त करने पर अपना कार्य आरम्भ किया था। उनमें लाला देवराज ने समाज सेवा तथा सामाजिक क्रान्ति की जो अर्चियाँ दोधूयमान की थीं वे पौन शताब्दी का सुदीर्घकाल बीत जाने पर अभी तक जाज्वल्यमान हैं तथा नयी पीढ़ी को प्रेरणा दे रही हैं।

इस प्रकार की आजीवन समाज सेवा साधिकाओं में माता गौरां देवी और दुर्गेश्वरी बुवेजा के नाम उल्लेखनीय हैं। माता गौरां देवी आजकल जीवन के ८० वसन्त पार करने के बाद भी हिमाचल प्रदेश, विशेषत: शिमला की स्त्री और बच्चों की सेवा-संस्थाओं में एक प्रेरणाप्रदायिनी शक्ति के रूप में काम कर रही हैं। १९१२-१३ में स्नातिका बनने के बाद विवाहित जीवन में प्रवेश के साथ ही आप ने ससुराल में परदे आदि की रूढ़ियों को तोड़ा। स्यालकोट के आर्यसमाजी क्षेत्र में स्त्री जाति के जागरण का काम आरम्भ किया। गांधीजी के ग्रामसेवा आन्दोलन से प्रभावित होकर आपने स्यालकोट के निकट एक गाँव को अपनी सेवा का क्षेत्र बनाया। कस्तूरबा स्मारक निधि सेवा का कार्य आरम्भ होने पर आप उस संस्था की जिला शाखा की प्रतिनिधि नियुक्त की गयीं। विभाजन के बाद जब आपके पति ने शिमला में डॉक्टरी की प्रेक्टिस शुरू की तो आपने अपनी समाज सेवा का केन्द्र शिमला और हिमाचल प्रदेश को बना लिया। यहाँ गरीब भंगियों के बच्चों के लिए एक संस्कार केन्द्र स्थापित किया, जो अब सर्वोदय बाल आश्रम में विकसित हो गया है। आपने देहाती क्षेत्र में शिमला से दस मील की दूरी पर कस्तूरबा बालिका आश्रम की स्थापना की है। इसमें लाहौल, स्पीती आदि सीमावर्ती प्रदेशों की लड़कियों के शिक्षण तथा निवास के लिए सुन्दर प्रबन्ध है। लगभग २५ वर्ष से गांधी स्मारक निधि की स्थापना के समय से ही आप पंजाब, हरयाणा, हिमाचल शाखा के बोर्ड की सदस्या और हिमाचल प्रदेश की कस्तूरबा स्मारक निधि की अध्यक्षा हैं।

श्रीमती दुर्गेश्वरी बुवेजा ने १९१९ में स्नातिका का पाठ्यक्रम पूरा करके कुछ समय तक गुरुदक्षिणा के रूप में संस्था में अध्यापन-कार्य किया। लाला देवराज इनकी धार्मिक और सेवापरायण प्रवृत्ति और गान विद्या के शौक के कारण इन्हें नारियों की सेवा का आजीवन व्रत लेने की प्रेरणा देते रहे। वे चाहते थे कि दुर्गेश्वरी जैसी कुछ छात्राएँ ऐसी निकलें जो अविवाहित रहकर स्त्री शक्ति के जागरण का कार्य करें। किन्तु विवाहित हो जाने के बाद भी इन्होंने लालाजी की प्रेरणा के अनुसार सामाजिक कार्यों में पूरा भाग लिया। पहले लायलपुर आर्यसमाज के तत्त्वावधान में स्त्रीशिक्षा और स्त्री शक्ति के जागरण का कार्य किया। विभाजन के बाद आप के पति दिल्ली आये तो एक वर्ष आपने विस्थापित शरणार्थियों के बसाने का सेवाकार्य किया। १९५३ से चार वर्ष तक आपने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में लड़कियों के छात्रावास के सुपरिण्टेण्डेण्ट का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न किया। इस समय ८० वर्ष की आयु होने पर भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप दिल्ली में अपने पुत्र के साथ रहते हुए भी रेडक्रास आदि समाज सेवी संस्थाओं के माध्यम से स्त्रियों में काम कर रही हैं।

श्रीमती ठाकुर देवी ८० शरद् काल पूरा करने के वाद भी इस वड़ी आयु में आर्यसमाज के काम को पूरी तरह निभा रही हैं। १६१८-१६ में स्नातिका वनने के वाद आपने उस समय सामाजिक क्रान्ति की भावना प्रकट की जव आपके पिता एक वहुत अच्छे घर के लड़के के साथ आपकी सगाई की वात कर रहे थे। विवाह के वारे में वात चलने पर लड़के वालों ने जव दहेज, लेन-देन और सोने आदि की वात की और आप के पिता ने इस सम्वन्ध में आपसे पूछा तो आप ने स्पष्ट कह दिया कि उन लोगों से कह दीजिए कि वे लोग कोई और रिश्ता देख लें। जव आप के लिए संस्कृत का प्रोफेसर एक सुशिक्षित लड़का तय किया गया और वातचीत पक्की हो गयी तो उनके किसी सम्वन्धी ने एक वहुत ही सम्पन्न घर के दूसरे लड़के के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। जव आप से पूछा गया तो आप ने कहा, "जो वात हो गयी वह हो गयी, मुझे धन-दौलत से विवाह नहीं करना है।"

उत्तरप्रदेश के देहाती क्षेत्रों में सामाजिक क्रान्ति को सफल वनाने वाली मेरठ की श्रीमती सत्यवती स्नातिका के कार्य उल्लेखनीय हैं। १६२२ में महाविद्यालय की शिक्षा समाप्त करके आपने स्नातिका की उपाधि प्राप्त की। १६२२ से २८ तक आपने मातृ-संस्था में अध्यापन-कार्य किया। आपकी वक्तृत्व शक्ति को देखते हुए आर्यसमाजी नेता आपको समाज क्रान्ति के कार्य में लगाना चाहते थे। आपकी इच्छा डाक्टर वनने की थी। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी सत्यानन्द ने आपको यह प्रेरणा दी, "वेटी, देश को शारीरिक डाक्टरों की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी मानसिक और नैतिक डाक्टरों की जरूरत है।" अतः आपने अपने डाक्टर वनने के संकल्प को छोड़कर अध्यापिका और समाज सेविका का कार्य करने का निर्णय किया।

आपमें पर्दा प्रथा आदि कुरीतियों के विरुद्ध कितनी प्रवल भावना थी, इसका परिचय एक छोटी-सी घटना से मिल जाएगा। एक वार विद्यालय की ओर से छात्राओं की एक मण्डली के साथ आप विहार में रेल यात्रा कर रही थीं। वहाँ स्त्रियों के डिब्वे को पर्दे से ढका देखकर आपने उस पर्दे को उतार दिया। इससे स्टेशन पर वड़ा शोर मच गया। स्टेशन मास्टर आया और उसने आपको पर्दा लगाने को कहा, और यह वताया कि यहाँ पर्दा प्रथा प्रचलित है और उसके अनुसार इसे उतारना ठीक नहीं है। किन्तु आपने वड़ी कड़ाई से उत्तर दिया—"पर्दा समाज के लिए अति हानिकर प्रथा है। हम पर्दे में विल्कुल नहीं वैठ सकते। इसलिए इसे उतारना ही होगा।" झगड़े को वढ़ने से रोकने के लिए स्टेशन मास्टर ने आपकी मण्डली को फर्स्ट क्लास के डिब्वे में वैठा दिया। आपका विवाह भी अपनी ही जाति में विवाह करने की सामाजिक रूढ़ि को तोड़कर हुआ। आपके पिता जातपाँत तोडक मण्डल के सदस्य थे और उसकी सहायता से आपका परिचय १६२१ के सत्याग्रह संग्राम के दिनों में कांग्रेस आन्दोलन में भाग लेने वाले मेरठ के एक युवक एडवोकेट चौधरी विजयपालसिंह से हुआ, और पिताजी ने आपका विवाह इस नवयुवक से कर दिया। अपने पति के साथ उत्तरप्रदेश के गाँवों में कांग्रेस आन्दोलन के कार्यों के सिल-सिले में यात्रा करते हुए आपने वहाँ पर्दे की भीषण कुप्रथा देखी। कई जगह पुरुष आपको नंगे मुँह देखकर अपना विरोध प्रकट करने के लिए स्वयं पर्दा कर लेते थे। एक स्थान पर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव की एक स्त्री ने स्टेज पर आकर आपके नंगे मुँह पर स्वयं पर्दा डालकर अपना विरोध प्रकट किया। किन्तु आप इसकी कोई परवाह न करते हुए राष्ट्रीय और सामाजिक क्रान्ति को सफल बनाने में लगी रहीं। १९३४-३५ में जब गांधीजी ने हरिजन सेवा संघ की स्थापना की तो आप आरम्भ से ही उसकी जिला शाखा की अध्यक्ष नियुक्त हुईं और आपने हरिजन सेवा को अपने जीवन का प्रधान कार्य बना लिया। १९३७ के चुनावों में आप अपने पति के साथ विधायक चुनी गयीं और उस समय पन्द्रह बीस स्त्री सदस्याओं में आप अग्रणी थीं। १९६० में आपको मेरठ के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अध्यक्ष नामांकित किया गया। आपने देर से चली आ रही बोर्ड की धाँधलियों को दूर करने के लिए तथा अध्यापकों को समय पर वेतन देने के लिए सराहनीय कदम उठाया। आपने गढ़मुक्तेश्वर के प्रसिद्ध मेले में होने वाली धाँधलियों को दूर किया। जिस मेले में पहले चालीस हजार रुपये का घाटा था, उसमें आपके कुशल प्रशासन और निरीक्षण के कारण पन्द्रह हजार का लाभ हुआ।

दिल्ली के समाज सेवा के क्षेत्र में काम करने वाली पद्मभूषण कुमारी सुरेन्द्र सैनी भी महाविद्यालय की यशस्विनी स्नातिका हैं। उन्होंने इस संस्था से १९४४ में मैट्रिक की परीक्षा पास की और कन्या महाविद्यालय के संस्थापक लालाजी के जीवन भर समाज सेवा में लगे रहने के उनके प्रिय आदर्श --कौमार्य के जीवन को अपनाया। देश के विभाजन के बाद समाज सेवा के जो नये क्षेत्र खुले थे, उनमें आपने बड़े उत्साह और योग्यता से समाज सेवा का कार्य किया। १९५० में दरियागंज के एक शरणार्थी शिविर में आपने स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाने का कार्य आरम्भ किया और शनैः-शनैः आपकी समाज सेवा का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता चला गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से जब भारत सेवक समाज की स्थापना हुई तो आप उसकी दिल्ली शाखा की कार्यालय मन्त्री नियुक्त हुईं। इस समय दिल्ली का शायद ही कोई समाज सेवा या जनकल्याण का क्षेत्र ऐसा होगा, जिसमें आपका योगदान न हो। समाज सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में किये गये कार्यों के लिए आपको सरकार द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया है।

(ग) **स्वतन्त्रता संग्राम और राष्ट्रीयता** के क्षेत्र में स्नातिकाओं का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। पहले यह बताया जा चुका है कि कुमारी लज्जावती को पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के सान्निध्य में आने से राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र में काम करने का बड़ा अच्छा अवसर मिला। जब लालाजी पर लाठियाँ बरसाने वाले मिस्टर साण्डर्स की सरदार भगतसिंह और उनके साथियों ने हत्या की और उन पर सरकार द्वारा मुकदमा चलाया गया तो आपने उनके बचाव के लिए बड़ा प्रयास किया और प्रिवी कौंसिल तक उनका मुकदमा लड़वाने के लिए सभी प्रकार का सम्भव प्रयत्न किया। सरदार भगतसिंह और उनके साथियों पर सरकार द्वारा चलाये गये केस में डिफेंस कमेटी के लिए जो समिति बनायी गयी थी, उसकी पूरी जिम्मेवारी आप पर थी। इस कार्य में आपने महात्मा गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू तक से सहायता प्राप्त करने में पूरी शक्ति लगायी और प्रिवी कौंसिल तक केस को ले जाने का प्रबन्ध किया। १९२९ में लाहौर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में आप स्त्री स्वयं सेविकाओं की कमाण्डर थीं। जालन्धर में जितने भी कांग्रेस के राष्ट्रीय कार्यक्रम होते थे, उनमें आप प्रमुख भाग लेती थीं। जब श्री चितरंजन दास जैसे कांग्रेसी नेता जालन्धर आकर अंग्रेजी में भाषण देते थे तो आप

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके भाषण का हिन्दी में बड़े ओजस्वी शब्दों में अनुवाद करती जाती थीं। उन्होंने संस्था में राष्ट्रीय वातावरण को सुरक्षित बनाये रखने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा कन्या महाविद्यालय को आर्थिक सहायता दिये जाने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। वे अपनी छात्राओं में नाना प्रकार के समारोहों तथा कार्यक्रमों द्वारा तथा अपने ओजस्वी भाषणों से राष्ट्रीयता की भावना का संचार करती रहीं।

क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने वाली स्नातिकाओं में सुशीला दीदी का नाम उल्लेखनीय है। १९२४ में आपने विद्यालय की स्नातिका की उपाधि प्राप्त की और संस्था की परम्परा के अनुसार गुरुदक्षिणा के रूप में कुछ वर्ष तक संस्था में अध्यापन-कार्य किया। बचपन से आप की अभिरुचि साहित्य रचना, संगीत और चित्रकला में थी। लाला देवराज जब गुजरात से गरवा नृत्य की परम्परा जालन्धर लाये तो काव्य प्रतिभा से सम्पन्न सुशीला ने गरवा नृत्य के अनुरूप हिन्दी और पंजाबी में गीत लिखे। संस्था में पधारने वाले राष्ट्रीय नेताओं के स्वागत के लिए गाने लिखना आपका ही कार्य था। गांधीजी की गिरफ्तारी के समय लिखी आपकी एक पंजाबी कविता उस समय बड़ी लोकप्रिय हुई थी।

साहित्य से क्रान्तिकारी क्षेत्र में आने की इनकी कथा बड़ी रोचक है। विद्यालय जीवन में आपका परिचय लाहौर के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी युवक भगवती चरण और उनकी पत्नी दुर्गा देवी से हुआ। यह बाद में पढ़ाते समय, छुट्टियों में लाहौर में इस क्रान्तिकारी परिवार से मिलते रहने के कारण घनिष्ठ हुआ। आप भारत नौजवान सभा के भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी सदस्यों के सम्पर्क में आयीं। इसी बीच १९२८ में कलकत्ता के एक व्यापारी सर छाजूराम ने लाला देवराज से अपनी इकलौती बेटी की ट्यूटर और संरक्षिका के रूप में ऐसी अध्यापिका की माँग की, जो उनके परिवार के सदस्य के रूप में रहे। लालाजी ने इस कार्य के लिए आपको कलकत्ता भेज दिया। १९२८ में कलकत्ता पहुँच कर आपने श्रीमती कौशल्या और सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार की पत्नी सुभद्रा देवी के सहयोग से आर्यसमाज के क्षेत्र में समाज सेवा का कार्य आरम्भ किया, और वहाँ भगिनी समाज की स्थापना की, जिससे महिला समाज में बड़ी राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हुई। इसके परिणाम स्वरूप १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलन में कई बहनें जेल गयीं और १९३२ के आन्दोलन में वहाँ जेल जाने वालों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गयी कि बंगाल की सरकार को महिलाओं के लिए एक पूरी अलग जेल की जरूरत पड़ गयी।

१९२८ के नवम्बर में लाहौर में साइमन कमीशन के बहिष्कार के समय पुलिस की लाठियों के प्रहार से पंजाब केसरी लाला लाजपत राय का निधन होने पर देश के क्रान्तिकारी नवयुवकों में प्रतिशोध की भावना भड़क उठी। उनकी मृत्यु के एक मास बाद लाहौर में लालाजी पर लाठियाँ बरसाने वाली पुलिस के एक उच्च अधिकारी मिस्टर साण्डर्स क्रान्तिकारी युवकों की गोलियों का निशाना बने और इस घटना के बाद उसी रात पुलिस की गिरफ्तारी से बचने के लिए नवयुवक भगतसिंह ने कलकत्ता जाने की योजना बनायी। श्री भगवतीचरण की साहसी पत्नी दुर्गादेवी और उनके गोद के बच्चे को साथ लेकर अपने साथी राजगुरु को नौकर का भेष पहनाकर भगतसिंह एक सम्भ्रांत अंग्रेजी रहन-सहन वाले परिवार के रूप में रेलवे स्टेशन पर पहुँचे, और प्लेटफार्म पर मौजूद बीसियों पुलिस कर्मचारियों की भीड़ में से होकर फर्स्ट क्लास के आरक्षित डिब्बे में बैठकर कलकत्ता पहुँचे। यहाँ सुशीला दीदी ने तथा सेठ छाजूराम की पत्नी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उन्हें अपने घर में शरण देकर पुलिस से उनकी रक्षा की। कुछ समय बाद जब पुनः सब क्रान्तिकारी अपने कामों के लिए विभिन्न स्थानों पर जाने लगे तो आपने अपनी उँगली काटकर उसके खून से भगतसिंह के माथे पर तिलक करके उन्हें बहन की शुभकामनाएँ और आशीर्वाद प्रदान किया।

कुछ समय बाद दिल्ली की सेण्ट्रल असेम्बली में बम फेंककर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अपने को गिरफ्तार करवाया और उन पर केस चला। इन्हीं दिनों साण्डर्स की हत्या का केस भी चल रहा था। इसकी पैरवी के लिए पैसे की जरूरत थी। इसके लिए आपने कलकत्ता में द्विजेन्द्र लाल राय के सुप्रसिद्ध नाटक 'मेवाड़ पतन' के सुन्दर अभिनय का आयोजन करके इन केसों में डिफेन्स के लिए १२ हजार रुपये जमा किये। १९३० में आप फरार होकर अपने क्रान्तिकारी साथी चन्द्रशेखर आजाद से जा मिलीं। अगले तीन वर्ष तक आप इनके साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में पूरा भाग लेने लगीं। आपने भगतसिंह आदि को चन्द्रशेखर आजाद, भगवती चरण तथा अन्य क्रान्तिकारी साथियों के साथ पुलिस के हाथों से निकालने की योजना बनायी। किन्तु दुर्भाग्यवश यह योजना सफल नहीं हो सकी। इसी समय क्रान्तिकारियों ने आपको दीदी कहना शुरू किया। १९४२ में आपने भारत छोड़ो आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। आप गुप्त रहकर इसके लिए साहित्य आदि बाँटने का कार्य करती रहीं। १९४७-४८ में देश विभाजन के समय आपने दिल्ली के मुसलमानों की रक्षा के लिए जहाँ एक ओर काम किया, वहाँ दूसरी तरफ पाकिस्तान से आये शरणार्थियों को बसाने के लिए भी अहर्निश सतत उद्योग किया। १९६३ में आपका निधन हुआ और दिल्ली में आपकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए आपके निवास क्षेत्र की एक सड़क का नाम सुशीला मोहन मार्ग रखा गया।

राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने वाली एक अन्य स्नातिका श्रीमती सत्यवती हैं। आपने १९२४ में कन्या महाविद्यालय से स्नातिका की उपाधि प्राप्त की और डेढ़ साल तक संस्था में गुरुदक्षिणा के रूप में अध्यापन-कार्य करने के बाद आपका परिणय लोक सेवक मण्डल के सदस्य और पंजाब के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता लाला अचिन्तराम से हुआ। लोक सेवक मण्डल की स्थापना लाला लाजपतराय ने राष्ट्र के लिए त्याग भाव से सेवा करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए की थी और लाला अचिन्तराम इसके पहले सदस्यों में से थे। श्रीमती सत्यवती अपने पति के राष्ट्रीय कार्यों में पूरा सहयोग देती रहीं और उनकी मृत्यु के बाद भी पंजाब की गांधी स्मारक निधि, सर्वोदय मण्डल आदि संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय एवं जनकल्याण के कार्यों में लगी हुई हैं। जीवन के ७५ वसन्त बिताने के बाद वृद्धावस्था में भी आपकी सेवा भावना में कोई कमी नहीं आयी है।

कन्या महाविद्यालय के कार्यों की सफलता का मूल्यांकन इस बात से किया जा सकता है कि उसकी सराहना राष्ट्रीय नेताओं और राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने में बदनाम ब्रिटिश शासकों ने समान रूप से की है। भारत कोकिला सरोजनी नायडू ने २ नवम्बर, १९२५ को लिखा था, "जब भी कभी मैं जालन्धर जाती हूँ तो कन्या महाविद्यालय को देखे बिना नहीं रह सकती…छात्राओं का यह सुन्दर उद्यान है। यहाँ मस्तिष्कों और आत्माओं का विकास हो रहा है। सब ओर सहयोग और माधुर्य का वातावरण है।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम विश्व युद्ध के समय राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए सरकारी दमन चक्र को भीषण रूप से चलाने वाले पंजाब के लेफ्टीनेण्ट गवर्नर सर माइकेल ओडायर ने ११ अक्तूबर, १६१६ को कन्या महाविद्यालय के बारे में लिखा था, "जालन्धर कोई ऐतिहासिक स्थान नहीं है, लेकिन कन्या महाविद्यालय ने इसे देश भर में मशहूर कर दिया है। स्त्रीशिक्षा के बारे में महाविद्यालय सराहनीय और अनुकरणीय काम कर रहा है।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवाँ अध्याय

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन

(१) स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा गुरुकुल की स्थापना

लाला मुंशीराम ने गुरुकुल की स्थापना का प्रयत्न सन् १८९८ में प्रारम्भ किया था। अगस्त, १८९८ में उन्होंने गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये एकत्र करने के लिए यात्रा प्रारम्भ की थी, और नवम्बर, १८९८ में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने अपने प्रबन्ध में गुरुकुल को स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया था। इसी के अनुसार पहले गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना की गई (मई, १९००), और बाद में उसे हरिद्वार के निकट काँगड़ी ग्राम में ले जाया गया।

पर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की पुनःस्थापना का प्रयत्न गुजरांवाला में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा गुरुकुल खोले जाने से पूर्व ही शुरू किया जा चुका था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस शिक्षा पद्धति का अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया था, अनेक आर्य विद्वान् उसे क्रियान्वित करने का विचार कर रहे थे। इनमें स्वामी दर्शनानन्द प्रमुख थे। उन्होंने १८९८ में सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर) में एक गुरुकुल की स्थापना की, और फिर सन् १९०३ में बदायूं में। इसके दो वर्ष पश्चात् विरालसी (जिला मुजफ्फरनगर) में स्वामीजी द्वारा एक अन्य गुरुकुल की स्थापना की गई। ज्वालापुर में गुरुकुल महाविद्यालय के संस्थापक भी स्वामी दर्शनानन्द ही थे। इसमें सन्देह नहीं, कि आधुनिक युग में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना और उसे लोकप्रिय बनाने का प्रथम श्रेय स्वामी दर्शनानन्द को ही दिया जाना चाहिये। सन् १८९८ में उन्होंने सिकन्दराबाद में जिस गुरुकुल को स्थापित किया था, वही बाद में फर्रुखाबाद ले जाया गया और फिर वृन्दावन।

स्वामी दर्शनानन्द का जन्म सन् १८६१ में जगरावां (लुधियाना, पंजाब) में हुआ था। उनके पिता का नाम पण्डित रामप्रताप था, जो एक सम्पन्न व्यापारी थे। संन्यास आश्रम में प्रवेश से पूर्व दर्शनानन्दजी का नाम पण्डित कृपाराम था। पण्डित रामप्रताप की इच्छा थी, कि उनका पुत्र भी व्यापार-व्यवसाय में मन लगाए और सम्पन्न धनाढ्य लोगों के समान गृहस्थ जीवन बिताए। ११ वर्ष की आयु में कृपाराम का विवाह भी कर दिया गया था, पर उनकी रुचि धन कमाने में नहीं थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों से वह बहुत प्रभावित हुए थे, और उन्होंने सत्य शास्त्रों का अध्ययन कर धर्म तथा देश की सेवा में अपना जीवन लगा देने का निश्चय कर लिया था। दर्शनानन्दजी कहा करते थे, कि उन्होंने महर्षि के ३७ व्याख्यान सुने थे, और ३७ वर्षों तक वे निरन्तर आर्यसमाज की सेवा करते रहे। पर धर्म और देश की सेवा करने के लिए यह आवश्यक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, कि वह पहले वेद-शास्त्रों का भली-भाँति अध्ययन कर लें, और संस्कृत में पारंगत हो जाएँ। इसी दृष्टि से वह वाराणसी गये, और वहाँ उन्होंने संस्कृत साहित्य तथा आर्ष शास्त्रों की उच्च शिक्षा प्राप्त की। श्री कृपाराम के पितामह पण्डित दौलतराम ने काशी में एक क्षेत्र (अन्न क्षेत्र) खोल रखा था, जहाँ विद्यार्थी भोजन प्राप्त कर सकते थे। इसके लिए उनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। कृपाराम भी इस क्षेत्र में जाकर निवास करने लगे, और वहाँ रहकर संस्कृत तथा दर्शन शास्त्रों के अध्ययन में अपने समय का सदुपयोग करने लगे। उन दिनों श्री मनीषानन्द काशी के दर्शनाचार्यों में मूर्धन्य थे। उनकी अपने शिष्य कृपाराम पर विशेष कृपा थी। दर्शनशास्त्र की उच्च शिक्षा कृपाराम ने श्री मनीषानन्द से ही प्राप्त की, और कुछ ही समय में वह संस्कृत तथा दर्शन आदि आर्ष शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् हो गये। काशी में निवास करते हुए कृपारामजी ने अनुभव किया, कि आर्यसमाजी विद्यार्थियों को काशी में अनेकविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनके निवास तथा भोजन की वहाँ समुचित व्यवस्था नहीं है, और काशी के पौराणिक पण्डित उन्हें पढ़ाना नहीं चाहते। आर्य विचारों के विद्यार्थियों की इस कठिनाई को दूर करने के लिए कृपारामजी ने काशी में एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की, जिसमें आर्यसमाजी विद्यार्थियों के लिए निवास और भोजन आदि की समुचित व्यवस्था थी। इस पाठशाला में जो अध्यापक नियुक्त किये गये, उनमें पण्डित काशीनाथ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह संस्कृत, दर्शनशास्त्र तथा वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित थे, और काशी के विद्वानों में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। बाद में गुरुकुल काँगड़ी तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के साथ उनका सन्निकट सम्बन्ध रहा, और कई वर्षों तक वह इन आर्य शिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन-कार्य करते रहे। वहाँ वह 'गुरुजी' के नाम से प्रसिद्ध थे। जो अनेक आर्यसमाजी विद्यार्थी उन दिनों काशी में विद्याध्ययन कर रहे थे, उनमें पण्डित गंगादत्त, पण्डित भीमसेन शर्मा, पण्डित आर्यमुनि, पण्डित पूर्णानन्द, पण्डित सीताराम शास्त्री और पण्डित नारायण दत्त भी थे। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार तथा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को क्रियान्वित करने में इन सबका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, और प्रकाण्ड आर्य विद्वानों के रूप में इन्होंने बहुत ख्याति प्राप्त की। काशी में विद्याध्ययन करते हुए ये पण्डित कृपाराम और उन द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशाला के सम्पर्क में भी आए और इन सबने उनसे धर्म तथा देश की सेवा की प्रेरणा प्राप्त की।

सन् १९०१ में पण्डित कृपाराम ने गृहस्थ आश्रम का परित्याग कर संन्यास ग्रहण किया, और वह कृपाराम से दर्शनानन्द बन गये। गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना उन्होंने उस समय (सन् १८९८ में) की थी, जब वह गृहस्थ थे और संन्यास आश्रम में प्रविष्ट नहीं हुए थे। पर बदायूँ, विरालसी और ज्वालापुर के गुरुकुलों को उन्होंने 'दर्शनानन्द' बनकर स्थापित किया।

स्वामी दर्शनानन्द का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा वैदिक धर्म के जिस स्वरूप को पुनःस्थापित किया गया था, उसके प्रचार में उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। पौराणिक पण्डितों, ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों से उन्होंने बहुत-से शास्त्रार्थ किये, और अनेक समाचारपत्रों का प्रकाशन किया। पत्र-पत्रिकाएँ प्रचार के महत्त्वपूर्ण साधन हैं, इस तथ्य को भली-भाँति अनुभव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उन्होंने साप्ताहिक 'तिमिर नाशक' (१८८९), मासिक 'वेद प्रचारक' (१८९४), उर्दू साप्ताहिक 'वैदिक धर्म' (१८९७), 'तालिबे-इल्म' (१९००) आदि कितने ही पत्रों का सम्पादन व प्रकाशन किया। गुरुकुलों की स्थापना करने पर स्वामीजी ने महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली को लोकप्रिय बनाने के लिए समाचारपत्रों का सहारा लिया। गुरुकुल सिकन्दराबाद से 'गुरुकुल समाचार', गुरुकुल बदायूँ से 'आर्य सिद्धान्त' और गुरुकुल पोठोहार से 'वैदिक फिलोसोफी' नामक अनेक पत्र उन्होंने प्रकाशित किये। इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी दर्शनानन्द में असाधारण कार्य-शक्ति थी। वह उत्कृष्ट वक्ता, प्रभावशाली लेखक और अनुपम प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक गुरुकुलों की स्थापना की, पर स्थायी रूप से किसी में जम कर काम नहीं किया। इसीलिए अनेक आलोचक उन्हें कहा करते थे, कि "आपके कार्यों में स्थिरता नहीं है। एक संस्था खोलते हैं, अभी वह अच्छी तरह से चलती भी नहीं है कि उसे छोड़कर दूसरी जगह चल देते हैं।" इस पर स्वामीजी का यह उत्तर होता था— "मेरा काम मार्ग दिखाना है, उस पर आगे बढ़ना दूसरों का काम है।" उनके इस उत्तर में सचाई भी थी। सिकन्दराबाद, बदायूँ, विरालसी, ज्वालापुर और पोठोहार में जो गुरुकुल उन्होंने स्थापित किये, उनके संचालन का कार्य अन्य लोगों ने सँभाल लिया और इन संस्थाओं ने पर्याप्त उन्नति की।

आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में स्वामी दर्शनानन्द के कर्तृत्व पर हमें यहाँ प्रकाश नहीं डालना है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना के सम्बन्ध में उनके महत्त्वपूर्ण कार्य को ही हमें यहाँ प्रदर्शित करना है। उन द्वारा स्थापित गुरुकुलों में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का विशिष्ट स्थान है। तीन चौथाई शताब्दी बीत जाने पर भी यह गुरुकुल निरन्तर उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है, और इसने वैदिक साहित्य, संस्कृत और आस्तिक दर्शनों के जो महान् विद्वान् तथा आर्यसमाज के प्रचारक व सेवक तैयार किये हैं, उन पर कोई भी आर्य संस्था अभिमान कर सकती है। साथ ही, जिन आदर्शों व सिद्धान्तों को सम्मुख रख कर इसकी सन् १८९८ में स्वामी दर्शनानन्द ने सिकन्दराबाद में स्थापना की थी, वे अब तक भी पर्याप्त अंश तक कायम हैं, और तीन चौथाई सदी से अधिक समय बीत जाने पर भी उनमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन उसी गुरुकुल का विकसित रूप है जिसका बीजारोपण सिकन्दराबाद में किया गया था। तिथि-क्रम की दृष्टि से इसे आधुनिक युग का सबसे पुराना गुरुकुल कहना अनुचित नहीं होगा। सिकन्दराबाद में स्वामी दर्शनानन्द के प्रमुख सहायक पण्डित मुरारीलाल शर्मा और पण्डित गंगासहाय थे।

(२) आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त द्वारा गुरुकुल का संचालन

सन् १८९८-९९ में गुरुकुल आन्दोलन ने पंजाब में बहुत जोर पकड़ लिया था। वहाँ की आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुकुल खोलने का निश्चय कर चुकी थी, और लाला मुंशीराम द्वारा उसके लिए चालीस हजार रुपये भी एकत्र कर लिये गये थे। यह स्वाभाविक था, कि इस आन्दोलन का प्रभाव संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) पर भी पड़े। सन् १८९९ में आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त की अंतरंग सभा द्वारा गुरुकुल की स्थापना के विषय में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—"एक वैदिक विद्यालय (गुरुकुल) पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए बीस हजार रुपये जमा होने पर इस सूबे में खोल दिया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। स्थान व स्कीम आदि की तस्फिया अन्तरंग सभा पर इस सिफारिश पर छोड़ा जाय कि अन्तरंग सभा समाजों की राय से वखूवी मुत्तलअ हो।" यह प्रस्ताव मुंशी नारायणप्रसाद द्वारा प्रस्तुत किया गया था। वाद में वही महात्मा नारायणस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए, और उन्होंने संयुक्त प्रान्त में गुरुकुल वृन्दावन के विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम किया। सभा के प्रस्ताव के अनुसार वीस हजार रुपये की जो धनराशि एकत्र की गयी, उसमें भी मुंशी नारायणप्रसाद का विशेष कर्तृत्व था। पं० भगवानदास, कुँअर हुकमसिंह, वावू श्यामसुन्दर लाल, वावू कालीचरण, चौ० चुन्नीसिंह, लाला रामकिशन और चौ० नन्दकिशोर आदि के सहयोग से मुंशी नारायणप्रसाद ने सन् १९०३ तक गुरुकुल के लिए वीस हजार रुपये एकत्र कर लिये थे। अव प्रश्न यह उपस्थित हुआ, कि गुरुकुल कहाँ खोला जाये। कुछ लोगों का विचार था कि गुरुकुल काँगड़ी को ही संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा अपना ले और उसके संचालन में पंजाव सभा का हाथ वँटाए। गुरुकुल काँगड़ी संयुक्त प्रान्त के विजनौर जिले में स्थित था, अतः इस विचार को असंगत भी नहीं कहा जा सकता था। एप्रिल, १९०४ में आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त का विशेष अधिवेशन नजीवावाद में हुआ, जिसमें इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि गुरुकुल काँगड़ी पर अव तक जितना व्यय हो चुका है, उसका आधा संयुक्त प्रान्त की सभा गुरुकुल कोष में दे दे और भविष्य में गुरुकुल पर जो खर्च हो, दोनों सभाएँ उसे आधा-आधा वहन किया करें। क्योंकि दोनों सभाओं की आर्थिक जिम्मेदारी एक वरावर होगी, अतः गुरुकुल काँगड़ी की प्रवन्धकारिणी सभा में दोनों सभाओं के वरावर-वरावर सदस्य रहा करें, इस अधिवेशन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव के दो प्रतिनिधि लाला मुंशीराम और राय ठाकुरदत्त धवन भी सम्मिलित हुए थे। संयुक्त प्रान्त की सभा ने नजीवाबाद में जो प्रस्ताव स्वीकृत किया था, उसमें एक शर्त यह भी थी, कि पंजाव की प्रतिनिधि सभा को यदि यह प्रस्ताव इसी रूप में स्वीकार्य न हुआ और वह दोनों सभाओं के संयुक्त प्रवन्ध में गुरुकुल काँगड़ी का संचालन करने की वात पर सहमत नहीं हुई, तो १० अक्तूवर, १९०४ के पश्चात् संयुक्त प्रान्त की सभा अपना पृथक् गुरुकुल खोल देगी। अगस्त, १९०४ में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव का अधिवेशन हुआ। इसमें नजीवावाद प्रस्ताव में कुछ संशोधन किये गये, जिन्हें संयुक्त प्रान्त की सभा स्वीकार करने को तैयार नहीं हुई। इस दशा में संयुक्त प्रान्त की सभा द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—"चूंकि जल्से आजम प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त मुनअकदह ३ अप्रैल, १९०४ के रेज्यूलेशन नं० ५ से साफ वाजअ है कि अगर पंजाब प्रतिनिधि सभा शरायत मंजूर न करेगी तो प्रतिनिधि सभा सूवेजात हाजा मजवूर होगी कि अपना पृथक् गुरुकुल खोल देवे और पंजाव प्रतिनिधि सभा ने उन शरायतों को मंजूर नहीं किया, पस रिज्यूलेशन पास करदः जल्से आजम श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा सूवेजात हाजा मुन अकदह २६ दिसम्वर सन् १८९९ मुकाम मुरादावाद पर अन्तरंग हाजा को अमल वरामद करना चाहिये, क्योंकि अव कोई कार्रवाई मुतल्लिके मेल-मिलाप हर दो गुरुकुलों के नहीं रही···।" इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर गुरुकुल काँगड़ी के पंजाव तथा संयुक्त प्रान्त की सभाओं के संयुक्त प्रवन्ध में रहने का प्रश्न सदा के लिए समाप्त हो गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दर्शनानन्द ने सन् १८९८ में सिकन्दराबाद में जिस गुरुकुल की स्थापना की थी, उसका प्रवन्ध एक कमेटी के हाथों में था। उसने विना किसी शर्त के इस गुरुकुल को आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के सुपुर्द कर देना स्वीकार कर लिया। २६ नवम्बर, १९०५ को आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन हुआ, जिसके निश्चय के अनुसार १ दिसम्बर, १९०५ से गुरुकुल सिकन्दराबाद का संचालन और प्रवन्ध सभा ने अपने हाथों में ले लिया। पण्डित गंगासहाय को गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया और उसके प्रवन्ध के लिए स्थानीय व समीपवर्ती सभासदों की एक उपसभा वना दी गयी। आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त का जो अधिवेशन दिसम्बर, १९०५ में वाराणसी में हुआ, उसमें गुरुकुल को सिकन्दराबाद में स्थापित करने के निर्णय की बहुमत से पुष्टि कर दी गयी।

जिस समय गुरुकुल सिकन्दाबाद को आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त ने अपने हाथों में लिया, वहाँ केवल ५७ ब्रह्मचारी थे। ३० नये ब्रह्मचारी अब प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रविष्ट किये गये। गुरुकुल के कोष में कोई राशि तव जमा नहीं थी। दुकानदारों का रुपया भी गुरुकुल द्वारा दिया जाना था। पण्डित गंगासहाय ने सुव्यवस्थित रूप से गुरुकुल को चलाने का बहुत उद्योग किया। पर वह देर तक वहाँ नहीं रह सके। जुलाई, सन् १९०६ में पण्डित द्वारिकाप्रसाद को उनके स्थान पर मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया।

(३) फर्रुखाबाद में गुरुकुल का स्थानान्तरण

गुरुकुल को सिकन्दराबाद में खोलने का निर्णय वहुमत से हुआ था। अनेक आर्य सभासद् इसके विरोध में थे। सिकन्दराबाद गुरुकुल कमेटी ने अपने गुरुकुल को जो आर्य प्रतिनिधि सभा को दे दिया था, उससे भी कमेटी के कुछ सदस्य असन्तुष्ट थे। इसीलिए पण्डित मुरारीलाल शर्मा और उनके कुछ सहयोगियों ने सिकन्दराबाद में 'आर्य पाठशाला' नाम से एक शिक्षण-संस्था खोल दी थी, जिसे गुरुकुल की प्रतिद्वन्द्वी समझा जाने लगा था। दो संस्थाओं के कारण स्थानीय लोगों की सहानुभूति व सहायता भी दो भागों में बँटने लग गयी थी। कुछ लोगों का यह भी विचार था, कि सिकन्दराबाद की जलवायु स्वास्थ्यप्रद नहीं है। धीरे-धीरे उन लोगों का मत प्रवल होता गया, जो गुरुकुल को सिकन्दराबाद में रखने के विरोधी थे। इसी समय फर्रुखाबाद के रईस लाला द्वारिकाप्रसाद ने अपना बाग गुरुकुल के लिए प्रदान करने का विचार प्रकट किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती का फर्रुखावाद से निकट सम्बन्ध रहा था। वहाँ का आर्यसमाज वहुत सशक्त था, और वहाँ के अनेक रईस वैदिक धर्म के प्रति अगाध आस्था रखते थे। लाला द्वारिकाप्रसाद फर्रुखावाद के अत्यन्त समृद्ध रईस थे, और आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक हाथ बँटाया करते थे। अपना वाग प्रदान कर उन्होंने गुरुकुल को सिकन्दराबाद से अन्यत्र ले जाने की समस्या हल कर दी। ७ जुलाई, १९०७ को पं० भगवानदीन और पं० विश्वनाथ प्रतिनिधि सभा की ओर से इस स्थान को देखने के लिए फर्रुखावाद गये। उन्होंने लाला द्वारिकाप्रसाद के बाग को गुरुकुल के लिए पसन्द कर लिया। यह अनुभव किया जाता था, कि गुरुकुल की भावी उन्नति और उसे एक महान् शिक्षण-केन्द्र वनाने के लिए जिस प्रकार के सुविस्तृत स्थान की आवश्यकता है, सिकन्दराबाद की गुरुकुल भूमि वैसी नहीं थी। फर्रुखाबाद में लाला द्वारिकाप्रसाद के वाग को गुरुकुल के लिए उपयुक्त पाया गया,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और १७ सितम्बर, सन् १९०७ को गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी, अध्यापक तथा कर्मचारी सिकन्दराबाद से फर्रुखाबाद आ गये। उस समय ब्रह्मचारियों की संख्या ३७ थी और उनका मासिक खर्च ५०० रुपये था। सिकन्दराबाद में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की संख्या ८७ तक पहुँच गयी थी, पर अनेकविध परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के कारण बाद में वहाँ उनकी संख्या केवल ३७ रह गयी थी। ६ अक्तूबर, १९०७ को गुरुकुल की देख-रेख व प्रबन्ध के लिए स्थानीय आर्य सज्जनों की एक कमेटी गठित की गयी, जिसके प्रधान रायबहादुर बाबू दुर्गाप्रसाद थे। बाबू सूर्यप्रसाद को इस कमेटी का उपप्रधान, बाबू गुलराज गोपाल को मन्त्री और पण्डित माखनलाल को उपमन्त्री नियुक्त किया गया। गुरुकुल के खर्च को चलाने के लिए यह योजना बनायी गयी, कि दस-दस या पाँच-पाँच रुपये प्रति-मास देने वाले १००-५० व्यक्तियों को तैयार किया जाय जो दो वर्ष तक यह चन्दा देते रहें। इस प्रकार दो वर्ष के लिए गुरुकुल के मासिक खर्च से निश्चिन्त होकर भविष्य के लिए डेपुटेशनों और आर्यसमाज के उत्सवों द्वारा धन एकत्र किया जाय। अनेक सज्जन इस योजना के अनुसार १० या ५ रुपए मासिक चन्दा देने को उद्यत हो गये, जिनमें पण्डित भगवानदीन, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त, पण्डित रामदुलारेलाल वकील, बाबू सूर्यप्रसाद तथा श्री गुलराज गोपाल गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महानुभावों ने अन्य प्रकार से गुरुकुल को आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया। ब्रह्मचारियों के लिए कम्बलों और धोतियों की व्यवस्था लाला द्वारिका-प्रसाद और बाबू सूर्यप्रसाद ने कर दी। पण्डित गुलजारीलाल ने मिर्जइयों का खर्च और लाला जयदयालु ने वस्त्रों का खर्च अपने ऊपर ले लिया, और अन्न की व्यवस्था में बाबू दुर्गाप्रसाद ने हाथ बँटाया। इस प्रकार फर्रुखाबाद आर्यसमाज के सभासदों ने गुरुकुल के खर्च के बड़े भाग को अपने ऊपर ले लिया और उसकी तत्कालीन आर्थिक समस्या का समाधान हो गया। पण्डित भगवानदीन के बड़े भाई पण्डित महेशप्रसाद ने अवैतनिक रूप से गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता होना स्वीकार कर लिया, जिससे फर्रुखाबाद में इस संस्था का मार्ग पर्याप्त रूप से निष्कंटक हो गया।

दिसम्बर, १९०७ में आर्यसमाज फर्रुखाबाद का वार्षिकोत्सव हुआ। उसके साथ ही गुरुकुल के वार्षिकोत्सव तथा आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त के वार्षिक अधिवेशन का भी आयोजन किया गया, जिनके कारण इस समारोह का महत्त्व बहुत बढ़ गया। उत्सव में २५ हजार के लगभग नर-नारी सम्मिलित हुए। गुरुकुल के लिए जनता में बहुत उत्साह था। नये ब्रह्मचारियों के प्रवेश के परिणामस्वरूप उनकी संख्या ३७ से ५० हो गयी। इस अवसर पर जो धन आर्यसमाज, आर्य प्रतिनिधि सभा तथा गुरुकुल के लिए एकत्र हुआ, उसकी मात्रा २२ हजार से भी अधिक थी। फर्रुखाबाद में गुरुकुल की लोक-प्रियता में निरन्तर वृद्धि होती गयी, और जनता के दान से सन् १९०८ के शुरू में वहाँ गौशाला भी खोल दी गयी। इससे ब्रह्मचारियों को शुद्ध दूध प्राप्त होने लगा। जुलाई, १९०८ में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की संख्या ७० हो गयी और पढ़ाई का काम सुव्यवस्थित रूप से होने लगा। गणित की शिक्षा के लिए एक ट्रेण्ड अध्यापक नियुक्त कर लिये गये, जो जिम्नास्टिक भी जानते थे। इन सज्जन (महाशय रामदयालु सिंह) के प्रयत्न से गुरुकुल की शिक्षा पद्धति को नियमित रूप प्राप्त करने में भी सहायता मिली। इसमें सन्देह नहीं कि फर्रुखाबाद में गुरुकुल उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर हो रहा था। सन् १९०७

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही पण्डित भगवानदीन फर्रुखाबाद आ गये थे और वहाँ उन्होंने गुरुकुल के मुख्य अधिष्ठाता का पद सँभाल लिया था। फर्रुखाबाद शहर से गुरुकुल को अच्छी आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी थी, और लाला रामस्वरूप ने अपना गाँव खुदागंज, जिसका मूल्य उस समय ३० हजार रुपये के लगभग था, आर्य प्रतिनिधि सभा को सौंप दिया था। इसकी आमदनी में से भी २५० रुपये वार्षिक गुरुकुल के लिए दिये जाने की व्यवस्था कर दी गयी थी। फर्रुखाबाद के एक रईस बाबू पुरुषोत्तम नारायण अपना बाग गुरुकुल के लिए प्रदान कर देने को उद्यत थे, जिससे उसके परिसर में यथेष्ट वृद्धि हो जाती। जिले के आर्यसमाज भी गुरुकुल के लिए धन जुटाने में लगन के साथ तत्पर थे। पर गुरुकुल देर तक फर्रुखाबाद में नहीं रह सका। १६०६ में यह आन्दोलन शुरू हुआ, कि उसे फर्रुखाबाद से उठाकर कहीं अन्यत्र ले जाया जाये। 'भारत सुदशा प्रवर्तक' और 'आर्यमित्र' में इस विषय पर लेख प्रकाशित होने लगे, और गुरुकुल के स्थान के प्रश्न ने गम्भीर रूप प्राप्त कर लिया।

(४) स्थायी रूप से वृन्दावन में गुरुकुल की स्थापना

गुरुकुल के लिए स्थान का चुनाव करने के लिए एक उपसमिति नियुक्त की गयी, जिसे निम्नलिखित बातों को दृष्टि में रखकर अपना निर्णय देना था—स्थान स्वास्थ्य के लिए अनुकूल है या नहीं, स्थान ऐसा है या नहीं जिस पर चिरस्थायी इमारतें बन सकें, उस स्थान पर गुरुकुल को सहायता प्राप्त होने की क्या सम्भावनाएँ हैं, और क्या स्थान सुरक्षित है। उपसमिति के सदस्य पण्डित तुलसीराम, बाबू घासीराम, पण्डित भगवानदीन, कुँअर हरिप्रसाद सिंह, बाबू बलदेवप्रसाद, डा० विश्वम्भर सहाय और राय ज्वालाप्रसाद इंजीनियर थे। वृन्दावन में यमुना नदी के तट पर शहर से दूर एकान्त व सुरम्य स्थान पर मुरसान (हाथरस) के राजा महेन्द्र प्रताप का एक उद्यान था, जिसकी ओर समिति का ध्यान आकृष्ट हुआ। गुरुकुल के लिए जिस प्रकार के स्थान की आवश्यकता थी, यह उद्यान ठीक उसी प्रकार का था। इसे प्राप्त करने के प्रयोजन से आर्य नेता स्वामी विश्वेश्वरानन्द तथा कुँअर हुकमसिंह ने राजा साहब के साथ सम्पर्क किया और उन्हें यह उद्यान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त को दान देने के लिए प्रेरित किया। राजा महेन्द्र प्रताप सच्चे देशभक्त थे। आर्य संस्कृति में उनकी आस्था थी। आगे चलकर उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो संघर्ष किया वह सर्वविदित है। वह अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता तथा लुप्त गौरव के पुनरुद्धार के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने को उद्यत थे। राजा साहब ने बिना किसी शर्त के वृन्दावन के अपने उद्यान, उस पर बनी हुई कोठी तथा साथ लगी भूमि को आर्य प्रतिनिधि सभा को दान देना स्वीकार कर लिया। २ एप्रिल, सन् १६११ को आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने निश्चय किया कि यदि अक्तूबर, १६११ तक वृन्दावन की भूमि पर भवन का निर्माण करने के लिए १० हजार रुपये एकत्र हो जायें, तो गुरुकुल को स्थायी रूप से फर्रुखाबाद से वृन्दावन स्थानान्तरित कर दिया जाये। यह धनराशि एकत्र करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई; पर गुरुकुल को वृन्दावन तभी ले जाया जा सकता था, जबकि वहाँ आवश्यक इमारतें बनवा दी जाएँ। इस कार्य के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा एक समिति का गठन किया गया, जिसके मन्त्री मुंशी नारायणप्रसाद नियत हुए। अक्तूबर, १६११ के प्रथम सप्ताह में इस कमेटी की बैठक मथुरा में की गयी। जिसमें गुरुकुल की इमारतों के डिजाइन स्वीकृत किये गये और बाबू

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरणीधरदास रिटायर्ड इंजीनियर तथा बाबू उदयराम ओवरसियर को इमारतें बनवाने का काम सौंपा गया। सभा का निर्णय था कि दिसम्बर के मध्य तक गुरुकुल को फर्रुखाबाद से वृन्दावन ले जाया जाए और उसका अगला वार्षिकोत्सव दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में वृन्दावन में ही हो। दो-ढाई महीने के स्वल्प काल में आवश्यक इमारतों का निर्माण सुगम कार्य नहीं था, विशेषतया उस दशा में जबकि राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा प्रदत्त उद्यान काँटेदार झाड़ियों से परिपूर्ण था और वहाँ जाने-आने तक की समुचित सुविधा नहीं थी। पर मुंशी नारायणप्रसाद ने दिन-रात लगकर ब्रह्मचारियों के निवास के लिए दो बैरकें, विद्यालय के कक्ष, एक बँगला तथा भोजन भण्डार तैयार करा दिये। गुरुकुल के वार्षिक उत्सव की तिथियाँ २४ से २६ दिसम्बर (१९११) तक नियुक्त की गयी थीं और ब्रह्मचारियों को उससे पहले ही १७ दिसम्बर तक वृन्दावन पहुँच जाना था। वृन्दावन पौराणिक मत का गढ़ है। वहाँ के पण्डे नहीं चाहते थे कि आर्यसमाज का केन्द्र उनके गढ़ में स्थापित हो जाये। मथुरा के चौबे भी गुरुकुल के विरुद्ध थे। प्रतिदिन उनकी सभाएँ होने लगीं और उन्होंने वृन्दावन के दुकानदारों से यह कहना शुरू किया कि कोई गुरुकुल को सौदा न दे और समीप की भूमि के स्वामी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और कार्यकर्ताओं को अपनी भूमि में आने-जाने न दें। पर इन सब विरोधों के बावजूद गुरुकुल का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा और १६ दिसम्बर, १९११ को गुरुकुल के तत्कालीन मुख्याधिष्ठाता पण्डित भगवानदीन के नेतृत्व में सब ब्रह्मचारियों, अध्यापकों और कर्मचारियों को फर्रुखाबाद से वृन्दावन ले आया गया। नियत तिथियों में गुरुकुल का वार्षिकोत्सव भी समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। स्थानीय लोग उसमें बहुत कम संख्या में सम्मिलित हुए, पर संयुक्त प्रान्त के अन्य स्थानों से पर्याप्त नर-नारी उत्सव में पहुँच गये थे। नये स्थान और नये भवनों को देख कर सभी ने सन्तोष अनुभव किया, और गुरुकुल के लिए धन भी काफी मात्रा में एकत्र हुआ। इस प्रकार दिसम्बर, १९११ में आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त का गुरुकुल स्थायी रूप से वृन्दावन में स्थापित हो गया। दिसम्बर, १९११ में जब गुरुकुल को फर्रुखाबाद से वृन्दावन लाया गया, तो वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या ९२ थी। इनमें से केवल ८२ वृन्दावन आए और ९ वहाँ से अपने घर चले गये। इस प्रकार गुरुकुल के वृन्दावन में स्थापित होने के समय वहाँ केवल ७३ ब्रह्मचारी थे।

वृन्दावन में गुरुकुल के भवन बनवाने के कार्य में मुंशी नारायणप्रसाद का असाधारण कर्तृत्व था। चन्दा एकत्र करने में भी उनका प्रमुख योगदान था। अब तक गुरुकुल के लिए ये सब कार्य वह सरकारी सेवा से छुट्टी लेकर ही कर रहे थे। मुंशीजी मुरादाबाद की कचहरी की सेवा में थे, और देर तक उससे अवकाश प्राप्त करते रहना उनके लिए सुगम नहीं था। फिर भी १९१२ के अन्त तक छुट्टी लेकर वह गुरुकुल का कार्य करते रहे। पर जब अधिक छुट्टी लेना सम्भव नहीं रह सका और आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उन पर गुरुकुल के कार्य को सँभाले रहने के लिए जोर दिया जाने लगा, तो उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और अपना सब समय गुरुकुल का संचालन करने में लगाने के वह लिए उद्यत हो गये। सन् १९११ के अन्त में गुरुकुल का सब भार मुंशी नारायणप्रसाद के कन्धों पर आ गया था और सभा द्वारा मुख्याधिष्ठाता के पद पर उनकी नियुक्ति कर दी गयी थी। पर उनका कार्य सुगम नहीं था। गुरुकुल में अनेक प्रकार के झगड़े चल रहे थे। अनेक ब्रह्मचारी, उनके संरक्षक तथा अध्यापक गुरुकुल को फर्रुखाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ले आने से असन्तुष्ट थे। ब्रह्मचारियों और कार्यकर्ताओं में इस बात को लेकर टोलियाँ बनी हुई थीं, जिनमें परस्पर कटु विवाद होते रहते थे। पढ़ाई के लिए कोई सुनिश्चित पाठविधि भी अब तक नहीं थी। वृन्दावन के पण्डों तथा पौराणिकों का विरोध तो पूर्ववत् था ही। गुरुकुल से झगड़ा बढ़ाने के लिए गुरुकुल के ठीक सामने 'आचार्य कुल' के नाम से एक संस्था भी उन्होंने खोल दी थी। इसके विद्यार्थी और कार्यकर्ता रात के समय शोर-गुल किया करते थे और दिन में लोगों को गुरुकुल जाने-आने से रोका करते थे। महात्मा नारायणप्रसाद (गुरुकुल वृन्दावन के मुख्याधिष्ठाता पद को सँभाल लेने के पश्चात् उन्हें महात्मा कहा जाने लगा था) ने इस स्थिति को सँभालने में सफलता प्राप्त की और उनके प्रयत्न से शीघ्र ही न केवल वृन्दावन के स्थानीय लोगों का विरोध निष्फल हो गया, अपितु गुरुकुल की आन्तरिक दलबन्दी में भी कमी आ गयी। अब यह सम्भव हो गया कि गुरुकुल के सुव्यवस्थित रूप से विकास के कार्य पर समुचित ध्यान दिया जा सके। गुरुकुल के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए इस समय कुछ सुयोग्य अध्यापक और प्रबन्धकर्ता भी प्राप्त हो गये थे। इनमें दरोगा लक्ष्मीनारायण (जिन्हें सहायक मुख्याधिष्ठाता के पद पर नियुक्त किया गया था), डा० बसन्तलाल और पण्डित श्यामलाल (संस्कृताध्यापक) के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके सहयोग से महात्मा नारायण प्रसाद ने गुरुकुल के कार्य को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। उसकी पाठविधि का नियमित रूप से निर्माण किया गया, और विविध कक्षाओं की पढ़ाई भी इसी के अनुसार की जाने लगी। पाठविधि में संस्कृत व्याकरण और धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया था। पर साथ ही, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान (गणित, इतिहास, भूगोल आदि) की पढ़ाई की भी उसमें समुचित व्यवस्था थी। यह पाठविधि प्रायः वैसी ही थी, जैसी कि गुरुकुल काँगड़ी की थी। परीक्षा के लिए बाहर के विद्वानों का सहयोग लेना उपयोगी समझ कर उन्हें परीक्षक नियत किया जाने लगा। आयुर्वेद की शिक्षा का भी प्रारम्भ कर दिया गया और एक योग्य डॉक्टर की नियुक्ति करके शल्य चिकित्सा की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। गुरुकुल के औषधालय में बाहर के रोगी भी चिकित्सा के लिए आने लगे, जिससे इस संस्था के प्रति स्थानीय लोगों के विरोध में कमी आने के साथ-साथ उसकी लोकप्रियता में वृद्धि होने लगी।

गुरुकुल वृन्दावन की जिस ढंग से चौमुखी उन्नति हो रही थी, उससे सरकार का भी ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होने लग गया था। मथुरा के डिप्टी कमिश्नर का गुरुकुल के संचालकों के साथ सम्पर्क था और उसकी सहायता भी उन्हें प्राप्त होती रहती थी। सन् १९१४ में बीसवीं सदी के प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका था, और गैर-सरकारी व राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं को ब्रिटिश सरकार आशंका की दृष्टि से देखने लगी थी। आर्य-समाज पर भी सरकार की कोप दृष्टि थी। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था कि संयुक्त प्रान्त की सरकार अपने प्रान्त में स्थापित गुरुकुलों (गुरुकुल काँगड़ी और गुरुकुल वृन्दावन) की गतिविधि पर निगाह रखे। उस समय संयुक्त प्रान्त के लेफ्टीनेण्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन थे। वह इस विषय में बहुत सतर्क थे। वह अनेक बार गुरुकुल काँगड़ी गये थे और उन्होंने उस संस्था का इस दृष्टि से अवलोकन किया था कि वह कहीं सरकार विरोधी षड्यन्त्रों व प्रयत्नों का केन्द्र तो नहीं है। इसी दृष्टि से वह गुरुकुल वृन्दावन भी गये। इस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था के संचालकों ने इस अवसर से लाभ उठाया और गवर्नर साहब से प्रार्थना की कि विद्यालय की आधारशिला वह अपने हाथों से रखने की कृपा करें। पण्डित तुलसीराम स्वामी और बाबू मदनमोहन सेठ इस प्रयोजन से उनसे मिले भी। सर जेम्स मेस्टन ने गुरुकुल के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और अगस्त, १९१३ में वह जब वृन्दावन आये तो उन्होंने गुरुकुल के विद्यालय भवन की आधारशिला भी रखी। गवर्नर साहब के गुरुकुल पधारने और उन द्वारा आधारशिला रखे जाने का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि वृन्दावन के पण्डों तथा मथुरा के चौबों को गुरुकुल का उग्र रूप से विरोध करने की हिम्मत नहीं रह गयी, और सरकार तथा सम्भ्रान्त वर्ग की दृष्टि में भी उसके महत्त्व में वृद्धि होने लगी।

महात्मा नारायण प्रसाद के संचालकत्व में गुरुकुल वृन्दावन में महाविद्यालय विभाग की पढ़ाई भी शुरू हो गयी थी और सन् १९१८ में दो ब्रह्मचारियों ने गुरुकुल की शिक्षा पूर्ण कर ली थी। इनके नाम धर्मेन्द्रनाथ और द्विजेन्द्रनाथ थे। उस वर्ष के गुरुकुल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर इनका दीक्षान्त संस्कार हुआ और इन्हें क्रमश: 'तर्क शिरोमणि' और 'सिद्धान्त शिरोमणि' की उपाधियाँ प्रदान की गयीं। ये गुरुकुल के प्रथम स्नातक थे। दोनों संस्कृत और वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, और उनकी विद्वत्ता तथा योग्यता से सभी प्रभावित थे। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों स्नातक अपनी कुलभूमि की प्रतिष्ठा बढ़ाने में बहुत सहायक हुए। शिक्षा को पूर्ण कर स्नातक बनाने का जो सिलसिला १९१८ में शुरू हुआ था, वह चिरकाल तक अबाध गति से चलता रहा और गुरुकुल के बहुत-से स्नातकों ने शिक्षा तथा समाज सेवा के क्षेत्रों में अच्छी ख्याति प्राप्त की।

गुरुकुल वृन्दावन अब सुव्यवस्थित रूप प्राप्त कर चुका था। उसके द्वारा स्नातकों को उपाधियाँ भी दी जाने लगी थीं, अत: उसे विश्वविद्यालय की स्थिति भी प्राप्त हो गयी। इस दशा में महात्मा नारायण प्रसाद ने इच्छा प्रकट की, कि उन्हें गुरुकुल के कार्य से अवकाश प्रदान कर दिया जाय। वस्तुत: महात्माजी संन्यास ग्रहण कर अधिक व्यापक क्षेत्र में धर्म तथा समाज की सेवा करने के इच्छुक थे। आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रान्त की अंतरंग सभा ने इस प्रश्न पर विचार किया और अन्त में उन्हें गुरुकुल से चले जाने की अनुमति प्रदान कर दी। महात्माजी को सन् १९२० की वसन्त ऋतु में गुरुकुल से जाना था, पर उन्होंने ३ मास पूर्व नवम्बर, १९१९ में ही गुरुकुल का चार्ज प्रो० ज्वाला-प्रसाद को दे दिया, ताकि वह कुछ समय उनकी देखरेख में कार्य कर लें और भविष्य में उन्हें संस्था का संचालन करने में कठिनाई न हो। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर २५ दिसम्बर, १९१९ को महात्मा नारायण प्रसाद को आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से अभिनन्दनपत्र दिया गया, और २६ जनवरी, १९२० को उन्होंने गुरुकुल से विदा ली। उस समय गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की संख्या १५० तक पहुँच गयी थी। महात्मा नारायण प्रसाद के गुरुकुल से चले जाने के बाद इस शिक्षण-संस्था की जो प्रगति हुई उसपर एक अन्य अध्याय में प्रकाश डाला जायेगा।

(५) महात्मा नारायण प्रसाद

गुरुकुल वृन्दावन के इतिहास में महात्मा नारायण प्रसाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरुकुल काँगड़ी के सुव्यवस्थित विकास में जिस ढंग का कर्तृत्व महात्मा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशीराम और आचार्य रामदेव का था, वृन्दावन गुरुकुल के निर्माण में वैसा ही कर्तृत्त्व महात्मा नारायण प्रसाद का था। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद पर वह अधिक समय नहीं रहे। इस स्थिति में इसका संचालन उन्होंने केवल ९ वर्ष के लगभग किया। पर इसी काल में उन्होंने इस संस्था को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया, और वह उन्नति के मार्ग पर तेजी से अग्रसर होने लगी। १९२० में गुरुकुल से विदा होकर जब वह व्यापक कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुए, तो शीघ्र ही आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता बन गये। १९२२ में संन्यास आश्रम की दीक्षा लेकर नारायण प्रसाद के स्थान पर वह नारायण स्वामी हो गये थे। १९२३ में वह सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गये और इस स्थिति में उन्होंने आर्यसमाज के सब कार्यकलापों का योग्यतापूर्वक संचालन किया। महर्षि दयानन्द की जन्मशताब्दी का जो महोत्सव फरवरी, १९२५ में मथुरा में धूमधाम के साथ मनाया गया और सन् १९३३ में अजमेर में जो दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी मनायी गयी, उनकी सफलता का मुख्य श्रेय नारायण स्वामीजी को ही दिया जाना चाहिये। सार्वदेशिक सभा के प्रधान और आर्यसमाज के प्रधान नेता के रूप में जो कार्य महात्मा नारायण स्वामी ने किये, उनका यहाँ उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। पर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के लिए जो प्रयत्न उन्होंने किये, उनका अपना ही महत्त्व है। यह उन्हीं के कर्तृत्त्व का परिणाम था, जो गुरुकुल वृन्दावन विश्वविद्यालय की स्थिति को प्राप्त कर सका और उसके स्नातक शिक्षा और विद्वत्ता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ हुए।

श्री नारायण प्रसाद (महात्मा नारायण स्वामी) का जन्म सन् १८६९ में अलीगढ़ जिले में हुआ था। उनके पिता बाबू सूर्यप्रकाश सिकन्दराराऊ में सब-रजिस्ट्रार थे। प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने एक मौलवी से प्राप्त की, जो उर्दू और फारसी पढ़ाया करते थे। फिर वह अलीगढ़ के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में प्रविष्ट हुए। पर वहाँ वह देर तक नहीं पढ़ सके। जब वह नवीं कक्षा में थे, तो उनके पिता की मृत्यु हो गयी और उन्हें नौकरी द्वारा आजीविका कमाने के लिए विवश होना पड़ा। मुरादाबाद की कचहरी में उन्हें सर्विस प्राप्त हो गयी। वहाँ रहते हुए उनका सम्पर्क आर्यसमाज से हुआ और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से वह इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने कभी भी मांस-मदिरा सेवन न करने नियमपूर्वक संध्या-हवन करने, ईमानदारी से आजीविका कमाने और कभी थियेटर न देखने की प्रतिज्ञा की, और साथ ही यह भी निश्चय किया कि संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी वह पूरा प्रयत्न करेंगे। उन्होंने अनुभव किया कि संस्कृत का ज्ञान न होने से धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय तथा यज्ञ करने-कराने में उन्हें कठिनाई होती है। मुरादाबाद में पण्डित कल्याणदत्त नाम के एक संस्कृत के विद्वान् थे। श्री नारायण प्रसाद ने उनसे अष्टाध्यायी पढ़नी प्रारम्भ की और कुछ ही समय में संस्कृत में समुचित योग्यता प्राप्त कर ली। अब उन्होंने आर्यसमाज के कार्यकलाप में विशेष उत्साह से भाग लेना शुरू कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप सन् १८९६ में उन्हें संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा का मंत्री चुन लिया गया। सभा द्वारा जब अपने प्रान्त में गुरुकुल खोलने का निश्चय किया गया, तो श्री नारायण प्रसाद ने इस सम्बन्ध में जो कार्य किये, उनका उल्लेख इसी अध्याय में पहले किया जा चुका है। गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने में उन्होंने विशेष उत्साह प्रदर्शित किया, और जब वृन्दावन गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य उन्हें सौंपा गया, तो जिस त्यागभावना से उन्होंने वहाँ कार्य किया, वह वस्तुतः अनुपम थी। इस सम्बन्ध में उनकी आत्मकथा की कुछ पंक्तियाँ उद्धरण के योग्य हैं—"जब मैं मुरादाबाद से प्रारम्भ में वृन्दावन आया था तो मेरे पास दो हजार रुपये नगद थे। उसे मैंने मथुरा के एक कोआपरेटिव बैंक में जमा कर दिया था, जहाँ से लगभग १३ रुपये मासिक का सूद मिल जाता था। मैंने निश्चय किया कि १३ रुपये मासिक से मैं अपनी गुजर करूँगा। इसमें से दस रुपये मासिक भोजन मध्ये गुरुकुल भण्डार में दे दिये जाते थे। बाकी रुपये में वस्त्र, दूध, और पुस्तक आदि का सभी व्यय पूरा करने का यत्न किया जाता था और पूरा हो ही जाता था।" गुरुकुल से कुछ भी पूजावेतन तक न लेकर केवल अपनी जमा पूँजी के सूद से जीवन निर्वाह करते हुए अपना सारा समय गुरुकुल तथा आर्यसमाज की सेवा में लगाना कोई साधारण बात नहीं थी। यह एक ऐसा व्यक्ति ही कर सकता था जो सचमुच महात्मा हो और जिसने अपना जीवन धर्म के लिए समर्पित कर दिया हो।

महात्मा जी का मन्तव्य था कि कोई शिक्षण-संस्था तभी सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है, जब उसके अध्यापक त्यागी एवं आदर्शवादी हों, विशेषतया गुरुकुलों की सफलता तो उनके संचालकों, आचार्यों तथा अध्यापकों के उच्च व्यक्तित्व पर ही निर्भर है। सन् १९३० में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने गुरुकुल काँगड़ी की गतिविधि की जाँच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की थी और उसका प्रधान महात्मा नारायण स्वामी को बनाया गया था। इस कमीशन का उल्लेख करते हुए उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"गुरुकुल की शिक्षा पद्धति अनेक व्यक्तियों की दृष्टि में, जिनमें अनेक आर्य विद्वान् भी शामिल हैं, जितना उसमें धन व्यय हुआ उतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। इसका कारण और एकमात्र मुख्य कारण यह था कि गुरुकुल के आदर्श के अनुरूप अध्यापक नहीं मिल सके। उनमें अधिकतर सरकारी स्कूल और कॉलिजों के समान खाने-कमाने वाले थे। गुरुकुल का आदर्श पूरा हो या न हो इसकी उन्हें रत्ती भर चिन्ता न थी।" महात्माजी के इस कथन की सत्यता से इनकार नहीं किया जा सकता। वह स्वयं एक गुरुकुल के नौ वर्ष के लगभग संचालक व कर्ताधर्ता रहे थे। उन्हें वहाँ जो अनुपम सफलता प्राप्त हुई, उसका कारण यही था कि उनका जीवन गुरुकुल के आदर्शों के अनुरूप था और वह त्याग भावना से वहाँ कार्य कर रहे थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौवाँ अध्याय

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

(१) ज्वालापुर में गुरुकुल की स्थापना

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने जिन अनेक गुरुकुलों की स्थापना की थी, उनमें गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। तीन-चौथाई शताब्दी बीत जाने पर भी यह गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है, और इसने वैदिक साहित्य, संस्कृत और आस्तिक दर्शनों के जो महान् विद्वान् तथा आर्य-समाज के प्रचारक तैयार किये हैं, उन पर कोई भी आर्य शिक्षण-संस्था गर्व कर सकती है। साथ ही, जिन आदर्शों व सिद्धान्तों को सम्मुख रखकर इसकी स्थापना की गयी थी, उन्हें इसके संचालकों ने प्रायशः अक्षुण्ण रखा है। यही कारण है, कि आर्यसमाज के शिक्षा-विषयक कार्यकलाप में इस गुरुकुल महाविद्यालय का अपना विशिष्ट स्थान है।

सिकन्दराबाद, बदायूँ और विरालसी में गुरुकुलों की स्थापना कर चुकने पर स्वामी दर्शनानन्द का ध्यान हरिद्वार की ओर आकृष्ट हुआ। उस समय तक हरिद्वार के सामने गंगा के पार काँगड़ी ग्राम के क्षेत्र में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा एक गुरुकुल की स्थापना की जा चुकी थी। हरिद्वार हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, और गंगा नदी का हिन्दुओं की दृष्टि में बहुत महत्त्व है। गुरुकुल काँगड़ी की लोकप्रियता का एक कारण उसका हरिद्वार के समीप गंगा के तट पर स्थित होना भी था। स्वामी दर्शनानन्द ने विचार किया कि इस क्षेत्र में भी उन्हें एक ऐसे गुरुकुल की स्थापना करनी चाहिये, जहाँ शिक्षा व भोजन आदि की व्यवस्था पूर्णरूप से निःशुल्क हो और जहाँ संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की उच्च शिक्षा दी जाये। इसीलिए सन् १९०७ के प्रारम्भ में वह हरिद्वार गये और हरिद्वार रेलवे स्टेशन के सामने एक बाग में किराये पर स्थान लेकर वहाँ गुरुकुल की स्थापना कर दी। शुरू में इस गुरुकुल में केवल पाँच ब्रह्मचारी थे। इस प्रकार स्वामी दर्शनानन्द ने हरिद्वार के क्षेत्र में गुरुकुल का जो बीजारोपण किया, वही शीघ्र ही अंकुरित होकर एक विशाल वट वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। कई महीनों तक यह गुरुकुल हरिद्वार स्टेशन के सामने विद्यमान एक बाग में ही रहा। इस बीच में उसके लिए स्थायी स्थान की तलाश की जाती रही। इसी के परिणामस्वरूप वह भूमि गुरुकुल के लिए प्राप्त कर ली गयी, जहाँ यह शिक्षण-संस्था अब तक विद्यमान है।

गुरुकुल काँगड़ी के लिए मुंशी अमनसिंह द्वारा भूमि प्रदान की गयी थी। मुंशी जी नजीबाबाद (जिला बिजनौर) के निवासी थे और काँगड़ी ग्राम के जमींदार थे। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के लिए भूमि प्रदान करने वाले सज्जन बाबू सीताराम थे, जो मुरादाबाद के निवासी थे और चिर काल तक पुलिस की सर्विस में रहे थे। पुलिस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सर्विस में कार्य करते हुए उनकी नियुक्ति ज्वालापुर के थानेदार के पद पर भी हुई थी, और वहाँ उन्होंने अच्छा नाम पैदा किया था। ज्वालापुर के समीप उन्होंने एक बाग खरीद लिया था, जिसमें एक बँगला भी बना हुआ था। मुंशी अमनसिंह के समान बाबू सीताराम के भी कोई सन्तान नहीं थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से सीतारामजी प्रभावित थे, और यह चाहते थे, कि ज्वालापुर की उनकी भू-सम्पत्ति आर्यसमाज के काम आ सके। लाला मुंशीराम जब गुरुकुल के लिए हरिद्वार के क्षेत्र में भूमि की तलाश कर रहे थे, तो बाबू सीताराम ने अपना बँगला और बाग इस कार्य के लिए प्रदान कर देने का प्रस्ताव उनके सम्मुख भी रखा था। पर यह भूमि गुरुकुल के लिए पर्याप्त नहीं थी। इसका उपयोग तभी किया जा सकता था, जबकि इसके साथ लगी हुई कुछ अन्य भूमि भी प्राप्त कर ली जाए। लाला मुंशीराम ने इसके लिए प्रयत्न भी किया, पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी बीच में मुंशी अमनसिंह ने काँगड़ी ग्राम गुरुकुल के लिए प्रदान कर दिया, जिसके कारण लाला मुंशीराम को बाबू सीताराम के बाग और बँगले को गुरुकुल के लिए स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं रह गयी। पर बाबू सीताराम ज्वालापुर की अपनी भू-सम्पत्ति को गुरुकुल के लिए दान कर देने का संकल्प कर चुके थे। जब स्वामी दर्शनानन्द को सीतारामजी का यह संकल्प ज्ञात हुआ, तो गुरुकुल के स्थान की समस्या हल हो गयी। बाबू सीताराम के बाग और बँगले को अपने गुरुकुल के लिए उन्होंने उपयुक्त समझा, और उसके साथ लगी हुई अन्य भूमि को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। सीतारामजी ने इसमें उनकी पूरी-पूरी सहायता की। शीघ्र ही, उनके बाग के साथ लगे हुए तीन खेत और प्राप्त कर लिये गये, और उनमें खपरैल की छत के मकान बनवाकर ब्रह्मचारियों के लिए छात्रावास (आश्रम) की व्यवस्था कर दी गयी। साथ ही, यज्ञशाला के लिए चबूतरे का निर्माण करवा दिया गया। सीतारामजी के बाग में जो बँगला बना हुआ था, उसमें पाठशाला शुरू कर दी गयी, और उसके सामने ही थोड़ी-सी दूरी पर छप्पर डालकर भोजन भण्डार बना लिया गया। सन् १९०७ का अन्त होते-होते स्वामी दर्शनानन्द द्वारा हरिद्वार स्टेशन के सामने स्थापित गुरुकुल को ज्वालापुर की भूमि में ले जाया गया। इस प्रकार स्वामी दर्शनानन्द के प्रयत्न तथा बाबू सीताराम के दान से गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना हुई। स्वामीजी द्वारा स्थापित गुरुकुलों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी, कि उनमें विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। शिक्षा तो निःशुल्क थी ही, भोजन और निवास भी पूर्णतया निःशुल्क थे। ज्वालापुर के गुरुकुल में भी विद्यार्थियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। संस्था का सब खर्च दान से चलता था, जिसे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सकना सुगम नहीं था। प्रारम्भ में ज्वालापुर के गुरुकुल के प्रधान अध्यापक पण्डित शालिग्राम शास्त्री थे, जो संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। सब शिक्षाकार्य उन्हीं के तत्त्वावधान में सम्पन्न होता था।

बाबू सीताराम के दान से गुरुकुल ज्वालापुर के स्थान की समस्या तो हल हो गयी थी, पर एक शिक्षण-संस्था के संचालन के लिए जिस धन की आवश्यकता थी, उसे प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं। विशेषतया, ऐसी संस्था को चला सकना तो बहुत ही कठिन था, जिसमें भोजन तक के लिए विद्यार्थियों से कोई भी शुल्क नहीं लिया जाता था। शीघ्र ही, गुरुकुल ज्वालापुर के सम्मुख भी विकट आर्थिक समस्या उपस्थित हो गयी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ब्रह्मचारियों के लिए भोजन सामग्री को जुटा सकने में भी कठिनाई अनुभव होने लगी। इस दशा में अध्यापकों को वेतन व खर्च दे सकने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था। परिणाम यह हुआ, कि पण्डित शालिग्राम शास्त्री गुरुकुल ज्वालापुर को छोड़कर काँगड़ी गुरुकुल चले गये, और कुछ ब्रह्मचारियों को भी अपने साथ काँगड़ी ले गये। ज्वालापुर गुरुकुल के लिए यह घोर संकट का समय था। इसी समय स्वामी दर्शनानन्द भी वहाँ से पंजाब चले गये, और गुरुकुल का सारा बोझ बाबू सीताराम पर आ पड़ा। स्वामी दर्शनानन्द कहीं भी स्थिर रूप से नहीं रहते थे। ज्वालापुर गुरुकुल में भी वह देर तक नहीं रहे। ज्वालापुर में गुरुकुल के पौदे को उन्होंने जमा जरूर दिया, पर उसकी रक्षा व पालन-पोषण के लिए वहाँ रहते रहने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी। इस दशा में बाबू सीताराम ने गुरुकुल की रक्षा के लिए जो प्रयत्न किया, वह वस्तुतः सराहनीय था। वह कभी स्वामी दर्शनानन्द से मिलते, और कभी अन्य लोगों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते। पर उन्हें अधिक समय प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। शीघ्र ही, उनको सफलता प्राप्त हो गयी, और कुछ समय बाद ही ज्वालापुर गुरुकुल ने एक स्थायी एवं सफल संस्था का रूप प्राप्त कर लिया। बाबू सीताराम को जो सफलता प्राप्त हुई, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण गुरुकुल काँगड़ी में उत्पन्न हुई वे परिस्थितियाँ थीं, जिनके परिणाम स्वरूप पण्डित गंगादत्त तथा अन्य अनेक अध्यापकों ने सदा के लिए वहाँ से विदा ले ली थी। पण्डित गंगादत्त उस समय से गुरुकुल (काँगड़ी) के आचार्य चले आ रहे थे, जबकि वह गुजरांवाला में था। गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता लाला (महात्मा) मुंशीराम थे, और आचार्य पद पर पण्डित गंगादत्त कार्य कर रहे थे। गुरुकुल के अन्य अनेक अध्यापक तथा कार्यकर्ता (पण्डित भीमसेन शर्मा व पण्डित नरदेव शास्त्री आदि) उनके शिष्य रह चुके थे। पण्डितजी जहाँ अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान् थे, वहाँ साथ ही आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेता भी थे। वह भारत की प्राचीन परिपाटी से अध्ययन-अध्यापन के पक्षपाती थे, और आधुनिक युग की शिक्षा पद्धति में उनकी जरा भी आस्था नहीं थी। सन् १९०७ में डा० चिरंजीव भारद्वाज, श्री रामदेव तथा मास्टर गोवर्धन द्वारा गुरुकुल काँगड़ी में नयी शिक्षा पद्धति के अनेक तत्त्वों का समावेश किया गया, और ब्रह्मचारियों के रहन-सहन तथा दिनचर्या में भी कुछ ऐसे परिवर्तन किये गये जो पण्डित गंगादत्त को स्वीकार्य नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल के पुराने और नये कार्यकर्ताओं में मतभेद बढ़ता गया, और कुछ ही समय में इस मतभेद ने परस्पर विरोध का रूप प्राप्त कर लिया। श्री रामदेव व उनके साथियों द्वारा गुरुकुल में जिन नवीन तत्त्वों का प्रवेश किया जा रहा था, उनसे असन्तुष्ट होकर पण्डित गंगादत्त तथा उनके साथियों ने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय किया, और वे काँगड़ी से चले गये। पण्डित गंगादत्त ऋषिकेश में आकर रहने लगे, और पण्डित भीमसेन शर्मा भोगपुर (जिला देहरादून) में। जब बाबू सीताराम को इन आर्य विद्वानों के गुरुकुल काँगड़ी छोड़ देने की बात मालूम हुई, तो उन्होंने पण्डित भीमसेन शर्मा से सम्पर्क किया, और ज्वालापुर गुरुकुल को सँभाल लेने का प्रस्ताव उनके सम्मुख उपस्थित किया। अपने शिष्य पण्डित दिलीपदत्त शर्मा के साथ पण्डित भीमसेन गुरुकुल ज्वालापुर आ गये, और कुछ समय पश्चात् उन्होंने आचार्य गंगादत्त को भी वहाँ आने के लिए तैयार कर लिया। १३ मई, सन् १९०८ के दिन आचार्य गंगादत्त भी गुरुकुल ज्वालापुर आ गये, और गुरुकुल शिक्षा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणाली के इन अनुभवी शिक्षाशास्त्रियों व आर्य विद्वानों ने इस शिक्षण-संस्था की बागडोर अपने हाथों में ले ली। ज्वालापुर आकर गुरुकुल को सँभालने से पूर्व आचार्य गंगादत्त ने यह आवश्यक व उपयोगी समझा, कि इस संस्था को बाकायदा व्यवस्थित रूप प्राप्त हो जाए। उस समय तक इस गुरुकुल की न रजिस्ट्री हुई थी, और न कोई ऐसी सभा ही विद्यमान थी जो उसका प्रबन्ध व संचालन करे। पण्डित भीमसेन को पहले ही इसका ध्यान था, पर आचार्य गंगादत्त के आग्रह से इस महत्त्वपूर्ण कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न कर देने की आवश्यकता तीव्र रूप से अनुभव की जाने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप १८ एप्रिल, १९०८ के दिन बाबू सीताराम के मकान पर बहुत-से गुरुकुल प्रेमी एकत्र हुए, और उन्होंने 'गुरुकुल महाविद्यालय सभा' का व्यवस्थित रूप से गठन कर लिया। चौधरी महाराज सिंह इस सभा के प्रधान चुने गये, और पण्डित तुलसीराम मन्त्री। पण्डित भीमसेन ने सभा के नियमों तथा उद्देश्य आदि के प्रारूप तैयार कर विचारार्थ प्रस्तुत किये, जिन्हें स्वीकृत कर लिया गया। बहुमत से यह निर्णय हुआ, कि आर्यसमाजी और सनातनधर्मी दोनों ही महाविद्यालय सभा के पदाधिकारी व सभासद् हो सकते हैं। इस प्रकार गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की प्रबन्धकर्त्री सभा के व्यवस्थित रूप प्राप्त कर लेने पर आचार्य गंगादत्त ने मई, १९०८ के अन्त में इस शिक्षण-संस्था का कार्यभार सँभाल लिया।

(२) गुरुकुल महाविद्यालय की व्यवस्थित रूप से प्रगति

पण्डित गंगादत्त के गुरुकुल का आचार्य पद ग्रहण कर लेने पर इस शिक्षण-संस्था में नवयुग का प्रारम्भ हुआ। अब तक इस संस्था को निरन्तर अनेकविध विपत्तियों का सामना करना पड़ता रहा था। न उसके पास कोई सम्पत्ति थी, और न कोई आमदनी। अध्यापकों व कर्मचारियों को वेतन दे सकने का तो प्रश्न ही क्या था, ब्रह्मचारियों के लिए भोजन की व्यवस्था कर सकना भी बहुत कठिन था। पर पण्डित गंगादत्त के वहाँ आ जाने पर स्थिति ने एकदम पलटा खाया। पण्डित गंगादत्त संस्कृत व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित और आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। सुयोग्य प्रबन्धक और कुशल अध्यापक के रूप में उनकी सर्वत्र ख्याति थी। ९ वर्ष के लगभग वह गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य रह चुके थे। उनके आ जाने पर गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की प्रबन्ध-कर्त्री सभा के पदाधिकारियों और सदस्यों में नवीन उत्साह का संचार हो गया और वे इस संस्था की उन्नति के लिए जी-जान से तत्पर हो गये। पण्डित गंगादत्त का अनुसरण कर अनेक अन्य आर्य विद्वान् भी ज्वालापुर गुरुकुल में कार्य करने के लिए आये, और यह संस्था आर्यसमाजी विद्वानों के लिए आकर्षण का केन्द्र हो गयी। सन् १९०८ में ज्वालापुर आकर पण्डित गंगादत्त सन् १९३३ में अपने देहावसान तक प्रायः वहीं रहे, और २५ वर्ष के इस सुदीर्घ काल में वहाँ का गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता गया। सन् १९१५ में कुम्भ के अवसर पर पण्डित गंगादत्त ने संन्यास की दीक्षा ग्रहण कर ली थी, और वह स्वामी शुद्धबोध तीर्थ बन गये थे। संन्यासी होकर भी वह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पद पर रहे, और कुछ समय तक वहाँ के मुख्याधिष्ठाता पद पर भी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१ मई, १६०८ को जब आचार्य गंगादत्त ने गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का चार्ज लिया, तो वहाँ केवल ११ विद्यार्थी थे। आमदनी न के बराबर थी, कोष में केवल १२ आने (७५ पैसे) जमा थे। पर एक अनुभवी और प्रकाण्ड पण्डित के गुरुकुल के आचार्य पद को ग्रहण कर लेने पर जनता में उत्साह का संचार हुआ, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनेक समर्थक आर्य सज्जन आर्थिक दृष्टि से उसकी सहायता के लिए तत्पर हो गये। इनमें अमृतसर के चौधरी जयकृष्ण का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके प्रयत्न तथा लाला हरदयाल, लाला राधाकृष्ण अहलूवालिया, लाला बालमुकुन्द कपूर और लाला कर्मचन्द सर्राफ सदृश सज्जनों की सहायता से ज्वालापुर गुरुकुल को धन भी प्राप्त होने लगा। इसी समय ब्रह्मचारियों के भोजन की समस्या को हल करने के लिए अन्न संग्रह की प्रथा का प्रारम्भ किया गया। यह प्रथा चौधरी महाराज सिंह (मानकपुर), चौधरी अमीरसिंह (गढ़मीरपुर) और लाला केवलकृष्ण (इमलीखेड़ा) की सूझबूझ की परिणाम थी। फसल के समय किसानों के पास पर्याप्त अन्न होता है, और न केवल बड़े जमींदार व सम्पन्न किसान ही, अपितु छोटे से छोटे किसान भी अपनी उपज का कुछ हिस्सा दान में दे सकते हैं। ज्वालापुर का समीपवर्ती मेरठ कमिश्नरी का क्षेत्र खेती की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। वहाँ के जमींदार और किसानों को गुरुकुल के लिए यथाशक्ति अन्न देने के लिए प्रेरित कर सकना कठिन नहीं था। इसी का यह परिणाम हुआ, कि गुरुकुल की कोई स्थायी निधि न होते हुए भी वहाँ ब्रह्मचारियों के भोजन के लिए अन्न की कभी कमी नहीं हुई, और समीप के प्रदेश से पर्याप्त भोजन-सामग्री गुरुकुल के भोजन भण्डार के लिए प्राप्त होने लगी। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार स्थापित भारत के प्राचीन आरण्यक-आश्रमों में अध्यापकों और ब्रह्मचारियों का निर्वाह 'भैक्षचर्या' द्वारा हुआ करता था। भैक्षचर्या का यह आधुनिक रूप ही था, जिस द्वारा गुरुकुल ने निःशुल्क शिक्षा के आदर्श को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया, और उसमें सफलता भी प्राप्त की। इस प्रथा के कारण स्थायी निधि न होने पर भी ज्वालापुर गुरुकुल को कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ, और उसका कार्य भली-भाँति चलता रहा। वस्तुतः, स्वामी दर्शनानन्द स्थायी निधि (मुस्तकिल फण्ड) के विरोधी थे। वह कहा करते थे, कि जब संसार ही मुस्तकिल नहीं है, तो मुस्तकिल फण्ड कैसा ?

जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है, मई, १६०८ में जब आचार्य गंगादत्त ने गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का कार्यभार सँभाला था, तो वहाँ विद्यार्थियों की संख्या केवल ११ थी। पर शीघ्र ही इस संख्या में वृद्धि होने लगी, और १६१० के पूर्वार्द्ध में यह संख्या ३५ तक पहुँच गयी। उस समय ज्वालापुर गुरुकुल में विद्यार्थियों के प्रवेश की न्यूनतम आयु आठ वर्ष और अधिकतम आयु दस वर्ष निर्धारित थी, और इसका अविकल रूप से पालन किया जाता था। इस कारण दो साल के लगभग समय में विद्यार्थियों की संख्या में तीन गुनी वृद्धि हो जाना कम सन्तोष की बात नहीं थी। अध्यापन तथा प्रबन्ध के कार्य में आचार्य गंगादत्त की सहायता करने के लिए इस काल में वहाँ अनेक ऐसे आर्य महानुभाव थे, जो निष्ठापूर्वक तथा निःस्वार्थ भाव से अपना-अपना कार्य कर रहे थे। इनमें पण्डित नरदेव शास्त्री, पण्डित भीमसेन शर्मा, मास्टर रामदयाल तथा पण्डित पद्मसिंह शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रचार तथा ज्वालापुर गुरुकुल को लोकप्रिय बनाने के लिए सन् १६०८ में 'भारतोदय' नामक समाचारपत्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया, जिसके सम्पादक पण्डित पद्मसिंह शर्मा थे। सन् १९१० में गुरुकुल में मुद्रणालय (प्रिंटिंग प्रेस) की भी स्थापना कर दी गयी, और 'भारतोदय' की छपाई वहीं से होने लगी। गुरुकुल के प्रचार में पण्डित गणपति शर्मा ने भी इस समय महत्त्वपूर्ण कार्य किया। गणपतिजी प्रभावशाली वक्ता थे, और उनके व्याख्यानों के कारण ज्वालापुर गुरुकुल की आर्य जनता में धूम मच गयी थी। योग्य अध्यापकों, कुशल कार्यकर्ताओं और प्रभावशाली प्रचारकों के कारण ज्वालापुर गुरुकुल की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी, और निःशुल्क शिक्षा (केवल अध्ययन ही निःशुल्क नहीं, अपितु भोजन और निवास आदि भी निःशुल्क होने) का उसका आदर्श भली-भाँति क्रियान्वित होने लग गया था। यह कहना असंगत व अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा, कि ज्वालापुर गुरुकुल का स्वरूप प्राचीन भारत के आरण्यक-आश्रमों के सदृश था। वहाँ धनी और निर्धन सब प्रकार के परिवारों के बालक शिक्षा के लिए प्रवेश पा सकते थे, और गुरुकुल में निवास करते हुए सब विद्यार्थियों से एक समान व्यवहार किया जाता था। धनी व निर्धन का कोई भी भेद किये बिना विद्यार्थियों का रहन-सहन अत्यन्त सादा और तपस्यामय था। वे पीली धोती और श्वेत कुरता पहनते थे, और एक अंगोछा साथ रखते थे, ताकि हाथ-पैर पोंछने के लिए उसका प्रयोग किया जा सके। वे नंगे सिर रहते थे, और पैरों में केवल खड़ाऊँ पहन सकते थे। जूते या चप्पल का उपयोग उनके लिए निषिद्ध था। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त के समय (लगभग चार बजे) उन्हें जगा दिया जाता था। शौच आदि से निवृत्त होकर वे व्यायाम और स्नान करते थे। छह बजे सन्ध्या-हवन की घण्टी बज जाती थी। आधे घण्टे में इससे निवृत्त हो जाने पर उन्हें प्रातराश दिया जाता था, जिसमें कभी दलिया होता था, और कभी खीर। उसके बाद सात बजे से दस बजे तक पढ़ाई होती थी। विद्यार्थी टाट पर बैठते थे, डेस्कें या मेज-कुर्सियाँ प्रयोग में नहीं लायी जाती थीं। साढ़े दस बजे भोजन की घण्टी बजती थी। विद्यार्थी अपने बरतन स्वयं माँजते थे, इसके लिए नौकर नहीं रखे जाते थे। भोजन के पश्चात् डेढ़ घण्टे का समय विश्राम के लिए था। एक से चार बजे तक फिर पढ़ाई होती थी। पढ़ाई का समय समाप्त हो जाने पर आधा घण्टा नित्यकर्मों से निवृत्त होने के लिए दिया जाता था, जिसके बाद एक घण्टे का समय खेलों के लिए नियत था। विद्यार्थी प्रायः क्रिकेट, फुटबाल और कबड्डी खेला करते थे। खेलों के पश्चात् सन्ध्या-हवन की घण्टी बजती थी, और फिर सात बजे भोजन की घण्टी। भोजन से निबटकर विद्यार्थी कुछ समय विश्राम करते थे, और फिर स्वाध्याय। बड़े विद्यार्थी १० बजे और छोटे विद्यार्थी ९ बजे सो जाते थे। उनकी यह दैनिक दिनचर्या थी। यह बात ध्यान देने योग्य है, कि रात दिन के २४ घण्टों का सारा समय उन्हें अनुशासित रूप से बिताना होता था, और यह प्रयत्न किया जाता था, कि वे निरन्तर कार्यव्यग्र रहें और उनका प्रत्येक क्षण शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयुक्त हो।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की पाठविधि में संस्कृत को प्रमुख स्थान प्राप्त था। आचार्य गंगादत्त संस्कृत व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे, और उनके प्रमुख सहयोगी भी संस्कृत साहित्य, वेद तथा दर्शनशास्त्र आदि के विद्वान् थे, अतः स्वाभाविक रूप से इस शिक्षण-संस्था में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की प्रमुखता थी। सन् १९११ में वहाँ एक नियम यह बना दिया गया था, कि कोई भी विद्यार्थी छात्रावास (आश्रम) में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में वार्तालाप न कर सके। यदि किसी को हिन्दी में बात करनी हो, तो छात्रावास से बाहर जा कर करे। इस समय ज्वालापुर गुरुकुल के छात्रावास के संरक्षक (अधिष्ठाता) पण्डित दिलीपदत्त उपाध्याय थे, जो संस्कृत के विद्वान् थे और विद्यार्थियों से संस्कृत में ही वार्तालाप किया करते थे। नये प्रविष्ट हुए विद्यार्थियों से भी यह अपेक्षा की जाती थी, कि वे अधिक से अधिक छह महीनों में संस्कृत में बातचीत करना सीख जाएँ। संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी, अंकगणित तथा सामान्य ज्ञान की शिक्षा की भी इस संस्था में व्यवस्था थी, जिसके परिणामस्वरूप इसके विद्यार्थी पुराने ढंग के कोरे पण्डित ही न रहकर आधुनिक युग की प्रगति व प्रवृत्तियों से भी परिचित हो जाते थे।

आचार्य गंगादत्त के कर्तृत्व के कारण सन् १९१० से १९१३ तक के तीन वर्षो में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने एक सुव्यवस्थित शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया था, और उन्नति के लिए उसका मार्ग सुचारु रूप से प्रशस्त होने लग गया था। सन् १९०७ में इस संस्था के पास केवल तीन बीघा जमीन थी, पर कुछ ही वर्षों में उसके पास १०० बीघे के लगभग भूमि हो गयी। १९१४ तक वहाँ बहुत से पक्के मकान (ब्रह्मचर्याश्रम, यज्ञशाला, पुस्तकालय, भोजनशाला, स्नानागार और आरोग्यशाला आदि) भी बन गये, जिनकी लागत उस समय ४० हजार के लगभग आयी थी। विद्यार्थियों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि हो रही थी, जो सन् १९१५ में ८० तक पहुँच गयी थी।

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की पाठविधि की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका क्रियात्मक होना था। यद्यपि उसमें संस्कृत साहित्य और व्याकरण को प्रमुखता दी गयी थी, पर साथ ही इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया था कि सबकी रुचि व्याकरण जैसे दुरूह विषय में नहीं होती और सब कोई संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के पण्डित नहीं बन सकते। इसीलिए सन् १९०७ में गुरुकुल की स्थापना के समय ही यह निश्चय कर लिया गया था, कि जिन विद्यार्थियों की व्याकरण में रुचि न हो, वे उसके स्थान पर वैकल्पिक रूप से आयुर्वेद पढ़ सकें। ऐसे विद्यार्थी गुरुकुल के छात्रावास (ब्रह्मचर्याश्रम) में रहकर वेद, दर्शन और धर्मशिक्षा आदि के साथ व्याकरण के बजाय आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते थे। चिकित्सा का क्रियात्मक ज्ञान देने के लिए वहाँ आतुरालय (चिकित्सालय) तथा ओषधि निर्माण शाला (फार्मेसी) की भी स्थापना की गयी थी। सन् १९१७ तक ज्वालापुर के गुरुकुल महाविद्यालय की फार्मेसी में निर्मित ओषधियाँ बाजार में बिकने भी लगी थीं, और उनसे इस संस्था को आर्थिक लाभ भी प्राप्त होने लग गया था।

यद्यपि ज्वालापुर गुरुकुल में आयुर्वेद की शिक्षा का प्रारम्भ संस्कृत व्याकरण के वैकल्पिक विषय के रूप में किया गया था, पर शीघ्र ही यह आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, कि उसके लिए एक पृथक् संकाय (फैकल्टी) या महाविद्यालय होना चाहिये। इसीलिए गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के अंगभूत एक आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की गयी, जिसका पाठ्यक्रम पृथक् रूप से बनाया गया और जिसकी परीक्षाएँ भी पृथक् रूप से ली जाने लगीं। ये परीक्षाएँ आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेदभास्कर और आयुर्वेदाचार्य की थीं। इन परीक्षाओं को देश की अनेक उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षण-संस्थाओं द्वारा मान्यता प्राप्त थी। आयुर्वेदरत्न की परीक्षा को उत्तीर्ण कर विद्यार्थी निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद विशारद परीक्षा में बैठ सकता था, और आयुर्वेदभास्कर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा उत्तीर्ण कर आयुर्वेदाचार्य परीक्षा में। भारतीय विद्या भवन, बम्बई की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा के लिए भी गुरुकुल महाविद्यालय की आयुर्वेदभास्कर परीक्षा को मान्यता प्राप्त थी। बाद में जब सरकार द्वारा भारतीय चिकित्सा परिषद् (बोर्ड ऑफ् इण्डियन मेडीसन) का गठन किया गया, तो अनेक राज्यों ने गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, ज्वालापुर की आयुर्वेदभास्कर डिग्री का भी आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) करना स्वीकार कर लिया, जिसके कारण इस आर्य शिक्षण-संस्था में आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त स्नातकों के लिए वैद्य के रूप में चिकित्सा करने में कोई बाधा नहीं रह गयी। इसमें सन्देह नहीं, कि इस आयुर्वेद महाविद्यालय ने अच्छी उन्नति की, और इसमें शिक्षा प्राप्त कर बहुत से आयुर्वेदभास्कर न केवल भारत में ही, अपितु कतिपय विदेशों में भी चिकित्सक का कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। इस आयुर्वेदिक महाविद्यालय की लोकप्रियता का अनुमान इसी एक बात से किया जा सकता है, कि १९७९-८० में वहाँ ४०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

पर ज्वालापुर गुरुकुल महाविद्यालय का मुख्य विभाग 'गुरुकुलीय संस्कृत विभाग' है, जिसमें मुख्यतया संस्कृत साहित्य, संस्कृत व्याकरण, वेद, वेदांग तथा दर्शन शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है। इसके सब विद्यार्थियों को गुरुकुल के ब्रह्मचर्याश्रम (छात्रावास) में रहना होता है, और धनी व निर्धन, छूत-अछूत और ऊँच-नीच का कोई भेद न कर सबके प्रति एक समान व्यवहार किया जाता है। संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा अंग्रेजी भी इस विभाग के विद्यार्थियों को पढ़ायी जाती है, और गणित तथा सामान्य ज्ञान (इतिहास, भूगोल) से भी उन्हें परिचित करा दिया जाता है। जो विद्यार्थी इस विभाग में नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर स्नातक होते हैं, उन्हें 'विद्याभास्कर' की उपाधि प्रदान की जाती है।

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के विद्यार्थी न केवल महाविद्यालय की अपनी परीक्षाएँ ही देते थे, अपितु पंजाब, काशी तथा कलकत्ता की शास्त्री, आचार्य तथा तीर्थ परीक्षाओं में भी प्राइवेट रूप से बैठ सकते थे। यह परम्परा सन् १९१२ में प्रारम्भ हो गयी थी, और बाद में निरन्तर जारी रही। ज्वालापुर गुरुकुल के बहुत-से विद्यार्थी इन परीक्षाओं में बैठते रहे, जिसके परिणामस्वरूप स्नातक होकर 'विद्याभास्कर' उपाधि प्राप्त कर लेने के साथ-साथ वे शास्त्री, आचार्य तथा तीर्थ सदृश ऐसी डिग्रियाँ भी प्राप्त करते रहे, जिनकी देश में सर्वत्र मान्यता थी। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की यह व्यवस्था क्रियात्मक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी थी, क्योंकि इसके कारण वहाँ के विद्यार्थी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सब लाभ उठाने के साथ-साथ ऐसी डिग्रियाँ भी प्राइवेट रूप से प्राप्त कर लेते थे, जिनके कारण सरकारी शिक्षणालयों में सर्विस प्राप्त कर सकना उनके लिए सम्भव हो जाता था और उच्चतर शिक्षा के अवसर भी उन्हें मिल जाते थे। वर्तमान समय में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में एक अन्य भी विभाग खुल गया है, जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है। इस विभाग को वेद, दर्शन, संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत व्याकरण विषयों में आचार्य स्तर तक मान्यता प्राप्त है। पूर्व मध्यमा से लेकर आचार्य पर्यन्त शिक्षा की इस विभाग में व्यवस्था है, और वर्तमान समय (सन् १९८१) में इस विभाग में विद्यार्थियों की संख्या १३० है। जो विद्यार्थी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के गुरुकुलीय संस्कृत विभाग में शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे भी अब किसी भी प्रकार से घाटे में नहीं रहते। इसका कारण यह है, कि जो विद्यार्थी इस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग में शिक्षा प्राप्त कर दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, उन्हें 'विद्यारत्न' की उपाधि दी जाती है। उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने विद्यारत्न को परिषद् (बोर्ड ग्रॉफ् सेकेण्डरी एजुकेशन) की हाईस्कूल परीक्षा के समकक्ष स्वीकार कर लिया है, जिसके परिणामस्वरूप गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर विद्यार्थी उत्तरप्रदेश के इण्टरमीडियेट कॉलिज में प्रवेश पा सकते हैं। इसके लिए उन्हें हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने की ग्रावश्यकता नहीं रह गयी है। पंजाबी की शास्त्री परीक्षा में विद्यारत्न सीधे बैठ सकते हैं, ग्रौर वे पंजाब तथा हरयाणा की ग्रो० टी० ट्रेनिंग भी कर सकते हैं। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से जो विद्यार्थी बारहवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, उन्हें 'विद्यावारिधि' की डिग्री दी जाती है। गुरुकुल काँगड़ी विश्व-विद्यालय से इस डिग्री को मान्यता प्राप्त है, ग्रौर इसे उत्तीर्ण कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी की विद्यालंकार तथा वेदालंकार कक्षाग्रों में प्रविष्ट हो सकते हैं, जिसके कारण उनके लिए एम० ए० तथा पी-एच० डी० की डिग्रियाँ प्राप्त करने का मार्ग भी खुल जाता है। 'विद्याभास्कर' गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्नातक डिग्री है, जिसे विविध यूनि-वर्सिटियों ने संस्कृत तथा हिन्दी विषयों में एम० ए० कक्षा में प्रवेशार्थ मान्यता प्रदान की हुई है। ये यूनिवर्सिटियाँ निम्नलिखित हैं, ग्रागरा यूनिवर्सिटी, मेरठ यूनिवर्सिटी, पंजाब यूनिवर्सिटी, कानपुर यूनिवर्सिटी, गढ़वाल यूनिवर्सिटी, रुहेलखण्ड यूनिवर्सिटी ग्रौर गुरु-कुल काँगड़ी विश्वविद्यालय। संस्कृत ग्रौर हिन्दी के ग्रतिरिक्त वैदिक साहित्य तथा दर्शन-शास्त्र विषयों में गुरुकुल ज्वालापुर के 'विद्याभास्कर' गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षा में प्रवेश पा सकते हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का एक ग्रन्य विभाग 'उपदेशक महाविद्यालय' है, जिसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को 'सिद्धान्त शास्त्री' की उपाधि दी जाती है। इसे उत्तीर्ण कर ग्रार्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश तथा ग्रन्य ग्रार्य प्रतिनिधि सभाग्रों से सम्बद्ध ग्रार्यसमाजों में पुरोहित एवं प्रचारक के पद पर नियुक्त हो सकना सुगम हो जाता है।

ज्यों-ज्यों गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर उन्नति के पथ पर ग्रग्रसर होता गया, उसके विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती गयी ग्रौर उसकी भू-सम्पत्ति में भी वृद्धि होती गयी। सन् १९१० में वहाँ केवल ३५ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, सन् १९३५ में उनकी संख्या १६५ हो गयी थी, ग्रौर ग्रब यह संख्या २२४ के लगभग है। इसमें ग्रायुर्वेद महा-विद्यालय के विद्यार्थी सम्मिलित नहीं हैं। यह संख्या उन्हीं विद्यार्थियों की है, जो गुरुकुल छात्रावास में रहकर ब्रह्मचर्यपूर्वक ग्रनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं, ग्रौर जिनका पालन-पोषण विशुद्ध ग्रार्य वातावरण में होता है। पहले इन विद्यार्थियों से कोई भी शुल्क नहीं लिया जाता था। भोजन तक उन्हें निःशुल्क दिया जाता था। पर देश ग्रौर समाज की वर्तमान परिस्थितियों में 'भैक्षचर्या' द्वारा विद्यार्थियों का सब खर्च चला सकना क्रियात्मक नहीं हुग्रा, ग्रौर समयान्तर में भोजन का व्यय विद्यार्थियों से लिये जाने की व्यवस्था करना ग्रावश्यक हो गया। साथ ही, यह भी ग्रावश्यक समझा गया, कि प्रवेश के समय विद्यार्थियों से कुछ ऐसी धनराशियाँ प्राप्त कर ली जाएँ, जिनसे भोजन भण्डार के बरतनों तथा इमारतों की मरम्मत ग्रादि का खर्च चल सके। इसीलिए यह व्यवस्था की गयी कि प्रवेश के समय प्रत्येक विद्यार्थी से १२५ रुपये प्रवेश शुल्क, १०० रुपये सुरक्षा धन,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२ रुपये बरतनों का व्यय, ३५ रुपये इमारतों के संरक्षण के लिए, १२ रुपये सदस्यता-शुल्क, ८ रुपये चन्दा—इस प्रकार कुल ३२२ रुपये प्राप्त किये जाएँ और ७० रुपये प्रति-मास वे भोजन व्यय के रूप में दिया करें। वर्तमान समय की महँगाई को देखते हुए ये राशियाँ बहुत कम हैं, और अत्यधिक निर्बल परिवारों के अतिरिक्त साधारण स्थिति के लोग भी इन्हें देते हुए कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे। पर यह स्वीकार करना होगा, कि श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का निःशुल्क शिक्षा का जो आदर्श था, गुरुकुल महा-विद्यालय ज्वालापुर उसका सर्वांश में पालन नहीं कर सका। स्वीमीजी केवल पढ़ाई के लिए ही कोई फीस न लेने को निःशुल्क या मुफ्त शिक्षा नहीं मानते थे। उनके मत में निःशुल्क शिक्षा वही थी जिसमें विद्यार्थियों से भोजन आदि के लिए भी कोई खर्च न लिया जाए। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संचालकों ने अपने संस्थापक के इस आदर्श को क्रियान्वित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। चिरकाल तक वे इसके लिए संघर्ष करते रहे और छोटे-बड़े किसानों से अन्न एकत्र कर विद्यार्थियों के भोजन का खर्च चलाते रहे। पर आदर्श और यथार्थ में अन्तर होता है। अन्त में ज्वालापुर गुरुकुल में भी विद्यार्थियों से भोजन व्यय लेने की व्यवस्था करनी पड़ गयी, और अब इस संस्था को पूर्णतया निःशुल्क नहीं कहा जा सकता। पर यह भी सही है, कि इस गुरुकुल में भोजन के लिए जो व्यय लिया जाता है, वह न केवल अधिक नहीं है, अपितु न्यून ही है, विशेषतया उस दशा में जब कि इससे दो समय के भोजन तथा प्रातराश (उपाहार) का खर्च चलाना होता है। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, वह अब भी वहाँ पूर्णतया निःशुल्क है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का प्रबन्ध एक सभा (महाविद्यालय सभा) के अधीन है, जिसके पदाधिकारियों का चुनाव प्रति वर्ष होता है। यह सभा आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के साथ सम्बद्ध नहीं है, और न ही इस पर किसी उच्चतर सभा का नियन्त्रण है। लोकतन्त्रवाद और वार्षिक निर्वाचन प्रणाली पर आधारित संगठनों में मतभेद तथा विवाद का उत्पन्न हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। साधारणतया, यह कहा जाता है, कि सभाओं और संस्थाओं में झगड़ों का मूल कारण सम्पत्ति होती है। ज्वालापुर गुरुकुल के पास सम्पत्ति तो विशेष नहीं थी, उसका खर्च भी बड़ी कठिनाई से चलता था। पर फिर भी वहाँ कार्यकर्ताओं में वैमनस्य और पदाधिकारियों में झगड़े निरन्तर उत्पन्न होते रहे, और इनके कारण कई बार तो विकट स्थिति भी उपस्थित हो गयी। सन् १९१६ और १९१७ में महाविद्यालय सभा के पदाधिकारियों के चुनाव के समय पुलिस बुलायी गयी, और उसकी उपस्थिति में ही निर्वाचन सम्भव हो सका। अन्य अवसरों पर भी अनेक ऐसी अवांछनीय घटनाएँ हुईं, जिनका उल्लेख करने का कोई विशेष उपयोग नहीं है। आर्यसमाजों और आर्य संस्थाओं में जो मतभेद व झगड़े बहुधा होते रहते हैं, उनका विवेचन करते हुए अनेक व्यक्तियों का यह कहना है कि आर्यसमाज एक जीवित-जागृत संस्था है, मृत नहीं है। जीवित प्राणी ही आपस में लड़ा करते हैं, मुरदे तो लड़ ही नहीं सकते। एक दृष्टि से इस कथन में सचाई भी है। जहाँ मनुष्यों को स्वतन्त्र रूप से विचार करने और स्वतन्त्र रूप से अपने मत को प्रकट करने का अवसर होता है, वहाँ मतभेद तथा विवाद का प्रादुर्भूत हो जाना स्वा-भाविक ही है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में भी यही हुआ। अनेक बार वहाँ के विवादों व झगड़ों ने उग्र रूप धारण कर लिया, पर इससे संस्था की प्रगति रुकी नहीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति के मार्ग पर वह निरन्तर अग्रसर होती गयी, और कुछ ही समय में उसने एक प्रतिष्ठित शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया। उसकी शिक्षा पद्धति तथा ख्याति से आकृष्ट होकर देश-विदेश के शिक्षाशास्त्री उसका अवलोकन करने के लिए आने लगे और शिक्षा के क्षेत्र में इस नवीन परीक्षण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की इस प्रगति का मुख्य श्रेय आचार्य गंगादत्त (स्वामी शुद्धवोध तीर्थ) को दिया जाना चाहिये। ३१ मई, सन् १६०८ के दिन उन्होंने इस संस्था का कार्यभार सँभाला था। २५ वर्ष के लगभग आचार्य के रूप में इस महाविद्यालय का उन्होंने संचालन किया। प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष, मुख्याधिष्ठाता आदि पदाधिकारियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहे, पर उनसे प्रभावित हुए विना आचार्यजी गुरुकुल महाविद्यालय का निष्ठा तथा आत्मीयता के साथ संचालन करते रहे। सन् १६३० में वह गुरुकुल को छोड़कर कनखल-ज्वालापुर मार्ग पर स्थित मुक्तिपीठ में निवास करने लगे थे, पर वहाँ के आचार्य के पद का उन्होंने त्याग नहीं किया था। १६ सितम्बर, सन् १६३३ को जव उन्होंने अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया, तव वह महाविद्यालय में ही थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् पण्डित हरिदत्त शास्त्री आचार्य बनाये गये, और ६ मार्च, १६३६ से पण्डित नरदेव शास्त्री इस पद पर नियुक्त हुए। इस समय तक शास्त्रीजी भारत के स्वाधीनता संघर्ष में सक्रिय रूप से हाथ बँटाने में तत्पर हो चुके थे, और कई वार जेल यात्रा कर चुके थे। देहरादून और उसके समीपवर्ती प्रदेश के राजनीतिक नेताओं में उनका प्रमुख स्थान था। इस कारण वह गुरुकुल महाविद्यालय के संचालन पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दे सकते थे। फिर भी वीच-वीच में कुछ समय के व्यवधान के साथ सन् १६४६ तक वे आचार्य की स्थिति में इस संस्था का कार्यभार सँभाले रहे और इसकी उन्नति में उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व रहा। गुरुकुल महाविद्यालय के संचालन में आचार्य, मुख्याधिष्ठाता आदि के पदों पर रहकर जिन महानुभावों का विशेष योगदान रहा, उन सवका उल्लेख कर सकना न यहाँ सम्भव है, और न उसकी आवश्यकता ही है। केवल इतना ही निर्देश कर देना पर्याप्त है, कि आचार्य गंगादत्त (स्वामी शुद्धवोध तीर्थ) और पण्डित नरदेव शास्त्री सदृश पुराने कार्यकर्ताओं के पश्चात् इस संस्था का संचालन जिन व्यक्तियों (पण्डित हरिदत्त शास्त्री, पण्डित नन्दकिशोर शास्त्री, पण्डित गौरीशंकर आचार्य, डा० कपिलदेव द्विवेदी और आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी आदि के हाथों में रहा, वे सब इसी गुरुकुल महविद्यालय के स्नातक थे, और इसके आदर्शों, मान्यताओं तथा परम्पराओं से भली-भाँति परिचित थे। अपनी कुलभूमि से उन्हें अगाध प्रेम था। यही कारण है कि सरकारी सहायता और प्रचुर सम्पत्ति व विपुल स्थायी निधि के अभाव में भी इसकी निरन्तर उन्नति होती रही, और अपने आदर्शों से यह अधिक दूर नहीं हटी।

सन् १६४७ में स्वराज्य के पश्चात् सरकार के प्रति गुरुकुल संस्थाओं के रुख में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया था। उन्हें अब न सरकार से अनुदान प्राप्त करने में संकोच था, और न सरकार से अपनी डिग्रियों के लिए मान्यता प्राप्त कराने में। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने 'विद्याभास्कर' आदि अपनी डिग्रियों व परीक्षाओं को सरकार व अन्य यूनिवर्सिटियों से मान्यता अवश्य प्राप्त करायी, पर सरकार से आर्थिक अनुदान उसने स्वराज्य के वाद भी नहीं लिया। केवल संस्कृत की शिक्षा के लिए उसे सरकार से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच हजार रुपये के लगभग प्रतिवर्ष प्राप्त होते हैं। शेष सब खर्च जनता जनार्दन की कृपा व सहायता से ही चलता है। पर यह भी तथ्य है, कि स्वराज्य के पश्चात् देश में जो नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं, यह संस्था भी उनसे प्रभावित होने से नहीं बच सकी। इसीलिए जुलाई, १९६५ में वहाँ एम० ए० (संस्कृत) की कक्षाएँ प्रारम्भ की गयीं, और आगरा यूनिवर्सिटी की एम० ए० की परीक्षा में वहाँ के विद्यार्थी बैठने लगे। कुछ समय पश्चात् इन कक्षाओं ने आगरा यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध एक पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलिज का रूप प्राप्त कर लिया, और सन् १९७२ के अगस्त मास में संस्कृत और हिन्दी विषयों में एम० ए० के लिए इस कॉलिज को विधिवत् मान्यता भी प्राप्त हो गयी। दिसम्बर, १९७२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की परीक्षाओं के लिए भी इस कॉलिज में पढ़ाई शुरू की गयी। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का यह पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलिज अब आगरा यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध अन्य कालिजों (डी०ए०वी० कॉलिज, सनातन धर्म कॉलिज आदि) के समान स्थिति प्राप्त कर चुका था, और यह सर्वथा सम्भव था कि कालान्तर में वहाँ संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त अन्य विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी की जा सके। पर पारस्परिक मतभेद तथा वैमनस्य के कारण न केवल यह कॉलिज अपना विस्तार ही नहीं कर सका, अपितु इसे कायम रख सकना भी सम्भव नहीं रहा। इसकी मान्यता समाप्त हो गयी, जिसके कारण इसका स्वयमेव अन्त हो गया। सम्भवतः, गुरुकुल महाविद्यालय की स्वतन्त्र एवं स्वायत्त स्थिति की दृष्टि से यह बुरा नहीं हुआ, क्योंकि इसके कारण इस शिक्षण-संस्था के भी सरकारी प्रभाव में चले जाने की सम्भावना का अन्त हो गया। अब यह संस्था इस स्थिति में है, कि ब्रह्मचर्य, तपस्यामय जीवन, धार्मिक वातावरण और निःशुल्क शिक्षा के अपने आदर्शों पर स्थिर रहकर यथेष्ट उन्नति कर सके। क्योंकि इसकी विद्यारत्न और विद्याभास्कर परीक्षाओं व डिग्रियों को व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है, अतः इसके विद्यार्थी सरकारी सर्विस तथा उच्चतर शिक्षा आदि के वे सब अवसर प्राप्त कर सकते हैं, जो सरकारी स्कूलों, कॉलिजों तथा यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों को प्राप्त रहते हैं। वर्तमान समय में इस संस्था का संचालन डा० कपिलदेव द्विवेदी (कुलपति), डा० श्रुतिकान्त (मुख्याधिष्ठाता) और श्री हरिगोपाल शास्त्री (आचार्य) के हाथों में है, और महाविद्यालय सभा के प्रधान डा० गौरीशंकर हैं। ये सब महानुभाव गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातक हैं, और इसके आदर्शों एवं परम्पराओं से भली-भाँति परिचित हैं। यह आशा की जा सकती है, कि इनके संचालन में यह संस्था उन्नति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ती जाएगी।

(३) गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का शिक्षा, साहित्य, विद्वत्ता और आर्यसमाज के क्षेत्रों में कर्तृत्व

इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का आर्यसमाज के कार्यकलाप में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अनेक स्नातक संस्कृत, वेद, वेदांग तथा प्राचीन आर्ष शास्त्रों के मूर्धन्य विद्वान् हैं, और वे उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना कर महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों की पुष्टि में तत्पर रहे हैं। इस प्रसंग में पण्डित उदयवीर शास्त्री, डॉ० सूर्यकान्त, डा० हरिदत्त शास्त्री, डा० कपिलदेव, पण्डित नन्दकिशोर शास्त्री, श्री विमलचन्द 'विमलेश', डा० श्रुतिकान्त, डा० गौरीशंकर आचार्य, श्री लक्ष्मीनारायण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेदी और श्री सत्यव्रत शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के बहुत-से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिन्हें संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। इन सब रचनाओं पर महर्षि की शिक्षाओं तथा आर्यसमाज की छाप विद्यमान है, और उनसे वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहायता प्राप्त हुई है। पण्डित उदयवीर शास्त्री ने न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदान्त दर्शनों पर 'विद्योदय' भाष्य लिखे हैं, और सांख्य-सिद्धान्त, सांख्य दर्शन का इतिहास, वेदान्त दर्शन का इतिहास आदि कितने ही दर्शन-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है। शास्त्रीजी के ये सब ग्रन्थ अत्यन्त उच्च कोटि के हैं, और इन द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित त्रैतवाद तथा आस्तिक दर्शनों में अविरोध के सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। दर्शनशास्त्र विषयक गम्भीर व उच्च कोटि के जो ग्रन्थ पण्डित उदयवीर शास्त्री ने लिखे हैं, उन पर कोई भी शिक्षण-संस्था व यूनिवर्सिटी गर्व कर सकती है। पर शास्त्रीजी के ग्रन्थों के विषय केवल दर्शनशास्त्रों तक ही सीमित नहीं हैं। उन्होंने कौटलीय अर्थशास्त्र सदृश दुरूह संस्कृत ग्रन्थ का भी हिन्दी में अनुवाद किया है, और प्राचीन भारतीय तिथिक्रम के विषय में मौलिक विवेचन कर अनेक नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं। वाग्भटालंकार सदृश प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थ पर भी उन्होंने संस्कृत और हिन्दी में टीकाएँ लिखी हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् डा० सूर्यकान्त की शिक्षा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में ही हुई थी, और यहीं से उन्होंने सन् १९१९ में विद्याभास्कर की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बाद में उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी से शास्त्री, एम० ए० तथा डाक्टरेट की डिग्रियाँ प्राप्त कीं, और उच्चतम शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड की आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में उन्होंने अध्ययन किया। सन् १९३७ में उन्होंने आक्सफोर्ड से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, और पंजाब, अलीगढ़, वाराणसी तथा कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटियों में संस्कृत तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान (इण्डोलॉजी) विषयों के प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष रहे। वह ७० से भी अधिक पुस्तकों की रचना कर चुके हैं, जिनमें बहुसंख्यक के विषय वेद एवं वेदांगों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। डा० सूर्यकान्त के इन ग्रन्थों को इण्डोलॉजी के क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है, और उनकी गिनती प्राचीन भारतीय ज्ञान के सर्वोच्च एवं अधिकारी विद्वानों में की जाती है। डा० हरिदत्त शास्त्री अब दिवंगत हो चुके हैं, पर वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से विद्याभास्कर की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने साहित्यरत्न (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग), शास्त्री (पंजाब), व्याकरणाचार्य (काशी), और पी-एच० डी० (आगरा) आदि की कितनी ही उच्च डिग्रियाँ प्राप्त की थीं। संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर शास्त्रीजी बलवन्त कॉलिज, आगरा और डी० ए० वी० कॉलिज कानपुर आदि अनेक कॉलिजों में संस्कृत के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष रहे। मीमांसा परिभाषा, ऋक् सूक्त संग्रह, खण्डनखाद्य की आलोचना, काव्य मीमांसा टीका, पारस्कर गृह्यसूत्र टीका, परिभाषेन्दु संस्कार, साहित्य दर्पण संस्कृत टीका आदि बहुत-से उच्च कोटि के ग्रन्थों की उन्होंने रचना की। गुरुकुल रायकोट, गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि आर्य शिक्षण-संस्थाओं की भी उन्होंने समय-समय पर मुख्याध्यापक व आचार्य के रूप में सेवा की। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार का उन्हें सदा ध्यान रहता था। वह संस्कृत गद्य और पद्य दोनों में शास्त्रार्थ कर लेते थे। एक बार उन्होंने प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी करपात्री से भी संस्कृत में शास्त्रार्थ किया था, और श्रोताओं पर उनकी अगाध विद्वत्ता का सिक्का जम गया था। श्री आचार्य लक्ष्मीनारायण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेदी (श्री नारायण मुनिश्चतुर्वेदः) ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से विद्याभास्कर परीक्षा उत्तीर्ण कर साहित्याचार्य एवं एम० ए० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं, और भाषण, लेख एवं शास्त्रार्थ आदि द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रवृत्त हुए। संस्कृत भाषा तथा साहित्य पर उनका अधिकार है, और वे श्रुतिसुधा, स्तुतिशतकम्, सांस्कृतिक विचार, मुक्तकशतक आदि अनेक ग्रन्थों की संस्कृत तथा हिन्दी में रचना कर चुके हैं। डा० श्रुतिकान्त ने विद्याभास्कर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् शास्त्री, एम० ए० और पी-एच० डी० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं, और हिन्दू कॉलिज मुरादाबाद, गर्वनमेण्ट कालिज धर्मशाला और गर्वनमेण्ट कॉलिज गुरुदासपुर आदि कितने ही कॉलिजों में अध्यापन का कार्य किया। भारतीय देव भावना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य और उसके अंग तथा साहित्य विमर्श आदि अनेक ग्रन्थों की भी उन्होंने रचना की। आर्य-समाज की सेवा में वह सदा तत्पर रहते हैं। वर्तमान समय में श्रुतिकान्तजी ही गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख्याधिष्ठाता हैं। डा० श्रुतिकान्त के समान डा० गणेशदत्त शर्मा ने भी गुरुकुल महाविद्यालय से विद्याभास्कर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् शास्त्री, एम०ए०, साहित्याचार्य और पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं और अनेक कॉलिजों में संस्कृत का अध्यापन किया। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व, भारतीय धर्म और संस्कृति तथा वैदिक व्याकरण महत्त्व की हैं। मेरठ यूनिवर्सिटी के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने तृतीय विश्व संस्कृत सम्मेलन (फ्रांस) और चतुर्थ विश्व संस्कृत सम्मेलन (पूर्वी जर्मनी) में भाग लिया और ओरियण्टल संस्कृत कान्फरेन्स (कुरुक्षेत्र) सदृश अन्य भी अनेक आयोजनों में वह सम्मिलित होते रहे। आर्यसमाज के कार्य-कलाप में उनकी रुचि है। डा० कपिलदेव द्विवेदी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के एक अन्य स्नातक हैं, जिन्होंने शिक्षा, साहित्य तथा वैदिक धर्म की सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। विद्याभास्कर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् द्विवेदीजी ने काशी और पंजाब से शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से व्याकरणाचार्य, पंजाब यूनिवर्सिटी से एम० ए०, एम० ओ० एल० और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से डी० फिल० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं। सेण्ट एन्ड्रूज कॉलिज, गोरखपुर, देवसिंह विष्ट स्नातकोत्तर कॉलिज नैनीताल और राजकीय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिज, ज्ञानपुर आदि कितने ही कॉलिजों में वह संस्कृत के प्रोफेसर रहे और अर्थ विज्ञान तथा व्याकरण दर्शन, भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, अथर्ववेद कालीन संस्कृति, और संस्कृत व्याकरण सदृश अनेक उच्च कोटि के मौलिक ग्रन्थों की रचना की। शान्तिस्तोत्रम्, महाप्रयाणम् और राष्ट्रगीतांजलिः नामक तीन संस्कृत काव्य भी उनकी रचनाएँ हैं। द्विवेदीजी एक लब्धप्रतिष्ठित भाषा-शास्त्री हैं। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, उर्दू, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला, मराठी, गुजराती और पंजाबी भाषाओं का उन्हें अच्छा ज्ञान है, और जर्मन, फ्रेंच, रूसी तथा चीनी भाषाएँ भी वह जानते हैं। आर्यसमाज में उनका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के वह कुलपति हैं, और वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए इटली, स्विटजरलैण्ड, ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा की यात्रा कर चुके हैं। कितने ही अन्य भी ऐसे विद्वान् हैं, जिन्होंने कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से स्नातक होने के पश्चात् सरकारी यूनिवर्सिटियों से संस्कृत और हिन्दी में उच्च डिग्रियाँ प्राप्त कीं, और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार तथा प्राध्यापक के रूप में अपनी स्थिति बनाने में सफल हुए। इन सब स्नातकों का उल्लेख भी कर सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि उनकी संख्या बहुत अधिक है। इतना निर्देश कर देना ही पर्याप्त है, कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में जिन सैकड़ों ब्रह्मचारियों ने शिक्षा प्राप्त की, प्रायः उन सभी की संस्कृत और हिन्दी में अच्छी योग्यता है, और उनमें ऐसे स्नातकों की संख्या भी पर्याप्त है, जिन्होंने विद्वत्ता, शिक्षा, साहित्य और धर्म प्रचार के क्षेत्र में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किया है। इस गुरुकुल के स्नातकों में बहुत-से ऐसे हैं, जिनके माता-पिता ग्रामों के निवासी थे और जिनका उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी का यह परिणाम है, कि इन स्नातकों से गाँवों में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में बहुत सहायता मिली है, और आर्यसमाज का कार्यकलाप केवल नगरों तक ही सीमित नहीं रहा है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संचालकों, पदाधिकारियों तथा अध्यापकों में ऐसे सज्जन अधिक संख्या में रहे हैं, जिन्हें सच्चे अर्थों में आर्यसमाजी कहा जा सकता है, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की उत्कृष्टता एवं उपादेयता में जिनकी निष्ठा थी। इनमें स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, स्वामी शुद्धबोध तीर्थ, पण्डित भीमसेन शर्मा, पण्डित नरदेव शास्त्री, पण्डित पद्मसिंह शर्मा, पण्डित गणपति शर्मा, स्वामी भास्करानन्द सरस्वती, चौधरी जयकृष्ण, पण्डित तुलसीराम सामवेद भाष्यकार और बाबू ज्योतिस्वरूप वकील के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इस संस्था की महाविद्यालय सभा भी प्रायः ऐसे ही महानुभावों के हाथों में रही, आर्यसमाज के प्रति जिनकी आस्था में सन्देह नहीं किया जा सकता। पण्डित काशीनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी भी ऐसे विद्वान् ने इस गुरुकुल में अध्यापन का कार्य नहीं किया, जिसे महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों में विश्वास न हो। पण्डित काशीनाथ संस्कृत और आर्ष शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे, और काशी की पण्डित मण्डली में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त था। गुरुकुल काँगड़ी में भी वह अध्यापक रहे थे, और संस्कृत वाङ्मय के उच्चतम अध्ययन-अध्यापन की परम्परा वहाँ उन्हीं द्वारा प्रारम्भ की गयी थी। सन् १९१५ में वह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर चले आये थे, और उनके कारण इस संस्था में संस्कृत की शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा उठ गया था। यद्यपि पण्डित काशीनाथ आर्यसमाजी नहीं थे, पर वैदिक धर्म के परम्परागत स्वरूप में उनकी पूर्ण निष्ठा थी, और महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों को भी वह आदर की दृष्टि से देखते थे। इसीलिए उनके कारण ज्वालापुर गुरुकुल के आर्यसमाजी वातावरण में किसी भी प्रकार से कमी नहीं हुई। उनके अतिरिक्त जो अन्य अध्यापक व कर्मचारी इस संस्था में नियुक्त किए जाते रहे, वे सब प्रायशः आर्यसमाजी थे, जिसके परिणामस्वरूप इसके आर्यसमाजी स्वरूप में कभी कमी नहीं आई।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के बहुत-से स्नातक विविध आर्यसमाजों के प्रधान, मन्त्री तथा प्रचारक आदि की स्थिति में वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहे हैं। उन सबके नामों का उल्लेख यहाँ कर सकना सम्भव नहीं है। पर कुछ ऐसे स्नातकों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिन्होंने कि आर्यसमाज के संगठन में उच्च स्थान प्राप्त किये, और आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेताओं में जिनकी गणना की जा सकती है। पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री ने भारत के सार्वजनिक व राजनीतिक क्षेत्र में उच्च स्थिति प्राप्त की, और अनेक वर्षों तक वह संसद् के सदस्य रहे। पर आर्यसमाज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कार्य की उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के वह कई वर्ष प्रधान रहे, और परोपकारिणी सभा, अजमेर के सदस्य निर्वाचित हुए। अधिकारी विद्वानों द्वारा उन्होंने वेदों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कराने की योजना वनायी, और उसके लिए दान द्वारा धन की भी व्यवस्था की। टंकारा के महर्षि दयानन्द जन्म-स्थान स्मारक ट्रस्ट के भी वे ट्रस्टी थे। पण्डित सच्चिदानन्द शास्त्री वर्तमान समय में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री हैं, और इस सार्वभौम आर्य शिरोमणि सभा के संचालन में उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व है। पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री और पण्डित सच्चिदानन्द शास्त्री ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में शिक्षा प्राप्त कर वहाँ से विद्याभास्कर की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

आर्यसमाज द्वारा समय-समय पर जो आन्दोलन चलाये जाते रहे, और वैदिक धर्म की रक्षा के लिए जो संघर्ष आर्यसमाज ने किये, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का उनमें भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् १९३९ में जव निजाम के हिन्दू विरोधी शासन के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा सत्याग्रह का प्रारम्भ किया गया, तो ज्वालापुर गुरुकुल के अध्यापकों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों ने उसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। गुरुकुल के संचालकों का तो यह विचार था, कि एक वर्ष के लिए महाविद्यालय को वन्द कर दिया जाए और उसके सब विद्यार्थी व अध्यापक सत्याग्रह करने के लिए हैदरावाद चले जाएँ। पर सत्याग्रह आन्दोलन के संचालकों का यह आदेश प्राप्त होने पर कि सोलह साल से कम आयु के व्यक्ति सत्याग्रह में भाग नहीं ले सकते, केवल बड़े विद्यार्थियों को ही हैदरावाद भेजा जा सका। गुरुकुल से तीन जत्थे सत्याग्रह के लिए भेजे गये, जिनके नेता क्रमशः स्वामी विवेकानन्द, पण्डित भूदेव शास्त्री और स्वामी आनन्द तीर्थ महाराज थे। इस संस्था से जिन लोगों ने सत्याग्रह में भाग लिया, उनकी कुल संख्या ७२ थी, और उन्हें १३ से १८ मास तक का कारावास का दण्ड दिया गया था। जो आर्य नेता हैदरावाद सत्याग्रह का संचालन कर रहे थे, उनमें पण्डित नरदेव शास्त्री का स्थान महत्त्वपूर्ण था। शास्त्रीजी उस समय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य थे।

(४) गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का मूल्यांकन

सन् १९०७ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना हुई थी। उसे स्थापित हुए अव ७५ वर्ष हो चुके हैं। विचार यह करना है, कि ७५ वर्षों के सुदीर्घ काल में इस संस्था ने शिक्षा, साहित्य, वैदिक धर्म के प्रचार आदि के क्षेत्रों में जो कार्य किया है उसका कितना महत्त्व है और अपने उद्देश्यों की पूर्ति में उसे किस अंश तक सफलता प्राप्त हुई है। प्रारम्भ में इस संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये थे—(१) वैदिक समय की प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम प्रणाली को पुनरुज्जीवित करना, और श्री १०८ महर्षि दयानन्द सरस्वती की निर्दिष्ट की हुई रीति से आर्य भाषा, संस्कृतादि भाषा का निःशुल्क अध्ययन कराना। (२) पुस्तकालय स्थापित करना, उपयुक्त पुस्तकों का भाष्य आदि कराना व छपाना। (३) वैदिक धर्म का प्रचार करना-कराना और अनाथों की रक्षा करना।

इनमें प्रथम उद्देश्य प्रधान है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य और तपोमय जीवन का प्रमुख स्थान है। उसके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार शिक्षा काल में विद्यार्थियों को माता-पिता तथा परिवार से पृथक् होकर ब्रह्मचर्याश्रम (छात्रावास) में निवास करना चाहिये और वहाँ सबके साथ एक समान बरताव किया जाना चाहिये, इस बात की अपेक्षा किये बिना कि उनके माता-पिता धनी हैं या निर्धन हैं, समाज में उच्च स्थिति रखते हैं या हीन स्थिति के माने जाते हैं, और वे किस जाति या कुल में उत्पन्न हुए हैं। यह भी आवश्यक है कि ये शिक्षण-संस्थाएँ व छात्रावास नगरों से दूर एकान्त प्रदेश में स्थित हों। शिक्षा का पूर्णतया निःशुल्क होना भी महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाप्रणाली का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर पर्याप्त अंश तक अपने प्रथम उद्देश्य की पूर्ति में सफल रहा है। वह एक ऐसे स्थान पर स्थित है, जो नागरिक जीवन से अप्रभावित है। पंचपुरी के अन्तर्गत ज्वालापुर हरिद्वार और कनखल नगरों की आबादी अब बहुत बढ़ गयी है, और उनका विस्तार भी बहुत हो गया है। इसी क्षेत्र में स्थित गुरुकुल काँगड़ी अब शहरी आबादी के बीच में आ गया है, और शहरी प्रभाव से वह बचा नहीं रह सका है। पर यह बात गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के विषय में नहीं कही जा सकती। वह अब भी पंचपुरी से अलग है, और उसका स्वरूप बहुत कुछ एक आरण्यक-आश्रम के सदृश है। वहाँ के विद्यार्थी अब भी छात्रावास में निवास करते हैं, और धनी-निर्धन आदि का भेदभाव किये बिना सबके प्रति एक सदृश व्यवहार किया जाता है। वहाँ की शिक्षा में अब भी संस्कृत और हिन्दी (आर्य भाषा) की प्रमुखता है, और वेद-वेदांगों तथा प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। अंग्रेजी, गणित आदि का वहाँ की पाठविधि में गौण स्थान है। सरकार द्वारा संचालित व मान्यता प्राप्त शिक्षण-संस्थाओं का अनुसरण कर इस गुरुकुल ने संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की तुलना में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। इस दृष्टि से यह स्वीकार करना होगा कि अपने मुख्य उद्देश्य की इसने अभी तक भी उपेक्षा नहीं की है। इस संस्था के स्नातकों ने संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन के सम्बन्ध में जो कार्य किया है, उस पर पिछले प्रकरण में प्रकाश डाला जा चुका है। इसमें सन्देह नहीं, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था में इस गुरुकुल ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

स्वराज्य (१९४७) के पश्चात् बहुत-से गुरुकुलों की स्वतन्त्र स्थिति का अन्त हो गया। अनेक गुरुकुल सरकारी प्रणाली के हाईस्कूलों तथा इण्टरमीडियेट कॉलिजों में परिवर्तित हो गये, और गुरुकुल काँगड़ी ने भी यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन द्वारा यूनिवर्सिटी स्थिति की राष्ट्रीय महत्त्व की शिक्षण-संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त करा लेने में ही हित समझा, जिसके कारण जहाँ उसका शत-प्रतिशत खर्च सरकार द्वारा दिया जाने लगा, वहाँ साथ ही उस पर सरकारी नियन्त्रण में भी निरन्तर वृद्धि होती गयी। पर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने अपनी स्वतन्त्र स्थिति को कायम रखा। अपनी परीक्षाओं (विद्यारत्न और विद्याभास्कर) के साथ-साथ शास्त्री और आचार्य सदृश परीक्षाओं को प्राइवेट रूप से दिलाने की जो परम्परा वहाँ स्वराज्य से पूर्व भी विद्यमान थी, उसे बाद में भी जारी रखा गया। पर उसके कारण इस संस्था की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं पड़ती। स्वराज्य के बाद इस गुरुकुल में एक ऐसा विभाग अवश्य खोल दिया गया है, जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है, और इसके लिए कुछ आर्थिक सहायता भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार से प्राप्त होती है, पर इस विभाग के कारण गुरुकुल के अपने महाविद्यालय के स्वतन्त्र रूप से विकास में कोई विशेष वाधा प्रस्तुत नहीं हुई है।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को निःशुल्क शिक्षा से यह अभिप्रेत था कि विद्यार्थियों की न केवल पढ़ाई ही निःशुल्क हो, अपितु भोजन आदि का भी कोई खर्च उनसे न लिया जाए। गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक महात्मा मुंशीराम से निःशुल्क शिक्षा के अभिप्राय के सम्वन्ध में उनका गम्भीर मतभेद था। चिरकाल तक गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संचालक यह प्रयत्न करते रहे, कि वहाँ के विद्यार्थियों से भोजन के लिए भी कोई शुल्क न लिया जाए। इसके लिए जो प्रयत्न उन्होंने किये, उनका उल्लेख इस अध्याय में पहले किया जा चुका है। पर यथार्थ आदर्श से भिन्न होता है। ज्वालापुर गुरुकुल भी निःशुल्क शिक्षा के आदर्श को अविकल रूप से क्रियान्वित नहीं कर सका, और भोजन का व्यय विद्यार्थियों से प्राप्त करने के लिए उसे विवश होना पड़ा। इतना ही नहीं, वहाँ यह नियम भी वनाना पड़ा कि 'भोजन व्यय समय पर न आने पर दो सप्ताह पूर्व सूचना देकर छात्र को घर भेज दिया जायेगा'। जिन अन्य दो उद्देश्यों से इस शिक्षण-संस्था की स्थापना की गयी थी, उनमें पुस्तकालय की स्थापना के सम्वन्ध में अभी अधिक कार्य नहीं हुआ। गुरुकुल महाविद्यालय में एक पुस्तकालय अवश्य विद्यमान है, पर इसे वैदिक वाङ्मय, संस्कृत साहित्य और प्राचीन भारतीय ज्ञान के ग्रन्थों का सर्वांग सम्पूर्ण भण्डार नहीं कहा जा सकता। गुरुकुल के संस्थापक सम्भवतः एक ऐसा पुस्तकालय खोलना चाहते थे, जिसमें भारत का सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय संगृहीत हो, और देश-विदेश के विद्वानों को जहाँ वे सव ग्रन्थ प्राप्त हो जाएँ, जिनकी उन्हें शोधकार्य के लिए आवश्यकता हो। संस्कृत के महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों पर भाष्य लिखवाने तथा उन्हें प्रकाशित करने की दिशा में भी गुरुकुल महाविद्यालय कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सका है, यद्यपि पण्डित उदयवीर शास्त्री और डॉ० सूर्यकान्त सदृश स्नातकों ने स्वतन्त्र रूप से अथवा अन्य संस्थानों के माध्यम से इस सम्वन्ध में उपयोगी कार्य किया है। वैदिक धर्म के प्रचार करने-कराने का गुरुकुल महाविद्यालय का जो उद्देश्य था, उसके विषय में इस संस्था के कार्य को सन्तोष-जनक कहा जा सकता है। ज्वालापुर गुरुकुल ने कितने ही पुरोहित और प्रचारक आर्य-समाज को दिये हैं, और कितने ही स्नातकों ने वहाँ शिक्षा प्राप्त कर वेद-वेदांग तथा प्राचीन शास्त्रों के ज्ञान को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। अनाथों की रक्षा भी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का अन्यतम उद्देश्य निर्धारित किया गया था। इसके लिए भी इस संस्था द्वारा कुछ कार्य हुआ है। जव विदेशी ईसाई मिशनरियों ने राउरकेला के पार्वत्य प्रदेश में निवास करने वाले आदिवासी हिन्दुओं को वस्त्र और भोजन सामग्री प्रदान कर क्रिश्चियन वनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया, तव स्वामी ब्रह्मानन्द ने इन ईसाई प्रचारकों का मुकावला किया, और पचास आदिवासी बालक गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में शिक्षा के लिए भेजे। आर्थिक साधनों में अत्यन्त सीमित होते हुए भी गुरुकुल ने उनके निवास, भोजन, शिक्षा आदि की व्यवस्था की। ये सव वालक प्रायः अनाथ व निर्धन थे। इनमें से एक आत्मानन्द गुरुकुल की शिक्षा पूर्ण कर स्नातक भी हुआ और वह आजकल आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा तथा धर्म के प्रचार के कार्य में संलग्न है। उस द्वारा 'वनवासी सन्देश' नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन भी किया जा रहा है, जो उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्र में आर्यसमाज द्वारा स्थापित 'वेद व्यास गुरुकुल' का प्रमुख

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र है। इस गुरुकुल की स्थापना स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा की गई है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संचालकों के सम्मुख भविष्य के लिए अनेक योजनाएँ हैं, जिनमें 'दर्शनानन्द विश्वविद्यालय' की स्थापना मुख्य है। इसमें वेदों, वेदांगों, आरण्यकों, गृह्यसूत्रों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों, स्मृति-ग्रन्थों तथा रामायण-महाभारत के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था होगी, और भारत के प्राचीन इतिहास और भूगोल की जानकारी के लिए पुराणों का अनुशीलन किया जाएगा। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से यह इस दृष्टि से भिन्न होगा, कि इसमें वेद-वेदांगों का अध्ययन महर्षि दयानन्द सरस्वती की पद्धति पर किया जायेगा। दर्शनानन्द विश्वविद्यालय में एक आधुनिक पुस्तकालय भी होगा, जिसमें वे सब ग्रन्थ तथा अन्य शोध-सामग्री संगृहीत होगी, जो प्राचीन भारतीय ज्ञान (इण्डोलॉजी) के विविध अंगों में शोधकार्य के लिए आवश्यक हैं। साथ ही, शोध-अनुसन्धान एवं प्रकाशन के विभाग भी विश्वविद्यालय में स्थापित किये जाएँगे। शोध-विभाग में अन्यतम उपवेद-आयुर्वेद की शोध पर भी ध्यान दिया जायेगा। विश्वविद्यालय की अपनी शोध पत्रिका होगी, और अपना प्रेस। ये सब कार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के उस प्रथम उद्देश्य की सुचारु रूप से पूर्ति कर सकेंगे, जिसका निश्चय इस संस्था की स्थापना के समय किया गया था। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर एक उपदेशक महाविद्यालय की स्थापना की योजना भी इस संस्था के संचालकों के सम्मुख है। इसमें सन्देह नहीं, कि यदि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्वामिनी सभा (महाविद्यालय सभा) इन योजनाओं को क्रियान्वित कर सकी, तो यह विश्व में अपने ढंग की एक अद्वितीय संस्था होगी। सन्तोष की बात है, कि महाविद्यालय के संचालकों के सम्मुख एक सुनिश्चित व सुस्पष्ट मार्ग है, उन्हें दिशाभ्रम नहीं है। अतः यह आशा की जा सकती है, कि वे अपनी योजनाओं को क्रियान्वित कर सकेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दसवाँ अध्याय

डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की चौमुखी उन्नति

(१) डी० ए० वी० स्कूल एवं कॉलिज, लाहौर का विकास

सन् १८८६ के जून मास के प्रथम दिन दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल, लाहौर की स्थापना हुई थी, और उसके ठीक दो वर्ष पश्चात् १ जून, १८८८ को इस शिक्षण-संस्था में इण्टरमीडियेट (एफ० ए०) कक्षा भी खोल दी गयी थी। इस प्रकार जून, १८८८ में डी० ए० वी० कॉलिज का भी प्रारम्भ हो गया था। जनता में इन शिक्षण-संस्थाओं के लिए अपूर्व उत्साह था। जैसा कि चौथे अध्याय में लिखा जा चुका है, ७ जून, १८८६ तक डी० ए० वी० स्कूल में ३०० विद्यार्थी प्रविष्ट हो गये थे और जून के अन्त तक यह संख्या ५५० तक पहुँच गयी थी। दो वर्ष के स्वल्प काल में लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी, कि उसके विद्यार्थियों की संख्या ६९७ हो गयी थी, और लोग उसकी शिक्षा से पूर्णतया सन्तुष्ट थे। इस स्कूल का परीक्षा परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक था। जहाँ तक पढ़ाई का सम्बन्ध था, इसमें दी जाने वाली शिक्षा का स्तर पंजाब के अन्य किसी भी स्कूल की तुलना में नीचा नहीं था और इसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों को अपने धर्म तथा संस्कृति से परिचय प्राप्त करने का भी अवसर मिलता रहता था, जो बात सरकारी स्कूलों में सम्भव ही नहीं थी। ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूलों का वातावरण भारत की परम्परागत संस्कृति तथा धार्मिक मान्यताओं के सर्वथा विपरीत था, और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले हिन्दू विद्यार्थी क्रिश्चियन प्रभाव में आ जाते थे। पंजाब की हिन्दू जनता को यह समझने में देर नहीं लगी कि डी० ए० वी० स्कूल ही एकमात्र ऐसी शिक्षण-संस्था है, जिसमें जहाँ एक ओर अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का वही स्तर है, जो सरकारी तथा क्रिश्चियन स्कूलों में है, वहाँ दूसरी ओर इस संस्था में अपनी भाषा, अपने धर्म तथा अपनी संस्कृति की भी शिक्षा दी जाती है और इसका वातावरण भी अपनी परम्पराओं के अनुरूप है। इस दशा में इस संस्था का लोकप्रिय होना सर्वथा स्वाभाविक ही था। १८८८ में इसे सरकार से मान्यता भी प्राप्त हो गयी थी। सरकारी रिपोर्ट में इसके सम्बन्ध में लिखा गया था, कि "डी० ए० वी० स्कूल को सरकार द्वारा कोई अनुदान नहीं दिया जाता, पर यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसके १९ विद्यार्थी इण्ट्रेन्स (दसवीं कक्षा की) परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं। प्रान्त (पंजाब) के किसी भी अन्य स्कूल से इतनी अधिक संख्या में विद्यार्थियों ने यह परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है।" डी० ए० वी० स्कूल की पढ़ाई के इसी उच्च स्तर का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह परिणाम था कि उसे सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गयी थी। मान्यता प्राप्त हो जाने पर इस स्कूल की और भी अधिक तेजी से उन्नति होने लगी। उसे अधिक मात्रा में धन प्राप्त होने लगा और उसके विद्यार्थियों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती गयी।

वीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में डी० ए० वी० स्कूल की प्रगति और लोकप्रियता का कुछ अनुमान उसके विद्यार्थियों की वढ़ती हुई संख्या से किया जा सकता है —

सन् १९०४ में विद्यार्थियों की संख्या ७१८
१९०५ में विद्यार्थियों की संख्या ८३५
१९०६ में विद्यार्थियों की संख्या ९३५
१९०७ में विद्यार्थियों की संख्या १०००
१९०८ में विद्यार्थियों की संख्या १०८१
१९०९ में विद्यार्थियों की संख्या १२४२
१९१० में विद्यार्थियों की संख्या १३१५
१९११ में विद्यार्थियों की संख्या १५०७
१९१२ में विद्यार्थियों की संख्या १६९४
१९१३ में विद्यार्थियों की संख्या १७३७
१९१४ में विद्यार्थियों की संख्या १६३८
१९१५ में विद्यार्थियों की संख्या १६४०

सन् १९१३ के वाद लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या में जो कुछ कमी होने लगी थी, उसका कारण सम्भवत: यह था कि सन् १९१३ में पंजाव में चार अन्य स्थानों पर ऐसे स्कूल स्थापित हो गये थे, जो डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी के साथ सम्वद्ध थे, और जिनका संचालन व नियन्त्रण इसी कमेटी के हाथों में था। ये स्कूल निम्नलिखित थे—(१) एंग्लो-संस्कृत स्कूल, मुलतान, (२) गोविन्दराम एंग्लो-संस्कृत स्कूल, हाफिजावाद, (३) डी० ए० वी० स्कूल, वहरामपुर, (४) एंग्लो-संस्कृत स्कूल, मुक्तसर। मुलतान आदि चार नगरों में आर्यसमाज के स्कूल स्थापित हो जाने के कारण स्थानीय व समीप के नगरों के विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाने लगे थे, जिसका प्रभाव लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या पर पड़ना स्वाभाविक था, क्योंकि इन मोफस्सिल स्थानों के विद्यार्थी भी लाहौर में शिक्षा के लिए आया करते थे और वहाँ के छात्रावास में रहा करते थे।

सन् १९१३ के पश्चात् पंजाव के मोफस्सिल के नगरों में डी० ए० वी० स्कूलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी, और १९२३ तक यह संख्या १३ तक पहुँच गयी। ये स्कूल निम्नलिखित स्थानों पर थे—मुलतान, दिल्ली, हाफिजावाद, कोटगढ़, लायलपुर, अमृतसर, वहरामपुर, कादियाँ, तरनतारन, हिसार, काँगड़ा, शुजावाद और चूहड़मण्डा। सन् १९३१ में पंजाव में कुल २७ डी० ए० वी० स्कूल विद्यमान थे। जिन अन्य १४ नगरों में इस समय तक डी० ए० वी० कमेटी के नियन्त्रण में स्कूलों की स्थापना हो गयी थी, वे निम्नलिखित थे—पट्टी, कंजरूर, वटाला, दसूया, शाहपुर, क्वेटा, एवटावाद, अम्बाला, पुन्दरी, खानेवाल, मुबारकपुर, अहमदपुर, सलिआन और बटाला। सन् १८८६ में पहले डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना हुई थी। आधी सदी से भी कम समय में उनकी संख्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़कर जो २७ तक पहुँच गयी, यह न केवल उनकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है, अपितु उनकी उपयोगिता भी इससे सूचित होती है।

मोफस्सिल में इतने अधिक डी० ए० वी० स्कूल खुल जाने पर भी लाहौर के स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही थी, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

१९२७	२०२३
१९२८	२२१३
१९२९	२३४२
१९३०	२५८७
१९३१	२८३२
१९३२	३१०१
१९३३	३३२८
१९३४	३५५७

इसमें सन्देह नहीं, कि पंजाब में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का निरन्तर विकास हो रहा था और उनकी माँग बड़ी तेजी के साथ बढ़ती जा रही थी। बहुत-से नगरों के आर्य-समाजी अपने नगर में डी० ए० वी० स्कूल स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे और यह चाहते थे कि उनका स्कूल लाहौर की डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के साथ सम्बद्ध हो जाए। १३ मार्च, १९१० को डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी, लाहौर द्वारा मोफस्सिल के स्कूलों को सम्बद्ध करने के सम्बन्ध में जो नियम बनाए गये, उनमें निम्नलिखित महत्त्व-पूर्ण थे—(१) डी० ए० वी० कमेटी से सम्बद्ध होने की इच्छा रखने वाले स्कूलों के लिए यह अनिवार्य होगा कि वे धर्मशिक्षा के उस कोर्स को अपने स्कूल में जारी करें, जिसका निर्धारण समय-समय पर डी० ए० वी० कमेटी द्वारा किया जाये। (२) सम्बद्ध स्कूलों के लिए यह आवश्यक होगा कि उनमें जो धर्मशिक्षा दी जा रही है, उसकी वार्षिक परीक्षा डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी द्वारा कराया करें। डी० ए० वी० कमेटी जिस ढंग से चाहेगी, इस परीक्षा की व्यवस्था कर सकेगी। डी० ए० वी० स्कूलों में धर्मशिक्षा को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता था कि १५ फरवरी, सन् १९१३ के दिन लाहौर में एक कान्फरेन्स का आयोजन किया गया, जिसमें सब सम्बद्ध आर्यसमाजी स्कूलों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और इस कान्फरेन्स में धर्मशिक्षा की पाठविधि स्वीकृत कर पण्डित राजाराम को उस पाठविधि के अनुसार पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने का कार्य सुपुर्द किया गया। लाहौर के डी०ए०वी० स्कूल के समान मोफस्सिल के आर्यसमाजी स्कूलों (जो डी०ए०वी० मैनेजिंग कमेटी के साथ सम्बद्ध थे) में न केवल धर्मशिक्षा ही अनिवार्य थी, अपितु संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा को भी उनमें प्रमुख स्थान प्राप्त था। मोफस्सिल में पहला आर्य स्कूल मुलतान में स्थापित हुआ था। २ नवम्बर, १९०२ को डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी की बैठक में मुलतान के इस स्कूल (एंग्लो-संस्कृत स्कूल) के लिए यह नियम बनाया गया था कि आर्य-भाषा (हिन्दी) का पढ़ना इस स्कूल के सब विद्यार्थियों के लिए आवश्यक होगा और उसमें शास्त्री स्तर तक संस्कृत की शिक्षा की भी व्यवस्था की जाएगी। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं में हिन्दी, संस्कृत और धर्मशिक्षा को जो इतना अधिक महत्त्व दिया जाता था, उसी के कारण डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी की १९११-१२ की वार्षिक रिपोर्ट में बड़े

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्व व सन्तोष के साथ लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल के सम्बन्ध में यह दावा किया जा सका था, कि "इस स्कूल के १५०० विद्यार्थियों में एक भी ऐसा नहीं है, जो हिन्दी पढ़ और लिख न सकता हो और जो सन्ध्या तथा वेदमन्त्रों का पाठ न कर सकता हो।" पंजाब जैसे प्रान्त में, जहाँ उर्दू और पर्शियन का प्रभुत्व था और अब तक भी है, सन् १९११-१९१२ में इस प्रकार का दावा करना डी० ए० वी० स्कूल के लिए वस्तुतः गौरव की बात थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में डी० ए० वी० स्कूल का यह कर्तृत्व निःसन्देह अत्यन्त महत्त्व का था।

डी० ए० वी० स्कूल लाहौर से प्रेरणा प्राप्त कर कतिपय अन्य आर्यसमाज तथा आर्य सज्जन भी ऐसे शिक्षणालय स्थापित करने में तत्पर थे, जिनमें आर्य वातावरण हो। सन् १८८८ में लाला ज्वाला सहाय ने नूनमियानी (जिला शाहपुर) में एक स्कूल की स्थापना की थी, और अगले साल १८८९ में जालन्धर छावनी के आर्यसमाज ने, जिसमें कि एक साल के अन्दर-अन्दर ही विद्यार्थियों की संख्या ३०० तक पहुँच गयी थी। स्त्रीशिक्षा की ओर भी आर्यसमाजियों का ध्यान था। सन् १८८९ में फीरोजपुर आर्यसमाज ने कन्याओं के लिए एक स्कूल खोल दिया था। गुजरात और जालन्धर शहर के आर्य-समाजों ने फीरोजपुर का अनुकरण किया और अपने नगरों में कन्याओं के लिए स्कूलों की स्थापना की। बागबानपुर जैसे साधारण नगर में भी आर्यसमाज द्वारा बालकों और बालिकाओं के लिए दो पृथक् स्कूल स्थापित किये गये, और उनके लिए धन जुटाने के प्रयोजन से वहाँ के आर्यसमाजियों ने पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की यात्राएँ कीं। सन् १८९६ में जालन्धर और शिमला में स्कूल स्थापित हुए, सन् १८९७ में अम्बाला सिटी व जलालपुर जट्टाँ में, १८९८ में फीरोजपुर और करोड़ में, १८९९ में रावलपिण्डी, काँगड़ा और हिसार में, और सन् १९०२ में कलसिया स्टेट के मुबारिकपुर कस्बे में। महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के पश्चात् आर्यसमाज के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि धर्मप्रचार के कार्य में शिक्षण-संस्थाएँ बहुत उपयोगी हो सकती हैं। पर उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में जो अनेक शिक्षणालय आर्यसमाजों द्वारा स्थापित किये गये, वे किसी केन्द्रीय संगठन के अधीन नहीं थे। डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के रूप में जो सुव्यवस्थित संस्था लाहौर में विद्यमान थी, वह उत्तरी भारत के बहुत-से आर्यसमाजों का प्रतिनिधित्व करती थी और वह वस्तुतः इस स्थिति में थी कि एक सुनिश्चित आदर्श व नीति को सम्मुख रखकर शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना करे और उन द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन को पूरा करने का प्रयत्न करे। इसीलिए बीसवीं सदी के प्रथम चरण में जब पंजाब के मोफस्सिल क्षेत्र में डी० ए० वी० स्कूल स्थापित होने शुरू हुए तो उनकी न केवल संख्या ही बढ़ती गयी, अपितु उन्होंने अपने क्षेत्र में प्रमुख शिक्षणालयों की स्थिति भी प्राप्त कर ली। कतिपय ऐसे स्कूल भी, जो पहले स्वतन्त्र रूप से स्थापित हुए थे, बाद में डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के साथ सम्बद्ध कर दिये गये। दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षणालयों की स्थापना का आन्दोलन केवल पंजाब तक ही सीमित नहीं रहा। शीघ्र ही, उत्तरप्रदेश के अनेक नगरों में भी डी० ए० वी० स्कूल खुलने प्रारम्भ हो गये और सर्वत्र इन संस्थाओं का एक जाल-सा बिछना शुरू हो गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डी० ए० वी० स्कूल लाहौर के समान वहाँ का डी० ए० वी० कॉलिज भी उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता गया। १ जून, सन् १८८८ के दिन डी० ए० वी० स्कूल के साथ इण्टरमीडियेट कक्षा का भी प्रारम्भ कर दिया गया था और महात्मा हंसराज की ही कॉलिज के प्रिंसिपल के पद पर भी नियुक्ति कर दी गयी थी। १८ मई, १८८९ को यह नया कॉलिज पंजाब यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध हो गया था, जिसके कारण इसकी उन्नति में कोई बाधा नहीं रह गयी थी। सन् १८९० में कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी और सन् १९०० में यह संख्या ३५५ तक पहुँच गयी। डी०ए० वी० स्कूल के समान डी०ए०वी० कॉलिज भी हिन्दू जनता में अत्यधिक लोकप्रिय था, जिसके कारण वहाँ विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। सन् १९०९ में इस कॉलिज में ५४३ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे, सन् १९१० में ५८३ और सन् १९११ में ६७९। इसके बाद डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थियों की संख्या में किस प्रकार वृद्धि हुई, यह निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट हो जायेगा। सन् १९१२ में वहाँ ७९८ विद्यार्थी थे, सन् १९१३ में ९०३, सन् १९१४ में ९६१, सन् १९१५ में १०२९, सन् १९२९ में ११२२, सन् १९३० में ११२९, सन् १९३१ में ११५५, सन् १९३२ में १२०९, सन् १९३३ में ११८० और सन् १९३४ में ११७२। इसमें सन्देह नहीं कि बीसवीं सदी के द्वितीय चरण के प्रारम्भ में ही डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर ने पंजाब के सर्वाधिक लोकप्रिय कॉलिज की स्थिति प्राप्त कर ली थी।

डी० ए० वी० स्कूल और डी० ए० वी० कॉलिज के साथ पृथक् छात्रावासों की व्यवस्था भी शुरू से ही की गयी थी। इसके दो कारण थे—लाहौर से बाहर के भी बहुत-से विद्यार्थी आर्यसमाज की इन शिक्षण-संस्थाओं से लाभ उठाना चाहते थे। उस समय लाहौर के ये स्कूल और कॉलिज ही ऐसे शिक्षणालय थे, जिनमें वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति के वातावरण में आधुनिक शिक्षा प्राप्त की जा सकती थी। इसलिए न केवल पंजाब के विविध नगरों से ही, अपितु बरमा, पोर्ट ब्लेअर और गुजरात सदृश सुदूरवर्ती प्रदेशों के विद्यार्थी भी इनमें पढ़ाई के लिए आया करते थे। इन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए छात्रावासों की व्यवस्था आवश्यक थी। साथ ही, छात्रावासों में धर्म और सदाचार का ऐसा वातावरण बनाया जा सकता था और उनमें रहने वाले विद्यार्थियों के जीवन को इस ढंग से अनुशासित किया जा सकता था, जिससे कि वे सच्चे आर्य बन सकें। डी०ए० वी० स्कूल और कॉलिज में जिस प्रकार विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक रहती थी, उनके छात्रावासों में भी वही दशा थी। सन् १९११ में डी० ए० वी० स्कूल के छात्रावास में निवास करने वाले विद्यार्थियों की संख्या २२० थी, जो १९१२ में बढ़कर २७० हो गयी थी। बाद के वर्षों में भी यह संख्या इसी के लगभग रही। कॉलिज के छात्रावास में विद्यार्थियों की संख्या इससे बहुत अधिक रहती थी। १९१२ में यह संख्या ५७६ थी, जो बढ़कर १९१४ में ६८७ और १९१५ में ७१२ हो गयी थी। इतने अधिक विद्यार्थियों को सदाचारमय, धार्मिक तथा अनुशासित वातावरण में रखकर डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के संचालक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों को किस ढंग से वैदिक धर्म के प्रभाव में लाने का प्रयत्न किया जाता था, इस पर इसी अध्याय में आगे प्रकाश डाला जाएगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) शिक्षा को समाज के लिए उपयोगी बनाने के प्रयत्न

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा अपनी शिक्षण-संस्थाओं में जिस पाठविधि को अपनाया गया था, वह सरकार द्वारा स्वीकृत थी। सरकारी तथा क्रिश्चियन शिक्षणालयों में भी यही पाठविधि प्रयुक्त की जाती थी। पर डी० ए० वी० शिक्षणालय अधिक लोकप्रिय थे, क्योंकि उनका वातावरण प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुरूप था और उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को अपने धर्म एवं परम्पराओं से परिचित होने का अवसर भी प्राप्त हो जाता था। माता-पिता को यह भय नहीं रहता था कि स्कूल जाकर उनकी सन्तान विदेशी सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव में आ जाएगी। डी० ए० वी० शिक्षणालयों के विद्यार्थियों को वे सब लाभ प्राप्त थे, जो सरकारी व क्रिश्चियन शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ने से प्राप्त किये जा सकते थे। सरकार तथा सरकारी संस्थानों में नौकरी प्राप्त कर सकने और वकालत सदृश पेशों को अपना कर जीवन में सम्मानित स्थान प्राप्त करने के सब अवसर डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के विद्यार्थियों को भी उपलब्ध थे। अन्य स्कूलों और कॉलिजों की तुलना में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की लोकप्रियता में जिस प्रकार निरन्तर तेजी से वृद्धि हो रही थी, उससे उनके संचालक सन्तोष तथा गौरव अनुभव कर सकते थे। पर दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के सदस्य यह जानते थे कि आर्यसमाज के प्रयत्न से जिन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जा रही है उनका प्रयोजन प्रचलित सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना ही नहीं है। उन्हें कतिपय उद्देश्यों को सम्मुख रखकर स्थापित किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य और वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहित तथा प्रचलित करना और यथा-सम्भव शिल्प की शिक्षा के साधनों को जुटाना भी इन उद्देश्यों के अन्तर्गत थे। हिन्दी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित करना भी डी० ए० वी० सोसायटी के उद्देश्यों में रखा गया था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भारत के पुनर्जागरण तथा वैदिक धर्म व आर्य संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए शिक्षाविषयक जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, वे भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के संचालकों के सम्मुख विद्यमान थे, और वे समय तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रयत्नशील थे। वेद, वेदांग तथा उपवेदों की शिक्षा को महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि में प्रमुख स्थान प्राप्त था। आयुर्वेद प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। क्रियात्मक दृष्टि से भी उसकी शिक्षा का उपयोग है क्योंकि उसे पढ़कर विद्यार्थी चिकित्सक के रूप में जनता की सेवा के साथ-साथ आजीविका की समस्या को भी हल कर सकते हैं। इसी कारण डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी द्वारा सन् १८९८ में लाहौर में दयानन्द आयुर्वेदिक कॉलिज की स्थापना की गई थी। इसमें सन्देह नहीं, कि उत्तरी भारत में यह आयुर्वेद का सर्वप्रथम कॉलिज था, और इस द्वारा डी० ए० वी० सोसायटी ने नियमित तथा वैज्ञानिक शैली से आयुर्वेद की शिक्षा की व्यवस्था की थी। कुछ समय पश्चात् गवर्नमेण्ट कॉलिज लाहौर में भी आयुर्वेद की पढ़ाई का सूत्रपात किया गया, क्योंकि उस समय पंजाब के शिक्षा विभाग का संचालन डा० लाइटनर के हाथों में था, और वह प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन व अनुशीलन के प्रबल पक्षपाती थे। डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी ने न केवल आयुर्वेदिक कॉलिज की ही स्थापना की, अपितु गवर्नमेण्ट कॉलिज के आयुर्वेदिक विभाग को भी आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया। पर यह सरकारी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वैदिक विभाग देर तक कायम नहीं रहा। डा० लाइटनर के उत्तराधिकारियों में प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के लिए कोई उत्साह नहीं था। परिणाम यह हुआ, कि गवर्नमेण्ट कॉलिज की आयुर्वैदिक कक्षाओं को सन् १९०४ में दयानन्द आयुर्वैदिक कॉलिज के साथ मिला दिया गया, और डी० ए० वी० सोसायटी द्वारा स्थापित यह कॉलिज ही पंजाब में आयुर्वेद की शिक्षा की एक मात्र संस्था रह गयी। उस समय में आयुर्वेद की शिक्षा की अधिक माँग नहीं थी। अतः दयानन्द आयुर्वैदिक कॉलिज भी अधिक विद्यार्थियों को आकृष्ट नहीं कर सका। उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या तब प्रायः चालीस के लगभग रहा करती थी। सन् १९११ में इस कॉलिज में ४५ विद्यार्थी आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उस समय इस कॉलिज में जो प्राध्यापक आयुर्वेद के अध्यापन के लिए नियुक्त थे, उनमें श्री हरिमोहन मजूमदार का नाम उल्लेखनीय है। वह प्राचीन भारतीय पद्धति के चिकित्साशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे, और सुयोग्य चिकित्सक के रूप में भी उनकी अच्छी ख्याति थी। दयानन्द आयुर्वैदिक कॉलिज में विद्यार्थियों को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से भी परिचय कराया जाता था, ताकि शरीर रचना आदि के सम्बन्ध में जो ज्ञान नयी वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया गया है, उसे भी विद्यार्थी जान जाएँ। आधुनिक एलोपैथी के आवश्यक विषयों को पढ़ाने के लिए डा० शिवदत्त की नियुक्ति की गई थी। सन् १८९८ में डी० ए० वी० कमेटी द्वारा आयुर्वैदिक कॉलिज का जो बीजारोपण किया गया था, वह निरन्तर फलता-फूलता रहा, और अब एक सुव्यवस्थित लोकप्रिय कॉलिज के रूप में जालन्धर में विद्यमान है, जिसमें ४०० के लगभग विद्यार्थी आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पंजाब में इंजीनियरिंग तथा शिल्प की शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। आर्यसमाज का प्रयत्न था, कि आर्थिक और औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में भी भारत अग्रसर हो, और इस देश से युवक भी आधुनिक, नये प्राविधिक एवं औद्योगिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर नये उद्योगों की स्थापना द्वारा देश की आर्थिक उन्नति में सहयोग दें। इसीलिए सन् १८९५ में डी० ए० वी० कमेटी ने इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए एक पृथक् कक्षा व विभाग खोल दिया, जिसे अच्छी सफलता प्राप्त हुई। उस समय लाहौर में मेयो कॉलिज ऑफ् आर्ट्स नाम से एक अन्य शिक्षण-संस्था भी विद्यमान थी, जिसमें इंजीनियरिंग की भी शिक्षा दी जाती थी। सन् १९०३ में इस कॉलिज के संचालकों ने निश्चय किया कि अपने इंजीनियरिंग विभाग को दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के साथ सम्मिलित कर दिया जाए। इस प्रकार डी० ए० वी० कॉलिज का इंजीनियरिंग विभाग ही लाहौर में एकमात्र ऐसा स्थान रह गया, जहाँ औद्योगिक व प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था थी। सरकार द्वारा इस विभाग के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी। सन् १९१४ तक डी० ए० वी० कॉलिज के इंजीनियरिंग विभाग ने ५०० से भी अधिक इंजीनियर तैयार किये, और पंजाब के युवकों को इस नये विज्ञान में प्रशिक्षित करने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९१४ में सरकार ने निश्चय किया, कि मेयो कॉलिज ऑफ् आर्ट्स की इंजीनियरिंग कक्षाएँ, जो सन् १९०३ में डी० ए० वी० कॉलिज के साथ सम्मिलित कर दी गई थीं, लाहौर से रसूल ले जायी जाएँ और वहाँ सरकार द्वारा पृथक् इंजीनियरिंग स्कूल का संचालन किया जाए। इस निर्णय के परिणामस्वरूप डी० ए० वी० कॉलिज को प्राविधिक शिक्षा के लिए दी जाने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली आर्थिक सहायता वन्द कर दी गई, और विवश होकर डी० ए० वी० कमेटी को अपने इंजीनियरिंग विभाग को समाप्त कर देने का निश्चय करना पड़ा। इंजीनियरिंग की शिक्षा पर अत्यधिक खर्च बैठता है, अतः सरकारी सहायता के अभाव में केवल अपने साधनों द्वारा उसकी व्यवस्था करना कठिन था। इसी कारण उसे वन्द कर देने की आवश्यकता हुई थी। पर डी० ए० वी० कमेटी के सदस्य भली-भाँति समझते थे, कि सामान्य शिक्षा (General Education) द्वारा सवके लिए आजीविका की समस्या को हल कर सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि सरकारी नौकरियाँ सव कोई नहीं पा सकते। यदि सामान्य शिक्षा के साथ-साथ या पृथक् रूप से दस्तकारी व शिल्प की भी शिक्षा देने की व्यवस्था कर दी जाए, तो वहुत से युवक उसे प्राप्त कर दरजी आदि का अपना स्वतन्त्र रोजगार शुरू कर सकते हैं। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर डी० ए० वी० कमेटी ने सिलाई (टेलरिंग) की कक्षाएँ भी शुरू की थीं, और यह भी विचार किया था, कि भविष्य में अन्य शिल्पों की भी कक्षाएँ प्रारम्भ की जाएँ। शिल्प की शिक्षा को जो महत्त्व डी० ए० वी० कमेटी द्वारा शुरू से ही दिया जा रहा था, उसी के कारण भारत के विभाजन के समय सन् १९४७ में सात ऐसी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ पंजाब में विद्यमान थीं, जिनमें कि विविध शिल्पों तथा दस्तकारी में प्रशिक्षण दिया जाता था।

यह स्वीकार करना होगा, कि आयुर्वेद, इंजीनियरिंग तथा दस्तकारी की शिक्षा की व्यवस्था कर डी० ए० वी० कमेटी के सदस्यों ने अपने शिक्षाविषयक कार्यकलाप को जनता के लिए वहुत उपयोगी वना दिया था। जो सामान्य शिक्षा डी० ए० वी० शिक्षणालयों द्वारा दी जा रही थी, वह यद्यपि सरकारी व सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अन्य शिक्षण-संस्थाओं के सदृश ही थी, पर उसमें भी कतिपय ऐसी विशेषताएँ विद्यमान थीं, जो अन्य शिक्षणालयों में नहीं थीं। इन विशेषताओं पर कुछ विशद रूप से प्रकाश डालना उपयोगी होगा, क्योंकि इन द्वारा आर्यसमाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।

(१) डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का एक उद्देश्य हिन्दी तथा संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित करना था। उस समय पंजाव में उर्दू और फारसी के अध्ययन और अध्यापन की प्रथा थी, और हिन्दी एवं संस्कृत की पढ़ाई को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। पर स्थापना के समय से ही डी० ए० वी० स्कूल, लाहौर की पाठविधि में हिन्दी और संस्कृत को जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया और डी० ए० वी० कमेटी की सन् १८८६ की बैठकों में इनके अध्ययन की जिस प्रकार पाठविधि में व्यवस्था की गई, उसका विवरण इस ग्रन्थ के चौथे अध्याय में दिया जा चुका है। वाद में इन भाषाओं और इनके साहित्य के अध्ययन का महत्त्व डी० ए० वी० स्कूल में निरन्तर वढ़ता गया, और डी० ए० वी० कमेटी की ५ जुलाई, १९०८ की बैठक में रायवहादुर लाला लालचन्द ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया, कि डी० ए० वी० स्कूल के जो विद्यार्थी आर्ट्स (Arts) विषयों में पंजाब यूनिवर्सिटी की अधिकारी (Entrance) परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं, उनके लिए संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य हो। इस प्रस्ताव पर श्री एम० एस० भगत ने यह संशोधन प्रस्तुत किया, कि लाला लालचन्द के प्रस्ताव में यह जोड़ दिया जाए, कि डी० ए० वी० स्कूल की उपरली (High) कक्षाओं में फारसी भाषा की पढ़ाई को पूर्णरूप से वन्द कर दिया जाए। इस संशोधन के साथ मूल प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, जिसके परिणामस्वरूप यह निश्चय किया गया, कि सन्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६०६ के सत्र के प्रारम्भ से नवीं कक्षा में फारसी की पढ़ाई वन्द कर दी जाए, और सन् १६१० के सत्र से दसवीं कक्षा में। इस प्रकार डी० ए० वी० स्कूल में संस्कृत की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य हो गई थी। इसी का यह परिणाम था, कि डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी की सन् १६११-१२ की रिपोर्ट में यह लिखा जा सका था, कि "इस स्कूल के १५०० विद्यार्थियों में एक भी ऐसा नहीं है जो हिन्दी भाषा लिख और पढ़ न सके और सन्ध्या-हवन के मन्त्रों का जो पाठ न कर सके। स्कूल की पाठविधि से फारसी भाषा को पूर्णतया हटा दिया गया है, और संस्कृत की पढ़ाई सबके लिए अनिवार्य कर दी गई है। जो विद्यार्थी इस समय हिन्दुओं की पवित्र भाषा का स्कूल में अध्ययन कर रहे हैं, उनकी संख्या १४०० से भी अधिक है।" उर्दू के स्थान पर हिन्दी की पढ़ाई को तो डी० ए० वी० स्कूल में पहले ही प्रारम्भ किया जा चुका था, सन् १६०८ में किये गये निर्णय के अनुसार अब संस्कृत की शिक्षा भी डी० ए० वी० स्कूल में अनिवार्य हो गई थी, और सैकड़ों विद्यार्थी उस भाषा का अध्ययन करने लग गये थे, महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार जिसके प्राचीन साहित्य में सब ज्ञान-विज्ञान के मूल तत्त्व विद्यमान हैं। सन् १६१०-११ में संस्कृत तथा धर्मशिक्षा के अध्यापन के लिए डी० ए० वी० स्कूल में दस अध्यापक नियुक्त थे, जिनमें छह शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण थे। संस्कृत की शिक्षा के लिए इतनी व्यापक व्यवस्था उस समय के किसी भी अन्य शिक्षणालय में नहीं थी, यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है।

(२) दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं में विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा देने और वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करने पर भी डी० ए० वी० कमेटी शुरू से ही ध्यान दे रही थी। इसीलिए फरवरी, १८६४ में लाला लालचन्द के प्रस्ताव पर धर्मशिक्षा के लिए एक पृथक् उपसमिति का निर्माण किया गया था, जिसके सदस्य श्री हंसराज, लाला मुंशीराम, लाला मुरलीधर और पण्डित राजाराम थे। कुछ समय पश्चात् अगस्त, १८६४ में डी० ए० वी० कमेटी के मन्त्री द्वारा प्रस्तुत एक प्रस्ताव पर यह निश्चय किया गया कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के कतिपय अंशों का इस प्रयोजन से संकलन किया जाए, ताकि उन्हें डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज में धर्मशिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जा सके। यह कार्य तुरन्त कर लिया जाए, और उसके वाद यथा-सम्भव शीघ्र ही चुने हुए वेदमन्त्रों का ऐसा संग्रह तैयार किया जाए जिनके साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के अनुसार मन्त्रार्थ भी दिये गये हों। वेदमन्त्रों का यह संग्रह भी डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज में प्रयुक्त किया जाए। धर्मशिक्षा की व्यवस्था केवल लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज के लिए ही नहीं थी, अपितु जो अनेक दयानन्द एंग्लो-वैदिक व आर्य शिक्षण-संस्थाएँ अन्य नगरों में स्थापित की जा रही थीं, उनमें भी धर्मशिक्षा की अनिवार्य रूप से पढ़ाई का प्रयत्न किया गया था। १३ मार्च, १६१० की डी० ए० वी० कमेटी की बैठक में इसीलिए यह निर्णय किया गया था, कि मोफस्सिल की जो शिक्षण-संस्थाएँ डी० ए० वी० सोसायटी के साथ सम्बद्ध होना चाहें, उनके लिए यह अनिवार्य होगा, कि वे डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी द्वारा समय-समय पर निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार धर्मशिक्षा की पढ़ाई की व्यवस्था करें, और साथ ही इस बात के लिए भी सहमत हों कि धर्मशिक्षा विषय की परीक्षा डी० ए० वी० कमेटी के तत्त्वावधान में ली जाया करे। निःसन्देह, धर्मशिक्षा डी० ए० वी० शिक्षण-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, और उस द्वारा इन संस्थाओं के विद्यार्थी अपने धर्म तथा संस्कृति से परिचय प्राप्त करने में समर्थ हो जाते थे। धर्मशिक्षा के लिए छात्रोपयोगी पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने पर भी डी० ए० वी० कमेटी ने ध्यान दिया था। इसी प्रयोजन से पहले ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के कतिपय अंशों तथा वेदमन्त्रों का संकलन किया गया था, और इसीलिए सन् १९१३ में पहले वह पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया, जिसके अनुसार धर्मशिक्षा दी जानी थी और फिर उसे दृष्टि में रखकर पाठ्य-पुस्तकें लिखवायी गईं। डी० ए० वी० सोसायटी के साथ जो भी शिक्षण-संस्थाएँ सम्बद्ध थीं, उन सबके प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन इस प्रयोजन से आयोजित किया गया था कि धर्मशिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार किया जाए। सर्वसम्मत पाठ्यक्रम के बन जाने पर उसके अनुसार पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने का कार्य पण्डित राजाराम के सुपुर्द कर दिया गया था।

(३) महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, आश्रम प्रणाली का उसमें विशिष्ट स्थान है। विद्यार्थियों को आचार्य या गुरु के पास रह कर विद्याभ्यास करना चाहिये, और आचार्य का कार्य अपने शिष्यों को केवल विद्या पढ़ाना ही नहीं है, अपितु उन्हें सदाचारी बनाना भी है—महर्षि ने इस विचार का सशक्त रूप से निरूपण किया है। डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के संचालकों ने महर्षि के इस मन्तव्य को क्रियान्वित करने की ओर भी ध्यान दिया, और ऐसे छात्रावासों की स्थापना प्रारम्भ की, जिनमें विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में रहना अनिवार्य तो नहीं था, पर जो वहाँ रहते थे, उन्हें सन्ध्या-हवन करना होता था और सदाचारमय जीवन की उन्हें शिक्षा दी जाती थी। डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर के छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् १९१४ में ६८७ थी, जो एक साल बाद बढ़कर ७१२ हो गयी थी। इन वर्षों में कॉलिज के कुल छात्र क्रमशः ९६१ और १०२९ थे। स्पष्ट है, कि दो तिहाई से भी अधिक विद्यार्थी छात्रावासों में रह रहे थे। स्कूल विभाग का भी पृथक् छात्रावास था, जिसमें निवास करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् १९१४ में २५२ थी। डी० ए० वी० कॉलिज और डी० ए० वी० स्कूल के साथ छात्रावासों की स्थापना सन् १९१४ से बहुत पहले हो चुकी थी, पर शुरू में भवनों की कमी के कारण उनमें अधिक विद्यार्थी स्थान प्राप्त नहीं कर सकते थे। पर उन्नीसवीं सदी का अन्त होते-होते यह दशा आ गयी थी, कि सैकड़ों विद्यार्थी डी० ए० वी० छात्रावासों में निवास करने लग गये थे। यह यत्न किया जाता था, कि इन छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थी अनुशासित जीवन व्यतीत करें, प्रतिदिन सन्ध्या-हवन किया करें, और आर्यसमाज लाहौर के साप्ताहिक अधिवेशनों में उपस्थित हुआ करें। छात्रावासों की व्यवस्था के लिए जो पृथक् कमेटी थी, उस द्वारा उन नियमों का भी निर्माण किया गया था, जिनका पालन सबके लिए आवश्यक था। शुरू में बनाये गये नियमों के अनुसार छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों से आशा की जाती थी (were expected) कि वे ध्यान व प्रार्थना (meditation or prayer) किया करें। ११ मार्च, १९०६ को यह नियम इस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया, कि छात्रावास के विद्यार्थियों के लिए सन्ध्या करना अनिवार्य हो गया। 'प्रार्थना' से 'सन्ध्या' अभिप्रेत है, यह स्पष्ट कर दिया गया, और इसका अनुष्ठान सबके लिए आवश्यक हो गया। लाहौर आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में उपस्थित होना छात्रावासों में निवास करने वाले

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों के लिए पहले अनिवार्य नहीं था, पर ६ एप्रिल, १९०६ को छात्रावासों के नियमों में जो संशोधन किये गये, उनके अनुसार उसे अनिवार्य कर दिया गया। साथ ही, सन्ध्या सबको प्रातः और सायं दोनों समय करना आवश्यक होगा, यह भी स्पष्ट रूप से विहित कर दिया गया। डी० ए० वी० छात्रावासों का वातावरण वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति का होता था। इसी कारण इस्लाम आदि अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए उनमें रह सकना क्रियात्मक नहीं था। सन् १९०६ में अहमद हसन नामक एक मुसलिम विद्यार्थी ने डी० ए० वी० कॉलिज के छात्रावास में स्थान प्राप्त करने के लिए आवेदनपत्र दिया था। छात्रावास कमेटी ने इस पर विचार कर यह निर्णय किया था कि छात्रावास में मुसलिम विद्यार्थियों को इस कारण प्रविष्ट कर सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि उनके निवास आदि की समुचित व्यवस्था अभी उनमें नहीं है। हिन्दुओं में डी० ए० वी० छात्रावास इतने लोकप्रिय थे, कि बरमा, गुजरात, अण्डमान आदि सुदूरवर्ती प्रदेशों के विद्यार्थी भी उनमें निवास किया करते थे। सन् १८९६ में महात्मा हंसराज ने डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के साथ एक युवक समाज (young men's samaj) भी स्थापित कर दिया था। यह विद्यार्थियों का अपना संगठन था। इसके अधिवेशन भी नियमित रूप से प्रायः उसी ढंग से हुआ करते थे, जैसे कि विविध नगरों के आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशन होते थे। प्रार्थना, उपासना, सन्ध्या और हवन के अनन्तर इनमें धार्मिक विषयों पर प्रवचन हुआ करते थे, और पृथक् रूप से संगठित अपने 'समाज' द्वारा डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के, विशेषतया छात्रावासों में रहने वाले, विद्यार्थी समाज सेवा के विविध कार्यों में भी हाथ बँटाया करते थे। आर्यसमाज द्वारा दलितोद्धार, दुर्भिक्ष निवारण, अनाथों का पालन, बाढ़ग्रस्त लोगों की सेवा आदि के जो अनेकविध कार्य उस समय किये जाते थे, युवक समाज के सदस्य उनमें उत्साहपूर्वक भाग लेते थे और इस प्रकार समाज सेवा तथा सार्वजनिक जीवन की क्रियात्मक शिक्षा भी प्राप्त किया करते थे। विद्यार्थियों के इसी संगठन के कारण डी० ए० वी० कॉलिज ने पंजाब के राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था।

(४) दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं को महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों के अनुरूप बनाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण पग यह उठाया गया, कि उनमें ब्रह्मचर्य के पालन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। सन् १९१५ में एक प्रस्ताव इस आशय का स्वीकृत किया गया कि स्कूल विभाग में कोई ऐसा विद्यार्थी प्रवेश न पा सके, जो विवाहित हो। जो अनेक विवाहित विद्यार्थी उस समय डी० ए० वी० स्कूल में भरती थे, उन्हें निकाल दिया गया। सन् १९२६ में इण्टरमीडियेट कक्षाओं में भी विवाहित विद्यार्थियों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। आर्यसमाज के मन्तव्यों को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में यह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय था, क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती ब्रह्मचर्य को बहुत महत्त्व देते थे। विवाहित व्यक्तियों का शिक्षण-संस्थाओं में अध्ययन करना उन्हें कदापि स्वीकार्य नहीं था। दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षणालयों और उनके छात्रावासों के द्वार सबके लिए समान रूप से खुले रखे गये थे। उनमें प्रवेश के लिए द्विज और शूद्र या छूत और अछूत का कोई भेद नहीं किया जाता था। सन् १९२६ में चमार कुल में उत्पन्न एक विद्यार्थी को जब डी० ए० वी० छात्रावास में दाखिल किया गया तो वहाँ के रसोइये ने, जो जन्म से ब्राह्मण था, उसे भोजन देने से इन्कार कर दिया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय छात्रावास में सात सौ के लगभग विद्यार्थी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी, कि जब तक चमार विद्यार्थी के साथ समता का बरताव नहीं किया जाएगा, हम भी भोजन नहीं करेंगे। इस पर रसोइये को झुकना पड़ा, और सब विद्यार्थियों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। डी० ए० वी० छात्रावासों का वातावरण किस प्रकार आर्य-समाज से प्रभावित था, यह इसका स्पष्ट प्रमाण है।

(५) डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर द्वारा एक पृथक् वैदिक विभाग की भी स्थापना की गयी थी, जिसमें प्रधानतया संस्कृत तथा वेदशास्त्रों की पढ़ाई होती थी। इसी प्रकार उसका एक पृथक् व स्वतन्त्र अनुसन्धान विभाग भी था, जिसका कार्य प्राचीन भारतीय इतिहास तथा वैदिक वाङ्मय में शोध करना था। इन विभागों के कार्यकलाप पर अन्यत्र विशद रूप से प्रकाश डाला गया है।

(३) महात्मा हंसराज

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलिज की असाधारण सफलता तथा उत्कर्ष में महात्मा हंसराज का सर्वाधिक कर्तृत्व है। सन् १८८५ में उन्होंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उन दिनों बी० ए० हो जाना बहुत बड़ी बात थी। बी० ए० पास कर लेने पर सरकारी सर्विस का मार्ग प्रशस्त हो जाता था। हंसराजजी के लिए यह अत्यन्त सुगम था कि वह सरकारी नौकरी प्राप्त कर सांसारिक दृष्टि से उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जाएँ। पर वह 'प्रेय' मार्ग का अनुसरण न कर 'श्रेय' मार्ग पर चलना चाहते थे। उन्हें धर्म से सच्चा प्रेम था, और वह अपना जीवन देश तथा समाज की सेवा में अर्पित कर देने के लिए इच्छुक थे। महर्षि के स्मारक रूप में जिस शिक्षण-संस्था की स्थापना के लिए उस समय आर्यसमाज में आन्दोलन चल रहा था, उसके सम्मुख सबसे विकट समस्या धन की थी। धन के अभाव में अच्छे अध्यापक व अन्य कार्यकर्ता प्राप्त कर सकना कठिन था। हंसराज ने इस समस्या की गम्भीरता को अनुभव कर अपने बड़े भाई लाला मुल्कराज से कहा—"यह बहुत ही दुःख की बात है कि दयानन्द कॉलिज जैसा कल्याणकारी काम धनाभाव के कारण शिथिल पड़ रहा है। मैं अपना जीवन इस कार्य के लिए अर्पण करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि एक भी पैसा लिये बिना अपना जीवन कॉलिज को दान कर दूँ, परन्तु यह कार्य आपकी सहायता के बिना नहीं हो सकता।" लाला मुल्कराज ने अपने भाई के इस विचार का स्वागत किया। वह भी वास्तविक रूप से धार्मिक व समाज-सेवी महानुभाव थे। उन दिनों उन्हें अस्सी रुपये मासिक वेतन मिलता था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपने वेतन का आधा, चालीस रुपये वह प्रतिमास अपने भाई हंसराज को दे दिया करेंगे, ताकि वह आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त होकर कॉलिज का काम कर सके। बड़े भाई से अनुमति प्राप्त हो जाने पर हंसराजजी ने लाहौर आर्यसमाज के प्रधान को पत्र द्वारा यह सूचित कर दिया, कि "दयानन्द स्कूल खुल जाने पर मैं अवैतनिक रूप से उसका मुख्याध्यापक बनने के लिए तैयार हूँ।" ३ नवम्बर, १८८५ को यह पत्र आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया, और वहाँ हंसराजजी के जीवन-दान को सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। एक सुयोग्य मुख्याध्यापक के प्राप्त हो जाने पर दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की स्थापना का कार्य सुगम हो गया, और १ जून, १८८६ के दिन आर्यसमाज लाहौर के भवन में स्कूल का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। एक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय की मुख्याध्यापक के पद पर नियुक्ति उस समय असाधारण बात थी। तब प्रायः सर्वत्र इस पद पर अंग्रेज ही नियुक्त हुआ करते थे।

श्री हंसराज का जन्म सन् १८६४ में हुआ था। डी० ए० वी० स्कूल के मुख्य-अध्यापक पद पर नियुक्ति के समय उनकी आयु केवल २२ वर्ष की थी। इस आयु में कौन कल्पना कर सकता था कि यह युवक मुख्याध्यापक अपने स्कूल को पंजाब की शिरोमणि संस्था बना देगा। पर श्री हंसराज में धर्म और समाज के प्रति अगाध निष्ठा थी। सेवा और काम करने की उनमें अनुपम लगन थी, और जिस निःस्वार्थ तथा त्याग की भावना से उन्होंने अवैतनिक रूप से डी० ए० वी० स्कूल का संचालन स्वीकार किया था, वह वस्तुतः आदर्श थी। इसी का यह परिणाम हुआ, कि स्कूल खुलते ही केवल पाँच दिनों में तीन सौ विद्यार्थी उसमें दाखिल हो गये और बाद में यह संख्या निरन्तर बढ़ती चली गयी। स्कूल की इस आश्चर्यजनक प्रगति को देखकर लाहौर के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून के ५ जून, १८८६ के अंक में यह लिखा गया था कि, "हमें मुख्याध्यापक महोदय पर पूर्ण विश्वास है, जिन्होंने अपने आराम, सुख और नाम की तनिक भी परवाह न कर अपना जीवन इस काम से लिए अर्पण कर दिया है।"

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल की स्थापना आर्यसमाज द्वारा की गयी थी। यद्यपि उसमें सरकार द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार पढ़ाई की व्यवस्था थी, पर इस स्कूल ने पंजाब के शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कभी प्रार्थना नहीं की, और न सरकारी अनुदान प्राप्त करने के लिए कभी आवेदनपत्र ही दिया। पर निरन्तर लोकप्रिय होती हुई इस शिक्षण-संस्था की उपेक्षा कर सकना सरकार के लिए सम्भव नहीं हुआ। डी० ए० वी० स्कूल के परीक्षा-परिणाम बहुत अच्छे निकलते थे। मिडल की परीक्षा उस समय शिक्षा-विभाग द्वारा ली जाया करती थी, और उसमें ऊँची स्थिति प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को सरकार द्वारा छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती थीं। डी० ए० वी० स्कूल के अनेक विद्यार्थी जब मिडल की परीक्षा में बहुत अच्छे अंक प्राप्त कर छात्रवृत्ति के अधिकारी हो गये, तो यह समस्या उत्पन्न हुई कि छात्रवृत्तियाँ तो केवल शिक्षा-विभाग से सम्बद्ध स्कूलों के विद्यार्थियों को ही दी जा सकती हैं। डी० ए० वी० स्कूल शिक्षा विभाग से सम्बद्ध नहीं था, अतः उसके विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दे सकना सम्भव नहीं था। इस दशा में शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर महोदय ने संकेत किया, कि स्कूल का केवल निरीक्षण करा लिया जाए, जिसके बाद स्कूल को मान्यता प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं रहेगी। श्री हंसराज ने इस सुझाव को मान लिया और शिक्षा विभाग के निरीक्षक महोदय द्वारा स्कूल का निरीक्षण होते ही उसे मान्यता दे दी गयी। श्री हंसराज इतने क्रियात्मक व्यक्ति थे, कि अपने विद्यार्थियों के हितों को दृष्टि में रखकर उन्होंने सरकारी निरीक्षक द्वारा स्कूल के निरीक्षण की बात को स्वीकार कर लिया। डी० ए० वी० स्कूल को शिक्षा-विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त हो जाने पर उसकी और भी अधिक तेजी से उन्नति होने लगी। डी० ए० वी० स्कूल को यह मान्यता सन् १८८८ में प्राप्त हुई थी। उस समय तक इस शिक्षण-संस्था ने पंजाब में अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया था, और उसमें दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई होने लग गयी थी। स्कूल के सुव्यवस्थित एवं सफल रूप से चल निकलने के बाद कॉलिज खोलने का विचार जब सम्मुख आया, तो उसके लिए आचार्य की नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित हुआ। आर्यसमाज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनेक नेता श्री हंसराज को ही इस पद पर नियुक्त करना चाहते थे। पर एक मत पण्डित गुरुदत्त की इस पद पर नियुक्ति के पक्ष में था। दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षणालय की शिक्षानीति के सम्वन्ध में जो उग्र मतभेद व विवाद इस समय प्रारम्भ हो चुके थे, उन पर चौथे अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। शिक्षानीति और पाठ्यक्रम के विषय में श्री हंसराज और पण्डित गुरुदत्त में भी मतभेद था। पर श्री हंसराज यह नहीं चाहते थे, कि केवल इस विचार से उन्हें कॉलिज का प्रिंसिपल वना दिया जाए क्योंकि वह अवैतनिक रूप से कार्य कर रहे हैं। उनके वड़े भाई लाला मुल्कराज डी० ए० वी० सोसायटी के प्रधान लाला साईंदास के पास यह प्रस्ताव लेकर गये कि प्रिंसिपल के पद पर पण्डित गुरुदत्त की नियुक्ति कर दी जाये। पर लाला साईंदास इससे सहमत नहीं हुए। अपनी शिक्षण-संस्था की शिक्षानीति के सम्वन्ध में उनका वही मत था, जो श्री हंसराज का था। डी० ए० वी० कमेटी ने वहुमत से श्री हंसराज को ही कॉलिज का प्रिंसिपल वनाने का निर्णय किया, और उनके आचार्यत्व में कॉलिज की पढ़ाई व्यवस्थित रूप से प्रारम्भ हो गयी। सन् १९१२ के मार्च मास तक श्री हंसराज डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर के प्रिंसिपल रहे। जून, १८८६ से मार्च, १९१२ तक २५ साल के लगभग उन्होंने डी०ए०वी० स्कूल और कॉलिज की उन्नति के लिए जो कार्य किया, वह वस्तुतः अद्‌भुत था। कोई भी संस्था धन के अभाव में फल-फूल नहीं सकती। महात्मा हंसराज ने डी० ए० वी० शिक्षणालयों के लिए धन एकत्र करने में भी अनुपम सफलता प्राप्त की। सन् १८८६ में जव वह डी० ए० स्कूल के मुख्याध्यापक वने थे, तो इस संस्था की कुल सम्पत्ति २४ हजार रुपये के लगभग की थी। पर जव १९१२ के शुरू में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया, तो ८ लाख ३१ हजार रुपए कॉलिज के कोष में जमा थे। जो वहुत-सी इमारतें इस समय तक डी० ए० वी० स्कूल तथा कॉलिज के लिए वन गयी थीं, उनका मूल्य तो और भी अधिक था। इतनी वड़ी मात्रा में जो आर्थिक साधन केवल चौथाई सदी की अवधि में डी० ए० वी० संस्थाओं को प्राप्त हो सके, उसका प्रधान श्रेय महात्मा हंसराज को ही दिया जाना चाहिये। सन् १९११ में डी० ए० वी० कॉलिज की रजत जयन्ती मनायी गयी थी। उसके प्रधान पद से भाषण देते हुए रायवहादुर लाला लालचन्द ने ठीक ही कहा था—"१८८६ में जो पौदा लगाया गया था, वह आज एक विशाल वृक्ष वन चुका है, और इसका श्रेय महात्मा हंसराजजी को प्राप्त है।" डी० ए० वी० कॉलिज के सम्वन्ध में महात्मा हंसराज के कर्तृत्व का वर्णन करते हुए लाला लाजपतराय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्यसमाज' में ये शब्द लिखे थे—"ये सव प्रयत्न और वलिदान व्यर्थ होते, यदि ठीक समय पर एक नौजवान अपना जीवनदान न दे देता। यह नौजवान हंसराज हैं, जिन्होंने यूनिवर्सिटी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन कॉलिज को सौंप दिया। इस सेवा कार्य में उन्हें कटु विरोध, तीव्र आलोचना और घोर निराशा का भी सामना करना पड़ा। अनेक वार लोगों ने उन्हें गलत समझा, कई वार उनके मित्र भी उनके विरोधी हो गये। परन्तु वह चट्टान की तरह दृढ़ थे। उनकी सादगी वेजोड़ थी, उनकी साधुता निष्काम थी और उनका वलिदान आदर्श था। उनका निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन दोनों ही प्रशंसनीय हैं।"

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ने जो भी प्रगति की, सर्वसाधारण जनता और आर्यसमाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस द्वारा जो भी काम किये गये, वे सव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा हंसराज की सूझबूझ तथा कर्तृत्व के परिणाम थे। उन्हीं द्वारा डी० ए० वी० कॉलिज के साथ इंजीनियरिंग की शिक्षा प्रारम्भ की गयी, अनेकविध दस्तकारियों तथा शिल्प की कक्षाएँ खोली गयी, आयुर्वेद पढ़ाया जाना शुरू किया गया और वेद विभाग एवं अनुसन्धान विभाग की स्थापना द्वारा उन महत्त्वपूर्ण कार्यों का सूत्रपात किया गया, आर्य-समाज इस संस्था से जिनकी अपेक्षा रखता था। स्कूल और कॉलिज के साथ छात्रावास खोलकर उनमें धर्म, सदाचार तथा संस्कृति का वातावरण उत्पन्न करने का प्रयत्न महात्मा हंसराज द्वारा ही किया गया था। उन्होंने ही उनमें 'युवक समाज' की स्थापना की थी।

महात्मा हंसराज ने अपना जीवन तो डी० ए० वी० कॉलिज को अर्पित कर ही दिया था, और वहाँ उनकी सेवाएँ पूर्णतया अवैतनिक थीं, पर वह यह भी समझते थे, कि कॉलिज तथा स्कूल के लिए अन्य भी ऐसे कार्यकर्ता तैयार करने चाहियें, जो उन्हीं के समान निःस्वार्थ भाव से कार्य करने को उद्यत हों, और कॉलिज की सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बना लें। इसी प्रयोजन से उन्होंने कॉलिज के 'आजीवन सदस्य' (लाइफ मेम्बर) बनाने की पद्धति का सूत्रपात किया। सबसे पूर्व ७ जनवरी, १६०२ को लाला साईंदास कॉलिज के लाइफ मेम्बर बने। महात्मा हंसराज के अवकाश ग्रहण के पश्चात् १६१२ में इन्हीं को डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया था। कुछ समय पश्चात् १६ मार्च, १६०२ को लाला दीवानचन्द कॉलिज के लाइफ मेम्बर बन गये, और उन्हें डी० ए० वी० हाई स्कूल के मुख्याध्यापक के पद पर नियुक्त कर दिया गया। लाला दीवानचन्द पाश्चात्य दर्शन (फिलोसोफी) के गम्भीर विद्वान् थे। बाद में वह कॉलिज विभाग में फिलासफी के प्रोफेसर बने, और फिर डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के प्रिंसिपल होकर कानपुर चले गये। कानपुर का डी० ए० वी० कॉलिज आगरा यूनिवर्सिटी का प्रमुख कॉलिज था। अतः स्वाभाविक रूप से उस यूनिवर्सिटी की गतिविधि के संचालन में इसके प्रिंसिपल का हाथ रहा करता था। बाद में प्रिंसिपल दीवानचन्द आगरा यूनिवर्सिटी के कुलपति (वाइस चान्सलर) भी रहे। दिसम्बर, १६०२ में भाई परमानन्द डी० ए० वी० कॉलिज के लाइफ मेम्बर बने, और उन्हें इतिहास का सहायक प्रोफेसर नियुक्त किया गया। १६०२ में ही पण्डित मेहरचन्द और लाला देवीचन्द ने आजीवन सदस्यता स्वीकार की, और उन्हें डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी द्वारा पंजाब की अन्य शिक्षण-संस्थाओं को सँभालने का कार्य सुपुर्द किया गया। बाद में उन्होंने भी दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिजों में उच्च पद प्राप्त किये, और योग्यतापूर्वक उनका संचालन किया।

सन् १६०२ के बाद जिन अनेक महानुभावों ने डी० ए० वी० कॉलिज का लाइफ मेम्बर बनकर इस संस्था की निःस्वार्थ सेवा की, उनमें डॉक्टर गोवर्धनलाल दत्त, कैप्टिन अमरनाथ वाली, प्रोफेसर बहादुरमल, पण्डित दीवानचन्द शर्मा, पण्डित विश्वबन्धु, प्रोफेसर श्रीराम और लाला सूरजभान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब महात्मा हंसराज से प्रेरणा प्राप्त करके ही कॉलिज की निःस्वार्थ सेवा में अपने जीवन को अर्पण कर देने के लिए उद्यत हुए थे। शिक्षा के क्षेत्र में डी० ए० वी० संस्थाएँ जो असाधारण उन्नति कर सकीं, उसका प्रधान कारण उन व्यक्तियों की निःस्वार्थ सेवाएँ ही थीं, जो नाम मात्र का पारिश्रमिक लेकर इनमें कार्य कर रहे थे। महात्मा हंसराज उनके लिए प्रकाश-स्तम्भ के समान थे, और उन्हीं को आदर्श मानकर ये डी० ए० वी० संस्थाओं की सेवा में तत्पर थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९११ में डी० ए० वी० स्कूल को स्थापित हुए २५ वर्ष हो गये थे, और इतना ही समय महात्मा हंसराज को डी० ए० वी० संस्थाओं के प्रधान संचालक का कार्य सँभाले हुए बीत चुका था। यह अवधि अधिक नहीं है। मनुष्यों में अपने पद पर जमे रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। ऐसे व्यक्ति अपवादरूप ही होते हैं, जो अपने गौरवपूर्ण पद का स्वेच्छापूर्वक त्याग कर दें, और दूसरों को सेवा का अवसर दें। महात्मा हंसराज ऐसे ही महान् व्यक्ति थे। जब उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल पद को छोड़ देने का निश्चय किया, वह केवल ४८ वर्ष के थे। इस आयु में तो आजकल लोग प्रिंसिपल पद को प्राप्त करते हैं। २७ नवम्बर, १९११ को महात्मा हंसराज ने डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी के प्रधान लाला लालचन्द को एक पत्र लिखा, जिसमें यह अनुरोध किया गया था, कि ३१ जनवरी, १९१२ तक उन्हें प्रिंसिपल पद से निवृत्त कर दिया जाए। जब महात्माजी का त्यागपत्र कमेटी के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, तो कोई भी सदस्य उसे स्वीकार करने को उद्यत नहीं था। पर सब यह भी जानते थे, कि महात्मा हंसराज एक बार जो निश्चय कर लेते हैं, उस पर दृढ़ रहते हैं। २८ जनवरी, १९१२ को कॉलिज कमेटी की बैठक में त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया, और एक महीने बाद २८ मार्च के दिन महात्माजी ने डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर के प्रिंसिपल पद का चार्ज लाला साईंदास को दे दिया। महात्मा हंसराज के नेतृत्व में आर्यसमाज की इस शिक्षण-संस्था ने कितनी उन्नति कर ली थी, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि सन् १९११ में डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या १५६५ थी, और कॉलिज विभाग में ६७२ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। पंजाब की यह सबसे बड़ी शिक्षण-संस्था थी। महात्मा हंसराज उत्तरी भारत में पहले भारतीय मुख्याध्यापक थे, और पहले ही भारतीय प्रिंसिपल। एक आर्य युवक अपने त्याग, तप, योग्यता और सदाचारमय जीवन से किस प्रकार एक लोकप्रिय शिक्षण-संस्था का विकास कर सकता है, यह उन्होंने करके दिखा दिया था। शिक्षा जगत् में महात्माजी के कर्तृत्व का कितना आदर था, इसे स्पष्ट करने के लिए एक घटना का उल्लेख करना उपयोगी होगा। आर्यसमाज के अनुकरण में लाहौर के सनातनी हिन्दुओं ने भी एक सनातन धर्म कॉलिज की स्थापना का निश्चय किया था, और इसी प्रयोजन से उन्होंने एक सभा का आयोजन किया था। जम्मू-काश्मीर के महाराजा सर प्रतापसिंह भी इस सभा में उपस्थित थे, और महात्मा हंसराज भी वहाँ आये हुए थे। महाराजा प्रतापसिंह जब भाषण करने लगे, तो बोलते-बोलते अकस्मात् रुक गये और महात्माजी को सम्बोधन कर कहने लगे—"हंसराजजी, एक हंसराज इनको भी दे दो, ताकि यह कॉलिज भी सफल हो सके।" महात्माजी ने डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल का स्वेच्छापूर्वक त्याग अवश्य कर दिया था, पर इसके कारण इस संस्था से उनके सम्बन्ध का अन्त नहीं हो गया था। सन् १९१२ में उन्हें डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी का प्रधान चुन लिया गया था, और इस स्थिति में इस संस्था की कार्य-नीति निर्धारण आदि के सब महत्त्वपूर्ण कार्य बाद में भी उन्हीं द्वारा किये जाते रहे।

पर अब महात्मा हंसराज का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया था। वह आर्य-समाज के प्रमुख नेता थे। जिन दिनों वह डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल थे, आर्य-समाज के विविध कार्यकलाप के संचालन में भी तत्पर रहा करते थे। इसीलिए सन् १८९० में उन्हें लाहौर आर्यसमाज का प्रधान चुन लिया गया था, और सन् १८९१

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान पद पर भी वही निर्वाचित हो गये थे। उस समय पंजाब में आर्यसमाजों का एक ही केन्द्रीय संगठन था, जिसे आर्य प्रतिनिधि सभा कहते थे। पर डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षानीति और मांस-भक्षण के प्रश्नों को लेकर जब पंजाब के आर्यसमाजियों में उग्र मतभेद प्रादुर्भूत होने लगे, तो सब आर्य-समाजों के लिए एक संगठन में रह सकना सम्भव नहीं रहा, और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के नाम से आर्यसमाजों का एक अन्य संगठन बन गया। पंजाब के आर्यसमाजों में जो यह उग्र विरोध विकसित हुआ, उस पर यहाँ प्रकाश डालना न सम्भव है, और न उसकी आवश्यकता ही है। यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त है, कि दो पृथक् संगठनों के स्थापित हो जाने के कारण पंजाब, सिन्ध और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के आर्यसमाजी दो दलों में विभक्त हो गये, और दोनों दल अपने-अपने ढंग से आर्यसमाज के कार्यकलाप का विस्तार करने लगे। जिन दिनों महात्मा हंसराज डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल थे, तब भी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की मुख्य उत्तरदायिता उन्हीं पर थी, और उन्हीं द्वारा उसका कार्य सम्पन्न कराया जाता था। पर १९१२ में जब उन्होंने प्रिंसिपल पद से अवकाश ग्रहण कर लिया, प्रादेशिक सभा के संगठन, विस्तार तथा उन्नति पर वह और भी अधिक ध्यान देने लगे। उन्हीं के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि आर्य प्रादेशिक प्रति-निधि सभा से सम्बद्ध आर्यसमाजों की संख्या २५० तक पहुँच गयी। सभा के कार्यालय को व्यवस्थित किया गया, उसमें क्लर्कों और चपड़ासियों की नियुक्ति की गयी, प्रचार कार्य के लिए उपदेशक और भजनीक रखे गये, और महात्मा हंसराज प्रतिदिन सभा कार्यालय में आकर स्वयं सब कार्यों की देखभाल करने लगे। सभा के तत्त्वावधान में एक प्रकाशन विभाग स्थापित किया गया, और उपदेशकों के प्रशिक्षण के लिए ब्राह्म महाविद्यालय नाम से एक पृथक् शिक्षण-संस्था कायम की गयी। डी० ए० वी० कॉलिज के वेद विभाग को ही विकसित कर यह महाविद्यालय स्थापित किया गया था। महात्मा हंसराज अनुभव करते थे, कि साधुओं और वानप्रस्थियों को भी प्रचार कार्य में लगाना चाहिये। बौद्ध भिक्षुओं के समान वे चार मास तो आराम करें, और शेष समय धर्मप्रचार में लगाया करें। इसी प्रयोजन से उन्होंने हरिद्वार में मोहन आश्रम की स्थापना की, और आश्रम के साथ एक विद्यालय भी खोला गया, जिसमें साधुओं को सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि आदि महर्षिकृत ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे, और उन्हें प्रचारक का कार्य करने के लिए तैयार किया जाता था।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के कार्यकलाप को महात्मा हंसराज ने केवल भाषणों एवं लेखों द्वारा प्रचार तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु सभा द्वारा व्यापक रूप से जनता की सेवा का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। देश में जहाँ कहीं भी दुर्भिक्ष पड़ते, बीमारियाँ फैलतीं, नदियों में बाढ़ें आ जाने के कारण धन-जन का विनाश होता, साम्प्रदायिक उपद्रव होते—प्रादेशिक सभा के कार्यकर्ता और डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी सर्वत्र सेवा के लिए पहुँच जाते, जिसके कारण सर्व-साधारण जनता को न केवल आर्यसमाज का परिचय ही प्राप्त होता, अपितु महर्षि दयानन्द सरस्वती के महान् कार्य के प्रति श्रद्धा भी उत्पन्न होती। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संचालन को अपने हाथों में लेकर महात्मा हंसराज ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये, उन पर प्रकाश डालना 'इतिहास' के इस भाग का विषय नहीं है। इनका अत्यन्त संक्षेप से जो यहाँ उल्लेख किया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, वह केवल उनके असाधारण व्यक्तित्व तथा अनुपम कर्तृत्व का निदर्शन करने के लिए ही है।

आधी सदी के लगभग समय तक आर्यसमाज की सेवा कर १५ नवम्बर, सन् १९३८ को महात्मा हंसराज की जीवन-लीला समाप्त हुई। शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने जो भी कार्य अब तक किया है, उसका सर्वाधिक श्रेय महात्मा हंसराज को ही दिया जाना चाहिये। डी० ए० वी० कॉलिज के रूप में जिस महान् शिक्षण-संस्था का उन्होंने विकास किया, उस पर आर्यसमाज सच्चे अर्थों में गर्व और गौरव का अनुभव कर सकता है।

(४) डी० ए० वी० कॉलिज और असहयोग आन्दोलन

सन् १९२०-२१ में महात्मा गांधी के नेतृत्व में इण्डियन नेशनल कांग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया था। इस आन्दोलन का एक अंग सरकारी तथा सरकारी शिक्षा पद्धति का अनुसरण करने वाले स्कूलों-कॉलिजों का वहिष्कार करना तथा राष्ट्रीय शिक्षणालयों की स्थापना करना भी था। इस आन्दोलनसे प्रभावित होकर काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया और गुजरात विद्यापीठ सदृश कितनी ही राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना हुई और हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षणालयों का वहिष्कार किया। लाहौर भी इस आन्दोलन से प्रभावित हुए विना नहीं रह सका, वहाँ भी 'नेशनल कॉलिज' स्थापित हुआ और वहुत-से विद्यार्थी उन स्कूलों-कॉलिजों का वहिष्कार करने के लिए तत्पर हो गये, जिनमें सरकारी शिक्षा पद्धति का अनुसरण किया जाता था। डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर की सबसे वड़ी व सर्वाधिक लोकप्रिय शिक्षण-संस्था थी। देश की राष्ट्रीय गतिविधि से भी उसका सम्पर्क था। उसकी स्थापना ही भारत की नवजागरण की प्रवृत्तियों के कारण हुई थी, और उसके वातावरण में देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के तत्त्व समुचित मात्रा में विद्यमान थे। इस दशा में पंजाब के राष्ट्रीय नेता एवं कार्यकर्ता यह आशा करते थे, कि महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप डी० ए० वी० कॉलिज को वन्द कर दिया जाएगा, और उसके विद्यार्थी व शिक्षक स्वराज्य के संघर्ष में भाग लेने के लिए मैदान में उतर पड़ेंगे। पर डी० ए० वी० कॉलिज के सँचालक इसके लिए उद्यत नहीं हुए, जिसके कारण उन पर तीव्र आक्षेप किये जाने लगे। असहयोग आन्दोलन के प्रति डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के पदाधिकारियों का क्या रुख था, इसे स्पष्ट करने के लिए कमेटी के मन्त्री श्री नानकचन्द पण्डित द्वारा प्रस्तुत कॉलिज की वार्षिक रिपोर्ट के कुछ अंशों को उद्धृत करना उपयोगी होगा—

"यह वार्षिक रिपोर्ट तव तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती, जब तक कि मैं उस घोर आन्दोलन का उल्लेख न कर दूँ, जो कि गत वर्ष डी० ए० वी० कॉलिज के विरुद्ध प्रारम्भ किया गया था। डी० ए० वी० कॉलिज की अत्यन्त कटु तथा उग्र आलोचना के साथ-साथ यह माँग की गयी थी, कि सरकार से कॉलिज के सम्बन्ध को तुरन्त तोड़ दिया जाये और उसका राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। एक समय ऐसा भी आया, जबकि बहुसंख्यक विद्यार्थियों ने कॉलिज का बहिष्कार कर दिया और जिन्होंने बहिष्कार नहीं भी किया, वे भी अपने असहयोगी बन्धुओं की भावनाओं को दृष्टि में रखकर कॉलिज में उपस्थित नहीं हुए। इस दशा में डी० ए० वी० कॉलिज के पदाधिकारियों का रुख बहुत शान्त व

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयत रहा। जो विद्यार्थी पढ़ाई छोड़कर राष्ट्र की सेवा करना चाहते थे या गैर-सरकारी राष्ट्रीय शिक्षणालयों में प्रविष्ट होना चाहते थे, उन्हें डी० ए० वी० के अधिकारियों ने किसी भी प्रकार अनुत्साहित नहीं किया। पर वे अपने इस विचार पर दृढ़ रहे, कि जो विद्यार्थी वर्तमान शिक्षा पद्धति से लाभ उठाना चाहते हों, उनके लिए कॉलिज के दरवाजों को खुला रखना चाहिये। कमेटी (डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी) जनता की मानसिक भावना को भली-भाँति समझती थी। वह जानती थी, कि विद्यार्थियों ने क्षणिक आवेश में आकर अपने को कॉलिज से पृथक् कर लिया है, और ज्यों ही सामयिक व क्षणिक उत्तेजना के सामयिक प्रभाव का अन्त हो जायेगा, वे पढ़ाई के लिए कॉलिज में वापस लौट आएँगे। कमेटी के सदस्यों का यह भी विचार था, कि यदि डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी ऐसे शिक्षणालयों में प्रविष्ट हो जाएँगे, जिनका आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो पवित्र वैदिक धर्म के प्रसार में इससे बाधा पड़ेगी। साथ ही, वे यह भी समझते थे कि यदि ऐसे अनुभवहीन विद्यार्थी, जिनका जीवन कॉलिज की उस शिक्षा द्वारा अनुशासित न हो गया हो जो धीरे-धीरे विद्यार्थियों को प्रभावित करती है, देश में कार्य करने के लिए निकल खड़े होंगे, तो इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को क्षति ही पहुँचेगी। डी० ए० वी० कॉलिज के पदाधिकारियों की यह भी मान्यता थी, कि सर्वथा शिक्षा प्राप्त न करने की तुलना में अपूर्ण शिक्षा की प्राप्ति कहीं अधिक अच्छी है। फिर प्रश्न यह भी है, कि क्या कोई ऐसी भी शिक्षा पद्धति है, जिसे पूर्ण कहा जा सकता हो? हमारा यह भी मन्तव्य है, कि डी० ए० वी० आन्दोलन के अब उत्कृष्ट फल प्राप्त होने शुरू हो गये हैं, और इसका भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल दिखायी देता है। समय बीतने के साथ-साथ ऐसे नवयुवक सम्मुख आ रहे हैं, जिन्होंने अपने को शिक्षा के पवित्र कार्य के लिए अर्पित किया हुआ है। समय बीतने के साथ-साथ ऐसे नवयुवक भी मैदान में आ रहे हैं, जिन्होंने वैदिक धर्म को अपने जीवन का मिशन बना लिया है। इस प्रान्त (पंजाब) में जो जागृति दिखायी देती है, उसका प्रधान श्रेय डी० ए० वी० कॉलिज और उसकी सहयोगी संस्थाओं के शिक्षाविषयक कार्यकलाप को ही दिया जाना चाहिये। अन्त में, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि शिक्षा की कोई भी पद्धति तब तक सफल नहीं कही जा सकती, जब तक कि वह मनुष्यों को जीवन में समुचित स्तर की आजीविका प्राप्त कर सकने के योग्य न बना दे। हमारा दावा है कि हमने जो औद्योगिक, व्यापारिक और आयुर्वेदिक शिक्षण-संस्थाएँ स्वतन्त्र रूप से स्थापित की हैं, उन द्वारा हम उन अत्यन्त गम्भीर समस्याओं का समाधान कर सक रहे हैं जो किसी स्वतन्त्र शिक्षा पद्धति के सम्मुख उपस्थित होती हैं। हमने एक विनम्र ढंग से अपना कार्य प्रारम्भ किया है, और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें ऐसी शक्ति प्रदान करे जिससे कि हम अपने संकल्प को पूरा कर सकें। हमारे मित्र एवं विरोधी हमारी जो आलोचना करते हैं, आशा और साहस के साथ हम उसका सामना कर सकें, भगवान् हमें ऐसी शक्ति प्रदान करे।"

महात्मा गांधी और कांग्रेस ने जो असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था, उसके कारण सारे देश में एक तूफान-सा आ गया था। डी० ए० वी० कॉलिज भी उसके प्रभाव से बचा नहीं रह सका था। इस अवसर पर डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के पदाधिकारियों ने जो रुख अपनाया, वह तटस्थता का था। श्री नानकचन्द पण्डित ने उसका जिस ढंग से समर्थन किया है, उसकी युक्ति-युक्तता से इन्कार नहीं किया जा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। असहयोग आन्दोलन का तूफान कुछ समय बाद शान्त हो गया था, और डी० ए० वी० कॉलिज के जो विद्यार्थी देश की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं से प्रेरित होकर राजनीतिक संघर्ष के क्षेत्र में कूद पड़े थे, वे पुनः अपने कॉलिज में वापस लौट आये थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन और राष्ट्रीय संघर्ष के अग्रदूत थे। इसी कारण आर्यसमाज प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, स्वदेश-भक्ति और स्वदेशी का प्रबल समर्थक रहा है। डी० ए० वी० कॉलिज के संचालक भी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे। कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में आकर उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज को बन्द तो नहीं किया, पर एक ऐसी शिक्षण-संस्था की पृथक् रूप से स्थापना अवश्य कर दी, जिसका सरकार व पंजाब यूनिवर्सिटी से कोई सम्बन्ध नहीं था। १४ एप्रिल, १९२१ के दिन यह नॉन-यूनिवर्सिटी स्कूल स्थापित किया गया था, और डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा सन् १९२२-२३ में इसके खर्च के लिए १४,००० रुपयों की धनराशि स्वीकृत की गई थी। असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप जो बहुत-से स्कूल उस समय खुले थे, वे देर तक कायम नहीं रह सके। पर डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी द्वारा जो यह नॉन-यूनिवर्सिटी स्कूल स्थापित किया गया था, वह चिरस्थायी रहा। १९२३-२४ की कॉलिज रिपोर्ट में उसके सम्बन्ध में लिखी गई ये पंक्तियाँ उद्धृत करने के योग्य हैं—"यद्यपि इस संस्था (नॉन-यूनिवर्सिटी स्कूल) का जन्म असहयोग आन्दोलन के दिनों में हुआ था, पर यह अब भी जीवित है। असहयोग के दिनों में बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित की गई थीं, पर उनमें से बहुतों का तो अन्त हो चुका है और जो अभी शेष हैं, वे सब भी प्रायः मृत्यु-शैया पर हैं। पर यह संस्था, जिसके विषय में कुछ लोगों का यह विचार था कि इसे केवल समाचारपत्रों की प्रतिकूल आलोचना से बचने के लिए सामयिक रूप से खोला गया है, अब भी न केवल फल-फूल ही रही है, अपितु प्रतिदिन उन्नति भी कर रही है। इस संस्था की मुख्य विशेषता वह व्यावसायिक शिक्षा है, जिसकी इसमें समुचित व्यवस्था है।"

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर डी० ए० वी० कॉलिज को एक राष्ट्रीय शिक्षणालय बनाने के लिए जो प्रयत्न किये गये, और उनके प्रति महात्मा हंसराज का क्या रुख रहा, उसे स्पष्ट करने के लिए लाला लाजपतराय के एक पत्र तथा उसके उत्तर में लिखे गये महात्मा हंसराज के पत्र के कुछ अंशों को उद्धृत करना उपयोगी होगा। लाहौर से प्रकाशित होने वाले अपने उर्दू दैनिक 'वन्दे मातरम्' के १८ जनवरी, १९२१ के अंक में लाला लाजपतराय ने महात्माजी के नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित की थी, जिसमें उन्होंने लिखा था—"लाला लालचन्द और लाला द्वारिकादास के प्रधानत्व में हमारे आन्दोलन (स्कूलों और कॉलिजों) को जो थोड़ी-बहुत आजादी थी, वह अब लोप हो गई है, और अब डी० ए० वी० स्कूल तथा सेण्ट्रल मॉडल स्कूल में कोई विशेष अन्तर नहीं। इसी तरह अब कॉलिज की नीति यूनिवर्सिटी द्वारा नियन्त्रित और प्रभावित होती है। स्कूल और कॉलिज में अब ऐसी पुस्तकें पढ़ायी जा रही हैं, जो स्पष्ट मिथ्या बातों से भरी पड़ी हैं। कई तो हमारी संस्कृति और राष्ट्रीय सम्मान को ठेस भी पहुँचाती हैं। यद्यपि पिछले ३० वर्षों में दयानन्द कॉलिज ने पंजाब में शिक्षा-प्रसार का बहुत कार्य किया है, तथापि इसमें सन्देह है कि इससे हमारे राजनीतिक स्वतन्त्रता के संग्राम में कोई सहायता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली है। मेरा विचार है कि यूनिवर्सिटी और सरकार की कृपा प्राप्त करने के लिए हमने अपने कई सिद्धान्त त्याग दिये हैं और इस तरह स्वामीजी के ध्येय की हत्या कर दी है।…अब कुछ बरसों से देश में नयी भावना जगी है। स्वामी दयानन्द ने जिन सिद्धान्तों की घोषणा की थी…आज हर ओर सर्वप्रिय हो रहे है। महात्मा (गांधी) जी के आगमन से बहुत पहले आर्यसमाजियों ने स्वदेशी और असहयोग की शिक्षा स्वामीजी से ली थी। मैं जानता हूँ…कि बरसों तक आप भी इन्हीं आदर्शों का प्रचार करते रहे हैं। मुझे विश्वास है कि आज भी आप इन आदर्शों में विश्वास रखते हैं। इन हालात में क्या आपसे अपील करूँ कि या तो आप खुले तौर से अपने आदर्श परिवर्तन की घोषणा करें, अन्यथा उन आदर्शों को निभाते हुए और जनता की आवाज सुनते हुए दयानन्द कॉलिज को यूनिवर्सिटी के नियन्त्रण से मुक्त कर इसे स्वतन्त्र दयानन्द यूनिवर्सिटी में बदलने की घोषणा करें। आपके और कॉलिज के लिए यह एक स्वर्ण अवसर है, इसका लाभ उठाना चाहिये। यदि आपको फीसों की आय कम होने से स्टाफ कम करने का भय हो, तो मैं निम्नलिखित आश्वासन देता हूँ— (क) गत दो वर्षों की औसत आय से जितनी कम फीसें होंगी, वह मैं पूरी कर दूँगा। (ख) आपको स्टाफ का एक भी सदस्य हटाने की आवश्यकता नहीं। यदि छात्रों की संख्या कम हो जाए, तो आप उन्हें (स्टाफ को) अपना समय अध्ययन और अन्वेषण में लगाने के लिए कहें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि दो वर्ष में आपकी राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी की अवस्था सुदृढ़ और निरापद हो जाएगी।"

लाला लाजपतराय का यह पत्र उस राष्ट्रीय वातावरण का परिणाम था, जो सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन के कारण भारत में उत्पन्न हो गया था। सितम्बर, १९२० में कांग्रेस द्वारा सरकारी पद्धति का अनुसरण करने वाली शिक्षण-संस्थाओं के बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत किया जा चुका था। पंजाब में बहिष्कार का आन्दोलन तभी सफल हो सकता था, जब कि डी० ए० वी० कॉलिज या तो सरकार तथा सरकारी यूनिवर्सिटी से अपने सम्बन्ध का उच्छेद कर ले, और या विद्यार्थी इस कॉलिज का भी बहिष्कार कर दें, क्योंकि पंजाब में उस समय यही सर्वप्रधान शिक्षण-संस्था थी। डी० ए० वी० कॉलिज के बहुत-से विद्यार्थी बहिष्कार व हड़ताल के पक्ष में भी थे। लाला लाजपतराय चाहते थे, कि यह कॉलिज सरकार से अपने सम्बन्ध का अन्त कर एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी का रूप प्राप्त कर ले। उस समय काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ और जामिया मिल्लिया इस्लामिया आदि के रूप में अनेक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों व कॉलिजों की स्थापना की भी जा रही थी। लाला लाजपतराय का प्रस्ताव था, कि डी० ए० वी० कॉलिज के बहिष्कार की कोई आवश्यकता न रहे, और वह एक राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी बन जाए। पर महात्मा हंसराज लालाजी के प्रस्ताव से सहमत नहीं थे। उनका मत था, कि शिक्षण-संस्थाओं का बहिष्कार न केवल व्यर्थ है, अपितु हानिकारक भी है। उस समय बहिष्कार की आँधी इतनी प्रबल थी, कि उसके सामने ठहर सकना सुगम नहीं था। पर महात्मा हंसराज ने चट्टान की तरह इस आंधी का सामना किया। लाला लाजपतराय के पत्र के उत्तर में उन्होंने जो पत्र लिखा था, उससे उनका दृष्टिकोण सर्वथा स्पष्ट हो जाता है—"जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, आपके सुझाव में मुझे दो बातें दीखी हैं, राजनीतिक और शैक्षिक। राजनीतिक रूप से आप चाहते हैं कि एक वर्ष के लिए सब शिक्षण-संस्थाएँ बन्द कर दी जाएँ और विद्यार्थी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समय राजनीतिक कार्यों में लगाएँ। यदि यह योजना अपना ली जाए, तो हमें शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं की एक वर्ष तक परवाह नहीं करनी चाहिये। एक वर्ष के बाद यदि ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण उत्तरदायी शासन सौंप दे, तो आप सरकारी सहायता और सरकारी नियन्त्रण को 'बुरे' के बजाय 'अच्छा' समझने लगेंगे और शिक्षा-सम्बन्धी समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी। यह प्रश्न कि सब विद्यार्थी पढ़ाई छोड़कर राजनीतिक काम अपना लें, ताकि देश अपने ध्येय की ओर अग्रसर हो सके, विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों के ध्यानपूर्वक विचार करने का है। राजनीतिक नेताओं को भी सोचना होगा, कि अठारह-बीस बरस के कच्चे जवानों से राजनीतिक काम हो भी सकेगा। इस प्रश्न पर मैं अपनी कोई सम्मति नहीं देता। राजनीतिक कारणों की उपेक्षा कर यदि सभी समस्या का केवल शैक्षिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए, तो हमें यह विचार सर्वथा त्यागना पड़ेगा कि वर्तमान शिक्षा सम्पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से हानिकर है। मुझे पता है कि वर्तमान शिक्षा दोषरहित नहीं है। लेकिन हर पहलू से विचार करने पर मैं अनुभव करता हूँ कि यह हानिकर होने की अपेक्षा लाभप्रद अधिक है। इसलिए केवल इस विचार से कि यह यूनिवर्सिटी द्वारा नियन्त्रित होती है, अथवा यह दोषरहित नहीं, इसे त्यागने से देश की कोई सेवा न होगी। हमारा यह कर्तव्य है कि हम सरकार और यूनिवर्सिटी पर इसे अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने के लिए दबाव डालें। हमें स्वतन्त्र संस्थाएँ भी खोलनी चाहिये, जिससे हम दर्शा सकें कि बिल्कुल या एक हद तक यूनिवर्सिटी शिक्षा के दोषों को दूर किया जा सकता है। इस कारण मैं स्वतन्त्र संस्थाओं और यूनिवर्सिटियों के पक्ष में हूँ। मैं समझता हूँ कि दयानन्द कॉलिज के इतिहास में वह बहुत ही शुभ दिन होगा, जब इसे यूनिवर्सिटी में बदल दिया जाएगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमारे पास दो मार्ग हैं। पहला मार्ग सरकार से प्रार्थना करने का है, कि जिस तरह उसने खालसा कॉलिज को यूनिवर्सिटी के दर्जे तक बढ़ाने का वचन दिया है, या जिस तरह बनारस यूनिवर्सिटी को एक चार्टर देकर उसे प्रथम श्रेणी की शिक्षा-संस्था बनने के योग्य किया है, इसी तरह हमें भी एक आर्य यूनिवर्सिटी की अनुमति दी जाए। इससे हमारी शिक्षा सम्बन्धी कठिनाइयों की समाप्ति हो जाएगी और हमारी यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट विद्यार्थियों को सरकारी नौकरियों तथा सरकार द्वारा निर्धारित धन्धों से वंचित न रहना पड़ेगा। निस्सन्देह, हमारी यूनिवर्सिटी पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हो सकती, लेकिन निश्चय ही वर्तमान अवस्था से बहुत उन्नत हो जाएगी।...सरकार की वर्तमान शिक्षानीति मेरे विचार की पुष्टि करती है कि यह निरर्थक कार्य न होगा और आर्यसमाजी अपने उद्देश्य में असफल न होंगे। लेकिन यदि सभी आर्यसमाजियों ने सांझे और जोरदार ढंग से यह माँग न रखी, तो सफलता असम्भव होगी। दूसरा मार्ग वह है, जो आपने सुझाया है। डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी आपके सुझाव के अनुसार यूनिवर्सिटी से सम्बन्ध तोड़ दे और घोषणा कर दे कि अबसे दयानन्द कॉलिज एक स्वतन्त्र यूनिवर्सिटी ही होगी। इस मार्ग पर कई आक्षेप हो सकते हैं। अपने बच्चों की शिक्षा पर जो लोग भारी खर्च करते हैं, वे उन्हें ऐसे कॉलिजों में पढ़ाना पसन्द न करेंगे जहाँ की शिक्षा से वह समुचित जीविका न कमा सकें। इसके अलावा एक प्रथम श्रेणी की यूनिवर्सिटी की स्थापना के लिए कम से कम १,००,००,००० रुपये की आवश्यकता है।...मुझे आशा नहीं कि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाजी इतनी धनराशि शीघ्र जुटा सकेंगे।...आप सब जानते हैं कि दयानन्द कॉलिज और इससे सम्बन्धित विभिन्न स्कूल हजारों विद्यार्थियों को हिन्दी, संस्कृत और वैदिक धर्म के मौलिक सिद्धान्तों की शिक्षा देते हैं। यदि हम ये सब संस्थाएँ बन्द कर दें और एक नयी स्थापित कर दें, तो हमारे पास विद्यार्थियों की बिल्कुल सीमित संख्या होगी। इससे समाज के प्रचारकार्य को धक्का लगेगा और जो कुछ भी पंजाब में आर्यसमाज की प्रतिष्ठा और प्रभाव है, कम हो जाएगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि दयानन्द कॉलिज कमेटी द्वारा निर्धारित नीति बहुत नीतियुक्त है। वर्तमान स्कूल और कॉलिज कदापि असम्बन्धित नहीं होने चाहिये, ताकि आर्यसमाज के लिए यह क्षेत्र बन्द न हो जाए। एक स्वतन्त्र स्कूल खोलने के भी प्रयत्न होने चाहिये। विद्यार्थियों के अभिभावकों से पूछना चाहिये कि वे अपने बच्चों को किस तरह पढ़ाना पसन्द करेंगे? यदि अभिभावकों की एक अच्छी संख्या तैयार हो, तो इस उद्देश्य से एक स्वतन्त्र स्कूल खोल देना चाहिये।...बहुत सम्मान के साथ मैं कहना चाहता हूँ, यदि वर्तमान परिस्थितियों में दयानन्द कॉलिज यूनिवर्सिटी से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले, तो जो छात्र इस समय यहाँ शिक्षा पा रहे हैं, गवर्नमेण्ट कॉलिज या इस्लामिया कॉलिज में चले जाएँगे, या बिल्कुल ही पढ़ाई छोड़ देंगे और समाज जो धार्मिक शिक्षा उन्हें दे रहा है, उससे वे वंचित रह जाएँगे। यदि आर्यसमाज के स्कूल बन्द कर दिये जाएँ, तो भी यही फल प्राप्त होंगे। पिछले तीस वर्षों से जो थोड़ा-बहुत उपयोगी काम आर्यसमाज कर पाया है, उस पर पानी फिर जाएगा। आपकी आवाज गवर्नमेण्ट कॉलिज के छात्रों तक न पहुँचेगी। खालसा और इस्लामिया कॉलिजों के छात्र भी इस आवाज से बहरे रहेंगे। सबसे अधिक दयानन्द कॉलिज के छात्र ही प्रभावित होंगे। यह बहुत ही दुःख की बात होगी, यदि वह संस्था, जिसे बनवाने में आपने सहायता दी है, आपके ही हाथों से नुकसान उठाए। इससे यह कहीं बेहतर होगा, यदि आप एक स्वतन्त्र संस्था के विकास में कमेटी की सहायता करें।...यदि आप एक अलग स्वतन्त्र राष्ट्रीय कॉलिज बनाएँ, तो मैं आपकी मदद करने और सहयोग देने को तैयार हूँ।"

लाला लाजपतराय और महात्मा हंसराज के इन पत्रों पर कोई भी टिप्पणी करना व्यर्थ होगा। डी० ए० वी० कॉलिज के सम्बन्ध में महात्माजी के विचार स्पष्ट थे। वह पंजाब के बालकों और युवकों को वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के वातावरण में ऐसी शिक्षा दिलाने के पक्षपाती थे, जिसकी जनता में माँग थी और जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी आजीविकाविषयक अपनी समस्या को भी हल कर सकते थे। साथ ही, वह यह भी चाहते थे कि आर्यसमाज की विशेष आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर डी० ए० वी० कॉलिज द्वारा वेद विभाग आदि भी खोले जाएँ। असहयोग आन्दोलन के प्रति उन्होंने जो रुख अपनाया, भविष्य की घटनाओं ने प्रदर्शित कर दिया कि वह बिल्कुल सही था। असहयोग के परिणामस्वरूप जो नयी 'राष्ट्रीय' शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित हुईं, वे विद्यार्थियों को अधिक आकृष्ट नहीं कर सकीं, और धीरे-धीरे सरकारी शिक्षणालयों का स्वरूप भी इस प्रकार परिवर्तित होने लगा, जिससे उन पर राष्ट्रीयता के प्रभाव में वृद्धि होती गई।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा अन्यत्र दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना

३० अक्तूबर, १८८३ को महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के तत्काल पश्चात् उनके भक्तों तथा अनुयायियों ने यह विचार करना प्रारम्भ कर दिया था, कि महर्षि का एक स्थायी स्मारक बनाया जाना चाहिये। सब इस विचार से भी सहमत थे, कि यह स्मारक एक ऐसी शिक्षण-संस्था के रूप में हो, जिसमें महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया जाए। इसी विचार को सम्मुख रखकर पंजाब के आर्यसमाजियों ने डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी की स्थापना की थी, और १ जून, १८८६ को लाहौर में दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल खोल भी दिया गया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का देहावसान अजमेर में हुआ था। अपने उत्तराधिकारी के रूप में महर्षि ने वहीं परोपकारिणी सभा स्थापित की थी। उस समय न आर्य प्रतिनिधि सभाओं की सत्ता थी, और न सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की। परोपकारिणी सभा ही एकमात्र ऐसी संस्था थी, जिसे आंशिक रूप से कतिपय आर्यसमाजों का भी प्रतिनिधित्व प्राप्त था। अतः महर्षि के स्मारक रूप में किसी शिक्षणालय की स्थापना की सर्वाधिक उत्तरदायिता उसी पर थी। इसीलिए महर्षि के निधन के बाद हुई परोपकारिणी सभा की पहली बैठक में श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया, कि महर्षि के नाम पर एक 'दयानन्द आश्रम' खोला जाए, जिसमें पुस्तकालय, अंग्रेजी-वैदिक पाठशाला, विक्रयार्थ पुस्तकों का भण्डार, अनाथालय, संग्रहालय, प्रिंटिंग प्रेस और व्याख्यान-गृह रहे। इस आश्रम के लिए २४ हजार रुपये भी सभा द्वारा स्वीकृत कर लिये गये, और यह निश्चय हुआ कि आश्रम की एक सुव्यवस्थित योजना तैयार की जाए। उस समय तक शाहपुराधीश आना सागर के तट पर स्थित अपना बाग सभा को प्रदान कर चुके थे। अतः यह विचार हुआ कि दयानन्द आश्रम इस बाग में ही स्थापित किया जाए। पर यह स्थान अजमेर नगर से दूर था, अतः यह निश्चय किया गया कि नगर में ही कोई उपयुक्त स्थान लेकर वहाँ दयानन्द आश्रम का कार्य शुरू कर दिया जाए। इस निर्णय के अनुसार अजमेर के केसरगंज क्षेत्र में ४,००० गज के लगभग भूमि क्रय कर ली गई, और उस पर भवन-निर्माण का कार्य शुरू कर दिया गया। परोपकारिणी सभा द्वारा दयानन्द आश्रम की जो योजना तैयार की गई थी, उसमें प्रमुख स्थान एक ऐसे शिक्षणालय को दिया गया था, जिसकी शिक्षा पद्धति तथा पाठविधि में प्राचीन और अर्वाचीन पद्धतियों का समन्वय हो। पर इस समय तक आर्यसमाज, अजमेर द्वारा इसी प्रकार की एक पाठशाला स्थापित भी की जा चुकी थी। अतः परोपकारिणी सभा ने इस पाठशाला को ही वह शिक्षणालय मान लिया, जिसे दयानन्द आश्रम में स्थापित किया जाना था। सभा द्वारा यह निर्णय भी कर लिया गया, कि इस शिक्षणालय का प्रबन्ध एवं संचालन आर्यसमाज, अजमेर के हाथों में ही रहेंगे। यह समझा गया, कि यह शिक्षणालय परोपकारिणी द्वारा स्थापित है, पर इसकी सब व्यवस्था अजमेर आर्यसमाज द्वारा पृथक् व स्वाधीन रूप से की जानी है। इसके संचालन के विषय में परोपकारिणी सभा और अजमेर आर्यसमाज में क्या सम्बन्ध हो, यह शुरू से ही अस्पष्ट था। इसी का यह परिणाम हुआ, कि बाद में सभा तथा आर्यसमाज में इस शिक्षणालय की व्यवस्था और प्रबन्ध के प्रश्न पर मतभेद व विवाद उत्पन्न हुए। पर यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार करना होगा, कि अजमेर में आर्यसमाज की प्रथम शिक्षा-संस्था की स्थापना वहाँ के आर्यसमाज द्वारा ही की गई थी। परोपकारिणी सभा ने उसे ही दयानन्द आश्रम की योजना के शिक्षणालय के रूप में स्वीकार कर लिया था। उसकी सब व्यवस्था आर्यसमाज के हाथों में ही छोड़ दी थी। इस शिक्षण-संस्था को 'दयानन्द आश्रम एंग्लो-वैदिक स्कूल' (D. A. A. V. School) नाम दिया गया था, और इसकी स्थापना १० फरवरी, सन् १८८६ के दिन हुई थी। लाहौर का डी० ए० वी० स्कूल भी लगभग इसी समय (१ जून, १८८६) स्थापित हुआ था। अजमेर के डी० ए० वी० स्कूल ने उसी पाठ-विधि को अपना लिया, जिसका निर्धारण लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल के लिए किया गया था। अजमेर के स्कूल की स्थापना भी कतिपय उच्च आदर्शों को सम्मुख रखकर की गई थी। अतः उसकी लोकप्रियता में तेजी के साथ वृद्धि होती गई। सब जातियों तथा सम्प्रदायों के विद्यार्थी उसमें प्रविष्ट होने लगे। १८९२ में वह मिडल स्कूल बन गया, और उसके विद्यार्थियों की संख्या २०८ हो गई। पाँच वर्ष पश्चात् उसने हाई स्कूल की स्थिति प्राप्त कर ली, और उसमें ५०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे। दयानन्द आश्रम एंग्लो-वैदिक स्कूल की लोकप्रियता में किस प्रकार निरन्तर वृद्धि होती गई, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि सन् १९४० में इसके विद्यार्थियों की संख्या १५०० तक पहुँच गई थी। इस प्रसंग में यह भी ध्यान रखना चाहिये, कि पंजाब की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की ख्याति के कारण समयान्तर में अजमेर के इस शिक्षणालय का नाम भी डी० ए० वी० स्कूल हो गया था, और उसमें 'आश्रम' शब्द नहीं रहा था। पहले डी० ए० वी० स्कूल अजमेर का अपना कोई भवन नहीं था। शुरू में स्कूल की कक्षाएँ दयानन्द आश्रम में लगा करती थीं, और बाद में आर्यसमाज की इमारत में लगने लगीं। पर कुछ ही वर्षों में इस स्कूल ने इतनी उन्नति कर ली थी और उसमें विद्यार्थियों की संख्या इतनी तेजी से बढ़ने लगी थी, कि उसके लिए अपने भवनों की आवश्यकता तीव्र रूप से अनुभव की जाने लगी। अजमेर के प्रसिद्ध एवं कर्मठ आर्य नेता पण्डित जियालाल के प्रयत्न से इस समस्या के समाधान में बहुत सहायता मिली, और केसरगंज से लगभग दो मील की दूरी पर रामगंज में १२ बीघा जमीन स्कूल के लिए प्राप्त कर ली गई। २८ जुलाई, सन् १९४० के दिन इस भूमि पर स्कूल की नई इमारतों की नींव की खुदाई का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया, और आर्यसमाज के तपस्वी संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द महाराज के करकमलों द्वारा नींव खोदने का मुहूर्त किया गया।

सन् १९३८ में आर्यसमाज, अजमेर की स्वर्ण जयन्ती मनाने का आयोजन किया गया। १८८३ में राजस्थान के सबसे पुराने इस आर्यसमाज की स्थापना हुई थी, और इसे स्थापित हुए अब ५० वर्ष से अधिक हो गये थे। आर्यसमाज की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर पण्डित जियालाल ने अकस्मात् ही सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दी, कि डी० ए० वी० स्कूल की स्वर्ण जयन्ती भी शीघ्र मनायी जाएगी, और उस अवसर पर डी० ए० वी० कॉलिज भी स्थापित कर दिया जाएगा। इस घोषणा के अनुसार कॉलिज की स्थापना के प्रयोजन से एक समिति संगठित की गई, जिसके प्रधान पण्डित मिट्ठनलाल भार्गव, मन्त्री पण्डित जियालाल और संयुक्त मन्त्री श्री दत्तात्रेय वाब्ले थे। एप्रिल, १९४१ में डी० ए० वी० स्कूल की स्वर्ण जयन्ती धूमधाम के साथ मनाई गई। उदयपुर के तत्कालीन दीवान सर टी० विजयराघवाचार्य ने इस समारोह की अध्यक्षता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की। पण्डित मिट्ठनलाल भार्गव ने स्वर्ण जयन्ती समारोह में उपस्थित जनता का स्वागत करते हुए अपने भाषण में डी० ए० वी० हाई स्कूल की स्थापना और प्रगति का विशद रूप से वर्णन किया, और प्रस्तावित कॉलिज की रूपरेखा प्रस्तुत की। यह योजना श्री दत्तात्रेय वाव्ले द्वारा तैयार की गई थी, और इसके लिए उन्होंने देश की अनेक शिक्षण-संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में स्वयं जाकर उनकी शिक्षा पद्धतियों तथा पाठ-विधियों का गम्भीरतापूर्वक अनुशीलन किया था। योजना में यह प्रस्ताव भी रखा गया था, कि सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त कृषि तथा शिल्प की शिक्षा की व्यवस्था भी डी० ए० वी० कॉलिज में की जाए। कॉलिज की योजना को क्रियान्वित करने के लिए १५ लाख रुपयों के व्यय का अनुमान लगाया गया था, और इस प्रभूत धनराशि को जुटाने तथा योजना को मूर्त रूप देने की उत्तरदायिता पण्डित जियालाल ने अपने कन्धों पर ले ली थी। कॉलिज के लिए वह भूमि पर्याप्त नहीं थी, जहाँ डी० ए० वी० स्कूल था। समुचित स्थान प्राप्त किये विना कॉलिज की स्थापना नहीं हो सकती थी। इस काम को भी पण्डित जियालाल ने अपने हाथों में लिया, और घोर परिश्रम के अनन्तर कॉलिज के लिए ३०० वीघे भूमि प्राप्त करने में उन्होंने सफलता प्राप्त की। इस प्रकार सन् १९४२ में अजमेर में डी० ए० वी० कॉलिज का श्रीगणेश हुआ, और उसमें इण्टरमीडिएट कक्षाओं की पढ़ाई प्रारम्भ कर दी गई। श्री दत्तात्रेय वाव्ले को इस कॉलिज का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया, और इसकी उन्नति के लिए जो असाधारण कर्तृत्व उन्होंने प्रदर्शित किया, उसी का यह परिणाम है कि आज इस कॉलिज ने राजस्थान की सवसे वड़ी एवं सवसे महत्त्व-पूर्ण शिक्षण-संस्था की स्थिति प्राप्त कर ली है, और यदि उसे एक 'आर्य यूनिवर्सिटी' कहा जाए, तो यह अनुचित नहीं होगा। अजमेर की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के विकास पर इस ग्रन्थ के वीसवें अध्याय में प्रकाश डाला गया है। इन संस्थाओं का सूत्रपात महर्षि के देहावसान के केवल तीन वर्ष पश्चात् ही हो गया था, इस तथ्य को हमें दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिये।

राजस्थान और पंजाव के समान उत्तरप्रदेश में भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना का कार्य उन्नीसवीं सदी का अन्त होने से पहले ही प्रारम्भ हो गया था। लाहौर में डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के स्थापित हो जाने पर उत्तरप्रदेश के कतिपय सुशिक्षित एवं सम्भ्रान्त आर्य सज्जनों ने अपने प्रान्त में डी० ए० वी० स्कूल खोलने का संकल्प किया, और इसी प्रयोजन से सन् १८९२ में 'डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी' नाम से एक समिति का संगठन किया गया, जिसके उद्देश्य निम्नलिखित थे—

प्रथम—संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) में महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक-रूप में एक एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना करना। इस कॉलिज में स्कूल, महाविद्यालय और छात्रावास अन्तर्गत होंगे और इस संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे—(क) आर्य-भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित तथा उन्नत करना, (ख) संस्कृत तथा वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहित तथा उन्नत करना, (ग) वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार की सुविधाओं को जुटाने के लिए आवश्यक साधनों की व्यवस्था करना, और (घ) अंग्रेजी साहित्य और सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक विज्ञानों के अध्ययन को प्रोत्साहित तथा उन्नत करना।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय—एंग्लो-वैदिक कॉलिज के साथ प्राविधिक (टैक्निकल) शिक्षा की भी व्यवस्था करना।

तृतीय—उपरिलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सब प्रकार के कार्य करना।

जिन महानुभावों के प्रयत्न से उत्तरप्रदेश में डी०ए०वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी का संगठन हुआ, उनमें श्री लक्ष्मणस्वरूप प्रमुख थे। साथ ही, कानपुर के कतिपय आर्य महानुभाव इसमें विशेष रुचि ले रहे थे। इनमें श्री यमुनाप्रसाद पाण्डेय और लाला बलदेव सहाय के नाम उल्लेखनीय हैं। शीघ्र ही बाबू आनन्दस्वरूप और मुंशी ज्वालाप्रसाद भी उनके साथ सम्मिलित हो गये, और इन आर्य सज्जनों के प्रयत्न से ही सन् १८९२ में डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी की रजिस्ट्री करायी जा सकी। सोसायटी द्वारा सन् १८९३ में एक स्कूल मेरठ में खोला गया, जो उत्तरप्रदेश का सर्वप्रथम डी० ए० वी० शिक्षणालय था। बाद में (सन् १९०४ में) उसे देहरादून स्थानान्तरित कर दिया गया। वहाँ के एक सम्भ्रान्त आर्य सज्जन श्री पूर्णसिंह नेगी ने स्कूल के लिए न केवल एक विशाल भवन और छात्रावास ही तैयार करा दिया था, अपितु लगभग दो लाख रुपये की अपनी कुल सम्पत्ति भी स्कूल के लिए डी० ए० वी० सोसायटी को प्रदान कर दी थी।

प्रारम्भ में डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी का कार्यालय मेरठ में था, और श्री लक्ष्मणस्वरूप उसके प्रधान थे। उनके निधन के पश्चात् राय शंकरसहाय सोसायटी के प्रधान निर्वाचित हुए, और उसके कार्यालय को मेरठ से कानपुर ले आया गया। सन् १९०७ में सोसायटी द्वारा कानपुर में एक रात्रि पाठशाला स्थापित की गई थी, दस वर्ष बाद सन् १९१७ में जहाँ दिन में पढ़ाई होने लगी थी, और उस शिक्षण-संस्था ने एक सुव्यवस्थित हाईस्कूल का रूप प्राप्त कर लिया था। कानपुर के आर्य सज्जन इस शिक्षण-संस्था की प्रगति में विशेष उत्साह प्रदर्शित कर रहे थे, और वे चाहते थे कि उनके नगर में उसी प्रकार से डी० ए० वी० शिक्षणालय स्थापित हो जाएँ, जैसे कि लाहौर में विद्यमान थे। इसी प्रयोजन से बाबू बंशीधर ने २५,००० रुपये नकद, ५० एकड़ भूमि तथा अपनी जायदाद की कुल आमदनी डी० ए० वी० सोसायटी को दान कर दी थी। कानपुर के अन्य आर्य भी कॉलिज के लिए तन, मन, धन से सहायता करने को उद्यत थे। इस दशा में डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी ने ६ नवम्बर, १९१६ की बैठक में कानपुर में कॉलिज खोलने का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, और उसके लिए एक समिति की नियुक्ति कर दी, जिसमें मुंशी ज्वालाप्रसाद, बाबू आनन्दस्वरूप, पण्डित यमुनाप्रसाद पाण्डेय और बाबू चित्रसेन आदि अनेक प्रभावशाली व्यक्ति सदस्य रूप से सम्मिलित थे। कानपुर जैसे समृद्ध औद्योगिक नगर में कॉलिज के लिए धन एकत्र कर सकना कठिन नहीं था, और उसके बहुत-से प्रतिष्ठित नागरिक पूर्ण उत्साह से इस कार्य मे संलग्न थे। बाबू बंशीधर ने कॉलिज के लिए जो भूमि प्रदान की थी, वह नगर से दूर थी। वहाँ ऐसी शिक्षण-संस्था ही स्थापित की जा सकती थी, जिसमें विद्यार्थी छात्रावास में ही रहते हों। डी० ए० वी० सोसायटी के सदस्यों ने यत्न करके एक ऐसा स्थान कॉलिज के लिए क्रय कर लिया, जो कानपुर नगर में था और जो एक बड़ी शिक्षण-संस्था के लिए सर्वथा उपयुक्त था। इस स्थान पर एक बड़ा बँगला भी विद्यमान था। सोसायटी ने ३८,५०० रुपयों में इसे क्रय कर लिया, और ८ जुलाई, १९१९ के दिन महात्मा हंसराज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा वहाँ डी०ए०वी० कॉलिज का उद्घाटन करा दिया गया। कॉलिज के प्रथम प्रिंसिपल श्री दीवानचन्द नियुक्त हुए। वह डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर के लाइफ मेम्बर थे, और वहाँ पाश्चात्य दर्शन (फिलासफी) के प्रोफेसर थे। शुरू में उत्तरप्रदेश के इस प्रथम डी० ए० वी० कॉलिज में ७० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए, और उन्हें पढ़ाने के लिए १० प्राध्यापकों की नियुक्ति की गई। इण्टरमीडिएट कक्षाओं में आर्ट्स के विषयों के साथ-साथ कामर्स की कक्षाएँ भी शुरू कर दी गईं, और बी० ए० में केवल आर्ट्स विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। सन् १९२५ में भौतिकी, रसायन और गणित का इण्टर की कक्षाओं में समावेश किया गया, और दो वर्ष पश्चात् १९२७ में बी० ए० के अतिरिक्त बी० एस-सी० की पढ़ाई भी कॉलिज में प्रारम्भ कर दी गई। इस समय तक कानपुर का यह डी० ए० वी० कॉलिज इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध था। सन् १९२७ में आगरा यूनिवर्सिटी के स्थापित हो जाने पर उसका सम्बन्ध इस नयी यूनिवर्सिटी के साथ हो गया, और एक वर्ष बाद सन् १९२८ में बी० कॉम० और एल-एल० बी० के लिए भी उसे आगरा यूनिवर्सिटी द्वारा मान्यता प्राप्त हो गई। अगले साल सन् १९२९ में वहाँ एम० ए० की पढ़ाई भी प्रारम्भ कर दी गई। इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना चाहिये, कि सन् १९२९ में आगरा यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध कॉलिजों में कानपुर का डी० ए० वी० कॉलिज ही एकमात्र ऐसा कॉलिज था, जिसमें आर्ट्स, साइन्स, कामर्स तथा लॉ—चारों फैकल्टियाँ विद्यमान थीं। सन् १९१९ में स्थापित यह कॉलिज जो दस साल की अवधि में इतनी उन्नति कर गया था, उसका प्रधान श्रेय प्रिंसिपल दीवानचन्द तथा डी० ए० वी० सोसायटी के प्रधान बाबू आनन्दस्वरूप और डा० वृजेन्द्रस्वरूप को प्राप्त है। श्री दीवानचन्द सन् १९१९ से १९४० तक कॉलिज के प्रिंसिपल रहे, और बाबू आनन्दस्वरूप सन् १९१९ से १९३१ तक डी० ए० वी० सोसायटी के प्रधान पद पर रह कर इस शिक्षण-संस्था की उन्नति के लिए उत्साह एवं निष्ठा के साथ कार्य करते रहे। उनके पश्चात् डा० वृजेन्द्रस्वरूप सोसायटी के प्रधान बने, और सन् १९५२ तक उन्होंने इस संस्था का संचालन किया। सन् १९४० में जब श्री दीवानचन्द ने कॉलिज के प्रिंसिपल पद से अवकाश ग्रहण किया, तो उसके विद्यार्थियों की संख्या ७७२ हो गई थी, और उसमें ३६ प्राध्यापक अध्यापन का कार्य कर रहे थे। बाद में इस कॉलिज ने जो असाधारण उन्नति की, और जो यह उत्तरप्रदेश की सबसे बड़ी शिक्षण-संस्था बन गया, उस पर आगे चलकर यथा स्थान प्रकाश डाला जाएगा।

सन् १९०४ में देहरादून में जो छोटा-सा विद्यालय मेरठ से स्थानान्तरित किया गया था, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सन् १९२२ में वह इण्टरमीडिएट कॉलिज बन गया, और सन् १९४६ में डिग्री कॉलिज। बाद में देहरादून के इस डी० ए० वी० कॉलिज ने असाधारण तेजी से उन्नति की, और कुछ ही समय में कानपुर के समान देहरादून में भी डी० ए० वी० शिक्षणालयों का खूब विस्तार हुआ। डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी, कानपुर के तत्त्वावधान में उन्नाव, लखनऊ और बछरावाँ (रायबरेली) में भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित हुईं, और शिक्षाविषयक उसके कार्यकलाप का निरन्तर विस्तार होता गया।

उत्तरप्रदेश में कुछ ऐसे डी० ए० वी० शिक्षणालय भी हैं, जिनका कानपुर की डी० ए० वी० सोसायटी के साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा एक शिक्षणालय लखनऊ में है,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका संचालन गणेशगंज (लखनऊ) आर्यसमाज के हाथों में है। आजमगढ़, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, रुड़की आदि अन्यत्र भी डी० ए० वी० कॉलिज विद्यमान हैं, जिनमें बी० ए० तथा उससे भी ऊपर की शिक्षा की व्यवस्था है। इनका संचालन स्थानीय आर्य विद्या सभाओं द्वारा किया जाता है। इण्टरमीडिएट तथा हाईस्कूल स्तर तक की शिक्षा देने वाले तो बहुत-से डी० ए० वी० शिक्षणालय उत्तरप्रदेश के विविध नगरों में स्थापित हैं। गुजरात, जम्मू-कश्मीर, बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि अन्य प्रदेशों में भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता है, और इस पद्धति के शिक्षणालयों का एक जाल-सा सारे भारत में बिछा हुआ है। केवल भारत में ही नहीं, अपितु कतिपय विदेशी राज्यों में भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं। उत्तरी भारत में डी० ए० वी० आन्दोलन इतना प्रबल व सशक्त हो गया था, कि विदेशों में बसे हुए भारतीयों पर भी उसका प्रभाव पड़ा, और उन्होंने वहाँ भी डी० ए० वी० शिक्षणालयों की स्थापना की। इन सब शिक्षण-संस्थाओं पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप में डी० ए० वी० संस्थाओं का स्थान सर्वोपरि है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति

(१) गुरुकुल की नयी व्यवस्था

सन् १९१९ में रॉलट एक्ट के विरुद्ध भारत में जो उग्र आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में हुआ था, उसके कारण देश में राष्ट्रीय भावना को बहुत बल मिला था। जनता का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर भी आकृष्ट होने लगा था, और गुरुकुल के सम्बन्ध में जो लेख देश-विदेश के विद्वानों व नेताओं द्वारा लिखे जा रहे थे, उन्हें पढ़कर लोगों की दृष्टि में गुरुकुल के महत्त्व में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। स्वामी श्रद्धानन्द अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष चुने गये थे, और रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन में गांधीजी का साथ दे रहे थे। इस दशा में वह केवल आर्यसमाज के नेता ही नहीं रह गये थे, अपितु देश के राष्ट्रीय नेताओं में भी उन्होंने सम्मानास्पद स्थान प्राप्त कर लिया था। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारियों ने अब यह अनुभव किया कि गुरुकुल में उनका रहना आवश्यक है, और उनके मार्गदर्शन तथा संचालन में ही यह संस्था समुचित उन्नति कर सकती है। इसलिए वे स्वामीजी से पुनः गुरुकुल का भार सँभालने के लिए अनुरोध करने लगे और उनके गुरुकुल आने में कोई वैधानिक बाधा न हो, इसलिए ला० रामकृष्ण ने मुख्याधिष्ठाता पद से और श्री रामदेव ने आचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया। इनके त्यागपत्रों को स्वीकृत करते हुए प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने २५ माघ, संवत् १९७६ (सन् १९१९) को यह प्रस्ताव स्वीकृत किया—

"वर्तमान अवस्था में इस सभा की सम्मति में श्री स्वामी श्रद्धानन्द ही पूर्ण योग्यता से इस कार्य का सम्पादन कर सकते हैं। इसलिए यह सभा सर्वसम्मति से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करती है कि वे पूर्ववत् इस कार्य को सँभालने की कृपा करें। सभा उनको गुरुकुल का आचार्य और मुख्याधिष्ठाता नियत करती है। श्री स्वामीजी के वही अधिकार होंगे जो उन दिनों में थे, जब वे गुरुकुल के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता थे। चूंकि स्वामीजी की शारीरिक अवस्था इस योग्य नहीं है कि वे अन्तरंग सभा के प्रत्येक अधिवेशन में सम्मिलित हो सकें, इसलिए निश्चय हुआ कि गुरुकुल के प्रबन्ध-सम्बन्धी सब अधिकार प्रधान सभा श्री विश्वम्भरनाथ को प्राप्त होंगे।"

सभा द्वारा इस प्रस्ताव के स्वीकृत कर लिये जाने पर स्वामी श्रद्धानन्द ११ फरवरी, सन् १९२० में फिर गुरुकुल आ गये। गुरुकुल को पुनः सँभाल लेने से पूर्व स्वामीजी ने सभा के अधिकारियों के सम्मुख कुछ शर्तें रखी थीं, जिनमें मुख्य ये थीं—(१) गुरुकुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रवन्ध व्यवस्था तथा पाठविधि में जो परिवर्तन परीक्षण के लिए किये जाएँ, दो वर्ष तक सभा उनमें कोई हस्तक्षेप न करे। (२) गुरुकुल के धन को पृथक् सूद पर रखा जाए। (३) गुरुकुल के प्रिंटिंग प्रेस के लिए दस हजार रुपये स्वीकृत किये जाएँ। (४) गुरुकुल में कृषि, उद्योग और व्यापार की शिक्षा के लिए पृथक् विभाग व महाविद्यालय खोलने की स्पष्ट अनुमति दी जाए। इन शर्तों को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है, कि स्वामीजी के सम्मुख गुरुकुल को एक बहु-उद्देशीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने की योजना विद्यमान थी, और इसी को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने पुनः गुरुकुल का आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता बनना स्वीकार किया था। जिस प्रस्ताव द्वारा प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने स्वामीजी को गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता के पदों पर पुनः नियुक्त किया था, उससे यह ध्वनि निकलती है कि सभा स्वामीजी को उनकी इच्छा के अनुसार गुरुकुल का संचालन करने देने के लिए सहमत थी। गुरुकुल आकर स्वामीजी ने प्रेस की उन्नति पर ध्यान दिया, और 'श्रद्धा' नाम से एक नये साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। २३ जुलाई, १९२० के 'श्रद्धा' के अंक में 'भारतवासियों पर गुरुकुल के अधिकार' शीर्षक से एक लेख स्वामीजी ने लिखा, जिसमें गुरुकुल के लिए बीस लाख रुपयों की अपील की गयी थी, और यह संकल्प प्रकट किया गया था, कि इस राशि को एकत्र करने के लिए स्वामीजी भारत और बरमा का दौरा करेंगे। एक मास बाद 'श्रद्धा' में उन्होंने 'गुरुकुल काँगड़ी की वर्तमान दशा' शीर्षक से एक अन्य लेख लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित थीं—"आज ही मैं गुरुकुल के लिए स्थिर राशि एकत्र करने के उद्देश्य से कुलभूमि से बाहर जा रहा हूँ।...वहाँ से बम्बई टिक कर काम करूँगा। बम्बई से लौटकर कुछ दिन गुरुकुल में बिता ब्रह्मदेश पहुँचने का विचार है। नवम्बर मास के मध्य से दिसम्बर के मध्य तक वहीं रहूँगा। ब्रह्मदेश से लौटकर पंजाब के ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में घूमने का संकल्प है। पंजाब की जनता में गुरुकुल के लिए असीम प्रेम है। गुरुकुल काँगड़ी ने देवियों के हृदय में विशेष स्थान बना लिया है। यदि आज से ही वे मुझे भिक्षा देने की तैयारी करने लग जाएँ तो आश्चर्य नहीं कि ५-६ लाख रुपया पंजाब से ही एकत्र हो जाए।" पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण स्वामीजी अपनी यात्रा पूरी नहीं कर सके। फिर भी ६० हजार रुपये वह गुरुकुल के लिए एकत्र कर ही लाए, जिससे आयुर्वेद और कृषि के लिए दो प्राध्यापकों के स्थिर पीठों (Chairs) की व्यवस्था हो गयी। यद्यपि स्वामीजी गुरुकुलविषयक अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए समुचित धनराशि एकत्र नहीं कर सके थे, पर कृषि और आयुर्वेद सदृश जिन विषयों की शिक्षा का उनकी दृष्टि में बहुत महत्त्व था, उनकी पढ़ाई के लिए कुछ धन जुटाने में उन्हें अवश्य सफलता प्राप्त हो गयी थी।

गुरुकुल के स्वरूप के सम्बन्ध में महाशय कृष्ण और उनके साथियों के स्वामीजी से जो मतभेद थे, वे अब फिर प्रकट होने शुरू हो गये थे। जिन दिनों स्वामीजी गुरुकुल के स्थिर कोष के लिए धन एकत्र करने के प्रयोजन से भारत और बरमा का भ्रमण कर रहे थे, महाशयजी ने अपने पत्र 'प्रकाश' में अनेक लेख लिखे, जिनमें यह बात उठायी गयी थी, कि गुरुकुल के उद्देश्यों का निर्धारण कर लेना बहुत आवश्यक है। इसका अभिप्राय यह था, कि अभी गुरुकुल के उद्देश्य निश्चित नहीं हैं, और उसके सम्बन्ध में किसी भावी योजना के निर्माण से पूर्व यह तय कर लेना चाहिये कि गुरुकुल खोला क्यों गया है। जिस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतभेद व विवाद का उल्लेख इस ग्रन्थ में 'डिविनिटी कॉलिज या विश्वविद्यालय' शीर्षक से किया जा चुका है, वह फिर उठ खड़ा हुआ, और स्वामी श्रद्धानन्द यह अनुभव करने लगे कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारी गुरुकुल की प्रगति के उनके प्रयत्न में रोड़े अटका रहे हैं। इसीलिए १० जून, १९२० को उन्होंने सभामन्त्री के नाम एक पत्र में लिखा था—"गुरुकुल का कार्यभार पुनः सँभालने से पहले यदि मुझे उन कठिनाइयों का पता लग जाता, जो इसके मार्ग में पड़ चुकी हैं, तो मैं फिर से काम सँभालने का साहस न करता। परन्तु जब एक बार बोझ उठा चुका हूँ तो किसी मंजिल तक उसे पहुँचाने का यत्न करूँगा।" इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल के स्वरूप, प्रयोजन और उद्देश्य के सम्बन्ध में जो मतभेद चिरकाल से चले आ रहे थे, वे अब पुनः उग्र रूप में प्रकट होने प्रारम्भ हो गये थे। इस दशा में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने २२ मार्च, १९२१ को इस आधार-भूत मतभेद को दूर करने तथा गुरुकुल के सम्बन्ध में विविध दृष्टिकोणों में समन्वय करने के लिए प्रयत्न किया, और उसके परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकृत किया गया—

"(१) शिक्षा सम्बन्धी क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्तमान गुरुकुल को एक ऐसे विश्वविद्यालय के रूप में परिणत किया जाए, जिसमें भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षा दी जा सके। इसलिए निश्चय हुआ कि इस विश्वविद्यालय के साथ निम्नलिखित महाविद्यालय सम्बन्धित होंगे—(क) वेद महाविद्यालय, (ख) साधारण महाविद्यालय, (ग) आयुर्वेदिक महाविद्यालय, (घ) कृषि महाविद्यालय, (ङ) व्यवसाय महाविद्यालय।

(२) संख्या क, ख का गुरुकुल में पहले से परस्पर सम्बन्ध अधिक रहा है। अब वे उचित परिवर्तन के पश्चात् काँगड़ी में पृथक्-पृथक् चलाये जाएँ। उनका वार्षिक व्यय विद्यालय के ऊपर लगभग बराबर हुआ करे। अब तक का एकत्रित धन या सम्पत्ति या जो आगे को प्राप्त हो, इन्हीं के लिए अर्पित रहेगा, जिसका नाम गुरुकुल-धन होगा, सिवाय उसके जो किसी विशेष कार्य के लिए प्राप्त हो।

(३) संख्या ग, घ, ङ महाविद्यालय उनके सम्बन्धी उचित धन प्राप्त होने पर प्रारम्भ किये जाएँगे, जब यह सभा संचित धन और स्थानादि का विचार करके आज्ञा दे।

(४) सब विद्यालय जो सभा की ओर से या सभा की आज्ञानुसार गुरुकुल के नाम से खोले हुए हों या खोले जाएँ, संख्या 'ख' महाविद्यालय से सम्बन्धित होंगे।

(५) ग, घ, ङ महाविद्यालय काँगड़ी से बाहर खोले जाएँ और उनमें गुरुकुल विद्यालय और अन्य विद्यालयों के छात्र अन्तरंग सभा के बनाये नियमानुसार प्रविष्ट होंगे।

(६) आयुर्वेदिक और कृषि महाविद्यालयों के पृथक्-पृथक् खुलने तक इन विषयों की जो पढ़ाई अब होती है वह केवल विशेष विषय के रूप में ही साधारण महाविद्यालय में होती रहेगी, परन्तु अनिवार्य (Compulsory) विषयों में इन विद्यार्थियों की योग्यता न्यून न हो और इनको कोई पृथक् प्रमाणपत्र नहीं दिया जाएगा और इन विषयों पर वही धन व्यय होगा जो इनके लिए प्राप्त होवे। गुरुकुल के धन में से जो वार्षिक व्यय अब होता है, वह दस वर्ष में दस प्रतिशत के हिसाब से कम करके बन्द किया जाएगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) इन सबकी पाठविधि और प्रबन्ध के नियम अन्तरंग सभा बनाएगी।

(८) इस विश्वविद्यालय के प्रबन्ध आदि के लिए एक विद्यासभा बनायी जाए, तब तक अन्तरंग सभा कार्य करेगी।"

२२ मार्च, १९२१ को पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत यह प्रस्ताव गुरुकुल की भावी प्रगति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण था। गुरुकुल के स्वरूप और प्रयोजन के सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब में जो मतभेद चिरकाल से चला आ रहा था, इस प्रस्ताव द्वारा उसे दूर कर एक ऐसी व्यवस्था का सूत्रपात करने का प्रयत्न किया गया था, जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो। सभा द्वारा उच्च शिक्षा के लिए गुरुकुल का मुख्य विभाग 'वेद महाविद्यालय' को बनाया गया। लाला रलाराम के हस्ताक्षरों के साथ प्रकाशित गुरुकुल की प्रथम नियमावली में इसी को 'वेद विभाग' कहा गया था। इसमें वेदों के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया गया था, और इसके विद्यार्थियों को पर्याय विषय के रूप में भी वेदशास्त्रों का विशिष्ट अध्ययन करना होता था। साधारण महाविद्यालय (Arts College) को वेद महाविद्यालय से संयुक्त रखा गया, केवल इस भेद के साथ कि इसके विद्यार्थी पर्याय विषय के रूप में इतिहास, रसायन, पाश्चात्य दर्शन आदि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में से किसी एक को चुन सकते थे। संस्कृत, वेद, दर्शन आदि की पढ़ाई इनके लिए भी अनिवार्य थी, और ठीक उसी स्तर की जैसी कि वेद महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए थी। गुरुकुल की प्रथम नियमावली में इसी महाविद्यालय को 'गौण विभाग' कहा गया था। अब तक कृषि और आयुर्वेद भी इतिहास, रसायन आदि के समान पर्याय विषय थे। अब यह निश्चय किया गया, कि इनकी पढ़ाई वेद महाविद्यालय या साधारण महाविद्यालय में न होकर इन्हीं के लिए स्थापित पृथक् महाविद्यालयों में हो। पर जब तक कृषि महाविद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय की पृथक् रूप से स्थापना न हो जाए, इन विषयों की पढ़ाई पूर्ववत् साधारण महाविद्यालय में होती रहे। व्यवसाय महाविद्यालय (Industrial College) को भी पृथक् रूप से स्थापित करने का निर्णय अब सभा द्वारा कर लिया गया था। पर इन तीन (आयुर्वेद, कृषि और व्यवसाय) महाविद्यालयों के सम्बन्ध में तीन ऐसी बातें तय की गयीं, जो अत्यन्त महत्त्व की थीं--(१) इन महाविद्यालयों को काँगड़ी में न रखकर अन्यत्र रखा जाए। (२) इनमें ऐसे विद्यार्थी भी प्रवेश पा सकें जिन्होंने कि विद्यालय विभाग की शिक्षा गुरुकुल के छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर प्राप्त न की हो, जिनकी शिक्षा किसी अन्य विद्यालय में हुई हो। (३) इन तीनों महाविद्यालयों पर केवल वही धन व्यय किया जाए, जिसे इन्हीं के लिए एकत्र किया गया हो। गुरुकुल की निधि में जो धन पहले विद्यमान है या भविष्य में प्राप्त हो, उसे इनके लिए खर्च न किया जा सके। क्योंकि आयुर्वेद और कृषि की कक्षाएँ गुरुकुल में खुल चुकी हैं, अतः इन पर अभी गुरुकुल की निधि से ही खर्च किया जाता रहे, पर प्रति वर्ष व्यय की इस राशि में १० प्रतिशत की कमी कर दी जाए, और इस प्रकार दस वर्षों बाद इन विषयों पर गुरुकुल की निधि से कुछ भी खर्च न हो।

मार्च, १९२१ में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव को यदि अविकल रूप से क्रियान्वित कर दिया जाता, तो गुरुकुल सच्चे अर्थों में एक विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लेता। उस दशा में गुरुकुल काँगड़ी के परिसर में गुरुकुल विद्यालय, वेद महाविद्यालय और साधारण महाविद्यालय की ही स्थिति रहती। इनमें केवल वे ब्रह्मचारी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही शिक्षा प्राप्त करते, जिन्होंने कि सात या आठ साल की आयु में गुरुकुल में प्रवेश किया हो और जो वहाँ निरन्तर ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन बिताते रहे हों। काँगड़ी के इस गुरुकुल का वातावरण पूर्णतया प्राचीन आरण्यक-आश्रमों या आचार्यकुलों के सदृश होता, और उसमें पठन-पाठन के उन्हीं मूल तत्त्वों का परिपालन किया जाता, जिनका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में किया था। पर अधिक व्यापक क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लाभों को प्राप्त कराने तथा प्रारम्भ से गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने वाले ऐसे विद्यार्थियों, जिनकी प्रवृत्ति वेद-वेदांगों के उच्च अध्ययन की ओर न हो या जिनकी ब्राह्मणवृत्ति न हो, के लिए उनकी प्रवृत्ति व क्षमता के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करने के प्रयोजन से आयुर्वेद, कृषि तथा व्यवसाय महाविद्यालयों की स्थापना का भी सभा ने निर्णय कर लिया था। जैसा कि सभा के प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया था, यदि इन महाविद्यालयों को गुरुकुल काँगड़ी के परिसर में न रखकर कहीं अन्यत्र स्थापित किया जाता, तो गुरुकुल के वातावरण में उन तत्त्वों का प्रवेश न हो पाता, जो उसके आरण्यक-आश्रम के स्वरूप के लिए विघातक हो सकते थे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने भी सभा के इस प्रस्ताव का स्वागत किया था। १५ फाल्गुन, संवत् १९७७ (सन् १९२०) के 'श्रद्धा' के अंक में इस प्रस्ताव पर टिप्पणि करते हुए उन्होंने लिखा था—"यह परिवर्तन देखने में सामान्य प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः इनसे गुरुकुल का रूप ही बदल जायगा। इससे अनेक परिणाम उत्पन्न होंगे। एक तो यह कि गुरुकुल सर्वसामान्य प्रजा के लिए उपयोगी हो सकेगा और दूसरा यह कि विश्वविद्यालय के जुदा होने से वैदिक अनुशीलन और आर्य सिद्धान्त की ओर विशेष ध्यान दिया जा सकेगा। इससे दोनों प्रकार की सम्मतियाँ रखने वाले लोगों का उद्देश्य सिद्ध हो जायगा। गुरुकुल के मौलिक दोनों उद्देश्य भिन्न-भिन्न प्रबन्ध में परन्तु एक ही विद्यासभा के निरीक्षण में पूर्ण होते जायेंगे। यह जानकर आर्य जनता को और भी तसल्ली होगी कि अन्तरंग सभा का यह भी विचार ज्ञात हुआ है, कि प्रस्तावित विश्वविद्यालय का केन्द्र काँगड़ी में ही रहेगा। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में अन्तरंग सभा ने बड़ी बुद्धिमत्ता से कार्य लिया है।"

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने के पश्चात् के काल में यदि स्वामी श्रद्धानन्द के हाथों में गुरुकुल का संचालन रहता, और वह अपनी सब शक्ति व समय इस प्रस्ताव को क्रियान्वित कर गुरुकुल को एक विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने में लगा सकते, तो गुरुकुल का भविष्य कितना उज्ज्वल होता, इसकी कल्पना सहज में की जा सकती है। गुरुकुल के स्वरूप व प्रयोजन के सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा में जो मतभेद थे, अब उनका अन्त हो गया था और सभा के सभी नेताओं व कार्यकर्ताओं का सहयोग गुरुकुल की उन्नति के लिए प्राप्त किया जा सकता था। पर भवितव्यता को यह स्वीकार्य नहीं था। सन् १९२० में महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन बहुत प्रबल हो गया था। छह मास में स्वराज्य प्राप्त करने का प्रोग्राम गांधीजी ने देश के सम्मुख रखा था, जिसके कारण जनता में अनुपम राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हो गयी थी। स्वामी श्रद्धानन्द देश की स्वतन्त्रता के इस संघर्ष से अपने को पृथक् नहीं रख सके। रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण उन्होंने भारत के राष्ट्रीय नेताओं में अत्यन्त उच्च व सम्मानास्पद स्थिति प्राप्त कर ली थी। इस कारण भी उनके लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सम्भव नहीं रहा था, कि वह स्वाधीनता के लिए प्रारम्भ किये गये नये संघर्ष में भाग न लें। उन्होंने यही उचित समझा कि असहयोग आन्दोलन में लग जाएँ। सभा के प्रधान लाला रामकृष्ण को अपने निर्णय की सूचना देते हुए उन्होंने लिखा था---

"इस समय मेरी सम्मति में असहयोग की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि का भविष्य निर्भर है। यदि यह आन्दोलन अकृतकार्य हुआ और महात्मा गांधी को सहायता न मिली तो देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न पचास वर्ष पीछे जा पड़ेगा। इसलिए मैं इस काम में शीघ्र ही लग जाऊँगा। यदि आप की सम्मति में इस काम में लगने के लिए मुझे गुरुकुल या आर्यसमाज के काम से अलग हो जाना चाहिये तो जैसा पत्र आप तजवीज करेंगे मैं पब्लिक में भेज दूँगा। मैं इस कार्य से रुक नहीं सकता। मुझे यह काम इस समय सर्वोपरि दीखता है।" यह पत्र स्वामीजी ने २५ सितम्बर, १६२० को लिखा था। पर वह इसके तुरन्त बाद गुरुकुल से नहीं चले गये। असहयोग आन्दोलन में हाथ बँटाते हुए भी गुरुकुल का संचालन उनके हाथों में रहा। पर यह दशा देर तक नहीं रह सकी। जून, १६२१ में वह गुरुकुल छोड़कर चले गये। असहयोग आन्दोलन में जी-जान से जुट जाने की आकांक्षा ही थी, जिसने उन्हें गुरुकुल से चले जाने के लिए विवश कर दिया था। यदि स्वामीजी शीघ्र गुरुकुल से न चले जाते तथा कुछ समय और इस संस्था के कर्णधार बने रहते, तो वह अपने सपनों को अवश्य पूरा कर सकते थे क्योंकि अब उनके मार्ग में सभा द्वारा कोई बाधा उपस्थित करने का प्रश्न ही नहीं रह गया था। पर गुरुकुल से चले जाने के बाद भी इस संस्था का हित सदा स्वामीजी के सम्मुख रहा, और उसकी उन्नति व भावी प्रगति के सम्बन्ध में अपने स्वप्नों को पूरा करने के लिए वह प्रयत्न करते रहे। वह चाहते थे, कि गुरुकुल की रजत जयन्ती से पूर्व इतना धन एकत्र कर लिया जाए, जिससे कि जयन्ती के अवसर पर शिल्प महाविद्यालय या व्यवसाय महाविद्यालय की स्थापना की जा सके। अपने अंग्रेजी पत्र 'लिबरेटर' में 'माई स्पेशल अपील' शीर्षक से उन्होंने एक लेख लिखा था, जिसका कुछ अंश इस प्रकार था—'मैं सवा लाख की विशेष अपील करना चाहता हूँ। गुरुकुल की स्थापना के समय से ही मैं घरेलू उद्योग-धन्धों की शिक्षा के लिए शिल्प महाविद्यालय खोलने के यत्न में रहा हूँ। दो उदार दानियों ने उनके लिए बड़ी धनराशि देने के वायदे भी किये, किन्तु दुर्भाग्यवश उन दोनों का शीघ्र ही देहावसान हो गया। गुरुकुल से विदाई ले लेने पर भी मैं सेठ रग्घूमल से उक्त महाविद्यालय के लिए पाँच लाख दान देने का आग्रह करता रहा। उन्होंने मुझे स्कीम बनाने के लिए कहा ही था, कि निष्ठुर मौत ने उनको हमारे बीच में से उठा लिया। आशा है, उनके ट्रस्ट के ट्रस्टी गुरुकुल के इस अधिकारपूर्ण दावे को नहीं भूलेंगे। पर ऐसे दिन की प्रतीक्षा में हमें बैठे नहीं रहना चाहिये, जिस दिन इतना बड़ा कोई फण्ड हाथ में आए और काम शुरू हो। पचास हजार मकान के लिए, पचास हजार सामान के लिए और पैंतीस हजार चालू खर्च के लिए चाहिये। छोटी रकम से कुछ न होगा। १२५ उदार दानी ऐसे चाहिये, जो एक-एक हजार रुपया अपने पास से या मित्रों से इकट्ठा करके भेज दें। कोई-कोई उदार दानवीर तो दो, पाँच या दस हजार तक भी दे सकते हैं। अपनी प्रिय संस्था के लिए यह मेरी अन्तिम अपील है।" वस्तुतः, स्वामीजी की यह अन्तिम अपील ही थी। कुछ समय बाद ही एक धर्मान्ध मुसलमान ने उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी, और गुरुकुल के सम्बन्ध में उनका स्वप्न पूरा नहीं हो सका।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द इस बार केवल सवा साल के लगभग (फरवरी, १९२० से जून, १९२१ तक) गुरुकुल रहे। इस स्वल्प काल में उन्होंने जहाँ गुरुकुल के स्वरूप व उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित करा दिया, वहाँ साथ ही गुरुकुल में एक वैदिक अनुसन्धान विभाग की भी स्थापना कर दी (१९२०)। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक पं० देवशर्मा को इस विभाग में शोधकार्य के लिए नियुक्त किया गया। स्वामीजी ने इस काल में यह भी यत्न किया, कि विविध आर्य प्रतिनिधि सभाओं के तत्त्वावधान में स्थापित सब गुरुकुलों को एक सूत्र में संगठित कर दिया जाए, ताकि वे सब मिल कर एक विशाल विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर सकें।

(२) काँगड़ी में भयंकर बाढ़ और नये स्थान पर गुरुकुल का पुनर्निर्माण

जून, १९२१ में स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल से चले जाने पर पण्डित विश्वम्भर-नाथ को उनके स्थान पर मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया। गुरुकुल की स्थापना के समय से ही पण्डितजी पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा और उसकी अन्तरंग सभा के सदस्य थे, और अनेक बार सभा के कोषाध्यक्ष एवं उपप्रधान रह चुके थे। कुछ समय के लिए वह सभा के प्रधान भी रहे थे। स्वामीजी को उन पर बहुत विश्वास था। संन्यास आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व उन्होंने पण्डित विश्वम्भरनाथ को लिखा था—"उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो मेरे और तुम्हारे लिए इतना प्रिय रहा, तुम्हें साहसपूर्वक बाहर आ जाना चाहिये।" पण्डितजी ने अब स्वामीजी की इच्छा पूर्ण की, और मुख्याधिष्ठाता बन कर वे गुरुकुल आ गये। आचार्य का पद स्वामी सत्यानन्द ने ग्रहण किया, और इन दो प्रतिष्ठित आर्य नेताओं द्वारा गुरुकुल का कार्यभार सँभाल लिया गया। शिक्षा की व्यवस्था प्रोफेसर रामदेव के हाथों में रही, जो अब उपाचार्य के पद पर नियुक्त हो गये थे। सन् १९२४ में स्वामी सत्यानन्द के त्यागपत्र दे देने पर रामदेवजी आचार्य बन गये, और उपाचार्य के पद पर पं० विश्वनाथ विद्यालंकार की नियुक्ति कर दी गयी। इस प्रकार नये पदाधिकारियों के हाथों में गुरुकुल की बागडोर आ गयी।

पण्डित विश्वम्भरनाथ प्रबन्धकार्य में अत्यन्त दक्ष थे। गुरुकुल की आन्तरिक व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किये। गुरुकुल के बजट को उन्होंने नये ढंग से व्यवस्थित किया। गुरुकुल के व्यय को ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण और शिक्षा—इन दो भागों में विभक्त कर उन्होंने यह नियम बना दिया कि एक विभाग का धन दूसरे विभाग पर खर्च न किया जाए। भरण-पोषण में केवल वही धन खर्च किया जाए, जो संरक्षकों से फीस द्वारा और छात्रवृत्तियों की आमदनी से प्राप्त हो। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क थी, अतः यह नियम बनाया गया कि शिक्षा पर वह धन व्यय किया जाए, जो दान से प्राप्त हो या किसी विषय की पढ़ाई के लिए दानियों द्वारा दी गई धनराशि के सूद से प्राप्त हो। अनेक दानियों ने तीस-तीस हजार रुपये व उसके लगभग राशि दान देकर गुरुकुल में अनेक पीठ (Chairs) कायम कर दिये थे। उनकी सूद की आमदनी शिक्षा में व्यय की जाती थी। उस समय सूद की दर ६ प्रतिशत थी। ३०,००० रुपये का सूद १,८०० रुपये वार्षिक प्राप्त होता था, जो प्राध्यापक के १५० रु० मासिक वेतन के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्याप्त होता था।[1] अनेक दानियों ने २००० से लगाकर ३०,४३० रुपये तक की राशियाँ इस प्रयोजन से प्रदान की थीं, कि उनके सूद से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को छात्रवृत्तियाँ दी जा सकें, और ऐसे बालक भी गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर सकें, जिनके माता-पिता भोजन-वस्त्र का पूरा शुल्क प्रदान नहीं कर सकते। इस प्रकार की छात्रवृत्तियों के लिए प्राप्त धनराशि १,८४,०२१ रुपये थी।

गुरुकुल ने अब विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया था। अतः यह आवश्यकता समझी गई, कि उसका एक शिक्षा पटल (Board of Studies) भी होना चाहिये। उस समय तक पाठविधि के निर्धारण करने का कार्य कॉलिज कौंसिल किया करती थी। सब प्राध्यापक उसके सदस्य हुआ करते थे। एक विषय को पढ़ाने के लिए तब प्रायः एक ही प्राध्यापक होता था, और वही अपने विषय की पाठविधि निर्धारित किया करता था। यह बात सन्तोषजनक नहीं थी। पाठविधि बनाने और परीक्षाएँ लेने के लिए अब जो शिक्षा-पटल बनाया गया (सन् १९२३), उसके निम्नलिखित सदस्य होते थे—(१) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान, (२) गुरुकुल काँगड़ी का मुख्याधिष्ठाता, (३) गुरुकुल

१. गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में प्राध्यापकों (उपाध्यायों) के वेतन के लिए प्रदत्त धनराशियों का विवरण इस प्रकार है—

(१) आर्य प्रतिनिधि सभा, ईस्ट अफ्रीका से आर्यसिद्धान्त के लिए	३०,००० रुपये
(२) डा० प्राणजीवन मेहता, रंगून से प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के लिए	३०,००० रुपये
(३) पं० ठाकुरदत्त शर्मा, अमृतधारा लाहौर से वैदिक शोधकार्य के लिए	३०,००० रुपये
(४) श्री वी० डी० मेहता, रंगून से आयुर्वेद के लिए	२५,००० रुपये
(५) आयुर्वेद के लिए विविध सज्जनों का सम्मिलित दान	३०,८७४ रुपये
(६) श्री कृपाराम, रावलपिण्डी से आर्य सिद्धान्त के लिए	२३,००० रुपये
(७) अफ्रीका के आर्य बन्धुओं से वेद के लिए	३०,००० रुपये
(८) अफ्रीका के आर्य बन्धुओं से संस्कृत साहित्य के लिए	१७,५४२ रुपये
(९) श्री जगन्नाथ, कलकत्ता से आयुर्वेद के लिए	२९,११८ रुपये
(१०) लाला लब्भूराम नैयड़, लुधियाना के मित्र मण्डल से प्राच्य दर्शन के लिए	३०,००० रुपये
(११) डिपुटी निहालचन्द ट्रस्ट, दिल्ली से मुख्याध्यापक के लिए	२५,००० रुपये

इनके अतिरिक्त सेठ जमनालाल बजाज, वर्धा और शाहपुरा राज्य के महाराजकुमार ने तीस-तीस हजार रुपयों का ब्याज प्रतिवर्ष देते रहने की व्यवस्था की थी, जिससे कि गुरुकुल महाविद्यालय में दो प्राध्यापकों को वेतन दिया जाता रहे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँगड़ी विश्वविद्यालय के प्रत्येक महाविद्यालय के अध्यक्ष, (४) गुरुकुल काँगड़ी का आचार्य, (५) प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा द्वारा निर्वाचित छह व्यक्ति, जिनमें से कम से कम तीन शिक्षा के विशेषज्ञ हों, (६) गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के उपाध्यायों (प्राध्यापकों) द्वारा निर्वाचित तीन प्रतिनिधि, (८) गुरुकुल काँगड़ी के स्थायी सेवकों और दयानन्द सेवा सदन के सदस्यों द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि, (८) गुरुकुल के स्नातकों का एक प्रतिनिधि। यह व्यवस्था की गई, कि गुरुकुल काँगड़ी का मुख्याधिष्ठाता पदाधिकार से शिक्षा पटल का प्रधान हुआ करे, और पटल की बैठक के लिए सात सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य हो। पटल का एक मन्त्री नियुक्त किये जाने की भी व्यवस्था की गई, जिसे 'प्रस्तोता' कहा जाता था। गुरुकुल के प्रथम प्रस्तोता पण्डित महानन्द सिद्धान्तालंकार नियुक्त किये गये।

सन् १९२३-२४ में गुरुकुल काँगड़ी की अनेक नयी शाखाएँ भी खुलीं। इनमें सूपा (गुजरात) गुरुकुल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुजरात के आर्य बन्धुओं को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से बहुत प्रेम था, और बहुत-से गुजराती बालक गुरुकुल काँगड़ी में शिक्षा के लिए प्रवेश ग्रहण किया करते थे। गुजरात के आर्यसमाजियों की इच्छा थी, कि उनके क्षेत्र में भी एक गुरुकुल खोल दिया जाए, ताकि गुजराती बालकों को बचपन में काँगड़ी न जाना पड़े। पण्डित ईश्वरदत्त विद्यालंकार, श्री दयालजी लल्लूभाई और श्री भीणाभाई देवाभाई के परिश्रम से सन् १९२३ में गुजरात में गुरुकुल खोलने के लिए २५,००० रुपये एकत्र हुए, और वहाँ एक गुरुकुल सभा की स्थापना कर दी गई। सूरत जिले के बारदोली ताल्लुके में पूर्णा नदी के तट पर एक रमणीक स्थान गुरुकुल के लिए चुना गया, जो सूपा नामक गाँव के समीप था। १० फरवरी, सन् १९२४ को वहाँ गुरुकुल काँगड़ी की शाखा खोल दी गई, जो सूपा गाँव के नाम पर 'सूपा गुरुकुल' के नाम से प्रसिद्ध हुई। गुरुकुल सूपा की आधारशिला स्वामी श्रद्धानन्द महाराज के करकमलों द्वारा रखी गई थी। इस शाखा गुरुकुल में उसी पाठविधि को अपनाया गया, जो गुरुकुल काँगड़ी में थी। शीघ्र ही, सूपा में १० श्रेणियाँ हो गईं, और विद्यालय की शिक्षा वहाँ पूर्ण कर अधिकारी परीक्षा के लिए सूपा गुरुकुल के विद्यार्थी काँगड़ी आने लगे।

सन् १९२४ में ही गुरुकुल काँगड़ी की एक शाखा झज्झर (जिला रोहतक, हरयाणा) में खुली और एक भटिण्डा (पंजाब) में। झज्झर गुरुकुल की स्थापना में स्वामी ब्रह्मानन्द, महाशय विश्वम्भरनाथ और स्वामी परमानन्द का विशेष कर्तृत्व था। इन दोनों शाखा गुरुकुलों की आधारशिलाएँ भी स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा रखी गईं। यद्यपि स्वामीजी इस समय गुरुकुल के मुख्याधिष्टाता व आचार्य नहीं थे, पर इस शिक्षण-संस्था की उन्नति व विकास के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहा करते थे। उनके इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम था, कि सन् १९२३ में कन्या गुरुकुल की भी स्थापना हुई। गुरुकुल काँगड़ी के सन् १९२१ के वार्षिकोत्सव के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द ने यह घोषणा की थी, कि दिल्ली निवासी सेठ रघूमल कन्या गुरुकुल के लिए एक लाख रुपये दान देने को तैयार हैं। जब से काँगड़ी में गुरुकुल की स्थापना हुई थी, यह आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, कि कन्याओं के लिए भी एक पृथक् गुरुकुल होना चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द (तब महात्मा मुंशीराम) इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे, और अपने पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' में उन्होने अनेक बार जनता का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट किया। गुरुकुल काँगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नियमावली में यह टिप्पणि भी देर से प्रकाशित होती चली आ रही थी, कि साधन जुट जाने पर कन्याओं के लिए एक पृथक् गुरुकुल की स्थापना कर दी जाएगी। इस विचार को क्रियान्वित करने का समय सन् १९२३ में आया, जब सेठ रघूमल का एक लाख रुपये का दान कन्या गुरुकुल के लिए प्राप्त हो गया। दीपावली (सन् १९२३) के शुभ अवसर पर दिल्ली के दरियागंज मुहल्ले में एक बड़ी कोठी किराये पर लेकर कन्या गुरुकुल की स्थापना कर दी गई। यह गुरुकुल चार साल दिल्ली में रहा। बाद में उसे देहरादून ले आया गया, जहाँ वह अब तक विद्यमान है।

यह स्वीकार करना होगा कि पण्डित विश्वम्भरनाथ (मुख्याधिष्ठाता) और प्रोफेसर रामदेव (आचार्य) के कुशल व सशक्त हाथों में गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा था। उसके स्वरूप और उद्देश्यों के सम्बन्ध में प्रतिनिधि सभा के नेताओं में जो मतभेद था, वह अब दूर हो चुका था और गुरुकुल काँगड़ी का एक स्वतन्त्र एवं सुव्यवस्थित विश्वविद्यालय के रूप में विकास होने लग गया था। सन् १९१९-२१ के राष्ट्रीय आन्दोलन के वर्षों में गुरुकुल की लोकप्रियता में बहुत वृद्धि हो गई थी। महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किये गये असहयोग आन्दोलन के प्रोग्राम में सरकारी शिक्षणालयों के बहिष्कार को भी अन्तर्गत किया गया था। इसी के परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रीय विद्यापीठों की इस काल में स्थापना हुई थी। ये विद्यापीठ सरकारी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त थे। पर गुरुकुल काँगड़ी के रूप में एक ऐसा विश्वविद्यालय पहले से ही विद्यमान था, जो सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय था और जिस पर सरकार का कोई भी प्रभाव नहीं था। यह स्वाभाविक था, कि देश के नेताओं का ध्यान इस राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था की ओर आकृष्ट हो, और असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप स्थापित नये राष्ट्रीय विद्यापीठ गुरुकुल से प्रेरणा प्राप्त करें। इसीलिए अनेक राष्ट्रीय नेता इस काल में गुरुकुल के वार्षिकोत्सव और अन्य अवसरों पर गुरुकुल आते रहे, जिससे इसकी ख्याति तथा लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि होती गई।

सन् १९२४ तक गुरुकुल काँगड़ी भली-भाँति व्यवस्थित हो चुका था। पण्डित विश्वम्भरनाथ की कुशलता से उसकी आर्थिक दशा सँभल गई थी, और आचार्य रामदेव शिक्षा की दृष्टि से उसे समुन्नत करने के लिए जी-जान से प्रयत्न में लगे थे। पर उनके इस कार्य में अचानक ही एक भयंकर बाधा उपस्थित हो गई। सितम्बर, १९२४ में गंगा नदी में असाधारण बाढ़ आई, और उससे गुरुकुल की बहुत-सी इमारतें नष्ट हो गयीं। उन दिनों गुरुकुल में ग्रीष्मावकाश चल रहा था, अतः बहुत-से ब्रह्मचारी सरस्वती यात्रा पर गये हुए थे, और प्राध्यापक तथा बहुसंख्यक कर्मचारी भी गुरुकुल में नहीं थे। जो व्यक्ति गुरुकुल के परिसर में थे, उनकी प्राणरक्षा इस कारण हो सकी, क्योंकि कनखल का बाँध टूट गया और जल का प्रवाह दूसरी ओर हो गया। महाविद्यालय की पक्की इमारत को छोड़कर गुरुकुल के अन्य सभी भवन (ब्रह्मचारियों के छात्रावास, विद्यालय के कमरे, भोजन भण्डार, चिकित्सालय, परिवार-गृह आदि) बाढ़ के कारण नष्ट हो गये। इस दशा में गुरुकुल को उस स्थान पर रख सकना सम्भव नहीं रह गया। गंगा की दो धाराओं के मध्य में स्थित होने के कारण भविष्य में भी वहाँ बाढ़ आने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता था। इसलिए गुरुकुल को किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर ले जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। कुछ लोग यह अवश्य कहते थे, कि गंगा के साथ-साथ बाँध बाँधकर पुरानी भूमि को भी सुरक्षित बनाया जा सकता है। पर बहुसंख्यक महानुभावों का यही विचार था, कि अब गुरुकुल को कहीं अन्यत्र ही ले जाना ठीक होगा। स्वामी श्रद्धानन्द के विचार में काँगड़ी ग्राम के उत्तर में विद्यमान शिवालिक की उपत्यका के साथ लगा हुआ विस्तृत मैदान गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान था। गंगा की धारा भी वहाँ से दूर नहीं थी, और ऊँचाई पर स्थित होने के कारण बाढ़ का वहाँ कोई खतरा नहीं था। यह स्थान भी वैसा ही रमणीक, एकान्त तथा हराभरा था, जैसी कि गुरुकुल की पुरानी भूमि थी। हिमालय की श्रृंखलाएँ वहाँ से भी नजर आती थीं। इसे प्राप्त करने के लिए धन भी खर्च न करना पड़ता, क्योंकि यह गुरुकुल के ही स्वत्वाधिकार में था। पुरानी भूमि में गुरुकुल की जो इमारतें सुरक्षित बच गयी थीं, उनका भी उपयोग किया जा सकता था, यदि गुरुकुल काँगड़ी में ही रहता। बाढ़ हर साल तो नहीं आया करती। वहाँ के बाग, कुएँ, पक्की धर्मशाला तथा खेती—सब गुरुकुल के काम में आती रहतीं, और पुरानी भूमि गुरुकुल के नये परिसर का अंग बनी रह सकती। पर स्वामीजी के इस विचार को पर्याप्त समर्थन नहीं मिला। २१ अक्तूबर, सन् १९२४ को गुरुकुल में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की अन्तरंग सभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय कर लिया गया। स्वामीजी भी इस अधिवेशन में उपस्थित थे। गुरुकुल को काँगड़ी से अन्यत्र ले जाने का निश्चय हो जाने पर स्वामीजी को जो मर्मान्तिक दुःख हुआ, उसका अनुमान उस पत्र से किया जा सकता है, जो उन्होंने इस सम्बन्ध में पण्डित विश्वम्भरनाथ को लिखा था।

"आपने गुरुकुल की जलवायु खराब बतलाकर स्थान-परिवर्तन के लिए एक सब-कमेटी बनवाई है। उसके दो सभासद् तो पहिले ही से आपके विचार के अनुकूल हैं। सभा ने यह समझा है कि मेरा कभी गुरुकुल से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा और मुझसे इस सम्बन्ध में कुछ पूछना उचित नहीं समझा। समाचारपत्रों से मालूम हुआ है कि गुरुकुल को अकृतकार्य सिद्ध करके लाहौर में उपदेशक पाठशाला की बुनियाद डाली जाएगी। जब आपकी सम्मति में गुरुकुल केवल वैदिक धर्म या आर्यसमाज के उपदेशक उत्पन्न करने के लिए ही स्थापित हुआ था और वह उद्देश्य उससे पूरा नहीं हुआ, तो उस पर सवा लाख से अधिक धन खर्च करने की क्या आवश्यकता है? स्थान-परिवर्तन के स्थान पर आप यही सम्मति क्यों नहीं देते कि गुरुकुल को बन्द ही कर दिया जाए।"

इस पत्र में स्वामीजी ने जो भाव प्रकट किये हैं, वे यथार्थता के अनुरूप नहीं थे। यह सही है, कि सभा और गुरुकुल के तत्कालीन अधिकारी, विशेषतया पण्डित विश्वम्भर-नाथ गुरुकुल के स्थान-परिवर्तन के पक्ष में थे; पर इसका कारण लाहौर में उपदेशक पाठशाला स्थापित करना नहीं था। सभा और गुरुकुल का कोई भी जिम्मेदार पदाधिकारी गुरुकुल को बन्द कर देना नहीं चाहता था। वे केवल इस बात के लिए उत्सुक थे, कि उसे किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाया जाए। विचार-विमर्श के अनन्तर पण्डित विश्वम्भरनाथ का यह प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकृत हो गया, कि गंगा के दायें तट पर हरिद्वार के समीप अन्यत्र गुरुकुल के लिए स्थान प्राप्त किया जाए। इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर पण्डित विश्वम्भरनाथ ने उपयुक्त स्थान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। इसके लिए उन्होंने जो घोर प्रयत्न किया, उसकी जितनी प्रशंसा की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाए कम होगी। उनके सम्मुख दो विकल्प थे, या तो शिवालिक की उपत्यका में स्थित रानीपुर गाँव की उस भूमि को प्राप्त किया जाए, जहाँ वर्तमान समय में भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स का कारखाना है, और या कनखल-ज्वालापुर मार्ग के दक्षिण में गंगा की नहर के साथ लगी हुई वह भूमि जहाँ अब गुरुकुल विद्यमान है। रानीपुर की भूमि में जल की समुचित सुविधा नहीं थी। जल की व्यवस्था के लिए वहाँ बहुत खर्च करना पड़ता। अतः दूसरी भूमि को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया गया। यह भूमि किसी एक जमींदार की नहीं थी। कोई खेत किसी का था, कोई किसी का। सबसे सौदा करना बहुत कठिन था। पर पण्डित विश्वम्भरनाथ के अनथक परिश्रम से कनखल-ज्वालापुर मार्ग के दक्षिण में ६०० बीघे के लगभग जमीन गुरुकुल के लिए क्रय कर ली गई, और वहाँ पक्की इमारतों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। सन् १९२९ के अन्त तक नयी भूमि में इतनी इमारतें बन कर तैयार हो गयी थीं, कि एप्रिल, १९३० में गुरुकुल को अपने नये परिसर में ले आया गया। पाँच साल के लगभग गुरुकुल के विद्यालय विभाग की कुछ कक्षाएँ मायापुर वाटिका (हरिद्वार और कनखल के बीच) में रहीं, और महाविद्यालय विभाग पुरानी भूमि में। बाढ़ से बची इमारतों को मुरम्मत करके इस योग्य बना लिया गया था, कि उनमें गुरुकुल को चलाया जा सके।

सन् १९२७ में काँगड़ी में गुरुकुल को स्थापित हुए २५ वर्ष हो चुके थे। अतः उस वर्ष का वार्षिकोत्सव गुरुकुल की रजत जयन्ती के रूप में धूमधाम के साथ मनाया गया। इस समय तक गुरुकुल बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था, और देश के राजनीतिक व राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसकी ख्याति हो चुकी थी। इसीलिए महात्मा गांधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज, श्री श्रीनिवास आयंगर और डा० मुञ्जे आदि कितने ही अखिल भारतीय स्तर के नेता जयन्ती समारोह में सम्मिलिए हुए। जो बहुत-से विद्वान् व शिक्षाविद् इस अवसर पर गुरुकुल पधारे थे, उनमें प्रिंसिपल ध्रुव, साधु वासवानी और डा० अविनाशचन्द्र दास के नाम उल्लेखनीय हैं। आर्यसमाज के तो प्रायः सभी संन्यासी, नेता और विद्वान् इस महोत्सव में सम्मिलित हुए ही थे। जयन्ती समारोह की सफलता असन्दिग्ध थी। पर स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज की अनिवार्य अनुपस्थिति सबके लिए विषाद का कारण बनी हुई थी। जयन्ती से लगभग तीन मास पूर्व २३ दिसम्बर, १९२६ को वह दिल्ली में धर्म के लिए बलिदान हो गये थे। इसी के परिणामस्वरूप जयन्ती महोत्सव में उत्साह व उल्लास के साथ-साथ गम्भीर वेदना भी मिली हुई थी। जयन्ती के अवसर पर १,५३,००० रुपये नकद प्राप्त हुए, और १,३०,००० की प्रतिज्ञाएँ हुईं।

जयन्ती समारोह के सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने के पश्चात् पण्डित विश्वम्भरनाथ ने मुख्याधिष्ठाता पद से त्यागपत्र दे दिया। यह त्यागपत्र पूर्णतया स्वेच्छा से दिया गया था। पण्डितजी का मन्तव्य था, कि किसी व्यक्ति को पाँच वर्ष से अधिक समय तक किसी संस्था के संचालक के पद पर नहीं रहना चाहिये। उनके स्थान पर अब आचार्य रामदेव को गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया। आचार्य के पद पर वह पहले ही अधिष्ठित थे। अब आचार्य के साथ-साथ वह गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता भी हो गये। सन् १९२७ से १९३३ तक वह मुख्याधिष्ठाता के पद पर रहे। इस काल में उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य गुरुकुल की नयी इमारतों के लिए धन एकत्र करना था। मुख्याधिष्ठाता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पद सँभालने से पूर्व ही उन्होंने इसके लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। प्रधानतया उन्हीं के प्रयत्न का यह परिणाम था, कि २० लाख के लगभग रुपये गुरुकुल के नये मकानों के लिए एकत्र किये जा सके। गुरुकुल के प्राध्यापकों तथा गुरुकुलप्रेमी आर्य नर-नारियों ने भी इस कार्य में उनकी सहायता की। नयी इमारतें बनवाने में दिल्ली के प्रसिद्ध ठेकेदार लाला नारायणदत्त ने पूरा सहयोग दिया, और सबके सामूहिक प्रयास का ही यह परिणाम हुआ, कि गुरुकुल को सन् १९३० में नयी भूमि पर लाया जा सका।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न होता है, वर्तमान स्थान पर गुरुकुल को स्थापित करना क्या बुद्धिमत्ता का कार्य था? आचार्यकुलों या गुरुकुलों का जो विचार प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रस्तुत किया था, उसका यह आवश्यक तत्त्व था, कि ये शिक्षण-संस्थाएँ नगरों और ग्रामों से दूर एकान्त स्थान पर स्थित हों। काँगड़ी ग्राम के क्षेत्र में जो स्थान सन् १९०२ में गुरुकुल के लिए चुना गया था, वह वस्तुत: इसी प्रकार का था। कनखल की दूरी वहाँ से तीन मील थी, और जाने-आने का मार्ग अत्यन्त दुर्गम था। गंगा की धारा के बीच में पड़ जाने के कारण काँगड़ी गाँव का भी गुरुकुल से विशेष सम्पर्क नहीं रहता था, और यह गाँव थोड़ी-सी झोंपड़ियों के समूह के अतिरिक्त कुछ न था। पर अब गुरुकुल जिस नये स्थान पर ले जाया गया था, वह कनखल-ज्वालापुर मार्ग पर स्थित है। कनखल से वह एक मील से भी कम दूरी पर है, और ज्वालापुर से सवा मील के लगभग दूरी पर। जगदीतपुर और जमालपुर जैसे समृद्ध गाँव उसके और भी समीप हैं। वस्तुत:, गुरुकुल की वर्तमान भूमि चारों ओर नगरों और ग्रामों से घिरी हुई है, जिसके कारण शहरी जीवन के कुप्रभावों से वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारियों के लिए बचे रह सकना सम्भव नहीं रह गया है। सन् १९४७ में भारत-विभाजन के परिणामस्वरूप बहुत-से हिन्दू कनखल-हरिद्वार में भी शरणार्थी के रूप में आ गये। उनके लिए जो बस्तियाँ सरकार द्वारा बनवायी गयीं, वे तो गुरुकुल के बहुत ही समीप हैं। वर्तमान समय में स्वयं गुरुकुल भी कनखल-हरिद्वार के आबाद क्षेत्र के अन्तर्गत हो गया है, और शहरों से दूर स्थित होने की गुरुकुलों की विशेषता उसमें नाम को भी नहीं रह गयी है। आरण्यक-आश्रम में स्थित शिक्षण-संस्था में गुरु-शिष्य का जो सम्बन्ध होता था, उसके छात्र जिस ढंग से ब्रह्मचर्य और तपस्या का जीवन बिताते थे, और सांसारिक समस्याओं से अछूते रहकर जिस प्रकार विद्याभ्यास में रत रहते थे, वह सब गुरुकुल की पुरानी भूमि (जिसे अब 'पुण्यभूमि' कहा जाता है) में तो सम्भव था, पर कनखल-ज्वालापुर मार्ग पर स्थित नयी भूमि में इन विशेषताओं को कायम रख सकना सम्भव नहीं रह गया। गुरुकुल के स्वरूप पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। आगे चलकर गुरुकुल के आन्तरिक अनुशासन, रहन-सहन और कार्य-पद्धति में जो अनेक परिवर्तन हुए, उनके लिए उसकी नयी भूमि और नया वातावरण भी उत्तरदायी है।

सन् १९३० में महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। शीघ्र ही इसके कारण सारे देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रचण्ड हो उठी, और हजारों लोग विदेशी सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह कर जेल जाने को तत्पर हो गये। गुरुकुल भी इसके प्रभाव से बचा नहीं रह सका। गुरुकुल का वातावरण सदा से ही देशभक्ति और राष्ट्रीयता का रहा है। देश के लिए त्याग करने में गुरुकुल के विद्यार्थी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अध्यापक कभी पीछे नहीं रहे। १९१९-२१ के आन्दोलनों में भी गुरुकुल के विद्यार्थियों ने भाग लिया था। उन्होंने तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए धन एकत्र किया था, और वे कांग्रेस के कार्यकलाप में स्वयंसेवक के रूप में सम्मिलित हुए थे। १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन में उनका कर्तृत्व अधिक महत्त्व का था। महाविद्यालय विभाग के बहुत-से विद्यार्थी समीप के क्षेत्र में सत्याग्रहियों को संगठित करने के लिए तत्पर हो गये, और गुरुकुल के अधिकारियों को विवश होकर कुछ महीनों के लिए महाविद्यालय में अवकाश करना पड़ा। सत्यदेव नामक एक ब्रह्मचारी ने सहारनपुर जिले में सत्याग्रही स्वयंसेवकों का इतना बड़ा दल संगठित कर लिया, कि वह सर्वत्र 'दलपति' नाम से प्रसिद्ध हो गया। सर्वमित्र और सत्यभूषण नामक दो ब्रह्मचारी देहात में काम करते हुए बीमार पड़ गये, और बीमारी के कारण उनकी मृत्यु भी हो गयी। कितने ही प्राध्यापक और ब्रह्मचारी इस समय जेल भी गये, और स्वराज्य संघर्ष में पड़ कर गुरुकुल के नाम को उन्होंने उज्ज्वल किया।

सन् १९३२ में आचार्य रामदेव भी स्वाधीनता-संघर्ष में भाग लेने के लिए गुरुकुल से चले गये। उनके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को सभा द्वारा मुख्याधिष्ठाता नियुक्त नहीं किया गया। गुरुकुल का प्रबन्ध करने के लिए अब एक समिति बना दी गई, जिसके तीन सदस्य थे—पण्डित चमूपति, पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार और श्री देवराज सेठी। सेठीजी तब गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता थे, उन्हें इस समिति का मन्त्री बना दिया गया। पण्डित चमूपति समिति के प्रधान नियुक्त हुए। पर समिति के तीनों सदस्यों में प्रायः मतभेद रहा करता था, अतः समिति द्वारा गुरुकुल के प्रबन्ध का परीक्षण सफल नहीं हो सका। श्री देवराज सेठी और पं० देवशर्मा के समिति से त्यागपत्र दे देने पर पण्डित चमूपति को सभा द्वारा मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य दोनों पदों पर नियुक्त कर दिया गया। एप्रिल, १९३५ तक पं० चमूपति ने योग्यता के साथ गुरुकुल का कार्यभार सँभाला। उनके त्यागपत्र देने पर पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार आचार्य नियुक्त हुए (१९३५)।

(३) गुरुकुल कमीशन

सन् १९३१ में जब आचार्य रामदेव गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य थे, गुरुकुल को "अधिक सर्वप्रिय बनाने के साधनों की सिफारिश करने के लिए" महात्मा नारायण स्वामी की अध्यक्षता में एक कमीशन आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा नियुक्त किया गया। इसके अन्य सभासदों में तीन--पं० चमूपति, पं० देवशर्मा विद्यालंकार और पण्डित सत्यकेतु विद्यालंकार—गुरुकुल में प्राध्यापक थे। इस कमीशन की कुछ सिफारिशों का यहाँ उल्लेख करना इस कारण उपयोगी है, क्योंकि उनसे यह ज्ञात होता है कि उस समय आर्यसमाज और गुरुकुल के शिक्षाविज्ञ इस संस्था को किस दिशा में ले जाना चाहते थे और इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में उनके क्या विचार थे। कमीशन की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं—

(१) स्नातक परीक्षा के पश्चात् वेद-वेदांग के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध किया जाए। वाचस्पति परीक्षा इस समय भी होती है। हम इसमें यह सुधार चाहते हैं, कि वेद-वेदांग के ऊँचे दर्जे के अध्ययन तथा गवेषणा (Research) का कार्य स्थिर कर दिया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाए। वेद के अध्ययन में स्नातकों के अतिरिक्त आवश्यक योग्यता रखने वाले अन्य विद्यार्थी भी लिये जाएँ। उन पर अविवाहित होने का वन्धन न हो।

गुरुकुल के स्नातक इस समय भी एक अच्छी वड़ी संख्या में वेद-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। वैदिक साहित्य जितना भी इस समय तक तैयार हुआ है, उसकी एक वड़ी मात्रा स्नातकों द्वारा निर्मित हुई है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसमें उन्नति तथा वृद्धि की वहुत वड़ी गुंजाइश है। जहाँ आर्यसमाजिक साहित्य का मान (Standard) ऊँचा उठाने की जरूरत हैं, वहाँ उसकी मात्रा भी अव की अपेक्षा कहीं अधिक होनी चाहिये। स्नातकोत्तर शिक्षा का उद्देश्य इस आवश्यकता की पूर्ति होना चाहिये। उस समय विद्यार्थियों का आधार वन चुका होता है, और गुरुकुल के वाहर के भी जो महानुभाव वैदिक धर्म के प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य वनाएँगे, उनका नैतिक प्रभाव हानिकारक नहीं होगा। अविवाहित रहने का वन्धन हम इसलिए हटाते हैं कि इस प्रकार के ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी पर आश्रम की वाधा न रहे। जव भी कोई चाहे विद्योपार्जन के इस शुभ संकल्प को पूरा कर सके। आर्यसमाज के इस प्रकार के ऊँचे दर्जे के अध्ययन का प्रवन्ध अनेक स्थानों पर हो सके —यह भी असम्भव है। अतः गुरुकुल में ही ऐसे सव विद्यार्थियों के लिए प्रवन्ध किया जाना चाहिये।

(२) साधारण महाविद्यालय में इस समय वहुत कम विद्यार्थी आते हैं। वेद महाविद्यालय से इस महाविद्यालय की पढ़ाई का कुछ वड़ा अन्तर भी नहीं है। हमने सिफारिश की है कि इन दोनों महाविद्यालयों को मिलाकर एक कर दिया जाये। उस एक महाविद्यालय का नाम वेद महाविद्यालय हो। उसमें वेद-वेदांग के साथ-साथ आधुनिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती रहे। इस महाविद्यालय का उद्देश्य गुरुकुल की वेदाध्ययन आदि अपनी विशेषताओं को कायम रखते हुए उच्च उदार शिक्षा देना होगा।

(३) गुरुकुल के विद्यार्थियों की संख्या को वढ़ाने के लिए हमारा प्रस्ताव यह है कि गुरुकुल को कुछ विशेष स्थानों तक ही परिमित नहीं रखना चाहिये, किन्तु इस शिक्षा प्रणाली का प्रचार एक देशव्यापी आन्दोलन के रूप में करना चाहिये। प्रत्येक समर्थ आर्यसमाज गुरुकुल के ढंग की एक छोटी-सी पाठशाला खोल दे, जिसमें गुरुकुल के जीवन के मुख्य-मुख्य अंगों का पालन अवश्य किया जाए। एक अध्यापक, जो स्नातक हो तो उत्तम है, वहाँ रहे और वालकों को गुरुकुल शिक्षा के कुछ एक मूलभूत विषयों का ज्ञान करा दे तथा उनके रहन-सहन, आचार-व्यवहार पर दृष्टि रखे। जिलों और प्रान्तों में मध्यमा (Secondary) दर्जे के विद्यालय खोले जाएँ। इन विद्यालयों में पाँचवीं श्रेणि तक के विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकें। इसके पश्चात् विद्यार्थी केन्द्रीय महाविद्यालय में आएँ। इस प्रकार सम्भव है कि विद्यार्थी अधिक हो जाएँ, और गुरुकुल के संकुचित जीवन का आंशिक प्रसार हो सके। सम्भवतः, स्नातकों की आजीविका का प्रश्न भी इस प्रथा द्वारा किसी अंश तक हल हो जाएगा।

हम इस व्यवस्था की आवश्यकता इसलिए भी समझते हैं कि विद्यार्थी छोटी आयु में अपने घरों के अधिक निकट रह सकेंगे, और जहाँ उनके माता-पिता पर व्यय का भार कम होगा वहाँ उन्हें पारिवारिक जीवन के लाभप्रद प्रभावों से लाभ उठाने का अवसर भी अधिक मिल सकेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार यदि छोटे-छोटे गुरुकुलों का देश-भर में जाल फैला दिया जाए और वे सब क्रमशः बढ़ते-बढ़ते गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय तथा वैदिक गवेषणा विभाग पर आकर मिल जावें, तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का रूप एक शंकु (cone) का-सा हो जाएगा जिसका आधार सारे देश में फैला हुआ होगा और शिखर हिमालय की पर्वतमाला के बीच में गवेषणा विभाग के रूप में शोभायमान होगा। वेद-वेदांग की गंगा इस पुनीत शिखर से प्रवाहित होकर देश-देशान्तर को आर्यधर्म के पवित्र सन्देश का स्नान कराएगी।

गुरुकुल कमीशन ने गुरुकुल की शिक्षा के प्रयोजन के सम्बन्ध में अपने विचार को स्पष्ट करते हुए लिखा था, कि "गुरुकुल की विशेषता प्राचीन भारतीय शास्त्रों का आर्य-समाज की दृष्टि से अनुशीलन तथा प्रचार ही है। शेष जो कुछ भी यहाँ होता है, वह मानो इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए है या 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' के सदृश केवल प्रासंगिक रूप में उपलब्ध हो जाने वाली वस्तु है।" पर यह उद्देश्य गुरुकुल के विद्यालय या महाविद्यालय विभागों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता, क्योंकि "अधिकारी परीक्षा तक विद्यार्थी की बुद्धि बहुत कम विकसित हो पाती है। बुद्धि का विशेष विकास उन वर्षों में होता है, जो विद्यार्थी महाविद्यालय विभाग में व्यतीत करता है। उस समय वह स्वतन्त्रता से सोचने लगता है। वह उदार शिक्षा का भूखा होता है।...वह स्वतन्त्र सत्यान्वेषी सच्चे अर्थों में विद्यार्थी बनता है। मानसिक व्यायाम के इस समय में चतुर अध्यापक उसके विचारों को किसी विशेष दिशा में प्रवृत्त करने का प्रयत्न कर सकता है।...विशेष धार्मिक सिद्धान्तों तथा मन्तव्यों को दृष्टि में रखकर किसी विषय का अनुशीलन इसके पश्चात् आना चाहिये, और इसमें वही लोग प्रवृत्त होने चाहिये जो विद्याध्ययन के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक विचर-विचरा कर अब एक ओर केवल भुक ही नहीं चुके हैं किन्तु उनके जीवन का लक्ष्य उक्त प्रकार का अध्ययन तथा उस अध्ययन द्वारा उपार्जित विद्या का प्रचार हो गया है।" कमीशन की सिफारिश थी, कि ऐसे विद्यार्थी—चाहे वे गुरुकुल के हों या बाहर के हों—स्नातक परीक्षा के पश्चात् वेद-वेदांग का उच्च स्तर का अध्ययन करें और शोधकार्य में भी प्रवृत्त हों। उनके लिए विवाहित न होने की शर्त की भी कमीशन की दृष्टि में कोई उपयोगिता नहीं थी। खेद है, कि वेद-वेदांग एवं प्राचीन सत्य आर्ष शास्त्रों के उच्चतम अध्ययन तथा मौलिक शोध के सम्बन्ध में कमीशन की सिफारिश को क्रियान्वित करने का प्रयत्न गुरुकुल द्वारा नहीं किया गया।

गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने के लिए कमीशन द्वारा जो सिफारिश की गयी थी, उसे महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षाविषयक मन्तव्यों के पूर्णतया अनुकूल नहीं कहा जा सकता। पर समय की परिस्थितियों और क्रियात्मक आवश्यकता की दृष्टि से उसे अनुचित कह सकना भी सम्भव नहीं है। यदि वस्तुतः गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को एक जन-आन्दोलन का अंग बनाया जा सकता, और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए उसकी उपयोगिता को जनता के सम्मुख रखा जाता, तो शायद गुरुकुलों में विद्यार्थियों की कमी न रहती।

कमीशन द्वारा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के रहन-सहन और व्यय के सम्बन्ध में भी कुछ सिफारिशें की गयी थीं—(१) महाविद्यालय विभाग में प्रत्येक विद्यार्थी कम से कम तथा अधिक से अधिक कितना खर्च कर सके, यह गुरुकुल द्वारा निर्धारित हो। इस मर्यादा के भीतर रहते हुए खर्च को कम या अधिक करने की विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता रहे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) निम्नलिखित मदों के लिए निर्धारित राशि गुरुकुल विद्यार्थियों से लिया करे— प्रकाश, जल प्रवन्ध, स्वास्थ्य रक्षा, चिकित्सा, अग्निहोत्र, पाठ्य-पुस्तकें और क्रीड़ा-सामग्री। शेष सव खर्च विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार कर सकें। पर कौन-सी वस्तु किस प्रकार की ली जाए, यह अधिकारियों के नियन्त्रण में रहे। विद्यार्थी खर्च के लिए धन अपने पास न रखकर डाकखाने में रखें, जहाँ से वे अधिकारियों की अनुमति के विना धन प्राप्त न कर सकें। (३) यदि यह परीक्षण महाविद्यालय में सफल हो, तो विद्यालय विभाग की उच्च कक्षाओं में भी इसके समुचित अंशों को धीरे-धीरे प्रारम्भ किया जाए। (४) जो ब्रह्मचारी अपने अतिरिक्त समय में गुरुकुल के अन्य नियमों का पालन करते हुए किसी प्रकार के श्रम द्वारा अपने मासिक शुल्क की पूर्ति के लिए धन उपार्जन करना चाहें, उन्हें उसकी अनुमति होनी चाहिये तथा उन्हें इसके लिए उपयुक्त सुविधाएँ दी जानी चाहिये। (५) वर्तमान समय में महाविद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी सत्रान्तावकाश में, जो दो मास का होता है, घर जा सकते हैं।...परन्तु हम अनुभव करते हैं कि विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियों को घर जाने की छुट्टी न मिलने के कारण वे पारिवारिक जीवन के लाभ-दायक (स्वास्थ्यकर) प्रभावों से वंचित रह जाते हैं और उनमें अपने माता-पिता, भाई-वहिन तथा अन्य निकट सम्वन्धियों से भी उपरामता का भाव आ जाता है और उनके प्रति अपने कर्तव्यों को समझने तथा पूर्ण करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है।...हमारी सम्मति में अष्टम, नवम तथा दशम के विद्यार्थी भी इतने वड़े और समझदार हो जाते हैं कि यदि उनको इस अवकाश का आधा अर्थात २२ दिन घर जाने की छुट्टी मिल सका करे तो इससे वे पारिवारिक जीवन के स्वास्थ्यप्रद प्रभावों से लाभ उठा सकेंगे। (६) गुरुकुल में विद्यार्थी किस प्रकार का वेश पहिनें, जूता, छतरी का प्रयोग करें या नहीं, इन तथा इसी प्रकार के अन्य रहन-सहन के प्रश्नों पर गुरुकुल के प्रेमियों में कुछ वृथा विवाद रहता है। इस विषय में हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इन सव वातों का निर्णय गुरुकुल के तपस्यामय जीवन, सादगी तथा ब्रह्मचर्य के वातावरण को कायम रखने की दृष्टि से ही होना चाहिये। इनका वैदिक धर्म तथा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के आधारभूत सिद्धान्तों से कोई विशेष सम्वन्ध नहीं है। गुरुकुल के विद्यार्थियों में तपस्या, सादगी तथा ब्रह्मचर्य को कायम रखते हुए, स्वास्थ्यरक्षा के नियमों की दृष्टि से जो परिवर्तन अपेक्षित हों, उन्हें स्थान और समय के अनुसार करने में कोई हानि नहीं है। (७) महिलाओं के गुरुकुल का निरीक्षण करने में अनेक प्रकार की रुकावटें वर्तमान समय में हैं। साथ ही, विशेष रूप से पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त तथा पाश्चात्य महिलाओं में गुरुकुल का अवलोकन करने के सम्वन्ध में भेद भी किया जाता है। हमारी सम्मति में महिलाओं को गुरुकुल देखने में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। (८) गुरुकुल में विद्यार्थियों के शयन का जितना समय निश्चित है, वह हमारी सम्मति में पर्याप्त नहीं है, उसमें वृद्धि की जानी चाहिये।

गुरुकुल कमीशन की ये सब सिफारिशें भी ऐसी हैं, जिनके लागू हो जाने पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का रहन-सहन व जीवन उससे पर्याप्त रूप से भिन्न हो जाता, जो कि उनका वीसवीं सदी के प्रथम चरण में था। न सवके वस्त्र एक सदृश रहते, और न भोजन। गरीव-अमीर का भेद भी उनमें प्रकट होने लग जाता, क्योंकि अपने अतिरिक्त समय में वे ब्रह्मचारी ही श्रम द्वारा कमाई किया करते जिनके माता-पिता निर्धन होने के कारण उनके भरण-पोषण का पूरा खर्च न उठा सकते हों। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार आचार्यकुल में रहते हुए ब्रह्मचारियों का अपने माता-पिता व परिवार से कोई भी सम्बन्ध नहीं रह जाना चाहिये। पर कमीशन ने यह आवश्यकता अनुभव की, कि ब्रह्मचारियों का माता-पिता व भाई-बहिन आदि से सम्पर्क बना रहना चाहिये और इसके लिए उस द्वारा सिफारिश भी की गयी। समय की परिस्थिति एवं आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए कमीशन की इन सिफारिशों में किस अंश तक औचित्य था, इस पर मतभेद स्वाभाविक है। पर आगे चलकर गुरुकुल की इसी दिशा में प्रगति हुई। न केवल विद्यालय विभाग की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी ही, अपितु छोटे ब्रह्मचारी भी छुट्टियों में घर जाने लग गये। महिलाओं के गुरुकुल में आने-जाने में कोई रुकावट नहीं रह गयी, और ब्रह्मचारियों की वेशभूषा में जूते आदि का भी समावेश हो गया।

गुरुकुल के प्रबन्धकर्ताओं के सम्बन्ध में कमीशन की एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी—"गुरुकुल कुछ निश्चित उद्देश्यों तथा आदर्शों को दृष्टि में रखकर स्थापित किया गया है। इसलिए हम समझते हैं, कि गुरुकुल का संचालन करने के लिए मुख्य अधिकारी को नियत करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिये कि ऐसे महानुभाव को इस पद पर नियत करें, जिसका क्रियात्मक जीवन गुरुकुल के उद्देश्यों तथा आदर्शों के अधिक से अधिक अनुकूल हो और इस मुख्य अधिकारी के लिए 'आचार्य' शब्द प्रयुक्त होना चाहिये, क्योंकि गुरुकुल की दृष्टि से यही शब्द अनुकूल तथा उपयुक्त है। इस आचार्य के सहयोग के लिए दो सहायक होने चाहियें, जिनमें से एक के आधीन शिक्षा का कार्य हो और दूसरा सामान्य प्रबन्ध का कार्य करे।" गुरुकुल के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा गठित एक पृथक् विद्यासभा होनी चाहिये, कमीशन इस विचार के पक्ष में नहीं था। उसका यह मत था, कि गुरुकुल का प्रबन्ध व संचालन पूर्ववत् अन्तरंग सभा के ही अधीन रहना चाहिये, पर मुख्याधिष्ठाता को परामर्श तथा सहायता देने के लिए एक सहायक सभा व परामर्श सभा (Advisory Council) बना दी जाए जिसमें गुरुकुल के प्राध्यापकों को भी स्थान प्राप्त हो।

(४) विद्यासभा का संगठन और उसके अधीन गुरुकुल की प्रगति

यद्यपि गुरुकुल कमीशन का यह मत था, कि गुरुकुल के प्रबन्ध के लिए किसी पृथक् सभा की आवश्यकता नहीं है, और उस का प्रबन्ध व संचालन अन्तरंग सभा के ही अधीन रहना चाहिये, फिर भी पृथक् विद्यासभा के संगठन की माँग निरन्तर जोर पकड़ती गयी। विद्यासभा का विचार बहुत पुराना था। सबसे पूर्व महात्मा मुंशीराम ने सन् १९१० में इसे प्रकट किया था। जिस प्रस्ताव द्वारा पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने सन् १९२१ में गुरुकुल को विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित किया, उसमें भी गुरुकुल के लिए पृथक् विद्यासभा के निर्माण की बात की पुष्टि की गयी थी। सन् १९३४ में इसके लिए प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें गुरुकुल के स्नातक-मण्डल का प्रमुख हाथ था। इस समय तक आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था। आर्यसमाजों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी, और वेदप्रचार की समुचित व्यवस्था करने के लिए प्रतिनिधि सभा को बहुत ध्यान देना पड़ रहा था। इस दशा में उसके लिए गुरुकुल की उन्नति व विकास के लिए शक्ति लगा सकना क्रियात्मक नहीं था। १९३५ में आर्य प्रतिनिधि सभा के नये पदाधिकारियों का चुनाव होना था, और साथ ही सभा के नये सदस्यों का भी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग गुरुकुल के लिए पृथक् विद्यासभा के पक्षपाती थे, प्रयत्न करके वे बड़ी संख्या में सभा के सदस्य निर्वाचित हो गये, जिसके परिणामस्वरूप १९३५ के सभा के अधिवेशन में गुरुकुल के लिए पृथक् विद्यासभा संगठित करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

इस समय विद्यासभा का जो संगठन बनाया गया, उसका स्वरूप इस प्रकार था—

(१) विद्यासभा के कुल सदस्यों की संख्या २७ हो।

(२) इन २७ सदस्यों में कम-से-कम १८ पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्य हों।

(३) प्रतिनिधि सभा के निम्नलिखित पदाधिकारी अपने पद के कारण विद्या-सभा के सदस्य हों—
(क) सभा का प्रधान, (ख) सभा के तीनों उपप्रधान, (ग) सभा का मन्त्री, और (घ) सभा का कोषाध्यक्ष।

(४) इन छह पदाधिकारियों के अतिरिक्त कम से कम बारह व्यक्ति आर्य प्रति-निधि सभा, पंजाब द्वारा विद्यासभा के लिए निर्वाचित किये जाएँ। इन सदस्यों को चुनते हुए यह ध्यान में रखा जाए, कि वे विद्या आदि विशेष गुणों से सम्पन्न हों।

(५) गुरुकुल के निम्नलिखित पदाधिकारी अपने पद के कारण विद्यासभा के सदस्य हों—(क) गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता, (ख) गुरुकुल का आचार्य, (ग) कन्या गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता, और (घ) कन्या गुरुकुल की आचार्या।

(६) गुरुकुल काँगड़ी और कन्या गुरुकुल के छात्रों के संरक्षकों का एक प्रतिनिधि।

(७) गुरुकुल के स्नातकों और स्नातिकाओं के तीन प्रतिनिधि, जिनमें से एक अवश्य ही स्नातिका हो।

(८) गुरुकुल के उपाध्याय (प्राध्यापक) वर्ग का एक प्रतिनिधि।

यह निश्चय किया गया, कि विद्यासभा के सदस्य केवल ऐसे ही व्यक्ति बन सकें, जिन्हें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से वास्तविक प्रेम हो और जो स्वयं अपने बालकों व बालिकाओं को गुरुकुल में पढ़ाने के लिए उद्यत होकर गुरुकुल-प्रेम का साक्षात् प्रमाण देने को उद्यत हों। विद्यासभा के संगठन के सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का यह निर्णय अत्यन्त महत्त्व का था। गुरुकुल की गणना देश की सामान्य शिक्षण-संस्थाओं के अन्तर्गत नहीं की जा सकती थी। उसके कुछ आधारभूत सिद्धान्त थे, जिनमें से अनेक आधुनिक समय की शिक्षा पद्धति विषयक मान्यताओं के प्रतिकूल थे। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली एक क्रान्ति के समान थी, और क्रान्ति के मूल सिद्धान्तों को जनता द्वारा मान्य होने में समय तथा प्रयत्न की अपेक्षा होती है। इसलिए प्रतिनिधि सभा का यह निश्चय बहुत महत्त्व का था, कि गुरुकुल का संचालन ऐसे लोगों के ही हाथों में रहे, जो इसके मूलभूत क्रान्तिकारी सिद्धान्तों में विश्वास रखते हों और जो अपनी सन्तान को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने को उद्यत हों। महात्मा मुंशीराम और आचार्य रामदेव के समय में गुरुकुल ने जो उन्नति की, उसका कारण यही था कि इन्हें गुरुकुल शिक्षा पद्धति में पूर्ण विश्वास था, और इन्होंने अपनी सन्तान को शिक्षा के लिए गुरुकुल में ही प्रविष्ट कराया था। यदि प्रतिनिधि सभा के इस निर्णय को क्रियान्वित किया जा सकता, तो गुरुकुल की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहुत उन्नति होती और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित यह शिक्षा प्रणाली अत्यन्त लोकप्रिय हो जाती।

सन् १९३५ में गुरुकुल के प्रवन्ध व संचालन के लिए पृथक् विद्यासभा का संगठन कर दिया गया था। उसी वर्ष एप्रिल मास में पण्डित चमूपति ने गुरुकुल से त्यागपत्र दे दिया था। विद्यासभा ने उनके स्थान पर पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार को मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया, और पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार को आचार्य। ये दोनों गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक थे, और गुरुकुल की परम्पराओं, मान्यताओं तथा आधारभूत सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित थे। प्राध्यापक के रूप में भी चिरकाल से गुरुकुल के साथ इनका सम्वन्ध था। दो वर्ष आचार्य के पद पर रहकर पण्डित देवशर्मा ने संन्यास आश्रम में प्रवेश कर लिया, और स्वामी अभयदेव वन गये। वह अव प्राय: पाण्डिचेरी के अरविन्द आश्रम में जाकर रहने लगे।

सन् १९३५ से १९४२ तक पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार गुरुकुल के प्रमुख पदाधिकारी व संचालक रहे। गुरुकुल के इतिहास में यह काल वड़े महत्त्व का है। उस समय गुरुकुल का खर्च चलाने के लिए प्रधानतया दान पर निर्भर रहना पड़ता था, और दान को चन्दे द्वारा ही प्राप्त किया जाता था। केवल गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता व आचार्य ही नहीं, अपितु प्राध्यापक व अन्य कर्मचारी भी प्रतिवर्ष चन्दे के लिए जाया करते थे, और वार्षिकोत्सव के अवसर पर जो धन एकत्र हो जाए, उसी से गुरुकुल का खर्च चलता था। स्थायी निधि में धन की वहुत कमी थी। चन्दा करना कितना कष्टसाध्य है, इसे पण्डित सत्यव्रत भली-भाँति जानते थे, क्योंकि वह भी धन एकत्र करने के लिए जाया करते थे। उन्होंने प्रयत्न प्रारम्भ किया, कि किसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से गुरुकुल स्वावलम्वी वन जाए, और अपने खर्च के लिए उसे चन्दे पर निर्भर न करना पड़े। उनका ध्यान गुरुकुल फार्मेसी की ओर गया। आयुर्वेद की शिक्षा गुरुकुल में सन् १९१९ में शुरू हो चुकी थी, और विद्यार्थियों को ओषधि-निर्माण का क्रियात्मक ज्ञान देने के लिए शास्त्रोक्त विधि से आयुर्वेदिक दवाइयाँ भी वनायी जाने लगी थीं। गुरुकुल फार्मेसी द्वारा निर्मित दवाइयों की वहुत माँग थी, क्योंकि लोगों को उनकी शुद्धता पर विश्वास था। गुरुकुल का अपना प्रिंटिंग प्रेस भी था, और प्रकाशन विभाग भी। उन दिनों गुरुकुल महाविद्यालय में रसायनशास्त्र के प्राध्यापक प्रो० फकीरचन्द त्रेहन थे, जिन्हें औद्योगिक रसायन (Industrial Chemistry) में वहुत रुचि थी। वह सियाही, फिनाइल और सावुन आदि अपने विद्यार्थियों से वनवाया भी करते थे। पण्डित सत्यव्रत ने विचार किया, कि यदि आयुर्वेदिक फार्मेसी, प्रिंटिंग प्रेस, पुस्तक प्रकाशन और रासायनिक उत्पादन को समुन्नत करने का प्रयत्न किया जाए, तो इनसे इतनी आमदनी प्राप्त की जा सकती है कि गुरुकुल का सव खर्च चलने लगे और चन्दा माँगने की आवश्यकता न रह जाए। उन्होंने फार्मेसी की उन्नति पर विशेष रूप से ध्यान देने का निश्चय किया। इसी प्रयोजन से उन्होंने पृथक् व्यवसाय पटल का संगठन किया, जिसके कारण फार्मेसी के अधिकारी सभा के अनावश्यक हस्तक्षेप के विना समुचित स्वतन्त्रता के साथ ओषधियों की विक्री वढ़ाने के लिए आवश्यक पग उठाने में समर्थ हो गये। पण्डित सत्यव्रत से प्रोत्साहन पाकर प्रोफेसर फकीरचन्द त्रेहन ने फिनाइल, सियाही आदि का वड़े पैमाने पर निर्माण प्रारम्भ किया। क्योंकि इनके निर्माण में शुद्धता और गुणों की उत्कृष्टता पर विशेष ध्यान दिया जाता था, अत: वाजार में इनकी माँग भी वढ़ने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी, और अनेक म्युनिसिपैलिटियों, वैंकों तथा व्यापारिक संस्थानों ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति गुरुकुल से वनी वस्तुओं से करनी प्रारम्भ कर दी। इसी प्रकार प्रेस एवं प्रकाशन विभाग की उन्नति पर भी पं० सत्यव्रत ने ध्यान किया। वीसवीं सदी के प्रथम चरण में, जव गुरुकुल ऐसे स्थान पर था जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं थी, गुरुकुल मुद्रणालय में न केवल सद्धर्म प्रचारक, श्रद्धा और वैदिक मैगजीन सदृश पत्र-पत्रिकाओं की ही छपाई की जाती थी, अपितु अनेक पुस्तकें भी उस द्वारा छापी जाती थीं। महर्षि दयानन्द के पत्र, भौतिकी, रसायन, भारतवर्ष का इतिहास (तीन भाग), पुराणमतपर्यालोचन और आर्य-भाषा पाठावली आदि कितनी ही पुस्तकें गुरुकुल के प्रेस में ही छपी थीं, और वहीं से प्रकाशित हुई थीं। अव गुरुकुल ऐसे स्थान पर आ गया था, जहाँ विजली आदि की सव सुविधाएँ थीं, जिनके कारण प्रेस में उन्नत मशीनों को प्रयुक्त कर सकना भी सम्भव हो गया था। पण्डित सत्यव्रत चाहते थे कि गुरुकुल के प्रेस तथा प्रकाशन विभाग को इतना उन्नत कर दिया जाए, कि वे भी आमदनी के महत्त्वपूर्ण साधन वन जाएँ। रासायनिक उत्पादन, प्रिंटिंग प्रेस तथा प्रकाशन विभाग के विकास में पण्डित सत्यव्रत को विशेष सफलता नहीं हुई। रासायनिक उत्पादन विभाग तो कुछ समय वाद वन्द भी हो गया। पर आयुर्वेदिक फार्मेसी की उन्नति व विकास में उन्हें वहुत सफलता प्राप्त हुई। सन् १९३९ में फार्मेसी से गुरुकुल को १३,३४२ रुपयों का शुद्ध लाभ हुआ था, जो उस समय सात प्रोफ़ेसरों के वेतन के लिए पर्याप्त था। वाद में फार्मेसी से प्राप्त होने वाले मुनाफे की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती गयी। यह स्वीकार करना होगा, कि मुख्याधिष्ठाता के अपने सात साल के कार्यकाल में पं० सत्यव्रत ने आर्थिक दृष्टि से गुरुकुल को पर्याप्त रूप से आत्मनिर्भर वना दिया था।

सन् १९४२ में पं० सत्यव्रत ने त्यागपत्र दे दिया। इसका कारण उनके स्वास्थ्य का खराव होना था। अव विद्यासभा ने गुरुकुल के प्रवन्ध तथा संचालन के लिए यह व्यवस्था की, कि पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति को मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया जाए और क्योंकि उनके लिए अधिक समय गुरुकुल में रहना सम्भव नहीं था, अतः आन्तरिक प्रवन्ध का कार्य भी आचार्य के हाथों में दे दिया जाए, जो मुख्याधिष्ठाता के निदेशन में शिक्षा के अतिरिक्त प्रवन्ध का कार्य भी सँभाला करे। इस व्यवस्था के अनुसार अव गुरुकुल का सव प्रवन्ध व संचालन स्वामी अभयदेव (पं० देवशर्मा विद्यालंकार) के हाथों में आ गया, जो पहले से ही आचार्य के पद पर नियुक्त थे। पर स्वामीजी देर तक गुरुकुल के संचालक नहीं रहे। नवम्वर, १९४२ में उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, और पं० बुद्धदेव विद्यालंकार को उनके स्थान पर आचार्य नियुक्त किया गया। पर वह भी देर तक गुरुकुल में कार्य नहीं कर सके। मई, १९४३ में उन्होंने आचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया। अव उनके स्थान पर पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति गुरुकुल के आचार्य नियुक्त हुए। वह सन् १९६८ तक आचार्य के रूप में गुरुकुल का संचालन करते रहे। उस समय तक गुरुकुल को यूनिवर्सिटी के समकक्ष स्थिति प्राप्त हो चुकी थी। १९६८ में पं० प्रियव्रत गुरुकुल के वाइस-चान्सलर नियुक्त कर दिये गये, और जून, १९७१ तक वह इस पद पर रहे। इस प्रकार २८ वर्ष के सुदीर्घ काल तक (१९४३ से १९७१ तक) वह गुरुकुल के प्रमुख पदाधिकारी रहे, और उनके कारण इस संस्था में एक प्रकार की स्थिरता आ गयी, जिसका वहाँ पिछले कुछ वर्षों में अभाव रहा था। पण्डित प्रियव्रत गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों में उनकी अगाध श्रद्धा है। वह प्रभावशाली वक्ता और सुलेखक भी हैं। कई वर्ष तक पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन उन्होंने वेदप्रचार का कार्य किया, और उपदेशक विद्यालय, लाहौर के वह आचार्य भी रहे। आर्यजगत् से उनका घनिष्ठ सम्पर्क है, और आर्य जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती है। उन्होंने भरसक प्रयत्न किया, कि गुरुकुल से आर्य-समाज की आशाएँ पूर्ण हो सकें, और उन्हें आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त हुई।

मुख्याधिष्ठाता के पद पर पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति नियुक्त थे, पर वह प्राय: दिल्ली रहा करते थे। सन् १९५३ में उनकी सहायतार्थ सहायक मुख्याधिष्ठाता के रूप में पं० धर्मपाल विद्यालंकार की नियुक्ति हुई। पण्डित धर्मपाल बड़े परिश्रमी व कुशल प्रशासक थे। इन्द्रजी की अनुपस्थिति में गुरुकुल के प्रबन्ध का सब कार्य उन्होंने बड़े अच्छे ढंग से सँभाला हुआ था, और क्रियात्मक दृष्टि से वही गुरुकुल के प्रबन्धकर्ता व व्यवस्थापक थे। लगभग बीस वर्ष पण्डित धर्मपाल गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता रहे, और अपनी उत्तरदायिता को उन्होंने बड़ी कुशलता से निबाहा।

(५) स्वतन्त्र भारत की सरकार द्वारा गुरुकुल विश्वविद्यालय को मान्यता

सन् १९४७ में भारत ने अंग्रेजी शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्रता प्राप्त की। स्थापना के समय से १९४७ तक लगभग आधी सदी के सुदीर्घकाल में गुरुकुल ने सरकार के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रखा, और पूर्णतया स्वाधीन रूप से ही अपना विकास किया। विदेशी सरकार के साथ कोई सम्बन्ध न रखना और उससे किसी भी प्रकार की कोई भी सहायता प्राप्त न करना गुरुकुल के लिए सर्वथा उचित व स्वाभाविक था, क्योंकि उसकी स्थापना में जहाँ अन्य अनेक कारण थे, वहाँ अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप एक राष्ट्रीय शिक्षणालय को प्रस्तुत करना भी उसका एक प्रयोजन था। पर अब स्थिति बदल गयी थी। भारत में अब स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो गयी थी, और उसके साथ सम्पर्क से बचे रहने का कोई कारण नहीं था। इसीलिए अब यह प्रयत्न किया गया, कि भारत की केन्द्रीय सरकार तथा उत्तरप्रदेश की राज्य सरकार से गुरुकुल के लिए आर्थिक अनुदान प्राप्त किया जाए, और साथ ही विविध सरकारों तथा यूनिवर्सिटियों से गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की डिग्रियों को भी मान्यता दिलायी जाए। इस समय तक 'विद्यालंकार' आदि की जो डिग्रियाँ गुरुकुल द्वारा दी जाती थीं, सरकार तथा स्कूल-कॉलिजों की सर्विस प्राप्त करने के लिए उनका कोई मूल्य नहीं था। गुरुकुल के स्नातकों को इस कारण बहुत दिक्कत उठानी पड़ती थी। जहाँ तक सर्विस का सम्बन्ध था, वे गुरुकुल काँगड़ी तथा उसकी शाखाओं में, अन्य गुरुकुलों में, आर्य प्रतिनिधि सभा एवं आर्यसमाजों में अध्यापक, प्रचारक व उपदेशक की सर्विस अवश्य प्राप्त कर सकते थे। पर इनसे बहुत कम स्नातकों की समस्या हल हो पाती थी। जो स्नातक स्वतन्त्र व्यापार व व्यवसाय करने की स्थिति में हों या घर से सम्पन्न हों, उनकी बात और है, पर सामान्यतया स्नातकों के सम्मुख यही मार्ग रह जाता था कि पहले वे प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री या रत्न, भूषण और प्रभाकर की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर केवल अंग्रेजी में मैट्रिक्युलेशन, एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करें और फिर किसी स्कूल या कॉलिज में संस्कृत या हिन्दी के अध्यापक की सर्विस प्राप्त करें। इसमें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके कई वर्ष नष्ट हो जाते थे, और जब सर्विस मिलती भी थी, तो वह उसकी योग्यता के अनुरूप नहीं होती थी। कुछ स्नातकों ने जर्मनी, इटली या फ्रांस जाकर वहाँ की यूनिवर्सिटियों से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, और उसके आधार पर वे भारत में अच्छी सर्विस प्राप्त करने में समर्थ हुए। भारत के समान ग्रेट ब्रिटेन तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अन्य देशों में गुरुकुल की डिग्री की मान्यता नहीं थी। पर म्यूनिच (जर्मनी), रोम (इटली) और पेरिस (फ्रांस) आदि की यूनिवर्सिटियों ने योग्यता के आधार पर गुरुकुल की डिग्रियों को मान्यता प्रदान की, और उसके स्नातकों को डाक्टरेट करने का अवसर प्रदान किया। डा० प्राणनाथ विद्यालंकार, डा० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, डा० धर्मानन्द आयुर्वेदालंकार, डा० बलराम आयुर्वेदालंकार, डा० नारायणदत्त आयुर्वेदालंकार, डा० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार आदि कितने ही स्नातकों ने यूरोप जाकर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, और स्वदेश लौटकर यहाँ की शिक्षण-संस्थाओं में व अन्यत्र सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किये। पर सबके लिए विदेश जाकर डिग्री प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं था। अतः स्वतन्त्र भारत की केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों और विविध यूनिवर्सिटियों से गुरुकुल की डिग्रियों को मान्यता प्राप्त कराने का प्रयत्न सर्वथा समुचित था। इससे गुरुकुल के स्नातकों को सर्विस प्राप्त करने तथा जीवन संघर्ष में सफल होने में बहुत सहायता मिली।

(१) २४ मई, १९४८ को बिहार सरकार ने सन् १९४७ तक जिन विद्यार्थियों ने गुरुकुल से विविध डिग्रियाँ प्राप्त कर ली थीं, उनको मान्यता प्रदान कर दी। बिहार में अधिकारी को मैट्रिक के, अलंकार को बी० ए० के और वाचस्पति को एम० ए० के समकक्ष मान लिया गया।

(२) ५ जुलाई, १९४८ को उत्तरप्रदेश सरकार ने गुरुकुल की अलंकार डिग्री को बी० ए० के समकक्ष स्वीकार कर लिया।

(३) ६ नवम्बर, १९४८ को हिमाचल प्रदेश की सरकार ने गुरुकुल की विद्याधिकारी को मैट्रिकुलेशन के, अलंकार (विद्यालंकार, वेदालंकार, सिद्धान्तालंकार और आयुर्वेदालंकार) को बी० ए० के और वाचस्पति (वेदवाचस्पति और विद्यावाचस्पति) को एम० ए० के समकक्ष स्वीकृत किया।

(४) ६ मई, १९४९ को भारत की केन्द्रीय सरकार ने गुरुकुल के स्नातकों को सामयिक रूप से सरकारी यूनिवर्सिटियों के ग्रेजुएट के समकक्ष मान लिया।

(५) १३ अक्तूबर, १९४९ को पंजाब सरकार ने और १५ दिसम्बर, १९४९ को बम्बई की सरकार ने गुरुकुल की अलंकार डिग्री को बी० ए० के बराबर स्वीकार कर लिया।

विविध सर्विसों के लिए केन्द्रीय लोकसेवा आयोग तथा विविध राज्यों के लोकसेवा आयोगों द्वारा जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, उनमें बैठने के लिए बी० ए० होना पर्याप्त होता है। क्योंकि अब गुरुकुल की 'अलंकार' डिग्री को केन्द्रीय सरकार तथा अनेक राज्य सरकारों ने बी० ए० के समकक्ष मान लिया था, अतः गुरुकुल के स्नातकों के लिए इन परीक्षाओं में बैठ सकने में कोई बाधा नहीं रह गयी थी और सरकारी सर्विस प्राप्त करने का मार्ग उनके लिए खुल गया था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध यूनिवर्सिटियों द्वारा भी गुरुकुल की 'अलंकार' डिग्री को मान्यता प्रदान कर दी गयी। २६ जुलाई, १९४८ को आगरा यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार ने सूचित किया, कि यूनिवर्सिटी की सीनेट ने अपने प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय किया है कि गुरुकुल से 'अलंकार' परीक्षा उत्तीर्ण किये हुए व्यक्ति बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण किये बिना ही आगरा यूनिवर्सिटी की संस्कृत, हिन्दी, पाश्चात्य दर्शन, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र विषयों में एम० ए० परीक्षा में बैठ सकते हैं। बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण किये बिना गुरुकुल के स्नातक संस्कृत और हिन्दी विषयों में एम० ए० कर सकें, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने भी यह स्वीकृत कर लिया। जिन अन्य यूनिवर्सिटियों तथा शिक्षा परिषदों ने गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं व डिग्रियों को स्वीकृत किया, वे निम्नलिखित हैं—(१) राजपूताना यूनिवर्सिटी—हिन्दी, संस्कृत, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान से एम० ए० करने के लिए 'अलंकार' डिग्री। (२) बिहार यूनिवर्सिटी—हिन्दी और संस्कृत में एम० ए० करने के लिए 'अलंकार' डिग्री। (३) माध्यमिक शिक्षा परिषद्, संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश)—गुरुकुल की अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण (विद्याधिकारी) को हाई स्कूल की परीक्षा के समकक्ष। (४) दिल्ली यूनिवर्सिटी—हिन्दी, संस्कृत और पाश्चात्य दर्शन में एम० ए० करने के लिए 'अलंकार' डिग्री को बी० ए० के समकक्ष मान्यता। (५) उस्मानिया यूनिवर्सिटी—हिन्दी और संस्कृत में एम० ए० के लिए 'अलंकार' के बी० ए० के समकक्ष होने की स्वीकृति। (६) संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी —नैरुक्त प्रक्रिया और सामान्य दर्शन की आचार्य परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए गुरुकुल काँगड़ी के वेदालंकार और विद्यालंकार को अनुमति।

गुरुकुल की 'आयुर्वेदालंकार' डिग्री को भी अनेक सरकारों द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गयी, जिसके कारण इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए स्नातकों को इन सरकारों के शासन क्षेत्र में आयुर्वेद की चिकित्सा करने में कोई बाधा नहीं रह गयी। मध्यप्रदेश, बंगाल, पेप्सू (पटियाला एवं पूर्वी पंजाब राज्य यूनियन), संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश), और उड़ीसा की सरकारों द्वारा आयुर्वेदालंकार डिग्री को स्वीकृत कर लिया गया था, और नेपाल की सरकार ने भी आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरियों में आयुर्वेदालंकारों को नियुक्त कर सकना मान लिया था।

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के लिए यह सब बड़े ही महत्त्व का था। उसके स्नातकों के सम्मुख अब सर्विस प्राप्त करने में कोई विशेष रुकावट नहीं रह गयी थी, और वे सरकारी यूनिवर्सिटियों से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर अन्यत्र भी कॉलिजों तथा यूनिवर्सिटियों में प्राध्यापक नियुक्त हो सकते थे। एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर वे डाक्टरेट भी कर सकते थे, और इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उच्च स्थिति प्राप्त कर सकते थे। लोकसेवा आयोगों की परीक्षाओं में बैठ सकना उनके लिए सम्भव हो गया था, और लॉ कॉलिजों में प्रविष्ट होकर तथा एल-एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण कर वे वकालत भी कर सकते थे। बहुत-से स्नातकों ने इससे लाभ उठाया, और हिन्दी, संस्कृत, राजनीतिशास्त्र आदि विषयों में एम० ए० कर वे अच्छी सर्विस प्राप्त करने में समर्थ हुए। पर गुरुकुल काँगड़ी की स्थिति अब भी एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय की थी। उस पर कोई सरकारी नियन्त्रण नहीं था। पाठ्यक्रम का निर्धारण करना और परीक्षाएँ लेना पूर्णतया शिक्षा पटल के हाथ में था, और गुरुकुल की व्यवस्था तथा संचालन विद्यासभा के। इनमें सरकार का कोई

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज, लाहौर के आदि-संस्थापक एवं संचालक
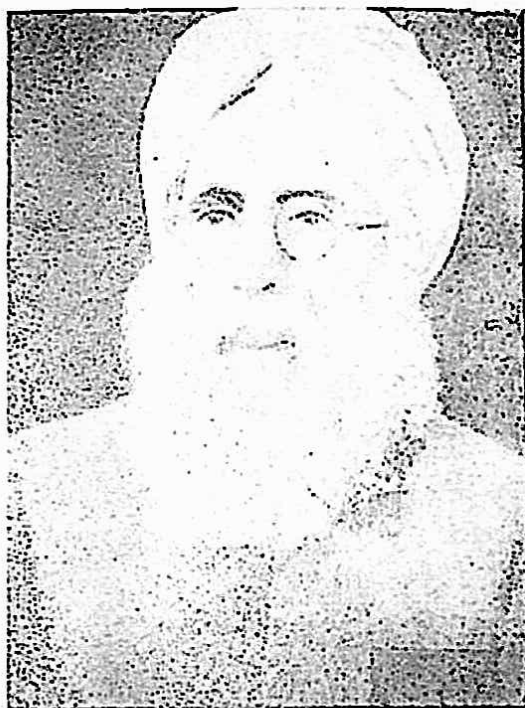
महात्मा हंसराज
प्रथम आचार्य
डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर
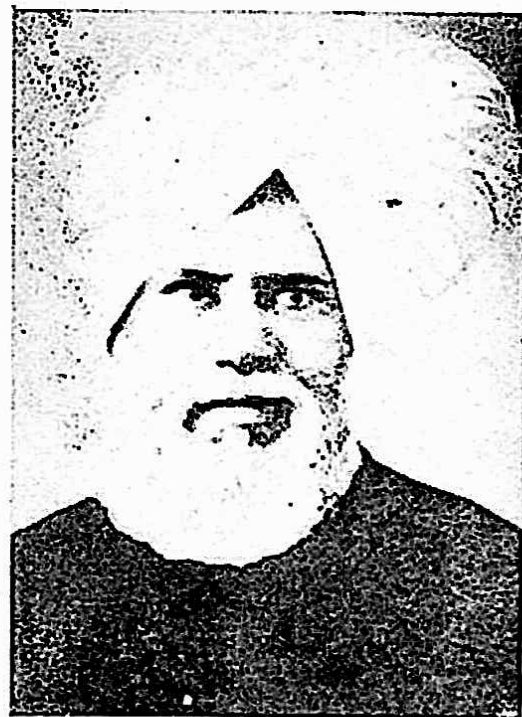
रायबहादुर लाला लालचन्द
प्रथम प्रधान
डी० ए० वी० सोसायटी, लाहौर

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी
डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर की
स्थापना में प्रमुख सहयोगी

लाला लाजपतराय
डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर की
स्थापना में प्रमुख सहयोगी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक एवं भूतपूर्व आचार्य आदि

महात्मा मुंशीराम
गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक एवं
प्रथम मुख्याधिष्ठाता
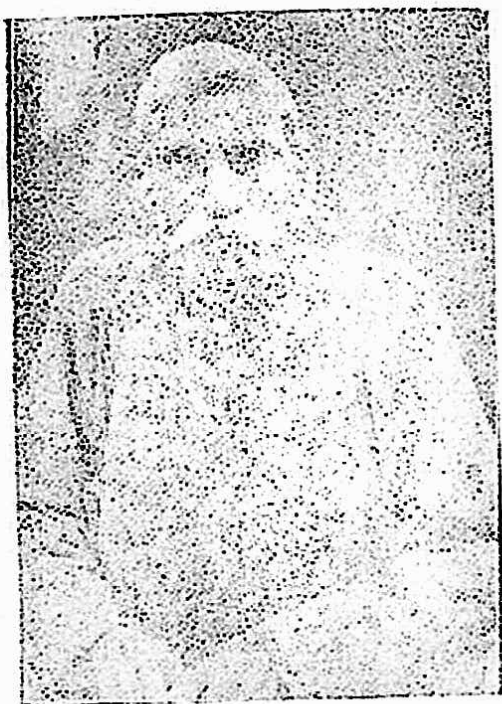
मुंशी अमनसिंह
गुरुकुल काँगड़ी के लिए भूसम्पत्ति
दान देने वाले दानी
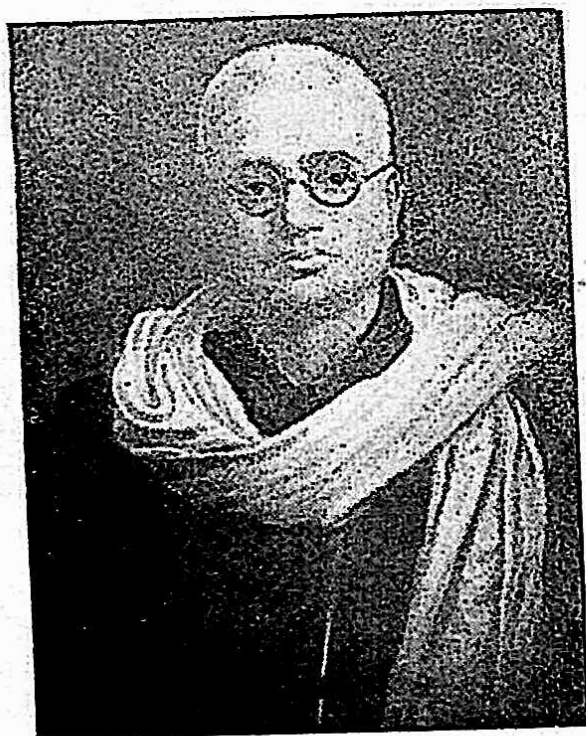
आचार्य रामदेव
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के
भूतपूर्व आचार्य

पण्डित विश्वम्भरनाथ
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के
भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डी० ए० वी० कॉलिज, लाहौर के भूतपूर्व प्रिंसिपल तथा डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के प्रधान उन्नायक

लाला साईंदास
डी० ए० वी० कॉलिज के भूतपूर्व प्रिंसिपल,
(महात्मा हंसराज के उत्तराधिकारी)

लाला मेहरचन्द
डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर के
भूतपूर्व प्रधान

श्री गोवर्धनलाल दत्त
डी० ए० वी० आन्दोलन के प्रमुख
उन्नायक, भूतपूर्व प्रिंसिपल
एवं वाइस-चांसलर

प्रिंसिपल सूरजभान
डी० ए० वी० आन्दोलन के प्रमुख
उन्नायक, भूतपूर्व प्रिंसिपल
एवं वाइस-चांसलर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के संस्थापक एवं संचालक
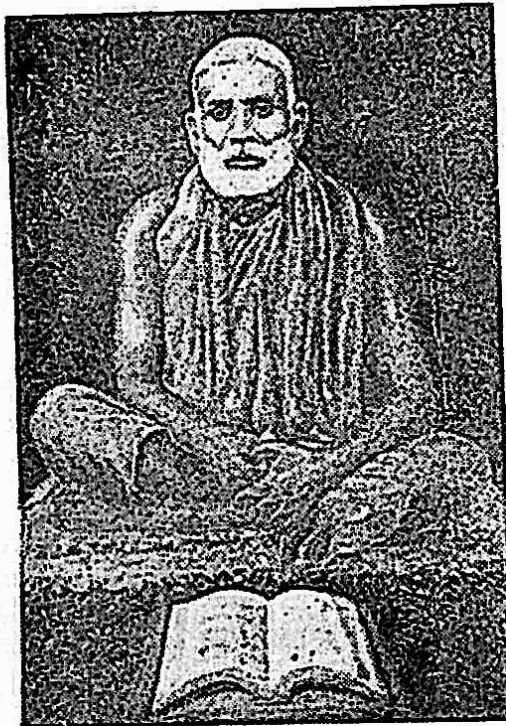
स्वामी शुद्धबोधतीर्थजी महाराज
(पण्डित गंगादत्तजी)
गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के
प्रथम आचार्य
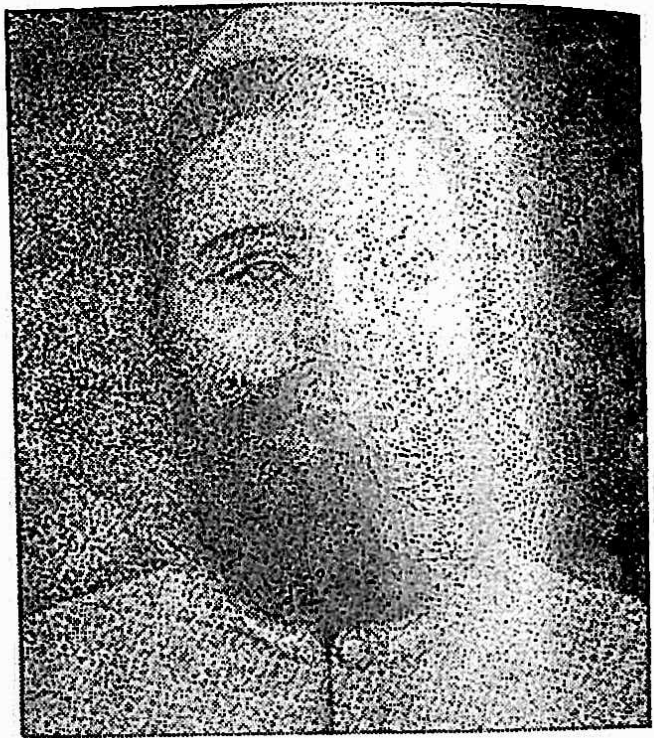
बाबू सीताराम
गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर
की भूमि के दाता

पण्डित नरदेव शास्त्री
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के
भूतपूर्व आचार्य एवं
कुलपति
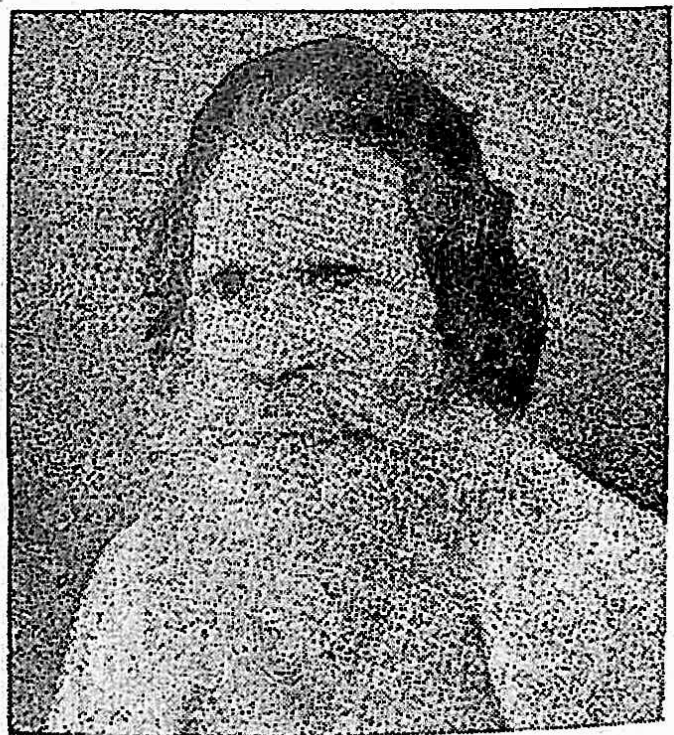
श्री स्वामी नारायणमुनिश्चचतुर्वेदः
(पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी)
गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के
भूतपूर्व आचार्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर आदि अनेक गुरुकुलों के
आदि-संस्थापक

पण्डित भगवानदीन
गुरुकुल वृन्दावन के भूतपूर्व
मुख्याधिष्ठाता

कुंअर (राजा) महेन्द्र प्रताप
गुरुकुल वृन्दावन के लिए भूमि प्रदाता

महात्मा नारायण प्रसाद
(महात्मा नारायण स्वामी)
गुरुकुल वृन्दावन के भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान में दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापक एवं संचालक

पण्डित जियालाल
राजस्थान के प्रसिद्ध आर्य नेता,
शिक्षाशास्त्री एवं डी० ए० वी०
शिक्षणालय के संस्थापक

आचार्य दत्तात्रेय वाव्ले
डी० ए० वी० कॉलिज, अजमेर तथा
अजमेर की अन्य डी० ए० वी० संस्थाओं
के प्रधान संचालक एवं भूतपूर्व आचार्य

उत्तर प्रदेश की डी० ए० वी० संस्थाओं के प्रधान उन्नायक

प्रिंसिपल दीवानचन्द
डी० ए० वी० कॉलिज कानपुर के
प्रथम आचार्य

प्रिंसिपल कालकाप्रसाद भटनागर
डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के
भूतपूर्व आचार्य एवं प्रधान उन्नायक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त-प्रान्त (उत्तरप्रदेश) में दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापक व प्रमुख उन्नायक

बाबू लक्ष्मणस्वरूप
संयुक्त प्रान्त की डी० ए० वी० सोसायटी
के प्रथम प्रधान

बाबू ज्योति स्वरूप
संयुक्त प्रान्त की डी० ए० वी० सोसायटी
के भूतपूर्व प्रधान

बाबू आनन्द स्वरूप
भूतपूर्व प्रधान डी० ए० वी० मैनेजिंग
कमेटी, कानपुर

बाबू वीरेन्द्र स्वरूप
डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के भूतपूर्व
प्रधान एवं प्रमुख उन्नायक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं के प्रधान संचालक एवं उन्नायक

श्री जस्टिस मेहरचन्द महाजन
पाकिस्तान में विस्थापित डी० ए० वी० संस्थाओं को भारत में पुनः स्थापित करने में जिनका सर्वप्रधान योगदान रहा (सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस)

श्री वैद्यनाथ प्रसाद
(महात्मा दाढ़ी बाबा)
सीवाम (विहार राज्य) में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापक

प्रिंसिपल कुमारी आनन्द
हंसराज महिला महाविद्यालय की भूतपूर्व आचार्या

पण्डित मेहरचन्द
डी० ए० वी० कॉलिज, जालन्धर के भूतपूर्व प्रिंसिपल एवं प्रधान उन्नायक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता और कुलपति

पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के
भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता
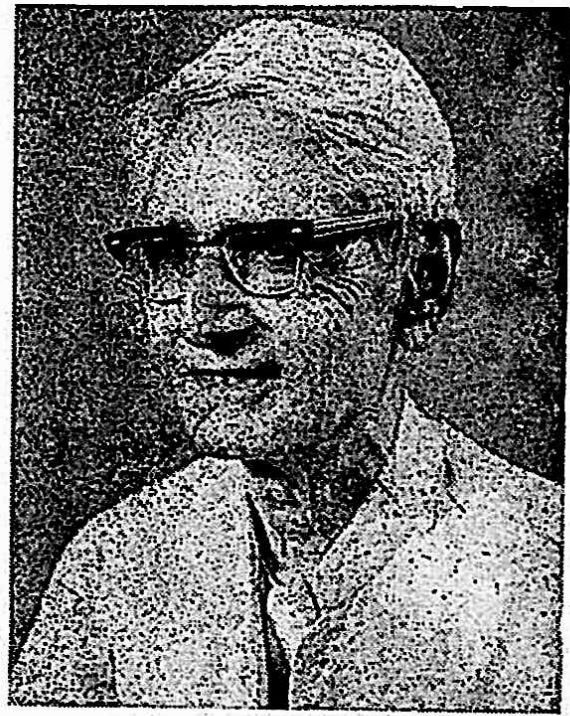
पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व
मुख्याधिष्ठाता और कुलपति

पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के
भूतपूर्व कुलपति

पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के
भूतपूर्व आचार्य एवं कुलपति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
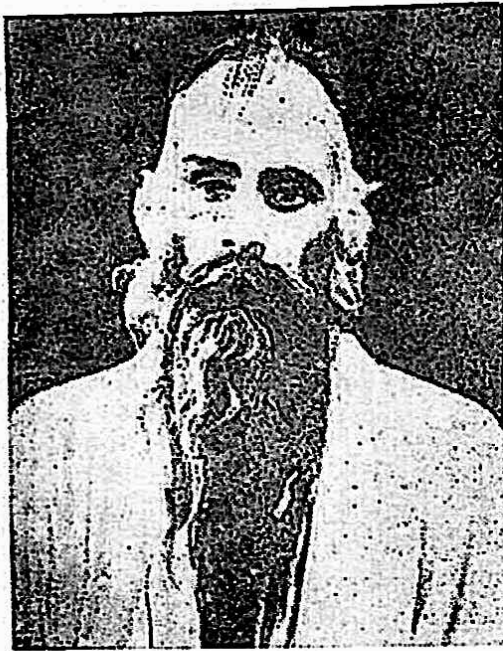
भक्त फूलसिंह
(हरयाणा विद्यापीठ भैंसवाल तथा
कन्या गुरुकुल खानपुर-कलां के
संस्थापक

पद्मश्री बहन सुभाषिणी देवी
(कन्या गुरुकुल खानपुर-कलां की
आचार्या)

पण्डित आनन्दप्रिय
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय बड़ौदा के
प्रधान उन्नायक एवं आचार्य तथा गुजरात
में आर्य शिक्षणालयों के प्रधान उन्नायक
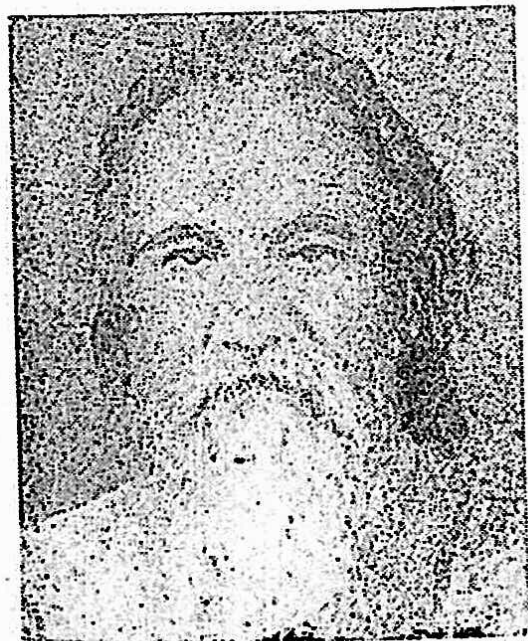
पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु
आर्ष पद्धति से संस्कृत व्याकरण के प्रमुख
प्राध्यापक एवं अनेक आर्य शिक्षण-
संस्थाओं के संस्थापक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी के शाखा-गुरुकुलों के संस्थापक एवं संचालक

चौधरी पीरूसिंह
गुरुकुल मटिण्डू (सोनीपत) के
संस्थापक

पण्डित प्रियव्रत विद्यालंकार
गुरुकुल कुरुक्षेत्र के संचालक एवं
आदि-आचार्य

महात्मा प्रभुआश्रित
श्री विरजानन्द स्मारक संस्कृत
महाविद्यालय, गुरुकुल करतारपुर
के आदि-संचालक

आचार्य यशपाल
गुरुकुल मटिण्डू के भूतपूर्व आचार्य तथा
कन्या गुरुकुल खरखोदा के
संस्थापक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष शिक्षापद्धति के प्रमुख उन्नायक तथा आर्ष गुरुकुलों के संस्थापक

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती
(पं० युधिष्ठिर विद्यालंकार)
भूतपूर्व आचार्य एवं संस्थापक
गुरुकुल चित्तौड़गढ़

पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार
गुरुकुल महाविद्यालय प्रभात आश्रम
(मेरठ) के संस्थापक एवं आदि-संचालक
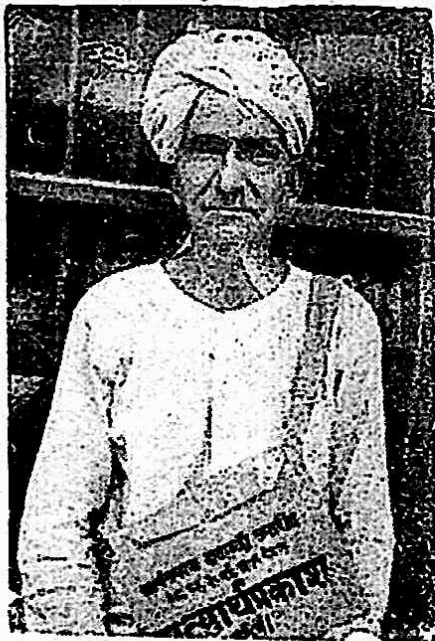
महाशय हरद्वारीलाल आर्य
आर्ष गुरुकुल सिंहपुरा (रोहतक) के
संस्थापक
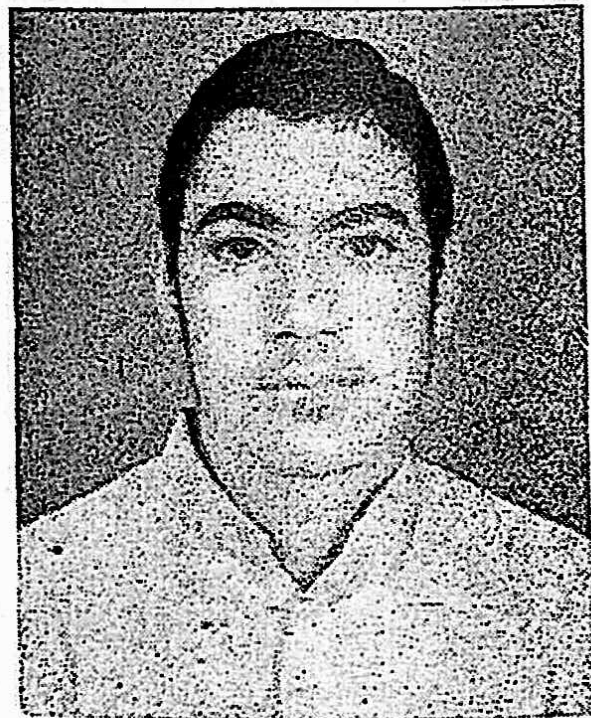
पण्डित ओमप्रकाश वेदालंकार
आर्ष गुरुकुल रोहणियाँ (बरेली) के
संस्थापक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल आत्मशुद्धि आश्रम
वहादुरगढ़ हरयाणा के
संस्थापक
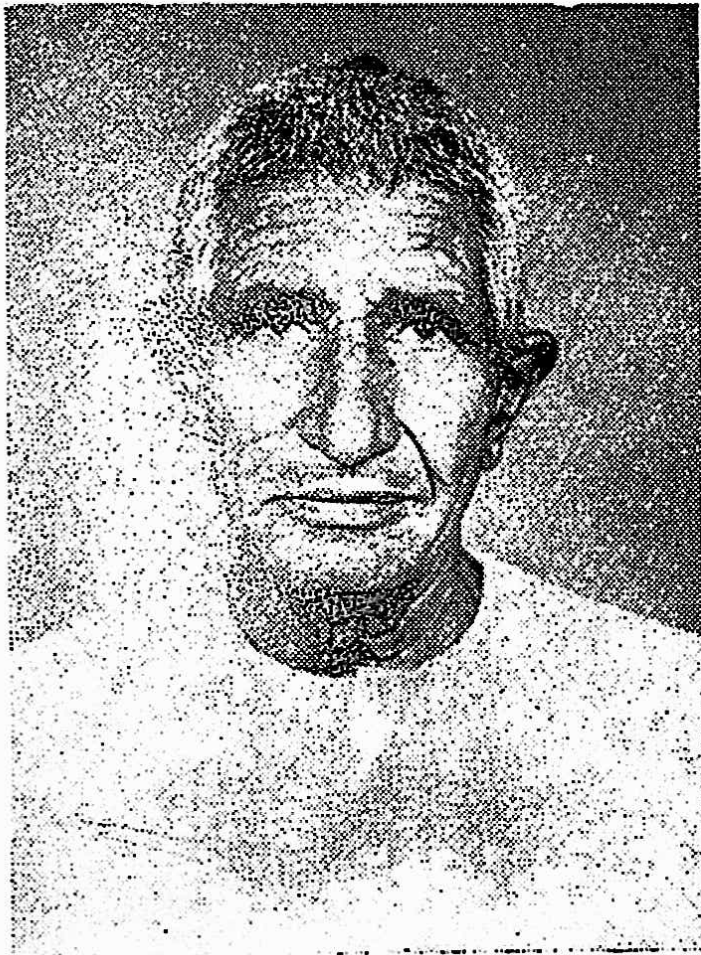
स्वामी सुलक्षणानन्द सरस्वती
प्रारम्भ से गुरुकुल झज्झर के प्रबन्धकर्ता व मुख्याधिष्ठाता

स्वामी धर्ममुनि परिव्राजक
गुरुकुल वहादुरगढ़
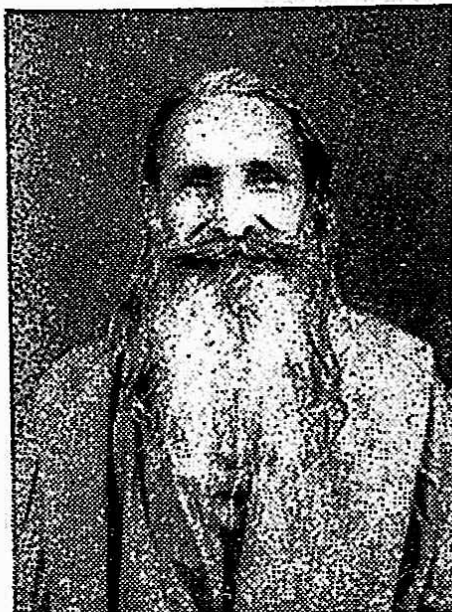
स्वामी सच्चिदानन्दजी योगी
गुरुकुल महाविद्यालय,
गौतमनगर, नयी दिल्ली के संस्थापक
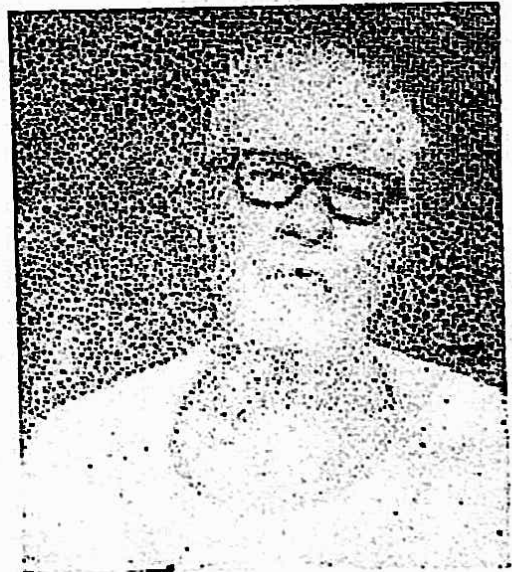
श्री मोतीलाल सामन्त
गुरुकुल काडरचण्डी
(पश्चिमी बंगाल)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल घरौंदा के संस्थापक

महर्षि दयानन्द गुरुकुल महाविद्यालय, गाज़ियाबाद के संचालक

स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती
गुरुकुल घरौंदा के संस्थापक तथा आर्य नेता
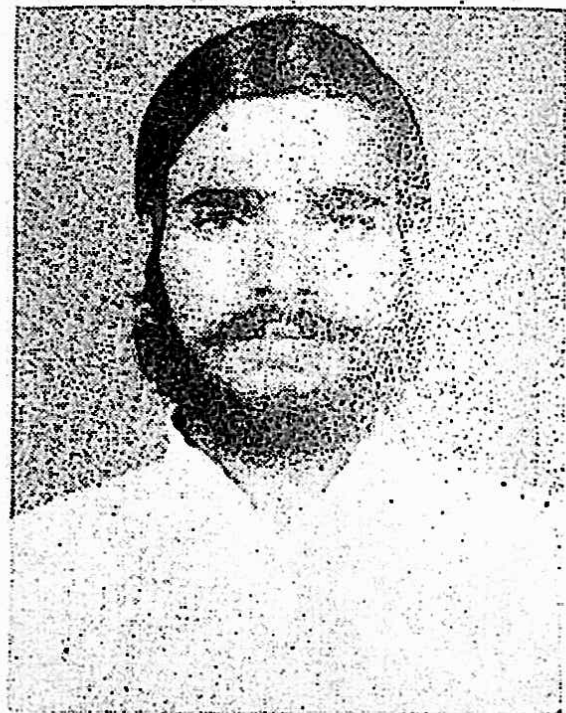
आचार्य समरभानु शास्त्री
गुरुकुल के आचार्य

आर्य गुरुकुल महाविद्यालय, किरठल (मेरठ) के भूतपूर्व संचालक
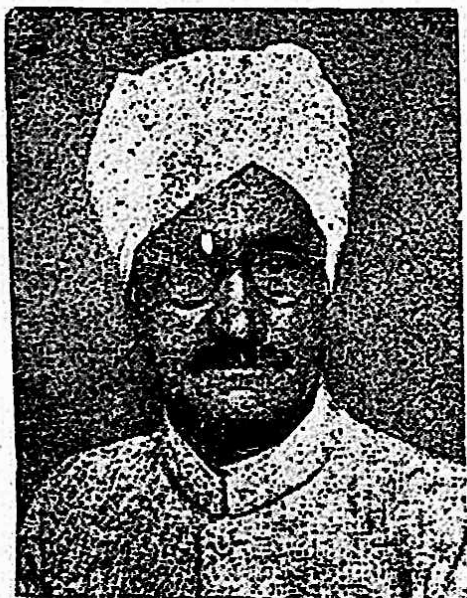
पण्डित जगदेवसिंह सिद्धान्ती
गुरुकुल किरठल के भूतपूर्व संचालक
तथा आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता
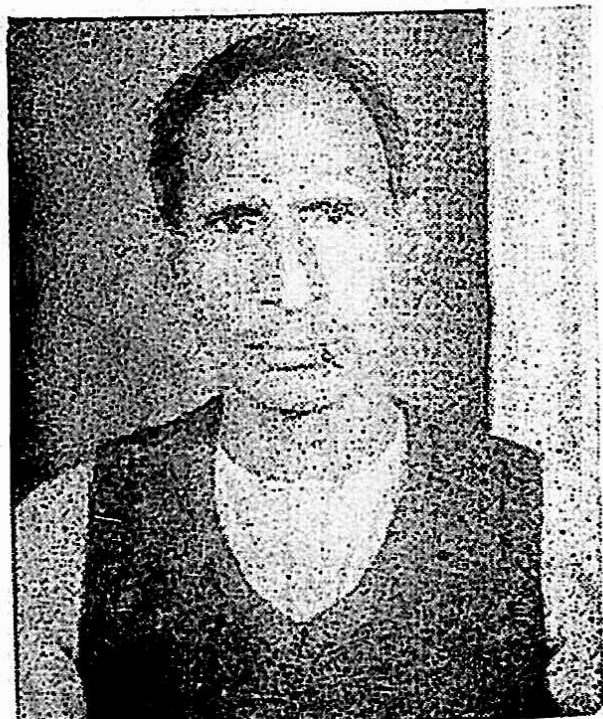
आचार्य शिवपूजनसिंह
गुरुकुल किरठल के
भूतपूर्व आचार्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वदानन्द संस्कृत महाविद्यालय साधु आश्रम, अलीगढ़ के संस्थापक एवं संचालक

स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज
सर्वदानन्द संस्कृत महाविद्यालय के
संस्थापक

स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती
(पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री)
संस्कृत महाविद्यालय के भूतपूर्व
संचालक-सहयोगी

आर्ष गुरुकुल गंगीरी (अलीगढ़) के संस्थापक तथा संचालक
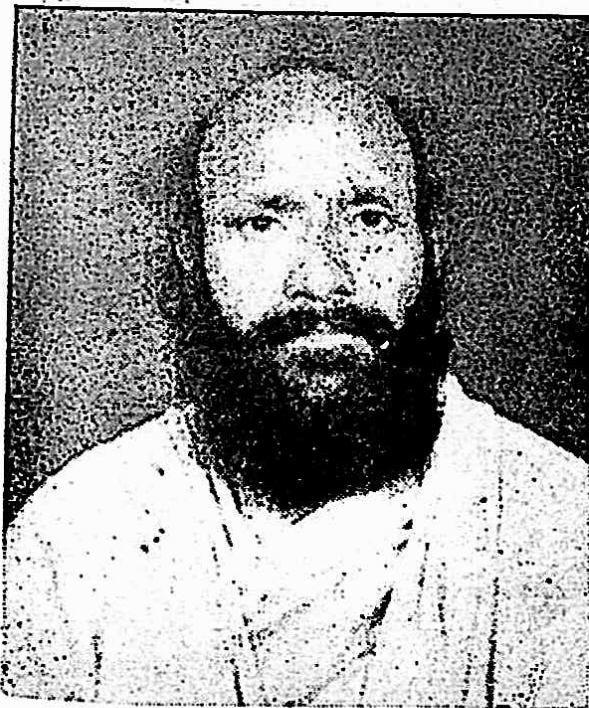
स्वामी योगानन्द सरस्वती
गुरुकुल गंगीरी के संस्थापक

आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री
गुरुकुल गंगीरी के संचालक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या गुरुकुल सासनी (हाथरस) तथा अन्य गुरुकुलों के संचालक व संस्थापक

श्रीमती अक्षयकुमारीजी
आचार्या, कन्या गुरुकुल, सासनी

पण्डित महेन्द्रप्रताप शास्त्री
संचालक, कन्या गुरुकुल सासनी
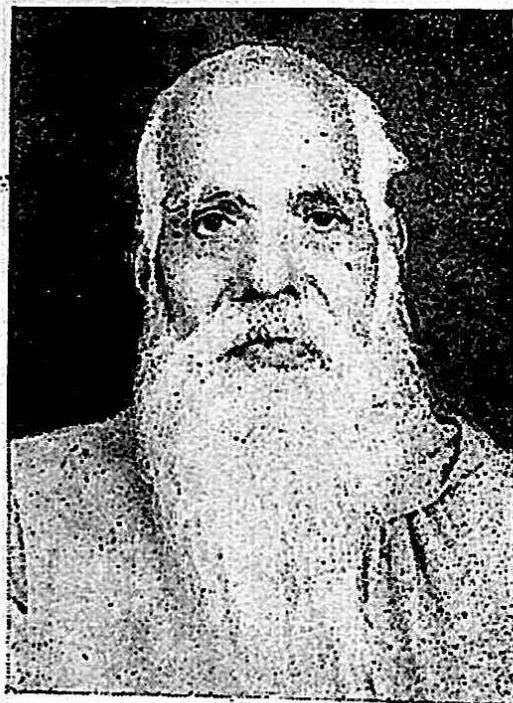
कर्मवीर ठाकुर संसारसिंह
कन्या गुरुकुल कनखल के संस्थापक एवं भूतपूर्व संचालक तथा प्रसिद्ध आर्य नेता
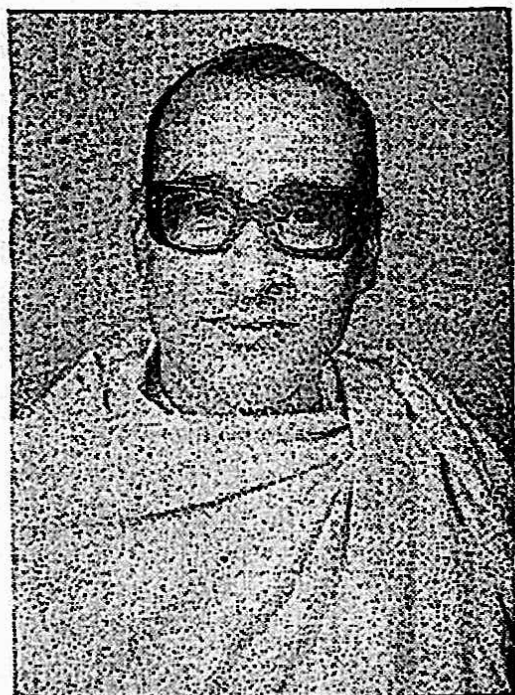
स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती
उड़ीसा में गुरुकुल वेदव्यास तथा अन्य अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापक तथा प्रसिद्ध आर्य नेता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य शिक्षण-संस्थाओं के प्रमुख उन्नायक

पण्डित लक्ष्मीदत्त दीक्षित
(स्वामी विद्यानन्द सरस्वती)
आर्य कॉलिज पानीपत के भूतपूर्व आचार्य
एवं संचालक

डा० दुखनराम
आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता
गुरुकुल काँगड़ी के भूतपूर्व विजिटर तथा
अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं के संचालक

श्री गोवर्धन शास्त्री
उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (पाकिस्तान) में
अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापक एवं
संचालक तथा संघड़ विद्या सभा के संस्थापक

पण्डित कुन्दनलाल
आर्य कॉलिज, पानीपत के प्रमुख
उन्नायक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर के संस्थापक तथा संचालक

लाला देवराज
कन्या महाविद्यालय, जालन्धर के
संस्थापक

श्रीमती कुमारी लज्जावती
कन्या महाविद्यालय जालन्धर की प्रथम
आचार्या

कन्या गुरुकुलों की संचालिकाएँ

आचार्या दमयन्ती
कन्या गुरुकुल, देहरादून की आचार्या
एवं निर्मात्री

आचार्या सुमित्रा देवी जी
कन्या गुरुकुल, नरेला की
आचार्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी अफ्रीका में आर्य शिक्षणालयों के आदि-संस्थापक
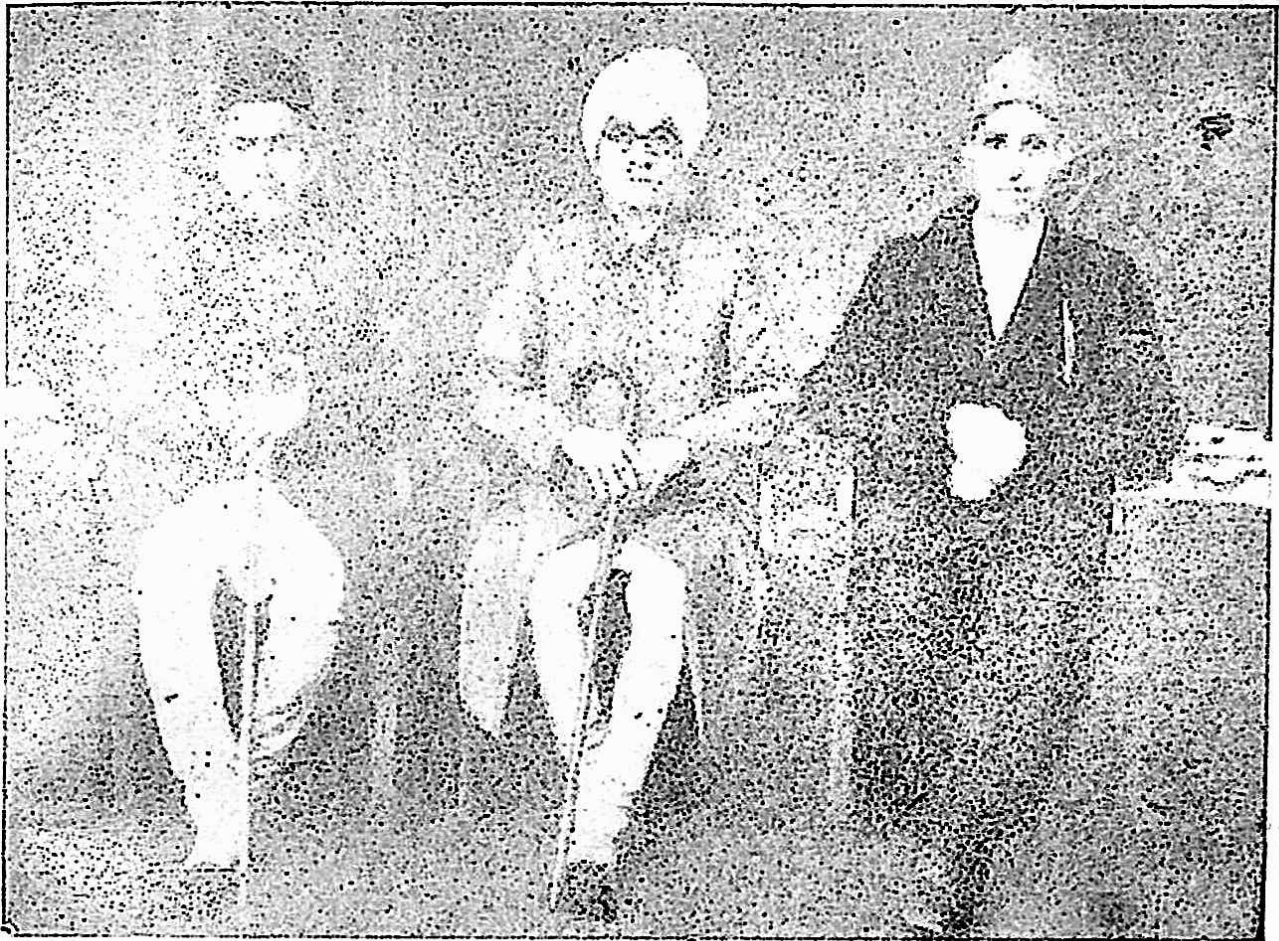
पण्डित बैशाखीराम पण्डित मथुराप्रसाद श्री बद्रीनाथ

दक्षिणी अफ्रीका में आर्य शिक्षा के प्रधान उन्नायक

स्वामी शंकरानन्द
दक्षिणी अफ्रीका में आर्य शिक्षा के
प्रथम आन्दोलनकर्ता

पण्डित नरदेव वेदालंकार
संचालक वेदनिकेतन तथा हिन्दी
शिक्षणालयों के संचालक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फीजी में आर्य शिक्षणालयों के उन्नायक

डत गोपेन्द्र नारायण पथिक

श्री पं० विष्णुदेव आर्यरत्न
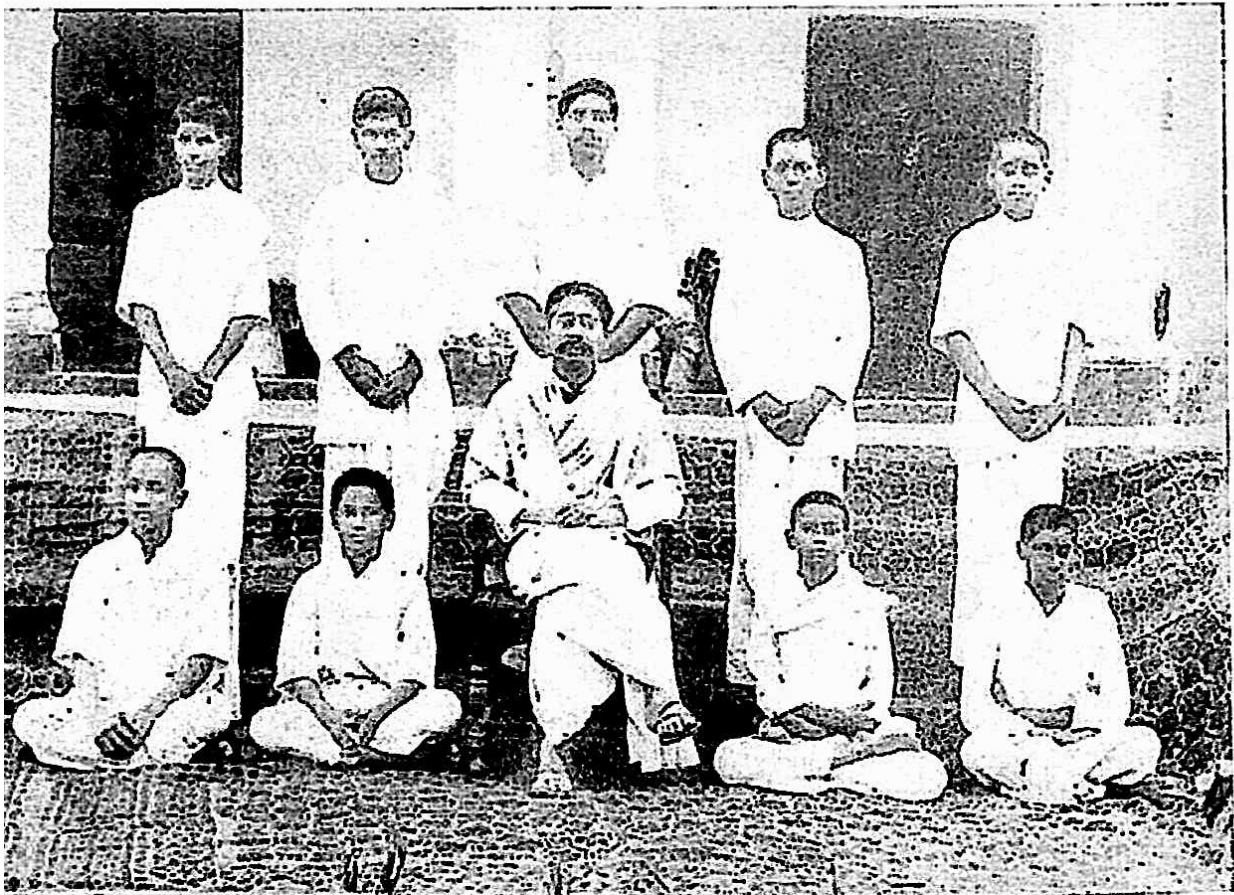
फीजी के विद्यार्थी (गुरुकुल वृन्दावन में)
वीच में आचार्य वृहस्पति विराजमान हैं।
बायीं ओर से बैठे हुए प्रथम दो छात्र थाईलैंड (स्याम) के हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित विश्वम्भरदासजी
(गुरुकुल झज्झर के संस्थापक)

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के उन्नायक

स्वामी आदित्यवेश
गुरुकुल महाविद्यालय, शुक्रताल
(मुजफ्फरनगर) के संस्थापक एवं
सचालक

श्री मनुभाई पटेल
कन्या महाविद्यालय, इटोला
(गुजरात) के भूतपूर्व
मुख्याधिष्ठाता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती लक्ष्मीदेवीजी
(कन्या गुरुकुल हाथरस की संस्थापिका)

आचार्य विष्णुमित्रजी
(हरयाणा विद्यापीठ गुरुकुल भैंसवाल
के चिरकाल के कुलपति)
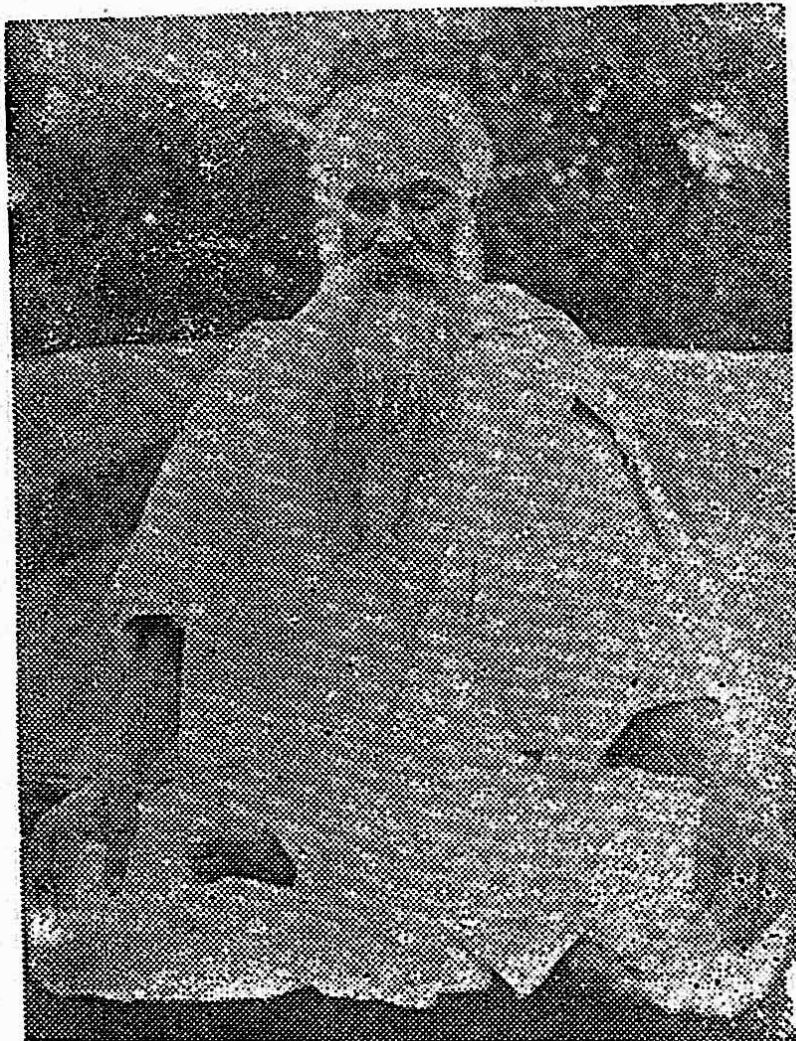
स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती
(गुरुकुल भैंसवाल, गुरुकुल झज्झर आदि के भूतपूर्व आचार्य)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सदस्य नहीं था, जिसके कारण सरकार के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप व नियन्त्रण के विना गुरुकुल अपना सव कार्य स्वतन्त्र रूप से कर सकने में समर्थ था। गुरुकुल को सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान भी मिलने लग गया था। सन् १९५० के वार्षिकोत्सव (जो गुरुकुल की स्वर्णजयन्ती के रूप में था) पर नवस्नातकों का जो दीक्षान्त संस्कार हुआ, उसमें दीक्षान्त भाषण राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा दिया गया था। भाषण के अन्त में उन्होंने भारत सरकार द्वारा गुरुकुल को एक लाख रुपये के अनुदान की घोषणा की थी। उसके वाद भारत सरकार और उत्तरप्रदेश की राज्य सरकार से अनुदान के रूप में अनेक राशियाँ गुरुकुल को प्राप्त होती रहीं। इनमें विज्ञान महाविद्यालय के भवन के लिए एक लाख रुपये और उपकरणों के क्रय के लिए पैंसठ हजार रुपये तथा पुस्तकालय भवन के लिए पचास हजार की राशियाँ उल्लेखनीय हैं, जो भारत सरकार द्वारा प्रदान की गयी थीं। उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा आयुर्वेद महाविद्यालय तथा म्यूजियम के लिए समुचित धनराशियाँ प्रदान की गईं, जिनकी मात्रा चार लाख के लगभग थी। सरकारी अनुदान के सम्बन्ध में यह वात ध्यान देने योग्य है कि इसके साथ कोई शर्त नहीं लगायी गयी थी, सिवाय इसके कि धनराशि उसी कार्य में प्रयुक्त की जाए, जिसके लिए वह दी गयी है। इस प्रकार अव गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय एक स्पृहणीय स्थिति में आ गया था। उसकी डिग्रियों को मान्यता प्राप्त हो गयी थी, और सरकारी अनुदान भी उसे प्राप्त होने लग गया था। पूर्णतया स्वतन्त्र व स्वायत्त रह कर यथेष्ट विकास कर सकने में उसके मार्ग में अव कोई वाधा नहीं रह गयी थी। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के कुछ ऐसे अपने लाभ थे, जिनसे आकृष्ट होकर उस समय भी लोग अपनी सन्तान को वहाँ प्रविष्ट कराते थे। जव गुरुकुल की डिग्रियों की वाजार में कोई कीमत नहीं थी, और खर्च चलाने के लिए वह पूर्णतया चन्दे पर निर्भर था, उस समय भी गुरुकुल काँगड़ी में ब्रह्मचारियों की संख्या चार सौ के लगभग रहा करती थी, और उसके शाखा-गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों को भी यदि गिन लें, तो यह संख्या एक हजार तक पहुँच जाती थी। अव जव कि विद्याधिकारी और अलंकार, दोनों को भारत के अच्छे वड़े भाग में मान्यता प्राप्त हो गयी थी, गुरुकुल में अपनी सन्तान को शिक्षा दिलाने में माता-पिता को कोई भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये थी। यदि उस समय गुरुकुल की शिक्षापद्धति के लाभों तथा गुरुकुल की नयी स्थिति की ओर उत्साहपूर्वक जनता का ध्यान आकृष्ट किया जाता, तो अपनी परम्परागत विशेषताओं को कायम रखते हुए भी गुरुकुल उन्नति के पथ पर तेजी के साथ अग्रसर हो सकता था।

पर गुरुकुल के पदाधिकारी केवल इतने से ही सन्तोष अनुभव नहीं करते थे। स्वाधीनता के वाद भारत में जो नयी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, उससे लाभ उठाने के लिए गुरुकुल के संचालकों ने यह विचार किया, कि उसे एक चार्टर्ड यूनिवर्सिटी वनाने का प्रयत्न किया जाये। चार्टर्ड यूनिवर्सिटियों पर सरकार का नियन्त्रण रहता है, और अनेक मामलों में उनकी स्वायत्तता भी सीमित हो जाती है। गुरुकुल के संचालकों का विचार था, कि स्वराज्य सरकार के नियन्त्रण में रहने से गुरुकुल को कोई हानि नहीं होगी, और पहले की तुलना में उसका अधिक विकास हो सकेगा। इसीलिए १० जनवरी, सन् १९४८ के दिन विद्यासभा द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव (निश्चय संख्या १ ख) स्वीकार किया गया—

"अव वह समय आ गया है जवकि गुरुकुल विश्वविद्यालय के वर्तमान प्रबन्ध और संचालन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में परिवर्तन करके उसे सरकार से चार्टर प्राप्त विश्वविद्यालय के रूप में चलाया जाए। अतः गुरुकुल को एक चार्टर प्राप्त विश्वविद्यालय बनाने के लिए सब आवश्यक प्रयत्न और व्यवस्था यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र की जानी चाहिये। परन्तु चार्टर प्राप्त करने में इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाए कि जिससे गुरुकुल को अपने मौलिक सिद्धान्तों और आदर्शों को छोड़ना न पड़े। २९ और ३० जनवरी, १९४९ को विद्यासभा की बैठकों में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय (चार्टर्ड यूनिवर्सिटी) के उस बिल का प्रारूप विचारार्थ प्रस्तुत किया गया, जिसे सरकार से स्वीकृत कराके गुरुकुल को चार्टर प्राप्त यूनिवर्सिटी बनाना था। विद्यासभा ने इस प्रारूप की प्रत्येक धारा पर विशद रूप से विचार किया, और यथोचित संशोधनों के साथ उसे स्वीकार कर यह निश्चय किया कि इसे क्रियान्वित कराने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए जाएँ।

गुरुकुल काँगड़ी को चार्टर्ड यूनिवर्सिटी बनाने के प्रयत्न तो सफल नहीं हुए, पर भारत सरकार और उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा उसे इतनी सहायता अवश्य प्राप्त होती रही, जिससे अनेक दिशाओं में वह अपना विकास कर सका। सरकारी सहायता से इस समय गुरुकुल में कृषि विद्यालय और विज्ञान महाविद्यालय पृथक् रूप से स्थापित हुए। २२ मार्च, १९२१ को पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा गुरुकुल महाविद्यालय के पाठ्य-क्रम में कृषि को भी एक पर्याय विषय के रूप में सम्मिलित कर दिया गया था, पर १९२४ में गंगा में बाढ़ आ जाने के कारण जब खेती की भूमि अस्त-व्यस्त दशा में हो गयी, तो इस विषय की पढ़ाई को बन्द कर देना पड़ा। गुरुकुल के नये परिसर में कृषि योग्य भूमि की कमी नहीं थी। अतः १६ सितम्बर, १९५१ को विद्यासभा ने गुरुकुल में एक पृथक् कृषि विद्यालय खोलने का निश्चय किया। केन्द्रीय सरकार और उत्तरप्रदेश की राज्य सरकार ने इसके लिए पर्याप्त धनराशि अनुदान के रूप में प्रदान की, और सन् १९५५ में कृषि विद्यालय व्यवस्थित रूप से स्थापित हो गया। उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार कृषि विद्यालय में शिक्षा की व्यवस्था की गयी, और दो साल वहाँ शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी सरकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते थे, उन्हें कृषि का सरकारी डिप्लोमा प्रदान किया जाता था। विचार यह था कि इस विद्यालय को विकसित कर भविष्य में कृषि महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर दिया जाये। पर यह विचार क्रियान्वित नहीं हो सका। कृषि विद्यालय गुरुकुल का अंग केवल मात्र इस अर्थ में था, कि वह गुरुकुल के परिसर में स्थित था और उसके प्रबन्ध के लिए जो समिति बनायी गयी थी, उसमें गुरुकुल के पदाधिकारियों का भी हाथ था। पर इस विद्यालय का सम्पूर्ण खर्च सरकार उठाती थी, और उसके शिक्षकों की नियुक्ति भी प्रायः उसी द्वारा की जाती थी। कृषि विद्यालय में प्रवेश सम्बन्धी नियम भी प्रायः वही थे, जो इस प्रकार के अन्य कृषि विद्यालयों के लिए सरकार द्वारा निर्धारित थे। गुरुकुल की विशेषताओं और मान्यताओं को दृष्टि में रखकर उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। गुरुकुल के विद्यार्थियों से जिस प्रकार के जीवन की अपेक्षा की जाती थी, कृषि विद्यालय के विद्यार्थियों को भी उसी के अनुकूल अपना रहन-सहन बनाने के लिए प्रेरित व विवश किया जाए, इसकी कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी। कृषि विद्यालय के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के राज्य नियोजन विभाग की ओर से ग्राम प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गयी, जिसमें ग्राम सेवकों को प्रशिक्षित करने का कार्य होता था। इन प्रशिक्षणार्थियों की संख्या ११० थी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार द्वारा इसकी इमारत के लिए भी धन दिया गया था, और इसका भी सब खर्च सरकार द्वारा किया जाता था। कृषि विद्यालय तथा ग्राम प्रशिक्षण केन्द्र में विद्यार्थियों व प्रशिक्षणार्थियों की कुल संख्या २३० के लगभग थी, और गुरुकुल के संचालक इनके व्यवस्थित रूप से सन्तोष अनुभव कर सकते थे। पर इनके द्वारा गुरुकुल के उद्देश्यों व आदर्शों की पूर्ति में कोई सहायता मिल रही है या नहीं, इस विषय में मतभेद की पूरी गुंजाइश थी।

आयुर्वेद महाविद्यालय ने भी इस काल में एक नया रूप प्राप्त किया। गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में आयुर्वेद की शिक्षा एक पर्याय विषय के रूप में प्रारम्भ की गयी थी। जो विद्यार्थी पर्याय विषय के रूप में आयुर्वेद पढ़ते थे, संस्कृत, अंग्रेजी, वेद और दर्शन उन्हें भी अनिवार्य रूप से पढ़ने होते थे। इन विद्यार्थियों को पहले विद्यालंकार की उपाधि दी जाती थी, जिसे सन् १९२७ में 'आयुर्वेदालंकार' के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था। आयुर्वेद विषय गुरुकुल में बहुत लोकप्रिय था, क्योंकि इसे पढ़कर विद्यार्थियों के लिए स्नातक होने के पश्चात् आजीविका कमाना सुगम हो जाता था। यही कारण है कि सन् १९५६ तक गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी स्नातक हुए, उनमें आयुर्वेदालंकारों की संख्या सबसे अधिक थी। कुल ६३५ स्नातकों में २५२ आयुर्वेदालंकार थे। सन् १९५० में विद्यासभा द्वारा एक ऐसा निर्णय किया गया, जिससे गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या में और भी अधिक वृद्धि होने लगी। १६ जनवरी, १९५० की बैठक में विद्यासभा द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—"आयुर्वेद महाविद्यालय में ऐसे विद्यार्थी (डे स्कालर्स) भी पढ़ने के लिए प्रविष्ट हो सकेंगे जो किसी कारण गुरुकुल आश्रम में निवास न कर सकते हों, और केवल आयुर्वेद महाविद्यालय में पढ़ने के लिए आना चाहते हों। ऐसे विद्यार्थियों के लिए गुरुकुल के आयु, अविवाहित जीवन, निरामिष भोजन, मादक वस्तुओं के सेवन न करने तथा शिक्षा, योग्यता आदि विषयक नियमों का पालन करना आश्रमवासी विद्यार्थियों की भाँति ही आवश्यक होगा। इन छात्रों से निर्धारित शुल्क लिया जाएगा।" विद्यासभा के इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप आयुर्वेदिक कॉलिज का स्वरूप मूलतः परिवर्तित होना शुरू हो गया। अब इसमें गुरुकुल विद्यालय से 'विद्याधिकारी' परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थियों के अतिरिक्त ऐसे विद्यार्थी भी प्रविष्ट किये जाने लगे, जो मेट्रिक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण हों, और संस्कृत में जिनकी योग्यता प्राज्ञ के समान हो। सन् १९५२ से इण्डियन मेडिसिन बोर्ड, उत्तरप्रदेश द्वारा आयुर्वेद की शिक्षा के लिए निर्धारित पाठविधि गुरुकुल के आयुर्वेदिक कॉलिज में भी प्रचलित कर दी गयी, और यह निर्णय कर लिया गया कि पाँच वर्ष तक इस पाठविधि के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी परीक्षा उत्तीर्ण कर लें, उन्हें सरकारी ए० एम० बी० एस० की डिग्री प्रदान की जाए। इससे आयुर्वेदिक कॉलिज की लोकप्रियता में बहुत वृद्धि हुई, और उसमें विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गयी। सरकार से अनुदान प्राप्त कर उसमें आधुनिक चिकित्सा पद्धति की शिक्षा का प्रबन्ध भी समुचित रीति से किया गया। पर अभी आयुर्वेदालंकार की उपाधि को भी कायम रखा गया, और जो गुरुकुल के अपने विशेष पाठ्यक्रम के अनुसार आयुर्वेद की परीक्षा उत्तीर्ण करलें, उन्हें आयुर्वेदालंकार की डिग्री भी पूर्ववत् दी जाती रही। गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की इस समय बहुत उन्नति हुई। निदान प्रयोगशाला, शवच्छेद भवन, शल्यक्रिया भवन,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक्स-रे, प्रकृतिविज्ञान संग्रहालय आदि की स्थापना की गयी, और रोगियों की चिकित्सा के लिए वाह्य डिस्पेन्सरी के साथ-साथ इन-डोर हॉस्पिटल भी खोला गया।

गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में विज्ञान को शुरू से ही पर्याय विषय के रूप में स्थान दिया गया था, और रसायनशास्त्र की शिक्षा की वहाँ समुचित व्यवस्था थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब गुरुकुल के चौमुखे विकास का प्रयत्न किया जा रहा था, १६ दिसम्बर, १९५१ के अधिवेशन में विद्यासभा ने एक प्रस्ताव यह भी स्वीकृत किया, कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक विज्ञान महाविद्यालय (सायन्स कॉलिज) की स्थापना के निमित्त एक लाख रुपये की अपील की जाए और ६० हजार रुपये एकत्र हो जाने पर इस योजना को क्रियान्वित कर दिया जाए। इस प्रस्ताव के अनुसार विज्ञान महाविद्यालय की दो श्रेणियाँ शीघ्र ही खोल दी गईं, जिनमें प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी को विद्याधिकारी या मैट्रिक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण होना आवश्यक था। इन दो श्रेणियों में उत्तरप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् (जिसे उस समय बोर्ड ऑफ् हाईस्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट एजुकेशन कहा जाता था) द्वारा एफ० एस-सी० के लिए निर्धारित पाठ-विधि की पढ़ाई होने लगी। विज्ञान महाविद्यालय की पहली और दूसरी (इण्टरमीडिएट) श्रेणियाँ आरम्भ करने के साथ ही यह भी निश्चय कर लिया गया था, कि दो वर्ष पश्चात् अगली दो श्रेणियों (बी० एस-सी०) की पढ़ाई की भी व्यवस्था कर दी जाए। इसी समय एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय यह किया गया, कि जब तक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय चार्टर प्राप्त यूनिवर्सिटी न बन जाए या यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन द्वारा उसकी स्थिति यूनिवर्सिटी के समकक्ष न मान ली जाए, तब तक बी० एस-सी० श्रेणियों को आगरा यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध रखा जाए। गुरुकुल में अब विज्ञान महाविद्यालय अवश्य खुल गया था, पर उसकी पहली दो श्रेणियाँ उत्तरप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् से सम्बद्ध थीं, और अगली दो श्रेणियाँ आगरा यूनिवर्सिटी से। उनका स्वरूप प्रायः वैसा ही था, जैसा कि सरकार के नियन्त्रण में स्थापित इण्टरमीडिएट व डिग्री कॉलिजों का होता है। गुरुकुल के परिसर में अब तीन ऐसी संस्थाएँ हो गई थीं, जो सरकारी नियन्त्रण में थीं, जिनमें किसी सरकारी यूनिवर्सिटी व बोर्ड द्वारा निर्धारित कोर्स पढ़ाया जाता था और जिनसे पढ़े हुए विद्यार्थियों को सरकारी डिग्री या डिप्लोमा दिये जाते थे। ये संस्थाएँ कृषि विद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय और विज्ञान महाविद्यालय थीं। इनके बहुसंख्यक विद्यार्थी ऐसे थे, जो गुरुकुल के किसी छात्रावास में नहीं रहते थे, और जिनकी प्रारम्भिक व विद्यालय की शिक्षा भी गुरुकुल प्रणाली से नहीं हुई थी।

१६ जनवरी, सन् १९५० के अधिवेशन में विद्यासभा ने वेद महाविद्यालय और साधारण महाविद्यालय में प्रवेश के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव स्वीकृत किया था, जो इस प्रकार था—"निश्चय किया गया कि वेद महाविद्यालय और साधारण महाविद्यालय में बाहर के ऐसे विद्यार्थी भी प्रविष्ट हो सकेंगे जिनका कि वाग्दान न हुआ हो और जिनकी आयु १८ वर्ष से अधिक न हो, जिनका उपनयन हो चुका हो और सदाचार की दृष्टि से गुरुकुल आश्रम में निवास के योग्य हों तथा मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण होने के साथ-साथ संस्कृत की मध्यमा, विशारद अथवा इनके समकक्ष की कोई और परीक्षा उत्तीर्ण हों।" इस निर्णय के परिणामस्वरूप गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में भी ऐसे विद्यार्थियों के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त हो गया, विद्यालय विभाग की जिनकी शिक्षा गुरुकुल पद्धति से न हुई हो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं, कि विद्यासभा द्वारा अपने प्रस्ताव में यह सावधानी वरती गई थी, कि बाहर के केवल ऐसे विद्यार्थी ही वेद और साधारण महाविद्यालयों में प्रवेश पा सकें, जो सदाचारमय जीवन की दृष्टि से गुरुकुल के छात्रावास (आश्रम) में रहने के योग्य हों। पर धीरे-धीरे इस नियम में शिथिलता आती गयी, और इन महाविद्यालयों में प्रौढ़ आयु तक के व्यक्ति प्रवेश पाने लगे। साथ ही, विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में रहना भी आवश्यक नहीं रह गया।

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को चार्टर प्राप्त यूनिवर्सिटी वनाने का प्रयत्न तो सफल नहीं हुआ, पर सन् १९६२ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन) ने उसे यूनिवर्सिटी की स्थिति की राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था स्वीकार कर लिया। इस प्रकार गुरुकुल को उसी ढंग से यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त हो गई, जैसी कि काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया आदि की थी। उसका सब खर्च यू० जी० सी० (यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन) द्वारा दिया जाने लगा, और उसे अपने खर्च के लिए न चन्दे पर निर्भर करने की आवश्यकता रह गई और न फार्मेसी व प्रेस आदि की आमदनी पर। इस समय से गुरुकुल के इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ हुआ, जिसमें इस संस्था के स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन हो गया।

(६) गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति तथा कार्यकलाप का मूल्यांकन

साठ वर्ष के लगभग (सन् १९०० से १९६२ तक) गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति एक ऐसी शिक्षण-संस्था के रूप में हुई थी, जिसका सरकार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था, और जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक मन्तव्यों को समय की परिस्थितियों के अनुसार क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया जाता था। सन् १९०२ में जब काँगड़ी ग्राम के समीपवर्ती जंगल में गुरुकुल की स्थापना की गयी, तो उसका स्वरूप प्राचीन आचार्यकुलों के सदृश था जो आरण्यक-आश्रमों में स्थित हुआ करते थे। गुरुकुल स्वयं एक आरण्यक-आश्रम ही था। पर धीरे-धीरे गुरुकुल के इस स्वरूप में जो परिवर्तन होता गया, उस पर प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

काँगड़ी गुरुकुल में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक जिन सिद्धान्तों व मन्तव्यों को क्रियान्वित किया गया था, वे निम्नलिखित थे—

(१) विद्या पढ़ने का स्थान या गुरुकुल शहर व ग्रामों से दूर एकान्त में हो। काँगड़ी ग्राम के जिस स्थान पर सन् १९०२ में गुरुकुल खोला गया था, वह ठीक ऐसा ही था।

(२) लड़कों और लड़कियों के गुरुकुल पृथक्-पृथक् हों। "जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे।" गुरुकुल काँगड़ी बालकों की शिक्षा के लिए था, अतः वहाँ सब शिक्षक, भृत्य व कर्मचारी पुरुष ही रखे गये थे। जो शिक्षक व कर्मचारी सपरिवार गुरुकुल में रहते थे, उनके परिवारगृह पृथक् बने हुए थे और उनमें ब्रह्मचारियों का जाना-आना निषिद्ध था। कोई भी स्त्री या वालिका ब्रह्मचारियों के छात्रावास (आश्रम) में नहीं आ सकती थी। वार्षिकोत्सव के समय यह भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्न किया जाता था, कि ब्रह्मचारी स्त्रियों के सम्पर्क में न आने पाएँ। यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि वार्षिकोत्सव के अवसर पर आयी हुई स्त्रियाँ भी ब्रह्मचारियों के छात्रावास, भोजन भण्डार आदि को देखना चाहें। इसके लिए एक विशेष दिन व समय नियत कर दिया जाता था, और तब ब्रह्मचारियों को गुरुकुल के परिसर के बाहर जंगल में 'वनवास' के लिए भेज दिया जाता था। उस दिन वे वहीं स्नान आदि नित्यकर्म करते थे, और वहीं उनका भोजन होता था। जब स्त्रियाँ गुरुकुल देखने आती थीं, तो वहाँ एक भी ब्रह्मचारी नहीं होता था। १५ वर्ष के लगभग तक गुरुकुल में इस व्यवस्था का निरपवाद रूप से पालन किया जाता रहा।

(३) "(गुरुकुल) में सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वे राजकुमार वा राजकुमारी हों चाहे दरिद्र के सन्तान हों...।" गुरुकुल में ऊँच-नीच, छूत-अछूत और गरीब-अमीर का कोई भेद न करके सबका रहन-सहन, खान-पान और वस्त्र आदि एक सदृश होने चाहिये, और सबको एक सदृश शिक्षा दी जानी चाहिये। मनु के अनुसार जन्म से सब कोई शूद्र होते हैं, और शिक्षा व संस्कार द्वारा ही वे द्विज बनते हैं। अतः गुरुकुल में शिक्षा पाते हुए किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय या शूद्र नहीं कहा जा सकता। जन्म के समय किसी की कोई जाति नहीं होती। जाति, वर्ण या सामाजिक स्थिति का निर्धारण शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् योग्यता, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार होना चाहिये। गुरुकुल काँगड़ी में यह तत्त्व या सिद्धान्त पूर्णतया क्रियान्वित था। वहाँ जो ब्रह्मचारी शिक्षा पाते थे, जन्म के आधार पर उनका किसी-न-किसी वर्ण या जाति से सम्बन्ध होता ही था। उनमें जन्म से ऊँची जाति के विद्यार्थी भी होते थे, और शूद्र व हरिजन जातियों के विद्यार्थी भी। पर गुरुकुल के किसी ब्रह्मचारी को यह ज्ञात नहीं होता था, कि कौन किस वर्ण या किस जाति का है, कौन परिवार से गरीब व कौन अमीर है, और किस के माता-पिता की सामाजिक स्थिति ऊँची या नीची है। सब एक साथ खाते-पीते थे, एक साथ रहते थे, और एक सदृश वस्त्र पहनते थे। न किसी में हीन भावना उत्पन्न होती थी, और न अपने ऊँचे होने का विचार। गुरुकुल के भोजन भण्डार और चिकित्सालय में पाचकों और कम्पाउण्डरों का काम ऐसे व्यक्ति भी करते थे, जिन्हें आज 'हरिजन' कहा जाता है, पर कोई उन्हें अछूत नहीं समझता था। यह कोई नहीं जानता था, कि महात्मा मुंशीराम और भण्डारी शालिग्राम जैसे पदाधिकारी, शिक्षक व कर्मचारी किस जाति के हैं। कोई अपने नाम के साथ जाति को सूचित करने वाला उपनाम प्रयुक्त नहीं करता था। जो ब्रह्मचारी पूरी तरह से निःशुल्क होकर गुरुकुल में प्रविष्ट थे, या निर्धन होने के कारण जिन्हें छात्रवृत्तियाँ दी जा रही थीं, उनके विषय में इस बात को भी कोई ब्रह्मचारी नहीं जानता था। ब्रह्मचारियों और शिक्षकों के वेश नियत थे। ब्रह्मचारी पीली धोती और सफेद कुरता पहनते थे, और शिक्षक पीला दुपट्टा ओढ़ते थे। ब्रह्मचारियों का रहन-सहन सादा तथा तपस्यामय था। वे जूते नहीं पहनते थे, और छतरी भी नहीं लगाते थे। लगभग चौथाई सदी तक गुरुकुल में यही दशा रही। बाद में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। अनेक शिक्षकों व कर्मचारियों ने अपने नामों के साथ जातिवाचक शब्द लगाने शुरू कर दिये। ब्रह्मचारियों के नामों के साथ भी पाठक, पाण्डे आदि जातिसूचक शब्द लिखे जाने लगे। जिन ब्रह्मचारियों पर फीस की रकम चढ़ जाती थी, उन्हें फीस ले आने के लिए घर भेजा जाने लगा, और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुट्टियों में घर जाने की अनुमति हो जाने के कारण सबको अपनी जन्म-जाति, आर्थिक स्थिति और समाज में स्थान का परिज्ञान होने लगा। वेशभूषा में भी परिवर्तन हुआ। ब्रह्मचारी पीली धोती के स्थान पर पाजामा पहनने लगे, और प्राध्यापकों के लिए वेश-भूषा की कोई मर्यादा नहीं रह गयी।

(४) गुरुकुल में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् बालकों व बालिकाओं का अपने माता-पिता के साथ कोई सम्पर्क नहीं रहना चाहिये। महर्षि के शब्दों में, "उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्रव्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें।" शुरू में महर्षि के इस मन्तव्य को भी गुरुकुल काँगड़ी में क्रियान्वित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया था। ब्रह्मचारी छुट्टियों व ग्रीष्मावकाश में भी घर नहीं जा सकते थे। परिवार में यदि कोई विवाद हो या नामकरण संस्कार आदि का कोई समारोह हो, तो भी ब्रह्मचारियों को घर जाने की अनुमति नहीं थी। माता-पिता सदृश किसी अत्यन्त निकट सम्बन्धी के भयंकर रूप से रुग्ण होने की दशा में ही ब्रह्मचारियों को घर जाने की अनुमति दी जाती थी, और वह भी पाँच-सात दिन के लिए। माता-पिता व अन्य पारिवारिक जन गुरुकुल आकर ब्रह्मचारी से मिल सकते थे, पर अधिष्ठाता से अनुमति लेकर और उसकी उपस्थिति में केवल आधे घण्टे के लगभग समय के लिए। वे उसे कोई खाद्य वस्तु या अन्य पदार्थ नहीं दे सकते थे। यदि वे कोई मिठाई, फल आदि अपने बालक के लिए लाते, तो वह अधिष्ठाता के सुपुर्द कर दी जाती और उसे श्रेणि के सब ब्रह्मचारियों में बाँट दिया जाता। पत्रव्यवहार की अनुमति नहीं थी, पर यदि किसी ब्रह्मचारी के नाम कोई पत्र आता, तो अधिष्ठाता उसे खोल लेते और उसे पढ़ कर ही ब्रह्मचारी को देते। ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य तथा शिक्षाविषयक प्रगति के सम्बन्ध में मासिक रिपोर्ट संरक्षकों के पास भेजी जाती थी, और यह रिपोर्ट ही माता-पिता को अपनी सन्तान के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहने का प्रधान साधन थी। पर समयान्तर में इन सब बातों में भी शिथिलता आ गयी। ब्रह्मचारी छुट्टियों में घर जाने लगे। ग्रीष्मावकाश के दिनों में तो आश्रम (छात्रावास) में कोई ब्रह्मचारी रह ही नहीं जाता था, और भोजन भण्डार बन्द कर दिया जाता था। माता-पिता जब अपने बालक से मिलने के लिए गुरुकुल आते, तो वे उसे घुमाने के लिए हरिद्वार अपने साथ ले जाते और बालक जो वस्तुएँ चाहता, उसे खरीद देते। पहले दीर्घावकाश में ब्रह्मचारियों को सरस्वती-यात्रा पर ले जाया जाता था। ग्रीष्म ऋतु होने के कारण नैनी-ताल, मसूरी, काश्मीर आदि पहाड़ी स्थानों पर ब्रह्मचारियों को ले जाने की व्यवस्था गुरुकुल की ओर से की जाती थी और सुदूर पार्वत्य स्थानों की पैदल यात्रा कर ब्रह्मचारी जहाँ स्वास्थ्य लाभ करते थे, वहाँ साथ ही बाह्य संसार के जनजीवन से परिचय प्राप्त करने का भी उन्हें अवसर मिल जाता था। ब्रह्मचारियों की आयु के अनुसार उनकी मण्डलियाँ बनाकर उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा के लिए भेजा जाता था। बहुत छोटे ब्रह्मचारियों के लिए देहरादून, चकराता, कालसी सदृश समीपवर्ती स्वास्थ्यप्रद स्थानों पर छुट्टियाँ बिताने का प्रबन्ध कर दिया जाता था। पर यह सब परम्परा धीरे-धीरे नष्ट हो गयी, और ब्रह्मचारियों की छुट्टियाँ अपने घरों पर ही बीतने लगीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) गुरुकुलों में विद्यार्थियों का जीवन तपस्यामय होना चाहिये और उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का अविकल रूप से पालन करना चाहिये। प्रारम्भ में गुरुकुल में महर्षि के इस मन्तव्य के अनुसार कार्य करने पर भी समुचित ध्यान दिया गया था। ब्रह्मचारी लकड़ी की तख्तों पर सोते थे, नंगे पैर और नंगे सिर रहते थे; मिर्च-मसाले के बिना सादा भोजन करते थे, प्याज, लहसुन, लाल मिर्च और खटाई का प्रयोग निषिद्ध था, और विविध प्रकार के व्यायाम, आसन और प्राणायाम द्वारा वे अपने शरीर को बलवान् तथा नीरोग बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। गुरुकुल में अपने बालक को प्रवेश कराते समय माता-पिता को यह प्रतिज्ञा करनी होती थी, कि वे २५ वर्ष की आयु से पूर्व ब्रह्मचारी का विवाह नहीं करेंगे। गुरुकुल की पाठविधि में रघुवंश सदृश जो काव्य रखे गये थे, उनसे शृंगार रस के श्लोक व प्रसंग निकाल कर उनके ऐसे संस्करण छपवा लिये गये थे जो ब्रह्मचारियों के लिए पूर्णतया निर्दोष थे। गुरुकुल के संचालकों का निरन्तर यह प्रयत्न रहा, कि तपस्यामय जीवन और ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में महर्षि के जो मन्तव्य थे, उन्हें विद्यार्थियों के लिए क्रियान्वित करने में शिथिलता न आये। इसीलिए जब विद्यासभा ने आयुर्वेद महाविद्यालय तथा वेद व साधारण महाविद्यालयों में बाहर के विद्यार्थियों को प्रविष्ट होने की अनुमति देने का निश्चय किया, तो यह शर्त लगा दी कि उन्हें अविवाहित व सदाचारी होना चाहिये। पर बाद में क्रिया में इस शर्त का भी पूर्णतया पालन नहीं हो सका।

(६) गुरु-शिष्य में पिता-पुत्र सदृश सम्बन्ध गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। शुरू में इसके लिए भी गुरुकुल काँगड़ी में समुचित प्रयत्न किया गया था। ब्रह्मचारी महात्मा मुंशीराम को पितृ तुल्य मानते थे, और वह भी ब्रह्मचारियों के हित-कल्याण व योगक्षेम का उसी प्रकार ध्यान रखते थे जैसे कि पिता अपनी सन्तान का रखता है। पण्डित विश्वम्भरनाथ तथा आचार्य रामदेव सदृश उनके उत्तराधिकारियों की वृत्ति भी महात्मा मुंशीराम के सदृश ही रही थी। पर गुरु-शिष्य भाव भी गुरुकुल काँगड़ी में देर तक कायम नहीं रहा। वहाँ भी पदाधिकारियों व शिक्षकों के विरुद्ध हड़तालें होने लगीं, प्रदर्शन किये जाने लगे और विविध प्रकार से उनके प्रति विरोध प्रकट किया जाने लगा।

(७) शिक्षा में संस्कृत भाषा, वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों को प्रमुख स्थान दिया जाए, पर साथ ही अंग्रेजी भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, रसायन, चिकित्साशास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन की भी समुचित व्यवस्था हो; गुरुकुल में जो पाठविधि निर्धारित की गयी थी, उसमें इस बात को पूरी तरह से ध्यान में रखा गया था। हिन्दी और संस्कृत भाषाओं की शिक्षा पहली श्रेणि से ही प्रारम्भ कर दी जाती थी, और संस्कृत पढ़ाने के लिए प्रायशः उसी पठन-पाठनविधि का अनुसरण किया जाता था, जिसका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा अपने ग्रन्थों में किया गया है। संस्कृत व्याकरण की पढ़ायी के लिए अष्टाध्यायी का प्रयोग किया जाता था, और दसवीं कक्षा तक ब्रह्मचारी न केवल सम्पूर्ण अष्टाध्यायी (काशिका वृत्ति के साथ) ही पढ़ लेते थे, अपितु महाभाष्य का नवाह्निक भाग भी उन्हें पढ़ा दिया जाता था। संस्कृत भाषा और साहित्य में वे शास्त्री परीक्षा के स्तर की योग्यता प्राप्त कर लेते थे। दर्शनशास्त्रों का प्रारम्भिक ज्ञान भी उन्हें हो जाता था। वे संस्कृत में भाषण दे सकते थे, लेख लिख सकते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे और अपने विचारों को भली-भाँति अभिव्यक्त कर सकते थे। महाविद्यालय विभाग में संस्कृत, वेद तथा दर्शन विषयों का अध्ययन सबके लिए अनिवार्य था, चाहे वे साधारण महाविद्यालय के विद्यार्थी हों और चाहे आयुर्वेद महाविद्यालय के। पर बाद में इस दशा में भी परिवर्तन आने लगा, विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए संस्कृत के कोर्स को सरल बनाने का प्रयत्न किया गया। यह बात कही जाने लगी, कि गुरुकुल में विद्यार्थियों की कमी का एक कारण यह है कि वहाँ की पढ़ाई बहुत कठिन है और संस्कृत की शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा है कि विद्यार्थियों के लिए उसे पढ़ सकना और उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होना कठिन हो जाता है। इसे दृष्टि में रखकर गुरुकुल विद्यालय की संस्कृत की पाठ-विधि को सरल बनाने के लिए उसमें ऐसे परिवर्तन किये गये, जिनके कारण गुरुकुल में संस्कृत का स्तर पहले के समान ऊँचा नहीं रहा।

गुरुकुल के रहन-सहन और शिक्षा में जो ये परिवर्तन हुए, वे सब एकदम व एक साथ नहीं हो गये। वे धीरे-धीरे हुए, और उनमें बहुत समय लगा। सन् १९६२ में जब गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को सरकार द्वारा यूनिवर्सिटी की स्थिति दी गयी, इस संस्था का स्वरूप बहुत परिवर्तित हो चुका था। प्राचीन शैली के आचार्यकुल व आरण्यक-आश्रमों की तुलना में उसका स्वरूप आधुनिक समय के स्कूल-कॉलिजों से अधिक मिलता-जुलता हो गया था।

गुरुकुल की स्थापना बहुत ऊँचे आदर्शों व उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी थी। जनता को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। लोग समझते थे, कि गुरुकुल से पढ़कर जो विद्यार्थी स्नातक बनेंगे, वे उत्कृष्ट व श्रेष्ठ प्रकार के पुरुष होंगे, और उन द्वारा महर्षि का मिशन पूरा हो सकेगा। इसीलिए शुरू में गुरुकुल के वार्षिकोत्सवों पर जब ये भजन गाये जाते थे, कि "लहराती है खेती दयानन्द की" और "आएँगे खत अरब से जिनमें लिखा यह होगा, गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है" तो उन्हें सुन-सुन कर आर्य जनता झूम-झूम जाती थी। प्रश्न यह है कि गुरुकुल से जनता की ये आशाएँ किस हद तक पूरी हुईं। साथ ही, यह भी विचारणीय बात है कि किन कारणों से गुरुकुल में ऐसे परिवर्तन हुए, जिनसे कि उसका स्वरूप निरन्तर बदलता गया।

यथार्थ और आदर्श में अन्तर हुआ करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के जो सिद्धान्त व मूल तत्त्व प्रतिपादित किये थे, गुरुकुल उनका पूर्ण रूप से अनुसरण नहीं कर सका। महर्षि का यह भी मन्तव्य था, कि यह राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि जब बालक व बालिकायें आठ वर्ष की आयु के हों, तो वे घर पर न रह सकें, उन्हें अनिवार्य रूप से पाठशाला वा गुरुकुल में भेज दिया जाये, जो न भेजें वे दण्डनीय हों। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सफलता के लिए यह एक आवश्यक शर्त है। इस प्रणाली द्वारा केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही एक नयी पद्धति का अनुसरण नहीं किया जाता, अपितु इस द्वारा ही समाज संगठन को न्याय व औचित्य पर आधारित बनाया जा सकता है। "सबको योग्यता प्राप्ति का समान अवसर" इस प्रणाली का आधारभूत तत्त्व है। किसी एक शिक्षण-संस्था में इस प्रणाली को क्रियान्वित कर देने से न्याय पर आधारित समाज का निर्माण कर सकना सम्भव नहीं है। महर्षि ने जिस ढंग से गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया है, उसे क्रियान्वित करने पर समाज के संगठन व स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाना अवश्यम्भावी है। क्योंकि इस प्रणाली के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार शिक्षाकाल में सब का रहन-सहन, खान-पान आदि एक सदृश होगा, चाहे वे राजकुमार या धनकुवेर की सन्तान हों और चाहे गरीब मजदूर की। शिक्षा की समाप्ति पर गुरुवर्ग द्वारा यह निश्चय किया जाएगा, कि कौन किस कार्य के योग्य है, और जो जिस कार्य के योग्य होगा, उसे वही कार्य राजसभा द्वारा दिलाया जाएगा। यदि राजनियम और जातिनियम द्वारा इस शिक्षा प्रणाली का सर्वत्र प्रचलन किया जाए, तभी यह सम्भव हो सकेगा कि शिक्षाकाल में विद्यार्थियों का रहन-सहन, उसी प्रकार का रहे, जैसे कि शुरू के वर्षों में गुरुकुल काँगड़ी में था। पर जब उसके ब्रह्मचारी स्नातक होकर जीवन संघर्ष में तत्पर हुए, तब उनके सम्मुख अनेकविध समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। आजीविका की समस्या इसमें प्रधान थी। सरकारी सर्विस उन्हें मिल नहीं सकती थी, स्कूलों-कॉलिजों में उन्हें शिक्षक नियुक्त नहीं किया जा सकता था, वे वकालत कर नहीं सकते थे। व्यापार में पड़ सकना भी उनके लिए सुगम नहीं था, क्योंकि चौदह साल दुनिया से पृथक् रहने के कारण उनमें वे गुण विकसित ही नहीं हो पाते थे, जिनसे मनुष्य सफल व्यापारी बनता है। यदि किसी स्नातक को किसी गुरुकुल में, किसी आर्यसमाज में या आर्य प्रतिनिधि सभा में सर्विस मिल जाती, तो उसका सौभाग्य था। उनके सम्मुख एक मार्ग किसी हिन्दी की पत्र-पत्रिका में सर्विस प्राप्त कर लेने का भी था। पर बीसवीं सदी के प्रथम चरण में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ अधिक नहीं थीं, और जो थीं भी उनकी आर्थिक दशा सन्तोष-जनक नहीं थी। इस दशा में अनेक स्नातक शास्त्री आदि की परीक्षाएँ देकर आजीविका की समस्या का समाधान करने के लिए प्रवृत्त हुए। अब यथार्थ स्थिति लोगों के सामने आने लगी। सन् १९१०-१५ तक यह दशा थी, कि सौ-सवा सौ बालक प्रतिवर्ष गुरुकुल में प्रवेश पाने की इच्छा लेकर आया करते थे, जिनमें से २५-३० को ही प्रवेश मिल पाता था। पर अब प्रवेशार्थियों की संख्या में कमी होने लगी, और जनता में गुरुकुल के लिए जो उत्साह था वह घटने लग गया। यदि राजनियम और जातिनियम के अनुसार प्रत्येक बालक-बालिका को अनिवार्य रूप से गुरुकुलों में जाकर शिक्षा प्राप्त करनी होती, और फिर गुरुजनों के निर्णय के आधार पर राज्यसंस्था द्वारा सबको उनके योग्य कार्य प्राप्त कराने की व्यवस्था होती, तो स्नातकों के लिए आजीविका का प्रश्न ही उत्पन्न न होता। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली जहाँ शिक्षाजगत् में एक महान् क्रान्ति थी, वहाँ समाज-संगठन में भी उससे क्रान्तिकारी परिवर्तन अवश्यम्भावी थे। गुरुकुल के लिए जो प्रयत्न महात्मा मुंशीराम द्वारा किया गया, वह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप प्राप्त नहीं कर सका। उस द्वारा समाज से ऊँच-नीच व छूत-अछूत का भेद मिटाया जा सकता है, जाति-भेद का अन्त किया जा सकता है, और सबको शिक्षा व योग्यता-प्राप्ति का समान अवसर देकर जो जिस योग्य हो उसे उसकी योग्यता के अनुसार सामाजिक व आर्थिक स्थिति प्रदान की जा सकती है; गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के इस क्रान्तिकारी पहलू पर जनता का ध्यान आकृष्ट नहीं किया गया। इसी कारण उसका यथेष्ट प्रचार नहीं किया जा सका। क्रान्तिकारी आन्दोलन समाज को बदल दिया करते हैं। पर जब किसी आन्दोलन में क्रान्ति की ज्वाला नहीं होती, तो समाज उसे दबा देता है, देश और काल की परिस्थितियाँ आन्दोलन की चिनगारी को ज्वाला का रूप ग्रहण नहीं करने देतीं। यही बात गुरुकुल के सम्बन्ध में हुई। स्नातकों के सम्मुख जो कठिनाइयाँ आ रही थीं, उन्हें दृष्टि में रखकर ही उन परिवर्तनों का प्रारम्भ हुआ, जिनके कारण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे गुरुकुल का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया।

पण्डित विश्वम्भरनाथ सन् १९२७ तक सात वर्ष गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहे। वे स्नातकों की कठिनाइयों व समस्याओं को भली-भाँति अनुभव करते थे। जब उन्होंने गुरुकुल का कार्य सँभाला (सन् १९२१), तब तक गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर ९० ब्रह्मचारी स्नातक हो चुके थे। गुरुकुल की डिग्रियों को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त न होने के कारण उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था, उन्हें दृष्टि में रखकर पण्डितजी का यह विचार बना कि गुरुकुलों में प्रायशः वही पाठविधि अपनायी जानी चाहिये जो सरकारी स्कूलों-कॉलिजों की है। उनका कहना था, कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आधारभूत तत्त्व वह आश्रम पद्धति है, जिसमें गुरु-शिष्य पिता-पुत्र सम्बन्ध से साथ-साथ रहते हैं, विद्यार्थी ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या का जीवन व्यतीत करते हैं, और गुरुओं द्वारा उनकी अन्तर्निहित शक्तियों व योग्यता का विकास किया जाता है। जिस किसी भी शिक्षण-संस्था में आश्रम पद्धति की ये विशेषताएँ हों, उसे गुरुकुल कहा जाना उचित होगा। एक विशेष प्रकार की पाठविधि का अनुसरण गुरुकुल की अनिवार्य विशेषता नहीं है। पण्डितजी का मन्तव्य था, कि आर्यसमाज को अपनी सभी शिक्षण-संस्थाओं में इस आश्रम पद्धति का प्रयोग करना चाहिये। उस द्वारा ऐसी छोटी-छोटी पाठशालाएँ सर्वत्र स्थापित की जानी चाहिये, जिनके साथ आश्रम (छात्रावास) हों और जिनमें विद्यार्थी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए गुरुओं के पास रहकर शिक्षा प्राप्त किया करें। इनमें वही पाठविधि हो, जो सरकारी स्कूलों में होती है, पर संस्कृत और धर्मशिक्षा की पढ़ाई अतिरिक्त व अनिवार्य हो। इन पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी और अन्य गुरुकुलों में शिक्षा के लिए आएँ, और वहाँ भी पाठविधि ऐसी हो, जिससे विद्याधिकारी (दसवीं कक्षा) की शिक्षा पूरी कर विद्यार्थी, यदि चाहें, तो सरकारी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा में बैठ सकें और उसे उत्तीर्ण करने में उन्हें कोई कठिनाई न हो। इससे माता-पिता को अपनी सन्तान को गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कराने के लिए भेजने में कोई बाधा नहीं रह जायेगी, और गुरुकुल के विद्यार्थी, यदि चाहें, तो दस कक्षा तक गुरुकुल में पढ़कर बाद में सरकारी कॉलिजों में प्रवेश पा सकेंगे। इससे उन्हें गुरुकुल की शिक्षा का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त हो जायेगा और वे सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से किसी भी दृष्टि से घाटे में नहीं रहेंगे। पण्डित विश्वम्भरनाथ के गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता पद सँभालने से पूर्व ही पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा वह प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी थी (२२ मार्च, १९२१), जिसमें गुरुकुल का विकास एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में किये जाने के पक्ष में निर्णय हुआ था। गुरुकुल की भावी प्रगति किस दिशा में हो, इस विषय में पण्डित विश्वम्भरनाथ कोई नया पग अब नहीं उठा सकते थे, क्योंकि सभा द्वारा सर्वसम्मत रूप से किये गये निर्णय में गुरुकुल की पाठविधि को सरकारी शिक्षणालयों के सदृश कर देने की गुंजाइश नहीं थी। पर पण्डितजी अपने विचारों को स्पष्टतया प्रकट करने में संकोच नहीं करते थे, और इसी कारण गुरुकुल की पाठविधि और आश्रम जीवन में ऐसे परिवर्तन होते गये, जो क्रियात्मक दृष्टि से अधिक उपयोगी थे। गुरुकुल की आर्थिक समस्या को हल करने के लिए पण्डितजी विशेष रूप से प्रयत्नशील थे। ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण के लिए जो शुल्क निर्धारित था, यदि वह प्राप्त न हो या समय पर न मिले, तो गुरुकुल का खर्च कैसे चल सकता था, क्योंकि दान की राशि शिक्षा व्यय के लिए भी पर्याप्त नहीं होती थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए गुरुकुल में इस प्रथा का प्रारम्भ हुआ, कि जिन ब्रह्मचारियों की फीस बड़ी मात्रा में प्राप्तव्य हो, उन्हें घर वापस भेज दिया जाये, ताकि फीस की राशि के लिए माता-पिता पर जोर पड़ सके। वस्तुओं की कीमत गिरने पर ब्रह्मचारियों को भोजन में घी, दूध की मात्रा अधिक दी जाये, पालन-पोषण के लिए ली जाने वाली सब फीस ब्रह्मचारियों पर ही खर्च की जाये और ब्रह्मचारी उसका हिसाब भी देख सकें, यह व्यवस्था भी पण्डितजी द्वारा कर दी गयी। इसके परिणामस्वरूप गुरुकुल के विद्यार्थी सांसारिक व्यवहार से परिचित होने लगे। जब गुरुकुल काँगड़ी को पुरानी भूमि से गंगा के दायीं ओर कनखल-ज्वालापुर मार्ग पर ले आया गया, तो शिवालिक की उपत्यका के जंगलों के बजाय हरिद्वार और ज्वालापुर के बाजारों में ब्रह्मचारियों का जाना-आना शुरू हो गया, और वे सांसारिक जीवन की यथार्थता के निकट सम्पर्क में आने लग गये। १६ जनवरी, सन् १९५० के अधिवेशन में जब विद्यासभा द्वारा गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में बाहर के विद्यार्थियों का प्रविष्ट किया जाना भी स्वीकार कर लिया गया, और उनके लिए गुरुकुल के छात्रावास (आश्रम) में रहना आवश्यक नहीं रहा, तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता का गुरुकुल काँगड़ी में गौण स्थान हो गया, और बाद में यह स्थिति आ गयी कि गुरुकुल में साधारण और वेद महाविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए कोई भी छात्रावास नहीं रहा।

सन् १९६२ से गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें वह एक स्वायत्त व आत्मनिर्भर शिक्षण-संस्था न रहकर अपने खर्च के लिए पूर्णतया भारत सरकार पर निर्भर हो गया। अपने जीवन के ६० साल के लगभग समय तक जब गुरुकुल एक स्वतन्त्र व स्वायत्त शिक्षणालय था, इस संस्था की उपलब्धियाँ किस हद तक सन्तोषजनक थीं, और उनसे आर्य जनता की आशाएँ किस अंश में पूरी हुई थीं, इस पर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। साठ वर्षों के इस काल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला काल सन् १९४७ तक का है, जब गुरुकुल की विद्याधिकारी व अलंकार डिग्रियों को सरकार व सरकारी यूनिवर्सिटियों, किसी से भी मान्यता प्राप्त नहीं थी, दूसरा काल सन् १९४७ से १९६२ तक का है जब गुरुकुल की स्वतन्त्र व स्वायत्त स्थिति कायम थी; पर भारत सरकार तथा अनेक राज्य सरकारों द्वारा 'अलंकार' डिग्री को बी० ए० के समकक्ष मान लिया गया था। सन् १९४७ तक गुरुकुल के जो भी स्नातक हुए, जीवन-संघर्ष में वे तभी उन्नति कर सकते थे जबकि वे वस्तुतः योग्य हों और अपनी विद्वत्ता व योग्यता के आधार पर उपदेशक, प्राध्यापक व सम्पादक की सर्विस प्राप्त करने में समर्थ हो जाएँ। पर गुरुकुलों के अतिरिक्त अन्य स्कूल-कॉलिजों में वे तभी सर्विस प्राप्त कर सकते थे, जबकि या तो वे शास्त्री, बी० ए० आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें और या जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि जाकर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर लें। डा० प्राणनाथ विद्यालंकार, डा० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, डा० बलराम आयुर्वेदालंकार, डा० धर्मानन्द आयुर्वेदालंकार, डा० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार और डा० जयदेव विद्यालंकार आदि कितने ही स्नातक यूरोप गये और अपनी योग्यता के आधार पर वहाँ की यूनिवर्सिटियों में प्रवेश प्राप्त कर पी-एच० डी०, डी० एस-सी०, डी० लिट्० और एम० डी० सदृश डिग्रियाँ प्राप्त करने में समर्थ हुए। भारत लौटकर उन्होंने विविध विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक की सर्विस भी प्राप्त की।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल के स्नातकों की यह विशेषता होती थी, कि इतिहास, अर्थशास्त्र, पाश्चात्य दर्शन आदि किसी आधुनिक विषय के अच्छे ज्ञाता होने के साथ-साथ वे प्राचीन भारतीय ज्ञान (Indology) के भी पारंगत विद्वान् होते थे। संस्कृत पर उनका पूरा-पूरा अधिकार होता था, और वेद, वेदांग, दर्शन तथा आर्ष ग्रन्थों में उनकी अच्छी गति होती थी। प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन, संस्कृत और अंग्रेजी—सबमें समान गति होना गुरुकुल के स्नातकों की एक ऐसी विशेषता थी, जो न सरकारी कॉलिजों के ग्रेजुएटों में पायी जाती थी और न पुराने ढंग के पण्डितों में। यही कारण है, कि गुरुकुल काँगड़ी के अनेक विद्यालंकार, वेदालंकार व सिद्धान्तालंकार विद्वत्ता और शिक्षा के क्षेत्र में सम्मानास्पद स्थिति प्राप्त करने में समर्थ हुए। डा० प्राणनाथ विद्यालंकार, डा० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, पण्डित जयचन्द्र विद्यालंकार और श्री जयदेव विद्यालंकार आदि कितने ही स्नातकों ने यूनिवर्सिटियों में उच्च स्थिति प्राप्त की। कितने ही साहित्यकार, कवि और उपन्यास-लेखक गुरुकुल ने उत्पन्न किये। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार और पण्डित चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सुप्रसिद्ध कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं। पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार, पं० सत्यकाम विद्यालंकार, पं० सत्यपाल विद्यालंकार और श्री विराज विद्यालंकार आदि अनेक स्नातकों की साहित्यिक रचनाओं का हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान है। पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पण्डित वागीश्वर विद्यालंकार, पण्डित वंशीधर विद्यालंकार, आदि कितने ही स्नातकों ने हिन्दी के काव्य साहित्य में भी उल्लेखनीय वृद्धि की है। वेद, दर्शन, व्याकरण, साहित्यालोचन, इतिहास, जीवन चरित्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद आदि विषयों पर जिन स्नातकों ने उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखकर साहित्यिक संस्थाओं तथा सरकार से पुरस्कार प्राप्त किये, उनकी संख्या तो बहुत ही अधिक है। इनमें पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, डा० ऋषिदेव विद्यालंकार, पण्डित अत्रिदेव विद्यालंकार, प्रो० ब्रह्मदत्त आयुर्वेदालंकार, प्रो० हरिदत्त वेदालंकार, डा० जयदेव विद्यालंकार, डा० निरूपण विद्यालंकार, डा० रामनाथ वेदालंकार, प्रो० सत्यभूषण वेदालंकार, डा० कृष्णकुमार आयुर्वेदालंकार, डा० सत्यकाम आयुर्वेदालंकार और डा० प्रशान्तकुमार वेदालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी की पत्रकारिता के क्षेत्र में तो गुरुकुल के स्नातकों का स्थान बहुत ही प्रतिष्ठित है। सम्भवतः, यह कहना गलत नहीं होगा, कि बीसवीं सदी के मध्य भाग तक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्रकारों में गुरुकुल के स्नातक सबसे अधिक संख्या में थे। पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति, पण्डित सत्यदेव विद्यालंकार, पण्डित भीमसेन विद्यालंकार, पण्डित रामगोपाल विद्यालंकार, पण्डित अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार, पण्डित दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, पण्डित शिवकुमार विद्यालंकार, पण्डित कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, पण्डित नरेन्द्र विद्यावाचस्पति, पण्डित क्षितीश वेदालंकार, पण्डित दत्तात्रेय विद्यालंकार, पण्डित परम विद्यालंकार, पण्डित आनन्द विद्यालंकार, पण्डित धीरेन्द्रकुमार विद्यालंकार, पण्डित विद्यासागर विद्यालंकार, पण्डित नारायणदत्त विद्यालंकार, पण्डित सच्चिदानन्द विद्यालंकार, पण्डित ब्रह्मदत्त विद्यालंकार आदि कितने ही नाम हैं; जो हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में सदा प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किये जाएँगे।

व्यापार, व्यवसाय और उद्योगों के क्षेत्र में भी गुरुकुल के अनेक स्नातकों ने बहुत उन्नति की। पण्डित सत्यदेव वेदालंकार संस्कृत के अध्यापक के रूप में केनिया (पूर्वी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ्रीका) गये, और कुछ ही वर्षों में अपने अध्यवसाय से वह वहाँ के एक सफल व समृद्ध उद्योगपति बन गये। उनकी गिनती अब पूर्वी अफ्रीका के बड़े उद्योगपतियों में की जाती है, और इंगलैण्ड तथा भारत में भी उनके अनेक बड़े-बड़े कारखाने विद्यमान हैं। पण्डित विवेकानन्द विद्यालंकार और पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार ने फिल्म निर्माण तथा सिनेमा उद्योग में अच्छा नाम कमाया। कितने ही अन्य स्नातकों ने कल-कारखानों और व्यापार द्वारा अच्छी बड़ी मात्रा में धन का उपार्जन किया है। आरण्यक-आश्रम में जीवन का प्रथम चरण बिताकर भी ये सफल उद्योगपति व व्यापारी बन सके, इसका श्रेय गुरुकुल की शिक्षा को भी अवश्य दिया जाना चाहिये। उस द्वारा आत्मनिर्भरता, साहस और उद्यम की जो प्रवृत्ति गुरुकुल के विद्यार्थियों में उत्पन्न हो जाती है, वह जीवन के सभी क्षेत्रों में संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहने के लिए उन्हें प्रेरित करती रहती है।

राजनीतिक क्षेत्र में भी गुरुकुल के अनेक स्नातक पर्याप्त रूप से सफल हुए। देश की स्वाधीनता के लिए जो भी संघर्ष बीसवीं सदी के द्वितीय चरण में कांग्रेस के नेतृत्व में हुए, सभी में गुरुकुल के स्नातकों व विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। पण्डित अमरनाथ विद्यालंकार, पण्डित विनायकराव विद्यालंकार, पण्डित शंकरदेव विद्यालंकार और पण्डित दीनदयालु शास्त्री सिद्धान्तालंकार विविध राज्यों की मन्त्रि-परिषदों के सदस्य रहे, और कितने ही स्नातक भारत की संसद् तथा राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्य निर्वाचित हुए।

इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखने पर यह स्वीकार करना होगा, कि एक शिक्षण-संस्था के रूप में गुरुकुल काँगड़ी अपनी उपलब्धियों पर न केवल सन्तोष अनुभव कर सकता है, अपितु गर्व भी कर सकता है। किसी भी अन्य शिक्षण-संस्था की तुलना में गुरुकुल काँगड़ी का कार्य-कलाप कम गौरवपूर्ण नहीं है।

पर अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है, कि क्या गुरुकुल से आर्यसमाज की आशाएँ भी पूर्ण हुई हैं? आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की स्थापना जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी थी, उनमें प्रथम उद्देश्य निम्नलिखित था—"वेदों तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों की पढ़ाई के लिए तथा आर्योपदेशकों की तैयारी के लिए एक विद्यालय की स्थापना करना।" सभा द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुकुल खोला गया था। प्रश्न यह है कि क्या गुरुकुल द्वारा सभा का यह उद्देश्य पूरा हुआ है? जहाँ तक वेदों तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों की पढ़ाई का सम्बन्ध है, गुरुकुल ने इस विषय में बहुत सन्तोषजनक कार्य किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात् आर्यसमाज में ऐसे विद्वानों का प्रायः अभाव था जो वेद-वेदांगों के प्रकाण्ड पण्डित हों, और जो इनकी उच्च स्तर की शिक्षा दे सकें। इसीलिए जब गुरुकुल काँगड़ी में महाविद्यालय विभाग की पढ़ाई शुरू हुई, तो वेद-वेदांगों के अध्यापन के लिए पण्डित काशीनाथ शास्त्री और पण्डित सूर्यदेव सदृश सनातनी विद्वानों की नियुक्ति की गयी। दर्शन-शास्त्रों तक के अध्यापन के लिए पण्डित योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य और पण्डित सुरेन्द्रनाथ को नियुक्त किया गया, जो आर्यसमाजी न होकर सनातनी थे और अद्वैतवाद में विश्वास रखते थे। वेद-वेदांगों के उच्चकोटि के विद्वान् तब आर्यसमाज में नहीं थे, इसी कारण विवश होकर इनकी सेवाओं से लाभ उठाना पड़ा था। पर शीघ्र ही गुरुकुल के स्नातकों ने उनका स्थान ले लिया, और आर्यसमाज में वेद-वेदांगों के प्रकाण्ड पण्डितों की कमी नहीं रह गयी। चतुर्वेदभाष्यकार पण्डित जयदेव विद्यालंकार, निरुक्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भाष्य के लेखक पण्डित चन्द्रमणि विद्यालंकार और वेदों के गम्भीर विद्वान् पण्डित विश्वनाथ विद्यालंकार ने गुरुकुल में ही शिक्षा प्राप्त की थी। पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार, डा० रामनाथ वेदालंकार, पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पण्डित धर्मदेव वेदवाचस्पति, पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार और पण्डित भारतभूषण वेदालंकार जैसे वैदिक विद्वान् गुरुकुल के ही स्नातक हैं। दर्शनशास्त्र और संस्कृत साहित्य के भी अनेक ऐसे विद्वान् गुरुकुल ने उत्पन्न किये, काशी के प्रकाण्ड पण्डितों से जो विद्वत्ता में किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। पण्डित वागीश्वर विद्यालंकार, पण्डित सुखदेव दर्शनवाचस्पति, पण्डित जगन्नाथ वेदालंकार, पण्डित आनन्दवर्धन विद्यालंकार, पण्डित मनोहर विद्यालंकार, श्री वासुदेव चैतन्य आयुर्वेदालंकार, श्री जनमेजय विद्यालंकार आदि के नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। वेद-वेदांगों तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के गम्भीर विद्वान् उत्पन्न करने में गुरुकुल ने अवश्य सफलता प्राप्त की है।

जो लोग यह चाहते थे, कि गुरुकुल एक उपदेशक विद्यालय बने और वहाँ आर्योपदेशक तैयार किये जाएँ, उन्हें भी गुरुकुल से निराश होने का कोई उपयुक्त कारण नहीं है। पिछली आधी शताब्दी में जिन प्रचारकों व उपदेशकों ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उनमें गुरुकुल के स्नातकों की संख्या सबसे अधिक है। पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार, पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पण्डित यशपाल सिद्धान्तालंकार, पण्डित गुरुदत्त वेदालंकार, आचार्य प्रियव्रत विद्यावाचस्पति, पण्डित केशवदेव विद्यालंकार आदि कितने ही स्नातक हैं, आर्यसमाज के प्रचारकों में जिनके नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखे जाएँगे। दक्षिणी अफ्रीका में पं० नरदेव वेदालंकार ने, पूर्वी अफ्रीका में पण्डित सत्यपाल विद्यालंकार, पं० सत्यदेव वेदालंकार, पण्डित मदन मोहन विद्यासागर और पं० दिलीप वेदालंकार ने, फिजी में पण्डित अमीचन्द विद्यालंकार ने और सुरीनाम आदि में श्री श्यामसुन्दर स्नातक ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जो महान् उद्यम किया, उसके महत्त्व से कैसे इन्कार किया जा सकता है। आर्यसमाज के संगठन को सशक्त बनाने तथा विविध आर्य प्रतिनिधि सभाओं के पदों को सँभाल कर वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने में पण्डित भीमसेन विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, डा० हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार, पं० विनायकराव विद्यालंकार और पण्डित धर्मपाल विद्यालंकार आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। हैदराबाद सत्याग्रह, पंजाब में हिन्दी के लिए संघर्ष आदि जो भी आन्दोलन आर्यसमाज द्वारा चलाये गये, गुरुकुल काँगड़ी के स्नातकों ने उनमें उत्साहपूर्वक भाग लिया। यह सही है, कि गुरुकुल ने केवल आर्योपदेशक व आर्यसमाज के कार्यकर्ता ही तैयार नहीं किये। सबकी रुचि, क्षमता और प्रवृत्ति एक समान नहीं होती। किसी भी शिक्षणालय से, विशेषतया जहाँ छोटी आयु के बालकों को प्रविष्ट किया जाए, यह आशा कदापि नहीं की जा सकती, कि उसके सब विद्यार्थी एक ही ढंग के होंगे। मैडिकल कॉलिज और इंजीनियरिंग कॉलिज में परिपक्व आयु के विद्यार्थी दाखिल किये जाते हैं, जो इनमें दी जाने वाली विशेष प्रकार की शिक्षा में रुचि रखते हैं और सोच-समझ कर इनमें प्रविष्ट होते हैं। पर छोटी आयु से शिक्षा देने वाली कोई ऐसी शिक्षण-संस्था नहीं हो सकती, जिसके सब विद्यार्थी बड़े होकर डॉक्टर या इंजीनियर ही बनें। यही बात उपदेशक विद्यालय के सम्बन्ध में भी है। ऐसा उपदेशक विद्यालय तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य खोला जा सकता है, जिसमें बड़ी आयु के ऐसे विद्यार्थियों को प्रविष्ट किया जाए जिनकी रुचि धर्मप्रचार के कार्य में हो और जो इस कार्य के योग्य भी हों। आश्रम प्रणाली के पुनरुद्धार के लिए स्थापित किये गये गुरुकुल से यह आशा करना कि उसके ब्रह्मचारी बड़े होकर उपदेशक का कार्य करने के योग्य होंगे, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। रुचि, गुण, स्वभाव और योग्यता के भेद से गुरुकुल के कुछ स्नातक साहित्यकार बने, कुछ उद्योगपति और व्यापारी बने, कुछ लेखक और पत्र-सम्पादक बने, कुछ अध्यापन-कार्य में प्रवृत्त हुए और कुछ आर्योपदेशक भी बने। ऐसा होना ही स्वाभाविक व उचित था। जिन स्नातकों ने स्वेच्छापूर्वक उपदेशक व प्रचारक का कार्य स्वीकार किया, वे अन्य बहुत-से उपदेशकों से इस दृष्टि से भिन्न व उत्कृष्ट थे कि वे केवल संस्कृत के पण्डित न होकर किसी-न-किसी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में भी अच्छी गति रखते थे और इस कारण वे जनता पर अधिक प्रभाव डाल सकते थे। कितने ही क्रिश्चियन मिशनरी ईसाई धर्मग्रन्थों के पण्डित होने के साथ-साथ कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड सदृश यूनिवर्सिटियों से उच्च शिक्षा भी प्राप्त किये होते हैं। इसीलिए वे विद्वत्समाज में भी अपना प्रभाव जमा सकते हैं, और अपने धर्म के प्रचार में अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। गुरुकुल के जिन स्नातकों ने आर्योपदेशक होना स्वीकार किया, वे भी इसी कोटि के थे।

गुरुकुल के जो बहुत-से स्नातक आर्योपदेशक नहीं बने, वे भी किसी न किसी रूप में आर्यसमाज का कुछ न कुछ कार्य अवश्य करते रहे। सन् १९६० तक 'अलंकार' की डिग्री प्राप्त कर जो भी स्नातक निकले, वे चाहे 'आयुर्वेदालंकार' भी क्यों न हों, संस्कृत, वेद-वेदांग तथा प्राचीन आर्ष शास्त्र भली-भाँति पढ़े होते थे। गुरुकुल के छात्रावास (आश्रम) में सुदीर्घ समय तक निवास कर उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जीवन बिताया होता था। प्रतिदिन दोनों समय सन्ध्या-हवन, प्रार्थना-उपासना, उपदेश श्रवण उनके जीवन का आवश्यक अंग होता था। आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म के संस्कार उन पर इतने दृढ़ हो जाते थे और वेदशास्त्रों का इतना पर्याप्त ज्ञान उन्हें हो जाता था कि वे चाहे कोई भी काम-धन्धा करें, आर्यसमाज की यथाशक्ति सेवा भी वे करते रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में, विशेष समारोहों में और वार्षिकोत्सवों पर व्याख्यान भी दे दिया करते थे। यह बात बहुसंख्यक स्नातकों के विषय में पूर्ण भरोसे के साथ कही जा सकती है। पण्डित सत्यदेव वेदालंकार बहुत बड़े उद्योगपति हैं, वह कितने ही कल-कारखानों के मालिक हैं और बहुत-से उद्योग-धन्धों के संचालक हैं। अपने व्यापार-व्यवसाय में व्यस्त रहते हुए भी वह प्रायः आर्यसमाज के समारोहों और उत्सवों में उसी प्रकार धर्मोपदेश करते हैं जैसे कोई आर्योपदेशक हों। पण्डित अमृतपाल विद्यालंकार अवकाश प्राप्त रेलवे कर्मचारी हैं, पर वे वेद, ओ३म् और गायत्री मन्त्र को आधार बना कर विविध आर्य सम्प्रदायों व मत-मतान्तरों को एक सूत्र में संगठित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यही बात अन्य बहुत-से स्नातकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। वस्तुतः, गुरुकुल द्वारा आर्य जनता में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया गया है, जिसके प्रत्येक व्यक्ति में वैदिक धर्म के संस्कार कूट-कूट कर भरे हुए हैं और जिसे वेदशास्त्रों का समुचित ज्ञान है। आर्यसमाज को गुरुकुल की यह देन कम महत्त्व की नहीं है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सही है, कि गुरुकुल के सभी स्नातक एक समान सदाचारी, धर्मनिष्ठ और वैदिक धर्म में सुदृढ़ आस्था रखने वाले नहीं हैं। कइयों के रहन-सहन और जीवन पर जनता द्वारा आक्षेप भी किये जाते रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है। मनुष्य पूर्ण व निर्दोष नहीं हुआ करते। उनमें अनेक प्रकार की कमियाँ रह ही जाती हैं। कोई शिक्षण-संस्था अपने विद्यार्थियों को पूर्ण नहीं बना सकती। वह ऐसी परिस्थितियाँ, व ऐसा पर्यावरण ही उत्पन्न कर सकती है, जिसमें विद्यार्थियों का समुचित विकास हो, वे अच्छे संस्कार ग्रहण करें और सदाचारमय जीवन के लिए प्रवृत्त हों। गुरुकुल काँगड़ी ने अपने ब्रह्मचारियों के लिए ऐसा पर्यावरण बनाने में अवश्य सफलता प्राप्त की, और उसका परिणाम भी सन्तोषजनक रहा। यही कारण है, जो देश-विदेश के विद्वान् एवं शिक्षाविज्ञ गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुए, और इसका अवलोकन कर उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की। खेद यही है, कि यह संस्था समुचित उन्नति नहीं कर सकी। आधी सदी के लगभग समय में ही इसका विकास अवरुद्ध हो गया, और महात्मा मुंशीराम ने जिस ढंग के विश्वविद्यालय का स्वप्न लिया था, वह पूरा नहीं हो सका। सन् १९६१ के बाद गुरुकुल की जिस ढंग से प्रगति हुई, उस पर प्रकाश डालते हुए उन कारणों का भी विवेचन किया जा सकेगा, जिनसे स्वराज्य के बाद गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की लोकप्रियता निरन्तर कम होती गई, और जो गुरुकुल सन् १९४७ तक स्थापित हो चुके थे, उनमें भी बहुसंख्यक ऐसे हैं, जिनमें कि ह्रास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।

(७) महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती)

यद्यपि आधुनिक युग का पहला गुरुकुल स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा सन् १८९८ में सिकन्दराबाद में स्थापित किया गया था, पर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की पुन: स्थापना का वास्तविक श्रेय महात्मा मुंशीराम को दिया जाना चाहिये। उन्होंने न केवल काँगड़ी के गुरुकुल को एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने में ही सफलता प्राप्त की, अपितु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को एक सशक्त आन्दोलन का स्वरूप भी प्रदान किया। भारत के आधुनिक इतिहास में महात्मा मुंशीराम का स्थान बड़े महत्त्व का है। वह जहाँ आर्यसमाज के कर्णधार थे, वहाँ साथ ही देश के नेताओं में भी उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। समाज सुधार, दलितोद्धार, राष्ट्रीय भावना का विकास, स्वराज्य के लिए संघर्ष आदि सभी के लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किये; पर गुरुकुल शिक्षा पद्धति की पुन: स्थापना उनका एक ऐसा कार्य है, जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा।

जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में सन् १८५६ में महात्मा मुंशीराम का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम नानकचन्द था। वह संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) में पुलिस की सर्विस में थे, और सहारनपुर, बलिया, काशी, मिरजापुर, बदायूँ और बरेली आदि में इंस्पेक्टर व कोतवाल के पदों पर रहे थे। ब्रिटिश शासन के उस काल में पुलिस अफसरों को न धन की कमी होती थी और न शक्ति की। लाला नानकचन्द का जीवन भोग-विलासमय था, और उनमें वे अनेक दोष भी विद्यमान थे जो धन और शक्ति की प्रचुरता से लोगों में उत्पन्न हो जाते हैं। फिर भी वह तुलसीकृत रामायण के भक्त थे, और पूजा-पाठ में भी समय लगाया करते थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशीरामजी की शिक्षा वाराणसी के सरकारी स्कूल और इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कॉलिज में हुई। विद्यार्थी जीवन में वह इन्द्रियों पर संयम नहीं रख सके। उनका परिवार सम्पन्न था, और पिता बड़े सरकारी अफसर थे। जिन शिक्षणालयों में वह शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उनका वातावरण भौतिकवाद और पाश्चात्य संस्कृति का था। मुंशीरामजी भी इनसे प्रभावित हुए। काशी और प्रयाग में हिन्दू धर्म के जिस स्वरूप के वह सम्पर्क में आये, वह सत्य सनातन वैदिक धर्म नहीं था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण मुंशीरामजी को हिन्दू धर्म के प्रति अनास्था होने लगी, और परमेश्वर की सत्ता पर भी वह सन्देह करने लगे। पर वह देर तक इस दशा में नहीं रहे। सन् १८७९ में महर्षि दयानन्द सरस्वती के साथ उनका सम्पर्क हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उनका जीवन पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया। सन् १८७९ में जब वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए महर्षि बरेली गये, मुंशीरामजी के पिता लाला नानकचन्द वहाँ कोतवाल थे। वह भी महर्षि के व्याख्यान सुनने के लिए जाया करते थे और उनसे बहुत प्रभावित होते थे। एक दिन उन्होंने अपने पुत्र से कहा—एक दण्डी स्वामी आये हुए हैं, बड़े विद्वान् और योगी हैं, उनकी बातें सुन कर तुम्हारे मन के संशय दूर हो जायेंगे, कल मेरे साथ चलकर उनका व्याख्यान सुनना। महर्षि के व्याख्यान को सुनकर मुंशीराम के मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसे उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है—'मैंने बड़े-बड़े वक्ताओं के व्याख्यान सुने हैं, परन्तु जो ओज महर्षि की वाणी में था, वह अन्य कहीं नहीं पाया। उनके भाषण से श्रोताओं को जो प्रकाश मिलता था, वैसा प्रकाश किसी अन्य वक्ता की वाणी से नहीं मिला।' महर्षि के सम्पर्क से मुंशीराम जी की सोयी हुई आत्मा जाग उठी, उनकी अश्रद्धा अगाध श्रद्धा में परिवर्तित हो गई, और जीवन के अन्तिम क्षण तक महर्षि उनके लिए प्रकाशस्तम्भ बने रहे। महर्षि के मन्तव्यों और आदर्शों को क्रियान्वित करना ही उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। इसीलिए उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की।

महर्षि के दर्शन से दो वर्ष पूर्व सन् १८७७ में मुंशीरामजी का विवाह जालन्धर के राय सालिगराम की पुत्री शिवदेवीजी के साथ हो गया था। अब उन्हें आजीविका की भी चिन्ता करनी थी। बरेली में उन्हें नायब तहसीलदार की नौकरी मिल गयी थी, पर वह इतने स्वाभिमानी थे, कि इस सर्विस में देर तक नहीं रह सके। वह लाहौर गये, और वहाँ उन्होंने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। वकील के पेशे में उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई, और उनकी गिनती जालन्धर के अच्छे सफल वकीलों में की जाने लगी। जब वह लाहौर में वकालत पढ़ रहे थे, आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में भी जाने लगे थे। उन दिनों लाहौर में आर्यसमाज बहुत सक्रिय था। मुंशीरामजी उसके सदस्य बन गये, और उसके कार्यकलाप में उत्साह के साथ हाथ बँटाने लगे। वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण कर वह जालन्धर चले गये, और वहीं वकालत करने लगे। जालन्धर में भी तब तक आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। उन्हें समाज का प्रधान चुन लिया गया। उस समय पंजाब में आर्यसमाज का नेतृत्व युवकों के ही हाथों में था। लाहौर के लाला साईंदास, लाला हंसराज, पण्डित गुरुदत्त और लाला लाजपतराय आदि सब आर्य नेता युवक ही थे। जो स्थिति इन युवकों की लाहौर में थी, वही लाला मुंशीराम की जालन्धर में थी। जालन्धर में मुंशीरामजी के मुख्य सहयोगी लाला देवराज थे। इन दोनों के कर्तृत्व के कारण जालन्धर भी लाहौर के समान आर्यसमाज का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। वकालत करते हुए भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंशीरामजी आर्यसमाज के कार्यों के लिए पर्याप्त समय निकाल लेते थे। वह प्राय: प्रभात-फेरी निकालते, रात को नगर के विविध मुहल्लों में सत्यार्थप्रकाश की कथा करते और रविवार को देहातों में प्रचार के लिए जाया करते। कन्याओं की शिक्षा के लिए उन्होंने लाला देवराज से मिलकर कन्या पाठशाला स्थापित की, जो आगे चलकर कन्या महा-विद्यालय के नाम से एक महान् शिक्षण-संस्था के रूप में विकसित हो गयी। मुंशीरामजी ने शुद्धि के कार्य पर भी ध्यान दिया, जिसके कारण पौराणिक लोग उनके बहुत विरुद्ध हो गये। पर विरोध की परवाह न कर वह शुद्धि का कार्य उत्साहपूर्वक करते रहे। उनका निजी जीवन आर्य मान्यताओं के अनुरूप था। मांस भक्षण, धूम्रपान, ताश आदि का उन्होंने परित्याग कर दिया था। वह प्रतिदिन सन्ध्या-हवन करते और वेदों के स्वाध्याय में भी समय लगाते। जात-पाँत पर उनका विश्वास नहीं था। अपनी दूसरी पुत्री का विवाह उन्होंने डा० सुखदेव के साथ किया, जो जाति से अरोड़ा थे। लाला मुंशीराम खत्री थे। उस क्षेत्र का यह पहला अन्तर्जातीय विवाह था। खत्री विरादरी द्वारा इसका उग्र रूप से विरोध किया गया, और उन्हें जाति से बहिष्कृत करने की धमकी भी दी गयी। पर वह अपने मन्तव्य पर दृढ़ रहे। उन्होंने अपने पुत्रों का विवाह भी जात-पाँत तोड़कर किया। हरिश्चन्द्रजी की पत्नी अरोड़ा थी, और इन्द्रजी की ब्राह्मण। अगस्त, १८९१ में मुंशीरामजी की पत्नी शिवदेवीजी का स्वर्गवास हो गया था। उस समय उनके बच्चों की आयु दो वर्ष से दस वर्ष तक की थी। लोगों ने पुनर्विवाह के लिए उन पर बहुत जोर दिया। उनकी आयु भी अभी अधिक नहीं थी। वह केवल ३५ वर्ष के थे। पर वह पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं हुए। नाबालिग बच्चों के पालन-पोषण के विषय में उन्होंने कहा—मैं अब तक इन बच्चों का पिता था। अब माता की कमी भी मैं ही पूरी करूँगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक के रूप में जब लाहौर में डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना का निश्चय किया गया, तो पंजाब के सभी आर्यसमाजी उससे सहमत थे। पर इस शिक्षण-संस्था में संस्कृत और वेदशास्त्रों की पढ़ाई के सम्बन्ध में शीघ्र ही मतभेद उत्पन्न हो गये, और पंजाब का आर्यसमाज दो दलों में विभक्त हो गया। इस विषय पर इस ग्रन्थ के चौथे अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। शिक्षा पद्धति के अति-रिक्त अन्य भी प्रश्न थे, जिन पर इस समय पंजाब के आर्यों में मतभेद हुए। ऐसा एक प्रश्न मांस-भक्षण का था। लाला मुंशीराम मांस-भक्षण के विरोधी थे। उनके मन्तव्य के अनुसार आर्यसमाज के सभासदों के लिए यह आवश्यक था, कि वे मांस का सेवन न करें। लाला हंसराज और उनके साथी इससे सहमत नहीं थे। निरामिष होना उनकी सम्मति में आर्यसमाज की सदस्यता के लिए अनिवार्य शर्त नहीं थी। इस प्रकार पंजाब में आर्य-समाज की जो दो पार्टियाँ बन गयीं, उन्हें क्रमश: कॉलिज पार्टी या मांस पार्टी और गुरुकुल पार्टी या घास पार्टी कहा जाता है। लाला मुंशीराम घास पार्टी के प्रधान नेता थे। उनके सदाचार व सात्त्विक जीवन के कारण जनता उन्हें 'महात्मा' कहने लग गयी थी। इसी-लिए उनकी पार्टी को 'महात्मा पार्टी' भी कहा जाने लगा था।

डी० ए० वी० कॉलिज की पाठविधि से जो लोग असन्तुष्ट थे, उनके नेता पहले पण्डित गुरुदत्त थे। मार्च, १८८९ में पण्डितजी के असामयिक देहावसान के पश्चात् उनका नेतृत्व लाला मुंशीराम के हाथों में आ गया। पर डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षा प्रणाली के प्रति असन्तोष को उन्होंने केवल विरोध तक ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय किया, कि यदि डी० ए० वी० कॉलिज की पाठविधि एवं शिक्षा प्रणाली महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के अनुरूप नहीं है, तो उसके मुकाबले में एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना की जानी चाहिये जो महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप हो। इसीलिए उन्होंने गुरुकुल की योजना बनायी, और उसे आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा स्वीकृत कराया। गुरुकुल की योजना को क्रियान्वित करने, उसके लिए धन एकत्र करने, आरण्यक प्रदेश में उसे स्थापित करने और उसे एक स्वतन्त्र व आदर्श विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने का जो प्रयत्न मुंशीरामजी ने किया, उस पर इस ग्रन्थ में पहले यथास्थान प्रकाश डाला जा चुका है। उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। इसमें सन्देह नहीं, कि महात्मा मुंशीराम बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में एक ऐसी संस्था को स्थापित करने में सफल हुए थे जिसका स्वरूप प्राचीन भारत के भारद्वाज, कण्व और शौनक ऋषियों के आश्रमों के सदृश था, जिसकी शिक्षा में प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन तत्त्वों का सुन्दर समन्वय था और जिसका वातावरण देशभक्तिपूर्ण और राष्ट्रीय था। महात्मा गांधी के शब्दों में, "गुरुकुल सच्चे अर्थों में पूर्णत: राष्ट्रीय संस्था है। आर्यसमाज का सर्व-श्रेष्ठ कार्य गुरुकुल का संचालन है। मुझे मालूम है कि इसकी शक्ति का स्रोत महात्मा मुंशीरामजी का महान् व्यक्तित्व है। सरकारी सहायता के बिना इन्होंने इतनी विशाल संस्था को सफलतापूर्वक चलाया, यह उनके ही वीरतापूर्ण जीवन के कारण सम्भव हो सका।"

गुरुकुल काँगड़ी के लिए अपना सब समय और शक्ति लगाते हुए महात्मा मुंशीराम ने व्यापक क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा नहीं की। ब्रिटिश सरकार आर्यसमाज को राजद्रोही संगठन समझती थी। अपने धर्म, संस्कृति तथा देश के प्रति प्रेम की जो भावना आर्यसमाज द्वारा जनता में प्रादुर्भूत की जा रही थी, भारत के अतीत गौरव का स्वर्णीय चित्र प्रस्तुत कर लोगों को पुन: अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने तथा विश्व में पहले के समान मूर्धन्य स्थान प्राप्त कराने के लिए जो प्रेरणा दी जा रही थी, अंग्रेज शासकों का उससे चौकन्ना हो जाना स्वाभाविक ही था। इसीलिए सन् १९०६ में पटियाला के ८४ आर्यसमाजियों को गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। अन्यत्र भी सरकार ने आर्यसमाज के प्रति अपना कोप प्रदर्शित किया, और लाला लाजपतराय सदृश आर्य नेता को क़ैद कर माण्डले भेज दिया गया। इस विकट परिस्थिति में महात्मा मुंशीराम ने गिरफ्तार आर्यसमाजियों की पैरवी करने और उन्हें छुड़वाने के लिए जो प्रयत्न किया, वह आर्यसमाज के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से लिखे जाने योग्य है। उन्हीं के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ, कि पटियाला में आर्यसमाजियों पर से राजद्रोह का मुकदमा उठा लिया गया।

महात्मा मुंशीराम पंजाब में उत्पन्न हुए थे। प्रारम्भ में उन्होंने उर्दू की शिक्षा प्राप्त की थी। पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से प्रभावित होकर वह आर्य-भाषा (हिन्दी) के प्रबल समर्थक हो गये, और उन्होंने उसमें उत्कृष्ट प्रकार की योग्यता भी प्राप्त कर ली। हिन्दी की पत्रकारिता में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त था। उनका साप्ताहिक पत्र सद्धर्म प्रचारक पहले उर्दू में था, पर उन्होंने उसे हिन्दी में कर दिया। वह स्वयं उसमें लेख लिखा करते थे, और उनकी हिन्दी शुद्ध व परिमार्जित होती थी। 'श्रद्धा' नाम से उन्होंने एक अन्य साप्ताहिक पत्र भी हिन्दी में निकाला था। हिन्दी में उन्होंने कई ग्रन्थ भी लिखे। 'आर्य सिद्धान्त व्याख्यान माला' के अन्तर्गत उन्होंने एक दर्जन पुस्तिकाएँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखीं, जिनमें आर्यसमाज के सिद्धान्तों का सुबोध भाषा में प्रतिपादन किया गया है। 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से उन्होंने अपना जो आत्मचरित लिखा, वह हिन्दी साहित्य की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। महात्माजी वकील थे, उन्होंने एक पुस्तिका ज्युरिसप्रुडेन्स (न्याय विज्ञान) विषय पर भी हिन्दी में लिखी थी, जो इस विषय पर हिन्दी की प्रथम पुस्तक थी। सन् १९१९ में कांग्रेस का जो अधिवेशन अमृतसर में हुआ था, उसकी स्वागत समिति के अध्यक्ष पद से जो भाषण उन्होंने दिया था, वह भी हिन्दी में था, जो इस राष्ट्रीय संस्था के लिए एक नयी बात थी। हिन्दी की इन्हीं सेवाओं के कारण उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भागलपुर अधिवेशन का सभापति निर्वाचित किया गया था।

एप्रिल, १९१७ में महात्मा मुंशीराम ने संन्यास आश्रम में प्रवेश कर (स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती बनकर) गुरुकुल काँगड़ी से विदा ली थी। अब उनका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था। देश के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में जो कार्य अब उन्होंने किये, उनके कारण उनकी गिनती भारत के मूर्धन्य नेताओं में की जाने लगी थी। पर उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार कर एक ऐसी शिक्षण-संस्था को स्थापित करना था, जो सब दृष्टियों से पूर्णतया राष्ट्रीय थी। उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास गुरुकुल काँगड़ी का संचालन करते हुए ही हुआ था। उनके व्यक्तित्व का जो स्वरूप गुरुकुल में रहते हुए हो गया था, उसे देखकर मि० रामजे मैकनाल्ड ने लिखा था —"वर्तमान काल का कोई कलाकार यदि भगवान् ईसा की मूर्ति बनाने के लिए कोई मॉडल चाहे, तो मैं इस भव्य मूर्ति की ओर इशारा करूँगा। यदि कोई चित्रकार मध्य काल के सेण्ट पीटर के चित्र के लिए मॉडल माँगेगा, तो मैं उसे इस जीवित भव्य मूर्ति के दर्शन करने की प्रेरणा दूँगा।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारहवाँ अध्याय

गुरुकुल काँगड़ी का विस्तार

(१) गुरुकुल मुलतान

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। गुरुकुल काँगड़ी में नये वालकों का प्रवेश विक्रमी संवत् के अनुसार वर्ष के प्रारम्भ में हुआ करता था, और उसमें छह से आठ वर्ष तक की आयु के वालकों को ही प्रविष्ट किया जाता था। गुरुकुल में स्थान की इतनी कमी थी, कि पच्चीस से अधिक नये वालकों को प्रविष्ट कर सकना सम्भव नहीं होता था। प्रति वर्ष प्राय: एक सौ से भी अधिक वालक गुरुकुल काँगड़ी में प्रवेश पाने के लिए आया करते थे, पर उनमें से तीन चौथाई को निराश होकर वापस जाना पड़ता था। इस दशा में अनेक सम्पन्न व कर्मठ आर्य जनों ने यह विचार किया, कि अन्यत्र भी गुरुकुल काँगड़ी की शाखाएँ खोली जाएँ, ताकि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लाभ अधिक वालकों को प्राप्त हो सकें। यह विचार सवसे पहले चौधरी रामकृष्ण के मन में आया, जो मुलतान (अब पाकिस्तान में) के एक वड़े जमींदार और सम्पन्न रईस थे। उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव के साथ इस सम्वन्ध में पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया, और गुरुकुल के लिए एक भूमिखण्ड तथा नकद धनराशि प्रदान करने का अपना निश्चय सूचित किया। ९ अगस्त, १९०८ के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव की अन्तरंग सभा ने विचार-विमर्श के अनन्तर चौधरी रामकृष्ण के प्रस्ताव एवं दान को स्वीकृत कर लिया और मुलतान के क्षेत्र में गुरुकुल काँगड़ी की शाखा खोलने का निश्चय कर लिया गया। इसके अनुसार १३ फरवरी, सन् १९०९ को मुलतान के समीप डेरा वुद्धू नामक स्थान पर गुरुकुल काँगड़ी की प्रथम शाखा की स्थापना हुई, जिसका नाम 'शाखा गुरुकुल देव-वन्धु' रखा गया। इस शाखा गुरुकुल के प्रवन्ध के लिए स्थानीय आर्य सज्जनों की एक 'गुरुकुल सभा' गठित कर दी गई, जो वड़े उत्साह से अपने कार्य में तत्पर हो गई। कुछ ही समय में गुरुकुल के लिए कई पक्के मकान तैयार कर लिये गये, और जल की सुविधा के लिए एक पक्का कुआँ भी वना लिया गया।

पर मुलतान का यह गुरुकुल देर तक डेरा वुद्धू में नहीं रह सका। तीन साल की अवधि में ही चौधरी रामकृष्ण के 'गुरुकुल सभा' से मतभेद शुरू हो गये, और इन मतभेदों ने उग्र विवादों का रूप धारण कर लिया, जिसके कारण गुरुकुल के सुचारु रूप से संचालन में अनेकविध वाधाएँ उपस्थित होने लगीं। परिणाम यह हुआ, कि गुरुकुल को डेरा वुद्धू (देववन्धु) से उठाना पड़ा। मुलतान के प्रतिष्ठित वकील लाला परमानन्द की दो वड़ी कोठियाँ हजूरीमल के वाग में थीं, जिन्हें उन्होंने अस्थायी रूप से गुरुकुल के लिए प्रदान कर दिया और गुरुकुल को सामयिक रूप से वहाँ ले आया गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय गुरुकुल मुलतान के मुख्याधिष्ठाता पण्डित चन्द्रमणि विद्यालंकार थे और स्थानीय गुरुकुल सभा के मन्त्री पद पर लाला मदनलाल नियुक्त थे। इन दोनों सज्जनों ने प्रयत्न किया, कि चौधरी रामकृष्ण से विवाद का अन्त हो जाए, ताकि गुरुकुल को पुनः अपने पुराने स्थान पर ले जाया जा सके, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। चौधरी रामकृष्ण से निराश होकर गुरुकुल के लिए अन्य उपयुक्त स्थान की तलाश प्रारम्भ कर दी गई, और अन्त में एक ऐसी भूमि प्राप्त हो गई जो गुरुकुल के लिए उपयुक्त थी। यह भूमि मुलतान शहर से तीन मील की दूरी पर ताराकुण्ड के समीप थी। इसका क्षेत्रफल साढ़े पेंसठ बीघे था, जो गुरुकुल के लिए पर्याप्त था। इस भूमि को गुरुकुल के लिए क्रय कर लिया गया, और इस पर छात्रावास, विद्यालय, भोजन भण्डार आदि के भवन बनवाने प्रारम्भ कर दिये गये। डेरा बुद्धू (देवबन्धु) वाली भूमि के सम्बन्ध में जो विवाद चौधरी रामकृष्ण के साथ चल रहा था, इस बीच में उसे भी निबटा दिया गया। उस भूमि पर जो मकान गुरुकुल के लिए बनवाये गये थे, उनकी क्षतिपूर्ति के रूप में १७ हजार रुपये चौधरी साहब ने आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब को प्रदान कर दिये। इस राशि का उपयोग गुरुकुल (ताराकुण्ड, मुलतान) के लिए भवनों के निर्माण में किया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप गुरुकुल में आवश्यक इमारतों व कूप आदि की समुचित व्यवस्था हो गई।

गुरुकुल मुलतान को लोकप्रिय होने में अधिक समय नहीं लगा। धीरे-धीरे उसमें विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती गई, और उसकी व्यवस्था व शिक्षा भी सन्तोषजनक होती गई। भारत के पश्चिम-दक्षिणी क्षेत्र में आर्यसमाज का अच्छा प्रचार था, और वहाँ के हिन्दू महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों तथा सुधारवादी प्रवृत्तियों के प्रति आकृष्ट थे। यही कारण है, जो गुरुकुल काँगड़ी में इस क्षेत्र के बहुत-से बालक शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए, और बहुत-से प्रवेश पा सकने में असमर्थ रहे। सन् १९१० में जब मुलतान में शाखा गुरुकुल की स्थापना हुई, भारत के पश्चिम-दक्षिणी क्षेत्र के विविध जिलों (मुलतान, मुजफ्फरगढ़, डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माईल खाँ, क्वेटा लायलपुर आदि) के ६० के लगभग विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जब कि वहाँ विद्यार्थियों की कुल संख्या २७४ थी। इससे यह सहज में अनुमान किया जा सकता है, कि मुलतान तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा की कितनी अधिक माँग थी। सन् १९०९ में जब मुलतान में एक शाखा गुरुकुल की स्थापना हो गई, तो इस क्षेत्र के विद्यार्थियों को काँगड़ी (हरिद्वार) सदृश सुदूर स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं रह गई, और वे मुलतान गुरुकुल में प्रवेश पाने लग गए। मुलतान गुरुकुल की पाठविधि ठीक वही थी, जो गुरुकुल काँगड़ी की थी, और उसके ब्रह्मचारियों का रहन-सहन, खान-पान, दिनचर्या आदि सब गुरुकुल काँगड़ी के सदृश थे। कुछ ही वर्षों में मुलतान गुरुकुल में दसवीं कक्षा तक पढ़ाई का प्रबन्ध हो गया, और वहाँ दस वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी की अधिकारी परीक्षा में बैठने लगे। मुलतान गुरुकुल के जो विद्यार्थी अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते थे, उन्हें काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में प्रवेश प्राप्त हो जाता था, और चार वर्ष वहाँ पढ़ कर वे विद्यालंकार, वेदालंकार आदि की उपाधियाँ प्राप्त कर लेते थे। सन् १९२७ तक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के बीस ऐसे स्नातक हो चुके थे, जिन्होंने दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई गुरुकुल मुलतान में की थी, और जिन्होंने वहीं से आकर अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण की थी। मुलतान गुरुकुल में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था, और वहाँ के अनेक विद्यार्थियों ने न केवल अधिकारी परीक्षा में, अपितु महाविद्यालय विभाग की परीक्षाओं में भी सम्मानास्पद स्थान प्राप्त किये थे। जिन महानुभावों के प्रयत्न से गुरुकुल मुलतान ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था, उनमें श्री गोपालजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह चिरकाल तक इस संस्था के मुख्याध्यापक व मुख्याधिष्ठाता के पदों पर रहे, और उनके निर्देशन में इसकी बहुत उन्नति हुई।

पर सन् १९२४ के बाद गुरुकुल मुलतान की स्थानीय गुरुकुल सभा के सदस्यों ने यह अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था, कि दसवीं कक्षा तक शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर सकना सुगम नहीं है। गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय विभाग की जो पाठविधि उस समय निर्धारित थी, उसमें विज्ञान (रसायन, भौतिकी और यान्त्रिकी) को भी अनिवार्य विषय के रूप में रखा गया था, और इन विषयों का स्तर सरकारी शिक्षणालयों की इण्टरमीडिएट परीक्षा के लिए नियत स्तर के लगभग था। इन विषयों की समुचित शिक्षा के लिए जिन प्रयोगशालाओं और सुयोग्य अध्यापकों की आवश्यकता थी, उनकी व्यवस्था के लिए प्रचुर धनराशि अपेक्षित थी। इस कारण यह निश्चय किया गया, कि मुलतान गुरुकुल में आठवीं कक्षा तक की ही पढ़ाई हो, और जो विद्यार्थी वहाँ से आठवीं कक्षा को उत्तीर्ण कर लें, उन्हें नवीं और दसवीं कक्षाओं की पढ़ाई के लिए गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भेज दिया जाया करे। उस समय काँगड़ी में नवीं दसवीं कक्षाएँ नहीं थीं। गुरुकुल काँगड़ी की मिडल एवं हाईस्कूल कक्षाओं की पढ़ाई इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल में हुआ करती थी। वस्तुतः, इन्द्रप्रस्थ का गुरुकुल उस समय शाखा गुरुकुल न होकर गुरुकुल काँगड़ी का एक अंग ही था। काँगड़ी में स्थान की कमी होने के कारण उसकी मिडल तथा हाईकक्षाओं को इन्द्रप्रस्थ में स्थानान्तरित कर दिया गया था। सन् १९४७ में भारत के विभाजन के समय तक गुरुकुल मुलतान व्यवस्थित रूप से विद्यमान रहा और वहाँ गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई सुचारु रूप से चलती रही। सन् १९४७ में पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) की अन्य आर्य शिक्षण-संस्थाओं के समान गुरुकुल मुलतान का भी अन्त हो गया। मुलतान गुरुकुल में विद्यालय विभाग (दसवीं या आठवीं कक्षा तक) शिक्षा प्राप्त कर जो बहुत-से विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक हुए, उनमें अनेक ऐसे हैं, जिन्होंने विद्वत्ता, धर्म, साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्रों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किए। पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (स्वामी धर्मानन्द) और पण्डित धर्मदेव वेदवाचस्पति जैसे वैदिक विद्वान्, श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति सदृश दर्शनशास्त्रों के पारंगत पण्डित, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सदृश उच्च कोटि के उपन्यासकार व साहित्यिक, श्री पण्डित आत्मदेव विद्यालंकार जैसे सुयोग्य अध्यापक, श्री गुरुदत्त सिद्धान्तालंकार और पण्डित केशवदेव सिद्धान्तालंकार सदृश वैदिक धर्म के प्रचारक, प्रोफेसर हरिदत्त वेदालंकार सदृश सुलेखक एवं इतिहास के गम्भीर विद्वान्, पण्डित शिवकुमार विद्यालंकार सदृश पत्रकार तथा श्री मनुदेव विद्यालंकार सदृश व्यवसायी आदि कितने ही ऐसे सफल स्नातक हैं, जिन्होंने विद्यालय विभाग की शिक्षा मुलतान गुरुकुल में प्राप्त की थी। अपने इन तथा कितने ही अन्य विद्यार्थियों पर यह संस्था गौरव व गर्व अनुभव कर सकती है।

भारत के एक ऐसे प्रदेश में, जहाँ के बहुसंख्यक निवासी इस्लाम के अनुयायी हैं,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रायः अभाव था और जहाँ हिन्दी व संस्कृत का प्रचार नाममात्र को ही था, गुरुकुल मुलतान के रूप में एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना हुई थी, जिस द्वारा संस्कृत भाषा, वैदिक साहित्य, दर्शनशास्त्र और व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित उत्पन्न हुए, और साथ ही इतिहास, राजनीतिशास्त्र, पाश्चात्य दर्शन के गम्भीर विद्वान् भी और हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ सुलेखक भी।

(२) गुरुकुल कुरुक्षेत्र

गुरुकुल काँगड़ी की शिक्षा प्रणाली और वहाँ के धार्मिक व सदाचारमय जीवन से आकृष्ट होकर थानेसर (हरयाणा) के सुप्रसिद्ध रईस लाला ज्योति प्रसाद के मन में यह शुभ संकल्प उत्पन्न हुआ, कि वह भी गुरुकुल काँगड़ी की एक शाखा अपने प्रदेश में स्थापित कराएँ। उन्होंने अपना विचार महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के सम्मुख रखा, जो उस समय गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता थे। महात्माजी ने लाला ज्योति प्रसाद के संकल्प का हृदय से स्वागत किया, जिसके परिणामस्वरूप १३ एप्रिल, सन् १६१२ के दिन गुरुकुल कुरुक्षेत्र की स्थापना हुई। गुरुकुल के लिए लाला ज्योति प्रसाद ने न केवल कन्वला कलाँ गाँव की १०४८ वीघा जमीन ही दान रूप में प्रदान कर दी, अपितु कार्य प्रारम्भ करने के लिए दस हजार रुपये भी दिये। गुरुकुल काँगड़ी के इतिहास में जो स्थान मुंशी अमनसिंह का है, गुरुकुल कुरुक्षेत्र में वही लाला ज्योति प्रसाद का है। उनके सात्विक दान के कारण ही कुरुक्षेत्र गुरुकुल की स्थापना सम्भव हुई। संवत् १६६६ की वैशाखी के पुण्य पर्व (१३ एप्रिल, सन् १६१२) के दिन गुरुकुल कुरुक्षेत्र की आधारशिला रखते हुए महात्मा मुंशीराम ने ये शब्द कहे थे—"जिस धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि में आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व भारत के विनाश का वीज वोया गया था, उसी भूमि में आज यह भारत की उन्नति का वीज वोया जा रहा है। मंगलमय भगवान् करे कि इस ज्ञानतरु से ऐसे सुगन्धित फूल उत्पन्न हों जो भारत भूमि को फिर से अपनी पुरानी उन्नतावस्था में लाने में सहायक हों।"

लाला ज्योति प्रसाद गुरुकुल कुरुक्षेत्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इस कार्य में लाला भगीरथमल उनके परम सहायक थे। इन आर्य सज्जनों के प्रयत्न से कुरुक्षेत्र में स्थापित गुरुकुल रूपी पौदे की जड़ें भली-भाँति जम गईं। पर अपने लगाये हुए पौदे को फलता-फूलता देखने के लिए लाला ज्योति प्रसाद चिरकाल तक जीवित नहीं रहे। सन् १६१४ में उनकी मृत्यु हो गई, और कुछ समय पश्चात् लाला भगीरथमल भी इस असार संसार से विदा हो गए। गुरुकुल के इन आदि-व्यवस्थापकों के दिवंगत हो जाने पर लाला नौबतराय ने मुख्याधिष्ठाता के रूप में इस संस्था का कार्यभार सँभाला, और पण्डित विष्णुमित्र को आचार्य के पद पर नियुक्त किया गया। इन दोनों आर्य सज्जनों ने गुरुकुल की उन्नति एवं व्यवस्था पर वहुत ध्यान दिया, जिसके परिणामस्वरूप यह संस्था निरन्तर उन्नति करती गई। धीरे-धीरे वहाँ आठ कक्षाएँ हो गईं, जिनमें वही पढ़ाई होती थी जो गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित की जाती थी। सन् १६२३ में गुरुकुल कुरुक्षेत्र से ६ विद्यार्थी आठवीं श्रेणी की वार्षिक परीक्षा उत्तीर्ण कर नवीं कक्षा की पढ़ाई के लिए गुरुकुल काँगड़ी गये और तव से प्रति वर्ष आठवीं कक्षा को उत्तीर्ण करने के पश्चात् कुरुक्षेत्र के विद्यार्थी काँगड़ी जाने लगे। सन् १६४१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक यही क्रम चलता रहा। गुरुकुल कुरुक्षेत्र में केवल आठ कक्षाएँ थीं, जिनमें गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि का अनुसरण किया जाता था, और ब्रह्मचारियों के रहन-सहन, खान-पान, दिनचर्या आदि के सम्बन्ध में वही व्यवस्थाएँ थीं जो गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित थीं। गुरुकुल काँगड़ी के समान गुरुकुल कुरुक्षेत्र भी आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के अधीन था, और उसकी सब सम्पत्ति इसी सभा के नाम रजिस्टर्ड थी। पर प्रबन्ध और सुव्यवस्था को दृष्टि में रखकर सन् १९१६ में इसके लिए एक पृथक् स्थानीय कमेटी का भी निर्माण कर दिया गया था।

सन् १९४२ में गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक पण्डित प्रियव्रत विद्यालंकार गुरुकुल कुरुक्षेत्र के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य के पदों पर नियुक्त हुए। चिर काल (चौथाई सदी के लगभग) तक इन पदों पर रहते हुए पण्डित प्रियव्रत ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र को बहुत उन्नत किया। उसकी शिक्षा को आठवीं कक्षा से बढ़ाकर दसवीं तक कर दिया गया, और दस वर्ष तक वहाँ शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी की अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर वहाँ के महाविद्यालय विभाग में प्रवेश पाने लगे। जबकि गुरुकुल मुलतान में नवीं दसवीं कक्षाओं की पढ़ाई को अत्यन्त व्ययसाध्य समझ कर बन्द कर दिया गया था, पण्डित प्रियव्रत के पुरुषार्थ से कुरुक्षेत्र गुरुकुल में उनका प्रारम्भ किया गया और इस संस्था ने काँगड़ी गुरुकुल की प्रधान शाखा की स्थिति प्राप्त कर ली। पण्डित प्रियव्रत के प्रयत्न से गुरुकुल कुरुक्षेत्र के बाह्य कलेवर में भी बहुत वृद्धि हुई। बहुत-सी नयी इमारतें बनीं, पुष्पवाटिका, बाग तथा खेती पर समुचित ध्यान दिया गया। प्रचुर मात्रा में जल की प्राप्ति के लिए ट्यूब वैल लगवाया गया, और ब्रह्मचारियों के छात्रावास, भोजन भण्डार व स्नानागार आदि को सुव्यवस्थित एवं आकर्षक रूप प्रदान किया गया। गुरुकुल के लिए प्रभूत मात्रा में धन एकत्र करने में पण्डित प्रियव्रत ने विशेष तत्परता प्रदर्शित की, और उनके पुरुषार्थ के कारण इस शिक्षण-संस्था ने अत्यन्त व्यवस्थित रूप प्राप्त कर लिया। प्रियव्रतजी के पश्चात् श्री विश्वनाथ विद्यालंकार, श्री राजेन्द्रपाल और श्री सत्यव्रत आदि अनेक आर्य विद्वानों ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र के कार्यभार को सँभाला, पर किसी एक महानुभाव के पर्याप्त समय तक पदाधिकारी न रहने के कारण वहाँ के कार्य में स्थायित्व नहीं आ सका।

सन् १९७६ में जब आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का त्रिविभाजन हुआ, और हरयाणा के लिए पृथक् आर्य प्रतिनिधि सभा का संगठन कर लिया गया, तो गुरुकुल कुरुक्षेत्र हरयाणा की सभा के अधीन हो गया। इस समय यह गुरुकुल आर्य प्रतिनिधि सभा, हरयाणा के तत्त्वावधान में उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। उसके आचार्य श्री हरिदत्त शास्त्री हैं, और श्री साधुराम गुप्त ने मुख्याधिष्ठाता के रूप में उसका कार्यभार सँभाला हुआ है। विद्यार्थियों की संख्या वहाँ तीन सौ के लगभग है, और अध्यापक व अन्य कर्मचारी ५० हैं। इस समय भी यह गुरुकुल, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है, और इसी विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठविधि का वहाँ अनुसरण किया जाता है।

कुरुक्षेत्र गुरुकुल में आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी बाद में गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट हुए, उनमें पण्डित सत्यदेव वेदालंकार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह एक अत्यन्त सफल व समृद्ध उद्योगपति हैं, और लक्ष्मी की उन पर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष कृपा है। गुरुकुल कुरुक्षेत्र से उन्हें अत्यधिक लगाव है, और उसकी चौमुखी उन्नति के लिए वह सब प्रकार से सहायता करने को उद्यत हैं। उनकी इच्छा है, कि इस संस्था के छात्रावास में एक हजार विद्यार्थियों के निवास की व्यवस्था हो, और छात्रावास का स्तर इतना ऊँचा हो कि उसमें निवास करने वाले विद्यार्थियों को वे सब सुविधाएँ उपलब्ध हों जो गुरुकुलीय शिक्षा के लिए आवश्यक हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने एक लाख से भी अधिक रुपये गुरुकुल कुरुक्षेत्र को प्रदान करने का निश्चय किया है। वह चाहते हैं कि शुरू में पाँच सौ विद्यार्थियों के निवास की समुचित व्यवस्था हो जाए, और धीरे-धीरे यह संख्या बढ़ कर एक हजार तक पहुँच जाए। इसके लिए वह आवश्यक धनराशि प्रदान करने को उद्यत हैं। यह आशा की जानी चाहिये कि गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अधिकारी व कार्यकर्ता पण्डित सत्यदेव के गुरुकुल-प्रेम से पूरा-पूरा लाभ उठाएँगे और अपनी संस्था को विकसित करने के इस सुवर्णीय अवसर को हाथ से नहीं जाने देंगे। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के पास एक हजार बीघे से भी अधिक भूमि है। खेती और बागवानी द्वारा वहाँ इतना अन्न, सब्जी और फल पैदा किये जा सकते हैं, जो विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त हों। गुरुकुल की अपनी गौशाला भी है। हरयाणा की गौवें दूध के लिए भारत भर में प्रसिद्ध हैं। दूध, घी की आवश्यकता भी गुरुकुल द्वारा स्वयं ही पूरी की जा सकती है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय गुरुकुल के साथ लगा हुआ है, जिसके कारण पुस्तकालय आदि की भी वहाँ सब सुविधाएँ हैं। धार्मिक दृष्टि से भी कुरुक्षेत्र का बहुत महत्त्व है। वह एक पवित्र तीर्थ है, और धर्म-प्राण हिन्दुओं के लिए अपना विशेष आकर्षण रखता है। वस्तुतः, गुरुकुल कुरुक्षेत्र के पास वे सब साधन व परिस्थितियाँ विद्यमान हैं, जो किसी शिक्षण-संस्था के उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं। पण्डित सत्यदेव वेदालंकार के रूप में एक ऐसा दानी भी उसे उपलब्ध है, जो उसकी उन्नति के लिए प्रभूत धनराशि देने के लिए उद्यत है। इस दशा में गुरुकुल कुरुक्षेत्र के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में सन्देह कर सकना सम्भव ही नहीं है।

वर्तमान समय में इस गुरुकुल का वार्षिक व्यय छह लाख से ऊपर है। भोजन शुल्क आदि से जो धन गुरुकुल को प्राप्त होता है, उसके अतिरिक्त खेती से भी इस संस्था को दो लाख रुपये के लगभग आमदनी होती है।

(३) गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

शुरू में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल काँगड़ी की अन्यतम शाखा न होकर उसका एक अंग या विभाग था। पर बाद में उसने शाखा गुरुकुल का रूप प्राप्त कर लिया, और उसमें पृथक् व स्वतन्त्र रूप से शिक्षा का प्रारम्भ किया गया, यद्यपि उसमें काँगड़ी गुरुकुल द्वारा निर्धारित पाठविधि का अनुसरण किया जाता रहा। एप्रिल, सन् १९७४ से इस गुरुकुल की स्थिति व स्वरूप में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुए, और अब इसने एक स्वतन्त्र शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया है। यद्यपि वर्तमान समय में इसे गुरुकुल काँगड़ी की शाखा व भाग नहीं कहा जा सकता, पर इसमें गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था की गई है, जिसके कारण इसका काँगड़ी विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्ध बना हुआ है।

महात्मा मुंशीराम चाहते थे, कि अधिक से अधिक विद्यार्थी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का लाभ उठा सकें। इसीलिए उन्होंने भारत की राजधानी के समीप भी एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल स्थापित करने का विचार किया। उनके इस विचार को क्रियान्वित होने में कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि अनेक दानवीर आर्य सज्जन इस कार्य में उनकी सहायता करने के लिए उद्यत थे। दिल्ली निवासी सेठ रघुमल ने दिल्ली के समीप गुरुकुल खोलने क लिए एक लाख रुपये महात्माजी को अर्पित कर दिये। इसके अतिरिक्त डिप्टी निहालचन्द्र ने पच्चीस हजार रुपये गुरुकुल के लिए नकद प्रदान किये और वारह हजार रुपयों की लागत से तुगलकावाद स्टेशन के समीप एक धर्मशाला भी गुरुकुल के लिए वनवा दी। दिल्ली के क्षेत्र में जो स्थान गुरुकुल के लिए चुना गया था, वह दिल्ली शहर के दक्षिण में अरावली पर्वत पर है। यहाँ ग्राम सराय ख्वाजा की १०७५ वीघे जमीन गुरुकुल के लिए खरीद ली गई। इसका अधिकांश भाग अरावली पहाड़ी पर था, पर ३०० वीघे भूमि ऐसी भी थी जो समतल होने के कारण खेती के योग्य थी। १०७५ वीघे की यह भूमि दिल्ली-मथुरा लाइन पर तुगलकावाद स्टेशन से दो मील की दूरी पर है। वहाँ जाने वाले लोगों की सुविधा को दृष्टि में रखकर ही डिप्टी निहालचन्द ने तुगलकावाद स्टेशन के समीप एक धर्मशाला का निर्माण कराया था।

गुरुकुल के भवनों के निर्माण के लिए अरावली पर्वत के एक ऐसे ऊँचे-नीचे भूमिभाग को चुना गया, जो पर्याप्त ऊँचाई पर है। इसकी ऊँची-नीची शिलाओं को काट-काटकर एक समतल मैदान तैयार कर लिया गया, और उसपर गुरुकुल के भवनों का निर्माण किया गया। भवनों के लिए लाला श्रीराम, लाला झम्मन लाल तथा सेठ जुगल-किशोर विड़ला आदि ने भी उदारतापूर्वक दान दिया, और कुछ ही समय में गुरुकुल के लिए उपयुक्त इमारतें वन कर तैयार हो गईं। २४ दिसम्वर, १९१६ के दिन गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना हुई, और वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल काँगड़ी विद्यालय की पहली चार श्रेणियों के विद्यार्थियों को भेज दिया गया। इन श्रेणियों में विद्यार्थियों की संख्या ११० थी, और इन्हीं से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का प्रारम्भ हुआ था। गुरुकुल काँगड़ी के छोटे ब्रह्मचारियों को इन्द्रप्रस्थ भेजने का एक कारण यह था, कि काँगड़ी में स्थान की कमी थी, और यह आशा की जाती थी कि इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल की सुविस्तृत भूमि में वे अधिक सुविधापूर्वक रह सकेंगे। पर यह आशा पूरी नहीं हुई, और छोटे वालकों को वहाँ अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल जिस भूमि पर स्थित था, उसे चट्टानों को काट-काटकर समतल किया गया था। उसके चारों ओर अव भी चट्टानें थीं, जो गरमी में तप जाती थीं। हरियाली की वहाँ वहुत कमी थी। जल की भी वहाँ समुचित सुविधा नहीं थी। पहाड़ी से नीचे एक वावड़ी थी, जिससे वैलगाड़ियों द्वारा जल ढोया जाता था। इन कठिनाइयों को दृष्टि में रखकर सन् १९२१ में पहली चार श्रेणियों के ब्रह्मचारियों को काँगड़ी वापस भेज दिया गया, और पाँचवीं से आठवीं तक की चार श्रेणियों को वहाँ रखने का निश्चय किया गया। सन् १९२४ में गुरुकुल काँगड़ी की वहुत-सी इमारतें गंगा में वाढ़ आ जाने के कारण नष्ट हो गई थीं, और ब्रह्मचारियों के निवास एवं शिक्षा के लिए स्थान की समस्या विकट रूप में सामने आ गई थी। इस दशा में प्रारम्भ की चार कक्षाओं के विद्यार्थियों को हरिद्वार और कनखल के वीच में स्थित मायापुर वाटिका में ले जाया गया, और नवीं तथा दसवीं श्रेणियों के विद्यार्थियों को इन्द्रप्रस्थ में। इस प्रकार सन् १९२४ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय विभाग की छह कक्षाओं का स्थानान्तरण हो गया। श्री गोपालजी इस समय गुरुकुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थ के मुख्याध्यापक तथा मुख्याधिष्ठाता थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर उनकी प्रगाढ़ आस्था थी, और अनेक वर्षों तक गुरुकुल मुलतान के मुख्याध्यापक रह चुकने के कारण उन्हें गुरुकुलों के संचालन का अच्छा अनुभव भी था। उनके निर्देशन में इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल की बहुत उन्नति हुई। सन् १९३६ तक गोपालजी इस गुरुकुल के कर्ताधर्ता रहे, और उनके अवकाश ग्रहण कर लेने पर पण्डित धर्मवीर विद्यालंकार उनके उत्तराधिकारी बने। उनके पश्चात् पण्डित हरिशरण विद्यालंकार तथा पण्डित धर्मदेव वेदवाचस्पति ने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का संचालन किया।

पर इस समय तक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थिति न स्वतन्त्र गुरुकुल की थी, और न ही शाखा गुरुकुल की। वह गुरुकुल काँगड़ी का एक अंग या भाग मात्र था। शुरु में उसमें गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय विभाग की प्रथम चार श्रेणियाँ स्थानान्तरित की गई थीं, फिर मध्य की चार (पाँचवीं से आठवीं तक) श्रेणियाँ और बाद में छह (पाँचवीं से दसवीं तक की) श्रेणियाँ।

सन् १९३९ में जब बीसवीं सदी का द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, तो भारत के स्वाधीनता संघर्ष में तेजी आने लगी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, और क्रान्तिकारी समितियों ने विदेशी शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष भी प्रारम्भ कर दिया। इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल की स्थिति दिल्ली के बहुत समीप थी। अतः देश में चल रहे राजनीतिक आन्दोलनों से पृथक् रह सकना उसके लिए सम्भव नहीं था। सरकार के प्रकोप से बचने के लिए क्रान्तिकारी युवक अरावली पर्वतमाला में स्थित इस शिक्षणालय में सुगमता से आश्रय ग्रहण कर सकते थे। यही कारण है, कि स्वाधीनता संघर्ष के अनेक सेनानियों ने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को अपनी योजनाओं के लिए प्रयुक्त किया, और यह संस्था सरकार की कोप दृष्टि से बची नहीं रह सकी। अगस्त, १९४२ में जब गांधीजी ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा लगाया और सारा देश ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ, तो गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के अनेक अध्यापक, कर्मचारी और विद्यार्थी भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के लिए मैदान में उतर आये। सन् १९४७ में भारत विभाजन के कारण जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, और दिल्ली तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश में जो अशान्ति तथा अव्यवस्था की दशा प्रादुर्भूत हो गई, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पर उसका अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा, और उसे बन्द कर देने का निर्णय करने के लिए विवश होना पड़ा। सन् १९३० में गुरुकुल काँगड़ी कनखल के समीप अपनी नयी भूमि पर स्थानान्तरित हो चुका था। कुछ ही वर्षों में नयी भूमि पर इतनी इमारतें बन गयी थीं, कि विद्यालय विभाग की सब श्रेणियों को भी वहाँ रखा जा सकता था। इस दशा में गुरुकुल काँगड़ी की जो छह श्रेणियाँ इन्द्रप्रस्थ में थीं, उन्हें भी नयी भूमि में ले आया गया, और इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल में ताले पड़ गये।

दिल्ली के समीप अरावली पर्वतमाला की सुरम्य स्थली पर स्थित गुरुकुल की इस दुर्दशा के प्रति अनेक आर्य जनों का ध्यान आकृष्ट हुआ, और उन्होंने इसके पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। दिल्ली के आर्यसमाजों में नया बाँस आर्यसमाज बहुत सुव्यवस्थित दशा में है। उसका संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में रहा है, जिन्हें वैदिक धर्म के प्रति आस्था है और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को क्रियान्वित करने के लिए जिनमें उत्साह भी है। नया बाँस आर्यसमाज के कतिपय उत्साही कार्यकर्ताओं ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को फिर से प्रारम्भ करने का कार्य अपने हाथों में लिया, और पण्डित मनोहर विद्यालंकार को उसका मुख्याधिष्ठाता नियत किया। इस प्रसंग में यह ध्यान में रखना चाहिये, कि भारत विभाजन (१९४७) के कारण आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की स्थिति डावाँडोल हो गई थी। सभा का प्रधान कार्यालय लाहौर में था, जिसे पाकिस्तान के अन्तर्गत कर दिया गया था। सभा के सब रिकार्ड आदि लाहौर में ही रह गये थे। यह स्वाभाविक था, कि भारत में सभा का नया कार्यालय खोलने, उसके संगठन को सुव्यवस्थित करने और अपनी अधीनता में विद्यमान संस्थाओं को सँभालने में कुछ समय लग जाए। यही कारण है, जो आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव सन् १९४७-४८ और उसके बाद भी कुछ समय तक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ओर ध्यान नहीं दे सकी। इस दशा में नया बाँस आर्यसमाज ने इस आर्य शिक्षण-संस्था को सँभालकर अत्यन्त उपयोगी कार्य किया, और पण्डित मनोहर विद्यालंकार सदृश कर्मठ व आस्थावान् व्यक्ति को उसका मुख्याधिष्ठाता नियुक्त कर गुरुकुल को पुनः सुव्यवस्थित रूप से चलाने के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। इस प्रकार सन् १९४७ के बाद जब गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पुनः प्रारम्भ हुआ, तो उसकी स्थिति गुरुकुल काँगड़ी के एक भाग व अंग की न होकर उसकी शाखा की थी। उसमें वही पाठविधि रखी गई थी, जो गुरुकुल काँगड़ी द्वारा विद्यालय विभाग के लिए निर्धारित थी, और ब्रह्मचारियों के रहन-सहन, खान-पान आदि के लिए भी गुरुकुल की पद्धति का अनुसरण किया गया था। सन् १९४८ में पण्डित पदम वेदालंकार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के आचार्य नियुक्त हुए, और सन् १९५५ में पण्डित चन्द्रमणि विद्यालंकार। इन दोनों आर्य विद्वानों ने पूरी लगन तथा परिश्रम से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का संचालन किया, जिसके परिणामस्वरूप यह संस्था पुनः व्यवस्थित रूप में आ गई। पर स्वराज्य के पश्चात् भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रति जनता में विशेष आस्था नहीं रह गई थी। देश के नये वातावरण में यह सुगम नहीं था, कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का संचालन उसी पद्धति से किया जा सके, जिसका सूत्रपात महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा किया गया था। इसीलिए अब इस संस्था में ऐसे विद्यार्थियों को भी बड़ी संख्या में प्रविष्ट किया जाने लगा, जो गुरुकुल के छात्रावास में नहीं रहते थे, अपितु समीप के ग्रामों से वहाँ पढ़ने के लिए आ जाते थे। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए, कि इस समय गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का स्वरूप एक सामान्य विद्यालय के समान हो गया था। उसमें छात्रावास की भी सत्ता थी, और बहुत-से विद्यार्थी वहाँ निवास करते हुए उसी प्रकार से ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन विताते थे, जैसे कि गुरुकुल काँगड़ी के छात्रावास में। इस काल में गुरुकुल का संचालन जिन महानुभावों के हाथों में रहा, वे सब गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक थे। गुरुकुल प्रणाली की मान्यताओं एवं आदर्शों को वे भली-भाँति जानते थे। उनका निरन्तर यही प्रयत्न रहा, कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का संचालन एक आवासीय शिक्षणालय के रूप में किया जाए और वह एक आदर्श गुरुकुल बन सके। उन्हें अपने प्रयत्न में कुछ सफलता भी हुई। पर वे इस संस्था के प्रति जनता में समुचित उत्साह उत्पन्न कर सकने में असमर्थ रहे। कुछ आर्य नेताओं का यह विचार था, कि दिल्ली के समीप स्थित इन्द्रप्रस्थ का स्थान एक आर्य पब्लिक स्कूल के लिए अधिक उपयुक्त है, और उसमें एक नये ढंग के आधुनिक शिक्षणालय की स्थापना की जानी चाहिये। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की दशा धीरे-धीरे सुव्यवस्थित हो गई थी, और जालन्धर में उसका प्रधान कार्यालय स्थापित कर दिया गया था। उसके चुनाव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नियमपूर्वक होने लग गये थे। भारत के विभाजन के कारण पंजाब का बड़ा भाग पाकिस्तान में चला गया था। इस दशा में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब में हरयाणा के प्रतिनिधियों का बहुमत हो जाना स्वाभाविक था। पंजाब और हरयाणा के प्रतिनिधियों में प्रतिनिधि सभा का कार्यभार सँभालने के सम्बन्ध में जो संघर्ष इस काल में हुआ, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पर भी उसका प्रभाव पड़ा, और इस संस्था की संचालननीति के सम्बन्ध में पंजाब प्रतिनिधि सभा के अधिकारी एकमत नहीं हो सके। परिणाम यह हुआ, कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को चला सकना सम्भव नहीं रहा, और उसे बन्द कर देना पड़ा। सन् १९६३ से १९७४ तक यह गुरुकुल बन्द पड़ा रहा। दिल्ली नगरी के असाधारण विकास के कारण जो बहुत-सी इमारतें वहाँ बनने लगी थीं, उनके लिए आवश्यक रोड़ी और बजरी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की भूमि से प्राप्त की जा सकती थी। सभा के अधिकारियों ने इस भूमि के कुछ भाग को रोड़ी बजरी के ठेकेदारों को पट्टे पर दे दिया, जिससे सभा को अच्छी आमदनी होने लगी, पर उसका उपयोग गुरुकुल के लिए नहीं किया गया। सन् १९७३ में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान स्वामी इन्द्रवेश निर्वाचित हुए। उन्होंने इस संस्था के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया, और इसमें वह सफल भी हुए। पर आन्तरिक झगड़ों के कारण सभा के सुव्यवस्थित रूप से कार्य कर सकने में फिर बाधाएँ उपस्थित होने लगीं, और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भी इन झगड़ों के प्रभाव से बचा नहीं रहा।

वर्तमान समय में स्वामी शक्तिवेश इस संस्था का संचालन कर रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब या हरयाणा का उस पर अधिकार नहीं है। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को व्यवस्थित रूप से पुनः स्थापित करने और उसे एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्था के रूप में विकसित करने में स्वामी शक्तिवेश को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है, और अब वह निरन्तर आर्य जनता के आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है। इस समय गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या ३०० के लगभग हो गई है, जिनमें से १३३ छात्रावास में निवास कर रहे हैं। शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क है। पिछड़े हुए वर्ग के बालकों तथा वैदिक धर्म के प्रचारकों की सन्तान के लिए भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था भी गुरुकुल द्वारा निःशुल्क रूप से की जाती है। आचार्य के पद पर श्री पूर्णानन्द नियत हैं, और श्री धर्मवीर मुख्याधिष्ठाता हैं। १६ शिक्षक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। अन्य कर्मचारियों की संख्या २९ है। गुरुकुल के प्रबन्ध व संचालन के लिए 'प्रबन्ध समिति' रजिस्टर्ड है। स्वामी शक्तिवेश इस संस्था के प्राण हैं, और उन के प्रयत्न से न केवल इसने सुव्यवस्थित रूप ही प्राप्त कर लिया है, अपितु यह उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर भी हो रही है।

(४) गुरुकुल मटिण्डू

हरयाणा प्रदेश में जिला रोहतक के मटिण्डू नामक ग्राम के समीप यह गुरुकुल स्थित है। इसकी स्थापना चौधरी पीरूसिंह आदि उत्साही आर्य सज्जनों के पुरुषार्थ से हुई थी, और सन् १९१४ में महात्मा मुंशीराम ने इसकी आधारशिला रखी थी। गुरुकुल की भूमि यमुना की नहर की एक शाखा के किनारे पर है, जो अत्यन्त रमणीक तथा गुरुकुल के लिए उपयुक्त है। वहाँ गुरुकुल की एक वाटिका और गौशाला भी है, जिनसे ब्रह्मचारियों के लिए शाक-सब्जी, फल, घी तथा दूध की आवश्यकता पर्याप्त अंश में पूरी हो जाती है। इस गुरुकुल की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है, कि इसमें न केवल शिक्षा के लिए कोई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुल्क नहीं लिया जाता, अपितु भरण-पोषण का व्यय भी गुरुकुल द्वारा ही किया जाता है। गुरुकुल का प्रवन्ध एक कमेटी के अधीन है। जो व्यक्ति छह रुपये वार्षिक या एक सौ रुपये एक साथ कमेटी को प्रदान करें, वे उसके सदस्य हो सकते हैं। हरयाणा के सम्पन्न जमींदार इस संस्था के प्रति विशेष अनुराग रखते हैं। ब्रह्मचारियों की अन्न आदि की आवश्यकता उन्हीं द्वारा पूरी की जाती है। वैशाख मास में जव रवी की फसल कट जाती है, तो गुरुकुल के उपदेशक जमींदारों के पास अनाज एकत्र करने के लिए जाते हैं और ६०० मन के लगभग गेहूँ दान में प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार गौशाला के लिए भूसा भी जमींदारों से प्राप्त कर लिया जाता है। गृहस्थों के घरों में विवाह आदि संस्कारों के अवसरों पर ढाई तीन हजार रुपये नकद भी गुरुकुल को प्राप्त हो जाते हैं। वार्षिकोत्सव के समय पर भी कुछ हजार रुपये एकत्र कर लिये जाते हैं। यही सव कारण हैं, जिनसे गुरुकुल मटिण्डू में भोजन के लिए भी ब्रह्मचारियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता रहा, और यह संस्था सच्चे अर्थों में निःशुल्क है। मटिण्डू गुरुकुल में आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की व्यवस्था थी, और गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि का वहाँ अनुसरण किया जाता था। सन् १९५३ तक वहाँ ४०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे और उस वर्ष में वहाँ विद्यार्थियों की कुल संख्या ९० थी।

गुरुकुल मटिण्डू के प्रथम आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता श्री पूर्णदेव थे। उन्होंने दो वर्ष तक इस संस्था का योग्यतापूर्वक संचालन किया। सन् १९१७ में उनके स्थान पर पण्डित निरंजनदेव विद्यालंकार की नियुक्ति हुई। वह सन् १९६२ तक इन पदों पर रहे, और ४५ वर्ष तक गुरुकुल की लगन व योग्यता के साथ सेवा कर उसकी उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अनुभव किया, कि हरयाणा में संस्कृत की उच्च शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है। इसीलिए गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्यक्रम से अलग पंजाव यूनिवर्सिटी की संस्कृत परीक्षाओं की पढ़ाई का भी उन्होंने गुरुकुल मटिण्डू में प्रवन्ध किया। वहुत-से विद्यार्थियों ने इससे लाभ उठाया, और गुरुकुल में संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे शास्त्री सदृश उपाधियाँ प्राप्त करने में समर्थ हुए। मटिण्डू के इन विद्यार्थियों में पण्डित जगदेव सिंह सिद्धान्ती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सिद्धान्तीजी न केवल वेदशास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे, अपितु हरयाणा के लोकप्रिय नेता भी थे। वह पाँच वर्ष तक लोकसभा के सदस्य भी रहे थे, और आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव तथा गुरुकुल काँगड़ी सदृश शिक्षण-संस्थाओं के संचालन में भी उनका प्रमुख हाथ रहा था। सिद्धान्तीजी गुरुकुल मटिण्डू में दस साल रहे थे, और यहीं से उन्होंने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। मटिण्डू में आठ साल तक गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी वाद में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक वने, उनमें पण्डित समरसिंह वेदालंकार तथा पण्डित भीमसेन वेदालंकार के नाम उल्लेखनीय हैं। आर्यसमाज के अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्री समरसिंह पंजाव विधान सभा के सदस्य रह चुके हैं, और श्री भीमसेन अखिल भारतीय खादी आश्रम के प्रतिष्ठित व उच्च कार्यकर्ताओं में रहे हैं। चिरकाल तक गुरुकुल मटिण्डू में गुरुकुल काँगड़ी की पढ़ाई (आठवीं कक्षा तक) और पंजाव यूनिवर्सिटी की संस्कृत परीक्षाओं की पढ़ाई साथ-साथ चलती रही, पर वाद में गुरुकुल काँगड़ी से उसका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध टूट गया, और वहाँ के विद्यार्थी केवल पंजाब की संस्कृत परीक्षाओं के लिए अध्ययन करते रहे।

सन् १९७० में गुरुकुल मटिण्डू की सभा में स्वामी इन्द्रवेश का प्रभाव बहुत बढ़ गया, और उसका संचालन उन्हीं की देख रेख में होने लगा। अब श्री यशपाल को वहाँ का आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया, और नये प्रबन्ध में यह संस्था उन्नति के पथ पर तेजी के साथ अग्रसर होने लगी। श्री यशपाल को गुरुकुलों का अच्छा अनुभव था। वह गुरुकुल झज्झर और गुरुकुल तातारपुर में काम कर चुके थे। जब श्री यशपाल ने गुरुकुल मटिण्डू का कार्यभार सँभाला, वहाँ विद्यार्थियों की संख्या केवल ३० थी। कुछ समय बाद यह संख्या बढ़कर १७५ तक पहुँच गई, और वहाँ अनेक नये भवनों का भी निर्माण कराया गया। अक्तूबर, १९७० से दिसम्बर, १९७९ तक स्वामी इन्द्रवेश गुरुकुल की सभा के प्रधान रहे। उनके पश्चात् मेजर प्रतापसिंह ने प्रधान पद ग्रहण किया, और वर्तमान समय में भी वही इस पद पर हैं। सन् १९७८ में गुरुकुल काँगड़ी के साथ इस संस्था का सम्बन्ध पुनः स्थापित कर दिया गया, और दसवीं कक्षा तक वहीं के पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई की जाने लगी। साथ ही, संस्कृत परीक्षाओं की पढ़ाई भी वहाँ पृथक् रूप से जारी है, और शास्त्री आदि संस्कृत परीक्षाओं के लिए यह गुरुकुल कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है।

आर्यसमाज के कार्यकलाप में गुरुकुल मटिण्डू के विद्यार्थी, अध्यापक एवं अन्य कर्मचारी सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं। सन् १९३९ के हैदराबाद सत्याग्रह, सन् १९५७ के हिन्दी सत्याग्रह और सन् १९६३-६४ के गौरक्षा आन्दोलन में भाग लेने के लिए इस गुरुकुल से भी जत्थे गये थे, और अनेक गिरफ्तारियाँ भी दी थीं। इसमें सन्देह नहीं, कि कुछ वर्ष की शिथिलता के पश्चात् गुरुकुल मटिण्डू में एक बार फिर नवजीवन तथा उत्साह का संचार हुआ है, और १५० के लगभग ब्रह्मचारी अब वहाँ छात्रावास में रहते हुए अध्ययन में तत्पर हैं। इस गुरुकुल के विद्यार्थी मटिण्डू में दसवीं कक्षा तक अध्ययन कर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की अधिकारी परीक्षा में बैठते हैं, और उसे उत्तीर्ण कर वहाँ के महाविद्यालय विभाग में प्रवेश प्राप्त करते हैं।

(५) गुरुकुल काँगड़ी की भूतपूर्व शाखाएँ

महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के निर्देशन में जब गुरुकुल काँगड़ी उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा था और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की लोकप्रियता में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही थी, अनेक ऐसे गुरुकुल खुले जो पहले गुरुकुल काँगड़ी की शाखा थे और जिनमें काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि तथा आश्रमपद्धति का पूर्ण रूप से अनुसरण किया जाता था। कालान्तर में इनमें से कुछ गुरुकुल तो बन्द हो गये, और कुछ का संचालन पृथक् व स्वतन्त्र रूप से किया जाने लगा, जिसके परिणामस्वरूप उनका गुरुकुल काँगड़ी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। ऐसे अनेक गुरुकुल अब भी विद्यमान हैं, और अपने ढंग से निरन्तर उन्नति कर रहे हैं। आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में इनका अपना महत्त्व है। पर क्योंकि इन गुरुकुलों की स्थापना गुरुकुल काँगड़ी की शाखाओं के रूप में हुई थी, और पर्याप्त समय तक ये उसकी शाखाएँ रहे भी, अतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी के विस्तार का विवरण देते हुए इनका भी संक्षिप्त रूप से उल्लेख उपयोगी होगा।

गुरुकुल रायकोट—यह गुरुकुल लुधियाना (पंजाब) में है। इसकी स्थापना स्वामी गंगागिरि महाराज द्वारा सन् १९१९ में की गई थी, और इसकी आधारशिला स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम इस समय तक संन्यास आश्रम में प्रवेश कर श्रद्धानन्द बन चुके थे) ने रखी थी। इस गुरुकुल के दो विभाग थे, (१) गुरुकुल काँगड़ी का शाखा विभाग, जिसमें काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार पढ़ाई होती थी। पहले इस विभाग में केवल चार कक्षाएँ थीं। चतुर्थ कक्षा को उत्तीर्ण कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी जा कर अपनी पढ़ाई को जारी रख सकते थे। सन् १९२८ में इस विभाग को बढ़ाकर आठवीं श्रेणी तक कर दिया गया, और आठवीं श्रेणी तक की पढ़ाई काँगड़ी गुरुकुल द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार होने लगी। (२) उपदेशक विद्यालय—इस विभाग की अपनी पृथक् पाठविधि होती थी, जिसमें संस्कृत की उच्च शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा तथा अनेक आधुनिक विषयों की पढ़ाई की भी व्यवस्था थी। इस विभाग के विद्यार्थियों को यह अवसर था, कि वे पंजाब, वाराणसी, जयपुर आदि की मध्यमा, विशारद, प्रभाकर, शास्त्री आदि परीक्षाएँ दे सकें, और फिर केवल अंग्रेजी भाषा लेकर मैट्रिक, एफ० ए० आदि परीक्षाओं में भी बैठ सकें। गुरुकुल रायकोट के दोनों विभागों के विद्यार्थियों के लिए निवास, भोजन, दिनचर्या एवं अनुशासन के नियम प्रायः वही थे, जो गुरुकुल काँगड़ी के थे। छह से नौ वर्ष की आयु तक के बालकों को ही वहाँ प्रविष्ट किया जाता था, और उन्हें गुरुकुल के छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए अनुशासित जीवन बिताना होता था। विद्यार्थियों की अन्तर्निहित शक्तियों व क्षमता के विकास के लिए इस संस्था में जहाँ 'वाग्वर्धिनी सभा' और 'विद्याविनोदिनी सभा' की सत्ता थी, वहाँ साथ ही संगीत तथा सैनिक शिक्षा की भी व्यवस्था थी। वाग्वर्धिनी सभा में विद्यार्थी भाषण देना और वाद-विवाद करना सीखते थे, और संगीत तथा सैनिक व्यायाम की शिक्षा देने के लिए वहाँ सुयोग्य प्रशिक्षक नियुक्त थे। गुरुकुल रायकोट की अपनी गौशाला भी थी, और अपनी खेती तथा बाग भी। इनमें ब्रह्मचारियों को पशुपालन तथा खेती-बाड़ी का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने का अवसर भी मिल जाता था।

गुरुकुल झज्झर—वर्तमान समय में गुरुकुल झज्झर एक अत्यन्त उन्नत शिक्षण-संस्था है, जो अपनी उपाधियाँ स्वयं प्रदान करती है, और जिसकी उपाधियों को सरकार तथा विविध यूनिवर्सिटियों से मान्यता प्राप्त है। अब इसका गुरुकुल काँगड़ी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, और इस द्वारा एक ऐसे आर्ष विद्यापीठ का संगठन कर लिया गया है, जिसके साथ अनेक अन्य गुरुकुल भी सम्बद्ध हैं, जो इस द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार शिक्षा प्रदान करते हैं। पर शुरू में गुरुकुल झज्झर भी गुरुकुल काँगड़ी की अन्यतम शाखा था। बाद में उसने किस प्रकार एक स्वतन्त्र शिक्षा केन्द्र के रूप में अपना विकास किया, इस पर इस ग्रन्थ के चौदहवें अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

गुरुकुल झज्झर की स्थापना पण्डित विश्वम्भरनाथ के पुरुषार्थ से हुई थी। वह झज्झर के निवासी थे, और सैनिक सेवा से अवकाश प्राप्त कर कुछ समय गुरुकुल काँगड़ी में महात्मा मुंशीराम के पास रहे थे। उन्होंने अपनी जीवन-भर की कमाई गुरुकुल को दान कर दी थी, और वहाँ निवास करते हुए उन्होंने यह संकल्प किया था कि अपने नगर के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप भी वह एक गुरुकुल खोलेंगे। इसी संकल्प को लेकर वह झज्झर गये, और गुरुकुल खोलने के लिए भूमि व अन्य साधन जुटाने में तत्पर हो गये। झज्झर से दो मील दक्षिण में १३७ बीघा ११ बिस्वा जमीन उन्होंने गुरुकुल के लिए क्रय कर ली, और आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब से वहाँ गुरुकुल खोलने के लिए आवेदन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा के १६ मई, १९१५ के अधिवेशन में जब झज्झर में गुरुकुल खुल जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, तो पण्डित विश्वम्भर नाथ ने वहाँ भवन निर्माण का काम शुरू करा दिया। गुरुकुल की आधारशिला रखने के लिए महात्मा मुंशीराम को आमन्त्रित किया गया, जिन्होंने यह कार्य अत्यधिक समारोह के साथ सम्पन्न किया।

झज्झर गुरुकुल की आधारशिला भी रख दी गई थी, और उसके लिए अनेक भवनों का निर्माण भी हो गया था, पर पण्डित विश्वम्भरनाथ की मृत्यु के कारण इस संस्था को प्रारम्भ में ही ऐसा आघात लगा जिसे सह सकना उसके लिए सम्भव नहीं हुआ। किसी कर्मठ व उत्साही संचालक के अभाव में यह गुरुकुल कुछ वर्षों तक बन्द पड़ा रहा। इस दशा में स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा इस संस्था का उद्धार किया गया, और आठ वर्ष पश्चात् मार्च, १९२४ में गुरुकुल झज्झर का कार्य फिर से प्रारम्भ हुआ। स्वामी ब्रह्मानन्द आर्यसमाज के आस्थावान् कर्मठ उपदेशक तथा वेदों के गम्भीर विद्वान् थे। हरयाणा में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। गुरुकुल प्रणाली की उपयोगिता में उन्हें अगाध विश्वास था, और अपनी सन्तान को भी उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी में पढ़ाया था। स्वामी परमानन्द के सहयोग से उन्होंने गुरुकुल झज्झर का कार्य सँभाल लिया, और गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार वहाँ पढ़ाई शुरू कर दी गई। पहली से छठी श्रेणि तक वहाँ गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि का अनुसरण किया जाने लगा, और उसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के उपदेशक विद्यालय लाहौर द्वारा 'सिद्धान्त भूषण' परीक्षा के लिए निर्धारित पाठविधि का। गुरुकुल में रहते हुए उपदेशक विद्यालय के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर जो विद्यार्थी उपदेशक बनें, वे जनता की सुचारु रूप से सेवा कर सकें, इस दृष्टि से उन्हें आयुर्वेद की भी शिक्षा दी जानी प्रारम्भ की गई। सन् १९४० तक गुरुकुल झज्झर इसी ढंग से चलता रहा। इस काल में स्वामी ब्रह्मानन्द उसके आचार्य रहे, और स्वामी परमानन्द मुख्याधिष्ठाता। गुरुकुल में शिक्षा तो निःशुल्क थी ही, भोजन और भरणपोषण के लिए फीस भी नाम मात्र की ही थी। प्रत्येक ब्रह्मचारी से ५ रुपये वार्षिक नकद लिया जाता था, और साल भर में तीन मन अनाज। पहनने के वस्त्र ब्रह्मचारियों को अपने लाने होते थे। छह वर्ष झज्झर में पढ़कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी की सातवीं कक्षा में प्रवेश पा सकते थे।

गुरुकुल झज्झर जो सन् १९२४ से १९४० तक निर्विघ्न रूप से चलता रहा, उसका प्रधान श्रेय स्वामी परमानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द को ही प्राप्त है। सन् १९४० में स्वामी परमानन्द का देहावसान हो गया। स्वामी ब्रह्मानन्द इस समय तक अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे, और उनके लिए अकेले गुरुकुल को सँभाल सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ, गुरुकुल एक बार फिर बन्द हो गया।

पर झज्झर गुरुकुल का भाग्य बहुत खराब नहीं था। सितम्बर, १९४२ में आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) ने झज्झर गुरुकुल के खाली और उजड़ते हुए भवनों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सँभाल लिया, और वहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के अनुसार गुरुकुल का संचालन करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। तब से अब तक यह संस्था आचार्यजी के संचालन में है, और इसने एक अत्यन्त उन्नत विद्यापीठ का रूप प्राप्त कर लिया है। गुरुकुल काँगड़ी के साथ अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, और उसकी स्थिति सर्वथा स्वतन्त्र है।

गुरुकुल भैंसवाल—हरयाणा में ही एक अन्य गुरुकुल है, जो भैंसवाल नामक गाँव से दो मील की दूरी पर स्थित है। इसीलिए यह भैंसवाल गुरुकुल के नाम से प्रसिद्ध है। इसके संस्थापक हरयाणा के प्रसिद्ध आर्य तपस्वी भक्त फूलसिंह थे। वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए उन्होंने एक गुरुकुल की स्थापना का भी संकल्प किया, ताकि उसमें शिक्षा प्राप्त कर देश के बालक सदाचारी, देश सेवक और धर्म के प्रति निष्ठा रखने वाले बन सकें। फूलसिंहजी की प्रेरणा से हरयाणा के अनेक सज्जन गुरुकुल के लिए अपना तन, मन, धन अर्पित करने को उद्यत हो गये, और १५ मार्च, १९२० के दिन स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने भैंसवाल पधारकर एक नये गुरुकुल को स्थापित किया। इसके लिए भैंसवाल गाँव के समीप २०० बीघे जमीन ले ली गई, और गुरुकुल के प्रबन्ध व संचालन के लिए जिस प्रबन्धकारिणी सभा का संगठन किया गया, उसने अपने पहले अधिवेशन में यह निश्चय किया, कि इस गुरुकुल में—(१) शिक्षा सर्वथा निःशुल्क दी जाएगी, (२) भोजन और वस्त्रों के लिए भी ब्रह्मचारियों से कोई खर्च नहीं लिया जाएगा, (३) बरतनों, पुस्तकों और निवास की व्यवस्था भी गुरुकुल की ओर से निःशुल्क की जाएगी, और (४) चिकित्सा भी सर्वथा मुफ्त होगी। गुरुकुल द्वारा ब्रह्मचारियों के संरक्षकों से कोई भी फीस नहीं ली जाती थी, पर वे स्वेच्छापूर्वक किसी भी रूप में कोई आर्थिक सहायता देना चाहें, तो उसे सहर्ष व सधन्यवाद स्वीकार कर लिया जाता था।

सन् १९२२ की ग्रीष्म ऋतु में गुरुकुल भैंसवाल का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द इस अवसर पर उपस्थित थे, और उनकी अपील पर बीस हजार के लगभग रुपये गुरुकुल के लिए एकत्र हो गये थे। तीस ब्रह्मचारी इस समय गुरुकुल में प्रविष्ट किये गये, और इस संस्था का कार्य सुचारु रूप से प्रारम्भ हो गया। पर गुरुकुल को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए यह आवश्यक था, कि उसका संचालन किसी सुयोग्य आचार्य द्वारा किया जाए। भैंसवाल गुरुकुल की प्रबन्धकारिणी सभा का ध्यान पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार (जो संन्यासआश्रम में प्रवेश के अनन्तर स्वामी व्रतानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए) की ओर गया, और गुरुकुल का आचार्य पद सँभालने के लिए उनसे सानुरोध निवेदन किया गया। युधिष्ठिरजी ने सभा के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया, और जुलाई, १९२३ से उन्हें भैंसवाल गुरुकुल के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता पदों पर नियुक्त कर दिया गया। यद्यपि युधिष्ठिरजी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक थे, पर उन्हें इसकी पाठविधि एवं शिक्षा पद्धति में अनेक दोष दिखायी देते थे। उनका कहना था, कि शिक्षा में केवल विद्याध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ-साथ सदाचरण पर भी समुचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है। ब्रह्मचारियों को सदाचरण की शिक्षा देने के लिए उन्हें विद्याभ्यास के साथ व्रताभ्यास भी कराना चाहिये। जैसे विद्याध्ययन में प्रगति की नियमित रूप से परीक्षाएँ ली जाती हैं, वैसे ही व्रताभ्यास की भी परीक्षा ली जानी चाहिये। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, सत्य और अक्रोध ये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचरण के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनका अभ्यास उतना ही आवश्यक है, जितना कि विविध विद्याओं का। कौन ब्रह्मचारी किस अंश तक इन व्रतों का पालन कर सदाचारमय जीवन विता रहा है, इसकी नियमित रूप से परीक्षा लेकर उसके अंक भी परीक्षा-परिणाम में जोड़े जाने आवश्यक हैं। पण्डित युधिष्ठिर व्रताभ्यास पर बहुत बल देते थे। साथ ही, उनका यह भी कथन था, कि विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि का ही अनुसरण किया जाना चाहिये। गुरुकुल काँगड़ी में इस पाठविधि को नहीं अपनाया गया था। पण्डित युधिष्ठिर के गुरुकुल भैंसवाल का आचार्य पद सँभाल लेने पर वहाँ की प्रबन्धकारिणी सभा ने यह तो स्वीकार कर लिया, कि गुरुकुल में प्रति दो मास पश्चात् व्रताभ्यास की भी परीक्षा ली जाया करे, पर जहाँ तक पाठविधि का सम्बन्ध है, वह वही रहे जो गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित की जाए। कुछ समय तक गुरुकुल भैंसवाल में गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि ही चलती रही, और उसकी स्थिति काँगड़ी की एक शाखा के रूप में रही।

पर पण्डित युधिष्ठिर इससे असन्तुष्ट थे। उनका प्रयत्न था, कि इस गुरुकुल में महर्षि द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि ही चलायी जाए। इसी बीच में पण्डित ईश्वरदत्त विद्यालंकार भिषक् गुरुकुल के मुख्याध्यापक नियुक्त होकर आ गये। वह भी युधिष्ठरजी के मन्तव्य के समर्थक थे, और उन्होंने भी आर्ष पाठविधि को अपनाने की बात पर जोर देना प्रारम्भ कर दिया। इस दशा में प्रबन्धकारिणी सभा को इन दो विद्वानों के मत के सम्मुख सिर झुकाना पड़ा, और जुलाई, १९२४ में सभा द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया कि भविष्य में गुरुकुल भैंसवाल की शिक्षा उस पाठविधि के अनुसार होगी, जिसका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में किया है। अब तक यह गुरुकुल 'शाखा गुरुकुल भैंसवाल' के नाम से प्रसिद्ध था, किन्तु जुलाई, १९२४ से गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया और वह 'गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा, भैंसवाल' के नाम से जाना जाने लगा। गुरुकुल काँगड़ी से पृथक् व स्वतन्त्र होकर इस शिक्षण-संस्था का जिस प्रकार विकास हुआ, उस पर अगले अध्याय में विशद रूप से प्रकाश डाला गया है। स्वतन्त्र विद्यापीठ की स्थिति प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी एक वार फिर इस संस्था का गुरुकुल काँगड़ी के साथ शिक्षा के क्षेत्र में सम्बन्ध स्थापित हुआ, और काँगड़ी की विद्याधिकारी व विद्यालंकार परीक्षाएँ वहाँ दी जाने लगीं। यह सब किस प्रकार हुआ, इस पर भी अगले अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

गुरुकुल सूपा—गुजरात में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली बहुत लोकप्रिय थी। वहाँ के अनेक आर्य परिवारों के बालक गुरुकुल काँगड़ी में शिक्षा प्राप्त करने लिए भेजे गये थे, और उस प्रदेश के धनी-मानी सज्जनों द्वारा गुरुकुल के लिए प्रतिवर्ष धन भी पर्याप्त मात्रा में दिया जाता था। इस दशा में यह स्वाभाविक था, कि वहाँ के लोगों में अपने प्रदेश में ही एक गुरुकुल स्थापित करने का विचार उत्पन्न हो, ताकि गुजराती बालक गुजरात में रहते हुए ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सब लाभों को प्राप्त कर सकें, और उसके लिए उन्हें कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता न रहे। इसी बात को दृष्टि में रखकर एक 'गुजरात गुरुकुल सभा' का संगठन किया गया। एक हजार रुपये प्रदान कर इस सभा की सदस्यता प्राप्त की जा सकती थी। गुरुकुल काँगड़ी के अन्यतम स्नातक पण्डित ईश्वरदत्त विद्यालंकार ने इस योजना को क्रियान्वित करने में अनुपम उत्साह प्रदर्शित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, और उनके तथा अनेक गुजराती आर्य सज्जनों के प्रयत्न से पचास व्यक्ति गुजरात सभा के सदस्य बन गये और इस प्रकार पचास हजार रुपये प्रस्तावित गुरुकुल के लिए एकत्र हो गये। अब सूरत जिले की बारडोली तहसील में पूर्णा नदी के तट पर स्थित सूपा ग्राम के समीप के एक भूमिखण्ड को गुरुकुल के लिए चुन लिया गया, और १८ फरवरी, १९२४ के दिन स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के करकमलों द्वारा गुजरात के गुरुकुल की आधारशिला रखी गई। सूपा ग्राम के समीप स्थित होने के कारण यह शिक्षण-संस्था 'गुरुकुल सूपा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रारम्भ में २५ बालक इसमें प्रविष्ट किये गये। प्रवेश के लिए आवेदनपत्र तो सौ के लगभग आये थे, पर छात्रावास में स्थान की कमी के कारण केवल २५ विद्यार्थियों को ही प्रविष्ट किया जा सका था। गुरुकुल के पास भूमि तो पर्याप्त थी, क्योंकि श्री भक्तिभाई दुर्लभभाई ने इसके लिए २२५ बीघा जमीन दान में दे दी थी। पर अभी उस पर इमारतें बहुत कम बन पायी थीं। गुजरात के आर्य सज्जन इसके लिए प्रयत्नशील थे। गुरुकुल सूपा को स्थापित हुए अभी तीन साल ही बीते थे, कि वहाँ छात्रावास के पाँच कमरों के अतिरिक्त भोजनालय, स्नानगृह, दो कुओं, कार्यालय और परिवारगृहों का भी निर्माण हो गया था, और इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या ६० तक पहुँच गई थी। सूपा गुरुकुल काँगड़ी की शाखा था, और उसमें काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि का ही अनुसरण किया जाता था। उसका रहन-सहन, भोजन, दिनचर्या आदि भी गुरुकुल काँगड़ी के ही सदृश थे। गुजरात के आर्य सज्जनों के प्रयत्न से यह गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता गया, और कुछ ही वर्षों में वहाँ दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई होने लगी। दसवीं कक्षा के वहाँ के विद्यार्थी अधिकारी परीक्षा के लिए गुरुकुल काँगड़ी आने लगे, और इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में ही उच्च शिक्षा के लिए प्रविष्ट होने लगे। शीघ्र ही, वह समय भी आ गया, जबकि सूपा गुरुकुल के विद्यालय विभाग में विद्यार्थियों की संख्या गुरुकुल काँगड़ी विद्यालय से भी अधिक हो गई।

पर गुरुकुल सूपा देर तक गुरुकुल काँगड़ी की शाखा नहीं रह सका। उसने एक स्वतन्त्र शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया, और उसके स्वरूप में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गये।

गुरुकुल सोनगढ़—यह गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में आर्य कुमार महासभा, बड़ौदा द्वारा चलाया जा रहा है। इसकी स्थापना १० मार्च, सन् १९२९ के दिन स्वामी शंकरानन्द द्वारा की गई थी, और शुरू में इसमें १५ ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए थे। गुरुकुल सूपा के समान इस शिक्षण-संस्था में भी पहले गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि का अनुसरण किया जाता था, और ब्रह्मचारियों का रहन-सहन, दिनचर्या, खान-पान आदि सब काँगड़ी की पद्धति के अनुसार थे। जहाँ तक गुरुकुल सोनगढ़ के छात्रावास का सम्बन्ध है, उसमें निवास करने वाले विद्यार्थी वर्तमान समय में भी ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं, पर पढ़ाई अब गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार नहीं होती। यह संस्था अब सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, और सरकार से इसे आर्थिक अनुदान भी प्राप्त होता है। पाठविधि वही है, जो गुजरात के सरकारी शिक्षणालयों में है। सूपा और सोनगढ़ के गुरुकुलों के वर्तमान रूप पर बाद में प्रकाश डाला जाएगा।

गुरुकुल कमालिया—यह गुरुकुल पंजाब में कमालिया शहर से दो किलोमीटर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दूरी पर था, और १३ एप्रिल, सन् १९२७ को इसकी स्थापना हुई थी। इसका प्रबन्ध कमालिया की आर्यसमाज के अधीन था, और इसमें पहली से आठवीं तक की पढ़ाई की व्यवस्था थी। गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि का वहाँ अनुसरण किया जाता था।

गुरुकुल भटिण्डा—पंजाब के भटिण्डा नगर के समीप यह गुरुकुल स्वामी गंगागिरि की प्रेरणा से १२ नवम्बर, सन् १९२६ को स्थापित हुआ था। लाला रामजी-दास ने इसके लिए भूमि प्रदान की थी, और स्थापना के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द भी गुरुकुल भूमि में उपस्थित थे। शुरू में इस संस्था में भी गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार पढ़ाई होती थी, पर समयान्तर में इसका स्वरूप परिवर्तित हो गया, और इसमें वही पढ़ाई शुरू कर दी गई, जो सरकारी स्कूलों में होती थी। पर विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की व्यवस्था गुरुकुल पद्धति के अनुसार जारी रखी गई, और निर्धन बालकों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अवसर इस संस्था द्वारा प्राप्त होता रहा। गुरुकुल भटिण्डा में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की ओर से दयानन्द उपदेशक विद्यालय भी चलता रहा, और एक 'गुरुकुल शिल्प विद्यालय' भी वहाँ कायम किया गया। पर गुरुकुल काँगड़ी की पद्धति वहाँ बहुत थोड़े समय तक ही कायम रही।

(६) गुरुकुल काँगड़ी की वर्तमान शाखाएँ

गुरुकुल काँगड़ी की अनेक शाखाएँ अब बन्द हो चुकी हैं, और अनेक भूतपूर्व शाखा-गुरुकुलों का अब उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। पर वर्तमान समय में भी बारह ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जो गुरुकुल काँगड़ी के साथ सम्बद्ध हैं और जिनमें उसके विद्यालय विभाग की पाठविधि के अनुसार पढ़ाई होती है। कन्या गुरुकुल देहरादून की स्थिति एक शाखा गुरुकुल की नहीं है। वह गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का ही अन्यतम विभाग व अङ्गभूत शिक्षणालय है।

वर्तमान समय में गुरुकुल काँगड़ी से सम्बद्ध गुरुकुलों में से गुरुकुल कुरुक्षेत्र, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, गुरुकुल भैंसवाल और गुरुकुल मटिण्डू का परिचय इसी अध्याय में पहले दिया जा चुका है। श्री दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ गदपुरी श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ झज्झर के साथ भी सम्बद्ध है, अतः उसका विवरण उक्त विद्यापीठ के साथ दिया गया है। शेष आठ शाखा-गुरुकुलों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

गुरुकुल आर्यनगर, हिसार—यह गुरुकुल हरयाणा के हिसार जिले में बालसमन्द ब्रान्च (नहर) के किनारे एक ऊँचे रमणीक स्थान पर स्थित है। इसके लिए भूमि कुरड़ी (आर्यनगर) निवासी लाला केशरदास ने प्रदान की थी, और इसकी स्थापना १३ एप्रिल, १९६४ को निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गई थी—वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा करना, संस्कृत भाषा का प्रचार तथा प्रसार करना, प्राचीन पाठ्य-प्रणाली का पुनरुत्थान करना, वर्णाश्रम की मर्यादाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करना, और वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान करवाना। गुरुकुल के संस्थापक स्वामी देवानन्द हैं। संन्यास ग्रहण करने से पूर्व उनका नाम लक्ष्मणदेव था, और वह एक सम्पन्न कृषक परिवार में उत्पन्न हुए थे। पर बचपन से ही उन्हें विद्या के प्रति अनुराग था। इसीलिए वह ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार में प्रविष्ट हुए और चार वर्ष तक वहाँ संस्कृत भाषा तथा धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया। आर्यसमाज के सम्पर्क में आने पर वैदिक धर्म के प्रति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी अगाध आस्था हो गई, और वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन के लिए उन्होंने अपने क्षेत्र में एक गुरुकुल खोलने का संकल्प किया। उन्हीं के पुरुषार्थ का यह परिणाम हुआ, कि आर्यनगर में एक सुव्यवस्थित गुरुकुल की स्थापना की जा सकी। प्रारम्भ से ही गुरुकुल की स्थापना में स्वामी देवानन्द को पण्डित रामस्वरूप विद्यावाचस्पति का सहयोग प्राप्त रहा है। आचार्य के रूप में इसका संचालन अब तक भी उन्हीं द्वारा किया जा रहा है।

गुरुकुल काँगड़ी द्वारा विद्यालय विभाग के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इस गुरुकुल में पढ़ाई की व्यवस्था है। आठवीं कक्षा तक की परीक्षाएँ संस्था स्वयं लेती है, और नवीं तथा दसवीं (विद्याधिकारी) कक्षाओं की परीक्षा की व्यवस्था गुरुकुल काँगड़ी द्वारा की जाती है। इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट हो सकते हैं। क्योंकि विद्याधिकारी परीक्षा को अनेक राज्य सरकारों द्वारा मैट्रिक्युलेशन के समकक्ष होने की मान्यता प्राप्त है, अतः विद्यार्थी इण्टर कॉलिजों में भी प्रवेश पा सकते हैं। गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्यक्रम के अतिरिक्त इस संस्था में शास्त्री-स्तर तक संस्कृत की पढ़ाई की व्यवस्था है, और विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त कर पंजाब यूनिवर्सिटी की विभिन्न संस्कृत परीक्षाओं में भी बैठते हैं। गुरुकुल में विद्यार्थियों की कुल संख्या ७० है, और उन्हें पढ़ाने के लिए ६ अध्यापक नियुक्त हैं।

गुरुकुल आर्यनगर की आर्थिक स्थिति को सन्तोषजनक कहा जा सकता है। उसकी सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य २५ लाख रुपये के लगभग है। गुरुकुल की आय को स्थायी बनाने के प्रयोजन से स्वामी देवानन्द ने एक न्यास (ट्रस्ट) स्थापित कर दिया है, जिसमें इस समय दस लाख रुपये जमा हैं। इस धन से जो सूद प्राप्त होता है, उसका उपयोग अध्यापकों के वेतन तथा विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति के लिए किया जाता है। इस न्यास के अधीन एक कन्या गुरुकुल भी चल रहा है। गुरुकुल में शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है, पर भोजन के लिए प्रत्येक ब्रह्मचारी से ६० रुपये मासिक लिया जाता है। वस्त्रों और घी की व्यवस्था भी संरक्षकों को करनी होती है। ब्रह्मचारियों की दिनचर्या गुरुकुल आश्रम प्रणाली के अनुरूप हैं। शिक्षा काल में उन्हें घर जाने की अनुमति नहीं दी जाती। वे छात्रावास में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं।

आर्यसमाज के विविध आन्दोलनों में गुरुकुल आर्यनगर के संचालक व विद्यार्थी सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं। श्री स्वामी देवानन्द ने सन् १६३६ के हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लिया था, और सन् १६४२ के 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' आन्दोलन में उन्हें ६ मास के कठोर कारावास की सजा भी हुई थी। सन् १६५७ के हिन्दी आन्दोलन में भी वह सत्याग्रही के रूप में सम्मिलित हुए थे। सन् १६६७ में जब आर्यसमाज द्वारा गौरक्षा के लिए सत्याग्रह किया गया, तब यह गुरुकुल स्थापित हो चुका था। स्वामी देवानन्द और उनके प्रधान सहायक पण्डित रामस्वरूप शास्त्री दोनों ही ने गुरुकुल के विद्यार्थियों के साथ इस सत्याग्रह में भाग लिया, और जेल गये। गुरुकुल की ओर से वैदिक धर्म के प्रचार के लिए समीप के क्षेत्र में उत्सवों तथा यज्ञों का समय-समय पर आयोजन किया जाता है, और शिविर भी लगाये जाते हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय, कण्वाश्रम (गढ़वाल)—हिमालय की उपत्यका में मालिनी नदी के तट पर प्राचीन समय में महर्षि कण्व का आश्रम था, जहाँ राजा दुष्यन्त का आश्रमवासिनी शकुन्तला से प्रणय-मिलन हुआ था, और जहाँ भरत का जन्म हुआ था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ इस स्थान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सन् १९६५ तक यह स्थान सघन जंगल के रूप में था, यद्यपि इसकी प्राचीन गरिमा के कुछ चिह्न वहाँ अवश्य विद्यमान थे। पर वहाँ न कोई वस्ती थी और न जाने-आने की समुचित सुविधाएँ ही थीं। गढ़वाल के विकास के कारण सरकार और जनता का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ, और वहाँ जाना-आना सम्भव हो गया।

कण्वाश्रम की सुरम्य व पुनीत स्थली पर गुरुकुल की स्थापना की जानी चाहिये, यह विचार श्री विश्वपाल के मन में उस समय उत्पन्न हुआ था, जब कि वह गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में विद्याध्ययन कर रहे थे। श्री विश्वपाल असीम बल-विक्रम के धनी हैं, और 'आधुनिक भीम' की मानद उपाधि से सम्मानित हैं। उनका जन्म ५ जून, सन् १९४९ के दिन मुजफ्फरनगर (उत्तरप्रदेश) के सोरम नामक ग्राम में हुआ था। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की, और वहीं से वह स्नातक हुए। कण्वाश्रम सदृश निर्जन स्थान पर एक शिक्षण-संस्था को स्थापित करना सुगम बात नहीं थी। पर सुदृढ़ निश्चय और घोर परिश्रम से क्या कुछ नहीं किया जा सकता। गुरुकुल के लिए पहली समस्या भूमि प्राप्त करने की थी। स्वामी धर्मदेव वानप्रस्थ और श्री मधुर शास्त्री के सतत प्रयत्न से उत्तरप्रदेश के वन विभाग द्वारा गुरुकुल के लिए पाँच एकड़ भूमि प्रदान कर दी गई, जिससे वहाँ गुरुकुल खोल सकने का मार्ग प्रशस्त हो गया। अब प्रश्न भवन निर्माण का था। शुरू में कार्य चलाने के लिए वहाँ एक पर्णशाला बना ली गई, जो प्राचीन भारतीय आश्रमों की परम्परा के अनुरूप थी। इस प्रकार सघन जंगल के बीच फूँस की बनी शाला में गुरुकुल का प्रारम्भ कर दिया गया। निःसन्देह, यह अत्यन्त साहस का कार्य था, पर श्री विश्वपाल सदृश साहसी व वीर के लिए यह असम्भव नहीं था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में काँगड़ी ग्राम के समीपवर्ती जंगल को साफ कर वहाँ फूँस की शालाएँ बनवा कर महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने जैसे गुरुकुल काँगड़ी को स्थापित किया था, ठीक वैसे ही श्री विश्वपाल ने कण्वाश्रम के जंगल में एक नये गुरुकुल की स्थापना की, जो गुरुकुल काँगड़ी की ही अन्यतम शाखा है। गढ़वाल का कोटद्वार नगर कण्वाश्रम से बहुत दूर नहीं है। वहाँ के अनेक सम्भ्रान्त व सम्पन्न व्यक्तियों का ध्यान इस नयी शिक्षण-संस्था की ओर आकृष्ट हुआ, और वे इसकी आर्थिक सहायता करने के लिए उद्यत हो गये। इनमें लाला ब्रह्मदेव का नाम उल्लेखनीय है। श्री ब्रह्मदेव, श्री वेदप्रकाश, श्री अमृतलाल, श्री रामप्रसाद, मास्टर उमरावसिंह तथा माता महेश्वरी देवी आदि ने गुरुकुल की यथाशक्ति सहायता की, और वहाँ अनेक भवन बनकर तैयार हो गये। गुरुकुल कण्वाश्रम की स्थापना २ जुलाई, १९७२ को हुई थी। दस वर्षों के स्वल्प काल में वहाँ बरामदे से युक्त चार बड़े-बड़े कमरे, ऊपर की मंजिल पर दो कमरे और एक साधना-कक्ष पक्के बन चुके हैं। पढ़ाई के लिए दस शालाएँ भी वहाँ विद्यमान हैं। गुरुकुल के छात्रावास में ८५ ब्रह्मचारी निवास कर रहे हैं, और गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि के अनुसार विद्याध्ययन में तत्पर हैं। गुरुकुल काँगड़ी की विद्याधिकारी परीक्षा (दसवीं कक्षा) तक की पढ़ाई की इस गुरुकुल में व्यवस्था है। १० सुयोग्य अध्यापक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं, और संस्था का संचालन श्री विश्वपाल के हाथों में है। निवास तथा शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। आचार्य के पद पर श्री महेन्द्र कुमार शास्त्री नियुक्त हैं।

गुरुकुल कण्वाश्रम के पुस्तकालय में सात हजार के लगभग पुस्तकें हैं, जिनमें वेद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रों के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ भी हैं, जिनसे आकृष्ट होकर अनेक शोध छात्र भी वहाँ शोधकार्य के लिए जाते रहते हैं। गुरुकुल की अपनी गौशाला है। इसमें सन्देह नहीं, कि यह गुरुकुल ऐसे पर्यावरण में स्थित है जो पूर्णतया सात्विक है। उस द्वारा महर्षि कण्व के आश्रम को ही पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि इस संस्था का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि गुरुकुल पद्धति को इस द्वारा विशुद्ध रूप में अपनाया गया है।

श्री विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, करतारपुर (जालन्धर)—गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव द्वारा की गई थी, और अब तक भी उस का संचालन प्रधानतया इसी सभा के हाथों में है। किसी समय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पंजाब में बहुत लोकप्रिय थी। वहाँ गुरुकुल काँगड़ी की शाखाओं के रूप में अनेक गुरुकुल (मुलतान, रायकोट आदि) विद्यमान थे, और पंजावी आर्य परिवारों के बहुत-से बालक गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त किया करते थे। पर अब पंजाब में केवल एक ऐसा शिक्षणालय है, जो गुरुकुल काँगड़ी के साथ सम्बद्ध है और जिसमें उस द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था है। यह शिक्षणालय श्री विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय के नाम से जालन्धर जिले के करतारपुर नगर के समीप स्थित है। यह नगर महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्मस्थान माना जाता है, और उन्हीं के स्मारक रूप में मार्च, १९५६ में वैदिक संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की गई थी। इसके लिए अफ्रीका निवासी महाशय वद्रीनाथ ने ५२,००० रुपये की धनराशि प्रदान की थी। महाशय वद्रीनाथ केनिया (पूर्वी अफ्रीका) सरकार के रेलवे विभाग में कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त थे। वैदिक धर्म में उनकी अगाध आस्था थी, और महर्षि दयानन्द सरस्वती के वह परम भक्त थे। उन्होंने विचार किया कि महर्षि के तो अनेक स्मारक विद्यमान हैं, पर उनके गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का कोई भी स्मारक नहीं है। अतः उन्होंने करतारपुर में उनका स्मारक वनाने का निश्चय किया, क्योंकि यह नगर स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्मस्थान है। ५२,००० रुपये इसी प्रयोजन से उन्होंने प्रदान किये थे। विरजानन्द सरस्वती स्मारक की आधारशिला १० मार्च, १९५६ के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के तत्कालीन प्रधान स्वामी आत्मानन्द द्वारा रखी गई थी, और उसका भवन तैयार हो जाने पर उसका उद्घाटन स्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती (श्री मेहता जैमिनी) ने ६ सितम्बर, १९५६ को किया था। धीरे-धीरे इस स्मारक में भवनों की वृद्धि होती गयी और वह वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज की गतिविधि का केन्द्र वनता गया। विरजानन्द स्मारक की सुव्यवस्था के लिए पृथक् रूप से एक ट्रस्ट का निर्माण कर अगस्त, १९६६ में उसे रजिस्टर्ड करा दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप जनता में इस संस्था के लिए उत्साह उत्पन्न हुआ, और धन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने लगा। सितम्वर, १९७० में स्वामी विरजानन्द सरस्वती की निर्वाण शताब्दी धूमधाम के साथ करतारपुर में मनायी गई। उसी अवसर पर पण्डित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड द्वारा विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय का उद्घाटन किया गया। इसके पूर्व भी करतारपुर में विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में एक संस्कृत विद्यालय चल रहा था, पर १९७० से इसकी विशेष रूप से उन्नति हुई। अनेक नये भवन वने, पुस्तकालय में पुस्तकों की वृद्धि हुई और गौशाला की स्थापना की गई। विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संस्था का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। सन् १९७८ में स्वामी विरजानन्द सरस्वती की जन्म द्वि-शताब्दी धूमधाम के साथ करतारपुर में मनायी गई, और उस अवसर पर विरजानन्द वैदिक संस्कृत महाविद्यालय को गुरुकुल काँगड़ी के साथ सम्बद्ध किये जाने की घोषणा कर दी गई। इससे पूर्व यह विद्यालय श्रीमद्दयानन्द आर्य विद्यापीठ, गुरुकुल झज्झर के साथ सम्बद्ध था। १९७८ से उसकी स्थिति गुरुकुल काँगड़ी की एक शाखा की हो गई, और उसमें उसी पाठविधि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई जिसका निर्धारण गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा विद्यालय विभाग के लिए किया गया हो। करतारपुर के इस गुरुकुल में विद्यार्थियों के रहन-सहन, खान-पान, दिनचर्या आदि की प्रायः वही व्यवस्था है, जो गुरुकुल काँगड़ी में है। शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन, वस्त्र आदि का व्यय संरक्षकों को करना होता है। भोजन में घी और दूध की व्यवस्था गुरुकुल द्वारा की जाती है, और उसका व्यय विद्यार्थियों से लिये जाने वाले भरण-पोषण के शुल्क में सम्मिलित कर दिया जाता है। इस गुरुकुल में दसवीं (विद्याधिकारी) कक्षा तक पढ़ाई होती है, और उसे उत्तीर्ण कर विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट हो सकते हैं, या अन्य इण्टर कॉलिजों में भी प्रवेश पा सकते हैं।

आर्य गुरुकुल टटेसर जौन्ती--यह गुरुकुल दिल्ली के संघ क्षेत्र में दिल्ली नगरी से २१ मील के लगभग पश्चिम-उत्तर में टटेसर नामक ग्राम के समीप स्थित है। इसकी स्थापना का संयोजन श्री लालमणि द्वारा किया गया था, और इसकी आधारशिला ५ फरवरी, १९४१ के दिन महात्मा नारायण स्वामी ने रखी थी। प्रारम्भ में इस संस्था में पंजाब यूनिवर्सिटी की प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री की संस्कृत परीक्षाओं तथा रत्न, भूषण और प्रभाकर की हिन्दी परीक्षाओं की पढ़ाई होती रही और विद्यार्थी इन्हीं परीक्षाओं में बैठते रहे। बाद में संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पाठ्यक्रम को अपना कर प्रथमा, मध्यमा और शास्त्री की परीक्षाएँ दिलायी जाने लगीं। अब कुछ वर्षों से यह संस्था गुरुकुल काँगड़ी के साथ सम्बद्ध है, और वहाँ के विद्यालय विभाग की पाठविधि के अनुसार दसवीं (विद्याधिकारी) कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था कर दी गई है। समीप के ग्रामों से इस गुरुकुल को समुचित आर्थिक सहायता प्राप्त होती है, जिसके कारण इसके विद्यार्थियों का भरण-पोषण सुचारु रूप से हो जाता है। शिक्षा यहाँ पूर्णतया निःशुल्क है। आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि योग के अंगों के प्रशिक्षण पर इस संस्था में विशेष ध्यान दिया जाता है। विद्यार्थियों की संख्या इस समय ९२ है।

आर्य गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, डिकाडला—यह गुरुकुल करनाल जिले के डिकाडला ग्राम के समीप स्थित है। १८ अक्तूबर, सन् १९७१ को इसकी स्थापना आचार्य सत्यप्रिय द्वारा की गई थी, और स्थानीय जनता ने इसकी स्थापना में अच्छा उत्साह प्रदर्शित किया था। शुरू में इसका संचालन आचार्य सत्यप्रिय ही करते रहे, पर बाद में उनके लिए यहाँ कार्य कर सकना सम्भव नहीं रहा। उनके पश्चात् श्री प्रभुदयाल को संस्था का कार्यभार सौंपा गया। श्री प्रभुदयाल जिला विद्यालय निरीक्षक के पद पर रह चुके थे, और उन्हें शिक्षा का अनुभव था। अगस्त, १९७५ से गुरुकुल डिकाडला का संचालन उनके हाथों में रहा। पर उनके प्रबन्ध में भी यह संस्था समुचित उन्नति नहीं कर सकी। कुछ ही समय में इसकी दशा एक खण्डहर की हो गई, और वहाँ केवल पाँच विद्यार्थी रह गये। यह दशा थी, जब मई, १९८१ में ब्रह्मचारी ओमस्वरूपार्य ने वहाँ पदार्पण किया,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दो-ढाई वर्ष तक घोर परिश्रम कर उसे सुव्यवस्थित रूप देने में सफलता प्राप्त की। वर्तमान समय में १०० के लगभग विद्यार्थी वहाँ शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। गुरुकुल डिकाडला गुरुकुल काँगड़ी के साथ सम्बद्ध है, और काँगड़ी के विद्यालय विभाग के पाठ्यक्रम के अनुसार वहाँ पढ़ाई की व्यवस्था है। गुरुकुल की अपनी गोशाला है, जिसका दूध सब कुलवासियों को विना मूल्य दिया जाता है। संस्था का वार्षिक खर्च एक लाख रुपये के लगभग है, जिसका २० प्रतिशत सरकार द्वारा अनुदान से प्राप्त होता है, और शेष ८० प्रतिशत जनता के दान से।

गुरुकुल धीरणवास – यह गुरुकुल भी हिसार जिले में है, और वालसमन्द रोड पर स्थित है। सन् १९७२ के सितम्बर मास में इसकी स्थापना हुई थी। अभी यह गुरुकुल अच्छी उन्नति नहीं कर सका है। विद्यार्थियों की संख्या वहाँ वहुत कम है। इसमें भी गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्यक्रम का अनुसरण किया जाता है।

कन्या गुरुकुल, पाढ़ा --आर्य कन्या गुरुकुल संस्कृत विद्यालय नाम की यह संस्था करनाल जिले में पाढ़ा नामक ग्राम के समीप डा० गणेशदास अनेजा द्वारा नवम्बर, सन् १९७३ में स्थापित की गई थी। इसमें एक सौ के लगभग छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। पाठ्यक्रम गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय विभाग की पाठविधि के अनुसार है।

(७) गुरुकुल काँगड़ी की लोकप्रियता का ह्रास

वीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में गुरुकुल काँगड़ी की अनेक शाखाएँ भारत के विविध प्रदेशों में स्थापित हुई थीं, और उसकी पाठविधि तथा शिक्षा पद्धति पर्याप्त रूप से लोकप्रिय हो गई थी। उस समय गुरुकुल काँगड़ी की किसी भी उपाधि को सरकार से मान्यता प्राप्त नहीं थी, और उसके स्नातकों के लिए सरकार या सरकारी संस्थानों में सर्विस प्राप्त करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। यदि कोई स्नातक किसी कॉलिज अथवा स्कूल में अध्यापक नियुक्त होना चाहता, तो उसके लिए यही एक मार्ग था, कि शास्त्री, वी० ए० एवं एम० ए० आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करे। इन परीक्षाओं में वैठने के लिए उसे पहले रत्न, भूषण सदृश हिन्दी परीक्षाएँ या प्राज्ञ, विशारद सदृश संस्कृत परीक्षाएँ और मैट्रिक्युलेशन तथा इण्टर परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी होती थीं। गुरुकुल काँगड़ी या उसकी किसी शाखा में आठ या दस वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् किसी सरकारी स्कूल व कॉलिज में प्रवेश पा सकना भी कठिन था। ये सब वाधाएँ व कठिनाइयाँ होते हुए भी उस समय गुरुकुल काँगड़ी एक लोकप्रिय शिक्षण-संस्था थीं, और उसमें विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त रहती थी। सन् १९२१-४० तक के काल में गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग की चार कक्षाओं में प्रायः एक सौ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। ये सब विद्यार्थी ऐसे होते थे, जो छोटी आयु में गुरुकुल काँगड़ी या उसकी किसी शाखा में भरती हुए हों और वहाँ दस वर्ष के लगभग छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कर जिन्होंने विद्याध्ययन किया हो। गुरुकुल के अतिरिक्त किसी अन्य शिक्षणालय के विद्यार्थी को गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में तब प्रविष्ट किया ही नहीं जा सकता था। गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि भी तब वहुत कठिन थी। गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषय तथा अंग्रेजी भाषा का अध्ययन सवके लिए अनिवार्य था, और गुरुकुल की दसवीं कक्षा की पढ़ाई का स्तर सरकारी स्कूलों की मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के स्तर से किसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ग्रंश में कम नहीं था। इन ग्राधुनिक विषयों के साथ-साथ संस्कृत व्याकरण ग्रौर संस्कृत साहित्य विषय भी सबको ग्रनिवार्य रूप से पढ़ने होते थे, ग्रौर इनका स्तर पंजाब यूनिवर्सिटी की शास्त्री परीक्षा के समकक्ष था। प्राच्य ग्रौर पाश्चात्य, प्राचीन ग्रौर ग्रर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान में व्युत्पन्न होकर तथा दस वर्ष के लगभग ब्रह्मचारियों का ग्रनुशासित जीवन बिता कर यदि २५ विद्यार्थी भी प्रतिवर्ष गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में प्रवेश पा लेते हों, तो उसे किसी भी प्रकार ग्रसन्तोषजनक या ग्रपर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान समय में गुरुकुल काँगड़ी की १२ शाखाएँ ग्रवश्य हैं पर उसके महाविद्यालय विभाग में विद्यार्थियों की संख्या केवल ४४ है। गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग की चार कक्षाएँ इस समय दो भागों में विभक्त हैं, विद्याविनोद ग्रौर ग्रलंकार। विद्याविनोद की दो कक्षाग्रों में केवल १० विद्यार्थी हैं, ग्रौर ग्रलंकार की दो कक्षाग्रों में विद्यार्थियों की संख्या ३४ है। यह संख्या उस दशा में है जब कि विविध सरकारों तथा यूनिवर्सिटियों द्वारा विद्याविनोद को इण्टर के ग्रौर ग्रलंकार को बी० ए० के समकक्ष मान्यता प्राप्त है, ग्रौर यह भी ग्रावश्यक नहीं है कि इन कक्षाग्रों में केवल वही विद्यार्थी प्रविष्ट किये जाएँ जिन्होंने विद्यालय विभाग की शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी या किसी शाखा गुरुकुल में प्राप्त की हो। वेदालंकार के विद्यार्थियों को गुरुकुल द्वारा छात्रवृत्ति भी दी जाती है, ग्रौर ऐसे विद्यार्थी भी इस विभाग में प्रविष्ट कर लिये जाते हैं, जिन्हें संस्कृत का कुछ भी ज्ञान न हो। गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय विभाग का पाठ्यक्रम भी ग्रब ग्रधिक कठिन नहीं रहा है। उसमें संस्कृत का स्तर ग्रब बहुत साधारण है। गुरुकुल की विद्याधिकारी (मैट्रिक), विद्याविनोद (इण्टर) तथा विद्यालंकार (बी० ए०) उपाधियों को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, ग्रौर इन परीक्षाग्रों को उत्तीर्ण कर विद्यार्थियों के लिए वे सब मार्ग खुल जाते हैं, जो मैट्रिक, इण्टर तथा बी० ए० परीक्षाएँ उत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए खुले होते हैं। यह सब होते हुए भी गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में विद्यार्थियों का इतनी कम संख्या में होना ग्राश्चर्य की बात है। गुरुकुल काँगड़ी से सम्बद्ध जो ग्रनेक गुरुकुल हैं, कुछ ग्रपवादों को छोड़कर वे ग्रभी सुचारु रूप से विकसित नहीं हुए हैं, ग्रौर वे विद्यार्थियों को समुचित रूप से ग्राकृष्ट नहीं करते। गुरुकुल काँगड़ी ग्रौर उसकी शाखाग्रों की लोकप्रियता का यह ह्रास वस्तुतः विचारणीय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरहवाँ अध्याय

गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा

(१) गुरुकुल भैंसवाल

मार्च, १९२० में हरयाणा के रोहतक जिले में भैंसवाल नामक ग्राम के समीप किस प्रकार एक गुरुकुल की स्थापना हुई थी, इस पर पिछले अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। शुरू में यह गुरुकुल काँगड़ी की शाखा था। दो वर्ष बाद पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार (स्वामी व्रतानन्द) के गुरुकुल के आचार्य पद पर नियुक्त हो जाने पर किस प्रकार वहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि का अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया, इसका भी उल्लेख पहले किया जा चुका है। सन् १९२५ में गुरुकुल भैंसवाल का काँगड़ी गुरुकुल के साथ सम्बन्ध नहीं रह गया, और गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा के रूप में इसका स्वतन्त्र विकास प्रारम्भ हुआ। उस समय विद्यापीठ के जो उद्देश्य निर्धारित किये गए, वे ये थे --(१) ब्रह्मचारियों को सांगोपांग चारों वेदों के वेत्ता और अष्टांग योग में कुशल योगाभ्यासी विद्याव्रत स्नातक बनाना, (२) वर्णाश्रम व्यवस्था के आदर्श को पुनः प्रचलित करना, (३) वैदिक धर्म के सर्वोत्तम उपदेशक तैयार करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह आवश्यक समझा गया, कि विद्याभ्यास के साथ-साथ व्रताभ्यास को भी शिक्षा का अनिवार्य अंग माना जाए। ब्रह्मचारी केवल विद्या ही न पढ़ें, अपितु सदाचारी व धार्मिक बनने के लिए धृति, क्षमा, दम, अस्तेय आदि धर्म के दस अंगों का पालन करें, और आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार आदि द्वारा इन्द्रियजयी होने का भी प्रयत्न करें। जैसे पढ़ी हुई विद्या की परीक्षा लेकर उसके अंक दिये जाते हैं, वैसे ही ब्रह्मचारी ने धृति, क्षमा आदि का जितने अंश तक अभ्यास किया हो, अपने जीवन को जिस सीमा तक सदाचारी व धर्मानुकूल बनाया हो, उसकी भी परीक्षा ली जाया करे और उसके अंक भी परीक्षा-परिणाम में जोड़े जाया करें। विद्याभ्यास में उत्तीर्ण होने के समान व्रताभ्यास में उत्तीर्ण होना भी अनिवार्य हो। गुरुकुल में शिक्षा पूर्ण कर जो ब्रह्मचारी स्नातक बनें, वे केवल विद्यास्नातक ही न हों, अपितु व्रतस्नातक भी हों। पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार के निर्देशन में गुरुकुल विद्यापीठ, भैंसवाल ने एक ऐसा रूप प्राप्त करना प्रारम्भ किया, जो गुरुकुल काँगड़ी तथा उस समय के अन्य सभी गुरुकुलों से भिन्न था। इस विद्यापीठ ने अपने लिए दो कार्य निर्धारित किये— (१) महर्षि पतंजलि, राजर्षि मनु और महर्षि दयानन्द आदि ऋषियों की आज्ञा के अनुसार व्रताभ्यास (सदाचार) की ऊँचे दरजे की शिक्षा देना। (२) वेदारम्भ के समय आर्य जनता के सम्मुख वेदांग, उपांग आदि सहित न्यून से न्यून एक वेद पढ़ने की जो प्रतिज्ञा की जाती है उसको पूर्ण करने के लिए महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट पाठविधि को अक्षरशः प्रचलित करके उसी को पढ़ना-पढ़ाना।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी से अपने को पृथक् कर गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा ने जिस पाठ-विधि के अनुसार पढ़ाई की व्यवस्था की, उसके पाँच मूल सिद्धान्त थे—(१) किसी गुरुकुल तथा ब्रह्मचर्य आश्रम में किसी ब्रह्मचारी को अनार्ष ग्रन्थ नहीं पढ़ने चाहिये। केवल चार वेद (सत्य विद्याओं के भण्डार ईश्वरकृत पुस्तकें) और आर्ष ग्रन्थ (ऋषिकृतग्रन्थ) ही पढ़ने चाहिये। आर्ष ग्रन्थों में भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो, उसको छोड़ देना चाहिये। (२) वेद पढ़ने से पहले शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प, दस उपनिषद् और छह उपांग, इन आठ विषयों के अतिरिक्त अन्य कोई विषय नहीं पढ़ना चाहिये। (३) उपर्युक्त विषयों को इतना अधिक विस्तारपूर्वक नहीं पढ़ना चाहिये कि वेद के लिए आवश्यक समय भी न बचे। (४) एक विषय को पढ़ते हुए दूसरा विषय नहीं पढ़ना चाहिये, किन्तु एक विषय को समाप्त करके ही फिर दूसरा विषय पढ़ना प्रारम्भ करना चाहिये। (५) इस पाठविधि के पाठ्य विषयों को निम्नलिखित क्रम से पढ़ना चाहिये —शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कोष, छन्द, ज्योतिष, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, वेदान्त, ऐतरेय ब्राह्मण सहित ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण सहित यजुर्वेद, साम ब्राह्मण सहित सामवेद, गोपथ ब्राह्मण सहित अथर्ववेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद।

गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा (भैंसवाल) में प्रयुक्त की जाने वाली पाठविधि के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख कर सन् १९२३ में प्रकाशित इस शिक्षण-संस्था की नियमावली में इस पाठविधि के सम्बन्ध में निम्नलिखित टिप्पणी दी गई है —"इस पाठविधि का उद्देश्य चारों वेदों के विद्वान् बनाना है। किन्तु सब ब्रह्मचारी इतने बड़े विद्वान् नहीं हो सकते। अपनी शक्ति के अनुसार कोई चारों वेदों को, कोई तीन वेदों को, कोई दो को और कोई एक को पढ़ सकेगा। इसलिए चार वेद पढ़ने वाला ब्रह्मचारी चार वेदों को पढ़कर चार उपवेद, तीन वेद पढ़ने वाला तीन वेदों को पढ़कर इन तीनों के उपवेद, दो वेद पढ़ने वाला दो वेदों को पढ़ के इन दोनों के उपवेद और एक वेद पढ़ने वाला उसी वेद के उपवेद को पढ़ेगा।"

पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार की प्रेरणा तथा निर्देशन से गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा के संचालक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि का किस प्रकार अक्षरशः अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील थे, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। पर साथ ही वे इस तथ्य को आँखों से ओझल नहीं कर सकते थे, कि बालकों को गणित, इतिहास, भूगोल आदि का भी कुछ-न-कुछ ज्ञान होना चाहिये। इसलिए विद्याभ्यास के क्रम को निर्धारित करते हुए उन्होंने विद्यापीठ की पहली तीन कक्षाओं में (जिन्हें उन्होंने सामान्य विद्यालय की संज्ञा दी थी) इन विषयों की पढ़ाई की भी व्यवस्था की थी। ऐसा करना महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के प्रतिकूल नहीं है, इसे उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया था —"महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पाठविधि का निर्देश किया है, किन्तु बालक को प्रारम्भ में क्या शिक्षा देनी चाहिये, इसका प्रतिपादन उन्होंने द्वितीय समुल्लास में किया है। वहाँ वे लिखते हैं कि जैसे माता-पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी अथवा अन्य सूत्र व वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों, उन उन का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें। किन्तु आजकल आर्यावर्त्त में विद्या की न्यूनता के कारण और प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अभाव के कारण माता-पिता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सन्तान को उचित शिक्षा नहीं दे सकते। इसलिए गुरुकुल में अपनी सन्तान को प्रविष्ट करने से पूर्व सन्तान को जो शिक्षा माता-पिता के द्वारा मिल जानी चाहिये वह भी गुरुकुल के अध्यापकों को ही देनी पड़ती है। उस आवश्यक शिक्षा के लिए और वेदांग विद्यालय के पाठ्यविषयों को पढ़ने की योग्यता का सम्पादन करने के लिए सामान्य विद्यालय की स्थापना की गई है।"

जिस विचार से गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा ने छोटे बालकों के लिए सामान्य विद्यालय की तीन कक्षाओं की पढ़ाई की व्यवस्था की थी, वह यह था कि बालक हिन्दी (आर्य भाषा), गणित, भूगोल, इतिहास, और वस्तुपाठ का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लें, संस्कृत भाषा और व्याकरण की उन्हें प्राथमिक जानकारी हो जाए, अष्टाध्यायी वे कण्ठस्थ कर लें, सन्ध्या-हवन-स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ के सब मन्त्र उन्हें याद हो जाएँ और आर्योद्देश्यरत्नमाला एवं व्यवहारभानु सदृश महर्षिकृत पुस्तकों को पढ़कर वे वैदिक शिक्षाओं से भी परिचय प्राप्त कर लें। विद्यापीठ की पाठविधि का निर्माण करने वाले विद्वानों का यह मत था, कि इतनी शिक्षा तो बालकों को घर पर ही प्राप्त कर लेनी चाहिये थी। पर क्योंकि आधुनिक समय में इसकी घरों में सुविधा नहीं है, इस कारण गुरुकुल में इसकी व्यवस्था करना आवश्यक है।

गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा ने जिस रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया, उसमें सामान्य विद्यालय (तीन कक्षाएँ) के पश्चात् वेदांग विद्यालय (आठ कक्षाएँ), उपांग विद्यालय (दो कक्षाएँ), और अन्त में वेद विद्यालय (तीन कक्षाएँ) खोले जाने की व्यवस्था की गई थी। यह प्रयत्न था, कि इस प्रकार सोलह साल तक विद्याभ्यास के अनन्तर ब्रह्मचारी एक वेद की शिक्षा सुचारु रूप से प्राप्त कर लेगा। वेदांग विद्यालय आदि तीन विद्यालयों का जो पाठ्यक्रम नियत किया गया था, वह उस समय के किसी भी गुरुकुल व अन्य आर्य शिक्षण-संस्था के पाठ्यक्रम से भिन्न था। वेदांग विद्यालय के पाठ्यक्रम में व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष सदृश वेदांगों के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया गया था। वेदांगों के अतिरिक्त इस विद्यालय की आठ कक्षाओं में केवल एक अन्य विषय पढ़ना होता था, जिसे 'वैदिक शिक्षा' नाम दिया गया था। इस विषय में पञ्चमहायज्ञविधि, संस्कारविधि, आर्याभिविनय और सत्यार्थप्रकाश की शिक्षा को अन्तर्गत किया गया था। इसका प्रयोजन यह था, कि व्याकरण, निरुक्त आदि वेदांगों के अध्ययन के साथ-साथ ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों तथा शिक्षाओं से भी भली-भाँति परिचित हो जाएँ। उपांग विद्यालय की पढ़ाई दो वर्ष की थी, और उसके पाठ्यक्रम में पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त—इन छह आस्तिक दर्शनों और दस उपनिषदों को रखा गया था। साथ ही, 'वैदिक शिक्षा' विषय से ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अध्यापन की व्यवस्था थी। वेद विद्यालय की पढ़ाई तीन वर्षों में पूरी होती थी। इन तीन वर्षों में विद्यार्थी को ब्राह्मण-सहित एक वेद पढ़ना होता था। विद्यार्थी किस वेद का अध्ययन करे, यह उसकी इच्छा पर था। वेद के साथ उसके ब्राह्मणग्रन्थ को पढ़ना भी आवश्यक था, क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थ, वेदमन्त्रों के अर्थ तथा विनियोग को जानने के लिए उपयोगी है। आधुनिक समय में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी अनेक प्रकार से लाभदायक है, इस बात को दृष्टि में रखकर यह व्यवस्था भी की गई थी, कि ग्यारहवीं कक्षा से ब्रह्मचारियों को इस भाषा की भी शिक्षा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी जाए। पर नियमावलि में यह स्पष्ट कर दिया गया था, कि अंग्रेजी पढ़ाते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि उसके पाठ्यक्रम में ऐसी कोई पुस्तक न हो, जिसमें अब्रह्मचर्य, वासना, नास्तिकता, अश्रद्धा आदि दुष्ट भाव विद्यमान हों।

गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा की जो पाठविधि प्रारम्भ में बनायी गई थी, उसमें वेद विद्यालय की पढ़ाई के बाद की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई थी। सोलह वर्षों में विद्यापीठ के सामान्य विद्यालय, वेदांग विद्यालय, उपांग विद्यालय और वेद विद्यालय की पढ़ाई को पूरा कर विद्यार्थी वेद महाविद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय, धनुर्वेद महाविद्यालय, गान्धर्व महाविद्यालय, शिल्प महाविद्यालय और समीक्षक महाविद्यालय में से किसी में भी अपनी रुचि तथा इच्छा के अनुसार प्रविष्ट हो सकता था। वेद विद्यालय में विद्यार्थी केवल एक वेद का अध्ययन पूरा करता था। अब वेद महाविद्यालय में उसे अवसर था, कि शेष तीनों वेदों (उनके ब्राह्मणग्रन्थों आदि के सहित) का अध्ययन कर चारों वेदों का प्रकाण्ड विद्वान् बन सके। इस महाविद्यालय में शिक्षा का काल छह वर्षों का था। इस प्रकार जो ब्रह्मचारी चारों वेदों का पूर्ण ज्ञाता बनना चाहे, उसे गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा में बाईस साल पढ़ना होता था।

आयुर्वेद महाविद्यालय की शिक्षा चार वर्ष की थी। चरक, सुश्रुत आदि ऋषि-प्रणीत आयुर्वेद के ग्रन्थों के साथ-साथ आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अध्यापन को भी इस महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। गान्धर्व (संगीत) महाविद्यालय का शिक्षा काल तीन वर्ष रखा गया था, शिल्प महाविद्यालय का छह साल और समीक्षक महाविद्यालय का चार साल। समीक्षक महाविद्यालय में इस बात की शिक्षा की व्यवस्था की गई थी, कि पुराणी (पौराणिक), कुरानी (मुसलिम), किरानी (ईसाई) और जैनी मत-मतान्तरों की पुस्तकें कहाँ तक वेदविरुद्ध हैं और उनमें कौन कौन-सी बातें वेद के अनुकूल हैं। विविध धर्मों या मत-मतान्तरों का तुलनात्मक अध्ययन समीक्षा महाविद्यालय में कराया जाना था।

सन् १९३६ तक गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा में केवल छठी कक्षा तक की पाठविधि ही प्रयोग में लायी जा सकी थी। इसके आगे की पाठविधि का निर्धारण तो कर लिया गया था, पर उसे अभी क्रियान्वित नहीं किया गया था। यथार्थ में वेद विद्यालय तथा वेद महाविद्यालय के लिए जो पाठ्यक्रम नियत किया गया था, उसके अनुसार पढ़ाई का अवसर ही इस विद्यापीठ में नहीं आया। उसे लागू कर सकना सुगम भी नहीं था। सन् १९३८ में प्रकाशित हुई गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा की पाठविधि में केवल चौदह कक्षाओं का पाठ्यक्रम ही दिया गया है, यद्यपि १९२६ की पाठविधि में वेद विद्यालय तक १६ कक्षाएँ थीं, और उसके पश्चात् वेद महाविद्यालय में ६ कक्षाएँ। इस प्रकार गुरुकुल विद्यापीठ की स्थापना के समय वहाँ जो २२ वर्ष की शिक्षा का प्रावधान किया गया था, सन् १९३८ तक उसे केवल १४ वर्ष का कर दिया गया। एक महत्त्व की बात यह भी है, कि १९३८ के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को भी रखा गया, और सातवीं कक्षा से बारहवीं कक्षा तक उसकी पढ़ाई की व्यवस्था की गई। विद्यापीठ के संचालकों को यह अभिप्रेत था, कि विद्यार्थी अंग्रेजी भाषा में इतनी योग्यता प्राप्त कर लें, जितनी कि सरकारी स्कूलों में मैट्रिक्युलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों की होती है। सातवीं से बारहवीं कक्षा तक के छह वर्षों के लिए विद्यापीठ ने अंग्रेजी का वही कोर्स नियत किया था, जो पंजाब यूनिवर्सिटी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा स्वीकृत स्कूलों में पाँचवीं से दसवीं तक की कक्षाओं के लिए निर्धारित था। १९३८ की पाठविधि के अनुसार विद्यापीठ के दो विभाग थे, विद्यालय विभाग (१० कक्षाएँ) और महाविद्यालय विभाग (४ कक्षाएँ)। गणित छठी कक्षा तक थी, और इतिहास-भूगोल सातवीं कक्षा तक। सामान्य विज्ञान को बारहवीं कक्षा तक के पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। तेरहवीं और चौदहवीं कक्षाओं में सामान्य विज्ञान के स्थान पर आयुर्वेद रखा गया था। विद्यालय विभाग में अन्य विषय संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य, आर्य भाषा और वैदिक शिक्षा थे। आठवीं कक्षा से दर्शन शास्त्रों की शिक्षा भी प्रारम्भ कर दी जानी थी। तेरहवीं और चौदहवीं कक्षाओं में यजुर्वेद के ३५ (४ से १० तक) अध्याय भी रखे गये थे, जिसके कारण गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा के विद्यार्थी चौदह वर्षों की शिक्षा पूर्ण कर लेने पर एक वेद का बड़ा भाग पढ़ लेते थे। वेदांगों, उपांगों, दर्शन शास्त्रों, उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों की जिस ढंग की शिक्षा की व्यवस्था सन् १९२६ की पाठविधि में की गई थी, वह कुछ समय पश्चात् परिवर्तित कर दी गई और एक ऐसी पाठविधि का निर्माण किया गया, जिसमें संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य, वैदिक शिक्षा और दर्शनों का प्राधान्य तो था, पर उनका पाठ्यक्रम पहले के समान अत्यधिक उच्च स्तर का नहीं था। सम्भवतः, क्रियात्मकता को दृष्टि में रखकर ही यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया गया था।

पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार के सुझाव के अनुसार गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा में व्रताभ्यास की जिस परम्परा का सूत्रपात किया गया था, वह इस शिक्षण-संस्था की अनुपम विशेषता थी। बाद में गुरुकुल काँगड़ी में भी इसका प्रारम्भ किया गया, पर वहाँ इसे विशेष सफलता नहीं मिली। इसमें सन्देह नहीं, कि विद्यार्थियों को सदाचारी, धार्मिक और संयमी बनाने के लिए इसका उपयोग था, अतः इसपर क्रियात्मक रूप से प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

विद्यापीठ हरयाणा में व्रताभ्यास की आवश्यकता को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया था—"जिस शिक्षा के द्वारा वेदों की आज्ञा के अनुसार आचरण किया जा सके अथवा जिस शिक्षा के द्वारा असभ्यता, अधार्मिकता, अजितेन्द्रियता आदि दोष छूटें और सभ्यता, धार्मिकता, जितेन्द्रियता आदि गुणों की वृद्धि हो, उसे व्रताभ्यास (सदाचार) की शिक्षा कहते हैं। इसी शिक्षा के द्वारा ब्रह्मचारी सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी बन सकते हैं। केवल विद्याभ्यास की शिक्षा से किसी मनुष्य का जीवन उन्नत और सफल नहीं हो सकता। उन्नति और सफलता के लिए व्रताभ्यास की शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।" व्रताभ्यास शिक्षा को तीन वर्गों में विभक्त किया गया था —व्रतारम्भ वर्ग, धर्माङ्ग वर्ग और योग साधन वर्ग। व्रतारम्भ वर्ग में बाह्य पवित्रता, सत्संगति, आज्ञापालन, सरलता, सन्ध्या-हवन का अनुष्ठान, अनुशासित जीवन, नियमित भोजन, निर्भयता, सहनशीलता, निर्लोभता, निर्मोहता, निरभिमानता, द्वन्द्व सहन और सत्य भाषण आदि की शिक्षा दी जाती थी। धर्माङ्ग वर्ग में धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि और विद्या की वृद्धि, अक्रोध, सत्य, प्राणायाम और आसन अन्तर्गत थे। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, ध्यान, धारणा, समाधि और आत्मिक उन्नति) को योग साधन वर्ग में रखा गया था। जैसे विद्याभ्यास की पाठविधि होती है, और विविध कक्षाओं के पाठ्यविषय नियत होते हैं, वैसे ही गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा में व्रताभ्यास के लिए भी शिक्षाविधि का निर्माण किया गया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, और किस कक्षा में व्रताभ्यास के किस अंग की शिक्षा दी जाए, यह निर्धारित कर दिया गया था। वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति के लिए मनुष्य में जो गुण होने चाहिये, उन सबका समावेश व्रताभ्यास में कर दिया गया था। धृति, क्षमा, संयम आदि द्वारा मनुष्य की वैयक्तिक उन्नति होती है। सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक है कि मनुष्य संगठन या समाज में रहना सीखे, सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार करे, दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करे, सेवा और परोपकार की वृत्ति रखे, स्वार्थी न हो, ईर्ष्या और परनिन्दा का परित्याग करे और सबके साथ मिलकर रहे। व्रताभ्यास द्वारा इन बातों की भी शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुलों में ब्रह्मचारी गुरुजनों के साथ रहते हैं। गुरुओं के लिए यह सर्वथा सम्भव व सुगम है, कि वे अपने शिष्यों के चरित्र, व्यवहार आदि पर दृष्टि रखें और उनके गुण-दोषों का रिकार्ड रखते रहें। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी रिकार्ड को 'जन्म-चरित्र पुस्तक' कहा है। व्रताभ्यास के अंक इसी रिकार्ड के अनुसार दिये जा सकते हैं।

गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा की नियमावलि में जिस शिक्षण-संस्था की परिकल्पना की गई थी, उसमें आचार्य का स्थान बड़े महत्त्व का था। उसके सम्बन्ध में वहाँ लिखा है, कि "आचार्य के लिए यह आवश्यक होगा कि वह प्रत्येक ब्रह्मचारी को पुत्रवत् समझें। आचार्य यथासम्भव प्रतिदिन इस बात का निरीक्षण करें कि कौन ब्रह्मचारी विद्याभ्यास और व्रताभ्यास दोनों शिक्षाओं में उन्नति कर रहा है, और कौन नहीं। उन्हें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि कोई स्त्री तथा पाँच वर्ष की लड़की भी गुरुकुल के आँगन में न आने पावे।" मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्मचारियों के लिए जिन नियमों तथा मर्यादाओं का विधान है, उन सबका उल्लेख इस विद्यापीठ की नियमावलि में कर दिया गया है। साथ ही, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की मान्यताओं व परम्परा को दृष्टि में रखकर यह भी विधान कर दिया गया था, कि "कोई ब्रह्मचारी स्नातक बनने से पूर्व किसी दशा में भी घर नहीं जा सकेगा, किन्तु जबकि ब्रह्मचारी के माता-पिता अत्यन्त रुग्णावस्था में हों जिससे कि उनके शरीर त्याग का भय हो उस अवस्था में कुछ दिनों के लिए ब्रह्मचारी घर भी जा सकेगा। कोई ब्रह्मचारी किसी से पत्र-व्यवहार नहीं कर सकेगा, ताकि सांसारिक चिन्ता से रहित होके केवल विद्या और व्रत की वृद्धि में ही निमग्न रहे।" विद्यापीठ की नियमावलि के निम्नलिखित नियम भी इस संस्था में ब्रह्मचारियों के जीवन पर प्रकाश डालते हैं—"संरक्षक ब्रह्मचारी के लिए जो वस्तु लावे उसे आचार्य के समर्पित कर दे। संरक्षक ब्रह्मचारी के साथ पत्र-व्यवहार नहीं कर सकेगा। माता-पिता आदि संरक्षक ब्रह्मचारी से वर्ष में चार बार से अधिक नहीं मिल सकेंगे। इस गुरुकुल में अपने चिरंजीव पुत्र को प्रविष्ट करने का सुविचार उसी संरक्षक महाशय को करना चाहिये जिसे महर्षि दयानन्द प्रतिपादित पाठविधि पर और राजर्षि मनु निर्दिष्ट धर्म लक्षणों तथा ब्रह्मर्षि पतंजलि प्रतिपादित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि पर पूर्ण श्रद्धा हो।"

गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा की स्थापना के समय उसके लिए जो नियमावलि व पाठविधि बनायी गई थी, उसका निर्माण पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार द्वारा सन् १९२४-२५ में किया गया था। महर्षि दयानन्द सरस्वती के निधन के पश्चात् जो अनेक गुरुकुल खुले, उन सबका यही प्रयत्न था कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करें। गुरुकुल काँगड़ी के आदिकाल में इस पद्धति के मूल तत्त्वों के अनुसार व्यवस्थाएँ की भी गई थीं, यद्यपि बाद में उनमें शिथिलता आती गई। पर पण्डित युधिष्ठिर महर्षि द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादित शिक्षा पद्धति एवं पाठविधि का अक्षरशः अनुसरण करने के पक्षपाती थे। उन्होंने यह नियमावलि इसी प्रयोजन से बनायी थी और गुरुकुल विद्यापीठ भैंसवाल में इसका अविकल रूप से अनुसरण किया भी जाता था। इसीलिए आर्यसमाज के अनेक नेता व विद्वान् इससे बहुत प्रभावित हुए थे। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के प्रधान श्री घासीराम ने इसके सम्बन्ध में लिखा था—"पण्डित युधिष्ठिरजी ने मुझे गुरुकुल की पाठविधि, जो उन्होंने बनायी है, सुनाई। मेरी सम्मति में मौलिक सिद्धान्त जिस पर वह बनी है ठीक हैं और वेदों का अध्ययन इसी ढंग से होना चाहिये। जब तक हम ऋषि-निर्दिष्ट पाठ प्रणाली को सामने रखकर उसके अनुकूल कार्य नहीं करेंगे, तब तक गुरुकुल से वैदिक पण्डितों के निकलने की आशा दुराशामात्र होगी। प्रशंसित पण्डितजी भैंसवाल गुरुकुल में इसी पाठविधि के अनुसार कार्य कर रहे हैं।" गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के उपाचार्य पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार ने भैंसवाल गुरुकुल का अवलोकन कर यह सम्मति लिखी थी, कि "यहाँ की कई उत्तम-उत्तम बातें देखकर मैं यह कहना चाहता हूँ, कि अन्य सब गुरुकुलों और शाखा-गुरुकुलों की अपेक्षा इस गुरुकुल में गुरुकुलत्व अधिक है। इन बातों में मुख्य बात है, यहाँ पर सदाचार की तरफ अच्छी तरह ध्यान दिया जाना।"

गुरुकुल भैंसवाल में आर्ष पाठविधि का सूत्रपात कर तथा उसे स्वतन्त्र विद्यापीठ के रूप में परिवर्तित कर पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार सन् १९२५ में राजस्थान चले गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने आर्ष पद्धति के अनुसार गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ को स्थापित किया। उनके बाद गुरुकुल भैंसवाल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता पदों पर स्वामी ब्रह्मानन्द नियुक्त हुए, जो सन् १९२९ तक इस संस्था का संचालन करते रहे। स्वामीजी प्रचारकार्य पर प्रायः गुरुकुल से बाहर जाते-आते रहते थे। अतः संस्था का कार्य सँभालने के लिए पण्डित विश्वनाथ शास्त्री की नियुक्ति की गई। वह गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के स्नातक थे, और व्याकरण, दर्शन आदि विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। गुरुकुल भैंसवाल के पाठ्यक्रम में इन्हीं विषयों की प्रमुखता थी। पण्डित विश्वनाथ शास्त्री ने इनमें अपने शिष्यों को व्युत्पन्न किया, और गुरुकुल के अनेक विद्यार्थी शिक्षा पूर्ण कर स्नातक बनने में समर्थ हुए। सन् १९३२ में इस गुरुकुल को स्थापित हुए १३ वर्ष हो चुके थे, और जो विद्यार्थी शुरू में इसमें प्रविष्ट हुए थे, उनके स्नातक होने का समय आ गया था। सन् १९३२ के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दीक्षान्त संस्कार का भी आयोजन हुआ, जिसमें तीन ब्रह्मचारियों ने स्नातक होकर 'विद्यावारिधि' की उपाधि प्राप्त की। भैंसवाल गुरुकुल के ये प्रथम स्नातक श्री विद्यानिधि, श्री हरिश्चन्द्र और श्री सत्यवीर थे। गुरुकुल भैंसवाल के प्रथम दीक्षान्त संस्कार के अवसर पर स्नातकों को सम्बोधन करते हुए चौधरी छोटूराम ने ये शब्द कहे थे—"हरयाणा की पवित्र भूमि के नौजवानो! मैं आपसे एक ही बात कहना चाहता हूँ। वह यह है कि हरयाणा के देहाती शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए हैं। यदि आप इस रोग को काट सकोगे, तो भक्तजी की मेहनत कामयाब होगी।"

सन् १९३२ के बाद स्नातक बनाने का क्रम प्रतिवर्ष चलता रहा। यह स्वाभाविक था, कि गुरुकुल के स्नातक अपनी कुलमाता की सेवा के लिए उत्साहपूर्वक अग्रसर हो जाएँ और इस संस्था का कार्यभार सँभाल लें। कुछ ही समय में गुरुकुल भैंसवाल का संचालन स्नातकों के हाथों में आ गया, और वे आचार्य, मुख्याधिष्ठाता, प्राध्यापक आदि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदों पर नियुक्त होकर संस्था की सेवा में प्रवृत्त हुए। श्री हरिश्चन्द्र विद्यावारिधि गुरुकुल के आचार्य बने, और श्री विष्णुमित्र, श्री महामुनि, श्री धर्मभानु और श्री धर्मदत्त अन्य पदों पर नियुक्त हुए। ये सब गुरुकुल विद्यापीठ, भैंसवाल के स्नातक थे, और सर्वथा निष्काम भाव व अवैतनिक रूप में अपनी कुलमाता की सेवा के लिए उद्यत हो गये थे। गुरुकुल भैंसवाल की न केवल शिक्षा ही निःशुल्क थीं, अपितु भोजन आदि का व्यय भी उस समय गुरुकुल द्वारा ही वहन किया जाता था। इस दशा में संस्था को निरन्तर आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता था। गुरुकुल के स्नातकों ने अवैतनिक रूप से कार्य करना स्वीकार कर इस समस्या के समाधान में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया था।

सन् १९३२ में गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा के जो स्नातक बनने शुरू हुए, उनकी शिक्षा पूर्णतया उस पाठविधि के अनुसार नहीं हुई थी, जिसका निर्माण पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार द्वारा किया गया था। बाद में उस पाठविधि को जिस प्रकार संशोधित कर अधिक क्रियात्मक एवं सरल बनाया गया, इसका उल्लेख इसी प्रकरण में ऊपर किया जा चुका है। पर स्नातकों की आर्थिक व व्यावहारिक समस्या का समाधान इस संशोधित पाठविधि द्वारा भी नहीं हो पाता था। शिक्षा पूर्ण कर लेने के अनन्तर स्नातकों के सम्मुख जीवन निर्वाह की समस्या का उपस्थित होना सर्वथा स्वाभाविक है। सब कोई इस स्थिति में नहीं होते कि अवैतनिक रूप से धर्मप्रचार व आर्यसमाज की सेवा में लग जाएँ। इसी कारण गुरुकुल भैंसवाल के अनेक स्नातकों ने सरकारी विश्वविद्यालयों की शास्त्री, आचार्य आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, और इस प्रकार जीवन-निर्वाह की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया। इस दशा में यह स्वाभाविक था कि गुरुकुल विद्यापीठ के संचालक व कार्यकर्ता यह विचार करने लगें, कि यदि विद्यार्थियों को स्नातक बनने के पश्चात् शास्त्री, आचार्य आदि की परीक्षाएँ देनी हैं, तो क्यों न विद्यार्थी-काल में ही इन परीक्षाओं में बैठने की अनुमति उन्हें प्रदान कर दी जाए। परिणाम यह हुआ, कि गुरुकुल विद्यापाठ के विद्यार्थी अपनी संस्था की पाठविधि के अनुसार शिक्षा प्राप्त करते हुए पंजाब यूनिवर्सिटी की शास्त्री आदि परीक्षाएँ भी देने लगे। क्योंकि इन परीक्षाओं और उपाधियों को देश की सरकार तथा शिक्षण-संस्थाओं में मान्यता थी, अतः विद्यापीठ के विद्यार्थियों की दृष्टि में भी अपनी संस्था की स्नातक परीक्षा तथा विद्यावारिधि उपाधि की तुलना में शास्त्री का महत्त्व अधिक हो गया, जो अस्वाभाविक नहीं था।

सन् १९३५ तक गुरुकुल भैंसवाल ही ब्रह्मचारियों के भोजन और वस्त्र आदि का व्यय-भार उठाता रहा। १९२० से १९३५ तक के १५ वर्षों में इस संस्था की केवल शिक्षा ही निःशुल्क नहीं रही, अपितु भोजन एवं वस्त्र आदि के लिए भी ब्रह्मचारियों से कोई व्यय नहीं लिया गया। पर गुरुकुल के संस्थापक एवं सर्वेसर्वा श्री भक्त फूलसिंह के समीपवर्ती ग्रामों के झगड़ों को पंचायतों द्वारा निवटवाने तथा हरिजनोद्धार आदि सामाजिक सुधारों के कार्यों में व्यस्त हो जाने के कारण उन द्वारा चन्दा एकत्र करने पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सका। गुरुकुल का खर्च ग्रामवासी जनता के दान से ही चलता था। देहाती क्षेत्र में अकाल पड़ जाने के कारण भी दान प्राप्त करना कठिन हो गया था। इस दशा में गुरुकुल की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई, जिसके परिणामस्वरूप यह निश्चय करना पड़ा कि ब्रह्मचारियों से भोजन का व्यय लिया जाया करे। पर शिक्षा निःशुल्क ही रही।

हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी सत्याग्रह आदि जो अनेक आन्दोलन आर्यसमाज द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाये गये, गुरुकुल भैंसवाल के पदाधिकारियों, ब्रह्मचारियों तथा कार्यकर्ताओं ने उनमें सक्रिय रूप से भाग लिया। हैदराबाद के सत्याग्रह के लिए सत्यग्राही स्वयंसेवकों का जो पहला जत्था गया, उसके नायक गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक एवं आचार्य श्री हरिश्चन्द्र ही थे। बाद में जो जत्थे रोहतक से हैदराबाद गये, उनका नेतृत्व भी गुरुकुल के स्नातकों व शिक्षकों ने ही किया था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि को दृष्टि में रखकर आर्य पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा का जो प्रयत्न गुरुकुल विद्यापीठ द्वारा किया गया था, वह पूर्णतया सफल नहीं हुआ। क्रियात्मक दृष्टि से यह उपयोगी समझा गया, कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की पाठविधि को गुरुकुल विद्यापीठ भैंसवाल में भी अपना लिया जाए, और उसके विद्यालय तथा महाविद्यालय दोनों विभागों की पढ़ाई गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्यक्रम के अनुसार होने लगे। गुरुकुल भैंसवाल में गुरुकुल काँगड़ी विद्यालय का पाठ्यक्रम सन् १९५२ में चालू किया गया, और विद्यार्थियों से वहाँ की 'विद्याधिकारी' (मैट्रिक्युलेशन) की परीक्षा दिलायी जाती रही। विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्यार्थी पंजाब यूनिवर्सिटी की शास्त्री परीक्षा देने लगे। गुरुकुल भैंसवाल में शास्त्री की पढ़ाई की भी विधिवत् व्यवस्था कर दी गई। सन् १९६२ में इस गुरुकुल को काँगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय से महाविद्यालय विभाग की कक्षाएँ प्रारम्भ करने की अनुमति प्राप्त हो गई, और सन् १९६६ में तीन विद्यार्थी विद्यालंकार की परीक्षा में सम्मिलित हुए। इस प्रकार गुरुकुल भैंसवाल ही एकमात्र अन्य ऐसी शिक्षण-संस्था है, जिसमें गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की विद्याधिकारी, विद्याविनोद तथा अलंकार (विद्यालंकार और वेदालंकार) परीक्षाओं की पढ़ाई की व्यवस्था है। इस प्रसंग में यह उल्लेख करना भी आवश्यक है, कि गुरुकुल भैंसवाल में विद्यार्थियों की संख्या गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय तथा महाविद्यालय विभागों के विद्यार्थियों से अधिक है। सन् १९७६ में वहाँ ५०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और अब यह संख्या और भी अधिक हो गई है। इस काल में गुरुकुल काँगड़ी के विद्यालय तथा महाविद्यालय (अलंकार स्तर तक) के विद्यार्थियों की संख्या ३०० से भी कम थी। साधनों की दृष्टि से भी गुरुकुल भैंसवाल पर्याप्त रूप से समृद्ध है। इसकी भूमि का क्षेत्रफल ४०० बीघे है, और भवनों का आनुमानिक मूल्य ५० लाख रुपये के लगभग है। भूमि का उपयोग खेती के लिए भी किया जाता है, और ट्रेक्टर आदि कृषि के सब आधुनिक उपकरण गुरुकुल के पास हैं। गुरुकुल की अपनी गौशाला भी है, जिसमें एक सौ के लगभग गौवें हैं। गुरुकुल की शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है, पर भोजन, वस्त्र आदि का व्यय संरक्षकों को देना होता है। कीमतों के घटने-बढ़ने के साथ भरण-पोषण की शुल्क की मात्रा भी घटती-बढ़ती रहती है। पर यह शुल्क बहुत कम होता है, और अत्यन्त साधारण स्थिति के परिवार भी अपने बच्चों को इस गुरुकुल में पढ़ा सकते हैं।

गुरुकुल भैंसवाल का प्रबन्ध एक सभा के अधीन है, जिसका नाम 'महासभा गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा' है। कोई भी स्त्री या पुरुष, जिसकी आयु इक्कीस वर्ष से कम न हो, जो सभा के उद्देश्यों से सहमत हो और जो आर्य सिद्धान्तों को मानता हो, बारह रुपये वार्षिक देकर या सौ रुपये एक या दो किस्तों में देकर इस महासभा का सदस्य बन सकता है। महासभा को अधिकार है, कि किसी व्यक्ति की विद्वत्ता व समाज सेवा को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि में रखकर उसे महासभा का सम्मानित सदस्य मनोनीत कर सके, पर इस प्रकार मनोनीत किये गये सदस्यों की संख्या कुल सदस्यों के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये। महासभा के अधिकारी निम्नलिखित होते हैं, प्रधान, तीन उपप्रधान, मन्त्री, दो उपमन्त्री, कुलपति और उपकुलपति। इनकी नियुक्ति महासभा द्वारा पाँच वर्ष के लिए की जाती है। जहाँ तक गुरुकुल के संचालन का सम्बन्ध है, सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी उपकुलपति (वाइस चांसलर) होता है। गुरुकुल के सब विभागों की उचित व्यवस्था करना उसी का कार्य है। उपकुलपति की अधीनता व निरीक्षण में ही आचार्य द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी कार्य किये जाते हैं। वर्तमान समय में श्री विष्णुमित्र विद्यामार्तण्ड उपकुलपति के पद पर नियुक्त हैं। पहले जब इस संस्था का प्रबन्ध व संचालन मुख्याधिष्ठाता के अधीन हुआ करता था, तब श्री विष्णुमित्र मुख्याधिष्ठाता पद पर भी रहे थे। कविराज श्री योगेन्द्र सिंह, पण्डित धर्मभानु और श्री कपिलदेव शास्त्री, श्री विष्णुमित्र से पूर्व मुख्याधिष्ठाता के रूप में इस विद्यापीठ की उन्नति में निरन्तर प्रयत्नशील रहे। श्री कपिलदेव शास्त्री आठ वर्ष के लगभग इस संस्था के मुख्याधिष्ठाता रहे, और उनके उद्योग से लाखों रुपयों की इमारतों का निर्माण हुआ। पुस्तकालय पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। गुरुकुल भैंसवाल का विशाल पुस्तकालय, जिसमें बारह हजार के लगभग पुस्तकें हैं, शास्त्रीजी के कर्तृत्व का ही परिणाम है। महासभा गुरुकुल विद्यापीठ के प्रधान के रूप में जिन महानुभावों ने इस संस्था के विकास व उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उनमें दादा घासीराम, दादा मातूराम और चौधरी माडूसिह के नाम उल्लेखनीय हैं। चौधरी माडूसिंह का हरयाणा के सार्वजनिक जीवन में सम्मानास्पद स्थान है, और वह प्रदेश सरकार के शिक्षा मन्त्री भी रह चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि आर्यसमाज की जिन शिक्षण-संस्थाओं ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को अपनाया है, उनमें गुरुकुल विद्यापीठ भैंसवाल का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है।

आर्ष पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम को पढ़कर गुरुकुल भैंसवाल से जो ब्रह्मचारी स्नातक हुए, उनकी संख्या १६० है। गुरुकुल काँगड़ी से विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर जो शास्त्री बने ऐसे स्नातक ८० हैं, और १९६६ से १९८२ तक इस गुरुकुल के ४६ विद्यार्थी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से 'अलंकार' उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

(२) भक्त फूलसिंह

गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा (भैंसवाल) का विवरण देते हुए इस शिक्षण-संस्था के संस्थापक अमर शहीद भक्त फूलसिंह के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है, क्योंकि यह संस्था उन्हीं के अनथक परिश्रम, आस्था एवं बलिदान का परिणाम है। भक्त फूलसिंह का जन्म २४ फरवरी, सन् १८८५ के दिन रोहतक जिले के माछरा ग्राम में हुआ था। उनकी शिक्षा जूआँ, महरौली, खरखोदा और पानीपत के स्कूलों में हुई, और सन् १९०४ में वह सरकारी सेवा में पटवारी नियुक्त हुए। २० वर्ष की आयु में धूपादेवी नामक सुशील कन्या से उनका विवाह हुआ। पटवारी का कार्य करते हुए सन् १९०८ में वह पानीपत के पटवारी प्रीतसिंह के सम्पर्क में आए। प्रीतसिंह सुदृढ़ आर्यसमाजी थे। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर फूलसिंह ने आर्यसमाज की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने आर्यसमाजी बनने का निश्चय कर लिया। वह पानीपत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज के उत्सव पर गये और पण्डित ब्रह्मानन्द से यज्ञोपवीत ग्रहण कर वह समाज में सम्मिलित हो गये। आर्यसमाज के प्रभाव से उन्होंने मांस-भक्षण का परित्याग किया, और निश्चय किया कि भविष्य में वह कभी किसी से रिश्वत नहीं लेंगे। यही नहीं, उन्होंने यह भी निश्चय किया कि पटवारी का कार्य करते हुए जो रिश्वत अव तक उन्होंने ली थी, उसे वापस कर देंगे। रिश्वत की मात्रा ५,००० रुपये के लगभग थी, जिसे उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति को वेच कर लोगों को वापस लौटा दिया।

फूलसिहजी को आर्यसमाज का यह नियम वहुत आकृष्ट करता था—"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" वह अनुभव करते थे कि सरकारी सेवा करते हुए और गृहस्थ जीवन विताते हुए संसार का उपकार नहीं किया जा सकता। अत: उन्होंने सरकारी सर्विस से त्यागपत्र दे दिया, और गृहस्थ आश्रम का परित्याग कर अपनी पत्नी धूपादेवी के साथ विधिवत् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया। अव वह अपना सारा समय आर्यसमाज के कार्य में लगाने लगे। वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने पर उन्होंने यह विचार किया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों के पठन-पाठन के लिए एक विद्यालय स्थापित किया जाए। पर पण्डित ब्रह्मानन्द के सुझाव पर उन्होंने विद्यालय के वजाय एक गुरुकुल की स्थापना करने का निर्णय किया, जिसके परिणामस्वरूप गुरुकुल भैंसवाल की स्थापना हुई। श्री फूलसिह के मन में यह भावना भी प्रवल होती जा रही थी कि शिक्षा जैसे वालकों के लिए आवश्यक है, वैसे ही वालिकाओं के लिए भी है। इसीलिए सन् १९३६ में उन्होंने कन्या गुरुकुल, खानपुर की स्थापना की। गुरुकुल भैंसवाल और कन्या गुरुकुल, खानपुर का हरयाणा के शिक्षा जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन संस्थाओं की स्थापना तथा उन्नति का प्रधान श्रेय भक्त फूलसिह को ही दिया जाना चाहिये। इन गुरुकुलों के लिए धन-संग्रह करने तथा आन्तरिक विवादों का अन्त कर उन्हें उन्नति के पथ पर आगे वढ़ाने में उनका मुख्य कर्तृत्व था।

पर भक्त फूलसिह का कार्यकलाप केवल गुरुकुलों तक ही सीमित नहीं था। शुद्धि और दलितोद्धार के आन्दोलनों में उन्होंने तत्परता से कार्य किया। हरयाणा में कुछ जाट, गूजर और राजपूत औरंगजेव के समय में मुसलमान वना लिये गये थे। आर्यसमाज के प्रभाव से कुछ मूले जाट शुद्ध होकर हिन्दू होना चाहते थे। भक्त फूलसिह ने उन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित करने तथा उनके साथ रोटी-वेटी का सम्वन्ध स्थापित कराने के लिए क्रियात्मक पग उठाए। इसी प्रकार कितने ही अछूत समझे जाने वाले लोगों को उन्होंने द्विज वनाकर समाज में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त कराया।

वैदिक धर्म का प्रचार एवं आर्यसमाज का कार्य करते हुए कई वार भक्त फूलसिह के सम्मुख गम्भीर वाधाएँ उपस्थित हुईं। उन्हें अपने मार्ग से दूर करने व लोगों को अपनी वात को मनवाने के लिए वह 'अनशन व्रत' के उपाय का आश्रय लिया करते थे। महात्मा गांधी ने राजनीतिक क्षेत्र में जिस प्रकार अनशन व्रत का उपयोग किया, वैसे ही भक्त फूलसिह ने सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में इस उपाय का प्रयोग कर लोगों से अपनी वात मनवाने में सफलता प्राप्त की। सन् १९३० में उन्होंने मोट ग्राम में अछूतों (हरिजनों) के निमित्त कुआँ वनवाने के प्रयोजन से २३ दिन अनशन किया था, और अन्त में वह अपने उद्देश्य में सफल हुए थे। इसी प्रकार के अनशन उन्होंने अन्य भी अनेक वार किये थे।

हैदरावाद सत्याग्रह में भक्त फूलसिह ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इस सत्याग्रह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए रोहतक में जो 'सत्याग्रह संघर्ष समिति' संगठित की गई थी, भक्त फूलसिंह सर्व-सम्मति से उसके प्रधान चुने गये थे। वह स्वयं भी सत्याग्रह के लिए हैदरावाद गये। उनके जत्थे पर मुसलमानों द्वारा हमला किया गया, जिसके कारण उन्हें भी चोटें आईं। रोहतक जिले से हैदरावाद सत्याग्रह में जाने वालों की संख्या हजारों में थी। इसका श्रेय भक्त फूलसिंह को ही प्राप्त है।

जिन कारणों से आर्यसमाज ने हैदरावाद में सत्याग्रह किया था, वे पंजाव की लुहारू रियासत में भी विद्यमान थे। हैदरावाद के निजाम के समान लुहारू का नवाव भी आर्यसमाज का विरोधी था, और अपनी रियासत में वैदिक धर्म के प्रचारकों के मार्ग में अनेक प्रकार की रुकावटें डालता था। लुहारू में आर्यसमाज विद्यमान था, पर नवाव की कोप दृष्टि के कारण उसके कार्यकर्ता प्रचार-कार्य नहीं कर पाते थे। समाज के पदाधिकारियों पर झूठे मुकदमे चलाकर रियासत की सरकार द्वारा उन्हें अनेकविध कष्ट भी दिये जाते थे। इस दशा में लुहारू आर्यसमाज के मन्त्री ठाकुर भगवानसिंह भक्त फूलसिंह से आकर मिले और रियासत के आर्यसमाजियों की दुःख गाथा उनके सम्मुख प्रस्तुत की। भक्त फूलसिंह ने लुहारू जाकर वहाँ के नवाव से भेंट की, और उन्हें समझाया कि आर्यसमाज का प्रचार किसी के लिए भी हानिकारक नहीं है, उससे सवका लाभ ही है। इस पर लुहारू में आर्यसमाज का उत्सव करने की अनुमति दे दी गई, और एप्रिल, १९४१ में वहाँ समाज का उत्सव वड़ी धूमधाम के साथ मनाने की सव तैयारी कर ली गई। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को इस अवसर पर विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया। पर यह उत्सव शान्तिपूर्वक नहीं हो सका। उसकी नगर यात्रा (जुलूस) पर लुहारू की पुलिस ने आक्रमण कर दिया। भक्तजी जुलूस में सवसे आगे थे। सिपाहियों की लाठी वर्षा से उन्हें वहुत चोटें आईं और दो मास तक हॉस्पिटल में चिकित्सा के वाद ही वह स्वास्थ्य लाभ कर सके। केवल लुहारू में ही नहीं, आर्यसमाज का जहाँ भी कोई काम हो, वैदिक धर्म के लिए जहाँ कोई संघर्ष चल रहा हो, भक्त फूलसिंह पूरी लगन के साथ उसमें हाथ वटाने के लिए तत्पर रहा करते थे।

भक्त फूलसिंह द्वारा शुद्धि का कार्य वड़े उत्साह के साथ किया जा रहा था। वहुत-से मुसलमानों को उन्होंने शुद्ध कर आर्य वना लिया था। मुसलमान इससे वहुत क्रुद्ध थे। कुछ पथभ्रष्ट मुसलमानों ने उनकी हत्या की योजना वनाई, जिसमें वे सफल भी हो गये। भक्तजी कन्या गुरुकुल, खानपुर में रह रहे थे, कि रात के समय कुछ मुसलमान सैनिकों के वेश में जीप पर वैठकर वहाँ पहुँच गये। १४ अगस्त, सन् १९४२ का दिन था। महायुद्ध चल रहा था। सैनिक वेश में आये हुए मुसलमान षड्यन्त्रकारियों ने भक्तजी से कहा —"हमको पता लगा है कि तुम यहाँ फौजी भगोड़ों को रखते हो! तुम सरकार से गद्दारी करते हो।" इस पर भक्त फूलसिंह ने उत्तर दिया—"भाई! यहाँ कोई भी फौजी भगोड़ा नहीं रहता है, आप पूर्ण विश्वास करें।" पर वे तो उनकी हत्या के लिए आये थे। उन पर वन्दूक से तीन फायर किये गये, जिसके परिणामस्वरूप उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई, और भक्त फूलसिंह धर्म के लिए शहीद हो गये। वे सच्चे धर्मप्रेमी आर्य थे। उनका सारा जीवन धर्म तथा समाज की सेवा में व्यतीत हुआ, और धर्म के लिए ही उन्होंने अपनी वलि दे दी। गुरुकुल भैंसवाल और कन्या गुरुकुल खानपुर उनके सत्कर्मों, समाज सेवा और शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य की स्मृति को सदा सुरक्षित रखेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) कन्या गुरुकुल, खानपुर कलाँ

गुरुकुल भैंसवाल के समान कन्या गुरुकुल, खानपुर कलाँ का संचालन भी 'महासभा गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा' द्वारा किया जाता है। इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९३६ में भक्त फूलसिंह ने की थी। इस समय यह संस्था बहुत विकसित हो चुकी है। विद्यालय विभाग के अतिरिक्त इसमें प्रशिक्षण महाविद्यालय, आर्ट्स डिग्री कॉलिज, गृह विज्ञान महाविद्यालय तथा आयुर्वेद महाविद्यालय भी विद्यमान हैं, और छात्राओं की संख्या २५०० से भी अधिक है। कन्या गुरुकुल में ४ प्रिंसिपल तथा १०० अध्यापिकाएँ कार्य कर रही हैं। संस्था के पास ५०० बीघे के लगभग भूमि है, और भू-भवन सम्पत्ति का मूल्य एक करोड़ रुपये के लगभग है। गुरुकुल की अपनी गौशाला है, और खेती के लिए ट्रैक्टर आदि सब आधुनिक उपकरण वहाँ विद्यमान हैं। वार्षिक बजट १४ लाख रुपये के लगभग है। आचार्या श्री सुभाषिणीजी हैं, जिन्हें भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' की मानद उपाधि प्राप्त है। पण्डित विष्णुमित्र विद्यामार्तण्ड गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा के वाइस-चान्सलर की स्थिति में कन्याओं की इस संस्था की भी देख-रेख करते हैं। उत्तरी भारत की यह सम्भवतः, कन्याओं की सबसे बड़ी शिक्षण-संस्था है। बालिकाओं और महिलाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में आर्यसमाज के कार्यकलाप पर इस ग्रन्थ में विशद रूप से अन्य अध्यायों में प्रकाश डाला गया है। कन्या गुरुकुल खानपुर कलाँ का विस्तृत विवरण यथास्थान दिया गया है। यहाँ उसका उल्लेख केवल यह प्रदर्शित करने के लिए किया गया है, कि गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा स्त्रीशिक्षा के लिए भी विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदहवाँ अध्याय

श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, गुरुकुल झज्झर एवं अन्य आर्ष शिक्षण-संस्थाएँ

(१) आर्ष गुरुकुलों की परम्परा

बहुत-सी ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिन्हें 'गुरुकुल' कहा जाता है। पर इन सबका स्वरूप एक सदृश नहीं है। न केवल इनकी पाठविधि में ही अन्तर है, अपितु इनके विद्यार्थियों के रहन-सहन और दिनचर्या में भी अनेकविध भेद पाये जाते हैं। आधुनिक युग में गुरुकुलों की स्थापना का प्रारम्भ स्वामी दर्शनानन्द महाराज द्वारा किया गया था, जिन्होंने कि सिकन्दराबाद, बदायूँ, विरालसी और ज्वालापुर में गुरुकुल स्थापित किये थे। इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। न केवल शिक्षा ही निःशुल्क थी, अपितु भोजन और निवास आदि का व्यय भी गुरुकुल द्वारा ही किया जाता था। स्वामी दर्शनानन्द निःशुल्क शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व देते थे, और इसे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आधारभूत सिद्धान्त मानते थे।

महात्मा मुंशीराम ने जब गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार) की स्थापना की, तो इसमें शिक्षा को तो निःशुल्क रखा गया, पर भरण-पोषण के लिए दस रुपये मासिक फीस ली जाने लगी, जो बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में रुपये की क्रय क्षमता को दृष्टि में रखते हुए बहुत कम नहीं थी और मध्यवित्त के परिवारों के लिए भी जिसे प्रदान कर सकना सुगम नहीं था। गुरुकुल काँगड़ी की पद्धति का अनुसरण कर जो अन्य गुरुकुल खोले गये, उनमें भी भरण-पोषण को निःशुल्क नहीं रखा गया, यद्यपि शुल्क की मात्रा सब गुरुकुलों में एक बराबर नहीं थी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा प्रणाली तथा पाठविधि के सम्बन्ध में जिन मन्तव्यों का प्रतिपादन किया था, सब गुरुकुल उन्हें मान्य समझते थे। गुरुकुल में बालकों व बालिकाओं का प्रवेश छोटी आयु में किया जाना चाहिये, गुरुकुल में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात् विद्यार्थियों का अपने माता-पिता व परिवार के साथ विशेष सम्बन्ध न रहे, अपितु आचार्य व गुरु को ही वे अपना पिता समझें, गुरु और शिष्य में पिता-पुत्र का सम्बन्ध रहे, गुरुकुल के विद्यार्थियों का निवास, भोजन, वस्त्र, रहन-सहन आदि सब एक समान हो, चाहे वे धनी परिवार के हों या निर्धन माता-पिता की सन्तान हों, ब्रह्मचारियों का जीवन तपस्यामय और रहन-सहन सादा हो, सब ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन बिताएँ—ये बातें सब गुरुकुलों के संचालकों को समान रूप से स्वीकार्य थीं, और उन द्वारा इन्हें क्रियान्वित करने का प्रयत्न भी किया जाता था। इसमें सन्देह नहीं, कि दिनचर्या और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहन-सहन में भी सब गुरुकुल एक सदृश नहीं थे। परिस्थितियों तथा साधनों के एक समान न होने के कारण विविध गुरुकुलों के विद्यार्थियों के रहन-सहन तथा जीवनस्तर में भेद हो जाना अस्वाभाविक नहीं था। पर यह स्पष्ट है, कि गुरुकुलों का जीवन अन्य शिक्षण-संस्थाओं के विद्यार्थियों के जीवन से पर्याप्त रूप से भिन्न था, और इस भिन्नता का प्रधान कारण शिक्षाविषयक वे मन्तव्य ही थे जिनका प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया था और जिनका अनुसरण करने का प्रयत्न सभी गुरुकुलों द्वारा किया जा रहा था।

महर्षि ने केवल शिक्षा पद्धति विषयक मन्तव्य ही प्रतिपादित नहीं किये हैं, उन्होंने एक ऐसी पाठविधि का भी निरूपण किया है, जिसमें संस्कृत, वेद-वेदांग, तथा आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन को प्रमुख स्थान प्राप्त है। उनके विचार में शिक्षाकाल में विद्यार्थियों को आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ाये जाने चाहिये। उन्होंने बहुत-से ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थों को पढ़ाने का निषेध भी किया है, जो आर्ष या ऋषिकृत नहीं हैं। रघुवंश, किरातार्जुनीय आदि संस्कृत के महाकाव्य, तुलसीकृत रामचरितमानस, पुराण, तन्त्र आदि का पाठविधि में स्थान दिया जाना महर्षि को अभिमत नहीं था। संस्कृत व्याकरण के अध्यापन के लिए वह पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य के प्रयोग के पक्ष में थे, सिद्धान्त कौमुदी और मनोरमा आदि के नहीं। महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि में गणित, ज्योतिष, शिल्प आदि को भी स्थान दिया गया है, पर प्रमुखता वेद-वेदांगों की है, और उनकी शिक्षा के पश्चात् ही इन विषयों की पढ़ाई होनी है। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने जो गुरुकुल स्थापित किये थे, उनमें प्रधानतया संस्कृत, व्याकरण तथा विविध वेद-वेदांगों की शिक्षा की ही व्यवस्था थी। अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक विषयों (गणित, भूगोल, पदार्थ विज्ञान, रसायन, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि) की पढ़ाई की उनमें उपेक्षा की गई थी। शुरू में गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि में भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को समुचित स्थान नहीं दिया गया था। सन् १९०६ तक गुरुकुल काँगड़ी में केवल सात श्रेणियाँ थीं, जिनमें प्रधानतया संस्कृत व्याकरण तथा संस्कृत साहित्य की ही पढ़ाई होती थी। सातवीं से ऊपर की कक्षाओं के खोले जाने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ, कि क्या इनमें भी वेद-वेदांगों की ही पढ़ाई हो या इनके साथ-साथ नये ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा की भी। इस प्रश्न पर गुरुकुल काँगड़ी के संचालकों एवं अध्यापक वर्ग में जो मतभेद व विवाद हुए, उनका उल्लेख पिछले एक अध्याय में किया जा चुका है। उन्हीं के कारण पं० गंगादत्त (स्वामी शुद्धबोध तीर्थ), जो प्रारम्भ से ही गुरुकुल के आचार्य पद पर कार्य कर रहे थे, गुरुकुल को छोड़कर चले गये और कुछ समय पश्चात् उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का कार्यभार सँभाल लिया, क्योंकि वहाँ की पाठविधि में वेद-वेदांगों तथा आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा को ही प्रधान स्थान प्राप्त था। गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि में संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन शास्त्र एवं वेद आदि को समुचित महत्त्व अवश्य दिया गया था, पर साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई की भी उसमें उपेक्षा नहीं की गई थी। काँगड़ी गुरुकुल के संचालकों का प्रयत्न था, कि विद्यालय विभाग के विद्यार्थी दसवीं कक्षा तक अंग्रेजी, गणित, भूगोल, इतिहास, रसायन, भौतिकी आदि का उतना ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लें, जितना कि सरकारी स्कूलों के दसवीं श्रेणी के विद्यार्थियों को होता है। साथ ही, संस्कृत साहित्य, व्याकरण और दर्शन में उनकी योग्यता शास्त्री परीक्षा के स्तर की हो जानी चाहिये। इस प्रकार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि में प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन में समन्वय करने का प्रयत्न किया गया था, और इस कार्य में गुरुकुल को पर्याप्त रूप से सफलता भी प्राप्त हुई थी।

पर गुरुकुल की पाठविधि में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा को स्थान देना अनेक आर्य विद्वानों को समुचित प्रतीत नहीं होता था। वे इसे महर्षि द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के विरुद्ध समझते थे। गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि में रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि संस्कृत काव्यों, रामचरितमानस, सूर, कबीर, केशवदास आदि हिन्दी कवियों की कविताओं के संग्रह तथा सिद्धान्तकौमुदी को भी पाठ्य-पुस्तकों के रूप में रखा गया था। इन अनार्ष ग्रन्थों, जिनका महर्षि ने स्पष्ट रूप से निषेध किया था, का पाठविधि में रखा जाना इन आर्य विद्वानों की दृष्टि में सर्वथा अनुचित था। गुरुकुल काँगड़ी का अनुसरण कर अन्य भी अनेक गुरुकुल न केवल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान व अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई पर बल देने में तत्पर थे, अपितु साथ ही मध्य युग के अनार्ष ग्रन्थों को भी उन्होंने अपनी पाठविधि में स्थान दिया हुआ था। आर्य जगत् में इसका विरोध होना स्वाभाविक था। इसी का यह परिणाम हुआ, कि ऐसे गुरुकुलों की स्थापना प्रारम्भ हुई, जिनमें वेद-वेदांगों की शिक्षा की प्रधानता है, और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान जिनमें या तो पढ़ाये ही नहीं जाते और या उनका स्थान अत्यन्त गौण है। इन्हीं को 'आर्ष गुरुकुल' कहा जाता है।

इस प्रसंग में यह निर्दिष्ट कर देना उपयोगी है, कि आर्ष गुरुकुलों की परम्परा का सूत्रपात करने का प्रधान श्रेय एक ऐसे व्यक्ति को है जिसकी शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई थी और जिसने वहाँ नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर 'विद्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की थी। यह आर्य विद्वान् पण्डित युधिष्ठिर (स्वामी व्रतानन्द) थे, जिन्होंने सन् १९०२ में गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट होकर महात्मा मुंशीराम के चरणों में रहते हुए विद्याध्ययन किया था, और सन् १९१४ में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। गुरुकुल में पढ़ते हुए ही उनका यह विचार बन गया था, कि ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता है जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि का अविकल रूप से अनुसरण किया जाता हो। गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि को वह निर्दोष व समुचित नहीं मानते थे। इसीलिए स्नातक बनते समय उन्होंने अपना यह संकल्प स्पष्ट रूप से आर्य जनता के सम्मुख प्रकट कर दिया था, कि वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश नहीं करेंगे, अपितु ब्रह्मचारी से सीधे संन्यासी बनकर एक ऐसे गुरुकुल की स्थापना करेंगे, जो महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप होगा और जिसमें उनकी पाठविधि के अनुसार ही पढ़ाई होगी। पर अपने संकल्प को वह शीघ्र पूरा नहीं कर सके। अनेक वर्षों तक उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की सेवा में रहकर वैदिक धर्म का प्रचार किया, और स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित अखिल भारतीय शुद्धि सभा में भी काम किया। सन् १९२२ में जब भैंसवाल (हरयाणा) में गुरुकुल की स्थापना हुई, तो उनसे उसका आचार्य पद ग्रहण करने की प्रार्थना की गई, जिसे उन्होंने इस आशा से स्वीकार कर लिया कि वह इस संस्था में महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित कर सकेंगे। पर उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई। यद्यपि गुरुकुल भैंसवाल में कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ करा सकने में वह सफल हुए, जिनसे ब्रह्मचर्य पूर्वक सदाचारमय व अनुशासित जीवन बिताने में सहायता मिलती थी, पर उसकी पाठविधि में केवल आर्ष ग्रन्थों को ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान देने की बात वह गुरुकुल के संचालकों से स्वीकार नहीं करा सके। भैंसवाल गुरुकुल में काँगड़ी की पाठविधि ही चलती रही, और उसकी स्थिति काँगड़ी के शाखा गुरुकुल की ही बनी रही। पर युधिष्ठिरजी ने अपने प्रयत्न को नहीं छोड़ा। कुछ समय पश्चात् वह अपने प्रयत्न में सफल हो गये, और गुरुकुल भैंसवाल का काँगड़ी गुरुकुल के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा। सन् १९२४ में इस गुरुकुल ने 'गुरुकुल विद्यापीठ, हरयाणा भैंसवाल' का रूप प्राप्त कर लिया, और इसमें वेद-वेदांगों के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया जाना शुरू हुआ। पर एक आदर्श गुरुकुल की जो कल्पना श्री युधिष्ठिर विद्यालंकार के सम्मुख थी, उसे क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने अपने प्रयास को जारी रखा और उसी के परिणाम स्वरूप गुरुकुल चित्तौड़ की स्थापना हुई, जिसे आर्ष परम्परा का प्रथम गुरुकुल कहा जा सकता है।

(२) गुरुकुल चित्तौड़ गढ़

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार शिक्षा देने के लिए पण्डित युधिष्ठिर जैसा गुरुकुल खोलना चाहते थे, अनेक आर्य सज्जन उसके लिए सब प्रकार से सहायता देने को तैयार थे। उनके सम्मुख अनेक प्रस्ताव उपस्थित किये गये। अजमेर, टंकारा, उदयपुर, जोधपुर, करतारपुर आदि के उत्साही आर्यों ने अपने नगर के समीप गुरुकुल खोलने के लिए युधिष्ठिरजी से आग्रह किया। भैंसवाल गुरुकुल में तो वह कार्य कर ही चुके थे। उसके संचालकों ने भी यह चाहा, कि युधिष्ठिरजी इसी को अपनी कल्पना के अनुसार परिवर्तित कर लें। पर युधिष्ठिरजी का ध्यान चित्तौड़ की ओर था। राणा प्रताप की वीर गाथाएँ उन्हें विशेष रूप से आकर्षित करती थीं। वह जानते थे कि चित्तौड़ एक वीर भूमि है, जिसके निवासी अपने देश और धर्म के लिए तन, मन, धन की आहुति देने के लिए सदा तत्पर रहे हैं। गुरुकुल काँगड़ी में शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने यह भी पढ़ा था, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं एक गुरुकुल चित्तौड़ में खोलना चाहते थे। ऐसा कहा जाता है, कि राजस्थान में धर्मप्रचार करते हुए जब महर्षि चित्तौड़ पधारे थे, तो उन्होंने अपने शिष्य स्वामी आत्मानन्द से कहा था—"चित्तौड़ गढ़ वह स्थल है जिसे देखकर प्रत्येक मनुष्य धर्म और देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रोत्साहित होता है। अहा! निस्सन्देह यह अत्यन्त कल्पनाकारक बात होगी, यदि चित्तौड़ गढ़ में गुरुकुल स्थापित हो सके। हमारे देश के नवयुवक अपने जीवन की उन्नति के लिए सर्वोत्तम शिक्षा इसी स्थान पर प्राप्त कर सकेंगे।" गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश करते हुए महात्मा मुंशीराम का ध्यान भी चित्तौड़ गढ़ की ओर गया था और वहाँ गुरुकुल खोलने की इच्छा इन्होंने अपने समाचार-पत्र सद्धर्मप्रचारक में प्रकट भी की थी। परन्तु कतिपय कारणों से उन्हें यह विचार छोड़ना पड़ा था। पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार धुन के पक्के थे। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ मार्ग में क्यों न आएँ, वे चित्तौड़ में ही गुरुकुल की स्थापना करेंगे।

मार्च, १९२७ में गुरुकुल काँगड़ी का रजत जयन्ती महोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। उसी अवसर पर श्री युधिष्ठिर ने संन्यास आश्रम में प्रवेश किया, और श्री नारायण स्वामीजी महाराज से दीक्षा लेकर वह युधिष्ठिर से 'व्रतानन्द' बन गये। अब उन्होंने चित्तौड़ गढ़ में गुरुकुल स्थापित करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। संन्यास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रम में प्रवेश के केवल छह मास पश्चात् उन्होंने उदयपुर में गुरुकुल की स्थापना कर दी, जिसके व्यवस्थापक तथा अध्यक्ष राजाधिराज श्री अमरसिंह थे। इस बीच में स्वामी व्रतानन्द चित्तौड़ में गुरुकुल के लिए सब आवश्यक तैयारी करते रहे, और दो वर्ष बाद सन् १९२९ की शीत ऋतु में गुरुकुल को चित्तौड़ गढ़ ले आया गया। इसमें सन्देह नहीं, कि चित्तौड़ में जो स्थान गुरुकुल के लिए चुना गया, वह अत्यन्त रमणीक है। इसके दोनों ओर दो नदियाँ बहती हैं, गम्भीरी और बेड़च। इनके मध्य में स्थित भूमि शस्य श्यामल, अत्यन्त रम्य व सुन्दर है। सामने कुछ दूरी पर चित्तौड़ का विशाल दुर्ग पर्वतमाला के शिखर पर गर्व के साथ सिर उठाये खड़ा है, और दर्शकों को बलिदान, देशभक्ति तथा स्वधर्म के लिए मर मिटने की प्रेरणा देता हुआ प्रतीत होता है। गुरुकुल के ब्रह्मचारी, शिक्षक और कर्मचारी उसे देखकर मेवाड़ के राजपूतों की वीर गाथाओं का स्मरण कर उनका अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

स्वामी व्रतानन्द ने गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये थे—(१) ब्रह्मचारियों को महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षण शैली के अनुसार सांगोपांग चारों वेद (कम से कम एक वेद) के वेत्ता और अष्टांग योग में कुशल योगाभ्यासी (न्यून से न्यून यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार का अभ्यासी) विद्याव्रत स्नातक बनाना। (२) गुण-कर्मानुसार प्राचीन वर्णव्यवस्था को पुनः प्रचलित करना। (३) वैदिक धर्म के आदर्श उपदेशक, अध्यापक तथा नागरिक उत्पन्न करना। (४) पूर्वी तथा पश्चिमी सभ्यता, दोनों के शुभ गुणों को धारण करके सकल भूमण्डल को निष्पक्षपातता, स्वार्थशून्यता, सत्यता एवं सावधानतापूर्वक सेवा करने वाले स्नातक तैयार करना। (५) बालकों के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की शक्तियों को इस प्रकार विकसित करना जिससे कि वे अपना जीवननिर्वाह भी सफलता पूर्वक कर सकें और दूसरों के दुःखों को दूर करने तथा सकल भूमण्डल का उपकार करने में भी निरन्तर तत्पर रहें।

चित्तौड़ गढ़ गुरुकुल के जो उद्देश्य निर्धारित किये गये थे, उनमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि उनमें सांगोपांग चारों वेदों की पढ़ाई को प्रमुख स्थान दिया गया था। प्रत्येक ब्रह्मचारी से यह अपेक्षा की जाती थी, कि वह कम से कम एक वेद का वेत्ता अवश्य हो जाए, और वह भी अंगों तथा उपांगों के साथ। वेदों की यह पढ़ाई भी महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के अनुसार की जाती थी। पर इस गुरुकुल के विद्यार्थियों के लिए केवल विद्या का अभ्यास ही पर्याप्त नहीं था। उनके लिए यह भी आवश्यक था कि वे व्रताभ्यास भी करें और विद्याव्रत स्नातक बनें। यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार का अभ्यास कर उन्हें अष्टांग योग में भी प्रवीणता प्राप्त करनी होती थी। स्वामी व्रतानन्द की दृष्टि में विद्या और व्रत दोनों का एक समान महत्त्व था। वह चाहते थे, कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी जहाँ विद्या पढ़कर विद्वान् बनें, वहाँ साथ ही सदाचारी, कर्तव्यपरायण, धार्मिक और तपस्वी भी हों। इसी कारण उन्होंने गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ में व्रताभ्यास की परिपाटी का प्रारम्भ किया था। जब स्वामीजी (पण्डित युधिष्ठिरजी) गुरुकुल भैंसवाल के आचार्य थे, तो वहाँ भी उन्होंने व्रताभ्यास की पद्धति को लागू किया था। पर इसे समुचित महत्त्व वह गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ में ही दे सके। विद्या के साथ-साथ व्रत की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से देना इस गुरुकुल की अनुपम विशेषता है। जैसा कि इस शिक्षण-संस्था के उद्देश्यों में कहा गया है, इसमें शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सबकी शक्तियों को विकसित करने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न किया जाता है। शारीरिक उन्नति के लिए इस गुरुकुल में दण्ड, बैठक, दौड़, कुश्ती आदि की समुचित व्यवस्था तो की ही गई है, पर साथ ही लाठी, तलवार, धनुष-बाण तथा बन्दूक चलाना भी सिखाया जाता है।

शुरू में गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ की पाठविधि में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का स्थान बहुत गौण था। वहाँ प्रधानतया संस्कृत व्याकरण, निरुक्त, निघण्टु, वेद, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों की पढ़ाई की ही व्यवस्था थी। व्याकरण पढ़ाने के लिए अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का ही प्रयोग किया जाता था, और अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन वहाँ वर्जित था। पर समय की परिस्थितियों से इस आर्ष गुरुकुल को भी अपने पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन करने के लिए विवश होना पड़ा। सन् १९५२ में उसका जो विधान बना, उसके अनुसार वहाँ १६ कक्षाएँ हैं – (१) **सामान्य या प्रारम्भिक विद्यालय**—पहली से पाँचवीं कक्षा तक। (२) **माध्यमिक विद्यालय**—छठी से दसवीं कक्षा तक। (३) **महाविद्यालय**—ग्यारहवीं से सोलहवीं तक। प्रारम्भिक विद्यालय की पाठविधि वही है, जो राजस्थान सरकार द्वारा प्राइमरी स्कूलों के लिए निर्धारित है। पर धर्म तथा सदाचरण की शिक्षा इसमें अतिरिक्त रूप से दी जाती है। माध्यमिक विद्यालय में संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य, आर्य भाषा (हिन्दी), गणित, भूगोल, इतिहास, अंग्रेजी, भाषाविज्ञान और औद्योगिक शिक्षा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गई है। माध्यमिक विद्यालय की पाँच कक्षाओं में संस्कृत व्याकरण और संस्कृत साहित्य की पढ़ाई को विशेष महत्त्व देते हुए आधुनिक विषयों को भी समुचित स्थान दिया गया है। महाविद्यालय विभाग में पाणिनीय व्याकरण, महाभाष्य और निरुक्त के अध्ययन के पश्चात् एक वेद अर्थसहित पढ़ना होता है। इसके अतिरिक्त किसी एक लौकिक (आधुनिक) विषय (यथा राजनीति, आयुर्वेद आदि) का भी विशेष ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक रखा गया है।

गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ की इस पाठविधि का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि अब वहाँ केवल वेद-वेदांगों की ही पढ़ाई नहीं होती, अपितु उनके साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अनेक विषयों तथा अंग्रेजी भाषा का भी अध्यापन होता है। यह महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के प्रतिकूल नहीं है। महर्षि इस बात पर बहुत बल देते थे, कि ब्रह्मचारियों को आर्ष ग्रन्थ ही पढ़ाये जाएँ। मध्यकालीन काव्य साहित्य को पढ़ाने के वह इस कारण विरुद्ध थे, क्योंकि उसमें शृंगार रस का भी समावेश है। उन्हें वे 'विषसम्पृक्त अन्नवत्' परित्याज्य मानते थे। गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ में संस्कृत की शिक्षा के लिए इस साहित्य का उपयोग नहीं किया जाता, और व्याकरण आदि वेदांगों की पढ़ाई के लिए भी आर्ष ग्रन्थ ही प्रयुक्त किये जाते हैं।

सन् १९५२ में स्वीकृत हुई नियमावलि के अनुसार गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को निम्नलिखित उपाधियाँ प्रदान किये जाने की व्यवस्था की गई है—

(१) दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर—वेदाधिकारी।

(२) सोलहवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर—वेदवागीश और शास्त्री।

(३) वेदवागीश और शास्त्री उपाधि प्राप्त जो ब्रह्मचारी किसी एक विषय को लेकर मौलिक अनुसन्धान करे, उसे बृहस्पति।

ये उपाधियाँ गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ की अपनी हैं। इस संस्था की शिक्षा तथा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था में सरकार का न कोई हाथ है और न वह किसी प्रकार से हस्तक्षेप ही करती है। अपनी विशेषताओं को कायम रखते हुए यह गुरुकुल स्वतन्त्र रूप से अपने विकास में तत्पर है। इसकी शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क है। भरणपोषण के लिए शुल्क अवश्य लिया जाता है, पर उसकी मात्रा अपेक्षाकृत कम ही है। सन् १९४० में यह शुल्क दस रुपये मासिक था। इस समय इसकी मात्रा कुछ अधिक है। भरण-पोषण के शुल्क की कमी का एक कारण यह है, कि गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ के पास कृषि योग्य भूमि इतनी पर्याप्त है, कि उससे शाक-सब्जी व फल समुचित मात्रा में उत्पन्न किये जा सकते हैं, और कुछ अन्न भी उपलब्ध हो जाता है। इनका उपयोग ब्रह्मचारियों के भरणपोषण में ही किया जाता है। गुरुकुल की अपनी गौशाला भी है, जिससे ब्रह्मचारियों को शुद्ध दूध और घी की प्राप्ति हो जाती है। गुरुकुल का अपना वाचनालय, पुस्तकालय, संग्रहालय, चिकित्सालय आदि भी है, जिनसे ब्रह्मचारियों के अपने मानसिक व शारीरिक विकास में अच्छी सहायता मिलती है।

गुरुकुल की व्यवस्था और संचालन के लिए दो सभाएँ हैं—महासभा और प्रबन्धकारिणी सभा। महासभा के सदस्य अनेक प्रकार के होते हैं। वार्षिक चन्दा देने वाले, एक साथ पाँच सौ या अधिक रुपये प्रदान करने वाले और वे संरक्षक जिन्होंने पाँच हजार या अधिक रुपये दान में दिये हों। इनके अतिरिक्त गुरुकुल चित्तौड़ के वे सब स्नातक महासभा के सदस्य होते हैं जो वेदवागीश, शास्त्री या बृहस्पति की उपाधि प्राप्त कर चुके हों। विद्या, सेवा एवं अनुभव के आधार पर भी महासभा के सदस्य मनोनीत किये जा सकते हैं। प्रबन्धकारिणी सभा महासभा के नियन्त्रण व निर्देशन में गुरुकुल का प्रबन्ध करती है। वर्तमान समय में इस सभा के २१ सदस्य हैं, और बम्बई के सेठ प्रतापसिंह शूरजी इस सभा के प्रधान हैं। विधान के अनुसार स्वामी व्रतानन्द महाराज गुरुकुल महासभा के आजीवन सदस्य थे। पर ११ अक्तूबर, सन् १९८० के दिन उनका देहावसान हो गया और उनका वरद हस्त इस संस्था पर से उठ गया। पर उनके शिष्य गुरुकुल को उत्साह तथा योग्यता के साथ संचालन करने में तत्पर हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों व मन्तव्यों पर आर्यसमाज के सभी विद्वान् व सदस्य आस्था रखते हैं। उनकी पाठविधि को भी सब आदर्श व समुचित मानते हैं। पर इसका प्रयोग व अनुसरण करने का जो गम्भीर प्रयत्न स्वामी व्रतानन्द ने किया, वह वस्तुतः स्तुत्य व श्लाघनीय है। गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ उनके इसी प्रयत्न का मूर्त रूप है।

(३) गुरुकुल झज्झर

पण्डित विश्वम्भरनाथ के पुरुषार्थ से सन् १९१५ में झज्झर के समीप किस प्रकार एक गुरुकुल की स्थापना हुई थी, किस प्रकार उसके जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहे और किस प्रकार आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द सरस्वती) ने सितम्बर, १९४२ में इसका संचालन अपने हाथों में ले लिया, इस सब पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। आर्यसमाज के इतिहास में स्वामी ओमानन्द का अत्यन्त ऊँचा स्थान है। वह एक तपस्वी आदर्श संन्यासी हैं, और उनका कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली तथा पाठविधि के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना तथा उनका सफलतापूर्वक संचालन करने के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण कार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने किया है, वह इतिहास में सुवर्ण के अक्षरों में लिखने के योग्य है। गुरुकुल झज्झर को एक समुन्नत आर्ष गुरुकुल के रूप में विकसित करने का प्रधान श्रेय इन्हीं को दिया जाना चाहिये।

२२ सितम्बर, १९४२ के दिन जब आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) ने झज्झर गुरुकुल का संचालन अपने हाथों में लिया, तो वहाँ एक भी विद्यार्थी नहीं था। भवन सब खाली पड़े थे, और उनकी मरम्मत तक नहीं हुई थी। यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि गुरुकुल को फिर से व्यवस्थित रूप से चलाने में कुछ समय लग जाए। तीन वर्ष तक मा० दीपचन्द, पण्डित रघुनाथसिंह और श्री उमरावसिंह के सहयोग से आचार्य भगवान् देव गुरुकुल को सुव्यवस्थित दशा में लाने के लिए प्रयत्न करते रहे, और सन् १९४५ तक २० विद्यार्थियों ने उसमें प्रवेश प्राप्त कर लिया। इस काल में श्री धर्मसिंह गुरुकुल के अधिष्ठाता (प्रबन्धकर्ता) थे, और हिसाब-किताब रखना एवं प्रबन्ध करना उन्हीं के हाथों में था। उपाचार्य के पद पर श्री विश्वप्रिय भाष्याचार्य नियुक्त थे, जो अध्यापन के कार्य में आचार्य भगवान् देव के प्रधान सहायक थे। गुरुकुल की सब व्यवस्था ठीक हो जाने पर जब वहाँ विद्यार्थी प्रविष्ट होने लगे, तो सन् १९४६ के प्रारम्भ से उसमें महर्षि द्वारा प्रतिपादित आर्ष पाठविधि के अनुसार पढ़ाई शुरू कर दी गयी। गुरुकुल की सुव्यवस्था तथा शिक्षा की उत्कृष्टता से आकृष्ट होकर नये विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में वहाँ अध्ययन के लिए आने लगे, और सन् १९५० तक गुरुकुल झज्झर में ब्रह्मचारियों की संख्या ५८ तक पहुँच गई।

फरवरी, १९४७ में गुरुकुल का रजत जयन्ती महोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। देश के अनेक नेता और विद्वान् इस अवसर पर गुरुकुल पधारे। इनमें डा० राजेन्द्रप्रसाद का नाम उल्लेखनीय है। कुछ समय बाद उन्होंने ही स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति का पद सुशोभित किया। बीस हजार के लगभग रुपये इस महोत्सव में गुरुकुल के लिए दान प्राप्त हुआ, जिसका उपयोग प्रधानतया नये भवनों के निर्माण के लिए किया गया, क्योंकि निवासस्थान की कमी के कारण अधिक विद्यार्थियों को प्रविष्ट करने में कठिनाई उत्पन्न हो रही थी। इसके बाद भी गुरुकुल के लिए जनता द्वारा उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान की जाती रही। आर्ष पद्धति से संचालित इस गुरुकुल के प्रति आर्य जनता विशेष रूप से आकृष्ट थी। श्री दयानन्द वेद विद्यालय, गौतमनगर (दिल्ली) के आचार्य पण्डित राजेन्द्रनाथ शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती) ने इसी काल में गुरुकुल झज्झर का अवलोकन कर उसके सम्बन्ध में ये विचार प्रकट किये थे—"गुरुकुल झज्झर हरयाणा प्रान्त का प्रधान गुरुकुल है जो उस आर्ष पाठविधि को सफलता के साथ क्रियात्मक रूप दे रहा है जिसे भारत के अन्य समृद्धिशाली गुरुकुल अव्यवहार्य कह-कह कर पथभ्रष्ट हो गये हैं। इस सारी सफलता का श्रेय ऋषि दयानन्द के पथानुगामी बालब्रह्मचारी प्रिय आचार्य भगवान् देवजी भाष्यशास्त्री को है जिन्होंने आज से तीन वर्ष पूर्व श्रद्धेय श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज तथा श्री छोटूरामजी आदि अन्य ऋषिभक्त प्रबन्धकारिणी के सदस्यों के पौनःपुन्य के आग्रह पर अपनी लाखों की अचल सम्पत्ति पर लात मारकर गुरुकुल के खाली भवनों को ईश्वर विश्वास पर सँभाल लिया और अहर्निश परिश्रम कर इस उजड़े बियाबान को आर्ष पाठविधि के सुगन्धित उपवन का सुन्दर रूप दे डाला।...दिन प्रतिदिन गुरुकुल उन्नति के पथ पर अग्रसर है। भगवान् की इच्छा स्पष्ट दिखायी दे रही है कि यह गुरुकुल प्रान्त में ही नहीं, अपितु समस्त भारत का आदर्श शिक्षा-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र बने।" आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री का यह कथन गुरुकुल झज्झर तथा उसके आचार्य श्री भगवान् देव के प्रति आर्य जनता के मनोभावों को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त तथा उचित है।

इसी काल में गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य व नैष्ठिक स्नातक पण्डित देवराजमुनि विद्यावाचस्पति गुरुकुल झज्झर गये। कुछ समय वहाँ रहकर इस शिक्षण-संस्था के सम्बन्ध में जो विचार उन्होंने प्रकट किये, वे निम्नलिखित थे—"यह गुरुकुल भारतवर्ष के सभी गुरुकुलों में एक नवीन ढंग का है। आचार्यजी इस गुरुकुल में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के शिक्षण सम्बन्धी विचारों को क्रियात्मक रूप से परीक्षण करके जनता के सामने उपस्थित करना चाहते हैं। शिक्षण के क्षेत्र में उन विचारों के साथ अनेक शिक्षा-विज्ञों और विद्वानों का मतभेद हो सकता है। परन्तु स्वामी दयानन्द के साथ एकनिष्ठ श्रद्धा भक्ति से युक्त श्री आचार्यजी का यह दृढ़ विश्वास है कि भारत का कल्याण स्वामी दयानन्द के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से ही सम्भव हो सकता है। इसलिए वहाँ के सम्पूर्ण क्रियाकलाप में कठोरता के साथ संयम और तपस्या का जीवन व्यतीत करने और कराने का प्रयत्न किया और कराया जा रहा है। ब्रह्मचर्य व्रत के साथ आचार व्रत, अपरिग्रह-व्रत, सत्यास्तेय व्रत आदि व्रतों के पालन करने में और कराने में सतत प्रयत्न किया जा रहा है।" यह बात ध्यान देने योग्य है, कि बीसवीं सदी के तृतीय चरण के प्रारम्भ में गुरुकुल काँगड़ी ने एक ऐसा रूप प्राप्त करना शुरू कर दिया था, जिसमें कि संस्कृत तथा वेद-वेदांगों के अध्ययन का पहले के समान महत्त्व नहीं रह गया था, और वहाँ के आश्रम-जीवन की दिनचर्या में भी अनेकविध शिथिलता आने लग गई थी। इस दशा में आचार्य भगवान् देव ने गुरुकुल झज्झर में शिक्षा तथा आश्रम-जीवन की जिस पद्धति का सूत्रपात किया, उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

सन् १९५०-५१ तक गुरुकुल झज्झर में ५८ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। पर वहाँ प्रविष्ट होने की माँग अधिक थी। ५८ से अधिक ब्रह्मचारी जो वहाँ प्रविष्ट नहीं किये जा सके, उसका कारण स्थान की कमी ही थी। सन् १९४२-५१ की झज्झर गुरुकुल की विवरण पत्रिका में लिखा है—"इस समय गुरुकुल में ५८ ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं। स्थानाभाव नवीन ब्रह्मचारियों के प्रवेश में बाधक हो रहा है। छात्रावास और विद्यालय विभाग के लिए भवनों की बड़ी कमी है।" इसीलिए सन् १९५० और उसके पश्चात् भवन निर्माण पर विशेष ध्यान दिया गया, और इस प्रयोजन से धन एकत्र करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये गये। सन् १९५८ से सन् १९६२ तक ९१ हजार से भी अधिक रुपये गुरुकुल में नयी इमारतें बनवाने में खर्च किये गये, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ ब्रह्मचारियों के निवास तथा पढ़ाई की समुचित व्यवस्था हो गई। अब नये ब्रह्मचारियों के प्रवेश में कोई बाधा नहीं रह गई, और गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी।

गुरुकुल झज्झर की पाठविधि का निर्माण महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पद्धति के अनुसार किया गया था। महर्षि ने जिन ग्रन्थों को पढ़ाने का निषेध किया है, उनका इस पाठविधि में स्थान नहीं था। शिक्षा की दृष्टि से गुरुकुल के दो विभाग थे—संस्कृत महाविद्यालय और वेद महाविद्यालय। संस्कृत महाविद्यालय की पढ़ाई १० वर्ष की थी। उसमें दो-दो खण्डों में अग्रलिखित पाँच परीक्षाएँ ली जाती थीं—प्रवेशिका,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवीण, व्याकरणोपाध्याय, व्याकरणशास्त्री, और व्याकरणाचार्य। वेद महाविद्यालय का पाठ्यक्रम छह वर्ष का था। इसमें दो वर्षों में छहों आस्तिक दर्शनों (सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा और उत्तर मीमांसा) का अध्यापन होता था, और पिछले चार वर्षों में चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, प्रातिशाख्यों, गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों की शिक्षा की व्यवस्था थी। वेद महाविद्यालय में भी दो-दो खण्डों में तीन परीक्षाएँ ली जाती थीं—दर्शनाचार्य, विद्यावारिधि और वेदवाचस्पति। गुरुकुल के पाठ्यक्रम में शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, दस उपनिषद् (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, एतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक), मनुस्मृति, गीता, रामायण, महाभारत, संस्कृत साहित्य, काव्यालंकार, संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भारतवर्ष का इतिहास, गणित, हिन्दी भाषा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, वैदिक सिद्धान्त, व्यवहारभानु से लेकर वेदभाष्य पर्यन्त महर्षि दयानन्द के सब ग्रन्थ चार ब्राह्मण ग्रन्थ, चार गृह्यसूत्र, दो श्रौतसूत्र, चार प्रातिशाख्य सूत्र और चारों वेद। इन सबका समावेश किया गया था। सम्भवतः, भारत या अन्यत्र कोई भी ऐसी शिक्षण-संस्था नहीं है, जिसमें संस्कृत भाषा, वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन-अध्यापन की वैसी व्यापक व्यवस्था हो, जैसी कि गुरुकुल झज्झर में की गई थी। यह बात ध्यान देने योग्य है, कि इस गुरुकुल के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी भाषा को कोई स्थान नहीं दिया गया था। पर हिन्दी भाषा, गणित और इतिहास सदृश विषयों की शिक्षा के कारण विद्यार्थियों का मानसिक क्षितिज भली-भाँति विकसित हो जाता था, यह भी स्पष्ट है। आर्यसमाज द्वारा जो भी शिक्षण-संस्थाएँ खोली गईं, सबमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक मन्तव्यों को दृष्टि में रखा गया, और गुरुकुलों ने तो उनकी पाठविधि के अनुसरण का भी प्रयत्न किया, पर यह स्वीकार करना होगा, कि जिस रूप में और जिस अंश तक गुरुकुल झज्झर में महर्षि द्वारा निरूपित शिक्षा पद्धति को प्रयुक्त किया गया, किसी अन्य संस्था में वैसा नहीं किया गया। महर्षि द्वारा प्रतिपादित आर्ष शिक्षा पद्धति को क्रियान्वित करने का प्रयत्न पण्डित युधिष्ठिर (स्वामी व्रतानन्द) द्वारा भी भैंसवाल तथा चित्तौड़ गढ़ गुरुकुल में किया गया था, पर इन्हें उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई, जितनी कि बाद में गुरुकुल झज्झर में आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) को हुई।

छात्रावास में भवनों की वृद्धि हो जाने पर सन् १९६३ तक गुरुकुल झज्झर में ब्रह्मचारियों की संख्या ५८ से बढ़कर १०७ तक पहुँच गई थी। गुरुकुल में प्रवेश की माँग अधिक थी, पर स्थान के अभाव के कारण नये ब्रह्मचारियों का प्रवेश बन्द किया हुआ था। नये भवनों के निर्माण के साथ-साथ विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ती गई और सन् १९७६ तक वहाँ १५० ब्रह्मचारी निवास करने लगे। गुरुकुल झज्झर का आकर्षण केवल हरयाणा के लोगों को ही नहीं है। हरयाणा के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, असम आदि भारत के विविध प्रदेशों तथा नेपाल और सुरीनाम (दक्षिणी अमेरिका) आदि विदेशों के भी अनेक विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

गुरुकुल झज्झर में शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। पर भोजन का व्यय विद्यार्थियों के माता-पिता या अभिभावकों को देना होता है। सन् १९६३ में भोजन के लिए १५० रुपये वार्षिक लिये जाते थे। महँगाई में वृद्धि के कारण सन् १९७६ में भोजन व्यय की राशि ३०० रुपये वार्षिक कर दी गई, और बाद में मूल्यवृद्धि के साथ-साथ इस राशि में भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि की जाती रही। भोजन के लिए ली जाने वाली धनराशि से मिर्च-मसाले से रहित शुद्ध सात्विक भोजन गुरुकुल द्वारा दिया जाता है, पर इसमें दूध और घी शामिल नहीं होता। घी, दूध तथा वस्त्रों की व्यवस्था ब्रह्मचारियों के माता-पिता व अभिभावकों द्वारा पृथक् रूप से की जाती है। इस व्यवस्था का परिणाम यह हो सकता है, कि सब ब्रह्मचारी घी, दूध की मात्रा एक समान प्राप्त न कर सकें। सम्पन्न घरों के विद्यार्थी अधिक घी-दूध प्राप्त कर लें, और निर्धन विद्यार्थी इनसे सर्वथा वंचित रह जाएँ या इन्हें बहुत कम मात्रा में प्राप्त कर सकें। यह बात महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-विषयक मूल सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है। महर्षि ने गुरुकुलों में सबके लिए समान आसन, समान भोजन तथा समान रहन-सहन पर बहुत बल दिया है। पर यथार्थ में गुरुकुल झज्झर के प्रायः सभी विद्यार्थी समुचित मात्रा में घी-दूध का सेवन करने में समर्थ रहते हैं, जिसके कारण वहाँ रहन-सहन में अन्तर नहीं आने पाता।

गुरुकुल के पास ७२ एकड़ (३३२ बीघा) भूमि है। छात्रावास, विद्यालय भवन, भोजन-भण्डार आदि की इमारतों के लिए जितना स्थान चाहिये, यह भूमि उससे अधिक है। अतिरिक्त भूमि का उपयोग खेती तथा बाग के लिए किया जाता है। कृषि विभाग गुरुकुल झज्झर का महत्त्वपूर्ण अंग है। गेहूँ, चना, जौ, ज्वार आदि अनाज, पशुओं के लिए चारा और सब्जियों का उत्पादन इस विभाग द्वारा बड़ी सफलता के साथ किया जाता है। गुरुकुल के बगीचे में फलों के भी बहुत-से वृक्ष हैं, जिनके फल ब्रह्मचारियों में बाँट दिये जाते हैं। खेती के कार्य में गुरुकुल के विद्यार्थी भी उत्साह पूर्वक हाथ बटाते हैं, और प्रतिदिन एक घण्टा उन्हें श्रमदान करना होता है, प्रधानतया खेती तथा उद्यान में ही जिसका उपयोग किया जाता है। ट्रैक्टर आदि खेती के आधुनिक उपकरण भी गुरुकुल झज्झर में प्रयुक्त किये जाते हैं, और पशुओं के लिए चारा काटने की मशीन भी वहाँ लगा दी गई है, जो बिजली से चलती है। २६ अगस्त, सन् १९५६ के दिन गुरुकुल में बिजली भी आ गई थी, जिसका उपयोग रोशनी के अतिरिक्त मुद्रणालय एवं फार्मेसी आदि की मशीनों को चलाने के लिए भी किया जाता है। गुरुकुल में एक गौशाला भी है, जिसकी आधारशिला डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने २२ फरवरी, १९४७ के दिन रखी थी। इसमें १०० के लगभग पशु हैं, जो सभी शुद्ध हरयाणा नसल के हैं। यहाँ की गौएँ अनेक अखिल भारतीय स्तर की प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। गुरुकुल की दूध, घी की आवश्यकता की पूर्ति में यह गौशाला बहुत सहायक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि में चार उपवेदों (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद) की शिक्षा को भी स्थान दिया गया है। क्रियात्मक दृष्टि से इनकी पढ़ाई का विशेष महत्त्व है। इसीलिए गुरुकुल झज्झर में आयुर्वेद की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई, और आयुर्वेद महाविद्यालय को स्थापित किया गया, जिसका उद्घाटन भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री श्री डा० कालूराम श्रीमाली ने २९ अगस्त, सन् १९५६ के दिन किया था। आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रथम अध्यक्ष पण्डित सत्यदेव वाशिष्ठ आयुर्वेदाचार्य नियुक्त हुए, और ५ सितम्बर, १९५६ से उसमें नियमित रूप से पढ़ाई शुरू हो गई। इस आयुर्वेद महाविद्यालय में शुद्ध आयुर्वेद का चार वर्ष का पाठ्यक्रम चालू किया गया। गुरुकुल से आयुर्वेद पढ़कर जो विद्यार्थी स्नातक बनें, उन्हें चिकित्सा कार्य करने में कोई कानूनी बाधा न हो, इसे दृष्टि में रखकर आयुर्वेद महा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय की पाठविधि तथा उपाधि को सरकार से मान्यता प्राप्त कराने के लिए प्रयत्न किया गया, जिसके परिणामस्वरूप १३ सितम्बर, १६५८ के दिन पंजाब के 'बोर्ड ऑफ् आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडिसन' द्वारा इस महाविद्यालय को दो वर्ष के लिए मान्यता प्रदान कर दी गई। पर यह महाविद्यालय देर तक कायम नहीं रह सका। १९५७ में पंजाब में आर्यसमाज द्वारा जब हिन्दी भाषा के लिए सत्याग्रह शुरू किया गया, तो उसमें गुरुकुल झज्झर के अध्यापकों, ब्रह्मचारियों और कार्यकर्ताओं ने भी भाग लिया था। इससे रुष्ट होकर पंजाब सरकार ने आयुर्वेद महाविद्यालय को दिये जाने वाले बीस हजार रुपये के अनुदान को रोक दिया, जिसके कारण इस संस्था के सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। फिर भी आयुर्वेद महाविद्यालय चलता ही रहा, और सन् १९६० में आयुर्वेद की शिक्षा को शुरू हुए चार वर्ष हो जाने पर विद्यार्थियों की परीक्षाएँ हुईं, जिनमें छह विद्यार्थी आयुर्वेदाचार्य परीक्षा में और तीन विद्यार्थी आयुर्वेदशास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किये गये। पर इसके बाद आयुर्वेद महाविद्यालय के संचालन में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहीं। सरकार से एक पैसा भी उसके लिए प्राप्त नहीं हुआ, और आर्थिक साधनों के पर्याप्त न होने के कारण इस संस्था को बन्द कर देना पड़ा।

यद्यपि गुरुकुल झज्झर का आयुर्वेद महाविद्यालय बन्द हो गया, पर उसके साथ जो आयुर्वेदिक रसायनशाला (फार्मेसी) थी, वह कायम रही। आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना से पहले ही गुरुकुल में एक आयुर्वेदिक औषधालय विद्यमान था। यह औषधालय उस समय में भी था, जब कि गुरुकुल झज्झर का संचालन स्वामी परमानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द के हाथों में था। इसमें आयुर्वेदिक ओषधियों का प्रयोग किया जाता था, और अनेक ओषधियाँ गुरुकुल में ही तैयार कर ली जाती थीं। आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) ने गुरुकुल को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिए यह निश्चय किया, कि आयुर्वेदिक ओषधियों का निर्माण वहाँ व्यवस्थित रूप से प्रारम्भ कर दिया जाए और इसके लिए एक रसायनशाला स्थापित कर दी जाए। इसी निश्चय के परिणामस्वरूप गुरुकुल झज्झर में आयुर्वेदिक रसायनशाला प्रारम्भ की गई, और १५ मार्च, १९५० के दिन पंजाब के तत्कालीन मुख्य मन्त्री डॉक्टर गोपीचन्द भार्गव ने औपचारिक रूप से उसका उद्घाटन किया। आचार्य भगवान् देव के प्रयत्न से यह रसायनशाला निरन्तर उन्नति करती गई, और इसमें तैयार हुई ओषधियों की शुद्धता सर्वत्र स्वीकार की जाने लगी। ओषधियों के अतिरिक्त हवन सामग्री भी इस रसायनशाला में तैयार की जाने लगी। गुरुकुल के संचालकों का प्रयत्न तो यह था, कि इस रसायनशाला से इतनी आमदनी होने लगे, जिससे गुरुकुल आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाए। पर यह तभी सम्भव हो सकता था, जबकि उसका प्रबन्ध किसी व्यापारकुशल वैद्य के हाथों में हो। ऐसा वैद्य प्राप्त कर सकना सुगम नहीं था। इसीलिए इस रसायनशाला से अभी इतनी आमदनी होनी शुरू नहीं हुई थी, कि उससे सम्पूर्ण गुरुकुल का तो क्या आयुर्वेद महाविद्यालय का ही खर्च चल सके। बाद में रसायनशाला को व्यावसायिक दृष्टि से सफल बनाने का विशेष रूप से उद्योग किया गया, जिसके परिणामस्वरूप वह गुरुकुल की आमदनी का अन्यतम महत्त्वपूर्ण साधन बन गई।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आर्ष पाठविधि के अनुसार शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त गुरुकुल झज्झर के कतिपय अन्य कार्यकलाप भी हैं, जिनका यहाँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख करना उपयोगी है। ये सब गुरुकुल की पढ़ाई में सहायक हैं, पर इनका स्वतन्त्र रूप से भी महत्त्व है। गुरुकुल का एक अपना प्रकाशन गृह है, जिसे 'हरयाणा साहित्य संस्थान' कहते हैं। उपयोगी व उत्कृष्ट साहित्य को तैयार कराना तथा उसे प्रकाशित करना इस संस्थान का उद्देश्य है। साहित्य के प्रकाशन का कार्य गुरुकुल झज्झर में चिर-काल से हो रहा था। पहले उसका प्रकाशनकार्य 'विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय' के नाम से होता था। पर साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिए २८ फरवरी, सन् १९६० के दिन हरयाणा साहित्य संस्थान की विधिवत् स्थापना की गई, और उस द्वारा प्रकाशन का कार्य द्रुतगति से किया जाने लगा। दिसम्बर, १९६२ तक इस संस्थान से ५६ पुस्तकें प्रकाशित कर दी गई थीं, जिनमें महाभाष्य, सत्यार्थप्रकाश (सटिप्पण), मनोविज्ञान, संस्कार विधि, विरजानन्द चरित, वेदविमर्श, वैदिक भारत में यज्ञ, मस्तिष्क विद्या, ब्रह्मचर्य के साधन और आर्य सिद्धान्तदीप सदृश महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी थे। सन् १९६२ के बाद इस संस्थान ने और भी अधिक उन्नति की, और इस द्वारा अनेक मौलिक व महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये गये। इनमें सबसे महत्त्व का ग्रन्थ 'भारत के प्राचीन मुद्रांक' है, जिसका मूल्य ५०० रुपये है। इसमें हरयाणा तथा समीपवर्ती क्षेत्र से प्राप्त हुए प्राचीन सिक्कों तथा मुद्राओं का सचित्र विवरण दिया गया है, जो गम्भीर अध्ययन तथा शोध का परिणाम हैं। इस स्तर के ग्रन्थ प्रायः विदेशी भाषाओं में ही प्रकाशित होते रहे हैं। स्वामी ओमानन्द ने इसे हिन्दी भाषा में लिखकर तथा हरयाणा शोध संस्थान ने इसे प्रकाशित कर हिन्दी साहित्य के गौरव को बढ़ाया है। 'वीरभूमि हरयाणा' और 'वीर यौधेय' दो अन्य ग्रन्थ इस संस्थान द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, जो इतिहास की मौलिक खोज के परिणाम हैं। पतंजलि मुनि के विशाल ग्रन्थ महाभाष्य (सम्पूर्ण) और कारिका प्रकाश सदृश व्याकरण ग्रन्थ, छन्दःशास्त्रम् और काव्यालंकार-सूत्राणि सदृश अलंकार ग्रन्थ, योगदर्शन भाष्य और सांख्यदर्शन भाष्य सदृश दर्शन-विषयक ग्रन्थ तथा आत्मानन्द जीवन-ज्योति सदृश जीवनचरित्र प्रकाशित कर इस संस्थान ने हिन्दी तथा संस्कृत के प्रकाशन गृहों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया है।

'सुधारक' नाम से गुरुकुल झज्झर द्वारा एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जाता है। सितम्बर, सन् १९५३ में इसका पहला अंक प्रकाशित हुआ था। इसके संस्था-पक व प्रधान सम्पादक आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) हैं, जो अब तक भी इसके नियमपूर्वक प्रकाशन में प्रयत्नशील रहते हैं। जैसा कि इसके नाम से भी स्पष्ट है, समाज में फैली कुरीतियों को दूर करना तथा सुधार आन्दोलन को बल प्रदान करना इस पत्र का उद्देश्य निर्धारित किया गया था। पर धर्म, दर्शन, इतिहास आदि पर भी उत्कृष्ट कोटि के लेख इसमें प्रकाशित होने लगे, जिनके कारण इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया। 'सुधारक' द्वारा बहुत-से विशेषांक भी पाठकों को भेंट किये गये हैं, जिनसे विविध विषयों पर महत्त्वपूर्ण व उपयोगी सामग्री जनता के सम्मुख उपस्थित की जा सकी है।

पर गुरुकुल झज्झर का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभाग 'पुरातत्त्व संग्रहालय' है, जिसकी ख्याति केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों के विद्वानों में भी सर्वत्र फैली हुई है। सन् १९५९ में आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) ने इस संग्रहालय का प्रारम्भ किया था और उसमें शुरू में प्रधानतया प्राचीन मुद्राओं तथा सिक्कों का ही संग्रह था। समयान्तर में न केवल प्राचीन मुद्राओं तथा सिक्कों की संख्या में ही निरन्तर वृद्धि होती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई, अपितु बहुत-सी प्राचीन मूर्तियों, हस्तलिखित ग्रन्थों, ईंटों, बरतनों, अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य पुरातत्त्व-सम्बन्धी अवशेषों का भी इस संग्रहालय में संग्रह किया गया, और देश-विदेश के विद्वान् इसमें विद्यमान प्राचीन अवशेषों के अध्ययन व अनुशीलन के लिए गुरुकुल झज्झर आने लगे। स्वामी ओमानन्द इतिहास तथा पुरातत्त्व के विश्वविख्यात विद्वान् हैं, और प्राचीन मुद्राओं का उनका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है। इस संग्रहालय को स्थापित कर स्वामीजी ने गुरुकुल झज्झर के आकर्षण में बहुत वृद्धि कर दी है।

गुरुकुल झज्झर की समस्त सम्पत्ति का स्वामित्व 'विद्यार्य सभा, गुरुकुल झज्झर' में निहित है। यह संस्था रजिस्टर्ड है, और सन् १९५६ में औपचारिक रूप से इसे रजिस्टर्ड करा लिया गया था। इसका अपना विधान है, और गुरुकुल का सब प्रबन्ध इसके अधीन है। विद्यार्य सभा का सदस्यता शुल्क १०१ रुपये आजीवन, २५ रुपये त्रिवार्षिक और १० रुपये वार्षिक नियत किया गया है। प्रतिवर्ष शिवरात्रि के अवसर पर इस सभा का वार्षिक अधिवेशन किये जाने तथा उसमें सभा के पदाधिकारियों के चुने जाने की व्यवस्था विधान द्वारा की गई है।

आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) के संचालकत्व में गुरुकुल झज्झर ने आज से चौथाई सदी के लगभग पूर्व कितनी उन्नति कर ली थी, इसका कुछ अनुमान उस लेख से किया जा सकता है, जो महाशय कृष्ण ने 'दैनिक वीर अर्जुन' के ११ दिसम्बर, सन् १९६० के अंक में इस गुरुकुल के सम्बन्ध में लिखा था। इस लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं—"मैंने गुरुकुल देखा और मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि उसे देखकर मुझे खुशी हुई। वहाँ मुझे एक नया और निराला संसार दिखायी दिया। गुरुकुल झज्झर सही अर्थों में एक कुल या परिवार है, जिसकी माता आचार्य भगवान् देव हैं। वही इसके प्राण और जीवनदाता हैं। उनके २४ घण्टे गुरुकुल की सेवा के लिए अर्पित हैं। क्योंकि वे एक तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिए वहाँ के अध्यापकों तथा ब्रह्मचारियों का जीवन भी त्यागमय है। आचार्य भगवान् देव ने वर्षों से चीनी और नमक का सेवन नहीं किया। जिस प्रकार बच्चे माता-पिता के साथ घर का सारा काम करते हैं, उसी प्रकार गुरुकुल के ब्रह्मचारी भी अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी करते हैं। दोपहर बाद प्रत्येक ब्रह्मचारी एक घण्टे के लिए कोई-न-कोई काम करता है। जब हम गये तो वे काम कर रहे थे।...वहाँ जीवन स्वाभाविक और सादा है और उस पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव नहीं है। गुरुकुल में लगभग एक सौ ब्रह्मचारी हैं जिन्हें ऋषि दयानन्द की बतायी हुई पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती है। वहाँ के ब्रह्मचारी उच्च शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं, और अन्य संस्कृत कॉलिजों के लड़कों के लिए वे चैलेंज हैं। मुझे गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री वेदव्रत से मिलाया गया। वे पंजाब विश्वविद्यालय के शास्त्री हैं और उन्होंने विश्वविद्यालय का रिकॉर्ड तोड़ दिया है। वे छह दर्शनों के आचार्य हैं। वेदाचार्य और आयुर्वेदाचार्य हैं। उन्होंने अपना जीवन गुरुकुल के अर्पण कर दिया है।...उनकी सादगी को देखकर कोई यह नहीं समझ सकता कि यह सादा युवक विद्या का भण्डार है।"

पंजाब के आर्य जगत् में महाशय कृष्ण का स्थान अत्यन्त उच्च एवं सम्मानास्पद था। वह वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के मंत्री रहे थे और गुरुकुल काँगड़ी के संचालन व व्यवस्था में उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व था। औपचारिक रूप से किसी की प्रशंसा करने की उनकी आदत नहीं थी। वह भी गुरुकुल झज्झर से प्रभावित हुए थे और अपने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचारपत्र में उन्होंने सार्वजनिक रूप से इसकी प्रशंसा की थी, यही इस गुरुकुल की सफलता के लिए पर्याप्त प्रमाण है।

(४) श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ

सन् १९६० तक गुरुकुल झज्झर न केवल सुव्यवस्थित रूप में ही आ चुका था, अपितु दिन प्रतिदिन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर भी होता जा रहा था। ब्रह्मचारियों की संख्या एक सौ से ऊपर पहुँच गई थी, और उसमें निरन्तर वृद्धि भी हो रही थी। इस गुरुकुल की पाठविधि का अपना एक विशेष आकर्षण था। इसमें केवल आर्ष ग्रन्थों का ही अध्ययन-अध्यापन होता था, तथा संस्कृत व्याकरण और संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए केवल आर्ष ग्रन्थ ही प्रयुक्त किये जाते थे। शिक्षा पद्धति पर पाश्चात्य ढंग से संचालित सरकारी शिक्षणालयों का कोई प्रभाव नहीं था। पाठविधि में वेद, वेदांग, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, आस्तिक दर्शन तथा अन्य आर्ष वाङ्मय को प्रमुख स्थान दिया गया था। जहाँ तक ब्रह्मचारियों की दिनचर्या का सम्बन्ध है, वह अनुशासित तथा सदाचारमय जीवन के अभ्यास में सहायक थी। चाहे सर्दी हो या गर्मी, ब्रह्मचारी प्रातः ४ बजे सोकर उठ जाते थे। सोने का समय ९·३० बजे रात से ४ बजे प्रातः तक था। प्रार्थना, सन्ध्या, हवन, शौच, व्यायाम, दन्तधावन, स्नान, भोजन, पढ़ाई, स्वाध्याय— सबके समय नियत थे। इस समय तक गुरुकुल काँगड़ी तथा अन्य बहुत-से गुरुकुलों के छात्रावासों में रहने वाले ब्रह्मचारियों की दिनचर्या में अनेक प्रकार से शिथिलता आ चुकी थी। पर गुरुकुल झज्झर का जीवन पूर्णतया अनुशासित तथा ब्रह्मचर्य आश्रम के मन्तव्यों के अनुरूप था। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था, कि आर्य जनता की दृष्टि में इस संस्था का महत्त्व बढ़ता जाए, और अन्य अनेक गुरुकुल इसका अनुकरण करने के लिए भी प्रवृत्त हों। इसलिए गत चौथाई सदी में अनेक ऐसे नये गुरुकुलों की स्थापना हुई, गुरुकुल झज्झर की आर्ष पाठविधि तथा वहाँ की अनुशासित दिनचर्या का जिन्होंने अनुसरण किया। साथ ही, कतिपय पुराने गुरुकुलों ने भी गुरुकुल झज्झर की शिक्षा पद्धति के अनुसार अपने को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया।

गुरुकुल झज्झर का जिस ढंग से विकास हो रहा था, और अन्य अनेक संस्थाएँ जिस प्रकार उसका अनुकरण करने के लिए प्रयत्नशील थीं, उसे दृष्टि में रखते हुए यह उपयोगी व आवश्यक समझा गया, कि यह संस्था एक विद्यापीठ का रूप प्राप्त कर ले, ताकि इसकी पद्धति को अपनाने वाली अन्य संस्थाएँ इससे सम्बद्ध हो सकें और आर्ष गुरुकुलों की एक ऐसी शृंखला बन जाए, जिनकी पाठविधि एक हो और जिनके विद्यार्थी शिक्षा को पूर्ण कर एक समान उपाधियाँ प्राप्त करें। इसी के परिणामस्वरूप 'श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ' की स्थापना की गई और उसका मुख्य कार्यालय गुरुकुल झज्झर में रखा गया। विद्यापीठ का विधान तैयार कर ५ दिसम्बर सन् १९६८ के दिन १८६० के 'सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट XXI' के अधीन उसकी रजिस्ट्री करा ली गई।

सन् १९६८ में श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ का जो विधान बना था, उसमें इस संस्था के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये थे—(क) महर्षि दयानन्दजी द्वारा अनुमोदित प्राचीन वैदिक आर्ष प्रणाली के आधार पर संचालित गुरुकुलों, विद्यालयों आदि की सहायता एवं स्थापना और संचालन करना कराना। (ख) कुमार कुमारियों को पृथक्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथक् ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा देना दिलाना। (ग) वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना कराना। (घ) ब्रह्मचर्य सम्बन्धी सद्विचारों का संचार करना कराना। (ङ) देशभक्ति के भाव भरकर सभ्य और सुशील नागरिकों का निर्माण करना।

इन मुख्य उद्देश्यों के अतिरिक्त १७ उद्देश्यों का भी विधान में उल्लेख किया गया है, जिनसे इस विद्यापीठ का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता है। इनमें कतिपय महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित हैं—(१) वेद, उपवेद, (आयुर्वेद, शिल्प आदि), वेदांग, उपांग, ब्राह्मण, संस्कृत भाषा, राष्ट्रभाषा, व्याकरण, उपनिषद्, साहित्य, विज्ञान, शिल्प कला, प्रान्तीय व विदेशीय भाषाओं तथा अन्य उपयोगी आधुनिक और प्राच्य विषयों की शिक्षा देना दिलाना। (२) उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ स्थापित करना कराना, उनका प्रबन्ध करना कराना, विकास करना कराना तथा ऐसी उपर्युक्त संस्थाओं को सम्बद्ध करना। (३) निम्नांकित विषयों का विकास और शिक्षण हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं के माध्यम से करना कराना (क) वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा तथा साहित्य और उसकी समस्त शाखाओं का। (ख) शक्ति और साधनों के अनुसार भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं का। (ग) आयुर्वेद तथा अन्य आयुर्वैदिक वैज्ञानिक पद्धतियों का। (घ) प्राकृतिक, भौतिक और रासायनिक का। (ङ) मानवीय विषयों का, सामाजिक विषयों का। (च) क्रियात्मक विषय जैसे; कला, कौशल, कृषि, वाणिज्य आदि का। (४) शोध-कार्यों का संचालन, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा इनके लिए मुद्रणालय स्थापित करना। (५) आर्ष विद्यापीठ के ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों सम्बन्धी अनुशासन का निरीक्षण करना कराना। (६) परीक्षाओं का संचालन करना तथा उपाधियाँ प्रदान करना।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ की पाठविधि में सम्मिलित किये जाने वाले विषयों का जिस ढंग से उसके विधान में उल्लेख किया गया है, उसके अनुसार वैदिक व आर्ष साहित्य के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को भी उसमें समुचित स्थान दिया गया है, और संस्कृत तथा हिन्दी के साथ-साथ भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं व विदेशी भाषाओं की पढ़ाई की भी व्यवस्था करने की बात कही गई है। इसीलिए गुरुकुल झज्झर तथा आर्ष विद्यापीठ से सम्बद्ध अन्य शिक्षणालयों के लिए जो पाठविधि निर्धारित की गई, उसमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा विविध आधुनिक भाषाओं को भी स्थान दिया गया, यद्यपि मुख्यता संस्कृत, वेद, वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों की ही रखी गई। आर्ष विद्यापीठ के पाठ्यक्रम में समय तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर अनेक परिवर्तन समय-समय पर किये जाते रहे हैं, पर वहाँ जो पाठविधि वर्तमान समय में प्रचलित है और जिसका प्रारम्भ सन् १६७५ में किया गया था, उसका इस दृष्टि से विवेचन करना उपयोगी है, कि उस द्वारा विद्यापीठ के विधान में उल्लिखित उद्देश्यों की किस अंश तक पूर्ति होती है।

विद्यापीठ का पाठ्यक्रम सोलह वर्षों का बनाया गया है, जो पाँच भागों में विभक्त है। पाँचों भागों की परीक्षाएँ पृथक्-पृथक् हैं, जिन्हें क्रमशः प्रवेशिका परीक्षा, प्रथमा परीक्षा, मध्यमा परीक्षा, शास्त्री परीक्षा और आचार्य परीक्षा कहते हैं। प्रवेशिका परीक्षा के पाँच खण्ड हैं, प्रथमा के तीन, मध्यमा के तीन, शास्त्री के तीन और आचार्य परीक्षा के दो खण्ड हैं। प्रवेशिका का पाठ्यक्रम अन्य प्राइमरी स्कूलों से अधिक भिन्न नहीं है। केवल धर्मशिक्षा (वेद) उसमें अतिरिक्त विषय के रूप में है। हिन्दी भाषा, गणित तथा सामान्य ज्ञान (इतिहास, भूगोल तथा प्रारम्भिक विज्ञान) का पाठ्यक्रम प्रायः उसी ढंग का है, जैसा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सरकारी स्कूलों में होता है। विद्यापीठ की निर्देशिका में यह स्पष्ट रूप से लिख भी दिया गया है, कि 'हिन्दी से इतर प्रान्तों में प्रवेशिका का पाठ्यक्रम अपने प्रान्त के आधार पर भी वेद (धर्मशिक्षा) से अतिरिक्त चलाया जा सकता है।' इससे यह अभिप्रेत है, कि यदि आन्ध्र प्रदेश में कोई शिक्षणालय आर्ष विद्यापीठ, झज्झर से सम्बद्ध हो, तो प्रवेशिका परीक्षा के पाँच वर्षों के लिए उसका पाठ्यक्रम आन्ध्र प्रदेश के सरकारी प्राइमरी स्कूलों के पाठ्यक्रम के अनुसार या आधार पर बनाया जा सकेगा, पर उसमें वेद (धर्मशिक्षा) का एक अतिरिक्त विषय अनिवार्य रूप से रहेगा। वेद-वेदांगों तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी का मन भली-भाँति विकसित हो जाए और अपनी मातृभाषा एवं गणित, भूगोल, इतिहास सदृश विषयों का भी उसे समुचित ज्ञान हो। इसलिए प्रवेशिका परीक्षा के पाठ्यक्रम को सरकारी स्कूलों के अनुसार रखने में कोई अनौचित्य नहीं है। उसका वेद (धर्मशिक्षा) का कोर्स अत्यन्त सरल है। प्रवेशिका के विद्यार्थियों के लिए यही पर्याप्त समझा गया है, कि उन्हें प्रार्थना, सन्ध्या, हवन, शिव संकल्प, तथा यज्ञोपवीत आदि के मन्त्र कण्ठस्थ हो जाएँ और उन्हें वे शुद्ध रूप से लिखने भी लगें। प्रवेशिका विभाग के पहले दो खण्डों में संस्कृत भाषा को स्थान नहीं दिया गया है। संस्कृत की पढ़ाई तृतीय कक्षा से शुरू की गई है। पर उसके लिए अष्टाध्यायी का आश्रय नहीं लिया गया। संस्कृत की शिक्षा के लिए आधुनिक पण्डितों ने जिस ढंग की सरल पुस्तकों की रचना की है, उन्हीं में से 'संस्कृत सुधा' और 'संस्कृत सौरभ' सदृश पुस्तकों को संस्कृत भाषा की प्राथमिक पढ़ाई के लिए नियत किया गया है।

प्रथमा परीक्षा के तीन खण्ड हैं, और उसका कोर्स तीन वर्ष का है। तीनों खण्डों में संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य और वेद व आर्य सिद्धान्त अनिवार्य विषय हैं, और गणित, हिन्दी, समाजशास्त्र तथा सामान्य विज्ञान—इन चार विषयों में से कोई से तीन ऐच्छिक रूप से लिये जा सकते हैं। समाजशास्त्र में इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र को अन्तर्गत किया गया है, और सामान्य विज्ञान में भौतिकी, रसायन तथा प्राणी विज्ञान की प्रारम्भिक जानकारी को। कन्याएँ सामान्य विज्ञान के स्थान पर गृह विज्ञान ले सकती हैं। सरकारी शिक्षणालयों के माध्यमिक विभाग में प्रायः ये चारों ही विषय अनिवार्य होते हैं। पर आर्ष विद्यापीठ के विद्यार्थी इनमें से किसी एक को छोड़ सकते हैं। सम्भवतः, यह व्यवस्था इस कारण की गई है, कि संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य और वेद के अनिवार्य विषय होने से विद्यार्थियों पर पढ़ाई का जोर अधिक न हो जाए। संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए अष्टाध्यायी का उपयोग प्रथमा परीक्षा के द्वितीय खण्ड से शुरू किया गया है और वेद का पाठ्यक्रम इस प्रकार नियत किया गया है, जिससे विद्यार्थियों को प्रार्थना, उपासना और सन्ध्या-हवन के मन्त्रों के अतिरिक्त शान्तिकरण, स्वस्तिवाचन और सामान्य प्रकरण के सब मन्त्र कण्ठस्थ हो जाएँ, आर्योद्देश्यरत्नमाला, पंचमहायज्ञविधि तथा व्यवहारभानु सदृश ऋषिकृत पुस्तकों को वे पढ़ लें और वैदिक धर्म के मन्तव्यों से वे कुछ परिचय प्राप्त कर लें। हिन्दी, गणित, सामान्य ज्ञान तथा समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम का स्तर प्रायः सरकारी शिक्षणालयों के सदृश ही है।

जहाँ तक प्रवेशिका तथा प्रथमा परीक्षाओं की आठ वर्षों की पढ़ाई का सम्बन्ध है, वह सामान्य स्कूलों से बहुत भिन्न नहीं है। उसकी विशेषता यह है, कि उसमें संस्कृत भाषा (व्याकरण और साहित्य) तथा वेद (धर्मशिक्षा व आर्य सिद्धान्त) की शिक्षा को अनिवार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा गया है, जिसके कारण विद्यार्थी वेद, वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन के लिए आवश्यक तैयारी कर सकने में समर्थ हो जाते हैं। मध्यमा परीक्षा से जो पाठ्यक्रम श्रीमद्-दयानन्द आर्ष विद्यापीठ में शुरू होता है, वह साधारण सरकारी स्कूलों के कोर्स से बहुत भिन्न है। उसमें पाँच विषय अनिवार्य रखे गये हैं—संस्कृत व्याकरण, वेद, उपनिषद्, आर्य-सिद्धान्त, संस्कृत साहित्य और हिन्दी। इन पाँच के अतिरिक्त एक विषय और लेना होता है, जो सिद्धान्त, ज्योतिष, इतिहास, नागरिक शास्त्र, हिन्दी और अंग्रेजी में से कोई एक हो सकता है। सिद्धान्त विषय से सत्यार्थप्रकाश का उत्तरार्द्ध भाग अभिप्रेत है। ज्योतिष के पाठ्यक्रम में लीलावती और भास्करीय बीजगणित रखे गये हैं। इतिहास विषय में आर्य-समाज का इतिहास निर्धारित है, और नागरिक शास्त्र में शुक्रनीति, मनुस्मृति और कौटलीय अर्थशास्त्र के भी कुछ अंशों को स्थान दिया गया है। संस्कृत व्याकरण के लिए अष्टाध्यायी प्रमुख रूप से पाठ्यक्रम में नियत है, पर सहायक रूप में कतिपय ऐसी पुस्तकों को भी स्थान दे दिया गया है, जिन्हें स्वामी ब्रह्ममुनि सदृश आर्य विद्वानों ने प्राचीन आर्ष पद्धति का अनुसरण करके लिखा है। संस्कृत साहित्य में केवल ऐसी पुस्तकें ही निर्धारित की गई हैं, जिनमें शृंगार रस का सर्वथा अभाव हो और जिनमें वेदविरुद्ध बातें न हों। अंग्रेजी ऐच्छिक विषय अवश्य है, पर अनिवार्य नहीं है। यही बात इतिहास, भूगोल आदि आधुनिक विषयों के सम्बन्ध में भी है। ऐसे विद्यार्थी भी आर्ष विद्यापीठ की मध्यमा परीक्षा को सुगमता से उत्तीर्ण कर सकते हैं, जिन्हें केवल संस्कृत और हिन्दी का ही ज्ञान हो। हिन्दी अनिवार्य विषयों में भी है, और ऐच्छिक विषयों में भी। ऐच्छिक हिन्दी का पाठ्यक्रम अधिक ऊँचे स्तर का है। गणित, इतिहास, नागरिकशास्त्र और अंग्रेजी आदि की पढ़ाई मध्यमा परीक्षा के लिए अनिवार्य नहीं है। मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए यही आवश्यक है, कि संस्कृत तथा हिन्दी की अच्छी योग्यता हो, आर्य सिद्धान्तों की समुचित जानकारी हो और वेद-वेदांगों के उच्च अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त होना प्रारम्भ हो गया हो। इसमें सन्देह नहीं, कि आर्ष विद्यापीठ की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थी इस योग्य हो जाता है, कि वह वैदिक वाङ्मय, आस्तिक दर्शन तथा प्राचीन अध्यात्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर सके।

शास्त्री परीक्षा के भी तीन खण्ड हैं, और एक-एक खण्ड की परीक्षा के लिए एक-एक वर्ष की पढ़ाई आवश्यक है। पाठ्यक्रम के अनिवार्य विषय संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य और वेद-दर्शन-आर्य सिद्धान्त हैं। प्रत्येक खण्ड की परीक्षा में पाँच-पाँच प्रश्नपत्र रखे गये हैं, तीन संस्कृत व्याकरण के और एक-एक संस्कृत साहित्य तथा वेद-दर्शन-आर्य सिद्धान्त के। ऐच्छिक विषय राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, ज्योतिष, हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी हैं, जिनमें से कोई एक लेना होता है। शास्त्री परीक्षा में व्याकरण का पाठ्यक्रम बहुत उच्च स्तर का है, और उसमें अष्टाध्यायी तथा काशिका के आधार पर संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करना होता है। शास्त्री के छह प्रश्नपत्रों में तीन अकेले व्याकरण के होते हैं। आर्ष पद्धति के अनुसार वेदों के सुचारु रूप से अध्ययन के लिए व्याकरण का गम्भीर ज्ञान अनिवार्य है। इसीलिए उसके अध्ययन को शास्त्री परीक्षा में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। संस्कृत साहित्य में केवल ऐसे ही गद्य-पद्य तथा अलंकार के ग्रन्थ रखे गये हैं, जिन्हें निर्दोष माना जा सकता है। रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कादम्बरी और शिशुपालवध सदृश काव्यों को पाठ्यक्रम में स्थान नहीं दिया गया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद-दर्शन-आर्य सिद्धान्त विषय के पाठ्यक्रम में यजुर्वेद के १३ अध्याय, सांख्य और योग दर्शन, सत्यार्थप्रकाश के कुछ समुल्लास तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अन्तर्गत हैं। शास्त्री परीक्षा के पाठ्यक्रम में व्याकरण को सर्वाधिक स्थान प्राप्त है, और व्याकरण तथा साहित्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप विद्यार्थी संस्कृत भाषा में उच्च कोटि की योग्यता प्राप्त कर लेता है। दर्शन शास्त्रों में भी उसका प्रवेश हो जाता है, और यजुर्वेद के भी अनेक अध्याय महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित भाष्य के साथ वह पढ़ लेता है। शास्त्री के लिए भी अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अनिवार्य नहीं है। संस्कृत साहित्य, व्याकरण, दर्शन, हिन्दी और वैदिक सूक्तों का समुचित एवं उच्च स्तर का अध्ययन कर इस परीक्षा को उत्तीर्ण किया जा सकता है।

आचार्य परीक्षा के दो खण्ड हैं। शास्त्री परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेने पर आचार्य परीक्षा के लिए दो वर्ष तक अध्ययन अपेक्षित है। यह परीक्षा व्याकरण, वेद, दर्शन, साहित्य, ज्योतिष, राजशास्त्र और इतिहास विषयों में दी जा सकती है, जिसे उत्तीर्ण कर लेने पर व्याकरणाचार्य, वेदाचार्य, दर्शनाचार्य, साहित्याचार्य, ज्योतिषाचार्य, राजशास्त्राचार्य और इतिहासाचार्य की उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। इन विषयों का पाठ्यक्रम इस ढंग से बनाया गया है, कि आचार्य परीक्षा को उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थी वेद तथा वेदांग का गम्भीर तथा व्यापक ज्ञान प्राप्त कर सकें। व्याकरणाचार्य की परीक्षा के लिए पातंजल महाभाष्य के अतिरिक्त निरुक्त, निघण्टु, यजुर्वेद के १५ अध्याय, अलंकारशास्त्र और वाल्मीकि रामायण के एक काण्ड को भी पाठ्यविषय में रखा गया है। अन्य विषयों में आचार्य परीक्षा के पाठ्यक्रम का उल्लेख करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। उल्लेखनीय बात केवल यह है, कि श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ झज्झर की पाठविधि इस ढंग से बनायी गई है, कि उस द्वारा विद्यार्थियों को वेद-वेदांगों तथा आर्ष ग्रन्थों में पर्याप्त रूप से निपुणता प्राप्त हो जाए।

संस्कृत भाषा की उच्च शिक्षा अन्य भी अनेक विद्यापीठों व विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाती है। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय सदृश कितनी ही शिक्षण-संस्थाएँ संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की केन्द्र हैं। पर श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ उनसे अनेक प्रकार से भिन्न है। इस विद्यापीठ में संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए अष्टाध्यायी, काशिका और महाभाष्य का प्रयोग किया जाता है, सिद्धान्त कौमुदी, मनोरमा आदि उन ग्रन्थों का नहीं, जिन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निषिद्ध माना है। संस्कृत साहित्य के पाठ्यक्रम में इस विद्यापीठ द्वारा उन काव्यों, नाटकों आदि को स्थान नहीं दिया गया, जिन्हें महर्षि ने 'विषसम्पृक्तान्नवत्' त्याज्य कहा है। वाल्मीकि रामायण सदृश प्राचीन ग्रन्थ तथा शिवराजविजय सदृश आधुनिक ग्रन्थ, जिन्हें ब्रह्मचारियों के लिए निर्दोष समझा जा सकता है, ही संस्कृत साहित्य के पाठ्यक्रम में रखे गये हैं। वेद तथा आर्य सिद्धान्त (जिससे महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित मन्तव्य अभिप्रेत हैं) की शिक्षा इस विद्यापीठ के पाठ्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग है। वेदमन्त्रों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए इसमें सायण के भाष्य का आश्रय न लेकर निरुक्त सदृश वेदांग तथा महर्षिकृत वेदभाष्य को प्रयुक्त करने की व्यवस्था की गई है। शिक्षा पद्धति तथा पाठविधि के विषय में आर्यसमाज का जो एक विशेष दृष्टिकोण है, उसे ही सम्मुख रखकर इस विद्यापीठ का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। इस प्रकार इस संस्था द्वारा आर्यसमाज की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति हुई है।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ को औपचारिक रूप से पंजीकृत कराते हुए उसके जो नियम-उपनियम बनाये गये, उन द्वारा इस संस्था की स्वामिनी सभा (विद्यार्य सभा) के संगठन को भी परिवर्तित किया गया। इस सभा के सदस्य अब निम्नलिखित होते हैं—(१) श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ से सम्बद्ध गुरुकुलों, महाविद्यालयों आदि के एक-एक प्रतिनिधि (आचार्य अथवा अन्य अधिकारी)। (२) आर्यसमाज के त्यागी, तपस्वी विद्वानों, संन्यासियों, आचार्यों से अतिरिक्त गुरुकुलों के अध्यापकों, स्नातकों एवं अन्य हितैषियों में से सभा द्वारा मनोनीत १५ सदस्य। (३) भारत सरकार के मनोनीत २ सदस्य। (४) किन्हीं विश्वविद्यालयों में से मनोनीत ३ सदस्य। (५) आजीवन सदस्य, जो महानुभाव आर्ष विद्यापीठ को २५,००० रुपये दान दें।

विधान के अनुसार विद्यापीठ के प्रमुख अधिकारी कुलपति, प्रतिकुलपति एवं संरक्षक, उपकुलपति, प्रस्तोता, कोषाध्यक्ष, पुस्तकाध्यक्ष, परीक्षाधिकारी तथा अधीक्षक हैं। इनमें से जिन अधिकारियों का सम्बन्ध शिक्षा तथा विद्यापीठ के संचालन व नियन्त्रण के साथ है, उनके लिए विधान द्वारा कतिपय विशेष योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं जिनका उल्लेख उपयोगी है। प्रतिकुलपति एवं संरक्षक के पद पर विद्यार्य सभा द्वारा ऐसे ही आर्य संन्यासी या विद्वान् को निर्वाचित किया जा सकेगा, जो सांगोपांग वेद, वैदिक धर्म, ऋषि दयानन्द, आर्ष पाठविधि और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में दृढ़ आस्था रखने वाला त्यागी, तपस्वी, वयोवृद्ध और सम्मानित व्यक्ति हो। उपकुलपति के पद पर केवल आर्य संन्यासी की ही नियुक्ति की जा सकती है, और इसके लिए भी सांगोपांग वेद, वैदिक धर्म, ऋषि दयानन्द, आर्ष पाठविधि और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में दृढ़ आस्था रखने वाला, त्यागी और तपस्वी होना आवश्यक है। प्रस्तोता के पद के लिए संन्यासी होने की आवश्यकता नहीं है, पर सांगोपांग वेद आदि के प्रति दृढ़ आस्था रखने के साथ-साथ उसे संस्कृत तथा अर्थशास्त्र का विद्वान् भी होना चाहिये। विद्यापीठ के प्रधान पदाधिकारियों के लिए इस ढंग की योग्यता विधान द्वारा निर्धारित कर दिये जाने के कारण इस संस्था का संचालन ऐसे व्यक्तियों के ही हाथों में रहेगा, जो वेद, वेदांग, आर्ष पाठविधि, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों पर सुदृढ़ रूप से आस्था रखते हों। इस प्रकार की व्यवस्था आर्यसमाज के अन्य शिक्षणालयों के विधानों में नहीं पायी जाती, जिसके कारण उनका संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में भी आ जाता है, जिन्हें किसी भी अर्थ में आर्य विद्वान् तक न कहा जा सके।

अनेक गुरुकुल व विद्यालय श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ के साथ सम्बद्ध हैं, और अपने विद्यार्थियों से विद्यापीठ की परीक्षाएँ दिलाते हैं। विद्यापीठ की परीक्षाएँ लिखित, मौखिक और व्यावहारिक तीन प्रकार की होती हैं। लिखित और मौखिक परीक्षाओं की व्यवस्था विद्यापीठ करता है। आर्ष विद्यापीठ से सम्बद्ध गुरुकुलों तथा विद्यालयों के आचार्य अपने विद्यार्थियों के आचार-व्यवहार और संस्कृत सम्भाषण की परीक्षाएँ लेकर उनके अंक विद्यापीठ के कार्यालय में भेज देते हैं, जिन्हें लिखित व मौखिक परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के साथ जोड़ दिया जाता है। इसे ही व्यावहारिक परीक्षा कहते हैं। आर्ष गुरुकुलों की यह एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है, कि विद्यार्थियों को केवल पुस्तकें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही न पढ़ायी जाएँ, उन्हें केवल विद्याभ्यास ही न कराया जाए, अपितु सदाचार, ब्रह्मचर्य और अनुशासित जीवन की भी उन्हें शिक्षा दी जाए। इसी को 'व्रताभ्यास' कहा जाता है। व्यावहारिक परीक्षा द्वारा आर्ष विद्यापीठ ने व्रताभ्यास की पद्धति को ही अपनी परीक्षाओं के लिए अपनाने का प्रयत्न किया है।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ की परीक्षाओं को सरकार तथा अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त है। विद्यापीठ की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य कक्षाओं का अन्यत्र चलने वाली संस्कृत परीक्षाओं के समान स्तर निर्धारित हो जाने पर उनकी क्रमशः मिडल, हायर सैकेण्डरी, बी० ए० और एम० ए० के समकक्ष मान्यता स्वीकृत कर ली गई है। यद्यपि विद्यापीठ के आचार्य को एम० ए० के समकक्ष मान लिया गया है, पर अनेक विद्यार्थी इस संस्था से आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी अन्य विश्वविद्यालयों में एम०ए० के लिए प्रविष्ट हो जाते हैं, और इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति करने के मार्ग को प्रशस्त कर लेते हैं। आर्ष विद्यापीठ से कितने ही शास्त्री और आचार्य इस ढंग से एम० ए० और पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कर विविध विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्राध्यापक का कार्य कर रहे हैं। भारत की केन्द्रीय सरकार, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और हरयाणा सदृश अनेक राज्यों की सरकारों और जबलपुर विश्वविद्यालय, कोल्हापुर विश्वविद्यालय, दक्षिण गुजरात यूनिवर्सिटी, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय और राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली सदृश उच्च शिक्षा की संस्थाओं ने आर्ष विद्यापीठ की उपाधियों व परीक्षाओं को मान्यता दी हुई है।

गुरुकुल झज्झर के अतिरिक्त जो अन्य अनेक गुरुकुल इस विद्यापीठ के साथ सम्बद्ध हैं, या इसकी परीक्षाएँ दिलाते हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इसी अध्याय में आगे दिया गया है।

(५) आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ, एटा

उत्तरप्रदेश के एटा नगर के समीप यह गुरुकुल विद्यमान है, जिसकी स्थापना २६ एप्रिल, सन् १९४८ के दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी दण्डी महाराज द्वारा की गयी थी। गुरुकुल की स्थापना से पूर्व स्वामीजी ने यजुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ का आयोजन किया था, जिसमें आर्य जगत् के अनेक मूर्धन्य विद्वान् सम्मिलित हुए थे। पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु इस महायज्ञ में ब्रह्मा के रूप में विराजमान थे। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् स्वामी ब्रह्मानन्द ने पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु से विचार-विमर्श कर वहाँ एक ऐसे गुरुकुल को स्थापित करने का निश्चय किया, जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था हो।

जिन उद्देश्यों को सम्मुख रख कर गुरुकुल एटा की स्थापना की गई, वे निम्नलिखित थे—(१) महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट आर्ष पाठविधि को क्रियान्वित करना तथा उसके अनुसार अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था। (२) वर्णाश्रमव्यवस्थानुसार ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन द्वारा वेदों के विद्वान् तैयार कर वैदिक साहित्य का अनुसन्धान। (३) वैदिक धर्म तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रचार।

स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा यह गुरुकुल स्थापित हुआ था, पर इसका संचालन प्रारम्भ से ही पण्डित ज्योतिस्वरूप के हाथों में रहा, जो तीस वर्ष के लगभग इस संस्था के आचार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद पर रहकर इसकी उन्नति में निरन्तर तत्पर रहे। आर्यसमाज के अनेक विद्वानों तथा सम्भ्रान्त व्यक्तियों का सहयोग इस गुरुकुल को प्राप्त रहा है। पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु सदृश विद्वान् और महात्मा आनन्द स्वामी सदृश आर्य नेता इसके कुलपति रह चुके हैं, और वर्तमान समय में यह पद पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के हाथों में है। 'आर्ष गुरुकुल ट्रस्ट' नाम से एक रजिस्टर्ड ट्रस्ट है, जिस द्वारा इस गुरुकुल का संचालन किया जाता है। इसी ट्रस्ट में इस संस्था की सब सम्पत्ति का स्वामित्व निहित है। देश के अनेक धनीमानी व प्रतिष्ठित व्यक्ति इस के सदस्य हैं। गुरुकुल के पास कुल भूमि ४४ एकड़ (२०० बीघे के लगभग) है, जिसमें ३० बीघे में आम तथा अमरूद का बाग है। १०० बीघे के लगभग भूमि में यज्ञशाला, विद्यालय, छात्रावास, भोजन भण्डार, गौशाला, क्रीड़ा क्षेत्र तथा औषधालय हैं। शेष भूमि खेती के काम में लायी जाती है, जिसके लिए ट्रैक्टर सदृश आधुनिक उपकरणों का भी प्रयोग किया जाता है।

गुरुकुल एटा की यज्ञशाला विशेष रूप से आकर्षक है। इसमें १०० हवन कुण्ड हैं, और इसका भवन १०८ खम्भों पर खड़ा है। भावार्थ सहित वेद इसमें संगमरमर पर उत्कीर्ण कराये जा रहे हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा शाहपुरा राज्य (राजस्थान) में स्थापित जो अग्नि महर्षि की दीक्षा की शताब्दी के अवसर पर मथुरा लायी गई थी, वही मथुरा से ला कर गुरुकुल एटा की यज्ञशाला में स्थापित की गई, और वहाँ उसे निरन्तर प्रज्ज्वलित रखा जा रहा है। विद्यालय, छात्रावास, भोजन भण्डार आदि के अतिरिक्त अध्यापक वर्ग के निवासगृह तथा वानप्रस्थी व संन्यासी जनों के लिए सात कुटियाँ भी गुरुकुल में विद्यमान हैं। इन सबके कारण गुरुकुल के परिसर ने भव्य व रमणीक रूप प्राप्त कर लिया है। गुरुकुल की अपनी गौशाला भी है, जिससे ब्रह्मचारियों की दूध की आवश्यकता बहुत कुछ पूरी हो जाती है। गुरुकुल के पुस्तकालय में ५,००० के लगभग पुस्तकें हैं, जिनमें वेद, वेदांग, संस्कृत साहित्य, दर्शन तथा अन्य आर्ष ग्रन्थ बड़ी संख्या में हैं।

गुरुकुल एटा की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार शिक्षा देने के लिए की गई थी। अतः स्वाभाविक रूप से उसके पाठ्यक्रम में आर्ष ग्रन्थों की प्रधानता है। संस्कृत व्याकरण की पढ़ाई के लिए अष्टाध्यायी और महाभाष्य को प्रयुक्त किया जाता है, और संस्कृत साहित्य में हितोपदेश, पंचतन्त्र, वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा काव्यालंकार पढ़ाये जाते हैं। उपनिषदों तथा आस्तिक दर्शनों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है, और यजुर्वेद के आठ अध्यायों को भी। सूत्रग्रन्थ तथा स्मृतियाँ भी वहाँ के पाठ्यग्रन्थों के अन्तर्गत हैं। पर प्राचीन आर्ष साहित्य की प्रमुखता होते हुए भी गणित, भूगोल, इतिहास आदि आधुनिक विषयों तथा हिन्दी भाषा की सर्वथा उपेक्षा नहीं की गई है, और उन्हें भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। आर्ष गुरुकुल की शिक्षा इस प्रकार की है कि उस द्वारा ब्रह्मचारी संस्कृत भाषा और वेदशास्त्रों के गम्भीर विद्वान् बन सकते हैं, और वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति आस्थावान् होकर आर्यसमाज के मिशन को पूरा करने में सहायक हो सकते हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का जो आधारभूत तत्त्व आश्रम पद्धति के रूप में है और जिसके अनुसार बालक छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए सदाचार और तपस्या का अनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं, आर्ष गुरुकुल एटा में उसे पूर्ण रूप से अपनाने का प्रयास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। गुरुकुल में बालकों के प्रवेश की आयु ६ वर्ष है। प्रवेश के समय बालक की योग्यता पाँचवीं कक्षा के समकक्ष होनी आवश्यक है। स्वास्थ्य और योग्यता की परीक्षा लेकर ही बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है, और छह मास तक उनका प्रवेश स्थायी नहीं माना जाता। इस अवधि में यह परखा जाता है, कि बालक गुरुकुल की शिक्षा का अधिकारी है या नहीं। पात्रता के प्रमाणित हो जाने पर ही उसे स्थायी रूप से गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। गुरुकुल की शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन का व्यय ब्रह्मचारियों को देना होता है। भोजन पदार्थों के मूल्यों के अनुसार इस शुल्क में कमी या वृद्धि की जा सकती है। सन् १९७८-७९ में भोजन का शुल्क ४० रुपये मासिक था। प्रवेश के समय ब्रह्मचारियों से ५० रुपये प्रवेश शुल्क तथा ६० रुपये तख्त के लिए लिये जाने की भी व्यवस्था है।

आर्ष गुरुकुल, एटा में आश्रम पद्धति के मूल तत्त्वों को क्रियान्वित करने पर समुचित ध्यान दिया गया है। वहाँ ब्रह्मचारियों को छात्रावास में ही निरन्तर निवास करते हुए गुरुजनों के सजग निर्देशन व नियन्त्रण में विद्याध्ययन के लिए सतत प्रयत्नशील रहना होता है। सबका रहन-सहन तथा खान-पान एक समान है। धनी या निर्धन, सवर्ण या हरिजन, इसका कोई भेद गुरुकुल में नहीं किया जाता। वहाँ निवास करते हुए विद्यार्थियों में जाति और कुल आदि की उच्च व हीन स्थिति की अनुभूति शेष ही नहीं रह जाती। ब्रह्मचारियों के चरित्रनिर्माण तथा शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति पर इस गुरुकुल में विशेष ध्यान दिया जाता है, और समाज सेवा की क्रियात्मक शिक्षा उन्हें देने के लिए भी गुरुकुल प्रयत्न करता है। इसी प्रयोजन से उन्हें समीप के ग्रामों तथा नगरों में आयोजित धर्मप्रचार तथा समाज सेवा के कार्यों में भाग लेने के लिए ले जाया जाता है, जिससे उन्हें सार्वजनिक जीवन में योगदान की प्रेरणा प्राप्त होती है।

आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ ब्रह्मचारियों को चारों वेदों का सस्वर पाठ, सामगान तथा सभी प्रकार के जटा, घन, शिखादि पाठों का सम्यक् ज्ञान कराया जाता है। इस गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को सस्वर वेदपाठ का जो अभ्यास है, वह इस संस्था की एक अनुपम विशेषता है। आर्य जगत् में ही नहीं, अपितु विद्वत्मण्डल में सर्वत्र इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। सस्वर वेदपाठ की जो परम्परा प्रायः सर्वथा नष्ट हो गई थी, उसका पुनरुद्धार कर इस संस्था ने प्रशंसनीय कार्य किया है। ब्रह्मचारियों की वक्तृत्व शक्ति को विकसित करने, सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दे सकने की क्षमता उत्पन्न करने और वैदिक कर्मकाण्ड का ज्ञान कराने के लिए भी इस गुरुकुल में प्रयत्न किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप इसके अनेक स्नातकों ने प्रचारक तथा पुरोहित के रूप में अच्छी ख्याति अर्जित की है। केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी इस गुरुकुल के अनेक स्नातक प्रचारक तथा अध्यापक के रूप में गये हैं, जिनमें पण्डित भारतेन्दु विमल तथा पण्डित ओमप्रकाश के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री भारतेन्दु मोरीशस, मोम्बासा, केनिया आदि में वैदिक धर्म तथा हिन्दी भाषा का प्रचार करते रहे हैं, और श्री ओमप्रकाश लण्डन में अध्यापक हैं। कई स्नातक भारतीय सेना के धर्माचार्य के पद पर भी सेवारत हैं। श्री सत्यपाल, श्री वीरेन्द्र और श्री अवनीन्द्र आदि अनेक स्नातक सरकारी यूनिवर्सिटियों से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर विविध विश्वविद्यालयों में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे हैं। शिक्षा तथा विद्वत्ता के क्षेत्र में वे जो इस उच्च स्थिति को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त कर सके, उसका प्रधान कारण संस्कृत तथा वेद-वेदांगों की वह योग्यता ही थी, जो कि उन्होंने इस आर्ष गुरुकुल में नियमपूर्वक अध्ययन कर प्राप्त की थी। पण्डित आर्येन्द्र-कुमार, श्री सूर्यदेव तथा श्री अशोक कुमार सदृश अनेक स्नातक विभिन्न गुरुकुलों के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हैं। इसी संस्था में शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने 'आचार्य' परीक्षा उत्तीर्ण की थी। गुरुकुल एटा के विद्यार्थी विविध विद्यापीठों व विश्वविद्यालयों की संस्कृत परीक्षाओं में वैठते हैं, और उनमें उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। झज्झर में श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ के स्थापित हो जाने के कारण अब इस गुरुकुल के विद्यार्थी व्याकरणा-चार्य और वेदाचार्य सदृश परीक्षाएँ वहीं से उत्तीर्ण करने लगे हैं। जो ब्रह्मचारी आर्ष गुरुकुल एटा में विद्याध्ययन कर स्नातक हो चुके हैं, उनकी संख्या दो सौ से अधिक है, और विद्यार्थियों की संख्या वहाँ प्राय: सौ के लगभग रहती है।

(६) गुरुकुल आश्रम, आमसेना (उड़ीसा)

मध्यप्रदेश और उड़ीसा की सीमा पर रायपुर से ६० मील की दूरी पर खरियार रोड स्टेशन के समीप यह गुरुकुल स्थित है। स्टेशन से इसकी दूरी दो मील के लगभग है। इसकी स्थापना ८ मार्च, सन् १९६८ के दिन स्वामी धर्मानन्द सरस्वती द्वारा की गयी थी। उस समय श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती मध्यप्रदेश व विदर्भ की आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान थे। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर श्री देवनारायण साहू ने आमसेना में एक हिन्दी विद्यालय का प्रारम्भ किया था, जो बाद में स्वामीजी की प्रेरणा से ही गुरुकुल के रूप में परिवर्तित हो गया। इस समय से इस संस्था का संचालन स्वामी धर्मानन्द सरस्वती द्वारा किया जाने लगा। अब तक भी स्वामीजी ही इस गुरुकुल के आचार्य हैं, और बड़ी योग्यता तथा लगन से इसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में तत्पर हैं। उनके प्रधान सहायक पहले श्री योगेन्द्रकुमार व्याकरणाचार्य थे, और अब अखिलेश व्याकरणाचार्य और श्री अग्निमित्र मेधावी व्याकरणाचार्य हैं, जो क्रमश: उपाचार्य तथा व्यवस्थापक के पदों पर नियुक्त हैं। मुख्याध्यापक का कार्य श्री वामदेव व्रती व्याकरणाचार्य कर रहे हैं। गुरुकुल के ये सब पदाधिकारी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित हैं। स्वयं स्वामी धर्मानन्द व्याकरण, दर्शन और आयुर्वेद के आचार्य हैं। इन चार के अतिरिक्त तीन अन्य शिक्षक गुरुकुल में अध्यापन के लिए नियुक्त हैं। विद्यार्थियों की संख्या वहाँ ७५ है।

गुरुकुल आश्रम, आमसेना का स्वामित्व, व्यवस्था तथा संचालन एक रजिस्टर्ड सोसायटी के हाथों में है, जिसका नाम 'प्राचीन भारतीय विद्यासभा, गुरुकुल आश्रम परिचालना समिति, आमसेना' है। इस समिति या सभा के पाँच प्रकार के सदस्य हैं— (१) जो २५ रुपये या अधिक वार्षिक चन्दा देते हैं। (२) जो एक बार १०० रुपये या अधिक रुपये दान दें, वे आजीवन सदस्य होते हैं। (३) तीन हजार या अधिक रुपये दान देने वाले व्यक्ति सभा के संरक्षक-सदस्य होते हैं। (४) गुरुकुल आश्रम के आचार्य एवं मुख्याधिष्ठाता पदेन सभा के सदस्य होते हैं। यदि सभा उपयुक्त समझे तो किन्हीं धार्मिक व विद्वान् व्यक्तियों को भी प्रतिष्ठित सभासद् के रूप में परिचालन समिति का सदस्य मनोनीत कर सकती है। २३ नवम्बर, सन् १९७० को इस संस्था का पंजीकरण हुआ था, और पंजीकृत नियमोपनियम (संविधान) में इसके निम्नलिखित उद्देश्य उल्लिखित किये गये थे—(१) महर्षि दयानन्दजी के द्वारा अनुमोदित प्राचीन आर्ष प्रणाली के अनुसार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल विद्यालय आदि चलाना तथा इसी प्रकार के अनुष्ठानों की सहायता करना इस सभा का मुख्य उद्देश्य होगा। ग्रामीण जनता के लिए लोक विद्यापीठ से शिक्षा की व्यवस्था करना भी इसका मुख्य उद्देश्य होगा। (२) छात्र-छात्राएँ ब्रह्मचर्य पालन के साथ अलग-अलग शिक्षा प्राप्त करेंगे तथा जिस प्रकार वे प्राचीन संस्कृति के भक्त बनें और देशभक्त बनें, ऐसी व्यवस्था की जायगी। छात्रवृत्तियों एवं छात्रावासों की व्यवस्था तथा शिक्षा में पिछड़े हुए वनवासी हरिजन आदि की शिक्षा एवं रक्षा की विशेष व्यवस्था की जायगी। (३) प्राचीन भारतीय शिक्षा के प्रचार-प्रसारार्थ आवश्यक साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा मुद्रणालय और पुस्तकालय की स्थापना की जायगी।

गुरुकुल आश्रम, आमसेना की स्थापना इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है। परिचालन समिति द्वारा गुरुकुल के जो उद्देश्य निर्धारित किये गये, वे निम्नलिखित हैं—(१) प्राचीन आश्रम प्रणाली से वेदशास्त्रों की शिक्षा देते हुए बच्चों को सच्चरित्र बनाना और उनके अन्दर ऐसी भावना भरना कि वे देश व धर्म के लिए अपना जीवन तक न्यौछावर कर सकें। (२) बच्चे का आत्मिक, बौद्धिक व शारीरिक विकास करते हुए प्रत्येक कार्य की क्रियात्मक शिक्षा देकर उन्हें स्वावलम्बी बनाना। (३) वैदिक धर्म के आदर्श अध्यापक, उपदेशक, त्यागी-तपस्वी-कर्मठ विद्वान् व योग्य नागरिक तैयार करना। (४) अशिक्षित वनवासी इलाके में भारतीय संस्कृति का प्रचार और रक्षा करना। (५) प्राचीन ग्रन्थों और सत्साहित्य का प्रकाशन व प्रचार करना।

भारत के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में गुरुकुल आमसेना द्वारा ही सबसे पहले महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली एवं पाठविधि के अनुसार शिक्षा का प्रारम्भ किया गया था। आर्ष पाठविधि का अनुसरण करने वाली यही अब भी इस क्षेत्र की प्रधान संस्था है। इसमें शिक्षा तथा निवास के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता। भोजन के लिए ४० रुपये मासिक व्यय ब्रह्मचारियों को देना होता है, यद्यपि वास्तविक व्यय इससे अधिक (७० व ८० रुपये मासिक के लगभग) बैठता है। पत्र-व्यवहार, बाल कटाई, रोशनी, खेल, पुस्तकालय और औषधि आदि की कोई फीस ब्रह्मचारियों से नहीं ली जाती। जो विद्यार्थी सुयोग्य मेधावी हों, पर भोजन का व्यय देने में असमर्थ हों या वनवासी आदि पिछड़े निर्धन वर्ग के हों, उनसे भोजन का व्यय भी नहीं लिया जाता। पर उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा के पूर्ण हो जाने पर कम-से-कम पाँच वर्ष वे गुरुकुल द्वारा निर्दिष्ट कार्य निःशुल्क रूप से करेंगे। सब ब्रह्मचारियों का रहन-सहन तथा खान-पान एक समान है। उनका वेश नियत है, जिसके लिए पीले वस्त्रों को चुना गया है। सब ब्रह्मचारी पीले वस्त्र पहनते हैं। भोजन मिर्च, मसालों से रहित सर्वथा निरामिष व सात्त्विक होता है। ब्रह्मचारियों की दिनचर्या नियत है। वे प्रातः ४ बजे सो कर उठते हैं। ४५ मिनट ईश्वर प्रार्थना, शौच और दन्तधावन में लगा कर व्यायाम और स्नान करते हैं। फिर सन्ध्या-हवन होता है। फिर ६·३० बजे प्रातराश कर वे पढ़ाई के लिए विद्यालय चले जाते हैं। ४ घण्टे पूर्वाह्न में पढ़ाई होती है, और २·१५ घण्टे अपराह्न में। दोपहर ११·३० से १·३० बजे तक का समय भोजन तथा विश्राम के लिए रखा गया है। सायंकाल ४ से ६·३० बजे तक का समय ब्रह्मचारी शारीरिक श्रम, आसन, व्यायाम, शौच तथा स्नान में व्यतीत करते हैं। ६·३० से ७·१५ तक सन्ध्या, हवन तथा प्रार्थना के अनन्तर वे भोजन करते हैं। छोटे ब्रह्मचारियों के लिए सोने का समय ८·३० बजे है, और बड़े

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारियों के लिए ६ बजे। शारीरिकश्रम और व्यायाम के साथ ब्रह्मचारियों से योगासन भी कराये जाते हैं, जो उनके शरीर को स्वस्थ बनाने तथा मानसिक वृत्तियों को नियन्त्रित करने में बहुत सहायक होते हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की अनेक पुरानी विशेषताओं को अब तक भी इस संस्था में महत्त्व दिया जाता है। संरक्षक गुरुकुल के प्रबन्धकों की अनुमति से ही अपने ब्रह्मचारियों से मिल सकते हैं, और इसके लिए भी कुछ विशिष्ट दिन नियत हैं। बिना अनुमति के खाने-पीने की कोई वस्तु ब्रह्मचारी को नहीं दी जा सकती। अध्ययनकाल में विशेष कारण के बिना किसी ब्रह्मचारी को घर जाने के लिए अवकाश नहीं दिया जाता। 'सादा जीवन और उच्च विचार' इस शिक्षण-संस्था का आदर्श है। महर्षि दयानन्द के मन्तव्य के अनुसार शिक्षा काल में विद्यार्थियों को तपस्वी जीवन बिताना चाहिये। गुरुकुल आश्रम आमसेना में महर्षि के इस मन्तव्य का अनुसरण करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है।

गुरुकुल आमसेना में जो ७५ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उनमें बहुसंख्यक अशिक्षित व पिछड़े हुए वर्ग के हैं। मध्यप्रदेश और उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र में बहुत-सी ऐसी जातियों का निवास है, जो सभ्यता के क्षेत्र में बहुत पिछड़ी हुई हैं और जिन्हें 'आदिवासी' या 'अनुसूचित जनजाति' कहा जाता है। इनके लोग प्रायः शिकार व मछली पकड़ कर निर्वाह करते हैं, और शहरों से दूर जांगल प्रदेश में निवास करते हैं। गुरुकुल आमसेना के प्रयत्न से आज इस वर्ग के बच्चे संस्कृत पढ़ रहे हैं, वेदमन्त्रों से अपने वन-प्रधान अभिजन को गुंजा रहे हैं, और शास्त्री तथा आचार्य सदृश परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर देश के विद्वानों में स्थान प्राप्त करने लगे हैं। पिछड़े वर्ग के इन छात्रों का सब व्यय (भरण-पोषण का व्यय भी) गुरुकुल द्वारा ही वहन किया जा रहा है।

गुरुकुल की अचल सम्पत्ति (भूमि-भवन आदि) का मूल्य छह लाख रुपये के लगभग है। भू-सम्पत्ति आमसेना के निवासी श्री नाथूराम साहू, श्री इच्छाराम साहू और श्रीमती माता नीलादेवी द्वारा दान में दी गयी है। छात्रावास के पाँच कमरे (२०'×१८' साइज के) सरकारी अनुदान से बने हैं, और शेष सब भवन जनता के दान से। संस्था का वार्षिक व्यय तीन लाख रुपये के लगभग है। इसमें ४० हजार रुपये भारत सरकार तथा उड़ीसा सरकार से अनुदान के रूप में प्राप्त होते हैं, और शेष दान, खेती, गौशाला, मुद्रणालय, पुस्तक प्रकाशन, आटा चक्की आदि साधनों से। २५ विद्यार्थी ऐसे हैं, जिनका भरण-पोषण भी गुरुकुल द्वारा ही किया जाता है, पर अन्य विद्यार्थियों से भोजन-व्यय की प्राप्ति हो जाती है।

उड़ीसा प्रदेश की भाषा उड़िया है, जिसमें साहित्य की बहुत कमी है। इस प्रदेश में वैदिक धर्म का प्रकार भी बहुत कम है, और आर्यसमाज अपनी शैशव दशा में है। इस बात को दृष्टि में रखकर गुरुकुल आमसेना द्वारा उड़िया भाषा में आर्यसमाज और वैदिक धर्म विषयक पुस्तकों का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया, और इसी प्रयोजन से 'उत्कल साहित्य संस्थान' नाम से प्रकाशन विभाग की स्थापना की गई। इस समय तक इस संस्थान द्वारा २६ पुस्तकें उड़िया भाषा में प्रकाशित की जा चुकी हैं, जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्यरत्नमाला, और स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश के उड़िया भाषा में अनुवाद भी हैं। उड़ीसा की जनता को महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप से परिचित कराने के लिए आर्यसमाज के १००

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष, दयानन्द कौन, संस्कारक दयानन्द, वेद के सनातन धर्म, दैनिक अर्चनाविधि सदृश पुस्तकें भी इस संस्थान द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। आर्यसमाज हिन्दी भाषा को बहुत महत्त्व देता है, और उसे ही भारत की राष्ट्रभाषा मानता है। इसीलिए गुरुकुल आमसेना के उड़ीसा सदृश अहिन्दी भाषी प्रदेश में स्थित होते हुए भी वहाँ का प्रायः सब काम हिन्दी भाषा में होता है, शिक्षा का माध्यम हिन्दी है और 'प्राचीन भारतीय विद्यासभा, गुरुकुल आश्रम परिचालन समिति' का कार्यकलाप हिन्दी में किया जाता है। परिचालन समिति के संविधान में यह स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है, कि "सभा का सब कार्य हिन्दी भाषा में होगा।" इसीलिए उत्कल साहित्य संस्थान द्वारा हिन्दी में भी पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। साहित्य के प्रकाशन के लिए गुरुकुल का अपना मुद्रणालय भी है। पुस्तक प्रकाशन के अतिरिक्त इस संस्था द्वारा हिन्दी और उड़िया भाषाओं में 'कुलभूमि' नामक मासिक पत्र भी निकलता है।

गुरुकुल आमसेना में एक पुस्तकालय भी है, जिसमें वेद, वेदांग, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा अन्य वैदिक व आर्ष पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ३,००० से भी अधिक है, और ताम्रपत्र पर लिखे हुए कुछ प्राचीन ग्रन्थ भी इसमें विद्यमान हैं, जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

यह गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है, और इसमें विद्यापीठ द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार शिक्षा दी जाती है। इसकी अपनी न कोई परीक्षाएँ हैं और न उपाधियाँ। आर्ष विद्यापीठ की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की परीक्षाओं में ही यहाँ के विद्यार्थी बैठते हैं, और शास्त्री, व्याकरणाचार्य आदि उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। गुरुकुल आमसेना के आचार्य स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, स्वामी ओमानन्द के शिष्य हैं, और अपने गुरु द्वारा संचालित विद्यापीठ की शिक्षा पद्धति तथा पाठविधि को ही इस गुरुकुल में प्रयुक्त कर रहे हैं। इस शिक्षण-संस्था को स्थापित हुए अभी केवल १५ वर्ष हुए हैं। अतः कुछ ही विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण कर वहाँ से स्नातक हो पाये हैं। ये स्नातक या तो वैदिक धर्म के प्रचार में लगे हैं, या आर्यसमाज द्वारा स्थापित संस्थाओं में कार्य कर रहे हैं। कुछ स्नातक एम० ए० सदृश उच्च डिग्रियों को प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्नशील हैं, ताकि वे जीवन संघर्ष में सफलता के साथ आगे बढ़ सकें और सांसारिक दृष्टि से भी उत्कर्ष कर सकें।

जिस क्षेत्र में गुरुकुल आमसेना स्थित है, वह बहुत पिछड़ा हुआ है। वहाँ के अशिक्षित व निर्धन लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिए क्रिश्चियन मिशनरी बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। उनके पास धन व अन्य साधनों की कमी नहीं है। उन्होंने अनेक स्कूल व हास्पिटल इसी प्रयोजन से वहाँ खोले हुए हैं, ताकि उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों को ईसाई बनाया जा सके। इस स्थिति में स्वामी धर्मानन्द ने वहाँ गुरुकुल खोलकर एक ऐसा केन्द्र कायम कर दिया है, जहाँ से उस क्षेत्र के निवासियों को ईसाई व विधर्मी होने से बचाया जा सकता है और उन्हें वैदिक धर्म की उत्कृष्टता का बोध कराके आर्य-समाज में सम्मिलित हो जाने के लिए प्रेरणा दी जा सकती है। स्वामी धर्मानन्द तथा गुरुकुल के अन्य अध्यापक समय समय पर इस क्षेत्र में प्रचार के लिए भी जाते रहते हैं। इनके प्रचार का ही यह परिणाम है, कि बहुत-से ऐसे लोग, जिन्होंने अपने पूर्वजों के धर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परित्याग कर विदेशी धर्म को अपना लिया था, अब शुद्धि संस्कार द्वारा पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित हो गये हैं।

गुरुकुल आमसेना में केवल बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। पर बालिकाओं की शिक्षा की ओर भी इस संस्था के संचालकों का ध्यान गया है। उड़ीसा के इस पिछड़े हुए क्षेत्र में लड़कों में भी शिक्षा की बहुत कमी है। फिर वहाँ लड़कियों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। वहाँ बालिकाओं व महिलाओं में जो थोड़ी-बहुत शिक्षा थी, वह मुख्यतया क्रिश्चियन मिशनरियों के कर्तृत्व का परिणाम थी। इस दशा में अब गुरुकुल आमसेना द्वारा एक महिला शिक्षण केन्द्र की भी स्थापना कर दी गई है, जिसमें २५ मिडल पास बालिकाओं और महिलाओं को गुरुकुलीय वातावरण में रखकर शिक्षा दी जा रही है। आशा है, यह केन्द्र शीघ्र ही बहुत उन्नति कर जाएगा और इस द्वारा स्त्रियों में वैदिक धर्म एवं आर्य संस्कृति के प्रचार में बहुत सहायता मिलेगी।

(७) गुरुकुल महाविद्यालय रुद्रपुर, तिलहर

शाहजहाँपुर (उत्तरप्रदेश) जिले की तिलहर तहसील में यह गुरुकुल महाविद्यालय स्थित है। १५ जून, सन् १९५० को पण्डित सत्यदेव शास्त्री द्वारा इसकी स्थापना की गयी थी। पण्डित सत्यदेव ने भारत के स्वाधीनता संग्राम में उत्साह के साथ भाग लिया था, और उन्हें अनेक बार ब्रिटिश सरकार द्वारा जेल की सजा दी गयी थी। जेल में कठोर यातनाएँ सहते हुए भी उन्होंने विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष को जारी रखा। भारत के स्वाधीन हो जाने पर पण्डितजी ने देश के युवकों को सदाचारी, धर्मपरायण तथा देशभक्त बनाने की ओर ध्यान दिया, क्योंकि स्वतन्त्र सरकार का संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में रहने पर ही देश की उन्नति सम्भव थी। इसी प्रयोजन से उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय, तिलहर की स्थापना की, और उसके संचालन व व्यवस्था के लिए 'गुरुकुल सभा' का संगठन किया। यह सभा उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पंजीकृत है और यही गुरुकुल की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों का चुनाव करती है।

गुरुकुल महाविद्यालय रुद्रपुर में विभिन्न पाठ्यक्रम प्रचलित हैं, (१) बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्राथमिक पाठशाला है। इसका पाठ्यक्रम वही है, जो जिला परिषद् के प्राइमरी स्कूलों के लिए निर्धारित होता है। अन्तर यह है कि इसमें बालकों को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है, जो सबके लिए अनिवार्य होती है। प्राथमिक पाठशाला के विद्यार्थियों को जिला परिषद् की परीक्षाएँ देने की अनुमति है।

(२) प्राथमिक विभाग के बाद की शिक्षा उस पद्धति के अनुसार है, जो श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर द्वारा अपनायी गयी है। तीन साल प्रथमा परीक्षा के लिए, तीन साल मध्यमा परीक्षा के लिए, तीन साल शास्त्री परीक्षा के लिए और दो साल आचार्य परीक्षा के लिए विद्यार्थियों को अध्ययन करना होता है। इन कक्षाओं का पाठ्यक्रम इस ढंग से बनाया गया है, कि विद्यार्थी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ दे सकें। इन शिक्षण-संस्थाओं के स्तर की संस्कृत साहित्य, संस्कृत व्याकरण, वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों की पढ़ाई की इस गुरुकुल में समुचित व्यवस्था है। पहले इसके विद्यार्थी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ दिया करते थे, पर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष विद्यापीठ, झज्झर की स्थापना और सरकार द्वारा उसकी परीक्षाओं को मान्यता प्रदान कर देने के पश्चात् अब विद्यार्थी मुख्यतया उसी की परीक्षाएँ देते हैं।

(३) जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय या विद्यापीठ की परीक्षाएँ न देना चाहें, वे इस गुरुकुल में रहते हुए संस्कृत व्याकरण, वैदिक साहित्य, दर्शन तथा याज्ञिक कर्मकाण्ड आदि का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन कर सकते हैं, और इस प्रकार समाज तथा धर्म की सेवा के लिए समुचित योग्यता प्राप्त कर लेना उनके लिए सुलभ हो जाता है।

गुरुकुल महाविद्यालय, रुद्रपुर में ब्रह्मचारियों के निवास के लिए छात्रावास विद्यमान है, जिसमें सौ के लगभग विद्यार्थी ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन विताते हैं। उनकी दिनचर्या प्राय: वही है, जो गुरुकुलों में अपनायी जाती है। आठ अध्यापक वहाँ अध्यापन का कार्य करते हैं। उनके अतिरिक्त उच्च कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा निम्न कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाने की परम्परा भी इस गुरुकुल में विद्यमान है, जिससे ब्रह्मचारियों को अध्यापन का भी अनुभव प्राप्त हो जाता है।

गुरुकुल रुद्रपुर से शिक्षा प्राप्त कर अनेक विद्यार्थियों ने शिक्षा, विद्वत्ता तथा सार्वजनिक जीवन के क्षेत्रों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया है, और अपनी संस्था के संस्थापक पण्डित सत्यदेव शास्त्री के राष्ट्रभक्ति तथा देश सेवा के पुनीत आदर्श के अनुसार धर्म तथा समाज की सेवा में तत्पर हैं।

(८) गुरुकुल वैदिकाश्रम, वेदव्यास (उड़ीसा)

उड़ीसा में आर्यसमाज का कार्य अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। ईसाई पादरी वहाँ अपने धर्म के प्रचार के लिए विशेष रूप से सक्रिय हैं, और इसी प्रयोजन से उन्होंने वहाँ अनेक शिक्षण-संस्थाएँ भी स्थापित की हुई हैं। पर गत चौथाई सदी से आर्यसमाज ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया है, और वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप के प्रसार के लिए शिक्षण-संस्थाओं को भी साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। इसका प्रधान श्रेय स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज को प्राप्त है। उड़ीसा में गुरुकुल को स्थापित कर जो महत्त्वपूर्ण कार्य स्वामीजी ने किया, आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए उसका बहुत महत्त्व है। सन् १९६० में उन्होंने ब्राह्मी नदी के समीप पर्वत की उपत्यका में एक गुरुकुल की स्थापना की, जिसका प्रारम्भिक संचालन स्वामी शिवानन्द तीर्थ द्वारा किया गया। स्वामी शिवानन्द ही इस गुरुकुल के प्रथम आचार्य थे। सन् १९६० में स्थापित यह गुरुकुल उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता गया। जिस क्षेत्र में यह गुरुकुल विद्यमान है, वह वनवासी जातियों का है। ईसाई मिशनरी इन जातियों को क्रिश्चियन धर्म में दीक्षित करने के लिए प्रयत्नशील थे। पर इस गुरुकुल के स्थापित हो जाने पर वनवासी लोगों को अपने परम्परागत धर्म तथा संस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न हुई, और वे ईसाई बनने से बचे रह सके।

सन् १९६८ तक गुरुकुल वेदव्यास में श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, गुरुकुल झज्झर द्वारा निर्धारित पाठविधि का अनुसरण कर अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था कायम रही, और विद्यार्थी आर्ष विद्यापीठ की परीक्षाओं में ही बैठते रहे। पर बाद में क्रियात्मक दृष्टि से यह उचित समझा गया, कि इस संस्था को उड़ीसा सरकार से मान्यता प्राप्त उत्कल संस्कृत समिति, पुरी के साथ सम्बद्ध करा दिया जाए और समिति के पाठ्यक्रम के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार ही वहाँ पढ़ाई भी होने लगी। उत्कल संस्कृत समिति की पाठविधि के लागू कर देने पर पण्डित देशबन्धु विद्यावाचस्पति को गुरुकुल का मुख्याध्यापक नियुक्त किया गया, जो योग्यता तथा लगन से इसे उन्नत करने में तत्पर हैं। श्री देशबन्धु ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार के सुयोग्य स्नातक हैं। उत्कल संस्कृत समिति द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ इस गुरुकुल में वैदिक धर्म की भी अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाती है, और अंग्रेजी, गणित, इतिहास आदि की पढ़ाई की भी वहाँ व्यवस्था है।

यद्यपि यह गुरुकुल एक शिक्षण-संस्था के रूप में है, पर इसका मुख्य प्रयोजन उड़ीसा के वन्य एवं पार्वत्य क्षेत्र के निरीह, दलित एवं उपेक्षित बच्चों को सुशिक्षित करना है। इसीलिए एक 'वनवासी विद्यासभा' का निर्माण किया गया, जिसे सन् १९६७ में सोसायटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट (१८६०) के अनुसार सरकार से रजिस्टर्ड भी करा लिया गया। वेदव्यास के गुरुकुल तथा वैदिक आश्रम का संचालन इसी सभा द्वारा किया जा रहा है। वैदिक आश्रम में विद्यार्थियों के लिए छात्रावास विद्यमान है जिसमें सवर्ण, हरिजन एवं वन्य जातियों के बच्चों में कोई भी भेदभाव किये बिना सबके लिए निःशुल्क भोजन, वस्त्र तथा निवास आदि की व्यवस्था है। इस आश्रम में रहने वाले विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार का कोई व्यय नहीं लिया जाता। बच्चों की देख-रेख के लिए सदाचारी व सुशिक्षित अधिष्ठाता (संरक्षक) नियुक्त हैं। गुरुकुल विद्यालय में मध्यमा परीक्षा के स्तर तक की पढ़ाई होती है। गुरुकुल का अपना प्रकाशन विभाग भी है, जिसे 'उत्कल वैदिक साहित्य संस्थान' कहते हैं। इस विभाग द्वारा अब तक संस्कारविधि, पंचमहायज्ञविधि, ईशोपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद् आदि कितने ही ग्रन्थों के उड़िया भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य प्रकाशन के लिए गुरुकुल का अपना मुद्रणालय भी है। तीन पत्र भी इस संस्थान से प्रकाशित होते रहे हैं, हिन्दी में वनवासी सन्देश (मासिक), जिसके सम्पादक पण्डित देशबन्धु विद्यावाचस्पति हैं, उड़िया भाषा में आश्रम ज्योति (मासिक) जिसके सम्पादक श्री शचीन्द्र स्थाईं हैं, और संस्कृत भाषा में उत्कलोदय (त्रैमासिक) जिसके सम्पादक पण्डित दिगम्बर महापात्र हैं। वैदिक कल्चर नाम से अंग्रेजी में भी एक पत्रिका गुरुकुल से प्रकाशित हुआ करती थी, जो अब बन्द हो गयी है। गुरुकुल के पुस्तकालय में वैदिक साहित्य का उत्तम संग्रह है, और उसमें पुस्तकों की संख्या ४,००० से भी अधिक है। वेदव्यास वैदिक आश्रम के साथ एक 'दयानन्द शिशु भवन' भी है, जिसमें असहाय, दरिद्र व अनाथ बच्चों को रखकर न केवल उनका पालन-पोषण ही किया जाता है, अपितु उनको नियमित रूप से शिक्षा भी दी जाती है। इस शिशु भवन का उद्घाटन २१ अगस्त, १९७६ के दिन उड़ीसा की तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्रीमती नन्दिनी शतपथी द्वारा किया गया था। वर्तमान समय में इस भवन में १०० बच्चे रह रहे हैं।

वेदव्यास वैदिक आश्रम को केन्द्र बनाकर अन्य भी अनेक शिक्षण-संस्थाओं का संचालन स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा किया जा रहा है। ये संस्थाएँ निम्नलिखित हैं—(१) करुणाकर वेद विद्यालय, दशरथपुर (कटक), (२) महापुरुष संस्कृत विद्यालय, कांजियापाल (बालेश्वर), (३) श्रद्धानन्द संस्कृत विद्यापीठ, तपोवन शान्ति आश्रम, फुलवाणी, (४) नरसिंहनाथ उपदेशक विद्यालय, नरसिंहनाथ (सम्बलपुर), (५) गुरुकुल विद्यापीठ, भोजपुर (सुन्दरगढ़), (६) वैदिक आश्रम, पिछावणिया, रूपसा (बालेश्वर), (७) कांजियापाल दयानन्द शिशु भवन, कांजियापाल (बालेश्वर), (८) दयानन्द शिशु

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन गुरुकुल वैदिकाश्रम वेदव्यास, (९) दयानन्द शिशु तपोवन शान्ति आश्रम, फुलवाणी। (१०) कन्या गुरुकुल, तनरड़ा (गंजाम), (११) दयानन्द शिशु भवन, तनरड़ा (गंजाम), (१२) महर्षि दयानन्द हाईस्कूल, पावुरिया, (१३) दयानन्द हाईस्कूल, कार्टिगिया, (१४) दयानन्द हाईस्कूल, लुंगई, और (१५) श्रद्धानन्द मिडल स्कूल, पादरीपड़ा।

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के पुरुषार्थ से उड़ीसा में आर्यसमाज का शिक्षा-विषयक कार्य कितने व्यापक रूप से हो रहा है, यह सर्वथा स्पष्ट है। उन द्वारा जहाँ अनेक गुरुकुल, वेद विद्यालय तथा संस्कृत विद्यापीठ चलाये जा रहे हैं, वहाँ साथ ही अनेक ऐसे स्कूल भी उन्होंने स्थापित किये हैं, जिनमें सामान्य स्कूली शिक्षा के साथ-साथ धर्म एवं सदाचार की शिक्षा की भी व्यवस्था है। शिशु भवन में अनाथ व असहाय बच्चों को पाल कर स्वामीजी अत्यन्त लोकोपकारी कार्य कर रहे हैं। उड़ीसा में स्त्रीशिक्षा के लिए जो कार्य स्वामीजी ने किया है, उस पर यथास्थान पृथक् रूप से प्रकाश डाला जाएगा।

उड़ीसा में वैदिक धर्म का प्रचार तभी किया जा सकता था, जबकि उसके लिए ऐसे विद्वान् प्रचारक उपलब्ध हों, जिनका उड़िया भाषा पर समुचित अधिकार हो। ऐसे प्रचारक तैयार करने के लिए वेदव्यास वैदिक आश्रम की ओर से बहुत-से विद्यार्थी वेद-शास्त्र तथा आर्ष साहित्य के अध्ययन के लिए उपदेशक विद्यालय, वैदिक साधनाश्रम, यमुनानगर (हरयाणा); ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार; गुरुकुल झज्झर; आर्ष गुरुकुल, एटा (उत्तरप्रदेश); गुरुकुल विद्यापीठ, भैंसवाल (हरयाणा); गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ (राजस्थान); गुरुकुल, किरठल (मेरठ); गुरुकुल तातारपुर; दयानन्द मठ, दीनानगर (पंजाब); गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (उत्तरप्रदेश); प्रभात आश्रम, मेरठ; साधु आश्रम, हरदुआगंज (अलीगढ़); कन्या गुरुकुल, हाथरस आदि सुप्रसिद्ध आर्य शिक्षणालयों में भेजे गये। वहाँ से उच्च शिक्षा प्राप्त कर ये विद्यार्थी अपने प्रदेश में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

उड़ीसा में आर्ष शिक्षण-संस्थाओं की व्यवस्था के लिए जो वनवासी विद्यासभा संगठित है, उसके प्रधान श्री सीताराम आर्य तथा मन्त्री श्री धर्मपाल गुप्त हैं।

वेदव्यास वैदिक आश्रम की ओर से एक गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी भी स्थापित है, जो इस संस्था की आमदनी का अन्यतम महत्त्वपूर्ण साधन है। यह आश्रम उड़ीसा में वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप का सशक्त केन्द्र है। इस द्वारा वनवासियों में वैदिक धर्मप्रचार के लिए तथा लोभ-लालच व अज्ञानवश जिन लोगों ने अपने परम्परागत धर्म का परित्याग कर क्रिश्चियेनिटी को अपना लिया था, उन्हें फिर से अपने धर्म में वापस लाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। अब तक २०,००० से भी अधिक वनवासी व्यक्ति शुद्ध होकर स्वधर्म में वापस आ चुके हैं, और ५,००० के लगभग अन्तर्जातीय विवाह इस विभाग द्वारा सम्पन्न कराये गये हैं।

(९) श्रीमद्दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ, गदपुरी

दिल्ली से मथुरा-आगरा जाने वाले राजमार्ग पर पलवल और बल्लभगढ़ के बीच में (दिल्ली से अठाईसवें मील पर) गदपुरी नामक ग्राम के समीप यह गुरुकुल स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९३६ में बाबू देवीसहाय द्वारा की गई थी। गुरुकुल के लिए भूमि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्षेत्रफल, ३६ बीघे) गदपुरी के निवासियों ने दान में दी थी, और उसके भवनों आदि के लिए धन बाबू देवीसहाय ने। बाबू देवीसहाय नहर के महकमे में ओवरसियर थे। उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया, और अपनी सब सम्पत्ति गुरुकुल को दान देकर उसके संचालन में अपना तन, मन, धन अर्पित कर दिया, और मुख्याधिष्ठाता के रूप में इसकी सब व्यवस्था करते रहे। दिसम्बर, १९४२ में उनके देहावसान के पश्चात् ठाकुर किशनलाल, महाशय पालाराम और स्वामी हीरानन्द ने गुरुकुल गदपुरी का संचालन किया। इन सबने इस शिक्षण-संस्था की सेवा के लिए अपना खून-पसीना एक कर दिया, और इन्हीं की लगन, सेवाभाव तथा परिश्रम का परिणाम है, जो यह संस्था अपने पैरों पर खड़ी हो गयी है।

गुरुकुल विद्यापीठ, गदपुरी की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी है—(१) वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, संस्कृतज्ञ, उपदेशक, पुरोहित, अध्यापक एवं आदर्श स्वावलम्वी नागरिक प्रस्तुत करना। (२) भारतीय संस्कृति के अनुसार गुरु और शिष्य में श्रद्धा और प्रेम की भावना का संचार करना। (३) महर्षि दयानन्दकृत पाठविधि के अनुसार श्रौत आर्ष साहित्य की अधिकाधिक अभिवृद्धि और प्रचार करना। (४) विद्यार्थियों के निवास, शिक्षा और यथासम्भव भोजन की निःशुल्क व्यवस्था करना। (५) वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार की ओर ध्यान देना। (६) वानप्रस्थी और संन्यासी वर्ग की यथोचित सेवा करना। (७) विशाल पुस्तकालय की स्थापना करना, जिसमें वैदिक और आधुनिक विषयों का अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसन्धान का सुचारु प्रवन्ध हो।

विद्यापीठ में छात्रों की संख्या १४० के लगभग है। ये छात्रावास में रहते हैं, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार ब्रह्मचर्य तथा तप का जीवन विताते हैं। इनकी दिनचर्या पूर्ण रूप से अनुशासित है। भोजन सादा व पुष्टिकर होता है। ब्रह्मचारी प्रतिदिन व्यायामशाला में जाकर व्यायाम करते हैं। वहाँ व्यायाम के सब उपकरण विद्यमान हैं। नियमपूर्वक व्यायाम तथा स्वास्थ्यकर सात्त्विक भोजन के कारण विद्यार्थियों का स्वास्थ्य अत्यन्त उत्तम रहता है। गुरुकुल की इमारतों में छात्रावास, विद्यालय, महाविद्यालय, भोजन भण्डार, पुस्तकालय, स्नानगृह तथा व्यायामशाला के भवन बड़े अच्छे ढंग से बने हुए हैं।

प्रारम्भिक कक्षाओं की पढ़ाई का पाठ्यक्रम गुरुकुल विद्यापीठ, गदपुरी द्वारा निर्धारित है, और इनकी परीक्षा (प्रवेशिका परीक्षा) भी गुरुकुल द्वारा ही ली जाती है। इसके बाद की पढ़ाई का पाठ्यक्रम इस प्रकार से बनाया गया है, कि विद्यार्थी विविध विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ दे सकें। ये परीक्षाएँ निम्नलिखित हैं—(१) श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ। (२) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ। (३) गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर की विद्यारत्न और विद्याभास्कर परीक्षाएँ। (४) गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की अधिकारी परीक्षा। गुरुकुल विद्यापीठ, गदपुरी की एक अपनी भी स्नातक परीक्षा है जिसे उत्तीर्ण कर लेने पर 'विद्याविभूति' उपाधि दी जाती है। शिक्षा का स्तर इस विद्यापीठ में बहुत सन्तोषजनक है। इसीलिए यहाँ के बहुत-से विद्यार्थियों ने शास्त्री, व्याकरणाचार्य आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर एम० ए० की परीक्षा भी पास कर ली है, और शिक्षा जगत् में उन्होंने उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गदपुरी के गुरुकुल विद्यापीठ को स्थापित हुए आधी सदी के लगभग समय हो चुका है। इस अवधि में वहाँ शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी स्नातक हुए, उनकी संख्या सैकड़ों में है। गुरुकुल का प्रबन्ध, व्यवस्था और संचालन प्रधानतया इन स्नातकों के हाथों में है। वहाँ के आचार्य तथा अन्य अनेक अध्यापकों की शिक्षा इसी विद्यापीठ में हुई है। इस कारण यहाँ वे परम्पराएँ व मान्यताएँ सुरक्षित रूप में विद्यमान हैं, जिन्हें दृष्टि में रखकर इस शिक्षण-संस्था की स्थापना की गयी थी।

वैदिक धर्म और आर्यसमाज का वातावरण बनाये रखने में इस गुरुकुल को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। शिक्षक, कर्मचारी और विद्यार्थी सब आर्यसमाज के प्रति अनुराग रखते हैं। इसी कारण आर्यसमाज द्वारा चलाये गये हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी सत्याग्रह और गौरक्षा आन्दोलन सदृश आन्दोलनों में इस संस्था के ब्रह्मचारियों और कार्यकर्ताओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था।

(१०) आर्ष पद्धति की अन्य शिक्षण-संस्थाएँ

दयानन्द वैदिक संस्था आदर्श गुरुकुल, सिंहपुरा—इस संस्था की स्थापना सन् १९५९ में हुई थी, और इसे स्थापित करने में महाशय हरद्वारी लाल आर्य, चौधरी रघुबीर-सिंह सरपंच सिंहपुरा, डा० चन्द्रदेव वानप्रस्थी, चौधरी देवकीराम, महाशय शिवराम, महाशय हीरालाल और स्वामी सत्यानन्द का प्रमुख कर्तृत्व था। श्री भगवतानन्द इसके प्रथम आचार्य थे। संस्था की सम्पत्ति का मूल्य एक करोड़ रुपये के लगभग है, और इसका परिसर अत्यन्त रमणीक है, जिसमें छात्रावास, विद्यालय, यज्ञशाला, भोजन भण्डार, स्नानागार आदि सब बने हुए हैं। इनका निर्माण दान द्वारा हुआ है, और आर्य जनता ने इस संस्था की भूमि और भवनों के निर्माण के लिए धनराशि उदारतापूर्वक प्रदान की है। वार्षिक व्यय दो लाख रुपये के लगभग है, जिसमें से २१ हजार रुपये सरकारी अनुदान द्वारा प्राप्त होते हैं।

संस्था के दो विभाग हैं—विद्यालय विभाग और संस्कृत विभाग। विद्यालय विभाग हरयाणा शिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध है, और उसी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का उसमें अनुसरण किया जाता है। इसमें १६५ विद्यार्थी और ११ अध्यापक हैं। संस्कृत विभाग का सम्बन्ध श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ है। इस विभाग के विद्यार्थी विद्यापीठ की मध्यमा, शास्त्री और आचार्य परीक्षाएँ देते हैं। पंजाब की प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री परीक्षाएँ भी विद्यार्थी दे सकते हैं। संस्कृत विभाग के विद्यार्थियों की संख्या ४८ है। विद्यालय और संस्कृत—दोनों विभागों के विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं। इस प्रकार छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित जीवन व्यतीत करने वाले विद्यार्थियों की संख्या गुरुकुल सिंहपुरा में २१३ है। विद्यार्थियों की दिनचर्या प्रायः वही है, जो अन्य गुरुकुलों में है। विद्यालय विभाग (जो हरयाणा शिक्षा बोर्ड के साथ सम्बद्ध है) के विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भी दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या, हवन तथा प्रवचनों में उपस्थित होना अनिवार्य है।

गुरुकुल के पुस्तकालय में दस हजार के लगभग पुस्तकें हैं। इस संस्था का अपना प्रकाशन विभाग भी है, जिससे राष्ट्रवादी दयानन्द, वैदिक अर्थव्यवस्था आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'राजधर्म' नाम से एक पत्र भी इससे प्रकाशित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इस गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर अनेक विद्यार्थियों ने विद्वत्ता तथा धर्मप्रचार के क्षेत्र में अच्छा नाम पैदा किया है। इनमें श्री नन्दकुमार का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सुरीनाम (दक्षिणी अमेरिका) में वैदिक धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

यह गुरुकुल हरयाणा के रोहतक नगर से दो मील की दूरी पर स्थित है। वर्तमान समय में स्वामी इन्द्रवेश इसके मुख्याधिष्ठाता हैं, और आचार्य पद पर श्री सुरेन्द्रकुमार आर्य नियुक्त हैं।

वैदिक प्राच्य विद्या संस्थान, गुरुकुल होशंगाबाद—बीसवीं सदी के प्रथम चरण में जब आर्य जनता गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रति विशेष आकर्षण रखती थी, विदर्भ की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा भी होशंगाबाद नगर के समीप नर्मदा नदी के तट पर सन् १९१२ में यह गुरुकुल स्थापित किया गया था। इसकी पद्धति गुरुकुल काँगड़ी के अनुसार रखी गई थी, और पाठ्यक्रम भी उसी की पाठविधि को दृष्टि में रखकर बनाया गया था। कुछ वर्षों तक इस गुरुकुल ने अच्छी उन्नति की, और इसमें शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी स्नातक बने, उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी कार्य किया। पर धीरे-धीरे इसके कार्य में ह्रास होता गया, और इसकी स्थिति एक साधारण पाठशाला के सदृश रह गई। सन् १९४१ में इसमें केवल २६ विद्यार्थी थे। उत्तरप्रदेश तथा पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के समान मध्यप्रदेश तथा विदर्भ की आर्य प्रतिनिधि सभा इस गुरुकुल की समुचित उन्नति नहीं कर सकी, और एक समय ऐसा भी आया जबकि यह बन्द हो गया।

गत वर्षों में इसके पुनरुद्धार का प्रयत्न किया गया, और उसमें सफलता भी प्राप्त हुई। वर्तमान समय में यह गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है, और इसमें विद्यापीठ द्वारा निर्धारित आर्ष पाठविधि के अनुसार ही अध्ययन-अध्यापन होता है। विद्यार्थी विद्यापीठ की ही आचार्य, शास्त्री आदि परीक्षाएँ देते हैं। आचार्य के पद पर श्री सदानन्द मीमांसक व्याकरणाचार्य नियुक्त हैं, और व्यवस्थापक का कार्य श्री अमृतलाल शर्मा कर रहे हैं। श्री रामबहादुर सक्सेना तथा स्वामी ओम्प्रेमी स्नातक भी वहाँ कार्यरत हैं। विद्यार्थियों की संख्या २५ है, जो सब गुरुकुल के छात्रावास में रहते हैं। संस्था अब भी आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्यप्रदेश तथा विदर्भ के स्वामित्व में है, और उसकी प्रधान श्रीमती कौशल्या देवी इस संस्था की भी प्रधान हैं। प्रतिनिधि सभा द्वारा गुरुकुल के खर्च के लिए २४ हजार रुपये वार्षिक प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त १० हजार रुपये दान से, ८ हजार रुपये खेती से और ७ हजार रुपये ब्रह्मचारियों से लिये जाने वाले भोजन शुल्क से प्राप्त होते हैं।

महाशय हीरालाल गुरुकुल, किशनगढ़, चाखेड़ा रिवाड़ी—महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पद्धति के पठन-पाठन के लक्ष्य को सम्मुख रखकर सन् १९७८ में इस गुरुकुल की स्थापना की गई थी। इसे स्थापित करने में श्री नन्दलाल वानप्रस्थी का प्रमुख हाथ था। अभी यह संस्था शैशवावस्था में है। ब्रह्मचारियों की संख्या ३० है, और ४ सुयोग्य अध्यापक वहाँ अध्यापन-कार्य में तत्पर हैं। श्री सूर्यवेश आचार्य पद पर नियुक्त हैं, और श्री हरिनारायण प्रबन्धक समिति के प्रधान हैं। गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर से सम्बद्ध है, और ब्रह्मचारियों को उसी की पाठविधि के अनुसार संस्कृत, वेद, वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है। गुरुकुल में प्रतिदिन सन्ध्या,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवन व अन्य धार्मिक कृत्य नियमपूर्वक किये जाते हैं, और ब्रह्मचारियों की दिनचर्या गुरुकुल पद्धति के अनुसार है। गुरुकुल की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य एक लाख रुपये के लगभग है, और उसका वार्षिक खर्च २५ हजार है। यह राशि प्रधानतया जनता के दान द्वारा ही प्राप्त होती है।

आर्ष गुरुकुल, खानपुर मंढाणा—हरयाणा के महेन्द्रगढ़ जिले की नारनौल तहसील में खानपुर गाँव के समीप १ अक्तूबर, सन् १९८२ को यह गुरुकुल स्थापित किया गया था। इसमें आर्ष प्रणाली द्वारा संस्कृत व्याकरण की शिक्षा दी जा रही है, और भविष्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि के अनुसार अध्ययन-अध्यापन कराने की योजना है। इस संस्था की स्थापना श्री प्रद्युम्न व्याकरणाचार्य द्वारा की गई है। दो एकड़ से कुछ अधिक भूमि खानपुर गाँव द्वारा इसके लिए प्रदान की गयी है, जिस पर तीन कमरों का निर्माण कर लिया गया है। सम्पत्ति का मूल्य आठ हजार रुपये के लगभग है।

ग्राम विश्व भारती महाविद्यालय, सरस्वती नगर—उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले में यह संस्था स्थित है, जो श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है। इसकी स्थापना आचार्य डा० तेजनारायण कात्यायन द्वारा सन् १९७० में की गयी थी। यह महाविद्यालय श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ झज्झर के साथ सम्बद्ध है, और इसमें व्यापक रूप से वेदों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गई है। इस संस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है, कि जैसे क्रिश्चियन मिशनरी पत्राचार द्वारा बाइबल की नियमित रूप से शिक्षा देते हैं, वैसे ही इस महाविद्यालय ने पत्राचार के ढंग से वेदों के अध्यापन का क्रम व्यापक रूप से प्रारम्भ किया है।

आर्ष गुरुकुल वाजेगाँव, नान्देड़—यह गुरुकुल नान्देड़ (महाराष्ट्र) से दो मील की दूरी पर गोदावरी नदी के तट पर समतल तथा रमणीक स्थान पर स्थित है। इसमें ४ वर्ष से १० वर्ष तक के अनाथ बच्चे ही प्रविष्ट किये जाते हैं, और उनका सब खर्च गुरुकुल द्वारा किया जाता है। अनाथ बच्चों को स्वावलम्बी बनाना तथा उन्हें वैदिक सभ्यता व संस्कृति में शिक्षित-दीक्षित कर धार्मिक एवं विद्वान् बनाना इस संस्था का उद्देश्य है। पाठ्यक्रम में वेद, वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों के आधार पर धर्मशिक्षा को मुख्य स्थान प्राप्त है। इसकी स्थापना श्री शिवमुनि वानप्रस्थ द्वारा की गयी थी, और इसके विकास में उन्हीं का प्रधान कर्तृत्व है। आर्ष शिक्षा पद्धति के परम समर्थक स्वामी व्रतानन्द (पं० युधिष्ठिर विद्यालंकार) का भी निरीक्षक के रूप से इस गुरुकुल के साथ सम्बन्ध रहा है।

गुरुकुल महाविद्यालय, ततारपुर—यह महाविद्यालय उत्तरप्रदेश के गाजियाबाद जिले के हापुड़ नगर से दो मील पूर्व में गढ़मुक्तेश्वर मार्ग पर ततारपुर ग्राम के समीप स्थित है। इसकी स्थापना १३ जुलाई, सन् १९६५ को स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा की गयी थी, और इसका उद्घाटन स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने किया था। इस गुरुकुल में आर्ष पाठविधि के अनुसार शिक्षा दी जाती है, और प्रधानतया संस्कृत व्याकरण, वेद-वेदांग, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन होता है। विद्यार्थी प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की परीक्षाएँ देते हैं, और इस प्रकार संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे फिर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था में केवल वही बालक प्रविष्ट किये जाते हैं, जो पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर चुके हों। विद्यार्थियों की संख्या ७५ के लगभग रहती है। संस्था के अनेक विभाग हैं, यथा; छात्रावास, औषधालय, पुस्तकालय, गौशाला और कृषि आदि। आर्य कुमार परिषद् की भी वहाँ सत्ता है। इस गुरुकुल पर अगले एक अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला जायेगा।

आर्ष गुरुकुल, कालवा (जींद)—यह गुरुकुल हरयाणा के जींद जिले में कालवा नामक गाँव के समीप स्थित है। सन् १९६८ में ब्रह्मचारी वेदपाल (स्वामी सत्यवेश) और ब्रह्मचारी चन्द्रदेव (स्वामी चन्द्रवेश) द्वारा इसकी स्थापना की गई थी। गुरुकुल का उद्देश्य आर्ष पद्धति से शिक्षा देकर वैदिक विद्वानों का निर्माण करना है। छोटी कक्षाओं की पढ़ाई की इस संस्था में कोई व्यवस्था नहीं है। पढ़े-लिखे नवयुवकों को ही इसमें प्रविष्ट किया जाता है। प्रवेश के समय विद्यार्थी की न्यूनतम योग्यता दसवीं कक्षा तक की होनी आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि प्रवेशार्थी विरक्त व साधु स्वभाव वाला हो और आजीवन ब्रह्मचारी रहकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए कृत-संकल्प हो। पाठ्यक्रम का प्रारम्भ महर्षि पाणिनिकृत शिक्षा सूत्र से किया गया है, और फिर क्रमशः अष्टाध्यायी को कण्ठस्थ करना, धातु पाठ, उणादिकोष, लिंगानुशासन, फिट् सूत्र, काशिका, महाभाष्य, निरुक्त आदि के अध्ययन की व्यवस्था की गयी है। व्याकरण और निरुक्त में व्युत्पन्न हो जाने पर विद्यार्थियों को आस्तिक दर्शनों, उपनिषदों, महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित ग्रन्थों तथा वेदों का अध्ययन करना होता है। उस अर्थ से इस संस्था में परीक्षा नहीं ली जाती, जिसमें कि अन्य विश्वविद्यालयों में होती है। विद्यार्थियों के अध्ययन के साथ-साथ उनकी परीक्षा भी होती रहती है। अध्यापक अपने शिष्यों की शिक्षाविषयक प्रगति पर निरन्तर दृष्टि रखते हैं। शिक्षा के पूर्ण हो जाने पर भी कोई परीक्षा नहीं ली जाती, और न कोई उपाधि (डिग्री) ही स्नातकों को दी जाती है। विद्यार्थियों व स्नातकों की योग्यता ही उनकी उपाधि है, और वही उनका प्रमाणपत्र है। गुरुकुल के आचार्य पद पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बलदेव नियुक्त हैं, और शिक्षा के अतिरिक्त संस्था का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथों में है। उनके प्रधान सहयोगी पण्डित धर्मदेव हैं, जो गुरुकुल झज्झर के स्नातक हैं।

गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या १६ है। पर इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या का कोई महत्त्व नहीं है। वहाँ केवल ऐसे युवक ही प्रविष्ट किये जाते हैं, जो जन्म भर ब्रह्मचारी रहने तथा अपना सारा जीवन वैदिक धर्म के प्रचार में लगा देने के लिए उद्यत हों। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो ही नहीं सकती। ये १६ विद्यार्थी गुरु-शिष्य परम्परा का अनुसरण करते हुए आचार्य के पास अन्तेवासी के रूप में रहते हैं, और स्वाध्याय तथा साधना में अपना सब समय व्यतीत करते हैं। अब तक इस गुरुकुल से सात स्नातक निकल चुके हैं, जो प्रधानतया वैदिक धर्म के प्रचारकार्य में संलग्न हैं। इस संस्था में शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था विद्यार्थियों को स्वयं करनी होती है। गुरुकुल में एक गौशाला भी है, जिसमें १० गौवें हैं। वहाँ एक आयुर्वैदिक औषधालय भी है, जिसमें चिकित्सा के अतिरिक्त ओषधियों का निर्माण भी किया जाता है। इसके संचालक वैद्य रामचन्द्र हैं, जो अन्य कार्यकर्ताओं तथा विद्यार्थियों के समान आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिये हुए हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्यकुल ऋतस्थली, माण्डौठी—हरयाणा के रोहतक जिले में बहादुरगढ़ से पाँच मील की दूरी पर यह संस्था विद्यमान है, जिसकी स्थापना ८ जून, सन् १९७५ के दिन चौधरी प्रियव्रत ठेकेदार द्वारा की गयी थी। इसके संचालक श्री मानाचार्य सरस्वती हैं। माण्डौठी की ग्राम पंचायत ने दो सौ बीघे जमीन आचार्यकुल तथा उसकी गौशाला के लिए प्रदान की है, जिसके कारण यहाँ स्थान की समुचित सुविधा हो गयी है। संस्था का उद्देश्य वेदशास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन, अनुशीलन तथा वैदिक धर्म का प्रचार करना है। सोलह विद्यार्थी आचार्यकुल के छात्रावास में रहकर विद्याध्ययन में तत्पर हैं, और तीन अध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार यहाँ पढ़ाई होती है, और विद्यार्थी उसी विश्वविद्यालय की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ देते हैं। संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य पाँच लाख रुपये के लगभग है।

गुरुकुल लडरावन—हरयाणा के रोहतक जिले में लडरावन नामक ग्राम के समीप यह गुरुकुल स्थित है। १४ अक्तूबर, १९७५ के दिन इसकी स्थापना हुई थी, और स्वामी सूर्यवेश तथा श्री जोगीराम आर्य का इसकी स्थापना में प्रधान कर्तृत्व था। वेद-वेदांग की शिक्षा तथा वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है। संस्था के लिए भूमि गाँव पंचायत लडरावन ने प्रदान की थी, और उस पर भवन बनाने के लिए धन जनता से दान में प्राप्त हुआ था। इस अचल सम्पत्ति का मूल्य दो लाख रुपये के लगभग है। इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या ६० तक पहुँच गयी थी, और सब कार्य ठीक प्रकार से होने लग गया था। पर अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण दिसम्बर, १९८१ में इसे बन्द कर दिया गया था। अब इसे पुन: स्थापित कराने का प्रयत्न किया जा रहा है।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल, गंगीरी—अलीगढ़ जिले में गंगीरी नामक ग्राम के समीप स्थित इस गुरुकुल की स्थापना ५ एप्रिल, सन् १९५३ को श्री यशपाल शास्त्री द्वारा की गयी थी। श्री यशपाल अत्यन्त मेधावी एवं उत्साह सम्पन्न आर्य सज्जन हैं। वीतराग स्वामी सर्वदानन्द, स्वामी ध्रुवानन्द और स्वामी ओमानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने यह गुरुकुल स्थापित किया। संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं और आधुनिक विषयों के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था करना, महर्षि दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों के अनुसार वैदिक धर्म का प्रचार करना, राष्ट्र के लिए सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करना और आर्य विद्वान् तथा वैदिक धर्म के प्रचारक तैयार करना इस गुरुकुल के मुख्य उद्देश्य हैं। गुरुकुल की अपनी १०० बीघा भूमि है, जिस पर विद्यालय भवन, गौशाला, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सब व्यवस्थित रूप से निर्मित हैं। पुस्तकालय में ३,२८५ पुस्तकें हैं। सम्प्रति वहाँ ४३ ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं। ये सब छात्रावास में रह कर अनुशासित जीवन बिताते हैं। सन्ध्या-हवन एवं अन्य धार्मिक कृत्य सबके लिए अनिवार्य हैं। प्रथमा से आचार्य परीक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था है। गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है, और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से भी उसे मान्यता प्राप्त है। हिन्दी रक्षा आन्दोलन और गौ रक्षा आन्दोलन सदृश आर्यसमाज द्वारा संचालित संघर्षों में गुरुकुल के ब्रह्मचारी, शिक्षक और कर्मचारी भाग लेते रहे हैं, और उनमें से कुछ जेल भी गये हैं। आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों में वे प्रचार के लिए भी जाते हैं, और वैदिक धर्म के प्रचारकार्य में सदा तत्पर रहते हैं। आर्ष गुरुकुल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगीरी से शिक्षा प्राप्त कर अनेक सज्जनों ने विद्वत्ता, धर्मप्रचार, अध्यापन तथा पत्रकारिता आदि के क्षेत्रों में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इनमें श्री जगन्नाथ शास्त्री, श्री आचार्य मित्रसेन और श्री लक्ष्मण कुमार आर्य के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल ययालपुर, मुरसान—यह गुरुकुल भी अलीगढ़ जिले में स्थित है। इसे स्थापित हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है। वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन और वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए आचार्य चन्द्रदेव शास्त्री दर्शनाचार्य ने सन् १९८२ में इसे स्थापित किया था। यह गुरुकुल भी श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है, और उसी की पाठविधि के अनुसार यहाँ शिक्षा की व्यवस्था है। सम्प्रति इसमें २५ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

आर्ष गुरुकुल वड्लूर, कामारेड्डी—आन्ध्र प्रदेश के निजामाबाद जिले में सन् १९७८ में ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक द्वारा इस गुरुकुल की स्थापना की गई थी। वड्लूर और कामारेड्डी के मध्यवर्ती एक एकान्त स्थान पर यह गुरुकुल स्थित है, और वहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धति के अनुसार वेद-वेदांगों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गयी है। गुरुकुल के पास ११ एकड़ भूमि है, जिस पर आवश्यक भवनों के अतिरिक्त एक गौशाला तथा उद्यान भी विद्यमान है। यह गुरुकुल किसी भी शासकीय व अशासकीय संगठन से सम्बद्ध नहीं है, और न किसी से इसे मान्यता ही प्राप्त है। व्याकरण आदि छहों वेदांग तथा मीमांसा आदि छहों दर्शनों का इसमें विशेष रूप से अध्यापन होता है, और विद्यार्थियों की परीक्षा यह गुरुकुल स्वयं लेता है। कोई उपाधि व प्रमाणपत्र आदि विद्यार्थियों को नहीं दिये जाते। योग्यता को ही इस गुरुकुल में प्रमाण-पत्र माना जाता है। महर्षि द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों के अनुसार इस गुरुकुल के विद्यार्थी न अपने घरों से कोई सम्बन्ध रखते हैं, न पत्रव्यवहार करते हैं और न अपने पारिवारिक जनों से मिलने के लिए जाते-आते रहते हैं। वे गुरुकुल में ही निवास करते हैं, और उसी को अपना घर मानते हैं। दोनों समय सन्ध्या-हवन करना और आसन-प्राणायाम आदि का अभ्यास सबके लिए अनिवार्य है। कामारेड्डी तथा आसपास के ग्रामों में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार का इस गुरुकुल द्वारा विशेष रूप से प्रयत्न किया जाता है, जिसके परिणाम-स्वरूप अन्य मत-मतान्तरों के अनुयायी बहुत-से व्यक्ति वैदिक धर्म को स्वीकार कर चुके हैं, और कर रहे हैं। गुरुकुल का सब खर्च दान से चलता है। आन्ध्र प्रदेश के अनेक सुशिक्षित व सम्पन्न व्यक्तियों का सहयोग एवं संरक्षण इस संस्था को प्राप्त है।

वेदामऊ वैदिक विद्यापीठ, बदायूँ—विद्या की वृद्धि और अविद्या के विनाश को उद्देश्य बनाकर १० फरवरी, सन् १९७० को बदायूँ (उत्तरप्रदेश) में इस विद्यापीठ की स्थापना की गयी थी। आचार्य वेदव्रत आर्य का प्रारम्भ से ही इसके संचालन में प्रमुख हाथ रहा है। विद्यापीठ के तीन विभाग हैं, प्राइमरी विभाग, संस्कृत महाविद्यालय विभाग और आर्ष महाविद्यालय विभाग। तीनों विभागों के विद्यार्थियों की संख्या १२०० से भी अधिक है, और २२ अध्यापक वहाँ अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। विद्यापीठ का संस्कृत महाविद्यालय विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है, और वेद, व्याकरण, दर्शन, पुराणेतिहास और साहित्य विषयों में आचार्य स्तर तक की शिक्षा उसमें दी जाती है। इस विभाग के विद्यार्थी सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय की पाठ-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि के अनुसार वेद, व्याकरण आदि की शिक्षा प्राप्त कर उसी की परीक्षाओं में बैठते हैं, और शास्त्री, आचार्य आदि उपाधियाँ प्राप्त करते हैं।

आर्ष महाविद्यालय विभाग की पाठविधि का निर्धारण वैदिक विद्यापीठ द्वारा स्वयं किया जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि को दृष्टि में रख कर इस विभाग का पाठ्यक्रम बनाया गया है, और उसमें वेद-वेदांग तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के अध्यापन को ही प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य की परीक्षाएँ इस विभाग द्वारा भी ली जाती हैं, और उनमें उत्तीर्ण विद्यार्थियों को शास्त्री आदि की उपाधियाँ भी दी जाती हैं। पर ये विद्यापीठ की अपनी उपाधियाँ हैं, जिन्हें अनेक शिक्षण-संस्थाओं द्वारा मान्यता प्राप्त है, और विविध राज्य-सरकारों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा उनकी मान्यता का प्रश्न अभी विचाराधीन है। यह मान्यता प्राप्त हो जाने पर वेदामउ वैदिक विद्यापीठ के आर्ष महाविद्यालय की लोकप्रियता में यथेष्ट वृद्धि हो सकेगी।

विद्यापीठ की भूमि और भवनों का आनुमानिक मूल्य सात लाख रुपये के लगभग है। यह सब सम्पत्ति दान से प्राप्त हुई है। सरकार से इसके लिए अनुदान नहीं लिया गया है। संस्कृत महाविद्यालय विभाग के अध्यापकों के वेतन के लिए उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा नियमों के अनुसार अनुदान दिया जाता है। पर आर्ष महाविद्यालय के वेतन तथा अन्य विविध खर्चों के लिए दान पर ही निर्भर रहना होता है। विद्यापीठ के साथ एक छात्रावास भी है, जिसमें २०० के लगभग विद्यार्थी निवास करते हैं। इनका रहन-सहन तथा दिन-चर्या गुरुकुलों के अनुरूप है। विद्यापीठ के तीनों विभागों में धर्मशिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है, और संस्था द्वारा जो दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या, हवन और सत्संग आयोजित होते हैं, उनमें उपस्थित होना भी सबके लिए अनिवार्य है। विद्यापीठ का अपना पुस्तकालय है, जिसमें ५,००० के लगभग पुस्तकें हैं। वैदिक धर्म तथा आर्यसमाजविषयक पुस्तकों का इसमें अच्छा संग्रह है, और विद्यार्थी अपने धर्म, संस्कृति तथा साहित्य से परिचय प्राप्त करने के लिए इसका सुचारु रूप से उपयोग करते हैं।

विद्यापीठ द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार पर भी ध्यान दिया जाता है। नये आर्य-समाजों की स्थापना के लिए इस संस्था ने प्रयत्न किया है, और अनेक आर्यसमाज इसके सहयोग से स्थापित भी हो चुके हैं। विद्यापीठ के संस्थापक व संचालक आचार्य वेदव्रत गौरक्षा आन्दोलन में जेल यात्रा कर चुके हैं, और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर इस संस्था के अध्यापक, विद्यार्थी एवं कर्मचारी आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साह पूर्वक भाग लेने के लिए उद्यत रहते हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय, सूर्यकुण्ड, बदायूँ—यह गुरुकुल बहुत पुराना है। २२ फरवरी, सन् १९०३ के दिन स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज ने इसकी स्थापना की थी। इसके पास ४० बीघा जमीन है, जिस पर १० कमरों का विद्यालय और ३० कमरों का छात्रावास बना हुआ है। बदायूँ के सेठ श्रीकृष्ण द्वारा यहाँ एक विशाल छात्रावास बनवाया गया है, और पुस्तकालय आदि की इमारतें भी वहाँ विद्यमान हैं। गुरुकुल की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य पाँच लाख रुपये के लगभग है। विद्यार्थियों की संख्या १०० है, और ८ अध्यापक वहाँ अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। गुरुकुल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है, और उसी की पाठविधि के अनुसार शिक्षा की वहाँ व्यवस्था है। संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर इस गुरुकुल के विद्यार्थी व्याकरणाचार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साहित्याचार्य की उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या १०० है, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आश्रम प्रणाली के अनुसार अनुशासित जीवन बिताते हैं। धार्मिक शिक्षा सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या, हवन तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में सब विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को अनिवार्य रूप से उपस्थित होना होता है। गुरुकुल का अपना पुस्तकालय है, जिसमें ३,००० के लगभग पुस्तकें हैं। इस संस्था में शिक्षा प्राप्त कर अनेक विद्यार्थियों ने संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के विद्वान् के रूप में बहुत ख्याति प्राप्त की है। संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् और संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के भूतपूर्व कुलपति डा० मंगलदेव शास्त्री ने इस गुरुकुल में ही शिक्षा प्राप्त की थी। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व प्रधान श्री विश्वबन्धु शास्त्री, गुरुकुल वृन्दावन के वर्तमान कुलपति आचार्य श्री विशुद्धानन्द, उस्मानिया यूनिवर्सिटी हैदराबाद के भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० आर्येन्द्र शर्मा आदि अनेक विद्वानों ने भी इस संस्था में शिक्षा प्राप्त की थी। इस संस्था के वर्तमान मुख्याधिष्ठाता डा० नरेन्द्रदेव शर्मा और आचार्य श्री सरनामसिंह हैं।

गुरुकुल विद्यापीठ (आदर्श संस्कृत महाविद्यालय), अतरौली—यह गुरुकुल अलीगढ़ जिले में अतरौली के समीप स्थित है। वेद-वेदांग और आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा द्वारा सामाजिक व आत्मिक उन्नति करने तथा आर्ष सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के उद्देश्यों को सम्मुख रखकर १ जुलाई, सन् १९५९ को इस गुरुकुल की स्थापना की गयी थी। गुरुकुल के पास १३ बीघा भूमि है। भूमि और भवनों का आनुमानिक मूल्य दो लाख रुपये के लगभग है। वर्तमान समय में विद्यार्थियों की कुल संख्या ५० है, जिनमें से २५ छात्रावास में निवास करते हैं। अध्यापकों की संख्या पाँच है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से शास्त्री तक की शिक्षा के लिए इस गुरुकुल को मान्यता प्राप्त है, और इसी की परीक्षाएँ वहाँ दिलायी जाती हैं। प्रातः के सन्ध्या-हवन में सब विद्यार्थियों (छात्रावास में निवास करने वाले तथा अन्य) के लिए उपस्थित होना अनिवार्य है। सायंकाल के सन्ध्या-हवन में केवल छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थी ही उपस्थित होते हैं। धर्मशिक्षा भी सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है, और प्रथमा से आचार्य तक के सब विद्यार्थियों को वर्ष में एक वार आर्यसिद्धान्त की परीक्षा देनी होती है। गुरुकुल के पुस्तकालय में ५,००० के लगभग पुस्तकें हैं, जिनमें आधी से अधिक आर्यसिद्धान्त, वेद तथा दर्शन विषयों की हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय, शुक्रताल—उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में शुक्रताल नामक तीर्थ स्थान गंगा नदी के तट पर विद्यमान है। उसी के समीप यह गुरुकुल स्थित है। सन् १९६५ में 'वैदिक योगाश्रम' नाम से वहाँ एक संस्था का संगठन किया गया, जिसके उद्देश्य योगविद्या का प्रसार, आत्मिक उन्नति, आर्यसमाज का प्रचार तथा वैदिक धर्म के उपदेशक तैयार करना थे। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैदिक योगाश्रम ने एक गुरुकुल की स्थापना का निश्चय किया, और सन् १९६९ में शुक्रताल में गुरुकुल महाविद्यालय स्थापित कर दिया गया। वैदिक योगाश्रम तथा गुरुकुल महाविद्यालय दोनों के संस्थापक ब्रह्मचारी बलदेव नैष्ठिक हैं, जो आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा संचालित उपदेशक विद्यालय के सुयोग्य स्नातक हैं। १३ जून, १९७६ को ब्रह्मचारी बलदेव ने संन्यास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण कर लिया, और उनका नाम स्वामी आनन्दवेश हो गया। गुरुकुल शुक्रताल में ब्रह्मचारियों के निवास की समुचित व्यवस्था है। विद्यालय तथा छात्रावास के लिए सुन्दर भवन बने हुए हैं, जिनकी संख्या ३० है। यज्ञशाला, पुस्तकालय, स्नानागार, औषधालय आदि के भवन भी वहाँ विद्यमान हैं। शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन के लिए व्यय लिया जाता है। वस्त्र तथा पुस्तकों आदि का खर्च भी विद्यार्थियों को करना होता है। गुरुकुल की पाठविधि में वेद-वेदांग तथा संस्कृत को प्रमुखता प्राप्त है। पहले इस संस्था में श्रीमद्-दयानन्द आर्ष विद्यापीठ गुरुकुल, झज्झर की परीक्षाएँ दिलायी जाती थीं, और पढ़ाई भी विद्यापीठ द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार होती थी। पर अब इसे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से शास्त्री परीक्षा तक के लिए मान्यता प्राप्त हो गयी है, और अध्ययन-अध्यापन उसी की पाठविधि के अनुसार होने लगा है। गुरुकुल शुक्रताल को स्थापित हुए अभी केवल सोलह वर्ष हुए हैं, पर इस स्वल्प काल में वहाँ शिक्षा प्राप्त कर कितने ही सुयोग्य स्नातक निकल चुके हैं, जिनमें स्वामी सुमेधानन्द (प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, हिमाचल प्रदेश), स्वामी चन्द्रदेव महामहोपदेशक, श्री देवपाल शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुरुकुल शुक्रताल का अपना प्रकाशन विभाग भी है, जिससे अब तक २२ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उस द्वारा 'संस्कृति सन्देश' नाम से एक मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन हो रहा है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूल तत्त्वों का अनुसरण करने की ओर इस गुरुकुल में समुचित ध्यान दिया जाता है। इसीलिए किसी विशेष परिस्थिति को छोड़कर अध्ययन काल में ब्रह्मचारियों को घर जाने के लिए अवकाश नहीं मिलता, और उनके माता-पिता व अन्य पारिवारिक जन आचार्य या मुख्याधिष्ठाता की अनुमति प्राप्त करके ही उनसे मिल सकते हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय के साथ ही एक उपदेशक महाविद्यालय भी शुक्रताल में विद्यमान है, जिसका पाठ्यक्रम केवल एक वर्ष का है। इसमें सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं, और विद्यार्थियों को व्याख्यान कला में दक्षता प्राप्त करायी जाती है। इस महाविद्यालय की परीक्षा के उत्तीर्ण हो जाने पर उपदेशकों को 'व्याख्यान मार्तण्ड' की उपाधि दी जाती है।

(११) दयानन्द उपदेशक विद्यालय, वैदिक साधनाश्रम, यमुना नगर।

रावलपिण्डी जिले के चोहा भक्तां नामक ग्राम से तीन मील की दूरी पर एक गुरुकुल विद्यमान था, जिसकी स्थापना ८ दिसम्बर, सन् १९०७ को स्वामी दर्शनानन्द द्वारा की गयी थी। कुछ वर्ष पश्चात् पण्डित मुक्तिराम उपाध्याय इसके आचार्य पद पर नियुक्त हुए, और उनके संचालन में इस संस्था ने अच्छी उन्नति की। यही पण्डित मुक्तिराम संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए, और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९४७ में भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप रावलपिण्डी जिला पाकिस्तान में चला गया, और गुरुकुल चोहा भक्तां (पोठोहार) के लिए वहाँ रह सकना सम्भव नहीं रहा। गुरुकुल के पास जो जमीन (१२५ बीघे) व अन्य अचल सम्पत्ति थी, वह सब पाकिस्तान सरकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा अधिगत कर ली गई। पाकिस्तान से विस्थापित व्यक्तियों व संस्थाओं के पुनर्वास की व्यवस्था में इस संस्था को अम्वाला (हरयाणा) जिले में यमुना नगर के समीप ४० बीघा भूमि प्रदान की गई, और भवनों की कीमत के मुआवजे में तीन हजार रुपये दिये गये, जवकि उनका मूल्य ७८ हजार रुपये के लगभग था।

शिक्षण-संस्थाओं के सम्मुख जो आर्थिक समस्या बनी रहती है, और प्रायः उनमें जो झगड़े चलते रहते हैं, उन्हें दृष्टि में रखकर स्वामी आत्मानन्द सरस्वती ने यमुना नगर की भूमि पर गुरुकुल चोहा भक्तां को पुनःस्थापित करने के वजाय एक साधना आश्रम की स्थापना का निश्चय किया। इसी प्रयोजन से वहाँ छह कोने वाले छोटे-छोटे छह कक्षों का निर्माण कराया गया, जिनमें एक-एक साधक वैदिक साधना कर सकता था। इन कक्षों के अतिरिक्त एक उपासना मन्दिर भी वहाँ वनवाया गया। इस प्रकार वैदिक साधना आश्रम के लिए कुछ भवन तैयार हो गये। प्रारम्भ में जो व्यक्ति स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के आश्रम में योगसाधना के लिए आये, उनमें पण्डित विद्याधर स्नातक, पण्डित वेदानन्द वेदवागीश और ब्रह्मचारी सेवाराम मुख्य थे।

इस समय आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव के पदाधिकारी इस वात के प्रयत्न में थे, कि लाहौर के उपदेशक महाविद्यालय को पंजाव में कहीं पुनः स्थापित किया जाए। इस विद्यालय की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती की शताब्दी के अवसर पर इस उद्देश्य से की गयी थी, कि वैदिक वर्म के प्रचारक, उपदेशक, सुशक्षित तथा कार्यकुशल पुरोहित और धार्मिक सेवक तैयार किये जाएँ। २ एप्रिल, सन् १९२५ को इस विद्यालय के कार्य का विधिवत् प्रारम्भ हो गया था। स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती इसके आचार्य थे और स्वामी वेदानन्द तीर्थ मुख्याध्यापक। आर्यसमाज के सुयोग्य कार्यकर्ता एवं प्रचारक तैयार करने में इस विद्यालय ने वहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९४७ में देश के विभाजन के कारण यह विद्यालय भी वन्द हो गया था, और आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान महाशय कृष्ण उसे पुनः स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। उनका ध्यान यमुना नगर के वैदिक साधना आश्रम की ओर गया, और वहाँ जाकर उन्होंने स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से आश्रम में उपदेशक विद्यालय को स्थापित करने तथा उसका संचालन करने के लिए अनुरोध किया। स्वामी जी सभा प्रधान के इस अनुरोध की उपेक्षा नहीं कर सके। उन्होंने उपदेशक विद्यालय का आचार्य वनना स्वीकार कर लिया। १८ अक्तूवर, १९५३ के दिन यमुना नगर के वैदिक साधना आश्रम में वड़ी धूमधाम के साथ उपदेशक विद्यालय की स्थापना हुई। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान महाशय कृष्ण, मन्त्री पण्डित भीमसेन विद्यालंकार और आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित वुद्धदेव विद्यालंकार इस अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। विद्यालय में प्रवेशार्थी विद्यार्थियों ने जनता के समक्ष धर्मसेवा का व्रत ग्रहण किया। आचार्य स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का कहना था, कि विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रार्थनापत्र तो वहुत आये हैं, पर केवल त्यागी व लगन वाले छात्रों को ही विद्यालय में प्रविष्ट किया गया। स्वामीजी की सम्मति में संख्या की तुलना में गुणों का महत्त्व अधिक था।

उपदेशक विद्यालय में उसी पाठविधि के अनुसार अध्ययन-अध्यापन शुरू किया गया, जो लाहौर में प्रयुक्त की जाती थी। इस पाठविधि में वेद-वेदांग एवं आर्ष ग्रन्थों का प्रमुख स्थान था। अध्यापन के लिए प्रारम्भ में जो विद्वान् इस विद्यालय में नियुक्त किये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये, उनमें पण्डित विद्याधर स्नातक तथा पण्डित जगदीशचन्द दर्शनाचार्य प्रधान थे। यद्यपि स्वामी आत्मानन्द सरस्वती धर्म तथा समाज की सेवा के विविध कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते थे, पर समय निकाल कर वह भी विद्यालय में दर्शन आदि विषय पढ़ाया करते थे। कुछ वर्ष कार्य करने के पश्चात् जब पण्डित जगदीशचन्द्र ने अवकाश ग्रहण कर लिया, तो उनके स्थान पर श्री वेदानन्द वेदवागीश की नियुक्ति की गई। साधना आश्रम में यह पहले ही साधक के रूप में रह रहे थे।

१२ दिसम्बर, सन् १९६० के दिन स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के दिवंगत हो जाने पर स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती ने उपदेशक विद्यालय का आचार्य पद ग्रहण किया। उनके साथ अनेक विद्वान् इस संस्था में अध्यापन के कार्य में तत्पर रहे। विद्यालय में जो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की संस्कृत परीक्षाएँ (विशारद, शास्त्री आदि) दे सकते हैं। इस संस्था से शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी स्नातक हुए हैं, उनमें पण्डित सत्यप्रिय सिद्धान्तशिरोमणि (आचार्य, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार), पण्डित भद्रसेन (प्रोफेसर, विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर), पण्डित रामप्रसाद सिद्धान्तशिरोमणि (आचार्य, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय), पण्डित सत्यव्रत राजेश (प्राध्यापक वेद, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय) और श्री ओम्प्रकाश सिद्धान्तशिरोमणि के नाम उल्लेखनीय हैं। उपदेशक विद्यालय की अपनी उपाधियाँ सिद्धान्तभूषण और सिद्धान्तशिरोमणि हैं। उनके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी की शास्त्री और आचार्य उपाधियाँ भी इस संस्था के विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।

संस्था में शिक्षा के साथ-साथ भोजन आदि भी सब निःशुल्क है। विद्यार्थियों से वहाँ कोई खर्च नहीं लिया जाता। साधना आश्रम में केवल छह कक्ष तथा एक उपासना-गृह ही विद्यमान थे। पर उपदेशक विद्यालय के स्थापित हो जाने पर वहाँ अनेक अन्य भवनों का निर्माण कर लिया गया है। विद्यालय का अपना पुस्तकालय भी है, जो वेद-वेदांग तथा आर्ष ग्रन्थों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है।

(१२) संस्कृत विद्यालय, दयानन्द मठ, दीनानगर

जिला गुरुदासपुर (पंजाब) में दीनानगर के समीप दयानन्द मठ विद्यमान है, जिसकी स्थापना स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज ने सन् १९३८ में की थी। स्वामीजी अनुभव करते थे, कि कोई ऐसा स्थान होना चाहिये जहाँ वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले साधु-संन्यासी और उपदेशक स्वाध्याय तथा विश्राम कर सकें, और रुग्ण हो जाने पर उनकी चिकित्सा व भोजन आदि का भी जहाँ प्रबन्ध हो। वर्तमान समय में इस मठ का बहुत विकास हो चुका है, अनेक स्थानों पर इसकी शाखाएँ भी खुल गई हैं, और साधु-संन्यासियों तथा विद्वानों के विश्राम व स्वाध्याय का यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। इस द्वारा आर्यसमाज के कार्यकलाप तथा वैदिक धर्म के प्रचार में किस प्रकार सहायता प्राप्त हो रही है, यह इस 'इतिहास' के अन्य भाग का विषय है। यहाँ हमें मठ के शिक्षा-विषयक कार्यों पर ही प्रकाश डालना है।

लाहौर के उपदेशक विद्यालय में पण्डित रामचन्द्र सिद्धान्तशिरोमणि संस्कृत व्याकरण के अध्यापक थे। उन्होंने आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा की भी शिक्षा प्राप्त की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। १ जून, सन् १९४१ को वह लाहौर से दीनानगर आ गए और उन्होंने स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज की आज्ञा से दयानन्द मठ में एक धर्मार्थ औषधालय तथा संस्कृत विद्यालय का कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रातःकाल व सायंकाल वह विद्यार्थियों को पढ़ाते और मध्याह्न में रोगियों की चिकित्सा करते। स्वामी सोमानन्द, स्वामी ईशानन्द, स्वामी कर्मानन्द, स्वामी आत्मानन्द, स्वामी सदानन्द आदि कितने ही साधु व अन्य विद्यार्थी मठ के संस्कृत विद्यालय में वेदान्त (प्राचीन और अर्वाचीन) का अध्ययन किया करते, और साथ ही महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का भी। समय-समय पर पौराणिक साधु भी दयानन्द मठ में आते और संस्कृत विद्यालय से लाभ उठाते। वेदान्त के ग्रन्थों के साथ सत्यार्थप्रकाश उन्हें अवश्य पढ़ाया जाता था।

धीरे-धीरे धर्मार्थ औषधालय तथा संस्कृत विद्यालय का कार्य बढ़ने लगा, और मठ में लोगों का आना-जाना बहुत बढ़ गया। इस दशा में भविष्य को देखते हुए मठ के सुप्रबन्ध के लिए एक ट्रस्ट का निर्माण कर दिया गया, जिसके डीड में संस्कृत विद्यालय का संचालन भी मठ का अन्यतम उद्देश्य बताया गया है। संस्कृत विद्यालय के विद्यार्थियों की न केवल शिक्षा ही निःशुल्क है, अपितु उन्हें भोजन, दूध, वस्त्र, पुस्तकें आदि भी सब मठ ही प्रदान करता है। विद्यार्थियों में जात-पाँत व ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं किया जाता। सब एक साथ रहते हैं, और एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। उन जातियों के विद्यार्थी भी मठ में रह रहे हैं, जिन्हें समाज अन्त्यज व अस्पृश्य समझता है। वहाँ उनके प्रति कोई भेदभाव नहीं किया जाता।

दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा), चम्बा (हिमाचल प्रदेश) और घण्डरां (जिला काँगड़ा) में भी स्थापित हो गये हैं। दयानन्द मठ, चम्बा में लड़कों और लड़कियों के लिए दो संस्कृत विद्यालय विद्यमान हैं, जिनसे हिमाचल के निवासियों को बहुत लाभ हो रहा है। दयानन्द मठ, दीनानगर के संस्कृत विद्यालय में शिक्षा प्राप्त किये हुए विद्यार्थी तथा साधु-संन्यासी देश के प्रायः सभी प्रदेशों में धर्म तथा समाज सेवा के कार्यों में संलग्न हैं।

(१३) पाणिनि विद्यालय, बहालगढ़ (हरयाणा)

वैदिक वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने सन् १९२० में 'विरजानन्द आश्रम' नाम से एक शिक्षण-संस्था स्थापित की थी। स्वामी सर्वदानन्द महाराज का सहयोग श्री जिज्ञासु को प्राप्त था, और इसीलिए उसकी स्थापना अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) में स्थित स्वामीजी के साधु आश्रम में की गयी थी। पर यह संस्था देर तक अलीगढ़ में नहीं रह सकी। सन् १९२१ के अन्त में गण्डासिंहवाला (अमृतसर) में उसे स्थानान्तरित किया गया, जहाँ अमृतसर की सर्वहितकारिणी सभा ने उसका संचालन किया। विरजानन्द आश्रम में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि का अविकल रूप से पालन करने का प्रयत्न किया जाता था, और इसके विद्यार्थी आर्ष ग्रन्थों से संस्कृत व्याकरण का गम्भीर ज्ञान प्राप्त कर वेदशास्त्रों का अध्ययन किया करते थे। पर यह आश्रम अमृतसर में भी देर तक नहीं रहा। सन् १९२६ के प्रारम्भ में इसके संचालक व आचार्य पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु अपने १७ शिष्यों को लेकर वाराणसी चले गये, और वहाँ उन्होंने आश्रम की स्थापना की। २६ फरवरी, सन् १९२८ को श्री रामलाल कपूर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अमृतसर) के दिवंगत हो जाने पर उनके सुपुत्रों ने अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए एक धर्मार्थ ट्रस्ट स्थापित किया, जिसका उद्देश्य प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार एवं भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा करना था। पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का सहयोग इस ट्रस्ट के संस्थापकों को शुरू से ही प्राप्त था। अतः यह स्वाभाविक था, कि ट्रस्ट के स्थापित हो जाने पर विरजानन्द आश्रम का उसके साथ सम्बन्ध कर दिया जाए। ४ वर्ष तक यह आश्रम वाराणसी में रहा, और रामलाल कपूर धर्मार्थ ट्रस्ट के साथ सम्बद्ध हो जाने के पश्चात् उसे लाहौर में ले जाया गया, जहाँ रावी नदी के पार उसकी स्थापना की व्यवस्था की गई। भारत के विभाजन (सन् १९४७) तक विरजानन्द आश्रम लाहौर में ही रहा। पर पाकिस्तान के बन जाने पर आश्रम तथा रामलाल कपूर ट्रस्ट को लाहौर से वाराणसी स्थानान्तरित कर दिया गया, और सन् १९७० तक इनकी स्थिति वहीं पर रही।

सन् १९६४ के अन्त में पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का देहावसान हो गया था। विरजानन्द आश्रम तथा ट्रस्ट के अनुसन्धान व प्रकाशन आदि कार्य उन्होंने ही सँभाले हुए थे। उनके अभाव में वाराणसी में ट्रस्ट का कार्य चला सकने में अनेक बाधाएँ उपस्थित होने लगीं, जिनके कारण ट्रस्ट तथा उसके साथ सम्बद्ध सब संस्थाओं को बहालगढ़ (हरयाणा) में स्थानान्तरित करने का निर्णय किया गया। बहालगढ़ दिल्ली से अधिक दूर नहीं है, अतः वह किसी भी अखिल भारतीय संस्थान के लिए सर्वथा उपयुक्त है। ट्रस्ट के कार्य को बहालगढ़ में स्थानान्तरित करने के अवसर पर २२ फरवरी, सन् १९७० को वहाँ एक समारोह भी किया गया। तब से ट्रस्ट के अन्य कार्यकलाप के साथ विरजानन्द आश्रम भी वहीं पर विद्यमान है। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है, कि लाहौर से वाराणसी स्थानान्तरित हो जाने के पश्चात् इस शिक्षण-संस्था का नाम 'पाणिनि विद्यालय' रख दिया गया था। बहालगढ़ में भी इसे उसी नाम से जाना जाता है। पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के देहावसान के पश्चात् डा० विजयपाल विद्यावारिधि व्याकरणाचार्य उनके स्थान पर इस शिक्षण-संस्था के आचार्य पद पर नियुक्त हुए थे। वह अब तक भी इस पद पर विराजमान हैं, और बड़ी योग्यता से पाणिनि विद्यालय का संचालन कर रहे हैं।

वाराणसी से बहालगढ़ आने पर केवल दो विद्यार्थी डा० विजयपाल के साथ वहाँ आये थे। उनमें से भी एक किसी कारणवश छोड़कर चला गया। बहालगढ़ में जो नये विद्यार्थी प्रविष्ट हुए, उनकी संख्या ९ है। ये सब विद्यालय के छात्रावास में रहते हैं और गुरुकुलों की दिनचर्या के अनुसार अनुशासित जीवन व्यतीत करते हैं। विद्यालय में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार वेद-वेदांगों तथा आर्ष-ग्रन्थों का पठन-पाठन होता है। विद्यार्थियों की संख्या अत्यन्त न्यून होने के दो कारण हैं, छात्रावास में निवास स्थान की कमी और छात्रवृत्तियों का पर्याप्त न होना। जिस ढंग की शिक्षा पाणिनि विद्यालय में दी जाती है, सांसारिक दृष्टि से उसका मूल्य अधिक नहीं है। छात्रवृत्ति प्राप्त करने पर ही विद्यार्थी उसके प्रति आकृष्ट होते हैं। छात्रवृत्ति की सुविधा सीमित होने के कारण अनेक योग्य विद्यार्थियों को विद्यालय में प्रवेश नहीं मिल पाता। इस संस्था के संचालकों की दृष्टि में विद्यार्थियों के अधिक संख्या में होने का विशेष महत्त्व भी नहीं है। उन्हें सन्तोष और गर्व है, कि उनकी संस्था में शिक्षा प्राप्त कर अनेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों ने विद्वत्ता तथा धर्म के क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किये हैं। इनमें पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, पण्डित रुद्रसेन आचार्य, पण्डित ज्योतिस्वरूप आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री युधिष्ठिर वेद-वेदांग तथा उपांगों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्होंने उच्च कोटि के जो अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, उन पर उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान की सरकारों ने अनेक पुरस्कार प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया है। संस्कृत वाङ्मय में प्रगाढ़ योग्यता के कारण राष्ट्रपति द्वारा भी उन्हें पुरस्कृत व सम्मानित किया गया है। उनकी गिनती संस्कृत के सर्वोच्च विद्वानों में की जाती है। पण्डित ज्योतिस्वरूप चिरकाल तक आर्ष गुरुकुल एटा के आचार्य पद पर रहकर उसकी चौमुखी उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं। पण्डित वीरेन्द्र विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, होशियारपुर द्वारा संचालित कॉलिज में प्रोफेसर हैं। पण्डित सत्यदेव वासिष्ठ आयुर्वेदाचार्य ने काशीस्थ वैद्य मण्डल में सम्मानित स्थान प्राप्त किया है। पण्डित कपिलदेव कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। पण्डित सुद्युम्न गुरुकुल महाविद्यालय रुद्रपुर, तिलहर (शाहजहाँपुर) के आचार्य हैं। श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की कपितय शिष्याओं ने भी विद्वत्ता तथा वैदिक धर्म की सेवा में अनुपम ख्याति प्राप्त की है। इनमें श्री प्रज्ञा कुमारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वाराणसी के कन्या पाणिनि विद्यालय का संचालन उन्हीं के द्वारा किया जा रहा है।

विद्यालय का स्वतन्त्र पुस्तकालय नहीं है। पर वहालगढ़ में विद्यालय के साथ ही रामलाल कपूर ट्रस्ट का पुस्तकालय है, जिसमें दस हजार से भी अधिक पुस्तकें हैं। वहुत-सी दुर्लभ तथा हस्तलिखित पुस्तकें भी वहाँ हैं, जो शोधार्थियों के लिए वहुत महत्त्व की हैं। विविध विश्वविद्यालयों के अनेक शोध-छात्र वहालगढ़ आकर इस पुस्तकालय से लाभ उठाते हैं। पाणिनि विद्यालय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को भी इस पुस्तकालय के सव लाभ सुलभ हैं।

इस शिक्षण-संस्था के विद्यार्थी आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। हैदरावाद के आर्य सत्याग्रह में विद्यालय के आठ विद्यार्थी सत्याग्रह के लिए गये थे। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में भी विद्यार्थी हाथ वटाते रहते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रहवाँ अध्याय

कन्या गुरुकुलों की स्थापना तथा विकास

(१) कन्या गुरुकुल हाथरस (अलीगढ़)

जिस प्रकार बालकों की शिक्षा के लिए गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि अनेक गुरुकुलों की स्थापना की गयी; उसी प्रकार बालिकाओं के लिए भी उत्तरप्रदेश, गुजरात, हरयाणा आदि में अनेक कन्या गुरुकुल स्थापित किये गये और गुरुकुल शिक्षा पद्धति से कन्याएँ भी लाभ उठाने लगीं।

उत्तरप्रदेश में पहले कन्या गुरुकुल का गौरवपूर्ण स्थान रखने वाली इस संस्था की स्थापना का इतिहास बड़ा रोचक है। इसको स्थापित करने का श्रेय दक्षिणी भारत की निवासिनी श्रीमती विद्यावती को है। वह एक धर्मपरायण महिला थीं और सामाजिक कार्यों में अभिरुचि रखने वाले समृद्ध परिवार की सुगृहिणी थीं। एक बार उनके मन में किसी धार्मिक कार्य के लिए दो लाख रुपये दान करने की प्रबल अभिलाषा उद्बुद्ध हुई। वह किसी कार्यवश हाथरस आयीं। यहाँ उन्होंने अपने परिचित बन्धुओं के सम्मुख अपनी इस अभिलाषा को अभिव्यक्त किया और इसे क्रियान्वित करने की इच्छा प्रकट की। पर्याप्त विचार-विमर्श करने के बाद उन्होंने हाथरस के सुप्रतिष्ठित नागरिक पण्डित मुरलीधर को दो लाख रुपये की विपुल धन राशि धार्मिक कार्य के लिए प्रदान कर दी।

इसी समय आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का हाथरस में शुभागमन हुआ। उनके भक्त और जिज्ञासु उनके दर्शन करने और अपनी धर्म-पिपासा शान्त करने के लिए उनके पास आया करते थे। संयोगवश एक दिन पण्डित मुरलीधर भी स्वामीजी के पास आये और उन्होंने उपर्युक्त धनराशि को किसी धार्मिक कार्य में व्यय करने के लिए उनसे परामर्श माँगा। स्वामीजी ने गम्भीर विचार के बाद उत्तर दिया—"भाई, धर्मशालाएँ और पाठशालाएँ तो बहुत चलती हैं, चल रही हैं और चलेंगी। देश में कन्याओं को कोई निःशुल्क शिक्षा देने वाला गुरुकुल नहीं है। जिस प्रकार ब्रह्मचारियों के लिए अनेक निःशुल्क गुरुकुल स्थापित किये गये हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचारिणी बालिकाओं का भी एक गुरुकुल हो जाय तो अच्छा होगा।" यह बात पं० मुरलीधर को पसन्द आ गयी। उन्होंने कहा—"अच्छी बात है महाराज, आपकी इच्छा पूरी होगी।" इसके बाद उन्होंने कन्या गुरुकुल को स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और इसके लिए आवश्यक तैयारी शुरू कर दी।

सर्वप्रथम यह निर्णय किया जाना था कि इस गुरुकुल की स्थापना किस स्थान पर की जाय। इसमें मार्ग दर्शन महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश से लिया गया। महर्षि ने लिखा था कि गुरुकुल का स्थान गाँवों और शहरों से दूर, एकान्त, शुद्ध, पवित्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर होना चाहिए ताकि यहाँ अध्ययन में किसी प्रकार का विक्षेप या विघ्न-बाधा न हो; छात्राएँ अपनी अपरिपक्व आयु में शहरों और गाँवों के दूषित वातावरण से बची रह सकें। इस दृष्टि से हाथरस शहर से पाँच मील तथा सासनी से दो मील की दूरी पर एक स्थान चुना गया।

सन् १९०९ में इस कन्या गुरुकुल की आधारशिला रखी गयी। कन्याओं की संस्था के लिए पहली बड़ी आवश्यकता सुरक्षा की होती है। सर्वप्रथम गुरुकुल में भूमि की सुरक्षा के लिए इसे घेर कर ऊँची चहारदीवारी बनायी गयी। इसके बाद कुछ अच्छे कोठे और कमरे बने। इनमें कन्या गुरुकुल को आरम्भ किया गया। इसमें पढ़ने के लिए भारत के विभिन्न प्रान्तों से कन्याएँ आने लगीं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस संस्था को चलाने वाले निष्ठावान् त्यागी, तपस्वी योग्य कार्यकर्ता नहीं मिले और पाँच वर्ष की अल्पावधि के बाद इस गुरुकुल का कार्य १९१४ में बन्द हो गया। इससे एक बात भली-भाँति प्रमाणित हो गयी कि गुरुकुलों जैसी संस्थाओं के लिए धन से भी अधिक आवश्यक है कि उसमें ऐसे कार्यकर्ता हों जो धुन के धनी और निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले और संस्था के लिए अपना जीवन तथा सर्वस्व समर्पण करने वाले हों और इससे भी बड़ी जरूरत है लाला देवराज और लाला मुंशीराम जैसे भगीरथ परिश्रमी, दृढ़ संकल्प से लक्ष्य की ओर बढ़ने वाले और अपनी संस्था के लिए उपयुक्त प्रकार के कार्यकर्ताओं का लोक संग्रह करने वाले महापुरुष की। ऐसे व्यक्ति धन न होने पर भी उसकी व्यवस्था कर लेते हैं।

हाथरस गुरुकुल की उपर्युक्त शोचनीय दशा को दूर करने तथा इसे उत्तरप्रदेश की एक प्रमुख महिला शिक्षण-संस्था बनाने का श्रेय माता लक्ष्मीदेवीजी को है। वह इलाहाबाद में बचपन से आर्यसमाज के सिद्धान्तों और वैदिक विचारों के वातावरण में पली थीं। शैशवकाल से उनके हृदय में वैदिक सिद्धान्तों के प्रसार की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी थी। वह चाहती थीं कि भले ही कितना कष्ट क्यों न उठाना पड़े, संसार में महर्षि के शुभ सन्देश का प्रचार होना चाहिये। उनके मन में कन्या गुरुकुल खोलने का विचार उत्पन्न हुआ, क्योंकि उनकी यह मान्यता थी कि जब भारतीय स्त्रियाँ महर्षि की शिक्षा पाकर गुरुकुल से निकलेंगी तो वैदिक शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार सर्वत्र स्वयंमेव हो जायेगा।

किन्तु इस उच्च अभिलाषा को मन में सँजोये हुए भी वह सर्वथा साधनहीन थीं। उनके पास अपने संकल्प के संबल के अतिरिक्त कोई दूसरी पूँजी नहीं थी। कन्या गुरुकुल जैसी संस्था खोलने के लिए न तो उनके पास अपेक्षित धन था, न भवन थे और न ही इस कार्य में सहायता देने वाले योग्य कार्यकर्ता थे। उन्हें जहाँ कहीं कोई भव्य भवन दिखाई देता, वह वहीं कन्या गुरुकुल स्थापित करने के सपने लेने लगतीं। कहा जाता है कि एक बार वह बाल्यावस्था में सपरिवार ताजमहल देखने गयीं। वहाँ अन्य सब व्यक्ति ताजमहल के अप्रतिम, रमणीय सौन्दर्य को मन्त्रमुग्ध होकर देख रहे थे, लेकिन लक्ष्मीदेवीजी एक कोने में बैठकर यह सोच रही थीं कि यह स्थान कन्या गुरुकुल के लिए मिल जाता तो कितना अच्छा होता।

कुछ समय बाद माता लक्ष्मीदेवीजी अपने बीमार ताऊ बैरिस्टर रोशनलाल के साथ वायु परिवर्तन के लिए हरिद्वार गयीं। यहाँ मोहन आश्रम में डी० ए० वी० कॉलिज के सुप्रसिद्ध प्रिंसिपल महात्मा हंसराज से उनकी भेंट हुई और वह उनके पास सत्संग के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जाने लगीं। एक दिन महात्माजी से बातचीत करते हुए बैरिस्टर साहब बोले—"हमारी बेटी लक्ष्मीदेवी कन्या गुरुकुल खोलना चाहती है, उन्हें स्थान की जरूरत है।" महात्माजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "बड़ी अच्छी बात है, यहीं चालीस बीघा जमीन ले लो और अभी कन्या गुरुकुल खोल दो।" किन्तु वह स्थान शिवालक की तलहटी में पानी और मच्छरों से भरा था। यहाँ मलेरिया का प्रकोप बहुत अधिक था, अतः कन्या गुरुकुल स्थापित करने के लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं समझा गया।

संयोगवश इसी समय न्होटी (अलीगढ़) निवासी सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी व्याख्याता पण्डित इन्द्र वर्मा माताजी से मिले। उन्हें उनकी कन्या गुरुकुल स्थापित करने की आकांक्षा का पता था। उन्होंने पूछा—"कहिए देवीजी, क्या आपका कन्या गुरुकुल खुल गया?" माताजी बड़े उत्साह से बोलीं—"हाँ, खुल रहा है। पूज्य महात्मा हंसराजजी ने जगह दे दी है। हरिद्वार में बनाने का विचार है।" पण्डित इन्द्र वर्मा बोले, "देवीजी, आप किस चक्कर में पड़ी हैं? आपका बना बनाया कन्या गुरुकुल हाथरस में मौजूद है। उसके पुनरुद्धार की आवश्यकता है।" माता लक्ष्मीदेवीजी यह सुनकर अति प्रसन्न हुईं। उन्होंने इस सत्परामर्श का पूरा लाभ उठाया। वह तुरन्त हाथरस चली गयीं, और खाली पड़े कन्या गुरुकुल के अधिकारियों से उन्होंने बातचीत आरम्भ की। हाथरस वालों को अपने आदर्शों को क्रियान्वित करने वाली, मृत संस्था में नवजीवन का संचार करने वाली, सात्त्विक दान की सच्ची अधिकारिणी जब मिली तो वे इन्हें पाकर कृतकृत्य हो गये। उन्होंने माताजी को कन्या गुरुकुल चलाने के लिए समस्त भू-सम्पत्ति और सुविधाएँ देने की व्यवस्था कर दी।

शीघ्र ही माताजी अपने प्रबल उत्साह और निष्ठा से पिछले २२ वर्ष से निष्क्रिय और मृत संस्था में नूतन प्राणों का संचार करने लगीं और व्यास पूर्णिमा के पवित्र पर्व पर दिनांक २८ जुलाई, १९३१ को एक ब्रह्मचारिणी दयावती (श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री की भांजी तथा श्री उमेशचन्द्र स्नातक की बहन) के प्रवेश के साथ इस गुरुकुल को पुनरुज्जीवित किया गया। वस्तुतः, गुरुकुल की स्थापना इसी समय से मानी जानी चाहिये।

इस संस्था को अब सौभाग्यवश आरम्भ में उत्तरप्रदेश में आर्यसमाज के मूर्धन्य संन्यासी महात्मा नारायण स्वामी का बहुमूल्य पथप्रदर्शन मिला। उस समय माता लक्ष्मीदेवी के पास केवल दो कार्यकर्ता, श्रीमती आनन्दीदेवी (श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री की माताजी) और श्री कुन्दनसिंह ही थे। आरम्भ में माता लक्ष्मीजी को अनेक विषम परिस्थितियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि यह स्थान उस समय चोर-डाकुओं का अड्डा बना हुआ था। वे नहीं चाहते थे कि कोई भला आदमी यहाँ बसे और उनके काम में बाधा डाले। इसलिए वे इनके यहाँ आने पर इन्हें भगाने के लिए पत्थर बरसाते रहते थे। फिर भी माताजी अपने संकल्प को पूरा करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहीं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और मृत्युपर्यन्त ११ मार्च, १९६१ तक वह अपनी साधना में लगी रहीं। उनके अदम्य साहस, पुरुषार्थ और तपस्या से गुरुकुल का विकास होने लगा। जो संस्था एक कन्या से आरम्भ की गयी थी, उसमें छात्राओं की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी और १९८१ में जयन्ती के अवसर पर इसमें ४३० ब्रह्मचारिणियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। इनमें यद्यपि अधिक संख्या उत्तरप्रदेश की लड़कियों की है, किन्तु भारत के अन्य प्रान्तों और विदेशों में बसे भारतीयों की कन्याओं की संख्या भी कम नहीं है। उत्तरप्रदेश की ३००, बिहार की ४९, राजस्थान की २२,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली की १३, बंगाल की ६, हरयाणा की १, पंजाब की ५, असम की ३, मध्यप्रदेश की ३, गुजरात की २, कर्नाटक की १, महाराष्ट्र की १, आन्ध्र प्रदेश की १ और थाईलैण्ड की १९, तथा नेपाल की ६ कन्याएँ वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

विकास तथा प्रबन्ध— कन्या गुरुकुल की व्यवस्था आरम्भ से एक प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा की जाती है। पहली प्रबन्धकारिणी समिति के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी, कार्यकारी प्रधान डा० कृष्णप्रसाद, उपप्रधान पं० मथुराप्रसाद भार्गव, मन्त्री तथा मुख्याधिष्ठात्री माता लक्ष्मीदेवी तथा आचार्या सरस्वती देवी थीं। इस समय तक माताजी को सहयोग देने के लिए श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री की माता श्रीमती आनन्दी देवी, बहन सुखदादेवी तथा उनकी दो भांजियाँ कुमारी शकुन्तलादेवी तथा शान्तिदेवी गुरुकुल पहुँच गयी थीं, कुछ समय बाद जब २३ दिसम्बर, १९३१ को गुरुकुल का प्रथम उत्सव हुआ तो ब्रह्मचारिणियों की संख्या एक से बढ़कर चालीस हो गयी। विद्यालय विभाग सुचारु रूप से चलने लगा। आचार्या सरस्वती देवी की छोटी बहन श्रीमती यशोदा देवी अध्यापन-कार्य करने लगीं, तथा श्रीमती सुखदेवी ने शिल्प शिक्षिका के रूप में इस गुरुकुल में कार्य करना आरम्भ किया।

सन् १९३१ के बाद दो वर्षों में इस संस्था ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है, उसका विवरण पं० मथुरादास भार्गव द्वारा प्रस्तुत हाथरस गुरुकुल की पहली रिपोर्ट में मिलता है। इसमें यह बताया गया है कि जुलाई, सन् १९३२ में ब्रह्मचारिणियों की संख्या ४० और जून, ३३ में ५८ हो गयी। इस गुरुकुल में भारत के सुदूरवर्ती प्रान्तों से विद्याध्ययन के लिए कन्याएँ आने लगीं। १९३३ में यहाँ विभिन्न प्रान्तों से आकर शिक्षा पाने वाली कन्याओं की संख्या इस प्रकार थी—उड़ीसा ३, बिहार १, संयुक्त प्रान्त ४१, राजपूताना २, पंजाब ३, मध्यप्रदेश ५, बम्बई ३। इस रिपोर्ट के अनुसार गुरुकुल में कन्याओं के अभिभावकों से ११ रुपये मासिक व्यय लिया जाता है, जो उनके भोजन, कपड़ों और पुस्तकों पर व्यय होता है। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क होती है। छह श्रेणियाँ खुल चुकी हैं और प्रति वर्ष एक नवीन श्रेणी खोलनी पड़ती है, क्योंकि स्नातिका परीक्षा तक १२ श्रेणियाँ नियत की गयी हैं।

१९३६ का वर्ष हाथरस गुरुकुल के लिए बड़ा ही शुभ था। इस वर्ष गुरुकुल में कतिपय योग्य, मेधावी, निष्ठावान् अध्यापक, अध्यापिकाओं का शुभागमन हुआ। इनमें पं० पूर्णदेव विद्यालंकार, पं० लीलाधर, श्रीमती लक्ष्मीदेवी गुप्ता एवं कन्या गुरुकुल देहरादून का स्नातिकायुगल——सुश्री सुशीलादेवी विद्यालंकृता तथा सुखदादेवी विद्यालंकृता के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी वर्ष महात्मा नारायण स्वामी की प्रेरणा से शारीरिक व्यायाम की शिक्षा देने के लिए श्री रणवीरसिंह पधारे। वह बड़ौदा के प्रसिद्ध व्यायामाचार्य श्री माणिकराव के शिष्य थे। बालब्रह्मचारी रणवीरसिंह भाईजी के नाम से प्रसिद्ध थे। वह अवैतनिक रूप से अपने जीवन के अन्तिम समय तक ब्रह्मचारियों को लेजिम, लाठी, गतका, मुगदर, तलवार, कटार, बनेठी आदि चलाने का प्रशिक्षण देते रहे। गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियाँ माताजी के साथ उत्तरप्रदेश की आर्यसमाजों के उत्सवों पर जब व्यायाम के प्रदर्शन करती थीं तो जनता आश्चर्यचकित हो उठती थी और भाईजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करती थी। विद्यालय विभाग के साथ ही इस समय आश्रम विभाग और भोजन विभाग की आवश्यक व्यवस्था भी सुचारु रूप से की गयी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९३८ में इस गुरुकुल में स्वतन्त्रता संग्राम के अनेक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं—पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पण्डित मदनमोहन मालवीय—का शुभागमन हुआ। इन सबने स्त्रीशिक्षा तथा नारी जागरण के क्षेत्र में कन्या गुरुकुल के कार्य की सराहना की। १९३८ में इस संस्था की कीर्ति अफ्रीका तक पहुँच गयी, और वहाँ से भी कन्याएँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए इस संस्था में आने लगीं। यह वर्ष इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय था कि इसमें अध्यापन के अतिरिक्त छात्राओं को साप्ताहिक सभाओं व उत्सवों में भाषण देने, निबन्ध पाठ करने, वाद-विवाद करने, कविता पाठ और संगीत आदि के पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री धर्मवीर भारती की माता चन्दो देवी अपनी पुत्री वीरबाला के साथ गुरुकुल आयीं और उन्होंने उसके स्नातिका बनने तक रुग्ण कन्याओं की सेवा और चिकित्सा का कार्य अवैतनिक रूप में बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया।

१९४२ में इस गुरुकुल की प्रथम दो स्नातिकाओं (सुश्री राधारानी तथा सुशीला देवी) को 'विद्याविभूषिता' की उपाधि से अलंकृत किया गया। इसके बाद प्रतिवर्ष गुरुकुल से अपनी शिक्षा समाप्त करके कन्याएँ स्नातिका बनती रहीं और दानवीर आर्य बन्धुओं की उदारता से संस्था समृद्ध होती गयी।

३० वर्ष तक गुरुकुल की मुख्याधिष्ठात्री एवं आचार्या के रूप में सेवा करने के बाद ११ मार्च, १९६१ को माता लक्ष्मीदेवीजी का स्वर्गवास आगरा में ७४ वर्ष की आयु में हो गया। उनके बाद उनके उत्तरदायित्व को उनकी सुपुत्री श्रीमती अक्षय कुमारी शास्त्री कुशलतापूर्वक निवाह रही हैं। जुलाई, १९६३ में श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री वैदिक कॉलिज, बड़ौत के प्रिंसिपल पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद इस संस्था में आ गये, और कुलपति का कार्य कर रहे हैं। विद्यालय विभाग में कुमारी कमला शिरोमणि एम० ए०, बी० एड० बड़ी तत्परता से प्रधानाचार्या का काम कर रही हैं।

पाठ्यक्रम तथा शिक्षा की व्यवस्था—इस गुरुकुल में प्रमुख रूप से वैदिक साहित्य, दर्शन, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, संस्कृत व्याकरण तथा साहित्य, हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गृहविज्ञान, संगीत आदि प्राचीन एवं नवीन तथा गृहोपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती है। संस्कृत तथा वेद की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम संस्कृत है, अंग्रेजी का अंग्रेजी और शेष विषयों का हिन्दी। यहाँ चौदह श्रेणियों का पाठ्यक्रम चलाया जाता है। प्रत्येक कन्या को स्नातिका बनने तक ब्रह्मचारिणी रहना अनिवार्य है। १८ वर्ष की आयु के पश्चात् ही स्नातिका परीक्षा होती है।

प्रथम से चतुर्दश श्रेणी तक का पाठ्यक्रम चार भागों में बँटा है। प्राथमिक विभाग, माध्यमिक विभाग, महाविद्यालय विभाग तथा स्नातकोत्तर विभाग। आठवीं श्रेणी तक का पाठ्यक्रम गुरुकुल की शिक्षा समिति द्वारा निर्धारित होता है और अष्टम श्रेणी की ब्रह्मचारिणियों के लिए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रथमा परीक्षा देना अनिवार्य होता है। नवम तथा दशम श्रेणी में गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन की अधिकारी परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। यह परीक्षा हाईस्कूल के समकक्ष है। इसे उत्तीर्ण करने वाली ब्रह्मचारिणियाँ इण्टर कॉलिज की ११वीं कक्षा में प्रविष्ट हो सकती हैं और किसी भी सरकारी विद्यालय में हिन्दी तथा संस्कृत की अध्यापिका के पद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कार्य कर सकती हैं। एकादश तथा द्वादश कक्षाओं में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की पण्डित परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। त्रयोदश तथा चतुर्दश श्रेणियों में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की शिरोमणि कक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। इसकी परीक्षा में उत्तीर्ण ब्रह्मचारिणियाँ स्नातिका कहलाती हैं। शिरोमणि परीक्षा बी० ए० के समकक्ष है। इसे उत्तीर्ण करने वाली स्नातिकायें आगरा, मेरठ, कानपुर, गोरखपुर, कुमायूँ, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, अवध, गढ़वाल, हैदराबाद, तिरुपति, दिल्ली, श्रीनगर आदि विश्वविद्यालयों की एम० ए० तथा एल-एल० बी० परीक्षाओं में बैठ सकती हैं।

गुरुकुल में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाओं की भी पढ़ाई होती है और प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद की पाठविधि के अनुसार संगीत की शिक्षा तथा परीक्षाओं का भी प्रबन्ध है। वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि धार्मिक विषयों की शिक्षा तथा यज्ञादि के कार्यक्रम महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट वैदिक प्रणाली के अनुसार किये जाते हैं। इस गुरुकुल में पाँच से दस वर्ष तक की आयु तक की ही कन्याओं का प्रवेश हो सकता है। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। भोजन के लिए मासिक व्यय लिया जाता है। यहाँ प्रत्येक ब्रह्मचारिणी को आश्रम के नियमों का पूर्णतया पालन करना आवश्यक है। आयु एवं कक्षा के अनुसार कन्याओं के लिए वर्ग या आश्रम निर्धारित कर दिये गये हैं, जहाँ उनकी देखभाल एवं सहायता के लिए एक-एक आश्रमाध्यापिका होती है। आश्रम की एक निश्चित दिनचर्या है जिसका पालन करना प्रत्येक ब्रह्मचारिणी के लिए आवश्यक है। प्रतिदिन सन्ध्या तथा अग्निहोत्र करना आवश्यक है। आश्रम जीवन गुरुकुल की विशेषता है। बाहर के अवांछनीय प्रभावों से रक्षा की दृष्टि से समूचे शिक्षा काल में ब्रह्मचारिणी को गुरुकुल में रहना पड़ता है। सामान्य रूप से किसी ब्रह्मचारिणी को बाहर जाने की आज्ञा नहीं दी जाती है। अवकाश के दिनों में भी गुरुकुल में ही रहना होता है। केवल ग्रीष्मावकाश में कन्या को घर जाने की अनुमति दी जाती है। मुख्याधिष्ठात्री की अनुमति के बिना कोई भी पुरुष या स्त्री आश्रम में नहीं जा सकती है और बिना मुख्याधिष्ठात्री की अनुमति के कोई ब्रह्मचारिणी किसी बाहर के व्यक्ति से नहीं मिल सकती है।

मानसिक एवं बौद्धिक शिक्षा देने के साथ-साथ छात्राओं की शारीरिक शिक्षा का भी सुप्रबन्ध है। प्रत्येक कन्या के लिए प्रतिदिन व्यायाम करना अनिवार्य है। व्यायाम में योगासन, स्तूप निर्माण, लेजिम, डम्बल, लाठी, कबड्डी, खोखो, सामूहिक व्यायाम, अनेक प्रकार की दौड़ें, लम्बी कूद, ऊँची कूद तथा विभिन्न प्रकार की ड्रिल की शिक्षा दी जाती है। समय समय पर क्रीड़ा प्रतियोगितायें होती हैं और पुरस्कार दिये जाते हैं।

गुरुकुल के पास अपनी गौशाला और तीन सौ बीघा जमीन है। गुरुकुल का वार्षिक बजट १९८० में नौ लाख के लगभग था।

सामाजिक अवदान—इस कन्या गुरुकुल की स्नातिकाओं ने उत्तरप्रदेश तथा अन्य राज्यों में शिक्षा, साहित्य, समाज सेवा आदि के क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अनेक स्नातिकायें अपनी मातृसंस्था में अध्यापन-कार्य करती रही हैं। इनमें श्रीमती राधा रानी, श्रीमती दयावती शास्त्री, श्रीमती शान्ति देवी, श्रीमती सौभाग्यवती, श्रीमती वीरबाला, श्रीमती शारदा, श्रीमती कमला, श्रीमती सरोज, श्रीमती सावित्री, श्रीमती सुधा, श्रीमती सुविद्या, श्रीमती विमला के नाम उल्लेखनीय हैं। गुरुकुल की अनेक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातिकाओं ने विशेष उन्नति करते हुए संस्था के नाम को उज्ज्वल किया है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम उल्लेखनीय नाम है श्रीमती गायत्रीदेवी का, जो महारानी कॉलिज, जयपुर में रीडर के पद पर कार्य कर रही हैं। श्रीमती दयावती स्नातिका शास्त्री का विवाह मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता एवं स्वतन्त्रता सेनानी श्री निरंजनसिंह एम० पी० के साथ हुआ था। श्रीमती दयावती सम्प्रति मध्यप्रदेश में समाज सेवा के कार्य में संलग्न हैं। श्रीमती डा० वीरवाला विवेकानन्द कॉलिज, दिल्ली में संस्कृत की प्रवक्ता हैं। श्रीमती डा० शारदा पंजाब विश्वविद्यालय में संस्कृत की प्रवक्ता हैं। डा० विमला स्नातिका ने दयानन्द और सायण की भाष्य शैली पर तुलनात्मक अध्ययन कर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है और पटना में कार्य कर रही हैं। श्रीमती तारा जयपुर में एडवोकेट हैं। दो स्नातिकायें नेपाल में तथा एक स्नातिका अफ्रीका में वैदिक विचारधारा के प्रचार में संलग्न हैं। इनके अतिरिक्त अनेक स्नातिकायें शिक्षा और आर्यसमाज के प्रचार एवं प्रसार के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं।

कन्या गुरुकुल के निर्माता—हाथरस कन्या गुरुकुल के निर्माताओं में सर्वोच्च स्थान इसकी संस्थापिका माता लक्ष्मीदेवी का है। उनका जन्म सन् १८८९ में एलनगंज (इलाहाबाद) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रामचन्द्र तथा माता का नाम श्रीमती उमरावती था। आपने स्त्रीशिक्षा एवं समाज सुधार का पाठ अपने ताऊ श्री रोशनलाल से पढ़ा था। ये वैरिस्टरी की शिक्षा पाने के लिए अपनी पत्नी हरदेवी के साथ इंगलैण्ड गये और वहाँ से समाज सुधार और भारत की उन्नति करने का विचार लेकर लौटे थे। इन पर महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का प्रबल प्रभाव था। अतः इस परिवार में वैदिक विचारों तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों की घुट्टी बचपन से ही माताजी को मिली थी। ये अपने पिता और ताऊ की एकमात्र सन्तान थीं और उन्होंने ६ वर्ष की आयु में इन्हें भारतीय परम्परा के अनुसार वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा पाने के लिए उस समय उत्तर भारत में कन्याओं को वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा देने वाली एकमात्र संस्था—कन्या महाविद्यालय, जालन्धर में भेजा। किन्तु इस लाड़ली बेटी को जल्दी ही घर वापिस आना पड़ा, क्योंकि उनके माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को उनकी अनुपस्थिति खलने लगी थी। अब घर पर सबने अपना ध्यान बेटी पर केन्द्रित किया, उसे आर्यसमाज के धार्मिक और सामाजिक मन्तव्यों का शिक्षण दिया और उसके मन में वैदिक विचारों को कूट-कूटकर भर दिया।

आपका विवाह बरेली निवासी बाबू जगदम्बाप्रसाद के साथ हुआ। विवाह के बाद आपको बरेली में आर्यसमाज के नेता सुप्रसिद्ध डाक्टर श्यामस्वरूप के परिवार में पहुँच कर अपनी मानसिक और बौद्धिक उन्नति के लिए उपयुक्त वातावरण मिला। इनके ताऊ रोशनलाल निरन्तर अपनी बेटी को समाज सेवा, स्त्रियों की शिक्षा तथा वैदिक धर्म के प्रचार की प्रेरणा देते रहते थे।

आपकी कोई औरस सन्तान नहीं थी, अतः आपने पाँच वर्षीय बालिका अक्षयकुमारी को पुत्री के रूप में गोद लिया और अपनी एकमात्र उत्तराधिकारिणी बनाया। इन्होंने अपने वैदिक विचार पुत्री में डालने शुरू किये। उसे उत्तम बौद्धिक शिक्षा दी और साथ ही समाज सुधार का भी पाठ पढ़ाया। इसका सर्वोत्तम स्वरूप उस समय दृष्टिगोचर हुआ, जब उन्होंने अपनी पुरानी परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल, किन्तु आर्यसमाज के सिद्धान्तों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुकूल जात-पाँत के बन्धन को तोड़कर अपनी एकमात्र कन्या का अन्तर्जातीय विवाह श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० से किया। आज से आधी शताब्दी पहले इस प्रकार जाति-बन्धन की मर्यादा भंग करके विवाह करना अतीव साहसिक कार्य था। माता लक्ष्मीदेवी ने इस कार्य से समाज में एक अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया।

आपको बचपन से ही स्त्रियों के सुधार, उन्नति तथा शिक्षा के कार्य में गहरी दिलचस्पी थी। इसके परिणामस्वरूप आपने बरेली में स्त्री सुधार विद्यालय की स्थापना की। यह इस समय उत्तरप्रदेश की एक उल्लेखनीय शिक्षण-संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। किन्तु आप इससे सन्तुष्ट नहीं थीं। आपकी अभिलाषा ऐसा कन्या गुरुकुल स्थापित करने की थी, जिसमें भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुरूप ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठ्यविधि के अनुसार बालिकाओं को शिक्षा दी जाय। उनका यह विश्वास था कि वैदिक धर्म का प्रचार तभी तेजी से हो सकता है, जब कन्याओं को वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाये। इस प्रकार का ज्ञान पाने के बाद वे अपने बच्चों को वैदिक सिद्धान्तों की घुट्टी उसी तरह पिलायेंगी जैसी घुट्टी उनके माता पिता और ताऊजी ने उन्हें पिलायी थी। अतः अब उन्हें कन्या गुरुकुल स्थापित करने की धुन सवार हो गयी और वह ऐसे स्थान की खोज करने लगीं, जहाँ कन्या गुरुकुल स्थापित किया जा सके। पहले यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार उन्हें कन्या गुरुकुल हाथरस का पता लगा, जहाँ १९०९ में गुरुकुल खोला गया था, किन्तु निष्ठावान कार्यकर्ताओं के अभाव में वह कुछ समय बाद बन्द हो गया था। यहाँ २८ जुलाई, १९३१ को व्यास पूर्णिमा के दिन माता लक्ष्मीदेवी ने महात्मा नारायण स्वामी के करकमलों द्वारा कन्या गुरुकुल हाथरस का उद्घाटन कराया। इस गुरुकुल को स्थापित करने के बाद इसमें पढ़ने वाली छात्राओं को एकत्र करने की समस्या थी। इसका आरम्भ श्री मानिक चन्द्र इंजीनियर, जालन्धर की सुपुत्री दयावती के प्रवेश से किया गया। यह पहले माताजी द्वारा संचालित स्त्री सुधार विद्यालय बरेली में अध्ययन कर रही थीं। शीघ्र ही पण्डित सुरेन्द्र शर्मा काव्यतीर्थ उड़ीसा से दो नन्हीं बालिकाओं को प्रवेश के लिए लाये और एक वर्ष में जुलाई, १९३२ तक छात्राओं की संख्या ४० हो गयी। माता लक्ष्मीदेवी ने अपना सारा जीवन कन्या गुरुकुल, हाथरस के विकास एवं उन्नति में लगाया। वह आमरण इस संस्था के उत्कर्ष के लिए प्रयास करती रहीं। बीच में केवल एक वर्ष उन्होंने मध्यप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के विशेष अनुरोध पर दुर्ग में कन्या गुरुकुल का उद्घाटन करने के बाद उसकी देखरेख की।

माता लक्ष्मीदेवी के दिवंगत होने के बाद यह विकट समस्या उत्पन्न हुई कि गुरुकुल का भार किसको सौंपा जाये, जो उसे सफलतापूर्वक संचालित करते हुए उन्नति के पथ पर अग्रसर कर सके। उस समय गुरुकुल प्रेमियों का यह विश्वास था कि यह कार्य उनकी पुत्री श्रीमती अक्षयकुमारी शास्त्री ही कर सकती हैं, किन्तु जब उन्हें यह कार्यभार सँभालने के लिए कहा गया तो कुछ समय के लिए वह इस उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में संकोच करती रहीं, क्योंकि अपनी तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र की बीमारी एवं अपने पति श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री के बड़ौत में प्रिंसिपल होने के कारण कन्या गुरुकुल का भार सँभालने में वह कुछ हिचकिचा रही थीं। किन्तु शीघ्र ही कन्या गुरुकुल की रजत जयन्ती के समय १९५६ में माता लक्ष्मीदेवी के अभिनन्दन के समय कहे गये ये शब्द उन्हें याद आने लगे,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हारी यह पुत्री तुम्हारे लगाये इस पौदे को लहलहाता और फलता फूलता रखने के लिए अपना सर्वस्व लगाकर प्रयत्न करती रहेगी।" अतः उन्होंने हाथरस कन्या गुरुकुल का दायित्व उठाना स्वीकार किया। वह इसकी मुख्याधिष्ठात्री वनीं और उन्होंने पिछले वीस वर्षों में गुरुकुल का कायाकल्प किया। पुराने जीर्ण भवनों का नवनिर्माण हुआ, नये भवन वनाये गये, गुरुकुल की आर्थिक स्थिति को स्थायी निधि तथा अन्य निधियों से सुदृढ़ किया गया।

श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री वर्तमान समय में कन्या गुरुकुल हाथरस के कुलपति हैं। उन्होंने १९६३ में सेवा से अवकाश ग्रहण करने के वाद गुरुकुल के कुलपति का कार्यभार सँभाला। वह जीवन भर आर्यसमाज की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्थाओं—डी० ए० वी० कॉलिज देहरादून, लखनऊ तथा वैदिक कॉलिज वड़ौत में कार्य करते रहे थे। उन्हें शिक्षा के क्षेत्र का वड़ा अच्छा अनुभव था। अतः उन्होंने इस गुरुकुल में अनेक शिक्षा सम्वन्धी परिवर्तन किये। इसके लिए धन संग्रह का प्रवल अभियान चलाया और गुरुकुल की आर्थिक स्थिति उन्नत की। इस संस्था की स्वर्ण जयन्ती का वड़े उत्साह से आयोजन किया और ८० वर्ष की आयु में भी कलकत्ता आदि दूरवर्ती स्थानों की यात्रा कर संस्था के लिए धन संग्रह किया। उनके नेतृत्व में यह संस्था उल्लेखनीय प्रगति कर रही है।

(२) कन्या गुरुकुल देहरादून

२६ जनवरी, १८९८ को आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव ने गुरुकुल खोलने का निश्चय किया था और उसकी यह परिभाषा की थी—

"गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालय का नाम है, जिसमें वे वालक या वालिकायें, जिनका यथोचित वेदारम्भ संस्कार हो चुका है, शिक्षा और विद्या प्राप्त करें।"

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव के इस प्रस्ताव में गुरुकुल की परिभाषा करते हुए वालकों तथा वालिकाओं दोनों का उल्लेख था। सभा ने वालकों की शिक्षा के लिए सन् १९०२ में हरिद्वार के पास काँगड़ी नामक गाँव में गुरुकुल की स्थापना की थी। किन्तु अगले २२ वर्षों तक वालिकाओं के लिए कन्या गुरुकुल की स्थापना अनेक वाधाओं और कठिनाइयों के कारण नहीं की जा सकी।

कन्या गुरुकुल की स्थापना में सवसे वड़ी और पहली कठिनाई वित्तीय साधनों की थी। गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना के लिए आवश्यक धन संग्रह का वीड़ा महात्मा मुंशीराम ने उठाया था। उन्होंने केवल आठ महीने में ४० हजार रुपया एकत्र किया और गुरुकुल की स्थापना में वित्तीय कठिनाई को दूर किया। कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए आवश्यक धन संग्रह करने के लिए पंजाव में महात्मा मुंशीराम जैसा कोई व्यक्ति नहीं था।

कन्या गुरुकुल की स्थापना के समय वित्तीय कठिनाई के साथ साथ दूसरी कठिनाई पाठविधि तैयार करने तथा अध्यापिकाओं को प्राप्त करने की थी। गुरुकुल काँगड़ी में वालकों के लिए पाठविधि वनकर लागू हो चुकी थी, किन्तु वह कई कारणों से कन्या गुरुकुल में पूर्ण रूप से लागू नहीं की जा सकती थी। लड़के-लड़कियों की शिक्षा के उद्देश्यों में एक वड़ा भेद यह था कि लड़कियों की शिक्षा का विशेष उद्देश्य उन्हें सुगृहिणी वनाना, सिलाई, पाक आदि गृह कलाओं में तथा संगीत आदि ललित कलाओं में कुशल वनाना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। महर्षि दयानन्द के अनुसार इनके विवाह की आयु १६ वर्ष थी। यह पुरुषों के विवाह के लिए निर्धारित २५ वर्ष की आयु से नौ वर्ष कम थी। इस अल्प अवधि में कन्याओं को वेद, वेदांग, व्याकरण, संस्कृत एवं गृह कलाओं में एक साथ कैसे पारंगत बनाया जा सकता था, उन्हें कौन से विषय पढ़ाये जायें, वेदादि का ज्ञान किस रूप में तथा किस मात्रा तक दिया जाय, यह एक जटिल प्रश्न था। कन्या गुरुकुल के संस्थापकों को पहली बार इस मौलिक समस्या पर विचार करना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली ने कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की पाठविधि तैयार करने का काम आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा शिक्षाशास्त्री आचार्य रामदेव को १९१९ ई० में सौंपा था। उनके द्वारा तैयार की गयी पाठविधि की रिपोर्ट में हमें कन्या गुरुकुल के संस्थापकों की आरम्भिक विचारधारा का सुन्दर परिचय मिलता है।[1] इसमें कन्या गुरुकुल की स्थापना के उद्देश्यों तथा उसकी पाठविधि में जोड़े जाने वाले विभिन्न विषयों को सम्मिलित करने के कारणों पर विस्तृत ऊहापोह और विचार किया गया है। इस पाठविधि के आरम्भ में इस बात पर बल दिया गया है कि वर्तमान पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने और आदर्श गृहस्थ का सपना पूरा करने के लिए स्त्री-पुरुष में समानता लाना ही मुख्य साधन है। यह समता स्त्रीशिक्षा द्वारा लायी जा सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यूरोप में स्त्रीशिक्षा का बहुत प्रचार हुआ है, किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि उससे वहाँ अशान्ति दूर नहीं हुई है। उस अशान्ति का कारण पश्चिम की पाठविधि का दोषयुक्त होना है। इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न इस पाठविधि में किया गया है और इसके अनुसार पढ़ी हुई स्त्री "सुशिक्षित पुरुष से बहुत कम न रहेगी, स्वतन्त्र विचार कर सकेगी और सभ्य संसार को वह साहित्य दे सकेगी जो स्त्री जाति के सिवाय और कोई नहीं दे सकता है।" कन्या गुरुकुल की यह पाठविधि मुख्य रूप से गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि में कुछ आवश्यक परिवर्तन करते हुए तैयार की गयी थी। इस पाठविधि में निम्नलिखित विषयों के पढ़ाने पर बल दिया गया था—

(१) **संस्कृत साहित्य**—कन्याओं की पाठविधि में इसकी उपयोगिता पर विचार करते हुए कहा गया था—"साहित्य का सम्बन्ध मनोभावनाओं से है। स्त्री जाति के जीवन में मनोभावों का तत्त्व प्रधान होता है। अतः साहित्य तथा स्त्री जाति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुरुषों को जीवन संग्राम में सफलता पाने के लिए जितना आवश्यक विज्ञानों का पढ़ाना है, उतना ही आवश्यक स्त्री जाति का अपने विशेष प्रेम-संचारक मिशन को कृत कार्य बनाने के लिए साहित्य का पढ़ाना है। किसी भी भाषा के साहित्य की वृद्धि में स्त्रियाँ जितनी सफल हो सकती हैं, उतनी सफलता बहुत पुरुष नहीं प्राप्त कर सकते हैं।"

साहित्य की उपयोगिता स्पष्ट करने के बाद यह प्रश्न उठाया गया है कि कन्याओं को संस्कृत साहित्य क्यों पढ़ाया जाना चाहिये। इसका उत्तर देते हुए कहा गया है, कि संस्कृत वाङ्मय में भारतीय जीवन कूट-कूट कर भरा हुआ है। भारतीय आर्यभाषा के लेखकों की भाषा तथा विचारों का प्राण संस्कृत भाषा है। अतः भारतीय कन्याओं को सुशिक्षित बनाने के लिए, उन्हें मौलिक तथा स्वतन्त्र विचारों को सुन्दर भाषा में प्रकट

---

१. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय इन्द्रप्रस्थ की पाठविधि, गुरुकुल काँगड़ी, १९१९।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकने में योग्य बनाने के लिए इस पाठविधि में संस्कृत साहित्य को स्थान दिया गया।

(२) वेद—इसका महत्त्व स्पष्ट करते हुए आचार्य रामदेव ने लिखा था—"आर्यसमाज का जीवन ही वेद के पुनरुज्जीवन के लिए है। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज का जीवन भी इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगा। गुरुकुल काँगड़ी को भी इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर खोला गया...कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना करते समय, उसकी स्कीमें बनाते हुए स्मरण रखना चाहिये कि इस समय हम वृक्ष की जड़ को, मकान की नींव को ठीक करने के लिए कोशिश कर रहे हैं। दृढ़ आर्य वही है जो वेदों को खुली आँख से पढ़ सके, उन्हें समझ सके और तदनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सके। परन्तु ऐसे आर्य पैदा होने से पहले ऐसी देवियों की आवश्यकता है, जो ऐसी सन्तानों को जन्म दे सकें। यदि भावी भारत की मातायें आर्ष ग्रन्थों के पुनरुज्जीवन की नींव रखें तो वह हजारों पाठशालायें खोलने से कहीं बढ़कर होगा। मेरी सम्मति में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की नींव को भावी भारत की सन्तति की नींव समझ कर इस अमूल्य मौके को हाथ से न जाने देना चाहिये। जब कि मातायें वेदमन्त्रों को पढ़ती हुई बच्चों को दूध पिलायेंगी तो आर्यसमाज जो कुछ भी आज तक कर पाया है, उससे कई दर्जे आगे बढ़ जाएगा।" इस योजना में कोशिश की गयी है कि उत्तम तथा सरल भाव वाले एवं सुगम भाषा वाले वेदमन्त्र पढ़ाये जायें ताकि कन्याओं के दिलों पर उनका गहरा असर हो और कभी-कभी वेदमन्त्रों का ठीक अर्थ न जानने के कारण नास्तिकता की जो लहर चल जाती है, उससे वे बची रहें। इस दृष्टि से कन्या गुरुकुल की स्नातिका के पाठ्यक्रम में ऋग्वेद के १०० मन्त्र, यजुर्वेद के ५० मन्त्र, अथर्ववेद के १५० मन्त्र पढ़ाने की व्यवस्था की गयी थी।

(३) उपनिषद् तथा दर्शन—स्त्रियों की प्रकृति भावुक होने के कारण इनके लिए पाठविधि में उपनिषद् और दर्शन की व्यवस्था की गयी थी। आचार्यजी के शब्दों में, "जीवन का रहस्य मनोभावनाओं में छिपा हुआ है। उपनिषदों में यही रहस्य खोला गया है, अतः स्त्रियों के लिए उपनिषदों से अच्छा कोई भी ग्रन्थ नहीं मिल सकता है। मनोभावनाओं को ठीक करने में और उन्हें ठीक दिशा की ओर बढ़ाने में उपनिषदें बहुत सहायता देंगी।

मनोभावनाओं के लिए जो काम उपनिषदें करेंगी, बुद्धि व ज्ञान के लिए वही काम दर्शन करेगा। इस योजना में छहों दर्शन नहीं रखे गये। इनका दिग्दर्शन कराने के लिए प्रशस्तपादभाष्य ही पर्याप्त समझा गया है। इसका कारण यह बताया गया है, कि "स्त्रियों के लिए बहुत दार्शनिक प्रपंचों में पड़ना उन्हें जीवन में बहुत सहायक नहीं हो सकता है, किन्तु जितनी जरूरत है, वह इतने से ही पूरी हो सकती है।"

(४) निरुक्त तथा व्याकरण—वेदार्थ में इन दोनों की बड़ी आवश्यकता है, निरुक्त की सहायता तो हर शब्द पर लेनी पड़ती है। बिना निरुक्त के वेदार्थ ही नहीं हो सकता। व्याकरण भी संस्कृत ज्ञान आवश्यक होने के कारण रखा गया है। वेद के लिए जितना निरुक्त आवश्यक है, संस्कृत साहित्य के लिए उतना ही आवश्यक व्याकरण है। बहुत अधिक व्याकरण भी स्त्रियों के लिए आवश्यक न समझकर, उसे साधारण ही रखा गया है। इसीलिए जहाँ ब्रह्मचारियों की पाठविधि में अष्टाध्यायी सम्पूर्ण शंका-समाधान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित तथा महाभाष्य नवाह्निक रखा गया था, वहाँ कन्याओं की पाठविधि में इसे छोड़ दिया गया था।

(५) गणित—घर का काम स्त्रियों के अधीन होता है, अतः व्यावहारिक गणित उनके लिए विशेष आवश्यक है। इसीलिए इस योजना में गणित के लम्बे-चौड़े हिसाबों की उपेक्षा करते हुए व्यावहारिक गणित को स्थान देना अधिक अच्छा समझा गया था।

(६) विज्ञान—जब यह पाठविधि बनायी जा रही थी, उस समय विज्ञान की शिक्षा को लड़कियों के लिए सर्वथा निरर्थक समझा जाता था। इस विचारधारा का खण्डन करते हुए आचार्य रामदेव ने लिखा—"लोग कन्याओं को पढ़ाने के लिए गणित एवं साइन्स आदि नामों से घबड़ा जाते हैं। वे कहते हैं स्त्रियों को विज्ञान पढ़ाकर क्या करोगे?… किन्तु अन्धविश्वासों से स्त्रियों को बचाने के लिए विज्ञान की शिक्षा अनिवार्य है। प्राकृतिक घटनाओं को न जानने के कारण स्त्रियाँ बच्चों में भूतों और पिशाचों की कहानियाँ सुनाकर ऐसा भय उत्पन्न कर देती हैं जिसका असर सन्तान के बड़े होकर प्रकाण्ड पण्डित हो जाने पर भी नहीं हटता है। बालक को झूठी कहानियाँ न सुनाकर, उसके प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे सकने की योग्यता प्रत्येक माता में होनी चाहिये, जो बिना विज्ञान के साधारण ज्ञान के सर्वथा असम्भव है। विज्ञान के साधारण सिद्धान्तों से परिचित मातायें न केवल अपनी उन्नति करेंगी, अपितु सन्तान के ऊपर वह नींव रख सकेंगी, जिस पर भारत की भावी आशाओं के बड़े महल खड़े किये जा सकेंगे, जोकि काल्पनिक न होते हुए यथार्थ होंगे। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए इस योजना में विज्ञान को विशेष स्थान दिया गया है।"

कन्याओं के लिए विज्ञान की व्यवस्था करते हुए उनके लिए उपयोगी विषयों की ओर अधिक ध्यान दिया गया था। बालकों के पाठ्यक्रम में जहाँ भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र और यान्त्रिकी की व्यवस्था थी, वहाँ कन्याओं की पाठविधि में धात्री विद्या तथा शिशुपालन के विज्ञान पढ़ाने पर बल दिया गया था।

(७) इतिहास—बचपन में इतिहास की सच्ची शिक्षा देने का बालिकाओं के मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। उनके चरित्र निर्माण के लिए यह अतीव आवश्यक है, अतः इतिहास की ओर, विशेषतः भारतीय इतिहास के अध्यापन की आवश्यकता पर बल देते हुए इस पाठविधि में कहा गया था—"सीता के पतिव्रत धर्म को सुनकर किस स्त्री के मन में धर्म के लिए मरने की लहर नहीं उठ खड़ी होगी? पूर्वजों के इतिहास को पढ़कर किसमें जाति, धर्म, देश सेवा की अग्नि न प्रज्वलित हो जायेगी। जो जिस देश में उत्पन्न हुआ है उसे उस देश का इतिहास भी न आता हो, इससे बढ़कर शोचनीय दशा क्या हो सकती है?" अतः इस पाठविधि में प्राचीन रोम और यूनान के इतिहास की अपेक्षा भारतीय इतिहास को पढ़ाने पर बल दिया गया ताकि कन्यायें अपने अतीत के राष्ट्रीय आदर्शों से प्रेरणा ले सकें।

इसके अतिरिक्त इस पाठविधि में आर्यभाषा और स्त्रियों के गृहकार्य के लिए आवश्यक सीना, पिरोना, गाना, पाककला आदि विषयों के अध्यापन पर भी बल दिया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त विषयों को सम्मिलित करते हुए कन्या गुरुकुल की जो आरम्भिक पाठविधि तैयार की गयी थी, उसमें तथा गुरुकुल काँगड़ी की दसवीं तक की पाठविधि में कई महत्त्वपूर्ण अन्तर थे। पहला अन्तर व्याकरण के पाठ्यक्रम में था। गुरुकुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अष्टाध्यायी सम्पूर्ण शंका-समाधान सहित नवम श्रेणी में समाप्त हो जाती थी; किन्तु कन्याओं के लिए शंका-समाधान आवश्यक नहीं समझा गया, केवल व्याकरण के नियमों का परिचय पर्याप्त माना गया था। भौतिक शास्त्र का ज्ञान लड़कों के लिए आवश्यक था, किन्तु लड़कियों के लिए इसके स्थान पर शिशुपालन आदि स्त्रियोपयोगी विज्ञान रखे गये थे। अंग्रेजी का ज्ञान भी कन्याओं के लिए उपयुक्त नहीं समझा गया, इसके स्थान पर प्रादेशिक भाषाओं में से कोई एक भाषा उनके लिए आवश्यक रखी गयी थी।

उपर्युक्त पाठविधि को चलाने के लिए उपयुक्त अध्यापिकाओं को प्राप्त करना उस समय की एक बड़ी जटिल समस्या थी। वेद-वेदांग एवं व्याकरण तथा संस्कृत की अथवा संगीत आदि की शिक्षा देने वाली अध्यापिकायें उस समय दुर्लभ थीं। अध्यापिकाओं के अभाव में यह योजना किस प्रकार क्रियान्वित की जाय, इस जटिल प्रश्न का समाधान करने के लिए तीन विकल्प सम्भव थे—(१) पहले अध्यापिकायें तैयार की जायें और तब तक के लिए कन्या गुरुकुल की स्थापना के विचार को स्थगित कर दिया जाये। (२) कन्या गुरुकुल चलाया जाय, किन्तु व्याकरण आदि के विषय पढ़ाने के लिए कुछ विश्वसनीय वृद्ध पुरुष रखे जायें जो अध्यापिकाओं को तैयार करें। (३) जब तक अध्यापिकायें न तैयार हो जायें, तब तक पुरुष ही अध्यापन का कार्य करें और अध्यापन के अतिरिक्त अन्य समय में वे आश्रम में न जायें। इन तीन विकल्पों में से पहला विकल्प मानने के लिए कन्या गुरुकुल के तत्कालीन संस्थापक तैयार नहीं थे। वे कन्या महाविद्यालय की स्थापना को स्थगित करने के लिए किसी भी दशा में तैयार नहीं थे, अतः उस समय यही उचित समझा गया कि विश्वसनीय वृद्ध व्यक्तियों को ही कन्या गुरुकुल में व्याकरण, दर्शन, संस्कृत आदि विषय पढ़ाने के लिए कुछ समय तक रखा जाय और कन्या गुरुकुल की स्नातिकायें तैयार होने पर उनके द्वारा शिक्षण-कार्य कराया जाय।

अध्यापिकाओं के सम्बन्ध में कन्या गुरुकुल के संस्थापकों को एक अन्य परेशान करने वाली समस्या यह थी कि आर्यसमाज के क्षेत्र में आलेख्य, चित्रकारी, गाना आदि विषय सिखाने वाली स्त्रियाँ बहुत कम थीं। बंगाल तथा महाराष्ट्र में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार पहले होने के कारण वहाँ से ही ऐसी शिक्षिकायें मँगाई जा सकती थीं, किन्तु उसमें एक बड़ा खतरा यह था कि वे पौराणिक अथवा ब्राह्मसमाजी विचारों की होती थीं। इन्हें गुरुकुल में रखने से इस बात की आशंका थी कि गुरुकुल का वातावरण आर्यसमाजी नहीं रहेगा, ब्राह्मसमाजी और पौराणिक हो जायेगा। इसके साथ ही, बंगाल और महाराष्ट्र से आने वाली अध्यापिकाओं को वेतन भी स्थानीय अध्यापिकाओं की तुलना में अधिक देना पड़ता था। फिर भी इन कठिनाइयों के होते हुए भी कन्या गुरुकुल के संस्थापकों का विचार था कि वे आरम्भिक कठिनाइयों पर शीघ्र ही विजय पा लेंगे और इस विश्वास के साथ उन्होंने कन्या गुरुकुल की स्थापना की।

कन्या गुरुकुल को यद्यपि महात्मा मुंशीराम जैसा धन संग्रह करने वाला नहीं मिला, किन्तु आर्यसमाज के एक भामाशाह ने उसकी आर्थिक समस्या का समाधान कर दिया। महात्माजी को ४० हजार रुपये एकत्र करने के लिए आठ महीने भ्रमण करना पड़ा था, किन्तु कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए एक ही व्यक्ति दूनी से भी अधिक राशि देने को उद्यत हो गया था। वह थे दिल्ली के सेठ रग्घूमलजी।

सेठ रग्घूमलजी अपने समय के प्रसिद्ध दानी थे। आर्यसमाज में उनकी श्रद्धा कैसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुई, इसका बड़ा मनोरंजक इतिहास है, जो सेठजी ने पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति को स्वयं सुनाया था। सेठजी ने जो कुछ सुनाया उसका अभिप्राय पण्डित इन्द्रजी के शब्दों में इस प्रकार है, सेठजी ने उन्हें कहा—

"यह तो आपने देखा ही है कि दिल्ली में मेरी दुकान चावड़ी बाजार में है, उससे आर्यसमाज मन्दिर बहुत समीप है। मैं कभी-कभी आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में अपने मित्रों के साथ चला जाया करता था। एक दिन सुना कि गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक महात्मा मुंशीरामजी का उपदेश होगा। मैं साप्ताहिक सत्संग में चला गया। महात्माजी ने सदाचार की व्याख्या करते हुए इस बात पर बहुत खेद प्रकट किया कि जिस बाजार में आर्यसमाज का मन्दिर है, उसी में वेश्याओं का अड्डा है। शहर भर की प्रसिद्ध वेश्याएँ चावड़ी बाजार में ही रहती हैं, जिस कारण यह बाजार दुराचार का गढ़ बना हुआ है। जिन चौबारों में वेश्याएँ रहती हैं, वे सब व्यापारियों की जायदाद के हिस्से हैं। यह निश्चय है कि पाप की कमाई कभी सफल नहीं हो सकती है। जो व्यापारी वेश्याओं को मकान किराये पर देकर धन कमाते हैं, उनका अपना जीवन तो बिगड़ता ही है, उनकी सन्तानें भी अच्छे चरित्र वाली नहीं रह सकतीं और चरित्रहीन के पास सम्पत्ति कैसे बच सकती है। मैं देखता हूँ कि यहाँ कई ऐसे व्यापारी बैठे हैं, जिनकी जायदाद में वेश्याएँ बसी हुई हैं। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वे अपनी जायदाद में से वेश्याओं को निकाल दें तो उनकी आय बढ़ेगी, घटेगी नहीं। मेरे कहने से वे यह परीक्षा करके देख लें।"

सेठजी ने कहा, कि "मेरे मन पर महात्माजी के कथन का गहरा असर हुआ। मैं समाज से सीधा उठ कर दुकान पर गया और न केवल अपनी जायदाद में रहने वाली वेश्याओं को एक महीने का नोटिस दे दिया, अपितु दुकान की बही में भी लिख दिया कि इस पीढ़ी की कोई जायदाद भविष्य में भी कभी किसी वेश्या को किराये पर नहीं दी जाय। मेरे इस कार्य का मुझ पर, मेरी दुकान पर और सम्पूर्ण व्यापार पर अद्भुत असर पड़ा।"

इसके पश्चात् सेठजी ने भरे हुए गले से कहा, "मुझे मालूम नहीं उसके पश्चात् मुझ पर धन की कहाँ से वृष्टि हो गयी। हजारों को लाखों और लाखों को करोड़ों में बदलने में देर न लगी। इसके साथ ही मेरी स्वयं ही दान में प्रवृत्ति बढ़ गयी। जितना पैसा देता हूँ, उससे अधिक आता है। सब स्वामी दयानन्दजी और महात्माजी की कृपा का फल है। आज मुझे सूझता नहीं है कि मैं अपना रुपया कहाँ रखूं।"

गुरुकुल काँगड़ी के २१वें वार्षिकोत्सव पर श्री सेठजी की ओर से कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए एक लाख रुपये के दान की घोषणा की गयी। इससे कन्या गुरुकुल की स्थापना सम्भव हुई।

कन्या गुरुकुल के निर्माता—कन्या गुरुकुल देहरादून की स्थापना और आरम्भिक विकास में आचार्य रामदेव तथा आचार्या विद्यावती का बड़ा योगदान है। इनके व्यक्तित्व और कार्यों का विश्लेषण कन्या गुरुकुल देहरादून के विकास की उन मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालता है, जिनके कारण इसे स्थापित किया गया था।

आचार्य रामदेव सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता महाशय कृष्ण के शब्दों में पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियों से अधिक प्रेम करते थे। शायद इसीलिए भगवान् ने उन्हें पुत्रियाँ अधिक संख्या में दी थीं। यद्यपि उन्होंने अपना आरम्भिक जीवन बालकों की शिक्षा के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित गुरुकुल काँगड़ी में लगाया, किन्तु यहाँ रहते हुए भी उनका मन सदैव कन्या गुरुकुल की योजनाओं को बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में लगा रहता था।

उनके जीवन के अन्तिम वर्ष कन्या गुरुकुल में ही व्यतीत हुए और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि वह अपने जीवन के संध्याकाल में सन् १९३३ के बाद पूर्णरूप से कन्या गुरुकुल का कार्य करते रहे। इसमें उन्होंने अपने स्वास्थ्य की तनिक भी पर्वाह नहीं की। वह आर्यसमाज और कन्या गुरुकुल के लिए शहीद हुए। वस्तुतः, शहीद दो प्रकार के होते हैं —पहले तो वे जो किसी उच्च आदर्श के लिए हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं। इस प्रकार के शहीद हमारी श्रद्धा और सम्मान का पात्र बनते हैं। किन्तु इनसे भी महत्त्वपूर्ण शहीद दूसरे ढंग के व्यक्ति होते हैं, जो अपना समूचा जीवन, कार्यशक्ति, तन, मन, धन तिलतिल कर अपने आदर्शों की बलिवेदी पर चढ़ाते हैं। क्षणिक आवेश में पहले प्रकार का शहीद बनना आसान है, किन्तु कोई व्यक्ति दूसरी कोटि का शहीद उस समय तक नहीं बन सकता जब तक कि अपने आदर्शों की अन्धी और पागल बना देने वाली धुन उस पर सवार न हो, उस पर उनका गहरा नशा न चढ़ा हुआ हो। इस धुन में वह अपने जीवन का एक-एक क्षण और अपनी शक्ति का एक-एक अणु उन आदर्शों की सेवा में उत्सर्जित कर देता है। आचार्य रामदेवजी का उत्सर्ग भी इसी भाँति का था। दूसरे लोग मर कर शहीद होते हैं, वह अपने जीवन काल में ही अपनी सब शक्तियों का आर्यसमाज, गुरुकुल काँगड़ी तथा कन्या गुरुकुल, देहरादून के लिए होम करके शहीद बन चुके थे। यदि यह कहा जाय कि उन्होंने कन्या गुरुकुल, देहरादून को अपने रक्त से सींचा था तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

श्री रामदेवजी का शिक्षण अधिकतर लाहौर में हुआ, पहले सेण्ट्रल स्कूल में और फिर डी० ए० वी० स्कूल में। यहीं से उन्होंने मैट्रिक पास किया। बी० ए० की परीक्षा उन्होंने प्राइवेट रूप से उत्तीर्ण की। १९०५ में उन्हें तत्कालीन जींद रियासत में स्कूल इंस्पेक्टर का स्थान मिल गया। वह जब वहाँ जाने के लिए अपना सामान बाँध कर तैयार थे, उसी समय उन्हें लाला मुंशीराम का तार मिला। इसे पाते ही वह उनसे मिलने गये और सरकारी स्कूल इंस्पेक्टरी को लात मारकर उनके अनुरोध से उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी को अपना जीवन दान किया और उसकी सेवा के लिए हरिद्वार के पास हिमालय की उपत्यका के जंगल में चले गये।

यहाँ उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी को पण्डित मण्डली के प्रभाव से मुक्त करके किस प्रकार एक आधुनिक शिक्षणालय और विश्वविद्यालय बनाया, इसका इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से उल्लेख हुआ है। यद्यपि उनका अगला जीवन १९३३ तक गुरुकुल काँगड़ी में बीता, किन्तु इस सारे समय में वह बालकों के गुरुकुल की भाँति, बालिकाओं के गुरुकुल को बनाने की योजना तैयार करने और क्रियान्वित करने में लगे रहे। इसका मूल कारण स्त्रीशिक्षा के बारे में उनके क्रान्तिकारी विचार थे। इन विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी के साथ साथ कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए भगीरथ प्रयास किया। इस विषय में उनको प्रमुख प्रेरणा देने वाले विचारों का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है।

जिस प्रकार हनुमान और तुलसीदासजी को सर्वत्र राम के दर्शन होते थे, युवक रामदेव को सब जगह ऋषि दयानन्द और वेदों का दर्शन होता था। उनके जीवन का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् लक्ष्य वैदिक आदर्शों की आधारशिला पर आर्यजाति के अभ्युदय के भव्य भवन का निर्माण था। किन्तु यह कार्य तब तक नहीं हो सकता था जब तक आर्य जाति का महत्त्वपूर्ण आधा भाग नारी जाति पीड़ित, पददलित, अवनत एवं अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों में ग्रस्त थी तथा अपने जन्मसिद्ध मानवीय अधिकारों से वंचित कर दी गयी थी। उसे शिक्षा पाने का भी अधिकार नहीं था, घर में गृहिणी होते हुए भी उसकी स्थिति नौकरानी से बढ़कर न थी। आचार्य रामदेव का भावुक हृदय नारी जाति की इस दुर्दशा को देखकर तिलमिला उठा और उन्हें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि नारी जाति की उन्नति शिक्षा से ही सम्भव है। वह यह मानते थे कि निश्चेष्ट, मृतप्राय, सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के बोझ से दबी हुई नारी में शिक्षा नवजीवन का संचार कर सकती है। यही उसको आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन का पाठ पढ़ा सकती है। स्त्रीशिक्षा वास्तविक अर्थ में स्त्रियों के लिए संजीवनी का कार्य कर सकती है।

स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में आचार्य रामदेव का यह दृष्टिकोण था कि वर्तमान नारी को वैदिक युग की नारियों का अनुसरण करना चाहिये और समाज में वैसी ही उच्च स्थिति प्राप्त करनी चाहिए। उनके मतानुसार प्राचीन युग की भाँति उसे आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक सभी प्रकार की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की जानी चाहिये। इस विषय में उनका आदर्श विदुषी गृहिणी का था। वह उसे बौद्धिक और मानसिक दृष्टि से इतना योग्य बना देना चाहते थे कि वह गार्गी और भारती के समान शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य और शंकराचार्य जैसे दिग्गज पण्डितों को परास्त कर सके, लोपामुद्रा और घोषा की भाँति वैदिक मन्त्रों का अर्थदर्शन करने वाली ऋषिका बने, घर में सम्राज्ञी का पद प्राप्त करे; गौतम, कणाद, पतंजलि, दयानन्द और शिवाजी जैसे महापुरुषों की जननी बने। उसका कार्यक्षेत्र केवल घर की चहारदीवारी न हो, अपितु वह समाज और देश के विशाल कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करे, गृह जीवन और सामाजिक जीवन में पुरुषों के समकक्ष बने। उच्च शिक्षा द्वारा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और भावनाओं को विकसित कर गृहस्थ जीवन को सरस तथा मधुर बनाये।

स्त्रीशिक्षा के इस आदर्श को मूर्तरूप देने के लिए आचार्य रामदेव शुरू से ही अतीव उत्सुक थे। वह गुरुकुल काँगड़ी के संचालकों और प्रबन्धकों को बार-बार ऐसी शिक्षा-संस्था स्थापित करने के लिए बल देते रहते थे। किन्तु उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी का परीक्षण अभी चल रहा था, अतः अधिकारी उसके साथ एक नये परीक्षण का दायित्व लेने में संकोच कर रहे थे। अतः शुरू में रामदेवजी ने इस परीक्षण को स्वयमेव अपने घर पर करने का निश्चय किया। भगवान् की कृपा से आचार्यजी की कई कन्यायें थीं, अतः उन्होंने अपने स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी विचारों को मूर्तरूप देने के लिए घर में ही एक कन्या पाठशाला शुरू कर दी। उनका घर एक परीक्षणशाला बन गया और यह परीक्षण कई वर्षों तक कुमारी विद्यावतीजी सेठ की अध्यक्षता में चलता रहा। वही बाद में कन्या गुरुकुल देहरादून की पहली आचार्या बनीं।

आचार्या विद्यावती—जब आचार्य रामदेव कन्या गुरुकुल की स्थापना के बारे में योजना बना रहे थे, उस समय सौभाग्यवश उन्हें एक ऐसी विदुषी महिला का सहयोग प्राप्त हुआ जिसने अपनी निष्ठा, त्याग, तपस्या, लगन, धुन, अध्यवसाय और कन्याओं की शिक्षा के प्रति आजीवन कार्य करने के दृढ़ संकल्प से कन्या गुरुकुल की योजना को मूर्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप प्रदान किया। इनका नाम कुमारी विद्यावती था। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के सीतापुर जिले के बिसवाँ नामक स्थान में एक सम्भ्रान्त एवं सम्पन्न जमींदार परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री व्रजविहारी सेठ कट्टर आर्यसमाजी थे, स्त्रीशिक्षा के प्रवल समर्थक तथा तत्कालीन दूषित सामाजिक कुप्रथाओं के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि उस समय के समाज में कन्याओं को शिक्षा देना निन्दनीय माना जाता था, फिर भी उन्होंने सामाजिक विरोध की कोई परवाह न करते हुए अपनी कन्याओं को शिक्षा देने का निर्णय किया। बिसवाँ लखनऊ के पास है और उन दिनों उत्तरी भारत में लड़कियों की शिक्षा के लिए ईसाई महिलाओं द्वारा संचालित एकमात्र संस्था लखनऊ में इसाबेला थोबर्न (आई० टी०) कॉलिज था। पंजाब और उत्तरप्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त) की लड़कियाँ मैट्रिक पास करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए यहीं पढ़ने आया करती थीं। कु० विद्यावती के पिताजी ने उन्हें तथा उनकी छोटी बहनों को यहाँ प्रविष्ट कराया। सन् १९०९ में जब वे यहाँ एफ० ए० में पढ़ रही थीं, उस समय उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

पिताजी की मृत्यु होने के बाद भी कुमारी विद्यावती सेठ ने अपना अध्ययन जारी रखा। एफ० ए० के बाद बी० ए० में उच्च शिक्षा लेने वाली वह उत्तरप्रदेश की पहली हिन्दू कन्या थीं। इसी समय उन्होंने विधवा विवाह के विरोध में एक लेख लिखा और उनके एक परिचित बन्धु ने उस समय के प्रसिद्ध समाज सुधारक पत्र 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' में इसे छपवा दिया। इसे पढ़ने के बाद आचार्य रामदेव ने इसकी लेखिका के बारे में जानकारी प्राप्त की। अपने सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली और देश-विदेश में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाली मासिक पत्रिका 'वैदिक मेगज़ीन' के कुछ अंक तथा अपने लिखे भारतवर्ष के इतिहास का प्रथम भाग विद्यावतीजी को भेजा और इण्डियन सोशल रिफार्मर में विधवा विवाह के बारे में लिखे उनके लेख पर अपने कुछ विचार प्रकट किये। साथ ही, वैदिक मैगज़ीन में कुछ लिखने की प्रेरणा की। इस प्रकार दोनों में पत्र-व्यवहार द्वारा विचारों का आदान-प्रदान होने लगा।

१९११ में आचार्य रामदेव की कुमारी विद्यावती से पहली भेंट हुई। इलाहाबाद में आयोजित एक प्रदर्शनी के साथ दिसम्बर, १९१० में एक अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन रखा गया था। इसमें भाग लेने के बाद वहाँ से लौटते हुए सन् १९११ की जनवरी के प्रथम सप्ताह में आचार्य रामदेव लखनऊ आये और वहाँ कुछ समय ठहर कर वह पहली बार कुमारी विद्यावती सेठ से मिले। नवम्बर, १९१२ में डाक्टर रामजी नारायण, सहायक कैमिस्ट, लायलपुर कृषि कॉलिज के साथ उनकी छोटी बहन ओमवतीजी का विवाह सम्पन्न हुआ। उसमें आचार्य रामदेव ने भाई के कर्तव्य का पालन किया और उसी समय से दोनों परिवारों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। आचार्यजी ने विद्यावतीजी को गुरुकुल काँगड़ी आने का निमन्त्रण दिया।

१९१३ में बी० ए० की परीक्षा देने के बाद कुमारी विद्यावती अपनी छोटी बहन ओमवती और डा० रामजी नारायण के साथ काँगड़ी गयीं। उस वर्ष अंग्रेजी के कारण बी० ए० में असफल हो जाने पर विद्यावतीजी बड़ी खिन्न थीं। उनका कहना था, कि "अंग्रेजी पढ़ना व्यर्थ है। अब मैं नहीं पढ़ूँगी।" श्री आचार्यजी ने उनसे कहा, "नहीं, तुम्हें अवश्य पढ़ना चाहिये।" इस पर जब उनसे प्रश्न किया गया, कि "आप तो अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी हैं, फिर आप क्यों अंग्रेजी पढ़ने के लिए बाधित करते हैं?" आचार्यजी ने उत्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया, "जिन्हें कार्यक्षेत्र में उतरना है, उन्हें विशेष रूप से इसे पढ़ना चाहिये। जब तुम इतना पढ़ चुकी हो तो एक बार पुनः प्रयत्न करना होगा।" आचार्यजी अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान् और अतीव उच्चकोटि के अध्यापक थे। उनके अध्यापन से अगले वर्ष १९१४ में कुमारी विद्यावती उत्तरप्रदेश में बी० ए० पास करने वाली पहली हिन्दू महिला थीं और उन्होंने अब यह दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर अपना सारा जीवन स्त्रीशिक्षा, नारी जाति के सुधार एवं उत्थान के कार्य में समर्पित करेंगी। उनमें यह समर्पण की भावना आचार्य रामदेव ने उद्बुद्ध की थी और उनकी प्रेरणा से वह उनके घर पर खोली गयी कन्या पाठशाला में लड़कियों को पढ़ाने लगीं और स्वयमेव संस्कृत तथा अन्य वैदिक विषयों, दर्शनों तथा आर्यसमाज के ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगीं। अगले कुछ वर्षों तक यह पाठशाला बड़ी सफलतापूर्वक चलती रही और इसने कन्या गुरुकुल स्थापित होने के बाद उसके लिए उपयुक्त शिक्षिकायें तैयार करने का सुन्दर कार्य किया। इस समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनके कारण कन्या गुरुकुल की स्थापना शीघ्र ही सम्भव हो सकी।

१९२० तक बालकों की शिक्षा के लिए खोले गये गुरुकुल काँगड़ी का परीक्षण पूरी तरह सफल हो चुका था। गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव उन दिनों आर्यसमाज के कुम्भ मेलों का स्वरूप धारण कर चुके थे। इन अवसरों पर अपील करने पर जनता से पुष्कल मात्रा में धनराशि प्राप्त हो रही थी। गुरुकुल काँगड़ी ने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया था। इसकी सफलता से प्रभावित होकर आर्य जनता में यह इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि बालकों के समान बालिकाओं का भी एक गुरुकुल स्थापित किया जाय।

आर्यसमाजी नेताओं का यह विश्वास था कि कन्याओं की शिक्षा के माध्यम से वैदिक संस्कृति का अधिक स्थायी रूप से प्रचार किया जा सकता है, क्योंकि कन्यायें भावी सन्तति का निर्माण करने वाली हैं। यदि वे वैदिक विचारों से ओतप्रोत होंगी और वेद-मन्त्रों की लोरियाँ बच्चों को सुनायेंगी, वैदिक सिद्धान्तों की घुट्टी उन्हें बचपन से पिलायेंगी तो अगली पीढ़ी आर्यसमाज में दृढ़ विश्वास रखने वाले तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों का विचार करने वाले व्यक्तियों की होगी। आचार्य रामदेव का यह विश्वास था कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था अतीव आवश्यक है, क्योंकि यदि पति-पत्नी दोनों सुशिक्षित होंगे तो उनमें विचारों का आदान-प्रदान, एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की क्षमता, उदारता, सौमनस्य और अनुकूलता अधिक मात्रा में होगी और यह उनके जीवन को बड़ा सुखमय बनायेगी। उस समय महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक सिद्धान्तों के आधार पर चलाया जाने वाला कोई कन्या गुरुकुल नहीं था। स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए आर्यसमाज में सबसे बड़ी संस्था कन्या महाविद्यालय, जालन्धर थी। इसने बड़ा सराहनीय कार्य किया था। किन्तु महात्मा मुंशीराम का यह विश्वास था कि यह संस्था महर्षि दयानन्द के शैक्षणिक आदर्शों का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर रही है। उन्होंने इसकी कमियों का निर्देश करते हुए ११ दिसम्बर, १९०३ के 'सद्धर्म-प्रचारक' में लिखा था—"विद्यालय के कार्यकर्ता सबसे पूर्व शहर से दो-तीन मील की दूरी पर मकान बनवा कर कन्या महाविद्यालय को आश्रम के रूप में परिवर्तित कर दें और कुंवारी लड़कियों को विवाहिता स्त्रियों तथा विधवाओं से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा पृथक् करने का प्रवन्ध करके पुरुषों के स्थान में जहाँ तक हो सके स्त्रियों को अध्यापिका नियत करने का प्रवन्ध करें तो कन्या महाविद्यालय को पुत्री गुरुकुल वनाने का पहला कदम समझा जा सकता है।"

इन सव कारणों से प्रेरित होकर सेठ रघूमलजी का दान मिलने पर आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने गुरुकुल काँगड़ी के २१वें वार्षिकोत्सव पर कन्या गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। उसके अनुसार ८ नवम्वर, १९२३ को दीपमालिका के पावन पर्व पर दिल्ली में कन्या गुरुकुल की स्थापना हुई, उस समय इसका नाम कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ था।

गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना गंगा नदी के तट पर की गई थी। कन्या गुरुकुल दिल्ली में यमुना के तट पर स्थापित हुआ। उस समय यह गुरुकुल दिल्ली में दरियागंज की कोठी नं० ४ में कालिन्दी के तट के निकट था। आजकल यह इलाका घनी आवादी वाला क्षेत्र है, किन्तु उन दिनों यह शहर के किनारे पर घनी आवादी से दूर था। उस समय दिल्ली में वर्तमान समय की भाँति मलेरिया उन्मूलन विभाग सक्रिय नहीं था। अतः उन दिनों कन्या गुरुकुल का स्थान मलेरिया के प्रकोप से बुरी तरह पीड़ित था और इस स्थान पर शीघ्र ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि न केवल छात्रायें, अपितु आचार्याजी और अध्यापिकाएँ भी वीमार पड़ गयीं और यह स्थान कन्या गुरुकुल के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त समझा जाने लगा। अतः इसकी स्वामिनी सभा ने इसे स्थानान्तरित करने का निश्चय किया और इसका स्थान निश्चित करने के लिए एक उपसमिति का निर्माण किया।

उपसमिति ने कन्या गुरुकुल के नवीन स्थान की खोज में काफी समय लगाया। समिति के समक्ष विचारणीय स्थान हरिद्वार के निकट वहादरावाद, कुरुक्षेत्र और देहरादून थे। आचार्य रामदेव इसे गुरुकुल काँगड़ी के समीप वहादरावाद में रखने के पक्ष में थे। गुरुकुल काँगड़ी उस समय गंगा पार की पुरानी भूमि से गंगा की नहर पर अपने वर्तमान स्थान में आ चुका था। वहादरावाद उसके निकट था। कन्या गुरुकुल यहाँ लाने के पक्ष में यह युक्ति दी जाती थी कि यहाँ कन्या गुरुकुल के लिए अध्यापिकाओं की समस्या नहीं होगी, क्योंकि गुरुकुल काँगड़ी के उपाध्यायों की उच्च शिक्षा सम्पन्न पत्नियाँ लड़कियों के शिक्षण के लिए उपलब्ध हो सकेंगी, केवल उनके आने-जाने के लिए ताँगे की व्यवस्था करनी होगी। किन्तु इसके विपक्ष में यह प्रवल तर्क था कि यह बिल्कुल देहाती क्षेत्र है, अतः कन्याओं की सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त स्थान नहीं है। इस दृष्टि से देहरादून को उपयुक्त समझा गया। उन दिनों देहरादून एकान्त, शान्त, सुरम्य और सुरक्षित स्थान था।

दिल्ली का स्थान उपयुक्त न होने पर तीन वर्ष बाद १-५-१९२७ को कन्या गुरुकुल को कालिन्दी के कूल से देहरादून में ऋषिपर्णा (रिस्पना) नदी के पास उस स्थान पर स्थापित किया गया जो ऐतिहासिक दृष्टि से असाधारण महत्त्व रखता था। १८१४ में नेपाल के वीर सेनानी वलभद्र थापा के नेतृत्व में गोरखों ने देहरादून को अंग्रेजों के प्रभुत्व से बचाये रखने के लिए जो उग्र संघर्ष किया था, अद्भुत शौर्य और अनुपम पराक्रम प्रदर्शित किया था, उसकी स्मृति को सुरक्षित रखने वाले, अंग्रेजों द्वारा बनाये स्मारक के निकट कन्या गुरुकुल की स्थापना हुई थी। इस स्मारक में अंकित लेख में अंग्रेजों ने अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन वीर योद्धाओं की शूरवीरता तथा साहस की मुक्त कण्ठ से सराहना की थी, जो लम्बे समय तक पत्थरों से तथा मामूली हथियारों से अंग्रेजों का सामना करते रहे और कलुंगा के गिरिशिखर पर वने दुर्ग पर हमला करने वाली ब्रिटिश सेनाओं को भारी हानि पहुँचाते हुए वार-वार पीछे ढकेलते रहे।

देहरादून में पहले राजपुर रोड पर देहरादून के प्रसिद्ध रईस लाला वलवीरसिंह की दो कोठियाँ एक ही कम्पाउण्ड में किराये पर ली गयीं और उसके स्थायी निवास के लिए स्थान की खोज शुरू हुई। अन्त में गुरुकुल के वर्तमान स्थान के निकट ही दक्षिण की ओर ४० वीघे जमीन वाली एक कोठी को अधिक उपयोगी समझा गया। भूमि सहित कोठी का दाम २६ हजार रुपया तय हुआ। १२ फरवरी, सन् १९३० को यह स्थान खरीद लिया गया और रजिस्ट्री की कार्यवाही सम्पन्न होने पर यहाँ कन्या गुरुकुल के लिए आवश्यक भवन निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया।

उस समय आर्य जनता को कन्या गुरुकुल की कितनी आवश्यकता थी, यह उसमें छात्राओं के आरम्भिक प्रवेश से भली-भाँति सूचित होता है। प्रारम्भ में ही ८७ वालिकाओं का प्रवेश होना किसी संस्था की उपयोगिता का प्रवल प्रमाण है तथा उसके लिए गर्व का विषय है। पहले ७ वर्षों में स्थानाभाव के कारण दो वर्ष तक प्रवेश वन्द होते हुए भी २४६ कन्यायें गुरुकुल में प्रविष्ट हुईं।

कन्या गुरुकुल की छात्राओं में न केवल पंजाव प्रान्त की छात्रायें थीं, अपितु भारत के अन्य प्रान्तों और वर्मा, फिजी और अफ्रीका जैसे सुदूरवर्ती विदेशों में वसे भारतीयों की वालिकायें भी थीं। १९३० में कन्या गुरुकुल की १३५ छात्रायें निम्नलिखित प्रान्तों और भारत से वाहर के देशों की थीं—पंजाव ४३, संयुक्त प्रान्त ३९, गुजरात १८, दिल्ली ९, मध्य प्रान्त ८, वर्मा ८, फिजी ६, आवदान ४।

आरम्भ में इस संस्था में विद्यालय का आठ वर्ष का तथा महाविद्यालय का तीन वर्ष का पाठ्यक्रम था। इसकी पाठविधि का निर्माण और परीक्षाओं का संचालन गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार (प्रस्तोता) द्वारा किया जाता था और महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण करने पर 'विद्यालंकृता' की उपाधि दी जाती थी। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को यूनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर यहाँ सारा पाठ्यक्रम गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के अनुसार १४ वर्षों का कर दिया गया।

प्रगति तथा विकास—देहरादून में आकर इस संस्था का तीव्र गति से विकास हुआ। पुराने विद्यालंकृता के पाठ्यक्रम के अनुसार १९३१ से प्रतिवर्ष शिक्षा समाप्त कर के स्नातिकायें गुरुकुल से निकलने लगीं। पहले चार वर्षों की स्नातिकाओं में सुश्री सुलभा जी, सुशीला देवीजी, शान्तिजी, चन्द्रप्रभाजी, दमयन्तीजी, शान्ताजी तथा सुशीलादेवीजी विद्यालंकृता उल्लेखनीय हैं। इनमें दो आचार्य रामदेव की कन्यायें थीं।

कन्या महाविद्यालय जालन्धर की भाँति इस गुरुकुल में भी स्नातिकाओं ने अपनी मातृसंस्था की सेवा के व्रत का पालन करते हुए इसकी उन्नति में सहयोग दिया। इनमें आचार्य रामदेव के परिवार के कुछ व्यक्तियों के नाम स्मरणीय हैं। स्व० श्रीमती सीतादेवी एम० पी० ने प्रारम्भिक युग में सात वर्ष तक अपनी अवैतनिक सेवायें अर्पित करके इसकी उन्नति के लिए अहर्निश प्रयत्न किया। स्व० श्रीमती चन्द्रप्रभा विद्यालंकृता ने भी ८-१० वर्ष इस संस्था की सेवा में लगाये। पिछले तीस वर्षों से श्रीमती दमयन्ती कपूर वर्तमान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानाचार्या ने अपने जीवन का अधिकांश भाग इस संस्था के निर्माण और विकास में लगाया है। उनके भाई स्वर्गीय यशपाल सिद्धान्तालंकार ने लगभग आठ वर्ष तक मुख्याधिष्ठाता के रूप में इस संस्था की सेवा की।

आरम्भिक युग में न केवल आचार्या विद्यावतीजी ने, अपितु उनकी वहिनों ने भी इस संस्था के विकास में सराहनीय योगदान दिया। श्रीमती ओमवती एम० ए०, एम० ओ० एल० कई वर्ष तक छात्राओं को अवैतनिक रूप से न केवल संस्कृत पढ़ाती रहीं, अपितु उन्होंने लड़कियों को स्त्रियोपयोगी शिल्पकलाओं—सिलाई, बुनाई, क्रोशिया आदि की शिक्षा दी, इन कलाओं के प्रशिक्षण हेतु भवन निर्माण के लिए १,००० रुपये का दान दिया, कला कौमुदी नामक पुस्तक लिखकर उसकी सारी आय गुरुकुल को दी। उनकी एक अन्य वहिन श्रीमती राधारानी ने कन्याओं की आश्रम व्यवस्था के संचालन में वहुमूल्य सहयोग दिया।

१९२३ में कन्या गुरुकुल की स्थापना के समय कु० विद्यावती सेठ इसकी पहली आचार्या तथा पं० विश्वम्भरनाथ पहले मुख्याधिष्ठाता बने। २२ वर्ष तक संस्था की सेवा करने के वाद आचार्या विद्यावतीजी ने अवकाश ग्रहण किया। इस गुरुकुल के विकास में उनका योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण यौवन इसे समर्पित किया। यह उनकी तपस्या तथा कर्मठता का ज्वलन्त प्रतीक है।

उनके वाद १९४५ से १९५१ तक श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल ने आचार्या पद का भार ग्रहण किया। सहायक मुख्याधिष्ठाता पहले पण्डित सोमदत्त विद्यालंकार तथा व्यवस्थापक पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार रहे। १९५१ से १९५६ तक स्व० पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य अमृतधारा ने मुख्याधिष्ठाता के रूप में गुरुकुल की अविस्मरणीय अवैतनिक सेवा की। सन् १९५७ से ३१ मई, १९६३ तक पण्डित यशपाल सिद्धान्तालंकार ने मुख्याधिष्ठाता तथा व्यवस्थापक के पद पर रहकर इस संस्था के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने इस गुरुकुल की सेवा अनथक लगन तथा परिश्रम से की है। इसी समय छप्पन हजार रुपये की लागत से आचार्य रामदेव सभा भवन तथा आचार्य विद्यावतीजी सेठ भोजन भवन का निर्माण किया गया। १ जून, १९६३ को इस संस्था में ही सेवा करते हुए पण्डित यशपालजी का स्वर्गवास हो गया।

सन् १९५३ से श्रीमती दमयन्ती कपूर आचार्या पद पर कार्य कर रही हैं। आप निरन्तर गुरुकुल की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। आपने पिछले तीन दशकों में इस संस्था को विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचाने का प्रयास किया है। इनके समय में कन्याओं के शिक्षा स्तर में उल्लेखनीय प्रगति हुई है तथा इसके साथ ही शिक्षणेत्तर कार्यकलापों में संस्था ने नये कीर्त्तिमान स्थापित किये हैं। आपके समय में १९५७ से अलंकार युग का श्रीगणेश हुआ। अलंकृता के पुराने पाठ्यक्रम के स्थान पर गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का १४ वर्षों का अलंकार पाठ्यक्रम शुरू किया गया। इसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का अंगभूत महाविद्यालय वनाया गया।

(३) कन्या गुरुकुल का राष्ट्र की प्रगति में योगदान तथा उपलब्धियाँ

इस गुरुकुल की स्नातिकाएँ जहाँ एक ओर कुशल गृहणियाँ सिद्ध हुई हैं, वहाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर उनमें से अधिकांश ने किसी न किसी रूप में समाज व राष्ट्र की प्रगति के विविध क्षेत्रों में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

सुयोग्य स्नातिका स्व० श्रीमती सीतादेवी भारत की सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थीं। आप कई वर्ष तक लोकसभा की सदस्या भी रहीं। आपने पंजाब के सार्वजनिक जीवन में बड़ा कार्य किया। आपका सारा जीवन देश व जाति की सेवा में ही व्यतीत हुआ। श्रीमती सीतावहिन चन्द्रमणि पण्डित विद्यालंकृता बड़ौदा की प्रख्यात समाज-सेविका हैं। इन्होंने महिला सदन, बड़ौदा की मुख्याधिष्ठात्री के रूप में कार्य करते हुए हजारों महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

आर्यसमाज व वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में कन्या गुरुकुल की अनेक स्नातिकाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। ख्यातिप्राप्त एवं विदुषी आर्य उपदेशिका स्व० श्रीमती चन्द्रप्रभा विद्यालंकृता इसी गुरुकुल की गौरवमयी देन थीं। इन्होंने आर्यसमाज सरगोधा (पाकिस्तान) और दिल्ली बिड़ला मिल की आर्यसमाजों में उल्लेखनीय सेवा की है। स्व० श्रीमती अरुन्धती विद्यालंकृता ने क्वेटा (विलोचिस्तान) में आर्यसमाज का प्रशंसनीय कार्य किया है। श्रीमती सुशीलादेवी विद्यालंकृता के नाम से आन्ध्रप्रदेश का कौन आर्य नर-नारी परिचित नहीं है। आपकी प्रभावशाली एवं ओजस्वी वक्ता के रूप में आर्य जगत् में महती प्रतिष्ठा है। आप वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद की मन्त्री भी रही हैं।

श्रीमती सत्यवती विद्यालंकृता ने अफ्रीका में आर्यसमाज की जो सेवाएँ की हैं, वे सदा स्मरणीय रहेंगी। श्रीमती शान्ता विद्यालंकृता (कोचर) नैनीताल आर्यसमाज की और श्रीमती सुमेधा विद्यालंकृता नागपुर में आर्यसमाज की अत्यन्त सक्रिय कार्यकर्त्री रही हैं। श्रीमती ब्रह्मवती विद्यालंकृता (नारंग) देहरादून आर्यसमाज की और श्रीमती चन्द्रकान्ता विद्यालंकृता नागपुर आर्यसमाज की प्रसिद्ध एवं कर्मठ नेता हैं। श्रीमती दयावती विद्यालंकृता जयपुर में आर्यसमाज के कार्यों में अपना योगदान कर रही हैं।

स्वर्गत

श्रीमती वेदवती विद्यालंकृता आर्यसमाज की गतिविधियों को आगे बढ़ाने में पर्याप्त सक्रिय हैं। इन्होंने सीतापुर में स्त्री आर्यसमाज की स्थापना की। इस समय वह मेरठ की आर्य स्त्री समाज की प्रधान हैं। श्रीमती दमयन्ती विद्यालंकृता (कपूर) लम्बे समय से कन्या गुरुकुल, देहरादून की आचार्या के रूप में तन-मन-धन से आर्यसमाज की सेवा में लीन हैं। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग अपनी मातृसंस्था के विकास एवं संचालन में लगा दिया है। स्व० सुधामयी विद्यालंकृता ने आर्यसमाज, समाजसेवा, ग्रामीण जनमंगल तथा सैनिकों की सेवा का प्रशंसनीय कार्य किया है। गुरुकुल काँगड़ी की स्त्री समाज में उन्होंने मन्त्री एवं प्रधान के रूप में नवजीवन का संचार किया। बच्चों में आर्यसमाज के प्रति आकर्षण और अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए अनेक मनोरंजक कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक आयोजन किया। वह गोविन्द वल्लभ पन्त कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर में महिला मण्डल (लेडीज क्लब) की कोषाध्यक्ष तथा वर्षों तक महासचिव रहीं। विश्वविद्यालय द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित किसान मेलों के अवसरों पर इन्होंने महिला मंगल दल के विविध स्टालों का संचालन किया। १९७१ में बँगलादेश के स्वातन्त्र्य संग्राम के अवसर पर जवानों के लिए खाद्य सामग्री भेजी, सैनिक परिवारों एवं जवानों के लिए ऊनी वस्त्र

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिलाओं से बुनवाकर और गरम कपड़े तैयार करके भिजवाये, पन्तनगर में एक कैम्पस स्कूल की स्थापना के लिए धन संग्रह किया, सभी सामाजिक कार्यों में सदैव गहरी दिलचस्पी लेती रहीं। श्रीमती अनुसूयाजी विद्यालंकृता जोधपुर की एक प्रतिष्ठित कार्य-कर्त्री हैं। श्रीमती चन्द्रकान्ता विद्यालंकृता नागपुर आर्यसमाज की ख्याति प्राप्त नेता हैं।

अनेक स्नातिकाओं ने विभिन्न ललितकलाओं के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है। कु० अर्चना खोसला विद्यालंकृता एम० ए० ने अभिनय के क्षेत्र में अपने सशक्त अभिनय एवं प्रशंसनीय उपलब्धियों से प्रसिद्धि का उपार्जन किया है। आजकल वह दिल्ली में नेशनल स्कूल ऑफ् ड्रामा की यशस्विनी कार्यकर्त्री हैं। श्रीमती वीणा विद्यालंकार (धर्मपत्नी श्री उर्मिलकुमार थपलियाल) लखनऊ आकाशवाणी से एक नवोदित कलाकार के रूप में उभर रही हैं। कु० विमलादेवी विद्यालंकृता दिल्ली में एक प्रसिद्ध महिला चित्रकार हैं। श्री शारदा उकील के संरक्षण में आपने चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की है। आपकी रामायण एवं अजन्ता की चित्रकारी विशेष रूप से सराहनीय है।

कन्या गुरुकुल की कुछ स्नातिकाओं ने उद्योग के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये हैं। श्रीमती रुक्मणि विद्यालंकार (नीलू गुप्ता के नाम से प्रसिद्ध) भारतवर्ष के एक सुप्रसिद्ध उद्योग संस्थान की डायरेक्टर हैं। वह व्यापार के सिलसिले में कई बार विदेश यात्रा भी कर चुकी हैं। इस समय दिल्ली में सोनाली एम्पोरियम की अध्यक्षा हैं।

कन्या गुरुकुल की अनेक स्नातिकाएँ शिक्षा के क्षेत्र को अपनाकर भावी पीढ़ी के नव-निर्माण एवं विकास में उल्लेखनीय योगदान कर रही हैं। यहाँ की अनेक विदुषी स्नातिकाएँ विविध विषयों में उच्च शिक्षा के पश्चात् विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्व-विद्यालयों में अध्यापन-कार्य कर रही हैं। बहुत-सी स्नातिकाओं ने संस्कृत, दर्शन, हिन्दी आदि विषयों में शोधकार्य करके पी-एच० डी० उपाधि भी प्राप्त की है। डा० शान्ता विद्यालंकृता (कोचर) और डा० मधु विद्यालंकार दिल्ली के जानकी देवी महाविद्यालय में हिन्दी की प्राध्यापिका हैं। डा० ब्रह्मवती विद्यालंकृता (नारंग) महादेवी स्नातकोत्तर महाविद्यालय में, श्रीमती वेदवती विद्यालंकृता नेशनल इस्माईल डिग्री कॉलिज, मेरठ में और डा० रमा विद्यालंकृता (दुवलिश) मुन्नालाल डिग्री कॉलिज, सहारनपुर में संस्कृत विभाग की अध्यक्षा के पद को सुशोभित कर रही हैं। डा० वेदकुमारी विद्यालंकृता जयपुर के गौरीदेवी राजकीय महिला विद्यालय में; डा० सुमेधा विद्यालंकृता लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में; डा० हेमलता विद्यालंकार सुन्दरवती महिला कॉलिज, भागलपुर में; डा० विमला विद्यालंकार हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में; श्रीमती सरोज विद्यालंकार दिल्ली के श्यामाप्रसाद मुकर्जी कॉलिज में; श्रीमती मंजु विद्यालंकार राजकीय महिला महाविद्यालय, अमृतसर में संस्कृत की प्राध्यापिका हैं। डा० सरला विद्यालंकृता शिकोहाबाद के बी० डी० एम० गर्ल्स डिग्री कॉलिज में उप-प्राचार्या के पद को अलंकृत कर रही हैं। डा० सूनृता विद्यालंकार, सरोज विद्यालंकार आदि कतिपय स्नातिकाएँ कन्या गुरुकुल देहरादून में भी अध्यापन-कार्य कर रही हैं। एक पुरानी स्नातिका श्रीमती कृष्णा विद्यालंकृता शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विचार-धारा की प्रबल समर्थक हैं और इन्होंने लखनऊ में स्प्रिंग डेल स्कूल के नाम से एक पब्लिक स्कूल की स्थापना की है। हरिजन बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में कुमारी पुष्पावती विद्यालंकृता द्वारा की गयी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी। इस समय वह दिल्ली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ओखला स्थित कस्तूरबा बालिका विद्यालय की प्रधानाचार्य के पद पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

कन्या गुरुकुल देहरादून की अनेक स्नातिकाओं ने विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान के क्षेत्र में नवीन कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इनके द्वारा लिखे एवं विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत शोधप्रबन्धों से वैदिक तथा संस्कृत वाङ्मय और हिन्दी साहित्य के अनेक अछूते पहलुओं पर नया प्रकाश पड़ा है। कन्या गुरुकुल की स्नातिकाओं द्वारा लिखे गये कुछ थोड़े-से शोधप्रबन्धों का संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा। संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य का विशेष अध्ययन करने और वेदांगों के स्वाध्याय के कारण अधिकांश शोधप्रबन्धों के विषय इन्हीं क्षेत्रों से सम्बन्ध रखते हैं। वैदिक विषयों में भागलपुर विश्वविद्यालय से श्रीमती हेमलता विद्यालंकार ने **'ऋग्वेद में अग्निसूक्तों की उपमाओं का अध्ययन'** विषय पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। आप भागलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की अध्यक्षा हैं। इसी प्रकार जयपुर विश्वविद्यालय से **'मैत्रायणी संहिता का अध्ययन'** विषय पर पी-एच० डी० करके कुमारी वेदवती विद्यालंकृता अलवर के गवर्नमेण्ट कॉलिज में संस्कृत की प्रवक्ता हैं। संस्कृत साहित्य में दर्शन और लौकिक साहित्य ने स्नातिकाओं को अधिक आकृष्ट किया है। हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस से कुमारी विमला विद्यालंकार ने **व्याख्याकारों की दृष्टि में पातञ्जल योगसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इस शोधप्रबन्ध की सर्वोत्कृष्टता पर स्वर्ण पदक भी प्रदान किया गया है, और केन्द्रीय सरकार द्वारा इस ग्रन्थ की एक सहस्र प्रतियाँ भी प्रकाशित की गई हैं। इनके अनेक गवेषणात्मक लेख अनुसन्धान पत्रिकाओं में छप चुके हैं। श्रीमती सुनीति विद्यालंकार ने बनारस विश्वविद्यालय से एम० ए० में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके कीर्तिमान स्थापित किया है, **योगभाष्य का परिशीलन** विषय पर भी पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। लौकिक संस्कृत साहित्य में श्रीमती ब्रह्मवती नारंग ने मेरठ विश्वविद्यालय से **कालिदास के नारी पात्र** विषय पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। श्रीमती रमा दुबलिश ने मेरठ विश्वविद्यालय से **संस्कृत महाकाव्यों में कवि समय** विषय पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। श्रीमती सुमेधा विद्यालंकृता ने **महाभारत में शान्तिपर्व का आलोचनात्मक अध्ययन** विषय पर पी-एच० डी० प्राप्त की है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पी-एच० डी० प्राप्त करने वालों में श्रीमती शान्ता और श्रीमती मधु विद्यालंकार के नाम उल्लेखनीय हैं।

(४) कन्या गुरुकुल हरिद्वार (कनखल)

इस संस्था की स्थापना शुद्धि महासभा और अछूतोद्धार कमेटी के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता कर्मवीर श्री ठाकुर संसारसिंह महोपदेशक ने मई, १९३३ ई० में की थी। उस समय तक हरिद्वार में स्त्रीशिक्षा का गोर विरोध होता था। इस दशा में इस महान् साहसिक कार्य का सम्पूर्ण आर्य जगत् में भारी स्वागत हुआ। हरिद्वार से बाहर गंग नहर के प्रथम राजवाहा के किनारे पचास बीघा भूमि लेकर जब इस संस्था ने अपनी भूमि में प्रवेश किया तो पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के अभिन्न साथी पूज्य ठाकुर साहब को सबल समर्थन देने की दृष्टि से इसकी आधारशिला डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संस्थापक महात्मा हंसराजजी ने स्थापित की। सम्भवत:, महात्माजी के द्वारा एकमात्र इसी कन्या गुरुकुल की आधारशिला रखी गयी। इसी कारण पूज्य महात्मा आनन्द-स्वामीजी महाराज ने आजीवन इस संस्था को संरक्षण प्रदान किया। इस संस्था को सर्व-प्रथम एकवारगी १३ सहस्र रुपये दानवीर श्री सेठ टेकचन्द नांगिया ने दिये। उनके नाम पर 'टेकचन्द नांगिया आश्रम' नामक सुविशाल छात्रावास का भी निर्माण हुआ।

इस संस्था की स्वामिनी 'महासभा कन्या गुरुकुल हरिद्वार' है। इसके ११ सदस्यों का विधिवत् चुनाव होता है। यह संस्था १८६० के अधिनियम २१ के अनुसार ६ जनवरी, १९३६ को विधिपूर्वक पंजीकृत की गयी थी। संस्था का संचालन मुख्या-धिष्ठाता और आचार्या के द्वारा होता है। इन दिनों संस्था के मुख्याधिष्ठाता मस्तिष्क एवं हृदय रोगों के विश्वविख्यात आयुर्वैदिक चिकित्सक आयुर्वेदवृहस्पति कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि हैं। आचार्या पद पर सन् १९४२ से अव तक आयुर्वेदवाचस्पति श्रीमती चन्द्रावती देवी शास्त्री एम० एस-सी० (ए०) साहित्यरत्न आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेदालंकृता हैं। उन्हीं के नेतृत्व में संस्था ने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की है।

सन् १९५५ में इस संस्था में सबसे पहले केवल कन्याओं के लिए आयुर्वेद की आचार्य श्रेणी पर्यन्त शिक्षा का शुभारम्भ हुआ। इसके आयुर्वेद महाविद्यालय भवन की आधारशिला राष्ट्रपति सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने स्थापित की। केवल एक वर्ष में बनाये गये इस भवन के उद्घाटन के लिए प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री पधारे। तब से इस संस्था से हजारों कन्यायें शास्त्री व आचार्य की उपाधि प्राप्त कर देश-विदेश में आयुर्वेद की चिकित्सा द्वारा जनसेवा में संलग्न हैं। पहले यहाँ आयुर्वेदालंकृता की अपनी उपाधि दी जाती थी, किन्तु अब सरकारी आदेश के कारण इसे बन्द कर दिया गया है। यहाँ सम्पूर्णानन्द वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री की परीक्षाओं के लिए कन्याओं को तैयार किया जाता है, और आयुर्वेदशास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य का पाठ्यक्रम भी पढ़ाया जाता है। भारत सरकार ने आयुर्वेद में केवल स्त्रियों की शिक्षा देने के लिए इसे मान्यता दी है, और भारत सरकार की भारतीय चिकित्सा परिषद् ने इसे सम्बद्ध करना स्वीकार कर लिया है।

गत वर्षों में कन्या गुरुकुल में एक सुविशाल मातृमन्दिर का निर्माण कराया गया है, जिसको आधार-शिला पूज्या पंजाबमाता श्रीमती विद्यावती देवी जी (शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह की आदर्श जननी) के द्वारा रखी गयी है। अभी एक धर्मार्थ औषधालय और एक सुन्दर यज्ञशाला बनायी गयी है, और यौगिक व्यायामशाला का भी निर्माण-कार्य चालू है।

"श्रीमती इन्दिरा गांधी महिला चिकित्सालय" की बड़ी इमारत के निर्माण की तैयारियाँ हो रही हैं। इसकी नींव राज्यपाल महामहिम डा० एम० चेन्ना रेड्डी ने रखी है।

इस संस्था में २०० कन्याओं को संस्कृत और आयुर्वेद की शिक्षा देने के लिए पूर्ण सुरक्षात्मक आवास-निवास की व्यवस्था है। इस समय यहाँ १९४ छात्रायें छात्रावास में निवास कर रही हैं। यह संस्था महर्षि दयानन्द के आदर्शों के अनुसार कन्याओं को आयुर्वेद की शिक्षा देने में अग्रणी संस्था की भूमिका अदा कर रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

वाराणसी उत्तर भारत में पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रधान केन्द्र है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १८६८ में हरिद्वार के कुम्भ मेले में पाखण्डखण्डिनी पताका फहराने के बाद प्रतिमा पूजन की अवैदिकता पर काशी के दिग्गज पण्डितों से शास्त्रार्थ करके वहाँ वैदिक धर्म का शंखनाद किया था और आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर वल दिया था। इसके सौ वर्ष वाद यहाँ कन्याओं को सुगम पद्धति के अनुसार संस्कृत व्याकरण की शिक्षा देने तथा आर्ष ग्रन्थों का प्रचार और प्रसार करने के लिए इस विद्यालय की स्थापना स्व० पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की स्मृति में १९७१ में बनारस के पास मोती झील क्षेत्र में चार कन्याओं से की गयी।

इस विद्यालय के साथ प्राचीन और अर्वाचीन युग के दो महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम जुड़े हुए हैं। इनके संक्षिप्त परिचय से इस विद्यालय के उद्देश्यों और कार्यकलापों पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। महर्षि पाणिनि संस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध आचार्य और वैयाकरण थे। उन्होंने अष्टाध्यायी के महान् शास्त्र की रचना की है। इसमें संस्कृत भाषा के व्याकरण के सभी नियमों को वड़े गम्भीर, विस्तृत और व्यापक अध्ययन के वाद अतीव संक्षिप्त रूप से ३,९७५ सूत्रों में प्रतिपादित किया गया है। इसके लिए आवश्यक सामग्री वड़े परिश्रम से संगृहीत करके उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की। उनसे पहले होने वाले व्याकरण के ६५ आचार्यों के नाम प्रातिशांख्य ग्रन्थों में मिलते हैं। महर्षि पाणिनि ने इन सवका गम्भीर अनुशीलन और मंथन करके जो व्याकरण वनाया, वह संस्कृत का सवसे प्रसिद्धतम व्याकरण वना। महर्षि पतंजलि ने उसका महाभाष्य लिखकर उसकी विस्तृत विवेचना की। महर्षि पाणिनि का यह ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय का अमर रत्न है, किन्तु मध्य काल में महर्षि पाणिनि के इस मूल ग्रन्थ की उपेक्षा करके मनुष्य कृत लघुसिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन शुरू हो गया। दण्डी स्वामी विरजानन्द ने मथुरा में महर्षि दयानन्द को व्याकरण में आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन का महत्त्व वताया और इसका अध्यापन कराया। महर्षि अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द को व्याकरण का सूर्य कहते थे और वह पाणिनि की अष्टाध्यायी के पठन-पाठन पर वहुत वल देते थे।

आर्यसमाज में अष्टाध्यायी के विद्वानों में पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का नाम उल्लेखनीय है। ये ४ अक्तूवर, १८९२ ई० को जालन्धर जिले के भल्लूपोता गाँव में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने संस्कृत का अध्ययन अष्टाध्यायी के महान् विद्वान् स्वामी पूर्णानन्द से किया। संस्कृत व्याकरण में प्रवीणता पाने के वाद जिज्ञासुजी ने स्वामी सर्वदानन्द के साधु आश्रम (हरदुआगंज) में आर्ष पद्धति से व्याकरणादि का अध्यापन १९२० ई० में शुरू किया। वाद में यह आश्रम १९२१ के अन्त में अमृतसर में विरजानन्द आश्रम के रूप में स्थानान्तरित हो गया। जनवरी, १९३२ के आरम्भ में जिज्ञासुजी वड़ी श्रेणियों के छात्रों को विशेष अध्ययन कराने के लिए काशी आये। यहाँ आपने महामहोपाध्याय श्री चिन्न स्वामी शास्त्री आदि दिग्गज विद्वानों से मीमांसा दर्शन का अध्ययन किया। सन् १९३५ में वाराणसी से लौटकर जिज्ञासुजी १९३७ तक लाहौर में रावी नदी के तट पर छात्रों को अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन, वेद-वेदांग की शिक्षा देते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। १९४७ में पाकिस्तान बनने के बाद आप लाहौर से वाराणसी चले आये। काशी में आपने पाणिनीय विद्यालय की स्थापना की और इसमें आर्ष पद्धति का अनुसरण करते हुए छात्रों को संस्कृत भाषा तथा महाभाष्य आदि शास्त्रों की शिक्षा दी।

आपने बड़े गम्भीर मनन और स्वाध्याय के बाद संस्कृत पढ़ाने की एक नवीन सुगम पद्धति का आविष्कार किया। पुरानी पद्धति के अनुसार अष्टाध्यायी के सूत्र बचपन से छात्रों को रटाये जाते थे और यह माना जाता था कि इन्हें रटाने के अतिरिक्त संस्कृत व्याकरण सीखने की कोई दूसरी विधि नहीं है। जिज्ञासुपद्धति की यह विशेपता थी कि इसमें सूत्रों को रटने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह अष्टाध्यायी के माध्यम से बड़ी आयु के विद्यार्थियों को बिना रटे बड़ी सुगमता से व्याकरण का ज्ञान कराने में बहुत निपुण थे। उन्होंने इस प्रक्रिया के अनुसार तीन मास में संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान कराने के लिए **'संस्कृत पठन पाठन की अनुभूत सरलतम विधि'** नामक पुस्तक लिखी है। शीघ्र ही इसके पाँच संस्करण छप गये और इस विधि से शिक्षा ग्रहण करने वाले उनके शिष्य उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के विभिन्न नगरों में इस विधि का सफलता के साथ प्रचार करने लगे। **सरलतम विधि** के अन्त में अगले छह मास के पठन-पाठन का जो विवेचन दिया गया था, उसके अनुसार पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने उसका दूसरा भाग लिखकर इसे पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त जिज्ञासुजी का एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अष्टाध्यायी का भाष्य है। महर्षि दयानन्द ने अष्टाध्यायी के पठन-पाठन की जो प्रक्रिया सत्यार्थप्रकाश में लिखी है, उसी के अनुरूप जिज्ञासुजी ने प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण तथा उसकी सिद्धि को प्रदर्शित करते हुए अपना भाष्य संस्कृत और हिन्दी भाषा में लिखा है। अपने जीवन काल में वह इसके पहले पाँच अध्यायों का भाष्य लिख पाये थे। शेष तीन अध्यायों का भाष्य उनकी शिष्या सुश्री प्रज्ञाकुमारी व्याकरणाचार्य ने उसी शैली पर लिख कर पूरा किया है।

श्री जिज्ञासुजी द्वारा आविष्कृत पद्धति की विशेषता यह है कि इस पद्धति के अनुसार अध्ययन करने से कुछ ही महीनों में छोटी-छोटी बालिकाएँ भी संस्कृत में संभाषण करने लगती हैं, जबकि सामान्य रूप से संस्कृत भाषा के व्याकरण को सीखना अति श्रमसाध्य और बहुत वर्षों में प्राप्त होने वाला ज्ञान समझा जाता है। पाणिनि कन्या महाविद्यालय का यह लक्ष्य है कि इस पद्धति से भारतीय कन्याओं को शिक्षा देकर पाणिनि की अष्टाध्यायी और संस्कृत साहित्य का ज्ञान कराया जाय, ताकि कन्याओं के माध्यम से देश में संस्कृत का प्रसार और प्रचार हो। इस विद्यालय के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—प्राचीन आर्ष प्रणाली के पुनरुज्जीवन के साथ समन्वय पूर्वक यथासम्भव निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना, अष्टाध्यायी, महाभाष्यादि प्राचीन ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा को सुरक्षित रखना और बालिकाओं एवं महिला जगत् को विशेष रूप से प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के प्रति श्रद्धावान् बनाते हुए विदुषी एवं सुदक्ष बनाना।

यह विद्यालय वाराणसी नगरी में तुलसीपुर नामक स्थान पर स्थित है। नगर के ही सन्निकट, नगरस्थ कोलाहल से दूर यह बहुत ही शान्त तपोवन जैसा स्थान है।

यह विद्यालय अष्टाध्यायी, महाभाष्यादि उच्च स्तरीय ग्रन्थों का अध्ययनाध्यापन करता है। साथ ही, धार्मिक शिक्षा के रूप में व्यवहारभानु, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्यभूमिका की भी यहाँ विधिवत पढ़ाई होती है। इसके साथ ही, आधुनिक विषयों के ज्ञान के लिए कुछ ग्रन्थों का अध्यापन भी होता है।

इस विद्यालय का मुख्य उद्देश्य कन्याओं को पूर्ण विदुषी एवं वेदों के प्रति श्रद्धावान्, निष्ठावान् तथा ऋषिभक्त बनाना है। अतः इसके संचालकों की सम्मति में योग्यता उत्पन्न करना उनका मुख्य ध्येय है। योग्यता के लिए परीक्षा, न कि परीक्षा के लिए योग्यता उनका मुख्य नारा है। फिर भी राजकीय प्रमाणपत्र प्राप्त कराने के उद्देश्य से यथासम्भव अपने पाठयक्रम के साथ-साथ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ भी दिलाई जाती हैं।

संस्कृत विश्वविद्यालय की मध्यमा, शास्त्री, आचार्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के कारण, जहाँ छात्राओं को मध्यमा, शास्त्री एवं व्याकरणाचार्य की उपाधि विश्वविद्यालय की ओर से प्राप्त होती हैं, वहाँ इसके साथ ही ऐसी छात्राओं को विद्यालय की ओर से क्रमशः व्याकरणमध्यमा, व्याकरणोत्तमा एवं व्याकरणसूर्या की सम्मानित उपाधि भी प्रदान की जाती है।

आचार्य कक्षाओं में सम्पूर्ण महाभाष्य एवं निरुक्त का अध्ययन अन्य विषयों के साथ कराया जाता है। आर्ष ग्रन्थों का छात्राओं को प्राचीन पद्धति के अनुसार ज्ञान कराके उन्हें दर्शन आदि अन्य विषय पढ़ाने की व्यवस्था की जाती है। इस विद्यालय में प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए बिना रटे संस्कृत सीखने की 'जिज्ञासु संस्कृत पठन-पाठन की सरलतम विधि' के पाठ निरन्तर चलते रहते हैं। विद्यालय ने इन ४४ पाठों के कैसेट भी तैयार करवा लिये हैं। इनकी सहायता से कोई भी व्यक्ति संस्कृत का ज्ञान सुगमता से प्राप्त कर सकता है।

शारीरिक शिक्षा—अष्टाध्यायी, निरुक्त आदि ग्रन्थों के अध्ययन और इनमें वैदुष्य प्राप्त करने के साथ-साथ वर्तमान युग में कन्याओं को आत्मरक्षा के साधन सिखाना तथा शरीर को पुष्ट एवं नीरोग रखने के उपायों का ज्ञान कराना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव गुरुकुल में यौगिक आसन, व्यायामादि सिखाने का क्रम दिनचर्या के आवश्यक अंग के रूप में रखा गया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारिणियों को लाठी, भाले तथा तलवार आदि चलाने का भी विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। व्यायाम प्रशिक्षण के कोर्स को अपने वार्षिक पाठ्यक्रम के साथ जोड़ लिया गया है। अन्य विषयों के पाठ्यक्रम के साथ व्यायाम का भी नियत पाठ्यक्रम बना लिया गया है। अतः छात्राओं को विद्यालय की ओर से अन्तिम उपाधि व्याकरणसूर्या को देने के साथ-साथ व्यायाम के कोर्स का डिप्लोमा भी प्रत्येक स्नातिका को दिया जाता है।

व्यायाम की शिक्षा के साथ सिलाई, कटाई, कढ़ाई आदि शिल्पकला एवं भोजन निर्माण कला को भी पूरा महत्त्व दिया जाता है। यह छात्राओं के सुयोग्य कुशल गृहिणी बनाने के ध्येय से किया जाता है। कन्यायें यहाँ स्वयमेव भोजन बनाती हैं।

इस विद्यालय में परीक्षाओं को पास करने की अपेक्षा योग्यता प्राप्त करने पर अधिक बल दिया जाता है। इसकी नियमावलि में यह बात स्पष्ट रूप से अंकित है, कि "यहाँ परीक्षाओं के चक्कर में न पड़कर शास्त्रीय मर्मज्ञ बनने के ध्येय रखने वाली छात्रा को वरीयता प्राप्त होगी। केवल परीक्षा पास कराना चाहने वाले अभिभावक अपनी कन्याओं का प्रवेश यहाँ कराने का कष्ट न करें। सरकारी परीक्षा दिलाना हमारा गौण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म है।" यह शिक्षण-संस्था सरकार से मान्यता और अनुदान प्राप्ति को अपने विकास में घातक समझती है। इस विद्यालय के अधिकारियों की यह मान्यता है कि सरकार से आर्थिक सहायता लेने पर विद्यालय को उसके नियमों का पालन करना होगा और उसके सुझावों के अनुसार अपने पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके दुष्परिणामों का वर्णन करते हुए उस संस्था की नियमावलि में कहा गया है, "क्योंकि सरकार से पैसे लेने पर हमारे अपने कई पाठ्यक्रमों में परिवर्तन करते हुए केवल नकल आदि कराके परीक्षा पास कराना मुख्य ध्येय बनाना होगा, तथा अध्यापनादि कार्यों को छोड़कर ग्राण्ट प्राप्त करने के लिए योग्य-अयोग्य सभी अधिकारियों के पादस्पर्श करते हुए असत्य भाषण का भी आश्रय लेना होगा, जोकि हमारे लिए कलंक स्वरूप है।"

आर्ष पद्धति के गुरुकुलों में पाणिनि विद्यालय सबसे बाद में स्थापित होने वाली संस्था है! पिछली एक दशाब्दी के अल्पकाल में इसने अपने सीमित साधनों से भूमि, भवन आदि के लिए आवश्यक सामग्री अपने उत्साह और उद्योग से एकत्र कर ली है। इसके संचालक इस संस्था में साठ से अधिक कन्याओं को नहीं रखना चाहते हैं। तदनुसार इस समय ५० बालिकायें यहाँ शिक्षा पा रही हैं। ये विहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, हरयाणा, हिमाचल, कश्मीर, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, असम, महाराष्ट्र आदि विभिन्न राज्यों की हैं। यहाँ शिक्षा निःशुल्क है और केवल भोजन का व्यय लिया जाता है। इस विद्यालय में प्रवेश के उपरान्त कन्याओं को घर जाने की अनुमति शिक्षा पूरी करके स्नातिका बनने के बाद ही दी जाती है।

इस विद्यालय के प्रबन्ध के लिए एक समिति है जिसकी सदस्यता का आधार जहाँ आर्थिक सहायता है, वहाँ साथ ही कतिपय व्यक्तियों को विद्वत्ता एवं कृतित्व के आधार पर भी इसका सदस्य मनोनीत किये जाने की व्यवस्था है। पिछले १० वर्षों में इस संस्था ने अपने प्रधान उद्देश्य--प्राचीन आर्ष प्रणाली का पुनरुज्जीवन करके बालिकाओं एवं महिलाओं को विशेष रूप से अष्टाध्यायी, महाभाष्य तथा वेद-वेदांगों में पारंगत करने, विदुषी एवं गृहकार्यों में सुदक्षा बनाने का लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में सराहनीय प्रयास किया है।

इस संस्था की आचार्या प्रज्ञा देवीजी का विश्वास है कि इसका भविष्य उज्ज्वल करने के लिए कोई उन्हें यह प्रेरणा दे रहा है, कि "संस्था द्वारा प्रदीप्त कुछ अग्नि-कणों को समेटो, उन्हें दोधूयमान अर्चियों का रूप देकर संस्था का भविष्य स्थिर कर दो। सस्था में अन्य किसी निधि की आवश्यकता नहीं है। निधियाँ झगड़े की जड़ होती हैं। पर यह निधि तो संस्था के भविष्य का अक्षय स्रोत है।" इस कथन में बड़ी सचाई है। सच्चे कार्यकर्ता ही संस्था के भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं।

यह विद्यालय पौराणिक धर्म का गढ़ मानी जाने वाली उस नगरी में कन्याओं को वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा दे रहा है, जहाँ शूद्रों के समकक्ष मानी जाने वाली स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं माना जाता था। महामना मदनमोहन मालवीय जैसे प्रबुद्ध भारतीय द्वारा स्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय के वेद विभाग में अरबी-फारसी पढ़ाने वाले एक प्राध्यापक की कन्या को तीन दशक पहले इसी आधार पर प्रवेश नहीं दिया गया था। ऐसे स्थान में कन्याओं को वेद-वेदांगों तथा व्याकरण की शिक्षा देने वाली इस संस्था का कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण और व्यवस्था बड़ी उपयोगी एवं समीचीन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलहवाँ अध्याय

गुजरात के कन्या गुरुकुल

(१) गुजरात में आर्य शिक्षण-संस्थाओं का प्रारम्भ

गुजरात महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि है; किन्तु उनकी कर्मभूमि उत्तरी भारत था। उनके उपदेशों का सबसे अधिक गहरा प्रभाव पंजाब में पड़ा और वहाँ आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं (विद्यालयों, महाविद्यालयों और बालकों तथा बालिकाओं के गुरुकुलों) का विकास आरम्भ में बड़ी तेजी से हुआ। किन्तु कुछ समय बाद इस शताब्दी के द्वितीय दशक से गुजरात में भी वह प्रवृत्ति प्रबल होने लगी। इस प्रदेश में कन्या गुरुकुलों का अच्छा विकास हुआ है। गुजरात में यह कार्य पंजाब से आये मा० आत्माराम अमृतसरी ने किया। महर्षि ने पंजाब में प्रचार कर इस प्रदेश पर जो असीम उपकार किया था, उस ऋण का अपाकरण पंजाब ने मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी के माध्यम से किया है।

गुजरात में आर्यसमाज की विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों तथा शिक्षण-संस्थाओं का एक प्रधान केन्द्र इस समय बड़ौदा है। बड़ौदा की 'आर्य कुमार महासभा' द्वारा इस समय आर्यसमाज के विभिन्न कार्यकलापों—प्रचार, शिक्षा का प्रसार, शुद्धि, आर्यवीर दल आदि को उत्कर्ष देने के लिए ११ संस्थायें चलायी जा रही हैं। उनमें आर्य कन्या महाविद्यालय का स्थान सर्वोच्च है।

बड़ौदा में आर्यसमाज के पुनीत कार्य को प्रारम्भ करने का श्रेय राज्यरत्न मास्टर आत्माराम को है। वह अमृतसर के निवासी थे और सर्वश्री गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, महात्मा मुंशीराम आदि सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेताओं के समकालीन और सहयोगी कार्यकर्ता थे। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी को इन पर बहुत अधिक विश्वास था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब इन्हें सरकारी नौकरी मिली तो इन्होंने पण्डितजी से इस बारे में परामर्श किया। उनका यह उत्तर था, "मेरी सम्मति नहीं है कि तुम सरकारी नौकरी की गुलामी की बेड़ी अपने पैरों में डालो। हमने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बड़ी-बड़ी योजनायें बनाई हैं जिसमें वेदप्रचार भी शामिल है। मैं चाहता हूँ कि तुम जैसा उत्साही कार्यकर्ता इस काम में जुट जाय।" पण्डित गुरुदत्त के परामर्श के अनुसार सरकारी सेवा छोड़कर वह आर्यसमाज के प्रचारकार्य में लग गये। लाहौर में जब दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज की स्थापना हुई, तो उसके स्कूल में इन्हें द्वितीय अध्यापक का पद दिया गया। उसी समय से इन्हें मास्टरजी कहा जाने लगा। कुछ समय बाद बड़ी छोटी आयु में पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी की अकाल मृत्यु से इन्हें बड़ा धक्का लगा। वह लाहौर से अमृतसर आ गये। यहाँ इन्होंने पंजाबी हाईस्कूल स्थापित किया। इसने बाद में हिन्दू

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉलिज का रूप धारण किया। इन्होंने पंजाब के उर्दू प्रेमी आर्यसमाजियों के लिए भक्त रेमलजी के साथ सत्यार्थप्रकाश का उर्दू में अनुवाद किया। वह मौलवियों तथा ईसाई मिशनरियों के साथ आर्यसमाज के शास्त्रार्थों में प्रमुख भाग लेते रहे।

आर्यसमाज शुरू से ही अछूतों के उद्धार पर बड़ा बल देता रहा है। इन्होंने इस कार्य में बड़ी दिलचस्पी ली और सिक्खों में अस्पृश्य समझे जाने वाले रहतियों की शुद्धि के आन्दोलन को बड़े उत्साह से चलाया। इस कार्य में अडंगा डालने वाले विरोधियों की धमकियों की कोई परवाह न करते हुए इन्होंने वच्छोवाली आर्यसमाज द्वारा आयोजित एक बहुत बड़े समारोह में उनकी शुद्धि की।

गुजरात में बड़ौदा राज्य के शासक महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ बड़े उदार, प्रगतिशील और सुधारवादी विचार रखने वाले नरेश थे। उन्होंने अपने राज्य में अछूतों को समान अधिकार दिये और उन्हें निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के कानून बनाये, किन्तु उच्च जाति के रूढ़िवादी सवर्ण हिन्दू हरिजनों की शिक्षा के कट्टर विरोधी थे। अतः महाराजा को हरिजनों की शिक्षा के लिए उच्च जाति का कोई शिक्षक या स्कूलों का इंस्पेक्टर नहीं मिलता था। महाराजा कुछ समय तक यह काम ईसाई तथा मुसलमान मास्टरों से लेते रहे, किन्तु अपने कार्य में उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। सुप्रसिद्ध आर्य संन्यासी नित्यानन्दजी महाराजा के पास आया-जाया करते थे। महाराजा उनसे आवश्यक राजकीय मामलों में कई बार परामर्श भी लिया करते थे। एक दिन महाराजा ने बातों-ही-बातों में स्वामीजी से कहा, "देखिये मैं अछूतों का उत्थान करना चाहता हूँ, किन्तु यहाँ के कट्टरपंथी उसमें रत्तीभर भी सहायता नहीं देते हैं, अपितु रोड़े अटकाते हैं। इस काम के लिए कोई हिन्दू मास्टर या इंस्पेक्टर मुझे नहीं मिलता है।" इस पर स्वामीजी ने महाराजा से कहा, कि "योग्य आदमी मैं आपको दे सकता हूँ, पर शर्त यह है कि वह सीधा आपकी देखरेख में काम करेगा।" महाराजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। इस पर स्वामीजी बड़ौदा से सीधे अमृतसर गये और उन्होंने मास्टरजी से बड़ौदा राज्य में काम करने को कहा। मास्टरजी ने स्वामीजी से केवल इतना ही पूछा, कि "क्या आप यह आश्वासन दे सकते हैं कि वहाँ मेरे कार्य करने में कोई रोकटोक तो न होगी?" स्वामीजी ने स्पष्ट कर दिया कि आपके काम में किसी दूसरे का हस्तक्षेप न होगा। इस पर मास्टर-जी बड़ौदा जाने के लिए तैयार हो गये और महाराजा साहब का नियुक्ति-पत्र मिलने पर सितम्बर, १९०८ में वह अमृतसर से बड़ौदा पहुँचे।

बड़ौदा आने पर मास्टरजी को बालक-बालिकाओं के छात्रालय (बसतिगृह) का अधीक्षक तथा इनके स्कूलों का इंस्पेक्टर बनाया गया। किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में कोई भी सवर्ण हिन्दू अछूत विद्यार्थियों के छात्रावास के लिए मकान देने को तैयार नहीं था। बिना मकान के अछूत छात्र-छात्राओं को कहाँ रखा जाय, यह बड़ी जटिल समस्या थी। इसके समाधान के लिए उन्होंने महाराजा से निवेदन किया और उनसे छात्रावास के लिए मकान की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। महाराजा साहब ने उत्तर दिया, "आप स्वयं पता करें कि क्या कहीं कोई सरकारी मकान खाली है। जो मकान खाली होगा, हम उसे आपको दे देंगे।" इस बीच में मास्टरजी ने अपने बच्चों को भी बुला लिया। इन्हें भी मकान पाने में बड़ी कठिनाई हुई। यद्यपि इन्हें पहले तो ऊँची जाति के मुहल्लों में मकान मिल जाता था, किन्तु ज्यों ही मकान मालिक को यह पता लगता कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अछूतों के स्कूलों के इंस्पेक्टर हैं तो वह मकान खाली करा लेता था। एक दिन मास्टरजी अचानक कारेली वाग की ओर घूमने आये। यहाँ उन्हें एक वड़ा सरकारी वँगला खाली पड़ा दिखाई दिया। चौकीदार से पूछा तो पता लगा कि यह भूतिया वँगला है। किसी अंग्रेज अफसर के लिए वनाया गया था, पर उसका वच्चा इसमें आकर मर गया। इसलिए तव से इस वँगले में कोई नहीं आता है और यह भूतिया के नाम से मशहूर हो गया है।

उसी दिन मास्टरजी महाराजा के पास गये और उन्होंने इस वँगले को उन्हें देने की माँग रखी। महाराजा साहव के आदेश से इन्हें फौरन यह वँगला मिल गया और यहाँ अछूतों के लिए छात्रावास और स्कूल वनाकर आर्यसमाज की जिन प्रवृत्तियों का श्रीगणेश किया था, वे सारे गुजरात में फैल गईं। मास्टरजी ने अपने जीवन के पहले ४२ वर्ष पंजाव में और अन्तिम ३१ वर्ष गुजरात में व्यतीत किये। उनका समूचा परिवार कट्टर आर्यसमाजी और उनकी भाँति वैदिक धर्म के प्रचार में लगा रहा। उनके सुगृहीतनामधेय पुत्र प्रसिद्ध आर्यसमाजी पण्डित आनन्दप्रियजी के प्रयास से स्थापित आर्यकुमार महासभा द्वारा आर्यसमाज की विभिन्न संस्थायें और प्रवृत्तियाँ कारेली वाग से संचालित हो रही हैं। इस समय इस महासभा द्वारा स्थापित संस्थायें निम्नलिखित हैं— आर्य कुमार सभा (स्थापित १९२३); आर्य कन्या विद्यालय, इटोला (१-१-२५); आर्य कन्या विद्यालय, वड़ौदा (१-९-२९); भील आश्रम, अमृतपुरा (३-१-२६); अवला आश्रम, वड़ौदा (१-३-२७); गुरुकुल सोनगढ़, सौराष्ट्र (१०-३-२९); हिन्दू मिशन, अहमदावाद, (२४-६-२९); आर्य कुमार पाठशालायें (अनेक स्थानों पर १-१-२५); आर्य संन्यास आश्रम, वड़ौदा (२८-८-२९); आर्य कुमार प्रेस, वड़ौदा (१६-९-२६); गुजरात सुधारक मण्डल, वड़ौदा (९-४-२६)। इनमें सर्वोच्च स्थान कन्या महाविद्यालय वड़ौदा का है।

(२) आर्य कन्या महाविद्यालय, वड़ौदा

यह गुजरात में आर्यसमाज की शिरोमणि शिक्षण-संस्था है। उत्तरी भारत में गुरुकुल काँगड़ी और इस प्रकार की अन्य शिक्षण-संस्थायें इस शती के आरम्भ में स्थापित हो गई थीं। इस शिक्षा आन्दोलन से प्रभावित और प्रेरित होकर गुजरात के कुछ ऋषि-भक्त आर्यसमाजी सद्गृहस्थों के मन में ऐसी भावना उद्बुद्ध हुई कि गुजरात में वालक-वालिकाओं के लिए पृथक्-पृथक् गुरुकुल स्थापित होने चाहिये। इनमें से अनेक आर्य पुरुषों के पुत्र गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन आदि शिक्षण-संस्थाओं में अध्ययन कर रहे थे। अतः वे आर्य सज्जन उत्तर भारत में स्थापित गुरुकुलों के आदर्श पर गुजरात में लड़के-लड़कियों के गुरुकुल स्थापित करने के लिए उत्सुक थे।

महर्षि की जन्मभूमि में पहले कन्या गुरुकुल का विकास तीन स्थानों—मलवाड़ा, इटौला तथा वड़ौदा में क्रमशः शनैः-शनैः पूरा हुआ।

मलवाड़ा कन्या ब्रह्मचर्याश्रम—सन् १९१६ में कच्छ निवासी लोहाणा जातीय आर्य सद्गृहस्थ स्वर्गीय सेठ श्री नारायणजी पुरुषोत्तम ठक्कर के चित्त में कन्याओं के लिए एक गुरुकुल पद्धति की शिक्षा-संस्था खोलने की वलवती आकांक्षा उत्पन्न हुई। इस विषय में उन्होंने अपने मित्रों और सहयोगियों से चर्चा की और मलवाड़ा (जिला सूरत) के सुप्रसिद्ध आर्य श्री मुकन्दजी कुँवरजी के पिताजी ने कन्या ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पाँच वीघे जमीन दान दी और इसके साथ ही सूरत जिले के चिखली तालुका स्थित मलवाड़ा गाँव में गुजरात के पहले कन्या गुरुकुल का कन्या ब्रह्मचर्य आश्रम के रूप में शुभारम्भ हुआ।

इटोला का कन्या विद्यालय — कुछ समय तक यह आश्रम वहाँ चलता रहा, किन्तु वाद में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण मलवाड़ा में इस आश्रम का विकास अवरुद्ध होने लगा; अधिक विकास की दृष्टि से इसे वड़ोदा से १५ मील दूर इटोला नामक गाँव में लाने का निश्चय किया गया। इसका यह कारण था कि इटोला निवासी कई आर्य वन्धु इसे वहाँ लाने के लिए प्रेमपूर्ण निमन्त्रण दे रहे थे। इनमें सुप्रसिद्ध आर्य पत्रकार, सुलेखक और धर्मप्रचारक स्वामी धर्मानन्दजी (श्री मकनलाल मघुरभाई गुप्त) अग्रगण्य थे। इन्होंने आश्रम के लिए साढ़े तीन वीघा जमीन दान दी, इस आश्रम के संचालन के लिए सद्गृहस्थ आर्यसमाजियों का एक ट्रस्ट वनाया। इसमें इटोला के सभी आर्य पुरुषों ने सहयोग दिया।

इटोला में कन्या गुरुकुल के संचालन के लिए गुजरात के आर्य विद्वान् और धर्मप्रचारक पण्डित महाराणी शंकर शर्मा और उनकी पत्नी का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इनकी देखरेख में यह संस्था अच्छी प्रगति करने लगी। किन्तु कुछ समय वाद अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण पण्डित महाराणी शंकर इटोला छोड़ कर वड़ौदा शहर में आ गये और वहाँ पुलवारी के पास एक छोटा-सा वँगला किराये पर लेकर एक छोटा-सा कन्या गुरुकुल चलाने लगे। इसे **कन्या गुरुकुल सरस्वती मन्दिर** कहा जाता था। इस संस्था के संचालन में मास्टर आत्माराम अमृतसरी, वड़ौदा राज्य के तत्कालीन दीवान सर मनुभाई नन्दशंकर मेहता, जुम्मादादा व्यायाम मन्दिर के संचालक प्रो० माणिकराव वहुमूल्य सहयोग देते रहे। इसमें महाराणी शंकर धर्मशिक्षा, इतिहास, अंग्रेजी आदि विषय पढ़ाते थे। उनकी पत्नी श्रीमती इच्छादेवी लड़कियों को गृहव्यवस्था, पाकशास्त्र, सिलाई आदि स्त्रियोपयोगी कलायें सिखाती थीं। छात्रायें रसोई से लेकर आश्रम की सफाई तक का सब कार्य स्वयमेव करती थीं। यह बात सन् १६२० की है।

श्री महाराणी शंकर शर्मा के वड़ौदा आ जाने से इटोला के कन्या विद्यालय का कार्य कुछ समय तक वन्द रहा। किन्तु स्वामी धर्मानन्द और उनके सहयोगी ट्रस्टियों के उद्योग से कुछ समय वाद यहाँ पुनः कन्या विद्यालय का काम आरम्भ किया गया। इस समय इसके संचालक स्वामी धर्मानन्द थे। मुख्याधिष्ठाता का काम वम्बई आर्यसमाज के विद्वान् श्री गिरधरलाल गोविन्दजी मेहता सपरिवार करते थे। आचार्य के पद पर गुरुकुल वृन्दावन के सुयोग्य स्नातक, संस्कृत के विद्वान् और दयानन्द दिग्विजय जैसे संस्कृत महाकाव्यों के प्रणेता पं० मेधाव्रत वड़ी निष्ठा से कर रहे थे। इस समय की अध्यापिकाओं में जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की अनेक सुयोग्य स्नातिकाएँ वड़े स्नेह, निष्ठा, लगन और उत्साह से कार्य कर रही थीं।

मद्रास निवासी ऋषिभक्त श्री माणिकजी शर्मा और वम्वई के आर्य श्री शिवजीभाई पूजाभाई कोठारी ने इटोला कन्या विद्यालय के कार्य से प्रभावित और प्रसन्न होकर यहाँ कुछ सुन्दर भवन वनवा दिये। इसी समय से इस संस्था का सम्पर्क और सम्वन्ध वड़ौदा के सुप्रसिद्ध आर्य नेता मास्टर आत्माराम अमृतसरी तथा उनके यशस्वी सुपुत्र पण्डित आनन्दप्रिय से हुआ। स्वामी धर्मानन्द का इस परिवार से पुराना परिचय था। वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अनन्य मित्र थे। इनकी बात स्वीकार करके पण्डित आनन्दप्रिय और उनकी बहिन सुशीला पण्डित प्रति रविवार को इटोला आकर छात्राओं को धर्मशिक्षा, सामूहिक व्यायाम, योगासन आदि की शिक्षा देने लगीं। थोड़े समय में ही इस संस्था में आठवीं श्रेणी तक की पढ़ाई की व्यवस्था हो गई। राजासाहब नारायणलाल पित्ती की ओर से इस संस्था को प्रतिमास पाँच सौ रुपये की सहायता मिलने लगी और छात्राओं की संख्या में वृद्धि होने लगी। उस समय इस विद्यालय की छात्राओं में अधिक संख्या गुजरात प्रान्त की कन्याओं की थी।

इस समय बड़ौदा में आर्यसमाज की लगभग सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का प्रधान केन्द्र आर्यकुमार महासभा थी। इसके प्राण पण्डित आनन्दप्रिय थे। पण्डित आनन्दप्रिय बड़ौदा कन्या महाविद्यालय के जन्मदाता, संचालक और व्यवस्थापक हैं। यदि इन्होंने इटोला के कन्या गुरुकुल को न अपनाया होता, तो वह बड़ौदा के कन्या महाविद्यालय का विशाल रूप कभी न धारण कर सकता। श्री आनन्दप्रिय का जन्म मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी के घर पर अमृतसर के बाग झण्डासिंह में २८ मई, १८९९ को हुआ था और आर्यसमाज के धार्मिक वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ। इन्हीं दिनों महर्षि के परम भक्त लाला रलाराम ने मास्टर आत्माराम के सहयोग से गुजरांवाला में एक नवीन गुरुकुल की स्थापना की थी। इस संस्था की यह विशेषता थी कि यहाँ आर्यसमाज के वैदिक विचारों तथा सिद्धान्तों की शिक्षा के साथ साथ विद्यार्थियों को पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी करायी जाती थी। श्री आत्माराम ने अपने पुत्रों को सन् १९०६ में गुजरांवाला गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया।

यहाँ के तपस्यामय सात्त्विक वातावरण का उन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। पं० आनन्दप्रिय ने सन् १९१४ में द्वितीय श्रेणी में पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास की और गुरुकुल में रहते हुए अपनी भाषण और लेखन कला का उत्तम विकास किया। इस समय तक महाराजा सयाजी गायकवाड़ के निमन्त्रण पर आत्मारामजी अमृतसर से बड़ौदा जा चुके थे और उनके बालक छुट्टियों में अपने पिताजी के पास बड़ौदा आ जाया करते थे। उन दिनों आनन्दप्रियजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। वह बहुत दुबले-पतले और बीमार रहा करते थे। एक दिन इनके पिता आनन्दप्रियजी को बड़ौदा के विख्यात पहलवान और जुम्मा दादा व्यायाम मन्दिर के निर्माता प्रो० मणिकरावजी के पास ले गये। प्रोफेसर साहब ने इनसे कहा, "१५ वर्ष के नौजवान होकर तुम शरीर से इस प्रकार अस्वस्थ क्यों हो? तुम कल से दोनों समय व्यायामशाला में आ जाओ।" उनके शब्दों ने पं० आनन्दप्रिय पर जादू का काम किया। एक वर्ष तक पढ़ाई छोड़ कर वह अपने शरीर की उन्नति में लगे रहे। अपने स्वास्थ्य को उत्तम और शरीर को सुदृढ़ बनाने के बाद १९१६ में उन्होंने आगरा की प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था सेण्ट जोंस कॉलिज में प्रवेश लिया और सन् १९१९ में यहाँ से बी०ए० की परीक्षा पास की। इस महाविद्यालय जीवन में वह वाद-विवाद प्रतियोगिता और नाटकों तथा अन्य अध्ययनेतर प्रवृत्तियों में खूब भाग लेते रहे। इनके कारण वह भविष्य में प्रभावशाली वक्ता, सुलेखक, सभा-सम्मेलनों के आयोजक एवं उत्तम संगठनकर्ता बन गये।

शिक्षा समाप्ति के बाद बड़ी विचित्र परिस्थिति में इन्हें बड़ौदा से कोल्हापुर जाना पड़ा। वहाँ के राजा छत्रपति शिवाजी के वंशज थे, किन्तु वह हिन्दुओं की सामाजिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूढ़ियों और प्रथाओं से इतने उद्विग्न हो गये थे कि उन्होंने अपने राज्य की शिक्षण-संस्थाएँ ईसाई मिशनरियों को सौंपने का निर्णय किया। जब वड़ौदा में मास्टर आत्माराम को यह समाचार मिला, तो वह अपने पुत्र आनन्दप्रियजी के साथ कोल्हापुर नरेश से बात करने गये। उनके परामर्श से कोल्हापुर की शिक्षण-संस्थाओं के संचालन का दायित्व महाराजा ने संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा को दिलवा दिया। वहाँ का प्रसिद्ध राजाराम कॉलिज और अन्य शिक्षण-संस्थाएँ इस प्रकार आर्यसमाज के तत्त्वावधान और निरीक्षण में काम करने लगीं।

कोल्हापुर नरेश मास्टरजी और उनके पुत्र से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कहा, "मास्टरजी मैं चाहता हूँ कि कोल्हापुर की सड़क पर चलने वाला मजदूर और चपरासी तक आर्यसमाजी वन जाये। आप ऐसा उपाय कीजिए। मैं आपके पुत्र आनन्दप्रिय को अपने राजकुमार राजाराम का कम्पेनियन (साथी) बनाता हूँ।" उन्होंने सलाह दी कि इस नवयुवक को एल-एल० वी० वनाओ—"मैं इसे ६० रुपये की छात्रवृत्ति देना स्वीकार करता हूँ। परीक्षा पास करने के वाद मैं इसे अपना वकील बनाना चाहता हूँ ताकि यह मुझे न्याय विभाग में सहायता दे सके।"

इस परामर्श के अनुसार पं० आनन्दप्रिय इलाहावाद विश्वविद्यालय के लॉ कॉलिज में प्रविष्ट हो गये और वहीं छात्रावास में रहकर वकालत की पढ़ाई करने लगे। सन् १९२१ में एल-एल० वी० की परीक्षा उत्तीर्ण कर वह कोल्हापुर नरेश के पास गये और उनकी सेवा में रहते हुए आर्यसमाज का कार्य करते रहे। कुछ समय वहाँ काम करने के वाद इन्हें वड़ौदा आना पड़ा। मास्टर आत्माराम ने उनका परिचय वड़ौदा के महाराजा से करवाया और उन्होंने आनन्दप्रियजी को अपने न्याय विभाग में द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त करवा दिया। सरकारी सेवा के साथ-साथ आनन्दप्रियजी ने अपने पिताजी की प्रेरणा से हरिजन छात्रों के एक संगठन का निर्माण किया। इसका नाम 'आर्य कुमार सभा' रखा गया। छुट्टी के दिनों में इन छात्रों को अपने साथ लेकर वह आसपास के गाँवों में आर्यसमाज के विचारों का प्रचार करने लगे। समयान्तर में यही सभा 'आर्य कुमार महासभा' के विशाल व सुदृढ़ संगठन के रूप में विकसित हो गई।

इसी समय खोजा सम्प्रदाय के गुरु सर आगा खाँ ने गुजरात के आनन्द प्रदेश में नकलंकी आश्रम स्थापित करके गुजरात के हजारों हरिजनों को मुस्लिम बनाने की योजना बनायी और उसके लिए १० लाख रुपये की राशि देना स्वीकार किया। हरिजनों को वस्त्र, छात्रवृत्तियाँ आदि अनेक प्रकार के आर्थिक प्रलोभन देकर मुसलमान बनाने का प्रयास आरम्भ किया गया। इसका प्रतिकार करने के लिए पण्डित आनन्दप्रिय के नेतृत्व में आर्य कुमार सभा के कार्यकर्ताओं ने आनन्द प्रदेश में घूम-घूमकर हिन्दू धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया और हरिजनों को मुसलमान वनाने के प्रयासों का प्रवल विरोध किया। मुसलमान वन गये हजारों हरिजनों को हिन्दू धर्म में दीक्षित करके उनके लिए 'कुमार आश्रम' स्थापित किये, और उनकी सहायता का काम वेग से चलाया।

इसी समय उन्होंने इस काम के लिए सरकारी नौकरी छोड़ दी और अपने को आर्यसमाज के लिए समर्पित कर दिया। अछूतोद्धार, वैदिक धर्म के प्रचार, तथा आर्यसमाज को सशक्त वनाने आदि के सम्बन्ध में जो कार्य उन्होंने किये, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पर यहाँ हमें उनके केवल शिक्षाविषयक कार्यकलाप पर ही प्रकाश डालना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटोला का कन्या महाविद्यालय इस समय कुछ महर्षिभक्त आर्य गृहस्थों के ट्रस्ट की देखरेख में चल रहा था। इस ट्रस्ट के सदस्यों ने अपनी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों पर विचार करते हुए अपनी इच्छा से कन्या विद्यालय के संचालन का दायित्व बड़ौदा की आर्य कुमार महासभा को सौंप दिया। इसका प्रधान कारण यह था कि इटोला के कन्या महाविद्यालय के पुराने ट्रस्टी प्रायः खेती-वाड़ी आदि का व्यवसाय करने वाले व्यक्ति थे। वे अपना अधिक समय विद्यालय में नहीं लगा सकते थे। उनकी यह भावना थी कि आर्य कुमार महासभा जैसी एक लोक सेवक संस्था इस शिक्षण-संस्था का विकास अधिक अच्छे ढंग से कर सकती है। इस प्रकार अब इस संस्था का दायित्व पूर्णरूप से पण्डित आनन्दप्रियजी तथा आर्य कुमार महासभा के उनके सहयोगी कर्मठ कार्यकर्ताओं के हाथ में आ गया।

आर्य कुमार सभा ने संस्था के आन्तरिक संचालन के लिए पुराने कार्यकर्ताओं का पूरा सहयोग प्राप्त किया। इसके व्यवस्थापक स्वामी धर्मानन्द, अधिष्ठाता श्री गिरधरलाल गोविन्दजी मेहता और आचार्य श्री मेधाव्रत बने रहे। संस्था की आर्थिक जिम्मेदारी और वाह्य व्यवस्था का भार आर्य कुमार महासभा पर आ गया।

बड़ौदा में आर्य कुमार महासभा द्वारा संचालित संस्थाओं का मुख्य कार्यालय कारेली वाग में था। इसके पास ही किसी समय सात बीघा जमीन में रंगाई का एक कारखाना चलता था। कुछ समय वाद यह किन्हीं कारणों से वन्द हो गया। इसके वन्द हो जाने पर इसके मकान खाली पड़े थे। इनमें तीन बड़े-बड़े भवन तथा मशीनों आदि के लिए कुछ कमरे थे। यह सारा कारखाना जमीन सहित १४ हजार रुपये में विक रहा था। आर्य कुमार महासभा के प्रधान राजा नारायणलाल चित्ती ने इसे सभा के लिए खरीद लिया और यह भू-सम्पत्ति उसे दान में दे दी।

इसे मिलने पर सभा के सामने यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इन भवनों का क्या उपयोग किया जाय। पर्याप्त विचार-विमर्श के वाद यह निश्चय किया गया कि इटोला में स्थित आर्य कन्या विद्यालय की प्रारम्भिक चार श्रेणियों को वहाँ पर रखकर उच्च श्रेणियों को बड़ौदा लाया जाय और इन भवनों में रखा जाय। इस प्रकार जहाँ पहले मुर्दार चमड़े की रँगाई का कार्य होता था, वहाँ अव कन्याओं को आर्य संस्कृति के रंग में रँगने तथा उनके चरित्र-निर्माण का कार्य करने का निश्चय किया गया।

उपर्युक्त निर्णय के अनुसार २१ सितम्बर, १९२९ को कन्या विद्यालय की दो बड़ी श्रेणियाँ आचार्य पण्डित मेधाव्रत के साथ बड़ौदा आ गईं और विद्यालय का एक विभाग बड़ौदा में कार्य करने लगा। इस निर्णय से कन्या विद्यालय के व्यवस्थापक और प्रतिष्ठाता श्री स्वामी धर्मानन्द तथा मुख्याधिष्ठाता श्री गिरधरलाल गोविन्द मेहता और उनके सहयोगी इटोलावासी आर्यगृहस्थों को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उनकी यह इच्छा थी कि इस संस्था का सम्पूर्ण विकास इटोला में ही आर्य संस्कृति के सिद्धान्तों के अनुसार प्रकृति के शान्त, एकान्त स्थान में नगरों के दूषित कोलाहलपूर्ण वातावरण से मुक्त स्थान में होना चाहिये।

इसी समय युगाँडा प्रदेश के सुप्रसिद्ध उद्योगपति और ऋषिभक्त सेठ श्री नानजी भाई कालिदास मेहता ने अपने भाई श्री वल्लभदासजी को अफ्रीका से गुजरात भेजा और अपना यह विचार प्रकट किया कि वह अपने परिवार की छः पुत्रियों को कन्या महाविद्यालय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रविष्ट करना चाहते हैं। उनके भाई ने इटोला और वड़ौदा, दोनों स्थानों पर कन्याओं की शिक्षण-संस्थाओं का अवलोकन करने के वाद यह आग्रह किया कि उनकी पुत्रियों को वड़ौदा के कन्या विद्यालय में पण्डित आनन्दप्रियजी के ही निरीक्षण में रखा जाय। इस परिस्थिति में वड़ौदा में उन कन्याओं के लिए विशेष व्यवस्था करनी आवश्यक हो गई। इस आयोजन के कारण कन्या महाविद्यालय के समूचे प्रारम्भिक विभाग को इटोला से वड़ौदा में लाया गया। इसके परिणामस्वरूप इटोला में चलने वाला विद्यालय का प्राथमिक विभाग वन्द हो गया, समूचा कन्या विद्यालय वड़ौदा में चलने लगा।

वड़ौदा आकर कन्या गुरुकुल प्रगति पथ पर अग्रसर होने लगा। यह विद्यालय इटोला में चार कन्याओं से शुरू हुआ था, अव छात्राओं की संख्या वढ़कर १४० हो गई। पण्डित आनन्दप्रिय और उनके सभी सहयोगी संस्था की उन्नति में जुट गये। आचार्य का काम श्री मेघाव्रतजी को सौंपा गया। विद्यालय का समस्त पाठ्यक्रम सर्वथा स्वतन्त्र रीति से वनाया गया। इसका तत्कालीन व्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति से कोई सम्वन्ध नहीं था। इस संस्था में शिक्षा का माध्यम गुजराती भाषा था। इसके साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन आवश्यक था। गृह प्रवन्ध, पदार्थ विद्या, संगीत और नृत्य के प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था थी।

इस विद्यालय की एक वड़ी विशेषता शारीरिक शिक्षा पर विशेष वल देना था। उस समय देश के साम्प्रदायिक वातावरण में वड़ा तनाव और विक्षोभ था। विधर्मी हिन्दू नारियों की निर्वलता का लाभ उठा रहे थे। इन्हें वीरांगना वनाना समय की जवर्दस्त माँग थी। इसे भली-भाँति पूरा करने के लिए यहाँ छात्राओं को उनके लिए सव प्रकार का सम्भव शारीरिक शिक्षण—लाठी चलाना, मुग्दर घुमाना, धनुष-वाण चलाना, योगासन, प्राणायाम, स्तूप निर्माण आदि सिखाया जाने लगा। इसके अनुरूप उनका गणवेश निकर तथा कमीज निश्चित किया गया। अव तक पर्दे में रहने वाली भारतीय नारी का यह शारीरिक शिक्षण और गणवेश वड़ा क्रान्तिकारी एवं मौलिक परिवर्तन था। इसने इस विद्यालय को देश में वड़ा लोकप्रिय और प्रसिद्ध वनाया।

१९३३ में यहाँ महाविद्यालय विभाग खोला गया। इसका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का था। यहाँ स्नातिकाओं को **भारतीसमलंकृता** की उपाधि प्रदान की जाती थी। शनैः-शनैः इस संस्था की लोकप्रियता वढ़ने लगी। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, विहार, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों तथा अफ्रीका, वर्मा आदि अन्य देशों से आर्य संस्कृति में अनुराग रखने वाले भारतीयों की कन्यायें भी इस संस्था में प्रविष्ट होकर विद्याभ्यास करने लगीं। अनेक शिक्षाशास्त्री इसके कार्य से प्रभावित हुए और इसने आर्यजगत् की प्रमुख राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था के रूप में देश में अपना विशिष्ट स्थान वना लिया।

अपना स्वतन्त्र पाठ्यक्रम होने के कारण इसे सरकार के शिक्षा विभाग से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। संस्था को सदैव आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इनके समाधान के लिए १९३४ में सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता ने पण्डित आनन्दप्रिय को यह सुझाव दिया, कि "आप अपनी छात्राओं सहित अफ्रीका महाद्वीप की प्रचारयात्रा और सरस्वती यात्रा पर आइये। यात्रा मण्डली के आने-जाने का सारा व्यय मैं दूँगा। अफ्रीका में भारतीय संस्कृति प्रेमी प्रवासी भाई आपकी कन्याओं के भाषणों और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदर्शनों से प्रभावित होकर आपकी आर्थिक सहायता कर सकेंगे और संस्था को कई दृष्टियों से बड़ा लाभ होगा।"

इस सुझाव के अनुसार आर्य कन्या महाविद्यालय की दसवीं और आठवीं श्रेणी की २२ छात्रायें अपने कतिपय गुरुजनों के साथ अफ्रीका की प्रचारयात्रा पर गईं। वे विशेष रूप से आयोजित कार्यक्रमों में सार्वजनिक सभा मंचों पर अफ्रीका के विभिन्न नगरों में वेदमन्त्रों का सस्वर पाठ करती थीं, गुजराती, हिन्दी और संस्कृत भाषाओं में धाराप्रवाह भाषण करती थीं, सामूहिक व्यायाम, धनुर्विद्या के खेल और योगासनों का प्रदर्शन करती थीं। ये समस्त प्रदर्शन अतीव प्रभावशाली सिद्ध हुए। पूर्वी अफ्रीका के विभिन्न नगरों में इनका खूब स्वागत हुआ; दस महीने के प्रवास में संस्था को दो लाख रुपये दान में प्राप्त हुए। विदेश स्थित अनेक भारतीयों ने कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा में अपनी कन्याओं को शिक्षा देने के लिए भेजने का निश्चय किया। इस यात्रा से प्रभावित होकर सात सौ नयी कन्यायें कन्या महाविद्यालय में प्रवेश के लिए तैयार हुईं।

पूर्वी अफ्रीका में प्रचार के बाद कन्या गुरुकुल की छात्राओं ने मध्य तथा दक्षिणी अफ्रीका की भी यात्रा की। दक्षिणी अफ्रीका में उन दिनों भारत के राजदूत कुँवर महाराजसिंह थे। उन्होंने इन कन्याओं की प्रचारयात्रा में बड़ी दिलचस्पी ली। दक्षिणी अफ्रीका में गोरे-काले का भेदभाव चरम पराकाष्ठा पर है। वहाँ श्वेत तथा श्याम जातियों के बिल्कुल अलग स्कूल हैं। गोरी जातियों के स्कूलों में काली जातियों का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है। किन्तु बड़ौदा कन्या गुरुकुल की छात्राओं के कार्यक्रम वहाँ इतने लोकप्रिय हुए कि रंग-भेद के कारण जिन स्कूलों में भारतीय नहीं जा सकते थे, वहाँ भी इन बालिकाओं को जाने तथा अपने प्रदर्शन दिखाने की अनुमति मिल गई। डच और अंग्रेजी स्कूलों में इन छात्राओं के अनेक कार्यक्रम रखे गये। रंग-भेद का गढ़ माने जाने वाले दक्षिण अफ्रीका में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इस विषय में कुँवर महाराजसिंह ने बड़ौदा के महाराजा को बधाई देते हुए एक पत्र में लिखा था, कि "आपके राज्य की वीर पुत्रियों ने रंग-भेद के वातावरण वाले इस प्रदेश में भारतीयों का गौरव बढ़ाने में प्रशंसनीय कार्य किया है।"

इस विदेश यात्रा में कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा की लड़कियों ने भारत के गौरव में वृद्धि का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, उसके लिए भारत वापिस आने के बाद इस यात्रा मण्डली का बम्बई, अहमदाबाद और बड़ौदा में भव्य स्वागत हुआ। इस यात्रा से संस्था को जो दान मिला था, उससे साढ़े १४ बीघा नयी जमीन खरीद कर अफ्रीका छात्रावास, सरस्वती भवन, सेठ मथुरादास चिकित्सालय, श्रीमती गंगाबहन मूलजीभाई पुस्तकालय, भोजनालय आदि अनेक आवश्यक भवन बनाये गये, संस्था को नया रूप प्रदान किया गया। इस विदेश यात्रा से कन्या गुरुकुल की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ।

सन् १९३६ ई० में आर्य कन्या महाविद्यालय की १० छात्राओं का पहला दल स्नातिका बना। इस संस्था का पहला दीक्षान्त समारोह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इसमें दीक्षान्त भाषण बड़ौदा महाराज की महारानी चीमनाभाई साहिब गायकवाड़ ने दिया। इस समारोह की यह विशेषता थी कि इस वर्ष स्नातिका बनने वाली सभी स्नातिकाओं ने दो वर्ष तक अपनी मातृसंस्था की सेवा करना स्वीकार किया। इनमें से तीन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातिकाओं —सुश्री यशोदावहिन तथा सुश्री रश्मिवहिन तथा अनन्तवहिन ने आजीवन कौमार्यव्रत धारण करते हुए इस संस्था के लिए जीवन समर्पण करने का संकल्प प्रकट किया। वाद में सुश्री यशोदावहिन के आचार्या और रश्मिवहिन के उपाचार्या वनने और स्नातिकाओं द्वारा संस्था के अध्यापन में सहायता देने से इस संस्था की वड़ी उन्नति हुई।

१९३८ में कन्या गुरुकुल की छात्राओं ने वर्मा की यात्रा की और गुरुकुल के लिए ४० हजार रुपये का दान प्राप्त किया। सन् १९४८ के दिसम्वर मास में सेठ नानजीभाई की प्रेरणा से अफ्रीका की दूसरी प्रचारयात्रा आरम्भ की गई। इसके अध्यक्ष पं० आनन्दप्रिय थे और इस वार वड़ौदा की छात्राओं ने अपने प्रचार एवं प्रदर्शन से संस्था के लिए १० लाख ३६ हजार रुपया दान प्राप्त किया। इस वार की यात्रा में यह छात्र मण्डली केनिया, युगाण्डा, तन्जानिया, वेल्जियम, कांगो, उत्तर रोडेशिया, दक्षिण रोडेशिया, न्यासालैण्ड, पुर्तगाली पूर्व अफ्रीका, जंजीवार आदि देशों में गई। सर्वत्र इसका भव्य स्वागत हुआ। तंजानिया में गैलवोसस नामक एक यूनानी महानुभाव ने कन्याओं के व्यायाम के कार्यक्रम से प्रभावित होकर ढाई हजार पौंड का दान दिया। इस यात्रा से इस संस्था को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।

कन्या महाविद्यालय के कार्यकर्ता—कन्या महाविद्यालय, वड़ौदा को विकसित करने और विशाल रूप देने में आनन्दप्रियजी के परिवार के व्यक्तियों तथा कुछ अन्य आर्य वन्धुओं ने वहुमूल्य सहयोग दिया। जिस प्रकार लाला देवराजजी को जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना में उनकी माताजी ने वहुमूल्य सहयोग दिया था, उसी प्रकार पण्डित आनन्दप्रिय को अपनी माता श्रीमती यशोदादेवी से वड़ा सहयोग मिला। इनकी माताजी काशीपुर (उत्तरप्रदेश) के मुंशी वृन्दावनलालजी की कन्या थीं। मुंशीजी महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाषणों को सुनकर वहुत प्रभावित हुए और आर्यसमाज के सदस्य वने। उन दिनों कन्याओं को शिक्षा देना पाप समझा जाता था। ऐसे रूढ़िवादी युग में श्री वृन्दावनजी ने अपनी सुपुत्री यशोदादेवी को वैदिक धर्म की शिक्षा प्रदान की। कन्या को शिक्षा देने के प्रगतिशील व्यवहार के कारण उनकी माहेश्वरी विरादरी के लोग उनसे नाराज हो गये और उन्होंने मुंशी वृन्दावनजी को विरादरी से वहिष्कृत कर दिया। मुंशीजी ने अपनी पुत्री का विवाह वैदिक विधि से मास्टर आत्माराम अमृतसरी से किया। काशीपुर से अमृतसर आकर श्रीमती यशोदादेवी ने अपने पति को सभी धार्मिक और सामाजिक कार्यों में सहयोग देना शुरू किया।

पण्डित मेधाव्रत येवला के पाटीदार परिवार में उत्पन्न हुए थे और इनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल महाविद्यालय, वृन्दावन में हुई थी। येवला के कुछ गुजराती पाटी परिवार आर्यसमाज में दीक्षित होने के वाद अपने वच्चों को गुरुकुलों में भेज कर अपने आर्यसमाज के प्रति प्रेमभाव का परिचय दे रहे थे। इसी प्रकार मेधाव्रतजी वृन्दावन पहुँचे। इनकी जन्मजात सहज काव्य प्रतिभा छात्रकाल में पनपने लगी। इटोला में आर्य कन्या विद्यालय शुरू होने पर ये उसके आचार्य पद पर आसीन हुए। इटोला से जब यह संस्था १९२९ में वड़ौदा आयी तो पण्डित मेधाव्रतजी भी वड़ौदा आ गये और १९३८ तक इस संस्था के आचार्य पद पर वने रहे। उन्होंने 'दयानन्द दिग्विजय' नामक एक महाकाव्य में महर्षि दयानन्दजी की जीवनी की रचना सुललित संस्कृत छन्दों में की। वाद में वह कन्या गुरुकुल, नरेला चले गये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुश्री बहन सुशीला पण्डित आनन्दप्रियजी की सबसे छोटी बहन हैं। अपने जीवन के उषा काल में आर्य कन्या महाविद्यालय का मुख्याधिष्ठात्री पद और बाद में आचार्या का पद ग्रहण करके इन्होंने इस संस्था की २५ वर्ष तक सेवा की है। आर्य कन्या महाविद्यालय को वर्तमान रूप देने में उनकी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

आचार्या यशोदा बहन इटोला में कन्या विद्यालय स्थापित होने पर उसकी प्रथम छात्रा थीं। बचपन से वह बड़ी होनहार छात्रा थीं। १९३७ में बड़ौदा कन्या महाविद्यालय की पहली छात्रा मण्डली स्नातिका बनी तो उसमें यशोदा बहन प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं। उनके चाचाजी ने उनके विवाह के लिए कई वर बताये, किन्तु यशोदाजी ने संकल्प कर लिया था कि वह आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर संस्था को अपनी सेवाएँ देंगी। उस समय इनके साथ की कई अन्य स्नातिकाओं—सुश्री सुभद्रा, सुश्री रश्मि, सुश्री अनन्तबहन और सुश्री वासन्तीबहन ने भी अपना जीवन संस्था की सेवा के लिए समर्पित किया। जब इन स्नातिकाओं ने अधिष्ठात्री और अध्यापिकाओं के रूप में कार्य करना शुरू किया तो संस्था की उन्नति तीव्र गति से होने लगी। १९४९ में अफ्रीका महाद्वीप में धनसंग्रह के लिए जाने वाली दूसरी मण्डली का नेतृत्व सुश्री यशोदाबहन एवं रश्मिबहन ने किया। इस यात्रा में बड़ौदा कन्या महाविद्यालय को १० लाख से अधिक की धनराशि प्राप्त हुई। १९५७ में आचार्या सुशीला पण्डित के सेवा निवृत्त होने पर यशोदाबहन को आचार्या बनाया गया। इसी समय संस्था ने सैकेण्डरी स्कूल के रूप में मान्यता प्राप्त की और परिवर्तित परिस्थितियों में भी यशोदाबहन ने अपनी सूझबूझ और कार्यकुशलता से संस्था की पुरानी उज्ज्वल परम्पराओं की रक्षा की।

नवीन परिवर्तन--१९६० तक इस संस्था का अपना स्वतन्त्र पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धति चलती रही। किन्तु वहाँ सरकारी पाठ्यक्रम को शुरू करने के लिए कन्याओं के अभिभावकों और संरक्षकों द्वारा बहुत बल दिया जा रहा था। इसके परिणामस्वरूप १९६१ में इस संस्था को सैकेण्डरी हाईस्कूल के रूप में सरकारी मान्यता प्राप्त हुई। इस पद्धति से कन्याओं के अभिभावकों को अवश्य सन्तोष हुआ, किन्तु संस्था में सरकारी प्रभाव बढ़ने के साथ ही संस्था के पुराने आदर्श धूमिल होने लगे।

१९६३ में जामनगर आयुर्वेद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक आर्य कन्या शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय यहाँ शुरू किया गया। इटोला से १९२९ में कन्या गुरुकुल बड़ौदा आने के बाद वहाँ के भवन बेकार पड़े हुए थे। उनका सदुपयोग करते हुए आर्य कन्या व्यायाम महाविद्यालय खोला गया और इसके बाद संगीत तथा भरतनाट्यम की शिक्षा के लिए आर्य कन्या ललित विद्यालय की तथा छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए आनन्द बालवाड़ी की स्थापना की गई। इन संस्थाओं के विकास के लिए अफ्रीका से प्राप्त धन-राशि का उपयोग किया गया।

इन संस्थाओं को भविष्य में आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त बनाने के लिए तीन लाख रुपया व्यय करके आर्य कुमार आश्रम में सेण्ट्रल बैंक का भवन और १२ दुकानें बनाई गईं। इनका मासिक किराया लगभग १० हजार रुपये है।

इस संस्था को स्थापित हुए पचास वर्ष से अधिक अवधि बीत चुकी है। इसकी १२५ से अधिक स्नातिकाओं ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बड़ा सराहनीय कार्य किया है। कुछ स्नातिकाओं ने अपनी मातृसंस्था आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा को जीवनदान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है, और अन्य स्नातिकायें विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं में कार्य कर रही हैं। कुछ स्नातिकाओं ने आर्यसमाज के प्रचार के काम में भाग लिया है। राजनीतिक क्षेत्र में भी कई स्नातिकाओं ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। अनेक स्नातिकायें विधानसभा और संसद् की सदस्य भी चुनी गई हैं। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में उप-वित्तमन्त्री पद को सुशोभित करने वाली श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा इसी संस्था की स्नातिका हैं। श्रीमती ज्ञानवती प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की सचिव थीं। गुजरात और सौराष्ट्र के नारी जागरण, स्त्रीशिक्षा के प्रसार तथा आर्यसमाज के प्रचार में इस संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

आर्य कन्या शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय---वैदिक विषयों की शिक्षा के साथ-साथ कन्या महाविद्यालय को संचालित करने वाली आर्य कुमार महासभा का एक मौलिक उद्देश्य कन्याओं को आयुर्वेद का ज्ञान करानां और कुशल महिला चिकित्सक तैयार करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पण्डित आनन्दप्रिय द्वारा एक योजना तैयार की गई। इसे गुजरात सरकार ने स्वीकार कर लिया और १४ जुलाई, १६६३ को आर्य कन्या महाविद्यालय के परिसर में आर्य कन्या आयुर्वेद महाविद्यालय की विधिवत् स्थापना की गई। आयुर्वेद कॉलिज के प्रिंसिपल आरम्भ में गुजरात के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री रणछोड़भाई आयुर्वेदाचार्य थे। वह १२ वर्ष तक इसके विकास में लगे रहे और १० कन्याओं से आरम्भ होने वाले इस आयुर्वेद महाविद्यालय में इस समय १५० से अधिक कन्यायें शिक्षा पा रही हैं और यहाँ से प्रशिक्षण पाने के बाद अनेक स्नातिकायें वैद्यों तथा चिकित्सकों के रूप में समाज में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। इस महाविद्यालय में आयुर्वेद से सम्बद्ध शरीर-क्रिया-विज्ञान, रसशास्त्र, द्रव्य-गुण, चिकित्सा शास्त्र आदि सभी आवश्यक विषयों की पढ़ाई होती है। यहाँ साढ़े पाँच वर्ष का बी० एस० ए० एम० का डिग्री पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। यह महाविद्यालय जामनगर के गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है और इसे गुजरात सरकार की मान्यता प्राप्त है। इस महाविद्यालय में कन्याओं को आयुर्वेद की दवाइयाँ, भस्म, रस आदि के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान कराने के उद्देश्य से एक विशाल फार्मेसी भी है। इसकी स्थापना १६७२ में की गई थी। इसकी ओषधियाँ बड़ी शुद्ध और प्रामाणिक समझी जाती हैं। इनकी लोकप्रियता और उत्पादन बढ़ रहा है। इस महाविद्यालय की छात्राओं को आयुर्वेद का क्रियात्मक ज्ञान कराने के लिए 'कुलमाता यशोदा देवी आयुर्वेद हस्पताल' भी है; जहाँ स्त्रीरोग, प्रसूति, शल्यशाला, पंचकर्म, निदान और चिकित्सा के विभिन्न विभाग हैं। इसके अन्तरंग विभाग में ६० शैयायें हैं, और बहिरंग विभाग में बाहर से आने वाले बीमारों की चिकित्सा की जाती है। इस समय इसके प्रिंसिपल श्री सुरेन्द्रनाथ आयुर्वेदालंकार हैं।

आर्य कन्या व्यायाम महाविद्यालय, इटोला---आर्य कन्या महाविद्यालय में आरम्भ से ही मानसिक शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा भी दी जाती थी। इसकी छात्राओं ने अपने व्यायाम-योगासन आदि के प्रदर्शनों से देश-विदेश में बड़ी ख्याति प्राप्त की है। इसके संस्थापक स्वयमेव व्यायाम के प्रेमी तथा अनन्य उपासक हैं। १६६३ में उन्होंने गुजरात की स्त्रियों को शारीरिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए आर्य कुमार महासभा के तत्त्वावधान में एक स्वतन्त्र व्यायाम महाविद्यालय की स्थापना की। इटोला से आर्य कन्या विद्यालय के बड़ौदा आ जाने के बाद वहाँ के भवनों का उपयोग इस महाविद्यालय के लिए किया जा रहा है। इसकी व्यवस्था श्री सोमभाई पटेल तथा गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नातक श्री नटवरलाल पटेल वेदालंकार कर रहे हैं। पिछले १३ वर्षों में इस महाविद्यालय का बड़ा विकास हुआ है। यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी है। इसमें साढ़े तीन सौ से अधिक गुजराती कन्यायें शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं, और गुजरात के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

आर्य कन्या ललित कला विद्यालय, बड़ौदा--१९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में ललित कलाओं के प्रति एक नवीन अभिरुचि जागृत हुई है। स्त्रियों में अपनी पुरानी कलाओं को सीखने की उत्कट अभिलाषा है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए उच्च कोटि का कलाकेन्द्र स्थापित करने के उद्देश्य से आर्य कुमार सभा ने जुलाई, १९७० में आर्य कन्या ललित कला विद्यालय की स्थापना की है। इस विद्यालय में संगीत, नृत्य और वाद्यकला की शिक्षा दी जाती है और बृहत् गुजरात संगीत समिति की ओर से चलाई जाने वाली संगीत की परीक्षाओं के लिए कन्याओं को प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस विद्यालय के दो विभाग हैं। पहले विभाग में आयुर्वेद कॉलिज तथा आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा के छात्रावासों में रहने वाली और शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याओं को शिक्षा दी जाती है। दूसरे विभाग में बड़ौदा शहर से आने वाली लड़कियाँ संगीत की शिक्षा प्राप्त करती हैं। यहाँ शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, भरतनाट्यम् तथा लोकनृत्यों की शिक्षा देने की व्यवस्था है।

इस विद्यालय की आचार्या भरतनाट्यम् की सुप्रसिद्ध कलाकार कुमारी प्रतिभा बहन पण्डित भारतीसमलंकृता हैं। भारत के विविध प्रदेशों में इस संस्था की ओरसे अनेक सफल प्रदर्शन आयोजित किये जा चुके हैं। पिछले वर्षों में कई वार इस संस्था की कन्याओं ने कुवैत, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका, जापान, थाईलैण्ड तथा यूरोप के अनेक देशों में अपनी कला का सफल प्रदर्शन किया है।

(३) आर्य कन्या गुरुकुल, पोरबन्दर तथा गुरुकुल महिला आर्ट्स कॉलिज, पोरबन्दर

पोरबन्दर सौराष्ट्र (काठियावाड़) का एक प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र है। प्राचीन काल में परम्परागत अनुश्रुति के अनुसार यह योगिराज श्रीकृष्ण के बाल्यसखा सुदामा की नगरी थी, आधुनिक युग में इसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। यहाँ आर्य कन्या गुरुकुल की स्थापना आर्य संस्कृति के परम उपासक तथा महर्षि के अनन्य भक्त राज्यरत्न सेठ श्री नानजीभाई कालिदास मेहता की उदार आर्थिक सहायता और पुरुषार्थ से सन् १९३६ ई० में हुई।

१९३३ ई० में आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा की कुछ कन्यायें सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता के निमन्त्रण पर अफ्रीका में पण्डित आनन्दप्रिय के नेतृत्व में धर्मप्रचार और धन संग्रह के लिए गई थीं। इन बालिकाओं के सस्वर वेदमन्त्र पाठ, योगासन, धनुर्विद्या तथा व्यायाम के प्रदर्शनों, वक्तृत्व कला तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इनसे उन्हें स्त्रीशिक्षा के महत्त्व का बोध हुआ। उन्हें यह विश्वास हुआ कि कन्याओं को यदि समुचित रूप से शिक्षा दी जाय, तो उनकी अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। देश की उन्नति एवं नवनिर्माण का एक सर्वोत्तम उपाय बालिकाओं का प्रशिक्षण है। कन्या गुरुकुल के माध्यम से स्त्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति के उत्थान, चरित्र निर्माण और नारी जागरण की ओर भारतीयों का ध्यान आकृष्ट हुआ। सेठ नानजीभाई कालिदास ने इस प्रकार के एक कन्या गुरुकुल की पोरवन्दर में स्थापना करने के लिए दो लाख रुपये का दान देने की घोषणा की।

इसके वाद स्वदेश लौटने पर वह पोरवन्दर के तत्कालीन महाराज से मिले। उनके सामने अपनी योजना प्रस्तुत की, उनके वहुमूल्य सहयोग से कन्या गुरुकुल के लिए आवश्यक भूमि प्राप्त की और इसके वाद संवत् १९९३ (सन् १९३६) की कार्तिक सुदी ११ के शुभ दिन केवल सात कन्याओं से इस विद्यालय का शुभारम्भ किया और इसकी नींव एक हरिजन वाला के हाथ से रखवाई गई। इस अवसर पर काठियावाड़ के अनेक प्रतिष्ठित सम्भ्रान्त व्यक्ति, ठाकुर, सम्मानित राजपुरुष, देशी राजा, स्वामी शंकरानन्द और वड़ौदा गुरुकुल की ८४ लड़कियाँ उपस्थित थीं। इनकी उपस्थिति से इसकी स्थापना को विशिष्ट महत्त्व एवं गरिमा प्राप्त हुई।

शुरू में इस संस्था की मुख्याधिष्ठात्री स्नातिका शान्तावहिन वर्मा वनाई गईं। वह उत्तर-भारत की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था कन्या महाविद्यालय, जालन्धर की प्रतिभाशाली स्नातिका हैं। इन्होंने वड़ौदा कन्या विद्यालय की प्रारम्भिक अवस्था में इटोला में इसके निर्माण में प्रशंसनीय भाग लिया था, और वड़ौदा कन्या महाविद्यालय में काफी समय तक काम करती रही थीं। सेठ नानजीभाई कालिदास के अनुरोध पर वह पोरवन्दर आईं। इसके विकास में उनका स्मरणीय योगदान है। आनन्दप्रियजी के शब्दों में सुश्री शान्तावहिन अपने नाम के अनुसार वड़ी शान्तिप्रिय, मूक साधिका, निष्काम कर्म की उपासिका और महर्षि दयानन्द सरस्वती की भक्त हैं। वह जिस किसी संस्था में रहीं, उसको पनपाने में अपनी पूरी शक्ति और योग्यता लगाती रहीं। पोरवन्दर में भी उन्होंने ऐसा ही किया।

आरम्भ में पोरवन्दर कन्या गुरुकुल की आचार्या पद पर स्नातिका धर्मवतीजी नियुक्त की गईं। इसकी अन्य अध्यापिकाओं में वड़ौदा के आर्य कन्या महाविद्यालय गुरुकुल की सुयोग्य स्नातिका सुश्री रश्मिवहिन तथा सुश्री अनन्तवहिन के नाम उल्लेखनीय हैं। आरम्भिक वर्षों में संस्था के संचालन में इनका सराहनीय योगदान रहा। इस गुरुकुल के देर से स्थापित होने के कारण इसे इस वात का वड़ा लाभ मिला कि वड़ौदा तथा अन्य गुरुकुलों की सुयोग्य स्नातिकायें इस संस्था के स्थापना काल से ही इसे उपलब्ध हुईं और इनके सहयोग से इस नयी संस्था का विकास द्रुत गति से होने लगा।

सेठ नानजीभाई कालिदास ने अपनी कन्याओं को अफ्रीका से वड़ौदा गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा था। सन् १९४० में उनकी सुपुत्री सविता देवी ने वड़ौदा आर्य कन्या महाविद्यालय में स्नातिका और व्यायामाचार्य का पाठ्यक्रम पूरा कर लिया और यहाँ से उपाधि प्राप्त करने के वाद उन्होंने अपना जीवन पोरवन्दर गुरुकुल के विकास के लिए समर्पित करने का संकल्प किया। उन्होंने पूरे सौराष्ट्र में इस संस्था के लिए धन-संग्रह हेतु यात्रा की, जिससे इसके लिए ५० लाख रुपये की धनराशि एकत्र हुई। इस धन से प्रार्थना मन्दिर, सरस्वती मन्दिर, नाट्यशाला, आश्रम तथा विद्यालय विभाग के भवनों का निर्माण आरम्भ किया गया। कन्याओं को इतिहास, भूगोल, ज्योतिष का ज्ञान देने के लिए भारत मन्दिर तथा तारा मन्दिर का निर्माण किया गया। महाराणा नटवरसिंह जी से राजकीय उद्यान प्राप्त करके उसमें दयानन्द वाटिका का निर्माण किया गया और उसमें विभिन्न प्रकार की दुर्लभ वनस्पतियों का रोपण तथा संग्रह किया गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय इस संस्था को कोई सरकारी आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती थी। श्री सेठ नानजीभाई कालिदास द्वारा दिये जाने वाले दान से संस्था का सारा व्यय चलता था और उनका सारा परिवार इस गुरुकुल के विकास में गहरी दिलचस्पी से भाग लेता था। श्रीमती सन्तोषबहिन की देखरेख में कन्याओं को शिक्षा की व्यवस्था सुचारु ढंग से चल रही थी।

संस्था में विद्यालय का विकास होने के वाद महाविद्यालय का विभाग खोला गया। इसमें वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों की शिक्षा के साथ साथ संस्कृत, मातृभाषा गुजराती, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। सन् १९५० में पहली वार यहाँ से कन्याओं ने उपाधि प्राप्त की थी।

किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने के कारण देश की राजनीतिक स्थिति और सामाजिक वातावरण में वड़ा अन्तर आने लगा था। पहले विदेशी सरकार होने के कारण गुरुकुल सरकारी शिक्षा पद्धति तथा शिक्षा-संस्थाओं से कोई सम्वन्ध नहीं रखते थे, क्योंकि उनकी शिक्षा देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं थी। उनके द्वारा चलाये जाने वाले पाठ्यक्रमों में राष्ट्रविरोधी तत्त्व रहते थे, और सरकारी शिक्षा विभाग के नियमों के वन्धन को छात्र-छात्राओं के लिए घातक समझा जाता था। ये गुरुकुल सरकार से किसी सहायता की अपेक्षा न रखते हुए जनता जनार्दन की सहायता और आर्य संस्कृति के प्रेमी उदार दानी व्यक्तियों के सहयोग पर अवलम्वित रहने में गर्व एवं गौरव का अनुभव करते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्त होने के वाद राष्ट्रीय सरकार जनता के वोटों से निर्वाचित होने लगी, अतः इस सरकार की नीति में वड़ा अन्तर आ गया था। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं की उपाधियों को मान्यता देने और आर्थिक सहायता प्रदान करने की नीति शुरू की। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने १९५० में गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव पर दीक्षान्त भाषण देते हुए इस संस्था को सरकारी अनुदान देने की घोषणा की थी। इस कारण अव गुरुकुलों की शिक्षा नीति में एक बड़ा परिवर्तन आने लगा। कन्याओं के माता-पिता भी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रमों को पढ़ाने के लिए वल देने लगे। इसके परिणामस्वरूप पोरवन्दर गुरुकुल की शिक्षा में भी आवश्यक परिवर्तन किये गये।

सन् १९५३ से यहाँ मैट्रिक की परीक्षायें शुरू की गईं। इससे पहले विद्यालय की अपनी परीक्षाओं के साथ-साथ यहाँ वार्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित हिन्दी परीक्षाओं के लिए कन्याओं को शिक्षा दी जा रही थी। यह वार्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाओं का एक प्रमुख महिला केन्द्र था और यहाँ की अधिकांश कन्यायें वार्धा की कोविद परीक्षा पास किया करती थीं।

महिला आर्ट्स कॉलिज की स्थापना—इस समय तक इस प्रदेश में कन्याओं को उच्च शिक्षा देने वाली कोई संस्था नहीं थी। इस प्रदेश की लड़कियों को महाविद्यालय की पढ़ाई के लिए दूरवर्ती स्थानों में जाना पड़ता था और उच्च शिक्षा को प्राप्त करने में वहुत कठिनाई उठानी पड़ती थी।

इसे दूर करने के लिए इस संस्था के कुलपिता श्री नानजीभाई कालिदास ने १९५५ में पन्द्रह लाख रुपये के व्यय से गुजरात विश्वविद्यालय से सम्वद्ध महिला कॉलिज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थापना की। इसमें विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए सब प्रकार की आवश्यक व्यवस्था की गई। कॉलिज के नये भवनों का निर्माण आरम्भ किया गया। सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम की शिक्षा देने के साथ-साथ यहाँ धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शिक्षा की भी सुन्दर योजना चालू की गई। इसे सुचारु रूप से चलाने के लिए इसके पहले प्रधानाचार्य गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री नित्यानन्द पटेल बनाये गये। उन्होंने इस संस्था की पुरानी परम्पराओं के अनुरूप इसमें उत्कृष्ट सांस्कृतिक वातावरण का सृजन किया। इस कॉलिज के धार्मिक और नैतिक वातावरण को उन्नत बनाने में और इसकी विविध सांस्कृतिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का संचालन करने में गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक पंडित श्री शंकरदेव विद्यालंकार की प्रमुख भूमिका रही है।

इस समय इस महाविद्यालय में ६०० कन्यायें अध्ययन कर रही हैं। इन्हें न केवल बी० ए० के पाठ्यक्रम के विषय पढ़ाये जाते हैं, अपितु शारीरिक विकास के लिए योगासन और अनेक प्रकार के देशी-विदेशी व्यायाम भी सिखाये जाने की व्यवस्था है। मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है। ललित कलाओं में रास, गरबा नृत्य आदि की विभिन्न प्रवृत्तियाँ और कार्यक्रम निरन्तर चलते रहते हैं। इस संस्था की प्राण सुश्री सवितादेवी स्वयमेव मणिपुरी आदि विभिन्न नृत्य कलाओं में निष्णात हैं, और कन्याओं को इसका सुन्दर प्रशिक्षण प्रदान करती हैं। उनकी अध्यक्षता में देश-विदेश में इस महाविद्यालय की छात्राओं की कला मण्डलियों ने अपने कलापूर्ण प्रदर्शन किये हैं, जिनसे कन्याओं के मानसिक विकास में बड़ी सहायता मिली है।

सन् १९४८ में पोरबन्दर में विशाल सरस्वती मन्दिर की स्थापना की गई थी। दस वर्ष बाद १९५८ में यहाँ एक विशाल प्रार्थना मन्दिर बनाया गया और इसके बाद भवनों का निर्माण तेजी से हुआ। महिला कॉलिज की इमारत, छात्रावास, प्रार्थना मन्दिर और प्राध्यापिकाओं के निवासगृह बने। यहाँ के भारत मन्दिर और तारा मन्दिर न केवल गुजरात में, अपितु समस्त भारत में प्रसिद्ध हैं।

संस्था का संचालन—इस संस्था को आरम्भ से बड़े निष्ठावान् कार्यकर्ता मिले हैं, और इनके सहयोग से इस संस्था की बड़ी उन्नति हुई है। इसके आरम्भिक कार्यकर्ताओं में सुश्री शान्ताबहन वर्मा और पण्डित चेतरामजी का नाम उल्लेखनीय है। बाद में इसे चतुर काका का बहुमूल्य सहयोग मिला। वह कई वर्षों तक इस संस्था के योजनाबद्ध विकास में लगे रहे। इसके लिए उन्होंने नब्बे एकड़ भूमि प्राप्त की। इस समय इस संस्था का संचालन एक ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है। इसके ट्रस्टी हैं—(१) सुश्री सन्तोषबहिन नानजीभाई मेहता, (२) सुश्री सविताबहिन नानजीभाई मेहता, आचार्या गुरुकुल पोरबन्दर, (३) सेठ श्री धीरेन्द्रभाई नानजीभाई मेहता, प्रधान ट्रस्टी, (४) सुश्री सरस्वती बहिन खीमजीभाई मेहता, (५) श्री आनन्दप्रियजी आत्माराम पण्डित, बड़ौदा।

इस संस्था के विद्यालय और महाविद्यालय विभागों में लगभग १२०० कन्यायें शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। यद्यपि इस संस्था के कुलपिता सेठ श्री नानजीभाई कालिदास मेहता अब नहीं रहे हैं, किन्तु उनकी सुयोग्य प्रतिभाशालिनी सुपुत्री सुश्री सविताबहिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानजी मेहता ने इस संस्था को आचार्या के रूप में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया है और वह इस संस्था की उन्नति में लगी हुई हैं।

इस संस्था से शिक्षा पूरी करने के बाद यहाँ की स्नातिकायें गुजरात के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग ले रही हैं। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू, द्वितीय राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई, वर्तमान प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी, पाकिस्तान में भारत के पहले राजदूत श्री श्रीप्रकाश और श्रीमन्नारायण जैसे नेता इस संस्था में आ चुके हैं और उन्होंने इसके कार्य की बहुत सराहना और प्रशंसा की है।

इस संस्था के विकास में सेठ नानजीभाई कालिदास की सुपुत्री सुश्री सविता बहिन का विशेष योगदान रहा है। यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सुश्री सविताबहिन नानजीभाई मेहता—राज्यरत्न सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता ने अपनी पुत्री सुश्री सविताबहिन को उनकी चार चचेरी बहनों के साथ सन् १९२९ में आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा में प्रविष्ट कराया। वह करोड़पति की कन्या थीं और बड़ौदा कन्या महाविद्यालय के भवन उस समय एक धर्मशाला के कमरों में थे और प्रारम्भिक सुविधाओं—बाथरूम, बिजली के पंखों आदि से वंचित थे। किन्तु इस परिस्थिति में सविताबहिन ने आश्रम के तपस्यापूर्ण जीवन को बड़ी जल्दी अपना लिया। प्रवेश के समय उनके चाचाजी ने कहा, "सविता को चाय पीने की आदत है। कुछ समय तक आप उसे चाय देने की व्यवस्था करना, फिर वह शनैः-शनैः दूध पीने लग जायेगी।" ऐसा ही प्रबन्ध किया गया। किन्तु इस समझदार कन्या ने अगले ही दिन पं० आनन्दप्रिय जी को कहा—"भ्राता जी, मैं चाय नहीं पियूँगी।" पढ़ाई में सदा अग्रणी रहने के साथ-साथ वह संस्था के सेवा-कार्यों में भी कभी पीछे नहीं रहती थीं। १९३४ में धनसंग्रह के लिए अफ्रीका की यात्रा में और १९३८ की बर्मा यात्रा में सविताबहिन यौगिक व्यायामों के प्रदर्शनों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बड़े उत्साह से भाग लेती रहीं। आनन्दप्रियजी की प्रेरणा से शुरू में बोलने में संकोच करने वाली सविताबहिन प्रभावशाली वक्ता बनीं।

बड़ौदा में अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद शिक्षाशास्त्र में विशेष अध्ययन करने के लिए वह लण्डन गयीं। उनकी संगीत और नृत्य कला में असाधारण अभिरुचि है। भारत के प्राचीन साहित्य के स्वाध्याय का उन्हें बड़ा व्यसन है। सविताबहिन ने मणिपुरी नृत्यकला में प्रवीणता पाने के लिए इस प्रदेश के महान् कलाचार्यों की छत्रछाया में रहकर वर्षों तक नृत्यकला की अखण्ड साधना की है। मणिपुर राज्य की ओर से उन्हें मणिपुर नृत्य कला की 'नृत्याचार्या' आदि की कई उपाधियाँ मिली हैं। वहाँ की साहित्य कला परिषद् ने सुश्री सविताबहिन को 'नृत्य रत्ना' की पदवी दी है। वह मणिपुरी नृत्यकला की विशिष्ट व्याख्याता और सुप्रसिद्ध नृत्यांगना हैं। उनमें धाराप्रवाह भाषण देने की अद्भुत क्षमता है। श्रोतावृन्द को वह मन्त्रमुग्ध कर देती हैं। आनन्दप्रियजी के शब्दों में, "उस समय यह लक्ष्मी पुत्री साक्षात् सरस्वती कन्या-सी प्रतीत होती है।"

अपने पिता श्री नानजीभाई मेहता द्वारा स्थापित आर्य कन्या गुरुकुल पोरबन्दर की आचार्या के रूप में उन्होंने इस संस्था का बड़ी कुशलता से संचालन किया है, और अपने माता-पिता के सपनों को साकार बनाया है; और अपनी साधना, तपस्या और सूझ-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बूझ के द्वारा पोरबन्दर कन्या गुरुकुल को गुजरात की गौरवशालिनी संस्था का रूप प्रदान किया है। वह अपनी छात्राओं के साथ अद्भुत स्नेह का व्यवहार करने के कारण गुरुकुल जगत् में 'दीदी' के नाम से पुकारी जाती हैं। उन्होंने गार्गी आदि प्राचीन ब्रह्मवादिनी कन्याओं के आदर्श को क्रियान्वित किया है और आजन्म कौमार्य व्रत धारण करके अपना सारा जीवन कला की साधना तथा पोरबन्दर गुरुकुल के विकास में समर्पित कर दिया है। उनके आचार्या काल में इस संस्था ने बड़ी उन्नति की है।

(४) श्रीमद्दयानन्द कन्या विद्यालय, जामनगर

इस संस्था की स्थापना आर्यसमाज जामनगर ने महर्षि दयानन्द के आदर्शों के अनुसार कन्याओं को शिक्षा देने के लिए १६ जून, १९४७ तदनुसार संवत् २००३, आषाढ़ सुदी के शुभ दिवस पर की थी। इस विद्यालय की स्थापना से पहले जामनगर में स्त्रियों की शिक्षा के लिए केवल एक छोटी-सी कन्या पाठशाला ही थी। इस संस्था ने इस क्षेत्र में स्त्रीशिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्य का बीड़ा उठाया और उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। इस विद्यालय को अपनी स्थापना के समय से ही जनता का पूरा सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ। इस की स्थापना में अनेक पुरुषार्थी आर्य सज्जनों ने सहयोग दिया, जिनमें निम्नलिखित सज्जनों के नाम उल्लेखनीय हैं—आर्यसमाज, जामनगर के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र मूलजीभाई, उपाध्यक्ष श्री नारायणदास द्वारिकादास, मन्त्री श्री जयन्तीलाल गोकुलदास, तथा अन्तरंग सभा के सदस्य—श्री परशुरामभाई दुधांत, श्री भाणजीभाई देवजीभाई आर्य, श्री गोकुलदास हीरजी ठक्कर, श्री नानालालभाई उपाध्याय, डा० मगन-भाई हरिशंकर भट्ट, श्री मूलजीरामजी चौहान, श्री रघुनाथ दयाराम, और सौभाग्यवती सीता देवी अर्जुनदेव।

विद्यालय का आरम्भ ४३ कन्याओं से हुआ। शुरू में इसमें मिडल स्कूल की पहली तीन कक्षाओं की पढ़ाई शुरू की गयी। इसके बाद प्रतिवर्ष छात्राओं और कन्याओं की संख्या बढ़ती चली गयी। इस कारण जल्दी ही दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था इस विद्यालय में करनी पड़ी। सन् १९५२ में महर्षि दयानन्द के परम भक्त सेठ नानजी भाई कालिदास मेहता के नाम से इसमें महाविद्यालय की कक्षाएँ आरम्भ की गयीं। इन्हें शुरू करते समय जामनगर के सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री मगनलालभाई जोशी की पुत्रवधू सौभाग्यवती हीराबहन प्रबोधचन्द्र जोशी बी० एस-सी० ने इसमें अवैतनिक रूप से आचार्या के रूप में सेवा करने का संकल्प प्रकट किया और इसके अनुसार उन्होंने इसके निर्माण में सराहनीय कार्य किया।

इस विद्यालय के संचालन के लिए प्रमुख दान देने वाले सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता हैं। उन्होंने इसके लिए एक लाख रुपये का दान दिया। उनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए विद्यालय के हाईस्कूल विभाग के साथ सेठ नानजीभाई कालिदास मेहता की माता श्रीमती यमुना बाई का नाम जोड़ा गया है। इस विद्यालय के प्राथमिक विभाग के लिए २५ हजार रुपये का दान सेठ श्री नरसिंह आर्यदेवजी देवन शाह ने दिया है, अतः इसके प्राथमिक विभाग का नाम उनकी माता के नाम पर रखा गया है। इस विद्यालय के प्राथमिक विभाग में सातवीं कक्षा तक १५०० से अधिक और आठवीं कक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से स्नातिका कक्षा तक एक हजार से भी अधिक छात्राएँ विद्याभ्यास कर रही हैं। महाविद्यालय विभाग में विज्ञान की शिक्षा का भी समुचित प्रवन्ध है।

इस विद्यालय की छात्राएँ वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में अनेक उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कर चुकी हैं। वे विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेती हैं। जिला स्तर की गरवा नृत्य प्रतियोगिताओं में उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में यहाँ की छात्राएँ अपनी वक्तृत्व कला की धाक जमा चुकी हैं। छात्राओं को भाषण करने में कुशल बनाने और उनमें स्वतन्त्र चिन्तन का विकास करने के लिए प्रति शनिवार को बाल सभाओं का आयोजन किया जाता है। इनमें छात्राएँ भाषण देती हैं, विभिन्न सामयिक विषयों पर अपने विचार प्रकट करती हैं और अपने लिखे निवन्धों का वाचन करती हैं। गरबा, नाटक, संगीत, कविता आदि विभिन्न प्रकार की कलात्मक प्रवृत्तियों में भी वे भाग लेती हैं। स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, गांधी जयन्ती, मकर संक्रान्ति, महर्षि दयानन्द वोधोत्सव, सीता अष्टमी, संस्कृत दिवस, हिन्दी दिवस आदि विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक पर्व विद्यालय में वड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। दृश्य-श्रव्य विभाग द्वारा छात्राओं को विभिन्न विषयों का प्रशिक्षण, व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन, नागरिक सुरक्षा, गर्ल गाइड्स आदि की शिक्षा फिल्मों तथा व्याख्यानों के माध्यम से दी जाती है, और छात्राओं को सरस्वती यात्राओं पर ले जाया जाता है। साहित्य मण्डल द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का आयोजन किया जाता है। पुस्तकालय के माध्यम से छात्राओं में अध्ययन की अभिरुचि जागृत करने का प्रयास किया जाता है। इस दृष्टि से पुस्तकालय का संचालन छात्राओं से ही कराया जाता है।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, विज्ञान, संगीत, चित्र-कला की परीक्षाओं में भाग लेने के लिए छात्राओं का पथप्रदर्शन करने की व्यवस्था भी की जाती है। इस विद्यालय की कन्याएँ इन परीक्षाओं में प्राय: अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होती हैं। अंग्रेजी तथा गुजराती टाइप सिखाने की भी यहाँ व्यवस्था है। सौराष्ट्र के विद्यालयों में यहाँ सर्वप्रथम आन्तरिक सन्देश और वार्तालाप के आधुनिकतम साधन इण्टरकॉम का भी उत्तम प्रवन्ध है।

इस विद्यालय की वर्तमान शिक्षिकाओं में १६ अध्यापिकाएँ ऐसी हैं, जो इस विद्यालय में पहले अध्ययन कर चुकी हैं। भूतपूर्व छात्रा होने के नाते उनका इस संस्था से विशेष लगाव है और वे इसकी उन्नति में दिन-रात लगी रहती हैं।

इस विद्यालय का संचालन आर्यसमाज जामनगर आर्य विद्या सभा, जामनगर के माध्यम से करती है। यह विद्यालय सौराष्ट्र के कन्या विद्यालयों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतरहवाँ अध्याय

हरयाणा तथा दिल्ली के कन्या गुरुकुल

(१) कन्या गुरुकुल खानपुर कलाँ (जिला सोनीपत)

इस गुरुकुल की स्थापना हरयाणा में आर्यसमाज के प्राण तथा महान् नेता शहीद भक्त फूलसिंह ने सन् १९३६ ई० में की थी। यह इस प्रदेश में पहला कन्या गुरुकुल था। उन्होंने पहले बालकों के लिए गुरुकुल भैंसवाल की स्थापना की, और उसके बाद नारी-जाति की दशा के सुधार के लिए उनके मन में यह विचार आया कि यदि बालकों के गुरुकुल की तरह बालिकाओं का गुरुकुल खोला जाए तो स्त्री-जाति के उत्थान में बड़ी सहायता मिल सकती है। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने खानपुर कलाँ के जंगल जैसे भू-भाग में इस गुरुकुल को स्थापित किया।

इस गुरुकुल की स्थापना के समय इस प्रदेश के अधिकांश व्यक्ति कुसंस्कारों एवं पौराणिक अन्धविश्वासों से ग्रस्त थे। इस कारण वे कन्याओं की शिक्षा को उत्तम नहीं समझते थे और इन्हें पढ़ाने के कट्टर विरोधी थे। अत: भक्तजी को इस क्षेत्र में ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति मिले जो अपनी कन्याओं को गुरुकुल में भेजकर शिक्षा देने के लिए तैयार हों। इस गुरुकुल का प्रारम्भ केवल दो कन्याओं से हुआ था।

यह गुरुकुल अभी बाल्यावस्था में ही था कि गुरुकुल में रात के नौ बजे धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा भक्त फूलचन्दजी की उस समय गोलियों से हत्या कर दी गई, जब वह एक सरोवर के पास चबूतरे पर बैठकर सन्ध्या कर रहे थे। यह घटना १४ अगस्त, १९४२ की है।

भक्तजी के बलिदान के बाद गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने उनके द्वारा स्थापित संस्था को बड़े उत्साह से चलाने का निश्चय किया। उनकी सुपुत्री श्रीमती सुभाषिणीजी ने सरकारी सेवा से पृथक् होकर गुरुकुल की आचार्या का पद स्वीकार किया और उनके पतिदेव भी गुरुकुल में आ गये। दोनों इसके निर्माण में दिन-रात अनथक परिश्रम करने लगे। हरयाणा के तत्कालीन शिक्षामन्त्री चौधरी माडूसिंह इसकी स्वामिनी सभा के मन्त्री बने और उनके संचालन एवं देखरेख में इस गुरुकुल ने बड़ी उन्नति की।

१९६७ में यहाँ गुरुकुल की शिक्षा के साथ-साथ एक डिग्री कॉलिज की तथा बाद में प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना हुई। इसमें बी० एड०, ओ० टी०, नर्सरी, आर्ट एण्ड क्राफ्ट आदि की शिक्षा आरम्भ हुई। छात्राओं को हिन्दी में प्रवीण बनाने के लिए प्रभाकर श्रेणी का पाठ्यक्रम चलाया गया। इन सब नवीन परिवर्तनों के कारण यहाँ छात्राओं की संख्या बढ़ने लगी और इस संस्था की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई।

लड़कियों को आयुर्वेद का ज्ञान देने के लिए १९७२ में यहाँ एक आयुर्वेद महा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय खोला गया। इसका पाठ्यक्रम छह वर्ष का है। इसमें आयुर्वेद एवं वर्तमान चिकित्सा पद्धति के सभी अंगों—शरीरशास्त्र, शरीर क्रियाविज्ञान, रोग निदान, चिकित्सा आदि का पूरा ज्ञान कराया जाता है, और यहाँ की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर बैचलर ऑफ् आयुर्वेदिक मेडीसन एण्ड सर्जरी (बी० ए० एम० एस०) अर्थात् आयुर्वेदिक चिकित्सा और शल्य कर्म की स्नातिका की उपाधि दी जाती है।

इस समय यहाँ हाईस्कूल, डिग्री कॉलिज, ट्रेनिंग कॉलिज और आयुर्वेदिक कॉलिज की शिक्षा-संस्थायें विद्यमान हैं। यह हरयाणा में कन्याओं का एक प्रमुख शिक्षा-केन्द्र है, जिसमें २१०० छात्रायें अध्ययन कर रही हैं। यहाँ सबके लिए सन्ध्या-हवन और धर्मशिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था है।

कन्या गुरुकुल के साथ ३०० बीघे से अधिक जमीन है। २०-२५ लाख की लागत के भवन बने हुए हैं। २५०० कन्यायें यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त कर चुकी हैं।

यहाँ से शिक्षा प्राप्त करने वाली हजारों छात्रायें शिक्षा-क्षेत्र में और अन्य क्षेत्रों में सराहनीय कार्य कर रही हैं।

(२) कन्या गुरुकुल, नरेला

महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में वर्णित आर्ष पाठविधि के अनुसार कन्याओं को शिक्षा देने वाला यह कन्या गुरुकुल दिल्ली से १५ मील की दूरी पर नरेला नामक बस्ती से भी दो मील परे शुद्ध, स्वच्छ, रमणीक ग्रामीण वातावरण में अवस्थित है। इसकी स्थापना का श्रेय आर्य जगत् के दो सुप्रसिद्ध बालब्रह्मचारी संन्यासियों को है। ये हैं—गुरुकुल काँगड़ी के सुप्रसिद्ध स्नातक तथा चित्तौड़ में महर्षि दयानन्द के गुरुकुल की स्थापना के सपने को पूरा करने वाले श्री स्वामी व्रतानन्द तथा नरेला ग्राम के निवासी, आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध कर्मठ संन्यासी, भारतीय पुरातत्त्व, लिपि-शास्त्र एवं मुद्रा शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् श्री स्वामी ओमानन्द।

स्वामी व्रतानन्द के हृदय में ब्रह्मचारियों के लिए चित्तौड़ में गुरुकुल की स्थापना करने के बाद कन्याओं में वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार की भावना बलवती हुई। उन्होंने सन् १९५३ में अपने इस विचार को आर्यसमाज, दीवान हाल, दिल्ली के उत्सव पर आर्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहा कि कन्याओं के लिए गुरुकुल स्थापित करने के लिए मुझे भूमि की आवश्यकता है। यह बात नरेला ग्राम निवासी, माता-पिता के इकलौते पुत्र, बाल ब्रह्मचारी श्री भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) के कानों में पड़ी। उन्होंने इस पवित्र कार्य के लिए अपनी पैतृक भूमि देने का मन-ही-मन में निश्चय किया। स्वामी व्रतानन्द जब नरेला ग्राम में ब्रह्मचारी भगवान् देव के पास मिलने आये और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में प्रतिपादित शिक्षाप्रणाली के अनुसार कन्या गुरुकुल स्थापित करने के लिए उनसे बातचीत करते हुए कहा कि यदि कम-से-कम ६० बीघे भूमि मुझे मिल जाये तो मैं कन्याओं का गुरुकुल खोलना चाहता हूँ। इस पर भगवान् देवजी ने गाँव की अपनी भूमि दिखाते हुए उन्हें कहा—"यह भूमि प्रस्तुत है, आप जहाँ चाहें वहाँ संस्था खोल लें।"

यह जमीन सड़क के दोनों ओर थी। गुरुकुल के लिए किस ओर की भूमि उपयुक्त रहे, इसका निर्णय गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक स्वामी देवराज मुनि तथा स्वामी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतानन्द ने एक सिक्का उछाल कर किया और यह कहा कि यह सिक्का जिस ओर गिरेगा, उसी ओर कन्या गुरुकुल की स्थापना की जाएगी। यह सिक्का सड़क के पश्चिमी भाग में गिरा और उसी ओर संस्था की स्थापना करने का निश्चय कर लिया गया। श्री भगवान् देव ने अपनी २१५ बीघे भूमि कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिए प्रदान कर दी। इस भूमि का वर्तमान मूल्य ५१ लाख रुपये से भी अधिक है। श्री भगवान् देव के इस सात्त्विक, भामाशाही दान से नरेला के कन्या गुरुकुल की स्थापना सम्भव हुई।

इस प्रकार के उदार दान को प्राप्त कर स्वामी व्रतानन्द को अपार हर्ष हुआ और आर्यसमाज के वीतराग संन्यासी और सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्री स्वामी आत्मानन्द के कर-कमलों द्वारा इस गुरुकुल की आधारशिला रखी गई (१५ सितम्बर, १९५९)। स्वामी व्रतानन्दजी को इसका कुलपति बनाया गया; वह आमरण १० फरवरी, १९८१ तक इस पद पर बने रहे।

उद्देश्य तथा विशेषताएँ—यह गुरुकुल कन्याओं को विशुद्ध आर्ष पाठविधि से शिक्षा देने का एक प्रमुख निःशुल्क केन्द्र है। इस समय आर्यसमाज में कन्याओं की शिक्षण-संस्थाओं की बाढ़-सी आई हुई है। इनमें अधिकांश संस्थायें सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देती हैं, और साथ में अतिरिक्त विषय के रूप में आर्यसमाज के सिद्धान्तों को धर्मशिक्षा के रूप में पढ़ाती हैं। किन्तु इस गुरुकुल में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आर्ष पाठविधि के अनुसार कन्याओं को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वेद-वेदांगों की शिक्षा दी जाती है। इसका उद्देश्य छात्राओं को प्राचीन भारतीय संस्कृति के सभी प्रमुख अंगों का ज्ञान देकर विदुषी बनाना और शारीरिक शिक्षा देकर वीराङ्गना बनाना है। चरित्र निर्माण, सात्त्विक जीवन, स्वस्थ शरीर और ब्रह्मचर्य के पालन पर इस गुरुकुल में बड़ा बल दिया जाता है। अध्यापिकायें ब्रह्मचारिणी या अविवाहिता ही रखी जाती हैं। आचार्या तथा अन्य अध्यापिकायें आश्रम में कन्याओं के साथ रात-दिन रह कर उनकी मानसिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए उनके चरित्र का निर्माण करती हैं और विद्याभ्यास तथा व्रताभ्यास दोनों में ही उन्हें आगे बढ़ाने का अनथक उद्योग करती हैं। यहाँ ब्रह्म-चारिणियों को अध्ययन पूरा होने तक घर जाने के लिए कोई अवकाश नहीं दिया जाता। अध्यापिकायें भी साल में केवल चार पाँच अवकाश लेकर ही पूर्ण मनोयोग से अध्यापन-कार्य में लगी रहती हैं।

सभी कन्याओं के लिए आश्रम में रहना आवश्यक है। आश्रम का जीवन अनुशासन-पूर्ण, नियमित और कठोर है। ब्रह्मचारिणियों को आश्रम की दैनिक दिनचर्या के अनुसार काम करना होता है। सबका रहन-सहन सादा, सरल और एक समान होता है। राजा-रंक, धनी-निर्धन, ऊँच-नीच तथा जातिमूलक कोई भी भेद-भाव वहाँ नहीं रखा जाता। सब कन्यायें एक साथ रहती और एक साथ भोजन करती हैं। सबके लिए नियम एक से हैं। यहाँ के पारिवारिक वातावरण में अध्यापिकाओं तथा छात्राओं में बड़े मधुर सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

छात्राओं को वेद-वेदांग के अध्यापन के साथ-साथ खेती तथा गृहोपयोगी कलाओं का भी ज्ञान कराया जाता है। गुरुकुल की कृषि भूमि में कन्यायें कई प्रकार की खेती-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करती हैं। सिलाई भी कन्याओं के लिए अनिवार्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारिणियाँ अपने वस्त्र स्वयं सीती हैं। भोजन बनाने की शिक्षा देने के लिए बारी-बारी से कन्याओं को दस-दस के समूह में पाकशाला में कार्य करना होता है और इस प्रकार वे पाकशाला के सब कर्यों की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करती हैं।

स्त्रियों के मानसिक शिक्षण के साथ-साथ शारीरिक शिक्षण की ओर भी इस संस्था में समुचित ध्यान दिया जाता है। आत्मरक्षा के लिए कन्याओं को लाठी तथा तलवार चलाना, जापानी कुश्ती, धनुष-बाण आदि सिखाये जाते हैं; और योगासन तथा प्राणायाम की भी शिक्षा दी जाती है।

छात्राओं की शिक्षा निःशुल्क है। उनसे भोजन आदि पर भी यथासम्भव कम से कम व्यय लिया जाता है। इसके लिए केवल २० रुपया मासिक शुल्क निश्चित है। गुरुकुल के बगीचे से ताजा सब्जियों और फलों के देने की व्यवस्था है।

पाठ्यक्रम—यह गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ झज्झर से सम्बद्ध है और इसका १६ वर्ष का पाठ्यक्रम है। इस विद्यापीठ की पाठविधि में निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं— वेद तथा छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा इतर संस्कृत साहित्य, आर्यसमाज का इतिहास, भारतवर्ष का इतिहास, संस्कृत व्याकरण का इतिहास, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, आर्यभाषा, वैदिक सिद्धान्त, व्यवहारभानु से लेकर वेदभाष्य तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के सभी ग्रन्थ, छह दर्शन, चार ब्राह्मण ग्रन्थ, दो श्रौतसूत्र, चारों वेदों के चार प्रातिशाख्य ग्रन्थ और वैदिक संहितायें।

इस पाठ्यक्रम की शिक्षा देने वाली विभिन्न परीक्षाओं का नाम तथा समय इस प्रकार है—(१) प्रवेशिका—पाँच वर्ष, (२) प्रथमा—तीन वर्ष, (३) मध्यमा—तीन वर्ष, (४) शास्त्री—तीन वर्ष, (५) आचार्य—दो वर्ष। इस प्रकार सम्पूर्ण पाठ्यक्रम सोलह वर्ष का है।

इन उपाधियों को भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों और विश्वविद्यालयों ने मान्यता प्रदान की हुई है। शास्त्री की उपाधि बी० ए० तथा आचार्य की उपाधि एम० ए० के समकक्ष मानी जाती है। सन् १९६४ में यहाँ पहली दो स्नातिकाओं ने व्याकरणाचार्य तथा वेदविभूषिता की उपाधि प्राप्त की थी, और उसके बाद सन् १९८२ तक यहाँ शिक्षा प्राप्त कर ११९ कन्याएँ स्नातिका हो चुकी हैं।

विभिन्न प्रवृत्तियाँ—यह गुरुकुल वेद-प्रचार, गौरक्षा आदि आर्यसमाज के आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेता रहा है। स्त्रियों में वीरता की भावना को पुनरुज्जीवित करने के लिए इस गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियाँ आर्यसमाज से सम्बद्ध विभिन्न समारोहों, शोभायात्राओं और सम्मेलनों में भाग लेती हैं, भाषण देती हैं और व्यायाम प्रदर्शन करती हैं। अम्बाला, मथुरा, दिल्ली, कानपुर, उदयपुर, रिवाड़ी, नारनौल, मुरादाबाद, सोनीपत, रोहतक, गुड़गाँवा आदि की आर्यसमाजों के समारोहों में ब्रह्मचारिणियों द्वारा भाग लेने की बड़ी सराहना हुई है।

१९६७ में गौरक्षा आन्दोलन के अवसर पर यहाँ की ब्रह्मचारिणियों ने सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया और तिहाड़ जेल में २१ दिन तक रहीं।

कन्या गुरुकुल में एक वैदिक शोध पुस्तकालय है, जो न केवल छात्राओं के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है, अपितु विद्वानों के शोधकार्यों में भी सहायक है। इसमें वैदिक साहित्य तथा वेदांगों के ग्रन्थों का विशाल संग्रह है। इसका प्रयोजन छात्राओं को स्वाध्यायशील और विदुषी बनाना है। इसमें वेद-वेदांगों के अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, इतिहास, संस्कृत, हिन्दी, जीवनचरित्र, महाभाष्य, आयुर्वेद, रामायण, महाभारत आदि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों का उत्तम संग्रह है।

स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती ने यहाँ २८ फरवरी, १९६३ को एक ऐतिहासिक पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना की थी। इसमें भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व की अतीव महत्त्वपूर्ण तथा दुर्लभ सामग्री एकत्र की गई है। इसमें सिन्धु सभ्यता कालीन तथा महाभारत कालीन ताम्र शस्त्रास्त्र, मिट्टी और ताम्र के प्राचीन मुद्रांक (मोहरें), प्रस्तर-मूर्तियाँ, मृण्मूर्तियाँ, ताम्रपत्र, कार्षापण, यौधेय, औदुम्बर, आग्रेय, कुणिन्द, कौशाम्बी, पांचाल, उज्जयिनी आदि राज्यों, प्राचीन राजवंशों और इण्डो-ग्रीक शासकों की मुद्रायें, ढाल, तलवार आदि शस्त्रास्त्र, ताड़पत्र और कागज पर लिखित प्राचीन पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं। इस संग्रहालय के साथ इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों का भी एक संग्रह है और अनेक विदेशी विद्वान् भी अपने शोधकार्यों में इससे सहायता लेते रहते हैं। इनमें रामायण-कालीन इतिहास की खनन करने वाली बर्कले विश्वविद्यालय की अमरीकी विदुषी डा० जोना विलियम्स तथा जर्मन विद्वान् डा० पालयुले के नाम उल्लेखनीय हैं।

कन्या गुरुकुल के साहित्य प्रकाशन विभाग ने कई बहुमूल्य प्रकाशन किये हैं। प्रचार के कार्य को स्थायी बनाने के लिए सत्साहित्य का सृजन अतीव आवश्यक है, क्योंकि भाषण का प्रभाव शीघ्र समाप्त हो जाता है किन्तु साहित्य चिर काल तक बना रहता है और समाज के सुधार, अध्ययन और अन्वेषण के कार्य को अग्रसर करता रहता है। इस संस्था के महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों में यास्काचार्य का निरुक्त, काशिका और अष्टाध्यायी उल्लेखनीय हैं। इस गुरुकुल की अन्य प्रवृत्तियों में धर्मार्थ औषधालय, कृषि तथा गौशाला उल्लेखनीय हैं। गौशाला के पशु दिल्ली राज्य की पशु प्रदर्शनियों में पुरस्कृत होते रहे हैं।

साधु आश्रम तथा समाजसेवा—वर्तमान समय में समाज की एक बड़ी समस्या समाज की सेवा करने वाले साधु-संन्यासियों की वृद्धावस्था में देखभाल की है। धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर अपने घर बार को छोड़कर समाज की सेवा के लिए अपना सारा जीवन अर्पित करने वाले व्यक्तियों की आर्यसमाज में कोई कमी नहीं है। ऐसे व्यक्ति जीवन भर समाज की सेवा में लगे रहते हैं, किन्तु वृद्धावस्था में कोई उनकी देखभाल करने वाला नहीं होता, और रुग्ण एवं अशक्त होने पर उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

कन्या गुरुकुल नरेला ने इस दिशा में साधु आश्रम की स्थापना करके एक सराहनीय कदम उठाया है। यहाँ फरवरी, १९७८ में स्वामी सर्वानन्दजी के कर कमलों से साधु आश्रम की स्थापना हुई थी। इसमें समाज सेवक वयोवृद्ध साधु रहते हैं, तथा रुग्ण होने पर अनेक संन्यासी यहाँ आते हैं और यहाँ उनकी अच्छी सेवा की जाती है। स्वामी आत्मानन्द, महात्मा आनन्द भिक्षु, स्वामी समर्पणानन्द (श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार), श्री जगदेव सिद्धान्ती, स्वामी धर्मानन्द आदि आर्यसमाज के प्रमुख नेताओं के अंत्येष्टि संस्कारों में भी गुरुकुल की कन्याओं ने भाग लिया है।

कन्या गुरुकुल का समस्त प्रबन्ध एक विद्यार्य सभा द्वारा किया जाता है। यह गुरुकुल की समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी है। यह राजनियम के अनुसार पंजीकृत संस्था है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसका अपना विधान है। इसकी धाराओं के अनुसार ही वार्षिक उत्सव में सभा के अधिकारियों का चुनाव होता है। इसके अधिकारियों तथा अन्तरंग सभा के सदस्यों की संख्या ४० है। इसका आजीवन सदस्यता शुल्क १०१ रुपया है।

इस संस्था ने अब तक ७२ व्याकरणाचार्य और ४७ शास्त्री शिक्षा सम्पन्न कन्याएँ तैयार की हैं। ये शिक्षा तथा सामाजिक क्षेत्र में उत्तम रीति से काम कर रही हैं। स्त्रियों की शिक्षा, विशेष रूप से व्याकरण आदि वैदिक विषयों का ज्ञान देने में इस गुरुकुल का विशेष योगदान है।

(३) कन्या महाविद्यालय, लोवा कलाँ (रोहतक)

इस गुरुकुल की स्थापना १५ अगस्त, सन् १९६२ ई० को श्रावणी के पवित्र पर्व के दिन स्वामी मानाचार्य सरस्वती ने अपनी ४० एकड़ भूमि में कन्याओं के आर्ष शिक्षण की आवश्यकता को अनुभव करते हुए की थी। इस क्षेत्र की तथा अन्य प्रान्तों की कन्यायें बिना किसी भेद-भाव के साथ जीवनयापन करती हुई प्राचीन व्याकरण के माध्यम से यहाँ आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर रहीं हैं।

इस समय शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं की संख्या १२५ है। सम्पूर्णानन्द वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, और आचार्य की परीक्षायें उत्तीर्ण करके कन्यायें सामाजिक जीवन में कार्य करती हुई अपने जीवन को सफल करती हैं।

संस्था के कुलपति चौ० प्रियव्रत, प्रधान सरपंच पृथीसिंह, मन्त्री सरपंच श्रीचन्द तथा उपमन्त्री श्री उदयसिंह मान हैं। आचार्या शान्ति स्नातिका और उपाचार्या कु० कृष्णा हैं। ये सभी कार्यकर्ता निःस्वार्थ भाव से बच्चों के जीवन का विकास तथा निर्माण कर रहे हैं। आय का साधन जनता का सहयोग है। गुरुकुल की भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य पाँच लाख रुपये के करीब है। इस संस्था का सभी कार्य अवैतनिक रूप से होता है। संस्था आत्मनिर्भर है। कृषि के योग्य चालीस बीघे जमीन इसके पास है, जिसमें ट्यूब वैल लगा हुआ है। छात्रावास में छात्राओं के निवास की सुन्दर व्यवस्था है।

विद्यालय में धार्मिक शिक्षा तथा वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान पाँचवीं से लेकर सोलहवीं (आचार्य) कक्षा तक दिया जाता है। संस्था का संचालन सुचारु रूप से हो रहा है। यह संस्था इस क्षेत्र के लिए एक विशुद्ध संस्कारयुक्त वातावरण देने के कारण हर प्रकार से लाभदायक सिद्ध हुई है।

इस विद्यालय में १८ शिक्षिकायें अध्यापन का कार्य कर रही हैं। संस्था में धार्मिक पुस्तकों का एक छोटा-सा पुस्तकालय भी है, जिसमें सभी वेदों के भाष्य, उपनिषद् आदि ग्रन्थ छात्राओं को स्वाध्याय के लिए प्रदान किये जाते हैं।

(४) आर्य कन्या गुरुकुल, मोर माजरा (करनाल)

यह गुरुकुल कन्याओं को शिक्षा देने के लिए महासभा आर्य कन्या गुरुकुल मोर माजरा द्वारा १९७२ ई० में स्थापित किया गया था। इस संस्था के संचालक चौधरी तेजिन्द्रपालजी हैं। यह संस्था ग्राम माजरा की पंचायत द्वारा दी गयी २३ एकड़ पंचायती भूमि पर बनाई गयी है, और मोर माजरा से पानीपत जाने वाली पक्की सड़क पर स्थित है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संस्था निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित की गयी है—(१) कन्याओं में संस्कृत व हिन्दी भाषा का प्रचार करना। (२) छात्राओं के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की शक्ति को इस प्रकार विकसित करना कि वे अपना जीवननिर्वाह सफलतापूर्वक कर सकें। (३) वैदिक वर्णव्यवस्था को पुनः प्रचलित करना, और (४) वैदिक धर्म के प्रचार के लिए योग्य उपदेशिका, अध्यापिका तथा उत्तम नागरिक तैयार करना।

यह संस्था हरयाणा शिक्षा विभाग से मान्यता प्राप्त है, और यहाँ हरयाणा बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है। आठवीं और दसवीं कक्षाओं की परीक्षा हरयाणा बोर्ड द्वारा ली जाती है। प्रथम से सप्तम तथा नवम कक्षा की परीक्षा संस्था स्वयं लेती है। संस्था के पाठ्यक्रम की यह विशेषता है कि इसमें संस्कृत का अध्ययन विशेष रूप से कराया जाता है, और सभी कक्षाओं में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है। यह सभी छात्राओं के लिए अनिवार्य है। धर्मशिक्षा की वार्षिक परीक्षा भी ली जाती है। अच्छे अंक प्राप्त करने वाली छात्राओं को पुरस्कृत किया जाता है।

सभी छात्राओं का गुरुकुल में प्रवेश करने के बाद गुरुकुल के छात्रावास में रहना अनिवार्य है। छात्रावास में ३०० कन्यायें रहती हैं। इसमें सन्ध्या एवं हवन प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल किया जाता है। इसमें उपस्थित होना सभी छात्राओं व अध्यापिकाओं के लिए अनिवार्य है। शिक्षा निःशुल्क है। भोजन व्यय के लिए प्रथम कक्षा से पाँचवीं कक्षा तक ४० रुपया प्रति मास तथा छठी कक्षा से १०वीं कक्षा तक ५० रुपया प्रति मास लिया जाता है।

गुरुकुल की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

भारतीय शिक्षा पद्धति के अनुसार सदाचारपूर्वक आश्रम निवास, निःशुल्क शिक्षा, सादा संयत जीवन व उच्च विचार, गुरुओं के साथ निकट सम्पर्क, सब छात्राओं के साथ बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार करना और प्राचीन भारतीय विद्याओं के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान आदि की शिक्षा की व्यवस्था करना।

संस्था की वार्षिक आय साढ़े चार लाख रुपये है। फीस द्वारा डेढ़ लाख रुपया प्राप्त होता है। कृषि तथा दान द्वारा हर साल तीन लाख रुपये की आमदनी होती है। अध्यापिकाओं के वेतन तथा छात्राओं की भोजन-व्यवस्था में लगभग साढ़े चार लाख रुपया व्यय होता है। संस्था की कुल सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य १५ लाख रुपया है। यह सब सम्पत्ति संस्था को दान द्वारा प्राप्त हुई है। गुरुकुल के विभिन्न भवन समीपवर्ती गाँवों के आर्य बन्धुओं ने दान देकर बनवाये हैं, और साथ ही हरयाणा राज्य सरकार से भी इस संस्था को आर्थिक सहायता मिलती रही है।

इस कन्या गुरुकुल का प्रबन्ध महासभा आर्य कन्या गुरुकुल मोर माजरा द्वारा किया जाता है। इस सभा के १७ उद्देश्य हैं, जिनमें पहले पाँच उद्देश्य वैदिक धर्म, साहित्य और समाज के पुनरुज्जीवन से सम्बन्ध रखते हैं।

(५) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, खरखोदा (सोनीपत)

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, खरखौदा की स्थापना १५ अगस्त, १९७४ को भक्त दरियाव सिंह हुमांयूँपुर निवासी ने की थी। शुरू में भक्तजी पौराणिक विचारों के थे। पौराणिक साधुओं की वह पूरी लगन से सेवा करते थे, बीस-बीस साधुओं को बुलाकर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव में कीर्तन आदि करवाते थे। कुछ समय पश्चात् उनके विचारों में परिवर्तन आया और वह गांधीजी के भक्त बन गये। फिर आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द) के सम्पर्क में आकर उनकी श्रद्धा आर्यसमाज के प्रति बढ़ गयी।

आचार्य भगवान् देव के सम्पर्क से इन्होंने अपने चारों बच्चों को गुरुकुल में पढ़ाया। दोनों पुत्रियों को नरेला व खानपुर कलाँ में तथा दोनों पुत्रों को गुरुकुल झज्झर में शिक्षा दिलाई। जिस समय आचार्य भगवान् देव ने नरेला में लड़कियों का गुरुकुल खोला, प्रथम पाँच लड़कियों के साथ वहाँ उन्होंने अपनी पुत्री को प्रवेश दिलाया तथा दो तीन वर्षों तक वह गुरुकुल को सँभालते भी रहे। इस प्रकार इन्होंने आचार्य भगवान् देव के साथ १२ वर्ष तक कार्य किया; जहाँ वह आचार्यजी के साथ रहते हुए अपने तरीके से ग्रामीण बालकों से धूम्रपान छुड़ाने का कार्य करते थे तथा उन्हें यज्ञोपवीत व उत्तम शिक्षा देने के कार्य में तत्पर रहते थे।

इन्हीं दिनों भक्तजी ने 'हिन्दी सत्याग्रह' तथा 'गौहत्या बन्द' आन्दोलन में जेल यात्रायें भी कीं। सन् १९७१ में उनका विचार कन्या गुरुकुल खोलने का बना। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र आचार्य यशपाल को बार-बार कहा कि इस क्षेत्र में लड़कों की संस्था तो गुरुकुल मटिण्डू है, परन्तु लड़कियों की नहीं है, अतः इसकी स्थापना होनी चाहिये। उनके शुभ विचार ने उक्त संस्था को जन्म दिया।

प्रारम्भ में उन्होंने खरखौदा में डेढ़ बीघा निजी जमीन खरीद कर १५ अगस्त, १९७४ को गुरुकुल आरम्भ किया। परन्तु इस क्षेत्र में समीप ही एक अन्य संस्था होने से चन्दे से इसको चलाना कठिन था। घर में तीन आदमी सर्विस पर थे, उनकी तीन-चार वर्ष की थोड़ी-सी बचत को भी उन्होंने इस संस्था के निर्माण में लगा दिया तथा घर पर जो नाममात्र भूमि थी, उसे गिरवी रख कर तथा घर के बर्तन आदि लाकर इस संस्था का संचालन किया।

आरम्भ में इस संस्था में 'प्रभाकर' व 'शास्त्री' कक्षाओं की छात्राओं को पढ़ाने का प्रबन्ध किया गया। तत्पश्चात् हरयाणा सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त 'जे० बी० टी० होम साइंस', 'आर्ट एण्ड क्राफ्ट' तथा 'ओ० टी०' की ट्रेनिंग कक्षाएँ चलाई गयीं। इस संस्था ने प्रारम्भ में नन्हीं बालिकाओं के गुरुकुल का रूप धारण इसलिए नहीं किया, क्योंकि इस क्षेत्र में समीप ही दो अन्य संस्थाएँ थीं, इसलिए यहाँ के क्षेत्रवासियों पर चन्दे का अधिक भार पड़ता। अतः यह आवश्यक था कि पहले इसका निर्माण विद्यालय के रूप में कर के बाद में गुरुकुल का रूप दिया जाये। प्रारम्भ में आचार्य यशपाल ने स्वामी इन्द्रवेश तथा चौ० श्रीचन्द रोहट के सहयोग से समीप के ग्रामों के लगभग ५० व्यक्तियों को १०१ रुपये का सदस्य मनोनीत किया। अन्न संग्रह भी होता रहा।

वर्तमान समय में इस संस्था में ३०० छात्राएँ योग्य अध्यापक वर्ग के संरक्षण में ट्रेनिंग की शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। छात्राओं के लिए दान व फीस आदि से प्राप्त सम्पूर्ण सम्पत्ति 'शिक्षा परिषद्' गुरुकुल मटिण्डू के नाम करा दी गयी है, और उस का संचालन गुरुकुल मटिण्डू की कमेटी द्वारा ही होता है।

(६) कन्या गुरुकुल, खरल (जीन्द)

स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार कौरव-पाण्डवों की जन्मभूमि मानी जाने वाली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थली खरल (जिला जीन्द, हरयाणा) में कन्या गुरुकुल की स्थापना २६ जनवरी, १९७६ को गणतन्त्र दिवस के राष्ट्रीय पर्व पर स्वामी रत्नदेव सरस्वती के कर कमलों से हुई थी। शिक्षा की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ कन्याओं की कोई शिक्षण-संस्था नहीं थी। स्वामी रत्नदेव नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए कन्याओं की शिक्षा के लिए संस्थायें स्थापित करने का अनथक प्रयास कर रहे हैं। उनके संरक्षण में व उन द्वारा संचालित अन्य शिक्षण-संस्थायें आर्ष विद्यापीठ गुरुकुल कुम्भा खेड़ा तथा वैदिक कन्या पाठशाला हँसनगढ़ (हिसार) हैं। उन्होंने ही स्थानीय व्यक्तियों, नरवाणा के आर्य भाइयों तथा धनपतियों का सहयोग प्राप्त करके खरल के कन्या गुरुकुल का विकास किया है।

जिला जीन्द के देहाती क्षेत्रों में केवल यही एक मात्र ऐसी संस्था है जहाँ छात्रायें निश्चिन्त होकर विद्या प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रदेश में पहले कन्याओं को शिक्षित करना बहुत बुरा समझा जाता था, किन्तु धीरे-धीरे स्वामीजी के नेतृत्व में इस संस्था ने ग्रामीण क्षेत्रों पर ऐसा प्रभाव डाला कि जनता स्वयमेव इस ओर आकृष्ट होने लगी। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ऐसा वातावरण बनाने के लिए स्वामीजी को निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। उनका दृढ़ संकल्प था कि यदि उनके संघर्ष करने या कष्ट उठाने से हजारों कन्याओं का जीवन और भविष्य उज्ज्वल बनता है तो उस कष्ट को उठाने और संघर्ष करने के लिए वह सदैव तैयार रहेंगे। उनकी तपस्या का परिणाम यह गुरुकुल है।

इस गुरुकुल में इस समय दसवीं तक की कक्षाओं की पढ़ाई होती है। इसे हरयाणा बोर्ड से मान्यता प्राप्त है। दसवीं के बाद विशारद् और शास्त्री श्रेणियों की पढ़ाई चलती है। तीसरी श्रेणी से संस्कृत एवं धर्मशिक्षा का ज्ञान बालिकाओं को अनिवार्य रूप से दिया जाता है।

दूर-दूर से आकर इस संस्था में वैदिक शिक्षा ग्रहण करने और गुरुकुल के वातावरण का लाभ उठाने की इच्छा रखने वाली बालिकाओं के लिए छात्रावास का सुन्दर प्रबन्ध है। ब्रह्मचारिणी दर्शन आचार्या छात्रावास की अध्यक्षा और विद्यालय में शिक्षिका हैं। इन्होंने सरकारी सेवा को तिलांजलि देकर समाज की सेवा का व्रत धारण किया है। जनता इनकी कर्मठता, क्रियाशीलता तथा मधुर सामाजिक व्यवहार से बड़ी प्रभावित है। इनकी अध्यक्षता में छात्रावास में हरयाणा के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, नेपाल तक की कन्याएँ रह रही हैं। इस समय यहाँ छात्रावास में रहने वाली कन्याओं की संख्या एक सौ पच्चीस है।

प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल छात्रावास में सन्ध्या-हवन तथा वैदिक मन्त्रों का सस्वर उच्चारण होता है। छात्राओं की कुल संख्या चार सौ पच्चीस है। १७ अध्यापिकाएँ मुख्याध्यापिका श्रीमती उषा रानी के निरीक्षण में कार्य कर रही हैं। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। भोजन और आवास का शुल्क बहुत ही कम लिया जाता है।

इस गुरुकुल का प्रबन्ध विद्यार्यसभा कन्या गुरुकुल, खरल द्वारा होता है। इसकी प्रबन्धक समिति के नौ सदस्य हैं। स्वामी रत्नदेव सरस्वती कुलपति हैं, और समिति के प्रधान श्री भलेराम जैन हैं।

गुरुकुल की वार्षिक आय लगभग साढ़े तीन लाख रुपये है, और व्यय लगभग सवा तीन लाख है। आय का प्रधान साधन चन्दा और सरकारी अनुदान है। जमीन से भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ आय हो जाती है। गुरुकुल की ओर से एक प्रचार-मण्डली भी रखी गयी है, जो गुरुकुल के लिए धन-संग्रह का कार्य करती है।

गुरुकुल के लिए हरयाणा सरकार और स्थानीय जनता से काफी आर्थिक सहायता मिलती रही है। भूतपूर्व कृषिमन्त्री एवं वर्तमान सिंचाईमन्त्री श्री शमशेरसिंह ने ११,००० रुपये की राशि विज्ञान भवन का शिलान्यास रखते हुए हरयाणा सरकार की ओर से अनुदान में प्रदान की। भूतपूर्व रक्षामन्त्री श्री वंशीलालजी ने भी ११,००० रुपये की राशि अनुदान में दी। मन्त्री मूलचन्द जैन तथा राजपालजी ने भी ५,००० का दान दिया। नरवाणा नगर के सेठों तथा ग्रामीण आर्य भाइयों ने गुरुकुल के कमरों को बनवाने के लिए दान दिया है। १,१०० रुपये की राशि देने वाले चालीस आर्य भाई हैं।

आर्थिक सहायता के साथ साथ गुरुकुल को भूमि का भी दान मिला है। खरल की दो महिलाओं—श्रीमती खजानीदेवी तथा श्रीमती भूला देवी ने १०-१० बीघे जमीन दी है और ५० बीघा भूमि गुरुकुल को ग्राम पंचायत खरल ने दी है।

प्रतिवर्ष फरवरी के महीने में कन्या गुरुकुल का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। छात्राओं को लाठी चलाना, धनुष-बाण, डम्बल, लेजिम, आसन आदि विशेष रूप से सिखाये जाते हैं, और उत्सव के अवसर पर छात्राओं के व्यायाम के प्रदर्शन जनता द्वारा बड़े पसन्द किये जाते हैं। कन्यायें इस अवसर पर भाषण, वाद्यसंगीत आदि के कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। इस क्षेत्र में यह कन्या गुरुकुल शिक्षा एवं आर्य संस्कृति के प्रसार का प्रमुख केन्द्र है।

(७) अन्य कन्या गुरुकुल

हरयाणा राज्य और दिल्ली के संघ-क्षेत्र में अन्य भी अनेक कन्या गुरुकुल विद्यमान हैं। करनाल (हरयाणा) जिले में पाढ़ा और बला नामक स्थानों पर और रोहतक जिले में सिद्दीपुर लोवां में भी कन्या गुरुकुलों की सत्ता है। गुरुकुल पाढ़ा (आर्य कन्या गुरुकुल संस्कृत विद्यालय) की स्थापना सन् १९७३ में डा० गणेशदास अनेजा द्वारा की गयी थी। इसमें दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था है, और छात्राओं की संख्या १०० के लगभग है।

दिल्ली नगर के न्यू राजेन्द्रनगर क्षेत्र में आर्य कन्या गुरुकुल की सत्ता है। इसकी स्थापना अक्तूबर, सन् १९६७ में श्रीमती ब्रह्मशक्तिजी द्वारा की गयी थी। इसमें लाल-बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार मध्यमा स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। छात्राओं की संख्या १२५ के लगभग है। सब छात्राएँ छात्रावास में निवास करती हैं, और गुरुकुलीय दिनचर्या के अनुरूप ब्रह्मचर्य, तप और निष्ठा का जीवन व्यतीत करती हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारहवाँ अध्याय

दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं का असाधारण विस्तार

(१) भारत के विभाजन से डी० ए० वी० संस्थाओं को अपार क्षति

सन् १८८६ में पहला डी० ए० वी० स्कूल लाहौर में स्थापित हुआ था। आधी सदी के समय में पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और बिलोचिस्तान में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का एक जाल-सा बिछ गया था। लाहौर डी० ए० वी० आन्दोलन का केन्द्र था, और वहीं डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट तथा मैनेजिंग सोसायटी का प्रधान कार्यालय विद्यमान था। सोसायटी द्वारा जिन शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जा रहा था, उनमें बहुसंख्यक उस क्षेत्र में थीं जो भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान के अन्तर्गत हो गया था। साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन के कारण हिन्दुओं के लिए पाकिस्तान में रह सकना सम्भव नहीं रहा और आर्यसमाज द्वारा स्थापित सब शिक्षणालय उनके हाथ से चले गये। डी० ए० वी० सोसायटी की जो सम्पत्ति पाकिस्तान में रह गयी, उसकी कीमत दो करोड़ रुपये से भी अधिक थी। लाहौर के डी० ए० वी० कॉलिज के छात्रावास से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पाकिस्तान में छूट गयी डी० ए० वी० संस्थाएँ कितनी विशाल थीं। जो हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान से भारत आ रहे थे उन्हें सकुशल भारत पहुँचाने के लिए डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर के छात्रावास और उसके साथ के परिसर में सरकार द्वारा एक शिविर की व्यवस्था की गयी थी जिसमें निवास करने वाले शरणार्थियों की संख्या कभी-कभी २५,००० से भी अधिक हो जाती थी। इससे स्पष्ट है कि लाहौर के डी० ए० वी० कॉलिज के छात्रावास का परिसर ही इतना विशाल था कि उसमें इतनी अधिक संख्या में शरणार्थियों के निवास की व्यवस्था की जा सकी थी।

सन् १९४७ में भारत के विभाजन के समय डी० ए० वी० सोसायटी द्वारा संचालित सायन्स एवं आर्ट्स कॉलिजों की संख्या ९ थी। इनके अतिरिक्त ७ व्यावसायिक व तकनीकी संस्थानों का संचालन उस द्वारा किया जा रहा था। डी० ए० वी० स्कूलों की संख्या ४५ थी। इन बड़ी शिक्षण-संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से छोटे-छोटे शिक्षणालय डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के तत्त्वावधान में स्थापित थे। डी० ए० वी० सोसायटी की वार्षिक आमदनी १० लाख १५ हजार थी और उसका खर्च ९ लाख ५९ हजार रुपये था। आमदनी का प्रधान साधन वह शुल्क था, जो विद्यार्थियों से लिया जाता था। डी० ए० वी० संस्थाओं में शिक्षा-शुल्क की दर अन्य शिक्षणालयों की तुलना में बहुत कम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, पर ये संस्थाएँ इतनी लोकप्रिय थीं और इनमें विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक थी कि शुल्क की दर कम होते हुए भी उससे अच्छी आमदनी प्राप्त हो जाती थी। आमदनी का एक अन्य साधन दान था। जनता इन संस्थाओं की उपयोगिता को स्वीकार करती थी और दान द्वारा इनकी सहायता करती थी। महत्त्व की बात यह है कि डी० ए० वी० संस्थाएँ सरकार से कोई भी अनुदान प्राप्त नहीं करती थीं। सरकार उन्हें अनुदान देने को तैयार थी, पर सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त कर लेने पर जिन बन्धनों में बँध जाना होता था, डी० ए० वी० सोसायटी उन्हें स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं थी।

बड़ी और छोटी जो डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ पाकिस्तान में रह गयीं, उनकी संख्या ६१ के लगभग है। डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी को इससे जो अपार क्षति हुई, उसका अनुमान सहज में किया जा सकता है। लाहौर इन संस्थाओं का प्रधान केन्द्र था। हाईस्कूल और कॉलिज के अतिरिक्त आयुर्वेदिक कॉलिज, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, महिला कॉलिज, वैदिक शोध संस्थान आदि अन्य भी अनेक संस्थाएँ वहाँ विद्यमान थीं। ये सब संस्थाएँ पाकिस्तान में ही रह गयीं, और डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी भी पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गयी। इन्हें भारत में पुनःस्थापित कर सकना सुगम नहीं था। पर डी० ए० वी० सोसायटी के सदस्य निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने जालन्धर में सोसायटी के कार्यालय को स्थापित किया। लाहौर में उसके जो भी कर्मचारी थे, सब बेघरबार हो गये थे। उनके पुनर्वास की समस्या सोसायटी के सम्मुख थी। पर इससे भी विकट समस्या उन विद्यार्थियों की शिक्षा की व्यवस्था करने की थी, जिनके स्कूल और कॉलिज पाकिस्तान में रह गये थे। इन शिक्षणालयों की पुनःस्थापना या पुनर्वास के लिए एक पुनर्वास निधि की स्थापना की गयी और उसके लिए जनता से दान एकत्र करना प्रारम्भ किया गया। डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट तथा मैनेजिंग सोसायटी को भारत में नये सिरे से संगठित व स्थापित करने और शिक्षण-संस्थाओं का व्यवस्थित रूप से संचालन प्रारम्भ करने का प्रधान श्रेय स्वर्गीय डा० मेहरचन्द महाजन को प्राप्त है। यह उन्हीं के सशक्त नेतृत्व तथा अनुपम संगठन-क्षमता का परिणाम था, जो पाकिस्तान से विस्थापित अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ भारत में पुनः स्थापित हुईं और शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने जिस आन्दोलन का लाहौर में सूत्रपात किया था, स्वतन्त्र भारत में उसने अत्यन्त प्रबल व व्यापक रूप प्राप्त कर लिया। भारत के विभाजन के समय सन् १९४७ में डी० ए० वी० स्कूलों, कॉलिजों और अन्य संस्थानों की कुल संख्या ६१ थी। यह संख्या बढ़ कर सन् १९५१ में ८२, सन् १९६७ में ११० और सन् १९८१ में १६९ हो गयी थी। १९८१-८२ में इसमें और भी वृद्धि हुई और डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के तत्त्वावधान में स्थापित एवं संचालित शिक्षण-संस्थाओं की संख्या १९६ तक पहुँच गयी। इन १९६ संस्थाओं में ३३ डिग्री कॉलिज, १५ व्यावसायिक एवं तकनीकी संस्थान और १४८ स्कूल हैं। १९४७ से १९८२ तक के ३५ वर्षों में डी० ए० वी० शिक्षणालयों में तीन गुने से भी अधिक वृद्धि का हो जाना वस्तुतः एक असाधारण बात है। लाखों विद्यार्थी इस समय डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं में विद्याध्ययन कर रहे हैं, और उनका बजट अब करोड़ों तक पहुँच गया है। भारत में कोई भी अन्य ऐसी गैर-सरकारी सोसायटी या संगठन नहीं है जिस द्वारा इतने अधिक शिक्षणालय चलाये जा रहे हों। क्रिश्चियन मिशनरियों के संगठन अन्तर्राष्ट्रीय हैं। साधनों की उनके पास कोई कमी नहीं है। तब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी भारत में क्रिश्चियन शिक्षणालयों में उतने विद्यार्थी नहीं हैं, जितने डी० ए० वी० संस्थाओं में हैं। आर्यसमाज इन संस्थाओं पर वस्तुतः गर्व अनुभव कर सकता है।

डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी का प्रधान कार्यालय देर तक जालन्धर में नहीं रहा। कुछ समय पश्चात् उसे नयी दिल्ली ले आया गया। अब यह नयी दिल्ली की चित्रगुप्त रोड पर विद्यमान है, और वहीं से डी० ए० वी० शिक्षणालयों की सब व्यवस्था की जाती है। पंजाब और हरयाणा के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नगरों तथा दिल्ली के अनेक क्षेत्रों में डी० ए० वी० संस्थाएँ स्थापित की जा चुकी हैं। पर डी० ए० वी० सोसायटी नयी दिल्ली का कार्यक्षेत्र केवल पंजाब, हरयाणा और दिल्ली तक ही सीमित नहीं है। बिहार, उड़ीसा और त्रिपुरा में भी सोसायटी द्वारा अनेक शिक्षणालय खोले जा चुके हैं, और उसके सदस्य इस बात का यत्न कर रहे हैं कि अन्यत्र भी उनके कार्य का विस्तार होता जाय। इस वर्ष नागालैण्ड और सुदूर दक्षिण में भी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित होनी प्रारम्भ हो गयी हैं।

इस प्रसंग में यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि बहुत-से अन्य प्रदेशों में भी डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज विद्यमान हैं। पर ये उस सोसायटी के प्रबन्ध में नहीं हैं, जिसका प्रधान कार्यालय चित्रगुप्त रोड नयी दिल्ली में स्थित है। वस्तुतः, दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं ने एक प्रबल आन्दोलन का रूप प्राप्त कर लिया है और उनकी संख्या तथा प्रभाव में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। भारत के विभाजन के कारण डी० ए० वी० संस्थाओं को जो अपार क्षति पहुँची थी तथा ६१ के लगभग शिक्षण-संस्थाओं के पाकिस्तान में रह जाने के कारण जो हानि हुई थी, अब इतने स्कूल खुल गये हैं कि उनके सम्मुख उस क्षति की उपेक्षा की जा सकती है।

(२) डी० ए० वी० डिग्री कॉलिज

डी० ए० वी० कॉलिज, जालन्धर—दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ट्रस्ट तथा मैनेजिंग सोसायटी, नयी दिल्ली द्वारा जिन कॉलिजों का संचालन किया जा रहा है, जालन्धर का डी० ए० वी० कॉलिज उनमें सबसे बड़ा है। इसमें आर्ट्स, सायन्स और कामर्स तीनों की शिक्षा की व्यवस्था है, और नौ विषयों में स्नातकोत्तर स्तर की भी पढ़ाई होती है। सन् १९८१-८२ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या ५,३०० से भी अधिक थी, जिनमें से १००० के लगभग कॉलिज के छात्रावासों में निवास कर रहे थे। १८० के लगभग प्राध्यापक कॉलिज की कक्षाओं में अध्यापन के लिए नियुक्त थे। यदि विद्यार्थियों और प्राध्यापकों की संख्या को दृष्टि में रखा जाए, तो जालन्धर के डी० ए० वी० कॉलिज को यूनिवर्सिटी कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। कॉलिज का एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें पुस्तकों की संख्या १,५०,००० के लगभग है। खेलकूद, व्यायाम तथा नेशनल कैडेट कोर आदि की कॉलिज में समुचित व्यवस्था है, और पढ़ाई का स्तर बहुत सन्तोष-जनक है। इसीलिए सन् १९८१ की यूनिवर्सिटी परीक्षाओं में इस कॉलिज के विद्यार्थियों ने ९ स्वर्णपदक प्राप्त किये। कॉलिज में आर्य युवक समाज भी स्थापित है, जहाँ प्रतिदिन सन्ध्या और हवन किये जाते हैं, वहाँ साथ ही श्रावणी, जन्माष्टमी और बोधोत्सव आदि के अवसरों पर विशेष समारोहों का भी आयोजन किया जाता है। आर्य युवक समाज के कारण विद्यार्थियों को अपने धर्म तथा संस्कृति से परिचित होने का अवसर प्राप्त होता है

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आर्यसमाज के कार्यकलाप में हाथ बटाने के लिए भी वे उत्साहित होते हैं। कॉलिज की सब कक्षाओं में धर्मशिक्षा देने की भी व्यवस्था है। प्रति सप्ताह एक घण्टे का समय वैदिक धर्म तथा संस्कृति की शिक्षा के लिए दिया जाता है। विद्यार्थी धर्मशिक्षा की परीक्षा में भी बैठते हैं। कॉलिज के पुस्तकालय में वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकों का भी अच्छा संग्रह है। विद्यार्थी और प्राध्यापक उनका समुचित रूप से उपयोग करते हैं। डी० ए० वी० कॉलिज, जालन्धर की स्थापना सन् १९१६ में हुई थी। ६४ साल की अवधि में इसने इतनी अधिक उन्नति कर ली है कि हजारों विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं और न केवल गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर (जिसके साथ यह कॉलिज सम्बद्ध है) में ही, अपितु सम्पूर्ण पंजाब में इस कॉलिज ने उच्च शिक्षा की सबसे विशाल संस्था की स्थिति प्राप्त कर ली है।

डी० ए० वी० कॉलिज, अम्बाला सिटी—सन् १८८६ में लाहौर में जिस डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना की गयी थी, भारत विभाजन के पश्चात् सन् १९४८ में उसे ही अम्बाला सिटी में पुनः स्थापित किया गया। इस दृष्टि से इसे सबसे पुराना डी० ए० वी० कॉलिज कहा जा सकता है। एक नये नगर में लाहौर से विस्थापित हुए कॉलिज को नये सिरे से स्थापित करना सुगम बात नहीं थी। अनेक विघ्न बाधाओं को दूर कर डी० ए० वी० मैनेजिंग सोसायटी के सदस्य व पदाधिकारी जो अपनी सबसे पुरानी शिक्षण-संस्था को पुनः स्थापित करने में समर्थ हुए, यह उनकी लगन तथा कर्तव्य बुद्धि का ही परिणाम था। अम्बाला का यह डी० ए० वी० कॉलिज कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है। सन् १९८१-८२ में इसमें विद्यार्थियों की संख्या ११७० थी, जिनमें से १२० छात्रावास में निवास कर रहे थे। कॉलिज में आर्ट्स और सायन्स दोनों के विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था है। पुस्तकालय में ३८,००० के लगभग पुस्तकें हैं। कॉलिज में खेलकूद, नेशनल कैडेट कोर आदि की समुचित व्यवस्था है, और विद्यार्थी उनमें उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। अम्बाला जिले तथा कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी में विविध खेलों की जो अनेक प्रतियोगिताएँ होती हैं, उनमें इस कॉलिज के विद्यार्थी उच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर—इस महाविद्यालय की स्थापना सन् १९२७ में महात्मा हंसराज द्वारा लाहौर में की गयी थी। सन् १९४७ में भारत के विभाजन के कारण इसे लाहौर से जालन्धर लाकर पुनः स्थापित किया गया। इस समय यह महाविद्यालय स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने वाली पंजाब की शिक्षण-संस्थाओं में मूर्धन्य स्थान रखता है। सन् १९८१-८२ में इसमें छात्राओं की संख्या २,८५२ थी, जिनमें से ४०० के लगभग कॉलिज के छात्रावास में निवास कर रही थीं। प्राध्यापकों की संख्या ८३ थी। उनके अतिरिक्त ६१ कर्मचारी पुस्तकालय, छात्रावास आदि में विविध कार्यों में नियुक्त थे। यह कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर के साथ सम्बद्ध है, और इसमें आर्ट्स तथा सायन्स के विविध विषयों के साथ-साथ गृह विज्ञान, संगीत तथा पेन्टिंग की शिक्षा की भी व्यवस्था है। महाविद्यालय ग्राण्ड ट्रंक रोड पर एक सुन्दर व रमणीक स्थान पर स्थित है, जिसका क्षेत्रफल १५० बीघे के लगभग है। इस सुविस्तृत परिसर में महाविद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय, स्वास्थ्य केन्द्र आदि की विशाल इमारतें बनी हुई हैं। तैरने के लिए एक स्विमिंग पूल तथा विविध खेलों के लिए क्रीड़ा-क्षेत्र भी वहाँ विद्यमान हैं। छात्राओं को व्यायाम की शिक्षा देने पर महाविद्यालय में विशेष ध्यान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाता है। इसीलिए वहाँ एक जिम्नाजियम का भी निर्माण किया गया है, जिसमें जिम्नास्टिक सिखाने के सब साधन हैं। महाविद्यालय में वैदिक धर्म तथा संस्कृति की शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था है। पढ़ाई शुरू होने से पूर्व प्रतिदिन प्रार्थना की जाती है तथा छात्रावास में रहने वाली छात्राओं को प्रतिदिन प्रातःकाल प्रार्थना तथा सायंकाल सन्ध्या नियमित रूप से करनी होती है। डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा की परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए भी छात्राओं को प्रेरित किया जाता है। महाविद्यालय में संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सन् १९८०-८१ में इस संस्था में ३७१ छात्राएँ संस्कृत और ४८७ छात्राएँ हिन्दी भाषा का अध्ययन कर रही थीं। पंजाब में कोई भी अन्य ऐसा महाविद्यालय नहीं है, जहाँ इतनी छात्राएँ इन भाषाओं के अध्ययन में तत्पर हों और जहाँ वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज का उस प्रकार का वातावरण हो जैसा कि हंसराज महिला महाविद्यालय में है।

खैरातीराम महेन्द्रू डी० ए० वी० कॉलिज, नकोदर—पंजाब के जालन्धर जिले में नकोदर एक छोटा-सा नगर है, जहाँ जुलाई, १९६० में यह कॉलिज स्थापित हुआ था। इसके लिए १७,५०० वर्ग गज भूमि श्री अमरनाथ मिश्र ने प्रदान की थी, और श्रीमती वेद कौर तथा श्रीमती सुशीला महेन्द्रू ने अपने दिवंगत पति श्री खैरातीराम महेन्द्रू की पुण्य स्मृति में एक लाख रुपये दान में दिये थे। इसे स्थापित हुए अभी केवल २२ वर्ष हुए हैं। इस स्वल्प काल में ही इसने बहुत उन्नति कर ली है। सन् १९६०-६१ में इसमें विद्यार्थियों की संख्या केवल ३१० थी, जो १९८१-८२ में १३५० तक पहुँच गयी थी। वर्तमान समय में इस कॉलिज में ३४ प्राध्यापक अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। गैर-शिक्षक कर्मचारियों की संख्या ३३ है। इस कॉलिज में आर्ट्स और सायन्स दोनों ही विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था है। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई पर भी इस कॉलिज में समुचित ध्यान दिया जाता है। सन् १९८१-८२ में संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या वहाँ २०९ थी। कॉलिज के पुस्तकालय में १२,२७६ पुस्तकें हैं। विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में बैठने के लिए भी प्रेरित किया जाता है। इस कॉलिज के दो विद्यार्थी सन् १९८१ की धर्मशिक्षा परीक्षा में सारे उत्तरी भारत में प्रथम और द्वितीय रहे थे।

डी० ए० वी० कॉलिज, अमृतसर—पंजाब के कॉलिजों में अमृतसर का डी० ए० वी० कॉलिज बहुत सम्मानास्पद स्थान रखता है। १९८१-८२ में इसमें विद्यार्थियों की संख्या ३,५७१ थी, और १०९ प्राध्यापक इसमें अध्यापन के लिए नियुक्त थे। कॉलिज की स्थापना सन् १९५५ में की गयी थी। शुरू में इसमें केवल ४५० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे। पर २७ वर्षों में ही इस संस्था ने इतनी उन्नति कर ली, कि विद्यार्थियों की संख्या आठ गुना हो गयी। कॉलिज में आर्ट्स, सायन्स और कामर्स तीनों विषयों की शिक्षा की व्यवस्था है। उसका परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा रहता है। यह कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी अमृतसर से सम्बद्ध है। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में जो विद्यार्थी बैठते हैं उनमें साढ़े बयालीस प्रतिशत ही उत्तीर्ण हो पाते हैं। पर इस कॉलिज के विद्यार्थियों में उत्तीर्ण होने वालों की संख्या ६६ प्रतिशत से भी अधिक रहती है। कॉलिज के पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ४४,००० के लगभग है। वाचनालय में १४ दैनिक पत्र तथा १२३ भारतीय व विदेशी पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। कॉलिज के साथ महात्मा हंसराज हॉस्टल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम से एक छात्रावास भी है जिसमें विद्यार्थियों के निवास तथा भोजन आदि की सब आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। प्रति माह इसमें सन्ध्या-हवन तथा किसी धार्मिक विषय पर प्रवचन की व्यवस्था भी की जाती है जिसके कारण विद्यार्थियों को अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। कॉलिज में खेलकूद तथा व्यायाम की उत्तम व्यवस्था है और विभिन्न प्रयोजनों से १९ सोसायटियाँ व क्लब संगठित हैं, जिनके द्वारा विद्यार्थी वाद-विवाद, भाषण, कविता-पाठ तथा संगीत आदि में प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं।

बी० बी० के० डी० ए० वी० महिला महाविद्यालय, अमृतसर—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९६७ में आर्यसमाज लारेंस रोड, अमृतसर के पुरुषार्थ तथा स्वर्गीय श्री मेहरचन्द महाजन के आशीर्वाद से हुई थी। स्थापना के समय इसमें छात्राओं की संख्या केवल ३०० थी, जो निरन्तर बढ़ती गई और जनवरी, १९८१ में १६०० तक पहुँच गयी थी। महाविद्यालय में आर्ट्स तथा कामर्स के विषयों की शिक्षा की व्यवस्था है और वह गुरु नानक यूनिवर्सिटी, अमृतसर के साथ सम्बद्ध है। महाविद्यालय के साथ एक छात्रावास का भी निर्माण किया गया है, जिसमें अभी केवल १८ छात्राओं के लिए स्थान हैं। इस नये छात्रावास के अतिरिक्त एक पुराना छात्रावास भी है। महाविद्यालय के पुस्तकालय में २५,३७५ पुस्तकें हैं। इस संस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रतिदिन सन्ध्या-हवन किया जाता है और सब छात्राएँ तथा प्राध्यापक उसमें सम्मिलित होते हैं। विभिन्न अवसरों पर अन्य भी धार्मिक व सांस्कृतिक आयोजन किये जाते हैं। महात्मा हंसराज दिवस वहाँ बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। खेलकूद के क्षेत्र में भी इस महाविद्यालय ने बहुत सफलताएँ प्राप्त की हैं। यूनिवर्सिटी की प्रतियोगिताओं में बैडमिंटन, क्रिकेट, टेबल टेनिस आदि में इसे बहुधा उच्च स्थान प्राप्त होता रहता है। एन० सी० सी० के कैम्प भी वहाँ आयोजित किये जाते हैं।

एस० एल० बावा डी० ए० वी० कॉलिज, बटाला—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९६९ में हुई थी। स्थानीय आर्य जनता ने इसे स्थापित करने के लिए विशेष उत्साह प्रदर्शित किया था और श्री सोहनलाल बावा ने इसके लिए ७५,००० रुपयों की धनराशि प्रदान की थी। पहले साल ही इसमें ४२७ विद्यार्थी प्रविष्ट हो गये थे। १९८१-८२ में वहाँ विद्यार्थियों की संख्या ९२० थी और उन्हें पढ़ाने के लिए ३२ प्राध्यापक नियुक्त थे। गैर-शिक्षक कर्मचारियों की संख्या २४ थी। स्नातक स्तर तक इसमें बी० ए०, बी० एस-सी० तथा बी० कॉम तक की पढ़ाई की व्यवस्था है और यह गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर के साथ सम्बद्ध है। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई पर इस कॉलिज में समुचित ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि १९८१ में वहाँ १३१ विद्यार्थियों ने संस्कृत और २४४ विद्यार्थियों ने हिन्दी विषय लिये हुए थे। डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा की परीक्षाएँ भी इस कॉलिज के विद्यार्थियों से दिलायी जाती हैं। कॉलिज के पुस्तकालय में ९२,००० के लगभग पुस्तकें हैं और खेलकूद आदि की भी वहाँ समुचित व्यवस्था है।

आर० आर० बावा डी० ए० वी० महिला कॉलिज, बटाला—यह कॉलिज बटाला के स्थानीय निवासियों के पुरुषार्थ से जुलाई, १९६५ में स्थापित हुआ था। युगाण्डा (पूर्वी अफ्रीका) के श्री दुर्गादास बावा ने इसके लिए ७५,००० रुपये दान किये थे। शुरू में छात्राओं की संख्या १४० थी, जिसमें प्रति वर्ष निरन्तर वृद्धि होती गयी। सन् १९८१ के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ में वहाँ ६३४ छात्राएँ अध्ययन कर रही थीं, जिसमें १०४ ने संस्कृत तथा १०५ ने हिन्दी विषय लिये हुए थे। यह कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर के साथ सम्बद्ध है, और डिग्री स्तर तक विविध विषयों की पढ़ाई की वहाँ व्यवस्था है। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है जिसमें २३ कमरों तथा एक सुविशाल भोजनकक्ष की सत्ता है। छात्रावास में निवास की सब आधुनिक सुविधाएँ विद्यमान हैं। कॉलिज में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है, इसी कारण उसका परीक्षा परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहता है। उत्तीर्ण छात्राओं की संख्या प्राय: ६० प्रतिशत से भी अधिक होती है। खेलकूद की भी वहाँ समुचित व्यवस्था है। योग की शिक्षा भी वहाँ दी जाती है और धर्मशिक्षा का भी प्रबन्ध है।

जगदीश चन्द डी० ए० वी० कॉलिज, दसूआ—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९६९ में हुई थी। शुरू में इसका संचालन डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के हाथों में नहीं था। पर १९७५ में जब यह डी० ए० वी० कमेटी के नियन्त्रण व प्रबन्ध में आ गया, तब से इसकी समुचित प्रकार से उन्नति होने लगी, और सात वर्षों के स्वल्प काल में इसने एक सुव्यवस्थित शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर लिया। इसमें बी० ए० और बी० एस-सी० स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है, और ८०९ विद्यार्थी वहाँ अध्ययन कर रहे हैं। प्राध्यापकों की संख्या २८ है, और २५ गैर-शिक्षक कर्मचारी इनके अतिरिक्त हैं। संस्कृत तथा हिन्दी के अध्ययन में भी विद्यार्थियों की रुचि है। १९८१-८२ में वहाँ ८३ विद्यार्थी संस्कृत तथा १०८ विद्यार्थी हिन्दी का अध्ययन कर रहे थे। धर्मशिक्षा की भी इस कॉलिज में व्यवस्था है। डी० ए० वी० कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी इसके विद्यार्थी बैठते हैं। यह कॉलिज पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के साथ सम्बद्ध है।

डी० ए० वी० कॉलिज, अबोहर—पंजाब यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध कॉलिजों में अबोहर के डी० ए० वी० कॉलिज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी स्थापना सन् १९६० में हुई थी। जब तक सन् १९७२ में अबोहर में गोपीचन्द आर्य महिला कॉलिज स्थापित नहीं हुआ था, बालिकाएँ भी इस डी० ए० वी० कॉलिज में ही पढ़ा करती थीं; यद्यपि उनकी पढ़ाई के लिए पृथक् रूप से व्यवस्था की गयी थी। सन् १९६० में स्थापित होकर यह कॉलिज निरन्तर उन्नति करता गया और सन् १९६८-६९ में उसके विद्यार्थियों की संख्या १५०३ तक पहुँच गयी। इनमें ३८९ कन्याएँ भी थीं। कॉलिज के साथ लड़कों और लड़कियों के लिए पृथक्-पृथक् छात्रावास भी थे। सन् १९६८ में १५० विद्यार्थी लड़कों के छात्रावास में रह रहे थे, और ६० छात्राएँ लड़कियों के लाजपत राय महिला हॉस्टल में। १९७१-७२ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर १६०२ हो गयी, जिनमें ४९५ कन्याएँ थीं। १९७२ में लड़कियों का पृथक् कॉलिज स्थापित हो जाने पर इसमें विद्यार्थियों की संख्या में कमी आ जाना स्वाभाविक था, इसीलिए १९८१-८२ में वहाँ केवल १०३६ विद्यार्थी थे। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई पर इस कॉलिज में भी समुचित ध्यान दिया जाता है। जिन विद्यार्थियों ने इन भाषाओं को अपने विषयों के रूप में लिया हुआ था, उनकी संख्या १९८१-८२ में क्रमश: ९५ और १७८ थी। इस कॉलिज में बी० एस-सी० (मेडिकल तथा नॉन-मेडिकल), बी० ए० तथा एम० ए० कक्षाओं तक की शिक्षा पंजाब यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार दी जाती है। प्राध्यापकों की संख्या ३९ है, और ३० अन्य गैर-शिक्षक वर्ग के कर्मचारी हैं। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या २९,००० के लगभग है। कॉलिज में अनेक एसोसियेशन, सोसायटियाँ तथा क्लब विद्यमान हैं, जिनसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त होती है। खेलकूद आदि की भी वहाँ समुचित व्यवस्था है।

इस डी० ए० वी० कॉलिज की एक विशेषता यह रही है, कि वहाँ कॉलिज का कार्य प्रार्थना से शुरू होता है, जिसमें वेदमन्त्रों का पाठ किया जाता है। प्रार्थना के पश्चात् राष्ट्रीय गीत भी गाया जाता है। आर्य युवक समाज इस कॉलिज में विशेष रूप से सक्रिय है। इसके द्वारा वेद के विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन किया जाता है, और निर्धन विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों की व्यवस्था की जाती है। इसके तत्त्वावधान में वैदिक साहित्य का एक पृथक् पुस्तकालय भी स्थापित है।

गोपीचन्द आर्य महिला कॉलिज, अबोहर—३ मई, १९७२ के दिन यह कॉलिज स्थापित हुआ था। यह पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के साथ सम्बद्ध स्नातक स्तर का कॉलिज है। पाठ्यक्रम में संस्कृत, हिन्दी, संगीत तथा गृहविज्ञान को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। गृहविज्ञान के लिए वहाँ दो प्रयोगशालाएँ विद्यमान हैं, और संगीत की शिक्षा के लिए दो पृथक् कक्ष हैं। १९८२ के प्रारम्भ में इस कॉलिज में छात्राओं की संख्या ५१६ थी, जिनमें से २२७ ने संस्कृत और ८२ ने हिन्दी विषय लिये हुए थे। अनेक छात्राओं ने धर्मशिक्षा की भी परीक्षा दी थी। कॉलिज के पुस्तकालय में ८,००० के लगभग पुस्तकें हैं, और खेलकूद की वहाँ अच्छी व्यवस्था है। पढ़ाई का स्तर ऊँचा है जिसके कारण इस कॉलिज का परीक्षा परिणाम प्रायः ९० प्रतिशत रहता है।

एम० जी० डी० ए० वी० कॉलिज, भटिण्डा—यह कॉलिज १ जुलाई, १९६० को स्थापित हुआ था, और भटिण्डा तथा समीपवर्ती मण्डियों के लोगों ने इसकी स्थापना में अनुपम उत्साह प्रदर्शित किया था। पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला के साथ सम्बद्ध इस कॉलिज में आर्ट्स, सायन्स (मेडिकल तथा नॉन-मेडिकल) और कामर्स के विषयों की स्नातक स्तर तक शिक्षा दी जाती है। १९८१-८२ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या १४७५ थी, जिनको पढ़ाने के लिए ५१ प्राध्यापक नियुक्त थे। अन्य कर्मचारियों की संख्या ४३ थी। संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा पर इस कॉलिज में समुचित ध्यान दिया जाता है। सन् १९८१ में वहाँ के २२० विद्यार्थियों ने संस्कृत ली हुई थी और २१० ने हिन्दी। कॉलिज के पुस्तकालय में १४,००० के लगभग पुस्तकें हैं। खेलकूद, व्यायाम आदि की वहाँ उत्तम व्यवस्था है, और इस कॉलिज के विद्यार्थी न केवल यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में ही, अपितु खेलकूद की प्रतियोगिताओं में तथा विद्यार्थियों से सम्बद्ध अन्य कार्यकलापों में भी उच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

डी० ए० वी० कॉलिज, मलोट—इस कॉलिज की स्थापना मलोट के गुडवर्ड-गंज पब्लिक वेलफेयर एसोसियेशन द्वारा सन् १९६८ में की गयी थी। शुरू में इसका नाम नेशनल कॉलिज था। ९ जून, १९६९ को इसका प्रबन्ध डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी ने अपने हाथ में लिया और तब से यह डी० ए० वी० कॉलिज कहलाने लगा। यह पंजाब यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है और इसमें स्नातक स्तर तक आर्ट्स और विज्ञान के विषयों की शिक्षा दी जाती है। कॉलिज में लड़के और लड़कियाँ दोनों की शिक्षा की व्यवस्था है। सन् १९८१ के प्रारम्भ में छात्रों की संख्या ५५० और छात्राओं की संख्या २९५ थी। २५ प्राध्यापक अध्यापन के लिए नियुक्त थे और गैर-शिक्षक कर्मचारी २३ थे। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या १४ हजार के लगभग थी। कॉलिज में धर्मशिक्षा के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पृथक् विभाग है, जिसकी व्यवस्था प्रोफेसर हंसराज तथा पण्डित विनयकुमार शास्त्री द्वारा की जाती है।

माता मिश्रीदेवी डी० ए० वी० महिला कॉलिज, गिद्दरबहा—फिरोजपुर जिले के गिद्दरबहा के निवासियों ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए १९६९ में इस कॉलिज की स्थापना की थी। पर एक साल बाद इसका प्रबन्ध डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली के सुपुर्द कर दिया गया। यद्यपि स्थानीय व्यक्तियों का सहयोग इस विद्यालय को प्राप्त था और उन द्वारा इसे धन भी प्रदान किया जाता था, पर इसकी आर्थिक समस्या का तब सन्तोषजनक रीति से समाधान हुआ जब सेठ मुरारीलाल गुप्त ने अपनी माता श्रीमती मिश्रीदेवी की पुण्य स्मृति में इसके लिए प्रभूत धनराशि प्रदान कर दी। यह कॉलिज पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के साथ सम्बद्ध है। १९८१-८२ में इसमें छात्राओं की संख्या १९० थी, जिनमें से २६ संस्कृत और ५० हिन्दी का अध्ययन कर रही थीं। कॉलिज में स्नातक स्तर तक आर्ट्‌स विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था है। पुस्तकालय में पाँच हजार के लगभग पुस्तकें हैं।

डी० ए० वी० कॉलिज, चण्डीगढ़—यह कॉलिज सन् १९५८ में स्थापित हुआ था। स्थापना के समय इसमें विद्यार्थियों की संख्या केवल ३०० थी, पर प्रतिवर्ष इस संख्या में वृद्धि होती गयी। सन् १९८१ के प्रारम्भ में इस कॉलिज में ४,२३१ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। पंजाब यूनिवर्सिटी का यह सबसे बड़ा तथा सर्वश्रेष्ठ कॉलिज है। इसमें शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा है कि न केवल भारत के विविध प्रदेशों से ही, अपितु फीजी, मारिशस, थाइलैण्ड, ईरान, सूडान, नाइजीरिया, जोर्डन, केनिया, र्‌होडेसिया, समालिया, मलयेशिया, अफगानिस्तान, मलावी, नेपाल, दक्षिणी अफ्रीका और तिब्बत आदि से भी विद्यार्थी इसमें शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते हैं। इस कॉलिज के विदेशों से आये हुए विद्यार्थियों की संख्या सन् १९८१ में ५०० से भी अधिक थी। कॉलिज की कक्षाओं के लिए ४२ भवन (क्लास रूम) हैं, और विज्ञान की शिक्षा के लिए १२ प्रयोगशालाएँ हैं। विद्यार्थियों के निवास के लिए छात्रावास भी विद्यमान हैं। १९८१-८२ में इनमें ७०० विद्यार्थी निवास कर रहे थे। प्राध्यापकों की संख्या १३१ थी। १०५ गैर-शिक्षक कर्मचारी थे। पंजाब यूनिवर्सिटी के सभी विभागों तथा उसकी पाठविधि के सभी विषयों की स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा की इस कॉलिज में व्यवस्था है। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई पर भी वहाँ समुचित ध्यान दिया जाता है। १९८१-८२ में २८० विद्यार्थियों ने संस्कृत और ७१० विद्यार्थियों ने हिन्दी विषय लिये हुए थे। धर्मशिक्षा की परीक्षा में बैठने के लिए भी विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाता है। इस कॉलिज में न केवल शिक्षा का स्तर ही ऊँचा है, बल्कि खेलकूद, तैराकी आदि में भी इसने अच्छा नाम प्राप्त किया है। पंजाब यूनिवर्सिटी की टेबल टेनिस, बासकेटबॉल, जिमनास्टिक, शूटिंग, योग आदि की प्रतियोगिताओं में यह कॉलिज चैम्पियनशिप प्राप्त कर चुका है, और हॉकी, क्रिकेट, फुटबॉल आदि में भी इसके विद्यार्थियों ने उच्च स्थान प्राप्त किये हैं। कॉलिज के पुस्तकालय में ६० हजार के लगभग पुस्तकें हैं। नेशनल कैडिट कोर (एन० सी० सी०) के वायु, जल तथा स्थल के तीनों पक्ष इस कॉलिज में हैं, जिनमें विद्यार्थी उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते हैं।

मेहरचन्द महाजन डी० ए० वी० महिला कॉलिज, चण्डीगढ़—इस कॉलिज की स्थापना जुलाई, १९६८ में स्वर्गीय श्री मेहरचन्द महाजन की पुण्य स्मृति में की गयी थी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री महाजन प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और सुविख्यात विधिवेत्ता थे। सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश के पद पर भी वह रहे थे। डी० ए० वी० आन्दोलन को सशक्त बनाने में उनका प्रमुख कर्तृत्व था। भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप जब दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाएँ पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गयी थीं, तो उन्होंने ही इन्हें सँभाला था और उनमें नवजीवन का संचार किया था। १९८१-८२ में इस कॉलिज में छात्राओं की संख्या २,१८६ थी, जिनमें १०० के लगभग मारिशस, केनिया, नाईजीरिया, तिब्बत, ईरान और थाईलैण्ड से इस कॉलिज में प्रविष्ट हुई थीं। शिक्षकों की संख्या ६३ थी, और ४७ गैर-शिक्षक कर्मचारी विविध कार्यों के लिए नियुक्त थे। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है, जिसमें सब आधुनिक सुविधाएँ विद्यमान हैं। १९८१ में २३४ छात्राएँ कॉलिज के छात्रावास में रह रही थीं। कॉलिज के पुस्तकालय में १९ हजार के लगभग पुस्तकें हैं। १०० से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ वाचनालय के लिए क्रय की जाती हैं। यह कॉलिज पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के साथ सम्बद्ध है और आर्ट्स, सायन्स और कामर्स के विषयों की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की वहाँ व्यवस्था है। भौतिक विज्ञान, रसायन, प्राणी विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र तथा गृहविज्ञान की प्रयोगशालाएँ कॉलिज में विद्यमान हैं। संस्कृत और हिन्दी विषयों की पढ़ाई की वहाँ समुचित व्यवस्था है। सन् १९८१ में वहाँ संस्कृत और हिन्दी की छात्राओं की संख्या क्रमशः १३० और ५२५ थी। छात्राओं को धर्मशिक्षा की परीक्षाओं के लिए भी तैयार किया जाता है। कॉलिज में अनेक सभाएँ व क्लब आदि संगठित हैं जिन द्वारा छात्राएँ वाद-विवाद, व्याख्यान, कविता-पाठ तथा संगीत आदि में प्रवीणता प्राप्त करती हैं। विविध खेलकूदों की भी समुचित व्यवस्था कॉलिज में है।

दयानन्द कॉलिज, हिसार—हरयाणा की शिक्षण-संस्थाओं में इस कॉलिज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी स्थापना जून, १९५० में हुई थी। स्वामी मुनीश्वरानन्द (श्री आचार्य ज्ञानचन्द्र) का इसे स्थापित करने में विशेष कर्तृत्व था। यह कॉलिज कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है तथा इसमें आर्ट्स, सायन्स तथा कामर्स विषयों की स्नातक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था है। विद्यार्थियों की संख्या २५०० के लगभग है। कुछ सौ कन्याएँ भी इसमें विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रविष्ट हैं। अध्यापन के लिए ८९ प्राध्यापक नियुक्त हैं। ७४ गैर-शिक्षक कर्मचारी इनके अतिरिक्त हैं। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है, जिसमें ५०० विद्यार्थी निवास करते हैं। कॉलिज में प्रति सप्ताह हवन भी किया जाता है, पर उसमें उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है। धर्मशिक्षा की भी वहाँ व्यवस्था है, पर ऐच्छिक रूप से। साप्ताहिक सत्संग, धार्मिक विषयों पर प्रवचन तथा साहित्य वितरण द्वारा विद्यार्थियों को वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज से परिचित व प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता है। कॉलिज के विद्यार्थियों की हिन्दी के अध्ययन में विशेष रुचि है। १९८१-८२ में जिन विद्यार्थियों ने हिन्दी विषय लिया हुआ था, उनकी संख्या १५८७ थी। ८८ विद्यार्थी संस्कृत के अध्ययन में तत्पर थे। कॉलिज के पुस्तकालय में बत्तीस हजार के लगभग पुस्तकें हैं। खेलकूद की भी वहाँ समुचित व्यवस्था है, और शिक्षा का स्तर सन्तोषजनक है।

डी० ए० वी० कॉलिज, सढौरा—अम्बाला जिले में सढौरा नाम का एक छोटा-सा कस्बा है जो शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए देहाती क्षेत्र में स्थित है। जुलाई, १९६८ में वहाँ डी० ए० वी० कॉलिज स्थापित हुआ था और वहाँ के लोगों ने इसकी स्थापना में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत उत्साह प्रदर्शित किया था। स्थानीय लोगों ने कॉलिज के लिए ७० हजार रुपये भी एकत्र कर लिये थे। शुरू में १७५ विद्यार्थी कॉलिज में प्रविष्ट हुए, जिनमें १२ कन्याएँ भी थीं। सढोरा तथा उसके आस-पास के गाँवों में शिक्षा की बहुत माँग थी, जिसके कारण विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी और केवल तीन वर्ष पश्चात् यह संख्या ५२० तक पहुँच गयी। यह कॉलिज कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है और उसमें केवल आर्ट्‌स विषयों की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

डी० ए० वी० कॉलिज, नन्योला—इस कॉलिज की स्थापना ७ जुलाई, १९७४ के दिन हुई थी। पंजाब और हरयाणा के सीमावर्ती देहाती क्षेत्र में स्थित यह कॉलिज दोनों राज्यों के ग्रामीण लोगों में उच्च शिक्षा के प्रसार के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसमें विद्यार्थियों की संख्या अधिक नहीं है, क्योंकि इस क्षेत्र के हाईस्कूलों का परीक्षा परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहता। बहुत कम विद्यार्थी हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर पाते हैं। सन् १९८१ के प्रारम्भ में १६७ विद्यार्थी इस कॉलिज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। यह कॉलिज कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है और केवल आर्ट्‌स विषयों में वहाँ स्नातक स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है।

डी० ए० वी० कॉलिज, पुंडरी—हरयाणा के करनाल जिले में करनाल-कैथल मार्ग पर पुंडरी एक छोटा-सा कस्बा है। वहाँ सन् १९६९ में इस कॉलिज की स्थापना हुई थी। कॉलिज की आधारशिला हरयाणा के तत्कालीन मुख्यमन्त्री द्वारा ७ एप्रिल, १९६९ को रखी गयी थी। १ जनवरी, १९८१ को इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या ३५४ थी, और १३ प्राध्यापक वहाँ अध्यापन के लिए नियुक्त थे। इस कॉलिज के विद्यार्थियों की संस्कृत तथा हिन्दी के अध्ययन में विशेष रुचि है। सन् १९८१ में २०७ विद्यार्थियों ने संस्कृत ली हुई थी, ३५० ने हिन्दी। धर्मशिक्षा की पढ़ाई की भी कॉलिज में व्यवस्था है। १९८१ में डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा परीक्षा में इस कॉलिज से २३३ विद्यार्थी बैठे थे। ३५४ में से २३३ विद्यार्थियों का धर्मशिक्षा की परीक्षा में बैठना सूचित करता है कि इस कॉलिज का वातावरण धार्मिक है।

डी० ए० वी० कॉलिज, पहोवा—यह कॉलिज सन् १९८१ में स्थापित हुआ था, और इसकी आधारशिला १३ मई, १९८० को हरयाणा के मुख्यमन्त्री श्री भजनलाल द्वारा रखी गयी थी। इसकी स्थापना में हरयाणा के सिंचाई मन्त्री श्री तारासिंह का विशेष कर्तृत्व था। ६ मार्च, १९८१ को श्री तेजासिंह के नेतृत्व में पहोवा के निवासियों के एक शिष्ट-मण्डल ने डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली के प्रधान महोदय से भेंट की थी और उनसे अनुरोध किया था कि पहोवा में एक कॉलिज स्थापित कर दिया जाय। इसके लिए शिष्टमण्डल ने दो लाख रुपये और तीस एकड़ जमीन (जो ग्राम पंचायत द्वारा दी गयी थी) भी कॉलिज कमेटी को अर्पित की थी। बाद में पहोवा तथा उसके समीप-वर्ती ग्रामों के लोगों ने भी उत्साहपूर्वक कॉलिज के लिए दान दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप ५ अगस्त, १९८१ के दिन यज्ञ के समारोह के साथ कॉलिज का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। पहले सत्र में ही ४०० विद्यार्थी कॉलिज में प्रविष्ट हो गये। यह कॉलिज कुरु-क्षेत्र यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है और इसमें केवल आर्ट्‌स विषयों की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

डी० ए० वी० महिला कॉलिज, यमुनानगर—इस कॉलिज की स्थापना सन्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५९ में हुई थी। पहले इसका प्रबन्ध एक स्थानीय मैनेजिंग कमेटी द्वारा किया जाता था, यद्यपि यह डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली के साथ सम्बद्ध था। पर बाद में यह नयी दिल्ली की डी० ए० वी० कमेटी के प्रबन्ध में आ गया और अब उसी के द्वारा इसकी व्यवस्था की जाती है। यह कॉलिज कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी से साथ सम्बद्ध है और इसमें आर्ट्स विषयों की स्नातक स्तर तक की पढ़ाई होती है। १९८१ के प्रारम्भ में इसकी छात्राओं की संख्या ३५४ थी। अध्यापन के लिए १९ प्राध्यापक नियुक्त थे और १८ गैर-शिक्षक कर्मचारी इनके अतिरिक्त थे। संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन में छात्राओं की विशेष रुचि है। सन् १९८१ में २२६ छात्राएँ संस्कृत पढ़ रही थीं और २८० हिन्दी। धर्मशिक्षा की पढ़ाई को भी इस कॉलिज में समुचित महत्त्व दिया जाता है। इसी कारण डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा परीक्षा में इस कॉलिज की २३३ छात्राएँ बैठी थीं, जिनमें से २११ उत्तीर्ण हुईं। कॉलिज के पुस्तकालय में दस हजार के लगभग पुस्तकें हैं। खेलकूद तथा एन० सी० सी० आदि की यहाँ समुचित व्यवस्था है।

डी० ए० वी० कॉलिज, काँगड़ा—यह कॉलिज सन् १९७६ में स्थापित हुआ था। इसकी स्थापना हुए अभी केवल ७ साल हुए हैं पर इस अल्प काल में ही इसने बहुत उन्नति कर ली है। सन् १९८१ में यहाँ ९७१ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे, और २७ प्राध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त थे। यह कॉलिज हिमाचल प्रदेश यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है तथा बी० ए० और बी० एस-सी० स्तर तक शिक्षा की यहाँ व्यवस्था है। संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन में इस कॉलिज के विद्यार्थी विशेष रुचि रखते हैं। सन् १९८१ में ३९४ विद्यार्थी इन भाषाओं का अध्ययन कर रहे थे। धर्मशिक्षा की भी कॉलिज में व्यवस्था है और यहाँ के विद्यार्थी डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा संचालित परीक्षाओं में बैठते हैं। कॉलिज के साथ तीन छात्रावास भी हैं; डी० ए० वी० कॉलिज गर्ल्स हॉस्टल, श्रीलाल हॉस्टल फार ब्वायज और श्री जयगोपाल मेहरा हॉस्टल फार ब्वायज। १९८१ में ९९ विद्यार्थी इन छात्रावासों में रह रहे थे। खेलकूद, व्यायाम, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि में इस कॉलिज को हिमाचल प्रदेश में उच्च स्थान प्राप्त है। हिमाचल प्रदेश यूनिवर्सिटी द्वारा आयोजित अनेक प्रतियोगिताओं में यह कॉलिज चैम्पियनशिप प्राप्त कर चुका है।

डी० ए० वी० महिला शिक्षा महाविद्यालय, अमृतसर—यह कॉलिज सन् १९५६ में श्री बालकराम कपूर द्वारा स्थापित किया गया था। पहले इसका नाम सरस्वती ट्रेनिंग कॉलिज फॉर वीमन था। १९५९ में श्री कपूर की मृत्यु के पश्चात् इसका संचालन स्थानीय आर्यसमाज द्वारा किया जाने लगा, और फरवरी, १९६३ में इसे डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी नयी दिल्ली को सौंप दिया गया। सन् १९६६ में इसका नाम बदल दिया गया और यह डी० ए० वी० महिला शिक्षा महाविद्यालय (डी० ए० वी० कॉलिज ऑफ् ऐजुकेशन फॉर वीमन) कहलाने लगा। कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर के साथ सम्बद्ध है और उसके पाठ्यक्रम के अनुसार महिलाओं की बी० एड० स्तर की शिक्षा की वहाँ व्यवस्था है। कॉलिज का अपना विशाल भवन है, जिसमें गृहविज्ञान तथा जीव-विज्ञान की प्रयोगशालाएँ भी हैं। सन् १९८१-८२ में कॉलिज की छात्राओं की संख्या १६५ थी, जिनमें से ६० छात्रावास में रह रही थीं। १५ छात्राएँ हिन्दी और १९ संस्कृत के अध्ययन में तत्पर थीं। कॉलिज में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है। सन् १९८१ की डिग्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा में १३१ छात्राएँ बैठी थीं जिनमें से १२८ उत्तीर्ण हो गयी थीं। यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान इसी महाविद्यालय की छात्रा ने प्राप्त किया था।

डी० ए० वी० शिक्षा महाविद्यालय, अबोहर--इस कॉलिज की स्थापना १९६८ में हुई थी। अपने क्षेत्र का यह प्रमुख शिक्षा-संस्थान है, और अध्यापकों के प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। भावी अध्यापकों के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास पर इसमें विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। यह कॉलिज पंजाव यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ के साथ सम्बद्ध है और उसके पाठ्यक्रम के अनुसार बी० एड० की शिक्षा की यहाँ व्यवस्था है। १९८१-८२ में यहाँ विद्यार्थियों की संख्या २१२ थी, जिनमें २१ विद्यार्थी छात्रावास में निवास कर रहे थे। कॉलिज का वातावरण धार्मिक है, पढ़ाई के प्रारम्भ होने से पूर्व प्रार्थना की जाती है, जिसमें वेदमन्त्रों का पाठ होता है। फिर एक विद्यार्थी विचारार्थ कोई विषय प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय गीत गाया जाता है। सप्ताह में एक दिन हवन का अनुष्ठान होता है, जिसके बाद किसी धार्मिक व नैतिक विषय पर प्रवचन किया जाता है। धर्मशिक्षा की भी कॉलिज में व्यवस्था है और विद्यार्थी डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा परीक्षा में भी सम्मिलित होते हैं।

सोहनलाल शिक्षा महाविद्यालय, अम्बाला सिटी—यह कॉलिज स्वर्गीय राय-बहादुर श्री सोहनलाल द्वारा सन् १९३९ में लाहौर में स्थापित किया गया था। भारत के विभाजन के पश्चात् सन् १९५४ में इसे अम्बाला सिटी में पुनःस्थापित किया गया, और इसकी व्यवस्था डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली को सौंप दी गयी। यह महाविद्यालय न केवल हरयाणा के ही, अपितु सम्पूर्ण भारत के शिक्षा महाविद्यालयों में विशिष्ट स्थान रखता है। हरयाणा सरकार द्वारा नियुक्त सर्वेक्षण समिति ने इसे राज्य का सर्वश्रेष्ठ शिक्षा महाविद्यालय घोषित किया है। यह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है, और इसमें एम० एड० डिग्री के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था है। बी० एड० की पढ़ाई तो इसमें होती ही है। सन् १९८१-८२ में इस कॉलिज में ४०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या १५० थी। २० प्राध्यापक अध्यापन के लिए नियुक्त थे। इनके अतिरिक्त १५ गैर-शिक्षक कर्मचारी कॉलिज की सेवा में थे। इस कॉलिज में अध्यापक का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी दूर-दूर से आते हैं। इसीलिए उनके निवास की समुचित व्यवस्था छात्रावासों में की गयी है। कॉलिज में सहशिक्षा है। छात्रों के साथ छात्राएँ भी यहाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है। सन्१९८१ में एम० एड० परीक्षा का परिणाम शत-प्रतिशत और बी० एड० का ९९ प्रतिशत रहा था। कॉलिज में पढ़ाई से पहले प्रार्थना होती है जिसमें वेद-मन्त्रों का पाठ किया जाता है। प्रार्थना सारे छात्रों की सामूहिक रूप से होती है। उसके पश्चात् किसी धार्मिक व नैतिक विषय पर संक्षिप्त चर्चा की जाती है। कॉलिज में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है, और धर्मशिक्षा की परीक्षा में भी विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।

हंसराज कॉलिज, दिल्ली—महात्मा हंसराज की पुण्य स्मृति में इस कॉलिज की स्थापना सन् १९४८ में की गयी थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के सबसे बड़े कॉलिजों में इसका विशिष्ट स्थान है। आर्ट्स तथा सायन्स के विषयों की इसमें समुचित व्यवस्था है। सन् १९८१ में इसके विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग थी और १२९ प्राध्यापक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापन-कार्य के लिए नियुक्त थे। बी० ए०, बी० एस-सी०, एम० ए०, एम० एस-सी० के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इस कॉलिज में पढ़ाई होती है और शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है। इसीलिए इसके विद्यार्थी विश्वविद्यालय की परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। कॉलिज में धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था है, और अनेक विद्यार्थी धर्मशिक्षा की परीक्षा में भी बैठते हैं। कॉलिज के पुस्तकालय में ६१ हजार के लगभग पुस्तकें हैं, और १३५ पत्र-पत्रिकाएँ वाचनालय के लिए मँगायी जाती हैं। खेलकूद, व्यायाम आदि के लिए भी उपयुक्त सुविधाएँ कॉलिज में विद्यमान हैं।

पन्नालाल गिरधारीलाल डी० ए० वी० कॉलिज नयी दिल्ली—इस कॉलिज की स्थापना डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा अगस्त, १९५७ में मैसर्स पन्नालाल गिरधारीलाल, दिल्ली द्वारा प्रदत्त दो लाख रुपयों के प्रारम्भिक दान से की गई थी। कॉलिज में कुछ विषयों में एम० ए० तथा एम० एस-सी० स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। सान्ध्यकालीन कक्षाएँ भी इस कॉलिज द्वारा लगायी जाती हैं, ताकि वे व्यक्ति भी शिक्षा प्राप्त कर सकें जो किसी सर्विस में होने के कारण दिन के समय कॉलिज में नहीं आ सकते। सन् १९८१ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या १०८६ थी। ७४ प्राध्यापक अध्यापन के लिए नियुक्त थे और ४५ गैर-शिक्षक कर्मचारी विविध कार्यों के लिए रखे गये थे। यह कॉलिज दिल्ली विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है।

(३) व्यावसायिक व प्राविधिक शिक्षा के लिए स्थापित डी० ए० वी० संस्थाएँ

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिए भी अनेक शिक्षणालयों का संचालन किया जा रहा है।

मेहरचन्द्र तकनीकी संस्थान (मेहरचन्द्र टेकनिकल इंस्टीट्यूट), जालन्धर—इस संस्थान को स्थापना सन् १९४४ में स्वर्गीय पण्डित मेहरचन्द्र की पुण्य स्मृति में की गयी थी। जालन्धर के डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना में पण्डितजी का प्रमुख भाग था, और वह चिर काल तक उस कॉलिज के प्रिंसिपल पद पर रहे थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि देश की आर्थिक उन्नति के लिए औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था अनिवार्य है। इसी कारण उन्होंने इस संस्थान की योजना बनायी थी और मार्च, १९४४ में सर बख्शी टेकचन्द द्वारा इसकी आधारशिला भी रख दी गयी थी। पर पण्डित मेहरचन्द्र-जी के जीवन काल में इस संस्थान का कार्य प्रारम्भ नहीं हो सका। वास्तविक रूप से इसके कार्य का प्रारम्भ सन् १९४९ में हुआ। संस्थान के निम्नलिखित विभाग हैं—(१) औद्योगिक प्रशिक्षण विभाग (इण्डस्ट्रीयल ट्रेनिंग डिपार्टमेण्ट) जिसमें मेहरचन्द्र टैकनिकल स्कूल, आई० टी० सी० मेहरचन्द्र टैकनिकल इन्स्टीट्यूट तथा अप्रेंटिस ट्रेनिंग स्कूल अन्तर्गत हैं।

(२) सान्ध्यकालीन कक्षाएँ, जिनमें एकाउण्टेंसी तथा टाइपराइटिंग का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(३) प्रशिक्षण तथा उत्पादन केन्द्र—जिसमें प्रशिक्षण के साथ-साथ वस्तुओं का उत्पादन भी किया जाता है।

(४) औद्योगिक प्रशिक्षण विभाग में टेलीविजन मैकेनिक, रेडियो मैकेनिक,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेयर, मीटर मैकेनिक तथा एलेक्ट्रीशियन आदि व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है। पंजाव में सरकार द्वारा तकनीकी शिक्षा के लिए एक अथवा दो वर्ष के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित है, इस संस्थान में उसी के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था है। सन् १९८१ में विविध व्यवसायों के पाठ्यक्रमों में ११९५ विद्यार्थी इस संस्थान में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अप्रेण्टिस ट्रेनिंग स्कीम में आई० टी० आई० के कोर्स से पूर्ववर्ती प्रशिक्षण की व्यवस्था है, और प्रशिक्षण एवं उत्पादन केन्द्र द्वारा नेशनल हाइवे वोर्ड, विद्युत वोर्ड, रेलिंग तथा साइन वोर्ड आदि का निर्माण कराया जाता है। यद्यपि यह एक औद्योगिक संस्थान है पर इसमें भी धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी है, जो इस संस्था की एक अनुपम विशेषता है।

मेहरचन्द्र पॉलिटेक्नक, जालन्धर—इस संस्था की स्थापना सन् १९५४ में डी० ए० वी० कॉलिज के भूतपूर्व प्रिंसिपल और डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के भूतपूर्व प्रधान लाला मेहरचन्द्र की पुण्य स्मृति में की गयी थी। यह पंजाव के स्टेट वोर्ड ऑफ् टेक्निकल एजुकेशन के साथ सम्बद्ध है और इसमें ऑल इण्डिया कौंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन डिप्लोमा कोर्स के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था है। डिप्लोमा कोर्स तीन साल का है। सिविल, इलेक्ट्रीकल तथा मैकेनिकल तीनों प्रकार के इंजीनियरिंग की शिक्षा यहाँ दी जाती है। सन् १९८२ से इलेक्ट्रीसीयन्स तथा संचार (कम्युनिकेशन) इंजीनियरिंग की शिक्षा की व्यवस्था भी इस पॉलिटेक्निक में कर दी गयी है। १९८१-८२ में ३५० विद्यार्थी इस शिक्षण-संस्था में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। प्राध्यापकों की संख्या ३७, और गैर-शिक्षक कर्मचारियों की संख्या ४७ थी। डिप्लोमा स्तर तक की इंजीनियरिंग की शिक्षा की सव सुविधाएँ इस पॉलिटैक्निक में विद्यमान हैं। इसके विकास के लिए सरकार द्वारा १२ लाख रुपये का अनुदान दिया गया था, जिसका उपयोग भवनों के निर्माण तथा आवश्यक उपकरणों की उपलब्धि के लिए किया गया। पॉलिटैक्निक के पुस्तकालय में विज्ञान, इंजीनियरिंग तथा टैक्नोलॉजी आदि विषयों की सोलह हजार से भी अधिक पुस्तकें हैं। पंजाब, जम्मू-कश्मीर तथा हिमाचल-प्रदेश की सरकारों द्वारा इस संस्था में अध्ययन के लिए विद्यार्थियों को अनेकविध छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं, जिनकी संख्या १९८१-८२ में १२० थी। इसमें सन्देह नहीं, कि पंजाब की तकनीकी शिक्षण-संस्थाओं ने मेहरचन्द्र पॉलीटैक्निक का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

दयानन्द जूनियर टैक्नीकल कॉलिज, जालन्धर—इस संस्था की स्थापना सन् १९६५ में की गयी थी। तकनीकी विषयों का इस स्कूल में प्रशिक्षण प्राप्त कर विद्यार्थी कुशल मैकेनिक वन जाते हैं, और यदि वे शिक्षा को जारी रखना चाहें तो इंजीनियरिंग के डिप्लोमा कोर्स में भी प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं। इस स्कूल से जो विद्यार्थी जे० टी० एस० परीक्षा का प्रथम भाग उत्तीर्ण कर लेते हैं उन्हें पंजाव स्कूल एजुकेशन वोर्ड की मैट्रिक्युलेशन के समकक्ष माना जाता है। स्कूल का चालू व्यय पूर्णतया राज्य सरकार प्रदान करती है, और ५० प्रतिशत विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। अनावर्तक व्यय राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार द्वारा आधा-आधा दिया जाता है। सन् १९८१-८२ में इस स्कूल में १३० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। शिक्षकों की संख्या १७ थी।

दयानन्द कुमार इंजीनियरिंग कॉलिज, जालन्धर—यह कॉलिज सन् १९४८ में श्री रतनचन्द्र कुमार द्वारा स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना में उनका उद्देश्य यह था,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बेकार युवकों को कोई ऐसा हुनर सिखा दिया जाये, जिससे उनके लिए किसी रोजगार द्वारा अपना निर्वाह करना सम्भव हो सके। शुरू में इस कॉलिज में केवल मोटर चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। बाद में मोटर मैकेनिक, रेडियो, ट्रांजिस्टर और टेलीविजन पाठ्यक्रम सम्मिलित कर लिये गये, और इस कॉलिज से ऐसे शिल्पी तैयार होने लगे जिनकी बहुत माँग थी। गत वर्षों में पेट्रोल के कारण जब अरब तथा ईरान की खाड़ी के तटवर्ती देशों का आर्थिक दृष्टि से असाधारण विकास प्रारम्भ हुआ, तो वहाँ प्रशिक्षित शिल्पियों तथा मैकनिकों की माँग में अत्यधिक वृद्धि होने लगी। इसीलिए इलेक्ट्रीशियनों, ऑटो-एलेक्ट्रीशियनों तथा रेफ्रीजिरेशन के शिल्पियों के प्रशिक्षण का भी इस कॉलिज में प्रारम्भ किया गया। महत्त्व की बात यह है कि इस कॉलिज में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है जिसके कारण साधारण पढ़े-लिखे लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं। सन् १९८१ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या ३३० थी, और ३७ शिक्षक उन्हें प्रशिक्षण देने के लिए नियुक्त थे। ४६ गैर-शिक्षक कर्मचारी इनके अतिरिक्त थे। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है। १९८१ में इसमें निवास करने वाले विद्यार्थियों की संख्या ७६ थी। इस संस्था को सरकार से कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती। फिर भी यह कॉलिज अपनी निजी आय से सफलतापूर्वक चल रहा है और इसके सम्मुख कोई आर्थिक समस्या नहीं है। कॉलिज में प्रति मास हवन तथा धार्मिक प्रवचनों का भी आयोजन किया जाता है, जिसके कारण विद्यार्थी तथा कर्मचारी वैदिक धर्म, आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों से परिचित होने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं।

दयानन्द इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट, अमृतसर—इस संस्था की स्थापना सन १९४८ में इस प्रयोजन से की गयी थी, कि भारत के विभाजन के कारण पाकिस्तान से विस्थापित हुए लोगों को औद्योगिक प्रशिक्षण देकर उन्हें आजीविका की समस्या का समाधान कर सकने के योग्य बनाया जा सके। समय के साथ साथ इसकी निरन्तर उन्नति होती गयी, और आज इसकी गिनती पंजाब के सबसे बड़े औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थानों में की जाती है। इसमें २२ प्रकार के उद्योगों और व्यवसायों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है और लड़के तथा लड़कियाँ दोनों इसमें प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं। सन् १९८१ तक इस संस्था द्वारा जो व्यक्ति विविध शिल्पों तथा व्यवसायों का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे, उनकी संख्या १२ हजार से भी अधिक थी। इनमें बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी हैं, जिन्होंने अपने स्वतन्त्र उद्योग धन्धे स्थापित कर लिये हैं। यह संस्था अमृतसर नगर के एक अत्यन्त तंग घने क्षेत्र में स्थित है और इसकी इमारतें भी अब पुरानी हो गयी हैं। फिर भी इसके सब कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो रहे हैं। स्थान तथा भवनों की समस्या हल हो जाने पर इसका और अधिक विस्तार किया जा सकता है।

(४) दयानन्द आयुर्वैदिक कॉलिज, जालन्धर

महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में जब लाहौर में डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना की गयी थी, तो उसके संस्थापकों के सम्मुख यह विचार विद्यमान था कि वेद-शास्त्रों, संस्कृत भाषा तथा भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की भी व्यवस्था की जानी चाहिये। इसीलिए सन् १८९८ में लाहौर में आयुर्वैदिक कॉलिज भी स्थापित किया गया। उत्तरी भारत का यह प्रथम कॉलिज था, जिसमें वैज्ञानिक ढंग से आयुर्वेद की शिक्षा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी जाती थी। भारत के विभाजन के कारण इसे लाहौर से अमृतसर स्थानान्तरित कर दिया गया। कुछ वर्ष बाद सन् १९५३ में इसे जालन्धर लाया गया और तब से यह वहीं पर विद्यमान है। सन् १९५९-६० में इस कॉलिज में पंचवर्षीय डिग्री कोर्स का आरम्भ किया गया जिसे पूर्ण कर लेने तथा अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर विद्यार्थी को आयुर्वेदाचार्य (ग्रेजुएट ऑफ् इण्डियन मेडिसंस—जी० ए० एम० एस०) की डिग्री प्रदान की जाती है। सन् १९७६ से यह कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है, और अब वहाँ बी० ए० एम० एस० की डिग्री दी जाने लगी है, जिसे केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् (सेण्ट्रल कौंसिल ऑफ् इण्डियन मेडिसंस), नयी दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार इसे अब एक चार्टर्ड यूनिवर्सिटी के कॉलिज की स्थिति प्राप्त हो गयी है, और इसके स्नातकों को स्वतन्त्र रूप से चिकित्सा तथा सर्विस की सब सुविधाएँ प्राप्त हैं। कॉलिज में उपवैद्य (कम्पाउण्डर) का कोर्स भी है जिसे दो वर्ष में पूरा किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक ऐसी सुव्यवस्थित संस्था है जिसमें चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई के लिए उपयोगी सब उपकरण, प्रयोगशालाएँ और चिकित्सालय आदि विद्यमान हैं, और जहाँ विद्यार्थी प्राचीन आयुर्वेद के साथ-साथ शरीरविज्ञान, आधुनिक निदानशास्त्र तथा साधारण शल्यक्रिया का भी परिचय प्राप्त कर लेते हैं। सन् १९८१-८२ में इस कॉलिज के विद्यार्थियों की संख्या ३९९ थी, जिनमें से ५० छात्रावास में निवास कर रहे थे। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत में हैं, अतः इस भाषा का ज्ञान आयुर्वेद के विद्यार्थी के लिए उपयोगी होता है। इसीलिए कॉलिज में संस्कृत के अध्यापन की भी व्यवस्था है। सन् १९८१-८२ में इस कॉलिज के २६५ विद्यार्थी संस्कृत भाषा का भी अध्ययन कर रहे थे।

इस संस्था के तीन मुख्य विभाग हैं—आयुर्वेद कॉलिज, मेहरचन्द आयुर्वैदिक चिकित्सालय और डी० ए० वी० फार्मेसी। कॉलिज का आयुर्वैदिक चिकित्सालय विद्यार्थियों को चिकित्सा का प्रयोगात्मक ज्ञान देने का महत्त्वपूर्ण साधन है। सन् १९८१-८२ में इसमें छह हजार से भी अधिक रोगियों का इलाज किया गया था। इनमें १२३३ ऐसे थे जो चिकित्सा के लिए चिकित्सालय में आन्तरिक रोगियों के रूप में भरती हुए थे। मेहरचन्द चिकित्सालय में स्त्रियों की चिकित्सा का पृथक् विभाग है, जिसकी देखरेख एक सुशिक्षित महिला वैद्य द्वारा की जाती है। योग द्वारा रोगों के इलाज की भी इस चिकित्सालय में व्यवस्था है। रोगों के वैज्ञानिक ढंग से निदान के लिए एक पाइथोलॉजिकल लैबोरेटरी भी वहाँ विद्यमान है। कॉलिज का अपना पुस्तकालय भी है, जिसमें आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की पुस्तकें भी पर्याप्त संख्या में हैं। पुस्तकों की कुल संख्या १५ हजार से भी अधिक है। कॉलिज में शिक्षा का स्तर बहुत सन्तोषजनक है। यही कारण है कि इस कॉलिज के विद्यार्थी गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय की बी० ए० एम० एस० परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

(५) दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा सन् १९८१-८२ में स्कूल स्तर की जिन शिक्षण-संस्थाओं का पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरयाणा, दिल्ली तथा जम्मू-कश्मीर के प्रदेशों में संचालन किया जा रहा था, उनकी संख्या इस प्रकार थी—हायर सैकेण्डरी स्कूल ३८, हाईस्कूल ३८, माडल तथा पब्लिक स्कूल ३९ और प्राइमरी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल १३। बाद में १९८२-८३ में इन प्रदेशों में जो नये डी० ए० वी० शिक्षणालय स्थापित किये गये हैं, उनकी संख्या १२ है। इस प्रकार पंजाव तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में स्कूल स्तर की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की संख्या अव १४० तक पहुँच गयी है। इस संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है और यह निसंकोच कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने तक यह संख्या १५० से भी अधिक हो जायेगी। महाराष्ट्र, विहार, उड़ीसा आदि में जो डी० ए० वी० स्कूल हैं, वे इनसे पृथक् हैं। इन सव शिक्षणालयों का परिचय दे सकना इस इतिहास में न सम्भव है और न उसकी आवश्यकता ही है।

पर डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली से सम्वद्ध तथा उसके नियन्त्रण में विद्यमान स्कूलों की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनपर प्रकाश डालना उपयोगी है। साथ ही इस वात पर भी विचार करना आवश्यक है कि इन शिक्षण-संस्थाओं द्वारा वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में क्या सहायता प्राप्त हो रही है। इसके लिए यह उपयोगी होगा, कि उदाहरण के रूप में विविध प्रकार के कतिपय स्कूलों की स्थापना, विकास, वर्तमान दशा और कार्यकलाप का संक्षिप्त रूप से उल्लेख कर दिया जाय।

साईंदास एंग्लो-संस्कृत हायर सैकेण्डरी स्कूल, जालन्धर—पंजाव के हायर सैकेण्डरी स्कूलों में इसका प्रमुख स्थान है। सन् १९८१-८२ में इसमें ५१७४ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और उनको पढ़ाने के लिए १०५ शिक्षक नियुक्त थे। विद्यार्थियों और शिक्षकों का इतनी अधिक संख्या में होना इस विद्यालय के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है। अपनी शिक्षण-संस्थाओं के विकास के लिए आर्यसमाज को किस प्रकार संघर्ष करना पड़ा है, इसे जानने लिए इस स्कूल के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालना सहायक होगा। सन् १८९६ में जालन्धर के कतिपय आर्य सज्जनों ने यह विचार किया, कि उन्हें भी अपने शहर में एक शिक्षणालय खोलना चाहिये। इसके लिए किला मुहल्ला में काजी जलालुद्दीन से एक इमारत ११ रुपया मासिक पर किराये पर ले ली गयी और मार्च, १८९६ में वहाँ स्कूल का काम शुरू कर दिया गया। श्री सुन्दरदास इस स्कूल के प्रथम मुख्याध्यापक थे। इसकी स्थापना में भी उनका प्रमुख कर्तृत्व था। स्कूल का नाम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव के प्रधान लाला साईंदास के नाम पर रखा गया। इस नये स्कूल में, जो एक कच्ची इमारत में स्थित था, विद्यार्थियों को आकृष्ट करना सुगम नहीं था। इस दशा में लाला सुन्दरदास ने प्रतिज्ञा की, कि जव तक स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या १०० न हो जायेगी, वह चारपाई पर नहीं सोयेंगे। पर उन्हें देर तक जमीन पर नहीं सोना पड़ा। उनके सहयोगियों के प्रयत्न से एक ही सप्ताह में विद्यार्थियों की संख्या १०० से अधिक पहुँच गयी। इस काल में पंजाव के आर्यसमाजियों में दलवन्दी वहुत उग्र रूप धारण कर रही थी तथा कॉलिज पार्टी और गुरुकुल पार्टी (मांस पार्टी और घास पार्टी) में विरोध निरन्तर वढ़ता जा रहा था। कॉलिज पार्टी के विरोधी दल ने लब्भूराम द्वावा स्कूल के नाम से साईंदास एंग्लो-संस्कृत स्कूल के मुकावले में एक अन्य शिक्षणालय की स्थापना कर दी। पर यह संस्था देर तक कायम नहीं रही। सन् १८९७ में पण्डित लेखराम के वलिदान से पंजाव के आर्यसमाज की दोनों पार्टियों में कुछ समय के लिए मेल हो गया, और उसके परिणामस्वरूप जालन्धर के उन दोनों हाईस्कूलों को भी मिला कर एक कर दिया गया। स्कूल का पुराना भवन दो संस्थाओं के विद्यार्थियों के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम पड़ गया था। अब उसे मुहल्ला दरवाजा सहगलां में ले जाया गया। पण्डित लेखराम के बलिदान के कारण पंजाब के आर्यसमाजियों में जो एकता स्थापित हुई थी, वह देर तक कायम नहीं रह सकी और दलबन्दी पुनः उग्र रूप धारण करने लगी। सन् १८९९ में इस दलबन्दी के दुष्परिणाम प्रकट होने लगे और साईंदास एंग्लो-संस्कृत स्कूल को अनेक विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा। सन् १९०० में श्री सुन्दरदास की मृत्यु हो जाने पर स्कूल को भारी धक्का लगा, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब उसका कायम रह सकना सम्भव नहीं है। पर नवम्बर, १९०२ में जब पण्डित मेहरचन्द ने स्कूल को अपनी अवैतनिक सेवा अर्पण करने का निश्चय किया, तो उसके संचालकों में आशा का संचार हुआ और यह संस्थान केवल सँभल ही गयी, अपितु उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर भी होने लगी। मार्च, १९०३ में पण्डित मेहरचन्द ने जालन्धर आकर स्कूल का कार्यभार सँभाल लिया। उनके साथ लाला हंसराज, लाला लाजपत राय आदि अनेक आर्य नेता भी लाहौर से जालन्धर आये थे। उनके आगमन से जालन्धर की जनता में स्कूल के लिए अनुपम उत्साह का प्रादुर्भाव हुआ, और उसके सुचारु रूप से संचालन के लिए एक प्रबन्धक कमेटी संगठित की गयी। महात्मा हंसराज इस कमेटी के प्रधान थे। अक्तूबर, १९०३ में उनके करकमलों से स्कूल की अपनी इमारत की आधारशिला रखी गयी, और १९०६ में स्कूल को जी० टी० रोड पर स्थित अपने वर्तमान भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया। पण्डित मेहरचन्द स्कूल की उन्नति के लिए अनथक परिश्रम कर रहे थे। उनकी प्रेरणा से कितने ही व्यक्तियों ने स्कूल की इमारतों आदि के लिए प्रचुर धनराशियाँ प्रदान कीं, जिससे आर्थिक कठिनाई दूर होने में बहुत सहायता मिली। अत्यधिक परिश्रम के कारण पण्डितजी रुग्ण हो गये और उन्हें अवकाश ग्रहण करने के लिए विवश होना पड़ा। उनकी बीमारी के दिनों में लाला मेहरचन्द, जो बाद में डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर के प्रिंसिपल बने, ने स्कूल के मुख्याध्यापक का कार्यभार सँभाला और बड़ी योग्यता के साथ उसका संचालन किया। पण्डित मेहरचन्द ने स्वस्थ हो जाने पर जब स्कूल का काम पुनः अपने हाथों में लिया, तो उन्होंने स्कूल का छात्रावास बनवाने का निश्चय किया। सन् १९१३ में लाला लाजपत राय ने छात्रावास की आधारशिला रखी और उसे **'ब्रह्मचर्य आश्रम'** का नाम दिया।

साईंदास एंग्लो-संस्कृत स्कूल को सुदृढ़ नींव पर स्थापित कर पण्डित मेहरचन्द ने उच्च शिक्षा के लिए कॉलिज खोलने पर ध्यान दिया। मई, १९१८ में एक बँगला किराये पर लेकर कॉलिज की स्थापना कर दी गयी और पण्डितजी उसके प्रथम प्रिंसिपल बने। उनके बाद लाला कृपाराम, लाला सुनामराय और पण्डित जुगल किशोर क्रमशः स्कूल के मुख्याध्यापक नियुक्त हुए, पर देर तक वे इस पद पर नहीं रह सके। एप्रिल, १९२३ में लाला चमनराय को स्कूल का मुख्याध्यापक बनाया गया और वह चिर काल तक इस पद पर कार्य करते रहे। १९२३ में जब उन्होंने स्कूल का कार्यभार सँभाला था, तो उसमें विद्यार्थियों की संख्या ९३३ थी। १९४६ में यह संख्या बढ़कर ३०३३ हो गयी। विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण स्कूल के भवन अपर्याप्त होने लगे। पर लाला चमनराय के पुरुषार्थ से कितने ही नये भवनों का निर्माण हुआ और आर्य जनता ने उनके लिए उदारता पूर्वक धन प्रदान किया। सन् १९४० में इस स्कूल को डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के साथ औपचारिक रूप से सम्बद्ध कर दिया गया। इस समय तक पंजाब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्कूलों में इस संस्था ने अत्यन्त सम्मानास्पद स्थान प्राप्त कर लिया था। इसका परिणाम बहुत अच्छा रहता था। सन् १९२७ में ९५ प्रतिशत, १९३८ में ९७ प्रतिशत और १९४५ में ९८ प्रतिशत विद्यार्थी पंजाब की मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे, जो इस स्कूल की शिक्षा के उच्च स्तर का स्पष्ट प्रमाण है।

सन् १९४७ में भारत के विभाजन के कारण जो लाखों हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान से विस्थापित हो गये थे, बच्चों की शिक्षा की समस्या विकट रूप से उनके सम्मुख विद्यमान थी। जिन शिक्षणालयों में वे पढ़ रहे थे, वे पाकिस्तान में रह गये थे और अब उन्हें भारत के स्कूलों में प्रवेश प्राप्त करना था। इस समय साईंदास एंग्लो-संस्कृत स्कूल ने अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य को भली-भाँति समझा, और बड़ी संख्या में विद्यार्थियों को प्रविष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक कक्षा में आठ-आठ विभाग बना कर ढाई हजार के लगभग नये विद्यार्थियों को स्कूल में प्रवेश दिया गया। अध्यापकों की संख्या में भी वृद्धि की गयी। नये भवन बनवाये गये, ताकि विद्यार्थियों को पढ़ने में कठिनाई न हो। छात्रावास का भी विस्तार किया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इस स्कूल की उन्नति इतनी तेजी के साथ हुई, कि सन् १९६८ में उसके विद्यार्थियों की संख्या ५९०१ हो गयी थी, और उन्हें पढ़ाने के लिए ११३ अध्यापक नियुक्त थे। गत वर्षों में जालन्धर तथा पंजाब के नगरों में कितने ही नये स्कूल खोले गये हैं, पर उनके कारण इस स्कूल की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आयी है।

आर्यसमाज की दृष्टि से इस स्कूल की कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। स्वराज्य के बाद स्कूल की सभी कक्षाओं में हिन्दी भाषा की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गयी, और आठवीं कक्षा तक संस्कृत को भी अनिवार्य रूप से पढ़ाना शुरू कर दिया गया। वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप से विद्यार्थियों को परिचित कराना तथा अपने धर्म और संस्कृति के प्रति उनमें आस्था उत्पन्न करने पर इस स्कूल में समुचित ध्यान दिया जाता है। इसीलिए प्रत्येक कक्षा में सप्ताह में दो घंटे का समय धार्मिक शिक्षा के लिए प्रदान किया जाता है। सत्यार्थप्रकाश के कुछ चुने हुए अंश अध्ययन के लिए निर्धारित हैं। सन्ध्या-हवन की भी स्कूल में व्यवस्था है। डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा धर्मशिक्षा की जिन परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है, इस स्कूल के विद्यार्थी उनमें बैठते हैं और उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। स्कूल में आर्य युवक समाज भी स्थापित है। इस द्वारा जहाँ सन्ध्या-हवन तथा प्रार्थना की व्यवस्था की जाती है, वहाँ साथ ही समय-समय पर धार्मिक विषयों पर व्याख्यानों का व प्रवचनों का भी आयोजन किया जाता है। संस्कृत की शिक्षा इस स्कूल में अनिवार्य है, अतः संस्कृत की प्रतियोगिता-परीक्षा भी प्रारम्भ की गयी है, जिसमें इस स्कूल के विद्यार्थी सम्मानास्पद स्थान प्राप्त करते हैं। खेलकूद, स्काउटिंग, एन० सी० सी० आदि की भी इस स्कूल में समुचित व्यवस्था है।

डी० ए० वी० मल्टी-परपज हायर सैकेण्डरी स्कूल, अमृतसर—इस शिक्षणालय की स्थापना सन् १९१३ में हाईस्कूल स्तर की शिक्षा देने के लिए की गयी थी। पर १९५८ में इसे एक बहु-उद्देश्यीय (मल्टी-परपज) हायर सैकेण्डरी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया, और इसमें स्कूलों के सामान्य विषयों (अंग्रेजी, हिन्दी, गणित, इतिहास, भौतिकी, भूगोल, रसायन आदि) के अतिरिक्त अनेकविध शिल्पों (बढईगीरी, पेपर-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेशी, क्ले माडलिंग आदि), चित्रकला और संगीत की शिक्षा की भी व्यवस्था कर दी गयी। यह स्कूल एक विशाल शिक्षण-संस्था है। सन् १९८१ में इसमें ३४०५ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अध्यापकों की संख्या ९६ थी और गैर-शिक्षक कर्मचारी २१ थे। हिन्दी और संस्कृत की पढ़ाई पर इस स्कूल में विशेष ध्यान दिया जाता है। इसीलिए स्कूल के ३४०५ विद्यार्थियों में ३०१५ ने हिन्दी विषय लिया हुआ था, और १४१५ संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। इस संस्था में विद्यार्थियों से सन्ध्या-हवन भी कराया जाता है। और वारी-वारी से सब कक्षाओं में प्रति दिन सन्ध्या-हवन होता है, जिससे सब विद्यार्थियों को अपने धर्म की प्रार्थना व पूजाविधि को जानने का अवसर मिल जाता है। महर्षि दयानन्द के जीवन तथा शिक्षाओं से परिचित कराने के लिए स्कूल में मेजिक लैण्टर्न प्रयोग में लायी जाती है। डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा-परीक्षाओं में भी इस स्कूल के विद्यार्थी बैठते हैं।

स्कूल में वे सब भवन विद्यमान हैं, जिनकी शिक्षा के लिए आवश्यकता होती है। पढ़ाई के कमरे, प्रयोगशालाएँ, व्याख्यान मंच, वर्कशाप, स्वास्थ्य केन्द्र, चिकित्सालय, संगीत कक्ष, मनोरंजन कक्ष, सभागार और जलपानगृह आदि सब वहाँ विद्यमान हैं। स्कूल में दो एम०बी०, बी०एस० चिकित्सक इस प्रयोजन से नियुक्त हैं जिससे कि विद्यार्थियों को स्वास्थ्य तथा चिकित्सा की सब आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा सकें। स्कूल के पुस्तकालय में १८,००० के लगभग पुस्तकें हैं। अनेक दैनिक पत्र तथा पत्र-पत्रिकाएँ स्कूल द्वारा मँगायी जाती हैं। अरुण नाम से एक पत्रिका भी स्कूल द्वारा प्रकाशित की जाती है, जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी तथा पंजाबी, तीनों भाषाओं में लेख रहते हैं। स्कूल के पास अपना एक प्रसारण सेट और प्रोजक्टर भी है। इस द्वारा प्रति मास दो वार वृत्तचित्र विद्यार्थियों को दिखाये जाते हैं। खेल-कूद की वहाँ समुचित व्यवस्था है। सन् १९८१ में अमृतसर के जिला-स्तर पर स्कूल ने क्रिकेट, टेबलटेनिस, बैडमिण्टन, बास्केटबॉल, जूडो तथा जिमनास्टिक में चैम्पियनशिप प्राप्त की थी। स्कूल में पढ़ाई का स्तर भी बहुत सन्तोषजनक है। इसीलिए सन् १९८१ की हायर सैकेण्डरी (द्वितीय वर्ष) परीक्षा में इस स्कूल के ५२ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे, और २१ मैरिट लिस्ट में आये थे।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, चण्डीगढ़—इस स्कूल की स्थापना सन् १८८६ में लाहौर में हुई थी और महात्मा हंसराज इसके प्रथम मुख्याध्यापक थे। स्थापना के समय से ही यह स्कूल लोकप्रिय था और इसके विद्यार्थियों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जाती थी। सन् १९०१ में ७१८, सन् १९१९ में १५०७, सन् १९२८ में २०२३ और सन् १९३४ में ३५५७ विद्यार्थी इस स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। पंजाब के स्कूलों में इसका स्थान अत्यन्त महत्त्व का था। इसे अपने क्षेत्र की सबसे विशाल शिक्षण-संस्था कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारत के विभाजन के कारण इस स्कूल की सब सम्पत्ति पाकिस्तान में रह गयी और इसके विद्यार्थी, अध्यापक और अन्य कर्मचारी भारत आने के लिए विवश हो गये। भारत में इस स्कूल को पुनःस्थापित करना सुगम बात नहीं थी। डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के निरन्तर परिश्रम और पुरुषार्थ से एप्रिल, सन् १९५५ में इसे चण्डीगढ़ में पुनःस्थापित करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई, और शीघ्र ही इस स्कूल ने स्थानीय शिक्षणालयों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। सन् १९७२ के जनवरी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास में इस स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या २१७२ हो गयी थी और इसके साथ सम्बद्ध मॉडल स्कूल में ४३५ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। स्कूल के लिए उपयुक्त अध्ययन-कक्ष, पुस्तकालय भवन और कार्यालय आदि के अतिरिक्त विद्यार्थियों के खेलने के लिए मैदान, स्टेडियम तथा व्यायामशाला का भी वहाँ निर्माण करा दिया गया था। स्कूल के साथ एक छात्रावास भी तैयार हो गया था, जिसमें १०० के लगभग विद्यार्थी निवास कर सकते थे। विद्यार्थी वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों से परिचय प्राप्त कर सकें, इस प्रयोजन से यह व्यवस्था की गई थी कि प्रति सप्ताह शनिवार के दिन स्कूल में सन्ध्या और हवन हुआ करें, और उनके पश्चात् किसी धार्मिक विषय पर प्रवचन। धर्मशिक्षा की परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए भी विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाता था। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई पर इस स्कूल में समुचित ध्यान दिया जाता रहा है। इसी कारण सन् १९८१ में इस स्कूल के ५०८ विद्यार्थी संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे, और १४३२ हिन्दी का।

महाराजा हरिसिंह एग्रीकल्चरल कालीजिएट स्कूल, नागवनी (जम्मू) — जम्मू-कश्मीर के अन्तिम महाराजा श्री हरिसिंह ने १४ मार्च, १९६० को एक वसीयत की थी, जिसके अनुसार डेथ ड्यूटी, ऋण तथा अन्य सब प्रकार की देनदारियों को अदा कर देने के बाद उनकी जो सम्पत्ति शेष रह जाये, उसका एक ट्रस्ट बना दिये जाने की इच्छा प्रकट की गई थी। यह एक धमार्थ ट्रस्ट है, और इस द्वारा महाराजा हरिसिंह के नाम पर एग्रीकल्चरल कालीजिएट स्कूल की स्थापना की गयी है, जिसका सब प्रवन्ध एवं संचालन डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एवं मैनेजिंग सोसायटी, नयी दिल्ली के हाथों में है। यह शिक्षण-संस्था जम्मू शहर से सात मील दूर महाराजा के कृषि फार्म नागवनी में स्थित है। इसकी व्यवस्था पब्लिक स्कूलों के समान है, और इसकी स्थापना डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा फरवरी, १९६७ में की गईथी। इसे स्थापित हुए अभी केवल १५ वर्ष हुए हैं, पर इस स्वल्प काल में ही इसने बहुत उन्नति कर ली है। स्कूल का परिसर अत्यन्त सुन्दर और रमणीक है, और उसमें एक अच्छे पब्लिक स्कूल के योग्य सब भवन विद्यमान हैं। स्कूल के तीन विभाग हैं—सीनियर स्कूल, मिडल स्कूल और जूनियर स्कूल। विद्यार्थियों के निवास के लिए दो छात्रावास हैं। सीनियर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए जो छात्रावास है उसमें नवीं से बारहवीं कक्षा तक के विद्यार्थी निवास करते हैं, और दूसरे छात्रावास में पाँचवीं से आठवीं कक्षा तक के। दोनों छात्रावासों की भोजनशाला एक ही है। सभी विद्यार्थी उसी में भोजन करते हैं। सन् १९८१ में स्कूल के विद्यार्थियों की कुल संख्या ३९६ थी, जिनमें से १०३ छात्रावासों में रह रहे थे। स्कूल केन्द्रीय शिक्षा परिषद्, दिल्ली के साथ सम्बद्ध है, और उस द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार ही वहाँ शिक्षा की व्यवस्था है। शिक्षा का स्तर कितना ऊँचा है, यह इसी से जाना जा सकता है कि सन् १९८१ में अखिल भारतीय सैकेण्डरी स्कूल परीक्षा में जो ३१ विद्यार्थी इस स्कूल से भेजे गये थे, उनमें कोई भी अनुत्तीर्ण नहीं हुआ। २१ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और शेष १० द्वितीय श्रेणी में। इसी प्रकार ऑल इण्डिया स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा में भी इस स्कूल का परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहा। सात विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की, छह ने द्वितीय श्रेणी और तीन ने तृतीय श्रेणी। संस्कृत तथा हिन्दी की पढ़ाई पर इस स्कूल में भी समुचित ध्यान दिया जाता है। सन् १९८१ में १३९ विद्यार्थी संस्कृत का अध्ययन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे और ३४८ हिन्दी का। स्कूल के पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ४०२९ है। खेल-कूद तथा व्यायाम के लिए सब सुविधाएँ वहाँ विद्यमान हैं। फुटवॉल, टेवलटेनिस, दौड़ आदि की प्रतियोगिताओं में इस स्कूल के विद्यार्थियों ने उच्च स्थान प्राप्त किये हैं। विद्यार्थी भाषण देने तथा वाद-विवाद करने में प्रवीणता प्राप्त कर सकें, इसके लिए भी वहाँ प्रयत्न किया जाता है।

दयानन्द मॉडल सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, जालन्धर—इस शिक्षण-संस्था की स्थापना सन् १९६३ में उन बच्चों की शिक्षा के लिए की गयी थी, जिनके माता-पिता क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा संचालित कॉन्वेण्ट स्कूलों में उन्हें नहीं भेजना चाहते, पर जिनकी यह इच्छा होती है कि उनके बच्चे उसी ढंग के साफ सुथरे और सुसंस्कृत वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें जैसा कि कॉन्वेण्ट स्कूलों में पाया जाता है। शुरू में इस स्कूल में केवल छोटे बच्चों के लिए किण्डर गार्टन कक्षाएँ ही खोली गयी थीं, पर पाँच वर्ष के स्वल्प काल में ही वहाँ आठवीं कक्षा तक की शिक्षा की व्यवस्था कर दी गयी थी और छह सौ के लगभग विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त करने लग गये थे। वाद में यह स्कूल वड़ी तेजी के साथ उन्नति करता गया, और सन् १९७२ तक वहाँ ग्यारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई प्रारम्भ हो गयी। सन् १९८१-८२ में इस स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या २३२२ थी। स्थान की कमी के कारण इससे अधिक विद्यार्थियों को प्रविष्ट कर सकना सम्भव नहीं था, यद्यपि माँग इससे वहुत अधिक थी। ४५ शिक्षक अध्यापन-कार्य के लिए स्कूल में नियुक्त थे।

आधुनिक प्रणाली से शिक्षा देने के लिए जो सुविधाएँ चाहियें, वे सव इस स्कूल में विद्यमान हैं। इसके परिसर का क्षेत्रफल ६५ वीघे के लगभग है, जिसमें स्कूल के भवन, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय आदि अत्यन्त भव्य एवं चित्ताकर्षक ढंग से वनाये गये हैं। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या १० हजार से भी अधिक है। विद्यार्थियों के उपयोग के लिए पत्र-पत्रिकाएँ भी वहाँ पर्याप्त संख्या में मँगायी जाती हैं। वच्चों के चरित्र-निर्माण पर इस स्कूल में समुचित ध्यान दिया जाता है। स्कूल का कार्य गायत्री मन्त्र और प्रार्थना-मन्त्रों के पाठ तथा भक्तिरस के भजनों के साथ प्रारम्भ होता है, और विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थी वारी-वारी से सन्ध्या-हवन भी करते हैं। इस व्यवस्था से प्रत्येक कक्षा को सप्ताह में एक वार सन्ध्या-हवन करने का अवसर मिल जाता है। डी०ए०वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा परीक्षा में भी इस स्कूल के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई की स्कूल में व्यवस्था है। वहाँ सन् १९८१ में १२२४ विद्यार्थी हिन्दी का और २४० विद्यार्थी संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। स्कूल में शिक्षा का स्तर वहुत ऊँचा है। सन् १९८१ की ऑल इण्डिया सीनियर स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा में इस स्कूल का परिणाम शत-प्रतिशत रहा था। इस स्कूल के जो ६३ विद्यार्थी परीक्षा में बैठे थे, वे सब उत्तीर्ण हो गये थे और उनमें से ३५ ने प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किये थे। केवल १९८१ में ही नहीं, अपितु अन्य वर्षों में भी इस स्कूल का परीक्षा-परिणाम इसी प्रकार से सन्तोषजनक रहता रहा है। स्कूल में खेलकूद तथा पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य कार्यकलाप के लिए भी सव सुविधाएँ विद्यमान हैं। क्रिकेट, फुटवॉल, वेडमिण्टन आदि अनेक खेलों में इस स्कूल के विद्यार्थियों ने अच्छी प्रवीणता प्राप्त की है, और अनेक प्रतियोगिताओं में पारितोषिक भी प्राप्त किये हैं। विद्यार्थियों को भ्रमण तथा देशाटन के लिए भी ले जाया जाता है,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि वे जनसाधारण के जीवन से परिचय प्राप्त कर सकें। विविध सभाओं द्वारा उन्हें व्याख्यान व वाद-विवाद का भी अभ्यास कराया जाता है।

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग, नयी दिल्ली—इस स्कूल की स्थापना सन् १९६६ में महात्मा हंसराज की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयोजन से की गयी थी। इस काल में देश में पब्लिक स्कूलों की माँग बहुत बढ़ रही थी। लोग चाहते थे कि उनके बच्चे ऐसे साफ-सुथरे सुसंस्कृत तथा नैतिक वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें जहाँ उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास हो सके, और जहाँ पढ़कर वे सच्चरित्र बन सकें। इस स्कूल को इन्हीं उद्देश्यों को सम्मुख रखकर स्थापित किया गया है। दिल्ली जैसे विशाल नगर में बयालीस बीघा जमीन इसके लिए प्राप्त कर ली गयी और उसमें उन सब इमारतों का निर्माण किया गया जो आधुनिक पद्धति के पब्लिक स्कूलों के लिए आवश्यक होती हैं। स्थापना के केवल दो वर्ष बाद १ मार्च, १९६८ में ३०० विद्यार्थी इस स्कूल में प्रविष्ट हो गये थे। इस संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी और सन् १९८१ में यह २९०० तक पहुँच गयी। वर्तमान समय में ११० के लगभग अध्यापक इस स्कूल में शिक्षण-कार्य में तत्पर हैं। केवल ऐसे व्यक्ति ही इस संस्था में अध्यापक नियुक्त किये जाते हैं जो अध्यापन-कार्य में निपुण होने के साथ-साथ सदाचारी भी हों और विद्यार्थियों की सर्वतोमुखी उन्नति में विशेष रूप से रुचि रखते हों। विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने और अपने धर्म एवं संस्कृति से परिचित कराने पर भी इस स्कूल में समुचित ध्यान दिया जाता है। स्कूल में एक विशाल यज्ञशाला का भी निर्माण किया गया है, जिसमें दो कक्षाएँ बारी-बारी से सन्ध्या-हवन करती हैं। इस प्रकार सप्ताह में प्रायः सभी दिन वहाँ याज्ञिक अनुष्ठान होता रहता है, जिसका बच्चों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। साथ ही, स्कूल में एक अध्यापक की नियुक्ति केवल धार्मिक व नैतिक शिक्षा के लिए की गयी है, और उसका कार्य ही विद्यार्थियों की नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति पर ध्यान देना है। डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा परीक्षाओं में सन् १९८० में इस स्कूल के १६० विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे, जिनमें से केवल १० ही ऐसे थे जो परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके।

स्कूल में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है, इसीलिए इसका परिणाम बहुत अच्छा रहता है। आल इण्डिया सीनियर स्कूल सर्टिफिकेट की १९८१ की परीक्षा में इस स्कूल का परिणाम शत-प्रतिशत रहा था और १५१ विद्यार्थियों ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किये थे। इससे पिछले साल १४० विद्यार्थियों में से केवल एक अनुत्तीर्ण हुआ था। योग्यता के आधार पर इस स्कूल के कितने ही विद्यार्थी प्रतिवर्ष छात्रवृत्तियाँ प्राप्त करने में सफल होते हैं। विद्यार्थियों की अन्तर्निहित शक्तियों के विकास के लिए भी इस स्कूल में अनेक साधन अपनाये जाते हैं। उन्हें व्याख्यान देने, वाद-विवाद करने, हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत में कविता पाठ करने, संगीत और चित्रकला में प्रवीणता प्राप्त करने तथा अभिनय करने का भी स्कूल में अभ्यास कराया जाता है। इसी कारण इन विषयों की क्षेत्रीय प्रतियोगिताओं में इस स्कूल के विद्यार्थियों को अनेक पुरस्कार प्राप्त होते रहते हैं। खेल-कूद तथा व्यायाम की भी स्कूल में समुचित व्यवस्था है। हॉकी, फुटबॉल, क्रिकेट, खो-खो, वालीबॉल, बेडमिण्टन, बास्केटबॉल, टेबलटेनिस आदि प्रायः सभी आधुनिक खेलों में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशलता प्राप्त करने का अवसर इस विद्यालय के विद्यार्थियों को मिलता है और वे विविध टूर्नामेण्टों में सम्मिलित होकर पारितोषिक भी प्राप्त करते हैं।

कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल, अशोक विहार, दिल्ली—इस स्कूल की स्थापना एप्रिल, सन् १९७२ में की गयी थी। भारत में, विशेषतया दिल्ली में पब्लिक स्कूलों की शिक्षा की जो निरन्तर बढ़ती हुई माँग है उसे पूरा करने के प्रयोजन से ही अशोक-विहार के क्षेत्र में एक उपयुक्त और सुविस्तृत परिसर में यह स्कूल स्थापित किया गया है। १९७२ में यह स्कूल आर्यसमाज अशोक विहार के प्रांगण में तम्बू लगाकर शुरू किया गया था। पहले दो वर्षों में स्कूल की प्राइमरी कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या केवल ४०० रही, पर बाद में जब सन् १९७४ में स्कूल को अशोक विहार के ए ब्लाक में स्थानान्तरित कर दिया गया, और वहाँ कुछ भवनों का भी निर्माण हो गया तो विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् दिल्ली विकास प्राधिकरण से स्कूल के लिए आठ हजार वर्ग गज भूमि प्राप्त कर ली गयी, और वहाँ ३५ कमरों का निर्माण कर दिया गया। इस कार्य में नौ लाख रुपये व्यय हुए, जिसके परिणामस्वरूप अब स्कूल की भवन-सम्बन्धी वर्तमान आवश्यकताएँ प्रायः पूर्ण हो गयी हैं। प्रारम्भ काल में आर्य कन्या पाठशाला ट्रस्ट कुलाची की ओर से स्कूल को २५ हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की गयी थी, जिसके कारण डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी ने इस स्कूल का नाम कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल रखना स्वीकार किया था। बाद में भी इस ट्रस्ट द्वारा स्कूल के लिए अनुदान दिया जाता रहा है। इस स्कूल में बच्चों को प्रविष्ट कराने की माँग इतनी अधिक थी, कि आठ हजार वर्गगज भूमि का परिसर और उस पर बने हुए ३५ कमरे पर्याप्त नहीं थे। इसलिए बीस हजार वर्ग गज के लगभग और भूमि स्कूल के लिए प्राप्त की गयी। इस भूमि के कारण स्कूल का परिसर इतना बड़ा हो गया कि उसमें समुचित संख्या में नवीन भवनों का निर्माण किया जा सकता था और साथ ही खेलकूद के प्रयोजन से बनाये गये क्रीड़ाक्षेत्रों के लिए भी पर्याप्त स्थान बच रहा था। सन् १९८१ में इस स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या पाँच हजार से भी ऊपर पहुँच गयी थी। उनकी पढ़ाई आदि की सुव्यवस्था के लिए डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी ने एक करोड़ रुपये की लागत से अन्य भवन बनवाने की योजना स्वीकृत की। इसमें सन्देह नहीं कि यह स्कूल बड़ी तेजी के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, और दिल्ली के पब्लिक स्कूलों में इसे उच्च स्थान प्राप्त हो गया है।

स्कूल में कार्य का प्रारम्भ सभा द्वारा होता है जिसमें धर्म, नैतिकता, समाजसेवा, महापुरुषों के जीवनचरित्र तथा देशभक्ति सदृश विषयों पर चर्चा की जाती है। इस समय यज्ञ-हवन का भी अनुष्ठान किया जाता है। पढ़ाई के अन्त में सामूहिक रूप से प्रार्थना होती है। ये सब व्यवस्थाएँ विद्यार्थियों के मनों तथा मस्तिष्कों पर नैतिकता तथा धार्मिक भावना की छाप छोड़ देती हैं, और उन्हें अच्छे नागरिक बनाने में सहायक होती हैं। स्कूल में संगीत, खेलकूद, नाटक, आर्केस्ट्रा आदि का भी प्रबन्ध है। सरकार द्वारा आयोजित महोत्सवों तक में इस स्कूल की आर्केस्ट्रा टीम को आग्रहपूर्वक निमन्त्रित किया जाता है। ऐसी व्यवस्था की गयी है कि स्कूल के सभी विद्यार्थी खेल-कूद की समस्त आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त कर सकें और व्यायाम द्वारा अपने शरीरों को बलवान् बना सकें।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द मॉडल हायर सैकेण्डरी स्कूल फॉर गर्ल्स, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली— इस स्कूल की स्थापना एप्रिल, १९५७ में की गयी थी। शुरू में इसमें केवल प्राइमरी कक्षाएँ थीं। १९५९ में मिडल कक्षाएँ खोल दी गयीं, और १९६८ में हाईस्कूल कक्षाएँ। सन् १९७७ में नवीन शिक्षापद्धति के अनुसार १२ कक्षाओं की पढ़ाई होने लगी, और इसे सीनियर सैकेण्डरी स्कूल की स्थिति प्राप्त हो गयी। नयी दिल्ली के मन्दिर मार्ग पर स्थित इस स्कूल में शिक्षा के सभी आवश्यक साधन विद्यमान हैं। पुस्तकालय में सात हजार के लगभग पुस्तकें हैं, और भौतिक विज्ञान, रसायन तथा प्राणि-विज्ञान की क्रियात्मक शिक्षा के लिए सब उपकरणों से युक्त प्रयोगशालाएँ हैं। सन् १९८१ में स्कूल में पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या ६७४ थी, जिनमें ४४७ संस्कृत और ५५० हिन्दी का अध्ययन कर रही थीं। स्कूल में धार्मिक वातावरण बनाये रखने तथा छात्राओं को धर्म से परिचय कराने के प्रयोजन से प्रति शनिवार प्रातःकाल हवन किया जाता है। डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी द्वारा संचालित धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी इस स्कूल की छात्राएँ सम्मिलित होती हैं। छात्राओं के सर्वाङ्गीण विकास के लिए स्कूल में नाटक, संगीत, वाद-विवाद प्रतियोगिता, कविता-पाठ आदि के आयोजन किये जाते हैं, और विविध खेलों तथा दौड़ आदि की प्रतिस्पर्द्धाओं की व्यवस्था की जाती है।

दिल्ली के कुछ अन्य डी० ए० वी० स्कूल—पंजाब, हरयाणा, हिमाचलप्रदेश आदि में सर्वत्र डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं और उनका संचालन डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा किया जाता है। पहले इन संस्थाओं का केन्द्र लाहौर था, पर भारत के विभाजन के बाद अब वह दिल्ली हो गया है। डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के प्रधान कार्यालय के दिल्ली में स्थित होने के कारण भारत के इस संघ-क्षेत्र में बहुत-से डी० ए० वी० स्कूल स्थापित हो गये हैं, और ये संस्थाएँ राजधानी के शिक्षा जगत् पर छाती जा रही हैं। अतः इनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख कर देना उपयोगी होगा। नयी दिल्ली में चित्रगुप्त रोड पर स्थित डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल की स्थापना सन् १९३३ में हुई थी। दिल्ली के स्कूलों में इसकी ऊँची स्थिति है। सन् १९८१ में वहाँ १०३९ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और अध्यापकों की संख्या ३७ थी। स्कूल की भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य २० लाख रुपये था, और उसका वार्षिक व्यय ७ लाख १० हजार रुपये था।

दरियागंज, दिल्ली के डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल की स्थापना सन् १९१९ में हुई थी। यह दिल्ली के सबसे बड़े स्कूलों में गिना जाता है। सन् १९६९ में इसमें २१६० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और अध्यापकों की संख्या ६२ थी। स्कूल का परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा रहता है। दक्षिणी दिल्ली में यूसुफसराय में एम० वी० डी० ए० वी० सीनियर सैकेण्डरी स्कूल स्थित है, जिसकी स्थापना सन् १९३२ में हुई थी। सन् १९८१ में इसमें ९२५ विद्यार्थी थे और इसका वार्षिक व्यय ७ लाख रुपये से भी अधिक था। दिल्ली के डी० ए० वी० स्कूलों में झण्डेवालान क्षेत्र में विद्यमान चिरंजीवलाल भल्ला डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल भी बहुत प्रसिद्ध है। इसकी स्थापना सन् १९४८ में नयी दिल्ली की बेयर्ड रोड पर हुई थी। श्री चिरंजीवलाल भल्ला ने इसकी नयी इमारत के लिए एक लाख से अधिक रुपया दान दिया था, और यह भी वचन दिया था कि इसे जो वार्षिक घाटा होगा उसकी भी वह पूर्ति कर दिया करेंगे। अब यह स्कूल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झण्डेवालान में अपनी नयी इमारत में स्थानान्तरित हो गया है, और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है। दिल्ली में अन्य भी अनेक डी० ए० वी० स्कूल हैं। वस्तुतः, भारत के विविध प्रदेशों में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की संख्या इतनी अधिक है कि उन सबका यहाँ उल्लेख करना सम्भव ही नहीं है। उल्लेखनीय बात यह है, कि गत वर्षों में डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी का यह निरन्तर प्रयत्न रहा है कि दिल्ली तथा अन्यत्र नये पब्लिक स्कूलों व मॉडल स्कूलों को अधिक से अधिक संख्या में खोला जाये, ताकि जनता में इस शिक्षा पद्धति की जो माँग निरन्तर बढ़ रही है उसे पूरा किया जा सके। सन् १९८२ में इस ढंग के जो नये स्कूल खोले गये, उनकी संख्या १२ है।

(६) दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार

महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में एक शिक्षण-संस्था की स्थापना के लिए जिस डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी का संगठन किया गया था, उसका अन्यतम उद्देश्य संस्कृत भाषा, वेदशास्त्र तथा प्राचीन भारतीय वाङ्मय के पठन-पाठन को प्रोत्साहित करना भी था। उक्त सोसायटी द्वारा जो बहुत-से स्कूल तथा कॉलिज खोले गये, उनमें वह सामान्य शिक्षा दी जाती थी जो सरकारी तथा ईसाई शिक्षण-संस्थाओं में प्रचलित थी और जिसकी जनता में माँग थी। भेद यह था कि डी० ए० वी० शिक्षणालयों में धर्मशिक्षा की भी व्यवस्था होती थी। उनका वातावरण वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों के अनुकूल होता था और उनमें हिन्दी तथा संस्कृत की पढ़ाई पर समुचित ध्यान दिया जाता था। पर डी० ए० वी० आन्दोलन के संचालकों ने इस बात को आँखों से ओझल नहीं होने दिया था, कि वेदशास्त्रों के पठन-पाठन की व्यवस्था करना उनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है और महर्षि की स्मृति में जिस संस्था की स्थापना की गयी है, वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप के प्रसार के लिए भी उसे प्रयत्न करना है। इसीलिए सन् १८८६ में लाहौर में प्रथम डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना के साथ ही एक वैदिक आश्रम भी स्थापित कर दिया गया था। इसके उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार, प्रसार, वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान, संस्कृत भाषा की उन्नति और वेदशास्त्रों का पठन-पाठन थे। इस संस्था के प्रथम आचार्य पण्डित भगतराम वेदतीर्थ थे। उनके बाद पण्डित विश्ववन्धु, पं० ऋषिराम, पं० परमानन्द, पं० वैद्यनाथ शास्त्री और पं० ज्ञानचन्द ने आचार्य के रूप में इसका संचालन किया पर इस शिक्षणालय का नाम देर तक वैदिक आश्रम नहीं रहा। सन् १९२१ में वैदिक आश्रम नाम को दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया और तब से यह संस्था इसी नाम से वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के विद्वान् उपदेशक, प्रचारक तथा पुरोहित तैयार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। इसके विकास में पं० विश्ववन्धु का विशेष कर्तृत्त्व रहा है। पण्डितजी डी० ए० वी० कॉलिज कमेटी के आजीवन सदस्य थे, और उन्होंने अपना जीवन आर्यसमाज तथा दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं की सेवा के लिए अर्पित किया हुआ था।

यह तो सम्भव ही नहीं था कि वैदिक आश्रम में विद्यार्थियों की संख्या डी० ए० वी० स्कूल के बराबर हो। उसमें केवल ऐसे विद्यार्थी ही प्रविष्ट होते थे, वैदिक धर्म का प्रचार व आर्यसमाज की सेवा जिनके जीवन का ध्येय हो। फिर भी इस आश्रम में ३५ व ४० के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग विद्यार्थी वेदशास्त्रों का अध्ययन किया करते थे। उनकी शिक्षा तो निःशुल्क होती ही थी, निवास व भोजन आदि के लिए भी उनसे कोई खर्च नहीं लिया जाता था। श्री बख्शी जैसीराम ने इस संस्था के लिए एक विशाल भू-खण्ड प्रदान किया था, जिसमें विद्यालय-भवन एवं छात्रावास आदि बनवा लिये गये थे। पण्डित विश्वबन्धु सदृश विद्वानों के आचार्य पद पर होने के कारण शिक्षणालय का वातावरण विद्वत्ता का था, जिससे आकृष्ट होकर भारत के विविध प्रदेशों के विद्यार्थी वहाँ वेदशास्त्रों के अध्ययन के लिए आने लगे थे। संस्कृत के पठन-पाठन में इस संस्था ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। १९४७ में भारत के विभाजन के कारण यह विद्यालय लाहौर में नहीं रह सका। पाकिस्तान से विस्थापित अन्य आर्य शिक्षण-संस्थाओं के समान इसे भी भारत में पुनःस्थापित करने का प्रयत्न किया गया। पहले इसे श्यामचौरासी (होशियारपुर) में स्थापित किया गया, और फिर जालन्धर में। पर इन दोनों स्थानों की परिस्थितियाँ इसके लिए अनुकूल नहीं पायी गयीं। श्री मेहरचन्द महाजन डी० ए० वी० संस्थाओं को भारत में पुनःस्थापित करने के लिए विशेष रूप से प्रयत्न कर रहे थे। उन्हीं की प्रेरणा तथा प्रयत्न से दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय को सन् १९५६ में हिसार में स्थापित किया गया। हिसार आर्यसमाज का सक्रिय सहयोग शुरू से ही इस संस्था को प्राप्त रहा, और कुछ ही समय में इसका कार्य सुव्यवस्थित रूप में चलना प्रारम्भ हो गया। हिसार में डी० ए० वी० कॉलिज पहले ही विद्यमान था। उस द्वारा एक भूमिखण्ड ब्राह्म महाविद्यालय के लिए प्रदान कर दिया गया और डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी के धन से उस पर आवश्यक भवनों का निर्माण करवा लिया गया। उस समय डी० ए० वी० कॉलिज हिसार के प्रिंसिपल श्री ज्ञानचन्द्र थे। सन् १९५९ में जब वह कॉलिज के प्रिंसिपल पद से कार्य निवृत्त हुए, तो उन्होंने ब्राह्म महाविद्यालय का आचार्य पद सँभाल लिया। इस संस्था के विकास में उनका योगदान अत्यन्त महत्त्व का है। लाहौर से विस्थापित हुआ यह विद्यालय आज जो एक समुन्नत व सुव्यवस्थित संस्था का रूप प्राप्त कर चुका है, उसका बहुत कुछ श्रेय श्री ज्ञानचन्द की कर्तव्य-भावना, तप तथा त्याग को ही प्राप्त है। सन् १९६३ तक उन्होंने इस महाविद्यालय का संचालन किया। उसके बाद इसका कार्यभार पण्डित सत्यप्रिय शास्त्री ने सँभाला, जिनके पथप्रदर्शन तथा संचालन में यह संस्था निरन्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रही है।

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय का प्रमुख ध्येय आर्यसमाज के लिए उपदेशक, प्रचारक और पुरोहित तैयार करना है। वैदिक तथा संस्कृत साहित्य का प्रचार, संस्कृत तथा हिन्दी के लेखक तैयार करना, वैदिक साहित्य के अनुसन्धानकार्य को प्रोत्साहित करना तथा सच्चरित्र अध्यापक एवं आर्यसमाज के कार्यकर्ता तैयार करना इसके अन्य उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर ही इस संस्था का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है। यहाँ चार कक्षाएँ हैं, विद्याप्रवेशिका, विद्यारत्न, विद्यानिधि और विद्यावाचस्पति। इस प्रकार महाविद्यालय का पाठ्यक्रम चार वर्षों में पूरा होता है। पर जो विद्यार्थी चार वर्ष का समय न दे सकें, उनके लिए विद्याभूषण नाम से दो वर्षों का पाठ्यक्रम बनाया गया है। इस पाठ्यक्रम में वेद, दर्शन, उपनिषद्, व्याकरण, निरुक्त, छन्द आदि तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का समुचित रूप से समावेश किया गया है। इसे पढ़ लेने पर विद्यार्थियों को वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। ब्राह्म महाविद्यालय की विद्यावाचस्पति उपाधि को पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़, हिमाचल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनिवर्सिटी शिमला, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी कुरुक्षेत्र, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, लालबहादुर शास्त्री विद्यापीठ दिल्ली, श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ झज्झर तथा भारतीय विद्या भवन बम्बई ने अपनी विशारद व मध्यमा परीक्षा के समकक्ष स्वीकार किया हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप इस संस्था के विद्या-वाचस्पति सीधे शास्त्री परीक्षा में बैठ सकते हैं। ब्राह्म महाविद्यालय में प्रवेश के लिए विद्यार्थी की योग्यता कम से कम मैट्रिक्युलेशन (संस्कृत सहित) की होनी चाहिये। प्राज्ञ, प्रथमा या विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण किये हुए विद्यार्थी भी इसमें प्रविष्ट हो सकते हैं। प्रवेश के समय विद्यार्थी की आयु कम से कम १८ वर्ष और अधिक से अधिक २५ वर्ष होनी चाहिये। विवाहित व्यक्तियों को महाविद्यालय में प्रविष्ट नहीं किया जाता।

इस संस्था के विद्यार्थियों का रहन-सहन, खान-पान तथा दिनचर्या गुरुकुलों की आश्रम पद्धति के अनुरूप है। इसका वातावरण शान्त, सदाचारमय तथा अध्यात्मभावना से ओत-प्रोत है। विद्यार्थियों में प्रान्त, वर्ण, भाषा आदि का कोई भेदभाव नहीं किया जाता और सबको एक-समान भोजन, निवास, वस्त्र आदि प्रदान किये जाते हैं। न केवल शिक्षा ही निःशुल्क है, अपितु भोजन, वस्त्र आदि के लिए भी कोई खर्च विद्यार्थियों से नहीं लिया जाता। ये सब व्यय जनता के दान से ही चलते हैं। सरकार से कोई अनुदान संस्था को प्राप्त नहीं होता है।

विद्यार्थी दोनों समय सन्ध्या-हवन करते हैं। उन्हें ब्राह्ममुहूर्त्त में सो कर उठना होता है, और शौच आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर वे व्यायाम करते हैं। विद्यार्थियों को कर्मठ बनाने के प्रयोजन से प्रतिदिन आधा घण्टा उनसे शारीरिक श्रम कराने की व्यवस्था है। विद्यार्थियों को सादी वेशभूषा में रहना होता है, और अपने सब काम स्वयं करने होते हैं। महाविद्यालय में बहुधा सभाएँ होती रहती हैं, जिनमें विद्यार्थी व्याख्यान देने तथा विविध विषयों पर वाद-विवाद करने का अभ्यास करते हैं। समय-समय पर वैदिक सिद्धान्तों पर विशेष व्याख्यान-मालाओं का भी आयोजन किया जाता है। क्योंकि इस संस्था का प्रमुख ध्येय आर्यसमाज के प्रचारक और पुरोहित तैयार करना है, अतः इसकी ओर से अच्छी बड़ी संख्या में वैदिक संस्कारों और याज्ञिक अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है, जिनमें इसके आचार्य तथा अन्य अध्यापकों का योगदान तो होता ही है पर साथ ही विद्यार्थी भी जिनमें भाग लेते हैं। इस संस्था के सभी विद्यार्थी रविवार को विभिन्न आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों में जाकर सन्ध्या-हवन कराते हैं, और प्रवचन भी देते हैं। इससे उन्हें उपदेशक एवं पुरोहित के कार्य का क्रियात्मक अनुभव प्राप्त करने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। आर्यसमाज के जो भी महत्त्वपूर्ण समारोह (आर्यसमाज स्थापना शताब्दी आदि) होते हैं, इस महाविद्यालय के विद्यार्थी स्वयंसेवक के रूप में उनमें कार्य करने के लिए जाते हैं और जनता से प्रशंसा प्राप्त करते हैं। आर्यसमाज की सब प्रकार की गतिविधियों में इसके स्नातकों, प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हरयाणा सरकार द्वारा समय-समय पर संस्कृत में भाषण देने की जो प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं, उनमें इस संस्था के विद्यार्थी अनेक बार प्रथम स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय का संचालन डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली द्वारा किया जाता है। पर कार्य की सुविधा के लिए एक स्थानीय कमेटी का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी निर्माण कर दिया गया है, जिसके २१ सदस्य हैं। स्थानीय कमेटी के श्री देवराज प्रधान तथा पण्डित सत्यप्रिय शास्त्री मन्त्री हैं। संस्था का वार्षिक व्यय सवा लाख रुपये के लगभग है, जो सब दान द्वारा प्राप्त होता है। इसके लिए महाविद्यालय के आचार्य पण्डित सत्यप्रिय विशेष रूप से प्रयत्न करते हैं, और अन्य अध्यापकों का सहयोग भी उन्हें प्राप्त रहता है। ब्राह्म महाविद्यालय के अनेक स्नातकों ने वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यों में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। पण्डित नरेन्द्रभूषण ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का मलयालम भाषा में अनुवाद किया है, और तेरह हजार के लगभग ईसाइयों को शुद्ध करके वैदिक धर्म का अनुयायी बनाया है। उनकी गिनती केरल के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों में भी की जाती है। श्री सुरेश आन्ध्रप्रदेश में वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न हैं। महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा के कितने ही विद्यार्थी इस महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर अपने-अपने प्रदेशों में आर्यसमाज का कार्य कर रहे हैं। इसके चार स्नातक नेपाल में कार्यरत हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर इस संस्था की स्थापना की गयी थी उन्हें पूर्ण करने में इसे पर्याप्त सफलता हुई है। यही कारण है कि आर्य जनता इसकी उपयोगिता को स्वीकार कर इसे आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए सदा उद्यत रही है।

संस्था की भू-भवन सम्पत्ति का मूल्य दस लाख रुपये के लगभग है। भूमि का क्षेत्रफल पन्द्रह हजार वर्ग गज है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या बारह हजार से भी अधिक है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नीसवाँ अध्याय

डी० ए० वी० आन्दोलन का विराट् स्वरूप

(१) दयानन्द शिक्षा-संस्थान, उत्तरप्रदेश, कानपुर

महर्षि दयानन्द सस्वती की स्मृति में शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना के प्रयोजन से जिस प्रकार लाहौर में सन् १८८४ में दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी का निर्माण किया गया था, वैसे ही उसके कुछ वर्ष पश्चात् १८६२ में इसी नाम से एक सोसायटी संयुक्तप्रान्त (उत्तरप्रदेश) में भी स्थापित की गयी थी। इस सोसायटी का संक्षिप्त परिचय पहले दिया जा चुका है। शुरू में इसका कार्यालय मेरठ में था, जिसे सन् १६०६ में कानपुर ले जाया गया। यही सोसायटी अब डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी के वजाय 'दयानन्द शिक्षा-संस्थान' कहाती है। सोसायटी की इस नये रूप में परिणति सन् १६६२ में वावू वीरेन्द्रस्वरूप द्वारा की गयी थी।

डी० ए० वी० सोसायटी, उत्तरप्रदेश या दयानन्द शिक्षा-संस्थान द्वारा पहली शिक्षण-संस्था की स्थापना सन् १८६३ में एक छोटे-से स्कूल के रूप में मेरठ में की गयी थी। एक सदी से भी कम समय में संस्थान द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं की संख्या अव २२ हो गयी है, और उनमें हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। कानपुर तथा देहरादून की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं को कॉलिज की वजाय यूनिवर्सिटी कहना अधिक उपयुक्त होगा। उत्तरप्रदेश में कोई भी अन्य संगठन या संस्थान ऐसा नहीं है, जिस द्वारा इतने व्यापक रूप से शिक्षा का कार्य किया जा रहा हो।

डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर—इस कॉलिज की आधारशिला सन् १६१६ में महात्मा हंसराज द्वारा रखी गयी थी। इस अवसर पर उनके हाथों से कॉलिज में सर्वप्रथम प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों के नाम रजिस्टर में लिखे गये थे, और उन्हीं के सुयोग्य शिष्य लाला दीवानचन्द को कानपुर कॉलिज का पहला प्रिंसिपल नियुक्त किया गया था। लाला दीवानचन्द डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर के आजीवन सदस्य थे और उन्होंने अपना जीवन आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म की सेवा के लिए समर्पित किया हुआ था। उन्हीं की कर्मठता तथा योग्यता का यह परिणाम था कि डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर ने शीघ्र ही उत्तरप्रदेश के कॉलिजों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। इस कॉलिज की उन्नति कितनी तीव्र गति से हुई, इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ संख्यायें देना उपयोगी होगा। सन् १६१६ में इस कॉलिज में ७० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे। १० वर्ष वाद १६२६ में वहाँ ४८२ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। १० वर्ष वाद १६३६ में यह संख्या ७७२ हो गयी, और १६४६ में २५३६। वाद में भी विद्यार्थियों की संख्या में इसी गति से वृद्धि होती गयी। सन् १६५६ में इस कॉलिज में ५०४६ विद्यार्थी थे, और सन् १६७६ में ६५००। अव यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या सात हजार के लगभग तक पहुँच गयी है।

सन् १९१९ से १९४० तक लाला दीवानचन्द डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के प्रिंसिपल रहे। उनके पश्चात् प्रो० कालकाप्रसाद भटनागर इस पद पर नियुक्त हुए। उनके आचार्यत्व में इस शिक्षण-संस्था की असाधारण गति से उन्नति हुई। जब उन्होंने कॉलिज का कार्यभार सँभाला था, वहाँ विद्यार्थियों की संख्या ७७२ थी और ३९ प्राध्यापक कार्य कर रहे थे। सन् १९५६ में जब प्रो० भटनागर आगरा यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर नियुक्त हुए और डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल पद पर प्रो० शारदाप्रसाद सक्सेना की नियुक्ति हुई, तो इस शिक्षण-संस्था के विद्यार्थियों की संख्या ५३५६ थी और २१५ प्राध्यापक वहाँ अध्यापन-कार्य में रत थे। १५ साल के स्वल्प काल में विद्यार्थियों की संख्या में सात गुना वृद्धि हो जाना प्रो० भटनागर के असाधारण व्यक्तित्व और कर्तृत्व का ही परिणाम था। उनके कार्यकाल में कितने ही विषयों में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई प्रारम्भ हुई। उनसे पहले इस कॉलिज में एम० ए० स्तर तक केवल राजनीतिशास्त्र की शिक्षा की व्यवस्था थी। पर उनके प्रयत्न से सन् १९४१ में अंग्रेजी, १९४२ में हिन्दी, १९४४ में कामर्स, १९४८ में भौतिक विज्ञान और रसायनशास्त्र, १९४९ में इतिहास, भूगोल और पाश्चात्य दर्शन, १९५० में गणितशास्त्र और १९५५ में सांख्यिकी के विषयों में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा की व्यवस्था की गयी। इसी काल में सैनिक शिक्षा का भी कॉलिज के पाठ्यक्रम में समावेश किया गया। मेरठ कॉलिज, बरेली कॉलिज, और सेण्ट जॉन्स कॉलिज, आगरा उत्तरप्रदेश के बहुत पुराने कॉलिज हैं। पर जहाँ तक विद्यार्थियों की संख्या और विभिन्न विषयों की शिक्षा का प्रश्न है, ये सब डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर की तुलना में पीछे रह गये हैं। १९५५ के बाद भी अनेक अन्य विषयों में एम० ए० की पढ़ाई इस कॉलिज में शुरू की गयी। १९५६ में समाजशास्त्र, १९५९ में मनोविज्ञान, प्राणिविज्ञान, और वनस्पतिशास्त्र तथा १९६१ में आलेख्य और चित्रकला में स्नातकोत्तर शिक्षा का पाठ्यक्रम वहाँ प्रारम्भ कर दिया गया।

जुलाई, सन् १९५७ में प्रोफेसर शारदाप्रसाद सक्सेना देहरादून के डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल होकर कानपुर से चले गये, और उनके स्थान पर कानपुर डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल पद पर डा० हजारीलाल रोहतगी नियुक्त हुए। डा० रोहतगी के उत्तराधिकारियों में प्रो० चन्द्रदेवप्रसाद श्रीवास्तव (१९६३-६५) और प्रो० राजस्वरूप माथुर के नाम उल्लेखनीय हैं। डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर को एक विशाल शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित करने में इनका कर्तृत्व महत्त्व का था। सन् १९६७ में कानपुर यूनिवर्सिटी की स्थापना हो जाने पर इस कॉलिज को उसके साथ सम्बद्ध कर दिया गया। उस समय इस कॉलिज में स्नातकोत्तर स्तर पर निम्नलिखित विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था थी—हिन्दी साहित्य, संस्कृत साहित्य, अंग्रेजी साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, भूगोल, पाश्चात्य दर्शन, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, आलेख्य और चित्रण कला, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, गणित, सांख्यिकी और कामर्स। स्नातक स्तर तक ये सब विषय वहाँ पढ़ाये जाते थे। इतने अधिक विषयों की शिक्षा की व्यवस्था के कारण इस कॉलिज का स्वरूप एक विश्वविद्यालय के सदृश हो गया था। भारत में कितनी ही ऐसी यूनिवर्सिटियाँ हैं जिनमें विद्यार्थियों की संख्या इस एक कॉलिज की तुलना में कम है। जहाँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक शिक्षा के व्यय का प्रश्न है, सन् १९६३-६४ में इस कॉलिज का वार्षिक व्यय केवल १५ लाख रुपये के लगभग था, जब कि इसी काल में उस समय की ५५ भारतीय यूनिवर्सिटियों पर १०९ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च किये जा रहे थे। यूनिवर्सिटियों पर व्यय की जाने वाली धनराशि की मात्रा प्रत्येक यूनिवर्सिटी पर औसतन १,९९,००,००० के लगभग थी, जब कि इस विशाल कॉलिज का व्यय केवल १५ लाख रुपये वार्षिक था। किस भावना से इस कॉलिज का संचालन किया जा रहा था, यह इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है।

डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर जहाँ उच्च शिक्षा का महान् केन्द्र था, वहाँ उस द्वारा विद्यार्थियों में नैतिकता, धर्म तथा देश-प्रेम की भावना का संचार करने के भी प्रयत्न किये जाते थे। कानपुर आर्यसमाज के प्रधान पं० विद्याधर इसके लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील थे। जब लाला दीवानचन्द्र इस कॉलिज के प्रिंसिपल थे, श्री विद्याधर वहाँ कार्यालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए थे। विद्यार्थियों को महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों से परिचय प्राप्त हो जाय, और वे आर्यसमाज के कार्यकलाप में रुचि लेने लगें, श्री विद्याधर द्वारा इसके लिए निरन्तर प्रयत्न किया गया और उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता भी प्राप्त हुई। इस कॉलिज के स्वरूप के सम्बन्ध में उसके एक प्रोफेसर के निम्नलिखित वाक्य उद्धरण के योग्य हैं— "डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना प्रदेश के कॉलिजों में एक कड़ी जोड़ देना ही न थी, इसे शिक्षण-संस्थान मात्र समझना गलत है, यह तो एक समन्वय है प्राचीन व नयी संस्कृति का, प्राचीन व नयी विचारधारा का। जमाने की रफ्तार को कोई रोक नहीं सकता, पर पुरानी बातें भी भुलाई नहीं जा सकतीं। प्राचीन संस्कृति को आधुनिक जामा पहना देना डी० ए० वी० कॉलिज का काम था और हमें गर्व है कि हम इसमें सफल हुए हैं।"

डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों में अपने देश की संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के प्रति जो आस्था थी, उसी के कारण भारत के स्वाधीनता-संग्राम में इस संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। लाला हरदयाल, राजा महेन्द्रप्रताप, श्री रासबिहारी बोस, वीर सावरकर तथा भाई परमानन्द के जीवन तथा कर्तृत्व से प्रेरणा प्राप्त कर कॉलिज के कुछ विद्यार्थियों ने कानपुर में एक क्रान्तिकारी पार्टी का संगठन किया था। श्री महावीरसिंह, श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डे और श्री शिववर्मा इनमें प्रमुख थे। इससे पहले भी क्रान्तिकारी पार्टी कानपुर में विद्यमान थी। पर काकोरी ट्रेन डकैती केस के बाद वह अस्त-व्यस्त हो गयी थी। पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, श्री रोशनसिंह और श्री असफाकुल्ला सदृश क्रान्तिकारी नेताओं की गिरफ्तारी तथा बाद में फाँसी के कारण उत्तरप्रदेश में सशस्त्र विद्रोह के प्रयत्न मन्द पड़ गये थे। इस दशा में डी० ए० वी० कॉलिज कानपुर को केन्द्र बनाकर उत्तरप्रदेश में क्रान्तिकारी पार्टी को पुनः संगठित किया गया। लाहौर में साण्डर्स हत्याकाण्ड के परिणामस्वरूप जो युवक सरकार द्वारा गिरफ्तार किये गये, इनमें बहुत-से डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी थे। इनमें श्री शिववर्मा, श्री सुरेन्द्र पाण्डे, श्री जयदेव कपूर, और श्री महावीरसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब का डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। या तो ये उसके विद्यार्थी थे, या विद्यार्थी रह चुके थे। कानपुर की क्रान्तिकारी पार्टी भली-भाँति संगठित थी। उसका अपना पुस्तकालय था, जिसमें भारतीय तथा विदेशी क्रान्तिकारी साहित्य प्रचुर मात्रा में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहीत था। श्री सुन्दरलाल द्वारा लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज्य' तथा चाँद पत्रिका का फाँसी अंक सदृश ऐसा साहित्य भी इसमें विद्यमान था, जिसे अंग्रेजी सरकार ने जब्त किया हुआ था। युवक क्रान्तिकारी इन पुस्तकों को रुचिपूर्वक पढ़ते थे और उनसे विदेशी शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की प्रेरणा प्राप्त करते थे। क्रान्तिकारी पार्टी के इस पुस्तकालय की सब व्यवस्था श्री अश्विनीकुमार मिश्र द्वारा की जाती थी। श्री मिश्र डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी थे। कॉलिज के छात्रावास में कितने ही ऐसे विद्यार्थी रह रहे थे, जो क्रान्तिकारी पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। उस समय भारत में क्रान्तिकारी पार्टी का संगठन बहुत व्यापक था। कानपुर के अतिरिक्त इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ और गोरखपुर आदि में उसकी शाखाएँ विद्यमान थीं। उत्तरप्रदेश के क्रान्तिकारियों का पंजाब और बंगाल के क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध था, और वे सब एक विशाल संगठन के अंग थे। इस दशा में क्रान्तिकारी पार्टियों तथा उनके नेताओं में सम्पर्क रखने का, उनके पास पत्र व सन्देश पहुँचाने का तथा अस्त्र-शस्त्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने का कार्य प्रायः डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के विद्यार्थी किया करते थे। क्रान्तिकारी पार्टी से सम्बन्ध रखने वाले विद्यार्थियों की गतिविधि से सरकार अपरिचित नहीं थी। उसके गुप्तचर डी० ए० वी० कॉलिज पर कड़ी निगाह रखते थे और उन्हें गिरफ्तार करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहते थे। यही कारण है कि पुलिस और विद्यार्थियों में अनेक मुठभेड़ भी हुईं, जिनमें कइयों को जान से भी हाथ धोना पड़ा। ऐसी एक मुठभेड़ १ दिसम्बर, १९३० के दिन हुई थी। पुलिस को एक ऐसा पत्र हाथ लग गया था, जिसमें एक क्रान्तिकारी नेता का कार्यक्रम लिखा हुआ था। इस नेता को डी० ए० वी० कॉलिज के छात्रावास में रहने वाले श्री सरस्वतीप्रसाद खरे के साथ एक रात बितानी थी। पुलिस इस क्रान्तिकारी की तलाश में थी। प्रातः चार बजे पुलिस का एक दस्ता कॉलिज के द्वार पर पहुँच गया। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर फील्ड तथा डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर हण्ट पुलिस के दस्ते का नेतृत्व कर रहे थे। खुफिया पुलिस का इंस्पेक्टर शम्भुनाथ भी उनके साथ था। पुलिस के कॉलिज में प्रवेश करते ही उस पर गोलियों की वर्षा शुरू हो गयी। श्री शालिग्राम शुक्ल नामक एक युवक ने पुलिस पर रिवॉल्वर से आक्रमण कर दिया, और दोनों ओर से देर तक गोलियाँ चलती रहीं। श्री शुक्ल अकेले ही पुलिस का मुकाबला करते रहे। उनकी गोली से मिस्टर हण्ट बुरी तरह घायल होकर गिर पड़े और अनेक सिपाहियों को चोटें आयीं। सशस्त्र संघर्ष में एक सिपाही की तो मृत्यु भी हो गयी। यह सम्भव नहीं था, कि श्री शुक्ल पुलिस के पूरे दस्ते का देर तक अकेले सामना करते रहते। उन्हें भी गोलियाँ लगीं और अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते-लड़ते उन्होंने वीरगति प्राप्त की। श्री शुक्ल डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थी थे, और बी० ए० (प्रथम वर्ष) कक्षा में अध्ययन कर रहे थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस शिक्षण-संस्था के राष्ट्रीय वातावरण के कारण विद्यार्थियों को स्वराज्य के लिए संघर्ष की प्रेरणा प्राप्त होती थी।

भारत में स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए जो संघर्ष हुआ, वह सशस्त्र और क्रान्तिकारी ही नहीं था, महात्मा गांधी के नेतृत्व में शान्तिमय और अहिंसात्मक साधनों द्वारा भी स्वराज्य के लिए प्रयत्न किया जा रहा था। जनता में जागृति उत्पन्न कर उसे अपने अधिकारों का बोध कराना और उनके लिए संघर्ष करने को तैयार करना महात्मा गांधी का उद्देश्य था। इसी प्रयोजन से उन्होंने असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलनों का प्रारम्भ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। डी० ए० वी० कॉलिज के विद्यार्थियों ने इन आन्दोलनों में भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। सन् १६२८ में जब महात्मा गांधी कानपुर आये, तो इसी कॉलिज के प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने उनके स्वागत तथा सार्वजनिक व्याख्यान का आयोजन किया था, और उन्हें एक थैली भी भेंट की थी। अन्य शिक्षण-संस्थाओं ने अपने को स्वाधीनता संघर्ष से पृथक् रखना ही श्रेयस्कर समझा था।

एक महान् शिक्षण-संस्था को सुचारु रूप से चलाने तथा उसकी समुचित व्यवस्था करने के लिए जो भी साधन (पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ आदि) चाहिये, वे सब डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर में विद्यमान हैं। आनन्दस्वरूप लायब्रेरी नाम से उसका विशाल पुस्तकालय है, जिसमें सभी विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकें बड़ी संख्या में संगृहीत हैं। पुस्तकालय की इमारत को इस ढंग से बनाया गया है कि उसमें पाँच लाख पुस्तकें रखी जा सकती हैं। प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों के उपयोग के लिए उसमें कक्षों की भी व्यवस्था की गयी है, और शोध की सुविधाएँ भी वहाँ जुटायी गयी हैं। विज्ञान के विविध विषयों की प्रयोगशालाएँ भी कॉलिज में हैं, जिनमें सब आवश्यक वैज्ञानिक उपकरण विद्यमान हैं। खेलकूद, व्यायाम तथा जिमनास्टिक की भी कॉलिज में समुचित व्यवस्था है। हॉकी, फुटबाल, वॉलीबाल, टेनिस, बेडमिण्टन आदि प्रायः सभी आधुनिक खेलों का वहाँ प्रबन्ध है। जिमनास्टिक के लिए वहाँ एक जिम्नेजियम भी है और तैराकी तथा नौका नयन का भी वहाँ प्रबन्ध है।

जिस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या सात हजार के लगभग हो, उसमें छात्रावासों का भी होना आवश्यक है। डी० ए० वी० कॉलिज के साथ ही एक छात्रावास है जिसमें ७०० के लगभग विद्यार्थियों के निवास की व्यवस्था है। छात्रावास में निवास करने वाले विद्यार्थियों को महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों तथा आर्यसमाज की गतिविधि से परिचित कराने का प्रयत्न किया जाता है और ऐसे व्यक्ति को ही उसका आश्रमाध्यक्ष नियुक्त किया जाता है, जो स्वयं सदाचारी हो और विद्यार्थियों को बुरे रास्ते पर जाने से रोक सके।

डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के साथ एक वैदिक शोध-संस्थान की भी स्थापना की गयी है। जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं को प्रारम्भ किया गया था, वैदिक साहित्य का अध्ययन तथा उसमें शोधकार्य का भी उनमें स्थान था। इसीलिए १६ जुलाई, १९६२ को वैदिक शोध-संस्थान स्थापित किया गया, और डा० मुंशीराम शर्मा उसके अध्यक्ष व संचालक नियुक्त किये गये। डा० शर्मा संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित हैं और आर्यसमाज के विद्वानों में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। वह चिरकाल तक डी० ए० वी० कॉलिज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। उनके मार्गदर्शन व निर्देशन में वैदिक शोध-संस्थान उपयोगी कार्य कर रहा है। उस द्वारा अनेक शोध पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की जा चुकी हैं। डी० ए० वी० कॉलिज में आर्य युवक सभा भी विद्यमान है, जिसके सदस्य आर्यसमाज के कार्यकलाप में हाथ बँटाते रहते हैं। उस द्वारा आर्य विद्वानों के व्याख्यानों का भी समय समय पर आयोजन किया जाता है। कॉलिज की ओर से धर्मशिक्षा की भी परीक्षा ली जाती है, जिसके पाठ्यक्रम में सत्यार्थप्रकाश के प्रथम दस समुल्लास और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अन्तर्गत है। इस परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस कॉलिज में अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों से कोई फीस नहीं ली जाती। योग्य विद्यार्थियों को भी निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की यहाँ व्यवस्था है।

डी० ए० वी० ट्रेनिंग कॉलिज, कानपुर—शिक्षकों के प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम का प्रारम्भ डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर में सन् १९४८ में ही हो गया था। उस समय श्री कालकाप्रसाद भटनागर इस कॉलिज के प्रिंसिपल थे। उन्हीं द्वारा कॉलिज में शिक्षकों की ट्रेनिंग का सूत्रपात किया गया था, पर शुरू में वहाँ शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पृथक् कॉलिज नहीं था। डी० ए० वी० कॉलिज के एक विभाग के रूप में ही बी० टी० और बी० एड० के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। श्री आर० सी० शुक्ल इस विभाग के अध्यक्ष थे, और सात प्राध्यापक प्रशिक्षण के लिए इस विभाग में नियुक्त थे। प्रशिक्षण विभाग निरन्तर उन्नति करता गया, और उसका परीक्षा परिणाम अत्यन्त सन्तोषजनक रहा। ट्रेनिंग कॉलिजों की अखिल भारतीय वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भी इस विभाग के छात्रों ने अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। प्रशिक्षण विभाग की प्रगति को दृष्टि में रखकर कॉलिज की प्रबन्ध समिति ने उसे एक पृथक् कॉलिज का रूप देने का निश्चय किया, जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९६८ में कानपुर के डी० ए० वी० ट्रेनिंग कॉलिज की स्थापना हुई। इस कॉलिज में प्राध्यापकों की संख्या १३ है, और यह अत्यन्त लोकप्रिय प्रशिक्षण संस्था है। उत्तरप्रदेश के ट्रेनिंग कॉलिजों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दयानन्द कॉलिज ऑफ् लॉ, कानपुर—प्रारम्भ में कानून की शिक्षा डी० ए० वी० कॉलिज द्वारा ही दी जाती थी, और उसके लिए कॉलिज में एक पृथक् विभाग था, किन्तु अध्ययन-अध्यापन तथा प्रबन्ध की सुविधा की दृष्टि से कॉलिज की प्रबन्ध समिति ने सन् १९५८ में यह निश्चय किया कि कॉलिज के कानून विभाग को दयानन्द कॉलिज ऑफ् लॉ के नाम से एक पृथक् शिक्षण-संस्था बना दिया जाय। श्री निवारण चन्द्र इस कॉलिज के प्रथम आचार्य नियुक्त हुए और उनके बाद श्री गणेशप्रसाद सक्सेना तथा श्री अविनाश-चन्द्र सिन्हा ने योग्यतापूर्वक इसका संचालन किया। श्री सिन्हा के आचार्यत्व में इस कॉलिज की बहुत उन्नति हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से धन प्राप्त कर उन्होंने कॉलिज के विशाल पुस्तकालय भवन तथा अन्य अनेक इमारतों का निर्माण कराया। कॉलिज में कानून की शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी, जो अब पाँच हजार तक पहुँच गयी है। प्राध्यापकों की संख्या ५८ है। एल-एल० बी० स्तर की शिक्षा तो इस कॉलिज में दी ही जाती है पर अब वहाँ कानून की स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था भी की जा रही है।

दयानन्द गर्ल्स कॉलिज, कानपुर—पहले डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर में छात्रों के साथ छात्राएँ भी पढ़ा करती थीं। पर धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती गयी और सन् १९५७ में वहाँ २०० से भी अधिक छात्राएँ शिक्षा प्राप्त करने लगीं। महिलाओं में उच्च शिक्षा की अत्यधिक माँग को दृष्टि में रखते हुए डी० ए० वी० कॉलिज की प्रबन्ध समिति ने उनके लिए एक पृथक् कॉलिज खोलने का निश्चय किया और सन् १९५९ के जुलाई मास में दयानन्द गर्ल्स कॉलिज के नाम से एक पृथक् कॉलिज की स्थापना कर दी गयी। इस कॉलिज में आर्ट्स और सायन्स के सभी विषयों की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है और दस विषयों में स्नातकोत्तर विषयों की शिक्षा चल रही है। पुस्तकालय उत्कृष्ट व उपयोगी पुस्तकों से परिपूर्ण है। खेलकूद और व्यायाम की कॉलिज में समुचित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था है। छात्राओं को धर्म और नैतिकता की शिक्षा देने के प्रयोजन से वहाँ प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना का भी आयोजन होता है।

दयानन्द वीमैन्स ट्रेनिंग कॉलिज, कानपुर—देश में स्त्रीशिक्षा जिस ढंग से बढ़ती जा रही थी, उसके कारण ऐसी अध्यापिकाओं की माँग में निरन्तर वृद्धि हो रही थी जो अध्यापन-कार्य के लिए भली-भाँति प्रशिक्षित हों। इसी बात को दृष्टि में रखकर सन् १९५८ में अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिए डी० ए० वी० कॉलिज प्रबन्ध समिति ने दयानन्द वीमैन्स ट्रेनिंग कॉलिज को स्थापित किया। इसमें न केवल बी० एड० के लिए ही, अपितु एम० एड० के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था है और २०० से भी अधिक महिलाएँ इसमें प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं।

दयानन्द ब्रजेन्द्रस्वरूप कॉलिज, कानपुर—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९५९ में कानपुर नगर से सात मील दूर गोविन्दनगर के क्षेत्र में हुई थी। इस नगर में मुख्यतया उन लोगों की बस्ती थी, जो भारत-विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आये थे। उनकी शिक्षाविषयक आवश्यकता को दृष्टि में रखकर रायबहादुर डा० ब्रजेन्द्रस्वरूप की पुण्य स्मृति में यह कॉलिज स्थापित किया गया था। उत्तरप्रदेश में डी० ए० वी० कॉलिज आन्दोलन को आगे बढ़ाने में डा० ब्रजेन्द्रस्वरूप का कर्तृत्व अत्यन्त महत्त्व का था। इसीलिए इनका नाम इस कॉलिज के साथ जोड़ा गया था। श्री मदन-मोहन पाण्डे इसके प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त हुए थे। उनके प्रयत्न से इस कालिज की बहुत उन्नति हुई और कुछ ही समय में यह उच्च शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। स्थापना के समय इस कॉलिज में केवल हिन्दी, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, इतिहास तथा समाजशास्त्र विषयों की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था थी। सन् १९६०-६१ में वहाँ भूगोल, मनोविज्ञान तथा संस्कृत साहित्य का अध्यापन भी प्रारम्भ कर दिया गया, और बी० डी० की कक्षाएँ भी खोल दी गयीं। दो वर्ष पश्चात् १९६२-६३ में इस कॉलिज में भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा गणित की शिक्षा का सूत्रपात किया गया, और वहाँ के विद्यार्थी बी० एस-सी० स्तर तक विज्ञान भी पढ़ने लगे। विज्ञान की शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा कॉलिज को तीन लाख रुपये की धनराशि प्रदान की गयी। कुछ समय बाद विज्ञान के विषयों (भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, वनस्पति विज्ञान तथा प्राणि विज्ञान) में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई की भी व्यवस्था कर दी गयी और इस कॉलिज के विद्यार्थी एम० एस-सी० की परीक्षा में भी बैठने लगे। डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के समान दयानन्द ब्रजेन्द्रस्वरूप कॉलिज भी उन्नति के मार्ग पर तेजी से अग्रसर हो रहा है और उच्च शिक्षा की प्रायः सब आवश्यक सुविधाएँ वहाँ विद्यमान हैं। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है। पिछड़ी हुई जातियों के विद्यार्थियों के लिए अनेक छात्रवृत्तियों की भी वहाँ व्यवस्था है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, कानपुर—यह कानपुर की सबसे पुरानी आर्य शिक्षण-संस्था है। उत्तरप्रदेश की डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी ने सन् १९०७ में जिस रात्रि पाठशाला की स्थापना की थी, वही बाद में एक मिडल स्कूल के रूप में विकसित हो गयी और समयान्तर में उसी ने हाईस्कूल और इण्टर कॉलिज का रूप प्राप्त कर लिया। वर्तमान समय में यह उत्तरप्रदेश के सबने बड़े तथा सर्वश्रेष्ठ इण्टर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कॉलिजों में गिना जाता है और इसमें हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा इस विद्यालय की विशेषता है। इसके विद्यार्थी धर्म तथा समाज की सेवा के कार्यों में विशेष रुचि रखते हैं। परीक्षा परिणाम की दृष्टि से इसकी गणना उत्तरप्रदेश के प्रथम श्रेणी के सर्वोत्कृष्ट शिक्षणालयों में की जाती है।

दयानन्द मॉडल उद्योगशाला इण्टर कॉलिज, गोविन्दनगर—कानपुर नगर से दूर गोविन्दनगर के जिस क्षेत्र में दयानन्द ब्रजेन्द्रस्वरूप कॉलिज विद्यमान है, वहीं इस इण्टर कॉलिज की भी स्थिति है। बालकों और बालिकाओं—दोनों की शिक्षा की इसमें व्यवस्था है। विज्ञान, आर्ट्स तथा कामर्स, तीनों वर्गों के विभिन्न विषयों की हाईस्कूल तथा इण्टर तक की पढ़ाई का इस संस्था में प्रबन्ध है। पुस्तकालय तथा विज्ञान के विविध विषयों की प्रयोगशालाएँ वहाँ हैं, और खेलकूद के लिए समुचित साधनों की भी वहाँ सत्ता है। यह शिक्षणालय सुचारु रूप से विकसित व सुव्यवस्थित है और इसमें शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या भी हजारों में है।

दयानन्द हंसमुखी देवी गर्ल्स इण्टर कॉलिज, कानपुर—कन्याओं में शिक्षा की निरन्तर बढ़ती हुई माँग को दृष्टि में रखकर सन् १९६१ में इस कॉलिज की स्थापना की गयी थी। यह भी सब प्रकार से साधनसम्पन्न शिक्षणालय है, जिसमें एक हजार से भी अधिक बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर— कानपुर नगर से बाहर किदवई नगर नाम की एक नयी बस्ती है, जिसमें छात्राओं की उच्च शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं थी। वहाँ के निवासियों के अनुरोध पर डी० ए० वी० कॉलिज प्रबन्ध समिति के तत्कालीन प्रधान श्री वीरेन्द्र स्वरूप ने जुलाई, १९६९ में इस कॉलिज की स्थापना की थी। उस समय कॉलिज का अपना भवन नहीं था। एक मकान किराये पर लेकर उसमें महाविद्यालय खोल दिया गया था। शुरू में केवल ७९ छात्राएँ उसमें प्रविष्ट हुई थीं, पर कुछ ही वर्षों में इस संस्था ने बहुत उन्नति कर ली। इसका अपना भवन बनकर तैयार हो गया और २६ जनवरी, १९७७ को इसे अपने भवन में स्थानान्तरित कर दिया गया। छात्राओं की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होती गयी, जो अब एक हजार के लगभग तक पहुँच गयी है। महाविद्यालय में शिक्षा का स्तर पर्याप्त रूप से ऊँचा है तथा उसमें बी० ए० और बी० एड० स्तर तक की पढ़ाई का प्रबन्ध है। खेलकूद की सब समुचित सुविधाएँ वहाँ विद्यमान हैं।

कानपुर ग्रीन हाउस (नर्सरी स्कूल), कानपुर—स्वराज्य के पश्चात् ऐसे शिक्षणालयों की माँग बहुत बढ़ गयी, जिनमें बच्चों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से साफ-सुथरे वातावरण में शिक्षा दी जाती है। सम्भ्रान्त वर्ग के लोग यह नहीं चाहते कि उनके बच्चे सर्वसाधारण बच्चों के साथ पढ़ें। देश में अंग्रेजी भाषा के महत्त्व में असाधारण रूप से वृद्धि हो जाने के कारण ऐसी संस्थाओं की भी माँग बढ़ने लगी जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और बच्चे शुरू से ही अंग्रेजी में बातचीत करने लगें। समय की इसी माँग को दृष्टि में रखकर इस स्कूल की स्थापना की गयी है, जिसकी लोकप्रियता में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हो रही है।

दयानन्द सुभाष नेशनल कॉलिज, उन्नाव—इस कॉलिज की स्थापना ५ जुलाई, १९४६ को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की पुण्य स्मृति में की गयी थी। श्री विश्वम्भर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयाल त्रिपाठी का इसकी स्थापना में विशेष कर्तृत्व था। दो वर्ष पश्चात् आगरा यूनिवर्सिटी द्वारा इस कॉलिज को बी० ए० स्तर तक की शिक्षा के लिए मान्यता प्रदान कर दी गयी, जिससे इसकी उन्नति तेजी के साथ होने लगी। वर्तमान समय में इस संस्था में बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० कॉम० तथा बी० एड० की स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है, और कुछ विषयों में स्नातकोत्तर (एम० ए०) कक्षाएँ भी वहाँ विद्यमान हैं। विद्यार्थियों की संख्या १५०० से अधिक है। निर्धन छात्रों को शुल्क में छूट के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी सहायता प्रदान की जाती है। खेलकूद की वहाँ समुचित व्यवस्था है, और एन० सी० सी० का प्रशिक्षण सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। विभिन्न विषयों की पृथक्-पृथक् सभाएँ व परिषदें कॉलिज में विद्यमान हैं जिसके पदाधिकारी विद्यार्थियों द्वारा चुने जाते हैं और जिनमें विद्वानों को व्याख्यानों के लिए निमन्त्रित किया जाता है।

दयानन्द विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी कृषि विद्यालय, उन्नाव—भारत के आर्थिक जीवन में कृषि का बहुत महत्त्व है। अतः यह आवश्यक है कि कृषि की उन्नति के लिए विज्ञान की सहायता ली जाय और खेती के नये-नये साधनों को अपनाया जाय। इसी तथ्य को सम्मुख रखकर डी० ए० वी० कॉलिज की प्रबन्ध समिति ने इस शिक्षण-संस्था की स्थापना की है। इसमें छठी से लेकर ग्यारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था है। विद्यार्थियों की संख्या वहाँ बारह सौ के लगभग है, और ५३ अध्यापक वहाँ अध्यापन के लिए नियुक्त हैं। कृषि के अतिरिक्त आर्ट्स, सायन्स तथा कामर्स वर्गों के विषयों की भी इस विद्यालय में पढ़ाई होती है। खेलकूद के साधन भी वहाँ विद्यमान हैं।

दयानन्द विद्यालय महानगर, लखनऊ—इस विद्यालय की स्थापना सन् १९५९ में डी० ए० वी० कॉलिज प्रबन्ध समिति द्वारा इस प्रयोजन से की गयी थी कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति से बालकों तथा बालिकाओं को ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में उनकी आस्था बनी रहे। इस संस्था के तत्त्वावधान में क्रीड़ा केन्द्र, बाल पुस्तकालय एवं सांस्कृतिक केन्द्र भी चल रहे हैं और एक निर्देशिका इस प्रयोजन से नियुक्त है कि वह बालकों और बालिकाओं के सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा आमोद-प्रमोद के विभिन्न आयोजनों की नियमित रूप से संचालन करती रहे। विद्यालय के छात्र-छात्राओं ने अनेक बार आकाशवाणी लखनऊ से कार्यक्रम भी प्रसारित किये हैं। संगीत और नृत्य की शिक्षा इस संस्था की विशेषता है।

दयानन्द वीरेन्द्रस्वरूप डिग्री कॉलिज, बछरावाँ (रायबरेली)—डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी को दयानन्द शिक्षा-संस्थान के रूप में परिवर्तित किये जाने का श्रेय श्री वीरेन्द्रस्वरूप को प्राप्त है। दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षा-संस्थान के समुन्नति एवं विकास में उनका कर्तृत्व अत्यन्त महत्त्व का था। उन्हीं की पुण्य स्मृति में इस कॉलिज की स्थापना की गयी है। इसमें बी० ए० स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

डी० ए० वी० कॉलिज, देहरादून—दयानन्द शिक्षा-संस्थान, उत्तरप्रदेश द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं का एक विशाल केन्द्र जैसे कानपुर है, वैसे ही एक अन्य केन्द्र देहरादून है। वहाँ पाँच डी० ए० वी० शिक्षणालय विद्यमान हैं, जो सब डी० ए० वी० कॉलिज समिति, कानपुर के अधीन हैं। सन् १८९२ में श्री लक्ष्मणस्वरूप की अध्यक्षता में संयुक्तप्रान्त (उत्तरप्रदेश) की जिस डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी का गठन हुआ था, उस द्वारा एक छोटा-सा विद्यालय मेरठ में खोला गया था जिसे सन् १९०४ में देहरादून स्थानान्तरित कर दिया गया था। देहरादून में इस विद्यालय ने बहुत उन्नति की। मोहल्ला मानसिंहवाला (देहरादून) के सम्पन्न व प्रतिष्ठित रईस श्री पूरनचन्द्र नेगी ने न केवल इसके लिए सुविस्तृत भूमि-खण्ड ही प्रदान किया, बल्कि उस पर विद्यालय की इमारत भी बनवा दी। श्री नेगी द्वारा प्रदत्त भूमि-खण्ड इतना विशाल था, कि आज उसी पर दो डिग्री कॉलिज (डी० ए० वी० कॉलिज तथा डी० बी० एस० कॉलिज) और एक इण्टर कॉलिज विद्यमान हैं। साथ ही, उनके छात्रावास तथा क्रीड़ास्थल भी वहीं हैं। इस भूमि का वर्तमान मूल्य एक करोड़ रुपये से भी अधिक है। श्री पूरनचन्द्र नेगी ने डी० ए० वी० विद्यालय के लिए भूमि के साथ-साथ अपनी अन्य सम्पत्ति भी समर्पित कर दी थी। देहरादून में जो डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का विकास हो सका, उसका प्रधान श्रेय श्री नेगी को ही प्राप्त है।

सन् १९०४ में देहरादून में प्रारम्भ किया गया छोटा-सा विद्यालय सन् १९२२ में एक उच्च स्तरीय इण्टर कॉलिज का रूप प्राप्त कर चुका था। सन् १९४६ में वह डिग्री कॉलिज बन गया और अगले ३५ वर्षों में वह इतना बड़ा हो गया कि आर्ट्स, सायन्स और कामर्स के सब वर्गों के हजारों विद्यार्थी वहाँ स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा प्राप्त करने लगे। इस शिक्षण-संस्था के विकास में प्रिंसिपल लक्ष्मणस्वरूप का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से जिन तीन विद्यार्थियों ने सर्वप्रथम एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी, श्री लक्ष्मणस्वरूप उनमें से एक थे। उन्हें डिप्टी कलक्टर की सरकारी नौकरी प्राप्त हो गयी थी, पर उनकी शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा थी। सरकारी सर्विस से उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और खालसा कॉलिज, अमृतसर में उपाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। कुछ समय वहाँ कार्य कर वह देहरादून चले गये, और वहाँ डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। उनकी लगन तथा उत्साह का ही यह परिणाम था कि सन् १९२२ में डी० ए० वी० स्कूल इण्टर कॉलिज बन गया। आर्यसमाज में श्री लक्ष्मणस्वरूप की सुदृढ़ आस्था थी। उनकी प्रेरणा से डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज के विद्यार्थी और अध्यापक आर्यसमाज के कार्यकलाप में हाथ बँटाते रहते थे और कॉलिज का वातावरण भी वैदिक मान्यताओं के अनुरूप था। सन् १९४६ में डिग्री कॉलिज बन जाने के बाद यह संस्था उन्नति के पथ पर तेजी के साथ अग्रसर होती गयी। कुछ समय पश्चात् उसमें स्नातकोत्तर कक्षाओं की भी पढ़ाई होने लगी और कानून तथा शिक्षाशास्त्र की पढ़ाई का भी प्रारम्भ कर दिया गया। इस समय वहाँ बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०, एम० ए०, एम० एस-सी०, एम० काम० और एल-एल० बी० आदि प्रायः सभी यूनिवर्सिटी डिग्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था है और हजारों विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह गढ़वाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर का सबसे बड़ा कॉलिज है। हिमालय और शिवालिक की पर्वत श्रृंखलाओं के बीच घाटी में स्थित होने के कारण देहरादून की जलवायु अत्यन्त उत्तम तथा स्वास्थ्यप्रद है, और वह क्षेत्र बहुत हरा-भरा तथा रमणीक है। डी० ए० वी० कॉलिज की शिक्षा की उत्कृष्टता तथा देहरादून की स्वास्थ्यप्रद जलवायु से आकृष्ट होकर न केवल भारत के विविध प्रदेशों के ही, अपितु फीजी, सूडान व नाईजिरिया आदि विदेशों से भी बहुत-से विद्यार्थी इस कॉलिज में पढ़ने के लिए आते हैं। उनके निवास के लिए वहाँ समुचित व्यवस्था है, और अनेक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्रावास वहाँ विद्यमान हैं। खेलकूद और व्यायाम की सुविधाएँ भी इस कॉलिज में हैं। इसका पुस्तकालय इतना समृद्ध है कि विविध विषयों में शोध-कार्य के लिए अनेक ग्रन्थ वहाँ से प्राप्त किये जा सकते हैं।

दयानन्द ब्रजेन्द्रस्वरूप कॉलिज, देहरादून—डी० ए० वी० कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण यह उपयोगी समझा गया कि विज्ञान के कतिपय विषयों की विशेष रूप से शिक्षा देने के लिए एक पृथक् कॉलिज की स्थापना कर दी जाय। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत की आर्थिक उन्नति के लिए जो अनेक प्रयत्न किये गये, उनमें भू-गर्भ में विद्यमान खनिज पदार्थों एवं तेल का पता लगाने, उन्हें निकालने तथा उनको प्रयुक्त करने का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पर यह कार्य ऐसे सुशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते थे, जो भू-गर्भ विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए हों। ऐसे व्यक्तियों की कमी को पूरा करने के विशेष प्रयोजन से ही सन् १९६१ में इस कॉलिज की पृथक् रूप से स्थापना की गयी थी। स्नातकोत्तर स्तर तक विज्ञान विषयों, विशेषतः भू-गर्भ विज्ञान की शिक्षा के लिए इस कॉलिज की सर्वत्र ख्याति है। भू-गर्भ विज्ञान की जैसी प्रयोग-शालाएँ एवं संग्रहालय इस कॉलिज में हैं, वैसे सम्भवतः उत्तरप्रदेश में अन्यत्र कहीं नहीं हैं। विज्ञानविषयक ग्रन्थों का उत्तम पुस्तकालय भी कॉलिज में है। इस कॉलिज की प्रयोगशालाओं में १२० विद्यार्थी एक साथ परीक्षण तथा प्रयोग कर सकते हैं।

दयानन्द ट्रेनिंग कॉलिज, देहरादून—इस कॉलिज की स्थापना जुलाई, १९५९ में महिलाओं को अध्यापन-कार्य में प्रशिक्षण देने के प्रयोजन से की गयी थी। इसमें केवल एल० टी० स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है। दूर-दूर के स्थानों से छात्राएँ इसमें अध्ययन के लिए आती हैं। कॉलिज का अपना पुस्तकालय है और खेलकूद की उसमें समुचित व्यवस्था है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, देहरादून—यह देहरादून का सबसे पुराना इण्टर कॉलिज है, और उत्तरप्रदेश के इण्टर स्तर तक के शिक्षणालयों में इसका सम्मानास्पद स्थान है। बालकों के साथ बालिकाएँ भी इसमें शिक्षा प्राप्त करती हैं। विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार के लगभग है, जिनमें १५ प्रतिशत के लगभग छात्राएँ हैं। ५० के लगभग अध्यापक इसमें अध्यापन का कार्य करते हैं। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा ली जाने वाली हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट परीक्षाओं में इस कॉलिज का परीक्षा-परिणाम बहुत उत्तम रहता है। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, प्रेम नगर, देहरादून—देहरादून के समीप प्रेमनगर नाम की एक बस्ती है जिसका विकास भारत विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान से विस्थापित हुए लोगों द्वारा किया गया है। उसके बहुसंख्यक निवासी भी पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थी ही हैं। यह कॉलिज इसी क्षेत्र में स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९४७ में प्रेमनगर के शरणार्थी कैम्प के बच्चों की शिक्षा के लिए जूनियर हाईस्कूल के रूप में हुई थी। डी० ए० वी० कॉलिज, देहरादून के प्रिंसिपल डा० रामनारायण सक्सेना और प्राध्यापक श्री बद्रीनाथ छिब्बर के प्रयत्न से सन् १९५२ में इस संस्था का भार डी० ए० वी० कॉलिज प्रबन्ध समिति उत्तरप्रदेश ने ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप इसका तेजी के साथ विकास होने लगा और कुछ समय पश्चात् इण्टर तक की शिक्षा वहाँ दी जाने लगी। वर्तमान समय में इस कॉलिज में पन्द्रह सौ के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५ शिक्षक उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त हैं। छात्रों के साथ-साथ छात्राएँ भी वहाँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, गणित, इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र और अर्थशास्त्र के अतिरिक्त भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, गृहविज्ञान, प्राणिविज्ञान, कला तथा संगीत शास्त्र की शिक्षा की कॉलिज में समुचित व्यवस्था है। कॉलिज का परिसर पर्याप्त रूप से विशाल है। इसका क्षेत्रफल ५१ बीघे के लगभग है, जिसके कारण विद्यार्थियों को खेलकूद आदि की उपयुक्त सुविधा प्राप्त है। कॉलिज का वातावरण आर्य संस्था के अनुरूप है। प्राय: सभी कार्यक्रम वहाँ यज्ञ से प्रारम्भ किये जाते हैं। वेद मन्त्रों के पाठ की प्रतियोगिताओं तथा धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी इस कॉलिज के परीक्षार्थी भाग लेते हैं। कॉलिज में सैनिक शिक्षा की भी व्यवस्था है।

(२) दयानन्द शिक्षा-संस्थान, उत्तरप्रदेश के प्रमुख उन्नायक

सन् १८९२ में जब उत्तरप्रदेश की डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी (वर्तमान नाम दयानन्द शिक्षा-संस्थान) की स्थापना हुई, तो बाबू लक्ष्मणस्वरूप उसके प्रधान थे। वह सन् १९०८ तक प्रधान पद पर रहे। बाबू लक्ष्मणस्वरूप मेरठ में वकालत करते थे, और डी० ए० वी० सोसायटी का कार्यालय भी पहले मेरठ में ही था। उनके समय में सोसायटी द्वारा एक छोटा-सा विद्यालय मेरठ में खोला गया था, जिसे १९०४ में देहरादून ले जाया गया था। सन् १९०७ में सोसायटी की ओर से कानपुर में एक रात्रि पाठशाला स्थापित की गयी। सन् १९०९ में बाबू लक्ष्मणस्वरूप के स्थान पर श्री निहालसिंह ने सोसायटी का प्रधान पद ग्रहण किया और फिर सन् १९१२ में बाबू ज्योतिस्वरूप ने। इनके काल में डी० ए० वी० आन्दोलन की कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। सन् १९१५ में राय शंकरसहाय को डी० ए० वी० सोसायटी का प्रधान बनाया गया। उनके काल की दो बातें उल्लेखनीय हैं। सन् १९१७ में सोसायटी के कार्यालय को मेरठ से कानपुर स्थानान्तरित कर दिया गया और कानपुर की रात्रि पाठशाला को दिन में लगने वाला सुव्यवस्थित स्कूल बना दिया गया। राय शंकरसहाय सन् १९१९ तक डी० ए० वी० सोसायटी के प्रधान पद पर रहे। रायबहादुर आनन्दस्वरूप ने सन् १९१९ में उनका स्थान ग्रहण कर लिया और वह १२ वर्ष तक इस संस्था को योग्यतापूर्वक संचालित करते रहे। उनके प्रधानत्व में उत्तरप्रदेश में डी० ए० वी० आन्दोलन ने बहुत उन्नति की, और कानपुर के डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना हुई। यथार्थ में बाबू आनन्दस्वरूप ही इस कॉलिज के संस्थापक थे। उन्हें इस शिक्षण-संस्था के प्रति इतना लगाव था कि घर-घर जाकर भिक्षा माँगने में भी उन्हें संकोच नहीं होता था। डी० ए० वी० कॉलिज, कानपुर के लिए जो उपयुक्त भूमि क्रय की जा सकी, वह उन्हीं के पुरुषार्थ का परिणाम था। उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि कोई उन्हें ना नहीं करता था। कानपुर के लोगों को विश्वास था कि बाबू आनन्दस्वरूप को दिया गया दान अच्छे कार्यों में ही लगेगा। जब वह विद्यार्थी ही थे, तभी उन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और वह आर्यसमाज के प्रति आकृष्ट हो गये थे। कानपुर के प्रमुख वकीलों में उनकी गणना की जाती थी और वकालत से उन्हें अवकाश नहीं मिलता था। पर वैदिक धर्म और आर्य-समाज के प्रति उनकी आस्था इतनी दृढ़ थी कि इनके लिए वह समय निकाल ही लेते थे और तन, मन, धन से इनकी सेवा में तत्पर रहते थे। कानपुर के डी० ए० वी० कॉलिज

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुदृढ़ आधार पर खड़ा कर देने में उनका बड़ा कर्तृत्व था।

बाबू आनन्दस्वरूप सन् १९३१ तक डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के प्रधान रहे। उनके पश्चात् डा० ब्रजेन्द्रस्वरूप ने उनका स्थान ग्रहण किया और सन् १९५२ तक उन्होंने उत्तरप्रदेश के डी० ए० वी० आन्दोलन का संचालन किया। बाबू ब्रजेन्द्रस्वरूप श्री आनन्दस्वरूप के छोटे भाई थे और उन्हीं के समान कानपुर के प्रतिष्ठित और सफल वकीलों में उन्हें मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। कानपुर के वकीलों में उनका वही स्थान था, जो इलाहाबाद में सर तेजबहादुर सप्रू का और पटना में डा० सच्चिदानन्द सिन्हा का था। कानून में उनकी असाधारण योग्यता को दृष्टि में रखकर आगरा यूनिवर्सिटी ने उन्हें एल-एल० डी० की मानद उपाधि भी प्रदान की थी। सार्वजनिक जीवन में उनका अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान था। वह चिरकाल तक कानपुर म्युनिसिपैलिटी के सदस्य तथा चेयरमैन रहे थे और कानपूर इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट के प्रधान पद पर रहकर उन्होंने अपने नगर के नियन्त्रित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। सन् १९३७ से १९५७ तक वह उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य रहे थे, जहाँ उनकी योग्यता की धाक जम गयी थी। डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के प्रधान पद पर रहते हुए उन्होंने देहरादून तथा अन्य स्थानों की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की उन्नति के लिए जो कार्य किये उनका अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि उनके काल में कानपुर का डी० ए० वी० कॉलिज उत्तरप्रदेश में उच्च शिक्षा का सबसे बड़ा कॉलिज बन गया था। डॉ० ब्रजेन्द्रस्वरूप इलाहाबाद, अलीगढ़ और आगरा यूनिवर्सिटियों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे और उनकी गणना देश के महान् शिक्षाशास्त्रियों में की जाती थी। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था जो वह डी० ए० वी० कॉलिज कानपुर को एक प्रमुख शिक्षण-संस्था बना सके।

सन् १९५२ में श्री देवेन्द्रस्वरूप डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के प्रधान बने और १९५७ तक इस पद पर रहे। वह डा० ब्रजेन्द्रस्वरूप के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्हीं के समान कानपुर तथा उत्तरप्रदेश के सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। म्युनिसिपल बोर्ड कानपुर के वह सदस्य रहे और उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् के भी सदस्य चुने गये। पेशे से वह भी वकील थे और कानपुर के सुयोग्य वकीलों में उनकी गिनती की जाती थी। पाँच साल तक उन्होंने उत्तरप्रदेश की डी० ए० वी० संस्थाओं का योग्यतापूर्वक संचालन किया।

सन् १९५८ में श्री देवेन्द्रस्वरूप के छोटे भाई श्री वीरेन्द्रस्वरूप डी० ए० वी० कॉलिज सोसायटी के प्रधान बने, और सन् १९८० में अपने आकस्मिक व असामयिक देहावसान तक इस पद पर रहे। उत्तरप्रदेश में डी० ए० वी० कॉलिज आन्दोलन को आगे बढ़ाने में उनका कर्तृत्व विशेष महत्त्व का था। राजनीति, समाजसेवा तथा शिक्षा—तीनों क्षेत्रों में उनकी स्थिति बहुत उच्च थी। वह स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से सन् १९५६ में उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए थे और छह वर्ष की अवधि पूरी हो जाने पर पुनः परिषद् के सदस्य चुने गये थे। यह क्रम सन् १९६२, सन् १९६८ और १९७४ तक जारी रहा और जब तक वह जीवित रहे, विधान परिषद् के सदस्य बने रहे। सार्वजनिक जीवन में उनकी लोकप्रियता का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है? सन् १९६५ में वह परिषद् के उपाध्यक्ष चुने गये और १९६८ में अध्यक्ष। विधान परिषद्

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सदस्य तथा अध्यक्ष की स्थिति में उन्होंने उत्तरप्रदेश के राजनीतिक जीवन में बहुत सम्मानास्पद स्थान प्राप्त कर लिया था और सब कोई उनकी योग्यता का सिक्का मानते थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनकी उच्च स्थिति थी। उत्तरप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। चिरकाल तक वह इस परिषद् के भी अध्यक्ष रहे थे। आगरा यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी समिति के वह सदस्य थे और कानपुर यूनिवर्सिटी की स्थापना तो प्रधानतया उन्हीं के प्रयत्न से हुई थी। उनका स्वभाव अत्यन्त सरल था। दूसरों की सहायता के लिए वह सदा तत्पर रहते थे। सार्वजनिक जीवन में उनकी जो उच्च स्थिति थी, उसका उपयोग उन्होंने डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के विकास के लिए किया। यह उन्हीं के प्रभाव व प्रयत्न का परिणाम था जो दयानन्द शिक्षा-संस्थान को उत्तरप्रदेश के सबसे बड़े शिक्षा-सम्बन्धी संगठन की गौरवपूर्ण स्थिति प्राप्त हो सकी।

डी० ए० वी० कॉलिज की उन्नति और विकास में उसके अनेक प्रधानाचार्यों का कर्तृत्व भी महत्त्व का रहा है। इनमें प्रिंसिपल दीवानचन्द्र और प्रोफेसर कालकाप्रसाद भटनागर के नाम उल्लेखनीय हैं। लाला दीवानचन्द्र इस कॉलिज के प्रथम प्रिंसिपल थे और सन् १९१९ से १९४० तक इस शिक्षण-संस्था का उन्होंने संचालन किया था। लालाजी महात्मा हंसराज के शिष्य थे और उन्होंने अपना जीवन डी० ए० वी० संस्था की उन्नति के लिए अर्पित कर दिया था। पाश्चात्य दर्शन के वह प्रकाण्ड पण्डित थे और प्राचीन भारतीय दर्शनशास्त्रों तथा अन्य धर्मशास्त्रों का उन्हें समुचित ज्ञान था। उत्तरप्रदेश के शिक्षा जगत् में उनकी विद्वत्ता की धाक जम गयी थी। यही कारण है कि इलाहाबाद और आगरा यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी समितियों व सीनेट सदृश सभाओं में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था, और १९४० में वह आगरा यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर नियुक्त हुए थे। डी० ए० वी० कॉलिज को अपने पैरों पर खड़ा करना और उसे एक सुव्यवस्थित शिक्षण-संस्था के रूप में विकसित करना उन्हीं का काम था। इस कॉलिज के लिए धन एकत्र करने में भी उन्होंने अनुपम सफलता प्राप्त की थी। आर्यसमाज की परम्परा के अनुसार वह शिक्षा के लिए सरकारी अनुदान पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे, और आर्य जनता के सहयोग व सहायता से डी० ए० वी० कॉलिज की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

डी० ए० वी० कॉलिज और उसकी सहयोगी उच्च शिक्षा की जो शिक्षण-संस्थाएँ कानपुर में हैं, उन्हें उनके वर्तमान रूप में विकसित करने का प्रधान श्रेय प्रो० कालकाप्रसाद भटनागर को प्राप्त है। सन् १९४० में जब उन्होंने डी० ए० वी० कॉलिज का प्रिंसिपल पद ग्रहण किया था, वहाँ विद्यार्थियों की संख्या ७७२ थी। पर आगरा यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर हो जाने के कारण उन्होंने १९५५ में जब डी० ए० वी० कॉलिज के प्रिंसिपल पद से अवकाश ग्रहण किया, तो उसके विद्यार्थियों की संख्या ५३५६ हो गयी थी। कॉलिज की उन्नति के लिए उनके अनुपम कर्तृत्व को प्रदर्शित करने के लिए यही एक बात पर्याप्त है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रोफेसर भटनागर के कार्यकाल में डी० ए० वी० कॉलिज ने असाधारण उन्नति की और वह उत्तरप्रदेश का सबसे बड़ा कॉलिज बन गया।

प्रोफेसर कालकाप्रसाद भटनागर के बाद प्रो० शारदाप्रसाद सक्सेना (१९५५-५७ और १९५८-६३), डा० हजारीलाल रोहतगी (१९५७-५८), प्रो० चन्द्रदेव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद श्रीवास्तव (१९६३-६५), प्रोफेसर रायस्वरूप माथुर और श्री शीतलचरण श्रीवास्तव ने इस शिक्षण-संस्था का संचालन किया। प्रोफेसर शारदाप्रसाद सक्सेना और डाक्टर हजारीलाल रोहतगी डी० ए० वी० कॉलिज देहरादून के भी प्रिंसिपल रहे और उस संस्था की उन्नति में भी उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्त्व था।

(३) उत्तरप्रदेश की अन्य डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ

दयानन्द शिक्षा-संस्थान (डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी) द्वारा संचालित शिक्षणालयों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ उत्तरप्रदेश में विद्यमान हैं, जिनका प्रवन्ध व संचालन आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश द्वारा गठित विद्यार्यसभा या स्थानीय आर्यसमाजों व समितियों के अधीन है। आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप का विवरण देते हुए इनका भी संक्षिप्त रूप से उल्लेख करना उपयोगी है।

डी० ए० वी० कॉलिज, लखनऊ—इस कॉलिज का संचालन आर्यसमाज गणेशगंज, लखनऊ द्वारा किया जाता है। १८ जून, सन् १९१८ को गणेशगंज आर्यसमाज ने यह निश्चय किया था कि समाज मन्दिर में ही डी० ए० वी० स्कूल की स्थापना कर दी जाये और इस स्कूल के लिए आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य कम-से-कम एक मास की आय प्रदान करे। जुलाई, १९१८ को यह स्कूल खोल दिया गया और पं० विश्वम्भरनाथ काक उसके प्रधानाध्यापक नियुक्त किये गये, जो २५ वर्ष तक इस पद पर रहकर इस संस्था की उन्नति के लिए लगन के साथ प्रयत्न करते रहे। समाज मन्दिर में स्कूल के लिए पर्याप्त स्थान का अभाव था। अतः सन् १९२५ में इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट से तीन बीघा भूमि किराये पर ली गयी और स्कूल के भवनों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया। यही स्कूल निरन्तर उन्नति करता हुआ डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज के रूप में विकसित हो गया और बाद में स्नातक स्तर तथा स्नातकोत्तर स्तर तक की वहाँ पढ़ाई होने लगी। वर्तमान समय में इस डी० ए० वी० कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार के लगभग है, और ८० के लगभग अध्यापक वहाँ अध्यापन के लिए नियुक्त हैं। लखनऊ का डी० ए० वी० स्नातकोत्तर कॉलिज अपने क्षेत्र की उच्च स्तर की शिक्षण-संस्थाओं में प्रतिष्ठित स्थान रखता है।

डी० ए० वी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़—इस शिक्षण-संस्था की स्थापना जुलाई, १९५७ में हुई थी। इसमें स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। विद्यार्थियों और प्राध्यापकों की संख्या क्रमशः दो हजार और साठ के लगभग है। इसका प्रवन्ध आजमगढ़ की स्थानीय विद्यासभा के हाथ में है। यह आर्य विद्यासभा उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा गठित विद्यार्यसभा के साथ सम्बद्ध है और उसके नियन्त्रण में है। महाविद्यालय के पास दो सौ एकड़ भूमि है और सम्पूर्ण भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य १० लाख रुपये के लगभग है। पुस्तकालय में बीस हजार के लगभग पुस्तकें हैं। प्रयत्न किया जाता है कि महाविद्यालय का वातावरण धार्मिक हो। इसीलिए कक्षाओं में पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व वैदिक रीति से सामूहिक प्रार्थना की जाती है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, आजमगढ़—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९२५ में सेठ रामगोपाल द्वारा की गयी थी। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार छठी से बारहवीं कक्षा तक शिक्षा की इसमें व्यवस्था है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग है। धर्मशिक्षा पर वहाँ समुचित ध्यान दिया जाता है। आठवीं कक्षा तक धर्मशिक्षा का भी एक पत्र रहता है और अन्य विषयों के समान इसकी भी परीक्षा ली जाती है। धर्मशिक्षाविषयक साहित्य प्रकाशित कर प्रत्येक छात्र को विना मूल्य प्रदान किया जाता है। महर्षि दयानन्द का निर्वाण दिवस, ऋषि बोधोत्सव, श्रद्धानन्द बलिदान दिवस और लेखराम बलिदान दिवस कॉलिज में मनाये जाते हैं, और उनका प्रारम्भ यज्ञ से होता है। कॉलिज में वेद-प्रचार सप्ताह भी मनाया जाता है। यह शिक्षण-संस्था उत्तरप्रदेश की विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध है।

डी० ए० वी० स्नातकोत्तर कॉलिज, बुलन्दशहर—यह कॉलिज आर्य विद्या सभा बुलन्दशहर द्वारा सन् १९५६ में स्थापित किया गया था। स्नातक स्तर तक इस कॉलिज में आर्ट्स तथा विज्ञान के विषयों की शिक्षा की व्यवस्था है और स्नातकोत्तर स्तर तक हिन्दी, अंग्रेजी, इतिहास और राजनीतिशास्त्र की। आर्ट्स वर्ग के विषयों के विद्यार्थियों की संख्या सवा हजार के लगभग है। कॉलिज की भूमि ४० बीघे है और भूमि-भवन-सम्पत्ति का मूल्य पाँच लाख रुपये से अधिक है। पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व प्रार्थना की कॉलिज में व्यवस्था है, और समय-समय पर प्रसिद्ध आर्य विद्वानों के व्याख्यानों का भी वहाँ आयोजन किया जाता है। बुलन्दशहर की आर्य विद्यासभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश की विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, मुजफ्फरनगर—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९१७ में मुजफ्फरनगर की आर्य विद्यासभा द्वारा की गयी थी। सन् १९१७ से १९४५ तक यह एक हाईस्कूल रहा। १९४६ में वहाँ इण्टर कक्षाओं की पढ़ाई शुरू की गयी और शीघ्र ही वह अपने क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण इण्टर कॉलिज बन गया। इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या दो हजार से भी अधिक है, और सौ के लगभग अध्यापक वहाँ शिक्षण-कार्य में रत हैं। धर्मशिक्षा की इस संस्था में व्यवस्था नहीं है। आर्य विद्यासभा मुजफ्फरनगर भी उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध है।

डी० ए० वी० स्नातकोत्तर कॉलिज, मुजफ्फरनगर—इस कॉलिज की व्यवस्था व संचालन आर्य विद्यासभा मुजफ्फरनगर के अधीन है। बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०, एल-एल० बी०, एम० ए० और एम० एस-सी०—इन सब परीक्षाओं के लिए मेरठ यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई की इस कॉलिज में व्यवस्था है। अपने क्षेत्र का यह प्रमुख कॉलिज है। इसमें विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग है। कॉलिज का परिसर ५६ बीघे का है और उसकी भू-भवन-सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य ४० लाख रुपये के लगभग है। सन् १९५० में इस कॉलिज में स्नातक स्तर तक की पढ़ाई प्रारम्भ हुई थी, और १९५७ में स्नातकोत्तर स्तर की। कॉलिज में धर्मशिक्षा की व्यवस्था नहीं है, पर समय-समय पर विद्वानों के व्याख्यानों का आयोजन कर विद्यार्थियों को आर्यसमाज के मन्तव्यों से परिचित कराने का यत्न अवश्य किया जाता है। पुस्तकालय में तीस हजार के लगभग पुस्तकें हैं।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, ऊन (मुजफ्फरनगर)—यह स्कूल सन् १९६३ में श्री जयभगवान गुप्त द्वारा स्थापित किया गया था। इसका प्रबन्ध उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य सभा के नियन्त्रण में है। स्कूल के पास ४५ बीघा भूमि है और शिक्षा के लिए आवश्यक सब भवन उस पर विद्यमान हैं। माध्यमिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम की पढ़ाई के साथ-साथ प्रत्येक कक्षा में प्रति सप्ताह एक घंटा धर्मशिक्षा की भी पढ़ाई होती है। प्रत्येक बृहस्पतिवार को कक्षा वार छात्राओं एवं अध्यापिकाओं द्वारा यज्ञ किया जाता है, और प्रतिदिन कक्षाओं में पढ़ाई शुरू होने से पूर्व सामूहिक रूप से प्रार्थना भी की जाती है। इसके बाद अध्यापक किसी धार्मिक विषय पर प्रवचन भी करते हैं।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, आर्यपुर खेड़ा (मैनपुरी)—लाला रंग प्रसाद द्वारा इस स्कूल की स्थापना ८ जुलाई, १९४९ के दिन की गयी थी। इसका प्रबन्ध भी उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य सभा के नियन्त्रण में है। धर्मशिक्षा की पढ़ाई की नियमित रूप से व्यवस्था तो स्कूल में नहीं है, पर शीत ऋतु में मैनपुरी आर्य-समाज की ओर से विद्यार्थियों को वैदिक धर्म से परिचय कराने के लिए उपदेशक भेजे जाते हैं।

कें० एल० डी० ए० वी० कॉलिज, रुड़की (सहारनपुर)—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९६० में हुई थी। इसमें बी० एड० और बी० एस-सी० तक की पढ़ाई होती है। विद्यार्थियों की संख्या ४०० के लगभग है, और इसका प्रबन्ध एक स्थानीय समिति के अधीन है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, वाराणसी—श्री गौरीशंकर प्रसाद एडवोकेट द्वारा इस कॉलिज की स्थापना सन् १९१२ में की गयी थी। वाराणसी की शिक्षण-संस्थाओं में इसका प्रतिष्ठित स्थान है। विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग है। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित सभी वर्गों के प्रायः सभी विषयों की शिक्षा की व्यवस्था इस कॉलिज में है। पुस्तकालय में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित प्रायः सभी ग्रन्थ विद्यमान हैं, पर धर्मशिक्षा की कॉलिज में कोई व्यवस्था नहीं है। इस कॉलिज का प्रबन्ध भी विद्यार्य सभा, उत्तरप्रदेश के नियन्त्रण में है।

दयानन्द महाविद्यालय डिग्री कॉलिज, वाराणसी—श्री गौरीशंकर प्रसाद द्वारा स्थापित इण्टर कॉलिज में ही जुलाई, १९३८ में डिग्री स्तर की शिक्षा का प्रारम्भ कर दिया गया था। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, दर्शनशास्त्र आदि आर्ट्स वर्ग के विषयों की बी० ए० स्तर तक की शिक्षा की इस कॉलिज में व्यवस्था है। धर्मशिक्षा का नियमित रूप से कॉलिज में कोई प्रबन्ध नहीं है, पर ऋषिबोधोत्सव और श्रद्धानन्द बलिदान दिवस वहाँ मनाये जाते हैं।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, गोवर्धन (मथुरा)—इस कॉलिज की स्थापना जुलाई, सन् १९५८ में हुई थी और माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार यहाँ छठी से बारहवीं कक्षा तक शिक्षा की व्यवस्था है। पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व प्रतिदिन यज्ञ होता है और एक घंटा धर्मशिक्षा के लिए नियत है। छात्रों से विधिवत् धर्मशिक्षा विषय की परीक्षा भी ली जाती है। वेद सप्ताह भी प्रतिवर्ष मनाया जाता है। कॉलिज के पुस्तकालय में वैदिक साहित्य पर्याप्त मात्रा में है। विद्यार्थियों की संख्या ५०० से ऊपर है।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, बाराबंकी—आर्यसमाज बाराबंकी द्वारा इस स्कूल की स्थापना सन् १९४६ में की गयी थी। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार छठी से दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस स्कूल में है। पर इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों के लिए धर्मशिक्षा का भी एक घंटा नियत है। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश द्वारा धर्मशिक्षा की जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, विद्यार्थी उनमें भी सम्मिलित होते हैं। विद्यार्थियों की संख्या ५०० के लगभग है। पढ़ाई से पूर्व सामूहिक प्रार्थना भी होती है जिसके बाद व्यायाम भी कराया जाता है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, गोरखपुर—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९२९ में श्री उमाशंकर द्वारा की गयी थी। छठी से बारहवीं कक्षा तक इस कॉलिज में पढ़ाई की व्यवस्था है। अपने क्षेत्र के इण्टर कॉलिजों में इसे उच्च स्थान प्राप्त है। विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार से अधिक है, और ९० के लगभग शिक्षक वहाँ अध्यापन-कार्य के लिए नियुक्त हैं। पुस्तकालय अच्छा समृद्ध है और उसमें वैदिक धर्मविषयक पुस्तकों की भी पर्याप्त संख्या है। कॉलिज में धर्मशिक्षा की व्यवस्था नहीं है, पर पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व वेदमन्त्रों से सामूहिक प्रार्थना की जाती है। ऋषि बोधोत्सव और महर्षि निर्वाण-दिवस आदि आर्य पर्व भी कॉलिज में मनाये जाते हैं।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, बलरामपुर (गोण्डा)—श्री सुन्दरलाल अग्निहोत्री द्वारा सन् १९४१ में इस कॉलिज की स्थापना की गयी थी। छठी से बारहवीं कक्षा तक की इसमें पढ़ाई होती है। विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग है। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ धर्मशिक्षा की भी इस कॉलिज में व्यवस्था है। आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित धर्मशिक्षा परीक्षाओं में विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं और ऋषिबोधोत्सव और श्रद्धानन्द बलिदान दिवस जैसे आर्य पर्व भी कॉलिज में मनाये जाते हैं। यज्ञ-हवन की भी वहाँ व्यवस्था है। कॉलिज के पुस्तकालय में आर्य साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित सभी ग्रन्थ वहाँ हैं।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, गाजीपुर—इस कॉलिज की स्थापना सन् १९१२ में हुई थी। छठी से बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई की इसमें व्यवस्था है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त धर्मशिक्षा का भी वहाँ प्रबन्ध है, और समय-समय पर यज्ञ भी किये जाते हैं। वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक परीक्षाओं में एक प्रश्न पत्र धर्मशिक्षा का भी होता है। ऋषि-बोधोत्सव जैसे आर्य पर्व भी कॉलिज में मनाये जाते हैं।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, अलीगंज (एटा)—अलीगंज आर्यसमाज द्वारा यह कॉलिज सन् १९५० में स्थापित किया गया था। छठी से बारहवीं कक्षा तक की सामान्य शिक्षा की इस कॉलिज में व्यवस्था है। पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व सामूहिक प्रार्थना की जाती है, जिसके पश्चात् प्रार्थना स्थल पर ही धार्मिक व नैतिक शिक्षा के लिए प्रवचन किये जाते हैं। ऋषिबोधोत्सव, श्रावणी, जन्माष्टमी आदि पर्व भी कॉलिज की ओर से मनाये जाते हैं।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, इलाहाबाद—माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर-प्रदेश द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इस कॉलिज में शिक्षा की व्यवस्था है। धर्म-शिक्षा नियमित रूप से वहाँ नहीं दी जाती, पर समय-समय पर धार्मिक विषयों पर प्रवचनों का आयोजन होता रहता है। शनिवार को यज्ञ भी किया जाता है। पुस्तकालय में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थ विद्यमान हैं।

दयानन्द वैदिक कॉलिज, उरई (जालौन)—श्री मूलचन्द अग्रवाल द्वारा सन् १९५१ में इस कॉलिज की स्थापना की गयी थी। बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० एड०,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम० ए० और एम० एस-सी० के लिए यह कॉलिज कानपुर यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है। कॉलिज का परिसर ५० वीघे से भी अधिक है। इसमें विज्ञान-विषयों के लिए १२ प्रयोगशालाएँ हैं और पुस्तकालय, वाचनालय आदि के लिए उपयुक्त सब भवन विद्यमान हैं। इसमें विद्यार्थियों की संख्या दो हजार के लगभग है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, आगरा—यह कॉलिज आर्यसमाज हींग की मण्डी, आगरा द्वारा संचालित है। इसकी स्थापना सन् १९१७ में वावू नाथमल के प्रयत्न से हुई थी, और शुरू में आर्यसमाज मन्दिर में ही इसकी कक्षाएँ लगा करती थीं। कुछ समय वाद इसका अपना भवन हो गया और शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के कारण इसमें विद्यार्थियों की संख्या तेजी के साथ वढ़ने लगी। इस समय इसकी गिनती आगरा के श्रेष्ठ इण्टर कॉलिजों में की जाती है, और इसकी व्यवस्था अत्यन्त सराहनीय है। कॉलिज में विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा भी नियमित रूप से दी जाती है।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, कुंडौल (आगरा)—इस स्कूल की स्थापना जुलाई, १९६० में श्री रंजीतसिंह आर्य द्वारा की गयी थी। सुविस्तृत भूमिखण्ड (१०० वीघे के लगभग) पर यह स्कूल स्थित है और इसमें सभी स्कूली विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था हैं। धर्मशिक्षा नियमित रूप से दी जाती है और आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित धर्मशिक्षा परीक्षाओं में विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।

डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, धिमिश्री (आगरा)—यह शिक्षणालय जुलाई, १९४९ में स्थापित हुआ था। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के साथ-साथ इस स्कूल में धर्मशिक्षा की भी प्रतिदिन एक घंटा पढ़ाई होती है। धर्मशिक्षा में उन्हीं पुस्तकों का प्रयोग किया जाता है जो आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्दिष्ट हों। शनिवार को यज्ञ भी होता है।

डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, फिरोजाबाद—आगरा जिले का यह एक श्रेष्ठ कॉलिज है, जिसकी स्थापना सन् १९४३ में आर्यसमाज फिरोजावाद तथा श्रीमद्दयानन्द विद्यालय फिरोजावाद ट्रस्ट द्वारा की गयी थी। इसके पुस्तकालय में वैदिक साहित्य तथा आर्यसमाजविषयक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। कॉलिज में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है। पर्वों पर यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है। आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित धर्मशिक्षा की परीक्षाएँ विद्यार्थियों से दिलायी जाती हैं, और समय-समय पर आर्य विद्वानों के प्रवचन कराये जाते हैं।

ऊपर जिन शिक्षण-संस्थाओं का उल्लेख किया गया है उनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल एवं इण्टर कॉलिज वर्तमान समय में उत्तरप्रदेश में विद्यमान हैं—डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, प्रतापगढ़; डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, विंदगी (फतेहपुर); डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, रजलामई (फर्रुखावाद); डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, मेहदावल (वस्ती); डी० ए० वी० स्कूल, अधार (मैनपुरी); डी० ए० वी० कन्या विद्यालय, बिलासपुर (रामपुर); डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, पौढ़ी (गढवाल); डी० ए० वी० इण्टर, कॉलिज फैजाबाद; डी० ए० वी० इण्टर कॉलिज, कर्णपुर (देहरादून); डी० ए० वी० स्कूल, सरोऊ (एटा); डी० ए० वी० स्कूल, गोण्डा; डी० ए० वी० स्कूल, आर्यनगर रेवाड़ी (गोण्डा); डी० ए० वी० स्कूल, वाँदा; डी० ए० वी० विद्यालय, शामली (मुजफ्फरनगर); डी० ए० वी० आदर्श

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठशाला, नकुड़ (सहारनपुर) और डी० ए० वी० कृषि विद्यालय, लखान, (मुजफ्फरनगर)।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश, स्थानीय आर्यसमाजों तथा स्थानीय विद्या-सभाओं द्वारा संचालित इतनी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता यह सूचित करने के लिए पर्याप्त है कि डी० ए० वी० कॉलिज आन्दोलन ने उत्तरप्रदेश को कितना प्रभावित किया था। उत्तरप्रदेश में कितनी ही ऐसी आर्य शिक्षण-संस्थाएँ हैं जिनके साथ दयानन्द एवं आर्य जैसे नामों व विशेषणों का प्रयोग हुआ है। इनमें और डी० ए० वी० संस्थाओं में कोई मौलिक भेद नहीं है। पंजाब में आर्यसमाज जिस प्रकार दो दलों या वर्गों में विभक्त हो गया था, वैसा उत्तरप्रदेश एवं अन्यत्र नहीं हुआ। यही कारण है कि जो आर्य प्रतिनिधि सभा कतिपय गुरुकुलों का संचालन करती है उसी द्वारा अनेक डी० ए० वी० संस्थाओं तथा अन्य दयानन्द व आर्य स्कूलों तथा कॉलिजों का भी संचालन किया जाता है।

(४) महाराष्ट्र की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ

शोलापुर (महाराष्ट्र) में चार डी० ए० वी० कॉलिज विद्यमान हैं, जिनका संचालन दयानन्द एंग्लो-वैदिक ट्रस्ट एवं सोसायटी, चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली के अधीन है। इनके अतिरिक्त दो अन्य डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ नागपुर में हैं। शोलापुर के कॉलिजों का महाराष्ट्र के शिक्षा जगत् में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दामिनी भेरुरत्न फतेहचन्द्र दयानन्द कॉलिज ऑफ् आर्ट्स एण्ड सायन्स, शोलापुर—हैदराबाद की निजामशाही के शासन के अत्याचारों तथा उत्पीड़न के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा जो संघर्ष किया गया था, उसमें विजय-प्राप्ति के स्मारक के रूप में सन् १९४० में इस कॉलिज की स्थापना की गयी थी। यह शिवाजी यूनिवर्सिटी, कोल्हापुर के साथ सम्बद्ध है और स्नातक स्तर तक आर्ट्स तथा सायन्स विषयों की शिक्षा की इसमें व्यवस्था है। कॉलिज का परिसर दयानन्द नगर के नाम से प्रसिद्ध है। इसका क्षेत्रफल ३१५ बीघे के लगभग है, और इसमें महाविद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय आदि सबके भवन बने हुए हैं। सन् १९८१ में इस कॉलिज में विद्यार्थियों की संख्या बाईस सौ थी, जिनमें से ३५१ छात्रावास में रह रहे थे। अध्यापन-कार्य के लिए ११० प्राध्यापक नियुक्त थे और गैर-शिक्षक कर्मचारियों की संख्या ७० थी। कोल्हापुर क्षेत्र की शिक्षण-संस्थाओं में इस कॉलिज का विशिष्ट स्थान है। इसका परीक्षा परिणाम सदैव अच्छा होता रहा है। इसका कारण यह है कि प्रारम्भ से ही इसे ऐसे प्राध्यापक प्राप्त होते रहे हैं जो लगन तथा त्याग भावना से अध्यापन करना अपना कर्तव्य समझते हैं। कॉलिज के पुस्तकालय में अस्सी हजार के लगभग पुस्तकें हैं, और उत्कृष्ट ग्रन्थों के संग्रह के लिए इस संस्था में प्रचुर धनराशि खर्च की जाती है। खेलकूद तथा व्यायाम आदि की भी समुचित व्यवस्था इस कॉलिज में है, और इसके विद्यार्थी विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त करके अपने कॉलिज का नाम उज्ज्वल करते हैं। कॉलिज में आर्य युवक समाज भी विद्यमान है जिसके माध्यम से विद्यार्थी वैदिक धर्म के मन्तव्यों की जानकारी प्राप्त करने तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप में भाग लेने के अवसर प्राप्त करते हैं। धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी कॉलिज के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दामिनी प्रेमरत्न भेरुरत्न दयानन्द कॉलिज ऑफ् एजुकेशन, शोलापुर—इस कॉलिज की स्थापना जून, १९५५ में की गयी थी। इसमें स्नातक स्तर (वी० एड०) तथा स्नातकोत्तर स्तर (एम० एड०) तक शिक्षाविज्ञान विषय के अध्यापन की व्यवस्था है। इस कॉलिज में शिक्षा का स्तर कितना ऊँचा है, यह प्रदर्शित करने के लिए यही बात पर्याप्त है कि इसके जो १४१ विद्यार्थी सन् १९८१ की बी० एड० परीक्षा में बैठे वे सब के सब उत्तीर्ण हो गये, और उनमें से ५७ ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी। इसी प्रकार एम० एड० के १४ परीक्षार्थियों में से केवल एक अनुत्तीर्ण हुआ था। शिक्षा की उत्कृष्टता का ही यह परिणाम है कि न केवल शोलापुर जिले के, अपितु उस्मानाबाद, बीजापुर, गुलमर्गा और गोंटूर आदि अन्य जिलों के विद्यार्थी भी इस कॉलिज में पढ़ने के लिए आते हैं। खेलकूद आदि की भी इस कॉलिज में समुचित व्यवस्था है।

दामिनी गोपाबाई भेरुरत्न दयानन्द ईवनिंग लॉ कॉलिज, शोलापुर—यह कॉलिज सन् १९६५ में स्थापित हुआ था और कानून की शिक्षा के लिए यह अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान रखता है। इसमें स्नातक स्तर (एल-एल० बी०) तक कानून की शिक्षा दी जाती है। सन् १९८१ में इस कॉलिज में ३५८ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। कॉलिज के पास छात्रावास भी है और उसके पुस्तकालय में कानूनविषयक पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

डी० ए० वेलंकर कॉलिज ऑफ कामर्स, शोलापुर—इस कॉलिज की स्थापना १९५८ में हुई थी। वाणिज्य विषय का अपने क्षेत्र का यह सबसे बड़ा कॉलिज है, और इसमें स्नातक स्तर (बी० कॉम०) तथा स्नातकोत्तर (एम० कॉम०) स्तर तक कॉमर्स विषय की शिक्षा की व्यवस्था है। सन् १९८१ में इस कॉलिज में १४५६ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और २१ शिक्षक उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त थे। १५ गैर-शिक्षक कर्मचारी भी कॉलिज की सेवा में थे। कॉलिज के पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या १२ हजार के लगभग है। खेलकूद, व्यायाम, एन० सी० सी० आदि की समुचित व्यवस्था कॉलिज में है, और शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के कारण परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा रहता है। एक छात्रावास भी कॉलिज में है, जिसमें सन् १९८१ में ९४ विद्यार्थी निवास कर रहे थे।

चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली की डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी द्वारा संचालित इन चार कॉलिजों के कारण शोलापुर डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है जैसा कि पहले लाहौर था, और अब अजमेर, दिल्ली, कानपुर तथा जालन्धर हैं। महाराष्ट्र के शिक्षित वर्ग में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में शोलापुर के इन कॉलिजों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

महाराष्ट्र राज्य के नागपुर नगर में डी० ए० वी० प्राथमिक शाला और डी० ए० वी० कॉलिज के नाम से दो अन्य शिक्षण-संस्थाएँ चल रही हैं, जिन्हें डी० ए० वी० आन्दोलन का परिणाम कहा जा सकता है। इनकी स्थापना अक्तूबर, १९४० में हुई थी। वहाँ पहले जो डी० ए० वी० हाईस्कूल स्थापित हुआ था, वह देर तक नहीं चल सका। सन् १९६६ में वह बन्द हो गया, पर डी० ए० वी० प्राथमिक शाला अब भी विद्यमान है और उसमें पाँचवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) राजस्थान की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ

राजस्थान राज्य में अजमेर नगर डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व महान् केन्द्र है। इनका संचालन अजमेर आर्यसमाज के अन्तर्गत व उस द्वारा गठित 'आर्यसमाज शिक्षा सभा' के अधीन है। अजमेर आर्यसमाज की सब शिक्षण-संस्थाओं, जिनकी संख्या ११ है, की व्यवस्था इसी सभा द्वारा की जाती है। इसमें मुख्य दयानन्द कॉलिज है, जिसे लघु यूनिवर्सिटी कहा जा सकता है। अजमेर की डी० ए० वी० संस्थायें निम्नलिखित हैं—

दयानन्द कॉलिज—सन् १८८३ में महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान के पश्चात् जब पंजाब और संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) आदि के आर्यजन महर्षि के स्मारक के रूप में शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की योजना बना रहे थे, परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा भी एक स्कूल खोलने का निश्चय किया गया। इस निश्चय के अनुसार १० फरवरी, १८८८ को अजमेर में डी० ए० ए० वी० स्कूल (दयानन्द आश्रम एंग्लो-वैदिक स्कूल) की स्थापना की गयी। सन् १८९५ में इसे मिडल स्कूल बना दिया गया और सन् १९०६ में हाई स्कूल। अजमेर आर्यसमाज की स्थापना १८८१ में हुई थी। सन् १९३१ में इस समाज को स्थापित हुए आधी शताब्दी हो चुकी थी, अतः उसके कुछ समय पश्चात् जब १९३३ में अजमेर आर्यसमाज की स्वर्ण जयन्ती मनायी गयी तो उस अवसर पर पण्डित जियालाल ने अकस्मात् ही सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दी कि डी० ए० वी० स्कूल की स्वर्ण जयन्ती सन् १९३८ में मनायी जायेगी और उस अवसर पर डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना कर दी जायेगी। पण्डित जियालाल अजमेर आर्यसमाज के कर्णधार व सर्वमान्य नेता थे। उन्होंने सार्वजनिक रूप से जो घोषणा की थी, उसे क्रियान्वित करना आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं व सदस्यों ने अपना कर्तव्य समझा और उसके लिए एक समिति का गठन किया गया जिसके प्रधान श्री मिठ्ठनलाल भार्गव तथा मन्त्री पण्डित जियालाल थे। श्री दत्तात्रेय वाब्ले को इस समिति का संयुक्त मन्त्री नियुक्त किया गया था। यह समिति कॉलिज की स्थापना के लिए धन एकत्र करने तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ करने में जी जान से प्रयत्न करती रही। विचार तो यह था कि सन् १९३८ में डी० ए० वी० स्कूल की स्वर्ण जयन्ती मनायी जाय और उसी अवसर पर कॉलिज की स्थापना कर दी जाय, पर १९३८ में निजामशाही के अत्याचारों के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा जो सत्याग्रह किया जा रहा था उसमें पण्डित जियालाल के नेतृत्व में अजमेर आर्यसमाज भी उत्साहपूर्वक भाग ले रहा था। इस दशा में १९३८ में डी० ए० वी० स्कूल की स्वर्ण जयन्ती नहीं मनायी जा सकी और कॉलिज की स्थापना का विचार भी स्थगित करना पड़ गया। हैदराबाद सत्याग्रह की समाप्ति के बाद सन् १९४१ में स्वर्ण जयन्ती और कॉलिज की स्थापना—दोनों का समारोह के साथ आयोजन किया गया। पण्डित जियालाल के अनथक परिश्रम से कॉलिज के लिए ३०० बीघा भूमि प्राप्त की गयी और श्री दत्तात्रेय वाब्ले के प्रयत्न से राजस्थान सरकार ने कॉलिज को ५ लाख रुपये अनुदान देना स्वीकार किया। कॉलिज भवन का शिलान्यास स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज द्वारा किया गया, और इस प्रकार अजमेर में उस महान् शिक्षण-संस्था की स्थापना हुई जिसमें आज हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और जो राजस्थान में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। सन् १९४५ में श्री दत्तात्रेय वाब्ले को कॉलिज का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया। श्री वाब्ले अजमेर के प्रतिष्ठित वकील थे और वकालत से उन्हें अच्छी आमदनी थी। पर पण्डित जियालाल के अनुरोध पर उन्होंने वकालत छोड़कर कॉलिज का कार्यभार सँभालना स्वीकार कर लिया। आर्यसमाज के प्रति अगाध आस्था के कारण ही श्री वाब्ले ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने तथा पण्डित जियालाल के सपनों को साकार करने के प्रयत्न में अपनी शक्ति लगा देने का निश्चय किया था। सन् १९४५ से सन् १९७२ तक श्री वाब्ले दयानन्द कॉलिज, अजमेर के प्रिंसिपल के पद पर रहे और इस अवधि में उन्होंने इस छोटे-से इण्टर कॉलिज को एक महान् स्नातकोत्तर कॉलिज की स्थिति तक पहुँचा दिया। कॉलिज के जो विशाल भवन हैं, वे प्रायः उन्हीं के अनुपम पुरुषार्थ के परिणाम हैं। सन् १९५१ में इस संस्था में आर्ट्स तथा कामर्स के विषयों की स्नातक स्तर की कक्षाएँ खोली गयीं और बी० ए० तथा बी० कॉम० की परीक्षाओं के लिए इसे मान्यता प्राप्त हो गयी। केवल सात वर्ष बाद सन् १९५८ में राजनीतिशास्त्र और इतिहास में एम० ए० तथा कामर्स में एम० काम० कक्षाएँ खोलने की स्वीकृति राजस्थान यूनिवर्सिटी द्वारा दयानन्द कॉलिज को प्रदान कर दी गयी। सन् १९५९ में समाजशास्त्र, सन् १९६० में भूगोल, सन् १९६४ में चित्रकला और सन् १९६७ में हिन्दी और संस्कृत की एम० ए० की कक्षाएँ खोली गयीं, और सन् १९७० में कानून विषय में एल-एल० बी० की कक्षाएँ प्रारम्भ की गयीं। वर्तमान समय में इस कॉलिज में एक दर्जन से भी अधिक विषयों में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई की व्यवस्था है। आर्ट्स, सायन्स तथा वाणिज्य वर्गों के प्रायः सभी मुख्य विषय वहाँ स्नातक स्तर तक पढ़ाये जाते हैं। विद्यार्थियों की संख्या चार हजार के लगभग हैं, और १०० से अधिक शिक्षक वहाँ अध्यापन-कार्य में रत हैं। आर्ट्स, सायन्स, कामर्स, कृषि, कानून और शिक्षक-प्रशिक्षण सबकी फैकल्टियाँ वहाँ विद्यमान हैं। इन सबके लिए उपयुक्त भवन भी वहाँ हैं। कॉलिज का पुस्तकालय भी बहुत विशाल है, जिसमें एक लाख से भी अधिक पुस्तकें हैं। राजस्थान में इतना बड़ा पुस्तकालय किसी अन्य कॉलिज में नहीं है। क्योंकि कॉलिज में स्नातक स्तर तक की कृषि की शिक्षा की भी व्यवस्था है, अतः कृषि फार्म तथा गौशाला भी वहाँ हैं। गौशाला में बढ़िया नस्ल की दो सौ के लगभग गायें और भैंसें हैं। दयानन्द कॉलिज, अजमेर का जो यह असाधारण विकास हुआ है, उसका प्रधान श्रेय श्री दत्तात्रेय बाब्ले को ही प्राप्त है। उसके लिए धन एकत्र करने, और सरकार तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्राप्त करने में उन्होंने जो श्रम किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। पर दयानन्द कॉलिज की उन्नति में उनका योगदान केवल आर्थिक साधन जुटाने के रूप में ही नहीं है, सुव्यवस्थित रूप से उसका संचालन करने, शिक्षा के स्तर को उन्नत करने, विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को अनुशासन में रखने और जनता में उसके प्रति उत्साह पैदा करने में भी उनका कर्तृत्त्व महत्त्व का था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अजमेर की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के विकास में उनका प्रायः उसी ढंग का कर्तृत्त्व है जैसा कि लाहौर के डी० ए० वी० कॉलिज के लिए महात्मा हंसराज का था। सन् १९७२ में उन्होंने इस कॉलिज के प्रिंसिपल पद से अवकाश ग्रहण कर लिया, पर इससे दयानन्द कॉलिज के साथ उनके सम्बन्ध का अन्त नहीं हो गया। आर्यसमाज शिक्षा सभा के प्रधान की स्थिति से अब तक वह इन शिक्षण-संस्थाओं की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति और विस्तार के लिए प्रयत्नशील हैं। उनका स्वप्न तो यह है कि अजमेर में एक दयानन्द यूनिवर्सिटी की स्थापना कर दी जाये और वहाँ की सब डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं को इसके अन्तर्गत कर दिया जाये। इसके लिए वह गम्भीर रूप से प्रयत्न करने में संलग्न हैं। दयानन्द कॉलिज के प्रिंसिपल पद पर श्री दत्तात्रेय वाव्ले के बाद उनके छोटे भाई श्री कृष्णराव वाव्ले नियुक्त हुए थे। वह शुरू से ही इस कॉलिज के साथ सम्बद्ध थे और उसके विकास में उनका कर्तृत्व भी सराहनीय था।

जियालाल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, अजमेर—सन् १९६१ में पण्डित जियालाल के देहावसान के बाद उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए सन् १९६३ में इस शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गयी थी। इसका मुख्य उद्देश्य स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर तक विद्यार्थियों को अध्यापन-कार्य में प्रशिक्षित करना है। राजस्थान में इस प्रकार के संस्थान का अभाव सुदीर्घ समय से अनुभव किया जा रहा था। अतः इसका जनता ने हार्दिक स्वागत किया। सन् १९६४ में राजस्थान के तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने संस्थान का शिलान्यास किया और एक वर्ष पश्चात् राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द द्वारा इसका औपचारिक रूप से उद्घाटन किया गया। १९६३ में इसमें बी० एड० की कक्षाएँ खोली गयी थीं। कुछ वर्ष बाद में यहाँ एम० एड० की कक्षाएँ भी प्रारम्भ कर दी गयीं।

दयानन्द हायर सेकेण्डरी स्कूल, अजमेर— यह राजस्थान की सबसे पुरानी आर्य शिक्षण-संस्था है। इसकी स्थापना १८८८ में महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में की गयी थी। सन् १८८८ में केवल ११ विद्यार्थियों से जिस पाठशाला का प्रारम्भ किया गया था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, वही १८९५ में मिडल स्कूल तथा १९०६ में हाईस्कूल स्तर तक विकसित हो गयी, और दयानन्द कॉलिज की स्थापना के बाद दयानन्द हायर सैकेण्डरी स्कूल के नाम से उसका पृथक् रूप से विकास होने लगा। इस स्कूल की उन्नति का प्रधान श्रेय पण्डित मिठ्ठनलाल भार्गव को है। सन् १९०० से १९५६ तक वह निरन्तर इसका योग्यता पूर्वक संचालन करते रहे। उन्हीं के अनथक परिश्रम का यह परिणाम है कि स्कूल की गिनती राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ शिक्षणालयों में की जाती है।

विरजानन्द हायर सैकेण्डरी स्कूल, अजमेर—इस स्कूल की स्थापना सन् १९४३ में मिडल स्कूल के रूप में की गयी थी। १९६० में इसने हायर सैकेण्डरी स्कूल की स्थिति प्राप्त कर ली। आर्ट्स, सायन्स तथा कामर्स के तीनों वर्गों में हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा की इस स्कूल में व्यवस्था है।

जियालाल आर्य कन्या सैकेण्डरी स्कूल, केसरगंज, अजमेर—पण्डित जियालाल की पुण्य स्मृति में इस स्कूल की स्थापना सन् १९६२ में की गयी थी। प्रारम्भ में इसमें केवल प्रारम्भिक शिक्षा की कक्षाएँ खोली गयी थीं। सन् १९६७ में इसे सैकेण्डरी स्तर तक की मान्यता प्राप्त हो गयी और इसकी तेजी के साथ उन्नति होने लगी। अजमेर में बालिकाओं की शिक्षा के लिए यह एक सफल शिक्षणालय है।

डी० ए० वी० सैकेण्डरी स्कूल, बाबू मुहल्ला, अजमेर—इस स्कूल में प्राइमरी से लेकर सैकेण्डरी स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है।

विरजानन्द प्राथमिक विद्यालय, अजमेर—स्वामी विरजानन्द सरस्वती के नाम पर स्थापित इस विद्यालय में केवल प्राइमरी कक्षाओं की पढ़ाई होती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द बालनिकेतन, अजमेर—इस संस्था की स्थापना सन् १६६५ में इस उद्देश्य से की गयी थी कि साफ सुथरी परिस्थितियों और सांस्कृतिक वातावरण में सम्भ्रान्त एवं उच्च मध्य वर्ग के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। इसमें अंग्रेजी भाषा की शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाता है और पढ़ाई के लिए भी मुख्य रूप से अंग्रेजी माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती है। जिस आधुनिक प्रवृत्ति के कारण से आजकल अनेक मॉडल व पब्लिक स्कूल खोले जा रहे हैं, उसी से इस संस्था का भी प्रारम्भ हुआ है। अजमेर में यह शिक्षणालय विशेष लोकप्रिय है। यद्यपि अभी उसमें केवल प्राइमरी स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है फिर भी उसमें विद्यार्थियों की संख्या ४०० से ऊपर हो गयी है। योजना यह है कि हायर सैकेण्डरी स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था इस संस्था में कर दी जाय।

अजमेर आर्यसमाज की शिक्षा सभा द्वारा जो ये विविध शिक्षण-संस्थाएँ चलायी जा रही हैं, उनमें धर्म की शिक्षा के लिए भी समुचित प्रयत्न किया गया है। आर्यसमाज शिक्षा सभा की ओर से सब कक्षाओं के लिए धर्मशिक्षा की पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं, जिनका इनमें प्रयोग किया जाता है। धर्मशिक्षा सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है और उनमें परीक्षाएँ भी ली जाती हैं।

आर्यसमाज शिक्षा सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में संचालित शिक्षण-संस्थाओं के विद्यार्थियों की संख्या आठ हजार से भी अधिक है, और उनमें ५०० के लगभग शिक्षक व अन्य कर्मचारी काम कर रहे हैं। इन सब संस्थाओं का वार्षिक बजट ५० लाख से भी अधिक है। अजमेर में आर्यसमाज द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले कार्य का इससे कुछ आभास प्राप्त किया जा सकता है।

दयानन्द शोधपीठ—वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रचार प्रसार के लिए भी अजमेर की शिक्षा सभा प्रयत्नशील है। इसीलिए आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी के अवसर पर एक महत्त्वपूर्ण निर्णय यह किया गया था कि दयानन्द कॉलिज में एक दयानन्द चेयर (शोधपीठ) की स्थापना की जाये। इस पीठ द्वारा जहाँ महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन, व्यक्तित्व, कर्तृत्व, उनके वेदभाष्य व अन्य ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में शोध-कार्य किया जायेगा, वहाँ साथ ही आर्यसमाज की वर्तमान दशा तथा भविष्य के विषय में सर्वेक्षण एवं विवेचन की भी व्यवस्था की जायेगी। इस प्रकार के शोध पीठ पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़, और कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी, कुरुक्षेत्र में भी हैं। पर इस शोधपीठ की विशेषता यह है कि इसे आर्यसमाज के एक प्रसिद्ध स्नातकोत्तर कॉलिज में स्थापित किया गया है और इसका संचालन भी आर्यसमाज के अधीन है। दयानन्द कॉलिज में दयानन्द शोधपीठ की स्थापना की योजना श्री दत्तात्रेय वाब्ले द्वारा बनायी गयी थी और उन्हीं के सतत प्रयत्न से राजस्थान सरकार ने इसे स्वीकृति प्रदान की, और इसके लिए आवर्तक अनुदान देना भी स्वीकार किया। ६ नवम्बर, १६८२ के दिन राजस्थान के राज्यपाल श्री ओमप्रकाश मेहरा द्वारा इस शोधपीठ का उद्घाटन समारोह बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। इस पीठ के लिए जहाँ सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त होता है वहाँ आर्यसमाज अजमेर ने भी इसके लिए ५ लाख रुपये के एक स्थायी कोष की स्थापना का निश्चय किया है। इस राशि के ब्याज से शोध ग्रन्थों का प्रकाशन होगा और शोध का कार्य करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी।

दयानन्द कॉलिज अजमेर उन्नति के जिस शिखर पर पहुँच चुका है उससे वस्तुतः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्व व सन्तोष अनुभव किया जा सकता है। पर श्री दत्तात्रेय वाव्ले इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। उनकी योजना इस शिक्षण-संस्था को दयानन्द यूनिवर्सिटी के रूप में विकसित करने की है, और वह इसके लिए गम्भीरता पूर्वक प्रयत्न में लगे हैं।

राजस्थान में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का प्रधान केन्द्र अजमेर ही है। पर गत वर्षों में कुछ अन्य नगरों में भी ये संस्थाएँ स्थापित हुई है जिनमें डी० ए० वी० कॉलिज, गंगानगर उल्लेखनीय है।

(६) उड़ीसा की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ

गत २० वर्षों में उड़ीसा राज्य में आर्यसमाज की गतिविधि में वहुत वृद्धि हुई है। उसी के परिणामस्वरूप वहाँ वहुत-सी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं को स्थापित किया गया है, जिसमें डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली का विशेष कर्तृत्व है।

उड़ीसा राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल डा० ए० एन० खोसला की पत्नी श्रीमती सुशीलवती खोसला ने यह वसीयत की थी, कि उनकी जो भी निजी सम्पत्ति है उसका उपयोग महिलाओं को आर्ट्स, सायन्स और टैकनोलॉजी की शिक्षा देने, प्राचीन भारतीय संस्कृति में शोध करने, आदिवासियों तथा हरिजनों की शिक्षा व आर्थिक क्षेत्र में उन्नति कराने और अनाथों, विधवाओं तथा विकलांगों की सहायता के लिए किया जाय। इस वसीयत के अनुसार श्रीमती खोसला के देहावसान के पश्चात् उनकी सम्पत्ति से अनेक शिक्षण-संस्थाएँ उड़ीसा में स्थापित की गयीं। ये संस्थाएँ संख्या में तीन हैं, और इनका संचालन डी० ए० वी० कॉलिज प्रवन्ध समिति, नयी दिल्ली द्वारा किया जा रहा है।

सुशीलवती खोसला डी० ए० वी० कॉलिज फॉर वीमेन, रूरकेला—यह रूरकेला का एकमात्र महिला महाविद्यालय है जिसमें स्नातक स्तर तक आर्ट्स और सायन्स विषयों की शिक्षा दी जाती है। कॉलिज सम्भलपुर यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है और बी० ए० तथा बी० एस-सी० के लिए उसे मान्यता प्राप्त है। सन् १९६७ में यह कॉलिज स्थापित किया गया था। शीघ्र ही इसने वहुत उन्नति कर ली, और इसके विद्यार्थियों की संख्या ५०० से ऊपर हो गयी। विज्ञान की क्रियात्मक शिक्षा के लिए रसायनशास्त्र, भौतिक-विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिविज्ञान और गृहविज्ञान की प्रयोगशालाएँ भी कॉलिज में हैं, जिनमें सब आवश्यक उपकरण विद्यमान हैं। कॉलिज के साथ एक छात्रावास भी है जो मुख्यतया आदिवासी व अनुसूचित जनजातियों की छात्राओं के निवास के लिए है।

सुशीलवती डी० ए० वी० गर्ल्स हाईस्कूल, रूरकेला—इस स्कूल की स्थापना सन् १९६७ में की गयी थी। हाईस्कूल स्तर तक के इस विद्यालय में छात्राओं की संख्या तीन सौ के लगभग है। हिन्दी, अंग्रेजी और उड़िया तीनों भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। शिक्षा का स्तर वहुत अच्छा है, और खेलकूद की वहाँ समुचित व्यवस्था है।

सुशीलवती डी० ए० वी० पॉलिटेक्निक फॉर वीमेन, रूरकेला—महिलाओं को विविध शिल्पों व व्यवसायों का प्रशिक्षण देने के लिए इस संस्था की स्थापना सितम्बर, १९६८ में की गयी थी। लाइब्रेरी सायन्स, वाणिज्य, कार्यालयों में लिपिक के कार्य तथा दूरसंचार (टेलीकम्युनिकेशन) की डिप्लोमा स्तर तक की शिक्षा के लिए वहाँ व्यवस्था

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गयी, ताकि उसे प्राप्त कर महिलाएँ पुस्तकालयों, कार्यालयों एवं टेलीफोन केन्द्रों में कार्य कर सकें। आदिवासी और हरिजन महिलाओं को इस संस्था में इतनी छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है कि जिससे वे अपना निर्वाह भली-भाँति कर सकें। अन्य निर्धन वर्गों की महिलाओं को भी आर्थिक सहायता देने की इस संस्था में व्यवस्था है।

डी० ए० वी० कॉलिज, कोरापुट—इस संस्था की स्थापना डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, नयी दिल्ली द्वारा सन् १९६८ में की गयी थी। आर्ट्स, सायन्स तथा कामर्स के विषयों में स्नातक स्तर तक की शिक्षा की इस कॉलिज में व्यवस्था है। यह कॉलिज बहरामपुर यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध है और इसके विद्यार्थी उसी यूनिवर्सिटी की बी० ए०, बी० एस-सी० तथा बी० कॉम० की परीक्षाओं में बैठते हैं। आदिवासी एवं अनुसूचित जातियों के क्षेत्र में स्थित होने के कारण इस कॉलिज में मुख्यतया इन्हीं वर्गों के विद्यार्थी प्रविष्ट होते हैं, जो प्रायः निर्धन होते हैं। अतः कॉलिज में ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि पढ़ाई के साथ-साथ वे ऐसे कार्य भी कर सकें जिनसे अपने निर्वाह के लिए आवश्यक धनराशि के उपार्जन में वे समर्थ हो जायें। कॉलिज के साथ छात्रावास भी विद्यमान है, और खेलकूद, व्यायाम तथा एन० सी० सी० आदि की वहाँ समुचित व्यवस्था है। उड़िया भाषा में उच्च कोटि के साहित्य के निर्माण में इस कॉलिज का योगदान बहुत महत्त्व का है। वहाँ के विद्यार्थी समाज सेवा के काम में भी तत्पर रहते हैं।

डी० ए० वी० कॉलिज, तितल्लागढ़—यह कॉलिज भी डी० ए० वी० ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, नयी दिल्ली द्वारा सन् १९६८ में स्थापित किया गया था। यह सम्बलपुर यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है और इसमें बी० ए०, बी० एस-सी० तथा बी० काम० की परीक्षाओं के लिए आर्ट्स, सायन्स तथा कामर्स के विषयों की शिक्षा दी जाती है। यह कॉलिज भी ऐसे क्षेत्र में स्थित है जहाँ अनुसूचित जनजातियों का बाहुल्य है। उनके विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की इसमें व्यवस्था है।

डी० ए० वी० स्कूल, भुवनेश्वर—इस शिक्षणालय की स्थापना १९७१ में की गयी थी। कुछ ही वर्षों में इसने बहुत ही उन्नति कर ली, और भुवनेश्वर के अच्छे स्कूलों में इसकी गिनती की जाने लगी। सन् १९८२ में इसके विद्यार्थियों की संख्या एक हजार के लगभग थी, और ४० शिक्षक वहाँ अध्यापन-कार्य के लिए नियुक्त थे।

ऐरोनोटिक डी० ए० वी० हाईस्कूल, सुनाबेड़ा (कोरापुट)—इस हाईस्कूल में एक हजार के लगभग विद्यार्थी हैं।

ऐरोनोटिक डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल सुनाबेड़ा (कोरापुट)—इस स्कूल की स्थापना सन् १९६८ में डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी नयी दिल्ली द्वारा सम्भ्रान्त वर्ग के उन बच्चों की शिक्षा के लिए की गयी थी जिनके माता-पिता साधारण विद्यालयों में अपने बच्चों को नहीं पढ़ाना चाहते और यह चाहते हैं कि उनके बच्चे साफ सुथरे और सांस्कृतिक वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें। यह स्कूल बहुत लोकप्रिय है, और सम्भ्रान्त वर्ग के चार सौ के लगभग बच्चे इसमें शिक्षा पा रहे हैं।

उड़ीसा में अन्य भी अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता है, जिनके नामों का उल्लेख ही पर्याप्त होगा—डी० ए० वी० मल्टीपर्पज हाई स्कूल लुँगाई, डी० ए० वी० स्कूल बोलानी, डी० ए० वी० किंडर गार्डन स्कूल भुवनेश्वर, सरस्वती उत्तम देवी डी० ए० वी० वनवासी हाईस्कूल लुँगाई, खतरवासी डी० ए० वी० कॉलिज निरंकारपुर।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब संस्थाएँ उसी डी० ए० वी० आन्दोलन की परिणाम हैं जिसका प्रारम्भ १९वीं सदी के चतुर्थ चरण में लाहौर से हुआ था और जो उत्तरी भारत के प्रायः सभी प्रदेशों को प्रभावित करता हुआ बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती उड़ीसा राज्य तक पहुँच गया है। उड़ीसा में डी० ए० वी० संस्थाओं का महत्त्व इस कारण है, क्योंकि इन द्वारा उस क्षेत्र में शिक्षा प्रसार का कार्य किया जा रहा है, जहाँ ईसाई मिशनरी स्कूल खोलकर उनका प्रयोग ईसाई धर्म के प्रचार के लिए कर रहे थे। मिशनरियों का कार्य वहाँ अब भी जारी है। पर डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के कारण वहाँ अब ऐसे केन्द्र स्थापित हो गये हैं जिनमें वनवासी व अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थी अपने धर्म तथा संस्कृति के वातावरण में शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, और वे ईसाई धर्म या पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से बचे रहते हैं।

(७) अन्य प्रदेशों में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ

दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाएँ भारत के अन्य भी अनेक राज्यों में विद्यमान हैं, और कतिपय विदेशी राज्यों में भी उनकी सत्ता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सब डी० ए० वी० संस्थाएँ किन्हीं केन्द्रीय सभाओं के अधीन नहीं हैं। डी० ए० वी० आन्दोलन तथा शिक्षा सम्बन्धी उसकी विशेषताओं से आकृष्ट होकर कितने ही आर्यसमाजों तथा उत्साहसम्पन्न आर्य नर-नारियों ने भी उनकी स्थापना की है और उन्हीं द्वारा उनका संचालन भी किया जा रहा है। इनका उल्लेख कर देना ही यह स्पष्ट कर देने के लिए पर्याप्त होगा, कि डी० ए० वी० आन्दोलन कितना व्यापक रूप प्राप्त कर चुका है।

पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर जिले में भूता नामक स्थान पर एक डी० ए० वी० हाईस्कूल है, और मिडल और प्राइमरी डी० ए० वी० स्कूल वर्दवान जिले में आसनसोल में है। आसनसोल में एक डी० ए० वी० मल्टी-पर्पज माध्यमिक स्कूल भी है जिसमें एक हजार से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

मध्य प्रदेश में वीना (जिला सागर) में एक डी० ए० वी० स्कूल है जिसे वहाँ के आर्यसमाज ने सन् १९६३ में स्थापित किया था। इसमें विद्यार्थियों की संख्या ग्यारह सौ के लगभग है। एक अन्य डी० ए० वी० स्कूल मुरार (ग्वालियर) में है।

हिमाचल प्रदेश में जो बहुत-सी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ हैं वे सब डी० ए० वी० ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, नयी दिल्ली के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। उनमें से अनेक का संचालन स्थानीय आर्यसमाजों व अन्य समितियों द्वारा किया जा रहा है। डी० ए० वी० कॉलिज ऊना, डी० ए० वी कॉलिज काँगड़ा, डी० ए० वी० हाईस्कूल पट्टा जटियान (काँगड़ा), डी० ए० वी० हाईस्कूल सलीयाना (काँगड़ा), डी० ए० वी० हाईस्कूल शिमला, डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल वहंग (मनाली), और आर्य पुत्री पाठशाला धर्मशाला डी० ए० वी० सोसायटी नयी दिल्ली के साथ सम्बद्ध हैं। इनके अतिरिक्त काँगड़ा जिले के ठौणी देवी, मंगलवाल, रेहान, बाबाराना, सुल्लाहर, मल्याणा और धीर नामक स्थानों पर तथा कमाही देवी (मण्डी) और चम्बा में अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता है।

चंडीगढ़ संघ-क्षेत्र में डी० ए० वी० सोसायटी, नयी दिल्ली द्वारा संचालित डी० ए० वी० कॉलिज तथा डी० ए० वी० कॉलिज फॉर वीमेन दो बड़े-बड़े कॉलिज हैं,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें सन् १९८१ में छात्रों की संख्या क्रमशः ४०५५ और २४०० थी। इनके अतिरिक्त हायर सैकेण्डरी स्तर का डी० ए० वी० स्कूल वहाँ विद्यमान है और सी० एल० अग्रवाल, दयानन्द मॉडल स्कूल, डी० ए० वी० जूनियर मॉडल स्कूल, देवराज अग्रवाल डी० ए० वी० नर्सरी स्कूल, डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल और डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल पंचकूला और आर्य महिला शिक्षा-संस्थान भी वहाँ हैं, जिनकी व्यवस्था नयी दिल्ली की डी० ए० वी० सोसायटी के हाथों में है।

जम्मू-कश्मीर राज्य में भी अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता है। डी० ए० वी० इंस्टीट्यूट, आर्यसमाज वजीरवाग श्रीनगर; डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, जवाहरनगर श्रीनगर; डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, रैनावारी श्रीनगर, डी० ए० वी० हाईस्कूल आर्यसमाज पुरानी मंडी, जम्मू; डी० ए० वी० गर्ल्स हाईस्कूल श्रीनगर और महाराजा हरिसिंह एग्रीकल्चर कॉलीजिएट स्कूल नागवनी, जम्मू।

दिल्ली संघ-क्षेत्र में हंसराज कॉलिज और पन्नालाल गिरधारीलाल डी० ए० वी० कॉलिज नेहरू नगर, नयी दिल्ली में उच्च शिक्षा के दो कॉलिज हैं जिनका संचालन नयी दिल्ली की डी० ए० वी० सोसायटी द्वारा किया जाता है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित हायर सैकेण्डरी, पब्लिक, मॉडल एवं प्राइमरी डी० ए० वी० स्कूल दिल्ली में हैं जिनकी व्यवस्था डी० ए० वी० सोसायटी, नयी दिल्ली के अधीन है—डी० ए० वी० सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली; डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल दरियागंज नयी दिल्ली; सी० एन० भल्ला डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल झंडेवालान नयी दिल्ली; धनपतमल एस० हायर सैकेण्डरी स्कूल रूपनगर दिल्ली; मुलतान डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल राजेन्द्र नगर नयी दिल्ली; पी० जी० डी० ए० वी० सीनियर सैकेण्डरी स्कूल वेस्ट पटेल नगर नयी दिल्ली; गोपालदास सोनी डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, पूसा रोड नयी दिल्ली; मिट्ठनलाल बाम्बेवाला डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल यूसुफ सराय नयी दिल्ली; डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल दिल्ली छावनी; दयानन्द मॉडल हायर सैकेण्डरी स्कूल फॉर गर्ल्स, मन्दिर मार्ग नयी दिल्ली; दयानन्द मॉडल स्कूल, मन्दिर मार्ग नयी दिल्ली; हंसराज मॉडल स्कूल पंजाबी बाग नयी दिल्ली; विरमानी मॉडल स्कूल रूपनगर नयी दिल्ली, डी० ए० वी० नर्सरी स्कूल, आरामबाग रोड नयी दिल्ली; कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल अशोक विहार दिल्ली; डी० ए० वी० मॉडल स्कूल प्रीतमपुरा, नयी दिल्ली; डी० ए० वी० मॉडल स्कूल शालीमार बाग नयी दिल्ली; सी० एम० भल्ला दयानन्द मॉडल स्कूल झंडेवालान नयी दिल्ली; डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल चन्द्रनगर, जनकपुरी नयी दिल्ली; डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल रामकृष्णपुरम नयी दिल्ली; डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल स्वास्थ्य विहार दिल्ली; डी० ए० वी० मॉडल स्कूल पश्चिम विहार नयी दिल्ली; डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल वेस्ट पटेल नगर नयी दिल्ली; और डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल सेक्टर ८ रामकृष्णपुरम नयी दिल्ली। इन सब स्कूलों के कारण दिल्ली में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का एक जाल-सा बिछ गया है और हजारों विद्यार्थी इस ढंग की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जिसकी जनता में माँग है। दिल्ली में कोई अन्य ऐसा संगठन, समाज व सभा नहीं है जिस द्वारा इतनी शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जा रहा हो। दिल्ली में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की संख्या निरन्तर बढ़ रही है, और प्रति वर्ष अनेक नये शिक्षणालय डी० ए० वी०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोसायटी द्वारा वहाँ स्थापित कर दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ भी दिल्ली नगर और संघ-क्षेत्र में विद्यमान हैं, जिनका संचालन डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली के अधीन नहीं है। डी० ए० वी० सीनियर सैकेण्डरी स्कूल गांधी नगर दिल्ली, जी० ए० क्वेटा डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल निजामुद्दीन नयी दिल्ली, डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल ववाना दिल्ली, डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल शमापुर-वादली, दिल्ली; डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल गंगाराम हास्पीटल रोड नयी दिल्ली और डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल लोधी रोड, नयी दिल्ली इस प्रकार के स्कूल हैं।

असम राज्य में भी दो डी० ए० वी० स्कूल विद्यमान हैं, डी० ए० वी० हाई स्कूल डीफू करवी एंग्लोम और दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल गोहाटी। डीफू के स्कूल में दसवीं कक्षा तक पढ़ाई की व्यवस्था है।

बिहार राज्य में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की परम्परा सन् १९४० में प्रारम्भ हुई थी। इसके लिए आर्यसमाज सीवान ने एक प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार की सेवा में भेजा था, जिस पर विचार कर ३० दिसम्वर, १९४० को प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने यह निर्णय किया था—"डी० ए० वी० कॉलिज सम्बन्धी सीवान आर्यसमाज का पत्र पढ़ा गया और सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह आर्य प्रतिनिधि सभा प्रस्तावित डी० ए० वी० कॉलिज सीवान को स्वीकार करती है और उसकी स्थापना को अपने प्रान्त के शिक्षा क्षेत्र में वड़े भारी अभाव की पूर्ति समझती है।" इस प्रस्ताव को स्वीकार कर सभा ने सात सज्जनों की एक उपसमिति वना दी जिसे कॉलिज की योजना को क्रियान्वित करने तथा उसके लिए धन संग्रह करने का कार्य सौंप दिया गया। सीवान में डी० ए० वी० पाठशाला, डी० ए० वी० दलितोद्धार पाठशाला, डी० ए० वी० मिडल स्कूल तथा डी० ए० वी० हाईस्कूल के रूप में अनेक दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थायें पहले ही विद्यमान थीं। आर्यसमाज के अन्य भी अनेक शिक्षणालय वहाँ थे जिनमें आर्य कन्या मिडल स्कूल, आर्य कन्या हाईस्कूल और वैजनाथ पाण्डे आर्य संस्कृत कॉलिज विशेष महत्त्व के थे। विहार में सीवान एक ऐसा नगर है जहाँ वीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार की शिक्षा के आर्य केन्द्र स्थापित हो चुके थे। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था कि वहाँ उच्च शिक्षा के लिए डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना की भी योजना वनायी जाय। आर्य प्रतिनिधि सभा विहार के समर्थन और सहायता से यह योजना क्रियान्वित हो गयी, और डी० ए० वी० कॉलिज, सीवान में शीघ्र ही डिग्री स्तर तक आर्ट्स, कामर्स और सायन्स के विषयों की शिक्षा दी जाने लगी। यह कॉलिज विहार यूनिवर्सिटी से सम्वद्ध है और इस समय वहाँ ३५०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। सीवान की डी० ए० वी० तथा अन्य आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना तथा विकास में श्री वैद्यनाथ प्रसाद का प्रमुख कर्तृत्व था। यही आर्य सज्जन दाढ़ी वावा के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक अन्य डी० ए० वी० डिग्री कॉलिज कतरासगढ़ (धनवाद) में है।

यद्यपि विहार में डी० ए० वी० डिग्री कॉलिज केवल दो हैं, पर हायर सैकेण्डरी, सैकेण्डरी और मिडल स्तर की वहुत-सी डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ वहाँ विद्यमान हैं। ये झरिया, सीवान, दानापुर, गोपालगंज, कतरासगढ़, पाथरडीह, गड़वा (पलामू)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंडवा(सारन), छपरा, वनवाद, चिन्तामणिचक्र (पटना), मुंगेर, मधुपुर (संथाल परगना) प्रतापटाँड (मुजफ्फरपुर) घुरवा (राँची), मुजफ्फरपुर और रांची में स्थित हैं। इन सबका विवरण दे सकना सम्भव नहीं है। पर विहार राज्य में डी० ए० वी० आन्दोलन के स्वरूप और प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए डी० ए० वी० हाईस्कूल दानापुर (पटना) का संक्षिप्त परिचय देना उपयोगी होगा। विहार के आर्यसमाजों में दानापुर का आर्यसमाज सबसे पुराना है। उसकी स्थापना सन् १८७८ में हुई थी। शिक्षा का प्रचार आर्यसमाज के कार्यक्रम में प्रारम्भ से ही सम्मिलित था, अतः सन् १८७८ में दानापुर आर्यसमाज द्वारा आर्य संस्कृत पाठशाला की स्थापना की गयी, जो उन्नति करती हुई हाईस्कूल के रूप में विकसित हो गयी। महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर इसका नाम वदल कर डी० ए० वी० हाईस्कूल कर दिया गया। विहार के प्रसिद्ध स्कूलों में इस संस्था की गिनती है और इसमें विद्यार्थियों की संख्या एक हजार से भी अधिक है। क्योंकि आर्यसमाज सहशिक्षा का समर्थन नहीं करता, अतः इस स्कूल में केवल बालकों को ही प्रविष्ट किया जाता है। पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व प्रार्थना होती है, जिसमें सब विद्यार्थियों और अध्यापकों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित होना होता है। शिवरात्रि (ऋषिवोधोत्सव) जैसे धार्मिक पर्व भी स्कूल द्वारा मनाये जाते हैं, जिससे विद्यार्थियों को अपने धर्म एवं संस्कृति से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। स्कूल के नियमों के अनुसार ऐसे व्यक्ति ही इस संस्था में अध्यापन-कार्य के लिए नियुक्त किये जाते हैं जो आर्य विचारों के हों। विहार के सरकारी स्कूलों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के साथ-साथ धर्मशिक्षा की भी इस स्कूल में व्यवस्था है जो सबके लिए अनिवार्य है।

हरयाणा—अब से कुछ वर्ष पूर्व तक हरयाणा पंजाब के अन्तर्गत था। अतः लाहौर की डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड सोसायटी (जिसका प्रधान कार्यालय भारत विभाजन के पश्चात् नयी दल्ली में स्थानान्तरित हो गया था) ने जब शिक्षण-संस्थाओं का विस्तार करना शुरू किया, तो अनेक डी० ए० वी० कॉलिज और स्कूल हरयाणा में भी स्थापित किये। हिसार, अम्बाला सिटी, सढौरा, नन्यौला, पुण्डरी और यमुनानगर के जिन डी० ए० वी० कॉलिजों का पिछले एक अध्याय में विवरण दिया जा चुका है, वे हरयाणा राज्य में ही हैं। इसी प्रकार पानीपत, जगाधरी, हांसी, हिसार, अम्बाला, यमुनानगर आदि में स्थित कितने ही हाईस्कूल व अन्य डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ हरयाणा में विद्यमान हैं, जिनकी व्यवस्था एवं संचालन डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी नयी दिल्ली के अधीन है। पर हरयाणा में अन्य भी बहुत-से ऐसे डी० ए० वी० कॉलिज और शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जो डी० ए० वी० कमेटी, नयी दिल्ली से स्वतन्त्र हैं। ऐसे डिग्री स्तर के दो कॉलिज (डी० ए० वी० कॉलिज और डी० ए० वी० कॉलिज फार गर्ल्स) करनाल में हैं और एक कॉलिज रोहतक में है। ऐसे डी० ए० वी० हाईस्कूल करनाल, शाहाबाद, मुस्तफाबाद, गुड़गाँव, बहादुरगढ़, भिखरा (रोहतक), मोखरा (रोहतक), मातेनहेल (रोहतक), हसनगढ़, गोहाना, साघी आदि कितने ही स्थानों पर विद्यमान हैं। इनका प्रबन्ध व संचालन स्थानीय कमेटियों द्वारा किया जाता है और इनकी स्थापना कतिपय ऐसे उत्साही आर्य सज्जनों ने की थी जो वैदिक धर्म और संस्कृति के वातावरण में बालक-बालिकाओं को पढ़ाने में विश्वास रखते थे। उदाहरणार्थ डी० ए० वी० हाईस्कूल, करनाल बाबू मक्खनलाल तथा श्री अविनाश चन्द्र के प्रयत्न से सन् १९४५ में स्थापित हुआ था। इसका प्रारम्भ श्रद्धानन्द

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाथालय, करनाल के कुछ खुले कमरों में चिकें डाल कर किया गया था पर धीरे-धीरे यह शिक्षणालय इतनी उन्नति कर गया कि इस समय वहाँ विद्यार्थियों की संख्या १.५०० से भी अधिक है और ३५ शिक्षक अध्यापन-कार्य में रत हैं। सन् १९७२ में स्थापित गोहाना (सोनीपत) का डी० ए० वी० हाईस्कूल चौधरी हरिकिशन मलिक के पुरुषार्थ का परिणाम है। इसका संचालन स्थानीय प्रतिष्ठित आर्य सज्जनों की प्रबन्ध समिति के अधीन है और वर्तमान समय में वहाँ विद्यार्थियों की संख्या ४०० के लगभग है। बहादुरगढ़ (रोहतक) का करोड़ डी० ए० वी० हाईस्कूल का संचालन भी एक स्थानीय समिति द्वारा किया जाता है। यह स्कूल भारत के विभाजन से पहले मुजफ्फरगढ़ पाकिस्तान में था जिसे बहादुरगढ़ में पुन: स्थापित किया गया है।

गुजरात राज्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्मस्थान टंकारा में हाईस्कूल की सत्ता है, जिसका संचालन महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा के हाथों में है। ट्रस्ट की प्रगति के साथ साथ यह स्कूल भी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। सुदूर दक्षिण के तमिलनाडु जैसे राज्यों में भी गत कुछ समय से डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की जा रही है।

विदेशों में फिजी, बर्मा, मारीशस, तंजानिया, सिंगापुर, गाइना आदि राज्यों में अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं जो आर्य सामाजिक क्षेत्र में शिक्षा पद्धति की लोकप्रियता का स्पष्ट प्रमाण हैं। विदेशों में आर्य शिक्षा-संस्थाओं का विवरण देते हुए इनका भी परिचय दिया जायेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीसवाँ अध्याय

गुरुकुल पद्धति की अन्य शिक्षण-संस्थाएँ

(१) बिहार राज्य के गुरुकुल

गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल भैंसवाल, गुरुकुल झज्झर, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि प्रमुख गुरुकुलों का इस इतिहास में पहले परिचय दिया जा चुका है, पर उनके अतिरिक्त भी बहुत-से गुरुकुल भारत के विविध राज्यों में विद्यमान हैं, जिनका संक्षेप के साथ उल्लेख किया जाना आवश्यक है।

गुरुकुल महाविद्यालय, वैद्यनाथ धाम (बिहार)—इस संस्था की स्थापना सन् १६२४ में बालकों को भारतीय संस्कृति के वातावरण में शिक्षा प्रदान कर देशभक्त व धार्मिक नागरिक बनाने के प्रयोजन से की गयी थी। यह बंगाल व बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित सबसे पुरानी शिक्षण-संस्था है, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक मन्तव्यों व आदर्शों के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करने में गत ५६ वर्षों से तत्पर है। सामाजिक ऊँच-नीच व छूत-अछूत का कोई भी भेदभाव न कर सब वर्गों के बालक इस गुरुकुल में प्रविष्ट किये जाते हैं, और उन सबके प्रति एक समान व्यवहार किया जाता है। यह पूर्णतया आवासीय संस्था है, जहाँ विद्यार्थी और अध्यापक एक परिवार के रूप में निवास करते हैं। विद्यार्थियों की दिनचर्या वही है, जो गुरुकुल काँगड़ी तथा अन्य गुरुकुलों में विद्यमान है। विद्यार्थी ब्राह्ममुहूर्त में सोकर उठते हैं, और ईश-प्रार्थना के बाद नित्य कर्मों से निवृत्त होकर सन्ध्या-हवन करते हैं। व्यायाम सबके लिए अनिवार्य है। पढ़ाई, भोजन, खेलकूद, विश्राम आदि सबके समय नियत हैं, और सब कार्य अनुशासित ढंग से किये जाते हैं। सब विद्यार्थी और अध्यापक गुरुकुल के भोजनालय में एक साथ भोजन करते हैं। भोजन शुद्ध, सात्त्विक व निरामिष होता है। कोई विद्यार्थी अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द प्रयुक्त नहीं कर सकता। विदेशी व भड़कीले वस्त्र पहनना वर्जित है। रहन-सहन सादा तथा तपोमय है।

गुरुकुल का पाठ्यक्रम दस वर्षों का है, जिसमें धर्मशिक्षा और संस्कृत का स्थान प्रधान है। ये विषय सबको अनिवार्य रूप से पढ़ने होते हैं। इनके अतिरिक्त वे सब विषय भी पढ़ाये जाते हैं, जो सरकारी स्कूलों में मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के लिए निर्धारित हैं, और इनकी शिक्षा का स्तर भी सरकारी स्कूलों के समान रखा गया है। इस प्रकार गुरुकुल वैद्यनाथ धाम का विद्यार्थी ब्रह्मचर्यपूर्वक छात्रावास में रहता हुआ वे सब विषय (हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, सामान्य विज्ञान, इतिहास, भूगोल और सामाजिक अध्ययन) पढ़ लेता है, जो बिहार के सरकारी स्कूलों में पढ़ाये जाते हैं। साथ ही, वह संस्कृत भाषा तथा साहित्य का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और धर्म की भी उसे समुचित जानकारी हो जाती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस ढंग से गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, उन्हें 'विद्यारत्न' की उपाधि प्रदान की जाती है। विद्यारत्न की परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी भागलपुर विश्वविद्यालय के किसी भी कॉलिज में इण्टरमीडिएट कक्षा में प्रवेश पा सकते हैं। इस व्यवस्था के कारण गुरुकुल के विद्यार्थियों को सरकारी यूनिवर्सिटियों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है, और वे बी० ए०, एम० ए० आदि डिग्रियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं। गुरुकुल में पढ़ने से उन्हें अतिरिक्त लाभ यह होता है, कि वे संस्कृत की विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, और छात्रावास में गुरुकुलीय जीवन बिताने के परिणामस्वरूप अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकने का अनुपम अवसर प्राप्त कर लेते हैं। गुरुकुल वैद्यनाथ धाम का एक संस्कृत विभाग भी है, जो कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध है। इस विभाग के विद्यार्थी संस्कृत की मध्यमा, शास्त्री और आचार्य परीक्षाएँ देते हैं, और उन्हीं के पाठ्यक्रम के अनुसार उनकी पढ़ाई होती है।

गुरुकुल में ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालक ही प्रविष्ट किये जाते हैं। योग्यता के अनुसार उन्हें पहली से छठी कक्षा में लिया जा सकता है। इससे ऊपर की कक्षा में किसी बालक को प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। गुरुकुल में विद्यार्थियों की कुल संख्या २०० के लगभग है, जिनमें समीप के कुछ ग्रामों के बालकों को छोड़कर शेष सब छात्रावास में रहते हैं। शिक्षा सबके लिए निःशुल्क है। पर भोजन, नाई, धोबी, रोशनी आदि का व्यय छोटे बालकों से ६५ रु० मासिक और बड़े विद्यार्थियों से १०५ रुपये मासिक लिया जाता है। यह गुरुकुल सन्थाल परगना के उस क्षेत्र में स्थित है, जहाँ वन्यजातियों के लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं। क्रिश्चियन मिशनरी इन लोगों को ईसाई बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं, और शिक्षणालय उनके प्रचार के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इस दशा में अपने क्षेत्र के पिछड़े हुए लोगों को विधर्मी होने से बचाने तथा अपने धर्म की शिक्षा देने के सम्बन्ध में आर्यसमाज का विशेष दायित्व है। इसी बात को दृष्टि में रखकर गुरुकुल वैद्यनाथ धाम सन्थाल लोगों में शिक्षा-प्रसार के लिए प्रयत्नशील है, और अनेक सन्थाल बालकों को गुरुकुल में सर्वथा निःशुल्क दाखिल करने की व्यवस्था की गयी है। अनेक दानी महानुभाव इन विद्यार्थियों के लिए मासिक छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान कर रहे हैं। सन् १९७८ में आठ वन्यजातीय छात्र गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनके भोजन आदि का मासिक व्यय ७१० रुपये होता था। गुरुकुल द्वारा ही इसकी व्यवस्था की जाती थी।

गुरुकुल वैद्यनाथ धाम एक सुव्यवस्थित व सुविकसित शिक्षण-संस्था है, जिसमें पुस्तकालय, वाचनालय और औषधालय सदृश सब उपयोगी विभाग विद्यमान हैं। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ४,००० के लगभग है, और वाचनालय के लिए हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत की १६ पत्र-पत्रिकाएँ मँगायी जाती हैं। औषधालय में आयुर्वेदिक चिकित्सा की व्यवस्था है, जिससे गुरुकुलवासियों के अतिरिक्त आस-पास के ग्रामों के लोग भी लाभ उठाते हैं। गुरुकुल का एक कृषि विभाग भी है, जिस द्वारा अन्न तथा शाक-सब्जी की खेती की जाती है। गुरुकुल के पास कुल भूमि ३०० बीघे के लगभग है, पर वह सब कृषि योग्य नहीं है। धीरे-धीरे खाली पड़ी जमीन को खेती के योग्य बनाया जा रहा है। वर्तमान समय में ७० बीघे के लगभग भूमि पर खेती होने लग गयी है, जिस द्वारा १२० मन के लगभग अन्न गुरुकुल को प्राप्त हो जाता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल वैद्यनाथ धाम का प्रबन्ध 'गुरुकुल सभा' के अधीन है, जिसके ४५ सदस्य हैं। इनकी नियुक्ति में बंगाल और विहार की आर्य प्रतिनिधि सभाओं का प्रधान हाथ रहता है। श्री राजेन्द्रप्रसाद पोद्दार ने सभा के प्रधान की स्थिति में इस शिक्षण-संस्था के संचालन में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। श्री महादेवशरण २५ वर्ष के लगभग गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद पर रहे, और इस संस्था की उन्नति में उनका योगदान महत्त्व का रहा। श्री महावीरप्रसाद गुरुकुल के आचार्य पद पर नियुक्त हैं। अन्य शिक्षक संख्या में ११ हैं।

शिक्षा के लिए इस संस्था में कोई शुल्क नहीं लिया जाता। अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के वेतन आदि में ४२ हजार रुपये के लगभग प्रति वर्ष खर्च होता है, जिसे जनता द्वारा प्राप्त दान तथा सरकारी अनुदान से प्राप्त किया जाता है। भारत की केन्द्रीय सरकार तथा विहार सरकार इस संस्था के लिए जो अनुदान देती है, उसकी राशि ३२ हजार के लगभग है। शिक्षा का शेष खर्च दान से चलता है। छात्रावास में रहने वाले ब्रह्मचारियों के भोजन आदि का व्यय सवा लाख रुपये वार्षिक के लगभग बैठता है, जिसका बड़ा भाग शुल्क द्वारा प्राप्त हो जाता है।

भारत के पूर्वी क्षेत्र में यह गुरुकुल आर्यसमाज की प्रमुख शिक्षण-संस्था है। इसके अनेक स्नातकों ने शिक्षा के प्रसार तथा वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उल्लेखनीय कार्य किये हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी पढ़ाई के साथ-साथ धर्म तथा समाज की सेवा का पाठ भी पढ़ते हैं, और भावी जीवन में उससे जनता को लाभ पहुँचाते हैं।

सन् १९४२ के स्वाधीनता संग्राम में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा अध्यापकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया था, और अपने क्षेत्र में ब्रिटिश शासन को सर्वथा पंगु कर दिया था।

गुरुकुल महाविद्यालय, बैरगनिया, सीतामढ़ी (बिहार)—विहार के सीतामढ़ी जिले में बैरगनिया रेलवे स्टेशन के समीप यह गुरुकुल विद्यमान है, जिसकी स्थापना २१ जून, सन् १९५९ के दिन हुई थी। वर्तमान समय में इस गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की संख्या २०० है। इससे अधिक बालकों को गुरुकुल में प्रवेश नहीं दिया जा सकता, क्योंकि छात्रावास में स्थान की कमी है। ब्रह्मचारियों की दिनचर्या गुरुकुल-पद्धति के अनुसार है। ब्राह्ममुहूर्त के समय प्रातः ४·३० बजे वे सो कर उठते हैं, ईश-प्रार्थना के पश्चात् नित्य कर्मों से निवृत्त होकर व्यायाम, योगासन और सन्ध्या-हवन करते हैं। दिन का सब समय विद्याध्ययन, स्वाध्याय, खेल-कूद आदि में व्यतीत होता है। दो समय भोजन के अतिरिक्त ब्रह्मचारियों को प्रातराश भी दिया जाता है। भोजन मिर्च-मसाले से रहित शाकाहारी व सात्त्विक होता है। गुरुकुल की अपनी गौशाला भी है, पर उसका दूध पर्याप्त नहीं होता। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन, वस्त्र आदि के लिए खर्च ब्रह्मचारियों से लिया जाता है। दस ब्रह्मचारियों को गुरुकुल की ओर से छात्रवृत्तियाँ भी दी जा रही हैं। गुरुकुल का खर्च प्रधानतया दान से चलता है। मुजफ्फरपुर आर्यसमाज के भूतपूर्व प्रधान श्री रामगोपाल अग्रवाल जनवरी, १९८१ से इस संस्था के लिए एक हजार रुपये प्रतिमास प्रदान कर रहे हैं, जिससे इसके विकास में बहुत सहायता प्राप्त हो रही है। उनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक सम्भ्रान्त आर्य महानुभाव वार्षिक व मासिक रूप से दान देकर इस संस्था की सहायता कर रहे हैं। बैरगनिया के इस गुरुकुल महाविद्यालय में तीन शिक्षण-संस्थाएँ चलायी जा रही हैं—गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, गुरुकुल संस्कृतोच्च विद्यालय,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गुरुकुल संस्कृत प्राक्विद्यालय। तीनों में संस्कृत की शिक्षा को प्रधान स्थान प्राप्त है। पाठ्यक्रम प्रायः वही है, जो कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा द्वारा निर्धारित है, और संस्कृत महाविद्यालय में परीक्षाएँ भी उसी की दिलायी जाती हैं। अन्य विभागों की पाठविधि में भी संस्कृत की मुख्यता है, पर अंग्रेजी भाषा की उपेक्षा नहीं की गयी है। गुरुकुल बैरगनिया में शास्त्री तक संस्कृत की और मैट्रिक तक अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। पर इस संस्था की प्रधान विशेषता उस आश्रम व आवासीय प्रणाली की है, जिसके कारण ब्रह्मचारियों को सदाचार और अनुशासन की शिक्षा प्राप्त होती है। २०० विद्यार्थियों का छात्रावास में रह कर पठन-पाठन में व्यापृत रहना इस गुरुकुल की सफलता का स्पष्ट प्रमाण है।

बैरगनिया के इस गुरुकुल ने अनेक दशाओं में से गुजर कर अपने वर्तमान रूप को प्राप्त किया है। सन् १९२१-२२ के असहयोग आन्दोलन के दिनों में बैरगनिया के निवासी श्री युगलकिशोर बाबू ने एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की थी, जिसके मुख्याध्यापक पद पर स्वामी मनीषानन्द (श्री अयोध्या लाल) को नियुक्त किया गया था। स्वामीजी ने १९२२ में ही बैरगनिया में आर्यसमाज भी स्थापित किया था। बैरगनिया के राष्ट्रीय विद्यालय पर आर्यसमाज का प्रभाव था। वहाँ नित्यप्रति सन्ध्या-हवन होता था, और वहाँ का वातावरण धार्मिक था। आर्यसमाज के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण सन् १९३३ में इस विद्यालय का नाम बदल कर डी० ए० वी० स्कूल कर दिया गया। पर इससे उसके स्वरूप में परिवर्तन नहीं आया। आर्यसमाज के कार्यकलाप के साथ-साथ वह कांग्रेस आन्दोलन तथा स्वाधीनता-संघर्ष का भी केन्द्र बना रहा। स्वराज्य से पूर्व इस स्कूल के लिए सरकार से न कोई आर्थिक सहायता ली गई, और न उसे सरकार द्वारा मान्यता ही प्राप्त करायी गई। स्वराज्य के बाद बैरगनिया का डी० ए० वी० स्कूल सरकार से मान्यता प्राप्त अन्य स्कूलों की तरह हो गया, उस पर सरकारी नियन्त्रण निरन्तर बढ़ता गया, और सरकार द्वारा अनुदान ग्रहण करने के कारण उसके शिक्षकों की नियुक्ति भी सरकार के निर्देशन में की जाने लगी। परिणाम यह हुआ, कि एक ऐसा अवसर आया जबकि एक ऐसा व्यक्ति प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गया, जो आर्यसमाजी नहीं था। उसके कारण स्कूल में आर्यसमाज के वातावरण को रख सकना सम्भव नहीं रहा। इस स्थिति में आर्यसमाज के पदाधिकारियों ने निर्णय किया, कि डी० ए० वी० स्कूल को अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया जाए और समाज की सब शक्ति गुरुकुल की स्थापना में लगा दी जाए। इसी निर्णय के अनुसार सन् १९५० में 'सर्वोदय गुरुकुल आश्रम' स्थापित किया गया, जो १० वर्ष के लगभग तक कायम रहा। श्री अयोध्यालाल ने, जो अब संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी मनीषानन्द बन चुके थे, इस संस्था की उन्नति में विशेष कर्तृत्व प्रदर्शित किया। पर इस आश्रम की कतिपय बातें आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं थीं, अतः आर्यों का ध्यान एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना की ओर गया, जो सच्चे अर्थों में महर्षि के मन्तव्यों के अनुसार हो। इसीलिए यह गुरुकुल महाविद्यालय स्थापित किया गया था।

वनवासी आर्ष गुरुकुल बरदेही (संथाल परगना)—पण्डित उमाकान्त शास्त्री तथा श्री रामचन्द्र शास्त्री की प्रेरणा से यह गुरुकुल सन् १९६२ में स्थापित हुआ था। वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए ये सज्जन सन्थाल परगना के पिछड़े हुए क्षेत्र में स्थित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरदेही ग्राम में भी गये थे, और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर ग्रामवासियों ने ११५ वीघा जमीन गुरुकुल के लिए प्रदान कर दी थी। जनता के दान द्वारा इस भूमि पर विद्यालय, छात्रावास, यज्ञशाला, व्यायामशाला, औषधालय, भोजन भण्डार, पुस्तकालय, गौशाला आदि की इमारतों का निर्माण किया गया, और गुरुकुल का कार्य सुचारु रूप से प्रारम्भ कर दिया गया। नयी शिक्षण-संस्था के संचालन में जिन अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है, यह गुरुकुल भी उनसे बचा नहीं रह सका, पर श्री वटेश्वर हेम्ब्रम, श्री सेवक बाबा भारती और आर्य प्रतिनिधि सभा विहार के पदाधिकारियों के प्रयत्न से यह संस्था अब सुव्यवस्थित रूप में आ गयी है। गुरुकुल का पाठ्यक्रम दस वर्ष का रखा गया है। हिन्दी, संस्कृत, सन्थाली और अंग्रेजी—चार भाषाओं का अध्ययन सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। इनके अतिरिक्त गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान और समाजशास्त्र भी सबको पढ़ने होते हैं। वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए जो पाठ्यक्रम नियत किया गया है, उसमें सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और ईशोपनिषद् समाविष्ट हैं। धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क है, पर भरण-पोषण के लिए शुल्क लिया जाता है। वनवासी वर्ग के निर्धन व असहाय बच्चों के भरण-पोषण का खर्च भी गुरुकुल द्वारा किया जाता है। गुरुकुल की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थियों को 'विद्यारत्न' उपाधि प्रदान की जाती है।

गुरुकुल महाविद्यालय, मेंहियाँ (छपरा)—यह गुरुकुल छपरा (विहार) नगर से लगभग दो मील की दूरी पर मेंहियाँ ग्राम के समीप स्थित है। अपने संस्थापक के नाम पर यह 'गुरुकुल अयोध्यानगर' भी कहाता है, क्योंकि इसकी स्थापना श्री अयोध्याप्रसाद गुप्त द्वारा की गयी थी। सन् १९४५ में स्थापित इस संस्था ने अच्छी उन्नति की, और शीघ्र ही इसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों की संख्या १०० से अधिक हो गई।

बिहार राज्य के अन्य गुरुकुल—विहार में अन्य भी अनेक गुरुकुल विद्यालय हैं। चम्पारण जिले में लौरिया तथा औसानी नामक स्थानों पर और हजारीबाग जिले में चतरा नामक स्थान पर इनकी स्थिति है।

(२) उत्तरप्रदेश के गुरुकुल

गुरुकुल महाविद्यालय, सिराथू—इलाहाबाद जिले में सिराथू के समीप इस गुरुकुल की स्थापना २२ जुलाई, १९५६ के दिन हुई थी। इसकी स्थापना में श्री रामप्रसाद आर्य और श्री केदारनाथ का विशेष कर्तृत्व था। श्री रामप्रसाद को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था, पर वह शिक्षा की उपयोगिता को समझते थे। इसीलिए उन्होंने पहले एक इण्टर कॉलिज स्थापित किया था। पर जब उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, तो गुरुकुल की स्थापना का संकल्प किया। सिराथू कस्बे में श्री केदारनाथ ने एक नयी दुकान बनवाई थी। शुरू में उसी में गुरुकुल खोल दिया गया, और सात ब्रह्मचारी वहाँ शिक्षा प्राप्त करने लगे। पर यह स्थान गुरुकुल के लिए उपयुक्त नहीं था। श्री बद्रीप्रसाद पाण्डेय से एक बीघा बारह विस्वा भूमि पट्टे पर प्राप्त कर पहले गुरुकुल को वहाँ ले जाया गया, और फिर सिराथू से बाहर एक खुले स्थान पर। २२ बीघे का यह स्थान श्री उपेन्द्रनाथ सिन्हा ने अपने पिता स्वर्गीय श्री रामविहारी सिन्हा की पुण्य स्मृति में गुरुकुल के लिए प्रदान किया था। यह स्थान गुरुकुल के लिए सर्वथा उपयुक्त था, अतः वहीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संस्था को स्थायी रूप से स्थापित कर दिया गया। गुरुकुल की भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य ५,५०,००० रुपये है, जिसमें से केवल ५,००० रुपये सरकारी अनुदान से प्राप्त हुए हैं। शेष सब आर्य जनता द्वारा दान में दिया गया है। गुरुकुल का वार्षिक व्यय एक लाख रुपये के लगभग है।

गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या २२६ है, और १२ अध्यापक वहाँ पढ़ाने के लिए नियुक्त हैं। सब विद्यार्थी छात्रावास में नहीं रहते। छात्रावास में रहकर गुरुकुलीय पद्धति की दिनचर्या के अनुसार अनुशासित जीवन विताने वाले विद्यार्थियों की संख्या १०० है। शिक्षा का कोई शुल्क गुरुकुल में नहीं लिया जाता। पर जो विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं, उन्हें भोजन का व्यय देना होता है। सन् १९८२ में भोजनशुल्क ७५ रुपये मासिक था। घी-दूध का खर्च इसमें सम्मिलित नहीं था, उसकी व्यवस्था विद्यार्थियों के संरक्षकों को पृथक् रूप से करनी होती थी। छात्रावास में सब विद्यार्थी नियत वेश में रहते हैं, और दिन-रात का सारा समय उन्हें निर्धारित दिनचर्या के अनुसार विताना होता है। माता-पिता व कुटुम्बीजन आचार्य या मुख्याधिष्ठाता की अनुमति से ही ब्रह्मचारियों से मिल सकते हैं।

यह गुरुकुल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से मान्यता प्राप्त है, और उसकी प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार ही इसमें पठन-पाठन की व्यवस्था है। विद्यार्थी इन परीक्षाओं में बैठते हैं, और उन्हें उत्तीर्ण कर शास्त्री आदि उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। पर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के साथ-साथ गुरुकुल में वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों की शिक्षा भी दी जाती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों से विद्यार्थियों को प्रभावित करने के प्रयोजन से आर्यसमाज के दस नियमों का प्रतिदिन पाठ कराया जाता है। सत्यार्थप्रकाश का पाठ, संस्कार-विधि में प्रतिपादित संस्कारों का अभ्यास, प्रातः और सायं ब्रह्मयज्ञ तथा देवयज्ञ का अनुष्ठान, प्रातः जागरण के समय और रात को सोने से पूर्व वेदमन्त्रों का पाठ आदि अनेक अन्य साधन हैं, जिन द्वारा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की वैदिक धर्म एवं आर्य-समाज के प्रति आस्था उत्पन्न की जाती है। वाग्वर्द्धिनी परिषद् के नाम से गुरुकुल में एक सभा भी संगठित है, जिसमें विद्यार्थी व्याख्यान, वादविवाद व वेद-पाठ आदि का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। समीप के प्रदेश में वैदिक धर्म के प्रचारकार्य में भी गुरुकुल के विद्यार्थी और अध्यापक उत्साह के साथ हाथ बटाते हैं।

गुरुकुल का प्रबन्ध वैदिक शिक्षा समिति, सिराथू (जिला इलाहाबाद) के अधीन है। समिति के तीन अंग हैं—साधारण समिति, अन्तरंग सभा और उपसमितियाँ। कम-से-कम एक रुपया मासिक देने वाले व्यक्ति साधारण समिति के सदस्य होते हैं, जिन द्वारा प्रति वर्ष अन्तरंग सभा का चुनाव किया जाता है। २७ सदस्यों की इस सभा के हाथों में ही गुरुकुल के संचालन की सब व्यवस्था है। वर्तमान समय में श्री भगवानदास ओबेराय सभा के प्रधान और श्री लखनलाल गुप्त मन्त्री हैं। पण्डित विश्वमित्र मेधावी कुलपति के रूप में और डा० राममित्र शास्त्री प्रधानाचार्य के रूप में गुरुकुल की शिक्षा-व्यवस्था तथा उन्नति में प्रयत्नशील हैं, और स्थान, भवन आदि की कमी होते हुए भी यह संस्था उन्नति के पथ पर अग्रसर है। श्री स्वामीनाथ, श्री नयपालसिंह, श्री सुरेशचन्द्र शास्त्री आदि गुरुकुल सिराथू के अनेक स्नातक अच्छे पदों पर प्रतिष्ठित हो देश तथा समाज की सेवा में रत हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री निःशुल्क गुरुकुल महाविद्यालय, अयोध्या—इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९२५ में स्वामी त्यागानन्द सरस्वती द्वारा की गई थी। संन्यास ग्रहण करने से पूर्व उनका नाम मूर्तिनारायण चतुर्वेदी था, और वह देवरिया जिले के कोहरोली ग्राम के निवासी थे। श्री मूर्तिनारायण ने सच्चिदानन्द संस्कृत पाठशाला, रुद्रपुर में संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की, और रुद्रपुर में निवास करते हुए ही वह आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। आर्य विद्वान् पण्डित मन्नन द्विवेदी के व्याख्यान सुनकर आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रति उनमें आस्था उत्पन्न हुई, स्वाध्याय द्वारा जिसमें निरन्तर वृद्धि होती गई। शिक्षा प्रणाली के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों को पढ़कर उन्होंने निश्चय किया कि एक ऐसे गुरुकुल की स्थापना की जाए, जो महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप हो। इसीलिए उन्होंने रुद्रपुर की सच्चिदानन्द संस्कृत पाठशाला में ही गुरुकुल की स्थापना कर दी, और अपना सारा समय इस संस्था की उन्नति में लगाने लगे। पर गृहस्थ रहते हुए यह सम्भव नहीं था, कि मूर्तिनारायणजी अपने को पूर्णतया गुरुकुल के कार्य के लिए समर्पित कर सकें। अतः उन्होंने स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज से संन्यास आश्रम की दीक्षा ग्रहण कर ली, और मूर्तिनारायण से स्वामी त्यागानन्द सरस्वती बन गये। अब वह अपना सब समय गुरुकुल पर लगा सकते थे। उनके प्रयत्न से कुछ ही वर्षों में गुरुकुल ने इतनी उन्नति कर ली, कि रुद्रपुर की संस्कृत पाठशाला का स्थान उसके लिए पर्याप्त नहीं रह गया। सन् १९२८ में उसे रुद्रपुर से वारिग्राम ले जाया गया। यह स्थान देवरिया जिले में ही कुआनो नदी के तट पर था। यद्यपि यह स्थान रमणीक था, पर इसकी जलवायु स्वास्थ्यवर्धक नहीं थी। अतः एक ही साल (सन् १९२९) में उसे अयोध्या ले जाया गया, जहाँ वह अब तक विद्यमान है। अयोध्या-फैजाबाद मार्ग पर स्थित यह स्थान एक वाटिका के रूप में था, जिसमें कुछ भवन भी बने हुए थे। वाटिका के स्वामी सेठ मुन्नालाल थे। फैजाबाद के कर्मठ कार्यकर्ता महाशय केदारनाथ की प्रेरणा से सेठ मुन्नालाल ने अपनी वाटिका गुरुकुल के लिए प्रदान कर दी, और स्वामी त्यागानन्द ने वहाँ गुरुकुल को स्थानान्तरित कर दिया।

अयोध्या का यह स्थान गुरुकुल के लिए सर्वथा उपयुक्त था। वहाँ वह तेजी से उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगा। गुरुकुल के कार्य को सुव्यवस्थित करने के प्रयोजन से उसके संविधान तथा नियमावली का निर्माण किया गया, और फरवरी, सन् १९३४ में उसे रजिस्टर्ड करा दिया गया। गुरुकुल का सब प्रबन्ध एक 'साधारण सभा' के अधीन है, जिसके १०१ सभासद् हैं। अमेठी के राजा रणंजयसिंह इस सभा के प्रधान हैं। साधारण सभा द्वारा निर्वाचित ३९ सदस्यों की प्रबन्धकर्त्री सभा है, जिसका स्वरूप गुरुकुल की कार्यकारिणी या अन्तरंग सभा का है। यह सभा शिक्षा-समिति और अर्थसमिति के सदस्यों का चुनाव करती है। ब्रह्मचारियों की शिक्षा तथा आश्रम व्यवस्था का सम्पूर्ण प्रबन्ध शिक्षा-समिति द्वारा उपकुलपति के माध्यम में किया जाता है। इस समिति के ११ सदस्य होते हैं। संस्था की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था कोषाध्यक्ष के माध्यम से अर्थसमिति करती है। इस समिति के पाँच सदस्य होते हैं। ये दोनों समितियाँ प्रबन्धकर्त्री (कार्यकारिणी) सभा के प्रति और प्रबन्धकर्त्री सभा साधारण सभा के प्रति उत्तरदायी है।

वर्तमान समय में गुरुकुल अयोध्या में १२५ ब्रह्मचारी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और उन्हें पढ़ाने के लिए १० अध्यापक नियुक्त हैं। श्री शीलमित्र पाण्डेय गुरुकुल के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य हैं, और उनके साथ जो अन्य ६ महानुभाव अध्यापन का कार्य कर रहे हैं, वे सभी सुयोग्य विद्वान् हैं। गुरुकुल में १४ कक्षाएँ हैं, जिनका पाठ्यक्रम शिक्षा समिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षाएँ गुरुकुल स्वयं लेता है, और विविध स्तर की परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थियों को मेधावी, विद्यावागीश, विद्यामार्तण्ड, विद्यावारिधि और व्याख्यानवाचस्पति की उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा इन उपाधियों को मान्यता प्राप्त है। गुरुकुल का पाठ्यक्रम इस ढंग से बनाया गया है, कि विद्यार्थी श्री सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की शास्त्री व आचार्य पर्यन्त विविध परीक्षाओं में बैठ सकें। संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा गुरुकुल को व्याकरण, साहित्य, सर्वदर्शन तथा सांख्य विषयों में आचार्य स्तर तक स्थायी मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार गुरुकुल अयोध्या के विद्यार्थी गुरुकुलीय उपाधियों के साथ-साथ शास्त्री व आचार्य सदृश संस्कृत की उच्चतम उपाधियाँ भी प्राप्त कर लेते हैं, जो भावी जीवन में उनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

गुरुकुल में ब्रह्मचारियों के निवास, पठन-पाठन तथा भोजन आदि की समुचित व्यवस्था है। निवास के लिए छह बड़े-बड़े भवन हैं, और अध्ययन के लिए चार कमरे हैं। पुस्तकालय, भोजन-भण्डार, गौशाला, अतिथिशाला, आचार्य निवास, यज्ञशाला और औषधालय की इमारतें इनसे पृथक् हैं। ब्रह्मचारियों की संख्या में जिस प्रकार निरन्तर वृद्धि हो रही है, उसके कारण ये इमारतें कम पड़ गई हैं। गुरुकुल के पास ६० बीघे के लगभग कृषि योग्य भूमि भी है। उसकी सम्पूर्ण भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य एक करोड़ रुपये के लगभग है। यह सब सम्पत्ति जनता द्वारा दान से ही प्राप्त हुई है। गुरुकुल में शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क है, पर भोजन-वस्त्र आदि का व्यय संरक्षकों को देना होता है। मेधावी विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं, जिससे भोजन आदि भी वे निःशुल्क रूप से प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि गुरुकुल का खर्च प्रधानतया दान से चलता है, पर अब उसे सरकार द्वारा अनुदान भी दिया जाने लगा है। भारत की केन्द्र सरकार से १८,००० रुपये वार्षिक और उत्तरप्रदेश सरकार से ५३,००० रुपये वार्षिक गुरुकुल को अनुदान प्राप्त होता है।

गुरुकुल का वातावरण धार्मिक है, और ब्रह्मचारियों की दिनचर्या गुरुकुलीय आश्रम पद्धति के अनुसार है। दोनों समय सन्ध्या-हवन होते हैं, जिनमें ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त अन्य सब गुरुकुलवासी भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते हैं। पाठ्यक्रम में महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों को समुचित स्थान दिया गया है, और धर्म की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। "वेद-वेदांगों के पठन-पाठन से धार्मिक, सामाजिक व नैतिक विद्वान् उत्पन्न" करने का जो उद्देश्य इस संस्था के लिए निर्धारित किया गया था, उसकी पूर्ति के लिए यथोचित प्रयत्न गुरुकुल के संचालकों द्वारा किया जा रहा है। यही कारण है, कि इस गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर अनेक स्नातकों ने वैदिक धर्म के प्रचार तथा शिक्षा, विद्वत्ता और समाज सेवा के क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किये हैं। डा० अजयमित्र नागपुर यूनिवर्सिटी में प्राच्य इतिहास विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं, और अब राजस्थान यूनिवर्सिटी, जयपुर में विभागाध्यक्ष हैं। डा० ब्रह्ममित्र अवस्थी राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली में रीडर हैं, और देश-विदेश में संस्कृत के प्रसार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। अखिल भारतीय दर्शन परिषद् के वृन्दावन अधिवेशन (१९७०) में धर्म-दर्शन विभाग की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ओरियण्टल कांग्रेस के पूना अधिवेशन (१९७८) में पालि-बौद्ध विद्या विभाग की वह अध्यक्षता कर चुके हैं। डा० ज्योतिमित्र हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी के आयुर्वेद महाविद्यालय में रीडर हैं। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में पण्डित वसुमित्र ने प्रशंसनीय कार्य किया है। गुरुकुल के अन्य भी कितने ही स्नातक अपने-अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर धर्म तथा समाज की सेवा में उत्साह के साथ कार्यरत हैं। श्री सत्यमित्र शास्त्री तथा श्री विश्वमित्र मेधावी आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ता हैं।

स्वामी त्यागानन्द सरस्वती आजीवन गुरुकुल अयोध्या के आचार्य एवं कुलपति रहे। १७ मार्च, १९६० को उनके देहावसान के पश्चात् ब्रह्मचारी अखिलानन्द गुरुकुल के कुलपति नियुक्त हुए। इनके बाद स्वामी केशवानन्द ने कुलपति के रूप में इस संस्था का संचालन किया। इस समय डा० ज्योतिमित्र गुरुकुल के कुलपति पद पर हैं।

इस संस्था के बहुत-से विद्यार्थियों तथा अध्यापकों ने आर्यसमाज के विविध आन्दोलनों (हैदराबाद सत्याग्रह, गौरक्षा आन्दोलन आदि) में सक्रिय रूप से भाग लिया था, और वे यथाशक्ति आर्यसमाज के कार्यकलाप में हाथ बटाने के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

आर्य गुरुकुल महाविद्यालय, सिरसागंज (मैनपुरी)—उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में सिरसागंज से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९५३ में हुई थी। इसके संस्थापक करावली के निवासी श्री दुर्गपालसिंह थे। गुरुकुल के लिए भूमि श्री अंगनलाल लोधी ने प्रदान की थी, और सेठ ब्रजमोहन लाल ने भवन-निर्माण के लिए उदारतापूर्वक दान दिया था। शुरू के पाँच वर्ष इस संस्था की दशा डाँवाडोल रही, क्योंकि कोई ऐसा सुयोग्य कार्यकर्ता इसे नहीं मिला था, जो सब कार्यों को भली-भाँति सँभाल सकता। सन् १९५८ में आचार्य देवस्वामी के सिरसागंज आकर इस गुरुकुल के संचालन को अपने हाथों में ले लेने पर इसकी दशा में सुधार प्रारम्भ हो गया, और स्थानीय जनता का सहयोग भी संस्था को प्राप्त होने लगा।

गुरुकुल के पास २०० बीघे के लगभग भूमि है, जो खेती के योग्य है। इस पर खेती से गुरुकुल को २० हजार रुपये वार्षिक आमदनी प्राप्त होती है। सिंचाई के लिए संस्था के अपने दो नलकूप हैं, जो बिजली से चलते हैं। २८ कमरे ब्रह्मचारियों के निवास तथा पढ़ाई के लिए विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त यज्ञशाला, स्नानागार आदि अन्य भवन भी वहाँ हैं। गुरुकुल की पाठविधि में संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का प्राधान्य है। पाठ्यक्रम प्रायः वही है, जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा निर्धारित है। विद्यार्थी परीक्षाएँ भी उसी विश्वविद्यालय की देते हैं, और उत्तीर्ण होकर शास्त्री और आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। विद्यार्थियों की संख्या १६० के लगभग रहती है। ये सब गुरुकुल के छात्रावास में निवास करते हैं। दस अध्यापक तथा सात अन्य कर्मचारी संस्था के कार्य में रत हैं। चार कार्यकर्ता अवैतनिक भी हैं।

गुरुकुल सिरसागंज में शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी स्नातक हुए हैं, उनमें बहुत-से ऐसे हैं, जिन्हें विद्वत्ता, शिक्षा तथा समाज सेवा के क्षेत्रों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। श्री विज्ञानभिक्षु मैंगलूर (मैसूर राज्य) में वैदिक साहित्य विद्यालय का संचालन कर रहे हैं, और श्री बलदेव नैष्ठिक गुरुकुल कालवा (जींद) के प्रधानाचार्य हैं। ततारपुर गुरुकुल के श्री घनश्यामसिंह भी इसी गुरुकुल के स्नातक हैं।

गुरुकुल की ओर से एक वानप्रस्थी तथा एक भजनोपदेशक धर्मप्रचार के कार्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नियुक्त है। ये समीप के क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में तत्पर रहते हैं। आर्य वीर दल और आर्य कुमार सभा भी गुरुकुल में विद्यमान है, जिनके माध्यम से ब्रह्मचारियों को आर्यसमाज की सेवा के योग्य बनने का अवसर प्राप्त होता है। आर्यसमाज द्वारा जो आन्दोलन समय-समय पर चलाये जाते रहे हैं, उनमें इस गुरुकुल के शिक्षकों तथा ब्रह्मचारियों ने सदा अपने कर्तव्य का पालन किया। संस्था के प्रधानाचार्य श्री देवस्वामी ने ३० ब्रह्मचारियों के साथ सन् १९६७ के गौरक्षा आन्दोलन में भाग लिया था, और वे एक मास तक अम्बाला जेल में भी रहे थे।

इस संस्था में केवल उत्तरप्रदेश के ही नहीं, अपितु कर्णाटक, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा तथा नेपाल के भी विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। संस्कृत व्याकरण का अध्ययन वहाँ अष्टाध्यायी द्वारा कराया जाता है।

दयानन्द महाविद्यालय गुरुकुल, डोरली—मेरठ नगर से दो मील के लगभग दूरी पर स्थित इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९२४ में हुई थी। इसकी स्थापना व संचालन में मेरठ के प्रसिद्ध नेता चौधरी मुख्तारसिंह का विशेष कर्तृत्व था। इसके प्रबन्ध के लिए स्थानीय व्यक्तियों की एक समिति बनायी गई थी, जिसके प्रधान चौधरी मुख्तारसिंह और मन्त्री पण्डित शिवदयालु थे। मुख्याधिष्ठाता के पद पर भी पण्डित शिवदयालु को ही नियुक्त किया गया था। इस गुरुकुल की अपनी पृथक् व स्वतन्त्र व्यवस्था थी, और पृथक् पाठविधि थी। पाठ्यक्रम में संस्कृत व्याकरण, साहित्य, दर्शनशास्त्र और धर्मशिक्षा के साथ-साथ हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और अंग्रेजी भाषा को भी स्थान दिया गया था। संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य, वेद तथा दर्शनशास्त्र का पाठ्यक्रम गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलिज, वाराणसी (अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) की पाठविधि तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठविधि को दृष्टि में रखकर बनाया गया था। इस बात का ध्यान रखा गया था, कि गुरुकुल के पाठ्यक्रम में आर्ष ग्रन्थों को ही स्थान दिया जाए। व्याकरण आदि के अतिरिक्त अन्य विषयों का पाठ्यक्रम निर्धारित करते हुए गुरुकुल काँगड़ी, काशी विद्यापीठ तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की पाठविधि को दृष्टि में रखा गया था। इस प्रकार इस गुरुकुल की पाठविधि न गुरुकुल काँगड़ी के पाठ्यक्रम के अनुसार थी, और न सरकारी शिक्षणालयों की पाठविधि के अनुसार। वह एक स्वतन्त्र पाठविधि थी, और उसमें कतिपय शिल्पों (सिलाई, कपड़ा बुनना आदि) तथा अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा का भी समावेश कर लिया गया था। शिक्षा के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। विद्यार्थी छात्रावास में रहते हुए अनुशासित जीवन व्यतीत करते थे। भोजन व्यय के लिए शुल्क लिये जाने की व्यवस्था थी। स्वराज्य के समय (सन् १९४७) तक यह गुरुकुल सरकारी नियन्त्रण से मुक्त रह कर स्वतन्त्र रूप से चलता रहा। पर देश में अपनी सरकार के स्थापित हो जाने पर इसे हायर सैकेण्डरी स्कूल के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

गुरुकुल महाविद्यालय, ततारपुर—इस गुरुकुल का संक्षेप से उल्लेख ग्यारहवें अध्याय में भी किया जा चुका है। पर इसकी प्रगति को दृष्टि में रखते हुए इस पर कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डालना उपयोगी है। उत्तरप्रदेश के गाजियाबाद जिले में हापुड़ से गढ़मुक्तेश्वर जाने वाले मार्ग पर यह गुरुकुल स्थित है। १३ जुलाई, १९६५ को श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द द्वारा इसकी स्थापना की गई थी। शुरू में इसका नाम व्यास विद्या-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठ रखा गया था, और इसका उद्घाटन स्वामी ओमानन्दजी ने किया था। धीरे-धीरे इसमें विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती गई, और साथ ही संस्था के लिए भूमि तथा धन की भी प्राप्ति होती गई। सन् १९६८ में यह आवश्यकता अनुभव होने लगी, कि इस संस्था को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए एक प्रबन्ध समिति संगठित कर ली जाए और उसका संविधान बनाकर उसे रजिस्टर्ड भी करा लिया जाए। इसी समय इस संस्था को गुरुकुल महाविद्यालय का नाम दिया गया, और उसके ये उद्देश्य निर्धारित किये गये—देववाणी संस्कृत के माध्यम से वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन, निरुक्त और व्याकरण आदि विषयों के प्रौढ़ और प्रामाणिक विद्वान् तैयार करना; वेद, वैदिक धर्म तथा वैदिक साहित्य का जनता में प्रचार-प्रसार करना; गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और आर्ष पाठविधि को प्रचलित व प्रोत्साहित करना, एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना करना और अनुसन्धान विभाग को संचालित करना।

गुरुकुल ततारपुर श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है, और वहाँ का पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि उसे पढ़कर विद्यार्थी इन दोनों (विद्यापीठ और विश्वविद्यालय) की प्रथमा से आचार्य तक की परीक्षाओं में बैठ सकें और उन्हें उत्तीर्ण कर शास्त्री व आचार्य सदृश उपाधियाँ प्राप्त कर सकें। वर्तमान समय में इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या १२० है, और ८ शिक्षक वहाँ अध्यापनकार्य के लिए नियुक्त हैं। यह एक आवासीय शिक्षणालय है, जिसमें छात्रावास का विशेष महत्त्व है। सब विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त काल से लेकर रात्रि तक की उनकी दिनचर्या सुनिश्चित है। दोनों समय सन्ध्या-हवन होता है, और धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। विद्यालय की प्रत्येक कक्षा में एक घण्टा धर्मशिक्षा के लिए नियत है। धर्मशिक्षा की पाठविधि इस ढंग से बनायी गई है, कि विद्यार्थियों को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान हो जाए और आर्यसमाज का कार्य करने के लिए उन्हें प्रेरणा प्राप्त हो। गुरुकुल ततारपुर में केवल समीप के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी ही प्रविष्ट नहीं होते, अपितु बिहार, उड़ीसा आदि सुदूरवर्ती प्रदेशों के विद्यार्थी भी वहाँ विद्याध्ययन के लिए आते हैं। कुछ विद्यार्थी नेपाल सदृश विदेशों से भी वहाँ पढ़ने के लिए आये हैं। श्री गोपालप्रसाद उपाध्याय गुरुकुल ततारपुर के स्नातक हैं, और इस समय वह नेपाल में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं। इस गुरुकुल के एक अन्य स्नातक श्री हरिकृष्ण शास्त्री ने बिजनौर जिले में गुरुकुल महाविद्यालय कुण्डा (डाकखाना-पावटी) की स्थापना की है। इसी प्रकार कितने ही अन्य स्नातक भारत के विविध प्रदेशों में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्नशील हैं। आर्यसमाज द्वारा चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलनों में भी इस गुरुकुल के विद्यार्थी एवं कार्यकर्ता सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं।

गुरुकुल ततारपुर की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य छह लाख रुपये के लगभग है। यह सब सम्पत्ति प्रायः जनता के दान द्वारा ही प्राप्त हुई है। छात्रावास, विद्यालय आदि के सब भवन पक्के एवं सुन्दर बने हुए हैं। इस संस्था की इमारतों में यज्ञशाला विशेष रूप से आकर्षक है। गुरुकुल के पुस्तकालय में ५,००० के लगभग पुस्तकें हैं, और वहाँ वेद, बाइबल, पुराण, कुरान आदि विविध धर्मों के मान्य ग्रन्थों का उत्तम संग्रह है। गुरुकुल का अपना प्रकाशन विभाग भी है, जिस द्वारा 'वैदिक सुमन संग्रह' सदृश अनेक उपयोगी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस विभाग द्वारा 'प्रेरणा' नामक एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जा रही है। इसमें सन्देह नहीं, कि गाजियावाद तथा मेरठ आदि जिलों के संस्कृत शिक्षणालयों में इस संस्था को सम्मानास्पद स्थान प्राप्त है, और इसे केन्द्र वनाकर आर्यसमाज का कार्य सुचारु रूप से किया जा रहा है। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री रामस्वरूप आर्य और प्राचार्य श्री धर्मपाल आर्य लगन तथा उत्साह से इस संस्था के संचालन में तत्पर हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्कृत गुरुकुल महाविद्यालय, गाजियाबाद—सन् १९३९ में आर्यसमाज गाजियावाद द्वारा एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की गई थी, जिसका नाम 'दयानन्द वेद विद्यालय' रखा गया था। एक धर्मशाला में इसके लिए स्थान ले लिया गया था, और श्री कर्णदेव शास्त्री के आचार्यत्व में वहाँ पठन-पाठन प्रारम्भ कर दिया गया था। पर यह विद्यालय देर तक कायम नहीं रह सका। आर्थिक कठिनाइयों के कारण सन् १९४० में इसे बन्द कर देना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य वीर दल के प्रधान संचालक श्री वाल दिवाकर हंस' की प्रेरणा से गाजियावाद आर्यसमाज मन्दिर में 'आर्ष गुरुकुल' के नाम से सन् १९७५ से पुनः एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की गई, और श्री गणेश शंकर को उसका आचार्य नियुक्त किया गया। सन् १९७७ में इस संस्था ने व्यवस्थित रूप प्राप्त कर लिया। इसका विधान वनाया गया, और 'महर्षि दयानन्द संस्कृत गुरुकुल महाविद्यालय, पटेल मार्ग, गाजियावाद' नाम से सरकार में उसका पंजीकरण करा लिया गया। विधान के अनुसार इस संस्था के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—(१) महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदोक्त (वैदिक) सिद्धान्तों के आधार पर देववाणी (संस्कृत भाषा) का प्रचार एवं प्रसार करना। (२) सम्पूर्णानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के पाठ्यक्रम के आधार पर प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, आचार्य आदि परीक्षाएँ दिलाना। शिक्षाशास्त्री एवं शिक्षाचार्य परीक्षाएँ भी दिलाना। (३) संस्कृत को सरल भाषा का रूप देना, वोलचाल की भाषा वनाना, मासिक-पाक्षिक व दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रचलित करना। (४) संस्कृत प्रचारार्थ शिविर चलाना। (५) प्रारम्भिक शिक्षा में भी संस्कृत माध्यम रखना। (६) संस्कृत शिक्षा के माध्यम से ग्रामीण तथा शहरी जीवन का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्तर ऊँचा करना।

इस महाविद्यालय की स्थापना प्रधानतया संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन तथा प्रचार के लिए ही की गई है। यथार्थ में यह एक संस्कृत महाविद्यालय है, जिसमें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई होती है, और विद्यार्थी उसी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर शास्त्री, आचार्य आदि उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। पर महाविद्यालय के साथ एक छात्रावास भी है, जिसमें ६० के लगभग विद्यार्थी निवास करते हैं। विद्यार्थियों की कुल संख्या ७६ है। महाविद्यालय में दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को प्रविष्ट किया जाता है, छात्रावास में रहने वाले और केवल पढ़ाई के लिए आने वाले। जो विद्यार्थी छात्रावास में नहीं रहते, धर्मशिक्षा उनके लिए भी अनिवार्य है, और वे भी सन्ध्या-हवन तथा प्रार्थना में उपस्थित होते हैं। गाजियावाद आर्य-समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों तथा उस द्वारा आयोजित सभा-सम्मेलनों में सब विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की दिनचर्या गुरुकुलों के समान है, और इसी कारण इस संस्था का 'गुरुकुल' नाम सार्थक है। महाविद्यालय के आचार्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद पर श्री समरभानुजी व्याकरणाचार्य नियुक्त हैं। उनके अतिरिक्त पाँच अन्य अध्यापक हैं। महाविद्यालय की अपनी भूमि, भवन तथा छात्रावास आदि हैं। इनके लिए जहाँ आर्यसमाज गाजियावाद ने रुपया लगाया है, वहाँ ७५ हजार के लगभग धनराशि दान द्वारा भी प्राप्त हुई है। धन एकत्र करने में श्री परमानन्द आर्य और चौधरी अमरसिंह का विशेष कर्तृत्व रहा है। गुरुकुल महाविद्यालय का संचालन आर्यसमाज गाजियावाद की अन्तरंग सभा द्वारा होता है, जिसने इस प्रयोजन से एक उपसमिति वनायी हुई है। उप-समिति की सदस्य-संख्या पाँच है।

सरकार द्वारा इस संस्था को कोई अनुदान प्राप्त नहीं होता। इसकी आमदनी के साधन विद्यार्थियों से लिया जाने वाला शुल्क और अन्न व धन के रूप में जनता द्वारा दिया जाने वाला दान है। गुरुकुल के कार्यकर्ता समीपवर्ती ग्रामों और नगरों से अन्न एकत्र करते हैं, जिसकी मात्रा सन् १९८२ की रवी की फसल में २९५१ किलोग्राम थी। विद्यार्थियों से ५० रुपये मासिक शुल्क लिया जाता है, जिससे उनके निवास, भोजन आदि की समुचित व्यवस्था हो जाती है। संस्था का वार्षिक व्यय ५५ हजार रुपये के लगभग है। कुछ विद्यार्थी ऐसे भी हैं, जिनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता या जिनसे आधा शुल्क लिया जाता है।

वर्तमान रूप में इस शिक्षण-संस्था को स्थापित हुए केवल पाँच वर्ष हुए हैं। पर इस अवधि में ही इसने जो प्रगति कर ली है, उससे यह आशा की जा सकती है, कि भविष्य में यह संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र वन जाएगी।

गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी (मेरठ)—मेरठ से दस मील के लगभग दूर गंगा की नहर के तट पर यह गुरुकुल स्थित है। सन् १९३९ में पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द) ने वैदिक वर्णाश्रमव्यवस्था के पुनरुद्धार के उद्देश्य को सम्मुख रख-कर इसकी स्थापना की थी। वाद में स्वामी विवेकानन्द सरस्वती ने इसका कार्यभार सँभाला, और उनके अनथक परिश्रम से यह संस्था निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होती गई। इस गुरुकुल में न केवल शिक्षा ही निःशुल्क है, अपितु भोजन, निवास, वस्त्र आदि के लिए भी कोई खर्च नहीं लिया जाता। संस्था का सारा खर्च जनता के दान से चलता है। सरकारी अनुदान का तो उसके लिए कोई प्रश्न ही नहीं है। ब्रह्मचारियों की दिनचर्या पूर्ण रूप से अनुशासित है। शिक्षा तथा आश्रम की व्यवस्था महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के अनुसार है। अमीर-गरीव, सवर्ण-हरिजन, ऊँच-नीच आदि का कोई भी भेद न कर सव ब्रह्मचारी वहाँ एक सदृश जीवन विताते हैं, और अपने विकास का समान अवसर प्राप्त करते हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी अपने सव काम स्वयं करते हैं, जिससे उन्हें स्वावलम्वी वनने की शिक्षा प्राप्त होती है। पाठविधि में संस्कृत, वेदशास्त्र तथा आर्ष ग्रन्थों के साथ-साथ अंग्रेजी की पढ़ाई की भी व्यवस्था है। स्वामी विवेकानन्द केवल शिक्षा-शास्त्री ही नहीं हैं, अपितु योगाभ्यास और साधना में भी उनकी गति है। उनके सात्विक व साधनामय जीवन का प्रभाव ब्रह्मचारियों पर पड़ता है, और अनेक कर्मठ व्यक्ति उनसे प्रभावित होकर इस संस्था के लिए धन जुटाने व अन्य सब प्रकार से सहायता करने में भी तत्पर रहते हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के मन्त्री श्री इन्द्रराज इस गुरुकुल की उन्नति के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं।

श्री सर्वदानन्द संस्कृत महाविद्यालय, साधु आश्रम, अलीगढ़—यह संस्था अलीगढ़

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहर से १० मील के लगभग दूर काली नदी के तट पर स्थित है। सन् १९१० में आर्य-समाज के प्रसिद्ध वीतराग संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती ने इसे स्थापित किया था। कहा जाता है कि जब महर्षि दयानन्द सरस्वती छलेसर में निवास कर रहे थे, तो काली नदी के पुल पर बैठे हुए भक्त-जनों से उन्होंने कहा था, कि इस नदी के तट पर गुरुकुल की स्थापना की जानी चाहिये। महर्षि की इस इच्छा को दृष्टि में रखकर ही स्वामी सर्वदानन्द ने अपने चार शिष्यों को साथ लेकर इस विद्यालय का प्रारम्भ किया था। इस संस्था के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—(१) प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की पुनः स्थापना। (२) संस्कृत भाषा के उच्च स्तरीय अध्ययन व अध्यापन का केन्द्र स्थापित करना। (३) छात्रों का चरित्र निर्माण कर देश को सभ्य नागरिक प्रदान करना। (४) वैदिक धर्म व संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना। (५) धार्मिक शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था द्वारा नैतिक मूल्यों की स्थापना। (६) छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के लिए विश्वविद्यालय की मान्य परीक्षाओं की व्यवस्था करना। (७) वैदिक विद्वानों को समय-समय पर आमन्त्रित कर छात्रों का ज्ञान-वर्धन करना। (८) वैदिक साहित्य का उच्च स्तरीय अनुसन्धान व प्रकाशन करना। (९) आवासीय शिक्षा व्यवस्था द्वारा छात्रों में अनुशासन की भावना भरना। (१०) समान शिक्षा का अवसर प्रदान कर समतामूलक समाज की संरचना करना।

यद्यपि इस शिक्षा-संस्था के नाम के साथ गुरुकुल शब्द प्रयुक्त नहीं किया गया है, पर यथार्थ में यह एक गुरुकुल ही है। इसमें विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में रहना आवश्यक है और वहाँ उनकी दिनचर्या नियत है। प्रातः ४ बजे सो कर उठ कर वे मन्त्रपाठ करते हैं, और फिर शौच, दन्तधावन, योगासन और स्नान से निवृत्त होकर सन्ध्या व अग्निहोत्र करते हैं। विद्यालय में पढ़ाई, स्वाध्याय, भोजन आदि सब नियत समय पर किये जाते हैं। रात को सोने का समय ९ बजकर ४० मिनट पर रखा गया है। विद्यार्थियों के लिए वेश नियत है। वे धोती-कुर्ता पहनते हैं। सिर के बाल छोटे रखते हैं। सिर पर चोटी रखना तथा यज्ञोपवीत धारण करना उनके लिए अनिवार्य है। महाविद्यालय में शिक्षा निःशुल्क है। पर भोजन के खर्च के लिए ५० रुपये मासिक शुल्क लिया जाता है। वस्त्रों की व्यवस्था भी ब्रह्मचारियों के संरक्षकों को करनी होती है। धूम्रपान करना, मद्य-मांस का सेवन तथा सिनेमा देखना केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, अपितु सब कुल-वासियों के लिए वर्जित है। अध्ययन काल में विद्यार्थियों को घर जाने के लिए अवकाश नहीं दिया जाता। पर किसी विशेष परिस्थिति में प्रधानाचार्य इसके लिए अनुमति दे सकते हैं। यह सब व्यवस्था वही है, जो गुरुकुल काँगड़ी व अन्य गुरुकुलों में अपनायी गई थी।

इस महाविद्यालय में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार पढ़ाई की व्यवस्था है। विद्यार्थी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठते हैं, और उन्हें उत्तीर्ण कर शास्त्री, आचार्य आदि की उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। ये उपाधियाँ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं, अतः इन्हें प्राप्त कर लेने पर श्री सर्वदानन्द संस्कृत महा-विद्यालय के स्नातकों को जीविकोपार्जन तथा जीवन संघर्ष में आगे बढ़ने के समुचित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। पर वाराणसी के संस्कृत विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के साथ-साथ विद्यार्थियों को धर्मशिक्षा का विषय भी अनिवार्य रूप से पढ़ना होता है। उच्च कक्षाओं में वेद-वेदांगों व उपांगों की भी शिक्षा दी जाती है। इनके कारण विद्यार्थी वैदिक सिद्धान्तों में भी निष्णात हो जाते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती जीवित रहे, इस महाविद्यालय का संचालन वही करते रहे। उनके देहावसान के बाद स्वामीजी के सुयोग्य शिष्य स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती ने इसका कार्यभार सँभाला और सफलतापूर्वक इसका संचालन किया। अब इसकी सब व्यवस्था एक प्रबन्ध समिति द्वारा की जाती है। आर्यसमाज के क्षेत्र में इस शिक्षण-संस्था का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है, और सैकड़ों विद्यार्थी वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर देश, धर्म व समाज की सेवा में तत्पर हैं।

श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल, नगला कटीला—उत्तरप्रदेश के एटा जिले में नगला कटीला के समीप सन् १९७३ में इस गुरुकुल की स्थापना हुई थी। इस प्रदेश के एक सज्जन श्री पन्नालाल कट्टर आर्यसमाजी थे। सन् १९५८ में उन्होंने ही नगला कटीला में आर्यसमाज की स्थापना की थी। श्री पन्नालाल ने इच्छा प्रकट की थी, कि मेरी मृत्यु के उपरान्त अमुक स्थान पर एक यज्ञशाला का निर्माण करा दिया जाए। उनकी इस अन्तिम इच्छा को उनकी पत्नी श्रीमती नारायणी देवी तथा पुत्र श्री मलखानसिंह 'मधुर' ने पूरा करने का निश्चय किया। २० मार्च, १९७३ को नगला कटीला आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के सम्मुख जब यज्ञशाला के निर्माण का प्रश्न उपस्थित हुआ, तो वहाँ यह निर्णय किया गया, कि यज्ञशाला के साथ एक गुरुकुल भी स्थापित कर दिया जाए, ताकि विद्यार्थी संस्कृत पढ़कर धर्म तथा समाज का कार्य कर सकें। श्रीमती नारायणी देवी ने ४१५५ रुपये प्रदान कर इस निर्णय को क्रियान्वित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। नगला कटीला के निवासियों ने इस योजना का हृदय से स्वागत किया, और उसे सफल बनाने में कोई कसर शेष नहीं छोड़ी। श्री मलखानसिंह 'मधुर' ने अपना तन-मन-धन सब इसके लिए न्यौछावर कर दिया। गुरुकुल के सम्मुख जब भी आर्थिक संकट उपस्थित हुआ, उसके निवारण के लिए उन्होंने घर के जेवर तक बेच डालने में संकोच नहीं किया। उन्हीं की लगन तथा उत्साह का यह परिणाम है, कि दस वर्ष से भी कम समय में यह गुरुकुल अपने पैरों पर खड़ा हो गया है, और ५० के लगभग विद्यार्थी इसमें संस्कृत तथा सत्शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आचार्य दिवाकर शर्मा इस संस्था के प्रधानाचार्य पद पर नियुक्त हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा निर्धारित पाठविधि का गुरुकुल में अनुसरण किया जा रहा है, और विद्यार्थी उसी की परीक्षाएँ देते हैं। उत्तर मध्यमा तक की परीक्षाओं के लिए गुरुकुल को मान्यता मिल चुकी है। संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पाठ्यक्रम के साथ-साथ सत्यार्थप्रकाश, संस्कार-विधि आदि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन भी सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। जब किसी विद्यार्थी को गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है, तो सबसे पहले उसे ईश्वरोपासना और सन्ध्या के मन्त्र तथा आर्यसमाज के दस नियम कण्ठस्थ कराये जाते हैं, और इन्हें कण्ठस्थ कर लेने पर ही उसका प्रवेश मान्य माना जाता है। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क है, पर भोजन-वस्त्र आदि का व्यय विद्यार्थियों से लिया जाता है। छात्रावास में विद्यार्थियों की दिनचर्या पूर्णतया गुरुकुलीय पद्धति के अनुसार है।

श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा–उत्तरप्रदेश के मेरठ ज़िले में बड़ौत नगर से १० मील के लगभग दूर यह संस्था उस स्थान पर स्थित है, जहाँ महाभारत की कथा के अनुसार पाण्डवों के दाह के प्रयोजन से कौरवों ने एक लाक्षागृह का निर्माण कराया था। यह स्थान बरनावा ग्राम के समीप एक टीले के रूप में है। आर्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् ब्रह्मचारी कृष्णदत्त का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ, और उन्होंने उसे अपने कार्यकलाप का केन्द्र बनाने का निश्चय किया। उनका विचार था, कि वेद-शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन तथा वैदिक धर्म के प्रचार के उद्देश्य को सम्मुख रखकर इस स्थान पर एक गुरुकुल की स्थापना की जाए। स्थानीय जनता ने उनके इस विचार का स्वागत किया। जुलाई, १९७७ में ब्रह्मचारी जी का विचार क्रियान्वित हो गया, और महानन्द संस्कृत महाविद्यालय नाम से वहाँ एक गुरुकुल की स्थापना कर दी गई। आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय सिरसागंज (मैनपुरी) के स्नातक श्री अनिलकुमार शास्त्री को इस शिक्षण-संस्था का आचार्य नियुक्त किया गया, और चार अन्य विद्वान् (जो विभिन्न गुरुकुलों के स्नातक थे) अध्यापन के लिए रखे गये। महाविद्यालय को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध किया गया, और आर्ष पद्धति से पठन-पाठन हेतु यह व्यवस्था की गई कि इस संस्था के विद्यार्थी वाराणसीय संस्कृत विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में 'प्राच्य व्याकरण' विषय का अध्ययन किया करें। सन् १९७७ से इस महाविद्यालय को सरकार द्वारा अनुदान भी दिया जाने लगा, जिसके कारण इसकी आर्थिक दशा पर्याप्त रूप से सन्तोषजनक हो गई। वर्तमान समय में इस संस्था में ७५ विद्यार्थी हैं। वे सब छात्रावास में निवास करते हैं। उनकी दिनचर्या गुरुकुलीय आश्रम-पद्धति के अनुसार है। वे प्रातः ४ बजे सोकर उठते हैं, फिर नित्य कर्मों से निवृत्त होकर आसन, प्राणायाम तथा सन्ध्या-हवन करते हैं। धार्मिक प्रवचन प्रतिदिन होते हैं। प्रातः ४ बजे से लगा कर रात साढ़े ९ बजे तक विद्यार्थियों का सारा समय नियमित कार्यक्रम के अनुसार व्यतीत होता है। विद्यार्थियों से शिक्षा का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। भोजन का शुल्क केवल ३० रुपये मासिक है। महाविद्यालय के पुस्तकालय में ५००० के लगभग पुस्तकें हैं, जिनमें वैदिक एवं आर्ष ग्रन्थों का बाहुल्य है।

महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह की स्थापना एवं संचालन में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त का प्रमुख कर्तृत्व है। ब्रह्मचारीजी विलक्षण प्रतिभा के धनी हैं, और याज्ञिक कर्मकाण्ड तथा वैदिक धर्म में उनकी अगाध आस्था है। लाक्षागृह में वह प्रतिवर्ष चतुर्वेद-पारायण यज्ञ कराते हैं, और उनकी प्रेरणा से अन्यत्र भी याज्ञिक अनुष्ठान होते रहते हैं।

गुरुकुल बनत (मुजफ्फरनगर)—यह गुरुकुल मुजफ्फरनगर जिले में बनत के समीप स्थित है। श्री स्वामी सदानन्द यती ने जून, सन् १९५५ में इसकी स्थापना की थी, और इसके प्रथम आचार्य श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री थे। स्वामी सदानन्द के देहावसान के पश्चात् सन् १९६६ से १९७६ तक यह गुरुकुल बन्द रहा। अब श्री हरिश्चन्द्र भास्कर ने इसे पुनः स्थापित किया है। श्री हरिश्चन्द्र गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक हैं। १९६६ में पुनः स्थापित होकर यह संस्था धीरे-धीरे उन्नति कर रही है। वर्तमान समय में इसमें २०० के लगभग विद्यार्थी हैं, और आठ अध्यापक हैं। पर छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या चार-पाँच से अधिक नहीं है। आठवीं कक्षा तक इसमें सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई होती है, और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रथमा और मध्यमा परीक्षाओं की भी तैयारी करायी जाती है। धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। आर्यसमाज शिक्षा सभा, अजमेर ने धर्मशिक्षा की विविध कक्षाओं के लिए जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं, उन्हीं के अनुसार इस विषय की सबको शिक्षा दी जाती है। दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या और हवन में उपस्थित होना न केवल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थियों, अपितु अध्यापकों के लिए भी अनिवार्य है। जिन महानुभावों ने इस गुरुकुल के लिए भूमि प्रदान की है, उनमें बाबा भँवरसिंह प्रमुख हैं।

गुरुकुल घासीपुरा—यह गुरुकुल मुजफ्फरनगर से छह मील की दूरी पर स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९३४ में स्वामी कल्याणदेव द्वारा एक पाठशाला के रूप में की गई थी। पाँच वर्ष पश्चात् इसे गुरुकुल का रूप दे दिया गया। परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण सन् १९६८ में यह गुरुकुल बन्द हो गया। पर सन् १९७१ में आयुर्वेद के शिक्षणालय के रूप में इसे पुनःस्थापित किया गया, और स्वामी कल्याणदेव के प्रयत्न से आयुर्वेद महाविद्यालय के रूप में गुरुकुल घासीपुरा का सुव्यवस्थित रूप से संचालन होने लगा। वर्तमान समय में इस संस्था में ७० के लगभग विद्यार्थी हैं, और पाँच अध्यापक हैं। इस गुरुकुल की पुनःस्थापना में श्री हरिश्चन्द्र भास्कर का उल्लेखनीय कर्तृत्व था।

गीताराम गुरुकुल महाविद्यालय, नगवा सरौरा—इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९७८ में श्री ब्रह्मचारी गीताराम और श्री हरिश्चन्द्र भास्कर द्वारा मेरठ-सरधना रोड पर नगवा सरौरा ग्राम के समीप हिण्डन नदी के तट पर एक सुरम्य स्थान पर की गई थी। गुरुकुल के लिए ब्रह्मचारी गीताराम ने ३० बीघा भूमि और ८ बीघे का एक बाग प्रदान किया था। यह गुरुकुल अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। ८५ ब्रह्मचारी वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जिनमें २० छात्रावास में रहते हैं। अध्यापकों की संख्या चार है। ब्रह्मचारी ओमपाल गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता हैं। गुरुकुल काँगड़ी द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था है। अध्यापकों तथा ब्रह्मचारियों के लिए दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या तथा हवन में सम्मिलित होना अनिवार्य है।

आर्य महाविद्यालय, किरठल (जिला मेरठ)—इस संस्था की स्थापना मई, १९२० में स्वामी विचारानन्दजी द्वारा की गई थी। शुरू के ९ वर्षों में यह एक साधारण संस्कृत पाठशाला रही। पर सन् १९२९ में जब पण्डित जगदेव सिद्धान्ती ने इसका कार्यभार सँभाला, तो इसकी निरन्तर उन्नति होती गई। विद्यार्थियों के निवास के लिए छात्रावास खोला गया, और उसमें रहन-सहन व दिनचर्या आदि की प्रायः वही व्यवस्था की गई जो गुरुकुलों में होती है। सिद्धान्तीजी के प्रयत्न से यह महाविद्यालय संस्कृत भाषा तथा वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। विद्यार्थियों को पंजाब यूनिवर्सिटी की प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री परीक्षाएँ दिलायी जाने लगीं, पर साथ ही धर्मशिक्षा का विषय अनिवार्य रूप से सबको पढ़ाया जाता रहा। इस काल में जिन विद्यार्थियों ने आर्य महाविद्यालय, किरठल में नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त की, उनमें पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। वह आर्यसमाज के सुयोग्य विद्वान् एवं मूर्धन्य नेता थे। तीन साल वह गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे थे, और लोक सभा के सदस्य भी चुने गये थे। सन् १९४४ में पण्डित जगदेव सिद्धान्ती आर्यसमाज के व्यापक क्षेत्र में कार्य करने के लिए जब दिल्ली चले गये, तो पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री उनके स्थान पर इस संस्था के मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य नियुक्त हुए। उन द्वारा इस महाविद्यालय की और भी अधिक उन्नति हुई। सन् १९५१ में श्री शिवपूजनसिंह शास्त्री ने इस संस्था का कार्यभार सँभाला, और सन् १९८० तक वह योग्यतापूर्वक इसका संचालन करते रहे। उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी के स्थान पर श्री सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री और आचार्य परीक्षाएँ दिलाना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू किया, पर धर्मशिक्षा की अनिवार्य रूप से पढ़ाई को पूर्ववत् जारी रखा। उनके सुप्रबन्ध से महाविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या १५० के लगभग हो गई थी, और उसमें शिक्षा प्राप्त कर अनेक विद्यार्थियों ने विद्वत्ता, समाज सेवा और धर्मप्रचार के क्षेत्र में अच्छा नाम पैदा किया। वर्तमान समय श्री शिवदत्त शास्त्री महाविद्यालय के आचार्य हैं, और प्रबन्ध का कार्य श्री चन्द्रप्रकाश शास्त्री के हाथ में है।

इस संस्था के पास ८० बीघा भूमि है। विद्यालय, छात्रावास, यज्ञशाला, पुस्तकालय आदि की सब इमारतें पक्की बनी हुई हैं। भू-भवन सम्पत्ति का मूल्य २५ लाख रुपये के लगभग है। संस्था के श्री मुंशीसिंह पुस्तकालय में पाँच हजार के लगभग पुस्तकें हैं। महाविद्यालय में प्रातः और सायं दोनों समय सन्ध्या-हवन किये जाते हैं, जिनमें सब विद्यार्थियों और अध्यापकों की उपस्थिति आवश्यक होती है। हैदराबाद सत्याग्रह आदि में इस संस्था के विद्यार्थी और कार्यकर्ता भाग लेते रहे हैं।

गुरुकुल रोहणियाँ (जिला बरेली)—यह गुरुकुल बरेली नगर के उत्तर-पूर्व में बहेड़ी के समीप स्थित है। इसकी स्थापना सन् १९७५ में पण्डित ओम्प्रकाश वेदालंकार द्वारा की गई थी। वही कुलपति के रूप में इसका संचालन कर रहे हैं। आचार्य के पद पर पण्डित बलवीरसिंह व्याकरणाचार्य नियुक्त हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पाठविधि के अनुसार शिक्षा देना और वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्न करते रहना इस गुरुकुल के उद्देश्य हैं। यह गुरुकुल श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर के साथ सम्बद्ध है। उसी द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार यहाँ पढ़ाई होती है, और विद्यार्थी उसी की परीक्षाएँ देते हैं। सन् १९८२ तक इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या ८२ हो गई थी। विद्यार्थियों और अध्यापकों—सबको दैनिक सन्ध्या-हवन में अनिवार्य रूप से सम्मिलित होना होता है। शनिवार तथा रविवार को गुरुकुल के आचार्य विद्यार्थियों को साथ लेकर समीप के ग्रामों में जाते हैं, और वहाँ ओ३म् की ध्वजा फहरा कर वैदिक धर्म का प्रचार करते हैं। संस्था २३ बीघे भूमि में है, और उसकी भू-भवन सम्पत्ति का मूल्य दो लाख रुपये के लगभग है। गुरुकुल रोहणियाँ के संस्थापक श्री ओम्प्रकाश वेदालंकार रोहतक (हरयाणा) जिले के निवासी हैं, और गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं।

उत्तरप्रदेश के कतिपय अन्य गुरुकुल—बहराइच जिले में गिलौला नामक स्थान पर श्री सुरभारती निगम विद्यापीठ गुरुकुल नाम की एक संस्था है, जिसकी स्थापना सन् १९४३ में स्वामी त्यागानन्द सरस्वती द्वारा की गई थी। इसमें विद्यार्थियों की संख्या २५० के लगभग है, और मध्यमा स्तर तक संस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था है। बिजनौर जिले के कुण्डा ग्राम में एक गुरुकुल महाविद्यालय है, जो सन् १९८० में स्थापित हुआ था। वहाँ भी मध्यमा स्तर तक संस्कृत की शिक्षा दी जाती है, और २०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। देवरिया का श्री घनश्यामदास आर्य वैदिक महाविद्यालय गुरुकुल सन् १९२९ में स्थापित हुआ था। इस संस्था में आचार्य स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। सिकन्दराबाद और बिरालसी में स्वामी दर्शनानन्द द्वारा गुरुकुलों की स्थापना की गई थी। वहाँ अब भी गुरुकुल विद्यमान हैं। आर्योला (बरेली) में भी एक गुरुकुल था, जिसका संचालन डा० श्यामस्वरूप के हाथों में था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) आन्ध्र प्रदेश के गुरुकुल

गुरुकुल घटकेश्वर—आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद से १४ मील की दूरी पर घटकेश्वर ग्राम के समीप यह गुरुकुल स्थित है। इस संस्था की स्थापना सन् १९३८ में अनन्तगिरि के एक मन्दिर में की गई थी। पर वहाँ की जलवायु गुरुकुल के लिए अनुकूल नहीं थी। चार वर्ष तक यह संस्था वहाँ रही। फिर सन् १९४२ में इसे घटकेश्वर में ले आया गया। गुरुकुल की स्थापना आर्यसमाज के तपस्वी नेता पण्डित वंशीलाल व्यास ने की थी, और इसके लिए उन्होंने अपनी सब सम्पत्ति प्रदान कर दी थी। अपने श्वसुर से प्राप्त एर्संगड्ढे की ६०० एकड़ भूमि भी उन्होंने संस्था के नाम कर दी थी। हैदरावाद के समीप गुरुकुल के आ जाने पर वहाँ की निजामशाही सरकार का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ, और वहाँ के धर्मान्ध मुसलमान भी इससे आशंकित हो गये। उन्होंने गुरुकुल को बन्द करवाने के लिए भरसक प्रयत्न किया, और इसी प्रयोजन से व्यासजी पर बम्ब द्वारा आक्रमण भी किया गया। पर इस बम्ब से हत्यारा स्वयं घायल हो गया, और व्यासजी बाल-बाल बच गये। सरकार तथा धर्मान्ध मुसलमानों की क्रूर दृष्टि की परवाह न करके पण्डित वंशीलाल व्यास गुरुकुल की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे, और उन्हीं की लगन व आस्था के कारण इस गुरुकुल ने हैदराबाद की शिक्षण-संस्थाओं में अपने लिए समुचित स्थान बना लिया।

गुरुकुल घटकेश्वर में शिक्षा का माध्यम हिन्दी था। हैदराबाद आन्ध्र प्रदेश में है, और वहाँ की भाषा तेलुगू है। पर क्योंकि वहाँ का शासन निजाम के हाथों में था, अतः उर्दू वहाँ की राजभाषा थी, और सब सरकारी कार्य उर्दू में हुआ करते थे। हैदराबाद की प्रधान शिक्षण-संस्था उस्मानिया यूनिवर्सिटी में पढ़ाई भी उर्दू के माध्यम से होती थी। इस दशा में हिन्दी के माध्यम से किसी शिक्षण-संस्था को चलाना सुगम नहीं था। पर आर्यसमाज हिन्दी को सम्पूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में है। महर्षि दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी, पर उन्होंने अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भी उन्होंने इसी भाषा को प्रयुक्त किया। आर्यसमाज के क्षेत्र में हिन्दी को आर्यभाषा कहा जाता है। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि आर्य-समाज द्वारा स्थापित गुरुकुल घटकेश्वर में हिन्दी के माध्यम से पढ़ाई हो। सन् १९४७ तक इस संस्था में वाराणसी के गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलिज की पाठविधि के अनुसार पढ़ाई होती थी, और विद्यार्थी उसी की प्रथमा, मध्यमा और शास्त्री परीक्षाओं में बैठा करते थे। स्वराज्य के पश्चात् कुछ समय तक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम वहाँ चलाया गया।

सन् १९४८ में गुरुकुल घटकेश्वर को भयंकर संकट का सामना करना पड़ा। उस समय हैदराबाद में रजाकारों ने बहुत अव्यवस्था मचायी हुई थी। कासिम रिजवी के नेतृत्व में वे हिन्दुओं पर अत्याचार करने में तत्पर थे। उनका प्रयत्न था, कि हैदराबाद रियासत भारत के गणराज्य के अन्तर्गत न होने पाए; या तो वह पाकिस्तान के अन्तर्गत हो जाए और या सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न पृथक् राज्य की स्थिति प्राप्त कर ले। निजाम-शाही सरकार का समर्थन रजाकारों को प्राप्त था। वे यह कैसे सहन कर सकते थे, कि हैदराबाद के समीप एक ऐसी संस्था फूले-फले, जो भारतीय संस्कृति तथा वैदिक धर्म का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र थी। सरकार समझती थी, कि गुरुकुल बम्ब बनाने का केन्द्र है। अफसरों की उस पर क्रूर दृष्टि थी। दूसरी ओर हजारों रजाकार चारों ओर से घेर कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देने की तैयारी कर रहे थे। इस दशा में पण्डित बंशीलाल व्यास ने यह उचित समझा, कि गुरुकुल को सामयिक रूप से किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाया जाए। इसीलिए सब ब्रह्मचारियों तथा शिक्षकों को छह मास के लिए गुरुकुल होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) भेज दिया गया। भारत सरकार द्वारा की गई पुलिस कार्यवाही से जब हैदराबाद में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो गई, तो ब्रह्मचारी और शिक्षक घटकेश्वर वापस आ गये।

जिन कारणों से गुरुकुल सूपा, गुरुकुल सोनगढ़ आदि शिक्षण-संस्थाओं ने गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के स्थान पर सरकारी शिक्षणालयों की पाठविधि को अपनाया था, उन्हीं से गुरुकुल घटकेश्वर में भी आन्ध्र प्रदेश के स्कूलों के पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा का प्रारम्भ किया गया। जिसके परिणामस्वरुप इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। इस गुरुकुल का प्रारम्भ ४ विद्यार्थियों से हुआ था, पर अब वहाँ विद्यार्थियों की संख्या ६०० के लगभग है। २७ अध्यापक वहाँ अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। हिन्दी और तेलुगू भाषाओं के माध्यम से हाईस्कूल तक की पढ़ाई का वहाँ प्रबन्ध है। विज्ञान की शिक्षा के लिए उपयुक्त उपकरण भी वहाँ विद्यमान हैं। विद्यालय के साथ एक पुस्तकालय भी है, जिसमें विभिन्न विषयों की ६,००० के लगभग पुस्तकों का संग्रह है। श्री व्यासजी के प्रयत्न से इसमें वे सब भवन विद्यमान हैं, जो किसी समुन्नत शिक्षण-संस्था के लिए आवश्यक होते हैं। छात्रावास, विद्यालय, भोजनशाला, परिवार गृह, व्यायामशाला, पुस्तकालय, अतिथिशाला आदि की सब इमारतें वहाँ हैं, जिनके लिए व्यासजी ने बड़े परिश्रम से धन एकत्र किया था। गुरुकुल घटकेश्वर में जो ६०० विद्यार्थी हैं, वे सब छात्रावास में नहीं रहते। पर छात्रावास की वहाँ सत्ता है, जिसमें भोजन, निवास आदि का समुचित प्रबन्ध है। जो विद्यार्थी केवल पढ़ने के लिए गुरुकुल आते हैं, उनके लिए भी धर्मशिक्षा अनिवार्य है। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की दिनचर्या गुरुकुल प्रणाली के अनुसार है। प्रातः-सायं वे सन्ध्या-हवन करते हैं। हवन के पश्चात् वेदोपदेश भी होता है। चरित्र-निर्माण पर गुरुकुल में विशेष ध्यान दिया जाता है।

जब तक पण्डित वंशीलाल जीवित रहे, वही इस संस्था का संचालन करते रहे। सन् १९५६ में उनका देहावसान हो जाने पर श्री वी० किशनलाल अग्रवाल ने इसका कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। उनकी देख-रेख में यह संस्था निरन्तर उन्नति कर रही है। आन्ध्र प्रदेश के आर्य नेता पण्डित वन्देमातरम् रामचन्द्रराव इस गुरुकुल के संचालन में श्री अग्रवाल के प्रमुख सहयोगी हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है, कि गुरुकुल की शिक्षा हाईस्कूल से आगे बढ़कर जूनियर कॉलिज तक हो जाए।

विरजानन्द गुरुकुल गद्वाल, महबूबपुर (आन्ध्र प्रदेश)—सन् १९७२ में श्री लक्ष्मीनन्द नरसिंहाचार्य द्वारा इस गुरुकुल की स्थापना की गई थी। श्री नरसिंहाचार्य ने उत्तर भारत की यात्रा करते हुए वहाँ के अनेक गुरुकुलों का अवलोकन किया और उन्हें देख कर यह निश्चय किया कि दक्षिण में भी एक ऐसी शिक्षण-संस्था की स्थापना की जाये, जिसमें आर्ष प्रणाली से वेदशास्त्रों के पठन-पाठन की व्यवस्था हो। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने हैदराबाद से ३६ मील दूर गद्वाल नामक स्थान पर गुरुकुल की स्थापना की। इस संस्था का सब खर्च उस ४० एकड़ भूमि से चलता है, जो गुरुकुल के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास है। सरकार से कोई सहायता इसे प्राप्त नहीं होती। अभी गुरुकुल में केवल १३ वालक हैं, जो छात्रावास में रहकर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पद्धति से विद्याध्ययन में तत्पर हैं।

(४) दिल्ली संघ-क्षेत्र के गुरुकुल

श्रीमद्दयानन्द वेद विद्यालय, गौतम नगर, नयी दिल्ली—इस संस्था की स्थापना २४ अगस्त, सन् १९२४ को महात्मा नारायण स्वामी की प्रेरणा से आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा की गई थी। चिरकाल तक उन्हीं द्वारा इसका संचालन किया जाता रहा। श्री राजेन्द्रनाथ शास्त्री का आर्य जगत् में वहुत ऊँचा स्थान है। संन्यास आश्रम में प्रवेश के अनन्तर वह स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए, और योग-साधना के अनेक केन्द्रों की उन्होंने स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य युवकों को सदाचारी वनाने के साथ साथ वेद-वेदांगों की शिक्षा एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित आर्ष पाठविधि के अनुसार पठन-पाठन की व्यवस्था करना है। श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, गुरुकुल झज्झर (रोहतक) के साथ यह विद्यालय सम्वद्ध है, और उसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ इसमें दिलायी जाती हैं। विद्यापीठ द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का ही इसमें अनुसरण किया जाता है। इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर अनेक व्यक्तियों ने धर्म, विद्वत्ता, शिक्षा, साहित्य और देश व समाज की सेवा के क्षेत्रों में उच्च स्थिति प्राप्त की है। आर्यसमाज के प्रख्यात नेता एवं परोपकारिणी सभा, अजमेर के प्रधान स्वामी ओमानन्द सरस्वती भी इस विद्यालय के विद्यार्थी रहे हैं। इसके अन्य स्नातकों में पण्डित वेदभूषण (हैदरावाद), पण्डित सुरेन्द्र शास्त्री तथा पण्डित विश्वप्रिय शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान समय में इस विद्यालय में १०० ब्रह्मचारी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और छह शिक्षक वहाँ अध्यापन के लिए नियुक्त हैं। श्री हरिदेव व्याकरणाचार्य एम० ए० वहाँ के आचार्य हैं, जो वड़ी लगन, त्याग और योग्यता से इस संस्था का संचालन कर रहे हैं। सब विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं, और गुरुकुल आश्रमों की दिनचर्या के अनुसार नित्य कर्म, व्यायाम, योगाभ्यास, सन्ध्या-हवन आदि करते हैं। यह विद्यालय नयी दिल्ली के एक ऐसे स्थान पर स्थित है, जिसके चारों ओर आधुनिक वस्तियाँ विकसित हो गई हैं। इन वस्तियों में सम्पन्न लोगों का निवास है, और उनके रहन-सहन आदि पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है। पर इस संस्था के विद्यार्थी, शिक्षक एवं अन्य कर्मचारी आधुनिक भौतिकवाद से प्रभावित न हो कर अपने धर्म, संस्कृति एवं प्राचीन आर्य परम्पराओं पर दृढ़ हैं, और इसका स्वरूप एक आरण्यक आश्रम के सदृश ही है। अनेक सुप्रसिद्ध गुरुकुलों की तुलना में इस विद्यालय का वातावरण वहुत अधिक 'गुरुकुलीय' है, और इसमें रहन-सहन आदि की प्रायः उसी पद्धति का अनुसरण किया जा रहा है, बीसवीं सदी के प्रथम चरण में जिसकी ओर आर्य जनता विशेष रूप से आकृष्ट हुआ करती थी। विद्यालय के विद्यार्थी और कार्यकर्ता आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं, और हैदरावाद सत्याग्रह तथा पंजाव के हिन्दी सत्याग्रह में उन्होंने जेलयात्रा भी की थी। संस्था का वार्षिक व्यय दो लाख रुपये के लगभग है, जिसकी व्यवस्था जनता द्वारा प्रदत्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान से की जाती है। वेदपाठ तथा चतुर्वेद पारायण यज्ञ इस विद्यालय की अनुपम विशेषताएँ हैं। इसके एक ब्रह्मचारी को सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ है।

श्रीमद्दयानन्द गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, खेड़ा खुर्द (दिल्ली)—यह संस्था दिल्ली संघ-क्षेत्र में खेड़ा खुर्द ग्राम के समीप स्थित है। श्री स्वामी वेदानन्द वेदतीर्थ से प्रेरणा प्राप्त कर इसकी स्थापना स्वामी ओमाश्रित तथा आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री (संन्यास आश्रम में प्रवेश के पश्चात् स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती) द्वारा १५ अगस्त, सन् १९६७ को की गयी थी। इसके उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार, भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा आर्य संस्कृति व धर्म के वातावरण में संस्कृत व्याकरण, साहित्य एवं प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा देना है। यह महाविद्यालय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बद्ध है। उसी के पाठ्यक्रम के अनुसार वहाँ शिक्षा की व्यवस्था है, और उसी की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाएँ दिलायी जाती हैं। विद्यार्थियों की संख्या १०० के लगभग हैं, और १३ शिक्षक अध्यापन के लिए नियुक्त हैं। आचार्य के पद पर श्री रमेशचन्द्र शास्त्री हैं। अन्य सब शिक्षक भी सुयोग्य हैं। सभी विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं, और उनकी दिनचर्या गुरुकुलों की आश्रम पद्धति के अनुसार है। धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। सन्ध्या-हवन में उपस्थित होना सबके लिए आवश्यक है। शनिवार को सभा होती है, जिसमें वैदिक सिद्धान्तों पर प्रवचन होते हैं। विद्यार्थी एवं कार्यकर्ता आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। गुरुकुल का मासिक व्यय १९,००० के लगभग है। सरकार द्वारा भी इस संस्था को आर्थिक सहायता प्राप्त होती है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ—गुरुकुल काँगड़ी के एक अंश या विभाग के रूप में दिल्ली के समीप गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ किस प्रकार स्थापित हुआ, किस ढंग से उसका विकास हुआ, और फिर किन परिस्थितियों में उसे बन्द कर देना पड़ा, इन सब बातों पर पिछले एक अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। सन् १९६३ से १९७४ तक यह गुरुकुल बन्द रहा, जिसके परिणामस्वरूप उसके भवनों की भी अत्यधिक दुर्दशा हो गई, और गुरुकुल का सुन्दर परिसर पुराने खण्डहर-सा दिखायी देने लगा। यह दशा थी, जबकि एप्रिल, १९७४ में स्वामी इन्द्रवेश और उनके सहयोगियों ने इस संस्था को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इसी प्रयोजन से २४ एप्रिल को वहाँ आर्य सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें दिल्ली तथा हरयाणा के बहुत-से आर्य नर-नारी सम्मिलित हुए। सन् १९७३ के अन्तिम दिनों में स्वामी इन्द्रवेश आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान निर्वाचित हो चुके थे, और वह बड़ी लगन तथा उत्साह से आर्यसमाज के कार्यकलाप को गति देने में तत्पर थे। उनकी प्रेरणा से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के परिसर में आयोजित आर्य सम्मेलन में इस संस्था के पुनरुद्धार का निश्चय किया गया, और खण्डहर होती हुई इमारतों की मरम्मत कर दिसम्बर, १९७४ में वहाँ एक उपदेशक विद्यालय खोल दिया गया। पर उसे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अतः यह निश्चय किया गया, कि उपदेशक विद्यालय के साथ-साथ गुरुकुल को भी पुनरुज्जीवित किया जाए। एप्रिल, १९७६ में वहाँ फिर एक आर्य सम्मेलन किया गया, और उस अवसर पर गुरुकुल का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। क्रियात्मक दृष्टि से यह उचित समझा गया, कि समीप के क्षेत्र के बालकों को भी गुरुकुल में प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी जाए, जिससे कि वे भी इस शिक्षा-पद्धति से लाभ उठा सकें। स्वामी वरुणवेश को गुरुकुल का आचार्य नियुक्त किया गया, और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम कक्षा से आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई की व्यवस्था कर दी गई। कुछ ऐसे विद्यार्थी भी गुरुकुल में प्रविष्ट हुए, जो छात्रावास में रहते थे और गुरुकुलों की आश्रम पद्धति के अनुरूप जिनकी दिनचर्या होती थी। प्रथम सत्र में ही विद्यार्थियों की संख्या १५० हो गई, और मृतप्राय गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में पुनः जीवन का संचार हो गया। उपदेशक विद्यालय भी वहाँ कायम था, और १५ युवक उसमें प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

स्वामी वरुणवेश के पश्चात् कुछ समय स्वामी सुधानन्द गुरुकुल के आचार्य रहे। उनके बाद स्वामी चन्द्रवेश आचार्य पद पर नियुक्त हुए। फरवरी, १९७८ में स्वामी शक्तिवेश आर्य युवक परिषद् के प्रधान पद पर आरूढ़ हुए, और उन्होंने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में परिषद् का मुख्य कार्यालय स्थापित किया। स्वामीजी सदृश कर्मठ तथा उत्साहसम्पन्न आर्य नेता के गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को अपना केन्द्र बना लेने के परिणामस्वरूप इस संस्था का कार्य भली-भाँति सुव्यवस्थित हो गया, और वह निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगी। वर्तमान समय में इस गुरुकुल में २९३ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जिनमें १३३ विद्यार्थी गुरुकुल के छात्रावास में निवास करते हैं। अब इस संस्था में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई हो रही है।

(५) बंगाल तथा कर्नाटक के गुरुकुल

गुरुकुल काउड़चण्डी, मेदिनीपुर (मिदनापुर)—यह गुरुकुल पश्चिम बंगाल में है। सन् १९५६ में बंगाल में प्रान्तीय आर्य महा सम्मेलन हुआ था, जिसकी अध्यक्षता आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय ने की थी। उनके निवास की व्यवस्था रूपनारायण नदी के तट पर एक बँगले में की गयी थी। यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। वहाँ के प्राकृतिक दृश्य से श्री उपाध्याय बहुत प्रभावित हुए, और उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान श्री मिहिरचन्द धीमान् से बातचीत करते हुए यह विचार प्रकट किया कि यह स्थान गुरुकुल के लिए बहुत उपयुक्त है, और यहाँ एक गुरुकुल की स्थापना की जानी चाहिये। उपाध्यायजी से प्रेरणा प्राप्त कर श्री धीमान तथा सभा के मन्त्री श्री वटकृष्ण वर्मन गुरुकुल की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हो गये, जिसके परिणामस्वरूप श्रीमती लाल सामन्त, श्रीकान्त चरणदेव वर्मन एवं उनके भाइयों ने गुरुकुल के लिए भूमि दान में दे दी। १० एप्रिल, १९५८ के दिन बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित दीनबन्धु वेदशास्त्री द्वारा इस भूमि पर गुरुकुल काउड़चण्डी की आधारशिला रखी गई, और पण्डित शिवनन्दन प्रसाद सिद्धान्तभूषण को गुरुकुल का आचार्य नियुक्त किया गया। बंगाल के आर्य सज्जनों ने इस संस्था के विकास एवं उन्नति पर समुचित ध्यान दिया। आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल द्वारा इसकी व्यवस्था व संचालन के लिए गुरुकुल विद्यालय ट्रस्ट का निर्माण कर दिया गया। गुरुकुल की भूमि इसी ट्रस्ट के नाम रजिस्टर्ड है। वर्तमान समय में इस ट्रस्ट के प्रधान श्री रघुवीरप्रसाद गुप्त हैं, और मन्त्री श्री गजानन्द आर्य हैं। इनके पहले इन पदों पर क्रमशः श्री मिहिरचन्द धीमान तथा श्री वटकृष्ण वर्मन चिरकाल तक कार्य करते रहे हैं।

गुरुकुल काउड़चण्डी के दो विभाग हैं—विद्यालय विभाग तथा आश्रम विभाग। विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या १५० के लगभग है। अध्यापनकार्य के लिए आठ शिक्षक नियुक्त हैं। विद्यालय पश्चिम बंगाल शिक्षा बोर्ड के साथ सम्बद्ध है, और शिक्षकों का वेतन सरकार द्वारा दिया जाता है। सरकारी शिक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था है। आश्रम विभाग 'गुरुकुल ब्रह्मचर्य आश्रम' के नाम से जाना जाता है। इसमें ३० ब्रह्मचारी निवास करते हैं। उनकी दिनचर्या गुरुकुलों की आश्रम प्रणाली के अनुरूप है। ब्राह्ममुहूर्त में जाग कर और नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सब ब्रह्मचारी तथा आश्रमवासी अध्यापक सन्ध्या-हवन करते हैं। गुरुकुल के भवनों में यज्ञ-शाला विशेष रूप से आकर्षक है। उसका निर्माण स्वर्गीय श्री शरच्चन्द्र बनर्जी की धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती देवी द्वारा कराया गया है। सन्ध्या-हवन के पश्चात् वैदिक सिद्धान्तों पर प्रवचन भी किये जाते हैं। आश्रम विभाग का खर्च प्रधानतया दान द्वारा चलता है। अनुसूचित जातियों के भी कुछ बालक आश्रम में रहकर विद्याध्ययन कर रहे हैं। उनके भरण-पोषण के लिए सरकार द्वारा भी आर्थिक सहायता दी जाती है।

महर्षि दयानन्द मठ, आलनहल्ली, मैसूर (कर्नाटक)—इस संस्था की स्थापना स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा की गई है। सत्यानन्दजी दयानन्द मठ, दीनानगर (पंजाब) के संचालक स्वामी सर्वानन्दजी महाराज के शिष्य हैं, और दीनानगर के दयानन्द मठ से प्रेरणा प्राप्त करके ही उन्होंने कर्नाटक में इस मठ की स्थापना की है। मठ का उद्देश्य अनाथ एवं असहाय बच्चों को आर्ष पद्धति द्वारा शिक्षित कर वैदिक धर्म के प्रचारक, वेद-शास्त्रों के विद्वान् तथा देशभक्त बनाना है। अभी इस संस्था का प्रारम्भ ही है। ग्यारह बालक उसमें प्रविष्ट हो चुके हैं। मैसूर आर्यसमाज का सहयोग व संरक्षण मठ को प्राप्त है।

(६) गुजरात के गुरुकुल

जिस प्रकार गुजरात में स्त्रीशिक्षा के लिए आर्य कन्या गुरुकुल, पोरबन्दर और आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा सदृश गुरुकुल पद्धति की शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं, वैसे ही बालकों की शिक्षा के लिए भी वहाँ दो प्रसिद्ध गुरुकुल हैं—गुरुकुल सूपा और गुरुकुल सोनगढ़। गुरुकुल सूपा की स्थापना गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की शाखा के रूप में हुई थी, और गुरुकुल सोनगढ़ में भी पहले गुरुकुल काँगड़ी की पाठविधि का अनुसरण किया जाता था। इसलिए गुरुकुल काँगड़ी के विस्तार का वर्णन करते हुए इनका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है। पर क्योंकि गुजरात की आर्य शिक्षण-संस्थाओं में इनका बहुत ऊँचा स्थान है, और इन द्वारा हजारों विद्यार्थी वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के वातावरण में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, अतः इन पर कुछ अधिक विस्तार के साथ प्रकाश डालना आवश्यक है।

गुरुकुल सोनगढ़—यह संस्था सौराष्ट्र (काठियावाड़) में सोनगढ़ के समीप एक सुरम्य व स्वास्थ्यप्रद स्थान पर स्थित है। काठियावाड़ में गुरुकुल खोलने का विचार श्री मनुभाई पाताभाई चेर के मन में उत्पन्न हुआ था। वह महर्षि दयानन्द सरस्वती के परम भक्त थे और अपने प्रदेश में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। सन् १९२४ में जब महर्षि के जन्मस्थान टंकारा में उनकी जन्मशताब्दी मनायी गयी, श्री चेर ने उसकी सफलता के लिए अनथक परिश्रम किया, और उस पुण्य अवसर पर उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि "जब तक काठियावाड़ में गुरुकुल स्थापित नहीं हो जायगा, तब तक मैं मिष्ठान्न ग्रहण नहीं करूँगा और भूमि पर ही शयन करूँगा।" श्री चेर का संकल्प तो दृढ़ था, पर उनके पास साधनों का अभाव था। पर वह इससे घबराये नहीं। शीघ्र ही बम्बई

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मनसुखलाल छगनलाल देसाई धन द्वारा गुरुकुल की योजना को क्रियान्वित करने के लिए उद्यत हो गये। उन्होंने सोनगढ़ में गुरुकुल के लिए जमीन और उस पर बने हुए मकान खरीद लिये, और काम शुरू करने के लिए बीस हजार रुपये नकद भी प्रदान कर दिये। गुजरात में आर्यसमाज के कार्यकलाप का प्रधान केन्द्र बड़ौदा नगरी थी, जहाँ पण्डित आनन्दप्रिय न केवल कन्या महाविद्यालय का ही संचालन कर रहे थे, अपितु उसे केन्द्र बना कर गुजरात में सर्वत्र शुद्धि, दलितोद्धार, समाजसुधार तथा शिक्षा के प्रसार के महत्त्वपूर्ण कार्यों में भी सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। सोनगढ़ में गुरुकुल की स्थापना तथा उसके संचालन में पण्डित आनन्दप्रियजी ने भी पूरा-पूरा सहयोग देना स्वीकार किया, और इस प्रकार गुरुकुल के लिए भूमि-भवन तथा धन की प्राप्ति हो जाने पर और पण्डित आनन्दप्रियजी जैसे कर्मठ आर्य नेता का सहयोग मिल जाने पर १० मार्च, सन् १९२९ को शिवरात्रि (ऋषिबोधोत्सव) के पुण्य पर्व के दिन सोनगढ़ में गुरुकुल की स्थापना कर दी गयी। इस प्रकार श्री मनुभाई पाताभाई चेर की प्रतिज्ञा पूरी हुई। शुरू में १५ ब्रह्मचारी गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। गुरुकुल की व्यवस्था तथा संचालन का कार्य आर्यकुमार महासभा बड़ौदा के सुपुर्द किया गया, और श्री चतुरभाई को उसका मुख्याधिष्ठाता बनाया गया। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क थी, पर भरण-पोषण के लिए दस रुपये मासिक शुल्क लिया जाता था, जिससे ब्रह्मचारियों की भोजन, वस्त्र, निवास तथा पुस्तकों आदि की सब आवश्यकताएँ पूरी की जाती थीं। पाठ्यक्रम वही अपनाया गया था, जो उस समय गुरुकुल काँगड़ी में प्रचलित था और ब्रह्मचारियों की दिनचर्या भी काँगड़ी गुरुकुल के अनुसार निर्धारित की गई थी। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष शिवरात्रि के अवसर पर बड़ी धूमधाम के साथ हुआ करता था, जिसमें हजारों नर-नारी सम्मिलित होते थे। इस अवसर पर गुरुकुल के ब्रह्मचारी भाषण, वाद-विवाद, संगीत तथा व्यायाम आदि में अपनी निपुणता का प्रदर्शन करते थे, जिससे जनता बहुत प्रभावित होती थी। तब सरकार से कोई आर्थिक सहायता इस संस्था को प्राप्त नहीं होती थी। जनता के दान द्वारा ही गुरुकुल का सब खर्च चलता था।

सन् १९४७ में स्वराज्य के पश्चात् गुरुकुलों की लोकप्रियता में सर्वत्र ह्रास होने लग गया था। स्वतन्त्र भारत की सरकार द्वारा तब स्थान-स्थान पर स्कूल खोले जा रहे थे, जिनमें शिक्षा की सब सुविधाएँ उपलब्ध थीं। जनता का झुकाव इन स्कूलों की ओर होने लगा। इस नयी परिस्थिति में गुरुकुल सोनगढ़ के संचालकों ने विचार किया, कि उन्हें भी समय के अनुसार अपनी संस्था की रीति-नीति में परिवर्तन करना चाहिये। इसीलिए उन्होंने गुरुकुल को एक ऐसे स्कूल के रूप में परिवर्तित कर देने का निश्चय किया, जिसमें सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई होती हो। पर साथ ही, उन्होंने यह भी ध्यान में रखा कि जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर इस संस्था की स्थापना की गई थी, उन्हें भी हानि न पहुँचे। इसीलिए उन्होंने गुरुकुल के आश्रम (छात्रावास) को जारी रखा। जो विद्यार्थी छात्रावास में रहते थे, गुरुकुल प्रणाली के अनुरूप उनका रहन-सहन होता था, और उनकी दिनचर्या भी पूर्ववत् गुरुकुलीय ही रहती थी। पर अब ऐसे विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में गुरुकुल में प्रविष्ट किये जाने लगे, जो छात्रावास में नहीं रहते थे और केवल पढ़ाई के लिए वहाँ आया करते थे। सरकार से आर्थिक सहायता भी अब गुरुकुल को प्राप्त होने लगी, जिससे उसकी आर्थिक समस्या का समाधान हो गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९५५ में गुरुकुल सोनगढ़ की रजत जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनायी गई, और उसके दो वर्ष पश्चात् कृषि और गौपालन के दो नये विभाग वहाँ खोल दिये गये। कुछ ही समय में यह गुरुकुल एक बहु-उद्देश्यीय हाईस्कूल के रूप में विकसित हो गया। पर सरकारी पाठ्यक्रम को अपना लेने पर भी गुरुकुल शिक्षा-पद्धति की कतिपय विशेषताएँ उसमें कायम रहीं। वहाँ के छात्रावास में वर्तमान समय में ५०० से भी अधिक विद्यार्थी निवास कर रहे हैं, जिनका रहन-सहन, खान-पान और दिनचर्या गुरुकुलों के अनुरूप है, और जो प्रातः-सायं नियमपूर्वक सन्ध्या-हवन करते हैं। इन विद्यार्थियों को नियमित रूप से धर्मशिक्षा भी दी जाती है। गुरुकुल में विद्यार्थियों की कुल संख्या सन् १९८२ में २११७ थी।

गुरुकुल सूपा—गुजरात की इस प्रसिद्ध आर्य शिक्षण-संस्था की स्थापना गुरुकुल काँगड़ी की शाखा के रूप में सन् १९२४ में हुई थी। इस स्थिति में इस गुरुकुल की जो प्रगति हुई, उस पर इस ग्रन्थ में पहले प्रकाश डाला जा चुका है। सन् १९४७ में भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर गुरुकुल काँगड़ी की डिग्रियों को राज्य सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त होनी शुरू हो गई थी, और बम्बई की सरकार ने भी उन्हें मान्यता प्रदान कर दी थी। इस दशा में यह प्रयत्न किया गया, कि गुरुकुल सूपा में भी महाविद्यालय की कक्षाएँ खोल दी जाएँ, और उनमें गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा महाविद्यालय विभाग के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ाई होने लगे। उस समय गुरुकुल सूपा के आचार्य पण्डित चन्द्रकान्त वेदालंकार थे। वह सुयोग्य शिक्षाशास्त्री, वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् तथा कर्मठ कार्यकर्ता थे। वह चाहते थे, कि गुरुकुल सूपा में महाविद्यालय विभाग भी सुव्यवस्थित रूप से स्थापित हो जाए। कुछ समय वहाँ इस विभाग की पढ़ाई हुई भी। पर अनेक कठिनाइयों के कारण इस नये विभाग को शीघ्र ही बन्द कर देना पड़ा। सन् १९५२ में पण्डित चन्द्रकान्त का स्वर्गवास हो गया, और उनके स्थान पर पण्डित केशवदेव वेदालंकार की आचार्य पद पर नियुक्ति हुई। केशवदेवजी प्राचीन वेदशास्त्रों के साथ साथ अर्थशास्त्र के भी गम्भीर विद्वान् थे। उनके प्रयत्न से कृषि का एक पृथक् विभाग गुरुकुल में खोला गया, और वहाँ के विद्यालय विभाग में बम्बई की सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था की गई। पर गुरुकुल का छात्रावास पूर्ववत् विद्यमान रहा, और उसमें विद्यार्थियों के रहन-सहन, खान-पान और दिनचर्या को गुरुकुलीय पद्धति के अनुसार कायम रखा गया। इससे गुरुकुल सूपा की लोकप्रियता में बहुत वृद्धि हुई, क्योंकि वहाँ का पाठ्यक्रम वही था जो बम्बई राज्य की सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण-संस्थाओं का था। पर साथ ही, वहाँ के विद्यार्थियों को गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सब लाभ भी प्राप्त हो जाते थे। सन् १९६६ में पण्डित केशवदेव के सेवानिवृत्त हो जाने पर पण्डित विश्वबन्धु वेदालंकार सूपा गुरुकुल के आचार्य बने, और उनके पश्चात् डा० दिलीप वेदालंकार। वर्तमान समय में इस संस्था का कार्यभार श्री भीम भाई मोरारजी देसाई ने सँभाला हुआ है, और ७०० से अधिक ब्रह्मचारी वहाँ के छात्रावास में ब्रह्मचर्यपूर्वक सदाचारमय जीवन बिताते हुए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल का प्रबन्ध 'गुजरात गुरुकुल सभा' के अधीन है, जिसके वर्तमान प्रधान श्री प्रभुभाई जोगीभाई पटेल हैं।

दसवीं कक्षा तक सूपा गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी बाद में गुरुकुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँगड़ी में उच्च शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए और जिन्होंने वहाँ से विविध 'अलंकार' डिग्रियाँ प्राप्त कीं, उनमें से कतिपय ऐसे हैं, जिन्हें आर्यसमाज में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। दक्षिणी अफ्रीका में वैदिक धर्म तथा हिन्दी भाषा के प्रचार के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले पण्डित नरदेव वेदालंकार की दसवीं कक्षा तक की शिक्षा गुरुकुल सूपा में ही हुई थी। बड़ौदा कन्या महाविद्यालय द्वारा संचालित आयुर्वैदिक कॉलिज के आचार्य पण्डित सुरेन्द्रनाथ आयुर्वेदालंकार तथा देश-विदेश में वैदिक धर्म के प्रचार में रत और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री डा० दिलीप वेदालंकार भी गुरुकुल सूपा के विद्यार्थी रहे हैं।

गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम, आणन्द—इस गुरुकुल की स्थापना सन् १९१२ में हुई थी। इसके दो विभाग थे—प्राचीन विभाग तथा अर्वाचीन विभाग, और इसका संचालन आर्य प्रतिनिधि सभा, वम्वई द्वारा नियत की गयी आर्यविद्यासभा के अधीन था। एप्रिल, सन् १९३५ में गुरुकुल का प्राचीन विभाग चरोत्तर प्रदेश के आर्यसमाज को सौंप दिया गया, और उसी द्वारा इसका संचालन किया जाता रहा। पर आर्यसमाज को इस संस्था को चलाने में कठिनाइयाँ अनुभव होने लगीं, और मार्च, १९३७ में किये गये एक निश्चय के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि गुरुकुल में केवल ब्रह्मचर्याश्रम रहे। वहाँ केवल संस्कृत तथा धर्मशिक्षा की पढ़ाई का प्रवन्ध रहे, और गणित, इतिहास, भूगोल आदि की पढ़ाई के लिए ब्रह्मचारियों को अन्य स्कूलों में भेज दिया जाया करे। पर यह व्यवस्था भी देर तक नहीं चल सकी, और आणन्द का गुरुकुल वन्द हो गया। पर उसका जो विभाग वम्वई में था, वह निरन्तर चलता रहा, और अब तक भी विद्यमान है।

उपदेशक विद्यालय, टंकारा—महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्मस्थान टंकारा (राजकोट) में एक उपदेशक विद्यालय स्थापित किया गया है, जिसका संचालन 'महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा' के हाथों में है। यह पूर्णतया निःशुल्क संस्था है, और इसमें संस्कृत, वेदशास्त्र तथा आर्य सिद्धान्तों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था है। विद्यार्थियों का रहन-सहन तथा दिनचर्या गुरुकुल पद्धति के अनुरूप है।

(७) हरयाणा के गुरुकुल

गुरुकुल झज्झर, गुरुकुल भैंसवाल, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, आर्ष गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय डिकाडला, गुरुकुल आर्यनगर हिसार आदि हरयाणा राज्य के उन सव गुरुकुलों का इस ग्रन्थ में पहले यथास्थान परिचय दिया जा चुका है जो श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, झज्झर से सम्वद्ध हैं और या गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से। पर उनके अतिरिक्त भी कुछ गुरुकुल हरयाणा में हैं, जिनका संक्षेप के साथ उल्लेख करना आवश्यक है।

गुरुकुल घरौंडा (करनाल)—इस गुरुकुल की स्थापना स्वामी रामेश्वरानन्दजी महाराज ने सन् १९३९ में की थी। अंग्रेजी शासन के उस काल में हरयाणा में भी उर्दू भाषा का प्राधान्य था, और उसकी शिक्षा अनिवार्य थी। वहाँ के पाठ्यक्रम में संस्कृत का तो प्रश्न ही क्या, हिन्दी को भी समुचित स्थान प्राप्त नहीं था। माता-पिता अपनी सन्तान को हिन्दी-संस्कृत पढ़ाना निरर्थक समझते थे। इस दशा में प्रारम्भ के वर्षों में गुरुकुल घरौंडा को अनेकविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। स्थानीय सरकारी पदाधिकारी तथा स्कूल के हेडमास्टर भी इस संस्था के विरोधी थे और सदा धमकियाँ देते रहते थे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर स्वामीजी ने इनकी कोई परवाह नहीं की, और उन्हीं के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि कुछ ही समय में यह गुरुकुल अपने पैरों पर खड़ा हो गया। वहाँ शिक्षा तथा रहन-सहन आदि की व्यवस्था बहुत उत्तम थी। पढ़ाई महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पद्धति के अनुसार होती थी, जिससे आकृष्ट होकर बालक वहाँ प्रविष्ट होने लगे, और यह संस्था निरन्तर उन्नति करती गई। आर्ष पद्धति के अनुसार पाणिनीय अष्टाध्यायी और पातञ्जल महाभाष्य की शिक्षा के अतिरिक्त इस गुरुकुल में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रथमा, मध्यमा और शास्त्री की परीक्षाओं के लिए पढ़ाई की भी समुचित व्यवस्था है। साथ ही, विद्यार्थियों को योगाभ्यास, प्राणायाम, व्यायाम और हठयोग की धौती, नेती, वस्ती आदि क्रियाओं की भी क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है।

गुरुकुल आत्मशुद्धि आश्रम, बहादुरगढ़ (हरयाणा)—२ अक्तूबर, सन् १९६८ को वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार के उद्देश्य को सम्मुख रखकर इस संस्था की स्थापना हुई थी। श्री आत्मस्वामी ने इसे स्थापित किया था, और उनके शिष्य श्री धर्ममुनि द्वारा प्रारम्भ से ही इसका संचालन किया जा रहा है। विद्यार्थियों की संख्या वहाँ बहुत कम है। पर सब विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं, और विद्याध्ययन के साथ-साथ चरित्र-निर्माण तथा आत्मशुद्धि के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करते हैं। गुरुकुल का वातावरण धार्मिक एवं आध्यात्मिक है। समय-समय पर वहाँ योग-साधना शिविर, ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविर, और आर्य वीर दल शिविर लगाये जाते हैं, जिनसे गुरुकुल के विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होता है। गुरुकुल का अपना पुस्तकालय है, जिसमें १५०० के लगभग पुस्तकें हैं। वैदिक साहित्य, आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकों का वहाँ अच्छा संग्रह है। इस संस्था ने अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं, जिनमें प्राणायामविधि, आत्मज्योति, फल-सब्जियों द्वारा रोग नष्ट, आत्मशान्ति, और स्वस्थ जीवन आदि उल्लेखनीय हैं। 'आत्मशुद्धि पथ' नामक एक मासिक पत्र भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित किया जाता है। स्वामी धर्ममुनि इसके सम्पादक हैं।

अन्य गुरुकुल—गुड़गाँवा जिले में सुढाना, जीन्द जिले में मुलकनी और सोनीपत जिले में सांदल कलाँ नामक स्थानों पर भी गुरुकुल विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय ऐसे कन्या गुरुकुल भी हरयाणा में हैं, जो हरयाणा विद्यापीठ भैंसवाल तथा श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। ये कन्या गुरुकुल करनाल जिले में बला, मोरमाजरा और पाढ़ा नामक स्थानों पर, जीन्द जिले में खरल, रोहतक जिले में लोवांकलाँ और सिद्दीपुर लोवां और महेन्द्रगढ़ जिले में मजेठी (कुण्डा) नामक स्थानों पर स्थित हैं। हरयाणा के कन्या गुरुकुलों का परिचय देते हुए इनमें से कुछ का विवरण पहले दिया भी जा चुका है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीसवाँ अध्याय

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की प्रगति

(१) शिक्षा तथा प्रबन्ध की व्यवस्था

संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा किस प्रकार गुरुकुल की स्थापना की गई, और कैसे उसे सिकन्दराबाद से फर्रुखाबाद और वहाँ से वृन्दावन ले जाया गया, इसका विवरण पहले दिया जा चुका है। आर्य प्रतिनिधि सभा का गठन जिन उद्देश्यों को सम्मुख रख कर किया गया था, उनमें प्रथम उद्देश्य निम्नलिखित था —"वेद-वेदांग तथा प्राचीन संस्कृत शास्त्रों को पढ़ाने तथा आर्योपदेशक बनाने के लिए विद्यालय स्थापन करना।" गुरुकुल की स्थापना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई थी। इसीलिए गुरुकुल के विद्यालय विभाग के पाठ्यक्रम में संस्कृत को मुख्य स्थान दिया गया था। पर अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक विज्ञान की पढ़ाई की भी उसमें उपेक्षा नहीं की गई थी। प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा द्वारा सन् १९१० में गुरुकुल विद्यालय के लिए जो नियम बनाये गये थे, उनके अनुसार "विद्यार्थियों को निम्न विषय अध्ययन करने होंगे—(१) साङ्गोपाङ्ग वेद तथा अन्य सच्छास्त्र, (२) अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी साहित्य, (३) वर्तमान कालिक पदार्थविद्या (सायन्स) अंग्रेजी भाषा या आर्य भाषा द्वारा जहाँ तक कि वेदादि की पढ़ाई में विघ्नकारी हुए बिना सम्भव हो।" साथ ही, यह भी तय कर दिया गया था कि "शिल्प तथा वृत्ति सम्बन्धी नियत शिक्षाएँ इस विद्यालय की उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए स्वेच्छानुसारिणी होंगी।" इन नियमों को दृष्टि में रख कर गुरुकुल विद्यालय के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया था, उसमें पहली श्रेणी से ही गणित, भूगोल तथा वस्तुपाठ की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई थी। चौथी श्रेणी से इतिहास को और छठी श्रेणी से अंग्रेजी तथा पदार्थ विज्ञान (सायन्स) की पढ़ाई को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था। संस्कृत की शिक्षा तो प्रथम श्रेणी से थी ही।

सन् १९१४ में गुरुकुल वृन्दावन के सबसे पहले विद्यार्थी विद्यालय विभाग की शिक्षा पूरी कर चुके थे। अब महाविद्यालय विभाग के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करना था। अतः प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा ने २२ जून, सन् १९१४ को अपनी बैठक में यह निश्चय किया, कि "महाविद्यालय की पढ़ाई का काल चार वर्ष हो। तदुपरान्त स्नातक परीक्षा हो। महाविद्यालय में ऐसे विषयों की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जावे जिनमें विशेष यन्त्रादि साधनों (apparatus) की आवश्यकता न पड़े। सम्प्रति निम्नलिखित विषयों में से सब का अथवा कुछेक के पढ़ाने का प्रबन्ध किया जावे — (१) वेद साङ्गोपाङ्ग (प्रत्येक दशा में), (२) संस्कृत साहित्य, (३) अंग्रेजी, (४) पूर्वीय व पश्चिमीय फिलासफी, (५) प्राचीन व अर्वाचीन इतिहास, (६) अर्थशास्त्र (Political Economy), (७) आर्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा साहित्य, (८) Comparative Study of Religions। आवश्यकता पड़ने पर और विषय बढ़ा दिये जावेंगे।" इस प्रस्ताव से स्पष्ट है, कि प्रारम्भ काल से ही गुरुकुल वृन्दावन के संचालक उसमें वेद-वेदांगों और संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी, हिन्दी तथा इतिहास, फिलासफी और अर्थशास्त्र जैसे आधुनिक विषयों की पढ़ाई को भी समुचित महत्त्व दे रहे थे। यही कारण है, कि सन् १६१८ में इस संस्था की शिक्षा को पूर्ण कर जो ब्रह्मचारी स्नातक बने, वह केवल संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के ही विद्वान् नहीं थे, अपितु अंग्रेजी तथा आधुनिक ज्ञान में भी उनकी समुचित गति थी। यह क्रम बाद में भी जारी रहा, और गुरुकुल वृन्दावन एक ऐसा महत्त्वपूर्ण विद्यापीठ या विश्वविद्यालय बन गया, जिसके पाठ्यक्रम में प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान का समुचित समन्वय था। विद्यार्थियों की आजीविका की समस्या का समाधान करने के लिए अन्तरंग सभा ने गुरुकुल की उच्च श्रेणियों में शिल्प तथा वृत्ति-सम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भ करने का भी निश्चय किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है। इसीलिए सन् १६१५ में वहाँ आयुर्वेद की भी पढ़ाई प्रारम्भ कर दी गई थी, और समयान्तर में आयुर्वेद की कक्षाएँ ही एक पृथक् महाविद्यालय के रूप में विकसित हो गई थीं।

जिस समय यह गुरुकुल फर्रुखाबाद में था, महात्मा भगवानदीन उसके मुख्याधिष्ठाता थे, और श्री देवदत्त संस्कृत व्याकरण के अध्यापक थे। श्री देवदत्त महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे, और उन्होंने महर्षि से ही व्याकरण का अध्ययन किया था। जब गुरुकुल को फर्रुखाबाद से वृन्दावन लाया गया, तो ये दोनों भी ब्रह्मचारियों के साथ वहाँ आ गये थे। इसमें सन्देह नहीं, कि इस गुरुकुल के प्रारम्भिक विकास में महात्मा भगवानदीन का कर्तृत्व अत्यन्त महत्त्व का था। वह आर्यसमाज के प्रौढ़ विद्वान् और कर्मठ कार्यकर्ता थे। सन् १८६० से ६६ तक वह संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री रहे थे, और १८६८ से १६०० तक तथा १६०२ से १६०७ तक प्रधान। गुरुकुल को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करना उन्हीं का कार्य था। वह जब तक जीवित रहे, इस संस्था की अवैतनिक सेवा करते रहे। गुरुकुल के लिए धन एकत्र करने में भी उनका योगदान महत्त्व का था। महात्मा भगवानदीन के पश्चात् महात्मा नारायणप्रसाद गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता बने थे। इस संस्था के विकास में उन्होंने जो कार्य किया, उस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

सन् १६१८ से १६२४ तक जो ब्रह्मचारी शिक्षा को पूर्ण कर स्नातक बने, वे सब फर्रुखाबाद से वृन्दावन आये थे। इन स्नातकों की संख्या २३ है। इनमें श्री धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि, श्री द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्तशिरोमणि, श्री बृहस्पति वेदशिरोमणि, श्री विद्याधर आयुर्वेदशिरोमणि, श्री रुद्रदेव वेदशिरोमणि, श्री रमेशचन्द्र सिद्धान्तशिरोमणि, और श्री गौतम आयुर्वेदशिरोमणि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सबने विद्वत्ता तथा धर्म की सेवा के क्षेत्रों में अच्छी ख्याति प्राप्त की। जिस प्रकार गुरुकुल काँगड़ी के स्नातकों को 'अलंकार' (विद्यालंकार, वेदालंकार, सिद्धान्तालंकार और आयुर्वेदालंकार) की डिग्रियाँ दी जाती थीं, वैसे ही गुरुकुल वृन्दावन के स्नातकों को 'शिरोमणि' डिग्री देने की व्यवस्था की गई थी। सन् १६२० से १६२४ तक जो ब्रह्मचारी गुरुकुल वृन्दावन से स्नातक हुए, उनमें 'आयुर्वेदशिरोमणि' ८० प्रतिशत से भी अधिक थे। आजीविका की समस्या को दृष्टि में रख कर ही वृन्दावन गुरुकुल में आयुर्वेद का विषय बहुत लोकप्रिय हुआ था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फर्रुखाबाद से जो विद्यार्थी गुरुकुल वृन्दावन आये थे, पर परिस्थितियों से विवश होकर स्नातक बनने से पहले ही वहाँ से चले गये थे, उनमें श्री मंगलदेव, श्री महेन्द्रप्रताप और श्री मेधाव्रत के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री मंगलदेव संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित थे, और वर्षों तक वाराणसी के संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर रहे थे। संस्कृत के विद्वानों में उन्हें मूर्धन्य स्थान प्राप्त था। श्री महेन्द्रप्रताप ने शिक्षाविज्ञ तथा आर्यसमाज के नेता के रूप में उच्च स्थिति प्राप्त की। वह वर्षों तक डी० ए० वी० कॉलिज, लखनऊ और बड़ौत कॉलिज के प्रिंसिपल रहे, और फिर गुरुकुल काँगड़ी यूनिवर्सिटी के कुलपति भी नियुक्त हुए। श्री मेधाव्रत संस्कृत के महाकवि हैं। उन्होंने 'दयानन्द दिग्विजय' नामक महाकाव्य तथा अनेक अन्य संस्कृत ग्रन्थों की रचना की है। ये महानुभाव संस्कृत तथा वेद-वेदांगों में जो गम्भीर योग्यता प्राप्त कर सके, उसका प्रधान श्रेय गुरुकुल वृन्दावन को ही दिया जाना चाहिये।

सन् १९१९ तक गुरुकुल वृन्दावन सुव्यवस्थित रूप प्राप्त कर चुका था और उन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा था। उसी वर्ष भारत की यात्रा करते हुए महात्मा गांधी जब वृन्दावन आये, तो गुरुकुल में भी पधारे थे। इस संस्था का अवलोकन कर इसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था —"इस गुरुकुल में आते ही मेरा हृदय द्रवित हो गया। यह बड़े पवित्र तथा एकान्त स्थान में स्थित है। इसे देख कर मुझे बहुत आनन्द हुआ।"

गुरुकुल वृन्दावन के प्रारम्भिक काल में उसकी सब व्यवस्था आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की अन्तरंग सभा द्वारा की जाती थी। मुख्याधिष्ठाता और आचार्य आदि पदाधिकारियों की नियुक्ति यह सभा ही करती थी, और उसके लिए नियमों आदि का निर्माण भी उसी द्वारा किया जाता था। पर संस्था के विकास के साथ-साथ उसकी प्रबन्ध-व्यवस्था में भी परिवर्तन होते गये। वर्तमान समय में जिस ढंग से उसका प्रबन्ध व संचालन किया जा रहा है, उसका कुछ परिचय देना उपयोगी है। गुरुकुल वृन्दावन की सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा आर्य प्रतिनिधि सभा है। गुरुकुल के सम्बन्ध में उसकी वही स्थिति है जो यूनिवर्सिटियों में सीनेट या कोर्ट की होती है। आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा को गुरुकुल विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त गुरुकुल की प्रबन्ध-व्यवस्था के लिए तीन अन्य समितियाँ हैं—विद्या सभा, शिक्षा समिति और परीक्षोपसमिति। गुरुकुल वृन्दावन की प्रबन्ध-व्यवस्था मुख्यतया विद्या सभा के अधीन है, जिसका गठन आर्य प्रतिनिधि सभा करती है। विद्यासभा के सदस्य निम्नलिखित होते हैं —(क) प्रतिनिधि सभा के मन्त्री, कोषाध्यक्ष तथा गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता। (ख) कुलपति, जिसे अन्तरंग सभा निर्वाचित करती है। वह विद्यासभा का प्रधान या सभापति होता है। (ग) आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्वाचित छह सदस्य। (घ) संरक्षकों के दो प्रतिनिधि। (ङ) स्नातक मण्डल के छह प्रतिनिधि। विद्यासभा अपने मन्त्री तथा उपप्रधान को स्वयं चुनती है, कार्य के संचालन के लिए उपसमितियों का निर्माण करती है, और प्रबन्ध-व्यवस्था के लिए नियम बनाती है। विद्यासभा द्वारा बनाये गये नियम-उपनियमों का अन्तरंग सभा द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक है। आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान गुरुकुल का कुलाधिपति (चान्सलर) होता है। उसे अधिकार है, कि वह विद्यासभा के किसी भी निर्णय को वीटो कर सके। पर इसके विरुद्ध अन्तरंग

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा में अपील की जा सकती है। गुरुकुल के विविध पदाधिकारी विद्यासभा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। शिक्षा-समिति की वही स्थिति है, जो यूनिवर्सिटियों में एकेडेमिक कौंसिल की होती है। पाठ्यक्रम निर्धारित करना इसी समिति का काम है।

महात्मा नारायणप्रसाद (श्री नारायण स्वामीजी) के पश्चात् जिन महानुभावों ने गुरुकुल वृन्दावन का संचालन किया, उनमें पण्डित शिवनारायण शुक्ल (१६२२-२५), बाबू श्रीराम (१६२५-२६), बाबू घासीराम (१६२६-३१), पण्डित वृहस्पति वेदशिरोमणि (१६३४-३७), श्री कर्णसिंह छोंकर (१६४०-४५), पण्डित द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्तशिरोमणि (१६५१-५२) और श्री नरदेव आयुर्वेदशिरोमणि (१६५४-६४) के नाम उल्लेखनीय हैं।

(२) आयुर्वेद महाविद्यालय

सन् १६१८ से १६८२ तक ६४ वर्षों में गुरुकुल विश्वविद्यालय से १५८ विद्यार्थी स्नातक हुए हैं। उनमें १२१ आयुर्वेदशिरोमणि हैं। वेदशिरोमणि ८ और सिद्धान्त-शिरोमणि २० हैं। अन्य स्नातक तर्कशिरोमणि आदि हैं। इतने अधिक आयुर्वेद शिरोमणियों का होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है, कि गुरुकुल वृन्दावन में आयुर्वेद विषय सर्वाधिक प्रिय है, और बहुसंख्यक विद्यार्थी इसी की शिक्षा प्राप्त करते रहे हैं। गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में आयुर्वेद की शिक्षा सन् १६१६ में प्रारम्भ कर दी गई थी और सन् १६१६ में वहाँ आयुर्वेद महाविद्यालय पृथक् रूप से स्थापित कर दिया गया था। इसका पाठ्यक्रम इस ढंग से बनाया गया था, जिससे कि विद्यार्थियों को आयुर्वेद के साथ साथ पाश्चात्य या आधुनिक चिकित्सा पद्धति से भी परिचय हो जाता था। इस महाविद्यालय में बाहर के विद्यार्थी भी प्रविष्ट किये जा सकते थे। मैट्रिक्युलेशन या तत्सम पूर्व-मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी इसमें प्रवेश पा सकते थे। ये विद्यार्थी केवल आयुर्वेद या चिकित्सा-शास्त्र की ही शिक्षा प्राप्त करते थे, और इन्हें 'आयुर्वेदभूषण' डिग्री दिये जाने की व्यवस्था की गई थी। पर जो विद्यार्थी गुरुकुल विद्यालय की दसवीं परीक्षा उत्तीर्ण कर आयुर्वेद के साथ संस्कृत, वेद और दर्शन आदि भी पढ़ें, उन्हें 'आयुर्वेदशिरो-मणि' उपाधि दी जाती है। ये यथार्थ रूप में गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक होते हैं, और संस्कृत आदि में इनकी योग्यता प्रायः अन्य शिरोमणियों के बराबर हो जाती है। आयुर्वेद-भूषण और आयुर्वेदशिरोमणि दोनों डिग्रियाँ इण्डियन मेडिसन बोर्ड (भारतीय चिकित्सा परिषद्) उत्तरप्रदेश द्वारा चिकित्सक के रूप में रजिस्ट्रेशन से लिए स्वीकृत हैं।

आयुर्वेद की क्रियात्मक शिक्षा देने एवं प्रामाणिक व शुद्ध आयुर्वैदिक ओषधियों के निर्माण व प्रचार के प्रयोजन से गुरुकुल में एक प्रयोगशाला (Pharmacy) भी स्थापित है। इसमें भस्म, रस, आसव, अरिष्ट, चूर्ण, रसायन आदि सब प्रकार की आयुर्वैदिक ओषधियाँ शास्त्रीय विधि से तैयार की जाती हैं। प्रमुख तथा अनुभवी वैद्य गुरुकुल में निर्मित इन ओषधियों की सराहना करते हैं। गुरुकुल की आर्थिक आमदनी का भी वह आयुर्वैदिक प्रयोगशाला का एक साधन है। आयुर्वेद महाविद्यालय के साथ सम्बद्ध एक धर्मार्थ चिकित्सालय भी है, जिस द्वारा जहाँ गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की चिकित्सा की जाती है, वहाँ पाँच हजार के लगभग बाह्य व्यक्ति भी प्रति वर्ष उससे लाभ उठाते हैं।

गुरुकुल विश्वविद्यालय में आयुर्वेद महाविद्यालय का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे स्पष्ट करने के लिए इतना लिख देना ही पर्याप्त है, कि वर्तमान समय में १८० विद्यार्थी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जबकि महाविद्यालय विभाग की अन्य कक्षाओं (ग्यारहवीं से चौदहवीं तक) में विद्यार्थियों की संख्या केवल ११ है।

(३) गुरुकुल वृन्दावन की प्रगति

आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) द्वारा जब अपना गुरुकुल फर्रुखाबाद से वृन्दावन लाया गया, तो ८२ ब्रह्मचारी वहाँ आये थे। इनमें से ६ वृन्दावन आकर घर चले गये थे। इस प्रकार प्रारम्भ में वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या ७३ थी। इसके बाद श्रेणियों में वृद्धि के साथ और गुरुकुल की दशा के सुव्यवस्थित हो जाने के परिणामस्वरूप वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या भी बढ़ती गई। जहाँ तक गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की संख्या का सम्बन्ध है, गुरुकुल वृन्दावन के इतिहास में सन् १६३७-३८ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस वर्ष आवागढ़ (जिला एटा) के राजा श्री सूर्यपालसिंह ने २०० विद्यार्थी अपने व्यय से गुरुकुल में प्रविष्ट कराये थे, जिसके कारण वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या में असाधारण वृद्धि हो गई थी। आवागढ़ के राजा साहब के धर्मादा कोष में इक्कीस लाख के लगभग धनराशि जमा थी। राजा श्री सूर्यपालसिंह ने निश्चय किया, कि इसका उपयोग शिक्षा के प्रसार के लिए किया जाए। इसीलिए वह शान्ति निकेतन (बोलपुर, बंगाल) गये, और उन्होंने सात लाख रुपये श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्रदान कर दिये। शेष धन को शिक्षा के कार्य में खर्च करने के लिए उन्होंने निश्चय किया, कि अपने राज्य (जमींदारी) के बालकों को गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेज दें और उनका सब खर्च धर्मादे से प्रदान किया जाता रहे। इसीलिए सन् १६३७ में उन्होंने २०० बालक गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिये थे। यदि श्री सूर्यपालसिंह अपने संकल्प पर दृढ़ रहते, तो गुरुकुल वृन्दावन में न ब्रह्मचारियों की समस्या रहती और न धन की। पर उन्होंने कुछ ऐसी शर्तें प्रस्तुत करनी प्रारम्भ कर दीं, जिन्हें स्वीकार कर सकना आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए सम्भव नहीं हुआ। वह शिक्षा की व्यवस्था अपनी इच्छा के अनुसार कराना चाहते थे। उनकी यह शर्त भी थी, कि उन्हें आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान भी नियुक्त कर दिया जाए। राजा लोग प्रायः मुसाहिबों से घिरे रहते हैं, और उनकी बातों को वे बहुत महत्त्व देते हैं। राजा सूर्यपालसिंह भी इसके अपवाद नहीं थे। उन्होंने अपने मुसाहिबों के प्रभाव में आकर गुरुकुल की आन्तरिक व्यवस्था में इस ढंग से हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया, जो सभा के अधिकारियों को सहन नहीं हुआ। फलस्वरूप इस प्रकार की परिस्थितियाँ बन गईं, कि आवागढ़ के सब विद्यार्थी राजा साहब द्वारा गुरुकुल से वापस बुला लिये गये। ये छात्र तीन वर्ष से भी कम समय गुरुकुल में रहे थे।

आवागढ़ से २०० विद्यार्थियों के एक साथ गुरुकुल में प्रविष्ट हो जाने पर अन्य बालकों को प्रविष्ट कर सकना सम्भव नहीं रह गया था। गुरुकुल के छात्रावास में २५० से अधिक विद्यार्थियों के लिए स्थान नहीं था। २०० स्थान केवल आवागढ़ के बालकों ने ही घेर लिये थे, अतः अन्य आर्य परिवारों के बालकों को प्रविष्ट करना बन्द कर दिया गया था। गुरुकुल में दूर-दूर से विद्यार्थी आया करते थे। सन् १६१७ में जो ७३ विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उनमें महाराष्ट्र, बिहार, हरयाणा, मध्यभारत और बरमा के बालक भी थे। बाद में दूरवर्ती प्रदेशों के छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई, और वहाँ के आर्य नर-नारियों से इस संस्था के लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त होने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी। पर आवागढ़ से एक साथ इतने अधिक बालकों के आ जाने के कारण गुरुकुल का आर्य जनता से सम्पर्क कम होने लग गया, क्योंकि अब अन्य आर्य परिवारों के बालकों के प्रवेश के लिए वहाँ गुंजाइश ही नहीं रह गई थी। इसी का यह परिणाम हुआ, कि जब राजा सूर्यपालसिंह ने अपने राज्य के बालकों को गुरुकुल से हटा लिया, तो वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या केवल ४० रह गई। गुरुकुल वृन्दावन के लिए यह एक प्रबल आघात था। पर उस स्थिति को सँभालने में देर नहीं लगी। दो-तीन वर्षों में ही वहाँ ब्रह्मचारियों की संख्या १५० तक पहुँच गई, और दूर-दूर के विद्यार्थी वहाँ शिक्षा के लिए आने लगे।

गुरुकुल वृन्दावन के धार्मिक वातावरण, उत्तम आश्रम-व्यवस्था तथा शिक्षा-पद्धति से आकृष्ट होकर विदेशों में बसे हुए भारतीय मूल के बहुत-से परिवारों ने भी अपने बालक वहाँ भेजने शुरू कर दिये। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों के जो विद्यार्थी वहाँ अब तक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, उनकी संख्या ५५ है। इनमें से १९ फीजी के, २६ थाईलैण्ड के, ६ सिन्ध (पाकिस्तान) के, २ ग्रेट ब्रिटेन के, १ डच गायना का और १ अफ्रीका का है। बैंकाक (थाईलैण्ड) के श्री सुशीलकुमार और श्री भगवतशंकर सन् १९७५ में गुरुकुल वृन्दावन से स्नातक हुए थे, और अब अपने देश में जाकर जीविकोपार्जन के साथ-साथ वैदिक धर्म तथा हिन्दी के प्रचार में भी तत्पर हैं। फीजी के श्री कमलाप्रसाद मिश्र सन् १९३६ में स्नातक हुए थे। वह अब लटौका (फीजी) के प्रसिद्ध पत्रकार हैं, और वहाँ आर्यसमाज तथा हिन्दी की सेवा में संलग्न हैं। फीजी के साहित्यकारों तथा कवियों में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर के अवसर पर भारत सरकार ने हिन्दी की सेवा के लिए उनका अभिनन्दन भी किया था।

इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल वृन्दावन आर्यसमाज में पर्याप्त रूप से लोकप्रिय है, और बहुत-से आर्य परिवार अपने बालकों को वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के वहाँ के वातावरण से लाभान्वित कराने के लिए उद्यत हैं। यह इसीसे स्पष्ट है, कि वहाँ के विद्यालय विभाग की पहली आठ कक्षाओं में ब्रह्मचारियों की संख्या २६९ है, और नवीं-दसवीं कक्षाओं में २७। इस प्रकार ३०० के लगभग ब्रह्मचारी गुरुकुल के छात्रावास में रहते हुए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह संख्या कम नहीं कही जा सकती, विशेषतया जब यह दृष्टि में रखा जाए कि गुरुकुल में प्रवेश के कतिपय विशिष्ट नियम हैं, और ब्रह्मचारियों की दिनचर्या अत्यन्त नियन्त्रित व अनुशासित है। क्योंकि गुरुकुल की दसवीं श्रेणी की परीक्षा को सरकारी मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के समकक्ष मान्यता प्राप्त है, अतः विद्यालय विभाग में बालकों को पढ़ाने से सांसारिक दृष्टि से भी कोई नुकसान नहीं रहता। गुरुकुल से दसवीं कक्षा की परीक्षा को उत्तीर्ण कर विद्यार्थी अन्यत्र इण्टर कक्षा में प्रविष्ट हो सकते हैं। पर गुरुकुल की वेदशिरोमणि, सिद्धान्तशिरोमणि आदि परीक्षाओं के विद्यार्थी बहुत कम हैं। स्नातकों के सम्मुख आजीविका की जो समस्या रहती है, वही इसका कारण है।

गुरुकुल वृन्दावन एक विश्वविद्यालय है। वहाँ के विद्यार्थी किसी अन्य यूनिवर्सिटी व बोर्ड की परीक्षाओं में नहीं बैठते। उसकी अपनी परीक्षाएँ हैं, अधिकारी (मैट्रिक्युलेशन), पण्डित (इण्टरमीडिएट), शिरोमणि (बी० ए०), आचार्य (एम० ए०) और वाचस्पति (पी० एच-डी०)। गुरुकुल की अधिकारी परीक्षा को उत्तरप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् (U. P. Board of High School and Intermediate Education) ने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के समकक्ष स्वीकृत किया हुआ है। इस कारण वहाँ से अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्यार्थी उत्तरप्रदेश के इण्टर कॉलिजों में प्रवेश पा सकते हैं। आगरा यूनिवर्सिटी, गोरखपुर यूनिवर्सिटी और कानपुर यूनिवर्सिटी ने 'शिरोमणि' को बी० ए० के समकक्ष स्वीकृत कर गुरुकुल वृन्दावन के स्नातकों को संस्कृत, हिन्दी, दर्शन, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र विषयों में एम० ए० करने के लिए अपने कॉलिजों में प्रवेश की अनुमति दी हुई है। इसी प्रकार की अनुमति दिल्ली यूनिवर्सिटी से हिन्दी, संस्कृत तथा दर्शन विषयों और उस्मानिया यूनिवर्सिटी हैदराबाद द्वारा संस्कृत विषय में एम० ए० के लिए प्राप्त है। इस अनुमति के कारण गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण किये विना ही हिन्दी और संस्कृत सदृश कतिपय विषयों में एम० ए० कर सकते हैं, जिससे कि उनके लिए विविध सर्विसें प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। इस सुविधा का उपयोग कर गुरुकुल के कितने ही स्नातक एम० ए० तथा पी-एच० डी० करके विविध कॉलिजों तथा यूनिवर्सिटियों में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

(४) गुरुकुल वृन्दावन का देश तथा आर्यसमाज के विविध संघर्षों में योगदान

गुरुकुल वृन्दावन की स्थापना एक आर्य एवं राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था के रूप में हुई थी। वहाँ का वातावरण सदा राष्ट्रीय और धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत रहा है। यही कारण है, कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो विविध संघर्ष हुए, और धर्म की रक्षा के लिए आर्यसमाज ने जो भी आन्दोलन किये, इस संस्था के ब्रह्मचारियों तथा कार्यकर्ताओं ने उन सबमें उत्साहपूर्वक भाग लिया। सन् १९२१-२२ के असहयोग आन्दोलन में गुरुकुल के श्री रामचन्द्र शास्त्री ने विदेशी वस्त्रों की होली जलायी थी, और इसके लिए उन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी थी। बाद के सत्याग्रह आन्दोलन में गुरुकुल के ब्रह्मचारी देवदत्त, यज्ञदत्त तथा चन्द्रदेव ने जेलयात्रा की थी, और उन्हें चिर काल तक फैजाबाद के कारागार में बन्द रखा गया था। सन् १९४२ के 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' आन्दोलन में ब्रह्मचारी नरदेव तथा श्री चन्द्र त्यागी जेल गये थे। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध दुर्धर्ष संघर्ष के इस काल में कितने ही राष्ट्रीय नेताओं ने गुरुकुल में आश्रय ग्रहण किया हुआ था। जनता के नाम प्रकाशित होने वाली बहुत-सी विज्ञप्तियाँ गुरुकुल में ही साइकलोस्टाइल की जाती थीं, और वहीं से उन्हें वितरण के लिए विविध केन्द्रों में पहुँचाया जाता था। इस कार्य में ब्रह्मचारी कृष्णस्वरूप और स्नातक नरदेव आदि का विशेष कर्तृत्व था। गुरुकुल वृन्दावन के कितने ही स्नातक विविध स्थानीय कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष रहे और खादी ग्रामोद्योग संगठन आदि में कार्य करते रहे। स्नातक नरदेव सन् १९५२ से लगा कर बीस वर्ष से भी अधिक समय तक भारत की लोकसभा के सदस्य निर्वाचित होते रहे, और संसद् में रहते हुए वह सदा आर्यसमाज की सेवा में तत्पर रहे।

पंजाब में जब आर्यसमाज द्वारा हिन्दी के लिए सत्याग्रह का प्रारम्भ किया गया, तो उसमें भी गुरुकुल के अनेक ब्रह्मचारी मथुरा आर्यसमाज के उस जत्थे में सम्मिलित थे, जिसका नेतृत्त्व श्री ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' ने किया था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) शिक्षा, विद्वत्ता तथा धर्मप्रचार के कार्यों में गुरुकुल वृन्दावन का योगदान

गुरुकुल वृन्दावन के प्रथम स्नातक डा० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि चिर काल तक आगरा और मेरठ यूनिवर्सिटियों में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे हैं। प्राचीन भारतीय दर्शन पर उन्होंने अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनेक मौलिक व प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में भी उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व रहा है। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश एवं सार्वदेशिक सभा के वह पदाधिकारी रह चुके हैं, और मेरठ में उन्होंने जाँत-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना की थी। अनेक साप्ताहिक तथा दैनिक समाचारपत्रों के भी वह सम्पादक व संचालक रहे हैं। श्री द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्तशिरोमणि संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित हैं। संस्कृत में उन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की है। वह आशु कवि भी हैं। महाराष्ट्र में आर्यसमाजों की स्थापना तथा संगठन में उनका कार्य महत्त्व का था। आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि चिर काल तक गुरुकुल वृन्दावन में प्राध्यापक रहे, और उन्होंने २२ से भी अधिक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। ये सब ग्रन्थ वेद, दर्शन, साहित्य आदि विषयों पर हैं। डा० विजयेन्द्र सिद्धान्तशिरोमणि चिर काल तक दिल्ली यूनिवर्सिटी में हिन्दी के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष रहे हैं, और साहित्यिक आलोचना विषयक जो उच्च कोटि के ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, हिन्दी साहित्य में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। उनके निर्देशन में चालीस के लगभग विद्यार्थियों ने पी-एच० डी० के शोध ग्रन्थ लिखे हैं, और हिन्दी साहित्य सम्मेलन सदृश संगठनों के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दी अकादमी तथा हिन्दी समिति उत्तरप्रदेश ने उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया है। श्री ब्रह्मदत्त स्नातक हिन्दी और अंग्रेजी के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार हैं। भारतीय सूचना सेवा, अमरीकी सूचना सेवा तथा संयुक्त राष्ट्र सूचना केन्द्र के अन्तर्गत सम्पादक के रूप में वह कार्य कर चुके हैं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अंग्रेजी पत्र वैदिक लाइट के वह सम्पादक रहे हैं, और फीजी में कई वर्ष तक वैदिक धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। गुरुकुल वृन्दावन के अनेक आयुर्वेद-शिरोमणि जहाँ अच्छे चिकित्सक हैं, वहाँ आयुर्वेदविषयक ग्रन्थों के रचयिता के रूप में भी उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। श्री रत्नाकर कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ सुलेखक भी हैं। इनके ग्रन्थों में 'भारत के प्राणाचार्य' का विशेष महत्त्व है। इसमें आयुर्वेद का इतिहास अत्यन्त रोचक रूप से प्रस्तुत किया गया है। श्री वीरसेन वेदश्रमी वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, और उन द्वारा इन्दौर में स्थापित वेद संस्थान वेदविषयक शोध के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। गुरुकुल वृन्दावन के कितने ही स्नातक विविध कॉलिजों तथा यूनिवर्सिटियों में प्राध्यापक हैं, और उन द्वारा साहित्य-रचना पर भी समुचित ध्यान दिया जा रहा है। डा० राजकिशोरसिंह साहित्यशिरोमणि आगरा कॉलिज, आगरा के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। वह अब तक ३२ पुस्तकें लिख चुके हैं, जिनमें 'प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति' उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत की जा चुकी है। इसमें सन्देह नहीं, कि शिक्षा, विद्वत्ता तथा साहित्य सृजन के सम्बन्ध में गुरुकुल वृन्दावन के स्नातकों ने जो कार्य किया है, वह अत्यन्त महत्त्व का है।

विदेशों में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए भी गुरुकुल वृन्दावन के अनेक स्नातकों

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। श्री सत्यपाल वेदशिरोमणि वर्तमान समय में अफ्रीका महाद्वीप में आर्यसमाज के कार्य में तत्पर हैं। केनिया में वह कई वर्षों से वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं, और वहाँ के सुशिक्षित वर्ग को महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों से परिचित कराने के लिए उन्होंने अंग्रेजी भाषा में अनेक पुस्तकों की रचना की है। इससे पूर्व वह भारत के भी अनेक प्रदेशों में वैदिक धर्म के प्रचारक का कार्य करते रहे हैं। श्री श्रुतिशील तर्कशिरोमणि इङ्गलैण्ड में आर्यसमाज के कार्य में संलग्न हैं। श्री कमलप्रसाद आयुर्वेदशिरोमणि ने मॉरीशस और फीजी में आर्यसमाजों की स्थापना और संगठन तथा वैदिक धर्म के प्रचार के कार्यों में बहुत ख्याति प्राप्त की है। फीजी के आर्य जगत् में उनका प्रतिष्ठित स्थान है। गुरुकुल के एक भूतपूर्व अध्यापक पण्डित गोपेन्द्र नारायण पथिक ने फीजी जाकर आर्यसमाज के कार्यकलाप की वृद्धि में विशेष तत्परता प्रदर्शित की थी और उनकी प्रेरणा से फीजी के अनेक विद्यार्थी गुरुकुल वृन्दावन में अध्ययन के लिए भेजे गये थे। आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता एवं विद्वान् आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक तो नहीं हैं, पर आठवीं कक्षा तक की उनकी शिक्षा वहीं पर हुई थी। वृन्दावन गुरुकुल के स्नातक श्री भूदेव ने हिमाचलप्रदेश में आर्यसमाज के प्रचार तथा संगठन के लिए बहुत काम किया है। इसी प्रकार कितने ही अन्य भी ऐसे स्नातक हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रचार तथा समाज की सेवा में उत्साहपूर्वक हाथ बटाते रहते हैं।

शोध तथा साहित्य-सृजन के कार्य—वेद-वेदांगों तथा संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त गुरुकुल वृन्दावन में शोधकार्य, साहित्य-सृजन तथा ग्रन्थ प्रकाशन को भी समुचित महत्त्व दिया जाता रहा है। सबसे पूर्व वहाँ 'वैदिक संस्थान' स्थापित करने की योजना बनायी गई थी, जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा के अनेक पदाधिकारियों के अतिरिक्त गुरुकुल के कतिपय स्नातकों को भी सदस्य के रूप में सम्मिलित किया गया था। इस संस्थान द्वारा सम्पूर्ण यजुर्वेद का हिन्दी भाषा में अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हुआ था। कुछ समय पश्चात् गुरुकुल में श्रीधर अनुसन्धान विभाग की स्थापना की गई। इसके लिए उरई निवासी श्री श्रीधरदयालु ने बीस हजार रुपयों की धनराशि प्रदान की थी। इस विभाग के कार्य का श्री विश्वेश्वर द्वारा योग्यतापूर्वक सम्पादन किया गया, और अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थ उसके तत्त्वावधान में तैयार हुए। इनमें बहुसंख्यक ग्रन्थ संस्कृत की गम्भीर व गूढ़ पुस्तकों की विशद हिन्दी व्याख्या के रूप में हैं। आर्थिक साधनों की कमी के कारण इनमें से कुछ ग्रन्थ अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित कराने पड़े, पर कुछ का प्रकाशन गुरुकुल की ओर से भी किया गया।

पटना जिले के श्री रामदास आर्य ने तीस हजार रुपये देकर गुरुकुल में 'रामदास दर्शन पीठ' की स्थापना करायी है। इस पीठ का उद्देश्य दर्शनशास्त्रों के सम्बन्ध में शोध कराना तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन कर उच्च कोटि के ग्रन्थों को तैयार व प्रकाशित करना है। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री विश्वेश्वर ने इस पीठ के तत्त्वावधान में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें तर्कभाषा (भाष्य), न्यायकुसुमाञ्जलि:(भाष्य), निरुक्त (भाष्य), नीतिशास्त्रम्, मनोविज्ञानमीमांसा और खगोलप्रकाश उल्लेखनीय हैं। इनमें कुछ अभी अप्रकाशित हैं। भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एक संस्कृत अनुसन्धान केन्द्र भी गुरुकुल में स्थापित है। इस केन्द्र के तत्त्वावधान में अनेक विद्यार्थी वैदिक एवं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक विषयों पर शोधकार्य में रत हैं, और पण्डित श्यामसुन्दर चतुर्वेदी तथा श्री मुरारीलाल चतुर्वेदी के क्रमश: 'देवीभागवतपुराणस्य दार्शनिक समीक्षा' और 'महाभाष्ये प्रयुक्तानां शब्दानां विवेचनम्'—ये दो शोधप्रबन्ध स्वीकार भी किये जा चुके हैं।

(६) गुरुकुल वृन्दावन की वर्तमान दशा

अन्य गुरुकुलों के समान गुरुकुल वृन्दावन ने भी अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं, और उसे भी अनेकविध समस्याओं का सामना करना पड़ा है। पर वर्तमान समय में उसकी दशा पर्याप्त रूप से सँभली हुई है। विद्यालय विभाग में वहाँ २९६ विद्यार्थी हैं, जो सब आश्रम (छात्रावास) में रहते हैं। इस संख्या को कदापि असन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। उसका आयुर्वेद महाविद्यालय किसी अन्य यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध नहीं है। फिर भी उसमें २०० के लगभग विद्यार्थियों का होना उसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। सरकार से गुरुकुल वृन्दावन को विशेष आर्थिक अनुदान प्राप्त नहीं हो रहा है। सन् १९४७ और सन् १९४८ में उसे दस-दस हजार और बाद में एक बार बीस हजार रुपये आर्थिक सहायता के रूप में उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रदान किये गये थे। सन् १९६१-६२ में केन्द्रीय सरकार ने भी उसके अध्यापकों के वेतनों के लिए अनुदान देना प्रारम्भ किया था, जिसे १९६७ में बहुत कम कर दिया गया। संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों के वेतनों के लिए सरकार ने आर्थिक अनुदान देने की जो व्यवस्था की हुई है, उसके अनुसार ही वर्तमान समय में गुरुकुल वृन्दावन को बारह अध्यापकों के लिए २६,००० रुपये वार्षिक दिये जा रहे हैं। संस्था का वार्षिक व्यय सवा सात लाख रुपये से भी अधिक है। उसे दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार द्वारा दिया जाने वाला यह अनुदान बहुत कम है। आमदनी की कमी के कारण ही इस गुरुकुल का समुचित रूप से विकास नहीं हो पा रहा है। महँगाई के इस युग में भी वहाँ पहली पाँच कक्षाओं के विद्यार्थियों से ७५ रुपये मासिक और छठी से दसवीं तक की कक्षाओं के विद्यार्थियों से ८५ रुपये मासिक भोजन का शुल्क लिया जाता है। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। साथ ही, निवास, चिकित्सा, बिजली-पंखा, धोबी, नाई, खेल-कूद और पुस्तकालय आदि के लिए भी गुरुकुल में कोई शुल्क नहीं लिया जाता। गुरुकुल के पुस्तकालय में दस हजार के लगभग पुस्तकें हैं, वेद, वेदांग तथा संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों का वहाँ अच्छा संग्रह है। गुरुकुल का परिसर सुविस्तृत तथा रमणीक है। विद्यालय, महाविद्यालय, पुस्तकालय, यज्ञशाला, भोजन भण्डार आदि के सब उपयुक्त भवन वहाँ विद्यमान हैं।

इस संस्था की प्रबन्ध व्यवस्था के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है, कि उसकी विद्यासभा के आधे के लगभग सदस्य ऐसे हैं, जो इसी गुरुकुल के स्नातक हैं या अध्यापक आदि के रूप में चिर काल तक इसके साथ सम्बद्ध रहे हैं। यही बात उसकी अन्य समितियों के विषय में भी कही जा सकती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाईसवाँ अध्याय

स्त्रीशिक्षा की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

(१) कन्या शिक्षणालयों के दो वर्ग

पहले यह बताया जा चुका है कि आर्यसमाज की स्त्रीशिक्षा की संस्थाओं को दो बड़े वर्गों में बाँटा जा सकता है—पहला वर्ग उन संस्थाओं का है जो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सत्यार्थप्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित पाठविधि का अनुसरण करती हैं, वेद-वेदांग, संस्कृत व्याकरण और प्राचीन धर्मग्रन्थों की शिक्षा पर बल देती हैं और साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के पढ़ाने की व्यवस्था भी करती हैं। ये विशुद्ध रूप से आवासीय संस्थाएँ हैं। इनमें छात्राओं को छात्रावासों में आवश्यक रूप से रहना पड़ता है और यहाँ उनका जीवन महर्षि द्वारा बताये गये नियमों के अनुसार अनुशासित किया जाता है। इनकी एक निश्चित दिनचर्या होती है; जो प्रातःकाल जागरण के समय वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ शुरू होती है और रात के सोने के समय तक पूर्ण रूप से नियन्त्रित होती है। सन्ध्या-हवन करना प्रत्येक छात्रा के लिए अनिवार्य होता है। इनका अपना स्वतन्त्र पाठ्य-क्रम होता है। ये संस्थाएँ सरकारी शिक्षा विभागों द्वारा किसी प्रकार नियन्त्रित न होकर उनसे सर्वथा स्वतन्त्र होती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ये सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता भी नहीं लेती थीं। इन संस्थाओं को सामान्य रूप से 'गुरुकुल' कहा जाता है। कुछ गुरुकुल ऐसे भी हैं, जिनमें सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त पाठविधि का अनुसरण किया जाता है, पर क्योंकि उनमें छात्रावास की व्यवस्था गुरुकुलीय पद्धति की होती है, अतः वे गुरुकुल कहाते हैं।

दूसरे प्रकार की संस्थाएँ वे हैं, जिनमें सरकारी पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हुए उसके साथ-साथ वैदिक धर्म और संस्कृति तथा आर्यसमाज से सम्बद्ध विषयों की धर्म-शिक्षा के रूप में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। किन्तु इनमें छात्राओं का शिक्षणालय के छात्रावास में रहना आवश्यक नहीं है, और वेद-वेदांगों की शिक्षा उतने विस्तृत और गम्भीर रूप में नहीं दी जाती, जितनी कि गुरुकुलों में दी जाती है। ये संस्थाएँ न केवल सरकारी शिक्षा-विभागों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के विषय पढ़ाने की व्यवस्था करती हैं, अपितु सरकारी नियमों का अनुसरण करती हैं और सरकार से अनुदान प्राप्त करती हैं। ऐसी शिक्षण-संस्थाओं को शुरू करने में थोड़ी-बहुत कठिनाई अवश्य होती है, किन्तु बाद में सरकारी अनुदान मिल जाने पर और छात्राओं की फीस के कारण कोई आर्थिक कठिनाई नहीं रहती है।

संस्थाओं का संचालन सुगम होने के कारण इनकी संख्या गुरुकुलों की तुलना में बहुत अधिक है। प्रायः सब जगह आर्यसमाजों के भवन दानियों की कृपा से बने होते हैं,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनका उपयोग पहले केवल रविवार के दिन आर्यसमाज के सत्संग के लिए किया जाता था, किन्तु इन संस्थाओं के खुल जाने से इन भवनों का पूरे सप्ताह भर सदुपयोग होने लगता है। कई स्थानों पर ऐसे शिक्षणालय आर्यसमाज का अभिन्न अंग समझे जाते हैं। ये संस्थाएँ छात्राओं के लिए प्राथमिक कक्षाओं से एम० ए० तक की शिक्षा की व्यवस्था करती हैं। डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी द्वारा संचालित ऐसी संस्थाओं का अन्य अध्यायों में उल्लेख हो चुका है। चूँकि इन शिक्षा-संस्थाओं की संख्या बहुत अधिक है, अतः इन सबका इस इतिहास में विस्तृत परिचय देना सम्भव नहीं है। अतः यहाँ विभिन्न प्रदेशों की कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का ही संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा।

(२) उड़ीसा, बंगाल और राजस्थान के कन्या गुरुकुल

आर्यसमाज द्वारा गुरुकुलीय पद्धति की जो अनेक कन्या शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित हैं, उनमें से उत्तरप्रदेश, गुजरात, हरयाणा और दिल्ली की अनेक संस्थाओं का परिचय पहले दिया जा चुका है। पर उनके अतिरिक्त भी कन्याओं की शिक्षा के लिए गुरुकुल पद्धति के अनेक शिक्षणालय विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख करना आवश्यक है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म भारत के पश्चिमी तट पर सौराष्ट्र में हुआ था। उड़ीसा भारत के पूर्वी तट पर अवस्थित है। यहाँ महर्षि का कभी आगमन नहीं हुआ, और आर्यसमाज के प्रचारक भी शुरू में वहाँ नहीं पहुँचे। वहाँ के आदिवासियों में ईसाई प्रचारक शिक्षा के माध्यम से अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करने में संलग्न थे। इस प्रदेश में आर्यसमाज का सन्देश उसके साहित्य द्वारा सर्वप्रथम पहुँचा।

उड़ीसा में सम्भवतः सर्वप्रथम आर्यसमाजी और महर्षि के परम भक्त वैदिक धर्म के प्रचारक श्रीयुत वत्स पण्डा थे। वह लाला लाजपतराय द्वारा अंग्रेजी में लिखित आर्य-समाज नामक पुस्तक तथा सत्यार्थप्रकाश पढ़कर महर्षि के अनुयायी बन गये। उस समय उड़ीसा की स्थिति अतीव शोचनीय थी। जातपाँत, पाखण्ड और धार्मिक आडम्बर का वहाँ बोलबाला था। स्त्रियों में बाल-विवाह की कुप्रथा प्रचलित थी, और विधवा हो जाने पर वे इस जीवन में ही नरक भोगने के लिए विवश हो जाती थीं। श्री वत्स पण्डा का हृदय विधवाओं की दुर्दशा से द्रवित हुआ। उन्होंने विधवा विवाह के प्रचलन के लिए प्रबल प्रयास किये। उन्होंने स्वयं कई विधवाओं का विवाह अपने पैसे से कराया; अस्पृश्यों के उद्धार का प्रयत्न किया और मूर्तिपूजा तथा झूठे जातिवाद के विरुद्ध लेखनी उठायी। कट्टर-पन्थी, दकियानूसी पौराणिकों को उनकी ये गतिविधियाँ असह्य प्रतीत हुईं। उन्होंने उनका सामाजिक बहिष्कार किया। पुरी के पण्डे उन्हें मध्य-युग में हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार करके उन्हें मुसलमान बनाने वाले शासक—काला पहाड़ के नाम से पुकारने लगे। किन्तु इस विरोध की परवाह न करके श्री वत्स पण्डा ने महर्षि के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों—सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि आदि का उड़िया भाषा में अनुवाद किया, विधवाश्रमों की स्थापना की, स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया और जीवन के अन्तिम दिनों में अपने जन्मस्थान तनरड़ा (जिला गंजाम) की अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति आर्यसमाज को दान कर दी। इसकी रजिस्ट्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम पर की गयी और यहाँ श्री वत्स गोरक्षा आश्रम तथा ब्रह्मचर्य आश्रम स्थापित किये गये।

आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा, जिला गंजाम (उड़ीसा)— श्री वत्स पण्डा की उड़ीसा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कन्या गुरुकुल स्थापित करने की इच्छा उनके निधन के बाद २७ वर्ष पश्चात् पूरी हुई। इस गुरुकुल की स्थापना का श्रेय स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती को है। स्वामीजी उड़ीसा में सर्वप्रथम गुरुकुलीय शिक्षा के संस्थापक, सूत्रधार और शुद्धि आन्दोलन के नेता थे। इनके सतत प्रयत्न से आर्य कन्या गुरुकुल तनरड़ा की स्थापना हुई। इसका उद्घाटन उड़ीसा के भूतपूर्व उप-राज्यपाल और डी० ए० वी० मैनेजिंग कमेटी के उपप्रधान, पद्मश्री डॉक्टर अयोध्यानाथ खोसला के करकमलों से २-७-१९७० को सोल्लास सम्पन्न हुआ। इस पवित्र अवसर पर उड़ीसा के गण्यमान्य नेता और स्थानीय जनता बड़ी संख्या में उपस्थित हुई। यह गुरुकुल १० कन्याओं से आरम्भ हुआ। शुरू में इसके निर्माण में कई दानियों ने बहुमूल्य सहयोग दिया। कलकत्ता निवासी श्रीयुत हंसराज चड्ढा ने १५ हजार रुपये के दान से एक अतिथिशाला का, और भुवनेश्वर निवासी श्रीयुत जगदीश वुद्धराज ने तीस हजार रुपये की लागत से कन्याओं के छात्रावास और आश्रम के भवनों का निर्माण कराया। कलकत्ता निवासी श्रीयुत रघुवीर दयाल गुप्ता ने गुरुकुल में यज्ञशाला बनवाई। इसी प्रकार स्त्री आर्यसमाज, शक्तिनगर, दिल्ली आदि से इस गुरुकुल को बहुमूल्य सहायता मिली।

इस गुरुकुल में उड़ीसा सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार मैट्रिक तक ही शिक्षा दी जाती है। साथ ही, सिलाई और पाकशास्त्र की कलाएँ भी सिखाई जाती हैं। धर्मशिक्षा, संस्कृत और हिन्दी का ज्ञान भी छात्राओं को कराया जाता है। छात्राओं में आरम्भ से वैदिक संस्कृति के भावों को भरा जाता है। प्रतिदिन सन्ध्या-हवन के साथ आश्रम में व्यायाम, लाठी चलाना आदि भी सिखाये जाते हैं। इस समय गुरुकुल में ढाई सौ कन्याएँ आश्रम में रहकर अध्ययन कर रही हैं। शिक्षा का स्तर ऊँचा है। प्रतिवर्ष छात्राओं का परिणाम बहुत अच्छा रहता है। इसके साथ ही श्री वत्स गोरक्षा आश्रम तथा अनाथ कन्याओं के लिए श्री वत्स बाल सदन भी चलाये जा रहे हैं। इनके संचालक भी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ही हैं।

यह गुरुकुल उड़ीसा की स्त्रीशिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं में अग्रगण्य है। यहाँ उड़ीसा के सभी जिलों की छात्राएँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। इस संस्था के उच्च शिक्षा स्तर और पवित्र वातावरण, सुव्यवस्था और चरित्र-निर्माण की विशेषताओं के कारण लोग अपनी कन्याओं को यहाँ शिक्षा देने के लिए लालायित रहते हैं। यहाँ लड़कियों की शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। इस समय यहाँ ग्यारह अध्यापिकाएँ अध्यापन-कार्य कर रही हैं। संस्था का वार्षिक बजट तीन लाख रुपया है। सरकार से अनुदान के रूप में केवल एक लाख रुपया प्राप्त होता है। शेष धनराशि की पूर्ति इसके संचालक स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती धन संग्रह द्वारा करते हैं।

इसका प्रबन्ध एक स्थानीय प्रबन्ध समिति द्वारा होता है। इसके प्रधान श्री प्रतापचन्द्र पटनायक, मन्त्री श्री बालकृष्ण महापात्र, प्रधानाध्यापिका श्रीमती नर्मदा पटनायक और अधिष्ठात्री कुमारी सुषमा मिश्र है। इनके अतिरिक्त इस समिति में संस्था के संचालक तथा संस्थापक स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती एवं पाँच अन्य सदस्य हैं। कन्या गुरुकुल में छात्राओं के ज्ञानवर्धन के लिए एक विशाल पुस्तकालय और वाचनालय भी है।

शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए इस प्रदेश में यह संस्था शिक्षा के प्रसार का प्रशंसनीय कार्य कर रही है। इसके कार्य की सराहना इस संस्था में आने वाले व्यक्तियों ने की है। उड़ीसा के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री विश्वनाथ दास ने इसे देखने के बाद यह लिखा था,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि "शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अभिनव प्रयास है।" इसकी आवासीय पद्धति ने दर्शकों को बहुत प्रभावित किया है। उड़ीसा के सिंचाई और विद्युत् विभाग के मन्त्री ने लिखा था, "गंजाम जिले के परिभ्रमण के समय आकस्मिक रूप से कन्या गुरुकुल आश्रम में आकर और यहाँ सभी कन्याओं तथा अध्यापिकाओं के सान्निध्य का लाभ प्राप्त करके मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।"

बंगाल का कन्या गुरुकुल—बंगाल के मिदनापुर (मेदिनीपुर) जिले के वासुदेवपुर नामक स्थान पर एक कन्या गुरुकुल विद्यान है। यह आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल द्वारा स्थापित किया गया है, और इसके अन्तर्गत एक ट्रस्ट द्वारा चलाया जा रहा है। इस गुरुकुल की स्थापना १९६७ में हुई थी। तत्कालीन सभा मन्त्री श्री वटुकृष्ण वर्मन एडवोकेट तथा स्थानीय आर्यसमाज वासुदेवपुर के उत्साही कार्यकर्ता श्री वेनीमाधव कोयला तथा पण्डित गोकुलचन्द्र आर्य के सत्प्रयत्नों से सभा इस संस्था की स्थापना के लिए उद्यत हुई। इस गुरुकुल के लिए श्री प्रमथनाथ जाना ने एक एकड़ भूमि प्रदान की, जिसका पंजीकरण आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल के नाम किया गया। इसके बाद श्री रसिकलाल माइती, श्री चण्डीचरण माइती तथा श्री फणीन्द्रनाथ माइती आदि कई सज्जनों ने इस कन्या गुरुकुल के लिए भूमि का दान किया, और स्वामी अभयानन्द का पूर्ण सहयोग इसे प्राप्त हुआ।

इस कन्या गुरुकुल के दो विभाग हैं—(१) विद्यालय विभाग, और (२) आश्रम विभाग। विद्यालय विभाग पश्चिम बंगाल की शिक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार कन्याओं को शिक्षा देता है। इसमें ६ अध्यापिकाएँ और २ शिक्षकेतर कर्मचारी हैं। इस समय इस विभाग में लगभग १०० कन्याएँ अध्ययन कर रही हैं।

आश्रम विभाग में १२ के लगभग कन्याएँ निवास करती हैं। इनको संस्था के निर्धारित दैनिक कार्यक्रम का अनुसरण करना पड़ता है। इसका आरम्भ प्रातःकाल वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ होता है। सन्ध्या-हवन करना तथा शयन से पूर्व वैदिक मन्त्रों का पाठ अध्यापिकाओं तथा आश्रमवासी कन्याओं के लिए अनिवार्य है। सन्ध्या-हवन एक विशाल यज्ञशाला में होता है। छात्राओं के साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन प्रति शनिवार को किया जाता है। इसमें वाग्वर्धिनी सभा के माध्यम से छात्राओं को भाषण देने की कला सिखायी जाती है।

गुरुकुल की वर्तमान अचल सम्पत्ति का मूल्य दो लाख रुपये से कुछ अधिक है। आश्रम विभाग का कार्य स्वामी अभयानन्द और श्री सुरेशचन्द्र की देखरेख में होता है। इस कन्या गुरुकुल की छात्राएँ तथा कार्यकर्ता पश्चिमी बंगाल में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार एवं वैदिक धर्म की शिक्षा के विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

राजस्थान में कन्याओं को गुरुकुल पद्धति से शिक्षा देने के लिए अलवर जिले के दाधिया नामक स्थान पर आर्ष कन्या गुरुकुल नाम से एक शिक्षण-संस्था विद्यमान है, जिसकी स्थापना सन् १९६२ में महाशय नन्दलाल द्वारा की गई थी। आर्ष पद्धति से प्रथमा से लगाकर आचार्य पर्यन्त शिक्षा की इस गुरुकुल में व्यवस्था है। वर्तमान समय में छात्राओं की संख्या ५० है, जो सब छात्रावास में रहती हैं, और गुरुकुलीय दिनचर्या के अनुसार ब्रह्मचर्यपूर्वक सदाचारमय अनुशासित जीवन बिताती हैं। गुरुकुल किसी विश्वविद्यालय व शिक्षा परिषद् से सम्बद्ध नहीं है। इसकी स्थापना की प्रेरणा पण्डित युधिष्ठिर विद्यालंकार (स्वामी व्रतानन्द) द्वारा प्रदान की गयी थी, और उन्हीं से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा प्राप्त कर महाशय नन्दलाल ने इसके लिए भूमि दान दी थी। इसकी भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य पाँच लाख रुपये है। संस्था का सब खर्च दान से चलता है। धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है, और दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या, हवन तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में छात्राओं के साथ-साथ अध्यापिकाओं को भी अनिवार्य रूप से उपस्थित होना होता है। गुरुकुल का अपना पुस्तकालय है, जिसमें पुस्तकों की संख्या ५,००० से भी अधिक है। संस्था का संचालन श्रीमती सुशीला आचार्या एम०ए० द्वारा किया जा रहा है।

उत्तरप्रदेश के प्रमुख कन्या गुरुकुलों (सासनी, देहरादून, कनखल आदि) का परिचय पहले दिया जा चुका है। पर उनके अतिरिक्त भी वहाँ कतिपय कन्या गुरुकुल विद्यमान हैं, जिनमें आर्य कन्या गुरुकुल महाविद्यालय खाद गूजर (मुरादाबाद) और मातृमन्दिर कन्या गुरुकुल, वाराणसी उल्लेखनीय हैं।

(३) हरयाणा के आर्य गर्ल्स कॉलिज और स्कूल

स्त्रीशिक्षा के लिए जो सैकड़ों स्कूल और कॉलिज आर्यसमाज द्वारा स्थापित हैं, उनमें से कुछ का परिचय यहाँ केवल इस प्रयोजन से दिया जा रहा है, ताकि इन शिक्षणालयों के माध्यम से जो महत्त्वपूर्ण कार्य आर्यसमाज द्वारा किया जा रहा है, उस पर प्रकाश पड़ सके।

आर्य गर्ल्स कॉलिज, अम्बाला छावनी—इस संस्था की स्थापना जून, १९५९ में हुई थी। अम्बाला छावनी के कुछ आर्य बन्धुओं के मन में अम्बाला में एक ऐसे महाविद्यालय को स्थापित करने की आकांक्षा उत्पन्न हुई जिसमें वर्तमान सरकारी शिक्षा पद्धति के साथ-साथ कन्याओं को आर्य संस्कृति के तत्त्वों और वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का भी परिचय कराया जाये। इस प्रकार का विचार रखने वाले सज्जनों में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के मन्त्री स्वर्गीय श्री भीमसेन विद्यालंकार, स्वर्गीय दीवान अलखधारी तथा स्वर्गीय बाबू रामस्वरूप तथा गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी के व्यवस्थापक डा० हरिप्रकाश के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने आर्य गर्ल्स मैनेजिंग कमेटी, अम्बाला कैंट के नाम से एक सोसायटी स्थापित की। इसके उद्देश्यों में यह कहा गया था कि यह सोसायटी आर्य गर्ल्स कॉलिज अम्बाला का नियन्त्रण और प्रबन्ध करेगी, इसके लिए आवश्यक वित्तीय साधनों की व्यवस्था करेगी और इस संस्था में वैदिक संस्कृति एवं आधुनिक विचारों का समन्वय करते हुए पूरी क्षमता के साथ इसका संचालन करेगी। इस संस्था में भौतिकता और मानवीयता के सामान्य सिद्धान्तों की, और विशेष रूप से वैदिक संस्कृति की छात्राओं को शिक्षा दी जायेगी। इन उद्देश्यों को क्रियात्मक रूप देने के लिए यह संस्था पिछले २५ वर्षों से निरन्तर प्रयत्न कर रही है।

इस समय इस संस्था में तीन प्रकार के पाठ्यक्रम पढ़ाये जाते हैं—प्राक् विश्वविद्यालय (प्री-यूनिवर्सिटी), त्रिवर्षीय स्नातक कक्षाओं का पाठ्यक्रम, तथा एम० ए० के कुछ विषय। यह संस्था कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। उससे तथा हरयाणा के शिक्षा विभाग से इसे स्थायी मान्यता प्राप्त है।

इस संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य लगभग ५० लाख रुपये है। इस कॉलिज की भूमि ७० हजार रुपये में पुनःस्थापना विभाग से खरीदी गयी थी और इसमें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन निर्माण का काम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से तथा हरयाणा के शिक्षा विभाग से प्राप्त अनुदानों की सहायता से किया गया था।

संस्था की आय का प्रधान स्रोत छात्राओं से प्राप्त होने वाला शिक्षा शुल्क, तथा सरकार से प्राप्त होने वाली रख-रखाव की सहायता है। इसमें एक छात्रावास भी है, जिसमें लगभग ४० छात्राएँ रहती हैं।

वर्तमान समय में इस कॉलिज में ५३६ छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, प्राध्यापिकाओं की संख्या १५ है। इस शिक्षणालय में दैनिक प्रार्थना होती है, और साप्ताहिक यज्ञों का आयोजन किया जाता है। शिवरात्रि के अवसर पर अन्त:महाविद्यालय वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। समय-समय पर छात्राओं में आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य वितरित किया जाता है। छात्राएँ आर्यसमाज के सत्संगों एवं शोभा यात्राओं में अध्यापिकाओं के साथ सम्मिलित होती हैं।

छात्राओं में लेखन की रुचि बढ़ाने के लिए कॉलिज मैगजीन का प्रकाशन किया जाता है। इसके परिशिष्ट में आर्यसमाज की शताब्दी जैसे महत्त्वपूर्ण समारोहों का विवरण छापा जाता है, ताकि छात्राओं को आर्यसमाज की गतिविधियों का पूरा परिचय मिलता रहे।

छात्राओं के अध्ययन एवं ज्ञानवर्धन के लिए महाविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय है। इसमें उच्च कोटि के १८,८२५ ग्रन्थों का उत्तम संग्रह है।

इस महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने के बाद अनेक स्नातिकाएँ बैंकों, स्कूलों और कॉलिजों में काम कर रही हैं। वर्तमान समय में इसकी प्रिंसिपल डॉ० श्रीमती शान्ता मल्होत्रा हैं, जो बड़ी लगन से इस कॉलिज की उन्नति में तत्पर हैं।

आर्य कन्या महाविद्यालय, नरवाणा—यह हरयाणा की एक पुरानी शिक्षण-संस्था है, जिसकी स्थापना १९२८ में हुई थी। इसके संस्थापकों में सर्वश्री जीवनकुमार, इन्द्रजीत, धर्मपाल और राजकुमार के नाम उल्लेखनीय हैं। पहले इसमें मिडल और मैट्रिक तक की शिक्षा कन्याओं को दी जाती थी। बाद में महाविद्यालय की कक्षाएँ भी खोली गयीं। इस संस्था के विद्यालय विभाग में ५८० तथा महाविद्यालय विभाग में ३३ छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। यह महाविद्यालय हरयाणा के शिक्षा विभाग से सम्बद्ध है।

इस संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य ३० लाख रुपये के लगभग है। यह सारी सम्पत्ति दान से प्राप्त हुई है। इस संस्था को दान देने वालों में निम्नलिखित व्यक्ति उल्लेखनीय हैं—श्री नौरोताराम और लाला कृशनचन्द्र। मैनेजिंग कमेटी के सभी सदस्य इसकी उन्नति में सराहनीय सहयोग देते हैं।

इस संस्था में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है, और यह विषय सब छात्राओं के लिए अनिवार्य है। यहाँ दैनिक प्रार्थना, सन्ध्या तथा हवन होता है। इसमें उपस्थित होना छात्राओं तथा अध्यापिकाओं के लिए अनिवार्य है।

छात्राओं और अध्यापिकाओं को वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से अवगत और प्रभावित कराने के लिए आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वानों के व्याख्यान कराये जाते हैं। छात्राओं से भाषणों, कविताओं और गीतों की प्रतियोगिताएँ भी करायी जाती हैं।

छात्राएँ आर्यसमाज के जलसों और जुलूसों में सम्मिलित होती हैं। संस्था के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय में लगभग ३००० पुस्तकें हैं। छात्राएँ इनसे बड़ा लाभ उठाती हैं। परीक्षा-परिणाम सन्तोषजनक रहता है, और शिक्षा का स्तर अच्छा है। इस समय इसकी प्रधानाचार्या श्रीमती चाँद मिगलानी हैं।

आर्य कन्या उच्च विद्यालय, करनाल (हरयाणा)—इस संस्था की स्थापना १९३० ई० में हुई थी। इसके संस्थापकों में स्वर्गीय चौधरी सिंहराम, लाला गणपतराय, श्री शान्तिस्वरूप, श्री नरसिंहदास और वैद्य विद्यानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस संस्था का संचालन स्कूल की एक प्रबन्धक कमेटी द्वारा किया जाता है। प्रति तीन वर्ष बाद यह कमेटी बदल जाती है। इस कमेटी के सदस्यों का मनोनयन आर्यसमाज करनाल की अन्तरंग सभा द्वारा किया जाता है। इस समय इस समिति के प्रधान वैद्य रतिराम आयुर्वेदाचार्य, उपप्रधान श्री चमनलाल और मन्त्री श्री हरिश्चन्द्र गुलाटी हैं। यह संस्था आर्य विद्यापरिषद् हरयाणा के तत्त्वावधान में संचालित हो रही है। इस संस्था में हरयाणा बोर्ड की मैट्रिक परीक्षा तक पढ़ाई की व्यवस्था है।

इस संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य ५ लाख रुपये है। यह सारी सम्पत्ति दान द्वारा प्राप्त हुई है। इस संस्था को विशेष दान देने वाले महानुभावों के नाम हैं—माता बसोदेवी तथा श्रीमती सरस्वती देवी। सायन्स ब्लाक के निर्माण के लिए दान देने वाले श्री शीतलदास हैं।

इस संस्था में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षणालय में प्रतिदिन प्रातः-सायं सन्ध्या-हवन होता है और इसमें सब की उपस्थिति अनिवार्य है। छात्राओं को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों से परिचय कराने के लिए समय-समय पर वेद सम्बन्धी भाषण प्रतियोगिताओं और उपदेशों आदि का आयोजन किया जाता है। वह संस्था वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यकलापों में गहरी दिलचस्पी लेती है।

इस स्कूल की छात्राएँ सामाजिक कार्यों में गहरी दिलचस्पी लेती हैं। इसकी भूतपूर्व छात्रा श्रीमती शान्तिदेवी इस प्रदेश की सुप्रसिद्ध समाज सेविका और हरयाणा विधानसभा में करनाल क्षेत्र की विधायिका हैं। इस समय इसी स्कूल की भूतपूर्व छात्रा श्रीमती राज अरोड़ा इस स्कूल की मुख्याध्यापिका हैं।

आर्य कन्या उच्च विद्यालय, सोनीपत—इस विद्यालय की स्थापना दिसम्बर, १९५१ में हुई थी। इसके संस्थापक आर्यसमाज सोनीपत की अन्तरंग सभा के कुछ सदस्य थे। इनमें स्वर्गीय बाबू सन्तलाल वकील, स्व० मनोहरलालजी, श्री श्रीकृष्ण शास्त्री और श्री सत्यदेव शर्मा शास्त्री विद्यावाचस्पति के नाम उल्लेखयोग्य हैं। इस विद्यालय का कार्य स्थानाभाव के कारण आरम्भ में आर्यसमाज के भवन में ही आरम्भ किया गया था। तीन वर्ष बाद इसके लिए पृथक् भवन का निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ।

इस विद्यालय के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—कन्याओं की शिक्षा का विस्तार करना, वैदिक धर्म और संस्कृति का विशेष ज्ञान कराना, मातृत्व के उत्तम संस्कार उत्पन्न करना, धर्म के प्रति आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति उत्पन्न करना और अन्धविश्वासों का निराकरण करना तथा उच्च माध्यमिक परीक्षा तक छात्राओं को हरयाणा शिक्षा बोर्ड के कार्यक्रम तथा पाठविधि के अनुसार शिक्षा देना।

इस समय इस विद्यालय में छात्राओं की संख्या ९०० के लगभग है। वह हरयाणा शिक्षा बोर्ड के साथ सम्बद्ध है, और इसे हरयाणा शिक्षा विभाग से स्थायी मान्यता प्राप्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस विद्यालय में माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक परीक्षा हरयाणा के शिक्षा बोर्ड द्वारा दिलायी जाती है, और छठी, सातवीं एवं नवम कक्षाओं की परीक्षा इस विद्यालय द्वारा स्वयं ली जाती है।

इस स्कूल का अपना विशाल भवन है। इसमें दो हॉल और वीस के लगभग कमरे हैं, जिनका अनुमानिक मूल्य १५ लाख रुपये के लगभग है। संस्था का पुराना भवन आर्य सज्जनों के दान से वनाया गया है। पुराने भवन की सम्पूर्ण भूमि स्व० लाला केदारसिंह ने दान में दी थी, और भवन निर्माण के लिए साधारण जनता से दान लिया गया था। नया भवन सरकार द्वारा अधिगृहीत करवाया गया है। संस्था की आय के प्रमुख स्रोत सरकारी अनुदान, दान और छात्राओं के शुल्क हैं। वार्षिक वजट सवा दो लाख रुपये के लगभग है। विद्यालय के साथ छात्रावास भी है और उसमें तीस-पैंतीस छात्राओं के रहने की व्यवस्था है।

इस विद्यालय में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है। यह सव छात्राओं के लिए अनिवार्य है, और विद्यालय की समयसारणी में इसके लिए एक विशेष पीरियड नियत है। यहाँ दैनिक सन्ध्या-हवन होता है। सभी विभागों से एक-एक कक्षा प्रतिदिन बारी-बारी से हवन करती है। शनिवार को सामूहिक सन्ध्या-हवन और प्रार्थना की जाती है। इसमें सभी छात्राओं तथा अध्यापिकाओं का उपस्थित होना अनिवार्य है। वैदिक धर्म का प्रचार छात्राओं में धर्मशिक्षा की पुस्तकों के माध्यम से किया जाता है। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र आर्यजगत्, सार्वदेशिक और सर्वहितकारी छात्राओं के पढ़ने के लिए मँगाये जाते हैं। आर्यसमाज का साहित्य भी इस संस्था में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है; और इसके माध्यम से छात्राओं को आर्यसमाज से परिचित कराया जाता है। विद्यालय के पुस्तकालय में आर्यसमाज के ग्रन्थों के साथ-साथ ढाई हजार के लगभग अन्य पुस्तकें भी हैं।

इस विद्यालय की अध्यापिकाओं और छात्राओं द्वारा आर्यसमाज की विभिन्न गतिविधियों, कार्यकलापों और आन्दोलनों में गहरी दिलचस्पी ली जाती है। आर्यसमाज के शताब्दी समारोह में इसकी छात्राओं ने सक्रिय रूप से भाग लिया था। इसकी छात्राएँ तथा अध्यापिकाएँ इस अवसर पर दिल्ली में आयोजित शोभा यात्रा में सम्मिलित हुई थीं। संस्था में आर्यसमाज के पर्व वड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। इनमें तथा आर्यसमाज के वार्षिक उत्सवों में इस विद्यालय की छात्राएँ अपने भाषण, भजन, गीत और कविताएँ प्रस्तुत करती हैं। छात्राओं को प्रोत्साहन देने के लिए इन अवसरों पर विद्यालय की ओर से अनेक पुरस्कार दिये जाते हैं।

इस विद्यालय की छात्राएँ यहाँ से शिक्षा प्राप्त करने के वाद धर्मप्रचार, प्रशिक्षण, प्रशासन आदि के क्षेत्रों में अच्छा कार्य कर रही हैं। कुछ छात्राएँ एम० ए०, एम० फिल० करके विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापिका वनी हुई हैं, और कुछ डॉक्टर वनकर जनता की सेवा में लगी हुई हैं। इस विद्यालय का प्रवन्ध आर्यसमाज सोनीपत की एक समिति द्वारा किया जाता है। इसके प्रधान श्री छज्जूराम, प्रवन्धक श्री वेदप्रकाश अग्रवाल तथा मन्त्री श्री सत्यदेव शर्मा शास्त्री विद्यावाचस्पति हैं।

हरयाणा में रोहतक का आर्य गर्ल्स हाईस्कूल, झज्झर की वैदिक कन्या पाठशाला, पानीपत की आर्य कन्या पाठशाला और मोरिण्डा (अम्वाला) की आर्य कन्या पाठशाला स्त्रीशिक्षा की पुरानी आर्य शिक्षण-संस्थाएँ हैं। इनके अतिरिक्त वर्तमान समय में वहाँ जो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य कन्या शिक्षणालय हैं, उनमें डी० ए० वी० महिला कॉलिज यमुनानगर, आर्य महिला कॉलिज पानीपत, वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय बहादुरगढ़, हरकौर गर्ल्स कॉलिज पानीपत, डी० ए० वी० कॉलिज फॉर गर्ल्स करनाल उच्च शिक्षा के केन्द्र हैं। स्कूल स्तर तक की शिक्षा के लिए जो आर्य कन्या पाठशालाएँ व स्कूल वहाँ विद्यमान हैं, उनकी संख्या १०० के लगभग है।

(४) उत्तरप्रदेश के आर्य गर्ल्स स्कूल और कॉलिज

आर्य कन्या इण्टर कॉलिज मुट्ठीगंज, इलाहाबाद—इस संस्था की स्थापना १३ नवम्बर, १९०५ को हुई थी। इसकी स्थापना का उद्देश्य कन्याओं में वैदिक शिक्षा एवं संस्कृति का प्रचार और प्रसार करना था। यह संस्था प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश, लखनऊ के अन्तर्गत विद्यार्य सभा के मान्य संविधान द्वारा संचालित है। इसे स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करने वाले और इसकी स्थापना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले आर्य बन्धुओं में प्रयाग के निम्नलिखित सज्जनों का नाम उल्लेखनीय है—लाला जसवन्तराय, श्री लक्ष्मीनारायण, श्री रामदीन वैश्य, रायबहादुर डा० गणपतराय, श्री रामदास भार्गव, प्रो० कृष्णचन्द्र, पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय और श्रीमती कलादेवी। इनमें श्री रामदीन वैश्य का नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उन्होंने महर्षि दयानन्द के दर्शन किये थे, उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था और उन्हें महर्षि के शिष्य होने तथा प्रयाग में स्वदेशी आन्दोलन का प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त है। देशी वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए उन्होंने देशी कार-बार लिमिटेड नामक एक दुकान खोली जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा। बाबू लक्ष्मीनारायण वैश्य आर्यसमाज चौक के विभिन्न पदों पर रहते हुए २५ वर्ष तक इस विद्यालय के प्रबन्धक पद पर सेवा करते रहे।

इस समय इस विद्यालय में ३,५०० के लगभग छात्राएँ पढ़ती हैं। इनको प्रशिक्षण देने के लिए ९० अध्यापिकाएँ नियुक्त हैं और शिक्षकेतर कर्मचारियों में यहाँ ७ लिपिक और २० परिचारक कार्यरत हैं। यह विद्यालय उत्तरप्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् से सम्बद्ध है, और उत्तरप्रदेश शासन से इसे स्थायी मान्यता प्राप्त है। यह संस्था जूनियर हाई स्कूल, हाईस्कूल और इण्टर की परीक्षाएं दिलवाती है, और इसकी गणना उत्तरप्रदेश के के बड़े इण्टर कॉलिजों में की जाती है। इसका शिक्षा स्तर बहुत अच्छा है, और प्रतिवर्ष परीक्षा परिणाम अच्छा रहता है।

इस कॉलिज की सम्पूर्ण सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य ढाई तीन करोड़ के लगभग है। इस सम्पत्ति का अधिकांश भाग पूर्ण रूप से दान द्वारा प्राप्त हुआ है। इस संस्था की भू-सम्पत्ति, भवन तथा अन्य सम्पत्ति के लिए दान देने वाले प्रमुख व्यक्ति अग्रलिखित हैं—रायबहादुर डा० गणपत राय, श्रीमती मायाकुमारी, लाला जसवन्त राय, श्री विश्वामित्र दुग्गल, श्रीमती सूर्यमुखी अस्थाना, डा० सत्यप्रकाश और डा० गंगाप्रसाद उपाध्याय।

संस्था का वार्षिक आनुमानिक आय-व्यय १५ लाख रुपये के लगभग है। आय के प्रमुख साधन छात्राओं से प्राप्त होने वाला शुल्क एवं सरकारी अनुदान हैं।

इस संस्था में धर्मशिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था है। दैनिक प्रार्थना होती है। प्रति शनिवार को साप्ताहिक सत्संग, सन्ध्या और यज्ञ की व्यवस्था है। इसमें अध्यापिकाओं और छात्राओं की उपस्थिति अनिवार्य है। विद्यालय में छात्राओं तथा अध्यापिकाओं को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद, वैदिक धर्म तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं से परिचित कराने के लिए नैतिक शिक्षा समिति का गठन किया गया है। सभी आर्य पर्वों पर एवं समय-समय पर वैदिक विद्वानों के प्रवचन छात्राओं के लिए कराये जाते हैं तथा वाद-विवाद, कहानी, कविता, निबन्ध प्रतियोगिताएँ एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। विद्यालय का एक विशाल पुस्तकालय है। इसमें लगभग १३ हजार पुस्तकें हैं। ये विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और पाठ्य विषयों से सम्बद्ध हैं। इसके साथ ही वैदिक सिद्धान्तों का परिचय देने वाले आर्यसमाज के प्रमुख मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा अन्य दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ भी विद्यालय में मँगायी जाती हैं।

इस विद्यालय के अधिकारी, अध्यापिकाएँ और छात्राएँ आर्यसमाज की विभिन्न गतिविधियों में काफी दिलचस्पी लेती हैं। प्रतिवर्ष वेद प्रचार सप्ताह, बाल दिवस और वार्षिकोत्सव का आयोजन किया जाता है। माघ मेले पर सेवाकार्य भी इस संस्था द्वारा होता है। इसके साथ ही यदा-कदा बाढ़पीड़ितों की सहायता और चिकित्सा शिविरों के भी आयोजन किये जाते हैं।

इस समय इस संस्था की प्रबन्धक समिति के प्रधान श्री केशवप्रसाद, प्रबन्धक श्री राजेन्द्र नारायण और कोषाध्यक्ष श्री पन्नालाल हैं। प्रधानाचार्या कुमारी सुकुमारी भटनागर एम० ए०, एल० टी० हैं।

श्री लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी आर्य कन्या इण्टर कालिज, मथुरा—इस आर्य कन्या विद्यालय की स्थापना १९१४ में प्राइमरी पाठशाला के रूप में हुई थी। १९२६ में इसे जूनियर हाईस्कूल की मान्यता मिल गयी और यहाँ मिडल कक्षाओं की पढ़ाई शुरू हुई। इसके बाद १९५४ में इसे हाईस्कूल की मान्यता प्राप्त हुई। इसके बाद अनेक मथुरावासी आर्य सज्जनों के सतत प्रयास से यह विद्यालय १९६४ में इण्टरमीडियेट कॉलिज बना। शनैः शनैः आवश्यकतानुसार इसके भवनों में वृद्धि होती चली गयी। इस समय विद्यालय में ३८ कक्ष हैं। छात्राओं के लिए मध्यान्तर में जलपान की सुविधा के लिए एक अतिरिक्त केण्टीन की व्यवस्था है। विद्यालय के मुख्य द्वार के सम्मुख एक विशाल प्रांगण है। इसमें छात्राओं की सामूहिक प्रार्थना तथा अन्य सांस्कृतिक क्रियाकलाप सम्पन्न होते हैं। इसके संस्थापकों में श्री लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी, ठाकुर श्री शेरसिंह आर्य तथा श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इस समय इस विद्यालय में एक हजार छात्राएँ पढ़ती हैं। इस विद्यालय को उत्तरप्रदेश सरकार की माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस स्कूल की आनुमानिक सम्पत्ति का मूल्य ५ लाख रुपये है। इसकी आय के प्रमुख स्रोत सरकार द्वारा मिलने वाला अनुदान, छात्राओं की फीस तथा संस्था के अधिकारियों द्वारा चन्दे के रूप में प्राप्त किया जाने वाला दान है। इसके प्रमुख दानियों में श्री लक्ष्मण-प्रसाद चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने आरम्भ में इसकी स्थापना के लिए पाँच हजार रुपये का दान दिया था। इस विद्यालय में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य है, और प्रति सप्ताह हवन होता है। इसकी छात्राओं का परीक्षा परिणाम बहुत अच्छा रहता है, और शिक्षणेतर क्रियाकलापों में भी इस विद्यालय की छात्राएँ बड़े उत्साह से भाग लेती हैं। जिला स्तर पर आयोजित इसके सांस्कृतिक कार्यक्रम कई बार सर्वोत्तम घोषित हुए हैं, और छात्राओं को पुरस्कृत किया गया है।

पुस्तकालय में सभी विषयों की लगभग ४,९१८ पुस्तकें हैं और बुक बैंक योजना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार १,१६६ पुस्तकें हैं, जिनसे निर्धन व मेधावी छात्राओं को आवश्यकतानुसार पुस्तकीय सहायता प्रदान की जाती है। इस विद्यालय का संचालन आर्यसमाज की एक समिति द्वारा किया जाता है। इसके प्रधान श्री गोपालप्रसाद और स्कूल के प्रबन्धक श्री रामप्रसाद कमल हैं। सम्प्रति विद्यालय की मुख्याध्यापिका श्रीमती शकुन्तला आर्या हैं।

आर्य कन्या इण्टर कॉलिज, सिकन्दराराऊ (अलीगढ़)—इस संस्था की स्थापना १९४२ में हुई थी। संस्था के प्रमुख उद्देश्य हैं—कन्याओं तथा महिलाओं को धार्मिक, सांस्कृतिक, शारीरिक तथा कुटीर उद्योग आदि की शिक्षा देने के लिए नगर में आर्य कन्या इण्टर कॉलिज को सुचारु रूप से संचालित करना, स्त्रीशिक्षा की विविध प्रकार की उन्नति के लिए अन्य योजनाओं को कार्यान्वित करना, नगर में स्त्रीशिक्षा के प्रति अभिरुचि, सद्भाव तथा स्नेह उत्पन्न करना, उच्च परीक्षाओं का यथासमय तथा यथासाध्य प्रबन्ध करना और छात्राओं को सुशील, धार्मिक एवं योग्य नागरिक बनाना। इस संस्था की स्थापना के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाले और इसकी स्थापना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले महानुभावों में उल्लेखनीय नाम ये हैं—श्री गंगाप्रसाद, श्री गोपीनाथ वार्ष्णेय, श्री श्यामलाल वार्ष्णेय, श्री कामेश्वर दयाल चौधरी और श्री फूलचन्द्र जायसवाल।

वर्तमान समय में इस संस्था में शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं की संख्या १,२०० है। इन्हें तीस अध्यापिकाएँ पढ़ा रही हैं। यह संस्था माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद से सम्बद्ध है। इस परिषद् से इसे इण्टर स्तर तक की मान्यता प्राप्त है। इस संस्था द्वारा हाईस्कूल और इण्टर की परीक्षाओं के लिए छात्राओं को तैयार किया जाता है।

इस संस्था के अपने भवन हैं और इनका आनुमानिक मूल्य एक लाख दस हजार के लगभग है। संस्था की आय के प्रमुख स्रोत सरकारी अनुदान, फीस, किराया और मासिक चन्दा हैं।

इस शिक्षणालय में प्रतिदिन वेदमन्त्रों के साथ प्रार्थना होती है। प्रतिमास हवन किया जाता है। प्रमुख राष्ट्रीय पर्व और आर्यसमाज के पर्व बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। इनमें छात्राओं तथा अध्यापिकाओं की उपस्थिति अनिवार्य है। पुस्तकालय में वैदिक धर्म और आर्यसमाज से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य मँगाया जाता है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ७ हजार है।

इस समय विद्यालय का संचालन एक समिति द्वारा हो रहा है। इसके प्रधान श्री आनन्द वल्लभ त्रिवेदी, उपप्रधान श्री कंचनलाल वार्ष्णेय, मंत्री श्री अजयभारत कुलश्रेष्ठ और प्रबन्धक श्री रामगोपाल वर्मा हैं। इस समय इस संस्था की आचार्या श्रीमती रमारानी राठी हैं।

आर्य कन्या माध्यमिक विद्यालय, भारतनगर, गाजियाबाद—भारत नगर में १९४८ ई० में आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। यह क्षेत्र शिक्षा की दृष्टि से बहुत अधिक पिछड़ा हुआ था और इसकी सबसे बड़ी समस्या लड़कियों को पढ़ाने की थी। उस समय वहाँ बच्चों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। ऐसी स्थिति में आर्यसमाज ने १९५० ई० में यहाँ एक प्राथमिक विद्यालय खोलने का निश्चय किया और इसके लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति के निम्नलिखित चार सदस्य थे—श्री पण्डित जनार्दन शर्मा, पण्डित गुरुदत्त, पण्डित तीर्थराम सिद्धान्तभूषण और पण्डित वागीश दत्त वैद्य।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समिति को यहाँ कन्या विद्यालय स्थापित करने में अनेक बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनका सफलतापूर्वक समाधान करने के बाद १९५२ में आर्य कन्या पाठशाला के नाम से कन्याओं की शिक्षा के लिए एक प्राथमिक विद्यालय नियमित रूप से चलने लगा। प्रारम्भ में इसमें केवल लड़कियों की शिक्षा के लिए ही व्यवस्था की गयी थी, किन्तु इस क्षेत्र की स्थिति और स्थानीय निवासियों की भारी माँग के कारण कक्षा पाँच तक दूसरी पारी में लड़कों की शिक्षा का भी प्रवन्ध किया गया।

इस समय आर्यसमाज के पास पाठशाला को चलाने के लिए धन एवं अन्य साधनों का नितान्त अभाव था। अतः इसके सफलतापूर्वक संचालन के लिए यह आवश्यक था कि इसके लिए एक ऐसी प्रशिक्षित महिला अध्यापिका खोजी जाय जो पढ़ाने तथा प्रवन्ध के कार्य में पटु, आर्य विचार रखने वाली, अवैतनिक काम करने वाली तथा अत्यन्त लगनशील हो। इस कार्य को श्रीमती कौशल्यादेवी ने बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। वह अन्यत्र शिक्षण-कार्य काफी समय से कर रही थीं। उन्होंने इस संस्था में आकर अपने अनुभव के आधार पर तथा कठोर परिश्रम एवं कार्य कुशलता से इस पाठशाला को सुदृढ़ एवं स्थायी वनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् १९७६ में इस प्राथमिक पाठशाला को कक्षा आठ तक माध्यमिक विद्यालय का रूप दिया गया। इस समय कक्षा पाँच तक वालकों तथा वालिकाओं—दोनों की शिक्षा का प्रवन्ध है, और छठी, सातवीं, आठवीं की माध्यमिक कक्षाओं में केवल वालिकाओं को ही शिक्षा दी जाती है।

यह विद्यालय राजकीय शिक्षा परिषद् से कक्षा पाँच तक स्थायी मान्यता प्राप्त कर चुका है, और कक्षा आठ तक इसे अस्थायी मान्यता प्राप्त है।

यह विद्यालय आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश, लखनऊ के तत्त्वावधान में चल रहा है। इस विद्यालय के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—(१) छात्राओं की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति व विकास के निमित्त धार्मिक, वौद्धिक एवं स्वास्थ्य-सम्वन्धी सिद्धान्तों तथा व्यायामादि की शिक्षा का समुचित प्रवन्ध तथा व्यवस्था करना। (२) संस्कृत, आर्यभाषा, राष्ट्रभाषा तथा अंग्रेजी आदि प्रचलित भाषाओं एवं साहित्य, विज्ञान व दर्शनादि की शिक्षा का प्रवन्ध करना। (३) छात्राओं को उपयोगी नागरिक वनाने के लिए गृहस्थ, जीवनोपयोगी कला-कौशल, आरम्भिक आयुर्वेद, विज्ञान व दर्शनादि की शिक्षा का प्रवन्ध करना। (४) छात्राओं को सुशील, चरित्रवती, स्वावलम्वी वनाने के लिए छात्रावास स्थापित करने की व्यवस्था करना। (५) उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त अवसरोचित साधनोपायों को व्यवहार में लाना।

यह विद्यालय उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने स्थापना काल से ही पूरा प्रयास कर रहा है। इसके संस्थापकों में श्री वृजनाथ हरिचन्द रत्ता, पं० जनार्दन शर्मा, श्री चेलाराम तथा चौधरी नीलासिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके विशेष प्रयत्नों एवं कार्य-कुशलता से इस संस्था की वड़ी उन्नति हुई है। १९६९ से श्री वेदभानु आर्य, श्री प्रद्युमन लाल तथा श्री गणपति शर्मा इस विद्यालय के लिए अनथक परिश्रम कर रहे हैं। विद्यालय की छात्राओं की संख्या में और शिक्षास्तर में निरन्तर उन्नति हो रही है। यह स्कूल १९५२ में ४८ छात्राओं तथा २ अध्यापिकाओं से शुरू किया गया था। १९८२ में इसमें शिक्षा पाने वाली छात्राओं की संख्या ८८० तथा अध्यापिकाओं की संख्या २१ हो गयी। इस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय श्रीमती उषा शर्मा बी० ए०, बी० एड० माध्यमिक विभाग की और श्रीमती विमलारानी प्राथमिक विभाग की मुख्याध्यापिका हैं।

यह विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में स्थित है, और इसकी गणना जिला गाजियाबाद के प्रमुख जूनियर विद्यालयों में की जाती है। यहाँ कला तथा अंग्रेजी की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध है। बच्चों में राष्ट्रीय और धार्मिक विचारों को भरने का प्रयत्न किया जाता है।

इस विद्यालय की कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। इसकी अध्यापिकाएँ अनुभवी, प्रशिक्षित, विदुषी, कर्तव्यनिष्ठ और धार्मिक हैं। यहाँ पढ़ने वाली हरिजन कन्याओं एवं विधवाओं के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रत्येक कक्षा के लिए पृथक्-पृथक् अध्यापिकाएँ हैं, और हर कमरे में पंखा आदि सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसमें राष्ट्रीय एवं धार्मिक पर्वों को विशेष उत्साह से मनाया जाता है। विद्यालय का अनुशासन सराहनीय है। बच्चों के गणवेश तथा सफाई का पूरा ध्यान रखा जाता है। अध्यापिकाओं तथा बच्चों को सन्ध्या एवं हवन मन्त्रों को स्मरण करने और आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित होने के लिए विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया जाता है। शिक्षा का ऊँचा स्तर बनाये रखने पर विशेष ध्यान दिया जाता है, और इसीलिए यहाँ का परीक्षा परिणाम प्रतिवर्ष शत-प्रतिशत रहता है।

इस समय यह विद्यालय आर्यसमाज मन्दिर के भवन में दो पारियों में संचालित होता है। स्थान की कमी को देखते हुए आर्यसमाज ने पिछले चार वर्षों के अनथक परिश्रम से विद्यालय के लिए रक्षा मंत्रालय से साढ़े पाँच एकड़ भूमि प्राप्त कर ली है, और शीघ्र ही इस भूमि पर विद्यालय के भवन का निर्माण आरम्भ किया जायेगा।

इस विद्यालय का प्रबन्ध इसके विधान के अनुसार होता है। आर्यसमाज भारत-नगर, (गाजियाबाद) के आर्य सभासदों के साधारण अधिवेशन में प्रतिवर्ष इसकी विद्यार्य सभा अथवा प्रबन्ध समिति का गठन होता है, जिसमें आर्यसमाज भारतनगर का प्रधान पदेन विद्यार्य सभा का प्रधान होता है। कोषाध्यक्ष पदेन कोषाध्यक्ष और मंत्री भी इसी प्रकार पदेन विद्यार्य सभा का सदस्य होता है। आर्य सभासद प्रतिवर्ष एक प्रबन्धक तथा एक सहायक प्रबन्धक एवं आवश्यकतानुसार एक या दो अन्य सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। वर्तमान समय में पिछले दस वर्ष से इसके प्रबन्धक पण्डित वेदभानु आर्य हैं। यह विद्यालय एक उपेक्षित एवं पिछड़े हुए क्षेत्र में कन्याओं की शिक्षा के साथ-साथ आर्य-समाज के प्रचार का कार्य बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न कर रहा है।

आर्य कन्या विद्यालय कोसीकलाँ, जिला मथुरा—इस विद्यालय की स्थापना सन् १९५० में हुई थी। इसके संस्थापक श्री चन्दीलाल आर्य थे। उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार और कन्याओं में शिक्षा के स्तर को उन्नत करने तथा धार्मिक भावनाओं को जागृत करने के उद्देश्य से इस संस्था का आरम्भ किया था। इस कार्य में उनके सहायक श्री चिरमोलीराम, स्वर्गीय श्री मुंशीलाल आर्य तथा श्री खेमचन्द्र आर्य थे। इस विद्यालय में छात्राओं की संख्या १०० तथा इनको शिक्षा देने वाली अध्यापिकाओं की संख्या तीन हैं। यह संस्था पाँचवीं कक्षा तक पढ़ाई का प्रबन्ध करती है, और परीक्षाएँ दिलाती है। पाँचवीं कक्षा की परीक्षा सरकार द्वारा ली जाती है।

संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य १० लाख रुपया है। सारी सम्पत्ति दान से प्राप्त हुई है। संस्था के लिए दान देने वाले महानुभावों में श्री स्व० गोकलचन्द्र,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नवलकिशोर आर्य तथा श्री नारायण दत्त ठेकेदार के नाम उल्लेखनीय हैं। विद्यालय में शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है।

इस विद्यालय में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। दैनिक सन्ध्या-हवन नियमित रूप से होता है। इसमें छात्राओं तथा अध्यापिकाओं के लिए उपस्थित रहना अनिवार्य है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि इस विद्यालय द्वारा ऐसे क्षेत्र में आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार किया जा रहा है, जो पौराणिक मत का एक बड़ा गढ़ माना जाता है। यहाँ एक वार पंचायत द्वारा आर्यसमाज का सदस्य वनने वाले आर्य वंधुओं को जाति से बहिष्कृत किया गया था। ऐसे क्षेत्र में इस विद्यालय का कार्य अतीव सराहनीय है।

इसका संचालन एक प्रवन्ध समिति द्वारा किया जाता है। इसके प्रधान श्री रामजीलाल आर्य और मन्त्री श्री धर्मचन्द्र हैं। इस विद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती अंगूरीदेवी आर्या हैं।

आर्य कन्या इण्टर कॉलिज, गोविन्दनगर, कानपुर-६—इस विद्यालय की स्थापना के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाले और इसकी स्थापना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले महर्षि के परम भक्त श्री देवीदास आर्य हैं।

इस संस्था में छात्राओं की संख्या २,२०० है। शिक्षा का कार्य ४७ अध्यापिकाएँ करती हैं। इनके अतिरिक्त ४ लिपिक और १० चतुर्थवर्गीय कर्मचारी हैं। यह संस्था माध्यमिक शिक्षा परिषद्, इलाहावाद से सम्वद्ध है और उसके पाठ्यक्रम के अनुसार १२वीं कक्षा तक यहाँ पढ़ाई की व्यवस्था है।

इस संस्था की सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य २५ लाख रुपया है, और यह सारी सम्पत्ति प्रवन्ध समिति के पदाधिकारियों और विद्यालय के निजी प्रयासों से प्राप्त हुई है। पन्ना नरेश श्री नरेन्द्रदेव ने यहाँ एक कमरे का निर्माण कराया है। इस संस्था की आय के प्रधान स्रोत सरकारी अनुदान, छात्राओं से ली जाने वाली फीस, दुकानों का किराया, व्याज एवं दान है।

इस शिक्षणालय में सभी छात्राओं के लिए धर्मशिक्षा का विषय पढ़ाने की व्यवस्था है। प्रतिदिन प्रार्थना होती है, और इसमें उपस्थित होना छात्राओं तथा अध्यापिकाओं के लिए अनिवार्य है। विद्यालय में समय-समय पर धार्मिक आयोजन किये जाते हैं। संस्था के पदाधिकारी वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

इस संस्था का प्रवन्ध आठ सदस्यों की एक प्रवन्धक समिति द्वारा होता है। इस समिति के प्रधान श्री मलिक देशराज कपूर तथा प्रवन्धक श्री देवीदास आर्य हैं। इस समय कॉलिज की प्रधानाध्यापिका श्रीमती वसन्त कुमारी मिश्रा हैं।

आर्य कन्या इण्टर कॉलिज, टाण्डा, जिला फैजावाद—यह कॉलिज पिछले ३६ वर्ष से मुस्लिम वहुल प्रदेश में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार कन्याओं की शिक्षा के माध्यम से कर रहा है। इस कॉलिज में लगभग २,००० छात्राएँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। यह संस्था उत्तरप्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् से मान्यता प्राप्त है, और यहाँ इण्टर तक लड़कियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था है।

इस विद्यालय की एक वड़ी विशेषता यह है कि यहाँ छात्राओं के निवास के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्रावास की बड़ी महत्त्वपूर्ण सुविधा है और उसका लाभ शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले आस-पास के गाँवों के अभिभावक उठाते हैं। वे यहाँ अपनी कन्याओं को शिक्षा के लिए भेजते हैं। दूर-दूर से आयी छात्राएँ इस छात्रावास में रहती हैं और इसमें प्रवेश पाने की इच्छुक छात्राओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक-एक कमरे में छह-छह छात्राएँ रहती हैं। वे अपने हाथ से स्वयं भोजन बनाती हैं। इस छात्रावास की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि हिन्दू, मुस्लिम और हरिजन सभी धर्मों और वर्गों की छात्राएँ एक साथ एक कमरे में निवास करती हैं और उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। इस नगर में यद्यपि अनेक कॉलिज, हाईस्कूल, मुस्लिम हाईस्कूल और जूनियर हाईस्कूल विद्यमान हैं, फिर भी सुशिक्षित गृहिणी की शिक्षा पाने के लिए इस समय आर्य कन्या इण्टर कॉलिज में पाँच-छह सौ मुस्लिम छात्राएँ भी अध्ययन कर रही हैं। इस संस्था में दैनिक प्रार्थना और सन्ध्या-हवन विद्यालय की सभी छात्राओं के लिए अनिवार्य है। संस्कृत में प्रथम रहने वाली छात्राओं को अनेक पुरस्कार दिये जाते हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि प्रतिवर्ष संस्कृत के अधिकांश पुरस्कार मुस्लिम छात्राएँ संस्कृत में अधिक अंक लाने के कारण प्राप्त करती हैं। प्रतिवर्ष हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट का परिणाम ९८ से १०० प्रतिशत तक होता है।

इस विद्यालय की पढ़ाई का शिक्षास्तर बहुत ऊँचा है। प्रबन्ध संचालन बड़ी योग्यतापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। छात्राओं के लिए निवास की सुविधा तथा सब प्रकार की सुव्यवस्था है। अतः इसमें प्रवेश पाने के लिए छात्राओं की सदैव भीड़ लगी रहती है। किन्तु छात्रावास में स्थान सीमित होने के कारण प्रतिवर्ष सैकड़ों छात्राओं को प्रवेश न पाने के कारण निराश होना पड़ता है।

इस संस्था का प्रबन्ध एक कार्यकारिणी द्वारा होता है। इसके प्रधान श्री सीताराम आर्य हैं। प्रबन्धक के पद पर श्री मिश्रीलाल आर्य कार्य कर रहे हैं। इसकी प्रधानाचार्या श्रीमती गुणवंती ग्रोवर हैं, और ये तीनों व्यक्ति महर्षि दयानन्द के परम भक्त और कट्टर अनुयायी हैं। इस संस्था के माध्यम से वे इस प्रदेश के सभी धर्मों और वर्गों के लोगों में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं।

इनके अतिरिक्त जो कन्या विद्यालय, स्कूल तथा कॉलिज उत्तरप्रदेश में विद्यमान हैं, उनकी संख्या सैकड़ों में है, और उनमें लाखों बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के साथ सम्बद्ध स्कूलों और कॉलिजों का परिचय देते हुए कतिपय अन्य कन्या शिक्षण-संस्थाओं का भी संक्षिप्त विवरण अन्यत्र दिया गया है। इसी प्रकार उत्तरप्रदेश की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं का विवरण देते हुए भी अनेक कन्या स्कूलों व कॉलिजों का उल्लेख कर दिया गया है।

(७) पंजाब और अन्यत्र आर्य कन्या शिक्षण-संस्थाएँ

पंजाब में आर्यसमाज का प्रचार विशेष रूप से रहा है। इसीलिए कन्याओं की शिक्षा के लिए वहाँ आर्यसमाजों तथा आर्य नर-नारियों द्वारा बहुत-से कन्या विद्यालय, हाईस्कूल तथा कॉलिज स्थापित किये गये थे। पंजाब का जो भाग वर्तमान समय में पाकिस्तान में है, उसमें भी बहुत-से कन्या शिक्षणालय विद्यमान थे। इनमें आर्यपुत्री पाठशाला, किला गूजरसिंह लाहौर; आर्य कन्या पाठशाला, खुड्डियाँ खास लाहौर; श्री भगवती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य कन्या पाठशाला हाईस्कूल, सिकालकोट; आर्य पुत्री पाठशाला, गुजरात; आर्य महिला विद्यालय, रावलपिण्डी; लालीबाई आर्य कन्या पाठशाला, रावलपिण्डी छावनी; आर्य कन्या पाठशाला, मियांवाली; वैदिक पुत्री पाठशाला, नौशहरा (पेशावर); आर्य कन्या पाठशाला, कैम्पवलपुर; वैदिक पुत्री पाठशाला सरगोधा; श्री लक्ष्मीदेवी आर्य पुत्री पाठशाला भेरा; आर्य पुत्री पाठशाला भलवाल; मैय्यादास आर्य पुत्री पाठशाला झंग; आर्य पुत्री पाठशाला लायलपुर मैलसी (मुलतान); आर्य पुत्री पाठशाला कमालिया; आर्य पुत्री पाठशाला, खैरपुर (मुजफ्फरगढ़); आत्माराम आर्य पुत्री पाठशाला अलीपुर; आर्य कन्या पाठशाला डेरा इस्माईल खाँ; हरि कन्या पाठशाला जामपुर; आर्य महिला विद्यालय जामपुर; आर्य कन्या पाठशाला, खानपुर (वहावलपुर); भरांवादेवी वैदिक पुत्री पाठशाला, पिण्डी भट्टियाँ (गुजरांवाला); और आर्य कन्या स्कूल गुजरांवाला उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक कन्या शिक्षण-संस्थाएँ उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पंजाव के उस भाग में विद्यमान थीं, जो अब पाकिस्तान में है।

जो पंजाव अब भारत में है, उसमें भी आर्यसमाज के दोनों प्रान्तीय संगठनों (आर्य प्रतिनिधि सभा तथा प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा) द्वारा बहुत-सी कन्या शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की गई थी, जिनमें गणेशीलाल आर्य कन्या पाठशाला लुधियाना; आर्य कन्या पाठशाला कोट वादल खाँ (जालन्धर); आर्य पुत्री पाठशाला मलोट मण्डी (फीरोजपुर); आर्य पुत्री पाठशाला अवोहर, माई भगवती पुत्री पाठशाला हरयाना (होशियारपुर); आर्य पुत्री पाठशाला फाजिल्का; आर्य कन्या पाठशाला राममण्डी (पटियाला); आर्य कन्या पाठशाला जम्मू आदि विशेष महत्त्व की हैं। वर्तमान समय में जिन कन्या शिक्षण-संस्थाओं का सम्बन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव के साथ हैं, उनमें वैदिक कन्या पाठशाला अमृतसर, बावालाल आर्य पुत्री पाठशाला चलेट (होशियारपुर); आर्य पुत्री पाठशाला दातारपुर (होशियारपुर); आर्य कन्या हाईस्कूल दीनानगर; आर्य पुत्री पाठशाला गिद्दड़वाहा; आर्य कन्या स्कूल करतारपुर; आर्य गर्ल्स हाईस्कूल पटियाला; आर्य पुत्री पाठशाला राहों; आर्य कन्या पाठशाला साहनेवाल; आर्य गर्ल्स हाईस्कूल भटिण्डा; आर्य गर्ल्स स्कूल नाभा; आर्य गर्ल्स हाईस्कूल नवांशहर; वैदिक हाईस्कूल समाना; आर्य गर्ल्स हाईस्कूल मुकेरियां आदि विशेष महत्त्व की हैं। इस सवका परिचय दे सकना सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए पंजाव के केवल एक गर्ल्स हाईस्कूल का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

आर्य गर्ल्स हाईस्कूल, भटिण्डा—इसकी स्थापना सन् १९३२ में हुई थी। इसकी स्थापना के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाले और इसकी स्थापना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले महानुभावों में आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द और सुप्रसिद्ध उपदेशक श्री पण्डित मंसाराम वैदिक तोप थे। इनकी प्रेरणा से चौधरी मिडूराम, महाशय किशोरीलाल, डा० भगवंतराय और श्री इन्द्रसिंह ने इसे स्थापित करने का सफल प्रयास किया। इस संस्था को स्थापित करने का उद्देश्य कन्याओं की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक उन्नति करना और अच्छे नागरिक बनाना था। यह संस्था आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव के तत्त्वावधान में संचालित होती है। इसकी स्थानीय प्रबन्ध समिति के प्रधान इस समय श्री अमरनाथ तथा मन्त्री और व्यवस्थापक श्री कृष्ण कुमार हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय इसमें छात्राओं की संख्या १,२०० है। २६ अध्यापिकाएँ शिक्षा देने का कार्य करती हैं। यह हाईस्कूल पंजाब शिक्षा बोर्ड के साथ सम्बद्ध है, और उसके द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार यहाँ पढ़ाई की व्यवस्था है। इसे पंजाब सरकार से मान्यता प्राप्त है। मिडल और मैट्रिक कक्षा की परीक्षाएँ छात्राओं से दिलवायी जाती हैं।

इस संस्था की कक्षाएँ आर्यसमाज के मन्दिर में लगायी जाती हैं। इसके दो भवन हैं, जिनका आनुमानिक मूल्य लगभग एक करोड़ रुपया है। संस्था की आय का प्रधान साधन सरकारी अनुदान और छात्राओं से ली जाने वाली फीस है।

संस्था में छात्राओं के लिए धर्मशिक्षा का विषय पढ़ाने की व्यवस्था है और यह सभी छात्राओं के लिए अनिवार्य है। सन्ध्या प्रतिदिन होती है। हवन प्रति शनिवार को किया जाता है। इसमें सभी छात्राएँ तथा अध्यापिकाएँ सम्मिलित होती हैं। लगभग सभी शिक्षिकाएँ आर्य स्त्री समाज की सदस्याएँ हैं, और सभी आर्य पर्व इस संस्था में बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। इस संस्था की प्रधानाचार्या श्रीमती कमला भाटिया बी० ए०, बी० एड० हैं।

दिल्ली के संघ-क्षेत्र में कन्याओं की शिक्षा के लिए जो बहुत-सी आर्य शिक्षण-संस्थाएँ हैं, उनमें आर्य गर्ल्स हाईस्कूल चावड़ी बाजार दिल्ली, आर्य कन्या पाठशाला नयी दिल्ली और आर्य कन्या पाठशाला बीडनपुरा करौलबाग सबसे पुरानी हैं। अन्य संस्थाओं में सतभ्रावां आर्य कन्या महाविद्यालय करौलबाग इस दृष्टि से महत्त्व की है, क्योंकि वहाँ स्नातक स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। स्त्रीशिक्षा के अन्य शिक्षणालयों में तेलीवाड़ा, निजामुद्दीन (पश्चिम), लोदी कालोनी, शाहदरा, राजा बाजार, कृष्णनगर, बिड़ला लाइन्स और यूसुफ सराय के आर्य गर्ल्स हायर सैकेण्डरी स्कूल उल्लेखनीय हैं। हनुमान रोड पर स्थित रघुमल आर्य कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नयी दिल्ली की महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्था है, जिसमें छात्राओं की संख्या २००० से भी अधिक है। इनके अतिरिक्त कन्याओं की शिक्षा के लिए बहुत-से मिडल स्कूल और मॉडल स्कूल भी दिल्ली के संघ-क्षेत्र में आर्यसमाज द्वारा चलाये जा रहे हैं।

अन्य राज्यों में कन्याओं के आर्य शिक्षणालय— भारत का कोई भी राज्य ऐसा नहीं है, जिसमें आर्यसमाज द्वारा शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित न की गई हों। स्त्रीशिक्षा पर प्रारम्भ से ही आर्यसमाज का ध्यान रहा है। इसी कारण बिहार, बंगाल, असम, जम्मू-कश्मीर, हिमाचलप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक आदि सभी राज्यों में कन्याओं की शिक्षा के लिए आर्य शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता है। इनमें से कुछ का परिचय डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों का विवरण देते हुए दे दिया गया है, और कुछ का विविध राज्यों की आर्य प्रतिनिधि सभाओं तथा अन्य आर्य संगठनों द्वारा संचालित शिक्षणालयों का विवरण देते हुए। पर उनके अतिरिक्त भी कन्याओं की शिक्षा के लिए बहुत-से शिक्षणालय आर्यसमाज द्वारा स्थापित हैं, जिनकी संख्या सैकड़ों में है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेईसवाँ अध्याय

यूनिवर्सिटी की स्थिति मान्य हो जाने के पश्चात् गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति

(१) सरकार द्वारा गुरुकुल काँगड़ी की यूनिवर्सिटी के रूप में मान्यता

ब्रिटिश सरकार से असहयोग करने के लिए जिस आन्दोलन का महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ किया गया था, उसके परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाएँ भारत में स्थापित हुई थीं। काशी विद्यापीठ वाराणसी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया नयी दिल्ली, गुजरात विद्यापीठ अहमदावाद आदि इनमें मुख्य थीं। ये उच्च शिक्षा की केन्द्र थीं, पर ब्रिटिश सरकार से इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इन द्वारा दी जाने वाली डिग्रियों को भी सरकार स्वीकृत नहीं करती थी। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय और विश्वभारती, शान्ति निकेतन की स्थापना असहयोग आन्दोलन के कारण नहीं हुई थी। गुरुकुल काँगड़ी के समान शान्ति निकेतन भी वीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्थापित हुआ था, और सन् १९२१ तक वहाँ उच्च स्तर की शिक्षा की भी व्यवस्था हो गई थी। ये दोनों शिक्षण-संस्थाएँ सरकारी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त थीं, और इनका स्वरूप अविकल रूप से राष्ट्रीय था। सन् १९४७ में स्वराज्य की स्थापना के अनन्तर राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं के लिए सरकार से सम्बन्ध न रखने का कोई अर्थ नहीं रह गया, और इन द्वारा स्वराज्य सरकार के साथ सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया गया। इसीके परिणामस्वरूप सन् १९५१ में भारत की संसद् में स्वीकृत कानून द्वारा विश्वभारती को यूनिवर्सिटी वना दिया गया। इससे कुछ समय पूर्व ही उत्तरप्रदेश, विहार और वम्वई की सरकारों तथा अनेक यूनिवर्सिटियों ने गुरुकुल काँगड़ी की 'अलंकार' डिग्री को वी० ए० के समकक्ष स्वीकार कर लिया था, जिसके कारण गुरुकुल के स्नातकों के लिए सरकारी सर्विस प्राप्त कर सकने में कोई वाधा नहीं रह गई थी। पर गुरुकुल काँगड़ी सदृश पुरानी व सुविकसित शिक्षण-संस्था के लिए यह पर्याप्त नहीं था। उसके संचालकों द्वारा प्रयत्न किया गया, कि विश्वभारती, शान्ति निकेतन के समान गुरुकुल भी सरकारी कानून के अधीन एक यूनिवर्सिटी वन जाए। पर इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई। इस वीच सन् १९५६ में भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमीशन) के निर्माण के लिए जो कानून स्वीकृत किया गया, उसकी धारा ३ के अनुसार यह व्यवस्था की गई थी, कि देश में राष्ट्रीय महत्त्व के उच्च शिक्षा के जो अनेक शिक्षणालय विद्यमान हैं, उन्हें यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था (Deemed to be University) स्वीकृत करने का आयोग को अधिकार हो। इसी धारा के अधीन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने काशी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, टाटा इन्स्टिट्यूट ऑफ् सोशल सायन्सेज आदि अनेक शिक्षणालयों को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था स्वीकार किया, और १६ जून, १९६२ के नोटिफिकेशन द्वारा गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की भी यही स्थिति मान ली गई। इस प्रकार काँगड़ी में गुरुकुल की स्थापना के ठीक ६० वर्ष पश्चात् सरकार के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ, और उसके विश्वविद्यालय विभाग का पूरा खर्च विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिया जाने लगा। जिन शिक्षणालयों को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्थाओं के रूप में मान्यता प्राप्त हुई थी, उनमें से काशी विद्यापीठ सन् १९७३ में उत्तरप्रदेश की राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत कानून के अधीन चार्टर्ड यूनिवर्सिटी बन गया। गुरुकुल काँगड़ी द्वारा भी चार्टर्ड यूनिवर्सिटी बनने के लिए प्रयत्न किया गया, पर उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई।

यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त हो जाने पर गुरुकुल के संचालकों को यह आवश्यकता अनुभव हुई, कि अब उसके लिए नये संविधान तथा नियमावलि का निर्माण किया जाना चाहिये। अब तक गुरुकुल काँगड़ी का प्रबन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा गठित 'विद्यासभा' के अधीन था। विद्यासभा के संगठन पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। गुरुकुल के प्रधान अधिकारी मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य होते थे, जिनकी नियुक्ति विद्यासभा द्वारा की जाती थी। यूनिवर्सिटी के रूप में जो नयी स्थिति गुरुकुल को प्राप्त हो गई थी, उसे दृष्टि में रखकर यह व्यवस्था की गई, कि उच्च शिक्षा (स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा) के विभाग के लिए सीनेट का गठन किया जाए, जो विद्यासभा से पृथक् हो। विद्यासभा पूर्ववत् कायम रहे, पर उसके अधीन गुरुकुल के केवल वे विभाग (विद्यालय, म्यूजियम, गौशाला, कृषि आदि) रहें, जिनके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती, और जिनका संचालन गुरुकुल को अपने साधनों द्वारा ही करना है। गुरुकुल के यूनिवर्सिटी विभाग के लिए जिस संविधान का अब निर्माण किया गया, वह प्राय: वैसा ही था जैसा कि सरकारी या चार्टर्ड यूनिवर्सिटियों का होता है। उसमें सीनेट, (शिष्ट परिषद्), सिण्डीकेट (कार्य परिषद्) और एकेडेमिक कौंसिल (शिक्षा पटल) को स्थान दिया गया था, और मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य के स्थान पर अब कुलपति, उपकुलपति तथा कुलसचिव—ये उसके मुख्य पदाधिकारी रखे गये थे। इनके अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रधान को गुरुकुल यूनिवर्सिटी के चांसलर (कुलाधिपति) की स्थिति दी गई थी, और कुलपति (वाइस चान्सलर) की नियुक्ति का कार्य विजिटर के हाथों में रखा गया था। इस पदाधिकारी को सीनेट द्वारा नियुक्त किये जाने का प्राविधान किया गया था। नये संविधान को औपचारिक रूप से लखनऊ में पंजीकृत करा दिया गया, क्योंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से यूनिवर्सिटी के लिए शत-प्रतिशत अनुदान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है, कि 'गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय' का जो नया संविधान इस समय तैयार किया गया, वह निर्दोष नहीं था। उसे जल्दी में तैयार किया गया था, और उसमें अनेक कमियाँ रह गई थीं। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का गठन लोकतन्त्रवाद पर आधारित है। उसके सदस्य विविध आर्यसमाजों द्वारा चुने जाते हैं, और उसके प्रधान, मन्त्री आदि पदाधिकारियों का चुनाव वार्षिक रूप से होता है। लोकतन्त्रवाद के आधार पर निर्मित सभाओं में दलबन्दी का विकसित हो जाना स्वाभाविक है। गुरुकुल यूनिवर्सिटी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सीनेट के सदस्यों में बहुसंख्या आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारियों और उस द्वारा मनोनीत व्यक्तियों की थी, जिसके कारण गुरुकुल की सर्वोच्च सभा (सीनेट) के लिए भी दलवन्दी के प्रभाव से मुक्त रह सकना सम्भव नहीं था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय की दृष्टि में यह बात अनुचित थी। उन द्वारा यह अनुरोध किया जा रहा था, कि 'गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय' (Deemed to be University) के संविधान में ऐसे संशोधन किये जाएँ, जिससे कि सरकारी अनुदान से चलने वाला यह शिक्षणालय आर्यसमाज की दलवन्दी और उससे उत्पन्न झगड़ों से वचा रह सके। इन प्रयोजन से गुरुकुल ने अनेक प्रयत्न किये, संविधान में संशोधन के लिए अनेक कमेटियों की नियुक्ति की गई, कुछ संशोधन किये भी गये, पर अब तक भी ऐसा संविधान नहीं वन सका है, जो इस संस्था को दलवन्दी की हानियों से मुक्त.रख सके।

यह सव होते हुए भी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की यूनिवर्सिटी की स्थिति अभी अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है, यद्यपि इस सम्वन्ध में सरकार तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा समय-समय पर तर्क-वितर्क होते रहते हैं। किन आधारों पर किसी शिक्षणालय की यूनिवर्सिटी न होते हुए भी यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकार की जाती है, इस विषय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कुछ नियम व मर्यादाएँ निर्धारित की हैं। उनके अनुसार किसी ऐसी संस्था को ही यूनिवर्सिटी की स्थिति दी जा सकती है, जो किन्हीं विशिष्ट विषयों के अध्यापन तथा शोध में व्यापृत हो, और उस द्वारा किये जाने वाले ये कार्य उच्चतम स्तर के हों। यह सही है, कि प्रारम्भ में गुजरात विद्यापीठ और जामिया मिल्लिया इस्लामिया आदि अनेक शिक्षणालयों को ऐतिहासिक कारणों से भी यूनिवर्सिटी की स्थिति प्रदान कर दी गई थी। इनमें किन्हीं विशिष्ट विषयों के विशेष अध्ययन व शोध की व्यवस्था नहीं थी, और इनकी पाठविधि प्रायः उसी प्रकार की थी जैसी कि सरकार से मान्यता प्राप्त कॉलिजों की थी, पर क्योंकि इनकी स्थापना भारत के स्वाधीनता-संघर्ष के अंग के रूप में हुई थी, और इनका विकास पूर्णतया राष्ट्रीय ढंग से हुआ था, अतः इनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक आवश्यकता को दृष्टि में रखकर इन्हें यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था मान लिया गया था। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर गुरुकुल काँगड़ी भी यूनिवर्सिटी की स्थिति का दावा कर सकता था, और उसका वह दावा अयुक्तियुक्त भी न होता। सम्भवतः, उसे यूनिवर्सिटी की स्थिति देते हुए यह वात दृष्टि में रखी भी गई थी। पर गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना कतिपय विशिष्ट उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गई थी। उसे संस्कृत भाषा तथा वाङ्मय, वेद, शास्त्र और प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन व अनुशीलन के लिए स्थापित किया गया था। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा अंग्रेजी सदृश विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन को उसकी पाठविधि में इसलिए स्थान दिया गया था, क्योंकि उनसे वेद-शास्त्रों के अभिप्राय को समझने में सहायता मिलती थी। गुरुकुल में इनका स्थान गौण था, प्रमुख स्थान वेदशास्त्रों का ही था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यही अभिप्रेत था, कि वेदशास्त्र तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन, अनुशीलन तथा शोध की यह संस्था केन्द्र वने और इन्हीं की उच्चतम स्तर की शिक्षा की यहाँ व्यवस्था हो।

पर इस वात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता, कि सन् १९६२ में गुरुकुल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँगड़ी की यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यह भली-भाँति ज्ञात था, कि इस शिक्षणालय में इतिहास, अर्थशास्त्र, गणित, मनोविज्ञान, पाश्चात्य दर्शन, रसायन आदि का भी उच्च स्तर का अध्ययन-अध्यापन होता है। उसे यह भी अभिप्रेत था कि यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त कर लेने पर भी इस संस्था में इन विषयों की शिक्षा पूर्ववत् जारी रहनी चाहिये। इसीलिए ६ एप्रिल, १९६३ की आयोग की रिपोर्ट में कहा गया था, कि गुरुकुल को शिक्षाविषयक भावी योजनाओं का निर्माण करते हुए सायन्स तथा ह्यूमैनिटी के विषयों में समुचित समुत्तुलन कायम रखना चाहिये। इसीलिए सन् १९७१ में गुरुकुल को सायन्स फैकल्टी खोलने की भी अनुमति दे दी गई थी, और वहाँ स्नातक स्तर तक न केवल रसायन का ही, अपितु भौतिक विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, गणित और वनस्पतिशास्त्र की भी पढ़ाई शुरू कर दी गई थी। प्रारम्भ में ही जिन आठ विषयों में स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा की अनुमति प्रदान की गई थी, वे वेद, संस्कृत साहित्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, प्राच्य दर्शन, अंग्रेजी, हिन्दी, गणित और मनोविज्ञान थे। अंग्रेजी, गणित और मनोविज्ञान सदृश विषयों की शिक्षा वेदशास्त्रों के अध्ययन में सहायक रूप से न होकर स्वतन्त्र रूप में थी, क्योंकि जो विद्यार्थी वेद या संस्कृत में एम० ए० करते थे, उन्हें न अंग्रेजी पढ़नी होती थी, न गणित और न कोई अन्य आधुनिक विषय। गणित आदि में ऐसे विद्यार्थी भी गुरुकुल से एम० ए० कर सकते थे, जिन्हें संस्कृत का कुछ भी ज्ञान न हो। वेदशास्त्रों के अध्ययन का तो उनके लिए प्रश्न ही नहीं था। यह स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सम्मुख उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसका राष्ट्रीय स्वरूप, उसका एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में विकास आदि सब तथ्य विद्यमान थे। उसे अपने इस स्वरूप को कायम रखना था। पर साथ ही संस्कृत, वेदशास्त्र, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा अन्य प्राचीन ज्ञान-विज्ञान पर विशेष ध्यान भी उसे देना था, क्योंकि इनका अध्ययन-अध्यापन इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। यही कारण है, कि बाद में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस बात पर जोर देना शुरू किया, जो सर्वथा उचित था। इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल काँगड़ी का भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि सामान्य शिक्षा के साथ-साथ वह संस्कृत तथा वेदशास्त्रों के विशिष्ट अध्ययन-अध्यापन, अनुशीलन तथा शोध की किस उच्च स्तर तक व्यवस्था कर सकता है।

(२) यूनिवर्सिटी की स्थिति में गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति

सन् १९६२ में प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता थे। वह गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक थे और सार्वजनिक जीवन में भी उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। राष्ट्रपति द्वारा उन्हें राज्यसभा का सदस्य भी मनोनीत किया जा चुका था। गुरुकुल को यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकृत कराने में भी उनका महत्त्वपूर्ण कर्तृत्व था। अब उन्हें ही गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय (Deemed to be University) का कुलपति (वाइस चान्सलर) नियुक्त किया गया। आचार्य के पद पर तब पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति थे। वह वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे, और आर्यसमाज के क्षेत्र में उनकी स्थिति अत्यन्त सम्मानास्पद थी। अब भी वही गुरुकुल के उपकुलपति (प्रो-वाइस चान्सलर या आचार्य) रहे। संविधान के अनुसार सीनेट, सिण्डीकेट, शिक्षापटल आदि का गठन कर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया गया, और यूनिवर्सिटी के रूप में गुरुकुल का संचालन सुचारु रूप से होने लगा। जिन आठ विषयों में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा को प्रारम्भ करने की अनुमति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदान की गई थी, उनके लिए नये प्राध्यापकों की नियुक्ति की गई। पहले गुरुकुल काँगड़ी में केवल स्नातक-स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था थी, और प्रायः सभी विषयों के अध्यापन के लिए एक-एक प्राध्यापक रखा जाया करता था। पर अब क्योंकि स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा भी प्रारम्भ की गई, अतः प्रत्येक विषय के लिए चार-चार प्राध्यापक नियुक्त किये गये। गुरुकुल के गुरु वर्ग के ये नये महानुभाव प्रायः ऐसे व्यक्ति थे, जो इस संस्था के आदर्शों, मान्यताओं तथा परम्पराओं से अपरिचित थे, और जिनकी शिक्षा-दीक्षा उन कॉलिजों में हुई थी जिसकी शिक्षा पद्धति को दूषित समझ कर गुरुकुलों की स्थापना की गई थी। इन नये प्राध्यापकों में अनेक ऐसे भी थे, जिनकी वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रति भी आस्था नहीं थी। गुरुकुल काँगड़ी को स्थापित हुए आधी सदी से अधिक समय बीत चुका था। वहाँ शिक्षा प्राप्त कर सैकड़ों विद्यार्थी स्नातक हो चुके थे। गुरुकुल यह दावा किया करता था, कि उसके स्नातक हिन्दी, संस्कृत, वेदशास्त्र एवं प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रकाण्ड पण्डित होते हैं। इस दावे में सचाई भी थी। गुरुकुल के बहुत-से स्नातकों ने इन विषयों के गम्भीर विद्वानों के रूप में अच्छी ख्याति भी प्राप्त की थी। पर आश्चर्य की बात है, कि वेद, हिन्दी, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास और दर्शनशास्त्र सदृश विषयों के बहुसंख्यक प्राध्यापक भी ऐसे व्यक्ति नियुक्त किये गये, जो गुरुकुल के स्नातक नहीं थे। इसका परिणाम यह हुआ, कि यूनिवर्सिटी की स्थिति के गुरुकुल का वातावरण उन आदर्शों व परम्पराओं के अनुरूप नहीं रह गया, जिनको सम्मुख रखकर इस संस्था की स्थापना की गई थी।

यूनिवर्सिटी की स्थिति के गुरुकुल में स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारम्भ तो कर दी गईं, पर उनसे लाभ उठाने के लिए विद्यार्थियों का पर्याप्त संख्या में प्राप्त कर सकना सुगम नहीं हुआ। गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग में अब तक वही विद्यार्थी प्रविष्ट हुआ करते थे, जिन्होंने काँगड़ी के गुरुकुल विद्यालय या उसके किसी शाखा गुरुकुल में नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर 'विद्याधिकारी' परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अधिक नहीं होती थी, और इसीलिए गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से 'अलंकार' (विद्यालंकार और वेदालंकार) परीक्षा उत्तीर्ण कर जो विद्यार्थी प्रति वर्ष स्नातक हुआ करते थे, वे दस-बारह से अधिक नहीं होते थे। इनसे यूनिवर्सिटी की स्थिति के गुरुकुल की स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए पर्याप्त विद्यार्थी प्राप्त नहीं किये जा सकते थे। अतः यह व्यवस्था की गई कि सामान्य यूनिवर्सिटियों से बी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी भी गुरुकुल की स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश प्राप्त कर सकें। वेद और संस्कृत सदृश विषयों में स्नातकोत्तर स्तर (एम० ए०) की कक्षाओं में प्रवेश के लिए अनेक ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की डिग्रियों को मान्यता दे दी गई, जिनमें प्रधानतया संस्कृत का ही अध्ययन होता था। पर इन सब व्यवस्थाओं से भी गुरुकुल में विद्यार्थियों की कमी की समस्या का समाधान नहीं किया जा सका। गुरुकुल के संचालकों व पदाधिकारियों के सम्मुख यह समस्या विद्यमान थी। पर वे यह समझते थे कि गुरुकुल को नया रूप प्राप्त हुए अभी बहुत कम समय हुआ है। उच्च शिक्षा की जो सुविधाएँ वहाँ विद्यमान हैं, उनसे परिचित होने में कुछ समय का लग जाना स्वाभाविक ही है। धीरे-धीरे विद्यार्थियों की कमी की समस्या भी हल हो जायगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल काँगड़ी को यूनिवर्सिटी के नये रूप में सुव्यवस्थित करने में प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने अनुपम कर्तृत्व प्रदर्शित किया। गुरुकुल की मान्यताएँ तथा परम्पराएँ अक्षुण्ण रहें, इसकी ओर भी उनका ध्यान था। संविधान के अनुसार कुलपति की नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। सन् १९६६ में सत्यव्रतजी को कुलपति बने तीन वर्ष हो चुके थे। अत: अब उनके स्थान पर पण्डित महेन्द्रप्रताप शास्त्री की नियुक्ति की गई। यह केवल एक वर्ष के लगभग इस पद पर रहे। उनके पश्चात् क्रमश: पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति (१९६८ से १९७१ तक) और पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री (१९७१ से १९७४) गुरुकुल काँगड़ी यूनिवर्सिटी के कुलपति बने। ये दोनों संस्कृत भाषा तथा वेद-शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, और आर्यसमाज में भी इनकी उच्च स्थिति थी। गुरुकुल की परम्पराओं से भी ये परिचित थे। पर इन्हें आर्य प्रतिनिधि सभा के आन्तरिक झगड़ों के कारण विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा। आर्यसमाज के इस प्रान्तीय संगठन में पंजाब, हरयाणा, दिल्ली तथा हिमाचलप्रदेश सम्मिलित थे। हरयाणा में आर्यसमाज का प्रचार सर्वाधिक है। वहाँ के बहुसंख्यक निवासी महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों में आस्था रखते हैं, और वहाँ गाँवों तक में भी आर्यसमाज विद्यमान हैं। इस दशा में यह स्वाभाविक ही था, कि लोकतन्त्रवाद पर आधारित इस सभा में हरयाणा के प्रतिनिधियों की बहुसंख्या हो जाए और अनेक पदाधिकारी भी उन्हीं के चुने जाएँ। परिणाम यह हुआ, कि आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब में हरयाणा के आर्यसमाजियों के वर्चस्व में वृद्धि हो गई। यह बात पंजाब के अनेक आर्यसमाजियों को पसन्द नहीं आई। जब से आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) का निर्माण हुआ था, उसका संचालन प्राय: पंजाब के आर्य प्रतिनिधियों के ही हाथों में रहा था। गुरुकुल काँगड़ी की व्यवस्था में भी उन्हीं की प्रमुखता थी। यद्यपि पंजाब और हरयाणा दोनों के आर्य प्रतिनिधियों की आर्यसमाज में समान रूप से आस्था थी, पर उनके रहन-सहन, बोलचाल एवं व्यवहार में वह अन्तर अवश्य विद्यमान था, जो दो विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों में स्वाभाविक रूप से विकसित हो जाता है। दुर्भाग्यवश इस भेद ने दलबन्दी का रूप धारण कर लिया, और आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का आन्तरिक विरोध उग्र रूप से सामने आ गया। इस विरोध तथा इससे प्रादुर्भूत मुकदमेबाजी पर प्रकाश डाल सकना हमारे लिए यहाँ न सम्भव है, और न उसकी आवश्यकता ही है। यहाँ यह लिख देना ही पर्याप्त है, कि इस विवाद का प्रभाव गुरुकुल काँगड़ी पर भी पड़ा और उसकी आन्तरिक व्यवस्था के सम्बन्ध में भी इसके कारण मुकदमे शुरू हो गये। यूनिवर्सिटी के रूप में गुरुकुल के विकास व उन्नति में इससे बहुत बाधा पड़ी।

गुरुकुल यूनिवर्सिटी को अपनी विविध कक्षाओं के लिए विद्यार्थियों को प्राप्त करने की समस्या इस काल में पूर्ववत् कायम रही। गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार के क्षेत्र में स्थित है। वहाँ की आबादी अधिक नहीं है। लखनऊ, वाराणसी, जालन्धर, दिल्ली, मेरठ आदि नगरों की जनसंख्या बहुत अधिक होने के कारण वहाँ विद्यार्थियों की संख्या भी अधिक होती है, जिससे शिक्षणालयों में विद्यार्थियों को कोई कमी नहीं रहती। स्वराज्य के पश्चात् भारत के बहुत-से नगरों में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के कॉलिज स्थापित हो गये थे, जिसके कारण विद्यार्थियों को अपने समीपवर्ती शिक्षणालयों में ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकने की सुविधा हो गई थी। किसी शिक्षण-संस्था के विशेष आकर्षण से (यथा वहाँ शिक्षा के स्तर के अत्यन्त ऊँचा होने या वहाँ के वातावरण के अत्यन्त सुसंस्कृत

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से आकृष्ट होकर) ही दूरवर्ती स्थानों के विद्यार्थी वहाँ पढ़ने के लिए आने को प्रेरित हो सकते हैं। गुरुकुल काँगड़ी यूनिवर्सिटी में ऐसा कोई विशेष आकर्षण नहीं था। अतः बाहर के विद्यार्थी वहाँ पर्याप्त संख्या में शिक्षा के लिए नहीं आये। विद्यार्थियों की कमी को दृष्टि में रखकर अब यह व्यवस्था की गई, कि पढ़ाई का समय प्रातः तथा सायंकाल रखा जाए, जिससे ऐसे व्यक्ति भी वहाँ अध्ययन कर सकें जो कहीं सर्विस करते हों। हरिद्वार के क्षेत्र में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं थी, जो विविध संस्थानों व सरकारी विभागों (रेलवे, रोडवे आदि) की सर्विस में थे। गुरुकुल में पढ़कर ये एम० ए० तथा अलंकार (बी० ए०) की डिग्रियाँ प्राप्त कर सकते थे। अतः वहाँ पढ़ाई का ऐसा समय नियत किया गया जो इनके लिए सुविधाजनक था, जिससे इनको सर्विस से छुट्टी लेने की आवश्यकता नहीं होती थी। परिणाम यह हुआ, कि गुरुकुल यूनिवर्सिटी में विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में प्रविष्ट होने प्रारम्भ हो गये, और स्नातकोत्तर कक्षाओं में उनकी संख्या २०० के लगभग तक पहुँच गई। स्नातकोत्तर कॉलिज के लिए यह संख्या सन्तोषजनक थी, विशेषतया उस दशा में जब कि वहाँ केवल आठ विषयों में पढ़ाई की व्यवस्था हो और इनमें भी वेद तथा संस्कृत जैसे कुछ विषय ऐसे हों जो विद्यार्थियों में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकते। जहाँ तक सायन्स की शिक्षा का सम्बन्ध है, गुरुकुल में स्नातक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था थी, और इसके दो वर्ष के पाठ्यक्रम की परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थियों को बी० एस-सी० की डिग्री दी जाती थी। हरिद्वार क्षेत्र में किसी अन्य शिक्षणालय में स्नातक-स्तर तक सायन्स की पढ़ाई नहीं होती थी। अतः गुरुकुल के इस विभाग में विद्यार्थियों की कोई समस्या नहीं थी। इस क्षेत्र के जो विद्यार्थी सायन्स के विषय पढ़ना चाहते थे, इसी कॉलिज में पढ़ना उनके लिए सुविधाजनक था। पर अन्य विषयों के विद्यार्थियों के लिए यह बात नहीं थी। समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, भूगोल आदि आर्ट्स के विषयों की स्नातक स्तर की पढ़ाई की गुरुकुल में व्यवस्था नहीं थी, और न वहाँ बी० एस-सी० के समान बी० ए० की डिग्री ही दी जाती थी। विद्याधिकारी (मैट्रिक्युलेशन) के बाद गुरुकुल में दो साल का कोर्स विद्याविनोद (एफ० ए०) का था, और दो साल का विद्यालंकार व वेदालंकार (बी० ए०) का। इनमें प्रवेश पाने के लिए गुरुकुल से ही विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण करने की अब कोई शर्त नहीं रह गई थी। अन्य शिक्षा परिषदों (प्रान्तीय बोर्डों) से मैट्रिक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्यार्थी विद्याविनोद में प्रवेश पा सकते थे, और इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर 'अलंकार' में। पर इनमें प्रवेश के लिए विद्यार्थी कोई आकर्षण अनुभव नहीं करते थे, क्योंकि एक तो विद्याविनोद और अलंकार के पाठ्यक्रम में संस्कृत को विशेष स्थान दिया गया था, और दूसरे हरिद्वार में एक अन्य डिग्री कॉलिज विद्यमान था जो मेरठ यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध था। यद्यपि गुरुकुल की अलंकार डिग्री बी० ए० के समकक्ष थी, पर विद्यार्थियों के लिए अलंकार की तुलना में बी० ए० का अधिक महत्त्व था, क्योंकि उसकी मान्यता सर्वविदित थी। हरिद्वार क्षेत्र के वही विद्यार्थी गुरुकुल की अलंकार कक्षाओं में प्रविष्ट होते थे, जो मेरठ कॉलिज से सम्बद्ध स्थानीय कॉलिज में प्रवेश न पा सकें या जिन्हें आर्यसमाज व वैदिक धर्म के प्रति विशेष आकर्षण हों। अनेक गुरुकुलों तथा संस्कृत विद्यालयों की परीक्षाओं को गुरुकुल काँगड़ी द्वारा मान्यता प्राप्त है। उनके विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा के लिए 'अलंकार' की कक्षाओं में प्रवेश पाने के इच्छुक हो सकते थे। पर इनकी संख्या अधिक नहीं होती थी। परिणाम यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर के विद्यार्थी संख्या में स्नातकोत्तर (एम० ए०) के विद्यार्थियों की तुलना में भी कम होते थे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा समय-समय पर उन शिक्षण-संस्थाओं के कार्यकलाप व गतिविधि का निरीक्षण कराया जाता है, जिन्हें उस द्वारा आर्थिक अनुदान प्राप्त होता हो। गुरुकुल काँगड़ी के सम्बन्ध में इस कार्य के लिए एक समिति की नियुक्ति सन् १९७१ में की गयी थी, जिसकी रिपोर्ट आयोग के सम्मुख सन् १९७२ के प्रारम्भ में प्रस्तुत कर दी गयी थी। इस रिपोर्ट में गुरुकुल के कार्यकलाप एवं प्रगति के विषय में असन्तोष प्रकट करते हुए कतिपय सुझाव दिये गये थे और यह आशा अभिव्यक्त की गयी थी, कि गुरुकुल के पदाधिकारी इन्हें क्रियान्वित करने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे। उस समय पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री गुरुकुल के कुलपति थे। कमेटी की रिपोर्ट के विषय में उन्होंने आयोग को लिखा था, कि "यह सत्य है कि पर्याप्त समय से जो विशेष परिस्थितियाँ विश्वविद्यालय में रही हैं, उनके कारण यहाँ उस ढंग से कार्य नहीं होता रहा जैसा कि अपेक्षित था। पर १ जुलाई, सन् १९७१ से, जबकि मैंने विश्वविद्यालय का कार्यभार सँभाला था, निरन्तर यह प्रयत्न किया जा रहा है, कि यह विश्वविद्यालय अपने विलुप्त गौरव को पुनः प्राप्त कर ले।" शास्त्रीजी से पहले पण्डित प्रियव्रत वेदवाचस्पति गुरुकुल के कुलपति थे। आर्य प्रतिनिधि सभा के आन्तरिक झगड़ों के कारण उन्हें अनेकविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, यह सर्वथा सत्य है। पर ये आन्तरिक झगड़े पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री के कुलपतित्व के काल में भी पूर्ववत् जारी रहे, और इसी का यह परिणाम हुआ कि शास्त्रीजी के सब प्रयत्नों के बावजूद भी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय उस ढंग से प्रगति नहीं कर सका, जिससे कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सन्तोष हो सकता। गुरुकुल की प्रगति का पुनरीक्षण करने के प्रयोजन से ६ सितम्बर, १९७२ को आयोग ने एक अन्य कमेटी की नियुक्ति की, जिसके सदस्य निम्नलिखित महानुभाव थे—मेरठ यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर श्री जे० एन० कपूर, बोम्बे यूनिवर्सिटी के संस्कृत प्रोफेसर श्री टी० जी० मैन्कर और भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के निदेशक श्री आर० एस० चिटकारा। १३ नवम्बर, १९७३ को गुरुकुल जाकर कमेटी के सदस्यों ने वहाँ के कार्यकलाप का सूक्ष्म रूप से पुनरीक्षण किया, और अपनी रिपोर्ट आयोग को प्रदान कर दी।

कमेटी ने आयोग के सम्मुख यह तथ्य प्रस्तुत किया, कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के वेद कॉलिज और आर्ट्स कॉलिज में विद्यार्थियों की कुल संख्या ९१ है, जिनमें से १६ विद्यार्थी 'अलंकार' (स्नातक स्तर) की कक्षाओं में और ७५ विद्यार्थी स्नातकोत्तर स्तर (एम० ए०) की कक्षाओं में हैं। प्राध्यापकों की संख्या ३० है। इस प्रकार तीन विद्यार्थियों के अध्यापन के लिए एक प्राध्यापक है। एक ऐसी संस्था के लिए, जिसमें यूनिवर्सिटी का सारा प्रपञ्च विद्यमान हो, विद्यार्थियों की यह संख्या बहुत कम है। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में यह भी लिखा था; कि गुरुकुल काँगड़ी को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था के रूप में जो मान्यता दी गई थी, उसका कारण यह था कि वह वैदिक वाङ्मय तथा संस्कृत साहित्य के अध्ययन व अनुशीलन में विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करे और इन विषयों के उच्चतम अध्ययन व शोध में अपना ध्यान केन्द्रित करे। पर इस दिशा में भी उस द्वारा कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। यह तथ्य इसीसे स्पष्ट है, कि स्नातकोत्तर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तर के ७५ विद्यार्थियों में से केवल ६ का विषय वेद है और ४ का संस्कृत साहित्य। शेष सब विद्यार्थी उन विषयों का अध्ययन कर रहे हैं, जिनके लिए अन्य यूनिवर्सिटियों व कॉलिजों में सब उपयुक्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अतः कमेटी का यह विचार था, कि गुरुकुल काँगड़ी को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था स्वीकार करने का कोई लाभ नहीं है। शिक्षा के लिए जो कार्य उस द्वारा किया जा रहा है, वह किसी चार्टर्ड यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध कॉलिज के रूप में भी वह कर सकता है। यदि उसकी स्थिति यूनिवर्सिटी की न रह कर एक सामान्य कॉलिज की हो जाए, तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उस पर किये जा रहे खर्च में भी काफी कमी की जा सकती है। ७ अक्तूबर, १९७४ को आयोग ने कमेटी की रिपोर्ट पर विचार किया, और २३ अक्तूबर के दिन उसकी एक प्रति इस प्रयोजन से गुरुकुल काँगड़ी के कुलसचिव के पास भेज दी गई, ताकि दिसम्बर मास के अन्त तक गुरुकुल उसके सम्बन्ध में अपना निवेदन आयोग को भेज सके।

जिस समय यह रिपोर्ट गुरुकुल में आयी, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री के स्थान पर कुलपति के पद पर नियुक्त हो चुके थे। १ जुलाई, १९७४ को शास्त्रीजी को कुलपति रहते हुए तीन वर्ष हो गये थे। दिसम्बर, १९७३ में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के पदाधिकारियों का चुनाव हाईकोर्ट के तत्त्वावधान में हुआ था, जिसमें स्वामी इन्द्रवेश सभा के प्रधान चुन लिये गये थे। हरयाणा और पंजाब के आर्य-समाजियों में जो विवाद चिरकाल से चला आ रहा था, उसने इस चुनाव में एक नया मोड़ लिया था। स्वामी इन्द्रवेश भी हरयाणा के हैं, पर वहाँ के अन्य अनेक आर्य नेताओं से उनके मतभेद थे। चुनाव में प्रधान पद के लिए हरयाणा पक्ष के प्रत्याशी स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती थे। पंजाव पक्ष ने अपना कोई प्रत्याशी खड़ा न कर प्रधान पद के लिए स्वामी इन्द्रवेश के समर्थन का निश्चय किया। हरयाणा क्षेत्र के दो प्रत्याशी होने के कारण वहाँ के वोट बँट गये, और पंजाव के सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो जाने से स्वामी इन्द्रवेश की विजय हो गई। उपप्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदि अन्य पदाधिकारियों को मनोनीत करने का अधिकार सभा के प्रस्ताव के अनुसार स्वामी इन्द्रवेश को दे दिया गया, जिन्होंने कि पंजाव के श्री वीरेन्द्र को मन्त्री पद के लिए मनोनीत किया और अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर भी पंजाव के आर्य सभासदों की नियुक्ति की। अन्तरंग सभा तथा विद्या सभा में भी पंजाव के आर्य सदस्यों को समुचित संख्या में इन्द्रवेशजी ने मनोनीत किया। इस प्रकार दशाब्दी से भी अधिक समय तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव में हरयाणा के आर्यों को जो प्रमुख स्थान प्राप्त था, उसका अन्त हो गया और सभा तथा उसके तत्त्वावधान में स्थापित संस्थाओं का संचालन एक वार फिर मुख्यतया पंजाव के आर्य सज्जनों के हाथों में आ गया। गुरुकुल काँगड़ी की विद्यासभा तथा गुरुकुल विश्वविद्यालय की सीनेट में भी अव हरयाणा के प्रभाव में कमी आ गई। नयी व्यवस्था के अनुसार जो सीनेट बनी, निर्धारित विधि का अनुसरण कर उस द्वारा डा० सत्यकेतु विद्यालंकार की गुरुकुल के कुलपति पद पर नियुक्ति की गई, और २ जुलाई, सन् १९७४ को उन्होंने विश्वविद्यालय का कार्यभार सँभाल लिया।

डा० विद्यालंकार को सवसे पहले पंजाव आर्य प्रतिनिधि सभा की दलवन्दी के कारण उत्पन्न हुई विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा। एक दशाब्दी से भी अधिक समय तक सभा के दो दलों में घोर संघर्ष चलता रहा था, और अब तक भी उसका अन्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ था। गुरुकुल के प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों पर भी उसका प्रभाव पड़ा था, और उनके एक वर्ग को हरयाणा दल का समझा जाता था। सभा के कतिपय अधिकारियों का विचार था, कि इस वर्ग के व्यक्तियों को गुरुकुल की सेवा से मुक्त कर देना चाहिये। पर डा० विद्यालंकार इससे सहमत नहीं थे। बिना समुचित कारण के किसी को सेवा से मुक्त कर सकना न सम्भव होता है, और न उचित। गुटबन्दी के प्रति उनकी जो तटस्थता की नीति थी, उससे पंजाब पक्ष के अनेक व्यक्ति प्रसन्न नहीं हुए। हरयाणा पक्ष के व्यक्ति भी उनकी नियुक्ति से प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि पंजाब प्रतिनिधि सभा के चुनाव में उनके दल को परास्त कर जो व्यक्ति पदाधिकारी बने थे उन्होंने ही उनको कुलपति के पद पर नियुक्त किया था। इस विकट व विपरीत परिस्थिति में भी गुरुकुल के आन्तरिक प्रबन्ध को सुव्यवस्थित करने में डा० विद्यालंकार को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, और कुछ ही महीनों में वह अपनी निष्पक्षता तथा दलबन्दी में तटस्थता के प्रति गुरुकुल के प्राध्यापकों तथा कर्मचारियों को आश्वस्त करने में समर्थ हो गये।

पर नवम्बर, १९७४ के प्रारम्भ में डा० विद्यालंकार को एक और भी अधिक गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त कमेटी ने ३ नवम्बर, सन् १९७३ को (जब पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री कुलपति थे) गुरुकुल का पुनरीक्षण कर अपनी जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कमेटी ने स्पष्ट रूप से यह विचार प्रकट किया था, कि गुरुकुल काँगड़ी को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था मानने तथा तदनुरूप उस पर धन व्यय करने का कोई लाभ नहीं है, और जो कार्य यह शिक्षणालय कर रहा है, उसे यह एक सामान्य कॉलिज के रूप में भी कर सकता है। इस रिपोर्ट से गुरुकुल यूनिवर्सिटी के प्राध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को बहुत उद्वेग हुआ, और वे अपने भविष्य के विषय में अत्यधिक चिन्ता अनुभव करने लगे। इस दशा में गुरुकुल को यूनिवर्सिटी के रूप में मान्य बनाये रखने के लिए डा० विद्यालंकार ने जो कार्य किया, वह वस्तुतः सराहनीय था। गुरुकुल के प्राध्यापकों तथा पुराने स्नातकों के सहयोग से कमेटी की रिपोर्ट का जो प्रतिवेदन उन्होंने तैयार कराया, वह अत्यन्त युक्तिसंगत था। साथ ही, उन्होंने गुरुकुल को संस्कृत, वेदशास्त्र एवं प्राचीन भारतीय ज्ञान के अध्ययन-अध्यापन तथा शोध का प्रमुख केन्द्र बनाने के सम्बन्ध में जो योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सम्मुख प्रस्तुत की, वह अत्यन्त उपयोगी थी। इस योजना द्वारा प्रस्तावित शोधकार्य को प्रारम्भ कर देने पर गुरुकुल वास्तविक रूप में प्राचीन भारतीय ज्ञान (Indology) के शोध का ऐसा केन्द्र बन सकता था, जिसके प्रति विश्व भर के प्राच्य विद्याविद् आकर्षण अनुभव करने लगते। डा० विद्यालंकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों से स्वयं जाकर मिले, और उन्हें गुरुकुल के सम्बन्ध में आश्वस्त करने का उन्होंने पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इसी का यह परिणाम हुआ, कि आयोग द्वारा नियुक्त कमेटी ने गुरुकुल की यूनिवर्सिटी की स्थिति को जारी न रखने का जो विचार प्रकट किया था, वह तत्काल क्रियान्वित नहीं किया गया और यह उचित समझा गया, कि अभी इस संस्था को सुव्यवस्थित ढंग से विकसित होने के लिए और समय दिया जाए।

पर गुरुकुल की आन्तरिक समस्याओं का अभी अन्त नहीं हुआ था। गुरुकुल के दो विभाग थे, उच्चशिक्षा विभाग जिसका पूरा खर्च सरकार द्वारा दिया जाता था, और

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विभाग (जिसे यूनिवर्सिटी विभाग कहा जा सकता है) के अतिरिक्त गुरुकुल के शेष सब विभाग, जिसमें विद्याधिकारी (दसवीं कक्षा) और विद्याविनोद (बारहवीं कक्षा) तक का शिक्षणालय, आयुर्वेद महाविद्यालय और म्यूजियम आदि अन्तर्गत थे। इनमें आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थिति बहुत अद्भुत थी। गुरुकुल एक यूनिवर्सिटी की स्थिति रखता था, पर उसका आयुर्वेद महाविद्यालय कानपुर यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध था। उसका पाठ्यक्रम क्या हो, कौन प्राध्यापक नियुक्त किये जाएँ, उन्हें किस रेट से वेतन दिये जाएँ और किस आधार पर उसमें विद्यार्थी प्रविष्ट किये जाएँ—ये सब बातें कानपुर यूनिवर्सिटी द्वारा निर्धारित व्यवस्था के अनुसार करनी होती थीं। पर इस महाविद्यालय की आर्थिक उत्तरदायिता गुरुकुल पर थी। इसके कुल व्यय की आधी राशि का प्रबन्ध गुरुकुल को करना होता था, और आधा व्यय उत्तरप्रदेश की सरकार द्वारा प्रदान किया जाता था। प्रश्न यह था, कि आयुर्वेद कॉलिज पर गुरुकुल द्वारा खर्च की जाने वाली धनराशि, जो तीन लाख रुपये वार्षिक के लगभग थी, कहाँ से प्राप्त की जाए। खेती, बाग, फार्मेसी और मकानों के किराये आदि के रूप में गुरुकुल की आमदनी के जो साधन थे, वे इतने पर्याप्त नहीं थे कि उनसे गुरुकुल विद्यालय और आयुर्वेद महाविद्यालय आदि के सब खर्च चल सकें। इस स्थिति में गुरुकुल का काम चलाने के दो ही उपाय थे, या तो आमदनी बढ़ायी जाये या खर्च कम किया जाये। खर्च कम करने का साधन यही था, कि शिक्षकों तथा कर्मचारियों के वेतन में कमी की जाये और उन्हें त्याग भावना से गुरुकुल की सेवा करने के लिए प्रेरित किया जाये। पर यह क्रियात्मक नहीं था, क्योंकि यूनिवर्सिटी के प्राध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को अलीगढ़, दिल्ली आदि केन्द्रीय यूनिवर्सिटियों के वेतन क्रम के अनुसार वेतन दिये जाते थे, और वेतन की यह राशि पूर्णतया सरकार द्वारा प्रदान की जाती थी। यूनिवर्सिटी विभाग के कार्यकर्ताओं के वेतनों की तुलना में आयुर्वेद महाविद्यालय, विद्यालय तथा अन्य विभागों के कार्यकर्ताओं के वेतन बहुत कम थे। यदि किसी कार्य के लिए यूनिवर्सिटी के कर्मचारी को १००० रुपया वेतन मिलता था, तो उसके समकक्ष व सदृश कार्य के लिए आयुर्वेद महाविद्यालय के कर्मचारी को पाँच-छह सौ से अधिक वेतन नहीं दिया जाता था। इस दशा में यह आशा कैसे की जा सकती थी, कि आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राध्यापक व कर्मचारी और भी कम वेतन पर कार्य करने के लिए तैयार हो जाएँ। समस्या के समाधान का दूसरा उपाय आमदनी में वृद्धि करने का प्रयत्न था। डा० विद्यालंकार ने इस दिशा में प्रयत्न किया भी, पर गुरुकुल की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में उनके जो विचार थे, सभा के अधिकारियों के बहुमत को वह उनसे सहमत करा सकने में असमर्थ रहे। आर्थिक समस्या के कारण आयुर्वेद महाविद्यालय में अनुशासनहीनता बढ़ती गई, और अनेक ऐसी घटनाएँ भी हुईं, जो सभ्य समाज के अनुरूप नहीं थीं, और अत्यन्त अप्रिय तथा कटु थीं।

डा० विद्यालंकार एक साहित्यकार व सुलेखक थे। विद्वत्ता तथा साहित्य के क्षेत्र में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। उन्होंने अनुभव किया, कि आर्य प्रतिनिधि सभा की दलबन्दी तथा गुरुकुल की आर्थिक कठिनाइयों के कारण जो परिस्थिति इस संस्था में उत्पन्न हो गयी हैं, उनसे संघर्ष करते रहने का केवल यही परिणाम होगा कि उनकी साहित्यकता नष्ट हो जाएगी। गुरुकुल को संस्कृत, वेदशास्त्र तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अध्ययन-अध्यापन तथा शोध का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनाने की जो योजनाएँ उनके सम्मुख थीं और जिन्हें क्रियान्वित करने की आशा से ही उन्होंने कुलपति का पद स्वीकार किया था, जब उन्होंने अनुभव कर लिया कि इस विषय में वह सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, तो उन्होंने स्वयं स्वेच्छापूर्वक कुलपति पद से त्यागपत्र दे दिया। सभा के प्रधान व गुरुकुल के कुलाधिपति स्वामी इन्द्रवेश ने बार-बार अनुरोध किया, कि वह त्यागपत्र वापस ले लें, पर वह इसके लिए तैयार नहीं हुए, और सितम्बर, १९७५ में गुरुकुल से चले गये।

गुरुकुल काँगड़ी में अनुशासनहीनता आदि की जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी थीं, उन्हें दृष्टि में रखकर बहुत-से महानुभावों का यह विचार हुआ, कि अब कुलपति के पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाना चाहिये, जो कुशल प्रशासक हो। यह समझा गया, कि किसी विद्वान्, शिक्षाशास्त्री या साहित्यकार की तुलना में प्रशासन में योग्यता व अनुभव रखने वाला व्यक्ति गुरुकुल को अधिक अच्छी तरह सँभाल सकेगा। इसी दृष्टि से डा० सत्यकेतु विद्यालंकार के उत्तराधिकारी के रूप में श्री बलभद्र कुमार हूजा को कुलपति के पद पर नियुक्त किया गया। श्री हूजा भारतीय प्रशासन सेवा (I. A. S.) से कुछ समय पूर्व ही निवृत्त हुए थे। न केवल आर्य प्रतिनिधि सभा के पदाधिकारियों ने ही, अपितु गुरुकुल काँगड़ी के स्नातकों, प्राध्यापकों तथा कर्मचारियों ने भी श्री हूजा की कुलपति पद पर नियुक्ति का उत्साह व प्रसन्नता के साथ स्वागत किया, और यह समझा जाने लगा कि इस अनुभवी प्रशासक के कर्तृत्व के कारण गुरुकुल की सब समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

(३) अव्यवस्था और अराजकता का ताण्डव नृत्य

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में क्षेत्रीय व जातिगत आधार पर जो दलबन्दी या गुटबन्दी चिर काल से चली आ रही थी, स्वामी इन्द्रवेश के सभा प्रधान चुने जाने पर उसका अन्त नहीं हो गया था। अनेक आर्य नेता अब यह विचार करने लगे थे कि आर्य प्रतिनिधि सभा का विभाजन कर हरयाणा, दिल्ली और पंजाब को तीन पृथक् प्रतिनिधि सभाओं का गठन कर देना चाहिये। राजनीतिक दृष्टि से हरयाणा पहले पंजाब के अन्तर्गत था, पर अब वह एक पृथक् राज्य बन गया था। दिल्ली की स्थिति भी एक पृथक् संघ-क्षेत्र की थी। इस दशा में यह विचार जोर पकड़ने लगा, कि इन तीनों की यदि पृथक्-पृथक् प्रतिनिधि सभाएँ हो जाएँ, तो जहाँ वे अपने-अपने क्षेत्र में अधिक अच्छा काम कर सकेंगी, वहाँ साथ ही हरयाणा और पंजाब के संघर्ष का भी इससे अन्त हो जाएगा। सन् १९७५ में भारत में आपात काल की घोषणा कर दी गयी थी, और जो पार्टियाँ कांग्रेस के विरोध में थीं, उनके नेताओं व कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया था। स्वामी इन्द्रवेश और उनके अनेक साथी, जिनमें स्वामी अग्निवेश प्रमुख थे, राजनीति में कांग्रेस पार्टी के विरोधी थे। वे भी गिरफ्तार कर लिये गये, और स्वामी इन्द्रवेश के जेल में होने के कारण प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान आचार्य पृथ्वीसिंह आज़ाद उनके स्थान पर गुरुकुल काँगड़ी के कुलाधिपति का कार्य करने लगे। अभी स्वामी इन्द्रवेश जेल में ही थे, कि प्रतिनिधि सभा की अंतरंग सभा ने सभा के त्रिविभाजन का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, और वे सिद्धान्त भी स्थूल रूप से तय कर लिये गये, जिनके अनुसार सभा की सम्पत्ति तथा उस द्वारा संचालित संस्थाओं को विभक्त किया जाना था। गुरुकुल काँगड़ी के सम्बन्ध में यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त तय किया गया, कि उस पर तीनों (हरयाणा, पंजाब और दिल्ली) सभाओं का संयुक्त अधिकार रहेगा और उसकी विद्या सभा तथा सीनेट में तीनों के बराबर-बराबर प्रतिनिधि रहेंगे। त्रिविभाजन के निर्णय को क्रियान्वित करने तथा उसके कारण उत्पन्न मतभेदों व समस्याओं का समाधान करने के सब अधिकार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले को प्रदान कर दिये गये। तीनों सभाओं के पदाधिकारियों की भी सामयिक व तदर्थ (एड् हॉक) रूप से नियुक्ति कर दी गयी, और यह तय किया गया कि सभा के त्रिविभाजन के परिणामस्वरूप गुरुकुल काँगड़ी के संविधान का भी पुनः निर्माण किया जाएगा और उसी नये संविधान के अनुसार विद्यासभा एवं सीनेट को नये सिरे से संगठित किया जाएगा। पर स्वामी इन्द्रवेश सभा के त्रिविभाजन की बात से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि ये निर्णय उनकी अनुपस्थिति में किये गये हैं, और ऐसे महत्त्व-पूर्ण निर्णय के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक था, उसे नहीं अपनाया गया है। राजनीतिक दृष्टि से उनके गिरफ्तार किए जाने का यह परिणाम कदापि नहीं हो सकता, कि वह सभा के प्रधान पद पर न रहें और उनकी उपेक्षा कर ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय कर लिये जायें। कुछ समय पश्चात् जब आपात काल की घोषणा को वापस ले लिया गया, तो स्वामी इन्द्रवेश और उनके साथी भी जेल से छूट गये। ये सभा के त्रिविभाजन को अवैध मानते थे, और स्वामी इन्द्रवेश को पूर्ववत् सभा का प्रधान स्वीकार करते थे। इस प्रकार अब एक बार फिर आर्य प्रतिनिधि सभा दो विरोधी दलों में विभक्त हो गयी। अविभाजित सभा के प्रधान होने के कारण स्वामी इन्द्रवेश का दावा था, कि वह अब भी पूर्ववत् गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हैं। त्रिविभाजन के परिणामस्वरूप पंजाब सभा के जो पदाधिकारी नियुक्त हुए थे, उनमें प्रधान का पद श्री वीरेन्द्र ने प्राप्त किया था। पंजाब सभा के प्रधान होने के कारण वह भी अपने को गुरुकुल का कुलाधिपति मानते थे। इस प्रकार गुरुकुल के कुलाधिपति के दो दावेदार हो गए थे, स्वामी इन्द्रवेश और श्री वीरेन्द्र। स्वामी इन्द्रवेश का मत था, कि कुलपति पद पर श्री हूजा की नियुक्ति भी अवैध है। वह उन्हें कुलपति मानने को तैयार नहीं थे। अपने कुछ समर्थकों के साथ वह गुरुकुल आ गए। गुरुकुल के कर्मचारियों व प्राध्यापकों में बहुत-से ऐसे थे, जो स्वामी इन्द्रवेश के पक्षपोषक थे। उन्होंने भी स्वामीजी का साथ दिया और गुरुकुल पर उन लोगों का कब्जा हो गया, जो पंजाब प्रतिनिधि सभा के त्रिविभाजन को अवैध मानते थे। स्वामी इन्द्रवेश द्वारा डा० गंगाराम को गुरुकुल का कुलपति नियुक्त किया गया। डा० गंगाराम चिर काल से गुरुकुल की सर्विस में थे। वह अंग्रेजी के प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर गुरुकुल आये थे, और कुछ वर्ष पश्चात् वहाँ के कुलसचिव (रजिस्ट्रार) हो गए थे। गुरुकुल की परम्पराओं आदि की उन्हें समुचित जानकारी थी। पर वह देर तक कुलपति पद पर नहीं रह सके। इस बीच में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के त्रिविभाजन को लेकर फिर मुकदमेबाजी शुरू हो गयी थी, और गुरुकुल पर कब्जा करने के लिए दोनों पक्षों द्वारा अनेकविध जोड़-तोड़ प्रारम्भ कर दिये गए थे। इस समय डा० हरिप्रकाश ने अनुपम सूझबूझ से काम लिया। उनका आर्यसमाज के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह पंजाब प्रतिनिधि सभा के मन्त्री भी रह चुके थे। गुरुकुल काँगड़ी के पुराने स्नातक होने के कारण उन्हें इस संस्था से ममता भी थी। सार्वजनिक जीवन में सफलता के लिए जिस जोड़-तोड़ की आवश्यकता होती है, उनमें वह भी विद्यमान थी। उन्होंने हरयाणा के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन आर्यसमाजियों का साहाय्य प्राप्त किया, जिनके प्रत्याशी को परास्त कर स्वामी इन्द्रवेश ने प्रतिनिधि सभा के प्रधान का पद प्राप्त किया था। गुरुकुल के भूतपूर्व कुलपति पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री की सहायता से वह स्वामी इन्द्रवेश के हाथ से गुरुकुल को वापस लेने में समर्थ हो गए, और उपकुलपति के पद पर नियुक्त होकर शास्त्रीजी गुरुकुल आ गए। परिस्थितियों के अनुकूल हो जाने पर श्री हूजा ने भी गुरुकुल आकर कुलपति का पद सँभाल लिया।

पर हरयाणा और पंजाब के आर्यसमाजी नेताओं का यह सहयोग देर तक कायम नहीं रह सका। उनके मतभेद और विरोध शीघ्र ही प्रकट होने लग गए, और पण्डित रघुवीरसिंह शास्त्री गुरुकुल से चले गये। स्वामी इन्द्रवेश ने इस स्थिति से लाभ उठाया, और पुनः गुरुकुल पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस वार उन्होंने श्री विजयपाल सिंह वर्मा को कुलपति पद पर नियुक्त किया। श्री वर्मा रुड़की क्षेत्र के निवासी थे, और उनका सम्बन्ध एक प्रतिष्ठित आर्य परिवार से था। व्यवसाय से वह वकील थे, और अपने क्षेत्र में उनका अच्छा प्रभाव था। गुरुकुल को सँभालने के लिए उन्होंने पूरा-पूरा प्रयत्न किया, और आंशिक रूप से उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। पर इस वीच में दूसरा पक्ष भी चुप नहीं वैठा था। पंजाव में दोनों पक्षों में मुकदमेवाजी चल रही थी, और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के सम्मुख यह निवेदन प्रस्तुत किया जा रहा था कि श्री विजयपाल सिंह गुरुकुल के वैध कुलपति नहीं हैं, अतः सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली आर्थिक सहायता की राशि उन्हें नहीं दी जानी चाहिये। जिन वैंकों में गुरुकुल का हिसाव था, उन्हें भी यह सूचित कर दिया गया था, कि श्री वर्मा को गुरुकुल के खाते से कोई रकम देना गैर-कानूनी होगा। श्री हूजा ने अपना कार्यालय दिल्ली में कायम कर लिया था, और उनकी ओर से यह आदेश प्रचारित कर दिया गया था, कि गुरुकुल को अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया है, अतः कोई प्राध्यापक वहाँ अध्यापन के लिए न जाए और न ही कोई कर्मचारी ही वहाँ काम करे। इस समय गुरुकुल के कार्यकर्ताओं में भी दो दल हो गये थे। एक दल श्री हूजा को कुलपति मानता था, और उनके आदेश का पालन कर इस दल के व्यक्तियों ने गुरुकुल में कार्य पर जाना वन्द कर दिया था। दूसरे दल का कहना था, कि हमें प्रतिनिधि सभा के झगड़ों से कोई सरोकार नहीं रखना चाहिये। हम गुरुकुल की सेवा में हैं, और यदि हमें विद्यार्थियों को पढ़ाने का या अन्य काम करने का आदेश प्राप्त होता है तो हमें उसका पालन करना चाहिये। आदेश देने वाला व्यक्ति वैध रूप से अपने पद पर है या नहीं, इस वात का निर्णय हम नहीं कर सकते। जो कोई भी व्यक्ति कुलपति, कुलसचिव आदि पदाधिकारियों के रूप में गुरुकुल में रह रहे हों, हमें उनके आदेशों के अनुसार अध्यापन आदि कार्यों को करते रहना चाहिये। जिन कार्यकर्ताओं ने श्री हूजा के आदेश पर गुरुकुल में आकर कार्य करना बन्द कर दिया था, श्री विजयपाल सिंह वर्मा ने उनके स्थान पर अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति कर दी, और इस प्रकार वह गुरुकुल के कार्य को चलाते रहे।

जिन प्राध्यापकों और कर्मचारियों ने श्री हूजा के आदेश का पालन कर गुरुकुल में काम करने आना बन्द कर दिया था, उनके सम्मुख निर्वाह की विकट समस्या थी। उन्हें गुरुकुल से वेतन नहीं दिया जाता था। इस दशा में गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी ने उनकी समस्या का समाधान किया। फार्मेसी गुरुकुल काँगड़ी की सम्पत्ति है, और उसकी सब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमदनी गुरुकुल के कार्यों के लिए ही प्रयुक्त की जाती है। यद्यपि गुरुकुल के यूनिवर्सिटी विभाग के लिए खर्च करने की कोई उत्तरदायिता फार्मेसी की नहीं थी, पर इस विशेष परिस्थिति में उसने श्री वीरेन्द्र व श्री हूजा के पक्ष के व्यक्तियों को धन देना प्रारम्भ कर दिया, और इस प्रकार जीवन निर्वाह की उनकी कठिनाई को दूर कर दिया। स्वामी इन्द्रवेश तथा श्री विजयपाल सिंह वर्मा की योजना थी, कि फार्मेसी पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लें। इसके लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न भी किये। पर डा० हरिप्रकाश, जो फार्मेसी के व्यवस्थापक थे, उनके मार्ग में चट्टान के समान खड़े रहे। उन्होंने फार्मेसी पर स्वामी इन्द्रवेश के पक्ष का कब्जा नहीं होने दिया, और उसकी सब आमदनी श्री वीरेन्द्र के पक्ष की विजय के लिए प्रयुक्त की जाती रही।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के आन्तरिक मतभेदों व झगड़ों के कारण गुरुकुल में जो विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, वह केवल मुकदमेबाजी व एक पत्र द्वारा की गई हड़ताल तक ही सीमित नहीं रही, उसने अत्यन्त उग्र एवं हिंसात्मक रूप भी धारण कर लिया। दोनों पक्षों ने ऐसे साधनों को प्रयुक्त करना प्रारम्भ कर दिया, जिन्हें सभ्योचित नहीं कहा जा सकता। इस उग्र संघर्ष में एक पक्ष का नेतृत्व श्री विजयपाल सिंह वर्मा कर रहे थे, जिनका गुरुकुल पर कब्जा था। दूसरे पक्ष के नेता डा० हरिप्रकाश थे, फार्मेसी जिनके हाथों में थी। इस संघर्ष में गुरुकुल के सभी विभागों को अपार क्षति उठानी पड़ी। गुरुकुल विद्यालय तो इसमें प्रायः समाप्त ही हो गया। न वहाँ ब्रह्मचारी रहे, और न अध्यापक। इमारतों की भी दुर्दशा हो गई। गुरुकुल का सुरम्य परिसर उजड़ गया, और असामाजिक तत्त्वों की आ बनी। इस काल में दोनों पक्षों के बीच जो मुकदमेबाजी चल रही थी, उसका विवरण देने से कोई विशेष लाभ नहीं है। सहारनपुर के ज़िला जज द्वारा अन्त में यह निर्णय किया गया, कि गुरुकुल के कुलपति पद पर श्री बलभद्रकुमार हूजा की नियुक्ति वैध है और श्री विजयपाल सिंह वर्मा ने इस पद के लिए जो दावा किया है उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। जिला जज के इस निर्णय के विरुद्ध श्री वर्मा ने हाईकोर्ट में अपील की हुई है। वह चाहते थे, कि यह निर्णय तब तक क्रियान्वित न किया जाए, जब तक कि हाईकोर्ट उनकी अपील का फैसला न कर दे। पर हाईकोर्ट ने स्थगन आदेश देने से इन्कार कर दिया। लगभग तीन साल के बाद अब श्री हूजा गुरुकुल वापस आ गये, और जुलाई, १९८० से पुनः कुलपति तथा मुख्याधिष्ठाता के कार्य करने लगे। गुरुकुल के पुनः अपने अधिकार में आ जाने पर श्री वीरेन्द्र द्वारा सीनेट तथा विद्यासभा की बैठकें आयोजित की गईं। आर्यसमाज की इस प्रमुख शिक्षण-संस्था की जो दुर्दशा गत वर्षों के पारस्परिक संघर्ष के कारण हो गई थी, उसे देख कर आर्य नेताओं को हार्दिक दुःख हुआ और सबने मिल कर संकल्प किया कि गुरुकुल को फिर से व्यवस्थित, विकसित व उन्नत करने में वे कोई कसर न उठा रखेंगे। चिर संघर्ष के पश्चात् जो पक्ष विजयी होता है, स्वाभाविक रूप से उसके सदस्यों में एक प्रकार की एकता उत्पन्न हो जाती है, और उस एकता व मैत्री को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए वे प्रयत्नशील रहते हैं। कुछ इसी प्रकार की एकता इस समय पंजाब, दिल्ली तथा हरयाणा की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के नेताओं में उत्पन्न हो गयी थी, क्योंकि वे सब एक साथ मिल कर स्वामी इन्द्रवेश तथा श्री विजयपाल सिंह वर्मा के विरुद्ध संघर्ष में तत्पर रहे थे। आशा की जा रही थी, कि अब गुरुकुल काँगड़ी के इतिहास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक नये युग का प्रारम्भ हो रहा है, और यह संस्था अब बड़ी तेजी के साथ उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगी।

पर यह आशा पूरी नहीं हुई। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा का त्रिविभाजन तो हो गया था, और इस विभाजन को तीनों प्रदेशों के आर्यसमाजियों ने स्वीकार भी कर लिया था, यद्यपि स्वामी इन्द्रवेश और उनके साथी अब भी इसके विरुद्ध थे। सिद्धान्ततः, यह बात भी सबने स्वीकार कर ली थी, कि गुरुकुल काँगड़ी पर पंजाब, दिल्ली और हरयाणा तीनों की आर्य प्रतिनिधि सभाओं का संयुक्त रूप से अधिकार रहेगा। पर इस संयुक्त अधिकार का स्वरूप क्या हो, इस प्रश्न पर पुनः मतभेद उत्पन्न होने लग गये, और इन मतभेदों ने उग्र विवाद का रूप प्राप्त कर लिया। इस दशा में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में एक बार फिर अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो गयी है। यह प्रयत्न किया जा रहा है, कि गुरुकुल के प्रबन्ध आदि के सम्बन्ध में प्रादुर्भूत समस्याओं का समाधान कर अनिश्चितता की दशा का अन्त कर दिया जाये।

(४) यूनिवर्सिटी की स्थिति के गुरुकुल का मूल्यांकन तथा उसका भविष्य

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त किये हुए अब बीस वर्ष हो चुके हैं। सायन्स के विषयों की शिक्षा वहाँ स्नातक-स्तर तक दी जाती है, और वेद, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास, हिन्दी, दर्शनशास्त्र, अंग्रेजी, गणित तथा मनोविज्ञान की स्नातकोत्तर स्तर तक। बीस वर्षों में इन विषयों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई है। वर्तमान समय में इस संस्था का वार्षिक बजट इक्कीस लाख रुपये से भी अधिक है। इसमें से छह लाख के लगभग खर्च यूनिवर्सिटी विभाग के प्रशासन के लिए है। गुरुकुल यूनिवर्सिटी के शिक्षक-कर्मचारियों (रीडर और लेक्चरर) की संख्या ४३ है, और वहाँ ९३ गैर-शिक्षक कर्मचारी हैं। चार्टर्ड यूनिवर्सिटी के लिए जो स्टाफ चाहिये, प्रायः वह सब वहाँ विद्यमान है। एक अच्छे बड़े स्नातकोत्तर कॉलिज में जितने प्राध्यापक चाहिये, विषयों की संख्या को दृष्टि में रखते हुए वे सब भी गुरुकुल में हैं। एक समृद्ध पुस्तकालय भी वहाँ है, जिसमें पुस्तकों की संख्या सवा लाख के लगभग है। उच्च शिक्षा की इन सब सुविधाओं के होते हुए भी वहाँ अब तक (गुरुकुल को यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त किये हुए बीस वर्ष बीत जाने पर) भी विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है। विद्याविनोद, विद्यालंकार और वेदालंकार कक्षाओं में वहाँ केवल ३४ विद्यार्थी हैं, और स्नातकोत्तर कक्षाओं में केवल १६६। इनमें भी ५९ विद्यार्थी गणित के, २७ मनोविज्ञान के, १७ अंग्रेजी के और १४ हिन्दी के हैं। वेद के केवल ८ विद्यार्थी हैं। संस्कृत, प्राचीन दर्शन तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः १३, ८ और २० है। स्नातकोत्तर कक्षाओं के १६६ विद्यार्थियों में बहुत बड़ी संख्या उन विषयों का अध्ययन कर रही है, जिनकी पढ़ाई की व्यवस्था प्रायः सभी स्नातकोत्तर कॉलिजों में होती है। गुरुकुल काँगड़ी को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था स्वीकार करने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का एक मुख्य प्रयोजन यह था, कि यह संस्था वेद, संस्कृत, प्राचीन दर्शन और प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन, अनुशीलन तथा शोध का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन सके। पर इस रूप में गुरुकुल काँगड़ी का समुचित विकास नहीं हुआ है। वेद, षड्दर्शन तथा प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा यह की जाती थी, कि उस दृष्टिकोण के अनुसार इन विषयों के गम्भीर रूप से अनुशीलन के लिए गुरुकुल में विशेष रूप से प्रयत्न किया जायेगा, और वहाँ से उच्चकोटि का ऐसा साहित्य प्रकाशित होगा जिस से महर्षि के मन्तव्यों की पुष्टि होती हो। अब से साठ साल पूर्व प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में जिस ढंग का कार्य आचार्य रामदेव द्वारा किया गया था, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मौलिक था। उसे फिर से शुरू करने पर गुरुकुल यूनिवर्सिटी ने कोई ध्यान नहीं दिया। वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन कर जिस उच्च कोटि के वेद-वेदांगविषयक ग्रन्थ पण्डित चन्द्रमणि विद्यालंकार, पण्डित विश्वनाथ विद्यालंकार और पण्डित जयदेव विद्यालंकार आदि गुरुकुल के प्राध्यापकों व स्नातकों ने कभी लिखे थे, वैसे गुरुकुल द्वारा गत बीस वर्षों में नहीं लिखवाये गये। यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त कर चुकने के पश्चात् वेद-वेदांग तथा प्राचीन भारतीय इतिहास में मौलिक शोध का कोई उस ढंग का उल्लेखनीय कार्य गुरुकुल द्वारा नहीं किया गया, जिसकी उस से अपेक्षा की जाती थी।

गुरुकुल शिक्षा-पद्धति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह मानी जाती है, कि विद्यार्थी छात्रावास (आश्रम) में रह कर ब्रह्मचर्यपूर्वक सदाचार और तपस्या का अनुशासित जीवन व्यतीत करें, और उनकी दिनचर्या व रहन-सहन पर गुरुजनों का नियन्त्रण रहे। यूनिवर्सिटी की स्थिति प्राप्त होने से पूर्व गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग के विद्यार्थियों के लिए भी छात्रावास विद्यमान था। उसमें सन्ध्या-हवन भी हुआ करता था, और विद्यार्थियों के जीवन को नियन्त्रित करने का प्रयत्न भी किया जाता था। पर यूनिवर्सिटी बन जाने पर स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की सुविधा धीरे-धीरे कम होती गई, और अब यह स्थिति आ गयी है, कि विद्याविनोद, अलंकार तथा एम० ए० का कोई भी विद्यार्थी गुरुकुल के छात्रावास में नहीं रहता। इस दशा के लिए कुछ अंश तक अव्यवस्था और संघर्ष का वह काल भी उत्तरदायी है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर यह भी स्वीकार करना होगा, कि यूनिवर्सिटी के रूप में इस संस्था का सन् १९६३ के बाद जिस ढंग से विकास हुआ, उसमें गुरुकुल शिक्षा-पद्धति की प्रायः सभी विशेषताएँ धीरे-धीरे लुप्त होती गईं, और वह एक सामान्य कॉलिज के सदृश होती गई।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा शिक्षाविषयक जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, गुरुकुल काँगड़ी उनसे क्यों दूर हटता गया। इसका एक कारण तो यह था कि जीवन संघर्ष की वर्तमान परिस्थितियों में इन आदर्शवादी व क्रान्तिकारी मन्तव्यों को अविकल रूप से क्रियान्वित कर सकना सुगम नहीं था। पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह था, कि इस संस्था का संचालन जिन सज्जनों के हाथों में रहा है, आर्यसमाज के सार्वजनिक जीवन में उनका स्थान चाहे कितना भी उच्च क्यों न हो और चाहे वे उच्चकोटि के शिक्षा-शास्त्री भी क्यों न हों, पर गुरुकुल शिक्षा-पद्धति में उनकी समुचित आस्था नहीं थी। यही बात गुरुकुल के पदाधिकारियों तथा प्राध्यापकों के सम्बन्ध में भी सत्य है। गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना जिन आदर्शों को सम्मुख रख कर की गयी थी, उन पर आर्य प्रतिनिधि सभा के बहुत-से पदाधिकारियों व नेताओं की अविकल रूप से आस्था उस समय भी नहीं थी, जब महात्मा मुंशीराम उसके मुख्याधिष्ठाता थे। गुरुकुल की स्थापना वैदिक धर्म के प्रचारकों तथा आर्यसमाज के पुरोहितों को तैयार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए की गयी है, या वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति के वातावरण में प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान की समन्वयात्मक शिक्षा देने के लिए—इस सम्बन्ध में भी प्रायः तर्क-वितर्क होता रहता था। वस्तुतः, गुरुकुल के आदर्शों एवं मान्यताओं का कभी ऐसे सुस्पष्ट ढंग से निर्धारण नहीं हुआ, जिससे कि उनके सम्बन्ध में मतभेद व विवाद की गुंजाइश ही न रह जाये। इसीलिए गुरुकुल पद्धति के स्वरूप के सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों और गुरुकुल के कार्यकर्ताओं में समय-समय पर अनेकविध मतभेद उत्पन्न होते रहे। पर इसमें सन्देह नहीं, कि सन् १९६३ तक गुरुकुल का संचालन पूर्णतया आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के हाथों में था, और उसके पदाधिकारी आर्य जनता की सहायता से ही गुरुकुल के खर्च के लिए धन जुटाते थे। इस दशा में यह स्वाभाविक था, कि गुरुकुल पर आर्यसमाज का प्रभाव कायम रहे।

पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गुरुकुल की यूनिवर्सिटी की स्थिति स्वीकार कर लिये जाने पर इस दशा में परिवर्तन आने लगा। अब गुरुकुल की उच्च शिक्षा का सारा खर्च सरकार द्वारा किया जाने लगा और उसकी सीनेट आदि में भी ऐसे सदस्यों को स्थान प्राप्त हुआ, जो सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस दशा में गुरुकुल पर सरकार के नियन्त्रण व प्रभाव में वृद्धि होते जाना स्वाभाविक था। अब अपना खर्च चलाने के लिए गुरुकुल को आर्य जनता की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं रही, और उसके कार्यकलाप से आर्यसमाज को सन्तोष है या नहीं इस बात की परवाह करने की भी उसे कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के पदाधिकारी उसके कार्यकलाप से सन्तुष्ट रहें, यही उसके लिए पर्याप्त था। इस दशा में यदि गुरुकुल आर्यसमाज से दूर हटता गया, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

पर यह भी तो सत्य है, कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा शिक्षा मन्त्रालय भी गुरुकुल काँगड़ी से यही अपेक्षा रखते हैं, कि वह वेद, संस्कृत, दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान (Indology) के उच्चतम अध्ययन एवं मौलिक शोध का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बने। वस्तुतः, गुरुकुल को यूनिवर्सिटी की स्थिति की संस्था भी इसी प्रयोजन से स्वीकार किया गया था। यदि इस क्षेत्र में अब तक गुरुकुल काँगड़ी ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है, तो क्या यह सम्भव नहीं है कि भविष्य में वह इस ओर विशेष ध्यान दे। वेदों के महत्त्व का प्रचार करने के लिए गत शताब्दी में आर्यसमाज ने बहुत कार्य किया है। पर वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, षड्दर्शनों और प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जो मन्तव्य प्रतिपादित किये हैं, सत्यासत्य का निष्पक्ष रूप से निर्णय करते हुए उनके निरूपण में उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन ऐसा कार्य है, जिससे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और आर्यसमाज समान रूप से सन्तोष अनुभव करेंगे। इसके लिए गुरुकुल को विशेष रूप से प्रयत्न करना चाहिये।

पर सामान्य शिक्षा देने वाली यूनिवर्सिटी के रूप में भी गुरुकुल का विकास इस ढंग से किया जा सकता है, जिससे कि वह वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के लिए उपयोगी हो सके। भारत में मुसलिम और हिन्दू यूनिवर्सिटियाँ विद्यमान हैं। मुसलिम यूनिवर्सिटी में उच्च स्तर तक सामान्य शिक्षा दी जाती है, और वहाँ इस्लामिक अध्ययन का संस्थान भी कायम है। यूनिवर्सिटी का वातावरण इस्लाम के आदर्शों व मान्यताओं के अनुरूप है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू धर्म की दृष्टि से यही दशा हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी की भी है। गत वर्षों में सिक्ख धर्म व संस्कृति के उच्चतम अध्ययन की व्यवस्था पंजाब की ऐसी यूनिवर्सिटियों में की गई है, जिनकी स्थापना सामान्य शिक्षा के लिए ही की गई थी। क्या यह सम्भव नहीं है, कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का विकास एक ऐसी आर्य या वैदिक यूनिवर्सिटी के रूप में किया जाए, जिसमें कि स्नातकोत्तर स्तर की सामान्य शिक्षा के साथ-साथ वेद-शास्त्र, संस्कृत तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान के उच्चतम अनुशीलन, अध्ययन व शोध की समुचित व्यवस्था हो और जिसका वातावरण वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के आदर्शों व मान्यताओं के अनुरूप हो। पर इस रूप में गुरुकुल का विकास उसी दशा में सम्भव है, जब कि देश-विदेश के आर्य विद्यार्थी वहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए आकर्षण अनुभव करें। इसके लिए यह आवश्यक होगा, कि गुरुकुलों में छात्रावासों की व्यवस्था की जाए। बाहर से आये हुए विद्यार्थियों को वहाँ निवास, भोजन आदि की सब सुविधाएँ प्राप्त हों, और छात्रावासों का जीवन आर्य मान्यताओं के अनुसार हो। न केवल भारत के विविध प्रदेशों के ही, अपितु विदेशों के मुसलिम विद्यार्थी भी अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते हैं, क्योंकि वहाँ का वातावरण इस्लाम के अनुरूप है और वहाँ निवास आदि की सब सुविधाएँ विद्यमान हैं। मुसलिम यूनिवर्सिटी विद्यार्थियों के लिए अलीगढ़ के स्थानीय निवासियों पर निर्भर नहीं करती। गुरुकुल काँगड़ी यूनिवर्सिटी को भी विद्यार्थियों के लिए हरिद्वार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। छात्रावासों की समुचित व्यवस्था, शिक्षा का उच्च स्तर तथा सदाचारमय धार्मिक वातावरण—ऐसे तत्त्व हैं जिनसे न केवल भारत के विविध प्रदेशों के ही, अपितु विदेशों के विद्यार्थी भी इस संस्था की ओर आकृष्ट हो सकते हैं।

जिस स्थान पर गुरुकुल काँगड़ी स्थित है, प्राकृतिक दृष्टि से वह अत्यन्त रमणीक है, उसका परिसर भव्य व सुविस्तीर्ण है, उसके पुस्तकालय में प्राचीन भारतीय वाङ्मय का उत्तम संग्रह है। उसे वेद-शास्त्रों के अनुशीलन और शोध का ऐसा केन्द्र बनाया जा सकता है, जिसके प्रति संसार भर के इन विषयों के विद्वान् आकृष्ट होने लगें। बौद्ध धर्म, इस्लाम, क्रिश्चिएनिटी आदि सब धर्मों के उच्चतम अध्ययन के केन्द्र संसार में विद्यमान हैं। असीरिया, मिस्र आदि की जो प्राचीन सभ्यताएँ नष्ट हो चुकी हैं, उनके धर्म, भाषा, लिपि व संस्कृति के अनुशीलन व शोध के लिए संस्थानों की सत्ता है। फिर क्या कारण है, जो वैदिक धर्म तथा प्राचीन आर्य संस्कृति के अनुशीलन व शोध का कोई केन्द्र न हो? गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना इसी प्रयोजन से की गयी थी। पर यह आवश्यक नहीं है, कि उसे वैदिक धर्म व संस्कृति के अनुशीलन का केन्द्र बनाने के लिए सामान्य शिक्षा देना वहाँ बन्द कर दिया जाए। वस्तुतः, नये ज्ञान-विज्ञान एवं विश्व की प्रमुख भाषाओं की शिक्षा वैदिक अध्ययन के लिए सहायक ही होगी। वेद-शास्त्रों के वास्तविक अभिप्राय को समझने के लिए 'बहुश्रुत' (बहुत-सी विद्याओं का ज्ञाता) होना बहुत उपयोगी है। महाभारत में ठीक ही कहा गया है, कि वेद 'अल्पश्रुत' से भय खाता है, क्योंकि वह उसके अभिप्राय को ठीक प्रकार से न समझ कर अर्थ का अनर्थ कर देता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबीसवाँ अध्याय

डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं से भिन्न अन्य आर्य स्कूल और कॉलिज

(१) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के स्कूल और कॉलिज

जिन कारणों से पंजाव का आर्यसमाज दो दलों में विभक्त हो गया था, और उनके दो पृथक् केन्द्रीय संगठन बन गये थे, उनमें एक शिक्षाविषयक कार्यकलाप एवं नीति के सम्वन्ध में मतभेद भी था। दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज के संचालक सामान्य शिक्षा के लिए शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना को आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी मानते थे। इसके विपरीत दूसरे पक्ष का मन्तव्य था, कि सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना आर्यसमाज का कार्य नहीं है। उसे शिक्षाविषयक अपने कार्यकलाप को केवल ऐसी संस्थाओं तक ही सीमित रखना चाहिये, जिनमें वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाये और जिन द्वारा वैदिक धर्म के उपदेशक तथा आर्यसमाज के पुरोहित तैयार किये जा सकें। इसीलिए इस दल द्वारा पहले 'उपदेशक पाठशाला' की स्थापना की गई, और फिर गुरुकुल की। शिक्षाविषयक मतभेद के कारण ही पंजाव के आर्यसमाजियों के ये दो दल 'कॉलिज पार्टी' और 'गुरुकुल पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। कॉलिज पार्टी के आर्यसमाजों का केन्द्रीय संगठन 'आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा' कहाता है, और गुरुकुल पार्टी का 'आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव'।

तीस साल के लगभग तक गुरुकुल पार्टी की आर्य प्रतिनिधि सभा ने सामान्य शिक्षा के लिए स्कूलों व कॉलिजों की स्थापना पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। शिक्षा-विषयक उसका सव कार्यकलाप प्रधानतया गुरुकुल काँगड़ी पर ही केन्द्रित रहा, यद्यपि यह संस्था भी केवल वेद-शास्त्रों की ही शिक्षा न देकर अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्यापन के लिए भी प्रवृत्त हुई, और इसका विकास भी एक ऐसे विश्वविद्यालय के रूप में होने लग गया, जहाँ प्राच्य और पाश्चात्य तथा प्राचीन और अर्वाचीन सब प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था थी। शिक्षाविषयक आर्यसमाज का कार्य केवल वेदशास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन और प्रचारक तैयार करने तक ही सीमित रहना चाहिये, गुरुकुल पार्टी के लोग भी इस विचार पर देर तक कायम नहीं रह सके। उन्होंने भी सामान्य शिक्षा के लिए स्कूल-कॉलिज स्थापित करने शुरू कर दिये, जिनकी संख्या पंजाव, हरयाणा और दिल्ली में अव २०० से भी अधिक है। निःसन्देह, यह उस विचारधारा की विजय है, जिसका अनुसरण कर दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना शुरू की गयी थी। गुरुकुल पार्टी के आर्यसमाजियों द्वारा ऐसा पहला स्कूल सन् १८८९ में 'लब्भूराम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वावा हाईस्कूल' नाम से जालन्धर में खोला गया था। उस समय तक पंजाब के आर्यसमाजों के दो पृथक् संगठन नहीं बने थे, पर शिक्षाविषयक नीति के सम्बन्ध में उनमें मतभेद प्रादुर्भूत होने शुरू हो गये थे। यद्यपि जालन्धर का यह स्कूल आर्यसमाजियों द्वारा खोला गया था, पर इसके प्रवन्ध में अन्य व्यक्तियों को भी ले लिया गया था, क्योंकि इसके संस्थापक आर्य, जो डी० ए० वी० विचारधारा के समर्थक न होकर दूसरे पक्ष के थे, यह मानते थे कि सामान्य शिक्षा देना केवल आर्यसमाज का कार्य न होकर सम्पूर्ण भारतीय जनता का काम है। एक मुसलमान सज्जन भी इस स्कूल की प्रवन्ध समिति के सदस्य थे। इसीलिए डी० ए० वी० विरोधी आर्यसमाजियों ने जो अन्य भी अनेक स्कूल अमृतसर आदि में बीसवीं सदी के प्रथम चरण तक के काल में स्थापित किये, उनके प्रवन्ध व संचालन में ऐसे लोगों का सहयोग भी प्राप्त किया गया, जो आर्यसमाज के सदस्य नहीं थे। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव (जो गुरुकुल पार्टी के आर्यसमाजों का संगठन था) के पदाधिकारियों ने अव यह कहना तो शुरू कर दिया था, कि ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ भी खोली जानी चाहिये, जिनके विद्यार्थी गुरुकुल पद्धति के छात्रावासों (आश्रमों) में रहते हों, पर जिनमें पढ़ाई सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार होती हो। पर अभी वे यह मानने को तैयार नहीं थे, कि डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों के ढंग की सामान्य शिक्षा देने वाली शिक्षण-संस्थाएँ खोलना भी आर्यसमाज का कार्य है। पर धीरे-धीरे इस स्थिति में भी परिवर्तन आ गया, और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की समर्थक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव की ओर से भी स्कूलों और कॉलिजों की स्थापना और संचालन किया जाने लगा।

मोगा के रायवहादुर डॉक्टर मथुरादास ने सन् १९१९ में अपने नगर में एक हाई स्कूल की स्थापना की थी, जिसमें १९२६ में इण्टरमीडियेट कक्षाएँ खोल दी गई थीं, और कुछ वर्ष वाद स्नातक स्तर की पढ़ाई शुरू हो गयी थी। इस संस्था का नाम डा० मथुरादास के नाम पर 'दयानन्द मथुरादास कॉलिज' रखा गया, और शीघ्र ही यह अपने क्षेत्र का प्रसिद्ध कॉलिज वन गया। कॉलिज का यह उद्देश्य निर्धारित किया गया था, कि आधुनिक शिक्षा देते हुए भी उसके विद्यार्थियों के जीवन को पुरातन आर्य आदर्शों और वैदिक धर्म की नैतिक मान्यताओं के अनुसार ढाला जाए। इसी प्रयोजन से उसमें छात्रावास की भी व्यवस्था की गयी थी। पहले इस संस्था का प्रवन्ध एक स्थानीय कमेटी द्वारा किया जाता था, पर सन् १९३० में वह आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव के सीधे प्रवन्ध में आ गई। वस्तुतः, इस समय तक गुरुकुल पार्टी की प्रतिनिधि सभा की शिक्षाविषयक नीति में वहुत परिवर्तन आ चुका था। उसके तत्त्वावधान में विद्यमान अनेक आर्यसमाजों तथा गुरुकुल पार्टी के अनेक आर्य सज्जनों द्वारा कई ऐसे स्कूल स्थापित किये जा चुके थे, जिनकी शिक्षा सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार थी। पर इनमें धर्मशिक्षा की पढ़ाई का भी प्रवन्ध किया जाता था। धर्मशिक्षा की पढ़ाई की इन स्कूलों में समुचित व्यवस्था हो, इसकी देखरेख का काम आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपने हाथों में ले लिया, और इसी प्रयोजन से उस द्वारा सन् १९२६ में 'पंजाव आर्यशिक्षा समिति' का गठन किया गया। इस समिति द्वारा जहाँ आर्यसमाज की पाठशालाओं और स्कूलों में धर्म की शिक्षा देने के लिए पाठविधि का निर्माण किया गया, वहाँ साथ ही यह यत्न भी किया गया कि गुरुकुल पार्टी की विविध शिक्षण-संस्थाओं (गुरुकुलों को छोड़कर) को एक संगठन में संगठित कर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाए और उन सब पर सभा का नियन्त्रण कायम हो। इसी प्रयत्न का यह परिणाम हुआ, कि सन् १९३२ तक १०६ ऐसी पाठशालाएँ व स्कूल आदि शिक्षण-संस्थाएँ प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध हो गयी थीं, जिनमें सरकार द्वारा मान्य पाठविधि के अनुसार शिक्षा दी जाती थी।

सन् १९३० के बाद गुरुकुल पार्टी की आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के प्रबन्ध व संचालन में बहुत-से स्कूलों तथा कॉलिजों की स्थापना हुई। इस समय तक गुरुकुल पार्टी के नेताओं ने भी यह भली-भाँति अनुभव कर लिया था, कि ऐसे आर्यसमाजी बहुत नहीं हैं जो अपने बच्चों को गुरुकुलों में पढ़ाने के लिए उद्यत हों। सभा के पदाधिकारियों तथा नेताओं में भी बहुत कम ऐसे थे, जिन्होंने अपने बच्चे गुरुकुलों में प्रविष्ट कराये थे। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली क्यों अधिक लोकप्रिय नहीं हुई, इस पर हमें यहाँ विचार नहीं करना है। पर यह स्पष्ट है, कि गुरुकुल पार्टी के आर्य परिवारों के बहुसंख्यक बच्चे ऐसे स्कूलों में ही शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जिन्हें सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त थी। उस ढंग की शिक्षा की बहुत माँग थी, अतः आर्य प्रतिनिधि सभा ने भी यह आवश्यक व उपयोगी समझा कि डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के ढंग के स्कूल-कॉलिज खोले जाएँ और उनका संचालन व नियन्त्रण सभा द्वारा गठित पंजाब आर्यशिक्षा समिति के हाथों में रहे। इन स्कूलों का एक लाभ यह भी था, कि मुसलमान व ईसाई सदृश अन्य धर्मावलम्बी बच्चों को भी इन द्वारा वैदिक धर्म के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त होता था, और उन्हें आर्यसमाज के उदात्त मन्तव्यों से प्रभावित किया जा सकता था। सन् १९३९-४० में आर्य हाईस्कूल, लुधियाना में १६२२ विद्यार्थी थे। इनमें से १७१ मुसलमान, ३ ईसाई और २८८ सिक्ख थे। छात्रावास में रहने वाले ९० विद्यार्थियों में भी ५ मुसलमान और ४५ सिक्ख थे। आर्य हाईस्कूल में पढ़ने के कारण ये सब भी वैदिक धर्म की शिक्षाओं के सम्पर्क में आते थे, और आर्यसमाज से प्रभावित होते थे। यही दशा अन्य आर्य स्कूलों और कॉलिजों की भी थी।

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब द्वारा नियन्त्रित व संचालित बहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ उन प्रदेशों में स्थित थीं, जो भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप अब पाकिस्तान में हैं। इनमें आर्य हाईस्कूल भूपालवोल (सियालकोट), के० सी० आर्य हाईस्कूल सियालकोट, एस० ए० एस० स्कूल तौंसा (डेरा गाजीखाँ), आर्य संस्कृत पाठशाला अलीपुर (मुजफ्फरगढ़), आर्य महिला विद्यालय रावलपिण्डी, श्रीमती लक्ष्मीदेवी आर्य पुत्री पाठशाला भेरा, पुत्री पाठशाला कमालिया, आर्य पुत्री पाठशाला पाकपटन, आर्य महाविद्यालय जामपुर, आर्य कन्या पाठशाला डेरा इस्माईल खाँ, कन्या पाठशाला नौशहरा, आर्य कन्या पाठशाला कैमलपुर, आर्य हाईस्कूल उकाड़ा, पुत्री पाठशाला मुलतान और भरांवादेवी वैदिक पुत्री पाठशाला पिण्डी भट्टियाँ आदि उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः, सन् १९४७ से पहले जो शिक्षण-संस्थाएँ आर्य प्रतिनिधि सभा की शिक्षा समिति के अधीन थीं, उनमें कन्या पाठशालाओं की संख्या अधिक थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती स्त्रीशिक्षा के प्रबल पक्षपाती थे। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आर्यसमाजियों ने बहुत-से नगरों व कस्बों में पुत्री पाठशालाएँ स्थापित की थीं, और उनमें धर्मशिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया था। ये पाठशालाएँ प्रायः आर्यसमाज के मन्दिरों के साथ ही स्थापित थीं, और स्थानीय आर्यसमाजों द्वारा ही इनका प्रबन्ध किया जाता था। सन् १९४७ तक पूर्वी पंजाब, हरयाणा, हिमाचलप्रदेश और दिल्ली (जो सब पहले आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के क्षेत्र में थे) में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अनेक ऐसे स्कूलों और कॉलिजों की स्थापना हुई, जिनमें सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पाठविधि के अनुसार शिक्षा दी जाती थी और जो 'पंजाव आर्यशिक्षा समिति' के साथ सम्बद्ध थे। इनमें एक आर्य मेडिकल स्कूल भी था, जो लुधियाना में स्थित था। इसकी स्थापना सन् १९३४ में डाक्टर वी० डी० सोनी द्वारा की गयी थी। पहले डा० सोनी ही इसका प्रबन्ध करते रहे, पर उनकी मृत्यु के पश्चात् आर्य हाईस्कूल लुधियाना की प्रवन्ध कर्त्री सभा द्वारा इसकी व्यवस्था की जाने लगी, और वाद में यह आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के हाथों में आ गया। पाश्चात्य चिकित्सा की शिक्षा देने वाले एक स्कूल का संचालन अपने तत्त्वावधान में ले लेना गुरुकुल पार्टी के आर्यसमाज के लिए एक महत्त्व की वात थी।

सन् १९७६ में आर्य प्रतिनिधि सभा के त्रिविभाजन के परिणामस्वरूप हरयाणा राज्य तथा दिल्ली के संघ-क्षेत्र में पृथक् प्रतिनिधि सभाएँ स्थापित हुईं, और पंजाव सभा का अधिकार क्षेत्र केवल पंजाव राज्य तक सीमित रह गया। वर्तमान समय में ११ कॉलिज तथा ४३ हाई व हायर सैकेण्डरी स्कूल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव के साथ सम्वद्ध हैं, और उन पर सभा का नियन्त्रण विद्यमान है। आर्य शिक्षा समिति से सम्वद्ध कॉलिजों में दयानन्द मथुरादास कॉलिज, मोगा प्रमुख है। इसका परिचय ऊपर दिया जा चुका है। मोगा में ही दयानन्द मथुरादास कॉलिज फॉर एजुकेशन भी है। इसकी स्थापना सन् १९५९ में हुई थी, और उसकी वी० एड० कक्षाओं में अव दो सौ से अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। पंजाव में दीनानगर, नवांशहर और लुधियाना तीन अन्य नगर हैं, जहाँ आर्य शिक्षा समिति के साथ सम्वद्ध अनेक कॉलिज विद्यमान हैं। दीनानगर में स्वामी स्वतन्त्रानन्द डिग्री कॉलिज (१९७३ में स्थापित) और शान्तिदेवी आर्य महिला कॉलिज (१९६५ में स्थापित) हैं, और नवांशहर में वी० आई० एम० गर्ल्स कॉलिज (१९५९ में स्थापित), आर० के० आर्य कॉलिज (१९५२ में स्थापित) और दयानन्द अमरनाथ ट्रेनिंग कॉलिज (१९५९ में स्थापित) हैं। लुधियाना में आर्य कॉलिज (१९४६ में स्थापित) है, और उसी जिले के रायकोट नगर में स्वामी गंगागिरि जनता महिला कॉलिज है। वरनाला और नूरमहल में भी महिलाओं की उच्च शिक्षा के लिए दो आर्य कॉलिज हैं। पंजाव के प्रायः सभी जिलों में ऐसे आर्य स्कूलों की सत्ता है, जो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव की शिक्षा समिति से सम्वद्ध हैं। इनके अतिरिक्त कितनी ही पाठशालाएँ, मिडल स्कूल तथा प्राइमरी स्कूल पंजाव के ऐसे आर्यसमाजों के प्रबन्ध में विद्यमान हैं, जिनका सम्वन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ है। इस प्रकार अब पंजाब के आर्यसमाजियों की गुरुकुल पार्टी नाम की ही गुरुकुल पार्टी रह गयी है। उसके अधीन गुरुकुल पंजाव में केवल एक ही है, पर स्कूल और कॉलिज सौ से भी अधिक हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अव आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य प्रादेशिक सभा (कॉलिज पार्टी) में विशेष अन्तर नहीं रह गया है।

पर डी० ए० वी० स्कूलों और कॉलिजों से भिन्न पंजाव में अन्य भी अनेक ऐसे आर्य स्कूल तथा कॉलिज विद्यमान हैं, जो आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्वद्ध नहीं हैं। इनमें जालन्धर का दोआवा कॉलिज विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है, और विद्यार्थियों की संख्या २००० के लगभग है। इसका प्रवन्ध स्थानीय आर्यसमाजियों की एक प्रवन्ध-सभा के अधीन है। वालकों और वालिकाओं के अनेक स्कूल भी इस सभा द्वारा चलाये जा रहे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश द्वारा संचालित स्कूल और कॉलिज

सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करना आर्यसमाज का कार्य है या नहीं, और आर्यसमाज के शिक्षाविषयक कार्यकलाप का क्या स्वरूप होना चाहिये, इस प्रश्न पर जिस प्रकार का उग्र मतभेद पंजाब के आर्यसमाजियों में हुआ, वैसा किसी अन्य प्रदेश में नहीं हुआ। विहार, उत्तरप्रदेश आदि के आर्य नेता जहाँ गुरुकुलों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहे, वहाँ साथ ही वैदिक धर्म के वातावरण में सामान्य शिक्षा देने के लिए पाठशालाओं, स्कूलों और कॉलिजों को स्थापित करने पर भी उन्होंने ध्यान दिया। इसीका यह परिणाम है, कि उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान व प्रबन्ध में जैसे गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन चल रहा है, वैसे ही कितने ही डी० ए० वी० स्कूल व कॉलिज तथा अन्य शिक्षण-संस्थाएँ उसके अधीन विद्यमान हैं। यही दशा विहार आदि की आर्य प्रतिनिधि सभाओं की भी है। इन प्रान्तों में शिक्षा की नीति के प्रश्न को लेकर कोई दलवन्दी नहीं हुई, और एक ही केन्द्रीय संगठन (शिक्षासमिति या विद्यार्य सभा) के अधीन गुरुकुलों, डी० ए० वी० संस्थाओं तथा अन्य आर्य स्कूलों व कॉलिजों का संचालन व विकास होता रहा।

संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) में जो वहुत-से आर्य स्कूल और कॉलिज विद्यमान हैं, उनकी स्थापना प्रायशः स्थानीय आर्यसमाजों या आर्य नर-नारियों के प्रयत्न से हुई है। उनके प्रवन्ध व संचालन के लिए स्थानीय कमेटियाँ संगठित की गई थीं, पर उन पर आर्य प्रतिनिधि सभा का कुछ सामान्य-सा नियन्त्रण भी विद्यमान था। यह आवश्यक व उपयोगी समझा गया, कि इन शिक्षण-संस्थाओं को वास्तविक रूप से आर्यसमाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक वनाने के प्रयोजन से उन सवमें धर्मशिक्षा की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था की जाये और उन पर ऐसा नियन्त्रण भी रखा जाये, जिससे कि उनका वातावरण व गतिविधि वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के अनुरूप रहे। इसी वात को दृष्टि में रखकर सन् १९६८ में प्रदेशीय विद्यार्य सभा का गठन किया गया, और यह निश्चय किया गया कि आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश के शिक्षाविषयक सव कार्यकलाप एवं अधिकार इस सभा में निहित कर दिये जायें। सन् १९६८ में जव प्रदेशीय विद्यार्य सभा का गठन हुआ, तो १३८ शिक्षण-संस्थाएँ इस सभा से सम्वद्ध हुईं। चार साल के स्वल्प काल में इन संस्थाओं की संख्या वढ़कर १४७ हो गई, और अव उनकी संख्या १५० के ऊपर हो चुकी हैं। १९७२ में विद्यार्यसभा से सम्वद्ध शिक्षण-संस्थाओं में तीन गुरुकुल, चार संस्कृत विद्यालय, १० डिग्री कॉलिज, २५ हाईस्कूल, १९ जूनियर स्कूल, ७२ इण्टर कॉलिज, १० प्राइमरी पाठशालाएँ और ४ अन्य संस्थाएँ थीं। इन शिक्षण-संस्थाओं में मुजफ्फरनगर और वुलन्दशहर आदि के स्नातकोत्तर स्तर के डी० ए० वी० कॉलिज भी हैं, और वरेली, फर्रुखावाद आदि के कन्या महाविद्यालय डिग्री कॉलिज भी। इन सव पर विद्यार्य सभा का नियन्त्रण प्रधानतया इस दृष्टि से है कि इनमें धर्मशिक्षा की व्यवस्था समुचित रूप से रहे। वैसे तो आर्यसमाजों व आर्य नर-नारियों ने जो भी शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित कीं, उन सवमें प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में धर्म की शिक्षा देने का प्रवन्ध किया जाता रहा है, पर यह आवश्यकता अनुभव की गई कि सर्वत्र धर्मशिक्षा की एक ही पाठविधि होनी चाहिये और उसके लिए पुस्तकें भी सर्वत्र एक सदृश होनी चाहिये। इसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजन से धर्मशिक्षा की धर्मप्रवेशिका, धर्मभूषण और धर्माधिकारी परीक्षाएँ निर्धारित की गईं। सातवीं, नवीं और ग्यारहवीं कक्षाओं के विद्यार्थी क्रमश: इन परीक्षाओं में बैठते हैं। इन संस्थाओं में जो विद्यार्थी धर्म की शिक्षा प्राप्त कर इन परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं, उनकी संख्या हजारों में है। सन् १९७२ में ५८७१ विद्यार्थियों ने ये परीक्षाएँ दी थीं। प्रदेशीय विद्यार्य सभा द्वारा ही ये परीक्षाएँ ली जाती हैं, और उन विद्यार्थियों को पुरस्कार भी प्रदान किये जाते हैं, जिन्होंने इनमें उच्च स्थान प्राप्त किये हों। स्कूलों व कॉलिजों में जो शिक्षक अध्यापन के लिए नियुक्त किये जाते हैं, वे अपने-अपने विषय में चाहे योग्य क्यों न हों, पर उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे धर्म की शिक्षा भी दे सकें, और केवल धर्मशिक्षा के लिए पृथक् रूप से अध्यापकों को रख सकना आर्थिक साधनों की कमी के कारण सब संस्थाओं के लिए सम्भव नहीं होता, अत: विद्यार्य सभा की ओर से समय-समय पर धर्मशिक्षा-प्रशिक्षण-शिविरों का आयोजन किया जाता है, जिनमें अध्यापकों को वैदिक धर्म के सिद्धान्तों तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप से अवगत कराया जाता है। इस प्रकार धर्मशिक्षा में प्रशिक्षित हो जाने पर ये अपनी-अपनी संस्था में धर्म की शिक्षा देने के योग्य हो जाते हैं। वैदिक धर्म और आर्यसमाज की दृष्टि से आर्य शिक्षण-संस्थाओं में क्या त्रुटियाँ हैं, उनकी क्या समस्याएँ हैं, त्रुटियों को कैसे दूर किया जा सकता है और शिक्षण-संस्थाओं को आर्यसमाज के लिए किस प्रकार अधिक उपयोगी व सशक्त बना सकना सम्भव है—इन बातों पर विचार-विमर्श करने के लिए समय-समय पर विद्यार्य सभा द्वारा आर्य शिक्षा सम्मेलनों का भी आयोजन किया जाता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश की विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध जो डी०ए०वी० शिक्षण-संस्थाएँ हैं, उनका परिचय पिछले एक अध्याय में दिया जा चुका है। अन्य जो बहुत-से स्कूल और कॉलिज उसके साथ सम्बद्ध हैं, उनमें से कुछ का यहाँ इस दृष्टि से परिचय दिया जा रहा है, ताकि उत्तरप्रदेश में आर्यसमाज के कार्यकलाप का कुछ परिज्ञान हो सके। आगरा के **नारायणदास छज्जूमल वैदिक इण्टर कॉलिज** की स्थापना सन् १९४० में हुई थी। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार छठी से बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई की इस कॉलिज में व्यवस्था है। विद्यार्थियों की संख्या १५०० के लगभग है, धर्मशिक्षा नियमित रूप से दी जाती है, जिसके लिए एक घण्टा (पीरियड) नियत है। कक्षा वार दैनिक यज्ञ भी होता है, और एक सुन्दर यज्ञशाला भी कॉलिज के परिसर में विद्यमान है। पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ८,००० से अधिक है। चारों वेद और महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित सब ग्रन्थ कॉलिज के पुस्तकालय में हैं। **श्री केदारनाथ सेकसरिया आर्य कन्या इण्टर कॉलिज, आगरा** सन् १९५२ में स्थापित हुआ था। पहली से बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई वहाँ होती है। छात्राओं की संख्या २,००० के लगभग है। कॉलिज में दैनिक सन्ध्या-हवन होता है, और धर्मशिक्षा के लिए एक पीरियड नियत है। विद्यार्य सभा द्वारा संचालित धर्मशिक्षा परीक्षाओं में इस संस्था की छात्राएँ सम्मिलित होती हैं। **अविनाशी सहाय आर्य इण्टर कॉलिज, एटा** की स्थापना सन् १९४२ में हुई थी। इसमें १,५०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। प्रतिदिन १५ मिनट धर्म की शिक्षा दी जाती है, और समय-समय पर सन्ध्या-हवन का आयोजन भी किया जाता है। आर्यसमाज शिक्षा सभा अजमेर द्वारा धर्मशिक्षा की जो पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं, उन द्वारा धर्म की शिक्षा दी जाती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और उसी की धर्मशिक्षा-परीक्षाओं में विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। **आर्य कन्या इण्टर कॉलिज गोविन्दनगर, कानपुर** की स्थापना सन् १९५९ में श्री देवीदास आर्य द्वारा की गयी थी। माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तरप्रदेश द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार वहाँ शिक्षा की व्यवस्था है। छात्राओं की संख्या २००० के लगभग है। धर्मशिक्षा नियमित रूप से दी जाती है, और इसके लिए एक पृथक् अध्यापिका नियुक्त है। हवन प्रतिदिन होता है, और सब वैदिक पर्व विधिवत् मनाये जाते हैं। **आर्य कन्या हायर सैकेण्डरी स्कूल, पीलीभीत** सन् १९०५ में स्थापित हुआ था। छात्राओं की संख्या ८०० के लगभग है। विद्यार्य सभा द्वारा निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों द्वारा सबको प्रतिदिन धर्मशिक्षा दी जाती है। शनिवार को यज्ञ व धार्मिक प्रवचन का विशेष कार्यक्रम भी होता है। **बदायूँ का पार्वती आर्य कन्या संस्कृत इण्टर कॉलिज** सन् १९०६ में श्री संकटमल की पत्नी श्रीमती पार्वतीदेवी द्वारा स्थापित किया गया था। इसमें १२०० के लगभग बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। संस्कृत भाषा तथा वैदिक धर्म की शिक्षा का इस संस्था में विशेष स्थान है। एक घण्टा (पीरियड) प्रतिदिन धर्मशिक्षा को दिया जाता है, और यज्ञ प्रति सप्ताह होता है। **बरेली का कन्या महाविद्यालय डिग्री कॉलिज** सन् १९६० में आर्यसमाज भूड़ द्वारा स्थापित किया गया था। इसमें छात्राओं की संख्या ५०० के लगभग है। भूड़, बरेली में आर्यसमाज की एक अन्य शिक्षण-संस्था **महावीरप्रसाद सक्सेना हायर सैकेण्डरी स्कूल** है, जिसमें १००० से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। धर्मशिक्षा की इसमें समुचित व्यवस्था है, और हवन भी किया जाता है। **बरेली के सुभाषनगर क्षेत्र में आर्यपुत्री इण्टर कॉलिज** है, जिसका संचालन आर्यसमाज सुभाषनगर के हाथों में है। छात्राओं की संख्या १,००० से अधिक है। विद्यार्य सभा द्वारा निर्धारित पाठविधि के अनुसार सप्ताह में तीन दिन धर्म की शिक्षा दी जाती है, और शनिवार को यज्ञ किया जाता है। सभा की धर्मशिक्षा-परीक्षाओं में इस कॉलिज की छात्राएँ सम्मिलित होती हैं। वस्ती जिले में **कलवारी** नामक कस्बे में **झिनकूलाल इण्टर कॉलिज** है, जिसे सन् १९५० में श्री हरिचरणसिंह द्वारा स्थापित किया गया था। इसमें विद्यार्थियों की संख्या १२०० के लगभग है। प्रति सप्ताह मंगलवार को कॉलिज में यज्ञ होता है, और शनिवार को धर्म की शिक्षा दी जाती है। पाठविधि के अन्य विषयों के समान धर्मशिक्षा की भी त्रैमासिक और षाण्मासिक परीक्षाएँ ली जाती हैं। **नजीबाबाद का आर्य कन्या इण्टर कॉलिज** वहाँ के आर्यसमाज द्वारा सन् १९०१ में स्थापित किया गया था। इसमें छात्राओं की संख्या १००० से अधिक है, और यह अपने क्षेत्र की सबसे पुरानी तथा लब्धप्रतिष्ठ शिक्षण-संस्था है। नजीबाबाद आर्य-समाज की विशाल इमारत में यह कॉलिज स्थित है, जहाँ इसके लिए सब विद्यालय-कक्ष आदि विद्यमान हैं। विद्यार्य सभा द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार धर्म की शिक्षा भी वहाँ दी जाती है।

उत्तरप्रदेश में बहुत-सी ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिनकी स्थापना स्थानीय आर्य-समाजों या कतिपय आर्य सज्जनों द्वारा की गयी थी, जो कुछ समय तक आर्यसमाज के प्रबन्ध में भी रहीं, पर बाद में जिनका आर्यसमाज से या तो कोई सम्बन्ध नहीं रहा, और या नाममात्र का ही सम्बन्ध रह गया। उदाहरण के लिए ऐसी दो संस्थाएँ मसूरी गर्ल्स इण्टर कॉलिज, मसूरी और रमादेवी नारायणदास भार्गव इण्टर कॉलिज, मसूरी हैं। मसूरी गर्ल्स इण्टर कॉलिज वहाँ के आर्यसमाज द्वारा स्थापित किया गया था। चिर काल तक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका प्रबन्ध व संचालन मसूरी आर्यसमाज के हाथों में रहा। पर उसके लिए स्थानीय नगरपालिका द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी, जिसके कारण उसके भी कुछ प्रतिनिधि कॉलिज की प्रबन्ध-समिति में रहा करते थे। शिक्षा के वढ़ते हुए खर्च के कारण आर्यसमाज के लिए यह सम्भव नहीं रहा कि वह चन्दे द्वारा इस संस्था का सब खर्च चला सके। अतः विवश हो कर इसे मसूरी नगरपालिका के सुपुर्द कर दिया गया, और अब वही इसकी व्यवस्था करती है, यद्यपि आर्यसमाज के भी कुछ प्रतिनिधि इसकी प्रवन्ध-समिति में रहते हैं। अब इसका स्वरूप एक म्युनिसिपल संस्था का हो गया है, और इस पर आर्य-समाज का कोई भी प्रभाव शेष नहीं रहा है। पहले इस कॉलिज की अध्यापिकाएँ और छात्राएँ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर नगरकीर्तन में सम्मिलित हुआ करती थीं, समय-समय पर हवन व धार्मिक प्रवचन भी वहाँ हुआ करते थे और यह भी ध्यान रखा जाता था कि ऐसी ही अध्यापिकाएँ वहाँ नियुक्त की जाएँ जो आर्यसमाजी विचारों की हों। पर अब यह कुछ नहीं रहा है, और आर्यसमाज ने जो धन इसकी इमारतों आदि पर व्यय किया था और इसकी स्थापना व विकास के लिए जो श्रम किया था, वैदिक धर्म की दृष्टि से वह सब अब व्यर्थ हो गया है। रमादेवी नारायणदास कॉलिज की स्थापना देहरादून के श्री नारायणदास भार्गव के दान द्वारा हुई थी। श्री भार्गव कट्टर आर्यसमाजी थे, और मसूरी के कतिपय आर्य सज्जनों की प्रेरणा से ही उन्होंने यह कॉलिज स्थापित किया था। प्रारम्भ में इसकी प्रवन्ध-समिति में भी आर्यसमाजियों की प्रधानता थी। पर अब यह दशा नहीं रह गयी है, और इस संस्था द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार एवं आर्यसमाज के कार्यकलाप में कोई सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गाजियाबाद का कन्या वैदिक विद्यालय पहले एक आर्य शिक्षणालय था। शुरू में उसका नाम भी 'आर्य पुत्री पाठशाला' था, और यह पाठशाला आर्यसमाज मन्दिर में ही स्थित थी। सन् १९२६ में आर्यसमाज के कुछ कार्यकर्ताओं के प्रयास से कुछ भूमि इस संस्था के लिए नगरपालिका से प्राप्त कर ली गई, और आर्यसमाज मन्दिर के समीप ही इसे अपने पृथक् स्थान पर 'कन्या वैदिक विद्यालय' के नाम से स्थापित कर दिया गया। इस विद्यालय के प्रारम्भिक संचालक कट्टर आर्यसमाजी थे, और इसकी प्रायः सभी अध्यापिकाएँ भी वैदिक धर्म में आस्था रखती थीं। सन्ध्या-हवन भी वहाँ हुआ करता था, और समय-समय पर आर्य विद्वान् धार्मिक विषयों पर प्रवचन करने के लिए भी निमन्त्रित किये जाते थे। पर अब यह दशा नहीं रही है। इस विद्यालय में छात्राओं की संख्या ३,००० के लगभग है, पर उन्हें वैदिक धर्म से परिचित कराने के लिए कोई प्रयत्न आज कल नहीं किया जाता। गाजियाबाद की शिक्षण-संस्थाओं में शम्भूदयाल कॉलिज स्नातकोत्तर स्तर का एक महत्त्वपूर्ण कॉलिज है, जिसमें २००० के लगभग विद्यार्थी हैं। इसकी स्थापना राय साहब शम्भूदयाल द्वारा की गयी थी। वह और उनके सहयोगी वैदिक धर्म के अनुयायी थे, और आर्यसमाज के कार्यकलाप में योगदान दिया करते थे। इस संस्था में हाईस्कूल और इण्टर स्तर तक की भी पढ़ाई होती है। इसका प्रारम्भ एक हाईस्कूल के रूप में ही हुआ था, पर धीरे-धीरे यह एक स्नातकोत्तर कॉलिज के रूप में विकसित हो गया। इसके स्कूल विभाग में भी कई हजार विद्यार्थी हैं, और यह एक वहुत वड़ी शिक्षण-संस्था है। पहले इसमें एक छात्रावास भी था, जिसका नाम 'वैदिक आश्रम' था। यज्ञशाला भी वहाँ वनी हुई थी। छात्रावास में दैनिक सन्ध्या-हवन होता था। विद्यार्थियों को आर्य कुमार सभा का सदस्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनने के लिए प्रेरित किया जाता था, जिससे इस संस्था द्वारा आर्यसमाज के कार्यकलाप में महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता था। पर अब यह सब नहीं रहा है। न वहाँ छात्रावास है, और न सन्ध्या-हवन ही होता है। आर्यसमाज की दृष्टि से अब इस विशाल शिक्षण-संस्था में कोई धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार के अन्य भी कितने ही स्कूल और कॉलिज इस समय उत्तरप्रदेश में हैं, जिनकी स्थापना आर्यसमाज या आर्यसमाजियों द्वारा की गयी थी, पर अब जिनका आर्यसमाज के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रह गया है।

वर्तमान समय में उत्तरप्रदेश की जिन शिक्षण-संस्थाओं (स्कूलों व कॉलिजों) का आर्यसमाज के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, जो आर्य प्रतिनिधि सभा की विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध हैं, या जिनका प्रवन्ध स्थानीय आर्यसमाजों व ऐसी प्रवन्ध-समितियों के हाथ में है जिनमें आर्यसमाजियों का प्रधान स्थान है, उनकी संख्या ३५० के लगभग है। इनमें २८ स्नातक स्तर व स्नातकोत्तर स्तर के कॉलिज हैं, १५० हायर सैकेण्डरी स्कूल व इण्टर कॉलिज हैं, और १६० के लगभग सैकेण्डरी व प्राइमरी स्कूल हैं। प्राविधिक शिक्षण-संस्थाएँ, गुरुकुल, संस्कृत विद्यालय तथा ट्रेनिंग कॉलिज इनसे अलग हैं। इनको सम्मिलित कर देने पर उत्तरप्रदेश की आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या ५०० के लगभग हो जाती है। पर इस संख्या को भी पूरा नहीं कहा जा सकता। आर्य शिक्षण-संस्थाओं की जो सूचियाँ अब तक प्रकाशित हुई हैं, यह संख्या उन्हीं के अनुसार है। पर इनके अतिरिक्त भी उत्तर-प्रदेश में अनेक आर्य शिक्षणालय हैं, यथा हलदौर (विजनौर) का चन्द्रमणि देवनागरी इण्टर कॉलिज, जिसके संस्थापक विजनौर जिले के प्रसिद्ध आर्यसमाजी श्री हीरालाल थे, और जिसका प्रवन्ध व संचालन शुरू से ही आर्य सज्जनों के हाथों में रहा है। इसी प्रकार की संस्था गुन्नौर (जिला बदायूँ) का दयानन्द आर्य वैदिक विद्यालय है, जो सन् १९५६ से जनता विद्यालय के नाम से स्थापित हुआ था। इसकी स्थापना में हिन्दू और मुसलमान—दोनों का हाथ था। पर वाद में इन सम्प्रदायों के लोगों में मन-मुटाव हो जाने के कारण यह संस्था टूटने वाली थी, कि सन् १९७२ में गुन्नौर आर्यसमाज के कर्मठ व उत्साही मन्त्री श्री नरेन्द्रप्रकाश शर्मा ने उसे टूटने से बचाया, और दयानन्द आर्य वैदिक विद्यालय के नाम से उसे पुनः स्थापित किया। तब से यह संस्था पूर्णतया आर्यसमाज के प्रवन्ध में है। इसी प्रकार के कितने ही अन्य स्कूल हैं, जो यथार्थ में आर्यसमाजों व आर्य नर-नारियों द्वारा संचालित हैं। वस्तुतः, उत्तरप्रदेश में आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या इस समय ६०० से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

(३) बिहार के आर्य स्कूल और कॉलिज

गुरुकुलों और डी० ए० वी० स्कूलों व कॉलिजों के अतिरिक्त अन्य भी वहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ बिहार में हैं, जिनका सम्वन्ध वहाँ की आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ है। सन् १९७८ में इस राज्य की आर्य शिक्षण-संस्थाओं (प्रतिनिधि सभा के साथ सम्वद्ध) की संख्या इस प्रकार थी—गुरुकुल ८, स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के कॉलिज २, वालकों के हाईस्कूल १४, बालिकाओं के हाईस्कूल ११, वालकों के मिडल स्कूल १७, बालिकाओं के मिडल स्कूल १४, अपर प्राइमरी स्कूल २७ और संस्कृत विद्यालय ६। इस प्रकार कुल ९९ ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ बिहार में अब से पाँच वर्ष पूर्व विद्यमान थीं, जिन पर आर्य प्रतिनिधि सभा का नियन्त्रण था। अब यह संख्या ११५ के लगभग हो गयी है, और अन्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेशों के समान विहार में भी शिक्षा के विस्तार पर आर्यसमाज द्वारा समुचित ध्यान दिया जा रहा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन काल में जो अनेक संस्कृत विद्यालय और पाठशालाएँ उन द्वारा या उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित की गई थीं, वे देर तक कायम नहीं रह सकी थीं। वर्तमान समय में जो वहुत-से गुरुकुल, डी० ए० वी० स्कूल और कॉलिज तथा अन्य शिक्षण-संस्थाएँ आर्यसमाज के तत्त्वावधान में विद्यमान हैं, उनकी स्थापना महर्षि के देहावसान के पश्चात् ही हुई थी। पर दानापुर (विहार) की एक संस्था इसका अपवाद है। महर्षि के अनुयायी एवं परम भक्त बाबू माधोलाल और बाबू जनकधारी-लाल ने सन् १८७९ में आर्य संस्कृत पाठशाला की स्थापना दानापुर में की थी। उससे एक साल पूर्व सन् १८७८ में वहाँ आर्यसमाज स्थापित हो चुका था। पाठशाला की स्थापना के विषय में श्री माधोलाल का महर्षि से पत्र-व्यवहार भी हुआ था, और वस्तुतः उन्हीं की प्रेरणा से दानापुर में इस पाठशाला का प्रारम्भ किया गया था। नवम्बर, सन् १८७९ में महर्षि स्वयं भी दानापुर में विद्यमान थे। आर्य संस्कृत पाठशाला का संचालन दानापुर के आर्यसमाज द्वारा किया जाता रहा, और समयान्तर में यह संस्था एक स्कूल के रूप में परिवर्तित हो गई। सन् १९१६ में उसे कलकत्ता यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध कर दिया गया और महर्षि की जन्म शताब्दी के अवसर पर सन् १९२४ में उसे डी० ए० वी० हाई-स्कूल नाम दे दिया गया। इस प्रकार दानापुर की इस शिक्षण-संस्था को ही यह गौरव प्राप्त है, कि महर्षि के जीवन काल में स्थापित हुए विविध शिक्षणालयों में वही एक ऐसी है, जो एक सदी वीत जाने पर अब तक भी फूल-फल रही है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की विद्यापरिषद् और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश की विद्यार्य सभा के समान आर्य प्रतिनिधि सभा विहार द्वारा भी एक शिक्षा-समिति संगठित है, जो अपने प्रदेश की आर्य शिक्षण-संस्थाओं की व्यवस्था करती है। अपने क्षेत्र में नये स्कूलों आदि की स्थापना के विषय में भी इस समिति द्वारा विचार किया जाता है। उत्तरप्रदेश के समान विहार में भी आर्यसमाज की शिक्षाविषयक नीति के सम्बन्ध में दलवन्दी का अभाव है, और एक ही सभा गुरुकुलों, संस्कृत विद्यालयों, स्कूलों तथा कॉलिजों का संचालन कर रही है।

(४) आन्ध्र प्रदेश के स्कूल और कॉलिज

भारत के मध्य-दक्षिण क्षेत्र के आर्यसमाजों के संगठन का केन्द्र हैदराबाद (आन्ध्र) है। इस संगठन (आर्य प्रतिनिधि सभा) द्वारा भी एक विद्यार्य सभा का गठन इस उद्देश्य से किया गया है, ताकि अपने क्षेत्र में आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना, संचालन तथा व्यवस्था की जा सके। हैदराबाद में विद्यार्य सभा की स्थापना स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती द्वारा सन् १९५१ में की गई थी। प्रारम्भ में श्री विनायकराव विद्यालंकार इसके प्रधान थे। इस सभा के तत्त्वावधान में जो अनेक गुरुकुल चल रहे हैं, उनका परिचय यथा-स्थान दिया जा चुका है। अन्य महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्थाएँ निम्नलिखित हैं—

प्राच्य महाविद्यालय, नारायणगुडा—यह उस्मानिया यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध स्नातकोत्तर स्तर का कॉलिज है, जिसकी स्थापना अगस्त, १९५६ में हुई थी। इसमें सामान्य सायन्स, आर्ट्स एवं कामर्स विषयों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। केवल प्राच्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान (Oriental Learnings) की ही यहाँ पढ़ाई होती है, और उसकी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर विद्यार्थी बी० ओ० एल० और एम० ओ० एल० की डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं। धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण आदि का कोई भेद न कर इसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मों के छात्र-छात्राएँ विद्याध्ययन करते हैं। हिन्दी की शिक्षा का इस संस्था में समुचित प्रबन्ध है। अनुसूचित जातियों और अहिन्दी भाषी विद्यार्थियों को केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। महाविद्यालय के पुस्तकालय में १४,००० के लगभग पुस्तकें हैं, जिनमें ११,००० के लगभग हिन्दी और संस्कृत की हैं। शोधकार्य के लिए महाविद्यालय के अन्तर्गत 'राधाकृष्ण अनुसन्धान संस्था' विद्यमान है, जिससे 'प्राची' नामक शोध पत्रिका भी प्रकाशित होती है। इस संस्था द्वारा उच्च कोटि की अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित की गयी हैं।

हिन्दी महाविद्यालय, हैदराबाद—आन्ध्र प्रदेश का यह एकमात्र स्नातक स्तर का कॉलिज है, जिसमें हिन्दी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। इसकी स्थापना जुलाई, सन् १९६१ में श्री विनायकराव विद्यालंकार द्वारा की गयी थी। विनायकरावजी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक थे, और उनकी अपनी शिक्षा हिन्दी के माध्यम से हुई थी, यद्यपि उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। एक अहिन्दी भाषी राज्य में हिन्दी के माध्यम के कॉलिज की स्थापना अत्यन्त साहस की बात थी, पर श्री विनायकरावजी की लगन और उत्साह के कारण उनकी योजना सफल हुई। प्रारम्भ में केवल १७ छात्र-छात्राओं ने इस कॉलिज में प्रवेश लिया था, और इसे किराये के मकान में खोला गया था। पर अब इसमें ६०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और इसका अपना सुविस्तीर्ण परिसर है जिसमें कॉलिज के उपयुक्त भव्य भवन बने हुए हैं। आर्ट्स, सायन्स और कामर्स तीनों के विषयों की स्नातक स्तर की शिक्षा इस महाविद्यालय में दी जाती है, और यह उस्मानिया यूनिवर्सिटी के साथ सम्बद्ध है। इसमें केवल वही विद्यार्थी नहीं पढ़ते जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, अपितु तेलुगू, तमिल, कन्नड, सिन्धी, मराठी आदि भाषाएँ बोलने वाले विद्यार्थी भी वहाँ अच्छी संख्या में हैं। अहिन्दी भाषी प्राध्यापक भी वहाँ अध्यापन का कार्य कर रहे हैं, और वे हिन्दी के माध्यम से ही अध्यापन करते हैं।

केशव स्मारक आर्य विद्यालय—सन् १९३९ में हैदराबाद के निजामशाही शासन के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा किये गये संघर्ष (सत्याग्रह) में विजय के स्मारक रूप में इस विद्यालय की स्थापना सन् १९४० में पण्डित विनायकराव विद्यालंकार के प्रयत्न से हुई थी, और हैदराबाद के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री केशवराव (जो राज्य में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त थे) की पुण्य स्मृति में इसे 'केशव स्मारक आर्य विद्यालय' नाम दिया गया था। वर्तमान समय में इस संस्था में १२०० से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और अध्यापकों की संख्या ६० है। प्राथमिक विभाग में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, और मिडल तथा हाई कक्षाओं में हिन्दी के साथ-साथ तेलुगू भाषा को भी माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज की नैतिक मान्यताओं तथा आदर्शों से विद्यार्थियों को प्रभावित करने के लिए प्रति शनिवार यज्ञ तथा सत्संग का आयोजन किया जाता है, और स्कूल का प्रारम्भ प्रतिदिन ईशस्तुति तथा प्रार्थना के मन्त्रों के सामूहिक पाठ से होता है। विद्यालय के पुस्तकालय में दस हजार से भी अधिक पुस्तकें हैं।

नरेन्द्र आर्य विद्यालय, अर्पसिगा—आन्ध्र प्रदेश में अर्पसिगा एक छोटा-सा गाँव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिसकी आबादी ३,००० के लगभग है। सन् १९४९ में वहाँ आर्य सज्जनों द्वारा एक पाठशाला की स्थापना की गयी थी, जो धीरे-धीरे विकसित होती हुई अब ऐसी शिक्षण-संस्था बन गयी है जिसमें हाईस्कूल स्तर तक आर्ट्स और सायन्स के विविध विषयों की शिक्षा दी जाती है। अर्पासिगा के समीपवर्ती अन्य गाँवों के विद्यार्थी भी बड़ी संख्या में इसमें पढ़ने के लिए आते हैं। विद्यालय के साथ वसतिगृह (छात्रावास) भी है, जिसमें विद्यार्थियों के निवास व भोजन आदि की समुचित व्यवस्था है। भोजन का शुल्क बहुत कम लिया जाता है, और निर्धन विद्यार्थी निःशुल्क भी वहाँ निवास करते हैं। छात्रावास में विद्यार्थी अनुशासित जीवन व्यतीत करते है, और धार्मिक कृत्य भी सम्पन्न करते हैं।

माणिक स्मारक आर्य विद्यालय, हिंगोली—जनवरी, सन् १९५० में हिंगोली में एक आर्य पाठशाला की स्थापना की गयी थी, जो १९५३ में माणिक स्मारक आर्य विद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गई। इसके लिए श्री बाबूलाल राठौर ने अपने पिता श्री माणिकचन्द की स्मृति में ५०,००० रुपये दान दिया था। अब इस विद्यालय के तीन विभाग हैं, आर्य विद्यालय (प्राथमिक विभाग), आर्य कन्या विद्यालय (प्राथमिक विभाग) और आर्य विद्यालय (माध्यमिक विभाग)। शिक्षा का माध्यम हिन्दी और मराठी भाषाएँ हैं, और मैट्रिक्युलेशन स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है। धार्मिक शिक्षा को इस विद्यालय में समुचित महत्त्व दिया जाता है। अध्यापकों और विद्यार्थियों में घनिष्ठ सम्पर्क के लिए प्रति शनिवार हाईस्कूल कक्षाओं के छात्रों और अध्यापकों की सम्मिलित बैठक होती है, जिसमें विद्यालय की उन्नति तथा शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए परस्पर मिलकर विचार-विमर्श किया जाता है।

श्यामलाल स्मारक आर्य विद्यालय, उद्गीर—स्वतन्त्रता सेनानी अमर शहीद श्री भाई श्यामलाल की पुण्य स्मृति में इस विद्यालय की स्थापना १५ अगस्त, १९५० के दिन की गयी थी, और इसे पण्डित विनायकराव विद्यालंकार द्वारा स्थापित किया गया था। अब से ३३ साल पूर्व स्थापित यह संस्था अब एक महान् शिक्षणालय का रूप प्राप्त कर चुकी है, और आन्ध्र प्रदेश के मराठवाड़ा क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्यालयों में इसकी गिनती की जाती है। इस संस्था के अन्तर्गत श्यामार्य कन्या विद्यालय, शिवाजी विद्यालय और श्यामलाल प्राथमिक विद्यालय भी विद्यमान हैं। विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा भी इस विद्यालय में दी जाती है, और उनकी शारीरिक उन्नति के लिए 'अमृत व्यायामशाला' भी वहाँ है।

सिकन्दराबाद हिन्दी विद्यालय—यह संस्था सन् १९५२ में श्री रामरक्खा और पण्डित मनोहरलाल के पुरुषार्थ से स्थापित हुई थी। शुरू में इसमें केवल ९० विद्यार्थी थे, पर शिक्षा की सुव्यवस्था तथा वातावरण के उत्कृष्ट होने के कारण इसने बड़ी तेजी के साथ उन्नति की, और सन् १९६१ में इसके विद्यार्थियों की संख्या ७२७ हो गई, जो अब एक हजार के लगभग तक पहुँच चुकी है। हाईस्कूल स्तर तक के सब विषयों की इसमें पढ़ाई होती है, और शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा तेलुगू भाषाएँ हैं। विद्यालय का उद्देश्य विद्यार्थियों को धर्म-प्रेमी, देश-भक्त तथा सुयोग्य नागरिक बनाना है। इसीलिए वहाँ पढ़ाई का प्रारम्भ ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना के मन्त्रों के पाठ के साथ होता है, और समय-समय पर धार्मिक विषयों पर प्रवचन आदि का आयोजन किया जाता है। पहले इस संस्था में सहशिक्षा थी, पर क्योंकि सहशिक्षा आर्यसमाज की मान्यताओं के प्रतिकूल है, अतः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९५८ में कन्याओं की शिक्षा के लिए 'सरस्वती कन्या विद्यालय' की पृथक् रूप से स्थापना कर दी गई। इस विद्यालय में छठी से दसवीं कक्षा तक की शिक्षा की व्यवस्था है।

वीरपुत्र हिन्दी विद्यालय, हैदराबाद—इस विद्यालय की स्थापना सन् १९५० में श्री विनायकराव विद्यालंकार के कर-कमलों द्वारा की गई थी। इसमें बालक और बालिकाएँ साथ-साथ पढ़ते हैं, और शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। धर्म और नैतिकता की शिक्षा सबको दी जाती है। संस्कृत की पढ़ाई का इस विद्यालय में विशेष प्रबन्ध है।

राजाबहादुर सर बन्सीलाल बालिका विद्यालय, हैदराबाद—यह संस्था अक्तूबर, सन् १९४० में प्राथमिक पाठशाला के रूप में स्थापित हुई थी, पर धीरे-धीरे उन्नति करती हुई अब हाईस्कूल हो गयी है। वर्तमान समय में इसमें २००० के लगभग छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, और सायन्स, चित्रकला, संगीत आदि की पढ़ाई की भी वहाँ व्यवस्था है।

ऊपर जिन शिक्षण-संस्थाओं का परिचय दिया गया है, वे सभी विद्यार्य सभा के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। सर बन्सीलाल बालिका विद्यालय, वीरपुत्र हिन्दी विद्यालय और सिकन्दराबाद हिन्दी विद्यालय का विद्यार्य सभा के साथ सीधा सम्बन्ध न होने पर भी उन पर आर्यसमाज का प्रभाव है, क्योंकि उनका संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में है, जिनकी वैदिक धर्म के प्रति आस्था है। इसी प्रकार की अन्य भी अनेक शिक्षण-संस्थाएँ आन्ध्र प्रदेश में हैं, जिनका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा।

हैदराबाद के सम्पन्न अग्रवाल लोगों ने, जिनमें बहुत-से आर्यसमाज के प्रभाव में हैं, एक अग्रवाल शिक्षा-समिति गठित की हुई है, जिसके तत्त्वावधान में सात शिक्षणालय स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय धनी व सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने, जिनमें आर्यसमाजी विचारों के अग्रवाल जाति के लोग अधिक हैं, अनेक शिक्षणालय स्थापित किये हैं, जिनमें राजाबहादुर सर बंसीलाल बालिका विद्यालय, मारवाड़ी हिन्दी विद्यालय और राजस्थान हिन्दी विद्यालय विशेष महत्त्व के हैं। इन सब में हिन्दी भाषा की शिक्षा को प्रमुखता दी जाती है, और शिक्षा के माध्यम के रूप में भी प्रायः हिन्दी को ही प्रयुक्त किया जाता है। आन्ध्र प्रदेश में आर्यसमाज का प्रचार केवल हिन्दी भाषी लोगों तक ही सीमित नहीं है, अपितु तेलुगु भाषी लोगों में भी उसके प्रचार में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसीलिए ऐसे भी अनेक शिक्षणालय वहाँ विद्यमान हैं, जो प्रधानतया तेलुगु भाषी लोगों के लिए हैं। इनमें वारंगल का आन्ध्र भाषाभिवर्धिनी हाईस्कूल उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना सन् १९४५ में हुई थी, और अब इसमें ६०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश के वीरा (खम्माम), परली बैजनाथ, मूथमपल्ली (नलगोंडा), पुसापुडु, गिरमजीपेट (वारंगल), पेड़ापल्ली (करीमनगर) आदि अन्य भी अनेक स्थानों पर आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं, जिन द्वारा तेलुगु भाषा भाषी लोगों को भी महर्षि दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों से परिचित होने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

(५) दिल्ली की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

दिल्ली के संघ-क्षेत्र में १०० से भी अधिक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ (स्कूल, कॉलिज आदि) हैं। इनमें से बहुत-से डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, चित्रगुप्त रोड के साथ सम्बद्ध हैं, और अन्य केन्द्रीय आर्यसभा तथा दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यू राजेन्द्र नगर और नरेला में दो कन्या गुरुकुल हैं, और इन्द्रप्रस्थ, खेड़ा खुर्द, टटेसर जौन्ती तथा गौतमनगर में बालकों के गुरुकुलों की सत्ता है। गुरुकुलों तथा डी० ए० वी० संस्थाओं का परिचय देते हुए प्रसंगवश विविध अध्यायों में इन शिक्षणालयों का उल्लेख पहले किया भी जा चुका है।

दिल्ली में ऐसे आर्यसमाज तथा आर्य संगठन (समिति आदि) भी हैं, जिन द्वारा शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जा रहा है। इनमें 'आर्य वैदिक पाठशाला सोसायटी, नया बाँस' उल्लेखनीय है। वर्तमान समय में इस सोसायटी के तत्त्वावधान में तीन विद्यालय चल रहे हैं, जिनमें छात्रों की संख्या १६०० के लगभग है। सन् १९२७ में आर्यसमाज नया बाँस (दिल्ली) द्वारा एक आर्य पाठशाला की स्थापना की गयी थी, जिसका संचालन सन् १९५३ तक आर्यसमाज की अन्तरंग सभा द्वारा मनोनीत प्रबन्ध समिति द्वारा किया जाता रहा। सन् १९५३ में उसके प्रबन्ध के लिए पृथक् रूप से आर्य वैदिक पाठशाला सोसायटी का रजिस्ट्रेशन करा लिया गया। धीरे-धीरे यह पाठशाला उन्नति करती गई, और सन् १९७७ में इसे हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा के लिए मान्यता प्राप्त हो गई। खारी बावली, नया बाँस और लाहौरी गेट के सघन आबादी वाले क्षेत्र में शिक्षा के लिए यह संस्था महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है, और वर्तमान समय में उसमें १२०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इस शिक्षणालय (अब जिसका नाम दाऊदयाल आर्य वैदिक सीनियर सैकेण्डरी स्कूल है) में पढ़ाई की व्यवस्था है, पर उसके साथ-साथ धर्मशिक्षा का भी वहाँ समुचित प्रबन्ध है। यद्यपि सिद्धान्त रूप से धर्मशिक्षा ऐच्छिक विषय है, पर यथार्थ में वह सबके लिए अनिवार्य ही है। प्रार्थना दैनिक होती है, और सप्ताह में एक दिन हवन भी किया जाता है। सिद्धान्ततः, इनमें उपस्थित होना भी विद्यार्थियों की इच्छा पर है, पर व्यवहार में सब अनिवार्य रूप से प्रार्थना, हवन तथा धार्मिक प्रवचनों में सम्मिलित होते हैं। संस्था में ऋषिबोधोत्सव व श्रद्धानन्द बलिदान दिवस सदृश आर्य पर्व भी मनाये जाते हैं, और समय-समय पर विद्वानों के प्रवचन व उपदेश भी कराये जाते हैं। स्कूल के पुस्तकालय में ९००० के लगभग पुस्तकें हैं। संस्था की भू-भवन सम्पत्ति का आनुमानिक मूल्य बीस लाख रुपये है। यह सब सम्पत्ति जनता के दान द्वारा ही प्राप्त हुई है। स्कूल सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, और उसे सरकार से अनुदान भी दिया जाता है।

आर्य वैदिक पाठशाला सोसायटी द्वारा जो दो अन्य शिक्षणालय चलाये जा रहे हैं, वे जुगमन्दरदास आर्य वैदिक प्राथमिक विद्यालय तथा मुसद्दीलाल कलावती शिशु सदन हैं। वैदिक प्राथमिक विद्यालय में तीसरी कक्षा तक पढ़ाई की व्यवस्था है, और उसमें १५९ बालक-बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। मुसद्दीलाल कलावती शिशु सदन में पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चों को प्रविष्ट किया जाता है, और वहाँ १०० के लगभग बच्चों के प्रारम्भिक विकास व शिक्षा की व्यवस्था है। स्थान की कमी के कारण अधिक बच्चे वहाँ नहीं लिये जाते।

दिल्ली में 'चन्द्रवती चौधरी स्मारक ट्रस्ट' नामक एक अन्य आर्य संस्था है, जिस द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी कार्य किया जा रहा है। यह ट्रस्ट श्रीमती चन्द्रवती चौधरी की पुण्य स्मृति में स्थापित किया गया है। चन्द्रवतीजी दिल्ली के प्रसिद्ध नेता श्री देसराज चौधरी की सहधर्मिणी थीं। उनकी उत्कट इच्छा थी, कि कन्याओं के लिए एक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा विद्यालय खोला जाए, जिसमें अन्य विषयों के साथ-साथ संस्कृत, धर्मशिक्षा, संगीत तथा गृहकार्यों की भी समुचित शिक्षा दी जाए। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए चन्द्रवती चौधरी स्मारक ट्रस्ट द्वारा दक्षिणी दिल्ली के क्षेत्र में चालीस बीघे के लगभग भूमिखण्ड पर 'चन्द्र आर्य विद्या मन्दिर' नाम से एक शिक्षणालय की स्थापना की गई (सन् १९६८)। शीघ्र ही उसे हायर सैकेण्डरी स्तर तक की शिक्षा के लिए मान्यता प्राप्त हो गई, और यह संस्था तेजी के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगी। शिक्षा की सब आवश्यक सुविधाएँ इस विद्या मन्दिर में विद्यमान हैं। छात्राओं को धार्मिक विचारों वाला बनाना तथा उनके चरित्र को उन्नत करना इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य है, अतः वहाँ धर्मशिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। प्रत्येक शनिवार को वहाँ हवन किया जाता है, जिसके पश्चात् धार्मिक प्रवचन होता है। वार्षिक परीक्षा के साथ धर्मशिक्षा की भी परीक्षा ली जाती है।

चन्द्र आर्य विद्या मन्दिर के साथ ही एक अन्य संस्था है, जिसका नाम 'छात्रावास' है। आर्य कन्या सदन, पटौदी हाउस, दरियागंज (दिल्ली) की बालिकाएँ पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर इसमें प्रविष्ट होती हैं, और वहाँ रहकर बारहवीं कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त करती हैं। इस समय १६० कन्याएँ छात्रावास में रह रही हैं, और उन सबका पालन-पोषण संस्था द्वारा किया जाता है। उनका जीवन पूर्णतया अनुशासित है, और उनकी दिनचर्या गुरुकुलों के सदृश है। यह संस्था अनाथ बालिकाओं के लिए है, पर इसमें निवास, रहन-सहन, खान-पान आदि का स्तर इतना अच्छा है, कि इसकी छात्राओं को कोई अनाथ नहीं समझ सकता। शिक्षा प्राप्त कर कन्याएँ स्वावलम्बी होकर जीवन निर्वाह कर सकें और यदि चाहें तो विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकें—इसमें भी संस्था द्वारा उन्हें सहायता प्रदान की जाती है।

पाकिस्तान से विस्थापित हुए आर्य सज्जनों ने दिल्ली में अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की हैं, जिनमें से कुछ को पाकिस्तान में रह गये शिक्षणालयों की उत्तराधिकारी समझा जा सकता है। इनके प्रबन्ध तथा संचालन के लिए पृथक् संगठन व ट्रस्ट भी गठित हैं। इस प्रकार की संस्थाओं में जी० ए० क्वेटा डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, निजामुद्दीन; क्वेटा डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, वेस्ट पटेलनगर; गुजरांवाला गुरुकुल हायर सैकेण्डरी स्कूल, लोधी कॉलोनी; जी० डी० सोनी डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, पूसा रोड और मुलतान डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल, राजेन्द्र नगर उल्लेखनीय हैं। डी०ए०वी० एजुकेशन सोसायटी ईस्ट निजामुद्दीन तीन शिक्षणालयों का संचालन कर रही है, सत्यवती सूद आर्य गर्ल्स स्कूल, गोविन्द अरज्जा डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल और क्वेटा डी० ए० वी० प्राइमरी स्कूल। लाला दीवानचन्द्र ट्रस्ट के अधीन भी कई स्कूल हैं। इसी प्रकार की कितनी ही अन्य आर्य शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिनका संचालन आर्यजनों द्वारा गठित संगठनों के अधीन है।

(६) हरयाणा के स्कूल और कॉलिज

आर्यसमाज की दृष्टि से हरयाणा राज्य का बहुत महत्त्व है। भारत भर में यही एक ऐसा राज्य है, जिसके बहुसंख्यक निवासी आर्यसमाज के प्रभाव में हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है, कि वहाँ आर्य शिक्षण-संस्थाएँ भी अच्छी बड़ी संख्या में हों। जितने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल छोटे-से हरयाणा राज्य में हैं, उतने विशाल उत्तरप्रदेश में भी नहीं हैं। इन गुरुकुलों का परिचय यथास्थान दिया जा चुका है।

गुरुकुलों के अतिरिक्त कितने ही आर्य स्कूल और कॉलिज भी हरयाणा में हैं। इनमें जो आर्य प्रतिनिधि सभा, हरयाणा के साथ सम्बद्ध हैं, उनकी संख्या ३४ है। बहु-संख्या कन्याओं की शिक्षण-संस्थाओं की है। **अम्बाला छावनी के आर्य गर्ल्स कॉलिज** में स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा की व्यवस्था है। इस संस्था का परिचय स्त्रियों के आर्य शिक्षणालयों के प्रसंग में पृथक् रूप से दिया भी जा चुका है। आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध अन्य महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्थाएँ निम्नलिखित हैं—

आर्य कन्या महाविद्यालय, नरवाणा (जिला जींद)—इस संस्था की स्थापना सन् १९२८ में लाला पतराम द्वारा की गई थी। धीरे-धीरे यह उन्नति के पथ पर अग्रसर होती गई, और वर्तमान समय में यह एक समुन्नत शिक्षणालय का रूप प्राप्त कर चुकी है, जिसमें ६०० के लगभग कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। छात्राओं को नैतिकता तथा सदाचारमय जीवन की शिक्षा देने के लिए धर्मशिक्षा की विशेष व्यवस्था है। आर्य प्रतिनिधि सभा, हरयाणा द्वारा आयोजित 'धर्मप्रवेशिका' परीक्षा छात्राओं से दिलायी जाती है, जिसका परीक्षा-परिणाम शत प्रतिशत रहता है। अध्यापिकाएँ भी इस परीक्षा में सम्मिलित होती हैं। महाविद्यालय की भू-भवन सम्पत्ति का मूल्य २० लाख रुपये के लगभग है। यज्ञ का अनुष्ठान प्रतिदिन किया जाता है।

वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय, बहादुरगढ़ मण्डी—यह एक विशाल शिक्षण-संस्था है, जिसमें प्राइमरी कक्षाओं से शुरू कर हायर सैकेण्डरी एवं इण्टर स्तर तक पढ़ाई की व्यवस्था है। कन्याओं की संख्या १५०० से भी अधिक है। संस्था के भवन विशाल हैं, और वहाँ पुस्तकालय, क्रीड़ाक्षेत्र आदि सब विद्यमान हैं। प्रति शनिवार हवन तथा धार्मिक प्रवचनों का आयोजन किया जाता है, और कन्याओं को वैदिक धर्म की मान्यताओं तथा आर्यसमाज के आदर्शों व उद्देश्यों से परिचित कराने के लिए समय-समय पर धार्मिक नेताओं तथा विद्वानों के व्याख्यान कराये जाते हैं।

आर्य हायर सैकेण्डरी स्कूल, पानीपत—इस शिक्षणालय की स्थापना सन् १९१७ में उर्दू के प्रसिद्ध कवि हाली (मौलाना ख्वाजा अल्ताफ हुसैन हाली) के पिता ख्वाजा सज्जाद हुसैन द्वारा की गई थी। इसे एक मुसलिम शिक्षण-संस्था के रूप में स्थापित किया गया था। सन् १९४७ में भारत के विभाजन के समय पानीपत के प्रायः सभी मुसलमान पाकिस्तान चले गये, जिसके परिणामस्वरूप इस 'हाली मुसलिम हाईस्कूल' की सब इमारतें, क्रीड़ाक्षेत्र, कृषि योग्य भूमि, विविध उपकरण तथा अन्य सब सम्पत्ति आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को सरकार द्वारा प्रदान कर दी गई। २६ फरवरी, सन् १९४८ को सभा ने इस सबको अपने अधिकार में ले लिया, और वहाँ आर्य हायर सैकेण्डरी स्कूल की स्थापना कर दी गई। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के त्रिविभाजन के पश्चात् यह शिक्षणालय हरयाणा सभा के अधिकार में आ गया। अब इसका संचालन पूर्णतया आर्य शिक्षण-संस्था के रूप में किया जा रहा है। प्रतिदिन सन्ध्या-हवन का कार्यक्रम कक्षाओं के अनुसार चलता है, और रविवार को बड़ा बाजार (पानीपत) आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में प्रत्येक कक्षा के छात्र बारी-बारी से सम्मिलित होते हैं। प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी इस स्कूल के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य हायर सैकेण्डरी स्कूल, सिरसा—इस स्कूल की स्थापना सन् १९४७ में स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज की प्रेरणा से हुई थी। सेठ रामदत्त ने इसके लिए भूमि प्रदान की थी। इस समय यह एक सुविकसित विशाल शिक्षण-संस्था का रूप प्राप्त कर चुका है, जिसकी प्राथमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या ८०० और हायर सैकेण्डरी विभाग में ७५० है। सायन्स के विषयों की शिक्षा की भी इस स्कूल में समुचित व्यवस्था है, और उनके लिए तीन प्रयोगशालाएँ भी वहाँ विद्यमान हैं। धर्मशिक्षा का भी इसमें प्रवन्ध है, और हरयाणा राज्य की शिक्षण-संस्थाओं में इसे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है।

आर्य कन्या हायर सैकेण्डरी स्कूल, कालका—यह स्कूल सन् १९४८ में स्थापित हुआ था, और अव सन्तोषजनक उन्नति कर चुका है। आर्ट्स और सायन्स विषयों की पढ़ाई की इसमें समुचित व्यवस्था है। धर्मशिक्षा को इसमें वहुत महत्त्व दिया जाता है। विद्यालय की अन्य परीक्षाओं के साथ-साथ धर्मशिक्षा की परीक्षा भी अनिवार्य रूप से ली जाती है, और धर्मशिक्षा की पढ़ाई को उसी तरह एक विषय माना जाता है, जैसे गणित, हिन्दी आदि को। स्थानीय आर्यसमाज द्वारा मनाये जाने वाले आर्य पर्वों में भी छात्राएँ सम्मिलित होती हैं।

हरयाणा में कन्याओं के अन्य शिक्षणालय (जो आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ सम्वद्ध हैं) करनाल, रोहतक, झज्झर, कैथल, अम्वाला छावनी, सोनीपत, जगाधरी और शाहावाद मारकण्डा में हैं। अम्वाला छावनी में चार आर्य कन्या विद्यालय हैं। हरयाणा में अनेक डी० ए० वी० स्कूल भी ऐसे हैं, जो आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ सम्वद्ध हैं। ये वहादुरगढ़, मुस्तफावाद और गुड़गावाँ में स्थित हैं। जो शिक्षण-संस्थाएँ दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, चित्रगुप्त रोड, नयी दिल्ली तथा आर्य प्रादेशिक सभा के अधीन हैं, वे इनसे भिन्न हैं और संख्या में २१ हैं।

आर्य कॉलिज, पानीपत—आर्यसमाज के शिक्षणालयों की दृष्टि से हरयाणा में पानीपत का विशेष स्थान है। भारत का यह पुराना नगर शिक्षा के क्षेत्र में वहुत पिछड़ा हुआ था। स्त्रीशिक्षा का तो वहाँ प्रायः अभाव ही था। इस दशा में पानीपत के सवसे पुराने आर्यसमाज (वड़ा वाजार) द्वारा सन् १९२४ में आर्य कन्या पाठशाला स्थापित की गई, जिसके प्रथम प्रधान लाला खेमचन्द्र थे। फिर सन् १९४६ में आर्य कन्या हाईस्कूल स्थापित किया गया। यद्यपि पानीपत में वालकों और वालिकाओं की हाईस्कूल स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था थी, पर स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षण-संस्था का अभाव वहाँ चिरकाल से अनुभव किया जा रहा था। इस अभाव को दूर करने का प्रयास भी बड़ा वाजार आर्यसमाज द्वारा किया गया, और सन् १९५४ में २५० विद्यार्थियों से वहाँ कॉलिज की शिक्षा प्रारम्भ कर दी गई, और इस शिक्षण-संस्था का नाम 'आर्य कॉलिज' रखा गया। इस कॉलिज के प्रथम प्रवन्धक वावू रामगोपाल एडवोकेट थे, और अव श्री ओम्प्रकाश शिंगला कुशलतापूर्वक उसकी व्यवस्था कर रहे हैं। अव पानीपत में तीन कॉलिज हैं, पर केवल आर्य कॉलिज में ही छात्रावास की सुविधा है। देहात तथा अन्य नगरों के विद्यार्थी इसमें निवास के लिए पर्याप्त संख्या में आते हैं। कॉलिज का परिसर १०० वीघा जमीन में फैला हुआ है, और उसमें हॉकी आदि खेलों के लिए मैदान भी विद्यमान हैं। पण्डित लक्ष्मीदत्त दीक्षित ने प्रिंसिपल के पद पर रहकर इस कॉलिज की उन्नति के लिए वहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्हीं के प्रयत्न से यह न केवल उच्च शिक्षा का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र ही वन गया, अपितु वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज का वातावरण भी वहाँ कायम रहा। दीक्षित जी अब संन्यास आश्रम में प्रवेश कर स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वन चुके हैं, पर उनका वरद हस्त अब भी इस संस्था पर पूर्ववत् विद्यमान है। पानीपत की सभी आर्य शिक्षण-संस्थाओं में हवन तथा धार्मिक प्रवचनों की व्यवस्था है, और धर्मशिक्षा को भी उनके पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त है। आर्य कॉलिज में भी धर्मशिक्षा, सन्ध्या-हवन आदि की समुचित व्यवस्था है। हरयाणा में अन्य भी अनेक ऐसे स्कूल तथा कॉलिज हैं, जिनके संचालन व प्रवन्ध में आर्यसमाजियों का प्रमुख हाथ है।

(७) बंगाल और असम आदि की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

जो गुरुकुल, कन्या गुरुकुल तथा डी० ए० वी० शिक्षणालय वंगाल में विद्यमान हैं, उनका परिचय पहले यथास्थान दिया जा चुका है। पर उनके अतिरिक्त भी वहुत-सी शिक्षण-संस्थाएँ वंगाल में हैं, जिनका संचालन वहाँ के विविध आर्यसमाजों तथा आर्य संगठनों द्वारा किया जा रहा है। इनमें से कुछ का संक्षिप्त रूप से परिचय देना उपयोगी है—

रघुमल आर्य विद्यालय, कलकत्ता—वीसवीं सदी के चतुर्थ दशक तक हिन्दी भाषा भाषियों के जो शिक्षणालय कलकत्ता महानगरी में थे, उनमें विद्यार्थियों के प्रवेश में जात-पाँत और छूत-अछूत का विशेष ध्यान रखा जाता था। हरिजन वालकों का प्रवेश तो उनमें पूर्णतः निषिद्ध था। अतः सन् १९३५ में कलकत्ता आर्यसमाज की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर एक ऐसे शिक्षणालय की स्थापना का संकल्प किया गया, जिसमें कि जात-पाँत आदि का कोई भी भेद किये विना सव वर्णों और वर्गों के वालक शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसी संकल्प को क्रियान्वित करने के लिए १६ जनवरी, १९३६ को सेठ मंगतूराम जयपुरिया की अध्यक्षता में एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, और श्री मूलचन्द्र अग्रवाल ने आर्य विद्यालय का उद्घाटन किया। कलकत्ता के सम्पन्न उद्योग-पतियों और व्यापारियों ने इस संस्था के लिए उदारतापूर्वक दान दिया। रघुमल चैरिटी ट्रस्ट, जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट और सेठ मंगतूराम जयपुरिया आदि से प्राप्त धनराशियों द्वारा वह विशाल इमारत तैयार हुई, जहाँ यह विद्यालय स्थित है। रघुमल आर्य विद्यालय का उद्देश्य छात्रों को केवल पुस्तकीय ज्ञान कराना ही न होकर उनका शारीरिक, मानसिक तथा वौद्धिक विकास करना भी है। साथ ही, इस संस्था में विद्यार्थियों को वैदिक धर्म के मन्तव्यों तथा आर्यसमाज के कार्यकलाप से परिचित कराने का भी पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है। इसीलिए उसमें प्रतिदिन वेदमन्त्रों से प्रार्थना होती है, और शनिवार को हवन किया जाता है, जिसके पश्चात् धर्म के सम्वन्ध में कोई योग्य विद्वान् उपदेश देते हैं। धर्मशिक्षा सव विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। आर्यसमाज शिक्षा सभा अजमेर द्वारा आयोजित धर्मशिक्षा की परीक्षाओं में भी इस विद्यालय के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। विद्यालय विभाग की शिक्षा के लिए जो भी साधन चाहिये, वे सव इस शिक्षणालय में विद्यमान हैं। विद्यार्थियों की संख्या १२०० के लगभग है। कलकत्ता के विद्यालयों में इस संस्था का उच्च स्थान है। वहाँ का परीक्षा परिणाम प्रायः ८५ प्रतिशत रहता है। वैदिक धर्म के वातावरण में वालकों को शिक्षा देने के सम्वन्ध में यह विद्यालय महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस शिक्षण-संस्था का प्रवन्ध तथा संचालन आर्यसमाज कलकत्ता (१९, विधान-सरणी) के हाथों में है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुमल आर्य विद्यालय के अतिरिक्त कलकत्ता के क्षेत्र में अन्य भी अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिनमें आर्य कन्या महाविद्यालय (२०, विधान-सरणी), भामाशाह आर्य विद्यालय (जगदीशचन्द्र रोड), ए० वी० हाईस्कूल (कृष्णनगर), आर्य परिषद् विद्यालय (नमक महल रोड), आर्य विकास विद्यालय (काशीपुर), दक्षिण कलकत्ता आर्य विद्यालय (गर्चा रोड), आर्य वाल पाठशाला (आर्य स्त्री समाज, भवानीपुर), आर्य विद्या मन्दिर (भवानीपुर), आर्य विद्यालय (हावड़ा) और चापदानी आर्य विद्यापीठ (हुगली) उल्लेखनीय हैं।

बंगाल के अन्य नगरों के आर्यसमाजों द्वारा भी अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित हैं।

खड़गपुर आर्यसमाज द्वारा आर्य कन्या पाठशाला (सन् १९३६ में स्थापित), आर्य कन्या विद्यालय और श्री दयानन्द विद्यापीठ (सन् १९६३ में स्थापित) का संचालन किया जा रहा है। आसनसोल आर्यसमाज के अधीन जहाँ डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल विद्यमान है, वहाँ साथ ही लक्ष्मीदेवी दारूका आर्य कन्या सैकेण्डरी स्कूल और आर्य कन्या प्राथमिक विद्यालय भी स्थापित हैं। इन शिक्षणालयों में २५०० से भी अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। टीटागढ़ आर्यसमाज द्वारा एक आर्य हायर सैकेण्डरी स्कूल चलाया जा रहा है, जिसकी स्थापना सन् १९४५ में हुई थी। दार्जीलिंग आर्यसमाज के अधीन आर्य कन्या वैदिक पाठशाला तथा आर्य रात्रि हायर सैकेण्डरी स्कूल विद्यमान हैं। इसी प्रकार अन्य भी अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ बंगाल में हैं, जिनके कारण उस राज्य में वैदिक धर्म के प्रचार में वहुत सहायता प्राप्त हो रही है। महत्त्व की वात यह है, कि इन सब शिक्षणालयों में धर्मशिक्षा की समुचित व्यवस्था है, और प्रधानतया हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

असम राज्य में डीफू (करवी एंग्लोंग) में डी० ए० वी० हाईस्कूल विद्यमान है, जिसकी स्थापना दयानन्द सेवाश्रम डीफू द्वारा सन् १९६९ के प्रारम्भ में की गई थी। इसमें दसवीं कक्षा तक की शिक्षा की व्यवस्था है, और विद्यार्थियों की संख्या ४०० के लगभग है। गोहाटी में भी दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल खुल चुका है, और असम राज्य के अन्य नगरों में भी आर्य शिक्षणालय स्थापित किये जा रहे हैं।

असम के समीपवर्ती नागालैण्ड और त्रिपुरा राज्यों में भी डी० ए० वी० कॉलिज मैनेजिंग कमेटी, नयी दिल्ली शिक्षणालय खोलने में तत्पर है। त्रिपुरा के अगरतला नगर में दयानन्द फाउण्डेशन शिक्षा केन्द्र विद्यमान है, और नागालैण्ड में डी०ए०वी० स्कूल स्थापित हो चुका है। इसी प्रकार का प्रयत्न मणिपुर और अरुणाचल में भी किया जा रहा है।

(८) उत्तर-पश्चिमी भारत की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

सन् १९४७ में हुए भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप पश्चिमी पंजाब, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध और विलोचिस्तान के जो प्रदेश पाकिस्तान में चले गये, उनमें भी अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान थीं। जो वहुत-से दयानन्द एंग्लो-वैदिक शिक्षणालय वहाँ थे, उनका उल्लेख पहले यथास्थान किया जा चुका है। पर उस क्षेत्र के विविध आर्यसमाजों तथा आर्य सज्जनों ने अनेक शिक्षण-संस्थाएँ वहाँ स्थापित की हुई थीं। इनमें से वहुत कम के विवरण इस समय उपलब्ध हैं। ऐसे क्षेत्र में जहाँ हिन्दुओं की संख्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कम थी और हिन्दी तथा संस्कृत का जहाँ नाम मात्र भी प्रचार नहीं था, आर्य स्कूल खोल कर वैदिक धर्म के सत्य स्वरूप के प्रचार तथा संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा के लिए जिन व्यक्तियों ने सफलापूर्वक प्रयत्न किया, आर्यसमाज के इतिहास में उनके नाम सुवर्णाक्षरों में लिखने के योग्य है।

ऐसे एक सज्जन श्री गोवर्धन थे। उनका जन्म सन् १८८१ में डेरा गाजीखाँ की संघड़ तहसील के तौंसा शरीफ गाँव में हुआ था। गवर्नमेण्ट कॉलिज, लाहौर से बी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर वह गुरुकुल काँगड़ी में अध्यापन-कार्य के लिए आ गये। सन् १९१४ तक उन्होंने गुरुकुल में कार्य किया, और फिर १९१९ तक दिल्ली में रामजस हाईस्कूल के वह मुख्याध्यापक रहे। पर डेरा गाजीखाँ के आर्य सज्जन उनकी योग्यता से लाभ उठाने के लिए उत्सुक थे। उनके आग्रह को स्वीकार कर श्री गोवर्धन अपने जिले में वैदिक धर्म के प्रसार तथा आर्य शिक्षणालयों की स्थापना के लिए चले गये, और सन् १९२० में उन्होंने संघड़ विद्यासभा की स्थापना की। इस सभा की ओर से पहला शिक्षणालय तौंसा शरीफ गाँव में संघड़ एंग्लो-वर्नाक्युलर विद्यालय नाम से स्थापित किया गया, और फिर डेरा गाजीखाँ में एंग्लो-संस्कृत हाईस्कूल के नाम से। चार वर्ष तक श्री गोवर्धन डेरा गाजीखाँ के स्कूल के मुख्याध्यापक रहे और सफलतापूर्वक उसका संचालन किया। अध्यापन-कार्य करते हुए उन्होंने अध्ययन को भी जारी रखा, और पंजाब यूनिवर्सिटी से संस्कृत में एम० ए०, एम० ओ० एल० तथा शास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् १९२४ में श्री गोवर्धन शास्त्री डेरा गाजीखाँ से डेरा इस्माईल खाँ चले गये। प्रसिद्ध आर्य नेता राय ठाकुरदत्त धवन ने वहाँ वैदिक भ्रातृ महाविद्यालय नाम से एक शिक्षण-संस्था स्थापित की थी, जो उस क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रचार का प्रधान केन्द्र थी। शास्त्रीजी वहाँ संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए। श्री धवन ने डेरा इस्माईल खाँ में बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक कन्या पाठशाला भी खोली हुई थी। श्री गोवर्धन शास्त्री इस पाठशाला के भी व्यवस्थापक रहे। इसमें सन्देह नहीं, कि उत्तर-पश्चिमी भारत के इस मुसलिम-बहुल क्षेत्र में आर्यसमाज के लिए जो कार्य उन्होंने किया, वह अत्यन्त महत्त्व का था। भारत के विभाजन के पश्चात् तौंसा शरीफ के एंग्लो-वर्नाक्युलर विद्यालय को गुड़गावाँ (हरयाणा) में दयानन्द एंग्लो-विद्यालय के रूप में पुनः स्थापित किया गया। वह वहाँ सफलतापूर्वक चल रहा है, और श्री गोवर्धन का उत्तम स्मारक है। संघड़ विद्यासभा को भी 'संघड़ विद्यासभा ट्रस्ट' के रूप में सन् १९७० में अजमेर में रजिस्टर्ड करा लिया गया। इस द्वारा निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं, और अन्य प्रकार से भी उनकी सहायता की जाती है।

सिन्ध प्रान्त (जो अब पाकिस्तान में है) में जो अनेक आर्य शिक्षणालय स्थापित थे, उनके अब नाम ही शेष हैं। कराची का लखपतराय डी० ए० वी० कॉलिज इनमें प्रमुख था। उसके अतिरिक्त वैदिक विद्यालय थररी महबत, हरिजन विद्यालय वाड़ह, दयानन्द आर्य विद्यालय घोट्की सिंघ, बाजीगर स्कूल लाड़काना और बाजीगर स्कूल रतोदेरो सिन्ध की आर्य शिक्षण-संस्थाओं में उल्लेखनीय थे। सिन्ध में बाजीगर और बागड़ी भील आदि अनेक पिछड़ी हुई जातियाँ थीं, जिनकी दशा को सुधारने के लिए आर्यसमाज द्वारा बहुत प्रयत्न किया गया था। उन्हीं में शिक्षा के प्रसार के प्रयोजन से लाड़काना और रतोदेरो में शिक्षणालयों की स्थापना की गई थी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) में भी अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान थीं। पेशावर का नेशनल हाईस्कूल अपने क्षेत्र के सर्वोत्तम शिक्षणालयों में गिना जाता था। इसका प्रवन्ध व संचालन आर्यसमाजियों के ही हाथों में था। वन्नू में आर्य गर्ल्स स्कूल और एवटावाद में डी० ए० वी० स्कूल स्थापित थे। राय ठाकुरदत्त धवन द्वारा स्थापित जिस वैदिक भ्रातृ महाविद्यालय और कन्या पाठशाला का उल्लेख ऊपर किया गया है, वे भी उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में ही थे। विलोचिस्तान की क्वेटा नगरी में भी डी० ए० वी० स्कूल विद्यमान था।

(९) अन्य राज्यों की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

भारत का कोई भी ऐसा राज्य व प्रदेश इस समय नहीं है, जहाँ आर्यसमाज या आर्य संगठनों द्वारा स्थापित शिक्षणालयों की सत्ता न हो।

सिन्ध—वर्तमान समय में सिन्ध पाकिस्तान के अन्तर्गत है। पर भारत के विभाजन से पूर्व वहाँ जो आर्य प्रतिनिधि सभा थी, उसे महाराष्ट्र राज्य के उल्हासनगर में पुन: स्थापित कर दिया गया है। इसके तत्त्वावधान में अनेक आर्य शिक्षणालय भी चल रहे हैं। आर्य विद्यालय (सेकशन २४, उल्हास नगर) में ३०० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आर्यसमाज, चौक के विद्यालय में छात्रों की संख्या ५०० है। श्रद्धानन्द प्राइमरी विद्यालय में ३०० विद्यार्थी हैं, और लाजपत राय बालमन्दिर में बच्चों की संख्या ५० है। इन सब शिक्षणालयों में शिक्षा का माध्यम सिन्धी भाषा है। पर हिन्दी माध्यम के भी अनेक विद्यालय आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध के तत्त्वावधान में विद्यमान हैं, जिनमें नारायण आर्यवीर हिन्दी विद्यालय (३०० विद्यार्थी) और ऋषि दयानन्द रात्रि हिन्दी विद्यालय मुख्य हैं। इसमें ५०० विद्यार्थी हैं।

हिमाचलप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा अब पंजाब से पृथक् है, और उस द्वारा इस पार्वत्य प्रदेश में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अनेक शिक्षण-संस्थाओं की भी स्थापना की जा रही है। शिमला, ऊना, काँगड़ा, मण्डी, चम्बा आदि सर्वत्र आर्य शिक्षणालय विद्यमान हैं।

राजस्थान में जहाँ चित्तौड़गढ़ और दाधिया में गुरुकुलों की तथा अजमेर में डी० ए० वी० कॉलिज तथा उससे सम्बद्ध शिक्षणालयों की सत्ता है, वहाँ जयपुर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, भीलवाड़ा, श्रीगंगानगर, सिरोही, वीकानेर, कोटा आदि सर्वत्र बालकों और बालिकाओं की शिक्षा के लिए अनेक आर्य शिक्षणालय विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ में स्नातक स्तर की शिक्षा की भी व्यवस्था है।

महाराष्ट्र में आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या ७५ के लगभग है, और **गुजरात** में ३० के लगभग। उड़ीसा के शिक्षणालयों का पिछले एक अध्याय में परिचय दिया जा चुका है।

जम्मू-श्रीनगर राज्य में जो अनेक डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाएँ हैं, उनका परिचय पहले दिया जा चुका है। उनके अतिरिक्त श्रीनगर में आर्य गर्ल्स हाईस्कूल (सन् १९२० में स्थापित) और देवकी आर्य पुत्री पाठशाला (बीसवीं सदी के प्रथम दशक में स्थापित) सदृश पुरानी आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं, जिन्होंने स्त्रीशिक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोआ में नेवरा मण्डूर का दयानन्द आर्य हाईस्कूल तथा दीव का श्री आर्यसमाज बालमन्दिर उस संघ-क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण आर्य शिक्षणालय हैं। दयानन्द आर्य हाईस्कूल में ग्यारहवीं कक्षा तक पढ़ाई की व्यवस्था है, और श्री आर्यसमाज बाल मन्दिर में पाँचवीं कक्षा तक की। इस संस्था की स्थापना सन् १६६३ में स्थानीय आर्यसमाज द्वारा की गयी थी।

कर्नाटक में पहले से ही अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं, और तमिलनाडु तथा केरल में भी अब उनकी स्थापना प्रारम्भ हो चुकी है। कर्नाटक की आर्य शिक्षण-संस्थाओं में वैदिक साहित्य विद्यालय, मंगलौर; दयानन्द हिन्दी विद्यालय, गुलबर्गा; हिन्दी माध्यमिक हाईस्कूल आर्यसमाज गुरुभटकल (गुलबर्गा); आर्य हाईस्कूल, बंगलूर; कन्या हाईस्कूल और प्रकाश विद्यालय हुगनाबाद (विदर) उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के विद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बालक-बालिकाओं के लिए अनेक प्राइमरी व मिडल स्तर तक की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ वहाँ विद्यमान हैं—दयानन्द बालमन्दिर, यादगीर (गुलबर्गा); रूपसिंह चतुर्भुजलाल विकास मन्दिर आर्यसमाज पकिराना बाजार गुजबर्गा; महर्षि दयानन्द विद्यालय, स्वामी श्रद्धानन्द भवन, विश्वेश्वरपुरम् बंगलूर; महर्षि दयानन्द बालमन्दिर, बंगलूर छावनी; आर्य बालक विकास मन्दिर और दयानन्द बाल मन्दिर आर्यसमाज चिड़गुप्पा (बिदर); प्रातःकालीन वैदिक पाठशाला, आर्यसमाज सुघोल (विदर); भाई बंशीलाल स्मृति बालमन्दिर, आर्यसमाज बड़ा हालीखेड़ (विदर); हुतात्मा धर्मप्रकाश बालमन्दिर, आर्यसमाज बसवकल्याण (विदर); हुतात्मा शिवचन्द बालमन्दिर, आर्यसमाज हुसनाबाद (विदर) और सुनन्दा विद्यालय शिशुविहार, माइसूर।

चण्डीगढ़ सदृश छोटे-से संघ-क्षेत्र में एक दर्जन के लगभग आर्य शिक्षणालयों की सत्ता है। इनमें तीन डी० ए० वी० कॉलिज, दो डी० ए० वी० हाईस्कूल और एक डी० ए० वी० मॉडल स्कूल है। उनके अतिरिक्त सी० एल० अग्रवाल दयानन्द मॉडल स्कूल और दयानन्द जूनियर मॉडल स्कूल सदृश अन्य अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं की वहाँ सत्ता है। वस्तुतः, सम्पूर्ण भारत में आर्य शिक्षण-संस्थाओं का एक जाल-सा विछा हुआ है। इन सबका परिचय दे सकना इस ग्रन्थ में सम्भव नहीं है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्चीसवाँ अध्याय

आर्य शिक्षण-संस्थाओं का भविष्य

(१) दयानन्द एंग्लो-वैदिक तथा अन्य आर्य स्कूलों व कॉलिजों की समस्याएँ

वर्तमान समय में जिन शिक्षण-संस्थाओं का आर्यसमाज द्वारा संचालन किया जा रहा है, उनमें बहुसंख्या ऐसे स्कूलों और कॉलिजों की है, जिन्हें सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। इनमें उसी पाठविधि के अनुसार पढ़ाई होती है, जिसका निर्धारण विविध राज्यों की शिक्षा परिषदों और यूनिवर्सिटियों द्वारा किया जाता है। इन्हें सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त होता है, और इनके खर्च की पूर्ति मुख्यतया सरकारी अनुदान द्वारा ही होती है। इस दशा में यह स्वाभाविक है, कि इनके प्रबन्ध, अनुशासन और गतिविधि पर सरकार का नियन्त्रण हो। प्रारम्भ में जब आर्यसमाज ने शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित की थीं, तो उनके लिए सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया जाता था। डी० ए० वी० शिक्षणालय भी सरकारी सहायता नहीं लेते थे। पर अब इस दशा में परिवर्तन हो गया है। स्कूलों और कॉलिजों का तो प्रश्न ही क्या, बहुत-से गुरुकुलों ने भी अब सरकारी अनुदान लेना प्रारम्भ कर दिया है। इसका परिणाम यह है, कि अब आर्य शिक्षण-संस्थाओं पर सरकार के नियन्त्रण व हस्तक्षेप में निरन्तर वृद्धि होने लगी है। इस सरकारी नियन्त्रण के अनेक रूप हैं। शिक्षणालय में अध्यापन के लिए किन व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए, इस विषय में आर्य शिक्षण-संस्थाओं की प्रबन्ध कमेटियों की स्वतन्त्रता अब बहुत सीमित हो गयी है। शिक्षकों की नियुक्ति में अब जिला शिक्षा निरीक्षक का हाथ रहता है, और जब एक बार किसी शिक्षक की नियुक्ति हो जाए, तो उसे सर्विस से हटा सकना भी प्रबन्ध समिति के लिए सुगम नहीं रहता। आर्य शिक्षण-संस्थाओं में वैदिक धर्म का वातावरण तभी रह सकता है, और विद्यार्थियों को नैतिकता तथा सदाचार के आर्य आदर्शों से प्रभावित कर सकना तभी सम्भव है, जब उनके शिक्षक आर्यसमाज के मन्तव्यों में आस्था रखते हों। इसीलिए पहले आर्यसमाजी अध्यापकों को ही आर्य शिक्षणालयों में अध्यापन के लिए नियुक्त किया जाता था। पर सरकारी नियन्त्रण व हस्तक्षेप के कारण अब यह आवश्यक नहीं रह गया है। अब आर्य स्कूलों और कॉलिजों में ऐसे मुख्याध्यापक, अध्यापक, आचार्य तथा प्राध्यापक नियुक्त हो जाते हैं, जिनकी आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रति आस्था न हो और जिनका जीवन भी आर्य मान्यताओं के अनुरूप न हो। यही कारण है, जो आर्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा संचालित आर्य शिक्षणालयों में भी धार्मिक वातावरण को उत्पन्न कर सकना कठिन हो गया है। यद्यपि आर्य स्कूलों और कॉलिजों की पृथक् प्रबन्ध कमेटियाँ विद्यमान हैं, और उनके सदस्य भी प्रायः आर्यसमाजी होते हैं, पर उनके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए यह सम्भव नहीं रहता कि वे अपनी संस्था के अध्यापकों पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रख सकें, क्योंकि न उनकी नियुक्ति ही पूर्णतया उनके हाथों में होती है और न उन्हें सर्विस से पृथक् कर सकना। कई राज्यों में तो अब स्कूलों में वेतन भी सरकार द्वारा दिये जाने लगे हैं। शिक्षा शुल्क से स्कूल को जो आमदनी हो, उसे प्रवन्ध कमेटी व उस द्वारा नियुक्त मैनेजर स्वयं खर्च नहीं कर सकता, वह सरकारी खजाने में जमा करानी होती है, और अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को वेतन के रूप में प्रदेय धनराशि में जो कमी रह जाए, उसे सरकारी अनुदान से पूरा कर वेतनों का वितरण शिक्षा विभाग के जिला कर्मचारियों द्वारा ही किया जाता है। इस व्यवस्था के कारण शिक्षणालयों के कार्यकर्ताओं पर प्रवन्ध कमेटी के नियन्त्रण में और भी कमी हो जाती है। प्रायः सभी राज्यों में अब अध्यापकों ने अपने संघ गठित कर लिये हैं, और वे अपने हितों तथा अधिकारों की रक्षा के लिए सामूहिक रूप से संघर्ष में तत्पर रहते हैं। इन संघों में आर्य स्कूलों के अतिरिक्त अन्य गैर-सरकारी स्कूलों के अध्यापक भी सदस्य होते हैं, और सब सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं। इस कारण आर्य स्कूलों के प्रवन्धकों का कार्य और भी कठिन हो जाता है। राज्यों की विधान परिषदों में अध्यापक वर्ग को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त है, और ऐसे ही प्रत्याशी अध्यापक वर्ग के प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं जिन्हें शिक्षक संघ (माध्यमिक शिक्षक संघ) का समर्थन प्राप्त हो या जो संघ के प्रत्याशी हों। विधान परिषदों में रजिस्टर्ड स्नातकों द्वारा जो प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उनके सम्वन्ध में शिक्षक संघों का यह प्रयत्न रहता है कि उन द्वारा समर्थित व्यक्ति ही स्नातक वर्ग की ओर से चुने जाएँ। विधान परिषदों में शिक्षकों तथा स्नातकों के प्रतिनिधित्व का यह परिणाम है, कि शिक्षक संघों का महत्त्व वहुत वढ़ गया है, और राजनीतिक पार्टियाँ भी उन्हें अपने पक्ष में ले आने या अपने समर्थकों को शिक्षक संघों के पदाधिकारी चुनवाने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् में १२ सदस्य शिक्षकों द्वारा निर्वाचित हैं, और १२ स्नातकों द्वारा। २४ सदस्यों के इस वर्ग का समर्थन प्राप्त कर लेना किसी भी राजनीतिक पार्टी के लिए महत्त्व की वात है। अतः शिक्षक संघों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लेने के लिए राजनीतिक पार्टियाँ निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। गैर-सरकारी स्कूलों में आर्य (डी० ए० वी० तथा अन्य) शिक्षण-संस्थाओं की संख्या वहुत अधिक है। अतः उनके शिक्षकों को अपने पक्ष में करने या अपनी पार्टी के व्यक्तियों को ही उनमें शिक्षक नियुक्त कराने के लिए प्रयत्न करना राजनीतिक पार्टियों के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। इसका यह परिणाम है, कि अब अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं पर आर्यसमाज की तुलना में राजनीतिक पार्टियों का प्रभाव अधिक हो गया है।

वहुत-सी आर्य शिक्षण-संस्थाएँ, विशेषतया कन्या स्कूल व पाठशालाएँ आर्यसमाज मन्दिरों में स्थापित हैं। प्रारम्भ से ही स्त्रीशिक्षा के लिए आर्यसमाज विशेष रूप से प्रयत्नशील रहा है। इसी कारण आर्यसमाज के भवन या मन्दिर में ही कन्या विद्यालयों की स्थापना कर दी जाती थी। अनेक आर्य कन्या पाठशालाएँ अब वड़े गर्ल्स इण्टर कॉलिजों के रूप में विकसित हो गयी हैं, और उनमें विविध धर्मों व सम्प्रदायों की सैकड़ों हजारों छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आर्यसमाज मन्दिरों का वहुत वड़ा भाग इन शिक्षणालयों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, और एक छोटा-सा भाग ही आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग व अन्य धार्मिक कार्यों के लिए ही शेष रहता है। वस्तुतः, कितने ही आर्यसमाज भवन अब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्यतया शिक्षण-संस्थाओं के ही प्रयोग में आ रहे हैं, ऐसी संस्थाओं के जिनमें बहुसंख्यक शिक्षक आर्यसमाजी नहीं हैं, और जिनके विद्यार्थियों में भी अन्य धर्मों के अनुयायियों की संख्या पर्याप्त अधिक है। इस दशा में इन संस्थाओं का वातावरण आर्यसमाज की मान्यताओं के अनुरूप नहीं रह पाता, और इस बात का प्रभाव आर्यसमाज के अन्य कार्य-कलाप पर भी पड़ता है।

स्कूलों और कॉलिजों के शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों का यह प्रयत्न भी रहता है, कि सरकार इन संस्थाओं को अपने स्वत्त्व में ले ले, जिससे कि उनकी अपनी स्थिति सरकारी सर्विस के व्यक्तियों की हो जाए। वे अपनी सर्विस की सुरक्षा एवं अधिकारों की दृष्टि से सरकार की सेवा में रहना अधिक अच्छा समझते हैं। शिक्षक संघों द्वारा इसके लिए निरन्तर आन्दोलन भी किये जाते हैं, और उन्हें अपने प्रयत्न में धीरे-धीरे सफलता भी प्राप्त होती जा रही है। वह दिन दूर नहीं है, जब आर्य शिक्षण-संस्थाओं को राष्ट्रीय-करण या सरकारीकरण की समस्या का भी सामना करना पड़ेगा। आर्यसमाज ने शिक्षा के प्रसार के लिए जो प्रयत्न किये थे, जो धनराशि उसके लिए खर्च की थी, उसका प्रयोजन यही था, कि बालकों और बालिकाओं को सामान्य शिक्षा के साथ-साथ अपने धर्म एवं संस्कृति से परिचित होने का भी अवसर मिले और देश के प्राचीन परम्परागत आदर्शों तथा नैतिक मान्यताओं के अनुरूप वे अपने जीवन को ढाल सकें। पर स्वतन्त्र भारत के संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष (secular) देश है, और इसके शिक्षणालयों में किसी धर्मविशेष की शिक्षा नहीं दी जा सकती, अथवा यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि कोई शिक्षण-संस्था अपने विद्यार्थियों को किसी सम्प्रदाय व धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित करने का प्रयत्न करे। जिन शिक्षण-संस्थाओं का संचालन राज्य द्वारा होता हो, या जिनका सब खर्च राजकीय आमदनी से किया जाता हो, उनमें तो किसी धर्मविशेष की शिक्षा दी ही नहीं जा सकती। पर जिन शिक्षणालयों का संचालन धार्मिक समाजों व संगठनों द्वारा किया जाता हो, वे सरकारी अनुदान प्राप्त करते हुए भी धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं, बशर्ते कि वे अपने सब विद्यार्थियों के लिए धर्म की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य न रखें। यदि कोई विद्यार्थी चाहे, तो वह शिक्षणालय द्वारा आयोजित प्रार्थना, उपदेश आदि में सम्मिलित न हो और उसे धर्मशिक्षा व धार्मिक कृत्यों के लिए विवश न किया जा सके। संविधान की इस व्यवस्था के अनुसार आर्यसमाज द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं में धर्मशिक्षा, सन्ध्या-हवन व उपदेश आदि की व्यवस्था की तो जा सकती है, पर किसी विद्यार्थी, शिक्षक व कर्मचारी को उनमें सम्मिलित होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। यह व्यवस्था केवल उन संस्थाओं के लिए है, जो सरकारी सहायता प्राप्त करती हैं। पर आर्यसमाज के प्रायः सभी शिक्षणालय अब सरकारी अनुदान प्राप्त कर रहे हैं, अतः उन सब पर यह नियम लागू है। ये सब कारण हैं, जिनसे कि अब आर्य स्कूलों और कॉलिजों द्वारा वह प्रयोजन सिद्ध होने में कठिनाई उपस्थित हो रही है, जिसके लिए कि उनकी स्थापना की गई थी। इसीलिए अनेक व्यक्ति इन संस्थाओं की आर्यसमाज के लिए उपयोगिता पर भी सन्देह करने लग गये हैं, और उनका यह विचार होने लगा है कि आर्यसमाज को इन पर अपनी शक्ति, समय तथा धन का व्यय नहीं करना चाहिये।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) अल्पसंख्यक वर्गों के शिक्षाविषयक विशेष अधिकार

भारत एक वहुत बड़ा देश है। इसमें अनेक धर्मों के अनुयायी निवास करते हैं, वहुत-सी भाषाएँ वोली जाती हैं, और अनेक संस्कृतियों की सत्ता है। धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, और संस्कृति आदि की दृष्टि से भारत के निवासियों में अनेकविध विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। जनता की इन विभिन्नताओं को दृष्टि में रखकर भारत के संविधान (धारा २९ और ३०) में कुछ व्यवस्थाएँ की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं—(१) नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को, जिसकी अपनी पृथक् भाषा, लिपि एवं संस्कृति है, यह अधिकार है कि वह अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को कायम रख सके। (२) राज्य द्वारा संचालित या राज्य द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाली किसी शिक्षण-संस्था में प्रवेश पाने से किसी नागरिक को धर्म, जाति या भाषा के आधार पर रोका नहीं जा सकता। (३) सब अल्पसंख्यक वर्गों को, चाहे वे भाषा पर आधारित हों या धर्म पर, यह अधिकार है कि वे अपनी शिक्षण-संस्थाओं को स्थापित कर सकें और स्वयं अपने प्रवन्ध में उनका संचालन कर सकें। शिक्षण-संस्थाओं को आर्थिक सहायता देते हुए राज्य इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा, कि वे धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रवन्ध व संचालन में हैं। संविधान की यह व्यवस्था अत्यन्त महत्त्व की है। एंग्लो-इण्डियन लोगों का भारत में एक ऐसा वर्ग है, जो अपनी भाषा अंग्रेजी मानता है। उन्हें यह अधिकार प्राप्त है कि वे ऐसी शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित कर सकें व उनका संचालन कर सकें, जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो। धर्म के आधार पर भी भारत में अनेक अल्पसंख्यक वर्ग हैं। इस देश के वहुसंख्यक निवासी हिन्दू हैं, क्रिश्चिएनिटी, इस्लाम आदि के अनुयायी अल्पसंख्या में हैं। इन अल्पसंख्यक वर्गों को भी यह अधिकार प्राप्त है, कि वे अपने विचारों व मान्यताओं के अनुरूप शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित कर सकें, और उनकी व्यवस्था एवं संचालन भी सरकार के नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप के विना वे स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकें। क्योंकि भारत में ईसाई लोग अल्पसंख्या में हैं, अतः वे ऐसे शिक्षणालय खोल सकते हैं जिनमें क्रिश्चिएनिटी का वातावरण हो, ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती हो और छात्र-छात्राओं को हज़रत ईसा के मन्तव्यों से प्रभावित करने का प्रयत्न किया जाता हो। अल्प-संख्यक वर्गों की इन शिक्षण-संस्थाओं को सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में उनके धर्म के कारण कोई बाधा नहीं है।, ईसाइयों द्वारा संचालित शिक्षणालयों में वहुसंख्या उन विद्यार्थियों की है, जो प्रायः हिन्दू हैं। पर ईसाई धर्म के वातावरण में शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे क्रिश्चिएनिटी तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने लगते हैं। वस्तुतः, इन संस्थाओं की स्थापना क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा की भी इसी प्रयोजन से गयी है। क्योंकि सरकार इन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करती है, अतः वह भी परोक्ष रूप से क्रिश्चिएनिटी तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रचार में सहायक होती है।

किसी समय आर्यसमाज ने भी अपने शिक्षणालयों का वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया था। आर्य शिक्षणालय भारत के चाहे किसी भी भाग में स्थापित क्यों न हों, वहाँ आर्य भाषा (हिन्दी) पढ़ाई जाती थी, वेदमन्त्रों से प्रार्थना की जाती थी और विद्यार्थियों को महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों से परिचित कराया जाता था। यह भी ध्यान में रखा जाता था, कि आर्य शिक्षण-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थाओं में ऐसे ही अध्यापकों को नियुक्त किया जाए जो वैदिक धर्म में आस्था रखते हों और जिनका जीवन आर्यसमाज के मन्तव्यों के अनुसार सदाचारमय हो। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए, कि आर्यसमाजियों का भी एक अल्पसंख्यक वर्ग है, उनके भी अपने धार्मिक मन्तव्य हैं और उनकी भी अपनी विशिष्ट भाषा है, तो धर्म और भाषा के आधार पर उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग मान कर उनके शिक्षणालयों को भी उसी ढंग की स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है, जैसी कि क्रिश्चियन संस्थाओं को प्राप्त है। उस दशा में आर्यसमाज भविष्य में भी शिक्षणालयों को अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रचार में सहायक के रूप में प्रयुक्त कर सकता है, और शिक्षण-संस्थाओं को स्थापित व संचालित करना महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन को पूरा करने में सहायता दे सकता है। अन्यथा आर्यसमाज की दृष्टि से भविष्य में उन सैकड़ों शिक्षण-संस्थाओं का कोई उपयोग नहीं रह जाएगा, जिनका इस ग्रन्थ में परिचय दिया गया है, और जो अब तक आर्यसमाज के कार्यकलाप का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग रही हैं।

(३) क्या आर्यसमाज एक अल्पसंख्यक वर्ग है?

स्वतन्त्र भारत के संविधान में अल्पसंख्यक वर्गों को सरकारी नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप के बिना स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी शिक्षण-संस्थाओं के प्रवन्ध और संचालन का जो अधिकार दिया गया है, आर्यसमाज उसका उपयोग तभी कर सकता है, जब उसे भी एक अल्पसंख्यक वर्ग मान लिया जाए। अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में आर्यसमाज की स्थिति अभी विवादास्पद है। यह विषय सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत है, और अभी इस पर निर्णय होना शेष है। पर इस सम्बन्ध में वर्तमान समय में जो स्थिति है, उस पर संक्षेप के साथ प्रकाश डालना इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न की गम्भीरता तथा जटिलता को समझने में सहायक होगा।

आर्यसमाज के अल्पसंख्यक वर्ग होने का प्रश्न निर्णय के लिए सबसे पहले सन् १६५८ में पटना हाईकोर्ट के समक्ष प्रस्तुत हुआ था। मीठापुर (पटना) में दयानन्द कन्या विद्यालय नाम की एक संस्था है, जिसका प्रवन्ध व संचालन आर्य प्रतिनिधि सभा, बिहार द्वारा किया जाता था और उसकी सब सम्पत्ति प्रतिनिधि सभा के नाम पर रजिस्टर्ड थी। विद्यालय की व्यवस्था के लिए सभा द्वारा एक प्रबन्ध-समिति भी गठित की हुई थी। मार्च, १६५७ में बिहार राज्य के शिक्षा निदेशक ने इस विद्यालय के प्रवन्ध के लिए एक तदर्थ (एड हॉक) कमेटी नियुक्त कर दी और यह आदेश जारी कर दिया कि विद्यालय का प्रबन्ध इस कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाए। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार की ओर से हाईकोर्ट के सम्मुख एक याचिका प्रस्तुत की गई, जिसमें शिक्षा निदेशक के आदेश को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित करने की प्रार्थना की गई थी, कि इस द्वारा संविधान की धारा (३०) में प्रदत्त अधिकार का व्याघात होता है। धारा ३० में अल्पसंख्यक वर्गों को सरकारी हस्तक्षेप के बिना स्वतन्त्रतापूर्वक अपने शिक्षणालयों के प्रबन्ध व संचालन का अधिकार दिया गया है। याचिका में यह कहा गया था, कि आर्य प्रतिनिधि सभा आर्यसमाज के अनुयायियों की रजिस्टर्ड संस्था है और उस द्वारा संचालित इस शिक्षणालय में वैदिक धर्म व संस्कृति को सुरक्षित रखने की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती है, वैदिक मन्त्रों से प्रार्थना की जाती है और सप्ताह में एक बार यज्ञ का अनुष्ठान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। ये सब बातें विद्यालय के पाठ्यक्रम व शिक्षा की अभिन्न अंग हैं। अतः दयानन्द कन्या विद्यालय को अल्पसंख्यक वर्ग की शिक्षण-संस्था स्वीकार किया जाना चाहिये और सरकार द्वारा उसके प्रबन्ध व संचालन में हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित है। हाई कोर्ट ने आर्य प्रतिनिधि सभा की याचिका को स्वीकार करते हुए यह निर्णय दिया, कि दयानन्द कन्या विद्यालय एक अल्पसंख्यक वर्ग की शिक्षण-संस्था है, अतः संविधान की २९ तथा ३० धाराओं द्वारा प्रदत्त स्वायत्तता के सब अधिकार उसे प्राप्त हैं। सरकार को यह अधिकार नहीं है, कि वह उसके प्रबन्ध के लिए तदर्थ कमेटी की नियुक्ति कर सके। यदि शिक्षणालय का कार्य असन्तोषजनक हो या वहाँ कोई अन्य प्रकार की कमियाँ हों, तो सरकार को यह अधिकार अवश्य है कि उसकी मान्यता की समाप्ति कर दे। पर क्योंकि वह एक अल्पसंख्यक वर्ग (आर्यसमाज) की संस्था है, अतः उसके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का उसे अधिकार नहीं है।

सन् १९६३ में इसी ढंग का एक अन्य वाद पटना हाईकोर्ट के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। इस वाद का निर्णय करते हुए हाईकोर्ट ने ब्राह्मसमाज को एक अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार किया, और यह कहा कि धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों को संविधान की धारा ३० के अधीन जो विशेष आधारभूत अधिकार प्रदान किये गये हैं, वे ब्राह्मसमाज को भी प्राप्त हैं। इस निर्णय में सन् १९५८ में आर्य प्रतिनिधि सभा, विहार को अल्पसंख्यक वर्ग मानने का जो फैसला हाईकोर्ट ने किया था, उसे भी उल्लिखित किया गया था। ब्राह्मसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार करते हुए हाईकोर्ट ने कहा था, कि यद्यपि यह समाज अधिक बड़ा नहीं है, पर इसका अपना पृथक् चर्च है, पृथक् सिद्धान्त व मान्यताएँ हैं, और हिन्दू व अन्य धर्मों से इसकी पृथक् सत्ता है। आर्यसमाज के लिए पटना हाई कोर्ट के इन दोनों निर्णयों की अत्यधिक महत्ता है। इनमें आर्यसमाज को स्पष्ट रूप से 'अल्पसंख्यक वर्ग' स्वीकार किया गया है, जिसके कारण उसे संविधान की धारा ३० के अधीन सरकारी हस्तक्षेप के बिना अपनी शिक्षण-संस्थाओं के प्रबन्ध व संचालन के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इन निर्णयों का महत्त्व इस कारण और भी अधिक है, क्योंकि ये एक ऐसे राज्य के हाईकोर्ट द्वारा किये गये हैं, जहाँ हिन्दुओं की बहुसंख्या है। इनके अनुसार हिन्दूबहुल राज्यों में भी धर्म के आधार पर आर्यसमाज को हिन्दुओं से पृथक् मान लिया गया है, और उसकी स्थिति हिन्दुओं के अंग रूप एक सम्प्रदाय की न होकर एक पृथक् धार्मिक समुदाय की स्वीकृत कर ली गई है।

अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में आर्यसमाज की स्थिति का प्रश्न सर्वोच्च (सुप्रीम) न्यायालय के सम्मुख भी प्रस्तुत हुआ था। पंजाब के अनेक डी० ए० वी० कॉलिज गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी के क्षेत्र में हैं, और उसके साथ सम्बद्ध हैं। भटिण्डा तथा जालन्धर के डी० ए० वी० कॉलिजों की मैनेजिंग कमेटियों के गठन के सम्बन्ध में कतिपय शर्तें लगाने का गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी को अधिकार है, यह यूनिवर्सिटी का दावा था। साथ ही, उसका यह भी मत था, कि इन कॉलिजों के आचार्यों तथा प्राध्यापकों की नियुक्ति के विषय में भी कतिपय शर्तें लगा सकना उसके अधिकार-क्षेत्र में है। पर डी० ए० वी० कॉलिजों के संचालक इसे स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे। वे इन कॉलिजों को अल्पसंख्यक वर्ग की शिक्षण-संस्थाएँ मानते थे, और इस कारण यह समझते थे कि इनकी मैनेजिंग कमेटियों के गठन तथा आचार्यों व प्राध्यापकों की नियुक्तियों के सम्बन्ध में उन्हें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। यह मामला सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत हुआ, और उस द्वारा जो निर्णय दिया गया उसमें आर्यसमाज की अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में स्थिति स्पष्ट रूप से स्वीकृत कर ली गई। यह करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका तथा इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन एण्ड ईथिक्स से आर्यसमाज विषयक कुछ उद्धरण दिये हैं, जिनमें यह कहा गया है कि आर्यसमाज मूर्तिपूजा के विरुद्ध है, एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है, जात-पाँत को नहीं मानता और वर्ण या जाति को गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार निर्धारित करने के पक्ष में है, और पुरोहित वर्ग का प्रभुत्व भी उसे स्वीकार्य नहीं है। वह वेदों को प्रमाण रूप से मानता है, पर वेदमन्त्रों के वही अर्थ व अभिप्राय उसे स्वीकार्य हैं जो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उनके किये हैं। केवल ऐसे व्यक्ति ही आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकते हैं, जो उसके मन्तव्यों तथा मान्यताओं को स्वीकार करने को उद्यत हों। ईसाई व मुसलिम सदृश अन्य धर्मों के अनुयायी भी शुद्धि द्वारा आर्यसमाज के सदस्य बन सकते हैं। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय किया, कि "क्योंकि आर्यसमाज ने स्मृतिग्रन्थों तथा पौराणिक अनुश्रुतियों में पायी जाने वाली अनेक असंगत बातों को अमान्य घोषित कर दिया है, और एक विशुद्ध तथा युक्तियुक्त धर्म का आधार प्रारम्भिक साहित्य में माना है, अतः उसे एक अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग स्वीकृत किया जा सकता है।" क्योंकि विचाराधीन मामलों का सम्बन्ध पंजाब के साथ था, अतः सुप्रीम कोर्ट ने इतना और जोड़ दिया था, कि क्योंकि पंजाब में हिन्दू अल्पसंख्या में हैं और आर्यसमाज भी हिन्दुओं का एक भाग है, अतः इस कारण भी वह वहाँ एक अल्पसंख्यक वर्ग है।

जालन्धर और भटिण्डा के डी० ए० वी० कॉलिजों के मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने जो निर्णय दिये थे, उनमें आर्यसमाज को असन्दिग्ध रूप से अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार कर लिया गया था—केवल अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग ही नहीं, अपितु भाषा एवं लिपि के आधार पर भी अल्पसंख्यक वर्ग। पंजाब में पंजाबी भाषा बोली जाती है, हिन्दू और आर्यसमाजी भी पंजाबी बोलते हैं। पर सिक्ख अपनी लिपि गुरुमुखी मानते हैं, जो आर्यसमाज को स्वीकार्य नहीं है। आर्यसमाज हिन्दी को अपनी भाषा तथा देवनागरी को अपनी लिपि मानता है। डी० ए० वी० कॉलिज, भटिण्डा के केस का निर्णय करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह भी स्वीकार किया है, कि भाषा व लिपि के आधार पर भी आर्यसमाज एक अल्पसंख्यक वर्ग है। इस प्रकार धर्म और भाषा दोनों के आधार पर आर्यसमाज अल्पसंख्यक वर्ग होने का दावा कर संविधान की धारा २९ (१) और ३० के अधीन सरकारी हस्तक्षेप के विना अपनी शिक्षण-संस्थाओं को अपने ढंग से चला सकता है।

सन् १९७३ में दिल्ली के संघ-क्षेत्र के स्कूलों के लिए सरकार द्वारा जो 'देहली स्कूल एजुकेशन एक्ट' स्वीकार किया गया था, उसमें स्कूलों के प्रबन्ध एवं संचालन के सम्बन्ध में अनेक ऐसी व्यवस्थाएँ की गई थीं, जिनके कारण उनकी प्रबन्ध-कमेटियों की स्वतन्त्रता में बाधाएँ उपस्थित होती थीं। उदाहरणार्थ, इस एक्ट के अनुसार यह आवश्यक था, कि स्कूल में विद्यार्थियों का प्रवेश उनकी योग्यता के आधार पर किया जाये। पर जो स्कूल ईसाई, सिक्ख, जैन आदि विविध वर्गों द्वारा संचालित थे, उनका मत था कि उन्हें अपने धर्म व वर्ग के विद्यार्थियों को अपने स्कूलों में प्रविष्ट करने का अधिकार होना चाहिये, चाहे योग्यता की दृष्टि से वे अन्य वर्गों के विद्यार्थियों की तुलना में पीछे ही क्यों

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हों। इसी प्रकार शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति एवं पदच्युति आदि के सम्बन्ध में भी एक्ट द्वारा कतिपय ऐसे प्राविधान किये गये थे, जो इन वर्गों को स्वीकार्य नहीं थे। वे समझते थे, कि संविधान की धारा २९ और ३० के अनुसार अपनी शिक्षण-संस्थाओं के स्वेच्छापूर्वक संचालन के जो अधिकार उन्हें प्राप्त हैं, इस एक्ट द्वारा उन्हें व्याघात पहुँचता है। यही विचार आर्यसमाज का भी था। इसीलिए सन् १९७४ में आर्यसमाज एजुकेशन ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा देहली स्कूल एजुकेशन एक्ट के विरुद्ध देहली हाईकोर्ट के समक्ष दावा दायर किया गया। पर उसका निर्णय आर्यसमाज के प्रतिकूल हुआ। हाईकोर्ट को जैन, ईसाई और सिक्ख लोगों का अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग होना तो स्वीकार्य था, पर आर्यसमाज का नहीं। उसके मत में आर्यसमाज हिन्दू धर्म का ही अंग है, उससे पृथक् रूप में उसकी सत्ता नहीं है। देहली हाईकोर्ट के इस निर्णय से पहले सुप्रीम कोर्ट आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार कर चुका था। हाईकोर्ट को अपने से उच्चतर न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध फैसला देने का आधार नहीं था। पर जिस भाषा में सुप्रीम कोर्ट ने आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार किया था, उसके अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए देहली हाईकोर्ट का यह कहना था, कि आर्यसमाज को पंजाब में अल्प-संख्यक वर्ग माना गया है, अन्य राज्यों या सम्पूर्ण भारत में नहीं। हाईकोर्ट ने जिस युक्ति-परम्परा द्वारा सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को केवल पंजाब तक के लिए सीमित माना, उसका उल्लेख कर सकना हमारे लिए यहाँ सम्भव नहीं है। पंजाब में तो हिन्दू अल्पसंख्यक हैं ही। जब वहाँ हिन्दू भी अल्पसंख्यक हैं, तो आर्यसमाजी तो स्वतः ही अल्पसंख्यक हो जाते हैं। पंजाब सरकार भी हिन्दुओं के अल्पसंख्यक होने की बात को स्वीकार करती है। अतः यदि सुप्रीम कोर्ट को आर्यसमाज के पंजाब में अल्पसंख्यक वर्ग होने के पक्ष में ही निर्णय देना अभिप्रेत होता, तो धार्मिक मन्तव्यों, पूजाविधि आदि की पृथक्ता प्रदर्शित कर आर्य-समाज को अल्पसंख्यक वर्ग प्रतिपादित करने की कोई आवश्यकता न होती। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से पहले आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग मानकर फिर यह भी जोड़ दिया है कि जहाँ तक पंजाब का सम्बन्ध है, वहाँ तो वह अल्पसंख्यक वर्ग है ही, क्योंकि वह जिन हिन्दुओं का अंग है, वे भी वहाँ अल्पसंख्या में हैं।

दिल्ली के हाईकोर्ट द्वारा आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग न मानने का यह परिणाम हुआ है, कि इस संघ-क्षेत्र में डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी, आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली और दिल्ली केन्द्रीय सभा आदि आर्य संगठन जिन शिक्षण-संस्थाओं का संचालन कर रहे हैं, वे सरकारी नियन्त्रण व हस्तक्षेप से विरहित नहीं रह गयी हैं। देहली हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में आर्यसमाज ने अपीलें दायर की हुई हैं, और सामयिक रूप से स्थगनादेश भी प्राप्त कर लिये गये हैं। पर जब तक सुप्रीम कोर्ट द्वारा इन अपीलों का निर्णय नहीं कर दिया जाता, आर्यसमाज की अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग की स्थिति विवादास्पद ही बनी रहेगी, और आर्यसमाज अपनी शिक्षण-संस्थाओं के भविष्य के विषय में निश्चिन्त नहीं हो सकेगा।

धार्मिक संगठन के रूप में आर्यसमाज की क्या स्थिति है, इस विषय में मतभेद की गुंजाइश है। यह तो स्पष्ट है, कि न तो वह क्रिश्चिएनिटी व इस्लाम के समान एक धर्म या सम्प्रदाय है, और न दादू पन्थ व कबीर पन्थ आदि के समान एक मत या पन्थ। उसकी स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा कतिपय उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गई थी, जो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज के दस नियमों में प्रतिपादित हैं। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, जो सबकी 'शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति' द्वारा ही सम्भव है। महर्षि वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को पुनः स्थापित करना चाहते थे। उनका मन्तव्य था, कि महाभारत युद्ध के पश्चात् वैदिक धर्म में जो अनेकविध विकृतियाँ उत्पन्न हो गईं, उन्हीं के कारण आर्यों और आर्यावर्त्त का अधःपतन हुआ। संसार का उपकार तभी किया जा सकता है, जबकि वैदिक धर्म के वास्तविक रूप की पुनः स्थापना की जाये और सब कोई उसकी शिक्षाओं के अनुसार अपनी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक (सामूहिक) उन्नति के लिए प्रयत्न करें। महर्षि ने वैदिक धर्म के जिस वास्तविक व सत्यरूप का प्रतिपादन किया है, वह प्रचलित हिन्दू धर्म से बहुत भिन्न है। उसमें न मूर्तिपूजा को स्थान है, न अवतारवाद को और न बहुत-से देवी-देवताओं में विश्वास को। उसके अनुसार ईश्वर एक है, जिसकी न मूर्ति होती है और जो न अवतार लेता है। प्रचलित हिन्दू धर्म के प्रायः सभी सम्प्रदाय देवी-देवताओं की सत्ता में विश्वास रखते हैं और राम, कृष्ण आदि की ईश्वर के अवतार के रूप में पूजा करते हैं। उनकी पूजा व उपासना-विधि का मुख्य रूप मन्दिरों में ईश्वर व उसके अवतारों की मूर्तियों को स्थापित कर उन पर नैवेद्य चढ़ाना है। प्रचलित हिन्दू धर्म का सामाजिक संगठन जात-पाँत और ऊँच-नीच के भेदों पर आधारित है, और मनुष्यों की सामाजिक स्थिति उनके जन्म के आधार पर निर्धारित होती है। पौरोहित्य व पूजा-अनुष्ठान का कार्य केवल ऐसे व्यक्ति ही कर सकते हैं जिनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ हो। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दुओं की इन सब मान्यताओं को वेदविरुद्ध निरूपित किया। यही कारण है, कि आर्यसमाज के सिद्धान्त, दार्शनिक मन्तव्य, पूजा की विधि, और समाज संगठन के विचार सब हिन्दुओं से अत्यधिक भिन्न हैं। प्रचलित हिन्दू धर्म की मान्यताओं का आधार पुराण, धर्मसूत्र, स्मृतियाँ आदि हैं, जिनकी रचना बाद के काल में हुई थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती केवल वेदों को प्रमाणरूप स्वीकार करते थे, और उनके सब मन्तव्य वेदों पर आधारित हैं। आर्यसमाज भी केवल वेदों को ही स्वतः प्रमाण मानता है। जहाँ तक धार्मिक सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का सम्बन्ध है। आर्यसमाज हिन्दुओं से बहुत कम बातों में समता रखता है। उसका प्रयत्न है, कि वेदों के वास्तविक अभिप्राय को भुलाकर सत्य सनातन आर्य धर्म में जो विकृतियाँ आ गई हैं, उन्हें दूर कर पुनः वैदिक धर्म के वास्तविक विशुद्ध रूप को पुनः स्थापित किया जाए। आर्यसमाज का यह भी विश्वास है, कि क्रिश्चिएनिटी, इस्लाम, जैन धर्म, बौद्ध धर्म आदि जो भी विविध धर्म इस समय संसार में हैं या पहले रहे हैं, उन सब का उद्गम भी वेदों से ही हुआ है। वे भी वैदिक धर्म में उत्पन्न हुई विकृतियों के ही परिणाम हैं। अतः इनकी विकृतियों को दूर कर उनका भी वैदिक धर्म में विलय किया जा सकता है। इसी कारण महर्षि ने शुद्धि की परम्परा का पुनः प्रारम्भ किया था, और आर्यसमाज भी अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने में सम्मिलित करने के लिए तत्पर है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए, तो आर्यसमाज को हिन्दुओं का अंग कहना भी सम्भव नहीं होगा। यह तो स्पष्ट ही है कि वह कोई सम्प्रदाय, मत या पन्थ नहीं है। वह एक आन्दोलन है, एक संगठन है, एक समाज है, जिसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मनुष्यों की वैयक्तिक (शारीरिक और आत्मिक) तथा सामाजिक (सामूहिक) उन्नति के लिए सब प्रकार के प्रयत्न आर्यसमाज को करने हैं। शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना भी इसी प्रयत्न का एक अंग है। संसार के उपकार के उद्देश्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सम्मुख रखकर आर्यसमाज जिन शिक्षणालयों की स्थापना करेगा (चाहे वे सामान्य प्रचलित शिक्षा के लिए हों, और चाहे वेदशास्त्रों के विशेष रूप में अध्ययन-अध्यापन के लिए), उनका अपना विशिष्ट रूप होगा। उनका संचालन कतिपय सुस्पष्ट उद्देश्यों व प्रयोजनों से किया जाएगा। अतः यह आवश्यक होगा कि उनकी व्यवस्था तथा संचालन में आर्यसमाज को स्वतन्त्रता प्राप्त रहे, सरकार उनमें हस्तक्षेप न करे। शिक्षा के क्षेत्र में जिस प्रकार की स्वतन्त्रता व स्वायत्तता ईसाइयों को प्राप्त है, वैसी ही आर्यसमाज को भी प्राप्त होनी चाहिये। यह तभी सम्भव है, जब आर्यसमाज को एक अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार कर लिया जाए, क्योंकि संविधान के अनुसार स्वतन्त्रता का यह अधिकार केवल अल्पसंख्यक वर्गों के लिए ही है। धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं, पूजाविधि तथा समाजसंगठन आदि में आर्यसमाज अन्य हिन्दुओं से इतना अधिक भिन्न है, कि संविधान के प्रयोजन से उसे अल्पसंख्यक वर्ग मानना सर्वथा युक्तियुक्त व उचित है। आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में स्वीकृत कर लिये जाने पर ही उस द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाएँ फल-फूल सकती हैं, और सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहने पर भी वे अपनी विशेषताओं को कायम रखते हुए आर्यसमाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होने के अपने प्रयोजन को सिद्ध कर सकती हैं।

यदि यह सम्भव न हो, यदि अन्ततोगत्वा आर्यसमाज को अल्पसंख्यक वर्ग न माना जाए, तो उसकी शिक्षण-संस्थाओं के सम्मुख ये मार्ग रह जाते हैं—(१) सरकारी सहायता पर निर्भर न कर अपने साधनों द्वारा शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया जाये। यह कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं है। गुरुकुल और डी० ए० वी० शिक्षणालय सभी चिर काल तक सरकारी अनुदान के बिना ही अपने खर्च चलाते रहे हैं। (२) संविधान में ऐसे संशोधन कराने के लिए आन्दोलन किया जाए, जिनसे बहुसंख्यक वर्ग को भी अपनी शिक्षण-संस्थाओं के प्रबन्ध व संचालन में स्वायत्तता के वे सब अधिकार प्राप्त हो जायें, जो वर्तमान समय में अल्पसंख्यक वर्गों को प्राप्त हैं। भारत लोकतन्त्रवादी देश है, उसका संविधान जनता के प्रतिनिधियों द्वारा जनता की इच्छा के अनुसार ही बनाया गया है। जनता के प्रतिनिधि उसमें संशोधन भी कर सकते हैं। यह सर्वथा अनुचित व अन्याय है, कि ईसाई मिशनरी तो शिक्षण-संस्थाओं को अपने धर्म व संस्कृति के प्रचार के साधन के रूप में प्रयुक्त कर सकें, और आर्यसमाज को यह अवसर न मिले, यद्यपि वह भी वैदिक धर्म के प्रचार के लिए एक मिशनरी संगठन ही है। (३) जिन राज्यों में हिन्दुओं की बहुसंख्या है, उनमें शिक्षाविषयक कानूनों में ऐसे संशोधन कराये जायें, जिनके कारण गैरसरकारी (प्राइवेट) स्कूलों के प्रबन्ध व संचालन में शिक्षा विभाग के पदाधिकारी अधिक हस्तक्षेप न कर सकें। लोकतन्त्रवादी सरकारों की कार्यनीति का निर्धारण जनता की इच्छा के अनुसार ही किया जाता है, कानून भी लोकमत के अनुरूप ही होते हैं। आर्यसमाज जैसा सशक्त संगठन लोकमत का इस ढंग से निर्माण कर सकता है, और विविध राजनीतिक पार्टियों की नीतियों तथा कार्यक्रमों को इस प्रकार प्रभावित कर सकता है, कि संसार का उपकार और सब की शारीरिक, आत्मिक तथा सामूहिक उन्नति के जिस महान् उद्देश्य को सम्मुख रखकर शिक्षणालयों की स्थापना को आर्यसमाज ने अपने कार्यकलाप का अंग बनाया है, सरकार का कोई कानून व आदेश उसकी पूर्ति में बाधक न होने पाये।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छब्बीसवाँ अध्याय

विदेशों में आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना

(१) विदेशों में बसे हुए भारतीय मूल के लोग

पाश्चात्य साम्राज्यवाद का विकास विश्व के आधुनिक इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। व्यापारिक और औद्योगिक क्रान्तियाँ पहले-पहले पश्चिमी यूरोप के देशों में हुई थीं, जिनके कारण इनके हाथों में ऐसे साधन आ गये थे जिन द्वारा ये एशिया और अफ्रीका के पिछड़े हुए लोगों को अपने अधीन कर वहाँ अपने साम्राज्य का विस्तार कर सकते थे। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, नीदरलैण्ड, बेल्जियम और स्पेन आदि यूरोपियन देश एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के बहुत-से प्रदेशों को अपने प्रभुत्व में ला चुके थे और पाश्चात्य साम्राज्यवाद चरम उत्कर्ष तक पहुँच गया था। ऐतिहासिक परिस्थितियों से विवश होकर जब पाश्चात्य लोग नये-नये प्रदेशों की खोज में तत्पर हुए, तो उन्हें अमेरिका और अफ्रीका के विशाल महाद्वीपों का पता लगा। जिनकी आबादी बहुत कम थी और उनमें जिन लोगों का निवास था, सभ्यता की दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए थे। यूरोपियन लोगों ने इन्हें अपने अधीन कर और इनकी भूमि पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके ही सन्तोष अनुभव नहीं किया, अपितु यह भी प्रयत्न किया कि उनको समूल नष्ट कर दिया जाये। मध्य और दक्षिणी अमेरिका में मय, एजटेक और इन्का की जो सभ्यताएँ थीं, यूरोपियन विजेताओं ने उन्हें पूर्णतया नष्ट कर दिया, और उनके प्रदेशों में अपनी बस्तियाँ बसानी प्रारम्भ कर दीं। उत्तरी अमेरिका के वास्तविक निवासियों को भी उन्होंने अपना शिकार बनाया, और उनका विनाश कर उनकी भूमि को हस्तगत कर लिया। यही नीति अफ्रीका, मॉरीशस, फीजी, वेस्ट इण्डीज, गुयाना आदि में अपनायी गयी। इस प्रकार पृथिवी के अनेक ऐसे प्रदेश व द्वीप पाश्चात्य लोगों के हाथ में आ गये, जिनमें प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता थी। उनकी भूमि उपजाऊ थी, जंगल कीमती लकड़ी के वृक्षों से परिपूर्ण थे और उनके भू-गर्भ में अपार खनिज सम्पत्ति विद्यमान थी। इन प्राकृतिक साधनों को सुचारु रूप से प्रयुक्त कर अनन्त धन कमाया जा सकता था। पर इसके लिए मानव-श्रम की आवश्यकता थी। कृषि के लिए खेतिहर चाहिये थे, जंगल काटने के लिए मजदूरों की जरूरत थी और खानें खोदने के लिए मानव-श्रम अपेक्षित था। अमेरिकन महाद्वीप आदि के वास्तविक निवासियों को यूरोपियन विजेताओं ने प्रायः पूर्णतया नष्ट कर दिया था। उनके श्रम से वे कोई लाभ नहीं उठा सकते थे। अतः मानव-श्रम की समस्या को हल करने के लिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले दासप्रथा का आश्रय लिया गया। अफ्रीका के जंगलों में निवास करने वाले लोगों को पकड़-पकड़कर उन देशों में ले जाया जाने लगा, जहाँ श्रमिकों की आवश्यकता थी और वहाँ उन्हें दास के रूप में बेचना शुरू किया गया। इन दासों को पशुओं के समान खरीदा-बेचा जाता था, और खेती आदि के सब काम इनसे लिये जाते थे। अमेरिका महाद्वीप, अफ्रीका व अन्यत्र यूरोप के लोगों ने अपनी जो बहुत-सी बस्तियाँ कायम की थीं, उनमें मानव-श्रम के सब कार्य दासों द्वारा लिये जाते थे, और उनके गौरांग स्वामी सुखभोग व वैभव का जीवन बिताया करते थे।

पर फ्रांस की राज्यक्रान्ति (सन् १७७६) द्वारा संसार के इतिहास में जिन नयी प्रवृत्तियों व विचारों का प्रादुर्भाव हुआ, दासप्रथा की सत्ता को उनके कारण सर्वथा अनुचित व अमानुषिक माना जाने लगा। धीरे-धीरे विश्व का लोकमत इस प्रथा के विरुद्ध हो गया, और सन् १८३४ में दासों को स्वतन्त्र कर इस घृणित प्रथा का अन्त कर दिया गया। अब समस्या यह उत्पन्न हुई, कि अमेरिका, अफ्रीका आदि के यूरोपियन लोगों द्वारा अधिकृत प्रदेशों में मानव-श्रम किस प्रकार प्राप्त किया जाये। दासप्रथा का अन्त हो जाने के कारण उन लोगों का कारोबार समाप्त हो गया था, जो अफ्रीका के जंगलों से स्त्रियों-पुरुषों व बच्चों को पकड़कर दास के रूप में बेचा करते थे और जिन द्वारा यूरोपियन भूमिपति अपने खेतों आदि के लिए आवश्यक मानव-श्रम प्राप्त कर लेते थे। साम्राज्य विस्तार में सबसे अधिक सफलता ब्रिटिश लोगों को प्राप्त हुई थी। दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका उनके प्रभुत्त्व में थे, मॉरीशस और फीजी पर उनका अधिकार था, वेस्ट इण्डीज, ब्रिटिश, गुयाना और दक्षिणी पूर्वी एशिया के कितने ही द्वीप व प्रदेश उनकी अधीनता में थे। दासप्रथा का अन्त हो जाने के कारण इन विविध प्रदेशों में मानव-श्रम को प्राप्त करने की समस्या प्रादुर्भूत हो गयी, क्योंकि वहाँ भूमि तो प्रभूत परिमाण में उपलब्ध थी, पर उस पर खेती करने वालों की कमी थी। इस दशा में अंग्रेजों का ध्यान भारतीय जनता की गरीबी की ओर गया और उन्होंने यह विचार किया कि बिहार, उत्तरप्रदेश आदि के गरीब लोगों को मजदूर व कुली के रूप में भरती कर उन प्रदेशों में ले जाया जा सकता है, जहाँ मानव-श्रम की कमी है। इसीलिए प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा का प्रारम्भ हुआ। इस प्रथा के अनुसार मजदूरों को एक निश्चित अवधि के लिए भरती किया जाता था, और उस अवधि के पूरा होने से पहले वे अपने देश को वापस नहीं आ सकते थे। उन्हें बहुत कम पारिश्रमिक दिया जाता था, और उनका जीवन दासों से अधिक भिन्न नहीं था। दासों को खरीदा जाता था, उन्हें प्राप्त करने के लिए धन खर्च करना पड़ता था, अतः मालिक उनकी परवाह भी किया करते थे। वे जानते थे, कि यदि समुचित भोजन व रहन-सहन के अभाव में किसी दास की मृत्यु हो गई, तो उसे खरीदने में जो रकम खर्च हुई थी, वह नष्ट हो जाएगी। इस कारण वे अपने दासों की कुछ परवाह भी किया करते थे। पर प्रतिज्ञाबद्ध होकर जो गरीब भारतीय मॉरीशस, अफ्रीका आदि में मजदूरी करने के लिए जाते थे, उनके प्रति उनके मालिक कोई जिम्मेदारी नहीं समझते थे। यदि वे बीमार होने के कारण काम न कर सकें, तो मालिकों को कोई नुकसान नहीं था, क्योंकि तब वे मजदूरी देने के लिए बाध्य नहीं थे, और यदि किसी मजदूर की मृत्यु हो जाये, तो भी उनकी कोई हानि नहीं थी, क्योंकि उसे उन्होंने कीमत देकर नहीं खरीदा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में भारत की जो आर्थिक दुर्दशा थी, सर्वसाधारण जनता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार अभावग्रस्त और असहाय थी, और लोगों के लिए अपना पेट तक भर सकना जैसे कठिन हो गया था, उसके कारण हजारों व्यक्तियों ने प्रतिज्ञावद्ध कुली की स्थिति में विदेश जाकर मजदूरी करना अपने लिए हितकर समझा, क्योंकि इससे वे अपना जीवन-निर्वाह तो कर सकते थे, और अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन भी उन्हें प्राप्त हो जाते थे। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में उस प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप हजारों लाखों भारतीय कुली के रूप में विदेशों में गये, और वहाँ उन्होंने खेतिहर मजदूर आदि के रूप में कार्य शुरू किया। प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा के अनुसार भारतीय लोग प्रधानतया मॉरीशस, फीजी, दक्षिणी अफ्रीका, ट्रिनिडाड, सुरीनाम, जमैका, गुयाना, मलाया, वरमा और श्रीलंका में गये थे। इस प्रकार विदेश जाने वाले लोग प्राय: भूमिविहीन किसान थे। खेती का काम वे भली-भाँति जानते थे। इन विदेशों में भी खेतिहर मजदूरों के रूप में ही उन्होंने काम किया। पर समयान्तर में अन्य प्रकार के लोग भी विदेशों में जाने लगे, क्योंकि वहाँ जंगलों को साफ करने, खानें खोदने, इमारतें वनाने, रेलवे लाइनों का निर्माण करने, और रेल चलाने आदि के लिए भी मानव-श्रम की आवश्यकता थी। इस प्रकार वहुत-से राज, मिस्त्री, वढ़ई, लुहार आदि भी मजदूरी और रोजगार की तलाश में विदेश जाने लगे। प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा के अधीन जो लोग विदेश जाते थे, निश्चित अवधि के पूरा हो जाने पर उन्हें यह स्वतन्त्रता थी, कि यदि वे चाहें तो स्वदेश वापस न जाकर विदेश में ही वस जाएँ। वहाँ उन्हें खेती के लिए जमीन प्राप्त करने व स्वतन्त्र रूप से अपना रोजगार करने के अवसर उपलब्ध थे। इसलिए वहुत-से भारतीय मॉरीशस, फीजी आदि में स्थायी रूप से वस गये, और वहाँ उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी। वाद में व्यापार और उद्योगों के लिए भी भारतीय लोग विदेशों में जाने लगे, और उनमें से वहुतों ने वहाँ स्थायी रूप से रहना शुरू कर दिया।

भारतीय मूल के जो लोग विविध विदेशी राज्यों में वसे हुए हैं, सन् १९७४ में उनकी संख्या इस प्रकार थी —

देश	भारतीयों की संख्या	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
फीजी	२,४१,०००	५१%
वरमा	२,७२,०००	...
मलयीसिया	९,५०,०००	...
सिंगापुर	१,३०,०००	७·५%
मॉरीशस	५,५१,०००	६७%
रयूनियों	२,००,०००	...
दक्षिणी अफ्रीका	६,२०,०००	२·५%
केनिया	४०,०००	
तंजानिया	२०,०००	
मोजाम्वीक	८,०००	
जाम्बिया	११,५००	
र्होडेशिया	९,५००	

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश	भारतीयों की संख्या	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
ट्रिनिडाड	४,८०,०००	४०%
गुयाना	३,६०,०००	५२%
सुरीनाम	१,४२,०००	३७%
जमैका	५०,०००	
वेस्ट इण्डीज	१०,०००	
कनाडा	२०,०००	

विदेशों में स्थायी रूप से बसे हुए भारतीय मूल के बहुसंख्यक लोगों की भाषा हिन्दी है। प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा के अधीन जो लोग भारत से गये थे, वे प्रधानतया उत्तरप्रदेश और बिहार के निवासी थे। व्यापारी के रूप में जो भारतीय विदेशों में जाकर बस गये, उनमें गुजरातियों की संख्या सबसे अधिक है। ईस्ट अफ्रीका आदि में रेलवे के निर्माण के समय उनमें काम करने के लिए जो भारतीय गये, वे प्रधानतया पंजाबी थे। मलयीसिया और दक्षिणी अफ्रीका में तमिलनाडु से भी बहुत-से लोग मजदूरी के लिए गये थे। इस प्रकार विदेशों में बसे हुए भारतीय मूल के लोगों में अनेक भेद हैं। उन सबकी भाषा एक नहीं है, और न उनका धर्म ही एक है। हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख सब वहाँ बसे हुए हैं। पर इनमें हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की संख्या सबसे अधिक है, और धर्म की दृष्टि से बहुसंख्यक लोग हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं।

केनिया और तंजानिया में पहले भारतीय मूल के लोगों की संख्या उससे बहुत अधिक थी, जो ऊपर की तालिका में दी गयी है। वहाँ की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के कारण भारतीय मूल के बहुत-से परिवार ग्रेट ब्रिटेन चले गये या भारत वापस आ गये। विश्व के अन्य भी अनेक देशों में भारतीय मूल के लोग पर्याप्त संख्या में निवास कर रहे हैं। इण्डोनीशिया में २०,०००; हांगकांग में ८,०००; अफगानिस्तान में २०,०००; कुवैत में २५,०००; मैडागास्कर में ३६,०००; सूडान में २,०००; ईथियोपिया में ४५००; नाइजीरिया में ३५००; विएतनाम में २०००; थाईलैण्ड में १८,०००; अमेरिका में ३२,०००; इंग्लैण्ड में २०,०००; न्यूजीलैण्ड में ६,००० और अरब राज्यों में १०,००० के लगभग भारतीय मूल के लोगों का निवास है। विदेशों में जाकर और वहाँ स्थायी रूप से बस जाने पर भी इन्होंने अपने धर्म, भाषा तथा संस्कृति को कायम रखने का प्रयत्न किया है। यही कारण है, कि इनमें प्रायः सभी भारतीय धर्मों के संगठन तथा संस्थाएँ विद्यमान हैं। क्योंकि प्रवासी भारतीयों में हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक है और वे भारत के ऐसे प्रदेशों से गये हैं जिनकी भाषा हिन्दी है, और जिनमें आर्यसमाज का पर्याप्त प्रचार है, अतः यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि विदेशों में भी आर्यसमाजों की स्थापना की जाय, और बच्चों की शिक्षा के लिए आर्य शिक्षण-संस्थाओं की भी। आर्यसमाज का विदेशों में प्रचार-प्रसार किस प्रकार हुआ, यह 'आर्यसमाज का इतिहास' के इस भाग की विषय नहीं है। पर वहाँ जो आर्य शिक्षण-संस्थाएँ अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, उन्हीं का उल्लेख इस अध्याय में किया जाएगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मॉरीशस में आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में जब उत्तरप्रदेश तथा बिहार के अभावग्रस्त व बेरोजगार लोगों ने मजदूरी करके आजीविका प्राप्त करने के प्रयोजन से मॉरीशस जाना शुरू किया, तो यह देश फ्रेञ्च साम्राज्य के अन्तर्गत था। सन् १७१५ से १८१० तक वह फ्रांस के अधीन रहा। बाद में उस पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया। दो सदियों के लगभग फ्रांस के अधीन रहने के कारण मॉरीशस में फ्रेञ्च भाषा का प्रचार है, और वहाँ की सर्वसाधारण जनता भी ऐसी भाषा का प्रयोग करती है, जिसमें फ्रेञ्च शब्दों का बाहुल्य है। मजदूर के रूप में भारतीय मूल के जो लोग मॉरीशस जाकर बसे, उनकी भाषा मुख्यतया हिन्दी थी और वे हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। बीसवीं सदी का प्रारम्भ होने से पूर्व ही वे आर्यसमाज के सम्पर्क में आने लग गये थे, और उनमें उत्कट रूप से यह इच्छा उत्पन्न हो गयी थी, कि वे अपने धर्म, भाषा और संस्कृति को सुरक्षित रखें। सन् १९०३ में वहाँ आर्यसमाज की स्थापना भी हो गयी थी। वैदिक धर्म के जिस विशुद्ध स्वरूप का महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रतिपादन किया था, मॉरीशस के भारतीयों में वह बहुत लोकप्रिय हुआ, और धीरे-धीरे वहाँ नये आर्यसमाजों की स्थापना होती गयी। इस समय वहाँ विद्यमान आर्यसमाजों की संख्या ३०० के लगभग है।

आर्यसमाज का सदा यह प्रयत्न रहा है कि भारत की प्राचीन आर्य सभ्यता और संस्कृति सुरक्षित रहे। मॉरीशस में भी आर्यसमाज का यही प्रयत्न था। इसीलिए वहाँ ऐसी शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, जिनमें अपनी भाषा तथा अपने धर्म की शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो। इसी प्रयोजन से १८ जुलाई, १९१८ को वाक्वा नगर में आर्य विद्यालय खोला गया। प्रारम्भ में इस विद्यालय में १२ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे। उस समय मॉरीशस में आर्यसमाजियों की संख्या बहुत कम थी, और प्राय: गरीब लोग ही समाज के सदस्य थे। उनकी आमदनी आठ-दस रुपये मासिक के लगभग थी, फिर भी वे आर्य धर्म और संस्कृति के प्रति श्रद्धा के कारण 'आठ आने' व 'सोलह आने' प्रतिमास वैदिक धर्म तथा विद्या की वृद्धि के लिए प्रदान कर देते थे। आर्य विद्यालय के संचालन तथा वहाँ अध्यापन का कार्य श्री काशीनाथ किष्टो ने अपने हाथों में लिया, और योग्यता के साथ उसका सम्पादन किया। वह एक सरकारी स्कूल में शिक्षक थे, पर आर्यसमाज के लिए उन्होंने अपनी सरकारी सर्विस से त्यागपत्र दे दिया था। इसी विद्यालय को सन् १९२४ में आर्य वैदिक स्कूल कहा जाने लगा। वाक्वा का आर्य विद्यालय मॉरीशस में अपने ढंग की पहली शिक्षण-संस्था थी। उस समय वहाँ जो भी शिक्षणालय विद्यमान थे, वे सब प्राय: ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित थे। उनमें हिन्दू धर्म की शिक्षा का तो प्रश्न ही क्या, हिन्दी तक नहीं पढ़ायी जाती थी। बच्चे क्रिश्चियन वातावरण में पढ़ते थे, और 'ईसा मोरे राम रमैया, ईसा मोरे कृष्ण कन्हैया' सदृश गीत उन्हें याद कराये जाते थे, जिससे उन पर ईसाई मत का प्रभाव गहरा होता जाता था। इसी समय आर्यसमाज ने सरकार से यह भी माँग की, कि जो विद्यालय सरकार के हाथों में हैं, उनमें फ्रेञ्च के साथ-साथ हिन्दी की पढ़ाई की भी व्यवस्था की जाए, क्योंकि मॉरीशस में बसे हुए भारतीय मूल के लोगों की भाषा हिन्दी ही है। पर सरकार पर निर्भर न कर आर्यसमाज ने हिन्दी भाषा तथा आर्य धर्म की शिक्षा के लिए अपने शिक्षणालय स्थापित करने के प्रयत्न को जारी रखा। लोवाचिर-पलाक ग्राम के निवासी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री रामस्वरूप रामगति ने अपने ग्राम में एक पाठशाला खोलने का निश्चय किया, ताकि वहाँ के बच्चों को पढ़ने के लिए तीन मील दूर बोनाकेई न जाना पड़े। श्री रामगति ने पाठशाला के लिए धन भी दिया और भूमि भी। श्री रामप्रसाद बुन्धन ने भी इसके लिए उदारतापूर्वक धनराशि प्रदान की। लाँवाचिर की पाठशाला में फ्रेञ्च, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। यह पाठशाला बहुत लोकप्रिय हुई, और आर्यसमाज के कार्यकलाप के सम्बन्ध में इसके द्वारा जनता में सम्मान का भाव उत्पन्न हुआ। इसके बाद जो अनेक शिक्षण-संस्थाएँ आर्यसमाज द्वारा मॉरीशस में स्थापित की गयीं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

कन्या पाठशाला, रिशमार फ्लाक—श्री हनुमानजी ने रिशमार में अपनी भूमि पर कन्याओं के लिए एक पाठशाला स्थापित की थी, और उस पर शिक्षणालय के लिए उपयुक्त इमारतें भी अपने खर्च से बनवा दी थीं। उनकी दिवंगत प्रपौत्री अम्बावती के नाम पर इस संस्था का नाम अम्बावती कन्या पाठशाला रखा गया। सन् १९२६ में इसमें पढ़ाई प्रारम्भ हुई थी।

कन्या पाठशाला, मेनी-फ्रेनिक्स—इस शिक्षण-संस्था की स्थापना सन् १९२८ में श्री रतन रामदीन के प्रयत्न से हुई थी। उन्होंने इसके लिए भूमि प्रदान की थी, और आर्य प्रतिनिधि सभा मॉरीशस के सहयोग से उस पर भवनों का निर्माण कराया था। इस पाठशाला ने अच्छी उन्नति की, और स्त्रीशिक्षा के महत्त्व को स्वीकार कर पुराणपन्थी लोग भी अपनी बालिकाओं को इसमें प्रविष्ट कराने लगे। सिलाई, कशीदा आदि सिखाने की भी इसमें समुचित व्यवस्था की गयी।

पाठशाला, बोनाकेई—सन् १९२८ में इसकी स्थापना एक सायंकालीन पाठशाला के रूप में की गयी थी, जिसमें बालकों और बालिकाओं—दोनों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध था। बाद में दिन में पढ़ाई होने लगी, और इस संस्था ने एक सुव्यवस्थित विद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया। मॉरीशस के सैकड़ों छात्र व छात्राएँ इस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

पाठशाला प्लेन्मायां—इस संस्था की स्थापना सन् १९३४ में स्थानीय आर्य-समाज द्वारा की गयी थी। प्लेन्मायां एक केन्द्रीय स्थान है, और इसकी केन्द्रीय स्थिति के कारण निकटवर्ती जनता को अपने धर्म एवं संस्कृति के वातावरण में बच्चों को पढ़ाने का इस पाठशाला द्वारा अच्छा अवसर प्राप्त है।

पाठशाला, क्यूपिप—यह पाठशाला एक ऐसे क्षेत्र में स्थित है, जहाँ ईसाई धर्म तथा फ्रेञ्च लोगों की प्रधानता है। वहाँ के बहुसंख्यक निवासी फ्रेञ्च और मॉरीशस के मूल निवासियों के संकर हैं। इस क्षेत्र में भारतीय मूल के बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए पाठशाला खोलकर आर्यसमाज ने बहुत उपयोगी कार्य किया है। इस संस्था में धर्मशिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

कन्या पाठशाला, पोर्ट लुई—इस पाठशाला की स्थापना मार्च, १९३४ में हुई थी। प्रारम्भ में इसमें ५६ छात्राएँ प्रविष्ट हुई थीं, जिनकी संख्या में बाद में निरन्तर वृद्धि होती गयी। जिस स्थान पर यह पाठशाला स्थापित की गयी थी, वह 'श्रद्धानन्द आश्रम' कहाता है। श्रीमती भगवती और श्रीमती बखोरी का इस संस्था को सफल बनाने में विशेष कर्तृत्व रहा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य पाठशाला, बुआपोरी—इस संस्था में बालक और बालिकाएँ एक साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं। श्री सोमारु अंगद ने इसके विकास के लिए बहुत श्रम किया था।

आर्य पाठशाला, तायाक—श्री कृष्ण घूरा तथा पण्डित शिवलगन बहोरन के प्रयत्न से इस पाठशाला ने अच्छी उन्नति की। इसमें बालिकाओं को सिलाई आदि भी सिखायी जाती है।

पाठशाला, कांतुलेर—इसमें बालकों और बालिकाओं की सहशिक्षा की व्यवस्था है, और कांतुलेर के छात्र-छात्राएँ बड़ी संख्या में इससे लाभ उठा रहे हैं। सन्ध्या-वन्दन तथा धर्मशिक्षा पर इस संस्था में विशेष ध्यान दिया जाता है।

संस्कृत विद्यालय, नुवेल-द-कुवेत—इस संस्था की स्थापना मई, १९६३ में नुवेल-द-कुवेत के 'स्वतन्त्रानन्द आश्रम' में की गयी थी। इसमें अन्य विषयों के साथ-साथ संस्कृत की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गयी थी। पण्डित बालमुकुन्द द्विवेदी इसके आचार्य नियुक्त किये गये। पण्डितजी संस्कृत में शास्त्री और अंग्रेजी में बी० ए० थे। उन्होंने बड़े परिश्रम और लगन से संस्कृत विद्यालय का संचालन किया। शुरू में मॉरीशस के विद्यार्थियों ने संस्कृत के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखायी, पर १९६४ तक इस विद्यालय में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों की संख्या २० हो गयी, और मॉरीशस के सभी प्रान्तों से विद्यार्थी वहाँ संस्कृत भाषा, वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने लगे। विद्यालय के साथ छात्रावास की भी स्थापना की गयी, और वहाँ के भोजन तथा रहन-सहन पर आचार्य द्वारा आवश्यक नियन्त्रण रखा जाने लगा। खेद है, कि यह विद्यालय देर तक कायम नहीं रह सका। पण्डित बालमुकुन्द द्विवेदी के भारत वापस लौट जाने पर ऐसे अध्यापक व कार्यकर्ता इसे उपलब्ध नहीं हुए, जो सफलतापूर्वक इसका संचालन कर सकते।

डी० ए० वी० कॉलिज, पोर्ट लुई—जिन अनेक पाठशालाओं और विद्यालयों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमें उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। चिरकाल से यह आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, कि मॉरीशस में आर्यसमाज की एक ऐसी शिक्षण-संस्था भी होनी चाहिये, जहाँ विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ११ जनवरी, १९६५ के दिन वहाँ डी० ए० वी० कॉलिज की स्थापना की गयी। शुरू में कॉलिज का अपना भवन नहीं था। मॉरीशस के आर्य-समाजों के केन्द्रीय संगठन 'आर्य सभा' का जहाँ प्रधान कार्यालय था, उस 'आर्य भवन' के ही एक भाग को आवश्यक परिवर्तन व परिवर्धन करके अध्यापन के लिए प्रयुक्त कर लिया गया। डॉक्टर जे० सीगोबिन कॉलिज के व्यवस्थापक नियुक्त हुए और स्वामी अखिलानन्द सरस्वती ने इस नयी आर्य शिक्षण-संस्था को लोकप्रिय बनाने के लिए बहुत परिश्रम किया। चार साल पश्चात् कॉलिज को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में स्थानान्तरित कर दिया गया। इस बीच में वहाँ उसकी अपनी शानदार इमारत बनकर तैयार हो गयी थी। आर्ट्स और सायन्स दोनों वर्गों के विषयों की पढ़ाई के लिए मॉरीशस के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो गयी, और शीघ्र ही उस देश की प्रमुख शिक्षण-संस्थाओं में उसने स्थान प्राप्त कर लिया। आर्य सभा चाहती थी, कि डी० ए० वी० कॉलिज संस्कृत के पठन-पाठन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन जाए। पर यह सम्भव नहीं हुआ, क्योंकि संस्कृत की शिक्षा में न विद्यार्थियों की रुचि थी और न उनके माता-पिता की।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य सभा अब भी इस बात के लिए प्रयत्नशील है, कि डी० ए० वी० कॉलिज में संस्कृत को समुचित स्थान प्राप्त हो। हिन्दी इस कॉलिज में अनिवार्य रूप से सबको पढ़नी होती है। पाठ्यक्रम के अन्य विषय अंग्रेजी, फ्रेञ्च, इतिहास, भूगोल, कला, संगीत, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, एकाउण्टेन्सी, रसायनशास्त्र, भौतिक विज्ञान, गणित और प्राणिशास्त्र हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है, कि कॉलिज में शिल्प की शिक्षा भी प्रारम्भ की जाये, ताकि विद्यार्थी देश की औद्योगिक उन्नति में सहायक हो सकें। डी० ए० वी० कॉलिज में विद्यार्थियों से जो फीस ली जाती है, वह उसी स्तर की अन्य शिक्षण-संस्थाओं की तुलना में बहुत कम है। कॉलिज के खर्च का बड़ा भाग आर्य सभा तथा आर्य जनता द्वारा ही प्राप्त होता है। मॉरीशस के डी० ए० वी० कॉलिज का भारत की डी० ए० वी० संस्थाओं के साथ सम्पर्क है। इसीलिए मॉरीशस के दो विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए इस प्रयोजन से डी० ए० वी० कॉलिज चण्डीगढ़ भेजे गये थे, ताकि वहाँ वे दयानन्द एंग्लो-वैदिक आन्दोलन की मान्यताओं, परम्पराओं और आदर्शों से भली-भाँति परिचित हो जाएँ, और स्वदेश वापस आकर अपने डी० ए० वी० कॉलिज में भी उनका पालन करा सकें।

आर्यसमाज द्वारा स्थापित व संचालित पाठशालाओं में अध्यापन-कार्य के लिए प्रशिक्षित अध्यापक उपलब्ध हो सकें, इस प्रयोजन से आर्य सभा द्वारा सन् १९३५ में प्रशिक्षण (Training) कक्षा भी शुरू कर दी गयी थी। इसमें अध्यापकों को इस दृष्टि से प्रशिक्षण दिया जाता था, जिससे कि वे आर्य शिक्षणालयों के वातावरण को आर्यसमाज की मान्यताओं के अनुरूप बना सकें। आर्यसमाज की विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं के समुचित संचालन तथा उन पर नियन्त्रण रखने के लिए 'विद्या सभा' का भी मॉरीशस में संगठन किया गया है। देश के प्रत्येक जिले में इस सभा की ओर से निरीक्षक नियुक्त हैं। क्योंकि अनेक आर्य शिक्षणालयों में धर्मशिक्षा की भी व्यवस्था है और यह प्रयत्न तो सभी आर्य शिक्षण-संस्थाओं में किया जाता है कि उनके विद्यार्थी अपने धर्म एवं संस्कृति से भली-भाँति परिचित हो जाएँ, अतः सन् १९४७ में मॉरीशस में धर्मशिक्षा की परीक्षाएँ शुरू की गयीं। इन परीक्षाओं का क्रम इस प्रकार रखा गया—सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तभूषण, सिद्धान्तशास्त्री और वेदवाचस्पति। परीक्षाओं को आयोजित करने के साथ साथ पृथक् रूप से धर्म की शिक्षा प्रदान करने की भी वहाँ व्यवस्था की गयी। आर्यसमाज शिक्षा सभा, अजमेर ने धर्मशिक्षा का जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया है, मॉरीशस में उसे अपना लिया गया और उसके अनुसार धर्म की शिक्षा प्राप्त कर जो विद्यार्थी सिद्धान्तरत्न आदि परीक्षाओं में सम्मिलित होने लगे, उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी और अब वह ५०० से भी ऊपर पहुँच गयी है।

यहाँ मॉरीशस की केवल प्रमुख आर्य शिक्षण-संस्थाओं का ही परिचय दिया गया है। इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी छोटी-छोटी पाठशालाएँ हैं, जो प्रायः आर्यसमाज मन्दिरों में स्थित हैं। मॉरीशस के ३०० के लगभग आर्यसमाजों में बहुसंख्या ऐसे समाजों की है, जिनमें हिन्दी भाषा तथा धर्म की शिक्षा देने के लिए सायंकालीन व दिन के समय की पाठशालाएँ विद्यमान हैं। भारतीय मूल के जो लोग मॉरीशस में बसे हुए हैं, उनमें बहुत बड़ी संख्या हिन्दी भाषा भाषियों की है। पर उनके लिए अपनी मातृभाषा की रक्षा कर सकना सुगम नहीं था, क्योंकि फ्रेञ्च और ब्रिटिश शासकों के अधीन रहते हुए उन्हें उनकी भाषाएँ पढ़नी होती थीं, सब सरकारी कामकाज इन्हीं भाषाओं में होता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, और शिक्षा की माध्यम भी ये विदेशी भाषाएँ ही थीं। इस दशा में आर्यसमाज ने जहाँ मॉरीशस में आर्य संस्कृति और वैदिक धर्म की रक्षा के लिए उद्योग किया, वहाँ साथ ही आर्य भाषा (हिन्दी) की रक्षा तथा उन्नति पर भी ध्यान दिया।

(३) पूर्वी अफ्रीका की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

वर्तमान समय में केनिया, तंजानिया और युगाण्डा—ये तीन स्वतन्त्र राज्य हैं, जो पहले ब्रिटेन की अधीनता में थे और जिनको संयुक्त रूप से 'पूर्वी अफ्रीका' कहा जाता था। इन पर ब्रिटेन का आधिपत्य कैसे स्थापित हुआ, इस सम्बन्ध में इतना लिख देना ही पर्याप्त है, कि अफ्रीका महाद्वीप का अवगाहन करते हुए फ्रांस, वेल्जियम, पोर्तुगाल, ब्रिटेन, स्पेन और हालैण्ड आदि यूरोपियन देशों ने उसके विविध प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। पूर्वी अफ्रीका में तंजानिया पहले जर्मनी के अधीन था, पर प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के समय उसे ब्रिटेन ने जर्मनी से जीत लिया था। इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका पहले हालैण्ड के साम्राज्य के अन्तर्गत था, पर नेपोलियन के समय के युद्धों के अवसर पर ब्रिटेन का उस पर प्रभुत्त्व स्थापित हो गया था। अफ्रीका के प्राय: सभी प्रदेश सभ्यता के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए थे। उनके निवासी प्राय: अशिक्षित थे और नये ज्ञान-विज्ञान से उन्हें कोई परिचय नहीं था। अफ्रीकन प्रदेशों के विकास के लिए यह आवश्यक था, कि उनमें पक्की सड़कें बनवायी जायें, रेल मार्गों का विस्तार किया जाये और व्यापार व व्यवसाय भी वहाँ प्रारम्भ किये जायें। जब पूर्वी अफ्रीका में अंग्रेजों ने रेलवे लाइनों और सड़कों का निर्माण शुरू किया, तो उन्हें जिन शिक्षित कर्मचारियों तथा कुशल शिल्पियों व मजदूरों की आवश्यकता थी, उन्हें भारत से कम पारिश्रमिक पर प्राप्त किया जा सकता था। इसीलिए उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक तथा बीसवीं सदी के प्रथम चरण में बहुत-से भारतीय पूर्वी अफ्रीका गये, और रेलवे लाइनों आदि के निर्माण द्वारा उस देश के आर्थिक विकास में उन्होंने बहुत सहायता की। इससे वहाँ व्यापार और व्यवसाय के विकसित होने में भी सहायता मिली, और बहुत-से भारतीय व्यापार के लिए भी इस देश में जा बसने के लिए प्रेरित हुए। रेलवे आदि के निर्माण तथा व्यापार के लिए जो बहुत-से भारतीय पूर्वी अफ्रीका गये, उनमें पंजाबी और गुजराती सबसे अधिक थे। इनमें, विशेषतया पंजाबियों में पहले ही आर्यसमाज का प्रचार था, अतः पूर्वी अफ्रीका जाकर भी इन्होंने अपने धर्म का पालन करने के लिए आर्यसमाजों की स्थापना की। इस देश का पहला आर्य-समाज सन् १९०३ में नैरोबी में स्थापित हुआ था, और बाद में मोम्बासा, दारुस्सलाम, कम्पाला आदि अन्य नगरों में भी समाज स्थापित हुए। सन् १९३३ में पूर्वी अफ्रीका के आर्यसमाजों का केन्द्रीय संगठन 'आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका' के नाम से गठित किया गया, जिसमें १७ आर्यसमाज सम्मिलित हुए। बाद में अन्य भी अनेक आर्यसमाजों की इस देश में स्थापना हुई।

आर्यसमाज का एक मुख्य उद्देश्य 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि' है। इसीलिए शिक्षा के प्रसार के लिए आर्यसमाज द्वारा विशेष प्रयत्न किया जाता रहा है। पूर्वी अफ्रीका में भी आर्यसमाजों ने बहुत-से स्कूल इस प्रयोजन से स्थापित किये, कि उन द्वारा जहाँ भारतीय बालक-बालिकाएँ अपने धर्म व संस्कृति के वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें, वहाँ साथ ही अफ्रीकन बच्चों को भी वैदिक धर्म से प्रभावित होने का अवसर मिले।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैरोबी, दारुस्सलाम, मोम्बासा, कम्पाला आदि प्रायः सभी नगरों में आर्यसमाज द्वारा पाठशालाओं और स्कूलों की स्थापना की गयी, और इन सबमें आर्य भाषा (हिन्दी) की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया गया। नैरोबी में आर्यसमाज की प्रथम शिक्षण-संस्था सन् १६१० में स्थापित की गयी थी, जिसका नाम 'आर्य कन्या पाठशाला' था। यह पाठशाला श्री मथुरादास के मकान में थी, और अध्यापक का वेतन भी उन्हीं द्वारा दिया जाता था। छात्राओं की संख्या बढ़ जाने पर पाठशाला की एक शाखा श्री बदरीनाथ के मकान पर खोली गयी। सन् १६२० तक इस संस्था में कोई फीस नहीं ली जाती थी। इसके बाद सन् १६२२ में अफ्रीकन बच्चों के लिए एक स्कूल खोला गया। सन् १६४३ में शिशुओं के लिए आर्य नर्सरी स्कूल की स्थापना की गयी, और बाद में आर्य गर्ल्स सैकेण्डरी स्कूल तथा आर्य बॉय्ज़ सैकेण्डरी स्कूल स्थापित किये गये। पर पूर्वी अफ्रीका के आर्य लोग बालकों और बालिकाओं के लिए स्कूल खोलकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, वे उनके सम्मुख थे और उनके अनुसार भारत में जो गुरुकुल स्थापित किये जा रहे थे, उनसे भी वे परिचित थे। पूर्वी अफ्रीका में भी इसीलिए एक गुरुकुल की स्थापना का प्रयत्न किया गया, जिस पर इसी अध्याय के अगले प्रकरण में प्रकाश डाला जायेगा।

वर्तमान समय में नैरोबी में निम्नलिखित आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं--

पार्कलैण्ड्स आर्य गर्ल्स हाईस्कूल—प्रारम्भ में यह शिक्षणालय क्वीन्सवे पर स्थापित किया गया था। बाद में यह स्थान सरकार द्वारा बर्कले बैंक की नयी इमारत के लिए दे दिया गया, जिसके कारण इस स्कूल को नगारा रोड पर सन् १६४८ में पुनःस्थापित किया गया। उस समय इसमें प्राथमिक तथा उच्चतर दोनों स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था थी। सन् १६५६ में स्कूल की उच्च कक्षाओं को पार्कलैण्ड में स्थानान्तरित कर दिया गया। केनिया की सरकार की शिक्षाविषयक नयी नीति के परिणामस्वरूप इस संस्था के प्राइमरी विभाग को नैरोबी की सिटी कौंसिल ने अपने अधिकार में ले लिया, और पार्कलैण्ड का सैकेण्डरी व उच्च विभाग केनिया के शिक्षा मन्त्रालय के अधिकार में चला गया। अब इसका प्रबन्ध एक बोर्ड ऑफ् गवर्नर्स के हाथों में है, जिसके प्रधान जस्टिस एस० के० सचदेव हैं। बोर्ड ऑफ् गवर्नर्स में आर्यसमाज द्वारा मनोनीत व्यक्ति भी पर्याप्त संख्या में सदस्य हैं। अब इसकी स्थिति सरकार द्वारा सहायता प्राप्त ऐसी शिक्षण-संस्था की है, जिसका संचालन सरकार के नियन्त्रण में है। स्कूल १७ बीघे के लगभग के सुविशाल परिसर में स्थित है, जहाँ एक बड़े शिक्षणालय के लिए उपयुक्त सब भवन विद्यमान हैं। यह सब भू-भवन सम्पत्ति पहले आर्यसमाज नैरोबी तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका की थी, और उसी द्वारा इसके लिए धन प्राप्त किया गया था। पर अब इस पर केनिया की सरकार का स्वत्व हो गया है। संस्था पर जो वार्षिक व्यय होता है, उसका ८० प्रतिशत भाग सरकार द्वारा अनुदान के रूप में प्रदान किया जाता है। शेष २० प्रतिशत की प्राप्ति शिक्षा शुल्क आदि द्वारा होती है। सन् १६८२ में इस स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या ६६० थी, और वहाँ २७ शिक्षक अध्यापन का कार्य कर रहे थे। केनिया के शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इसमें पढ़ाई होती है, और विद्यार्थी केनिया नैशनल एक्जामिनेशन्स कौंसिल की परीक्षाओं में बैठते हैं। स्कूल में धर्मशिक्षा की व्यवस्था है, और विद्यार्थियों को वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के नैतिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्तव्यों से परिचय कराने का प्रयत्न किया जाता है। नैरोवी आर्यसमाज द्वारा धर्म-शिक्षा की जो परीक्षाएँ ली जाती हैं, इस स्कूल की छात्राएँ उनमें भी सम्मिलित होती हैं। सरकार के कानून के अनुसार अफ्रीकन छात्राओं को भी अनिवार्य रूप से इस संस्था में प्रविष्ट किया जाता है, और वे भी इसके नैतिक वातावरण से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त करती हैं। स्कूल में शिक्षा का स्तर वहुत ऊँचा है। सन् १९८१-८२ की परीक्षा में सिटी कौंसिल नैरोवी के ११० स्कूलों में इस संस्था ने तेरहवाँ स्थान प्राप्त किया था। इस स्कूल के साथ की सम्पूर्ण भूमि 'श्रद्धानन्द आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है, और यह आर्य प्रतिनिधि सभा पूर्वी अफ्रीका को सेठ नानजी कालिदास ने दान में दी थी।

आर्य गर्ल्स सैकेण्डरी स्कूल—सन् १९५८ में स्थापित यह कन्या विद्यालय नैरोवी के नगारा क्षेत्र में मुरंग रोड पर स्थित है। इसमें ३०० के लगभग वालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, जिनमें ७० प्रतिशत अफ्रीकन हैं। केनिया के शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार इसमें शिक्षा की व्यवस्था है, पर साथ ही वहाँ हिन्दी भाषा तथा वैदिक धर्म की भी शिक्षा दी जाती है।

आर्य बॉयज सैकेण्डरी स्कूल—नैरोवी आर्यसमाज द्वारा वालकों की शिक्षा के लिए इस स्कूल की स्थापना सन् १९६८ में की गयी थी। शुरू में इसमें केवल ४ वालक प्रविष्ट हुए थे। एक वर्ष वाद इसके विद्यार्थियों की संख्या ४८ हो गई, और धीरे-धीरे वढ़ती हुई यह संख्या अव ३०० से ऊपर पहुँच चुकी है। इसमें भी ७० प्रतिशत के लगभग विद्यार्थी अफ्रीकन हैं। अध्यापकों की योग्यता और लगन के कारण इस स्कूल का परीक्षा-परिणाम सन्तोषजनक रहता है, और नैरोवी के शिक्षणालयों में इसका उच्च स्थान है।

आर्य प्राइमरी स्कूल—इस संस्था की स्थापना सन् १९१० में आर्य कन्या पाठशाला के नाम से हुई थी। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, यह शुरू में श्री मथुरादास के मकान पर स्थित थी, पर धीरे-धीरे इसकी निरन्तर वृद्धि होती गयी, और सन् १९५९ तक यह एक अत्यन्त विशाल शिक्षण-संस्था के रूप में विकसित हो गयी। सन् १९३६ में नैरोवी की फोर्ट हाय रोड पर इस स्कूल के लिए एक भू-खण्ड सरकार से दमामी पट्टे पर प्राप्त कर लिया गया था। उस पर आर्यसमाज द्वारा जो इमारतें वनवायी गयीं इसमें २७ क्लास रूम, आफिस रूम और ५ स्टोर हैं। सन् १९५८-५९ में इस स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या २,००० थी, और ७० शिक्षक वहाँ अध्यापन के लिए नियुक्त थे। सन् १९५८ में आर्य गर्ल्स सैकेण्डरी स्कूल की स्थापना के कारण इस संस्था में विद्यार्थियों की संख्या कुछ कम हो गयी, पर अब भी प्राइमरी स्तर की शिक्षा के लिए यह नैरोवी का अत्यन्त लोकप्रिय व लब्धप्रतिष्ठ शिक्षणालय है।

आर्य प्राइमरी स्कूल के खर्च में नैरोवी की सिटी कौंसिल भी हाथ वँटाती है, पर जहाँ तक आर्य गर्ल्स सैकेण्डरी स्कूल और आर्य बॉयज सैकेण्डरी स्कूल का सम्बन्ध है, उनकी व्यवस्था और संचालन पूर्णतया आर्यसमाज नैरोवी के अधीन है, और उसी द्वारा इन शिक्षणालयों का खर्च चलाया जाता है। आर्यसमाज के तत्त्वावधान में विद्यमान इन स्कूलों पर आर्यसमाज नैरोवी द्वारा दस लाख शिलिंग (८,७९,००० रुपये) के लगभग धनराशि प्रतिवर्ष खर्च की जाती है।

आर्य शिशुशाला (आर्य नर्सरी स्कूल)—नैरोवी के आर्यसमाज के समान वहाँ की स्त्री समाज भी अत्यन्त सक्रिय है। उस द्वारा एक शिशुशाला का संचालन किया जा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है, जिसकी आधारशिला १५ मई, सन् १९५० के दिन स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज द्वारा रखी गयी थी। इसका प्रारम्भ १२ बच्चों से किया गया था, पर शीघ्र ही यह उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगी, और वर्तमान समय में इसमें ४०० के लगभग बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। शिशुशाला में बहुसंख्यक बच्चे अफ्रीकन हैं, पर उसका वातावरण आर्य धर्म के अनुरूप है। सब बच्चों को वेदमन्त्र याद कराये जाते हैं, और सन्ध्या-हवन की वहाँ समुचित व्यवस्था है। अफ्रीकन बालकों और बालिकाओं को वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए देखकर कौन ऐसा आर्य है, जिसका हृदय प्रसन्नता और गर्व से पूर्ण न हो जायेगा। शिशुशाला के साथ एक सुन्दर यज्ञशाला भी है, जिसमें नित्यप्रति प्रार्थना, सन्ध्या व हवन का आयोजन होता है। बच्चों की इस संस्था का प्रबन्ध व संचालन स्त्री समाज के हाथों में है, और उसी द्वारा इसका खर्च चलाया जाता है। स्त्री समाज की यह शिशुशाला नैरोबी के नर्सरी स्कूलों में अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान रखती है। बच्चों को इसमें प्रविष्ट कराने की माँग इतनी अधिक है, कि स्थान की कमी के कारण उसे पूरा कर सकना सम्भव नहीं होता। इस ढंग के अन्य स्कूलों की तुलना में इसका शुल्क बहुत कम है, और धर्म, जाति, रंग आदि का कोई भी भेद किये बिना एशियन और अफ्रीकन बच्चे वहाँ साथ-साथ खेलते और पढ़ते हैं।

सन् १९२४ में आर्यसमाज नैरोबी द्वारा अफ्रीकन विद्यार्थियों के लिए एक सायंकालीन विद्यालय खोला गया था। कुछ ही समय में इसमें २०० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लग गये थे। पर खेद है, कि यह देर तक कायम नहीं रह सका। पर अफ्रीकन बालकों और बालिकाओं की शिक्षा तथा हित कल्याण का आर्यसमाज को सदा ध्यान रहा है। इसीलिए पूर्वी अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा ने 'दयानन्द होम' नाम से अफ्रीकन बच्चों के लिए एक अनाथालय सन् १९६२ में स्थापित किया था। इसमें केवल अनाथ अफ्रीकन बच्चों को प्रविष्ट किया जाता था और उनके भरण-पोषण तथा शिक्षा का व्यय आर्यसमाज करता था। दयानन्द होम में बच्चों का रहन-सहन और खानपान आर्य-समाज की मान्यताओं के अनुरूप था। वे निरामिष भोजन करते थे, वेदमन्त्रों द्वारा प्रार्थना करते थे, और उन्हें आर्य धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार अफ्रीकन लोगों में भी एक ऐसा वर्ग विकसित होने लग गया था, जो वैदिक धर्म का अनुयायी था। समयान्तर में इस संस्था में शिथिलता आने लगी, और इसे बन्द कर दिया गया।

केनिया में मोम्बासा भी एक समृद्ध नगर है जो समुद्र तट पर स्थित है। इसे केनिया का प्रवेशद्वार कहा जाता है, क्योंकि इसी के बन्दरगाह से समुद्र मार्ग द्वारा आवागमन तथा व्यापार होता है। नैरोबी के आर्यसमाज के समान मोम्बासा का आर्यसमाज भी बहुत पुराना है। उसकी स्थापना सन् १९०४ में हुई थी। वहाँ के आर्यसमाज ने शिक्षा, विशेषतया स्त्रीशिक्षा पर विशेष ध्यान दिया, और इसीलिए सन् १९३५ में 'आर्य गर्ल्स स्कूल' नाम से एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की। शुरू में इसमें ३० बालिकाएँ प्रविष्ट हुई थीं, और स्कूल की कक्षाएँ आर्यसमाज मन्दिर में ही लगने लगी थीं। आर्यसमाजियों में इस शिक्षणालय के लिए इतना उत्साह था, कि उन्होंने अपनी मासिक आमदनी का १५ प्रतिशत भाग इसके लिए देना स्वीकार किया। अन्य प्रकार से भी वे इसकी आर्थिक सहायता करने में तत्पर रहे। पाँच साल की अवधि में इस स्कूल में छात्राओं की संख्या इतनी बढ़ गयी कि आर्यसमाज मन्दिर में उनकी शिक्षा की व्यवस्था

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकना सम्भव नहीं रहा। इसीलिए सन् १९४० में उसे रेस्ट हाउस बिल्डिंग में स्थानान्तरित कर दिया गया। १९४४ तक इस स्कूल में छात्राओं की संख्या २२५ हो गई थी, और स्थान की कमी के कारण कितनी ही बालिकाओं के प्रवेश के लिए आवेदनपत्रों को अस्वीकृत करने के लिए विवश होना पड़ा था। बाद में आर्यसमाज के इस कन्या विद्यालय ने और भी अधिक उन्नति की, और उसे मोम्बासा के शिक्षणालयों में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त हो गया। स्त्री आर्यसमाज द्वारा वहाँ एक प्राइमरी स्कूल भी स्थापित किया गया है।

पूर्वी अफ्रीका के केनिया राज्य में अन्य भी अनेक नगरों में आर्य शिक्षण-संस्थाएँ विद्यमान हैं, जो मुख्यतया बालिकाओं की शिक्षा के लिए खोली गयी हैं। किसुमु नगर की आर्य पाठशाला और आर्य प्राइमरी स्कूल, नकुरू की आर्य पाठशाला और एल्डोरेट की आर्य पाठशाला इन संस्थाओं में उल्लेखनीय हैं।

पूर्वी अफ्रीका का एक अन्य राज्य तंजानिया है, जिसका मुख्य नगर दारुस्सलाम है। यह समुद्र तट पर स्थित एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है, और समुद्र मार्ग से आवागमन एवं व्यापार का केन्द्र है। वहाँ के आर्यसमाज के कुछ उत्साही सभासदों ने सन् १९२९ में अपने नगर में एक ऐसे शिक्षणालय की स्थापना का संकल्प किया जिसमें कि जाति, रंग आदि का भेद किये बिना सब वर्गों की बालिकाएँ वैदिक आदर्शों व मान्यताओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसके लिए दारुस्सलाम की जनता ने उदारतापूर्वक धनराशियाँ प्रदान कीं, और 'श्री देवकुंअर आर्य कन्या शाला' नाम से बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक आर्य शिक्षण-संस्था की स्थापना की गयी। यह निश्चय किया गया, कि अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी और गुजराती भाषाओं तथा धर्मशिक्षा की भी इस शाला में समुचित व्यवस्था की जाये। शिक्षणालय के संचालन व प्रबन्ध के लिए आर्य-समाज द्वारा आर्य विद्या सभा का गठन किया गया। दारुस्सलाम की इस आर्य कन्या शाला ने बड़ी तेजी के साथ उन्नति की। कुछ ही वर्षों में इसमें छात्राओं की संख्या ५०० के लगभग हो गयी, और वहाँ दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई होने लगी। संस्कृत की शिक्षा की भी इसमें व्यवस्था कर दी गयी। पूर्वी अफ्रीका के स्कूलों में प्रचलित पाठ्यक्रम के विविध विषय तो इसमें पढ़ाये ही जाते थे। यही आर्य कन्या शाला समयान्तर में डी० ए० वी० गर्ल्स प्राइमरी स्कूल और दयानन्द एंग्लो-सैकेण्डरी स्कूल के रूप में परिवर्तित हो गयी। तंजानिया में दारुस्सलाम के अतिरिक्त तबोरा, म्वांजा, तांगा और अरुशा में भी आर्यसमाज विद्यमान थे। उन द्वारा भी हिन्दी भाषा तथा आर्य धर्म की शिक्षा के लिए व्यवस्था की गयी। अनेक आर्य नर-नारियों ने अवैतनिक रूप से बालकों तथा बालिकाओं को हिन्दी पढ़ाना और धर्म की शिक्षा देना शुरू किया।

नैरोबी, मोम्बासा और दारुस्सलाम के समान जंजीबार का आर्यसमाज भी बहुत पुराना है। उसकी स्थापना सन् १९०७ में हुई थी। पूर्वी अफ्रीका के समुद्र तट से कुछ दूरी पर स्थित जंजीबार द्वीप लौंग के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है, और बहुत-से भारतीय व्यापारी वहाँ चिरकाल से बसे चले आ रहे थे। यद्यपि राजनीतिक परिस्थिति के बदल जाने के कारण अब जंजीबार में भारतीयों की संख्या अधिक नहीं रही है, पर आर्यसमाज अब भी वहाँ विद्यमान है। इस समाज ने बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक गर्ल्स स्कूल स्थापित किया था, और साथ ही एक पुस्तकालय भी, जिसमें धार्मिक पुस्तकें अच्छी बड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या में संग्रह की गयी थीं।

पूर्वी अफ्रीका का तीसरा राज्य युगाण्डा है। उसकी राजधानी कम्पाला तथा अन्य अनेक नगरों में पहले आर्यसमाज विद्यमान थे, क्योंकि भारतीय मूल के लोग वहाँ भी पर्याप्त संख्या में व्यापार, व्यवसाय आदि के लिए बसे हुए थे। इन समाजों के साथ प्रायः सर्वत्र आर्य पाठशालाएँ भी स्थापित थीं। पर ईदी अमीन के हाथों में युगाण्डा की राज-शक्ति आ जाने के परिणामस्वरूप जब युगाण्डा में भारतीयों के लिए रह सकना सम्भव नहीं रह गया, तो आर्यसमाज के कार्यकलाप का वहाँ स्वयमेव अन्त हो गया। युगाण्डा की राजनीतिक दशा में अब पुनः परिवर्तन हुआ है। पर आर्यसमाज का कार्य वहाँ तभी सुचारु रूप से प्रारम्भ हो सकेगा, जब भारतीय मूल के लोग एक बार फिर वहाँ अच्छी बड़ी संख्या में बसने लग जाएँगे। भारतीयों के लिए जो संकटाकुल समस्या युगाण्डा में उत्पन्न हुई थी, वही केनिया तथा तंजानिया में भी प्रकट होने लग गयी है, और वहाँ के अफ्रीकन निवासी एशियन लोगों की सम्पन्नता तथा सम्मानास्पद स्थिति से उद्वेग अनुभव करने लगे हैं। इस दशा में पूर्वी अफ्रीका में आर्यसमाज तथा आर्य शिक्षण-संस्थाओं का भविष्य उस समय तक उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता, जब तक कि अफ्रीकन लोगों में भी उसी प्रकार वैदिक धर्म का प्रचार न हो जाये, जैसाकि क्रिश्चिएनिटी और इस्लाम का हुआ है।

पूर्वी अफ्रीका में आर्यसमाजों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किये गये, उनमें हिन्दी भाषा के प्रचार तथा अध्यापन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रयोजन से वहाँ की आर्य-प्रतिनिधि सभा ने हिन्दी प्रचार विभाग स्थापित किया था, जिसका प्रधान कार्यालय मोम्बासा में है। इस विभाग द्वारा हिन्दी के प्रचार एवं शिक्षा के लिए जो केन्द्र स्थापित किये, सन् १९६० के लगभग उनकी संख्या ३८ थी। इन ३८ केन्द्रों के लिए ३८ संगठन-कर्ता नियुक्त किये गये थे, और ९८ प्रचारक या शिक्षक। १२८७ व्यक्ति इनमें हिन्दी भाषा की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, और १८,००० के लगभग रुपया प्रतिवर्ष आर्यसमाज द्वारा इस कार्य के लिए खर्च किया जा रहा था। बहुत-से आर्य नर-नारी कुछ भी पारिश्रमिक लिये बिना इन केन्द्रों में हिन्दी पढ़ाने का कार्य करते थे। आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्थापित इन हिन्दी केन्द्रों में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वार्धा सदृश संस्थाओं द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठा करते थे। पूर्वी अफ्रीका के आर्यसमाजों द्वारा यह प्रयत्न भी किया गया, कि वहाँ की सरकारों द्वारा विभिन्न स्तरों की शिक्षण-संस्थाओं के जो पाठ्यक्रम निर्धारित किये जायें, उनमें हिन्दी को भी स्थान प्राप्त हो। पंजाब में जब हिन्दी के लिए सत्याग्रह आन्दो-लन प्रारम्भ हुआ, तो पूर्वी अफ्रीका के अनेक आर्यसमाजों ने प्रस्ताव स्वीकृत कर न केवल उसका समर्थन ही किया, अपितु उसके लिए धन भी भेजा।

सन् १९५५ के लगभग आर्य कन्या पाठशाला नैरोबी के तत्त्वावधान में पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दीरत्न और हिन्दीभूषण परीक्षाओं की पढ़ाई प्रारम्भ की गयी थी। श्रीमती गायत्रीदेवी भारद्वाज ने इन परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापन करने के सम्बन्ध में सराहनीय कार्य किया था, और उनके प्रयत्न से १५ छात्राओं ने नैरोबी में रहते हुए ये परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली थीं। बाद में श्री विजयकुमार स्नातक द्वारा इस शिक्षा को जारी रखा गया। पर धीरे-धीरे इसमें शिथिलता आती गयी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान समय में हिन्दी प्रचार आदि के प्रायः सभी कार्यक्रमों में जो शिथिलता आ गयी है, उसके लिए जहाँ बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं, वहाँ साथ ही भारतीयों का बहुत बड़ी संख्या में पूर्वी अफ्रीका को छोड़कर अन्यत्र चले जाना भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

(४) पूर्वी अफ्रीका में गुरुकुल की स्थापना का प्रयास

सन् १९०२ में हरिद्वार के समीप काँगड़ी गाँव में गुरुकुल की स्थापना हुई थी। आर्य जनता में इस शिक्षण-संस्था के लिए अनुपम उत्साह था। गुरुकुल की कीर्ति सन् १९०४ तक पूर्वी अफ्रीका में भी पहुँच गयी थी। अफ्रीका महाद्वीप का यह प्रदेश उस समय अंग्रेजों के शासन में था, और बहुत-से भारतीय भी वहाँ सरकारी सेवा एवं व्यापार आदि के लिए बस गये थे। जिस प्रकार भारत के विविध प्रदेशों के लोग अपने बालकों को शिक्षा के लिए गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट कराने के लिए उत्सुक रहते थे, वैसे ही पूर्वी अफ्रीका में बसे हुए भारतीयों में भी यह आकांक्षा प्रादुर्भूत होने लगी कि वे अपने बालकों को गुरुकुल में शिक्षा दिलाएँ। नैरोबी आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के रिकार्ड से ज्ञात होता है, कि १ एप्रिल, सन् १९०५ की सभा की बैठक में लाला लब्भूराम द्वारा प्रेषित इस आशय का आवेदनपत्र विचारार्थ प्रस्तुत हुआ था कि उनके बालक को गुरुकुल काँगड़ी में प्रविष्ट कराने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाये। लाला लब्भूराम का आवेदनपत्र नैरोबी आर्यसमाज द्वारा स्वीकृत कर लिया गया था। पूर्वी अफ्रीका में बसे हुए भारतीयों में अपने बालकों को गुरुकुल में भेजने की इच्छा कितनी प्रबल थी, इसे स्पष्ट करने के लिए यही बात पर्याप्त है।

गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा की माँग पूर्वी अफ्रीका में इतनी बढ़ती जा रही थी कि वहाँ के आर्य सज्जनों ने अपना एक पृथक् गुरुकुल खोलने की आवश्यकता अनुभव की। इसी के परिणामस्वरूप आर्यसमाज नैरोबी द्वारा सन् १९१७ में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, कि गुरुकुल काँगड़ी की एक शाखा पूर्वी अफ्रीका में खोल दी जाये, ताकि इस देश के बालक गुरुकुल शिक्षा पद्धति के लाभ उठा सकें। श्री रामचरण ने इसके लिए अपनी सब सम्पत्ति प्रदान कर देने का संकल्प प्रकट किया, जिससे नैरोबी के आर्यों में गुरुकुल की स्थापना के लिए अनुपम उत्साह का संचार हो गया। पूर्वी अफ्रीका में शाखा गुरुकुल खोले जाने के सम्बन्ध में गुरुकुल काँगड़ी से पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ कर दिया गया, पर उसका कोई परिणाम नहीं निकला, और अफ्रीका में गुरुकुल खोलने का विचार क्रियान्वित नहीं हो सका। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है, कि सन् १९१७ में महात्मा मुंशीरामजी ने संन्यास आश्रम में प्रवेश कर लिया था और वह गुरुकुल काँगड़ी के मुख्याधिष्ठाता नहीं रहे थे। उनके चले जाने पर गुरुकुल में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं रह गया था, जिसमें इस संस्था तथा गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के लिए उन्हीं के समान उत्साह हो। विवश होकर कुछ समय पश्चात् उनसे (स्वामी श्रद्धानन्दजी से) गुरुकुल को फिर से सँभाल लेने की प्रार्थना की गयी थी, और वह पुनः गुरुकुल वापस भी आ गये थे। पर सन् १९१७ और उसके पश्चात् कुछ समय तक गुरुकुल काँगड़ी के प्रबन्ध व संचालन की जो दशा रही, उसमें यह आशा की ही कैसे जा सकती थी, कि सुदूर अफ्रीका महाद्वीप में एक नये गुरुकुल की स्थापना पर ध्यान दिया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सके।

पर पूर्वी अफ्रीका के आर्य सज्जनों ने इससे गुरुकुल की स्थापना के विचार का परित्याग नहीं कर दिया। वे इसके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इसीलिए २८ दिसम्बर, १९२४ के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा, पूर्वी अफ्रीका द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, कि उस देश में गुरुकुल काँगड़ी की एक शाखा स्थापित की जाये। इस प्रस्ताव को क्रियान्वित करने के प्रयोजन से महाशय फकीर चन्द, मास्टर लाहौरी राम और श्री नाहरसिंह की एक उपसमिति बना दी गयी। इस उपसमिति को यह अधिकार दिया गया, कि वह प्रस्तावित गुरुकुल के लिए धन एकत्र करे और उसकी स्थापना के सम्बन्ध में सब आवश्यक पग उठाये। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित चमूपतिजी उन दिनों नैरोबी में ही थे। उपसमिति ने उनका भी सहयोग प्राप्त किया, और पूर्वी अफ्रीका में व्यापक रूप में भ्रमण कर गुरुकुल की स्थापना के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार की। गुरुकुल की योजना को आगे बढ़ाने के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा का एक महत्त्वपूर्ण अधिवेशन जिन्जा में आयोजित किया गया, जिसकी अध्यक्षता सेठ नानजी कालिदास मेहता ने की। पूर्वी अफ्रीका के सभी प्रदेशों से आर्य नर-नारी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए, और गुरुकुल की योजना को सर्वसम्मति से स्वीकार कर धन एकत्र करने के लिए अपील प्रकाशित की गयी। गुरुकुल स्थापित करने की योजना को क्रियान्वित करने के लिए जिन्जा के सभा के अधिवेशन में यह भी निर्णय किया गया, कि गुरुकुल की स्थापना की दिशा में प्रथम पग के रूप में स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज की पुण्य स्मृति में उनके नाम पर 'श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम' शीघ्र ही स्थापित कर दिया जाये, जिसमें बालक उसी प्रकार ब्रह्मचर्यपूर्वक अनुशासित ढंग से निवास करें, जैसे कि गुरुकुल काँगड़ी के छात्रावास में करते हैं। विचार यह था, कि शुरू में बालकों की शिक्षा की भी व्यवस्था करने में बहुत व्यय होगा। बालक अभी अन्य विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते रहें पर गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के जो लाभ हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य आश्रम द्वारा प्राप्त कराया जाये। बाद में जब समुचित साधन उपलब्ध हो जाएँगे, शिक्षा की व्यवस्था भी इस आश्रम में कर दी जायेगी, और यह पूर्णरूप से एक गुरुकुल का रूप प्राप्त कर लेगा। आश्रम के लिए श्रीवलजी हरिजी से एक मकान किराये पर ले लिया गया, और आश्रम का श्रीगणेश कर दिया गया। नैरोबी में इस श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना २३ दिसम्बर, १९२८ के दिन की गयी थी, और शुरू में ही इसमें तीन बालकों ने प्रवेश ले लिया था। चार मास बीतते-बीतते आश्रम में निवास करने वाले बालकों की संख्या तीन से बढ़कर छह हो गयी, और बाद में इसमें निरन्तर वृद्धि होती गयी।

श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम, नैरोबी की स्थापना और संचालन में श्री दयालजी भीमभाई देसाई का कर्तृत्व उल्लेखनीय है। वह पंजाब यूनिवर्सिटी के एम० ए० थे, और गुरुकुल सूपा में काम कर चुके थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से उनका घनिष्ठ परिचय था। सन् १९२९ में वह नैरोबी आये थे, और पूर्वी अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा ने उनसे ब्रह्मचर्य आश्रम की योजना तैयार करने के लिए निवेदन किया था। श्री देसाई ने आश्रम की जो योजना तैयार की, उसमें उसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये थे—(१) विद्यार्थियों को शारीरिक दृष्टि से बलवान् और वीर व साहसी बनाना, (२) उनकी मानसिक शक्तियों को विकसित करना और उन्हें मानसिक पराधीनता से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त करना, (३) आध्यात्मिक उन्नति द्वारा उन्हें गम्भीर तथा सत्य पर दृढ़ रहने वाला बनाना, (४) प्राचीन भारतीय संस्कृति के उच्च व पवित्र आदर्शों को सदा उनके सम्मुख रखते हुए 'सादा जीवन और उच्च विचार' के आदर्श को उनके जीवन में क्रियान्वित करने का प्रयत्न करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आश्रम की योजना में निम्नलिखित साधनों का प्रतिपादन किया गया था—आसन, प्राणायाम, सूर्यभेदन व्यायाम, विविध प्रकार के खेल, कुश्ती, यात्राएँ, सन्ध्या-हवन, प्रार्थना, उपासना, ब्रह्मचर्य और उपदेश। आश्रम में बालकों का जीवन किस प्रकार का हो, इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई थी कि सबके वस्त्र, रहन-सहन और भोजन एक समान होंगे, चाहे कोई धनी की सन्तान हो और चाहे निर्धन की। सबको समान रूप से सादा व तपस्यामय जीवन बिताना होगा। आश्रम में निवास करने वाले विद्यार्थियों का दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार से निर्धारित किया गया था—

प्रातः ५ बजे जागरण।

५ से ६·३० बजे तक—प्रार्थना, शौच, दन्तधावन, व्यायाम एवं स्नान।
६·३० से ७ बजे तक—सन्ध्या-हवन।
७ से ७·३० बजे तक—प्रातराश।
७·३० से १·४५ दोपहर तक—शिक्षा के लिए बालक जिन स्कूलों में प्रविष्ट हुए हों उनमें जाकर शिक्षा प्राप्त करना।
१·४५ से २·३० बजे तक—भोजन।
२·३० से ५ बजे तक—स्वाध्याय और स्कूल में दिया गया कार्य सम्पन्न करना।
५ से ६·३० बजे तक—पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना।
५·३० से ५·३० बजे तक—ऋतु के अनुसार विविध खेल, कुश्ती आदि।
६·३० से ७ बजे तक—सन्ध्या-हवन।
७ से ७·३० बजे तक—भोजन।
७·३० से ६ बजे तक—स्वाध्याय एवं विविध विषयों की चर्चा।
६ से ५ बजे प्रातः तक—शयन।

यह व्यवस्था की गयी थी, कि भोजन निरामिष, सादा व पुष्टिकर हो और ऋतु के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहे। खेलों में क्रिकेट और वॉलीबाल को प्रमुखता दी गयी थी। आश्रमवासियों की यह दिनचर्या ठीक वैसी ही थी, जैसी कि गुरुकुल काँगड़ी व गुरुकुल सूपा आदि में थी। श्री दयालजी भीमभाई देसाई गुरुकुल सूपा में काम कर चुके थे, और वहाँ के ब्रह्मचारियों के जीवन को भली-भाँति जानते थे। उसी को दृष्टि में रख कर उन्होंने श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम की योजना, नियमावली एवं दिनचर्या तैयार की थी। भारत के गुरुकुलों में प्रायः ऐसी सभाएँ भी हुआ करती थीं, जिनमें विद्यार्थी भाषण एवं वाद-विवाद का अभ्यास किया करते थे। गुरुकुल काँगड़ी में ऐसी एक सभा का नाम 'वाग्वर्धिनी सभा' था। अन्य अनेक गुरुकुलों में भी वाग्वर्धिनी सभाओं की सत्ता थी। उन्हीं का अनुकरण कर श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम, नैरोबी में भी वाग्वर्धिनी सभा बनायी गयी, जिसके अधिवेशन शनिवार को हुआ करते थे। आश्रम में एक पुस्तकालय भी था, जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती की पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ इन भाषाओं की पुस्तकों का भी अच्छा संग्रह था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एप्रिल, सन् १९२९ में सेठ नानजी कालिदास मेहता ने नैरोबी के पार्कलैण्ड क्षेत्र में छह एकड़ जमीन श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रय के लिए प्रदान कर दी। इस जमीन पर कुछ भवन पहले से भी बने हुए थे। भवनों में वृद्धि करने के लिए सेठजी ने ६,००० की धनराशि भी आश्रम को प्रदान की। अब आश्रम को किराये के मकान में रखने की आवश्यकता नहीं रही, और उसे पार्कलैण्ड की अपनी भूमि में ले आया गया। सेठ नानजी कालिदास को इस आश्रम के लिए इतना उत्साह था और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रति उनकी इतनी आस्था थी, कि उन्होंने अपने बालक तथा अपने भाई व अन्य सम्बन्धियों के बच्चों को भी आश्रम में प्रविष्ट करा दिया। पूर्वी अफ्रीका के अन्य कितने ही आर्य सज्जनों ने उनका अनुकरण किया, जिसके कारण सन् १९३० में आश्रम के विद्यार्थियों की संख्या बयालीस तक पहुँच गयी। बालकों को आश्रम में प्रवेश कराने की माँग इस समय इतनी बढ़ गयी थी, कि उसे पूरा नहीं किया जा सकता था। १९३० में जो केवल ४२ बालक ही वहाँ थे, इसका कारण अधिक बालकों के लिए जगह का न होना था। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर पूर्वी अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया कि शीघ्र ही आश्रम में इतने नये भवन बनवा दिये जायें, जिससे कि २०० विद्यार्थी वहाँ आराम से निवास कर सकें। इसके लिए धन की अपील की गयी, जिसके परिणाम-स्वरूप २०,००० शिलिंग नकद एकत्र हो गये, और अनेक दानियों ने धन देने की प्रतिज्ञायें भी कीं। इससे श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम में भवनों की आवश्यकता के पूर्ण होने में बहुत सहायता मिली। भोजन भण्डार, व्यायामशाला, स्नानागार आदि की सब समुचित व्यवस्था वहाँ कर दी गयी, और पूर्वी अफ्रीका के सभी प्रदेशों के विद्यार्थी उसमें प्रवेश पाने लगे। सन् १९३० में जो ४२ बालक इस आश्रम में निवास कर रहे थे, उनमें केनिया के १९, युगाण्डा के १७, जन्जीबार के २, ताँगनीका के २ और तोंगा व कहाले के एक-एक विद्यार्थी थे। उस समय पूर्वी अफ्रीका ब्रिटेन का एक अधीनस्थ उपनिवेश था, और केनिया, युगाण्डा आदि उसके विविध भाग थे। वर्तमान समय में केनिया, युगाण्डा और तन्जानिया (तांगनीका) स्वतन्त्र राज्य हैं।

श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम का शुल्क ४० शिलिंग मासिक था। यह धनराशि बालकों के भोजन एवं निवास के लिए ली जाती थी। वे जिस स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, उसकी फीस इससे अतिरिक्त थी। पूर्वी अफ्रीका और विशेषतया नैरोबी के सार्वजनिक व सांस्कृतिक जीवन में इस आश्रम का महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि इसका धार्मिक व सदाचारमय वातावरण तथा इसमें निवास करने वाले बालकों का अनुशासित जीवन जनता को बहुत आकृष्ट करता था। श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती शन्नो देवी और श्री श्रीनिवास शास्त्री सदृश कितने ही भारतीय नेता व शिक्षाविज्ञ इस आश्रम को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम के प्रथम अधिष्ठाता (सुपरिण्टेण्डेण्ट) श्री दयालजी भीमभाई देसाई थे। उन्होंने ही इस आश्रम की योजना व नियमावली तैयार की थी, और कुछ वर्षों तक इसके अधिष्ठाता व सचिव के पद पर रह कर इसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने का भी प्रयत्न किया था। सन् १९३२ में आश्रम के साथ लगी हुई कुछ अन्य भूमि तथा इमारतें आर्य प्रतिनिधि सभा, पूर्वी अफ्रीका द्वारा क्रय कर ली गयी थीं, जिनके कारण इस संस्था का समुचित रूप से विस्तार कर सकना सम्भव हो गया था। कुछ वर्षों तक आश्रम निरन्तर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति करता गया, और उसमें निवास करने वाले विद्यार्थियों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी।

पर भारत की गुरुकुल संस्थाओं के समान नैरोबी के ब्रह्मचर्य आश्रम में भी कुछ समय पश्चात् ह्रास के चिह्न प्रकट होने लग गये। उसका आकर्षण कम होता गया और विद्यार्थियों की संख्या में कमी आने लगी। सन् १९३७ में सभा द्वारा एक उपसमिति इस बात पर विचार करने के लिए नियुक्त की गयी, कि क्या आश्रम द्वारा उन उद्देश्यों की पूर्ति की जा रही है, जिनको सम्मुख रखकर इसकी स्थापना की गयी थी। विचार-विमर्श के अनन्तर कमेटी इस परिणाम पर पहुँची, कि जब तक आश्रम की व्यवस्था ठीक नहीं हो जाती, और विद्यार्थियों की दिनचर्या व रहन-सहन पर समुचित नियन्त्रण कायम नहीं कर दिया जाता, उसे कायम रखने से कोई लाभ नहीं है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि की जाये। थोड़े-से विद्यार्थियों के साथ आश्रम को चलाना निरर्थक है। सभा ने कमेटी के इस मत से अपनी सहमति व्यक्त की, और सामयिक रूप से आश्रम के कार्य को स्थगित कर देने का निश्चय किया। पर सभा का यह भी प्रयत्न रहा, कि आश्रम की व्यवस्था को ठीक करके उसे समुचित ढंग से चलाया जाये, और अफ्रीका के निवासी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के लाभों से वंचित न रहें। पर ये प्रयत्न सफल नहीं हुए। आश्रम चलता तो रहा, पर उसमें विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर कम होती गयी। जो विद्यार्थी वहाँ रहते थे, उनकी दिनचर्या भी आश्रम के आदर्शों व नियमों के अनुरूप नहीं थी। उन्हें अनुशासन में रखना और सदाचारमय जीवन बिताने के लिए प्रेरित करना सुगम नहीं था। वे समझते थे, कि हम शुल्क देकर रह रहे हैं, और हमारी स्थिति किरायेदार की है। हमारे रहन-सहन व खान-पान आदि पर नियन्त्रण रखने का किसी का कोई अधिकार नहीं है। इस दशा में आश्रम के छात्रावास को बन्द कर देने का प्रश्न एक बार फिर (७ नवम्बर, सन् १९५२ को) आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा के समक्ष प्रस्तुत हुआ। बहुसंख्यक सदस्यों का विचार था कि यद्यपि आश्रम का सब खर्च फीस से प्राप्त हो जाता है, पर उस द्वारा आर्यसमाज का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो रहा है। अतः यही उचित है, कि उसे बन्द कर आश्रम में एक कुमार विद्यालय की स्थापना कर दी जाये। अन्तरंग सभा के छह सदस्यों ने इस विचार के पक्ष में वोट दिये और दो ने विरोध में। इस प्रकार बहुमत के निर्णय के अनुसार श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम को बन्द कर दिया गया। उस समय आश्रम में १४ विद्यार्थी निवास कर रहे थे। उन्हें इस निर्णय की सूचना दे दी गयी, और अगले शिक्षा सत्र से उन्होंने अपने निवास का अन्यत्र प्रबन्ध कर लिया।

(५) दक्षिणी अफ्रीका की आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों का प्रवेश सन् १८६० में प्रारम्भ हुआ था। वहाँ गौराङ्ग लोगों के बड़े-बड़े फार्म थे, जिनमें प्रधानतया गन्ने की खेती हुआ करती थी। इन फार्मों में काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता थी। इसीलिए गरीब भारतीयों को पाँच साल का पट्टा लिखवाकर वहाँ ले जाना प्रारम्भ किया गया, और इस प्रकार अफ्रीका महाद्वीप के इस दक्षिणी प्रदेश में भारतीयों की आबादी में निरन्तर वृद्धि होती गयी। धीरे-धीरे व्यापार के लिए भी कतिपय भारतीयों ने इस देश में जाकर बसना शुरू

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया। यद्यपि दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों को वसे हुए कई दशाब्दियाँ हो चुकी थीं, पर उनके वच्चों की पढ़ाई का वहाँ कोई प्रवन्ध नहीं था। क्रिश्चियन मिशनरियों ने वहाँ अनेक स्कूल अवश्य खोले हुए थे। पर उनमें विद्यार्थियों को ईसाई वनाने पर अधिक ध्यान दिया जाता था। सन् १९०८ में स्वामी शंकरानन्द दक्षिणी अफ्रीका गये, और वहाँ उन्होंने धर्मप्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। उनका ध्यान भारतीय वालक-वालिकाओं की शिक्षा की ओर भी गया। सन् १९०९ में नाताल की सरकार ने एक शिक्षा कमीशन की नियुक्ति की थी। स्वामी शंकरानन्द ने कमीशन के सम्मुख भारतीयों की शिक्षा की समस्या को प्रस्तुत किया। उस समय भारतीय वच्चे चौदह साल की आयु तक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इसके वाद पढ़ना कानून द्वारा उनके लिए निषिद्ध था। स्वामीजी ने इस कानूनी रुकावट को हटाने के लिए वहुत प्रयत्न किया, और अन्त में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। इस समय से भारतीयों द्वारा अपने वच्चों की पढ़ायी के लिए शिक्षणालय खोले जाने लगे, और उनके लिए सरकारी सहायता भी प्राप्त होने लगी। दक्षिणी अफ्रीका के अनेक नगरों में इस समय तक आर्यसमाजों की स्थापना हो चुकी थी। उन द्वारा भी अनेक स्कूल खोले गये, और भारतीय वच्चों की शिक्षा की समस्या कुछ अंश तक हल हो गयी।

पर सरकार द्वारा निर्धारित व्यवस्था के अनुसार दक्षिणी अफ्रीका के सव स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा थी, और उसी की पढ़ाई को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता था। नाताल की सरकार ने जो शिक्षा कमीशन नियुक्त किया हुआ था, उसे इस वात पर भी विचार करना था, कि हिन्दी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं का शिक्षणालयों में क्या स्थान हो। इस सम्वन्ध में भारतीयों का क्या रुख हो और कमीशन के सम्मुख भारतीयों की ओर से क्या विचार प्रस्तुत किये जायें, इस पर विचार करने के लिए किम्वर्ली में एक कान्फरेन्स का आयोजन किया गया। उस समय श्री श्रीनिवास शास्त्री दक्षिणी अफ्रीका में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त थे। वह शिक्षणालयों में मातृभाषा को स्थान देने के प्रवल विरोधी थे। उनका विचार था कि नाताल में वसे हुए भारतीयों को अंग्रेजी ही पढ़नी चाहिये, और उसी में सव कामकाज करना चाहिये। हिन्दी, गुजराती आदि मातृ भाषाओं को पढ़ने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है। आर्यसमाज ने शास्त्रीजी के इस विचार का प्रवल रूप से विरोध किया, और आर्य नेताओं के प्रयत्न से कान्फरेन्स में मातृ भाषाओं की शिक्षा के पक्ष में निर्णय हुआ। इस प्रश्न पर जनता भी आर्यसमाज के साथ थी। पर सरकार ने आर्यसमाज और जनता के मत की तुलना में शास्त्रीजी के विचार को अधिक महत्त्व दिया। परिणाम यह हुआ, कि दक्षिणी अफ्रीका के शिक्षणालयों में हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं को कोई भी स्थान प्राप्त नहीं हुआ, और उनकी शिक्षा की पूरी उत्तरदायिता जनता पर आ गयी। शिक्षणालयों में भारतीय भाषाओं को स्थान प्राप्त न होने के कारण उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर सकना सुगम नहीं था, क्योंकि इसके लिए वहुत धन की आवश्यकता थी। पर आर्यसमाज ने सव कठिनाइयों का सामना करते हुए हिन्दी भाषा की शिक्षा के लिए अनेक शिक्षणालय स्थापित किये। दक्षिणी अफ्रीका में जो आज तक हिन्दी भाषा कायम है, उसका प्रधान श्रेय आर्यसमाज को ही दिया जाना चाहिये। वहाँ के विविध आर्यसमाजों तथा उनके केन्द्रीय संगठन आर्य प्रतिनिधि सभा के सव कार्य प्रधानतया हिन्दी में किये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं, और उनका निरन्तर यह प्रयत्न रहता है, कि स्थान-स्थान पर हिन्दी पाठशालाएँ स्थापित कर हिन्दी भाषा का प्रचार किया जाये।

शिक्षा के क्षेत्र में दक्षिणी अफ्रीका के आर्यसमाजों के कार्यकलाप के दो भाग हैं—हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था करना और बालक-बालिकाओं को वैदिक धर्म के मन्तव्यों से परिचित कराना तथा उनके जीवन को आर्य संस्कृति के नैतिक आदर्शों के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करना। पहले कार्य के लिए आर्यसमाजी नेताओं के प्रयत्न से 'हिन्दी शिक्षा संघ' नाम से एक संगठन विद्यमान है, जिसके अध्यक्ष पण्डित नरदेव वेदालंकार हैं। ५१ शिक्षण-संस्थाएँ इस संघ के साथ सम्बद्ध हैं, जिनमें से २४ की स्थापना विविध आर्यसमाजों द्वारा की हुई है। यहाँ इनमें से कुछ का उल्लेख ही किया जा सकता है। आर्यसमाज केटो मेनर ने सितम्बर, १९२९ में हिन्दी पाठशाला की स्थापना की थी, जिसका उद्घाटन श्री बालकिशोर महाराज ने किया था। अगस्त, १९२८ में दरबन आर्यसमाज की आर्य युवक सभा ने एक शिक्षण-संस्था स्थापित की थी, जिसमें दिन के समय सरकारी पाठ्यक्रम के अनुसार अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है, और रात के समय हिन्दी और तमिल भाषाएँ पढ़ायी जाती हैं। खण्डाला एस्टेट के हिन्दुओं में शिक्षा और धर्म के प्रचार के उद्देश्य से जनवरी, १९३१ में 'खण्डाला एस्टेट हिन्दू संगठन' नाम से एक संस्था गठित की गयी थी, जिसके गठन में वहाँ के आर्यसमाजियों का प्रमुख कर्तृत्व था। सन् १९३५ में इस की ओर से एक कन्या पाठशाला स्थापित की गयी। उस समय दक्षिणी अफ्रीका में तो क्या भारत में भी स्त्रीशिक्षा का विशेष प्रचार नहीं था। माता-पिता अपनी कन्याओं को पाठशालाओं में भेजने से हिचकते थे। पर संगठन ने उन्हें अपनी बालिकाओं को शिक्षा देने के लिए प्रेरणा देने में विशेष उत्साह प्रदर्शित किया, जिसके परिणामस्वरूप पन्द्रह वर्ष बाद इस पाठशाला में छात्राओं की संख्या २०० के लगभग हो गयी। इस शिक्षणालय में प्रातः सरकारी स्कूलों के पाठ्यक्रम के अनुसार अंग्रेजी की पढ़ाई होती है, और सायंकाल हिन्दी की। आर्यसमाज क्लेरवुड ने सन् १९३३ में एक हिन्दी पाठशाला की स्थापना की थी, जिसके लिए आर्यसमाज के संस्थापक-सदस्य श्री आर० भूषण ने अपना भवन सात वर्ष के लिए बिना किराये के दे दिया था, और श्री रविवरण तथा श्री एस० एम० महाराज ने अध्यापन-कार्य के लिए अपनी अवैतनिक सेवायें अर्पित कर दी थीं। कुछ ही समय में इस पाठशाला ने बहुत उन्नति कर ली। इसका अपना भवन हो गया, और प्रातः-सायं दोनों समय इसमें हिन्दी की पढ़ाई होने लगी। विद्यार्थियों की संख्या भी इसमें सैकड़ों तक पहुँच गयी। आर्यसमाज वेस्टविल द्वारा सन् १९३३ में हिन्दी पाठशाला स्थापित की गयी थी। अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए यह शिक्षणालय निरन्तर उन्नति करता गया, और कालान्तर में सुदृढ़ आधार पर स्थापित हो गया। नाताल प्रान्त की राजधानी पीटरमेरित्सबर्ग में भारतीय लोग अच्छी बड़ी संख्या में निवास करते हैं। वहाँ का आर्यसमाज भी पर्याप्त रूप से सशक्त है। उस द्वारा एक पाठशाला भी चलायी जा रही है, जिसमें दो सौ के लगभग विद्यार्थी हैं। पीटर मेरित्सबर्ग के समीप प्लेसिसलेयर कस्बे में क्रिश्चियन मिशनरियों का एक स्कूल था, जिसमें ५०० के लगभग भारतीय बच्चे शिक्षा प्राप्त करते थे। वहाँ हिन्दुओं की कोई संस्था नहीं थी। आर्यसमाज के नेता श्री एफ० सत्यपाल को यह बात बहुत अखरी। उन्होंने वहाँ एक सम्मेलन का आयोजन किया,

और 'नागरी हितैषी सभा' नामसे एक संस्था की स्थापना की। बाद में यही आर्यसमाज के रूप में परिवर्तित हो गयी। समाज द्वारा वहाँ भी हिन्दी पाठशाला स्थापित की गयी। मेरित्सवर्ग के समीप पेंट्रिच नाम की एक अन्य बस्ती है। वहाँ भी आर्यसमाज विद्यमान है, और उस द्वारा हिन्दी पाठशाला भी चलायी जा रही है। माउण्ट पार्ट्रिज में आर्य-समाज की स्थापना सन् १९३४ में हुई थी। उस द्वारा एक वर्ष बाद वहाँ हिन्दी पाठशाला खोल दी गयी। इस बस्ती में अंग्रेजी शिक्षा की भी कोई सुविधा नहीं थी। अत: १९४३ में वहाँ आर्यसमाज द्वारा एक अंग्रेजी स्कूल भी स्थापित कर दिया गया। इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका के अन्य भी अनेक आर्यसमाजों द्वारा हिन्दी पाठशालाएँ स्थापित की हुई हैं, और हिन्दी भाषा की शिक्षा व प्रचार के लिए वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। शिक्षा का प्रसार आर्यसमाज के कार्यकलाप का महत्त्वपूर्ण अंग है, अत: दक्षिणी अफ्रीका में नौ ऐसे स्कूल भी आर्यसमाज द्वारा चलाये जा रहे हैं, जिनमें सरकारी पाठ्य-क्रम के अनुसार अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। पर शिक्षा के क्षेत्र में उसका मुख्य कार्य हिन्दी पाठशालाओं की स्थापना तथा संचालन ही है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, दक्षिणी अफ्रीका के हिन्दी शिक्षणालयों का केन्द्रीय संगठन 'हिन्दी शिक्षा संघ' है, जिसका प्रधान कार्यालय दरबन में है। हिन्दी पाठशालाओं की प्रथम चार कक्षाओं में शिक्षा का पाठ्यक्रम इस संघ द्वारा तैयार किया जाता है, और चार वर्ष की पढ़ाई के पश्चात् संघ छात्रों की 'प्रथमा' परीक्षा लेता है। परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को संघ द्वारा प्रमाणपत्र दिये जाते हैं। चौथी कक्षा के बाद का पाठ्यक्रम वही रखा गया है, जिसका निर्धारण राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वार्धा (महाराष्ट्र) द्वारा किया जाता है। समिति की परीक्षाओं के लिए दक्षिणी अफ्रीका के अनेक नगरों में परीक्षा केन्द्र भी विद्यमान हैं। हिन्दी की उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी 'कोविद' और 'रत्न' (राष्ट्र भाषा रत्न) की परीक्षाओं में बैठते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के जो विद्यार्थी हिन्दी की इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर चुके हैं, उनकी संख्या ४००० से भी अधिक है। पण्डित नरदेव वेदालंकार दक्षिणी अफ्रीका में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वार्धा के प्रतिनिधि हैं। हिन्दी पढ़ाने के लिए उन्होंने अनेक पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी हैं, जिन्हें हिन्दी शिक्षा संघ ने प्रकाशित किया है। हिन्दी के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए भी संघ द्वारा विशेष व्यवस्था की गयी है।

हिन्दी शिक्षा संघ और आर्यसमाज के प्रयत्न से अब दक्षिणी अफ्रीका के सरकारी शिक्षणालयों में भी हिन्दी को स्थान प्राप्त होना प्रारम्भ हो गया है। नेशनल सीनियर सर्टिफिकेट की परीक्षा के पाठ्यक्रम में हिन्दी को भी अन्यतम विषय के रूप में स्थान दे दिया गया है, और दरबन वेस्टवील यूनिवर्सिटी के बी० ए० के पाठ्यक्रम में भी हिन्दी को एक विषय की स्थिति प्रदान कर दी गयी है। एम० आई० सुलतान टेक्निकल कॉलिज दरबन में भी हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था है। भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही वहाँ पढ़ाई जा रही है।

दक्षिणी अफ्रीका में शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का दूसरा कार्य वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के मूल तत्त्वों की शिक्षा देना है। इस प्रयोजन से वहाँ 'वेद निकेतन' नाम से एक संस्था आर्यसमाज द्वारा स्थापित की गयी है, जिसके प्रधान पण्डित नरदेव वेदा-लंकार हैं। निकेतन द्वारा वैदिक धर्म का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया है, और उसके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार करायी गयी हैं। वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए पाँच परीक्षाएँ नियत हैं, धर्मप्रथमा, धर्मप्रवेश, धर्मप्रकाश, धर्मप्रवीण और धर्मप्रभाकर। ये परीक्षाएँ वर्ष में दो बार मई तथा अक्तूबर में ली जाती हैं, और इनके लिए अनेक परीक्षा-केन्द्र स्थापित हैं। दक्षिणी अफ्रीका में ये केन्द्र निम्नलिखित स्थानों पर हैं—लनासिया, तोंगात, स्ताग्गर, दरवन और पीटर मेरित्सवर्ग। त्रिनिदाद, फीजी, मॉरीशस और गुयाना में भी इन परीक्षाओं के केन्द्र विद्यमान हैं, और वहाँ के विद्यार्थी भी वेद निकेतन द्वारा निर्धारित धर्म शिक्षा के पाठ्यक्रम को पढ़कर इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण करते हैं। इन परीक्षाओं की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से किया जा सकता है, कि सन् १९८१ में २९८ विद्यार्थी इन परीक्षाओं में बैठे थे, जिनमें से २३९ दक्षिणी अफ्रीका के थे। इन परीक्षाओं के कारण दक्षिणी अफ्रीका के भारतमूलक निवासियों को वैदिक धर्म से परिचय प्राप्त करने और उसकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करने का यथोचित अवसर प्राप्त हो रहा है। वेद निकेतन ने जहाँ धर्मप्रथमा, धर्मप्रवेश और धर्मप्रकाश परीक्षाओं के लिए Elementary Teachings of Hinduism, Basic Teachings of Hinduism और Essential Teachings of Hinduism नामक पुस्तकें अंग्रेजी में तैयार करायी हैं, वहाँ शास्त्रनवनीतम् (A Concise Study of Hindu Scriptures) नाम से एक अधिक गम्भीर ग्रन्थ भी उसके तत्त्वावधान में प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ भी अंग्रेजी में है, और इसे पण्डित नरदेव वेदालंकार ने श्री धर्मदेव वेदवाचस्पति तथा डा० सुरेश कुमार विद्यालंकार की सहायता से लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिणी अफ्रीका में वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए वेद निकेतन द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। यह निकेतन वहाँ की आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा ही गठित है, और वही इसका संचालन कर रही है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी भाषा के प्रचार तथा वैदिक धर्म की शिक्षा का जो कार्य हो रहा है, उसमें पण्डित नरदेव वेदालंकार का अत्यधिक कर्तृत्व है। नरदेवजी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं, और चिरकाल से इस सुदूरवर्ती अफ्रीकन राज्य में आर्यसमाज के विविध कार्यों का उत्साह तथा लगन से संचालन कर रहे हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी की शिक्षा के प्रसंग में स्वामी भवानीदयाल संन्यासी का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उनके पूर्वज चिर काल से दक्षिणी अफ्रीका में वसे हुए थे, और उनका जन्म भी वहीं पर हुआ था। वचपन में वह अपने पिताजी के साथ भारत गये थे, और वहाँ आर्यसमाज के सम्पर्क में आकर उन्होंने वैदिक धर्म, राष्ट्रीय भावना तथा हिन्दी प्रेम के लिए प्रेरणा प्राप्त की थी। बीस वर्ष की आयु में सन् १९१२ के अन्त में वह अफ्रीका वापस लौटे और उन्होंने अपना जीवन धर्म तथा भारतीय जनता की सेवा के लिए अर्पित कर दिया। सन् १९१३ में महात्मा गांधी ने दक्षिणी अफ्रीका में जब सत्याग्रह प्रारम्भ किया, तो भवानीदयालजी ने भी उसमें भाग लिया। पर उनका वास्तविक कार्यक्षेत्र आर्यसमाज था। सन् १९२७ में उन्होंने संन्यास की दीक्षा ग्रहण कर ली थी, और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से दक्षिणी अफ्रीका में वैदिक धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया था। हिन्दी की शिक्षा भी इसी धर्मप्रचार का अंग थी। स्वामीजी ने विविध आर्यसमाजों के साथ हिन्दी पाठशालाओं की स्थापना कर तथा अन्य हिन्दू संगठनों को भी हिन्दी की शिक्षा के लिए प्रेरित कर हिन्दी के प्रचार के लिए अत्यन्त

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सराहनीय व महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

(६) फीजी में आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

प्रशान्त महासागर के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित फीजी द्वीप समूह पहले एक ब्रिटिश उपनिवेश था, जो अब से लगभग चौदह वर्ष पूर्व स्वाधीन हुआ। सैकड़ों छोटे-बड़े द्वीपों से बने इस देश में गन्ने की खेती विशेष रूप से होती थी, और गौराङ्ग लोगों के स्वामित्व में विद्यमान गन्ने के बड़े-बड़े फार्मों में काम करने के लिए प्रतिज्ञावद्ध कुलीप्रथा के अधीन भारत से श्रमिकों को वहाँ ले जाना शुरू कर दिया गया था। सन् १८७६ से भारतीयों का फीजी में प्रवास आरम्भ हुआ, जो सन् १६२० तक जारी रहा। इस अवधि में कुल मिला कर साठ हजार के लगभग भारतीय स्त्री-पुरुष फीजी गये, जिनमें से बहु-संख्यक वहीं पर स्थायी रूप से बस गये। व्यापार तथा अन्य रोजगारों के लिए भी बहुत-से भारतीय वहाँ जाते रहे। वर्तमान समय में फीजी द्वीप-समूह की जनसंख्या छह लाख से कुछ अधिक है, जिसमें ५१ प्रतिशत के लगभग भारतीय मूल के हैं। इनमें बहुसंख्या हिन्दी भाषा भाषी लोगों की है। उत्तरप्रदेश और बिहार के जो लोग फीजी जाकर बसे थे, उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज के मन्तव्यों से परिचय था। ये सत्यार्थप्रकाश को भी अपने साथ फीजी ले गये थे। इन्हीं द्वारा वहाँ आर्य-समाजों की स्थापना की गयी। फीजी द्वीप समूह का पहला आर्यसमाज दिसम्बर, १६०४ में श्री ननकू स्वर्णकार के प्रयत्न से बाबू मंगलसिंह के घर पर स्थापित हुआ था। इस समय तक फीजी में शिक्षा का कार्य मुख्यतया क्रिश्चियन मिशनरियों के हाथों में था। उन्हीं द्वारा वहाँ अनेक स्कूल खोले हुए थे, जिनमें भारतीय बच्चे भी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि इन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे ईसाई धर्म से प्रभावित हों। इसी कारण प्रथम आर्यसमाज की स्थापना के समय से ही उसके साथ एक पाठशाला भी खोल दी गयी। १६०४ के पश्चात् फीजी में आर्यसमाज के कार्य में निरन्तर वृद्धि होती गयी, और वहाँ के आर्यसमाजियों ने प्रयत्न किया, कि कोई सुयोग्य प्रचारक भारत से फीजी आ जाये। इसके परिणामस्वरूप स्वामी राममनोहरानन्द सन् १६१३ में फीजी गये, और उनके आ जाने पर वहाँ के आर्यसमाजियों में नवीन उत्साह का संचार हो गया। स्वामीजी द्वारा फीजी द्वीप-समूह में अनेक स्कूल खोले गये, और जनवरी, १६१५ में एक आर्य सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें यह निर्णय किया गया कि आर्य लोग अपने बच्चों को भारतीय ढंग की ही शिक्षा दिलाया करें और इस प्रयोजन से एक बड़े शिक्षणालय की स्थापना की जाये। इसके लिए धन भी एकत्र किया गया, और अगले वर्ष विचार-विमर्श के अनन्तर वीतीलेवू द्वीप में लोटोका के निकट एक शिक्षणालय खोले जाने की बात तय कर ली गयी।

स्वामी राममनोहरानन्द के प्रचार के कारण फीजी द्वीप-समूह में अनेक स्थानों पर आर्यसमाजों की स्थापना हो गयी थी। अतः यह आवश्यक समझा गया, कि विविध आर्यसमाजों तथा आर्यजनों को संगठित करने के लिए एक आर्य प्रतिनिधि सभा का गठन किया जाये। आर्य जनता ने इस विचार का हार्दिक स्वागत किया, और शीघ्र ही आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्माण कर लिया गया। सन् १६१७ में 'बा' में आर्य सम्मेलन हुआ, जिसमें गुरुकुल, अनाथालय और पुस्तकालय आदि खोलने के सम्बन्ध में प्रस्ताव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकृत किये गये। इस समय तक भारत में अनेक गुरुकुल स्थापित हो चुके थे, और आश्रम पद्धति की इन संस्थाओं ने आर्य जनता में बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी। फीजी के आर्यों का भी ध्यान गुरुकुल शिक्षा की ओर गया, और उन्होंने भी अपने देश में एक गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। इसके लिए ७५ साल के पट्टे पर 'ननोवा' नामक स्थान पर जमीन प्राप्त कर ली गयी, और नवम्बर, १९१९ में वहाँ गुरुकुल स्थापित कर दिया गया। गुरुकुल की स्थापना फीजी आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन के अवसर पर की गयी थी। जनता में उसके लिए बहुत उत्साह था, और १९०० पौंड (४० हजार रुपये के लगभग) उसके लिए चन्दा भी प्राप्त हो गया था। गुरुकुल की स्थापना के समय पर जो समारोह हुआ, उसमें फीजी के विविध द्वीपों के आर्य नर-नारियों के अतिरिक्त अनेक सरकारी पदाधिकारी और सम्भ्रान्त व धनी व्यक्ति भी सम्मिलित थे। गुरुकुल के लिए विद्यालय-कक्ष, छात्रावास तथा विविध आवश्यक भवनों के निर्माण में सेठ हीरालाल का कर्तृत्व सराहनीय था। स्वामी राममनोहरानन्द गुरुकुल के सफलतापूर्वक संचालन के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे थे। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी वह स्वयं पढ़ाते थे। पण्डित हरदयाल का सहयोग उन्हें प्राप्त था, और फीजी के अन्य आर्य सज्जन भी इस संस्था के लिए जी जान से प्रयत्न करने में तत्पर थे। पर गुरुकुल के सम्मुख प्रमुख समस्या सुयोग्य अध्यापकों को प्राप्त करने की थी। स्वामी राममनोहरानन्द ने इस समय गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया था। अतः उनके लिए अध्यापन-कार्य में अधिक समय लगा सकना सम्भव नहीं रहा था। उनका गृहस्थी बन जाना आर्यसमाजियों को पसन्द नहीं आया, और वे उनका विरोध भी करने लग गये। जब तक योग्य अध्यापक न मिलें, पण्डित हरदयाल और पण्डित शिवदत्त अपने सामर्थ्य व योग्यता के अनुसार गुरुकुल में अध्यापन का कार्य करते रहे, पर वे स्वयं भी यह स्वीकार करते थे कि गुरुकुल में पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था तभी सम्भव हो सकेगी, जब कि भारत से कोई विद्वान् इस संस्था को सँभालने के लिए फीजी आ जायेंगे। फीजी आर्य प्रतिनिधि सभा ने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया। स्वामी श्रद्धानन्दजी से भी इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार किया गया, पर इस सबका कोई परिणाम नहीं निकला।

सन् १९२४ में मथुरा में दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर दक्षिणी अफ्रीका के स्वामी भवानी दयाल संन्यासी भी उस समारोह में सम्मिलित हुए थे। वहाँ उनकी भेंट पण्डित गोपेन्द्र नारायण पथिक से हो गयी। पण्डितजी उन दिनों गुरुकुल वृन्दावन में कार्यरत थे। गुरुकुल में उनके कार्य से सब सन्तुष्ट थे। स्वामीजी भी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पथिकजी को विदेशों में बसे हुए भारतीयों की सेवा के लिए तैयार कर लिया। फीजी में गुरुकुल का कार्यभार सँभालने के लिए एक अनुभवी कार्यकर्ता की आवश्यकता थी, अतः स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की प्रेरणा से पथिकजी फीजी जाने के लिए तैयार हो गये, और जून, १९२५ में उन्होंने वहाँ के लिए प्रस्थान कर दिया। जब वह फीजी पहुँचे, गुरुकुल की अत्यन्त दुर्दशा थी। पर पथिकजी के कर्तृत्व से उसमें नवजीवन का संचार हो गया। कुछ ही समय में उसकी अवस्था सँभल गयी। विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी, और जनता भी उसकी सहायता के लिए तत्पर हो गयी। फीजी में रहते हुए पण्डित गोपेन्द्रनारायण पथिक ने अनुभव किया, कि वहाँ के कुछ विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए भारत भेजना चाहिये, ताकि वहाँ से वैदिक धर्म की समुचित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा प्राप्त कर वे अपने देश में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में सहायक हो सकें। वह चाहते थे कि फीजी के बालक भारत के गुरुकुलों में जाकर वेदशास्त्रों की उच्च शिक्षा प्राप्त करें, और वहाँ से स्नातक होकर अपने देश में वैदिक धर्म की सुदृढ़ नींव पर स्थापना करें। इस प्रयोजन से उन्होंने गुरुकुल काँगड़ी और गुरुकुल वृन्दावन के साथ पत्र-व्यवहार किया। काँगड़ी गुरुकुल के संचालकों ने इस सम्बन्ध में विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की। पथिकजी का वृन्दावन गुरुकुल से पहले से ही सम्पर्क था। वहाँ के प्रबन्धक फीजी के विद्यार्थियों को प्रविष्ट करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने श्री गोपेन्द्रनारायण पथिक की सब शर्तें स्वीकार कर लीं, और फीजी के विद्यार्थियों का पहला दल सन् १९२७ में शिक्षा-प्राप्ति के प्रयोजन से भारत जाने के लिए तैयार कर लिया गया। वृन्दावन गुरुकुल की प्रगति का परिचय देते हुए वहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले फीजी के विद्यार्थियों का उल्लेख किया जा चुका है। न केवल गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में ही, अपितु भारत की अन्य शिक्षण-संस्थाओं में भी इस समय फीजी के विद्यार्थी प्रवेश पाने लगे और यह परम्परा चिरकाल तक जारी रही।

फीजी आर्य प्रतिनिधि सभा के निमन्त्रण पर सन् १९२७ में पण्डित अमीचन्द्र विद्यालंकार अपनी पत्नी श्रीमती सर्ववती देवी के साथ फीजी गये। वह कुशल वक्ता और वेदशास्त्रों के गम्भीर विद्वान् थे। उनकी शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई थी, अतः गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से भी वह भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने फीजी पहुँचकर वहाँ के गुरुकुल (जो गुरुकुल सवेनी के नाम से प्रसिद्ध है) का कार्यभार सँभाल लिया, और उनके कर्तृत्व के कारण इस संस्था की बहुत उन्नति हुई। सवेनी के बाद सूवा और बा नगरों में भी अमीचन्द्रजी ने बालकों और बालिकाओं के लिए शिक्षणालयों की स्थापना की। उनका ध्यान उच्च शिक्षा की ओर भी गया, और इस प्रयोजन से जो डी० ए० वी० कॉलिज फीजी में स्थापित किये गये थे, उनकी उन्नति के लिए भी उन्होंने प्रयत्न किया। वहाँ जो पहला डी० ए० वी० कॉलिज स्थापित हुआ था, पण्डित अमीचन्द्र विद्यालंकार ही उसके प्रधानाचार्य थे।

श्री गोपेन्द्रनारायण पथिक और पण्डित अमीचन्द्र विद्यालंकार सदृश सुयोग्य संचालकों के प्रयत्न से गुरुकुल सवेनी ने फीजी द्वीप-समूह की शिक्षण-संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। फीजी की विधान परिषद् के भारतीय सदस्य श्री परमानन्द सिंह ने इसका अवलोकन कर यह सम्मति प्रकट की थी—"इस संस्था के विद्यार्थियों के पूर्ण अनुशासन और शिक्षक वर्ग की अनुकरणीय नैतिकता से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा, कि यह इस उपनिवेश (फीजी) में अपने ढंग की सर्वोत्तम संस्था है।" फीजी के जो प्रतिष्ठित नागरिक गुरुकुल सवेनी के प्रबन्धक रहे, उनमें श्री एस० बी० पटेल, श्री वी० एल० हीरालाल सेठ, श्री सरजूप्रसाद और पण्डित हरदयाल शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसमें सन्देह नहीं, कि गुरुकुल सवेनी के रूप में फीजी में एक ऐसा शिक्षणालय स्थापित हो गया था, जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षाविषयक मन्तव्यों का अनेक अंशों में अनुसरण किया जाता था। उसके छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की दिनचर्या गुरुकुल आश्रम पद्धति के अनुरूप थी, और गुरुकुल के पाठ्यक्रम में संस्कृत और हिन्दी को समुचित स्थान दिया गया था। पर इस शिक्षणालय का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुलीय रूप देर तक कायम नहीं रह सका। वर्तमान समय में गुरुकुल सवेनी, नाम का ही गुरुकुल है, क्योंकि उसमें छात्रावास है ही नहीं। नर्सरी तथा प्राइमरी विभागों की सात कक्षाओं की पढ़ाई वहाँ होती है, जिसके लिए सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का उपयोग किया जाता है। विद्यार्थियों की संख्या ४०० के लगभग है। पर अब भी इसका स्वरूप एक आर्य शिक्षण-संस्था का अवश्य है। वहाँ पढ़ाई का प्रारम्भ सामूहिक प्रार्थना के साथ होता है, जिसमें वैदिक मन्त्र प्रयुक्त किये जाते हैं। सवेनी गुरुकुल के सभी विद्यार्थी हिन्दू नहीं हैं। उनमें मुसलमान और काईवीती (फीजी के मूल निवासी) भी हैं। पर सब प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं। धार्मिक शिक्षा की भी इस संस्था में व्यवस्था है। गुरुकुल के वर्तमान मुख्याध्यापक श्री एस० एन० हरिप्रसाद बड़े परिश्रमी और सुयोग्य शिक्षाविज्ञ हैं। उनके प्रयत्न से इस संस्था का स्थान अब भी फीजी के शिक्षणालयों में पर्याप्त महत्त्व का है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है, कि फीजी द्वीप-समूह से जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए गुरुकुल वृन्दावन भेजे गये थे, उनमें बहुसंख्यक ऐसे थे जिन्होंने कि अपनी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल सवेनी में प्राप्त की थी।

गुरुकुल सवेनी के अतिरिक्त फीजी में आर्यसमाज के जो अनेक शिक्षणालय हैं, उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं— बुनीमोनो आर्य स्कूल, लोटोका (१९३०); आर्य-समाज गर्ल्स स्कूल, समबुला (१९३०); आर्य कन्या पाठशाला, बा (१९३८); भवानी-दयाल मेमोरियल स्कूल, वैनीबूकू (१९४२); नदूना आर्य पाठशाला, लबासा (१९४३); स्वामी श्रद्धानन्द मेमोरियल स्कूल, समबुला (१९५२); बुनिकविकलोवा आर्य स्कूल, रा (१९५२); डी० ए० वी० प्राइमरी स्कूल, बा (१९५६); कोरोतरी आर्य पाठशाला, लबासा (१९६१); वैनीकोरो आर्य पाठशाला, लबासा (१९६३); पण्डित विष्णुदेव, मेमोरियल स्कूल, सूबा (१९७०); डी० ए० वी० बॉय्ज़ कॉलिज, समबुला (१९५२); डी० ए० वी० गर्ल्स कॉलिज, समबुला (१९५२); डी० ए० वी० हाईस्कूल, बा (१९५३); पण्डित विष्णुदेव मेमोरियल स्कूल, लोटोका (१९७२); भवानी दयाल मेमोरियल सैकेण्डरी स्कूल, नॉसोरी (१९७३) और आर्य हाईस्कूल, नदूना लबासा (१९७३)।

इन शिक्षणालयों में लोटोका का पण्डित विष्णुदेव मेमोरियल सैकेण्डरी स्कूल गुरुकुल सवेनी का ही सैकेण्डरी स्तर की शिक्षा का विभाग है। इसमें विद्यार्थियों की संख्या ५०० से भी अधिक है। जिन अन्य शिक्षणालयों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमें २०० से ८०० तक की संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। छह लाख के लगभग आबादी के इस देश में इतनी आर्य शिक्षण-संस्थाओं की सत्ता शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज के महत्त्वपूर्ण कार्यकलाप का परिचायक है। डी० ए० वी० आन्दोलन ने विदेशों को भी कितना प्रभावित किया है, यह इसी से स्पष्ट है कि फीजी में भी चार डी० ए० वी० शिक्षणालय विद्यमान हैं।

(७) अन्य देशों में आर्य शिक्षण-संस्थाएँ

बरमा—सन् १९३७ तक बरमा भी भारत का उसी प्रकार एक प्रान्त था, जैसेकि बंगाल, पंजाब आदि थे। उन्नीसवीं सदी का अन्त होने से पूर्व ही वहाँ भी आर्यसमाजों की स्थापना शुरू हो गई थी। सबसे पहले सन् १८९८ में मांडले में आर्यसमाज स्थापित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था, और उसके बाद उसी वर्ष रंगून में। सन् १६३० तक बरमा प्रान्त में बाईस आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे, और वहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा का भी गठन कर लिया गया था। आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ बरमा में भी आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना प्रारम्भ हुई। बीसवीं सदी के प्रथम चरण में पंजाब, संयुक्त प्रान्त (उत्तर-प्रदेश) तथा राजस्थान में अनेक डी० ए० वी० स्कूल खुल चुके थे। उन्हीं की शिक्षा-पद्धति एवं कार्यविधि से प्रभावित होकर बरमा के विविध नगरों में भी डी० ए० वी० स्कूल स्थापित किये गये। पहला डी० ए० वी० स्कूल सन् १६११ में मचीना में खुला था, फिर १६१७ में श्वेबो में, फिर १६१६ में म्यातिक्यीना में, फिर १६२६ में मनेवा में और फिर १६३७ में मंगोई में। इन सब में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ धर्मशिक्षा की भी व्यवस्था थी, और हिन्दी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। केवल श्वेबो के डी० ए० वी० स्कूल में हिन्दी के साथ-साथ बरमी भाषा में भी शिक्षा दी जाती थी। सन् १६३७ में एनानजीव (मचीना) में हिन्दू स्कूल नाम से एक अन्य शिक्षणालय स्थापित किया गया, जिसका संचालन भी आर्यसमाज के अधीन था। बरमा के प्रमुख नगर रंगून और मांडले हैं। ये दोनों आर्यसमाज के भी प्रधान केन्द्र थे। रंगून में आर्यसमाज के अतिरिक्त आर्यकुमार सभा और आर्य स्त्री समाज की भी सत्ता थी। इन द्वारा वहाँ सात रात्रि पाठशालाएँ चलायी जा रही थीं। साथ ही, वहाँ डी० ए० वी० कॉलिज भी विद्यमान था। इसकी अपनी तिमंजिला इमारत थी। मांडले आर्यसमाज द्वारा भी अनेक शिक्षणालय स्थापित थे, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या हजारों में थी। इनमें प्राइमरी स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था थी। मांडले में एक डी० ए० वी० हाईस्कूल भी था, जिसके साथ एक छात्रावास भी था। इस स्कूल में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था, जिसके कारण यह जनता में बहुत लोकप्रिय था। इसकी लोकप्रियता से प्रोत्साहित होकर मांडले आर्यसमाज द्वारा बालिकाओं के लिए भी पृथक् डी० ए० वी० हाईस्कूल की स्थापना कर दी गई थी। समयान्तर में मांडले का डी० ए० वी० हाई-स्कूल एक कॉलिज के रूप में विकसित हो गया था। बरमा के अन्य भी अनेक नगरों में आर्यसमाज द्वारा स्थापित शिक्षणालय विद्यमान थे।

दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देशों के समान बरमा भी सन् १६३६-४५ के महा-युद्ध की चपेट में आ गया था। महायुद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थितियों में बरमा पर से ब्रिटिश प्रभुत्व का अन्त हो गया और वहाँ स्वतन्त्र सरकार स्थापित हो गयी। महायुद्ध के कारण जो राजनीतिक उथल-पुथल मच गई थी, उसमें आर्यसमाज के लिए भी अपना कार्य जारी रख सकना सुगम नहीं रहा था। पर जब वहाँ शान्ति और व्यवस्था कायम हो गई, तो आर्यसमाज का कार्यकलाप फिर से प्रारम्भ हो गया और आर्य शिक्षणालयों की उन्नति पर भी ध्यान दिया जाने लगा। पर नयी बरमी सरकार की नीति शिक्षण-संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण की थी। परिणाम यह हुआ, कि आर्यसमाज के स्कूलों और कॉलिजों को भी सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया, और सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार ही वहाँ पढ़ाई होने लगी। इस दशा में शिक्षा के सम्बन्ध में आर्य-समाज के कार्यकलाप का यही स्वरूप रह गया, कि हिन्दी, संस्कृत तथा वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए पृथक् कक्षाएँ व पाठशालाएँ खोली जाएँ। मांडले तथा अन्य अनेक स्थानों की आर्यसमाजों द्वारा अब हिन्दी कक्षाएँ चलायी जा रही हैं, जिनमें राष्ट्रभाषा प्रचार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिति, वार्धा द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार हिन्दी की शिक्षा की व्यवस्था है, और उसी की परीक्षाएँ भी वहाँ दिलायी जाती हैं। म्यीत्क्यीना में अब दो हिन्दी पाठशालाएँ विद्यमान हैं, और एक शिक्षणालय संस्कृत की पढ़ाई के लिए भी वहाँ है। आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों, सम्मेलनों तथा विशेष आयोजनों द्वारा वैदिक धर्म की शिक्षा की भी वरमा में व्यवस्था की जाती है। येनाग्योन्ग के आर्यसमाज के साथ जो हिन्दी पाठशाला है, उसमें धर्मशिक्षा का भी प्रबन्ध है।

सिंगापुर—दक्षिण-पूर्वी एशिया में सिंगापुर का विशेष महत्त्व है। ब्रिटिश नौसेना का इस क्षेत्र में यह प्रधान केन्द्र रहा है, और एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। आर्यसमाज की स्थापना वहाँ सन् १९२७ में हुई थी। १९३९-४५ के महायुद्ध के समय इस पर जापान का अधिकार हो गया था, और कुछ वर्षों तक वहाँ अव्यवस्था मची रही थी। इस दशा में आर्यसमाज का कार्य भी वहाँ अवरुद्ध हो गया था, और उस द्वारा संचालित डी० ए० वी० स्कूल को भी बन्द कर देना पड़ा था। सन् १९६१ में वहाँ आर्यसमाज का कार्य पुन: प्रारम्भ हुआ, और उसके साथ ही एक सायंकालीन शिक्षणालय के रूप में डी० ए० वी० स्कूल भी पुन: स्थापित हुआ। इस स्कूल में हिन्दी की शिक्षा की समुचित व्यवस्था है।

सुरीनाम—दक्षिणी अमेरिका के इस राज्य में भारतीय मूल के लोगों की संख्या ३७ प्रतिशत के लगभग है। उनमें वैदिक धर्म का अच्छा प्रचार है, और वहाँ अनेक आर्यसमाज विद्यमान हैं। सुरीनाम के आर्यसमाजों द्वारा जो शिक्षणालय स्थापित हैं, उनमें कोयविग्ने निकेरी, पारामारिवो, सारमक्का और हाई टियून के आर्य विद्यालय, वालगृह तथा मोहनसिंह स्कूल उल्लेखनीय हैं। इन सबकी शिक्षा में हिन्दी का प्रमुख स्थान है, और इनके माध्यम से दक्षिणी अमेरिका के इस देश में भी हिन्दी भली-भाँति फल फूल रही है। सुरीनाम में स्थित आर्य शिक्षण-संस्थाओं की संख्या इस समय सोलह है।

त्रिनिदाद—अमेरिकन महाद्वीप के पूर्व में वेस्ट इण्डीज़ नामक जो द्वीप समूह है, उसका एक महत्त्वपूर्ण द्वीप त्रिनिदाद है, जिसमें भारतीयों की संख्या ४० प्रतिशत के लगभग है। भारतीय मूल के लोग मुख्यतया प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा के अधीन ही वहाँ जाकर बसे थे। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में इस देश में आर्यसमाज का प्रचार शुरू हो गया था, और कुछ समय में ही वहाँ अनेक आर्यसमाज स्थापित हो गये थे। प्राइमरी स्कूलों की स्थापना त्रिनिदाद के आर्यसमाजों के कार्यकलाप का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। पहले इस देश में जो भी स्कूल थे, वे सब प्राय: क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा स्थापित थे। जब आर्यसमाज ने स्कूलों की स्थापना शुरू की, तो ईसाइयों द्वारा उनका विरोध किया जाना स्वाभाविक था। रेवरेण्ड नटरस नामक एक क्रिश्चियन पादरी भारत से त्रिनिदाद गया था, और वहाँ उसने ईसाई धर्म पर अनेक व्याख्यान दिए थे। इनमें उसने हिन्दू धर्म पर कटु आक्षेप किये, जिसके कारण हिन्दू जनता में बहुत उत्तेजना उत्पन्न हो गयी, और उन्होंने क्रिश्चियन स्कूलों के बहिष्कार का निश्चय कर लिया। इससे आर्य शिक्षण-संस्थाओं की लोकप्रियता और विकास में बहुत सहायता मिली। मुसलमानों का समर्थन व सहयोग भी इन संस्थाओं को प्राप्त था। वस्तुत:, ईसाई स्कूलों के मुकाबले में हिन्दू और मुसलमान परस्पर सहयोग से अपने शिक्षणालय चलाने में तत्पर थे। पर उनमें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सहयोग देर तक कायम नहीं रहा। एप्रिल, १९५२ में त्रिनिदाद के चागुआनस नगर में मोन्ट्रोज वैदिक स्कूल की स्थापना हुई। इसका संचालन आर्यसमाज के हाथों में था, यद्यपि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदायों व वर्गों का सहयोग इसे प्राप्त था। इसके पश्चात् त्रिनिदाद में आर्यसमाज द्वारा अन्य अनेक स्कूलों की स्थापना की गयी, जिनकी संख्या अब ग्यारह तक पहुँच चुकी है।

गुयाना—भारतीय मूल के लोग इस देश में बहुसंख्या में हैं। वहाँ आर्यसमाज का अच्छा प्रचार है और 'अमेरिकन आर्यन लीग' तथा आर्य प्रतिनिधि सभा के रूप में आर्यसमाज के दो केन्द्रीय संगठनों की भी वहाँ सत्ता है। अमेरिकन आर्यन लीग की स्थापना सन् १९३७ में श्री भास्करानन्द सरस्वती द्वारा की गयी थी। इसके तत्त्वावधान में दो डी० ए० वी० कॉलिज चल रहे हैं, जिनमें से एक ज्यार्ज-टाउन में और दूसरा पोर्ट मूराण्ट में है। इस द्वारा एक स्कूल का भी संचालन किया जा रहा है। सन् १९५५ में पण्डित श्रुतिकान्त विद्यालंकार गुयाना गये थे, और उन्होंने वहाँ गुयाना ओरियण्टल कॉलिज नाम से एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की थी। डॉ० उषर्बुध सन् १९५६ में वैदिक धर्म के प्रचार के लिए गुयाना गये थे। वहाँ उन्होंने आर्य वीर दल के संगठन के अतिरिक्त महल्कोनी आश्रम की भी स्थापना की थी, जो वैदिक मन्तव्यों की शिक्षा का केन्द्र था। गुयाना में 'गुयाना गुरुकुल महाविद्यालय' नाम की भी एक संस्था विद्यमान है, जिसकी स्थापना सन् १९३९ में निम्नलिखित उद्देश्यों को सम्मुख रखकर की गयी थी--(१) प्राचीन ऋषियों का ज्ञान, संस्कृति तथा परम्पराओं का गुयाना में प्रचार-प्रसार करना। (२) धर्म और संस्कृति के प्रसार के लिए युवा शक्ति को संगठित करना। (३) वैदिक कर्मकाण्ड में प्रवीण पण्डितों को तैयार करना, और (४) शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए निरामिषता को प्रोत्साहित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह निश्चय किया गया, कि दीर्घावकाश के समय में शिक्षणालयों और यूथ कैम्पों का तथा सप्ताहान्त में वैदिक प्रवचनों व गोष्ठियों के आयोजन किये जायें, विविध विषयों की शिक्षा की व्यवस्था पत्राचार द्वारा की जाये और इस प्रकार जो विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करें, उनकी परीक्षायें भी ली जायें। साथ ही, पत्राचार द्वारा शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार की जायें। गुयाना गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा अभी किसी पृथक् शिक्षणालय की स्थापना नहीं की गयी है, पर उपरिलिखित साधनों द्वारा वह गुयाना में वैदिक धर्म की शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य करने में तत्पर है। पत्राचार द्वारा इस महाविद्यालय ने निम्नलिखित विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की हुई है—वैदिक धर्म एवं दर्शन, हिन्दी, संस्कृत, स्पेनिश और अंग्रेजी। प्रारम्भिक, मध्य तथा उच्च—तीनों स्तरों का पाठ्यक्रम गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा निर्धारित है, और उनकी परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र (डिप्लोमा) तथा शास्त्री की डिग्री प्रदान की जाती है। वैदिक धर्म की डिग्री (शास्त्री) परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार-विधि और उपनिषदों तथा वेदों के चुने हुए संदर्भों का अध्ययन करना होता है। महाविद्यालय में शिक्षा के स्तर का इससे अनुमान किया जा सकता है। अन्य विषयों के पाठ्यक्रम का स्तर भी पर्याप्त रूप से ऊँचा है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्राचार द्वारा शिक्षा देने के अतिरिक्त गुयाना गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा मध्य-जुलाई से मध्य-सितम्बर तक ग्रीष्मावकाश के समय आठ सप्ताहों के लिए कक्षायें आयोजित कर उनमें भी पढ़ायी की व्यवस्था की जाती है। ये कक्षायें प्रधानतया ज्यार्ज-टाउन में स्थित केन्द्रीय वैदिक मन्दिर में लगती हैं। कतिपय आर्यसमाजों में भी अवकाश के इस काल में कक्षायें लगायी जाती हैं। प्रतिवर्ष अगस्त मास में गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा आर्य वीर दल शिक्षा शिविर भी लगाया जाता है, जिसमें वैदिक धर्म एवं दर्शन, हिन्दी और संस्कृत के साथ-साथ योग (आसन, ध्यान और प्राणायाम) और भारतीय संगीत की भी शिक्षा दी जाती है। अनेकविध शिल्पों तथा व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा की व्यवस्था भी इस गुरुकुल द्वारा की गयी है।

गुयाना में बहुत-से हिन्दी विद्यालय भी विद्यमान हैं। इन विद्यालयों के एक केन्द्रीय संगठन की भी वहाँ सत्ता है, जिसे 'अखिल गुयाना हिन्दी स्कूल्स सम्मेलन' कहते हैं। इन विद्यालयों का संचालन प्रधानतया आर्यसमाजियों द्वारा ही किया जा रहा है।

यूरोप और अमेरिका के अनेक देशों में भी आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार अब प्रारम्भ हो चुका है, और विविध स्थानों पर आर्यसमाजों की स्थापना भी हो गयी है। पर अभी वहाँ कोई डी० ए० वी० स्कूल, गुरुकुल या अन्य आर्य शिक्षणालय स्थापित नहीं हुआ है। कुछ नगरों में वैदिक धर्म की कक्षायें अवश्य लगायी जा रही हैं, और उनमें कुछ व्यक्ति पढ़ने के लिए आते भी हैं, पर उन्हें शिक्षण-संस्था कह सकना सम्भव नहीं है। भारतीय मूल के हजारों लोग वर्तमान समय में इंगलैण्ड, हालैण्ड आदि देशों में बसे हुए हैं, और उनमें आर्यसमाजी भी पर्याप्त संख्या में हैं। पर उन्होंने अपने बच्चों के लिए अभी उस ढंग से पृथक् शिक्षणालय नहीं खोले हैं, जैसे कि फीजी, मॉरीशस आदि में विद्यमान हैं।

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक इतिहास-सामग्री का विवरण

(१) शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज के समग्र कार्यकलाप का निरूपण करने वाले कोई ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। अतः विविध आर्य शिक्षण-संस्थाओं की सेवा में एक प्रश्नावली भेजी गयी थी, जिसके उत्तरों द्वारा उनके सम्बन्ध में समुचित जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। पाँच सौ के लगभग शिक्षणालयों ने हमारी प्रश्नावली के अनुसार अपने विवरण भेजे। ये इस ग्रन्थ के प्रणयन की आधार-सामग्री है, जिसका इसमें यथास्थान उपयोग किया गया है।

(२) आर्य शिक्षण-संस्थाओं के सम्बन्ध में प्रकाशित पुस्तकें --

(क) आर्य शिक्षण-संस्थाओं की परिचय निर्देशिका (सार्वभौम आर्यसमाज शिक्षण-संस्था परिषद्, अजमेर)

(ख) आर्य डाइरैक्टरी (सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा)

(ग) आर्य निर्देशिका (सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा)

(घ) आर्य विद्यालय निर्देशिका (प्रदेशीय विद्यार्यसभा, उत्तर प्रदेश)

(ङ) आर्यसमाज शिक्षा दर्शन (कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हाथरस)

(३) डी० ए० वी० कॉलिज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसायटी की वार्षिक रिपोर्टें।

(४) गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्टें तथा नियमावलियाँ। गुरुकुल काँगड़ी की प्रगति के विविध विवरण।

(५) आर्य प्रतिनिधि सभाओं के इतिहास एवं वार्षिक विवरण।

(क) आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के वार्षिक विवरण (विविध वर्षों के)

(ख) आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास।

(ग) आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का इतिहास।

(घ) मदनमोहन सेठ --वैदिक वैजयन्ती।

(ङ) आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का इतिहास तथा वार्षिक विवरण।

(च) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का इतिहास।

(छ) विविध आर्य प्रतिनिधि सभाओं के वार्षिक विवरण।

(६) **स्मारिकाएँ**—गत वर्षों में बहुत-से आर्यसमाजों तथा शिक्षण-संस्थाओं की शताब्दी, हीरक जयन्ती, स्वर्ण जयन्ती तथा रजत जयन्ती के अवसरों पर स्मारिकाएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज के कार्यकलाप पर भी प्रकाश डाला गया है। इनमें कुछ अधिक महत्त्व की स्मारिकाएँ आर्यसमाज स्थापना शताब्दी कलकत्ता, शताब्दी आर्यसमाज दानापुर, शताब्दी समारोह आर्यसमाज अमृतसर, रजत जयन्ती स्मारिका आर्यसमाज सान्ताक्रुज, रजत जयन्ती स्मारिका दयानन्द कॉलिज अजमेर, शताब्दी समारोह स्मारिका आर्यसमाज कानपुर, हीरक जयन्ती स्मारिका आर्यसमाज नैरोबी, आर्यसमाज स्थापना शताब्दी राजधर्म प्रकाशन रोहतक, गुरुकुल प्रभात आश्रम स्मारिका, आर्य वैदिक पाठशाला सोसायटी दिल्ली स्मारिका, दयानन्द शोधपीठ अजमेर स्मारिका, आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह स्मारिका आर्य प्रतिनिधि सभा, हरयाणा, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर स्मारिका, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा स्मारिका, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा स्वर्ण जयन्ती समारोह स्मारिका आदि हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-सी स्मारिकाएँ हैं, जिनका इस ग्रन्थ में उपयोग किया गया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) विविध पत्र-पत्रिकाओं के विशेष अंक, यथा आर्य जगत् दिल्ली का महात्मा हंसराज अंक, सुधारक रोहतक का गुरुकुल परिचयांक (दो खण्ड), आर्य जीवन का शिक्षा विशेपाङ्क, आर्य संसार कलकत्ता का आर्यसमाज स्थापना शताब्दी विशेपाङ्क आदि।

(८) विविध पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें—डी० ए० वी० समाचार, आर्य-पत्रिका, प्रकाश, सद्धर्म प्रचारक, श्रद्धा, भारतादेय, अलंकार, आर्य मित्र, आर्य जीवन, भारत सुदशाप्रवर्तक आदि।

(९) अभिनन्दन ग्रन्थ, यथा पण्डित आनन्दप्रिय अभिनन्दन ग्रन्थ, कालकाप्रसाद भटनागर अभिनन्दन ग्रन्थ, पण्डित धर्मदत्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पण्डित प्रियव्रत अभिनन्दन ग्रन्थ, पण्डित जगदेव सिद्धान्ती अभिनन्दन ग्रन्थ आदि।

(१०) विविध गुरुकुलों तथा आर्य शिक्षण-संस्थाओं का परिचयात्मक साहित्य, नियमावलियाँ, वार्षिक विवरण आदि। कन्या महाविद्यालय जालन्धर, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि बहुत-सी महत्त्वपूर्ण आर्य शिक्षण-संस्थाओं का इस प्रकार का मुद्रित साहित्य इस ग्रन्थ के प्रणयन में प्रयुक्त किया गया है।

(११) महात्मा हंसराज, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) लाला देवराज, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित गुरुदत्त आदि प्रसिद्ध आर्य नेताओं के जीवन चरित्र एवं उनके सम्बन्ध में लिखी गयी पुस्तकें।

(१२) आर्यसमाज के प्रारम्भिक इतिहास पर लिखे गये कुछ ग्रन्थ, यथा कैनथ जोन्स का 'आर्य धर्म' और 'सोर्सेज़ ऑन पंजाब हिस्ट्री', लाला लाजपतराय कृत 'आर्य समाज' आदि।

(१३) विविध आर्यसमाजों के इतिहास, यथा देहरादून, मेरठ, मोम्बासा, नैरोबी, मॉरीशस आदि के आर्यसमाजों के इतिहास।

(१४) विदेशों में आर्यसमाज के कार्यकलापविषयक पुस्तकें, यथा पण्डित नरदेव विद्यालंकार की 'आर्यसमाज एण्ड इण्डियन्स एब्रोड', सुखराज छोटई की 'हिस्टोरिकल एकाउण्ट ऑफ आर्य प्रतिनिधि सभा, साउथ अफ्रीका', मोहनलाल मोहित की 'मॉरीशस में आर्यसमाज' रामनारायण शास्त्री की 'सुरीनाम' और 'लण्डन आर्य सार्वभौम सम्मेलन स्मारिका' आदि।

(१५) नेहरू म्यूजियम एण्ड लायब्रेरी, नयी दिल्ली में विद्यमान कतिपय ऐसे पुराने विवरण तथा सोसायटियों की कार्यवाही-पंजिकाएं, जो अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं।

(१६) अनेक आर्य शिक्षण-संस्थाओं की प्रवन्धकर्मी सभाओं, ट्रस्टों, विद्या-सभाओं, विद्या परिषदों तथा शिक्षा- उपसमितियों आदि की ऐसी कार्यवाही-पंजिकाएं जो अप्रकाशित हैं।

(१७) प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में डाक्टर अल्तेकर, डाक्टर आर० के० मुकर्जी आदि के अंग्रेजी ग्रन्थ तथा विविध विद्वानों द्वारा लिखित प्राचीन भारतीय इतिहास के उच्च कोटि के ग्रन्थ।

(१८) उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में भारत में शिक्षा के सम्बन्ध में श्री ए० एल० वसु, रमेशचन्द्र मजूमदार, नूरुल्ला तथा नायक, चार्ल्स ट्रेविलियन, रिचर, विल्डर, शार्प, एम० एन० लॉ, शेरिंग, थामस, परांजपे, सैयद महमूद और अल्तेकर आदि की वे पुस्तकें जिनका उल्लेख इस ग्रन्थ के दूसरे तथा छठे अध्यायों के फुटनोटों में किया गया है।

(१९) ट्रिब्यून सदृश अंग्रेजी पत्रों के पुराने अंकों में डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं के सम्बन्ध में उल्लेख।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दानुक्रमणिका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री पण्डित लब्भूरामजी शर्मा

श्री शर्मा का जन्म पंजाब के एक धनी व सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। सन् १९२२ में वह केनिया गये, और कुछ समय अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने के बाद उन्होंने रेलवे की सर्विस स्वीकार कर ली। सन् १९५४ में वह केनिया रेलवे के कमर्शियल आफिसर के पद से सेवानिवृत्त हुए, और भारत वापस लौटकर चंडीगढ़ में बस गये। जब तक वह केनिया में रहे, आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे। नकुरू और किसुमु में आर्यसमाजों की स्थापना में उनका कर्तृत्व विशेष महत्त्व का था। चंडीगढ़ में भी श्री शर्माजी आर्यसमाज के प्रचार-प्रस[illegible] के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। च[illegible] की डी० ए० वी० शिक्षण-संस्था[illegible] र ७ और सेक्टर २२ के आर्यसमाजों की स्थापना में उनका योगदान सदा स[illegible] सन् १९७२ में उनका निधन हुआ

श्रीमती सुशीला देवीजी शर्मा

पण्डित लब्भूराम शर्मा की पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी सच्चे अर्थों में अपने पति की सहधर्मिणी थीं। उनके पिता श्री पण्डित धनीराम शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने अपनी पुत्री को भी उच्च शिक्षा दी थी। सुशीलाजी सन् १९२४ में केनिया गयीं, और वहाँ जाकर उन्होंने किसुमु में आर्य गर्ल्स स्कूल की स्थापना की। यह किसुमु का प्रथम आर्य शिक्षणालय था, और सुशीलाजी स्वयं इसमें अवैतनिक रूप से अध्यापन का कार्य किया करती थीं। किसुमु, नकुरू और नैरोबी में आर्य स्त्री-समाजों की स्थापना तथा संचालन में उनका योगदान अत्यन्त महत्त्व का था, और चंडीगढ़ आकर भी वह आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार तथा स्त्रीशिक्षा के कार्यों में निरन्तर उत्साहपूर्वक भाग लेती रहीं। सन् १९८० में नैरोबी में उनका देहावसान हुआ।

[illegible]राम जी शर्मा के दो सुपुत्र हैं, पण्डित ब्रह्मदत्त शर्मा और पण्डित [illegible]वदत्त शर्मा। ये दो[illegible] महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों में अगाध आस्था रखते हैं, और आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। पण्डित देवदत्त शर्मा सन् १९८१ और सन् १९८२ में नैरोबी आर्यसमाज के मन्त्री रहे हैं। उनका पुत्र संयुक्त राज्य अमेरिका में मेडिकल आफिसर है, और वह उसके माध्यम से उस देश के विविध नगरों में आर्यसमाजों की स्थापना कर वहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा के संगठन का प्रयत्न करने में लगे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संरक्षक-सदस्य

श्री महेन्द्र कुमारजी भल्ला

श्री महेन्द्र कुमार भल्ला का जन्म ६ मार्च, सन् १९३१ को जालन्धर में हुआ था। उनके पिता डा० हुकुमचन्द भल्ला जालन्धर के प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे। वह किल्ला आर्यसमाज के अनेक वर्षों तक प्रधान रहे थे, और डी० ए० वी० शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना तथा विस्तार में उनका प्रमुख कर्तृत्त्व था। नकोदर के डी० ए० वी० कॉलिज के तो वह संस्थापक ही थे। महात्मा हंसराजजी के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। श्री महेन्द्र कुमार भल्ला की शिक्षा जालन्धर के साईंदास एंग्लो-संस्कृत हाईस्कूल और डी० ए० वी० कॉलिज में हुई। सन् १९५२ में श्रीमती शकुन्तला भल्ला से उनका विवाह हुआ, और उसी वर्ष [illegible] चले गये। केनिया जाकर उन्होंने वहाँ शिक्षा को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, और [illegible] केनियन कॉलिज तथा किताल में किताल हाईस्कूल की स्थापना की। साथ ही, उन्हों[illegible] वर्थों के निर्माण का उद्योग भी शुरू किया। आर्यसमाज के कार्यकलाप में श्री [illegible] योगदान सराहनीय है। वह चिरकाल तक नैरोबी आर्यसमाज की अन्तरंग [illegible] मन्त्री रहे हैं, और अब उसके प्रधान हैं। नैरोबी में आर्यसमाज की जो अनेक [illegible] भल्लाजी का उनकी व्यवस्था व संचालन में प्रमुख हाथ है। वह अनेक स्कूलों क[illegible] व प्रबन्धकर्त्ता के रूप में भी कार्य करते रहे हैं। वह अत्यन्त कर्मठ और मिलनसार आर्य सज्जन हैं। लण्डन भी उनका कार्यक्षेत्र है, और वहाँ के आर्यसमाज के भी वह संरक्षक-सदस्य हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारी एन्जेला कोछड़

श्री अरुण कोछड़

कुमारी एन्जेला कोछड़ की आयु केवल पन्द्रह वर्ष की है, और उनके भाई अरुण कोछड़ की आयु उनसे एक वर्ष के लगभग कम है। पर ये दोनों बहन-भाई वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज के कार्यों में अभी से अनुपम उत्साह प्रदर्शित कर रहे हैं। लण्डन में आर्यसमाज का कोई भी अधिवेशन हो, छोटा या बड़ा कोई भी सम्मेलन या समारोह हो, एन्जेला और अरुण का उसमें सक्रिय रूप से योगदान रहता है। उनके मधुर संगीत तथा गीतों को सुनकर श्रोता भक्तिरस में मग्न हो जाते हैं। अभिनय और नाटक के माध्यम से भी वे महर्षि दयानन्द सरस्वती के संदेश को जनता तक पहुँचाते हैं, और वैदिक धर्म पर व्याख्यान भी देते हैं। सार्वभौम आर्य महासम्मेलन, लण्डन में देश-देशान्तर से आये हुए आर्य नर-नारी आर्यसमाज के प्रति उनकी लगन और प्रतिभा को देखकर चमत्कृत रह गये थे। २४ नवम्बर, १९८० को लण्डन के हाउस ऑफ कामन्स में ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों की भाषण में जो प्रतियोगिता हुई थी, उसमें अरुण ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था और एन्जेला ने तृतीय। इन भाई-बहन में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों का अपूर्व मिश्रण है, और दोनों की अच्छाइयों को उन्होंने ग्रहण किया हुआ है। उनका जन्म एक दृढ़ आर्यसमाजी परिवार में हुआ है। उनके पिता श्री एम० एल० कोछड़ तथा माता श्रीमती शकुन्त कोछड़ की यही आकांक्षा है कि उनकी पुत्री और पुत्र वैदिक धर्म का प्रचार तथा आर्यसमाज की सेवा में अपना जीवन लगा दें। हमें विश्वास है, कि एन्जेला और अरुण उनकी इस इच्छा को पूर्ण कर अपना तथा अपने माता-पिता का नाम उज्ज्वल करेंगे। भगवान् से प्रार्थना है कि ये भाई-बहन चिरायु हों, इनकी प्रतिभा का निरन्तर विकास होता रहे, ये सच्चे अर्थों में आर्य बनें और इन द्वारा मनुष्यमात्र का हित-कल्याण सम्पादित हो।

श्रीमती सुदर्शनाजी कौशल

२२ जनवरी, सन् १६२६ को नैरोबी (केनिया, ईस्ट अफ्रीका) के एक सम्भ्रान्त आर्य परिवार में जन्म। पिता श्री वंसीलालजी सोफत और माता श्रीमती वेदवतीजी सोफत—दोनों की वैदिक धर्म में सुदृढ़ आस्था और आर्यसमाज के प्रति सच्चा प्रेम। नैरोबी के आर्य स्कूल में शिक्षा। दिसम्बर, १६४५ में डाक्टर वेदप्रकाश जी कौशल से भारत में विवाह। डाक्टर कौशल का सम्बन्ध लुधियाना के एक प्रसिद्ध आर्य परिवार से है, जिसके अन्यतम सदस्य डाक्टर बख्तावरसिंहजी कौशल ने अपना सम्पूर्ण जीवन वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्यसमाज की सेवा में व्यतीत किया है।

श्रीमती सुदर्शना कौशल और उनके पति अब दस साल से लण्डन में है। वहाँ वे दोनों आर्यसमाज के कार्यकलाप में उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं, और उनके सारे परिवार की यही आकांक्षा है कि महर्षि के मिशन को पूरा करने में सहायक हो सकें। उनका जीवन सरल, सात्विक और धार्मिक है।

डाक्टर (श्रीमती) शान्ताजी मल्होत्रा

सन् १६३६ में लाहौर में जन्म। पिता पण्डित भीमसेनजी विद्यालंकार अविभाजित पंजाब के प्रतिष्ठित आर्य नेता थे, जो वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामन्त्री रहे। सन् १६५६ में पंजाब यूनिवर्सिटी से राजनीति-शास्त्र में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर उसी वर्ष आर्य गर्ल्स कॉलिज, अम्बाला छावनी में प्राध्यापिका नियुक्त हुईं और सन् १६६१ में इसी कॉलिज की आचार्या। गत तेईस वर्ष से उच्च शिक्षा की इस आर्य संस्था का सफलता-पूर्वक संचालन। १६६५ में श्री राजकुमार मल्होत्रा, (हरयाणा में एक्जीक्यूटिव इंजीनीयर) से विवाह। श्री मल्होत्रा धार्मिक प्रकृति और आर्य विचारों के सज्जन हैं। माता-पिता के धार्मिक संस्कार उनके सुपुत्र राजीव पर भी पूर्ण रूप से विद्यमान हैं।

सन् १६७८ में Political Thought of Swami Dayanand विषय पर डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार के निदेशन में शोधकार्य किया, और गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.